नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं

अध्यात्मयोगी युगमनीषी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा.

जीवन-चरित, दर्शन, व्यक्तित्व और कृतित्व

विद्वत्ता, प्रज्ञा और साधना की त्रिपुटी के आदर्श थे अध्यात्मयोगी, युगमनीषी आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.। आगम महोदधि श्री आत्मारामजी म.सा. द्वारा अपने पत्रों में प्रयुक्त 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' विशेषण आचार्य श्री हस्ती की गुण गरिमा का प्रतीक है। हस्तियों में गंधहस्ती की भांति वे पुरुषों में श्रेष्ठ महापुरुष थे। "मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्"-मन, वचन एवं कर्म तीनों में एकता रखने वाले उन महात्मा से कौन प्रभावित नहीं था?

'पूज्य श्री' के नाम से विख्यात आचार्य श्री हस्ती साधारण-सी देह में एक असाधारण अध्यात्मयोगी एवं उच्चकोटि के साधक सन्त थे। भौतिक जगत की चमक आपकी उद्दीप्त साधना के समक्ष फीकी एवं व्यर्थ प्रतीत होती थी। लोक में प्रतिष्ठित प्रोफेसर, इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, न्यायाधिपति, उद्योगपति, जौहरी, व्यवसायी, एडवोकेट आदि सभी आपके चरणों में नतमस्तक थे तथा आपसे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त कर प्रमोद का अनुभव करते थे।

अप्रमत्तता, निःस्पृहता, निरभिमानता, निर्भयता, मितभाषिता, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव, प्राणिमात्र के प्रति करुणाभाव आदि अनेक गुणों से आपकी साधना तेजस्वी एवं दीप्तिमान थी। प्रातः जागरण से लेकर रात्रि-विश्राम के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग आपकी जीवनचर्या का अंग था। स्वाध्याय, ध्यान, मौन, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, शास्त्र-वाचना आदि सभी क्रियाएँ आप निश्चित समय पर एवं सजगतापूर्वक करते थे। आपकी अप्रमत्तता बाह्य क्रियाओं में ही नहीं आत्मस्वरूप के स्मरणपूर्वक अन्तरंग से जुड़ी हुई थी। आप मौन साधना में विराजे हुए भी दर्शक के अन्तर्हृदय में प्रेरक बनकर बोलते थे।

अन्धी मान्यताओं में जकड़े मानव-समाज के लिए आपने ज्ञान (स्वाध्याय) का मार्ग प्रशस्त किया। जन-जन में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करने का अभियान छेड़ा तथा अपरिमित इच्छाओं, वासनाओं, राग-द्वेष, अहंकार, माया, लोभ आदि विकारों के कारण तनावग्रस्त मनुष्य के लिए शांति के मंत्र रूप में सामायिक की साधना को अपनाने पर बल दिया।

नारी-शिक्षा एवं सदाचरण की महती प्रेरणा, युवकों में धर्म के प्रति आकर्षण एवं समाज-निर्माण में उनकी शक्ति के सदुपयोग को एक दिशा, समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों यथा-आडम्बर, वैभव-प्रदर्शन, दहेज-माँग आदि पर करारी चोट, विभिन्न ग्राम- नगरों में व्याप्त कलह एवं मन-मुटाव के कलुष का प्रक्षालन, समाज के कमजोर तबके एवं असहाय परिवारों को साधर्मि-वात्सल्यपूर्वक सहयोग की प्रेरणा आदि अनेक कार्यों ने आपको युगमनीषी एवं युग प्रभावक महान् आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया।

निमाज में आपका तेरह दिवसीय तप-संथारा जिन उच्च आध्यात्मिक भावों के साथ सम्पन्न हुआ वह एक आचार्य के लिए शताब्दियों में भी विरल एवं अप्रतिम उदाहरण है, जिसकी महक युगों-युगों तक जैन-जगत् को सुवासित करती रहेगी।

नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं

(अध्यात्मयोगी, युगमनीषी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. का जीवन, दर्शन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं

(अध्यात्मयोगी, युगमनीषी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. का जीवन, दर्शन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

सम्पादक

डॉ. धर्मचन्द जैन

एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सम्पादक-मण्डल

डॉ. मंजुला बम्ब

ज्ञानेन्द्र बाफना

प्रसन्नचन्द बाफना

डॉ. सुषमा सिंघवी

प्रकाशक

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

एवं

ऑल इण्डिया जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ पारमार्थिक ट्रस्ट

131553

नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं

(अध्यात्मयोगी, युगमनीषी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. का जीवन, दर्शन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

प्रकाशक :

1. अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
   घोड़ों का चौक, जोधपुर–342001, फोन एवं फैक्स– 2636763, 2641445
2. ऑल इण्डिया जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, पारमार्थिक ट्रस्ट
   10–साजन नगर, (चितावद), इन्दौर–452001,
   फोन नं. 2400121–122–123

Serving Jinshasan
131553
gyanmandir@kobatirth.org

अन्य प्राप्ति–स्थान :

1. सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर–302003, फोन नं. 2565997
2. गजेन्द्र निधि ट्रस्ट– 2 ए, किताब महल, प्रथम माला, 192, डॉ. डी. एन. रोड़, मुम्बई–400001
   फोन नं. 22071581–82
3. ऑल इण्डिया श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ ट्रस्ट, कालाथी पिल्लई स्ट्रीट, साहुकार पेट,
   चेन्नई–600079, फोन नं. 25293001, 25297822
4. श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ, गणपति नगर, जलगांव (महा.) 425001
   फोन नं. 2232315
5. श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, 3/356, बिराट नगर, जेल के पीछे, बजरिया, सवाईमाधोपुर
   फोन नं. 222147
6. कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ, 61–नगरथ पेठ, बैंगलोर
   फोन नं. 22212381
7. मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली–110007

सहयोग राशि : दो सौ पचास रुपये

प्रथम संस्करण : जोधपुर, 2003

कम्प्यूटर टंकण : जे.के. कम्प्यूटर, जालोरी गेट, जोधपुर, मोबा. 3117670

मुद्रण–व्यवस्था : श्री जेनेन्द्र प्रेस, ए–45, नारायणा, फेज–1, नई दिल्ली–110028

तुभ्यं नमः कुशल–वंश–विभूषणाय,
तुभ्यं नमः सती–शिरोमणि–नंदनाय।
तुभ्यं नमः सकल–संकट–मोचकाय,
तुभ्यं नमः गणि–गजेन्द्र–गणाधिपाय।।

अहिंसा

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

वन्दे तद्गुणलब्धये
(उन महापुरुष के गुणों को प्राप्त करने के लिए वन्दन करता हूँ)

प्रकाशकीय

अध्यात्मयोगी, युगमनीषी, युगप्रभावक, युगप्रधान आचार्यप्रवर परमाराध्य गुरुदेव पूज्य 1008 श्री हस्तीमल जी म.सा. के चिरप्रतीक्षित जीवन चरित्र 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

चारित्र चूड़ामणि, इतिहास मार्तण्ड, अखंड बाल ब्रह्मचारी आचार्य भगवन्त श्रमण भगवान महावीर की श्रमण परम्परा के ज्योतिर्मान नक्षत्र एवं रत्न संघ परम्परा के देदीप्यमान भुवन भास्कर थे। मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की वय में आचार्य पद पर मनोनयन, उन्नीस वर्ष की वय में आचार्य पद–आरोहण, इकसठ वर्ष तक संघ के दायित्व का निर्मल–सफल निर्वहन, जीवन की सांध्य वेला में संथारापूर्वक सजग समाधिमरण आपके जीवन के भव्य कीर्तिमान हैं, जो श्रमण भगवान महावीर की पट्ट परम्परा में आपका यशस्वी नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित करने में सक्षम हैं। सामायिक और स्वाध्याय आपकी अमर प्रेरणाएँ हैं। स्मितमुस्कानयुक्त आनन, ब्रह्मतेज से दीप्त नयन, अप्रमत्त दिनचर्या, प्राणिमात्र के प्रति मैत्री एवं करुणा, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव, विपरीत परिस्थितियों में भी माध्यस्थ भाव, ज्ञान–क्रिया से अद्‌भुत सम्पन्नता आदि आपके जीवन की मौलिक विशेषताएँ हैं। आप पद से नहीं, वरन् पद आपसे सुशोभित हुए, आप भक्तों से नहीं वरन् भक्तजन आपसे गौरवान्वित हुए।

ऐसे इतिहास मार्तण्ड, जन–जन की आस्था के केन्द्र ज्योतिपुंज आचार्य भगवन्त का वि.सं. 2048 वैशाख शुक्ला 8 दिनांक 21 अप्रेल 1991 को जब संथारापूर्वक महाप्रयाण हुआ तो समूचा संघ ही नहीं जैन एवं जैनेतर जगत् स्तब्ध रह गया। कई पीढ़ियों के गुरुदेव को लाखों भक्तों ने बचपन से ही हृदय केन्द्र में बसा रखा था, अतः जीवन पर्यन्त संचित स्मृतियां सहज ही उनके स्मृतिपटल पर उभर उठीं। साथ ही भक्त जन–मानस में यह भावना जगी कि इन महापुरुष के जीवन के संस्मरणों, घटनाओं, विशेषताओं, आचार संबंधी आदर्शों, प्रेरक प्रसंगों को पढ़कर यह पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन का निर्माण कर सके तथा आगामी पीढ़ी के लिए विरासत के रूप में सुरक्षित सौंप सके, इस उद्देश्य से उनका पावन जीवन–चरित्र लिपिबद्ध किया जाय।

संघ के कार्यकर्त्ताओं को भी यह प्रस्ताव सहज ग्राह्य लगा। एतदर्थ प्रयास भी प्रारम्भ हुए। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के माध्यम से दो विशेषाङ्क प्रकाशित हुए– 'आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म. सा.: श्रद्धांजलि विशेषाङ्क' (सन् 1991) एवं 'आचार्य श्री हस्ती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व विशेषाङ्क'(सन् 1992)। 'झलकियाँ जो इतिहास बन गई' पुस्तक भी प्रकाश में आई, जिसमें पूज्य गुरुदेव के जीवन के प्रेरक–प्रसंग संकलित हैं।

विदुषी बहिन डॉ. मंजुला जी बम्ब ने भी महासाधक के जीवन की कड़ियों को सूत्रबद्ध कर ग्रन्थ का आधार बनाया। उनका यह प्रयास सराहनीय था। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'। उसके अनन्तर कतिपय प्रयासों के बावजूद भी कार्य अपेक्षित गति नहीं पकड़ पाया। इन प्रयासों की गति व प्रगति से संघ समुदाय संतुष्ट नहीं था। अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की बैठकों में संघसदस्यों ने अपनी तीव्र भावावेशित भावनाएँ भी समय–समय पर संघ के कार्यकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत की व कार्य में हो रही देरी हेतु उपालम्भ भी दिये।

अंततः सबकी भावना व राय यही रही कि यह लेखन मनीषी लब्धप्रतिष्ठ जैन विद्वान्, परमपूज्य गुरुदेव के अनन्य श्रद्धालु भक्त डॉ. धर्मचन्द जैन को सौंपा जाय। साथ ही इस कार्य–व्यवस्था को संयोजित करने तथा डॉ. धर्मचन्द जी जैन को अभीष्ट सहयोग प्रदान करने, संघ व कार्यकर्ताओं से सम्पर्क–समन्वय रखने हेतु ''आचार्य हस्ती जीवन चरित्र प्रकाशन समिति'' के नाम से संघ के तत्त्वावधान में एक समिति गठित कर

उसके अध्यक्ष का दायित्व मुझें सौंपने का निर्णय लिया गया। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ था। मैं संघ में संगठन का व्यक्ति रहा हूँ, प्रकाशन का मुझे कोई अनुभव नहीं था, फिर भी पीपाड़ में मनोनीत संघाध्यक्ष माननीय श्री रतनलाल जी बाफना व संघ कार्यकर्ताओं का आदेश शिरोधार्य था। लेखन-सम्पादन कार्य डॉ. धर्मचन्द जैन द्वारा स्वीकार किये जाने से मन में संतोष व विश्वास अवश्य था कि पूज्यपाद के कृपा प्रसाद के संबल व विद्वान् सम्पादक साथी के सहयोग से मैं इस परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो पाऊँगा।

कार्य नये सिरे से प्रारम्भ हुआ। डॉ. धर्मचन्द जी जैन की भावना थी कि रत्नवंश पट्ट परम्परा, महापुरुषों का परिचय आदि कुछ आलेख मैं लिखकर उनका सहयोग करूँ। महामनीषी महापुरुष के महनीय व्यक्तित्व व कृतित्व को शब्दों में अभिव्यक्त करना संभव नहीं। प्रचार-प्रसार की भावना से कोसों दूर उन महापुरुष के जीवन बिन्दुओं का सहज संकलन भी उपलब्ध नहीं था। प्रामाणिकता का ध्यान रखना आवश्यक था। अतः भगवन्त की दैनन्दिनियों का अवलोकन कर उन कड़ियों को सूत्रबद्ध करना था। न चाहते हुए भी हुई देरी का यह प्रमुख कारण रहा। तथापि मुझे हृदय से यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि दीर्घ अवधि तक मैं इस दायित्व हेतु अपेक्षित समय नहीं दे पाया, इससे भी कार्य में विलम्ब होता गया। संघ सदस्यों की भावनाएँ भी आहत हुई और मुझे समय-समय पर उनके द्वारा उपालम्भ भी मिले। कड़वी दवा जीवनदायिनी होती है, संघ सहयोगियों के उपालम्भ के प्रसाद से मेरे मन में भी एक चुनौती का भाव जगा व अपेक्षित समय, श्रम व सहयोग की भावना जगी। मैं तत्परता से इस कार्य में सन्नद्ध हो गया और आज कार्य की पूर्णता देखकर मन में प्रमोद है। अस्तु यह कार्य- सम्पन्नता भी उन्हीं पूज्यपाद की कृपा का ही प्रसाद है। मैं अपने आपको अत्यंत सौभाग्यशाली समझता हूँ कि अबोध बाल्यकाल से ही उन श्रीचरणों में बैठने का सौभाग्य मिला। जीवन में जो कुछ पाया, यत्किंचित् संघसेवा का जो लाभ ले पाया, वह परमाराध्य गुरुदेव के मंगल आशीर्वाद का ही सुफल है।

मैं भाई डॉ. धर्मचन्द जैन के अमूल्य सहयोग का हृदय से कृतज्ञ हूँ। उन्होंने अपनी विविध शैक्षिक गतिविधियों को गौण कर इस कार्य को सम्पन्न किया है। प्रत्यक्ष दायित्व न होने पर भी भाई प्रसन्नचन्द जी बाफना ने आगे होकर न केवल मेरा मार्गदर्शन किया, अपितु सम्पूर्ण ग्रन्थ का आद्योपान्त अवलोकन कर भाव, भाषा एवं तथ्य की दृष्टि से भी परिष्कार संबंधी अमूल्य सुझाव दिए। समूचे कार्य में सहज कर्त्तव्यभावना से निष्ठा के साथ प्रदत्त उनकी सहभागिता के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

परमपूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा., मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. एवं शासनप्रभाविका श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के सान्निध्य में बैठकर पूज्य चरितनायक के जीवन प्रसंगों, संस्मरणों, उपदेशों, घटनाओं आदि के संबंध में सैद्धान्तिक विचार-विमर्श करने से अनेक अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए। जिनसे जीवन-ग्रंथ में प्रामाणिकता एवं निर्दोषता में अभिवृद्धि हुई है। एतदर्थ हम पाठकवृन्द की ओर से भी आचार्यप्रवर, सन्तप्रवर एवं शासनप्रभाविका जी के चरणों में कोटिशः वन्दन करते हुए हृदय से कृतज्ञता स्वीकार करते हैं।

'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' ग्रन्थ में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि कोई भी घटना तथ्य विपरीत न हो। ग्रन्थ को प्रामाणिक बनाने का पूरा प्रयास किया गया है। चामत्कारिक घटनाओं पर भी यथासंभव विराम लगाया गया है। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र को पुष्ट करने वाली घटनाओं, प्रसंगों, तथ्यों आदि को प्राथमिकता दी गई है। अनेक भावुक भक्तों के भावप्रवण संस्मरणों को एतदर्थ छोड़ना भी पड़ा है। उनसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। जो भी तथ्य उपलब्ध हुए हैं, उन्हें ही ग्रन्थ में संयोजित किया जा सका है। महासाधक के

जीवनवृत्त के कई प्रसंग अनुपलब्ध होने से ग्रन्थ के भाग नहीं बन सके हैं, आशा है इसे भक्तजन अन्यथा नहीं लेंगे।

अनेक उदारमना श्रद्धानिष्ठ गुरुभक्त श्रावक इस प्रकाशन में सहयोगी बनने के इच्छुक थे। कइयों की भावना थी कि सम्पूर्ण प्रकाशन का लाभ उन्हें ही दिया जाय, किन्तु विचारोपरान्त यही उचित समझा गया कि विराट् व्यक्तित्व के जीवन–चरित्र के प्रकाशन–सहयोग का लाभ अधिकाधिक भक्तों को मिल सके। इस दृष्टि से अनेक नाम प्रकाशन–योजना में सम्मिलित हुए हैं। हम सबके प्रति आभार ज्ञापित करते हैं। अर्थ–सहयोगियों की नामावली आकारादि क्रम से ग्रन्थ के अन्त में दी जा रही है।

विदुषी बहिन डॉ. सुषमा जी सिंघवी, श्री लक्ष्मीकान्त जी जोशी, श्री पुखराज जी मोहनोत, डॉ. महेन्द्रकुमार जी भानावत, श्री सरदारचन्द जी भण्डारी, श्री नेमीचन्द जी बोथरा, श्री नौरतन जी मेहता, श्री धर्मचन्द जी जैन–रजिस्ट्रार, सुश्री मीना जी बोहरा, सुश्री श्वेता जी जैन एवं श्री जितेन्द्र जी जोशी आदि सभी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोगीगण का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। श्री नरेद्र प्रकाश जी जैन (मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास) नई दिल्ली ने रुचिपूर्वक ग्रन्थ का मुद्रण कार्य सम्पन्न कराया है, एतदर्थ उनका भी धन्यवाद ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

पूज्य आचार्य भगवन्त का जीवन–ग्रन्थ 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' आपके कर–कमलों में है। आप इसका रसास्वादन करें एवं अपने जीवन को सफलीभूत करें, यही शुभ भावना है।

-ज्ञानेन्द्र बाफना
अध्यक्ष
आचार्य श्री हस्ती जीवन चरित्र प्रकाशन समिति, जोधपुर

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी
१२ जुलाई २००३

सम्पादकीय

महापुरुषों का जीवन जनसाधारण एवं साधक-जनों के लिए स्पृहणीय, प्रेरक एवं मार्गदर्शक होता है। इसीलिए उनके जीवन-दर्शन और व्यक्तित्व की चर्चा की जाती है। किन्तु महापुरुष जैसा जीवन जीते हैं, उसे दूसरा कोई पूर्णतः न तो जान पाता है और न ही उसे समझ पाता है। दूसरा तो केवल बाह्य क्रियाओं को देखकर उनकी महत्ता का अनुमान करता है। बाह्य क्रियाओं से अन्तरंग विचारों, मूल्यों और भावनाओं का सम्यक् आकलन हो पाना कठिन है। इसीलिए किसी महापुरुष या महामनस्वी का जीवन तब तक सम्यक् रूपेण चित्रित करना संभव नहीं, जब तक कि उनके जैसे आध्यात्मिक, वैचारिक एवं आचरण संबंधी मूल्यों को आत्मसात् न कर लिया जाय।

मानतुंगाचार्य ने प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहा है-

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांककान्तान्।
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या॥

उनका यह कथन अध्यात्मयोगी, उच्चकोटि के साधक, युगमनीषी आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. के गुणवर्णन के संबंध में भी उचित ही प्रतीत होता है। गुणसमुद्र आचार्यप्रवर के गुणों का कथन करना अथवा उनकी जीवनी का लेखन करना मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिए तो कदापि संभव नहीं। दूसरी बात यह है कि गुण अमूर्त होते हैं। अमूर्त गुणों का ख्यापन मूर्त शब्दों से नहीं किया जा सकता। किन्तु शब्दों की अपनी महत्ता होती है। संस्कृत के महाकवि दण्डी का कथन है-

इदमन्धतमः सर्वं जायेत भुवनत्रयं।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते॥

यदि शब्दरूपी ज्योति इस संसार में दीप्त न हो तो तीनों लोक अन्धकारमय हो जाएँ, क्योंकि मानव को उनके संबंध में जानकारी शब्दों से होती है। इसीलिए अमूर्त गुणों एवं उच्च कोटि के साधक जीवन को यत्किंचित् समझने में सहायक जानकर शब्दों का आश्रय लिया जाता है। जैन दर्शन में शब्द पुद्गल माने गए हैं, किन्तु वे भी प्रेरक निमित्त बनकर मूढ साधक को साधना में अग्रसर कर सकते हैं। इसी चिन्तन के साथ आचार्यप्रवर के जीवन, दर्शन, व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दों में निबद्ध करने का किंचित् प्रयास किया गया है।

मैं उस समय असमंजस की स्थिति में आ गया, जब अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर के तत्कालीन संघाध्यक्ष माननीय श्री मोफतराजजी मुणोत ने पीपाड़ में समायोजित 10 से 12 अक्टूबर सन् 1997 की कार्यकारिणी बैठक में मुझे युगमनीषी, चारित्रनिष्ठ, करुणानिधान, अध्यात्मयोगी, महामनस्वी आचार्यप्रवर पूज्य 1008 श्री हस्तीमल जी म.सा. की जीवनी का कार्य पूर्ण करने का आदेश दिया। मैं अपनी क्षमताओं की सीमा से परिचित था, इसलिए मैंने अपनी असमर्थता भी प्रकट की, किन्तु उनके अगाध स्नेह एवं कार्यकारिणी सदस्यों के आग्रह के आगे मेरी आवाज बेअसर रही। मैं सोचता रहा कि न तो मेरा कोई आध्यात्मिक स्तर है, न मैं पूज्य गुरुदेव जैसे महनीय व्यक्तित्व को समझने और उसे भाषा में उकेरने का सामर्थ्य रखता हूँ। यह वास्तव में मेरे लिए इसलिए भी कठिन है, क्योंकि न तो लच्छेदार भाषा का प्रयोग मेरे स्वभाव में है, और न ही इस प्रकार की कृति के निर्माण का मुझे कोई अनुभव है। मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि प्रतिभासम्पन्न, समर्पित संघसेवी संघ के पूर्व महामंत्री एवं पूर्व उपाध्यक्ष मेरे अग्रज भाई श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना को संघाध्यक्ष माननीय श्री रतनलाल जी बाफना ने 'आचार्य श्री हस्ती जीवन चरित्र प्रकाशन समिति' का अध्यक्ष मनोनीत कर दिया। इससे मुझे राहत का अनुभव हुआ। अब दायित्व की चिन्ता कुछ कम हो गयी। कतिपय माह

निकलने के पश्चात् आदरणीय भाई श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना से पृच्छा करने पर उन्होंने स्पष्ट किया– ''इस जीवनी रूपी रथ के सारथि तो आप ही हैं। मैं तो उसमें सहयोग की भूमिका अदा करूँगा।''

पुनः सामग्री के अध्ययन में संलग्न हो गया एवं कुछ लेखन भी प्रारम्भ किया। तभी इस कार्य को गति प्रदान करने के लिए भाई श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना के सुझाव से मैं आदरणीया विदुषी बहिन डॉ. सुषमा जी सिंघवी के परामर्श, लेखन–सहयोग आदि के लिए उदयपुर गया। उदयपुर में उनके घर पर रहकर जो कार्य हुआ वह निरन्तर आगे बढ़ता गया। डॉ. सुषमा जी, उनके पति महेन्द्र जी सिंघवी (अब स्वर्गस्थ) का आत्मीय भाव मैं जीवन में कभी नहीं भुला सकता।

जीवनी लेखन का कार्य प्रभूत समय एवं श्रम की अपेक्षा रखता था। जिनवाणी पत्रिका के सम्पादन–कार्य एवं विश्वविद्यालय में शिक्षण–कार्य के अनन्तर माह में जो भी समय मिलता उसे मैं 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' ग्रन्थ के कार्य में अर्पित करता रहा। बूँद– बूँद से घट भरने लगा, किन्तु कार्य की विशालता समुद्र के समान प्रतीत होती रही। विभिन्न लेखकों द्वारा पूर्व में लिखी गई सामग्री का अवलोकन, उसके आधार पर लेखन एवं पूज्य आचार्यप्रवर की दैनन्दिनियों से उसका प्रमाणीकरण आदि कार्य गति पकड़ने लगे।

भक्ति एवं तर्क दो विरोधी पक्ष हैं। इनका समन्वय मेरे लिए सदैव चुनौती का कार्य करता रहा। दर्शन का विद्यार्थी होने के कारण प्रत्येक घटना एवं प्रसंग को तर्क की कसौटी पर कसता, तो लेखन का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता और जब भक्तिभाव में डूबता तो भी तर्क आकर लेखन की गति में बाधक बन जाता। मुझे लगा जीवनी लेखन का कार्य शुद्ध भक्तिप्रवण व्यक्ति के द्वारा शीघ्र सम्पन्न हो सकता है, किन्तु उत्तरदायित्व जो ग्रहण कर लिया, उसका निर्वाह करना कर्त्तव्य था।

पूज्य आचार्यप्रवर की मुझ पर महती कृपा थी। श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ़ (टोंक) के छात्र के रूप में फरवरी सन् 1968 में मैंने उनके प्रथम दर्शन किए। विद्यालय के सब छात्र रैली बनाकर महामनीषी पूज्य चरितनायक की अगवानी में उखलाना ग्राम गये थे। तेजस्वी स्मितवदन, शान्ति एवं सौहार्द की शिक्षा देते उत्थित दक्षिण हस्त और महान् सन्त के रूप में प्रसृत आपकी कीर्ति ने उसी समय आकर्षित कर लिया था। फिर श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत रहते हुए पूज्य गुरुदेव के पावन सान्निध्य में जो प्रेरणा मिलती उससे जीवन का सहज विकास होता गया। संस्कृत, प्राकृत एवं जैन तत्त्वज्ञान के बोध हेतु आपसे सदैव प्रेरणा मिलती। अलवर, झालावाड़ एवं भरतपुर के महाविद्यालयों में अध्यापन करते समय तथा जयपुर में शोधकार्य में संलग्न रहते समय आपके पावन सान्निध्य का जब भी सुयोग मिला, आपने आत्मीय भावपूर्वक आगे बढ़ने की प्रेरणा की। वे शब्द आज भी मेरी स्मृतिपटल पर हैं, जब पूज्यप्रवर ने जिनवाणी के सम्पादक डॉ. नरेन्द्र जी भानावत से कहा था– ''इसे अपने साथ जोड़कर चलना।'' आज मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ कि उन पूज्यवर्य गुरुदेव के जीवनवृत्त का किंचित् रेखांकन करने में निमित्त बन सका हूँ। इस कार्य में मुझे अतुल आनन्द की अनुभूति हुई है तथा श्रम एवं समय की आहुति को सार्थक मानता हूँ।

परम पूज्य गुरुदेव का यह जीवन ग्रन्थ 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड 'जीवनी–खण्ड' इस ग्रन्थ का मुख्य भाग है, जिसमें अध्यात्मयोगी महापुरुष के जीवन का अथ से इति तक 25 अध्यायों में प्रामाणिक चित्रण किया गया है। प्रथम अध्याय 'तेणं कालेणं तेणं समएणं' में रत्नसंघ की आचार्य–परम्परा एवं तत्कालीन प्रभावक सन्तों के गरिमामय व्यक्तित्व का वर्णन है। द्वितीय अध्याय 'जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे पीपाड़नगरे' में पीपाड़ नगर के प्रतिष्ठित बोहरा परिवार पर हुए दुस्सह वज्रपात, चरितनायक के जन्म, शिक्षा आदि के साथ माता के वैराग्य, ननिहाल पर कहर, सन्त–सतियों के प्रभाव, वैराग्य–पोषण, शिक्षा गुरु

स्वामी जी श्री हरकचन्द जी म.सा. एवं आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की सेवा में चरितनायक एवं माता रूपादेवी की दीक्षा-भावना का निरूपण है। तृतीय अध्याय में चरितनायक की पावन दीक्षा का, चतुर्थ अध्याय में संवत् 1977 से संवत् 1983 तक पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की सेवा में रहकर श्रमणाचार के अभ्यास एवं अध्ययन में प्रौढ़ता अर्जन के साथ संघनायक के रूप में चयन का वर्णन है। पंचम अध्याय में आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के स्वर्गारोहण के अनन्तर स्वामी जी श्री सुजानमल जी म.सा. के संघ-व्यवस्थापत्व एवं स्वामी जी श्री भोजराज जी म.सा. के परामर्शदातृत्व काल (संवत् 1983-1987) के कार्यों का निरूपण हुआ है। षष्ठ अध्याय में चरितनायक के आचार्य पद-आरोहण, सप्तम अध्याय में उनके विहार एवं चातुर्मासों के महत्त्व, अष्टम अध्याय में संघनायक बनने के पश्चात् प्रथम चातुर्मास (संवत् 1987) का वर्णन है। इसके पश्चात् के नवम से लेकर चौबीसवें अध्याय तक संवत् 1988 से 2047 तक के विभिन्न चातुर्मासों एवं विचरण-विहार का उपलब्धियों एवं प्रमुख घटनाओं के साथ उल्लेख किया गया है। इन अध्यायों में अजमेर साधु-सम्मेलन, सादड़ी सम्मेलन, सोजत सम्मेलन एवं भीनासर सम्मेलन में आचार्यप्रवर की भूमिका को रेखांकित करने के साथ विभिन्न सम्प्रदायों के सन्त-वरेण्यों के साथ मधुर-मिलन के प्रसंगों को स्थान दिया गया है। उन्नीसवाँ अध्याय आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की दीक्षा शताब्दी एवं चरितनायक की दीक्षा अर्द्धशती पर हुए तप-त्याग के उल्लेख से समन्वित है। पच्चीसवाँ अध्याय पाली से निमाज पदार्पण एवं तप-संथारापूर्वक महाप्रयाण साधना का संक्षिप्त दस्तावेज है।

द्वितीय खण्ड में आचार्यप्रवर के दर्शन एवं चिन्तन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह खण्ड दो अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय 'अमृत वाक्' में आचार्यप्रवर के आध्यात्मिक, साधनाशील एवं उर्वर मस्तिष्क में उदित विचारों को संकलित किया गया है। आपके प्रवचन-साहित्य एवं दैनन्दिनियों से चयनित ये विचार जन-जन के लिए मार्गदर्शक हैं तथा किंकर्तव्यविमूढ़ और उलझे हुए मस्तिष्क को सम्यक् समाधान प्रदान करते हैं। अल्प शब्दों में गहन गम्भीर भावों से भरे ये विचार अज्ञान रूपी अंधकार में भटके मोक्ष पथिक के लिए ज्योति-स्तम्भ की भांति सन्मार्ग का बोध कराते हैं तथा पाठक के भीतरी विकारों को दग्ध कर आन्तरिक आनन्द की अनुभूति कराने में सक्षम हैं। एक-एक वचन अमृततुल्य होने के कारण इस अध्याय का नामकरण 'अमृत वाक्' किया गया है। अध्यात्म एवं साधना के शिखर का स्पर्श कर लेने वाले वे महात्मा यदि स्वयं अमृत वचनों का सुव्यवस्थित रीति से लेखन करते तो इन वचनों की संख्या और गुणवत्ता दोनों में अधिक निखार आ सकता था।

इस खण्ड के द्वितीय अध्याय 'हस्ती उवाच' में 129 विषयों पर पूज्यपाद आचार्यप्रवर के मार्गदर्शक एवं प्रेरक विचारों का संकलन किया गया है। विचारों के इन विषयों का प्रस्तुतीकरण अकारादि क्रम से किया गया है। इनमें दर्शन, अध्यात्म, साधना, जीवन-निर्माण, समाज-सुधार आदि अनेक विषयों पर प्रकाश प्राप्त होता है। स्वाध्याय और सामायिक पूज्यप्रवर की प्रेरणा के प्रमुख विषय रहे हैं। प्रार्थना, भक्ति या स्तुति पर आपके मौलिक विचार हर भक्त या स्तुति-कर्ता को लौकिक कामनाओं के मायाजाल में भटकने से बचाते हैं। आपने बालक-बालिकाओं में संस्कार, नारी-शिक्षा, युवक जागरण आदि जन-कल्याण के विषयों के साथ आत्मशक्ति, अनासक्ति, वैराग्य, ज्ञान, वीतरागता, सम्यक्त्व, आचरण, तप, ध्यान, प्रतिक्रमण, पर्युषण, परिग्रह-परिमाण, साधक-जीवन आदि आध्यात्मिक एवं साधनापरक विषयों पर सुन्दर विचार प्रकट किए हैं। दार्शनिक विषयों पर भी आपका चिन्तन स्पष्ट एवं व्यवस्थित है। अनेकान्तवाद-स्याद्वाद, कर्मवाद, कार्य-कारण सिद्धान्त, द्रव्य और पर्याय आदि विषयों पर उद्भूत आपके विचार इसके साक्षी हैं। श्रावकों एवं श्रमणों दोनों को

अपनी साधना में आगे बढ़ाने हेतु आपने अमूल्य पाथेय एवं ज्ञानचक्षु का उन्मीलन करने वाली औषधि प्रदान की है। आपने सामाजिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वास पर भी करारी चोट की है तथा स्वाध्याय और सामायिक को जीवन-निर्माण एवं जीवन उन्नयन हेतु आवश्यक प्रतिपादित किया है। आपके विचारों को पढ़कर पाठक को निश्चित ही अंधी मान्यताओं के मकड़जाल से निकलने की एवं उच्च लक्ष्य को लेकर धर्म-साधना में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

तृतीय खण्ड चरितनायक के महान् व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। आपके व्यक्तित्व पर इस ग्रंथ के आमुख एवं जीवनी खण्ड के अंतिम अध्याय 'अध्यात्म योगी : महाप्रयाण की ओर' में संथारा और समाधिमरण के प्रसंग पर संत-महापुरुषों के द्वारा प्रेषित संदेशों में भी कुछ विचार गुम्फित हुए हैं, किन्तु संतों, महापुरुषों एवं भक्त श्रावकों के जीवन विकास में आपके योगदान एवं उनके हृदय में आपकी छवि के दर्शन इस खण्ड के अग्रांकित दो स्तबकों में परिलक्षित होते हैं- 1. संस्मरणों में झलकता व्यक्तित्व 2. काव्यांजलि में निलीन व्यक्तित्व। प्रथम स्तबक गद्य में है तथा द्वितीय स्तबक पद्य में है। आचार्यप्रवर के व्यक्तित्व की विशेषताएँ इन स्तबकों के माध्यम से नव्य शैली में प्रकट हुई हैं। आपके व्यक्तित्व पर सीधा लेख आमन्त्रित करने की अपेक्षा प्रथम स्तबक में संस्मरणों को स्थान दिया गया है। संस्मरण लेखक की चेतना से सीधे जुड़े रहते हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक गुणसमृद्ध आचार्यप्रवर की विशेषताओं का स्वयं आकलन कर सकता है। वैसे तो सम्पूर्ण ग्रन्थ ही आपके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है, किन्तु इन संस्मरणों में जो सहज एवं अनुभूत अभिव्यक्ति हुई है, उससे पाठक की श्रद्धा चरितनायक के गुणों के प्रति स्वतः उमड़ती है। घटनाओं के माध्यम से पाठक को चरितनायक के गुणों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। गजेन्द्रगणिवर एवं आचार्य हस्ती के नामों से विश्रुत चरितनायक के व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताएँ इन संस्मरणों में अभिव्यक्त हुई हैं। आचार्यप्रवर हस्ती एक महान् अध्यात्म योगी, उच्च कोटि के चारित्रनिष्ठ साधक संत, गहन विचारक एवं युगमनीषी संत थे। आपकी इन विशेषताओं के अतिरिक्त इन स्तबकों में निस्पृहता, अप्रमत्तता, उदारता, करुणाभाव, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव, वचनसिद्धि, भावि द्रष्टृत्व, चारित्र पालन के प्रति सजगता, आत्मीयता, असीम आत्म-शक्ति, विद्वत्ता, पात्रता की परख, दूरदर्शिता आदि अनेक गुणों का बोध होता है। संस्मरणों को पढ़ते समय भक्त-हृदय में आपकी गहरी पैठ एवं उसके मनोभावों को बदलने की क्षमता का भी बोध होता है। संस्मरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि आपके प्रति श्रद्धालुओं को जीवन में बदलाव के चमत्कार का भी अनुभव हुआ और उन्हें विभिन्न अप्रत्याशित घटनाओं में भी चमत्कार परिलक्षित हुए। प्रथम स्तबक के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि आपकी साधारण सी देह में एक महान् असाधारण संत का जीवन ओतप्रोत था।

संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में समय-समय पर किए गए काव्यमय गुणगानों में से कतिपय रचनाएँ द्वितीय स्तबक में संकलित हैं। इनमें आपका साधनाशील एवं युगप्रभावक व्यक्तित्व उजागर हुआ है। पूज्य घासीलाल जी म.सा. जैसे आगममनीषी संतों ने आप पर संस्कृत में अष्टक की रचना कर आपके व्यक्तित्व को प्रणाम किया है। उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी, पं. श्री घेवरमुनि जी, पं. श्री रमेशमुनि जी शास्त्री, पं. रत्न श्री वल्लभमुनि जी आदि संत प्रवरों की काव्यांजलियों एवं अष्टकों में आपके प्रभावक एवं व्यापक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। हिन्दी एवं मारवाड़ी मिश्रित काव्य-कृतियों का गान करते हुए आपके प्रति श्रद्धा, समर्पण एवं कृतज्ञता के भाव जन-जन के मन में सहज ही स्फुरित होते हैं।

चतुर्थ खण्ड आपकी साहित्य-साधना एवं काव्य-साधना से संबद्ध है। इस खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय आपकी साहित्य-साधना की महत्ता का परिचायक है। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में आपने दशवैकालिक

सूत्र, नन्दी सूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, अन्तगड़ सूत्र आदि आगमों का सम्पादन एवं व्याख्या-लेखन का कार्य शासन हित की दृष्टि से किया। आप साधुमार्गी समाज में विशिष्ट साहित्य के निर्माण, मूलागमों के अन्वेषण पूर्ण शुद्ध संस्करण की पूर्ति, सूत्रार्थ का शुद्ध पाठ पढ़कर जनता को ज्ञानातिचार से बचाने एवं आगम-सेवा की दृष्टि से इस ओर प्रवृत्त हुए। आगमों का स्वाध्याय करने की ओर जनसाधारण भी प्रवृत्त हो, इस दृष्टि से आपने दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया तथा संस्कृत छाया, हिन्दी शब्दार्थ, विवेचन एवं संबद्ध कथाओं से इन संस्करणों को समृद्ध बनाया। आगम-व्याख्या साहित्य के अतिरिक्त आपका प्रवचन, इतिहास, काव्य, कथा आदि से संबद्ध साहित्य भी उपलब्ध है। आपके अधिकांश प्रवचन असंकलित एवं अप्रकाशित हैं। कतिपय प्रवचन आध्यात्मिक साधना, आध्यात्मिक आलोक, प्रार्थना प्रवचन, गजेन्द्र मुक्तावली (भाग 1 व 2) , गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग 1 से 7) आदि पुस्तकों में संकलित हैं। प्रवचन आगमाधारित, अत्यन्त सहज, प्रेरणाप्रद, रोचक एवं प्रभावशाली हैं। इतिहास को काव्य रूप में प्रस्तुत करने में आप सिद्धहस्त कवि थे। जैनाचार्य चरितावली इसका उदाहरण है। प्राचीन स्रोतों से जैन इतिहास को प्रस्तुत करना आपका लक्ष्य रहा, जो जैनधर्म का मौलिक इतिहास के चार भागों में साकार हुआ। काव्य, कथा एवं अन्य साहित्य से आपकी आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक एवं कल्याणकारिणी दृष्टि का परिचय मिलता है।

चतुर्थ खण्ड के द्वितीय अध्याय में आपके द्वारा रचित पदों, भजनों एवं प्रर्थनाओं का संकलन है, जो आध्यात्मिक उन्नयन एवं जीवन सुधार के भावों से ओत-प्रोत हैं। सामायिक, स्वाध्याय, समाज-एकता, कुव्यसन-त्याग, सेवा, गुरु-भक्ति, महिला-शिक्षा, षट्कर्माराधन आदि विविध विषयों पर भावपूर्ण हृदयावर्जक पदों एवं भजनों की रचना कर आपने जन-जन को जागृत करने का प्रयास किया है। तीर्थंकर शांतिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर पर प्रार्थनाएँ, उनके गुणों की ओर आकर्षित करती हैं। 'सतगुरु ने यह बोध बताया', 'समझो चेतन जी अपना रूप', 'मेरे अन्तर भया प्रकाश', 'मैं हूँ उस नगरी का भूप' आदि पद शरीर एवं आत्मा में भिन्नता से साक्षात्कार का स्पष्ट चित्रांकन करते हैं। इस अध्याय में आपकी 61 पद्य रचनाएँ आपके 61 वर्ष के आचार्य काल का स्मरण कराती हैं।

पंचम खण्ड परिशिष्ट खण्ड है। प्रथम चार खण्डों में अविभक्त सामग्री का समावेश इस खण्ड में किया गया है। इसमें चार परिशिष्ट हैं- 1. चरितनायक की साधना में प्रमुख सहयोगी साधक महापुरुष 2. चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित सन्त-सती 3. कल्याणकारी संस्थाएँ और 4. आचार्यप्रवर के 70 चातुर्मास : एक विवरण।

प्रथम परिशिष्ट में पूज्य चरितनायक के गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा., शिक्षा गुरु स्वामीजी श्री हरखचन्द जी म.सा., संघ-व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी म.सा., शासन सहयोगी श्री भोजराजजी म.सा. एवं पं. रत्न श्री लक्ष्मीचन्द जी म.सा., महासती श्री बड़े धनकंवर जी म.सा. एवं माता महासती श्री रुपकंवर जी म.सा. के योगदान का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। द्वितीय परिशिष्ट में चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित होकर साधना में निरतिचार रूप से संलग्न रहने वाले प्रमुख सन्त-सतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तृतीय परिशिष्ट में उन कल्याणकारी संस्थाओं का परिचय है जो चरितनायक के शासनकाल में सुज्ञ, विवेकशील एवं जागरूक श्रावकों द्वारा उपकार की भावना से स्थापित की गई हैं। अन्तिम परिशिष्ट में चरितनायक पूज्य गुरुदेव के 70 चातुर्मासों की सारिणी है, जिसमें शासनकाल की प्रमुख घटनाओं एवं गच्छ के संतों के चातुर्मासों की भी सूचना संकलित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' विशेष प्रयोजनवत्ता एवं सार्थकता लिए हुए है। आगम

महोदधि आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म.सा. चरितनायक के लिए अपने पत्र में 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' विशेषण का प्रयोग करते थे। यह शब्द सामायिक सूत्र के 'नमोत्थुणं' पाठ में अरिहन्तों एवं सिद्धों के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। आगमज्ञ आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म.सा. ने कुछ सोच विचार कर पूज्य चरितनायक के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया होगा। हाथियों में जिस प्रकार 'गंधहस्ती' की श्रेष्ठता स्वीकृत है उसी प्रकार वे पुरुषों में श्रेष्ठ थे। आपके संयम, अनुशासन, विद्वत्ता एवं साधना की सौरभ चहुँ दिशाओं को आकर्षित करती थीं। इस ग्रन्थ के माध्यम से पुरुषों में श्रेष्ठ महापुरुष पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. को नमन किया गया है, अतः ग्रन्थ का नाम 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' अर्थवत्ता लिए हुए है।

उपलब्ध सामग्री ही इस ग्रन्थ का आधार बनी है, इसलिए कुछ स्थानों पर विवरण अपूर्ण भी रहा है। ग्रन्थ को प्रामाणिक बनाने का पूरा प्रयास किया गया है। इसमें पौष शुक्ला चतुर्दशी संवत् 2017 (डायरी नं. 2) से आचार्यप्रवर की उपलब्ध दैनन्दिनियों का यथावश्यक उपयोग किया गया है। दैनन्दिनियों में मुख्यतः प्रतिदिन की विहारचर्या, ग्रामों के नाम, दूरी, प्रमुख घटनाओं, सन्त-सतियों के मधुर मिलन, दीक्षा, समाधिमरण आदि का उल्लेख है। स्थान-स्थान पर स्वयं के चिन्तन एवं विचार भी अंकित हैं, जिनका उपयोग जीवनी-खण्ड एवं दर्शन-खण्ड में किया गया है। दैनन्दिनियों की कई बातें संकेतात्मक हैं, जिन्हें बिना पूर्व भूमिका के समझना शक्य नहीं है।

परमपूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा., मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा., शासन प्रभाविका श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. के सान्निध्य में बैठकर पूज्य चरितनायक के जीवन प्रसंगों, संस्मरणों, उपदेशों, घटनाओं आदि के संबंध में सैद्धान्तिक विचार-विमर्श करने से अनेक अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए। जिनसे जीवन ग्रन्थ में प्रामाणिकता एवं निर्दोषता में अभिवृद्धि हुई है। एतदर्थ सम्पादक-मण्डल पाठकवृन्द की ओर से आचार्यप्रवर, सन्तप्रवर एवं शासन प्रभाविका जी के चरणों में कोटिशः वन्दन करता हुआ हृदय से कृतज्ञता स्वीकार करता है।

जीवनी लेखन में अपने पूर्व में लिखित सामग्री का यथावसर उपयोग किया गया है। अतः मैं उन सभी पूर्व विद्वानों पं. श्री शशिकान्त जी झा, श्री गजसिंह जी राठौड़, डॉ. मंजुला जी बम्ब, डॉ. महेन्द्र जी भानावत, श्री लक्ष्मीकान्त जी जोशी एवं श्री पुखराज जी मोहनोत का हृदय से कृतज्ञ हूँ। डॉ. मंजुला जी बम्ब का विशेष आभारी हूँ, क्योंकि उनके द्वारा लिखित सामग्री इस ग्रन्थ के लेखन में मुख्य आधार बनी।

शासन सेवा समिति के सदस्य एवं 'आचार्य श्री हस्ती जीवन चरित्र प्रकाशन समिति' के अध्यक्ष अग्रज भ्राता श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना ने जब नवम्बर 2002 में जीवनी की सामग्री का पूर्ण मनोयोग के साथ निरीक्षण प्रारम्भ किया तो मैंने उन्हें दूरभाष पर कहा- "अब सिंह जाग गया है, कार्य शीघ्र सम्पन्न हो जायेगा।" आपने जीवनी-खण्ड का स्वयं पारायण करते हुए मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. की सेवा में नियमित रूप से बैठकर वाचन किया तथा यथोचित तथ्यात्मक संशोधन पूर्वक इसे समृद्ध बनाया। सन् 1979 के जलगांव चातुर्मास से सन् 1990 के पाली चातुर्मास तक के विवरण का लगभग पुनर्लेखन किया। आपने 'तेणं कालेणं तेणं समएणं' अध्याय, 'कल्याणकारी संस्थाएँ' तथा 'चरितनायक की साधना में प्रमुख सहयोगी साधक महापुरुष' नामक परिशिष्ट का भी लेखन किया है। आपके असीम स्नेह, अगाध विश्वास एवं परम आत्मीय भाव इस ग्रन्थ का कार्य सम्पन्न करने में मेरे लिए सम्बल रहे हैं। आपका आभार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ, सभी शब्द छोटे पड़ते हैं।

शासन सेवा समिति के सदस्य माननीय श्री प्रसन्नचन्द जी बाफना ने अपनी व्यापारिक व्यस्तताओं के

बावजूद एकाग्रता एवं सूक्ष्मेक्षिका के साथ जीवनी की सम्पूर्ण सामग्री का अवलोकन कर मूल्यवान सुझाव दिए हैं तथा अनेक स्थानों पर समुचित संशोधन किए हैं। आपकी पकड़, सूझ–बूझ, तत्परता एवं संघनिष्ठा ने मुझे प्रभावित किया है। मैं आपके द्वारा प्रदत्त सहयोग हेतु कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के संरक्षक–मण्डल के संयोजक श्री मोफतराजजी मुणोत एवं संघाध्यक्ष श्री रतनलाल जी बाफना से समय–समय पर कार्य को गुणवत्ता से परिपूर्ण एवं शीघ्र सम्पन्न करने की जो प्रेरणा मिलती रही है, उसके लिए मैं उनकी हृदय से कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ।

श्री जैन रत्न पुस्तकालय, घोड़ों का चौक, जोधपुर के संचालक सुश्रावक श्री सरदारचन्द जी भण्डारी, गुरुभक्त सुश्रावक श्री गणेशमल जी भण्डारी–बैंगलोर, श्री वर्द्धमान भवन पावटा, पुस्तकालय के संयोजक सुश्रावक श्री नेमीचन्द जी बोथरा, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर के कार्यालय प्रभारी श्री नौरतन जी मेहता, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड के रजिस्ट्रार श्री धर्मचन्द जी जैन आदि से मिले सहयोग के लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अपनी सहधर्मिणी श्रीमती मधु जैन के प्रेरक एवं त्यागमय सहयोग, सुपुत्रियों कनीनिका व मधुरिका तथा सुपुत्र मुदित के द्वारा प्रूफ–संशोधन आदि के रूप में कृत सकारात्मक सहयोग से मुझे इस कार्य को इस मंजिल तक पहुंचाने में जो सम्बल प्राप्त हुआ, उसकी हृदय से प्रशंसा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

सुश्री मीना जी बोहरा (एम.ए. संस्कृत–प्राकृत तथा जैनदर्शन ग्रुप) एवं शोध छात्रा सुश्री श्वेता जैन(कोटड़िया) ने प्रूफ संशोधन आदि में तत्परतापूर्वक प्रभूत निःस्वार्थ सहयोग प्रदान किया है, एतदर्थ साधुवाद देता हुआ उनके उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक कम्प्यूटर–टंकण के माध्यम से सज्जा प्रदान करने वाले श्री जितेन्द्र जी जोशी (प्रोपराइटर, जे.के. कम्प्यूटर), जालोरी गेट, जोधुपर का धन्यवाद ज्ञापन करना भी मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। उन्होंने जिस श्रम एवं निष्ठा के साथ कार्य का संपादन किया है, उसी से यह ग्रंथ पूर्णता को प्राप्त हुआ है।

मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली के श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन की सजगता एवं तत्परता से इसका सुन्दर मुद्रण हुआ है, एतदर्थ उनका आभार ज्ञापन भी नितान्त आवश्यक समझता हूँ।

–डॉ. धर्मचन्द जैन

3 K 24-25 कुड़ी भगतासनी
जोधपुर–342005 (राज0) फोन न0 0291–2730081

प्रणति

नमन उनको कोटि कोटि, जो अध्यात्म पथ के देवता,
सन्त सच्चे सरल ऊँचे, आचार जिनकी सम्पदा।
अनुभूत जिनको देह से, चैतन्य की थी भिन्नता,
मोक्ष के सच्चे पथिक, लक्ष्य जिनका था सधा।।

अप्रमत्तता व ध्यान सम्बल, श्रमण जीवन का बनाया,
सत्य संयम शील से, त्रिरत्न को जग में दिपाया।
जगो, उठो, आगे बढ़ो, उपदेश यही पावन दिया,
आत्म दोषों के निवारण का, ही संदेश मुखरित किया।।

कलह क्लेश और द्वन्द्व को, दूर करना ही सिखाया,
आत्म भावों के उत्थान को, मर्म जीवन का बताया।
मोह ममत्व आरम्भ-परिग्रह, को मूल दुःख का पढ़ाया,
स्वाध्याय और सामायिक से, निर्माण जीवन का सुझाया।।

आगमसेवी युगप्रभावक, करुणामूर्ति महात्मा,
स्वाध्याय के सत्प्रकाश से, जगमगाएँ आत्मा।
उच्च विचारों को अपना कर, बन जाएँ धर्मात्मा,
सामायिक की उत्कृष्टता से, हो जाएँ परमात्मा।।

कुव्यसन सारे छोड़ दें, तप संयम पर जोर दें,
नीति और प्रामाणिकता का, जीवन में रस घोल दें।
बाल युवा पुरुष नारी, स्व को धर्म से जोड़ दें,
सम्यग्दृष्टि बन कर सपने, सारे सुपथ पर मोड़ दें।।

विद्वत्ता और साधना के उच्च शिखर से भाषते,
सन्तोष शांति अभय मैत्री, और प्रमोद को प्रकाशते।
साधना की सुधावाक् से, लाखों का जीवन संवारते,
गुरुदेव पूज्याचार्य हस्ती, 'धर्म'-हृदय में विराजते।।

आमुख

वीर निर्वाण की 25वीं शती के उत्तरार्द्ध एवं 26वीं शती के प्रथम चतुर्थांश (पौष शुक्ला चतुर्दशी विक्रम संवत् 1967 से वैशाख शुक्ला अष्टमी संवत् 2048, दिनांक 13 जनवरी 1911 से 21 अप्रेल 1991 तक) के जैन श्रमण-संस्कृति के इतिहास में परम पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. का नाम एक महान् अध्यात्मयोगी, उच्चकोटि के अप्रमत्त साधक, गहन विचारक, सामायिक एवं स्वाध्याय के अप्रतिम प्रेरक, प्रज्ञाशील, युगप्रभावक आचार्य के रूप में सदियों तक स्मरण किया जाता रहेगा।

'श्रमण' के लिए प्राकृत भाषा में प्रयुक्त 'समण' शब्द के शमन, समन और श्रमण ये तीनों अर्थ आचार्य श्री हस्ती में एक साथ प्रदीप्त थे। 'शमन' शब्द से कषायों की उपशान्ति (*उवसमसारं खु सामण्णं*–बृहत्कल्प भाष्य 1.35) का बोध होता है, 'समन' शब्द समभाव की साधना (*समयाए समणो होइ*–उत्तरा.25.32) को अभिव्यक्त करता है तो 'श्रमण' शब्द सम्यग्ज्ञानपूर्वक संयम में पराक्रम (*नाणी संजमसहिओ नायव्वो भावओ समणो*–उत्तरा. निर्युक्ति 389) का अभिव्यंजक है। अनुयोगद्वार सूत्र में 'समण' शब्द का प्रयोग सु-मन वाले के लिए भी (*तो समणो जइ सुमणो*) हुआ है। आचार्य श्री हस्ती के जीवन में क्रोध, मान, माया एवं लोभ कषाय की उपशान्ति से समण का 'शमन' अर्थ सार्थक है। विषम परिस्थितियों में भी समभाव के अभ्यास के कारण 'समन' अर्थ तथा निरन्तर निरालस और अप्रमत्त रहकर संयम में श्रमशीलता, पराक्रम या पुरुषार्थ से 'श्रमण' अर्थ भी उनमें चरितार्थ है। मन की निष्कपटता एवं निर्मलता के कारण सु-मन तो वे थे ही।

राग-द्वेष पर विजय का पथ प्रशस्त करने वाले जिनधर्म, आत्म-विकारों की ग्रन्थियों का मोचन करने वाले निर्ग्रन्थ धर्म अथवा पूज्य अर्हत् (अरिहंत, अरुहंत, अरहंत) द्वारा उपदिष्ट आर्हत धर्म में तीर्थंकरों के पश्चात् गणधरों एवं आचार्यों की जो परम्परा चली, उसमें आचार्य श्री हस्ती का नाम युगप्रभावक आचार्यों की श्रेणि में स्वर्णाक्षरों में जड़ने योग्य है। भगवान महावीर के उपदेशों एवं आगमों पर आधारित तथा बाह्य आडम्बरों की अपेक्षा आगमज्ञान एवं क्रिया की शुद्धता से चेतना के रूपान्तरण पर बल देने वाली स्थानकवासी परम्परा में धर्मप्राण लोंकाशाह के अनन्तर पूज्य श्री धर्मदास जी म.सा., पूज्य श्री धर्मसिंह जी म.सा. आदि क्रियोद्धारक आचार्यों के पश्चात् पूज्य श्री भूधर जी म.सा. प्रभावक आचार्य हुए। आचार्य श्री भूधर जी म.सा. के शिष्यों में कुशलो जी म.सा. की शिष्य परम्परा आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. के क्रियोद्धार संबंधी महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण रत्नसंघ (रत्नवंश) के नाम से लोक-विश्रुत हुई। इस रत्नसंघ परम्परा के महनीय महर्घ्य आध्यात्मिक दिव्य रत्न थे– इस जीवन ग्रन्थ के चरितनायक आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.।

आत्म-साधना के साथ जगत्कल्याण का आपमें अनूठा समन्वय रहा। प्रायः जो जगत्-कल्याण में लगते हैं, वे आत्म-साधना को भूल जाते हैं तथा जो आत्म-साधना में लगते हैं वे जगत्कल्याण को गौण कर देते हैं, किन्तु तीर्थंकरों के अनुसर्ता आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. में ये दोनों विशेषताएँ थीं। आत्म-साधना के शिखर को छू लेने वाले उन महान् साधक में जन-जन के प्रति करुणाभाव एवं उनके जीवन-निर्माण की प्रशस्त भावना थी। आप भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ परम्परा के सच्चे प्रतिनिधि एवं 81 वें पट्टधर होने के साथ रत्नसंघ परम्परा के सप्तम आचार्य थे।

卐 卐

भारत वसुन्धरा के ललामभूत मारवाड़ प्रदेश के पीपाड़ नगर में जन्म ग्रहण करने वाले पूज्यप्रवर आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. 'गजेन्द्राचार्य' एवं काव्य साहित्य में 'गजमुनि' नाम से भी प्रसिद्ध रहे। वीतरागता के पथ के सच्चे पथिक एवं भगवान महावीर की शास्त्रधारी सेना के नायक आचार्य श्री हस्ती का जन्म पौष माह की

चांदनी चौदस को सूर्य द्वारा कर्क रेखा से मकर रेखा पर संक्रमण करने की तैयारी के समय 13 जनवरी 1911 को हुआ जो मकर संक्रान्ति के शाश्वत दिवस की भांति आपके जीवन के शाश्वत लक्ष्य का संकेत कर रहा था। जन्म से ही महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर बालक हस्ती ने माघ शुक्ला द्वितीय द्वितीया संवत् 1977 दिनांक 21 फरवरी 1921 को त्याग एवं सेवा की प्रतिमूर्ति अध्यात्मपुरुष आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. का शिष्यत्व स्वीकार करते हुए अजमेर में मात्र 10 वर्ष 18 दिन की वय में प्रव्रज्या-पथ पर दृढ़-श्रद्धा एवं वैराग्य के साथ चरण बढ़ाए।

माता रूपा देवी की कुक्षि से जन्म के पूर्व ही पिता केवलचन्द जी का देहावसान, माता रूपा देवी के विरक्ति भाव, दादी नौज्यां बाई का स्वर्गवास, नाना गिरधारीलाल जी मुणोत एवं उनके विशाल परिवारजनों की प्लेग से अकाल मृत्यु आदि एक के बाद एक दृश्यों का साक्षात्कार कर संसार की अनित्यता को गर्भ एवं शैशव अवस्था में ही समझ लेने वाले बालक हस्ती का वैराग्य साधारण वैराग्य नहीं था। यह उनके भावी महान् सन्त के व्यक्तित्व की आधारभूमि थी। माता के दुग्ध से, वचनों से, नयनों से एवं व्यवहार से भी आप में वैराग्य का ही भाव पुष्ट होता गया। शैशव अवस्था में ही माता के साथ महासती बड़े धनकंवर जी म.सा. का सान्निध्य, महान् संत स्वामी जी श्री हरखचन्द जी म.सा. की आत्मीयता और पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के मार्गदर्शन से आपका महान् व्यक्तित्व एक विशिष्ट आकृति ग्रहण करता चला गया। आपके व्यक्तित्व निर्माण में स्वामी जी श्री हरखचन्द जी म.सा. का अनुपम योगदान रहा। आपके सान्निध्य में बैठकर मुमुक्षु हस्ती ने आगम और थोकड़ों का अभ्यास किया, साथ ही वह मुनिचर्या के वैशिष्ट्य से भी अवगत हुआ। उत्कृष्ट साधु-जीवन का प्रथम परिचय, प्रमाद-परित्याग एवं श्रम की महिमा का बोध आपको स्वामीजी श्री हरखचन्द जी म.सा. से हुआ। आपको स्वामीजी से अप्रमत्तता का सूत्र मिला-

[illegible]
भणणो गुणणो सीखणो, [illegible]

आपके व्यक्तित्व निर्माण में मैथिल ब्राह्मण पंडित श्री दुःखमोचन जी झा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषा की व्याकरण एवं साहित्य का गूढ़ ज्ञान कराने के साथ पंडितजी ने अपनी सरलता, शीतलता एवं श्रमशीलता से चरितनायक को प्रभावित किया। चरितनायक के शब्दों में- *''पण्डित जी यद्यपि गृहस्थ थे, फिर भी वे साधुवत् सरल, सुशील, संतोषी एवं त्याग-तप के रसिक थे। जीवन की आवश्यकताओं के बाद बचा हुआ उनका प्रत्येक क्षण हमारे लिए उत्सर्ग रहता था।''* पण्डित सदासुखजी शास्त्री का यह उपहास कि *''पढ़े लिखे जैन संत साधारण ब्राह्मण की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं''* आपके तलस्पर्शी गहन अध्ययन के लिए प्रेरक बना। विनयशीलता, सेवा-भाव, विवेकित्व, अप्रमत्तता, स्वाध्यायशीलता, गुणग्राहकता, संयम-निष्ठा, परीषह-सहिष्णुता, निर्भयता, निर्दोष संयम-पालन के प्रति कठोरता आदि गुणों का मुनि श्री हस्ती में आधान होता देख गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभा को परम प्रमोद का अनुभव होता। उन्होंने चरितनायक में शास्त्रवाचन एवं अर्थाधिगम की योग्यता का पूर्ण संवर्धन किया तथा वात्सल्य भाव से मनोबल को पुष्ट किया। वरिष्ठ सहयोगी सन्तों के सद्गुणों ने भी आपके व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के हृदय में आपने इन असाधारण सद्गुणों के कारण ऐसा विशिष्ट स्थान बनाया कि पूज्य गुरुदेव ने मात्र 15 वर्ष की किशोर वय में आपका संघ के भावी आचार्य के रूप में मनोनयन कर दिया। यह अपने आप में एक विस्मयकारी घटना थी।

वे शिष्य तो धन्य हैं ही, जिनके हृदय में गुरु निवास करते हैं, किन्तु वे शिष्य और भी अधिक धन्य हैं, जो गुरु के हृदय में निवास करते हैं। मुनि हस्ती का इतनी लघुवय में आचार्यपद पर मनोनयन इस बात का प्रतीक था कि आपने अपने सद्गुणों से महान् सुयोग्य शिष्य एवं उच्चकोटि के श्रमण के रूप में अपने गुरुदेव के हृदय में

निवास कर लिया था। उनके हृदय-कमल में आपकी गुणवत्ता एवं योग्यता की छवि स्पष्ट अंकित हो गयी थी।

पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. का सान्निध्य आपको दीर्घकाल तक न मिल सका। संवत् 1983 के जोधपुर चातुर्मास में श्रावण कृष्णा अमावस की अन्धेरी रात ने चरितनायक पर से गुरुदेव का साया छीन लिया। लगभग पौने चार वर्ष तक संघ-व्यवस्थापन का दायित्व वरिष्ठ सन्त स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. ने सम्हाला तथा स्वामीजी श्री भोजराज जी म.सा. उनके परामर्शदाता रहे। संघ-व्यवस्थापक स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. एवं श्रावक-समुदाय की प्रबल भावना से संवत् 1987 की अक्षय तृतीया के अक्षय दिवस पर ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र से सुसम्पन्न, चतुर्विध संघ के गौरव मुनि श्री हस्ती को जोधपुर में आचार्य की चादर ओढ़ाकर संघनायक का गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया। मात्र सवा उन्नीस वर्ष की वय में योग्यता के आधार पर आचार्य पद पर आरूढ़ होने वाले आप जैन इतिहास में एक विरल सन्त थे।

आचार्य-पद पर अधिष्ठित होने के पश्चात् संघ-व्यवस्था का संचालन आपने अपने वरिष्ठ संतों के बहुमानपूर्ण सहयोग के साथ प्रारम्भ किया। पंच परमेष्ठी के तृतीय महान् पद पर आरूढ़ होने के पश्चात् भी वही विनम्रता, वही निरभिमानता और वही गुणग्राहकता आपके व्यक्तित्व-निर्माण के क्रम को आगे बढ़ाती रही।

पूज्य श्री मन्नालालजी म.सा. के साथ मन्दसौर में छेदसूत्रों की वाचना के समय गुणग्राहक चरितनायक ने आपसे जो नये अनुभव सीखे, वे आपके ही शब्दों में-*''मन्दसौर में आपके साथ रहने का अवसर मिला। आपका बहुमानपूर्ण वात्सल्य कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपके साथ छेदसूत्र की वाचना और प्राचीन सन्तों के जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव सुने। श्रमण-व्यवहार में नित्य उपयोगी कई नवीन बातें सीखीं।''* आपने पूज्य श्री आत्माराम जी म.सा. से नियमित ध्यान की अमर प्रेरणा ग्रहण की तथा स्वाध्याय की अभिरुचि दृढ़तर हुई। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के विचारों एवं प्रवचन कला ने भी आपको प्रभावित किया, आप ही के शब्दों में-*''आपके विचारों एवं प्रवचन कला से मन अत्यधिक प्रभावित हुआ। आप जो कुछ भी कहते थे, बहुत सरल एवं मिठास भरे शब्दों में कहते और हृदयपटल पर उसका चित्र खींच देते थे। आपके अनुभवपूर्ण विचारों से भी जीवन में बड़ी प्रेरणा मिली, बल प्राप्त हुआ।''* शास्त्रज्ञ श्रावक श्री लखमीचन्द जी-मन्दसौर, श्री केसरीमल जी सुराणा-रामपुरा एवं धार के पोरवाल सुश्रावक से आपने कतिपय आगमिक धारणाएँ ग्रहण कीं।

आचार्यप्रवर की सरलता, गुणिषु प्रमोदं की भावना, गुणग्राहक दृष्टि आदि को देखकर सद्गुणों ने सहज ही आपमें गुणसमुद्र का रूप ग्रहण कर लिया।

आपकी लघु देह में महान् आध्यात्मिक सन्त का विशाल व्यक्तित्व पुंजीभूत हो रहा था। घण्टों एक आसन से बिना सहारे बैठे रहने की क्षमता, विहारकाल में स्फूर्तिपूर्वक ईर्या समिति सम्मत पाद-निक्षेप, निरालसतापूर्वक श्रमणाचार की प्रत्येक क्रिया में पराक्रम आदि अनेक गुण आपकी आध्यात्मिक ऊर्जा के ही प्रतिबिम्ब थे। आपका तेजस्वी उन्नत भाल, करुणा सरसाते एवं निर्विकारता का बोध देते भास्वर नयन, अध्यात्म एवं साधना में परिपक्वता दर्शाता आभामण्डल, प्रत्येक प्राणी को अभयदान का संकेत करता दक्षिण हस्त-ये सब निहार कर सेवा में उपस्थित भक्त को दर्शनमात्र से ही आत्मसंतोष एवं परम-शांति का अनुभव होता। मेरुदण्ड को सीधा रखने हेतु वज्रासन, पद्मासन आदि विभिन्न आसनों के प्रयोगों से आपने शरीर को साधना का ही साधन बनाया। रुग्णावस्था में शरीर को शिथिल कर मनोबल से उसे शीघ्र स्वस्थता प्रदान करना, देह से अपने को भिन्न समझकर उसे नीरोग बनाना आपकी साधनाशीलता के साधारण कार्य बन गए थे। पद-कमल में पद्मरेख आपके वैशिष्ट्य एवं कर्मयोगी होने की प्रतीक थी। आपका विश्वास था कि पुरुषार्थ एवं पराक्रम से ही साधक अपनी मंजिल तय कर सकता है। पुरुषार्थ तो भाग्य-परिवर्तन का भी प्रमुख सम्बल है, तो फिर साधना का क्यों न हो? अतः मुनिजीवन में प्रवेश करने के साथ ही आपने पुरुषार्थ किंवा संयम में पराक्रम को अपना प्रमुख साधन

समझा।

आपने ध्यान के साथ मौन को अपने व्यक्तित्व-निर्माण का महत्त्वपूर्ण घटक बनाया। दृढ़संकल्प, पुरुषार्थ, अप्रमत्तता, स्वाध्याय, लेखन, श्रमणाचार का निर्मल और सजगता पूर्वक पालन करने से आपका व्यक्तित्व पूजनीय एवं अनुकरणीय बनता चला गया।

अपने जीवन के 50 बसन्त पूर्ण करने पर आपने पावन संकल्प किया कि आप इस वर्ष में 50 दम्पतियों को आजीवन शीलव्रत की प्रेरणा कर संकल्पबद्ध करेंगे। आपको अपने इस पावन संकल्प की पूर्ति में आशातीत सफलता मिली। फिर आप प्रत्येक जन्म-दिवस पर शीलव्रत का संकल्प धारण करने वालों की क्रमिक संख्या बढ़ाते रहे। आपके साधनामय व्यक्तित्व के प्रभाव से अभिवृद्ध संकल्प पूर्णता को प्राप्त करते रहे।

आपने श्रमणचर्या के अनुसार पद-विहार कर राजस्थान के मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़, हाडौती, पोरवाल एवं पल्लीवाल क्षेत्रों को प्रवचन-पीयूष से लाभान्वित करने के साथ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा एवं गुजरात प्रान्तों के सहस्रों ग्राम-नगरों में धर्म को जीवन से जोड़ने की प्रेरणा की। कंकरीले, रेतीले, पहाड़ी, दुर्गम मार्गों से विहार करते हुए भी मन में वही मोद; धर्मशाला, पंचायत-भवन, मन्दिर, सूने मकान एवं वृक्ष के तले रात्रिवास करते हुए भी वही निर्भयता; निर्दोष आहार एवं जल के न मिलने पर भी वही समभाव; श्रमण-जीवन से अपरिचित जनों के बीच भी प्रवचनामृत की वर्षा; जाट, गुर्जर, अहीर, विश्नोई, राजपूत, माली, धोबी, हरिजन, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई-सभी जातियों के लोगों द्वारा पीयूषवाणी का पान कर व्यसनमुक्ति के साथ धर्म के प्रति निष्ठाभाव- ये सब आपकी महिमा को अभिव्यक्त करते थे। दक्षिणभारत की पद-यात्रा के समय मीलों तक ग्राम नहीं, कहीं पानी मिला तो आहार नहीं, कहीं सुबह मिला तो शाम नहीं; कई बार आपके साथ सन्त भी निराहार रहे, किन्तु आपने अभ्याहृत(सामने लाया हुआ) या उत्पादना आदि के दोषों से युक्त आहार को स्वीकार नहीं किया। साध्वाचार की परीक्षा कठिन स्थितियों में ही होती है और उसमें आप शत प्रतिशत खरे उतरे। अपवाद मार्ग आपको अभीष्ट नहीं था। अपने प्रति अनुराग रखने वाले श्रावकों को समझाते हुए आप फरमाते- *"जब तक इस सफेद चदरिया में दाग नहीं, तब तक हर क्षेत्र एवं श्रावक हमारा अपना है। अन्यथा तुम भी हमारे नहीं हो।"*

साधना एवं विद्वत्ता दोनों का आपमें अद्भुत समन्वय था। आप एक ओर जहाँ साधना में गतिशील चरण बढ़ा रहे थे, वहाँ उत्तम क्षयोपशम तथा अप्रमत्तता के कारण आपमें विद्या का अतिशय बढ़ता रहा। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के गूढ़ज्ञाता होने के कारण आपने दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र आदि आगमों का सम्पादन संस्कृत छाया एवं विवेचन के साथ कर अल्पवय में ही जैन-विद्वज्जगत् में अपनी अमिट छाप छोड़ दी। विभिन्न ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए आपने अनेक ज्ञान-भण्डारों, पुस्तकालयों एवं ग्रन्थागारों का अवलोकन किया तथा जैन इतिहास विषयक प्रामाणिक शोध के साथ 'पट्टावली प्रबन्धसंग्रह', 'जैन आचार्य चरितावली' के अनन्तर 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग 1 से 4)' प्रस्तुत कर जैन इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थ के अभाव की पूर्ति की। इतिहास को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के कारण श्रावक-समुदाय ने आपको 'इतिहास मार्तण्ड' विरुद से संबोधित किया। इतिहास-लेखन में निष्पक्षता एवं प्रमाणपुरस्सरता को ही आधार बनाया। इससे आपकी विद्वत्ता, श्रमशीलता एवं सजगता की धवल कीर्ति सर्वत्र प्रसृत हो गई। आज 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' ग्रन्थ को भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में संदर्भ ग्रन्थ के रूप में पढ़ा जाता है। आपने स्वरविद्या, ज्योतिर्विद्या, सूर्यकिरण चिकित्सा विद्या आदि अनेक विद्याओं का भी अच्छा अभ्यास किया। आप लेखनकला में भी सिद्धहस्त थे। प्राचीन पाण्डुलिपियों को पढ़ने एवं समझने में कुशल थे। पेंसिल ही आपकी प्रमुख लेखनी थी, जिससे कागज के प्रत्येक अंश को आप सुन्दर अक्षरों से चमका देते थे। आपके द्वारा लिखे

बारीक अक्षरों की बनावट आकर्षक होती थी। वस्तु के सदुपयोग, एकाग्रता एवं सजगता का पाठ आपके अक्षरों को देखते ही मिल जाता है।

卐 卐 卐

'पूज्यश्री' के संबोधन से विख्यात आचार्यप्रवर साधारण सी देह में एक असाधारण अध्यात्मयोगी एवं महान संत के जीवन से ओत-प्रोत थे। आपकी अध्यात्मयोगिता का सर्वाधिक प्रसिद्ध निदर्शन है- निमाज में आपका तेरह दिवसीय तप-संथारा। जिन उच्च आध्यात्मिक भावों के साथ शरीर से अपने को पृथक् समझते हुए आपने संलेखना के साथ समाधिमरण का योजनापूर्वक वरण किया, वह अपने आप में एक अप्रतिम उदाहरण है। आचार्य पद पर रहकर संघ के विभिन्न दायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करते हुए आत्मसाधना के इस उच्च शिखर पर पहुँचने के उदाहरण शताब्दियों में भी विरल ही मिलते हैं। संतों और भक्त-श्रावकों के अनुनय-विनय को आपने मोह का रूप समझकर उसकी उपेक्षा की तथा देह-त्याग का समय सन्निकट जानकर सर्वविध संयोगों से अपने को पृथक् कर लिया। आपने समस्त आचार्यों, श्रमणवरेण्यों, श्रमणीवृन्दों, अपने अन्तेवासी शिष्यों, शिष्याओं, श्रावकों, श्राविकाओं एवं 84 लाख योनियों के समस्त जीवों से क्षमायाचना करते हुए अपने को पुनः पंच-महाव्रतों में आरूढ़ किया। संघनायकों, विशिष्ट जनों को अभीष्ट हितावह प्रेरणा करके आप संघ के ममत्व एवं दायित्व से भी पृथक् हो गए। आपकी अध्यात्मयोगिता आपके द्वारा युवावय में रचित पदों एवं भजनों में भी प्रतिबिम्बित होती है। 'मैं हूँ उस नगरी का भूप , जहाँ नहीं होती छाया धूप' 'समझो चेतन जी अपना रूप, यो अवसर मत हारो', 'मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आस', 'सतगुरु ने यह बोध बताया, नहिं काया नहिं माया तुम हो' आदि पद्य इसके साक्षी हैं।

देह से आत्मा को भिन्न अनुभव करना अध्यात्म योगी का प्रमुख लक्षण है। शरीर आदि समस्त बाह्य वस्तुओं से अपने को पृथक् हटाकर आत्म-स्वरूप के साथ योग करना ही अध्यात्म योग है। अध्यात्म योग की ऐसी साधना के परम साधक पूज्य आचार्य श्री रात्रि के किस प्रहर में कब ध्यानस्थ हो जाते यह अंतेवासियों को भी ज्ञात नहीं होता था। निद्रा को हम सांसारिक प्राणी पुनः ताजगी के लिए आवश्यक मानते हैं, किन्तु वे अध्यात्म योगी तो *'मुणिणो सया जागरन्ति'* आगम वाक्य के साक्षात् निदर्शन थे। मध्याह्न में भी आप नियमित रूप से ध्यान-साधना करते थे। ध्यान के साथ मौन आपकी अध्यात्म-साधना का महत्वपूर्ण अंग था। प्रत्येक गुरुवार एवं प्रत्येक माह की कृष्णा दशमी को पूर्ण मौन रखने के साथ प्रतिदिन दोपहर 12 से 2 बजे तक आप मौन-साधना किया करते थे। आपका ध्यान और मौन अध्यात्म-साधना के मजबूत सोपान सिद्ध हुए। मौन में आप मात्र वाणी से विराम नहीं करते थे, अपितु उसे मन, इन्द्रिय आदि पर विजय के साथ जोड़ते थे। जब कभी आपके जीवन में किसी प्रकार की विषम परिस्थितियां आतीं तो आप उद्विग्न, उत्तेजित एवं असंतुलित नहीं हुए। शारीरिक पीड़ा की स्थिति में भी आप यही चिन्तन करते- *''पीड़ा शरीर को हो रही है, मैं तो शरीर से भिन्न हूँ, मेरा रोग-शोक पीड़ा से कोई संबंध नहीं है। मैं तो आनन्दमय हूँ।''* आपने इस प्रकार के चिन्तन से तन की पीड़ा को विलीन होते देखा। आपने प्रवचन में एक बार नसीराबाद छावनी का ऐसा प्रसंग भी सुनाया, जो 'जिनवाणी' एवं 'झलकियाँ जो इतिहास बन गई' पुस्तक में प्रकाशित भी हुआ, यथा- *''बात नसीराबाद छावनी की है। सहसा सीने में गहरी पीड़ा उठी। मुनिजन निद्रा में थे। मैंने उस वेदना को भुला देने हेतु चिन्तन चालू किया- ''पीड़ा शरीर को हो रही है, मैं तो शरीर से अलग हूँ। शुद्ध, बुद्ध, अशोक और नीरोग। मेरे को रोग कहाँ? मैं तो हड्डी पसली से परे, चेतन आत्मा हूँ। मेरा रोग, शोक, पीड़ा से कोई संबंध नहीं है। मैं तो आनन्दमय हूँ। कुछ ही पलों में देखता हूँ कि मेरे तन की पीड़ा न मालूम कहाँ विलीन हो गई।''*

आप ध्यान में क्या करते थे, इसका विवरण उपलब्ध नहीं है, किन्तु एक अध्यात्मयोगी का ध्यान बाह्य

संयोगों से हटकर आत्मगुणों के साथ मन के योग की साधना ही हो सकता है। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान तो आपसे कोसों दूर थे। अध्यात्मयोगी आचार्यप्रवर तो धर्म-ध्यान और उसके आगे शुक्ल-ध्यान के सोपानों की ओर ही चरण बढ़ाने को अग्रसर थे।

आप आचार्य की आठ सम्पदाओं से युक्त होने के साथ 36 गुणों के धारक थे। आचार सम्पदा, श्रुत सम्पदा, शरीर सम्पदा, वचन सम्पदा, वाचना सम्पदा, मति सम्पदा, प्रयोगमति सम्पदा और संग्रह परिज्ञा सम्पदा ये आठ सम्पदाएँ आपमें सहज परिलक्षित होतीं थीं। पाँच महाव्रतों के पालन के साथ पांचों इन्द्रियों पर निग्रह, ज्ञानाचार आदि पाँच आचारों से समृद्ध, क्रोधादि चार कषायों के विजेता, पाँच समिति-तीन गुप्ति के शुद्ध आराधक, नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य के उत्कृष्ट पालक बाल ब्रह्मचारी आचार्यप्रवर को चारित्र चूड़ामणि, संयम सुमेरु आदि विशेषणों से अलंकृत किया जाना संयम-पथिकों के लिए गौरव की ही बात कही जा सकती है।

स्थानांग सूत्र में प्रतिपादित संयम के चार प्रकार मन-संयम, वचन-संयम, काय-संयम और उपकरण-संयम के निर्मल पालन के साथ आप उत्तराध्ययन सूत्र के वाक्य *'निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो' (19.90)* को चरितार्थ करते हुए ममत्व और अहंकार से रहित थे। इससे भी अधिक आप निस्संग और गारव के परित्यागी थे। आप लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान आदि में समत्व भाव रखने वाले महान साधक शिरोमणि थे। रोष या क्रोध के प्रसंगों में भी शान्ति, तथा उपसर्ग के समय भी समभाव आपके चेहरे पर झलकते थे।

卐 卐 卐 卐

चारित्र का पालन जब अध्यात्म के साथ जुड़ जाता है तो साधना का स्वरूप उच्च कोटि का होता है। आप उच्च कोटि के साधक सन्त थे। अप्रमत्तता, निःस्पृहता, निरभिमानता, निर्भयता, मितभाषिता, गुणियों के प्रति प्रमोद भाव, प्राणिमात्र के प्रति करुणाभाव आदि अनेक गुण आपकी साधना को दीप्तिमान एवं तेजस्वी बना रहे थे। संघनायक का दायित्व वहन करते हुए आपका लक्ष्य अपनी साधना को निरन्तर उत्कर्ष की ओर ले जाने का रहा। प्रातः जागरण से लेकर रात्रि-विश्राम के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग आपकी जीवनचर्या का अंग बन चुका था। किस समय क्या करना, इसका आपको पूरा ध्यान रहता था। स्वाध्याय, ध्यान, मौन, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, शास्त्र-वाचना, सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् कल्याणमन्दिरस्तोत्र एवं नन्दीसूत्र का स्वाध्याय आदि सभी क्रियाएँ आप निश्चित समय पर एवं सजगतापूर्वक करते थे। आपकी अप्रमत्तता बाह्य क्रियाओं में ही नहीं आत्मस्वरूप के स्मरणपूर्वक अन्तरंग से जुड़ी हुई थी। आत्मस्वरूप के विस्मरण के साथ विषय-कषायों में उलझना, उनके मिलने पर हर्षित होना आदि जो प्रमाद का स्वरूप है, उससे पूज्य आचार्यप्रवर कोसों दूर थे एवं सबको अप्रमत्त रहने की प्रेरणा करते थे।

लोकैषणा की स्पृहा से आप सर्वथा दूर थे। भक्त-जन उनकी जय-जयकार करें, इसकी उन्हें कोई वांछा नहीं थी। एक बार चर्चा चली कि आचार्य पद के पूर्व 108 का प्रयोग किया जाए या 1008 का? आपने फरमाया- ''हमारे बचपन में सन्तों के नाम के आगे 6 का अंक लगाया जाता था। 6 का मतलब होता है षट्काय प्रतिपाल।'' आप ही के शब्दों में-''क्या इससे बढ़कर और कोई विशेषण हो सकता है?'' कैसी निस्पृहता एवं निरभिमानता। आप यशःकामना, भक्तसंख्या आदि की स्पृहा से रहित होकर साधक-जीवन की पराकाष्ठा को ही अपना लक्ष्य समझते थे। आपके अन्तरंग में दशवैकालिक सूत्र की निम्नांकित गाथा पूर्णतः स्पष्ट थी कि पूजा की वांछा करने वाला, यश की कामना करने वाला तथा मान-सम्मान की अभिलाषा करने वाला श्रमण विभिन्न प्रकार के पाप

को जन्म देता है तथा मायाशल्य का आचरण करता है–

> पूयणट्ठा जसोकामी माणसम्माणकामए।
> बहुं पसवइ पावं, मायासल्लं च कुव्वइ॥
>
> दशवै.5.2.35

आपका मन्तव्य था कि निस्पृहता में जो आनन्द की अनुभूति होती है वह लोकैषणाओं की पूर्ति में नहीं– ''एक अकिंचन निस्पृह योगी को जो अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है, वह कुबेर की सम्पदा पा लेने वाले धनाढ्य को नसीब नहीं हो सकता।'' निस्पृहता के साथ सेवा का गहन संबंध है। आप भावात्मक सेवा तो प्रतिक्षण करते ही रहते, किन्तु क्रियात्मक सेवा में भी अवसर आने पर पीछे नहीं रहते थे।

अत्यल्प वय में पूज्यपद का गुरुतर दायित्व, संस्कृत–प्राकृत आदि भाषाओं पर अधिकार, आगमों पर टीका– लेखन, संत–समुदाय में बढ़ती कीर्त्ति, विद्वत्तापूर्ण शास्त्रार्थ एवं प्रश्नों के समाधान की अनूठी क्षमता, वरिष्ठ आचार्यों एवं संतों द्वारा प्रदत्त सम्मान, प्रतिष्ठित श्रावकों की अनुपम श्रद्धा–भक्ति, सामायिक और स्वाध्याय प्रवृत्तियों की अद्भुत सफलता, नये–नये क्षेत्रों में अपनी वाणी से हुए धर्मजागरण आदि विभिन्न निमित्तों के होते हुए भी आपमें सदैव सौम्यभाव एवं निरभिमानता का सद्गुण परिलक्षित होता था। श्रावकों द्वारा आपकी दीक्षा अर्द्धशती मनाये जाने का प्रसंग उपस्थित होने पर आप सहमत नहीं हुए। आपके गुरुदेव पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की दीक्षा शताब्दी मनाने का जब प्रस्ताव रखा गया तो आप तप–त्याग, व्रत–नियम आदि की प्रभावना के निमित्त से श्रावकों के आग्रह को स्वीकार करने के लिए तत्पर हुए। आपके जन्म–दिवस आदि पर संत–सतियों, श्रावक–श्राविकाओं द्वारा आपके गुणगान किए जाते तो उससे आप अस्पृष्ट ही रहते। उसे आप अभिमान–पोषण का निमित्त न बनाकर आत्मावलोकन एवं गुण–संवर्धन का हेतु ही समझते। इस संबंध में दैनन्दिनी में आपका स्पष्ट चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है– *''गुणियों के गुणों का कीर्तन प्रभावना का कारण है, पर साधक को प्रशंसा सुनकर खुश नहीं होना चाहिए। यही समझना चाहिए कि इसने प्रेमवश मेरे गुण देखे हैं, इसको मेरे दोषों का क्या पता? मुझे अपने दोषों को निकाल कर इसके विश्वास पर खरा उतरना है, ताकि इसे धोखा न हो।''* महान् साधक संतों की अपने प्रति ऐसी निष्पक्ष दृष्टि ही उनको साधना के उच्च शिखर पर ले जाने में समर्थ होती है, अन्यथा दूसरों के द्वारा की गई प्रशंसा को सुनकर व्यक्ति अपने को महान् समझने लगता है। उसको अपने संबंध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और वह आत्म–निरीक्षण की क्षमता को क्षीण करता हुआ दूसरों से अपना मूल्यांकन कराने एवं उनसे अपनी प्रशंसा सुनने में ही जीवन की सार्थकता समझने लगता है। फलतः वह मूल लक्ष्य से भटक जाता है। इसलिए महान् साधक आचार्यप्रवर का चिन्तन युक्तिसंगत एवं सत्य ही है– *''अहंकार से सत्कर्म वैसे ही क्षीण हो जाते हैं, जैसे मणों दूध पाव रत्ती संखिया से जहरीला हो जाता है।''*

आप प्रशान्तात्मा सन्त थे। समत्व एवं शान्ति आपके सौम्य आनन से टपकती थी। मान के साथ क्रोध, माया एवं लोभ कषाय का भी आपने शमन कर लिया था। क्षमा, समत्व, आर्जव एवं निर्लोभता के आप आधुनिक युग में प्रतिमान थे। आपके समक्ष कोई सरोष मुद्रा में भी होता तो आप उसे शीतल वचन रूपी बूंदों का ऐसा अमृत पिलाते कि वह व्यक्ति तुरन्त शान्त हो जाता था। आपका चिन्तन था कि – *''उपशम भाव वह अमृत का प्याला है, जिसके पान से मन–मस्तिष्क की प्रसन्नता, हृदय की स्वच्छता और परिवार में उत्साह बना रहता है। ज्ञान–भक्ति की निराबाध साधना होती है।''* मायाचार क्या होता है, उसके विकृत रूप से तो आप अपरिचित ही थे। कोई आपसे छलावा भी कर सकता है, यह आपके चिन्तन के परे था।

जो महापुरुष सबका कल्याण चाहते हों, जिन्हें आत्मा एवं शरीर का भेदज्ञान करने का अभ्यास हो, स्वार्थ एवं मोह–ममत्व से ऊपर उठे हुए हों, षट्काय के जीवों के अभयदाता हों, उन्हें किसी से किस बात का भय!

महाराष्ट्र के सतारा में एवं राजस्थान के अलवर जिले के बहाला गांव में आपने डंडे के प्रहार से चोटग्रस्त सर्पों को अपने हस्तप्रोक्षण वस्त्र से हाथ में उठाकर जिस प्रकार प्राण दान दिया, उससे आपकी अनुकम्पा एवं करुणाशीलता का परिचय मिलने के साथ उससे भी कहीं आगे बढ़कर आपकी निर्भयता एवं स्वयं के जीवन के प्रति निर्मोहता की पुष्टि होती है। जिन्हें मृत्यु से भय न हो, ऐसे महापुरुष ही इस प्रकार का असाधारण कार्य कर सकते हैं। सर्परक्षा की घटनाओं से यह ध्वनित होता है कि जो साधक-महापुरुष राग-द्वेष के विजयपथ पर अग्रसर हों, उनके कोमल हस्त का आश्रय पाकर चोटग्रस्त सर्प भी मानो अपने स्वभाव को भूल जाते हैं।

निर्भय होने के साथ आप सत्य, हितकारी एवं निरवद्य वचन को अभिव्यक्त करने में सदैव निर्भीक रहते थे। बिना लाग-लपेट के आपने हितकारी बात को स्पष्ट कहने में एवं चतुर्विध-संघ का मार्गदर्शन करने में कभी संकोच नहीं किया।

सोच विचारकर अत्यल्प शब्दों में निरवद्य रूप से अपनी बात प्रस्तुत करना भी आपके जीवन की प्रमुख विशेषता थी। आपका मन्तव्य था कि वचन रत्न की भांति होते हैं, इसलिए उन्हें सोच-विचारकर बाहर निकालना चाहिए-

'वचन रतन मुख कोटड़ी, होठ कपाट जड़ाय।
बार बार खोलत डरूँ, पर हाथ न लग जाय॥

प्रवचन में आप सहज ग्राह्य, किन्तु हृदयस्पर्शी भाषा का प्रभावी प्रयोग करते थे। संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा के विद्वान् होते हुए भी भाषा के आडम्बर की अपेक्षा भावों के सम्प्रेषण पर आपका विशेष बल था। प्रारम्भिक वर्षों में आपके प्रवचन आगम-शास्त्र के विवेचन पर ही केन्द्रित रहते थे, किन्तु धीरे-धीरे आपने व्यक्ति एवं समाज के समुचित उत्थान हेतु स्वाध्याय, सामायिक एवं समाज-सुधार को भी अपने प्रवचनों का विषय बनाया। आपके प्रवचनों में विषय का प्रतिपादन आगम पुरस्सर होता था। प्रवचन सुगम एवं विषय का सम्यक् प्रतिपादन करने वाले होते थे। प्रवचन के अतिरिक्त जब कभी आप सन्त-सतियों, श्रावक-श्राविकाओं से तत्त्वज्ञान की चर्चा करते तब उसका सारगर्भित शैली से सुन्दर निरूपण करना भी आपकी वाणी का प्रमुख वैशिष्ट्य था।

साधारण वार्तालाप में आप संकेतात्मक भाषा का प्रयोग करते थे। आपके संकेतों को समझना बिना अभ्यास के हर एक के लिए संभव नहीं था। हित-मित एवं सत्य वाणी का प्रयोग करने वाले महान् साधक की वाणी में मंत्र सा चमत्कार था। आपके वचन श्रावकों के लिए प्रमाण होते थे। भक्त आपको वचनसिद्ध योगी के रूप में स्वीकार कर आपके वचनों की पालना करने के लिए तत्पर रहते थे। आपके कथन भावी घटनाओं के सूचक होते थे। भाषा समिति की कठोर पालना के साथ सत्य मार्ग पर चलने वाले उन महान् साधक के वचनों का सत्य होना स्वाभाविक ही था।

घटनाओं के विश्लेषण की आपमें अद्वितीय क्षमता थी। एक बार आपने रामनिवास बाग, जयपुर में गरजते हुए सिंह की गर्जना सुनकर श्रद्धेय श्री मानचन्द्र जी म.सा. से कहा- ''मान जी! सुना आपने, 'मैं हूँ मैं हूँ।' चरितनायक का संकेत कर्मजाल रूपी पिंजरे में जकड़ी हुई सर्वशक्तिमान, अनन्तगुण सम्पन्न आत्मा की ओर था जो हुंकार के माध्यम से साधक को निज-अस्तित्व 'मैं हूँ मैं हूँ' का प्रतिबोध देती है।

ब्रह्मचर्य की अखण्ड निर्मल साधना भी आपके प्रभावशाली साधक जीवन का हेतु रही। आपके आभामण्डल पर ब्रह्मचर्य की तेजस्विता का अद्भुत प्रभाव था। गर्भकाल से ही माता रूपादेवी से आपने ब्रह्मचर्य के संस्कार विरासत में प्राप्त किए जिन्हें आप अपनी साधना से निरन्तर पुष्ट करते रहे। तन एवं मन पर आपका

पूर्ण नियन्त्रण था। आहार भी आप अल्प ही करते थे। स्वाद पर विजय इतनी थी कि पानी में रोटी चूरकर खा लेते थे। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए मिर्च-मसाले युक्त आहार का वर्जन रखते थे।

स्वयं गुणसमृद्ध होने के बावजूद अन्य महापुरुषों, सन्तों, सतियों, श्रावकों, श्राविकाओं या जनसाधारण के गुणों का जब आप अपनी निर्मल प्रज्ञा के साथ भीतरी नयनों से अवलोकन करते या विश्वस्त आनन से उनका श्रवण करते तो आपका मुख मण्डल प्रमोद के भाव से भर जाता। गुणियों के प्रति प्रमोद का यह अनूठा रूप आपके गुणों को कई गुणा करता हुआ परिलक्षित होता था। इससे आपकी सरलता, निरभिमानता एवं लघुता में महानता का भाव झलकता था। दूसरों की निन्दा-विकथा का श्रवण करने में न तो आपके कर्ण ही तत्पर होते थे, न मन में ऐसे वचनों के लिए कोई स्थान होता था। धर्म एवं अध्यात्म के रसिकों को निन्दा का रस कीचड़ के समान बदबूदार एवं कलंकित करने वाला प्रतीत होता है।

षट्काय के प्रतिपाल, प्राणिमात्र के अभयदाता सन्त, दुःखी एवं अज्ञानी प्राणियों के प्रति करुणा से आप्लावित न हों, ऐसा कैसे सम्भव है। जन-जन के जीवन-निर्माण के अभिलाषी, अज्ञान-अशिक्षा और अंधविश्वास से जनित अंधकार को दूर करने के प्रति भावनाशील चरितनायक को कइयों ने कृपालु, कृपानाथ, करुणानिधान, करुणाकर जैसे शब्दों से सम्बोधित किया है।

आत्मचेतना के विकास के साथ संवेदनशीलता अथवा करुणा का विकास स्वतः होता है। 'सत्त्वेषु मैत्री' के महान् साधक आचार्यप्रवर का प्राणिमात्र के प्रति करुणाभाव था। जिस प्रकार भगवान महावीर ने समस्त जीवों की रक्षा के लिए प्रवचन फरमाया, उसी प्रकार जगत के प्रत्येक प्राणी के विकास हेतु आपकी वाणी से अमृत टपकता था। दीन-दुःखियों एवं अज्ञानियों को देखकर आपका हृदय दयार्द्र हो उठता था तथा आप साधु-मर्यादा में रहकर उसके कष्ट-निवारण के लिए यथोचित मार्गदर्शन करते थे। कई बार आप प्रवचन में दीन-दुःखियों की सेवा करने की प्रेरणा करते थे। आपका स्वल्प वचन ही श्रावकों द्वारा कृपाप्रसाद समझा जाता था। आप मौनसाधना में विराजे हुए भी दर्शक के अन्तर्हृदय में प्रेरक बनकर बोलते थे। आपके सान्निध्य में बैठने मात्र से ही चित्त में प्रफुल्लता का अनुभव होता था एवं नियम-व्रत अंगीकार करने की स्फुरणा जगती थी। आचार्य श्री जब अपनी मौन साधना से उठते तो श्रद्धालु जन उनके श्रीमुख से नियमित स्वाध्याय, सामायिक या अन्य व्रत नियम अंगीकार करके पुलकित हो उठते थे। वे किसी को जबरदस्ती नियम अंगीकार कराने के हिमायती नहीं रहे। जो भी नियम कराते उसमें नियमकर्ता की पात्रता एवं व्यावहारिकता का ध्यान रखते थे। गर्भवती महिला को उपवास कराना, किशोर बालक को माता-पिता की आज्ञा के बिना ब्रह्मचर्य के नियम दिलाना आदि कई नियम आप व्यावहारिक नहीं मानते थे। आपकी सूझबूझ, समझाइश एवं साधना के कारण पामर व्यक्ति भी शरण में आकर शान्ति का अनुभव करते। आचार्य श्री ने उनके प्रति कभी घृणा या वितृष्णा का भाव नहीं दिखाया, अपितु उनमें भी वे पात्रता की तलाश करते। यथायोग्य उनके हृदय को उर्वर बनाते और एक दिन वे भी नतमस्तक होकर गुरुदेव के चरणों में नियम अंगीकार करने की अभिलाषा व्यक्त करते थे।

रत्नसंघ-परम्परा के आचार्य होते हुए भी आप मूल में भगवान महावीर के शासन या जिनशासन के संरक्षक थे। अन्य परम्पराओं के साधु-साध्वियों को समय-समय पर सहयोग कर आपने जिनशासन के प्रति अपना कर्त्तव्य सम्पादित किया तथा उनके द्वारा यदि अपनी निश्रा के सन्त-सतियों को किसी प्रकार का साध्वोचित सहयोग दिया जाता तो, आप उसके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करना आवश्यक मानते थे। कर्त्तव्य एवं कृतज्ञता का आपमें अनूठा समन्वय था।

कथनी एवं करणी में एकरूपता के आप निदर्शन थे। साधक के आर्जव धर्म की यह पहचान है। कथनी एवं

करणी में भिन्नता विसंवाद है, जिसे साधक का दोष माना जाता है। पूज्यप्रवर उतना ही कहते थे, जितना कर पाते थे। बढ़चढ़ कर बोलना आपको विभाव प्रतीत होता था। श्रावकों को भी आप कथनी एवं करणी में एकरूपता रखने की प्रेरणा करते थे। इसी प्रकार आप अनुशासनप्रिय थे। इसके लिए आप स्वानुशासन पर बल देते थे। करुणाशील होकर भी अनुशासन एवं परम्परा की रक्षा में आप कठोर थे।

卐 卐 卐 卐 卐

अंधविश्वास, अशिक्षा, अज्ञान से आक्रान्त, किन्तु विज्ञान के कारण सुख-सुविधाओं के लिए लालायित इस युग के लोगों को धर्म का बोध किस प्रकार दिया जाए, इसे समझने वाले आप युगमनीषी सन्त थे। आपने अंधी मान्यताओं में जकड़े मानव-समाज को स्वाध्याय के माध्यम से अपने भीतर ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करने की प्रेरणा की तथा अपरिमित इच्छाओं, वासनाओं, राग-द्वेष, अहंकार, माया, लोभ आदि विकारों के कारण तनावग्रस्त मनुष्य को समभाव की प्राप्ति हेतु सामायिक की प्रयोगात्मक साधना प्रदान की। जन-जन को व्यसनों से मुक्त बनाने की आवश्यकता अनुभव की। बालक-बालिकाओं में सत्संस्कारों के वपन के लिए समाज को सावधान बनाया। नारी-शिक्षा एवं सदाचरण की महती प्रेरणा, युवकों में धर्म के प्रति आकर्षण एवं समाज-निर्माण में उनकी शक्ति के सदुपयोग को एक दिशा, समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों यथा-आडम्बर, वैभव-प्रदर्शन, दहेज-माँग आदि पर करारी चोट, विभिन्न ग्राम-नगरों में व्याप्त कलह एवं मनमुटाव के कलुष का प्रक्षालन, समाज के कमजोर तबके एवं असहाय परिवारों को साधर्मि-वात्सल्यपूर्वक सहयोग की प्रेरणा आदि अनेक महनीय कार्य आपको युगमनीषी एवं युगप्रभावक महान् आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

आचार्य श्री ने मनुष्य की ज्ञान-चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। साथ ही उन्होंने मनुष्य की आदतों एवं प्रवृत्तियों को भी सम्यक् दिशा प्रदान करने का बीड़ा उठाया। प्रदीप्त दीपक ही किसी अन्य दीपक को प्रज्वलित करने में समर्थ होता है। आचार्य श्री ने व्यक्ति और समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों को दूर करने के लिए स्वाध्याय और सामायिक का शंखनाद किया। ज्ञान और क्रिया को आपने स्वाध्याय और सामायिक का प्रायोगिक एवं व्यावहारिक रूप दिया जिसे लोगों ने विशाल स्तर पर अपनाया। उन्होंने जनता को व्यापक दृष्टि दी। तत्त्वज्ञान को समझने हेतु शिक्षित समाज को आगम शास्त्रों एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने की प्रेरणा की। जैसी जिसकी पात्रता थी उसे वैसी ही प्रेरणा करना आपका स्वभाव था। थोकड़ों में रुचि रखने वाले लोगों को थोकड़ों का मर्म समझाया। नौकरीपेशा लोगों में सम्यक् सोच को जन्म देने एवं पुष्ट करने के लिए प्रतिदिन नियमित रूप से जीवन को ऊँचा उठाने वाले साहित्य का स्वाध्याय करने की आपकी प्रेरणा सफल रही। आचार्य श्री ने लोगों की चेतना से जुड़कर उन्हें निरन्तर ऊँचा उठाने का जो भावप्रवण प्रयत्न किया उससे अनेक लोग जुड़ते चले गए।

आचार्य श्री का चिन्तन था कि जब तक व्यक्ति स्वयं सत्साहित्य का स्वाध्याय नहीं करेगा, तब तक उसमें सहज एवं स्थायी वैचारिक परिवर्तन संभव नहीं होगा। स्वाध्याय को आप व्यक्ति के आन्तरिक परिवर्तन का अमूल्य साधन मानते थे। यद्यपि स्वाध्याय का अर्थ स्व अर्थात् आत्मा का अध्ययन होता है, किन्तु स्वाध्याय की इस श्रेणी तक पहुंचने में सत्साहित्य का अध्ययन सहायक होने से उसे भी स्वाध्याय कहा गया है। यह स्वाध्याय व्यक्ति में न केवल अध्यात्म चिन्तन का बीज वपन करता है, अपितु यह उसमें नैतिक जीवन मूल्यों और पारस्परिक सौहार्द को भी विकसित करता है। आचार्य श्री जानते थे कि किसी के जीवन को अन्य कोई नहीं बदल सकता, व्यक्ति स्वयं अपने जीवन का निर्माता होता है, किन्तु दूसरों का प्रेरक निमित्त उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संत महात्माओं की संगति भी व्यक्ति के जीवन-निर्माण में प्रेरक निमित्त होती है, किन्तु यह संगति सदैव सहज उपलब्ध नहीं होती। सत्साहित्य का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण प्रेरक निमित्त बनता है, जो कि

सबको सहज सुलभ हो सकता है। आचार्य श्री ने इस उपाय को अपनाने की जन-जन में महती प्रेरणा की। शिक्षित स्त्री हो या पुरुष सबको स्वाध्याय का नियम कराया। प्रारम्भ में 15-20 मिनिट स्वाध्याय करने का नियम कराते थे, किन्तु पाठक जब उसमें रसास्वादन कर आगे बढ़ने की रुचि दिखाता तो आप उसे और अधिक समय तक स्वाध्याय करने की प्रेरणा करते। अध्ययन किए गए सार तत्त्व को अपने जीवन में स्थान देने के लिए मनन करने की भी भावप्रवण प्रेरणा करते। आपने स्वाध्याय के प्रति जन-जन में रुचि जागृत करने के लिए कई पदों या भजनों की भी रचना की, जिनमें 'हम करके नित स्वाध्याय ज्ञान की ज्योति जगायेंगे', जिनराज भजो सब दोष तजो, अब सूत्रों का स्वाध्याय करो', 'ऐ वीरों निद्रा दूर करो, तन-धन दे जीवन सफल करो', 'कर लो कर लो, अय प्यारे सजनों, जिनवाणी का ज्ञान', 'कर लो श्रुतवाणी का पाठ, भविक जन मन-मल हरने को' आदि लोकप्रिय हैं। आपने स्वाध्याय की मशाल से अज्ञान अंधकार को दूर करने की अलख जगाने का संदेश दिया-

घर-घर में अलख जगा देना, स्वाध्याय मशाल जला देना।
वीरों का एक ही नारा हो, जन-जन स्वाध्याय प्रसार हो॥

सत्साहित्य का स्वाध्याय करने में प्रवृत्त जनों को आपने आगमों के स्वाध्याय से भी जोड़ा। आगम-ज्ञान का रसास्वादन प्रत्येक जन कर सके, इसके लिए आपने आगमों का हिन्दी पद्यानुवाद भी उपादेय समझा। दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन सूत्र के हिंदी पद्यानुवाद इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हुए। आपकी अभिलाषा थी कि उत्तराध्ययन सूत्र को जैन गीता के रूप में लोकप्रियता प्राप्त हो। आगमों का विशद विवेचन करने के साथ, जैन कथाओं, भजनों एवं पदों के माध्यम से भी आपने श्रावक समुदाय को स्वाध्याय में रस लेकर विचारों को सात्त्विक बनाने की प्रेरणा की। स्वाध्याय से जीवन- निर्माण के साथ समाज को एक नई उपलब्धि हुई। नियमित स्वाध्याय से स्वाध्यायियों का विकास हुआ और धीरे-धीरे ऐसे सैकड़ों स्वाध्यायी तैयार हुए जो पर्युषण पर्व में सन्त-सतियों के चातुर्मास से विरहित क्षेत्रों में धर्माराधन कराने लगे। इस प्रवृत्ति के सम्यक् संचालन हेतु स्वाध्याय संघ बना। इस उत्तम प्रवृत्ति की महत्ता को देखते हुए विभिन्न सम्प्रदायों ने भी इसे अपनाया और आज देश में अनेक स्वाध्याय संघ कार्यरत हैं।

स्वाध्याय के क्रियात्मक पक्ष को पुष्ट करने के लिए आचार्य श्री ने सामायिक की प्रेरणा की, क्योंकि स्वाध्याय और सामायिक का जीवन को ऊँचा उठाने से सीधा संबंध है। सामायिक समभाव की साधना का प्रायोगिक अभ्यास है, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है। यह क्रिया का उजला पक्ष है। मन, वचन और काया को नियन्त्रित करने का सामायिक एक सुन्दर साधन है। आचार्य श्री ने अपने भजनों में स्वयं फरमाया कि शरीर के पोषण के लिए जिस प्रकार शारीरिक व्यायाम उपयोगी है उसी प्रकार मन के सम्यक् पोषण के लिए शुभध्यान उपयोगी है-

तनपुष्टि हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला।
आध्यात्मिक बल पाना चाहो तो सामायिक साधन कर लो..॥

सामायिक के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए आपने 'जीवन उन्नत करना चाहो, तो सामायिक साधन कर लो', 'कर लो सामायिक रो साधन, जीवन उज्ज्वल होवेला', 'अगर जीवन बनाना है तो सामायिक तू करता जा', 'करने जीवन का उत्थान, करो नित समता रस का पान', सामायिक में सार है, टारे विषय विकार है' आदि अनेक गेय भजनों एवं पदों की रचना की, जिससे सामायिक जन-जन में प्रिय होती चली गई। लोगों को यह समझ में आ गया कि सामायिक में आर्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करते हुए धर्मध्यान (शुभ ध्यान) का अभ्यास किया जाता है। सामायिक कोई साधारण साधना नहीं, यह अति उच्च कोटि की साधना है, जिसमें

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति माया-मृषावाद और मिथ्यादर्शन शल्य इन 18 पापों का त्याग किया जाता है। अकस्मात् एक क्षण में 18 पापों का त्याग करना पूर्णतः संभव तो प्रतीत नहीं होता, किन्तु इस ओर सजगता रखकर समभाव या आत्मभावों में रहने का अभ्यास किया जाए तो निश्चित ही शान्ति, मैत्री, क्षमा, निरभिमानता, अनासक्ति आदि सद्गुणों की निधि व्यक्ति के जीवन को उन्नत और मूल्यवान बना सकती है। साधु-साध्वी तो तीन करण तीन योग से जीवन पर्यन्त समभाव की साधना करने की प्रतिज्ञा करते हैं। आपश्री ने जब से संयम अंगीकार किया, सामायिक की इस प्रतिज्ञा का विस्मरण नहीं होने दिया। आप सदैव चेतना के स्तर पर समभाव की साधना करते हुए आत्मगुणों के पोषण एवं संवर्धन में सहज सजगता पूर्वक लगे रहे। सामायिक साधना के ऐसे महान् साधक का जीवन बोलता था। आपकी वाणी का जादू सा असर होता था। आपने लोगों को अपनी रचनाओं में संदेश दिया कि सामायिक जीवन की उन्नति का मूल है, सद्चिद् आनन्द का स्रोत है, जग के सब जीवों के प्रति बन्धुभाव की प्रेरक है, मोह के जोर को घटाने एवं आकुलता का निवारण करने का उत्तम साधन है। यह जीवन-सुधार का आधार है तथा अपने जीवन के सुधार से देश, जाति आदि सबका सुधार संभव है-

सामायिक से जीवन सुधरे, जो [illegible]
निज सुधार से देश जाति, सुधरी हो [illegible]

सामायिक और स्वाध्याय के श्रेष्ठ उपायों को आपने एक-दूसरे से जोड़ा। स्वाध्याय के साथ जीवन में समभावों के अभ्यास के लिए सामायिक और सामायिक के समभावों को दृढ़ बनाने के लिए स्वाध्याय का अमोघ उपाय आपने जन-जन को अर्पित किया। स्वाध्याय और सामायिक के व्यापक प्रसार हेतु आपने सामूहिक सामायिक करने की प्रेरणा की, जिससे अनेक स्थानों पर सामायिक-संघों का गठन हुआ। सैकड़ों की संख्या में ग्राम-नगर सामायिक संघों से जुड़ते चले गए। स्वाध्याय को भी आप समाज धर्म बनाना चाहते थे। क्योंकि स्वाध्यायशील समाज सामाजिक कुरीतियों को त्यागता हुआ तीव्र गति से विकासोन्मुख हो सकता है। स्वाध्याय को यदि समाज धर्म बनाया जाए अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूप से सत्साहित्य का स्वाध्याय करे तो अनेक सामाजिक समस्याओं से सहज ही मुक्ति संभव है। कलह, द्वन्द्व आदि का कारण अज्ञान है। स्वाध्याय से जब ज्ञान का प्रकाश मिलता है तो बहुत से कुविचार स्वतः समाप्त हो जाते हैं। पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। संत-जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से ही आपने स्वाध्याय और सामायिक के फल का जो स्वयं रसास्वादन किया, उसे दूसरों में वितरण करने की भावना ने ही सामायिक और स्वाध्याय की प्रवृत्तियों को वेग प्रदान किया।

गृहस्थ जहाँ द्रव्य दान करके अपने को महान् दाता समझता है, वहाँ संत-महापुरुष अमूर्त रूप में व्यक्ति और समाज को कितना देते हैं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वे अखूट दानी होते हैं। जो कार्य करोड़ों रुपयों में नहीं हो सकता, वह संत के एक वचन से संभव है। दूसरे शब्दों में कहें तो संत के एक वचन से जीवन का ऐसा निर्माण हो सकता है जो करोड़ों अरबों रुपयों से कदापि नहीं हो सकता। इसीलिए संतों के चरणों में लक्ष्मीपति भी श्रद्धापूर्वक अपना मस्तक झुकाते हैं। आचार्यप्रवर ने ज्ञानदान, अभयदान आदि के साथ सामायिक की अनूठी साधना करते हुए उसे जन-जन में जिस भावना से वितरित किया, उसका मूल्य आंकना तो सम्भव ही नहीं। प्रसिद्ध कथन है कि लाखों सुवर्ण मुद्रा का प्रतिदिन दान करने वाला व्यक्ति एक सामायिक करने वाले की बराबरी नहीं कर सकता-

दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
एगो पुण सामाइयं, करइ न पहुप्पए तस्स॥

पूज्य चरितनायक तो सतत सामायिक की उत्कृष्ट साधना में लीन साधक थे, अतः उनके द्वारा दी गई सामायिक की प्रेरणा का मूल्य तो अकूत ही हो सकता है। आचार्य श्री ऐसे संत महापुरुष थे, जिनके चरणों में बड़े-बड़े न्यायविद्, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, डॉक्टर, राजनेता, उच्च प्रशासनिक अधिकारी, अभियन्ता आदि भी नत मस्तक होकर अपनी रिक्तता को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। इसमें जाति एवं धर्म की दीवारें कभी आड़े नहीं आई। वहाँ तो सबके लिए सदैव श्रमण मर्यादानुसार द्वार खुले रहते थे। साधारण से साधारण व्यक्ति पर भी आपकी वही कृपादृष्टि थी, जैसी समाज के अग्रगण्य लोगों पर होती है। समानरूप से सभी आगन्तुकों के लिए सदैव दरवाजे खुले रहते थे। वे लोगों की बाह्य रूप सम्पदा को नहीं, उनकी अन्तश्चेतना को संवारने में संलग्न रहते थे। इसीलिए श्रमिक से लेकर सत्ताधीश तक आपके चरणों में बैठकर अपनी व्यथा का निवारण कर अपने को कृतकृत्य समझते थे।

卐 卐 卐 卐 卐 卐

पूज्यपाद आचार्यप्रवर का ध्यान समाज के प्रत्येक अंग के समुचित विकास की ओर था। वे बालक, बालिका, युवक,नारी आदि सभी के जीवन-निर्माण और दोष निवारण के लिए सतत हृदयस्पर्शी प्रेरणा करते रहे। बालकों में प्रारम्भ से ही सत्संस्कारों का वपन हो, इस ओर माता-पिता एवं अभिभावकों का ध्यान केन्द्रित करते हुए आचार्य श्री फरमाते थे कि संतान को जन्म देना आसान है, किन्तु उसे सत्संस्कारी बनाने पर ही माता-पिता का दायित्व पूर्ण होता है। यदि उन्हें सत्संस्कारी नहीं बनाया गया तो वे माता-पिता के लिए भी परेशानी का कारण बन सकते हैं। इसके लिए आप फरमाते थे कि उपदेश देने से संस्कार नहीं आते हैं, उन्हें संस्कार देने के लिए माता-पिता को वैसा आचरण करना पड़ता है तथा धीरज से समझाना होता है। एक बार बालक हाथ से निकल गया तो फिर लाख कोशिश करने पर भी उसे समझाना कठिन होता है। बच्चों में शिष्टाचार, सदाचार और नैतिकता के मूल्य ही सत्संस्कार के स्वरूप हैं। बड़ों के साथ किस प्रकार बोलना, घर से कहीं जाते समय बड़ों से पूछकर जाना, कुसंगति से बचना, खान-पान में शुद्धता एवं सात्त्विकता रखना, परस्पर हिलमिल कर रहना, एक दूसरे का सहयोग करना, प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशील होना, बिना पूछे किसी की वस्तु न लेना, अश्लील साहित्य न पढ़ना, जुआ न खेलना, धूम्रपान-गुटखा एवं मद्य का सेवन नहीं करना, मांसाहारी भोजनालय में नहीं जाना, वचनों में प्रामाणिकता रखना, किसी कमजोर की हंसी न उड़ाना, घर में बड़ों की, बीमार की और पड़ौस में असहाय की सेवा करना, मूक पशु और पक्षियों को अपने समान समझना एवं उन्हें न छेड़ना और उनके प्राणों की रक्षा करना, अकारण वनस्पति को हानि न पहुंचाना, मित्रों के साथ सहृदयता का व्यवहार करना, संतों की सन्निधि का लाभ उठाना, निन्दा-विकथा में रस न लेना, महापुरुषों की कृतियों का अध्ययन करना, सहनशीलता का विकास करना, बड़ों के सामने पलटकर उत्तेजना पूर्वक जवाब न देना, स्व-विवेक का उपयोग करना, किसी की चुगली न करना, बिना आवश्यकता के वस्तुएँ नहीं खरीदना, अतिथियों का आदर करना, फैशन एवं फिजूलखर्ची से बचना, प्रतिदिन परमेष्ठी स्मरण एवं स्वाध्याय करना आदि सत्संस्कार के विविध रूप हैं। इन सत्संस्कारों से बालक के जीवन का निर्माण होता है। आचार्य श्री फरमाते थे कि शिक्षा दो प्रकार की होती है- 1. जीवन निर्वाहकारी शिक्षा 2. जीवन निर्माणकारी शिक्षा। जीवन का निर्वाह तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं, कीट-पतंगे भी कर लेते हैं, किन्तु मानव ही ऐसा प्राणी है जो जीवन निर्वाह के साथ जीवन का निर्माण भी कर सकता है। माता-पिता बालक के जीवन निर्वाह के लिए तो चिन्तित रहते हैं, किन्तु जीवन-निर्माण के प्रति भी उनकी सजगता की ओर आचार्य श्री ने श्रावकों का ध्यान आकृष्ट किया। इस ओर

आपकी पीड़ा की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है- *"जो माँ-बाप बच्चों के शरीर की चिन्ता करते हैं, किन्तु आत्मा की चिन्ता नहीं करते, उनके जीवन-सुधार की चिन्ता नहीं करते, मैं कहूँगा वे सच्चे माँ-बाप कहलाने के हकदार नहीं हैं। यदि माँ-बाप को अपना फर्ज अदा करना है तो उन्हें अपने बालक-बालिकाओं के चरित्र-निर्माण की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। आज जीवन-निर्वाह की शिक्षा के लिए वे बच्चों पर हजारों लाखों रुपये व्यय कर देते हैं, जीवन-निर्माण के प्रति भी उनका वैसा ही ध्यान होना चाहिए।"*

बालिका को आचार्य श्री ने देहली के दीपक की उपमा देते हुए फरमाया- *"जिस प्रकार देहली में रखा हुआ दीपक कमरे के अन्दर और बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार बालिका की शिक्षा और संस्कार से दो घर-परिवार संस्कारित एवं प्रकाशित होते हैं।"* इसलिए बालक से भी अधिक बालिका को संस्कारित करना परिवार एवं समाज के विकास के लिए आवश्यक है। बचपन में ही बालक-बालिका में जो संस्कार दिये जाते हैं, वे प्रायः स्थायी होते हैं। विषम एवं विपरीत परिस्थितियों में भी उनके बचपन के संस्कार जागृत होकर उन्हें दिशा-निर्देश करते हैं। समाज में कन्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसे प्राचीन कुरीतियों के दुष्परिणामों से अवगत कराते हुए साक्षरता के साथ जीवन-निर्माणकारी शिक्षा से जोड़ा जाए तो भावी समाज एक नई करवट ले सकता है। इस प्रकार के आपके युग-प्रभावी सोच से जैन समाज प्रभावित हुआ।

आचार्य श्री का चिन्तन व्यापक दृष्टिकोण को लिए हुए होता था। वे प्रत्येक जन का विकास देखना चाहते थे। जब युवकों को उन्होंने धर्म से विमुख देखा तो उन्हें भी जीवन को ऊँचा उठाने की प्रेरणा करते हुए धर्म से जोड़ा। युवकों को आपने व्यसनमुक्ति के साथ विवेक को जागृत रखकर निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा की। आपका मन्तव्य था कि युवक संगठित होकर समाज को बुराइयों से बचाने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। आपने धर्म को पोशाक की भाँति नहीं, अपितु जीवन-सुधार के आधार की भाँति समझने की प्रेरणा की। आपने फरमाया कि धर्म दिखावे की वस्तु नहीं, अपितु चित्त को निर्मल बनाने का साधन है। जब भी कोई युवक उनके सम्पर्क में आता तो आप उसमें परमेष्ठि-स्मरण, स्वाध्याय, सामायिक, सेवा आदि प्रवृत्तियों से जुड़ने की भाव-भूमि तैयार करते थे। युवकों में वृद्ध धर्म-जनों की काषायिक परिणितियों को देखकर जब कभी धर्म से विमुखता दिखाई पड़ती तो आप फरमाते कि हमें वृद्धजनों की काषायिक परिणतियों को देखकर धर्म को हेय नहीं समझना चाहिए। धर्म तो अपनी वृत्तियों पर विजय का उत्कृष्ट साधन है। धर्म केवल स्थानक तक ही सीमित नहीं है, इसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिए। यदि वृद्धजनों द्वारा धर्म को जीवन में सम्यक् रूपेण स्थान दिया जाए तो प्रश्न ही नहीं उठता कि युवक धर्म से विमुख हों। धर्माचरण का संबंध सम्पूर्ण जीवन से है। भगवान ने तो फरमाया है कि जब तक तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ बराबर कार्य कर रही हैं, तब तक धर्म साधना कर लेनी चाहिए- *'जाव इन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे'*। जब कोई बुजुर्ग भाई आचार्य श्री से कहते कि महाराज पोते का विवाह कर लूँ, कारोबार बेटों-पोतों को संभला दूँ, तब धर्म की आराधना करूँगा तो आचार्य श्री उन्हें स्मरण कराते- *"इसका क्या भरोसा कि जब पोता खड़ा होगा तब तक आप गोता नहीं खायेंगे। इतिहास साक्षी है कि राजघराने के लोगों ने भरी जवानी में राजवैभव के विलास और आमोद-प्रमोद को छोड़कर धर्म-साधना प्रारम्भ की।"*

धर्म के सम्बन्ध में आपने इस रूढ मान्यता पर प्रहार किया कि धर्म से मात्र परलोक सुधरता है, इस लोक के लिए धर्म नहीं है। आपने फरमाया कि भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म परलोक के लिए तो कल्याणकारी है ही, किन्तु उससे पहले वह इहलोक के लिए कल्याणकारी है। इस लोक में मानसिक शान्ति, कषायों के शमन से प्रशम सुख की अनुभूति, पारस्परिक कलह के स्थान पर मैत्री का वातावरण, एक-दूसरे के प्रति सहयोग का भाव, तृष्णा पर नियन्त्रण आदि विभिन्न धर्म परिणाम इहलोक में देखे जाते हैं। आपका उपदेश साधारण शैली में

अनुभूतिपूर्ण एवं हृदयग्राही होता था। आपने कभी भय एवं प्रलोभन से धर्म को अपनाने का उपदेश नहीं दिया, अपितु उसे इस जीवन के निर्माण, जीवन जीने की कला, शान्ति और सच्चे सुख की अनुभूति के साथ जोड़ा। धर्म के क्षेत्र में आप स्वावलम्बन को अपनाने की प्रेरणा करते हुए फरमाते– *''जैसे जंगल के वृक्ष बागवान की देखरेख के अभाव में भी हरे-भरे रहते हैं, इसी प्रकार साधु-सन्तों के बिना भी स्वाध्याय के माध्यम से धर्म-साधना हरी-भरी रहनी चाहिए।''*

आचार्यप्रवर ने युवकों को आगे आने की प्रेरणा करने के साथ नारी को बाह्य आभूषणों की बजाय शील एवं संयम का भूषण धारण करने की प्रेरणा की। काव्य में आपके ही शब्द साक्षी हैं–

शील और संयम की महिमा, तुम तब शोभे हो।
सोना चांदी हीरक से, नहीं साज बुराई हो।।

नारी में वह शक्ति है कि वह घर के प्रत्येक सदस्य को धर्ममार्ग से जोड़ सकती है। नारी की विभिन्न भूमिकाएँ हैं। माता के नाते वे संतति में सत्संस्कारों का बीजारोपण कर सकती हैं, सहधर्मिणी के रूप में वे पति की अनुचित प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा सकती हैं, बहिन के रूप में भाई को वे उसी प्रकार संबोधित कर साधना में आगे बढ़ा सकती हैं, जिस प्रकार ब्राह्मी व सुन्दरी ने बाहुबली को अहंकार विजय हेतु प्रेरित कर केवलज्ञान की ओर आगे बढ़ाया। अन्य रूपों में भी नारी प्रेरणास्रोत रही है। कई बार अधार्मिक एवं व्यसन में फंसे लोग नारी के कोमल उपदेशों से प्रभावित होकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख हुए हैं। कहते हैं कि यदि गृहिणी कटुभाषिणी, कर्कशा, कुशीला तथा अनुदार हो तो इससे परिवार का आत्म-सम्मान एवं गौरव घट जाता है। वही नारी यदि उदारता, शालीनता, सुशीलता, मधुरता, कर्त्तव्य परायणता, सहनशीलता, सेवाभावना, विवेकशीलता, धर्मनिष्ठा, विनम्रता, आत्मीयता, सरलता, क्षमाशीलता आदि गुणों से सम्पन्न हो तो वह नारी घर को स्वर्ग बना देती है। आचार्यप्रवर नारी की शिक्षा पर जोर देते थे। उनका मन्तव्य था कि नारी के अज्ञान-अंधकार को दूर करने से परिवार की अनेक समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। कई जगह समस्याओं का जन्म ही नहीं होता है। नारी को धर्मस्थान में सादगी एवं अनुशासन का पालन करना चाहिए, इसकी आचार्य श्री अक्सर प्रेरणा करते रहते थे। जब कभी महिलाएँ तपस्या के प्रत्याख्यान हेतु आभूषणों से लद कर आती तो आपको यह धर्म के अनुकूल आचरण नहीं लगता था। तपस्या के अवसर पर भोज एवं आडम्बर के आप सख्त खिलाफ थे। उन्हें उसमें तीन प्रकार के दोष दिखाई पड़ते थे– एक तो यह कि इससे तप का असली स्वरूप धूमिल हो जाता है, दूसरा यह कि यह लोगों में ईर्ष्या-द्वेष का कारण बनता है तथा तीसरा यह कि जो इस प्रकार आडम्बर नहीं कर सकते वे तप करने का साहस नहीं जुटा पाते, इससे तपः साधना में दूसरों को अन्तराय का अनुभव होता है। आप फरमाते थे– *''आज के समय में इसको धर्म प्रभावना समझा जा रहा है, किन्तु ऐसा समझना बिल्कुल गलत है। आज तो यदि मैं यह कहूँ कि यह प्रभावना नहीं बल्कि अप्रभावना है तो भी अनुचित नहीं होगा।'' ''आज जिस समय हजारों लाखों लोगों को भर-पेट रोटी मुश्किल से मिले और लोगों का जीवन निर्वाह मुश्किल से हो, उस समय हमारी माताएँ-बहिनें धर्म प्रभावना के लिए हजारों लोगों में प्रदर्शन करती हुई बाजार से निकलें तो जैनेतर समाज के लिए ईर्ष्या का कारण बनता है।''* तप पर होने वाले प्रदर्शन एवं अपव्यय पर आक्षेप करते हुए आप श्रावकों को फरमाते थे कि *आप लोगों ने शादी को महंगा कर दिया, मायरे को महंगा कर दिया, कम से कम तपस्या को तो महंगा मत बनाओ।* आचार्यप्रवर का इसके पीछे गहन चिन्तन था कि धर्म-साधना अमीर और गरीब सबके लिए समान होनी चाहिए। यही नहीं, जाति, वर्ग एवं ऊँच-नीच के भेद से दूर रहकर तप का आराधन मात्र कर्मों की निर्जरा हेतु किया जाना चाहिए। श्रावकों को आडम्बर से बचने एवं सहयोग का भाव अपनाने की प्रेरणा करते हुए आपने फरमाया– *''आप जो प्रदर्शन में, दिखावे में खर्चा करते हैं, वही यदि कमजोर भाई-बहिनों की सहायतार्थ एवं*

उनकी व्यथा दूर करने में किया जाय तो लाभ का कारण है। अपव्यय का उपयोग स्वधर्मि-वात्सल्य में भी लाभ का निमित्त बन सकता है।"

माताओं पर बहुत बड़ा दायित्व है। भावी पीढ़ी की प्रथम शिक्षक माता ही होती है। उसके द्वारा प्रदत्त संस्कार बालक के विकास को निर्धारित करते हैं। आचार्य श्री का मानना था कि संतति से मोह का संबंध न रखकर माता को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। बहिनें अनेक अंधविश्वासों से आक्रान्त रहती हैं, वे पद-पद पर अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त रहती हैं। इसलिए वे अनेक देव-देवियों की पूजा तथा ढोंगी-पाखण्डी संन्यासियों के चक्कर में फंस जाती हैं। धर्म का सही स्वरूप यदि वे समझ लें तो इस प्रकार की मिथ्या मान्यताओं के भंवर-जाल से बचा जा सकता है। बालकों को सही संस्कार देने के लिए भी माताओं की धार्मिक योग्यता का विकास अपेक्षित है।

दहेजप्रथा पर कुठाराघात करते हुए फरमाया- *"सुनता हूँ कि जैन समाज के सदस्यों में और समाज के अग्रगण्य कहलाये जाने वाले लोगों में दहेज की कुप्रथा ने भयंकर रूप से गहरा घर कर रखा है। दहेज की कुप्रथा के रूप में बढ़े हुए मानव के लोभ से कभी कुलवधुओं को आत्महत्या के लिए विवश किया जाता है, कभी लोभियों के द्वारा सताया जाता है। इस प्रथा के कारण अनेक घरों में 25-25 वर्ष की कुंवारी कन्याएँ मिलेंगी। दयालु जैन कुल में जन्म ग्रहण करने वाले भाई-बहिन डोरे और बींटी के लिए, टीके और दहेज के लिए बोलते हुए और आग्रह करते हुए शरमाते नहीं। आप स्वयं ही सोचिए कि यह आपकी कैसी दया है? समाज के अग्रणी लोग एवं स्वाध्यायी जन प्रतिज्ञा कर लें कि वे अपने बच्चे-बच्चियों के लिए बींटी, डोरा या दहेज आदि कुछ न तो लेंगे और न देंगे ही।"* आपने अनेक प्रसंगों पर स्वाध्यायियों एवं जैन समाज के बंधुओं को दहेज का ठहराव और दहेज की मांग न करने की प्रतिज्ञा कराई। प्रदर्शन एवं लोभ-लालच के कारण बढ़ती इस बुराई का निकन्दन हो, इसके लिए गुरुदेव ने युवकों को भी प्रेरणा करते हुए फरमाया कि नवयुवक दहेज, टीके आदि की कुप्रथाओं को नष्ट करने का यदि दृढ़संकल्प कर लें तो यह निकन्दन असम्भव नहीं। आपने अपने प्रवचनों में फरमाया- *"यदि समाज कुछ प्रतिज्ञाओं में आबद्ध होकर चले तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। जैसे- 1. दहेज की न कोई मांग करनी और न ही किसी से करवानी 2. दहेज का किसी भी प्रकार का कोई प्रदर्शन नहीं करना। 3. दहेज कम मिलने पर कोई आलोचना अथवा चर्चा नहीं करनी।"*

मृत्यु के पश्चात् कई दिनों तक रोना एवं मृत्युभोज या स्वामिवत्सल करना अज्ञान, अशिक्षा और असम्यक् सोच का परिणाम है। कई बार मुँह ढाकने एवं रोने की प्रथा नाटकीय ढंग से चलती है। जो जैन भाई आत्मा का पुनर्जन्म स्वीकार करते हैं और यह भी जानते हैं कि गया हुआ वापस नहीं आता तो फिर व्यर्थ का विलाप घर के वातावरण को दूषित ही करता है तथा आहत व्यक्ति की पीड़ा अधिक गहरी होती जाती है। मस्तिष्क उस घटना से उभर नहीं पाता। आचार्य श्री अपने प्रवचनों में इन बुराइयों के निवारण हेतु प्रेरणा करते रहते थे। रोने की लोकरूढ़ि पर आपने फरमाया- *"यह कैसी रीति है कि जो महिलाएँ थोड़ी देर पहले बैठी हुई आपस में बातें करती होती हैं, वे आगन्तुक महिला को रोते देखकर रोना प्रारम्भ कर देती हैं।"* गुरुदेव ने इसे अनर्थदण्ड मानकर त्यागने का उपदेश दिया।

अखाद्य-भक्षण, अपेय-पान, अगम्य-गमन आदि विभिन्न बुराइयों का निकन्दन भी उन युगमनीषी को अभीष्ट रहा। आपका चिन्तन सकारात्मक था। नकारात्म सोच वालों को आगाह करते हुए आप फरमाते- *"मैं समाज के भीतर की कमजोरियों को, बुराइयों को नंगे रूप में बाहर प्रस्तुत करना समाज की शक्ति में, समाज के मानस में दुर्बलता लाने का कारण समझता हूँ। इसके विपरीत मैं यह सोचता हूँ कि इन दुर्बलताओं को बाहर*

प्रकट करने की बजाय इनका उपचार प्रस्तुत किया जाए, जिससे कि समाज में ऐसे विकार प्रविष्ट ही न हों तथा जो विकार प्रविष्ट हो गए हों, वे बढ़े नहीं और पुराने विकारों को पुरानी बुराइयों को जो समाज में व्याप्त हैं, धीरे-धीरे कारगर ढंग से निकाला जाए।'' इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आचार्यप्रवर न केवल कुशल मनोवैज्ञानिक अपितु समाज के उत्तम मनोचिकित्सक भी थे। जिस प्रकार व्यक्ति की बुराई को बार-बार प्रकट करने पर वह नहीं छोड़ता, किन्तु उसके दुष्परिणाम समझ में आने पर वह छोड़ने के लिए तत्पर हो जाता है, उसी प्रकार समाज को विभिन्न दोषों के दुष्परिणामों से अवगत कराकर उनसे मुक्त कराना ही युगमनीषी करुणानिधान आचार्य श्री का लक्ष्य रहा।

समाज धर्म की दृष्टि से आपने सामूहिक रात्रिभोज एवं उसमें जमीकंद के प्रयोग को अनुचित बताया तथा श्रावकों को प्रतिज्ञा ग्रहण करने के लिए तैयार किया कि वे सामूहिक भोज में रात्रिभोजन नहीं करेंगे तथा जमीकन्द का त्याग रखेंगे। आपका मन्तव्य था कि नित्यप्रति न बन सके तो कम से कम समाजधर्म के प्रतीक रूप में जैनों के द्वारा इतनी मर्यादा का निर्वाह तो होना ही चाहिए।

महापुरुष बिना किसी भेदभाव के समाज में एकता का स्वरूप देखकर प्रमुदित होते हैं तो समाज में व्याप्त कलह, मनमुटाव आदि को देखकर उनका हृदय अनुकम्पित हो जाता है। सिंवाची पट्टी के 144 गांवों में व्याप्त मनमुटाव के रौद्र रूप को देखकर आपका दिल दहल उठा। ऊनोदरी तप-साधक आचार्य श्री ने समाज के इस भयावह झगड़े को मिटाने का मूक संकल्प करते हुए झगड़ा मिटने तक दुग्ध-सेवन का त्याग कर दिया। आपने बड़ी सूझ-बूझ के साथ पीयूषपाविनी वाणी से समाज के अग्रणी लोगों को कषाय शमन की शिक्षा दी, जिससे संवत् 2022 के बालोतरा चातुर्मास में यह दीर्घकालीन विवाद एवं मनोमालिन्य प्रेम-मैत्री में परिणत हो गया।

आप जहाँ कहीं भी पधारे, वहाँ व्याप्त मनमुटाव, कलह एवं द्वन्द्व को दूर कर आपने समाज में प्रेम एवं एकता का संचार किया। लासलगांव (संवत् 1999), फतहगढ़ (संवत् 2013), पाली (संवत् 2018), किशनगढ़ (संवत् 2019) आदि बीसियों ग्राम- नगरों में कलह-कलुष को धोकर आपने प्रेम एवं मैत्री की सरिता को प्रवाहित किया। आप फरमाते थे- *''समाज में एक-दूसरे पर विश्वास आवश्यक है। शरीर में आँख में चूक से कभी पैर में कांटा लग जाय तो क्या पैर आंख पर भरोसा नहीं करेगा? और क्या आँख पैर का कांटा निकालने में सहयोग नहीं करेगी?''* इसी प्रकार के भावों से ओतप्रोत आपकी काव्यरचना के कुछ पद द्रष्टव्य हैं-

शिक्षा दे रहा जी हमको, देह पिंड सुखदाई।
दश इन्द्रिय अरु बीसों अंग में, देखो एक सगाई।।
सबमें एक, एक में सबकी, शक्ति रही समाई।
आंख चूक से लगता कांटा, पैरो में दुःखदायी।
फिर भी पैर आंख से चाहता, देवे मार्ग बताई।।
सबके पोषण हित करता, संग्रह पेट सदाई।
रस कस ले सबको पहुंचाता, पाता मान बड़ाई।।

एकता के स्वरूप को परिभाषित करते हुए आप फरमाते थे कि समाज में एकता नारंगी की तरह नहीं खरबूजे की तरह होनी चाहिए। नारंगी बाहर से एक दिखाई देते हुए भी भीतर से अलग-अलग फांक में विभक्त होती है, जबकि खरबूजा बाहर से रेखाओं में विभक्त प्रतीत होता हुआ भी भीतर से एक होता है। आपका औपचारिकता में नहीं, अंतरंगता में विश्वास था। लोक-दिखाऊ एकता उन्हें कतई यथेष्ट नहीं थी।

एकता की स्थापना एवं स्थायित्व के लिए आप फरमाते थे- *''समाज में आपको कैंची नहीं सुई बनकर*

रहना है। कैंची एक बड़े कपड़े को काटकर अनेक टुकड़े कर डालती है, जबकि सुई बिखरे हुए अनेक टुकड़ों को सिल डालती है।''

एकता तभी रह सकती है, जब परस्पर सहिष्णुता का भाव हो। जैन धर्मानुयायी परम्परा-भेद के कारण भले ही विभक्त हों, किन्तु वे भी सहिष्णुता के बल पर एक हो सकते हैं, आचार्यप्रवर ने इस संबंध में अपना चिन्तन अभिव्यक्त करते हुए फरमाया- *''आज विविध परम्परा के लोग जब एक जगह पर धर्मक्रिया करने बैठते हैं, तब भिन्न-भिन्न प्रकार की नीति-रीति देखकर टकरा जाते हैं, वाद-विवाद में पड़ जाते हैं, जबकि धार्मिक-मंच सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने का अग्रिम स्थान है। लोकसभा में विभिन्न प्रकार की वेशभूषा, साज-सज्जा, बोलचाल और नीतिरीति के व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं, तो फिर क्या लम्बी मुँहपत्ती और चौड़ी मुँहपत्ती वाले प्रेमपूर्वक एक साथ नहीं बैठ सकते?''*

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

अध्यात्म साधना के पथ पर वही साधक अपने चरण बढ़ा सकता है, जो वैचारिक दृष्टि से समृद्ध हो। आचार्यप्रवर आचरण पक्ष में वज्र की भांति जितने कठोर थे उतने ही विचार पक्ष में मजबूत एवं सुलझे हुए दार्शनिक थे। आपको विचार की भूमि से ही आचार का पोषण अभीष्ट था। ध्यान, मौन एवं भेदज्ञान की साधना से परिपक्व साधक में विचारों का उदय सहज रूप से होता है, जो उनकी साधना को पुष्ट करने एवं अग्रसर करने में उपयोगी बनता है। प्रज्ञावान आचार्यप्रवर का स्पष्ट मन्तव्य था कि खगोल, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि की जानकारी आध्यात्मिक दृष्टि से ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो अन्तर का सच्चा आलोक है जो मानव की भीतरी कालिमाओं को धोने में समर्थ है। ज्ञान मनुष्य को बन्धन की ओर नहीं मुक्ति की ओर ले जाता है, कलह की ओर नहीं मैत्री की ओर ले जाता है, लोभ की ओर नहीं संतोष की ओर ले जाता है, भोग की ओर नहीं योग की ओर ले जाता है। ऐसा ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है। सम्यक् ज्ञान से गर्भित एवं प्रसूत विचार से ही जीवन में आचरण की सुन्दरता का प्रवेश होता है एवं वह आचरण टिकाऊ बन पाता है। आपके शब्दों में- *''विचार की भूमिका पर ही आचार के सुन्दर महल का निर्माण होता है। विचार की नींव कच्ची होने पर आचार के भव्य प्रासाद को धराशायी होते देर नहीं लगती।''*

आपने कभी विचारशून्य बाह्य क्रिया को प्रोत्साहित नहीं किया। आपने आगम के इस तथ्य की अनेकत्र पुष्टि की है कि सम्यक्ज्ञानी की क्रिया करोड़ों वर्षों के कर्मों का कुछ ही क्षणों में क्षय कर सकती है (*तं णाणी तीहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमेत्तेण*)। तप, संवर, दया आदि सभी धर्म-क्रियाएँ आपने ज्ञानपूर्वक सम्यक् रीति से करने की प्रेरणा की।

ज्ञानी और अज्ञानी के जीवन में भेद का प्रतिपादन करते हुए आपने फरमाया- *''अज्ञानी और ज्ञानी के जीवन में बड़ा अन्तर होता है। बहुत बार दोनों की बाह्य क्रिया एक-सी दिखाई देती है, फिर भी उसके परिणाम में बहुत अधिक भिन्नता होती है। ज्ञानी का जीवन प्रकाश लेकर चलता है, जबकि अज्ञानी अन्धकार में ही भटकता है। ज्ञानी का लक्ष्य स्थिर होता है, अज्ञानी के जीवन में कोई लक्ष्य प्रथम तो होता ही नहीं, अगर हुआ भी तो विचारपूर्ण नहीं होता। उसका ध्येय ऐहिक सुख प्राप्त करने तक ही सीमित होता है। फल यह होता है कि अज्ञानी जीव जो भी साधना करता है वह ऊपरी होती है, अन्तरंग को स्पर्श नहीं करती। उससे भवभ्रमण और बन्धन की वृद्धि होती है, आत्मा के बन्धन कटते नहीं।''*

भक्ति एवं प्रार्थना के संबंध में चरितनायक का चिन्तन स्पष्ट था। जैन कर्म सिद्धान्त की मान्यता है कि आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता एवं भोक्ता है। फिर प्रश्न उठता है कि तीर्थंकर आदि की स्तुति क्यों की

जाए ? इस प्रश्न का समाधान चरितनायक के भक्तिप्रवण दार्शनिक मस्तिष्क ने इस प्रकार दिया – *"प्रभु भक्ति तुम्ब की तरह तारक है, मन की मशक में प्रभु–भक्ति एवं सद्विचार की वायु भरने से आत्मा हल्की होकर तिर जाती है।"* लौकिक कामना के लिए भक्ति करने का निषेध करते हुए आपने फरमाया– *"किसी लौकिक वस्तु की प्राप्ति के लिए भक्ति करने की आवश्यकता नहीं। लौकिक कामना भक्ति या तप का मोल घटाने वाली है।"* वीतराग की स्तुति की उपयोगिता प्रतिपादित करते हुए आपने निरूपित किया–*"हमारी प्रार्थना के केन्द्र यदि वीतराग होंगे तो निश्चित रूप से हमारी मनोवृत्तियों में प्रशस्त और उच्च स्थिति आएगी। उस समय सांसारिक मोह माया का कितना ही सघन पर्दा आत्मा पर क्यों न पड़ा हो, किन्तु वीतराग स्वरूप का चिन्तन करने वाले उसे धीरे–धीरे अवश्य हटा सकेंगे।"* वीतराग की स्तुति वीतराग बनने के लिए की जाती है– *'वन्दे तद्गुण लब्धये'*। आचार्यप्रवर का चिन्तन था कि जिस प्रकार शुद्ध वायु के सेवन से मनुष्य स्वतः स्वस्थ बनता है इसी प्रकार वीतराग की स्तुति से मनुष्य स्वयं वीतरागता को प्राप्त करता है। इसलिए आचार्यप्रवर ने वीतराग के प्रति की गई स्तुतिप्रधान प्रार्थना का वैशिष्ट्य इन शब्दों में व्यक्त किया है– *"वीतरागता की प्रार्थना में यह विशेषता है कि प्रार्थी प्रार्थ्य के समान ही बन जाता है। इस प्रकार की उदारता सिर्फ वीतराग में ही है।"*

बाह्य तप के साथ आभ्यन्तर तप की साधना को आप आवश्यक मानते थे– *"आत्मा को पूर्णतः विशुद्ध बनाने के लिए बाह्य तप के साथ–साथ अन्तरंग तप की भी अत्यन्त आवश्यकता है। बाहर का तप इसलिए किया जाता है कि जो हमारा अन्तर विषय– कषायों की उत्तेजनाओं से आन्दोलित है, उद्वेलित है, हमारे भीतर मोह, ममता और मिथ्यात्व का प्राचुर्य है, प्राबल्य है, वह कम हो।"* आपने तप के साथ संयम पर भी बल दिया, आपका चिन्तन था– *"बिना संयम के जो तप है, वह वास्तविक तप नहीं है।"*

धर्म–साधना के लिए अमीर और गरीब को समान बताते हुए आपने फरमाया– *"धर्म साधना के लिए किसी के पास एक पैसा भी नहीं है तो भी उसके पास तीन साधन हैं– तन, मन और पावन वचन।"* किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक साधना क्यों न हो, तन, मन और वचन का सुप्रणिधान आवश्यक है। आपने परिग्रह का परिमाण करने पर बल देने के साथ अनीति एवं अन्याय से धन कमाने को अनुचित ठहराया– *"बिना श्रम के, बिना न्याय के और बिना नीति के जो पैसा मिलाया जाता है, उससे कोई लखपति और करोड़पति तो हो सकता है, लेकिन वह पैसा उस परिवार को शान्ति व समाधि देने वाला नहीं हो सकता।"* परिग्रह को अफीम समझकर गृहस्थ से उसकी मर्यादा करने की प्रेरणा की। परिग्रह में आपने दो बुराइयों का उल्लेख करते हुए फरमाया– *"परिग्रह का दूसरा नाम दौलत है, जिसका अर्थ है 'दो लत' अर्थात् दो बुरी आदतें। उन दो लतों में पहली लत है हित की बात न सुनना और दूसरी लत है गुणी, नेक, सलाहकार और वन्दनीय व्यक्तियों को आदर न देना।"* परिग्रह की लालसा शान्ति की शत्रु है। इस संबंध में आपका मन्तव्य था– *"लालसा के पाश में बंधा मानव संग्रह की उधेड़–बुन में सब कुछ भूलकर आत्म–शांति खो बैठता है।"*

भगवान महावीर से गौतम गणधर ने प्रश्न किया– भगवन्! कौनसे दो कारण हैं जो उत्तम धर्म श्रवण में बाधक हैं? प्रभु ने समाधान किया– आरम्भ और परिग्रह। आपने परिग्रह एवं आरम्भ में संबंध स्थापित करते हुए कहा– *"परिग्रह आरम्भ को छोड़कर नहीं रहता और आरम्भ से ही परिग्रह बढ़ता है। आरम्भ और परिग्रह की मित्रता है, दोनों का आर्थिक गठजोड़ है। दोनों ऐसे भयंकर रोग हैं जो हमारी चेतना शक्ति को विकास का मौका नहीं देते।"* इसलिए आपने सदैव आरम्भ और परिग्रह को कम करने एवं त्यागने की शिक्षा दी।

इच्छा का परिमाण सुख एवं शान्ति के लिए आवश्यक है। ऐसा मन्तव्य आपके इस कथन से स्पष्ट है– *"इच्छा का परिमाण नहीं किया जाएगा और कामना बढ़ती रहेगी तो प्राणातिपात और झूठ बढ़ेगा, अदत्तग्रहण में भी वृद्धि होगी। कुशील को बढ़ाने में भी परिग्रह कारणभूत होगा। इस प्रकार असीमित इच्छा सभी पापों और*

अनेक अनर्थों की मूल है।"

धनपतियों से आपने धन के अधीन न होकर उसको अपने अधीन करने का परामर्श देते हुए कहा– *"यदि धन तुम पर सवार हो गया तो वह तुमको नीचे डुबो देगा।"* धन का सदुपयोग करने की प्रेरणा आपके प्रवचनों में अभिव्यक्त होती रहती थी, यथा– *"चतुर कृषक जल को नाली में न डालकर बाड़ी में बहाता है। इसी प्रकार 18 पापों से संचित द्रव्य को आरम्भ–परिग्रह की नाली में न बहाकर ज्ञान–दान, अभयदान, शासन–सेवा, स्वधर्मि–सहाय, उपकरण दान आदि में लगाने से उसका सदुपयोग हो सकता है।"*

आपका संदेश था– "निर्व्यसनी हो, प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो।" भय एवं अनिष्ट की आशंका के कारण आप जीवन में प्रामाणिकता को टालना उचित नहीं मानते थे। प्रामाणिक जीवन को आपने वास्तविक विकास का आधार मानते हुए संदेश दिया– *"प्रामाणिकता के साथ व्यापार करने वाले कभी घाटा नहीं उठाते। घाटे के भय से अधर्म और अनीति करने वालों को मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि धर्म किसी भी स्थिति में हानिकारक नहीं होता। अतएव भय को त्याग कर, धर्म पर श्रद्धा रखकर प्रामाणिकता को अपनाओ। ऐसा करने से आत्मा कलुषित होने से बचेगी और प्रामाणिकता का सिक्का जम जाने पर अप्रामाणिक व्यापारियों की अपेक्षा व्यापार में भी अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकेगा।"*

वास्तव में धन की भूख मन में होती है, जो बिना संतोष के नहीं मिट पाती। आपने इस तथ्य को संक्षेप में इस प्रकार गुम्फित किया है– *"पेट की भूख तो पाव दो पाव आटे से मिट जाती है, मगर मन की भूख तीन लोक के राज्य से भी नहीं।"*

पेट की भूख शान्त करने से जुड़े आहार–विज्ञान के सम्बन्ध में भी साधकों को निर्देश देते हुए फरमाया– *"जो लोग आहार के संबंध में असंयमी होते हैं, उत्तेजक भोजन करते हैं। उनके चित्त में काम–भोग की अभिलाषा तीव्र रहती है। वास्तव में आहार– विहार के साथ ब्रह्मचर्य का घनिष्ठ संबंध है।"* मनोबल को पुष्ट करने के लिए आचार्यप्रवर ने व्रतों का महत्त्व निरूपित करते हुए फरमाया– *"मनुष्य के मन की निर्बलता जब उसे नीचे गिराने लगती है तब व्रत की शक्ति ही उसे बचाने में समर्थ होती है। व्रत अंगीकार नहीं करने वाला किसी भी समय गिर सकता है। उसका जीवन बिना पाल की तलाई जैसा है, किन्तु व्रती का जीवन उज्ज्वल एवं संयमित होता है।"*

व्यक्ति एवं समाज में सद्‌गुणों की प्रतिष्ठा हो, एतदर्थ आपका सकारात्मक चिन्तन सदैव श्रोताओं को प्रेरणा करता रहता था। आपका स्पष्ट मन्तव्य था– *"वेश–पूजा और नाम–पूजा के बदले गुण–पूजा ही समाज को श्रेय की ओर ले जा सकती है।"* गुण ग्रहण के भाव को व्यक्ति एवं समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए आपने सरल, किन्तु प्रेरक शब्दों में फरमाया– *"मनुष्य को मधुमक्खी की तरह बनना चाहिए न कि मल ग्रहण करने वाली मक्खी के समान।"* विरोधियों को जीतने के लिए न तो कषाय भाव बढ़ाने की आवश्यकता है और न ही भौतिक शस्त्रास्त्रों की। उनको जीतने के लिए तो शान्ति के शीतल वचन ही सक्षम होते हैं– *"जो विरोधाग्नि का मुकाबला शान्ति के शीतल जल से करते हैं, वे विरोधी को भी जीत लेते हैं।"*

देश के नैतिक बल की रक्षा एवं संवर्धन के लिए आप शस्त्रधारी सेना की नहीं, शास्त्रधारी सेना की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे– *"शस्त्रधारी सेना देश का धन बचा सकती है, पर शास्त्रधारी सेना जीवन बचाती है, क्योंकि हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार शस्त्रबल से नहीं, शास्त्र बल से छूटते हैं।"* आपका चिन्तन था कि सत्संगति एवं शिक्षा से मनुष्य अपने जीवन का यथोचित निर्माण कर सकता है– *"मनुष्य का जीवन मिट्टी के पिण्ड के समान है, उसको जैसा संग एवं शिक्षा मिले वह वैसे रूप में ढल सकता है।"* बालक–बालिकाओं के संस्कार हेतु माता–पिता के दायित्व का बोध आपने कितने सुन्दर एवं सार–गर्भित शब्दों में

कराया है– *''बालक रत्न भी बन सकता है और टोळ भी। माता-पिता को चाहिए कि अपना दायित्व समझकर बालकों के सुन्दर जीवन निर्माण की ओर लक्ष्य दें। अन्यथा हाथ से तीर छूट जाने पर इलाज मुश्किल है।''*

साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका रूप चतुर्विध संघ से ही धर्मरथ आगे बढ़ता है तथा सभी को अपने आध्यात्मिक उन्नयन एवं जीवन-निर्माण का अवसर मिलता है। साधु एवं साध्वी, श्रावक-श्राविका समुदाय के मार्गदर्शक होते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि श्रावक-श्राविकाओं का संघ के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं होता। आपने श्रावकों को कर्त्तव्य का बोध कराते हुए फरमाया– *''श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह साधु की संयम-साधना में सहायक बने। राग के वशीभूत होकर ऐसा कोई कार्य न करे, ऐसी कोई वस्तु देने का प्रयत्न न करे जिससे साधु का संयम खतरे में पड़ता हो।''* जिनशासन एवं धर्म के शुद्ध स्वरूप की रक्षा का दायित्व मात्र साधुओं का ही नहीं होता, श्रावकों का भी इस संबंध में उतना ही दायित्व बनता है– *''शासन एवं धर्म-रक्षण का कार्य केवल साधुओं का ही समझना भूल है। साधु की तरह श्रावक-संघ का भी उतना ही दायित्व है।''* श्रावकों को अहिंसा, निर्व्यसनता आदि के प्रचार हेतु तत्पर होकर काम करने की प्रेरणा आपने इस प्रकार की– *''सैकड़ों आदमी आपके सम्पर्क में आते हैं, यदि व्यवहार के साथ अहिंसा, निर्व्यसनता आदि का प्रचार करें तो अच्छा काम हो सकता है।''* स्वाध्याय, सामायिक एवं साधना के साथ आपने व्यसन-त्याग और ब्रह्मचर्य की साधना पर विशेष बल दिया।

संघ एवं समाज के अस्तित्व के लिए आप प्रेम एवं सौहार्द का वातावरण आवश्यक मानते थे। कलह एवं झगड़े को आप विनाश का हेतु मानते थे, जैसा कि आपके चिन्तन से स्पष्ट होता है– *''बांस भी लड़कर भस्म हो जाते हैं, मनुष्य को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।''* संघ के महत्त्व के संबंध में आपका चिन्तन था– *''मोक्षमार्ग के साधक को प्रमाद और कषाय आदि के कारण साधना से स्खलना या उपेक्षा करने पर योग्य प्रेरणा की आवश्यकता रहती है, जो संघ में मिल सकती है। संघ में आचार्य आदि के द्वारा सारणा, वारणा और धारणा का लाभ मिलता रहता है। संघ के आश्रित साधुओं की रोगादि की स्थिति में संभाल की जाती है, ज्ञानार्थियों के ज्ञान में सहयोग दिया जाता है, अशुद्धि का वारण किया जाता है और शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा को टालकर सम्यक् मार्ग की धारणा करायी जाती है। शिथिल श्रद्धा वालों को बोध देना और शिथिल विहारी को समय-समय पर प्रेरणा करना संघ का मुख्य कार्य है।''*

परिवार में सौहार्द का सूत्र देते हुए आपने फरमाया– *''एक का दिल-दिमाग बिगड़े, उस समय दूसरा संतुलित होकर मन को संभाल ले तब भी बिगड़ा हाल सुधर जाता है।''* सौहार्द के लिए विनय को भी आप उपयोगी मानते थे– *''घर-कुल और समाज की सुव्यवस्था और परस्पर के मधुर संबंध बनाये रखने का उपाय विनय है।''* निर्व्यसनता के संबंध में आपका कैसा तार्किक एवं प्रेरक कथन है– *''जिससे धनहानि हो एवं जीवन दुःखमय हो, वैसी कोई कुटेव (कुव्यसन) नहीं रखनी चाहिए।''* बाह्य ग्रहों से भयभीत लोगों के सद्बोध हेतु आपका यह कथन पर्याप्त है– *''भीतरी ग्रहों का शमन करने पर बाहर के ग्रहों का कोई भय नहीं रहता।''* भीतरी ग्रहों से तात्पर्य है– काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि काषायिक परिणतियाँ। जो इनका शमन कर विजय प्राप्त करने में सफल हो जाता है, उसे आकाश के बाह्य ग्रह-नक्षत्रों से न तो किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका होती है और न ही किसी प्रकार का भय। जैन धर्म की स्पष्ट मान्यता है– *'अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।'* अर्थात् आत्मा ही अपने सुख एवं दुःख का कर्त्ता तथा भोक्ता है। इसलिए लौकिक कामनाओं के लिए अन्य ग्रहों की पूजा करना आदि जैन मान्यता में कथमपि उचित नहीं है।

अध्यात्म के उच्च साधक को किसी प्रकार की लौकिक अभिलाषा पीड़ित नहीं करती है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति उनकी स्वतः होती रहती है। वे वस्तुओं के दास नहीं होते, अपितु वस्तुएँ उनकी दास

होती हैं। आचार्यप्रवर का कथन स्पष्ट रूप से संकेत करता है– *''यद्यपि शरीर चलाने के लिए साधक को कुछ भौतिक सामग्रियों की आवश्यकता होती है, किन्तु जहाँ साधारण मनुष्य का जीवन उनके हाथ बिका होता है, वहीं साधक की वे दास होती हैं।''*

समता के साधक, सामायिक के प्रेरक आचार्यप्रवर ने समता को जहाँ मोक्ष का साधन स्वीकार किया, वहाँ उसके विपरीत 'तामस' को नरक का द्वार बतलाते हुए फरमाया– *''समता मोक्ष का साधन है तो उसका उलटा तामस नरक का द्वार है।''*

मनुष्य प्रायः अपने अधिकारों और दूसरों के कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहता है, किन्तु इससे समाज का उतना भला नहीं होता जितना अपने कर्त्तव्य पालन के प्रति सजगता एवं दूसरों के प्रति सेवाभाव से समाज का भला होता है। इस संबंध में आपका कथन साधनाशील व्यक्ति के लिए कितना मार्गदर्शक है– *''मनुष्य को परदुःख दर्शन के समय नवनीत सा कोमल और कर्त्तव्य पालन में वज्रवत् कठोर रहना चाहिए।''*

गुरु का शिष्य के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि गुरु ही शिष्य के विकारों का चिकित्सक होता है। आचार्यप्रवर के शब्दों में– *''शिष्य के जीवन में गुरु ही सबसे बड़ा चिकित्सक है। जीवन की कोई भी आन्तरिक समस्या आती है तो उस समस्या को हल करने और मन के रोग का निवारण करने का काम गुरु करता है।''*

विद्वानों का धर्म एवं समाज को लाभ मिले, ऐसी आपकी भावना रही, इसी उद्देश्य से इन्दौर में 'श्री अखिल भारतीय जैन विद्वद् परिषद्' का गठन हुआ। आपने विद्वानों को भी धर्म–क्रिया से जुड़ने की प्रेरणा की। आपका मन्तव्य था– *''यदि एक विद्वान् सही अर्थ में धर्माराधन से जुड़ जाता है तो वह अनेक भाई–बहनों के लिए प्रेरणा का स्तम्भ बन जाता है।''* विद्वानों से आप कहते थे कि– *''विद्वान् तभी विद्वान् कहलाता है, जब वह क्रियावान भी हो– यस्तु क्रियावान्, पुरुषः स विद्वान्।''* आचार्यप्रवर का इस बात पर बल था कि विद्वान् केवल शास्त्र–पठन तक ही सीमित न रहें, वरन् ज्ञान का जो सार है– अहिंसा, प्रेम और सेवा–उसे भी अपने जीवन में उतारें तथा सिद्धान्तों पर दृढ़ रहें। छोटी–छोटी बातों पर उत्तेजित न हों, अपने ज्ञान का अहं न लायें, कठिन से कठिन विपरीत परिस्थितियों में भी वे ज्ञान की सरसता को न छोड़ें। विद्वानों के लिए आचार्यप्रवर का संदेश था कि वे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जैन तत्त्वज्ञान का मानव–कल्याण और विश्वशान्ति में उपयोग करें।

जैन समाज में सुयोग्य विद्वान् तैयार हों तथा पुरातन साहित्य का संरक्षण एवं अध्ययन हो, ऐसा दूरगामी चिन्तन भी आपने समाज को दिया। श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर एवं श्री जैन महावीर स्वाध्याय विद्यापीठ जलगांव इसी चिन्तन के सुपरिणाम हैं। आपका चिन्तन था कि पुरातन शास्त्र एवं साहित्य श्रावकों की असावधानी से नष्ट एवं काल कवलित न हो, अपितु संस्कृति एवं ज्ञान की रक्षा के लिए उनका ज्ञान भण्डार के माध्यम से सरंक्षण एवं संवर्धन हो। जयपुर स्थित 'आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार' आपके इस श्रुतरक्षाविषयक चिन्तन की सुपरिणति है। अध्येता, शोधकर्ता एवं सन्त–सती इससे सहज लाभान्वित हो सकते हैं। आपके शासनकाल में ज्ञानाराधना एवं साधना की दृष्टि से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, स्वाध्याय संघ, धार्मिक पाठशालाओं जैसी अनेक संस्थाएँ प्रारम्भ हुईं, किन्तु किसी भी संस्था के संचालन आदि में निस्पृह तथा साध्वाचार के निर्मल साधक ने न उनसे स्वयं को जोड़ा और न ही कहीं अपना नाम जुड़ने दिया।

शरीर के सुसंचालन हेतु प्रत्येक अंग का महत्त्व है। उसका कोई भी अंग छोटा–बड़ा नहीं होता। मस्तिष्क, पेट, पैर आदि सभी पूरक बनकर कार्य करते हैं तो शरीर स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है। इसी प्रकार विद्वान्, धनिक एवं कार्यकर्ताओं में परस्पर समन्वय हो तो संघ एवं समाज का संचालन स्वस्थ रीति से संभव है। समन्वय ही

समुन्नति का सेतु है।

नवीन धर्म–क्रियाओं में समय–समय पर हुए समावेश के संबंध में आपका स्पष्ट मन्तव्य था– ''*शास्त्र में उल्लेख नहीं होने पर भी जिस क्रिया में आत्मा के लिए कोई दोष का कारण न हो एवं कर्म–निर्जरा का लाभ होता हो, उसे सदा ही उपादेय मानना चाहिए।*''

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

स्थानकवासी परम्परा में सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी आपका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। आप सम्प्रदाय को एक व्यवस्था मानते थे, जो अपने नेश्रायवर्ती संत–सती समुदाय के ज्ञान–दर्शन–चारित्र के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु प्रचलित है। इस संबंध में आप सेना की बटालियनों का उदाहरण फरमाते थे कि जिस प्रकार सेना की अलग–अलग बटालियनों की अलग–अलग व्यवस्था होती है, परन्तु सबका कार्य देश की रक्षा का होता है, इसी प्रकार अलग–अलग सम्प्रदायें व्यवस्था मात्र हैं, सबका कार्य जिनशासन की रक्षा एवं गौरव की अभिवृद्धि करना है। स्वाध्यायियों को भी आप यही फरमाते कि आप सभी साधर्मियों को अपना भाई समझें। अन्य सम्प्रदायों के साथ पर का व्यवहार करना या उनके साथ कषाय भाव रखना, आपने कभी उचित नहीं समझा। आप तो ऐसे भक्तों को गुरु आम्नाय करने से स्पष्ट इन्कार कर देते थे, जिन्होंने पहले से किसी अन्य गुरु की आम्नाय स्वीकार कर रखी हो। आपका ध्येय तो व्यक्ति को आत्म–कल्याण एवं सर्व कल्याण से जोड़ना था। भक्तों या साधर्मियों के बीच भेद की दीवार खड़ी करना आपने कथमपि उचित नहीं समझा। इसलिए चरितनायक पूज्य गुरुदेव के पास सभी जैन एवं जैनेतर श्रद्धालु जन भी उपस्थित होकर अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिए कृत–संकल्प होते थे। स्थानकवासी संत ही नहीं मन्दिरमार्गी, वैष्णव, रामस्नेही आदि परम्पराओं के सन्तों ने भी आपके दर्शन एवं सान्निध्य का लाभ लेकर स्वयं को कृतकृत्य समझा।

अपनी उच्च कोटि की निर्मल संयम–साधना, विद्वत्ता, सूझबूझ, समन्वयशीलता, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव आदि अनेक गुणों के कारण आप महान् संतों एवं आचार्यों की भी श्रद्धा और सम्मान के आस्पद रहे। श्रमण संघ के आचार्य आगम महोदधि पूज्य श्री आत्माराम जी म.सा. ने अपने पत्रों में आपको 'पुरिसवरगन्धहत्थीणं' जैसे शब्दों से सम्मानित किया। आगम टीकाकार पूज्य श्री घासीलाल जी म.सा. ने आपको नवकोटि मारवाड़ का सरताज कहते हुए अष्टक की रचना कर गुणानुवाद किया। पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने आपसे वय में अतीव ज्येष्ठ होने पर भी पूरा बहुमान प्रदान करते हुए जेठाना ग्राम से विहार के समय चरितनायक से मांगलिक श्रवण किया। श्रमण सम्मेलनों में भी आपने चरितनायक की सूझबूझ एवं विद्वत्ता की सराहना की। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म.सा. पूज्य चरितनायक को भूधर वंश का रत्न मानते थे। आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म.सा. का आप पर अपने आप से भी अधिक विश्वास था। पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म.सा. नवीन उपक्रम करने के पहले आपका मन्तव्य अवश्य लेते, इसमें आत्मीयभाव के साथ आपकी दूरदर्शिता और सूझबूझ पर भी उन्हें अटल विश्वास था। बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमल जी म.सा. भी आपके निर्मल जीवन और संयम में तत्परता के प्रति आदर भाव रखते थे।

सभी आचार्यों एवं सन्त वरेण्यों के साथ मधुर संबंध एवं उपयोगी विचार–विमर्श आपकी समन्वयशीलता, सरलता एवं सन्त–दृष्टि के परिचायक थे। सन् 1933 में अजमेर बृहद् साधु सम्मेलन, सन् 1952 में सादड़ी सम्मेलन, सन् 1953 में मंत्री–मुनिवरों के सम्मेलन एवं सन् 1956 में भीनासर सम्मेलन में आपकी प्रभावकारी रचनात्मक भूमिका ने अनेक सन्तप्रमुखों को प्रभावित किया। आप जब श्रमणसंघ में रहे, तब भी आपने पूर्ण निष्ठा, समर्पण, ईमानदारी एवं सूझबूझ के साथ शासनसेवा के हित में कार्य किया। आप श्रमणसंघ को साध्वाचार के निर्मल पालन की ऊँचाई पर देखना चाहते थे। आप इतने सजग थे कि अजमेर

सम्मेलन के अन्तिम दिन कांफ्रेंस के अधिवेशन में मंच पर नहीं पधारकर निर्दोष बच गये। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के शब्दों में– *"आप सबसे चतुर निकले।"* यही सजगता एवं चतुराई जीवन पर्यन्त निर्दोष संयम–साधना का विशिष्ट अंग बनी रही। आपका मन्तव्य था कि श्रमण संघ का सबसे बड़ा बल, सबसे महत्त्वपूर्ण धन अथवा जीवन का सर्वस्व आचार बल है। ज्ञान के साथ क्रिया का आराधन करना ही उसकी सबसे बड़ी निधि है।

संवत् 2010 में जोधपुर का संयुक्त चातुर्मास इतिहास की एक मिसाल है, जिसमें उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा., प्रधानमंत्री श्री आनन्दऋषि जी म.सा., व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म.सा., कवि श्री अमरचन्द जी म.सा., पं. रत्न श्री समर्थमल जी म.सा., स्वामी जी श्री पूरणमल जी म.सा. आदि सन्तों से चरितनायक को बहुमान एवं प्रेम मिला। चातुर्मास का वह दृश्य अपूर्व एवं अद्वितीय था। इसके पूर्व संवत् 1990 में उपाध्याय श्री आत्माराम जी म.सा., व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म.सा. आदि प्रमुख सन्त–प्रमुखों के साथ जोधपुर में ही सम्पन्न आपका संयुक्त चातुर्मास पारस्परिक मधुर–संबंधों के साथ आपके प्रति आदर भावना की अभिवृद्धि का भी हेतु बना। विचरण–विहार में सैंकड़ों संत–सतियों से मधुर–मिलन के प्रसंग जीवनी–खण्ड में पदे पदे वर्णित हैं। मूर्तिपूजक आचार्य श्री पद्मसागर जी म.सा. ने आपका अनेक बार सान्निध्य लाभ लेकर प्रमोद का अनुभव किया।

श्रावकों की श्रद्धा ग्राम, नगर, जाति, देश, सम्प्रदाय आदि की सीमाओं में बंधी हुई नहीं थी। युगमनीषी सन्त के चरणों में पहुँचने वाले श्रद्धालु भक्तों को शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता था। कई बार उन्हें चमत्कारों का भी अनुभव हुआ। अपने जीवन में बदलाव के चमत्कार हों या घटनाओं के चमत्कार– सबमें उन्होंने पूज्य गुरुदेव के प्रति श्रद्धा को ही प्रमुख कारण समझा। प्रेतात्माओं से पीड़ितों, रोग–ग्रस्तों एवं विभिन्न प्रकार की समस्याओं से आक्रान्त श्रद्धालुओं के द्वारा अनुभूत चमत्कार इसके साक्षी रहे। आचार्यप्रवर में साधना का अनूठा बल था, किन्तु वे कोई चमत्कार दिखाने में विश्वास नहीं रखते थे। पूज्य आचार्यदेव का इस संबंध में कथन था कि श्रावक जिसे चमत्कार की संज्ञा देते हैं, वह मात्र श्रद्धा का परिणाम है। जो कुछ होता है वह सामने वाले के पुरुषार्थ एवं प्रारब्ध से होता है। श्रावकों के साथ आपका केवल साधना एवं आध्यात्मिक उन्नयन का संबंध था। बाह्य संयोगों की चर्चा से आप सदा विलग रहते थे।

आपके सान्निध्य–लाभ को प्राप्त प्रत्येक श्रद्धालु यही समझता कि गुरुदेव की उसके ऊपर विशेष कृपा है, आपका यह वैशिष्ट्य था कि आप बिना भेदभाव के सबके जीवन को ऊँचा उठाने की प्रेरणा आत्मीयता के साथ करते थे। आपके अन्तस्तल में प्रवाहित 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' एवं 'सत्त्वेषु मैत्री' के भावों के कारण सबको यह प्रतीत होता था कि गुरुदेव उसके अपने हैं एवं उनकी उस पर विशेष कृपा है।

विराट् व्यक्तित्व के धनी पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. की अब स्मृतियाँ ही शेष हैं, चर्म चक्षुओं से अब उनके प्रशान्त व्यक्तित्व के दर्शन सम्भव नहीं, किन्तु उनके जीवन के प्रसंग, उपदेश, संदेश एवं विचार आज भी अमूल्य निधि हैं, जो हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। उनका जप, तप, संयम, ध्यान व स्वाध्याय आज भी साधकों के लिए मार्गदर्शक है। आपकी तेजस्विता, अप्रमत्तता, एकाग्रता, सजगता, निस्पृहता, समता, श्रमशीलता, प्रशान्तता, सुमनस्कता, सरलता, निरभिमानता, करुणार्द्रता, अध्यात्मयोगिता आदि अनेक गुणों में से हम कोई भी गुण ग्रहण करें, तो हमारा जीवन पतित से पावन होकर आत्म–कल्याण की ओर अग्रसर हो सकता है।

प्रशान्तात्मा महायोगी, युगद्रष्टा तपोधनी।
विजयतां गुरुर्हस्ती, श्रुताचारप्रदीपकः॥ ■

मेरे अन्तर भया प्रकाश

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश।।टेर।।

काल अनन्त रुला भव वन में, बंधा मोह के पाश।
काम, क्रोध, मद, लोभ भाव से, बना जगत का दास।।१।।

तन धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश।
पुद्गल को अपना कर मैंने, किया स्वत्व का नाश।।२।।

रोग शोक नहीं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास।
सदा शांतिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास।।३।।

इस जग की ममता ने मुझको, डाला गर्भावास।
अस्थि मांस मय अशुचि देह में, मेरा हुआ निवास।।४।।

ममता से संताप उठाया, आज हुआ विश्वास।
भेद ज्ञान की पैनी धार से, काट दिया वह पाश।।५।।

मोह मिथ्यात्व की गांठ गले जब, होवे ज्ञान-प्रकाश।
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आश।।६।।

आचार्य श्री हस्ती

अध्यात्मयोगी युगमनीषी आचार्य
श्री हस्तीमल जी महाराज : जीवन रेखा

उपनाम	– श्री गजेन्द्राचार्य, श्री गजमुनि जी म.सा.
जन्मतिथि	– विक्रम सं. 1967, पौष शुक्ला चतुर्दशी, 13 जनवरी 1911
जन्मस्थान	– पीपाड़ सिटी, जिला– जोधपुर (राज.)
पिताजी	– सुश्रावक श्री केवलचन्द जी बोहरा 'ओसवंश'
माताजी	– सुश्राविका श्रीमती रूपकंवर (रूपादेवी) जी
दादाजी	– सुश्रावक श्री दानमल जी बोहरा
दादीजी	– सुश्राविका निवज्जाबाई (नौज्यांबाई)
नानाजी	– सुश्रावक श्री गिरधारीलाल जी मुणोत
नानीजी	– सुश्राविका श्रीमती चन्द्राबाई मुणोत
दीक्षा-तिथि	– वि.सं.1977, माघ शुक्ला द्वितीय द्वितीय गुरुवार, 10 फरवरी 1921
दीक्षा-स्थान	– अजमेर (राज.)
दीक्षा के समय वय	– दस वर्ष 18 दिन
संस्कार-प्रदात्री गुरुणी	– महासती श्री धनकंवर जी म.सा.
संस्कार-प्रदाता गुरु	– स्वामी श्री हरखचन्द जी म.सा.
दीक्षा-प्रदाता गुरु	– आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री शोभाचन्द्र जी म.सा.
अध्यापन	– पण्डित दुःखमोचन जी 'झा'
अध्ययन विषय	– जैन आगम, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा जैन–जैनेतर दर्शन–शास्त्र
संघ नायक के रूप में चयन	– साढ़े पन्द्रह वर्ष
आचार्यपद आरोहण	– वि.सं.1987, वैशाख शुक्ला तृतीया गुरुवार को जोधपुर के सिंहपोल में। (वय 19 वर्ष 3 माह 19 दिन)
विचरण-क्षेत्र	– राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, दिल्ली, हरियाणा आदि।
मौलिक विशेषताएँ	– आध्यात्मिक आनन्द में रमण करने वाले अद्भुत अध्यात्म–योगी।

असीम आत्म–शक्ति के धारी। जागरण से शयन पर्यन्त अप्रमत्त साधक। निष्ठावान जिनशासन सेवी। ध्यान–मौन जप के विशिष्ट साधक। आगम–मर्मज्ञ एवं व्याख्याकार। जैन इतिहास के अन्वेषक एवं प्रस्तोता। कुशल पारखी। वचन के धनी। काव्यकार। तेजस्वी मुखमुद्रा। दूरदर्शी। गंभीर चिन्तक एवं संस्कृति–रक्षक। प्राणिमात्र के प्रति करुणाशील। विनयवान। 'सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं' की भावना से संपूरित। ज्ञान– क्रिया के अद्भुत संगम। नयनाभिराम व्यक्तित्व के धनी। प्राचीन भाषा एवं लिपि के विशेषज्ञ।

प्रमुख प्रेरणाएँ – सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रमुख प्रेरक। व्यसन–मुक्त एवं प्रामाणिक समाज रचना के सम्प्रेरक

कृतित्व – **आगम साहित्य–** दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, अन्तगडदसासूत्र आदि आगमों एवं इनकी वृत्तियों का सम्पादन, अनुवाद आदि। उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र का विवेचन एवं हिन्दी पद्यानुवाद।

इतिहास– जैन धर्म का मौलिक इतिहास के चार भाग, जैनाचार्य चरितावली, पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर।

प्रवचन– गजेन्द्र मुक्तावली के 2 भाग, गजेन्द्र व्याख्यानमाला के 7 भाग, आध्यात्मिक आलोक, आध्यात्मिक साधना, प्रार्थना–प्रवचन आदि ग्रन्थ।

काव्य–कथा आदि– गजेन्द्र–पद–मुक्तावली, पर्युषण पर्व पदावली, स्वाध्याय माला(प्रथम भाग), अमरता का पुजारी, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी, जैन स्वाध्याय सुभाषित माला, श्रीनवपद आराधना, कुलक संग्रह आदि।

कुल चातुर्मास – 70

कुल दीक्षाएँ – 85 (31 संत एवं 54 महासती)

संलेखना-संथारा एवं स्वर्गवास – प्रथम वैशाख कृष्णा दशमी 9.4.1991 से प्रथम वैशाख कृष्णा द्वादशी 11.4.1991 तक तेले की तपस्या।

12.4.91 को संथारा स्वीकार। प्रथम वैशाख शुक्ला अष्टमी संवत् 2048 दिनांक 21 अप्रेल 1991 को रात्रि 8 बजकर 21 मिनट पर चौविहार त्याग एवं 13 दिवसीय तप संथारे के साथ महाप्रयाण।

विषयानुक्रमणिका

सम्पादकीय ix

आमुख xvii

प्रथम खण्ड : जीवनी खण्ड

१. **तेणं कालेणं तेणं समएणं (रत्नवंशीय आचार्य परम्परा)** १

२. **जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे पीपाड़ नगरे** १३

पुण्यधरा : पीपाड़ १३, बोहरा कुल १४, दो असह्य आघात १४, केवलचन्दजी पर दायित्व १६, बोहरा परिवार पर पुनः अनभ्र वज्रपात १६, महान् विभूति का जन्म १८, कुल का एकमात्र चिराग १९, विरक्ता माता रूपादेवी २०, पौशाल की शिक्षा २१, बाल-लीलाएँ २१, परिवार के प्रति दायित्व बोध २३, सन्त-सती का प्रथम सुयोग २३, ननिहाल पर कहर २४, सत्य का बोध २४, दादी भी दिवंगत २५, सन्त-सतियों का पुनः सुयोग २६, माता की भावाभिव्यक्ति २७, पुत्र भी विरक्ति का पथिक २७, शिक्षागुरु का प्रभाव २९, शोभा गुरु की सेवा में ३०, अजमेर में अध्ययन-व्यवस्था ३०

३. **प्रव्रज्या-पथ के पथिक** ३२

४. **शोभा गुरु के सान्निध्य में मुनि-जीवन (वि. संवत् १९७७-१९८३)** ३८

सन्त -जीवन का अभ्यास और अध्ययन की निरन्तरता ३८, प्रथम पद विहार : मेड़ता की ओर ४०, बीकानेर के धोरों का अनुभव ४१, भोपालगढ़ की ओर ४२, जोधपुर के पाँच वर्षावासों (संवत् १९७९-८३) में योग्यता वर्धन ४२, संघनायक के रूप में चयन ४४, आचार्य श्री शोभागुरु का स्वर्गारोहण ४५

५. **आचार्य पद-ग्रहण के पूर्व अन्तरिम -काल** ४७

पीपाड़ चातुर्मास (संवत् १९८४) ४७, श्री सागरमुनि जी म.सा.का अद्वितीय संथारा ४८, किशनगढ़ चातुर्मास (संवत् १९८५) ५०, भोपालगढ़ चातुर्मास (संवत् १९८६) ५०

६. **आचार्य पद पर आरोहण** ५२

आचार्य पद के दायित्व का बोध ५५, साध्वी माँ से संवाद ५६, रत्नवंश के आचार्यों की विशेषता ५७, रत्नवंश सम्प्रदाय ५८

७. **संघनायक के विहार और चातुर्मास** ५९

८. **संघनायक का प्रथम चातुर्मास जयपुर में (विक्रम संवत् १९८७)** ६२

आचार्य श्री हाड़ौती की ओर ६३

९. **आचार्य श्री मालव प्रदेश में (विक्रम संवत् १९८८-१९८९)** ६५

रामपुरा चातुर्मास (संवत् १९८८) ६६, रतलाम चातुर्मास (संवत् १९८९) ७०

१०. **अजमेर साधु-सम्मेलन में भूमिका (संवत् १९९०)** ७१

११. **मारवाड़ एवं मेवाड़ में विचरण (संवत् १९९०-१९९४)** ७५

जोधपुर चातुर्मास : उपाध्याय श्री आत्मारामजी के साथ (संवत् १९९०) ७५, पीपाड़ चातुर्मास (संवत् १९९१) ७६, पाली चातुर्मास (संवत् १९९२) ७७, अजमेर चातुर्मास (संवत् १९९३) ७७, उदयपुर चातुर्मास (संवत् १९९४) ७८, सैलाना की ओर ७९, स्वामीजी भोजराजजी महाराज का स्वर्गारोहण ७९

१२. **महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की धरा पर (संवत् १९९५-१९९९)** ८१

अहमदनगर चातुर्मास (संवत् १९९५) ८१, सतारा चातुर्मास (संवत् १९९६) ८३, गुलेजगढ़ चातुर्मास (संवत् १९९७) ८६, महासती रूपकंवर अस्वस्थ ८६, कर्नाटक में प्लेग का आतंक ८६, अहमदनगर चातुर्मास (संवत् १९९८) ८८, लासलगाँव चातुर्मास (संवत् १९९९) ८९, महासती रूपकंवर जी का स्वर्गारोहण ८९

१३. उज्जैन होते हुए राजपूताना में (संवत् २०००-२००८) ९०

जवाहराचार्य का देहावसान ९१, उज्जैन चातुर्मास (संवत् २०००) ९१, जयपुर चातुर्मास (संवत् २००१) ९२, जोधपुर चातुर्मास (संवत् २००२) ९३, भोपालगढ़ चातुर्मास (संवत् २००३) ९४, अजमेर चातुर्मास (संवत् २००४) ९५, ब्यावर चातुर्मास (संवत् २००५) ९६, पाली चातुर्मास (संवत् २००६) ९७, पीपाड़ चातुर्मास (संवत् २००७) १००, मेड़ता चातुर्मास (संवत् २००८) १००

१४. सादड़ी सम्मेलन, सोजत सम्मेलन, भीनासर सम्मेलन एवं संवत् २००९ से २०१४ तक के चातुर्मास १०२

जोधपुर में आगमन १०३, नागौर चातुर्मास (संवत् २००९) १०४, सोजत सम्मेलन (संवत् २०१०) १०५, जोधपुर का संयुक्त ऐतिहासिक चातुर्मास (संवत् २०१०) १०६, स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. का स्वर्गारोहण १०६, जयपुर चातुर्मास (संवत् २०११) १०७, मुख्यमंत्री द्वारा प्रवचन श्रवण १०८, डिग्गी, मालपुरा होकर किशनगढ १०८, अजमेर चातुर्मास (संवत् २०१२) १०८, भीनासर सम्मेलन (संवत् २०१३) १०९, बीकानेर चातुर्मास (संवत् २०१३) ११०, किशनगढ चातुर्मास (संवत् २०१४) १११

१५. दिल्ली से सैलाना तक (संवत् २०१५ से २०१९) ११३

दिल्ली में चातुर्मास (संवत् २०१५) ११३, जयपुर चातुर्मास (संवत् २०१६) ११४, अमरचन्द जी म. का स्वर्गवास ११७, अजमेर चातुर्मास (संवत् २०१७) ११७, पीपाड़, भोपालगढ़ होकर जोधपुर की ओर ११८, स्वाध्याय एवं सामायिक की प्रवृत्ति को बढ़ावा ११९, बालोतरा की ओर १२१, पाली पदार्पण १२४, जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०१८) १२४, भोपालगढ़, नागौर होकर अजमेर १२६, आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का स्वर्गवास १२७, किशनगढ होकर विजयनगर १२८, भीलवाड़ा, चित्तौड़ होकर उदयपुर १३०, उदयपुर में पूज्य गणेशीलाल जी म. से मिलन १३१, भगवान की आज्ञा में चलने वाले का कल्याण १३१, बड़ी सादड़ी १३२, मालव प्रदेश की ओर १३२, सैलाना चातुर्मास (संवत् २०१९) १३४

१६. मालवा से पुन: राजस्थान की धरा पर (संवत् २०१९ शेषकाल से संवत् २०२२) १३६

सैलाना से भोपाल होकर कोटा १३६, बूंदी केकड़ी होकर अजमेर १३९, जोधपुर की ओर १४०, मुमुक्षुद्वय की दीक्षा १४२, पीपाड़ चातुर्मास (संवत् २०२०) १४३, मुमुक्षु हीरालाल जी की दीक्षा १४५, पीपाड़ से जोधपुर होकर जयपुर १४५, शिखर सम्मेलन (अजमेर) १४६, भोपालगढ़ चातुर्मास (संवत् २०२१) १४७, जोधपुर एवं पाली की ओर १४९, बालोतरा चातुर्मास (संवत् २०२२) १५०

१७. गुजरात की भूमि पर (संवत् २०२३) १५३

अहमदाबाद चातुर्मास (संवत् २०२३) १५५

१८. जयपुर, पाली, नागौर एवं मेड़ता के चातुर्मास (संवत् २०२४-२०२७) १५७

उदयपुर की ओर १५७, नाथद्वारा, भीलवाड़ा, अजमेर होकर जयपुर १५७, जयपुर चातुर्मास (संवत् २०२४) १५९, श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा १५९, सवाईमाधोपुर की ओर १६०, विजयनगर होकर अजमेर १६१, पाली चातुर्मास (संवत् २०२५) १६१, राणावास, पीपाड़, भोपालगढ़ होकर जोधपुर १६२, नागौर चातुर्मास (संवत् २०२६) १६३, शीलव्रत के पालन पर बल १६३, अजमेर होकर जयपुर १६४, स्वाध्याय शिक्षण शिविर १६४, मेड़ता चातुर्मास (संवत् २०२७) १६५

१९. शोभागुरु की दीक्षा-शताब्दी एवं स्वयं की दीक्षा-अर्द्धशती अजमेर में १६६

२०. जोधपुर, कोसाणा और जयपुर चातुर्मास (संवत् २०२८ से २०३०) १७०

जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०२८) १७०, कोसाणा चातुर्मास (संवत् २०२९) १७४, जयपुर चातुर्मास (संवत् २०३०) १७६

२१. सवाईमाधोपुर, ब्यावर, बालोतरा एवं अजमेर चातुर्मास (संवत् २०३१ से २०३४) १७८

भरतपुर होकर आगरा : पल्लीवाल समाज में धर्म जागरण १७८, सवाईमाधोपुर में पोरवाल समाज की जागृति १७९, सवाईमाधोपुर चातुर्मास (संवत् २०३१) १८०, जयपुर में तप-महोत्सव १८२, जोधपुर में दीक्षा प्रसंग १८३, ब्यावर चातुर्मास (संवत् २०३२) १८४, बाड़मेर की ओर १८५, माणकमुनिजी का संथारा १८५, भोपालगढ में दीक्षाएँ १८६, बालोतरा चातुर्मास (संवत् २०३३) १८७, अजमेर चातुर्मास (संवत् २०३४) १८९, भोपालगढ में आचार्य श्री नानालालजी म. से मिलन १८९, पालासनी में दीक्षा १९०, विजयनगर, गुलाबपुरा होकर भीलवाड़ा १९२, चित्तौड़ स्पर्शन १९३

२२. मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश एवं कर्नाटक में धर्मोद्योत (संवत् २०३५ से २०३९) — १९४

राजस्थान से मालव भूमि की ओर १९४, मन्दसौर में दीक्षा प्रसंग १९५, सैलाना में समरसता का संचार कर रतलाम पदार्पण १९६, इन्दौर चातुर्मास (संवत् २०३५) १९७, उज्जैन में धर्मजागरण १९९, धुलिया की ओर २००, लासलगाँव होकर खानदेश में प्रवेश २०२, जलगांव चातुर्मास (संवत् २०३६) २०५, महाराष्ट्र भ्रमण २०८, कर्नाटक में प्रवेश २११, पूज्यपाद का पदार्पण आन्ध्र की धरती पर २१४, पुनः कर्नाटक में २१५, मद्रास चातुर्मास (संवत् २०३७) २१८, बैंगलोर की ओर २२१, आन्ध्र की सीमा में प्रवेश कर पुनः कर्नाटक की धरा पर २२४, भागवती दीक्षा का आयोजन २२५, रायचूर चातुर्मास (संवत् २०३८) २२६, हैदराबाद की ओर २२८, आन्ध्र से महाराष्ट्र की सीमा में २२८, जलगांव चातुर्मास (संवत् २०३९) २३१, इन्दौर की ओर २३२, उज्जैन होकर राजस्थान की ओर २३४

२३. राजस्थान की धरा पर पुनः प्रवेश (संवत् २०४० से २०४२) — २३५

आवर होकर कोटा सवाईमाधोपुर २३५, टोंक, निवाई होकर जयपुर २३८, जयपुर चातुर्मास (संवत् २०४०) २३९, मुमुक्षु प्रमोद कुमार जी की दीक्षा २४१, अजमेर की ओर २४२, मेड़ता होकर मारवाड़ भूमि में २४३, दीक्षा प्रसङ्ग २४४, पीपाड़ सिटी में अक्षयतृतीया २४४, , भोपालगढ में कुशलचन्दजी म. का द्विशताब्दी पुण्यतिथि समारोह २४५, जोधपुर की ओर २४६, जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०४१) २४७, हीरक जयन्ती एवं ६५ वीं दीक्षा जयन्ती २५२, पाँच मुमुक्षुओं की दीक्षा २५३, बालोतरा होकर पाली २५३, भोपालगढ चातुर्मास (संवत् २०४२) २५५

२४. अन्तिम पाँच चातुर्मास (संवत् २०४३ से २०४७) — २५८

मेड़ता, अजमेर , ब्यावर, पाली होकर जोधपुर २५८, पीपाड़ चातुर्मास (संवत् २०४३) २५९, जोधपुर पदार्पण २६१, दो दीक्षाएँ २६२, अजमेर चातुर्मास (संवत् २०४४) २६४, किशनगढ में पार्श्वनाथ जयन्ती २६६, जयपुर प्रवास २६७, आचार्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. की १४३ वीं पुण्यतिथि २६८, सवाई माधोपुर की ओर २६८, सवाईमाधोपुर चातुर्मास (संवत् २०४५) २६९, अलीगढ - रामपुरा , देई होकर कोटा २७०, कोटा में जयन्ती का अद्भुत रूप २७१, तीन महापुरुषों का स्मरण २७२, बूँदी, देवली, दूनी होकर टोंक २७२, मदनगंज में अक्षय तृतीया एवं भागवती दीक्षा २७४, कोसाणा चातुर्मास (संवत् २०४६) २७५, पीपाड़ पदार्पण २७७, जोधपुर पदार्पण २७९, अन्तिम चातुर्मास पाली में (संवत् २०४७) २८२, ८१ वाँ जन्म-दिवस २८३

२५. अध्यात्मयोगी : महाप्रयाण की ओर — २८५

जोधपुर संघ की स्थिरवास हेतु विनति २८५, पाली से पदार्पण २८५, सोजत सिटी में फाल्गुनी पूर्णिमा २८६, अब मुझे जीवन का ज्यादा समय नहीं लगता २८७, मुझे निमाज पहुँचना है २८९, मुझे मेरा समय सामने दिख रहा है २८९, निमाज में पदार्पण : निमाजवासी पुलकित २९०, साधना के शिखर की ओर २९१, तेले की तपस्या २९६, संथारा - समारोहण २९७, उमड़ पड़ा श्रावक-समुदाय ३०१, अखण्ड जाप ३०२, मुसलमान भाइयों की अनूठी श्रद्धा-भक्ति ३०३, निमाज बना तीर्थधाम ३०४, सन्त-सन्निधि ३०५, आत्मरमण में लीन योगी ३०५, चौविहार-त्याग ३०७, विनश्वर देह का त्याग ३०७, महाप्रयाण की अंतिम यात्रा ३०८

द्वितीय खण्ड : दर्शन खण्ड

१. **अमृत वाक्** ३१५

२. **हस्ती उवाच** ३५४

अनेकान्तवाद/स्याद्वाद ३५४, अनर्थदण्ड ३५५, अशुभ, शुभ और शुद्ध ३५५, अहंकार ३५५, अहिंसा/हिंसा ३५६, अहिंसा व्रत ३५७, आचरण/चारित्र ३५८, आजीविका ३५९, आत्म गुणों की उपेक्षा ३६०, आत्मशक्ति ३६०, आत्म स्वरूप ३६१, आदर्श एवं यथार्थ ३६१, आरम्भ-परिग्रह ३६१, आसक्ति-अनासक्ति ३६२, आहार-शुद्धि ३६२

ईश्वर/सृष्टि ३६३, उपवास ३६४, एकता ३६५

कर्मवाद ३६५, कषाय ३६६, कार्यकर्त्ता ३६७, कार्य-कारण (उपादान-निमित्त) ३६८, काल का सदुपयोग ३७०, क्रोध निग्रह ३७०, गर्भपात ३७१, गुणदृष्टि ३७१, गुरु ३७१

चोरी ३७२, जल-रक्षण ३७३, जिनवाणी ३७३, जीवन की दौड़ ३७३, जीवन-निर्माण ३७४, जैन धर्म ३७४, ज्ञान/अज्ञान ३७५, ज्ञान एवं वैराग्य ३८३, ज्ञान-पिपासा ३८३, ज्ञान पंचमी ३८४

तप ३८४, तप के भेद ३८६, तप में प्रदर्शन ३८७, तृष्णा ३८७, त्याग ३८८, त्याग-तप ३८८, दहेज -प्रथा ३९०, दया ३९१, दान ३९१, दीक्षा ३९३, दुःख-मुक्ति ३९४, दृढ-संकल्प ३९४, द्रव्य और पर्याय का अध्यात्म ३९४, धन और धर्म ३९६, धर्म ३९७, धर्मनायक ३९८, धर्मप्रचारक ३९८, धर्मप्रेरणा ३९८, धर्म में बाधकता ३९९, धर्म रुचि ३९९, धर्म साधना ४००, धर्म सेना ४०३, धर्मस्थान में अनुशासन ४०३, ध्यान/योग साधना ४०४, नारी ४०५, , नारी शिक्षा ४०६

परमात्मा ४०६, परिग्रह ४०६, परिग्रह-परिमाण ४१०, परिवार ४१२, पर्युषण ४१३, पुरुषार्थ ४१५, पौषध ४१६, प्रचार-प्रसार ४१७, प्रतिक्रमण ४१८, प्रदर्शन ४१९, प्रमाद ४२१, प्राणि-रक्षा ४२२, प्रामाणिकता ४२२, प्रायश्चित्त ४२३, प्रार्थना/स्तुति ४२३, फैशन ४२७, बदलाव ४२७, ब्रह्मचर्य ४२८, भक्ति ४३०, भगवान महावीर ४३०, मनोनियन्त्रण ४३१, ममत्व त्याग ४३२, माताएँ ४३२, मानव ४३२, मिथ्यात्व ४३३, मुमुक्षु ४३३, मोक्ष - मार्ग ४३३

युवक/युवक संघ ४३५, रक्षा-बंधन ४३५, राजनीति-अर्थनीति-धर्मनीति ४३५, लेखा-जोखा ४३६, वाणी का बल ४३६, वात्सल्य ४३७, विकथा ४३७, विद्वान् ४३७, विनय/विवेक ४३८, वीतरागता ४३८, व्यवहार और निश्चय ४३८, व्यसन ४४०, व्रत ४४०

शास्त्र-ज्ञान ४४३, शास्त्रधारी सेना ४४३, शास्त्र-रक्षा ४४३, शिक्षा ४४४, शुक्लपक्षी ४४५, शोषण नहीं पोषण ४४५, श्रमण जीवन/साधक जीवन ४४५, श्रावक कर्त्तव्य ४५०, षट्कर्म ४५१, संघ ४५१, संयम ४५३, संत-सेवा/सत्संग ४५४, संस्कार ४५५, संस्कृति-रक्षण ४५७, समाज-एकता ४५८, समाज -सुधार ४५८, समाज-सेवा/सेवा ४६१, समाधि-मरण ४६३, सहिष्णुता/सर्वधर्म-सहिष्णुता ४६४, साधर्मि-सेवा ४६५, सामायिक ४६६, स्वाध्याय ४७४, स्वाध्याय का लक्ष्य ४८०, स्वाध्याय-संघ ४८१, स्वाध्यायी ४८१, हिंसा का विरोध ४८३

तृतीय खण्ड : व्यक्तित्व खण्ड

(I) संस्मरणों में झलकता व्यक्तित्व

१.	अध्यात्मयोगी युगशास्ता गुरुदेव	:	आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.	४८५
२.	गुणरत्नाकर महापुरुष	:	उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.	४९०
३.	ज्योतिर्धर आचार्य	:	उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा.	४९५
४.	दूसरा कोई उदाहरण नहीं	:	पं. रत्न श्री घेवरचन्दजी म.सा.	४९७

५.	साधना के शिखर पुरुष	महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्र मुनि जी म.सा.	४९८
६.	अध्यात्म आलोक पूज्य गुरुदेव	मधुर व्याख्यानी श्री गौतम मुनिजी म.सा.	५००
७.	पंचाचार के आदर्श आराधक	तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोद मुनि जी म.सा.	५०४
८.	आइच्चेसु अहियं पयासरा	शासनप्रभाविका श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.	५०८
९.	असीम उपकारक आचार्य श्री	पं. श्री जीवनमुनि जी म.सा.	५१०
१०.	असीम श्रद्धा के केन्द्र मेरे गुरु भगवन्त	श्री मोफतराज पी. मुणोत	५१२
११.	कृपालु करुणानिधान आचार्य श्री	श्री रतनलाल बाफना	५१५
१२.	प्रेम एवं करुणा के सागर गुरु महाराज	श्री नथमल हीरावत	५१७
१३.	कृपालु आत्मार्थी गुरुदेव	श्री इन्दरचन्द हीरावत	५१९
१४.	श्रद्धा के कल्पवृक्ष थे आचार्य श्री	न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा	५२१
१५.	चुम्बकीय शक्ति के धनी : पूज्य गुरुदेव	डॉ. सम्पतसिंह भाण्डावत	५२५
१६.	उनके साधनामय जीवन ने प्रभावित किया	प्रो. चाँदमल कर्णावट	५२७
१७.	कृपा सिन्धु गुरुदेव : मम कोटि प्रणाम	श्री ज्ञानेन्द्र बाफना	५३१
१८.	निरतिचार साध्वाचार के सजग प्रहरी	श्री प्रसन्नचन्द बाफना	५३७
१९.	प्रज्ञापुरुष को प्रणाम	डॉ. नरेन्द्र भानावत	५४०
२०.	उच्च कोटि के संयमनिष्ठ निर्भीक योगी	श्री टीकमचन्द हीरावत	५४६
२१.	अद्भुत योगी और महामनस्वी	श्री विमलचन्द डागा	५४८
२२.	उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष	श्री गुमानमल चोरड़िया	५५१
२३.	गुरु-समागम से जीवन में परिवर्तन	श्री ताराचन्द सिंघवी	५५३
२४.	आराध्य देव की स्मृति आज भी मेरे हृदय पटल पर अंकित है	श्री गणेशमल भण्डारी	५५६
२५.	महिमाशाली गुरु महाराज	श्री भंवरलाल बाफना	५५८
२६.	श्रद्धा क्यों न हो उन पर	श्री पारसमल चोरड़िया	५६३
२७.	नामैव ते वसतु शं हृदयेऽस्मदीये	प्रो. कल्याणमल लोढ़ा	५६६
२८.	फक्कड़ सन्त : महक अनन्त	श्री देवेन्द्र राज मेहता	५७१
२९.	संस्मरणों का वातायन	न्यायाधिपति श्री जसराज चौपड़ा	५७६
३०.	पंचाचार में अप्रमत्त एवं शास्त्रार्थ में बेजोड़	श्री कन्हैयालाल लोढ़ा	५८०
३१.	अप्रमत्त साधक की दिनचर्या	डॉ. धर्मचन्द जैन	५८४
३२.	मेरे जीवन-निर्माता	डॉ. मंजुला बम्ब	५८५
३३.	नमन	डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी	५८८
३४.	आलोकपुंज गुरुदेव	श्री आसूलाल संचेती	५८९
३५.	सच्चे निस्पृही एवं उदारहृदय आचार्यश्री	श्री सम्पतराज डोसी	५९३
३६.	आश्चर्यों का आश्चर्य	श्री कस्तूरचन्द सी. बाफणा	५९४
३७.	तत्त्वज्ञाता महान् योगी : आचार्य श्री	श्री ऋषभराज बाफणा	५९६
३८	कैसू भूलूँ ?	श्री जतनराज मेहता	५९८
३९.	आध्यात्मिक चुम्बकीय शक्ति के स्रोत	श्री भंवरलाल बोथरा	६०६
४०.	आचार्यश्री व नारी जागरण	श्रीमती सुशीला बोहरा	६०८
४१.	सामायिक के महान् प्रेरक—आचार्य श्री	श्री चुन्नीलाल ललवाणी	६१०

४२.	भविष्यद्रष्टा व वचन-सिद्धि के योगी	:	श्री पी. एम. चोरड़िया	६१२
४३.	दूरदर्शी थे आचार्य भगवन्त	:	श्री अनराज बोथरा	६१३
४४.	जिनके पावन दर्शन से पापों के पर्वत हिलते थे	:	श्री ब्रजमोहन जैन (मीणा)	६१५
४५.	अगणित वन्दन सद्गुरुराज को	:	श्री नेमीचन्द जैन	६२०
४६.	विशिष्ट ध्यान-साधक आचार्य हस्ती	:	श्री प्रकाश चन्द जैन	६२२
४७.	साधना के धनी	:	श्री प्रेमचन्द कोठारी	६२३
४८.	मेरे प्रेरणास्रोत आचार्य श्री	:	श्री रणजीत सिंह कूमट	६२५
४९.	अध्यात्मयोगी तपोमूर्ति	:	श्री जवाहरलाल बाघमार	६२६
५०.	स्वाध्याय-सेवा के प्रेरणास्रोत	:	श्री फूलचन्द मेहता	६२८
५१.	विश्व के देदीप्यमान सूर्य	:	श्री चंचलमल चोरड़िया	६३०
५२.	मेरे परम आराध्य	:	श्री अमरचन्द कांसवा	६३३
५३.	रत्न-चतुष्टय से सुशोभित युगप्रधान आचार्यश्री हस्ती	:	श्री जशकरण डागा	६३५
५४.	आत्मबल का चमत्कार	:	श्री सूरजमल मेहता	६३८
५५.	उच्च साधक एवं दयालु सन्त	:	श्री बस्तीमल चोरड़िया	६३९
५६.	व्यक्ति में छुपी प्रतिभा के ज्ञायक और उन्नायक	:	श्री नौरतन मेहता	६४०
५७.	सवाईमाधोपुर के क्षेत्र में कायाकल्प	:	श्री चांदमल बोथरा	६४२
५८.	पोरवाल क्षेत्र पर असीम कृपा	:	श्री रामदयाल जैन सर्राफ	६४३
५९.	स्वाध्यायी बनने की प्रेरणा	:	श्रीमती मोहनी देवी जैन	६४४
६०.	गुरुवर की महती अनुकम्पा	:	श्री पारसचन्द जैन	६४५
६१.	निस्पृह एवं निर्भय योगी	:	श्री ज्ञान मुनि	६४७
६२.	प्रभावक योगी	:	श्री एस. एस. जैन	६५०
६३.	संयम-साधना का सुमेरु	:	श्री मिट्ठालाल मुरड़िया	६५१
६४.	मेरे जीवन के कलाकार	:	श्री रामदयाल जैन	६५३
६५.	आचार्य श्री : एक मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शक	:	श्री लक्ष्मीचन्द जैन	६५५
६६.	दो महान् दिव्यात्माओं का अद्भुत मिलन	:	श्रीमती रूपकंवर मेहता	६५७
६७.	परम कृपालु गुरुदेव	:	श्री लालचन्द जैन	६५८
६८.	सर्प बचाने की आँखो देखी घटना	:	भंडारी श्री सरदारचन्द जैन	६६०
६९.	आचार्य श्री : जैसा मैंने देखा और पाया	:	श्री मोतीलाल सुराना	६६१
७०.	संयम और विवेक के आदर्श प्रतीक	:	श्री चन्दुलाल केशवलाल मेहता	६६३
७१.	तथागत आचार्य श्री	:	श्री चम्पालाल कर्णावट	६६६
७२.	जीवन - निर्माण के कुशल शिल्पी	:	श्री अशोक कुमार जैन	६६७
७३.	भक्तों पर प्रभाव : संकलन			६६८

मौन से क्रोध पर नियन्त्रण - श्री उगमराज भण्डारी ६६८

धूम्रपान छूटा - श्री कुन्दन सुराणा ६६८

माँस-मदिरा का त्याग - श्री तनसुखराज जैन ६६८

भविष्य द्रष्टा - श्री दुलीचन्द बोहरा ६६९

देवी बलिदान नहीं माँगती - श्री गिरधारी लाल जैन ६७०

बालक ठीक हुआ - श्री पारसमल सुरेश कुमार कोठारी ६७०

हकलाहट दूर हुई - श्री प्रकाश नागोरी ६७१
आराधना का प्रभाव - श्री भोपालचन्द पगारिया ६७१
व्रत-नियम की प्रेरणा - श्री किशनलाल कोठारी ६७१
भविष्यज्ञाता - श्री मोतीलाल गांधी ६७२
७५. प्रभावी व्यक्तित्व के कतिपय प्रेरक प्रसंग — संकलित ६७३
७६ ज्योतिर्विद्या की दृष्टि में आचार्य श्री — डॉ. भगवती लाल व्यास ६८८

(ii) काव्याञ्जलि में निलीन व्यक्तित्व

१. वन्दे गुरुं हस्तिनम् ६९५
२. बाल्येऽपि संयमरुचि — पं. मुनि श्री घेवरचन्दजी म.सा. ६९५
३. आचार्य श्री हस्तीमल्लगुणाष्टकम् — पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. ६९६
४. गजेन्द्र -गुणाष्टकम् — श्री वल्लभमुनिजी म.सा. ६९९
५. हा हन्त ! हस्तिगणिराज दिवं प्रयात : — पं. रत्न श्री घे वरचन्दजी ७०१
६. गुरु-गजेन्द्र-गणि-गुणाष्टकम् — श्री गजसिंह राठौड़ ७०३
७. वन्दे सुकीर्तिधवलीकृतभूमिभागम् — श्री अर्हद्दासमुनि ७०५
८. अतस्त्वां सततं वन्दे ७०६
९. श्री हस्तिमल्लः सुधी : — पं. जगन्नाथ ज्योतिषी ७०७
१०. खिद्यते मे हृदयम् - — श्री रमेशमुनिजी शास्त्री ७०७
११. हस्तिमल्लं नमाम्यहं — श्री ल.वा. माण्डवगणे ७०८
१२. जयस्तस्य भवेल्लोके — डॉ. धर्मचन्द जैन ७०८
१३. आचार्य श्री गजेन्द्र गुणगान — श्री हीरामुनिजी म.सा. ७१०
१४. गुणग्राम ७११
१५. वर्षगाँठ पर स्तुति — श्री पुष्करमुनि जी म.सा. ७११
१६. भव्य भावना — मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. ७११
१७. पूज्य पञ्चक — प्रवर्तक श्री रूपमुनि जी 'रजत' ७१२
१८. सवैया — श्री हीरामुनिजी म.सा. ७१३
१९. गुरु गुण महिमा — श्री हीरामुनि म.सा. ७१३
२०. वन्दे मुनिवरम् — श्री हीरामुनिजी म.सा. ७१४
२१. धर्मचक्र के धारी ७१५
२२. कहाँ चले गए गुरुवर प्यारे — श्री गौतम मुनि जी म.सा. ७१५
२३. गुरु की दिव्य साधना — श्री गौतम मुनि जी म.सा. ७१६
२४. दुनिया में नाम था — श्री गौतम मुनि जी म.सा. ७१७
२५. प्रतिदिन करो — श्री गौतम मुनि जी मसा. ७१७
२६. गुरु हस्ती ने अलख जगाया — श्री गौतम मुनि जी म.सा. ७१८
२७. तू भी गुरु सम बन जासी — श्री जीतमल चौपड़ा ७१९
२८. परम दयालु गुरु महिमा — श्री गोविन्दराम जैन ७१९
२९. श्रद्धा के सुमन — श्री राजमल ओस्तवाल ७२०
३०. जैन जगत के तारे — महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. ७२०

३१.	गुरुदेव वन्दना			७२१
३२.	पूज्य हस्ती मुनि गुण गाओ		श्री हीरामुनिजी म.सा.	७२२
३३.	चारित्रवान गुरुदेव की महिमा			७२३
३४.	गणि गजेन्द्रगुणगान			७२३
३५.	गुरु गुण महिमा	:	श्री गोविन्दराम जैन	७२४
३६.	गुणरत्नाकर की गौरव गाथा	:	श्री गौतम मुनि जी म.सा.	७२४
३७.	तेरी वन्दना करें	:	श्री मीठालाल 'मधुर'	७२५
३८.	हस्ती नटवर नागरियो	:	श्री मीठालाल 'मधुर'	७२६
३९.	जय बोलो हस्ती पूज्यवर की	:	श्री गोविन्दराम जैन	७२७

चतुर्थ खण्ड : कृतित्व खण्ड

(i) आचार्यप्रवर की साहित्य-साधना

(अ) **आगमिक व्याख्या-साहित्य** ७३०

दशवैकालिक सूत्र ७३१, नन्दी सूत्र ७३२, प्रश्न व्याकरण सूत्र ७३२, बृहत्कल्प सूत्र ७३३, उत्तराध्ययन सूत्र ७३४, उत्तराध्ययन सूत्र पद्यानुवाद ७३५, दशवैकालिक सूत्र पद्यानुवाद सहित ७३५, अन्तगडदसासुत्तं ७३६

(आ) **प्रवचन - साहित्य** ७३६

गजेन्द्र मुक्तावली मुक्ता (भाग-१) ७३६, गजेन्द्र मुक्तावली (भाग-२) ७३७, आध्यात्मिक साधना ७३९, आध्यात्मिक आलोक ७४०, प्रार्थना-प्रवचन ७४१, Concept of Prayer ७४२, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-१) ७४२, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-२) ७४२, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-३) ७४३, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-४) ७४३, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-५) ७४४, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-६) ७४५, गजेन्द्र व्याख्यान माला (भाग-७) ७४५, पर्युषण साधना ७४६, आत्म परिष्कार ७४६

(इ) **इतिहास-साहित्य** ७४७

पट्टावली प्रबन्ध संग्रह ७४७, जैन आचार्य चरितावली ७४८, जैन धर्म का मौलिक इतिहास (प्रथम से चतुर्थ भाग तक) ७४८

(ई) **काव्य, कथा एवं अन्य साहित्य** ७५२

गजेन्द्र पद मुक्तावली ७५२, स्वाध्याय माला - प्रथम भाग ७५४, अमरता का पुजारी ७५५, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी ७५६, जैन स्वाध्याय सुभाषित माला ७५६, कुलक संग्रह ७५६, पर्युषण पर्व पदावली ७५७

(उ) **अप्रकाशित अनुपलब्ध साहित्य** ७५७

तत्त्वार्थ सूत्र (पद्यबद्ध) ७५८, ध्यान- सम्बन्धी पुस्तक ७५८, स्याद्वादमंजरी ७५८, मुक्ति -सोपान ७५८, षड्दर्शन समुच्चय ७५८

(ii) काव्य-साधना

(आचार्य श्री की प्रमुख चयनित रचनाएँ)

१.	श्री शान्तिनाथ भगवान की प्रार्थना	:	ॐ शान्ति शान्ति	७५९
२.	सब जग एक शिरोमणि तुम हो	:	सतगुरु ने यह बोध बताया	७५९
३.	आत्म बोध	:	समझो चेतनजी अपना रूप	७६०
४	जागृति - सन्देश	:	जागो जागो हे आतमबन्धु	७६१
५.	अन्तर भया प्रकाश	:	मेरे अन्तर भया प्रकाश	७६१
६.	आत्म-स्वरूप	:	मैं हूँ उस नगरी का भूप	७६२

७.	स्वाध्याय-सन्देश	: कर लो श्रुतवाणी का पाठ	७६२
८.	स्वाध्याय करो	: जिनराज भजो, सब दोष तजो	७६३
९.	स्वाध्याय - महिमा	: हम करके नित स्वाध्याय	७६४
१०.	जिनवाणी का माहात्म्य	: कर लो कर लो, अय प्यारे	७६४
११.	आह्वान	: ऐ वीरों ! निद्रा दूर करो	७६५
१२.	जीवन उत्थान गीत	: करने जीवन का उत्थान	७६५
१३.	सामायिक का स्वरूप	: अगर जीवन बनाना है	७६६
१४.	सामायिक-गीत	: कर लो सामायिक रो साधन	७६७
१५.	सामायिक-सन्देश	: जीवन उन्नत करना चाहो	७६७
१६.	गुरु - भक्ति	: घणो सुख पावेला	७६८
१७.	देह से शिक्षा	: शिक्षा दे रहा जी हमको	७६९
१८.	सुख का मार्ग : विनय	: सदा सुख पावेला	७६९
१९.	वीर-वन्दना	: मन प्यारे नित प्रति रट लेना	७७०
२०.	विदाई-सन्देश	: जीवन धर्म के हित में लगा जायेंगे	७७०
२१.	वीर - सन्देश	: वीर के सन्देश को दिल में	७७०
२२.	हित - शिक्षा	: घणो पछतावेला	७७१
२३.	सेवा-धर्म की महिमा	: सेवा धर्म बड़ा गम्भीर	७७२
२४.	उद्‌बोधन	: ऐ वीर भूमि के धर्मवीर	७७२
२५.	सप्त व्यसन - निषेध	: है उत्तम जन आचार	७७३
२६.	सच्चा श्रावक	: सांचा श्रावक तेने कहिए	७७४
२७.	ईश्वर और सृष्टि विचार	: जगत कर्त्ता नहीं ईश्वर	७७५
२८.	सुशिक्षा	: तुम सुनो सभी नरनार	७७५
२९.	जिनवाणी की महिमा	: श्री वीरप्रभु की वाणी	७७६
३०.	गुरु - महिमा	: अगर संसार में तारक गुरुवर	७७७
३१.	गुरु - विनय	: श्री गुरुदेव महाराज हमें यह वर दो	७७७
३२.	बाल - प्रार्थना	: विनय से करता हूँ नाथ पुकार	७७८
३३.	भगवत् चरणों में	: होवे शुभ आचार प्यारे भारत में	७७८
३४.	शुभ कामना	: दयामय होवे मंगलाचार	७७९
३५.	दर्शनाचार	: दर्शनाचार को शुद्ध रीति से पालो	७७९
३६.	स्त्री - शिक्षा	: प्यारी बहनों समझो	७८२
३७.	माता को शिक्षा	: समझो समझो री माताओं	७८२
३८.	स्त्री - शिक्षा	: पालो पालो री सोभागिन	७८३
३९.	स्त्री - शिक्षा	: धारो धारो री सोभागिन	७८३
४०.	महावीर - जन्मोत्सव	: श्री महावीर स्वामी का	७८४
४१.	वर्षाकाल में जतना	: जीव की जतना कर लीजे रे	७८५
४२.	आचार्य - परम्परा	: प्रतिदिन जप लेना	७८६
४३.	पार्श्व - महिमा	: पार्श्व जिनेश्वर प्यारा	७८७
४४.	पर्व पर्युषण आया	: यह पर्व पर्युषण आया	७८७

४५.	सामायिक : शान्ति का द्वार	:	सामायिक में सार है	७८८
०६.	संकल्प	:	गुरुदेव चरण वन्दन करके	७८९
४७.	प्रभु प्रार्थना	:	श्री वर्धमान जिन, ऐसा हमको	७८९
४८.	गुरुदेव तुम्हारे चरणों में	:	जीवन धन आज समर्पित है	७९०
४९.	संघ की शुभ कामना	:	श्री संघ में आनन्द हो	७९१
५०.	पर्युषण महिमा	:	पर्युषण है पर्व हमारा	७९१
५१.	भगवान तुम्हारी शिक्षा	:	जीवन को शुद्ध बना लेऊँ	७९२
५२.	सच्ची सीख	:	जिन्दगी है संघ की	७९२
५३.	कौमी हमदर्दी	:	जैनिओं ! कौमी हमीयत आप	७९२
५४.	षट् कर्म की साधना	:	कहे मुनीश्वर सुनो बाई अरु भाई	७९३
५५.	गुरु - वन्दना	:	आओ अय प्यारे मित्रों	७९४
५६.	सच्ची सीख	:	गाओ गाओ अय प्यारे गायक	७९५
५७.	रक्षा-बन्धन	:	जीव की रक्षा कर लीजे	७९६
५८.	चातुर्मास काल	:	वर्षा ऋतु आई	७९६
',९.	महावीर-स्तुति	:	ध्याओ शासनपति महावीर	७९७
६०.	पार्श्वनाथ - स्तुति	:	वामाजी के नन्दन तुम हो	७९७
६१.	माता-पद	:	मरुदेवीजी माता जग में अमर हुई	७९८

पंचम खण्ड : परिशिष्ट

प्रथम परिशिष्ट : चरितनायक की साधना में प्रमुख सहयोगी साधक महापुरुष ७९९

आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. ७९९ , बाबाजी श्री हरखचन्दजी म.सा. ८०१, स्वामीजीश्री सुजानमलजी म.सा., ८०२ स्वामीजी श्री भोजराजजी म.सा. ८०३, पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा.८०४, महासती श्री बड़े धनकंवरजी म.सा. ८०५, महासती श्री रूपकंवरजी म.सा. (चरितनायक की माताश्री) ८०६

द्वितीय परिशिष्ट : चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित संत-सती ८०८

(अ) प्रमुख सन्तवृन्द का परिचय ८०८

(ब) प्रमुख साध्वीवृन्द का परिचय ८१८

तृतीय परिशिष्ट : कल्याणकारी संस्थाएँ ८३७

चतुर्थ परिशिष्ट : आचार्यप्रवर के ७० चातुर्मास : एक झलक ८५९

प्रथम खण्ड

जीवनी खण्ड

प्रस्तुत खण्ड में अध्यात्मयोगी, उच्चकोटि के तेजस्वी साधक, युगमनीषी, युगशास्ता आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. के जीवनवृत्त को अथ से इति तक लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है। प्रथम अध्याय 'तेणं कालेणं तेण समएणं' भूमिका रूप है, जिसमें भगवान महावीर के शासन एवं स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में रत्नसंघ-परम्परा का संक्षिप्त वर्णन है। दूसरे अध्याय से पच्चीसवें अध्याय में चरितनायक के जन्म, बाल्य प्रतिभा, वैराग्य, प्रव्रज्या, मुनि-जीवन, तलस्पर्शी अध्ययन, आचार्य पद हेतु मनोनयन, आचार्य पद-आरोहण, विचरण-विहार, चातुर्मास, महाप्रयाण आदि का क्रमिक निरूपण है।

आशा है यह खण्ड चरितनायक के साधक जीवन के विकास सूत्रों को समझने और संघ, समाज एवं मानवजाति को उनके योगदान का आकलन करने में सहायक सिद्ध होगा। उससे भी महत्त्वपूर्ण है-पाठक को अपने जीवन का निर्माण करने की प्रेरणा एवं तदनुरूप गति-प्रगति में यह जीवनवृत्त सहायक सिद्ध हो सकेगा।

तेणं कालेणं तेणं समएणं

(रत्नवंशीय आचार्य-परम्परा)

युगप्रभावक प्रातः स्मरणीय आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. न केवल अपने गुरु भगवंतों की यशस्वी रत्नसंघ परम्परा के, वरन् समूचे जैन जगत के दिव्य दिवाकर महापुरुष थे, जिन्होंने जिनशासन की कीर्ति-पताका समूचे भारत के कोने-कोने में फहराई व सामायिक-स्वाध्याय का दिव्य घोष कर जिनवाणी की पावन-गंगा से लाखों भक्तों को लाभान्वित किया।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के आप ८१ वें पट्टधर आचार्य हुए। प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम स्वामी एवं प्रथम पट्टधर पंचम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी ने केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर केवली-परम्परा को आगे बढ़ाया। द्वितीय पट्टधर आर्य जम्बू इस युग के अन्तिम केवली हुए।

आर्य जम्बू के पश्चात् चतुर्दश पूर्वधर काल में क्रमशः आर्य प्रभव, आर्य शय्यम्भव, आर्य यशोभद्र स्वामी, आर्य संभूत विजय एवं आर्यभद्रबाहु ने जिनशासन का दायित्व अपने ज्ञान-गरिमायुक्त साधना-बल पर संभाला। आर्य भद्रबाहु के पश्चात् इस युग में कोई भी साधक चतुर्दश पूर्वधर नहीं हुए। आर्य भद्रबाहु के पश्चात् क्रमशः आचार्य स्थूलिभद्र, आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ती, वाचनाचार्य बलिस्सह, वाचनाचार्य स्वाति, वाचनाचार्य श्यामाचार्य, षांडिल्य , समुद्र, मंगू, नन्दिल, नागहस्ती, रेवतीनक्षत्र, ब्रह्मद्वीपकसिंह स्कन्दिल, हिमवन्त क्षमाश्रमण, नागार्जुन, भूतदिन्न, लोहित्य, दूष्यगणी एवं आर्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण आदि पूर्वधर आचार्य हुए, जिनकी ज्ञान गरिमा से समूचा जैन संघ आलोकित रहा। आर्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण के अवसान के साथ ही पूर्वों के ज्ञान का समूल विच्छेद हो गया। उनके पश्चात् समय-समय पर विभिन्न महापुरुषों ने जिनशासन का संचालन किया।

आज से लगभग ५५०वर्ष पूर्व **धर्मप्राण लोंकाशाह** ने अभिनव धर्मक्रान्ति की व शुद्ध साध्वाचार एवं आगम वर्णित विशुद्ध सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया। धर्मप्राण लोंकाशाह द्वारा की गयी धर्म-क्रान्ति से प्रेरित होकर जिन महापुरुषों ने विशुद्ध श्रमण-परम्परा का पुनरुद्धार किया, उनमें पूज्य श्री धर्मदास जी म.सा., पूज्य श्री धर्मसिंह जी म.सा. एवं पूज्य श्री लवजी ऋषि जी म.सा. प्रमुख थे।

पूज्य श्री धर्मदास जी म.सा. के ९९ शिष्य हुए, जिन्होंने २२ टोलों में विचरण-विहार कर भारत के कोने-कोने में धर्मप्रचार कर जिनवाणी की पावन सरिता प्रवाहित की। पूज्य धर्मदास जी म. सा. के तपोधनी सुशिष्य **पूज्य श्री धन्नाजी म.सा.** ने मरु भूमि में उग्र विचरण-विहार कर विशुद्ध श्रमण-परम्परा का प्रसार किया।

पूज्य श्री धन्ना जी म.सा. के शिष्य **पूज्य श्री भूधर जी म.सा.** सांसारिक अवस्था में पुलिस अधिकारी रहे, सोजत कोतवाल के रूप में डाकुओं का पीछा करते हुए डाकुओं की तलवार के प्रहार से आपकी ऊंटनी की मृत्यु के समय हुई छटपटाहट से आपका मन द्रवित हुआ और मरणधर्मा संसार का साक्षात् बीभत्स स्वरूप प्रत्यक्ष देख कर आपमें वैराग्य भाव जागृत हुए एवं आप पूज्य श्री धन्नाजी म.सा. की सेवा में दीक्षित हुए। आप घोर तपस्वी संतरत्न हुए, घंटों आतापना लेते रहते। तपस्या के साथ तपस्वियों के लिये दुर्लभ क्षमा गुण आपकी अनूठी विशेषता थी।

अपने पर मारणान्तिक प्रहार करने वाले को भी सहज क्षमा कर आपने उसके प्राणों की रक्षा कर 'क्षमा' का आदर्श उपस्थित किया। आपके प्रमुख चार शिष्य हुए—**पूज्य श्री रघुनाथजी म.सा., पूज्य श्री जयमलजी म.सा., पूज्य श्री जेतसी जी म.सा.** एवं **पूज्य श्री कुशलोजी म.सा.** । कहा भी है –

भूधर के सिख दीपता, चारों चातुर वेश।
धन रघुपत धन जेतसी, जयमल ने कुशलेश ॥

पूज्य श्री कुशल चन्द जी म.सा. (कुशलोजी म.सा.) रत्नसंघ-परम्परा के मूल पुरुष हुए।

"रीयां शहर रलियामणो, लादुराम साहूकार।
कानूंद मां जनमिया, धनधन कुशल कुमार ॥"

युवावस्था में ही सहधर्मिणी धर्मपत्नी के आकस्मिक अवसान से आपको संसार की असारता व विनश्वरता का बोध हुआ व आप अपने शिशु पुत्र को अपनी मां को सौंप कर पूज्य श्री भूधर जी म.सा. की सेवा में दीक्षित हुए। आप उच्च कोटि के साधक सन्त हुए। आपने अपने पूज्य गुरुवर्य की और उनके देवलोक गमन के पश्चात् अपने बड़े गुरु भ्राता पूज्य श्री जयमलजी म.सा. की अहर्निश सेवा की । जब तक पूज्य श्री जयमलजी म.सा. विराजे, स्वयं का सुयोग्य शिष्य समुदाय होते हुए भी आपने पृथक् विचरण विहार न कर समर्पण, सेवा, प्रेम व उदारता का आदर्श उपस्थित किया। पूज्य श्री गुमानचन्द जी म.सा. एवं दुर्गादास जी म.सा. आपके प्रमुख शिष्य थे। वि.सं. १८४० में नागौर में ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी को आपका संथारापूर्वक देवलोक गमन हुआ।

पूज्य श्री कुशलचन्दजी म.सा. के पश्चात् उनकी पट्टपरम्परा में **पूज्य श्री गुमानचन्द जी म.सा.** प्रथम पट्टधर आचार्य बने। आप जोधपुर निवासी माहेश्वरी गोत्रीय श्री अखेराजजी लोहिया के सुपुत्र थे। आपकी माता का देहावसान होने पर कुल-परम्परा के अनुसार आप अपने पिताश्री के साथ गंगा में फूल प्रवाहित करने हेतु हरिद्वार गये। वहाँ से लौटते समय संयोगवश आप मेड़ता रुके। वहाँ पूज्य श्री कुशलचन्दजी म.सा. के पावन दर्शन व मंगलमय प्रवचन सुनकर आपके शिशु मन में वैराग्य का बीज वपित हुआ और आप अपने पिताश्री के साथ पूज्य श्री की सेवा में दीक्षित हुए। आपकी दीक्षा वि.सं. १८१८ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को मेड़ता शहर में सम्पन्न हुई। उस समय आपकी वय १० वर्ष थी। आप प्रबल मेधा के धनी थे। गुरु सेवा में दीक्षित होकर आपने अपने आपको ज्ञानाराधना व संयम-साधना में समर्पित कर दिया। आप प्रबल पराक्रमी महापुरुष थे। वि.सं. १८४० में आप चतुर्विध संघ के नायक बने एवं आपके कुशल नेतृत्व में यह यशस्वी परम्परा सुदृढ बनी। आपके आज्ञानुवर्ती संत श्री ताराचन्दजी म.सा. के देवलोक गमन के पश्चात् आपको स्वप्न में आभास हुआ मानो ताराचन्दजी म.सा. कह रहे हों "गुरुदेव आप समर्थ पुरुष हैं। साधु समुदाय में आई हुई शिथिलता को दूर करने के लिये आपके पुरुषार्थ की आवश्यकता है। आहार, वस्त्र, पात्र, स्थानक आदि की निर्दोषता की ओर अधिक ध्यान अपेक्षित है। आहारादि की विशुद्धि में आई हुई कमजोरियों को दूर करना आप जैसे समर्थ आचार्यों का कर्त्तव्य है।"

आपने अपने शिष्य समुदाय के साथ चिन्तन-मनन कर अपने समर्थ शिष्य श्री रत्नचंदजी म.सा. के सहयोग से वि.सं. १८५४ आषाढ कृष्णा द्वितीया को बड़लू (सम्प्रति-भोपालगढ) के उद्यान में क्रियोद्धार किया एवं मर्यादा के २१ बोल बनाये। तदनुसार दृढ वैराग्य व मर्यादा के अक्षुण्ण पालन के संकल्प के साथ आप व १३ अन्य कुल १४ संतों ने इस दिन नवीन दीक्षा धारण की।

पूज्य श्री ने स्वयं निर्मल संयम का पालन किया तथा साधु समुदाय का भी निरतिचार संयम-पालन में पथ प्रशस्त किया। वि.सं. १८५८ कार्तिक शुक्ला अष्टमी को मेड़ता नगर में आपका स्वर्गगमन हुआ। आपके शिष्यों में मुनि श्री दौलतरामजी महाराज सा., तपस्वी श्री प्रेमचन्द जी महाराज सा., मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज सा., मुनि श्री ताराचन्दजी महाराज सा., पूज्य श्री दुर्गादास जी म.सा. एवं जैनाचार्य पूज्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. आदि प्रमुख थे।

मुनि श्री दौलतरामजी महाराज जितेन्द्रिय महापुरुष थे। आपने चालीस वर्ष तक पाँचों विगयों (घी, दूध, तेल, दही व शक्कर) तथा नमक का त्याग किया। आप रुक्ष आहार करते थे। आपने अपने सुन्दर अक्षरों में कई शास्त्रों की प्रतियां लिखीं।

मुनि श्री प्रेमचन्दजी महाराज घोर तपस्वी थे। तपस्या के कारण आपको कई सहज सिद्धियाँ प्राप्त हुई। आपके जीवन की कई चामत्कारिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार आप सोजत पधारे, नगर में पहुँचते पहुँचते संध्या का समय हो गया, स्थान की गवेषणा करने पर कुछ लोगों ने कुतूहलवश आपको एक जनशून्य हवेली में ठहरा दिया। भक्तों द्वारा आकर निवेदन करने पर भी आपने स्थान परिवर्तन नहीं किया। करीब डेढ प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर आने लगे। इधर-उधर कोई दृष्टिगत न होने पर आपभी ऊपर चढ़े जहां एक कमरे में स्वच्छ शय्या पर शुभ्र वस्त्रों में एक पुरुष को देखा। तपस्वी जी महाराज ने निडरता से कहा– "सिंघी जी ! रात्रि में क्यों उत्पात मचाते हो, हम इजाजत लेकर यहां ठहरे हैं। हम प्रातःकाल यहां से जा सकते हैं, पर रात्रि में तो प्रलयंकर उत्पात होने पर भी नहीं जा सकते।" आपकी निर्भीकता से देव अत्यंत प्रभावित हुआ और उसने कहा –"आप यहाँ खुशी से विराजें, पर ऊपर कोई न आवे।" प्रातः लोगों ने आपको सकुशल देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। इस प्रत्यक्ष चमत्कार पूर्ण आत्मबल से आपके प्रति जनता की श्रद्धा और प्रगाढ हो गई। अब तो उसी हवेली में व्याख्यान होने लगे, नर-नारी निडर हो आने लगे। एक दिन किसी बालक ने अशुचि कर दी तो अचानक ही वहाँ पर भयंकर काला नाग निकल पड़ा। लोग आशंकित थे। पर तपस्वी जी महाराज के यह कहते ही "सिंघीजी ! तुमने तो खुली इजाजत दी थी, फिर यह विपरीत आचरण कैसे ?" सर्प अदृश्य हो गया। इस घटना से चमत्कृत जनता में आपके तप अतिशय व साधना की चर्चा स्वाभाविक थी।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज आदर्श साधक थे। आपने पैंतीस वर्षों तक केवल एक ही चादर से निर्वाह किया।

मुनि श्री ताराचंदजी महाराज बड़े तपस्वी व उत्कृष्ट क्रियापात्र संत महापुरुष थे। आपने पाँच विगयों के त्याग कर रखे थे और बेले-बेले पारणा करते थे। संयम का आप अत्यन्त सूक्ष्मता व सावधानी से पालन करते थे। स्वर्गवास की रात्रि में ही आपने स्वप्न में पूज्य श्री गुमानचंदजी महाराज को क्रियोद्धार का निवेदन किया।

पूज्य श्री दुर्गादास जी महाराज बाल ब्रह्मचारी महापुरुष थे। आपके कंठ में माधुर्य, वाणी में सरसता, विचारों में परिपक्वता व हृदय में उदारता के साथ आपको शास्त्रों का गहन अभ्यास था। आप निरन्तर एकान्तर तप किया करते थे। आप अच्छे मर्मज्ञ कवि थे। आपकी काव्य रचनाएं 'दुर्गादास पदावली' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। आप महान् भाग्यशाली व प्रभावशाली महापुरुष थे और आपका क्रियोद्धार में महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा।

आचार्य पूज्य श्री गुमानचन्दजी म.सा. के पट्ट को उनके सुयोग्य शिष्य, तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी **पूज्य श्री रत्नचन्द जी म.सा.** ने सुशोभित किया। आपका जन्म वि.सं. १८३४ वैशाख शुक्ला पंचमी को कुड़गांव में धर्मप्रेमी श्री लालचन्दजी बड़जात्या की धर्मपत्नी हीरादे की रत्न कुक्षि से हुआ। वि.सं. १८४० में आपको नागौर निवासी

श्रेष्ठिवर्य श्री गंगारामजी ने गोद ले लिया और शिशु रत्न मां हीरादे की गोद से निकलकर मां गुलाब की गोद में पहुंच गया।

वि.सं. १८४७ में आचार्य पूज्य श्री गुमानचन्दजी म.सा. का ठाणा ७ से चातुर्मास नागौर में हुआ। आप भी अपने परिजनों के साथ पूज्य श्री की सेवा में जाते। पूज्य श्री के संयममय जीवन के सम्पर्क व उनके वैराग्यमय उपदेशों से आपके हृदय में वैराग्य संस्कार प्रस्फुटित हुए। इसी बीच पिता श्री गंगारामजी का देहावसान हो गया, जिससे आपकी भावना में और अभिवृद्धि हुई व आपने माँ गुलाब बाई के सामने अपनी भावना प्रस्तुत कर दीक्षार्थ अनुमति मांगी, पर ममतामयी माँ अनुमति के लिए तैयार न थी।

बाबा श्री नत्थू जी से आज्ञा प्राप्त कर मुमुक्षु रत्नचन्द्र गांवों में भिक्षावृत्ति करते हुये मण्डोर पहुँचे, जहां वि.सं. १८४८ वैशाख शुक्ला पंचमी के शुभ मुहूर्त में आपने मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी म.सा. से दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा ग्रहण कर तीन वर्ष तक मेवाड़ प्रदेश में गुरुजनों के साथ विचरण-विहार कर आप संयम-जीवन व ज्ञान, दर्शन, चारित्र में पारंगत बन गये। आप चौथा चातुर्मास पीपाड़ कर पांचवें चातुर्मासार्थ पाली पधारे। इधर माता भी राज्याधिकारियों के साथ पहुंची। आपके प्रवचनामृत एवं संयम जीवन से माता भी प्रभावित हुई और उन्होंने अपनी गलती के लिये मुनिजनों से क्षमायाचना की।

अल्प काल में ही आपके साधनानिष्ठ जीवन से जन-जन ही नहीं स्वयं गुरुदेव भी प्रभावित हो गये और वे स्वयं फरमाते "रत्न! अब तो हम भी तुम्हारे नाम से पहचाने जाते हैं। लोग रत्नचन्दजी के साधु इस नाम से हमें जल्दी पहचान लेते हैं।" आप स्वाभाविक विनम्रता से निवेदन करते "सब गुरुदेव की कृपा है।"

कैसा उत्कृष्ट संयम! कितना समर्पण व कैसा पुण्य प्रभाव!

वि.सं १८५४ में पूज्यपाद आचार्य श्री गुमानचंदजी म.सा. ने क्रियोद्धार किया, उसमें आपकी प्रमुखतम भूमिका रही एवं आज भी क्रियोद्धारक महापुरुष के रूप में आपका ही नाम प्रख्यात है। ज्ञातव्य है कि क्रियोद्धार के समय आपकी वय मात्र २० वर्ष व दीक्षा पर्याय मात्र ६ वर्ष की थी।

वि.सं. १८५८ में पूज्य श्री गुमानचन्दजी म.सा. के स्वर्गवास के पश्चात् समूचे चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य मनोनीत किया, पर आपने अपने चाचा गुरु पूज्य श्री दुर्गादास जी म.सा. की उपस्थिति में आचार्य पद स्वीकार नहीं किया। २४ वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक दोनों ही महापुरुष एक दूसरे को पूज्य कहते रहे। 'राजतिलक की गेंद बना कर खेलन लगे खिलाड़ी' की उक्ति चरितार्थ हो रही थी। धन्य हैं ऐसे निस्पृह साधक, धन्य हैं यह गौरवशाली परम्परा, जिसे ऐसे संतरत्नों का सुयोग्य सान्निध्य प्राप्त हुआ। अनूठी उदारता व विनय भाव का ऐसा आदर्श अन्यत्र दृष्टिगोचर होना दुर्लभ है। पूज्य दुर्गादासजी म.सा. की मौजूदगी में आपने उनके प्रतिनिधि रूप में सम्प्रदाय का संरक्षण, संवर्धन व संचालन करते हुये शासन की प्रभावना की, पर उनके स्वर्गवास के पश्चात् आपको संघ का आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा व संवत् १८८२ मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी को आप विधिवत् आचार्य पद पर आरूढ हुए।

आप शास्त्रों के गहन ज्ञाता, अत्युच्च कोटि के विद्वान, जिन शासन की प्रभावना हेतु सदैव सन्नद्ध, विशुद्ध साध्वाचार के धनी, कीर्ति से निस्पृह, धीर-वीर-गम्भीर महापुरुष थे। आपने साध्वाचार में आई विकृतियों को दूर करने हेतु प्रबल पुरुषार्थ किया तथा कुरीतियों, आडंबर व शिथिलता पर गहरी चोट की। शान्ति व धैर्य से विरोध का सामना करते हुये आप शुद्ध साध्वाचार पालन के अपने संकल्प पर डटे रहे। आपने श्रमण वर्ग को शिक्षा देने के

लिये उपदेश छत्तीसी, आचार छत्तीसी आदि की रचना की। आपकी काव्य-रचनाओं में साध्वाचार की विकृति पर आपकी हृदय की अन्तर्वेदना व्यक्त होती है। "वेश धर यूं ही हीं जन्म गमायो" – जैसी रचनाएँ आपकी मनोव्यथा को सुस्पष्ट करती हैं।

प्रबुद्धजन से लेकर जन-साधारण तक सर्वमान्य, प्रखर-प्रतिभा व व्यापक-प्रभाव के धनी आप महापुरुष प्रचार व कीर्ति कामना से कोसों दूर थे। आपकी साधना आत्मोत्थान के लिये थी, लोकैषणा व कीर्ति कामना के लिये नहीं। नव कोटि मारवाड़ के धनी राज राजेश्वर महाराजा मानसिंह जी ने आपके उच्च संयम, प्रकांड पांडित्य व प्रखर प्रतिभा के साथ-साथ यह भी सुना कि आपके पास एक तपस्वी संत हैं जो वचनसिद्ध हैं तो महाराजा मानसिंह ने आपके दर्शन करने के लिये आने का विचार किया। जहां पूज्य श्री विराजित थे, वहां बिछायत होने लगी। विशिष्ट तैयारी देख कर आपने पृच्छा की। ज्यों ही आपको महाराजाधिराज के आने की जानकारी मिली तो यह कहकर कि 'भाई, डोकरी के घर में नाहर को कई काम' आप विहार कर गये। आपकी निस्पृहता और फक्कड़पन देख कर महाराजा मानसिंह के मुख से बरबस निकल पड़ा–

"काहू की न आश राखे, काहू पै न दीन भाखे,
करत प्रणाम जाकूं, राजा राणा जेवड़ा।
सीधी सी आरोगे रोटी, बैठा बात करे मोटी,
ओढ़ण ने राखे झीणा सा पछेवड़ा॥
धन धन कहे लोक, कबहू न राखे शोक,
बाजत मृदंग चंग जमीं मांहि जो बड़ा।
कहे नृप मानसिंह दुःखी तो जगत सब,
सुखी जैन सेवड़ा॥"

आचार्य श्री की यह कीर्ति-निस्पृहता उनके जीवन को प्रतिबिम्बित कर रही है, जो एक आदर्श है।

सच्चे सुधारक के रूप में आपने तत्कालीन परिस्थितियों को बदलने का भगीरथ प्रयास किया और अर्द्धशताब्दी पर्यन्त अपने ज्ञान और संयम की अखंड ज्योति द्वारा जिनशासन की जाहो जलाली की। स्थानकवासी परम्परा के अभ्युत्थान के लिये आपके प्रयास जैन इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में मण्डित रहेंगे। आपके ज्ञान-दर्शन-चारित्र से प्रभावित होकर अनेक भव्यात्माओं ने आपके पास भागवती दीक्षा अंगीकार की व सहस्रों व्यक्तियों ने आपसे सम्यक्त्व बोध प्राप्त किया। पूज्य श्री हम्मीर मलजी म.सा. आपके प्रमुख शिष्य और नवकोटि मारवाड़ के तत्कालीन दीवान (प्रधानमंत्री) श्री लक्ष्मीचन्दजी मुथा आपके अग्रगण्य श्रावक थे।

अपने जीवन के अन्तिम तीन माह आपने जोधपुर में ही बिताये, जहां मुथा जी व अन्य भक्त समुदाय ने आपके सान्निध्य व सेवा का पूर्ण लाभ लिया। अपना अन्तिम समय जानकर आपने संथारा के भाव व्यक्त किये व अपने प्रमुख शिष्य पूज्य श्री हम्मीर मलजी म.सा. को जो भोलावणें दी, वे आपकी आचार निष्ठा व आपके संयम जीवन को मूर्त रूप में व्यक्त करती हैं-"१. पूज्य गुमानचन्दजी म. २१ बोल बांधिया ज्यारी पकावट राखजो। २. मैं आचार संबंधी ढाला बणाइ तिके बोल सेंठा राखजे। ३. सागारी सुं समभाव राखजे। ४. आरजिया सुं समभाव राखजे। ५. इसो वरतण राखजो सुं इण लोक में शोभा होवे ने परलोक रा आराधक हुवो, इसो काम करजो।"

महाप्रतापी आचार्यप्रवर ने अपने शिष्य को भोलावण देने के पश्चात् सबसे क्षमायाचना की। क्षमा का आदान-प्रदान करके पूज्य श्री ने मुनि श्री हम्मीरमलजी म. के समक्ष पूर्ण आलोचना की। संलेखना संथारा के साथ

इस महापुरुष ने वि.सं. १९०२ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को महाप्रयाण कर दिया। आपके संयमनिष्ठ जीवन व प्रबल पराक्रम से रत्नवंश आज भी महिमा मंडित है, आज भी आपका जीवनादर्श भव्य जीवों का पथ आलोकित कर रहा है।

पूज्यपाद आचार्य श्री रत्नचंदजी म. के देवलोक गमन के बाद उनके पट्ट को सुशोभित किया उनके सुशिष्य **पूज्य श्री हम्मीरमलजी म.सा.** ने । आपका जन्म नागौर में धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ श्री नगराजजी गांधी की धर्मपरायणा धर्मपत्नी ज्ञानकुमारी जी की कुक्षि से हुआ। माता-पिता की वात्सल्यमयी गोद में आपने बाल लीला के ग्यारह वर्ष व्यतीत किये। कुटिल कालचक्र ने प्रहार किया व बालक हम्मीर मात्र ग्यारह वर्ष की उम्र में पिता श्री की छत्रछाया से वंचित हो गया। माता व पुत्र दोनों ही नागौर से पीपाड़ आ गये, जहाँ उन्हें महासतीजी वरजू जी महाराज के पावन दर्शन व सान्निध्य का लाभ प्राप्त हुआ। महासतीजी के दर्शन, समागम व उपदेश श्रवण से माता-पुत्र ने संसार की असारता व क्षण-भंगुरता समझी व उनका हृदय वैराग्य रंग में रंग गया। माताश्री ने अपने हृदय की भावना महासतीजी महाराज के समक्ष व्यक्त की। महासतीजी की प्रेरणा पाकर माता अपने पुत्र के साथ पूज्य आचार्य श्री रत्नचंदजी मसा. की सेवा में बिरांटिया पहुंची और अपने पुत्र को उनके चरणों में समर्पित कर भागवती दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। माता की भावना के अनुसार बिरांटिया में ही संवत् १८६२ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को ११ वर्षीय बालक हम्मीरमल को पूज्य आचार्य श्री ने भागवती दीक्षा प्रदान की। पुत्र को दीक्षा दिलाकर माता ने भी महासती वरजूजी के पास दीक्षा धारण की।

बुद्धि, प्रतिभा, विनय, परिश्रम और गुरु कृपा से बालक मुनि हम्मीरमलजी म.सा. ने शीघ्र ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। पूज्य श्री जैसे समर्थ विद्वान आचार्य गुरु हों और मुनि हम्मीर जैसे विनय सम्पन्न प्रतिभा सम्पन्न शिष्य हों तो उस अध्ययन की बात ही क्या! आपने गुरु-सेवा में रह कर शास्त्रों व संस्कृत-प्राकृत का गंभीर अध्ययन किया। ज्ञान-साधना ही नहीं, आपकी तप-साधना व संयम-साधना भी विशिष्ट थी। भीषण सर्दी में भी आप मात्र एक पछेवड़ी ही धारण करते। घृत के अतिरिक्त अन्य चार विगयों, दूध, दही, तेल व मीठा के आपके त्याग थे। यही नहीं पके अचित्त हरे शाक का भी आपके त्याग था।

आप अनन्य गुरु भक्त थे। पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. के विराजते आपने एक भी चातुर्मास उनसे अलग नहीं किया। गुरुदेव के स्वर्गारोहण के पश्चात् व्यथित हृदय से भी आपका गुणगान कैसा होता था-

पूज विरह दिन दोहला हो निकले वरस समान।
कहे हमीर किम विसरुं हो, सत गुरु जीवन प्राण हो ॥

आपका उपदेश अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। आपकी वैराग्यमयी वाणी-सुधा ने अनेक भव्यात्माओं और भक्तजनों को नवजीवन प्रदान किया। आपके हृदय में प्रभु-भक्ति का रस निरन्तर प्रभावित होता रहता। 'दीवसमा आयरिया' की उक्ति सार्थक करते हुए आपने अनेक व्यक्तियों के जीवन को भक्ति व ज्ञान से पावन किया, जिसका साक्षात् प्रमाण विनयचंद चौबीसी के रचयिता, दईकडा ग्राम निवासी कविश्रेष्ठ श्री विनयचन्दजी कुम्भट का जीवन है। बाल्यकाल से ही प्रज्ञाचक्षु विनयचन्दजी ने पूज्य श्री की सेवा व समागम का स्वर्णिम संयोग मिलने पर जैन धर्म का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया व पूज्य गुरुदेव के वचन रूपी बीज आपके हृदय-क्षेत्र में अंकुरित होकर विनयचंद चौबीसी के रूप में पल्लवित पुष्पित हुए।

चौबीस तीर्थङ्करों की भावभीनी स्तुति के अनन्तर कवि विनयचन्दजी ने कलश में आचार्य श्री हम्मीरमल जी

महाराज के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा है —

> चौवीस तीरथनाथ कीरति, गावतां मन गह - गहे।
> कुम्भट गोकुलचन्द - नन्दन, 'विनयचन्द' इण पर कहे॥
> उपदेश पूज्य हमीर मुनि को, तत्त्व निज उर में धरी,
> उगणीस सौ छः के छमच्छर, महास्तुति यह पूरण करी।

पूज्य श्री हम्मीरमलजी म.सा. का अन्तिम चातुर्मास नागौर में हुआ व वि.सं. १९१० कार्तिक कृष्णा एकम को संथारा समाधि के साथ आपने देवलोक गमन किया।

आपके देवलोक गमन के पश्चात् आपके पट्ट पर **पूज्य श्री कजोड़ीमलजी म.सा.** विराजे। आपका जन्म किशनगढ में ओसवाल वंशीय सुश्रावक श्री शम्भूमलजी की धर्मपत्नी धर्मपरायणा बदनकंवर जी की कुक्षि से हुआ। होनहारिता व बुद्धि की कुशाग्रता आपकी जन्मजात विशेषता थी। आठ वर्ष की कोमल अवस्था में ही आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। काल का कैसा अनभ्र वज्रपात! आप किशनगढ से अजमेर आ गये। पुण्ययोग से आपको मुनि श्री भैरूमल्लजी महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुनिश्री के दर्शन और उनकी हितमित ओजस्वी वाणी से आपकी धर्म की ओर विशेष अभिरुचि हो गई और शीघ्र ही आपने सामायिक व प्रतिक्रमण का अभ्यास कर लिया। शनैः शनैः आपकी वैराग्यभावना बढ़ने लगी व आपने रात्रि-भोजन व हरी वनस्पति के त्याग कर दिये। शुभ योग से पूज्यपाद आचार्य श्री रत्नचंदजी म.सा. का अजमेर पदार्पण हुआ। पूज्य श्री की पातक प्रक्षालिनी प्रवचन सुधा ने आपके हृदय में रहे हुए वैराग्य बीज को अंकुरित व पल्लवित कर दिया व आपने उन्हें शीघ्र दीक्षा देने की प्रार्थना की। आपकी प्रार्थना पर पूज्य श्री ने आपको जीव दया की साधना करने की प्रेरणा दी। यह सुनकर आत्महित की कामना से आपने जीवन पर्यन्त आरम्भ का त्याग कर लिया। कैसा उत्कट वैराग्य! गुरु वचनों में कैसी आस्था! 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'। परिजनों ने दीक्षा के विरुद्ध प्रपञ्च फैलाना प्रारम्भ किया, पर आपने निश्चल भाव और शान्ति से विरोध का मुकाबला किया। आपकी दृढता देखकर न्यायाधीश को भी अनुमति प्रदान करनी पड़ी व वि.सं. १८८७ माघ शुक्ला ७ के दिन अजमेर में आचार्य भगवन्त श्री रत्नचंदजी म.सा. के कर कमलों से आप दीक्षित हुए। आप तीव्र मेधा के धनी थे व थोड़े ही समय में आपने सिद्धान्तों का गहन अध्ययन कर लिया। आचार्य श्री ने आपकी योग्यता के और अधिक विकास हेतु आपको अपने गुणश्रेष्ठ शिष्य श्री हम्मीरमलजी महाराज की निश्रा में रख दिया। थोडे ही समय में आपके ज्ञान-दर्शन-चारित्र की परिपक्वता व आत्म-शक्ति से संतुष्ट हो गुरुदेव ने आपको स्वतंत्र रूप से विहार कर धर्म जागृति की आज्ञा प्रदान की। आपकी पीयूषपावनी वाणी से अनेक व्यक्ति जिन धर्मानुरागी बने। संयम के नियमों का आप कठोरता से पालन करते थे। आप एक ही चादर से शीत, उष्ण और वर्षाकाल व्यतीत करते। आपकी शारीरिक कान्ति अनुपम थी। आप गौरवर्ण, शरीर से सुडोल व कद से लम्बे थे। आपके नेत्र केहरी के समान तेजस्वी थे तो वाणी में घनगर्जना सी गम्भीरता और अद्भुत आकर्षण था। कहना होगा आपके व्यक्तित्व और तपस्तेज के कारण आपके सम्पर्क में जो भी आता, वह प्रभावित हुये बिना नहीं रहता था।.

पूज्य आचार्य श्री हम्मीरमलजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् सम्प्रदाय के संचालन और संरक्षण की शक्ति, आगमों की अभिज्ञता, विद्वत्ता, शरीर सम्पदा, प्रतिभा, योग्यता आदि सब दृष्टियों से चतुर्विध संघ ने आपको आचार्यपद देने का निर्णय लिया । वि.सं. १९१० माघ शुक्ला पंचमी को २४ साधु-साध्वियों और हजारों श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। आपके संयम, पाण्डित्य व तप का इतना तीव्र तेज था कि वक्रवचनी और कुटिल बुद्धि कुतर्कियों को भी आपसे कुतर्क करने की हिम्मत नहीं होती

थी। एकदा आपके स्थूल शरीर व उदराकार पर पनिहारिन बहिनों द्वारा किये गये व्यंग्य कि 'ढूंढिया के भी पेट है' का दिया गया प्रत्युत्तर आपकी प्रत्युत्पन्नमति, गांभीर्य व अंतर्निरीक्षण का द्योतक है–

तू ने कही ऊपर से, मैंने पेखी ठेठ
और खटका सब मिट गया, एक रह गया पेट॥

आपने २६ वर्ष तक कुशलतापूर्वक सम्प्रदाय का संचालन किया। आपके शासन काल में १३ मुनियों की दीक्षा हुई। आपने विभिन्न क्षेत्रों में ४९ चातुर्मास कर धर्मज्योति को प्रज्वलित किया। वि.सं. १९३६ वैशाख शुक्ला २ को पेट में भयंकर दर्द होने लगा। दर्द की तीव्रता से आपने समझ लिया कि अब अन्तिम समय आ गया है। आपने साधुओं के समक्ष आलोचना की और पंच परमेष्ठी को वंदन कर सभी जीवों से क्षमायाचना की। अगले दिन पूर्ण उपयोगपूर्वक संथारे की विधि करते हुए अनशनविधि का उच्चारण करते-करते पूज्य श्री के प्राण परलोक के लिये प्रयाण कर गये, मानो वे संथारे की विधि में पूर्णता की ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

वादीमर्दन श्री कनीराम जी महाराज आपके प्रमुख सहयोगी संत थे, जिन्होनें पंजाब जैसे क्षेत्रों में उग्र विहार कर वहां संघ में शान्ति व ऐक्य कायम किया व वहां भी जिन शासन की महती प्रभावना की। आपने तेरापंथ की मान्यताओं के खंडन हेतु 'सिद्धान्तसार' ग्रन्थ की रचना की। जीवन में आपने अनेक बार चर्चा व शास्त्रार्थ कर विपक्षियों को परास्त किया।

आचार्य श्री के शिष्यरत्नों में उनके पट्टधरशिष्य पूज्य श्री विनयचंदजी महाराज, पूज्य श्री शोभाचंदजी महाराज, चंदनसम शीतल श्री चंदनमलजी महाराज, तीक्ष्ण मेधा के धनी स्वाध्याय प्रेमी श्री मुल्तानमलजी महाराज के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य श्री कजोड़ीमलजी महाराज के महाप्रयाण के पश्चात् उनके शिष्य रत्न **श्री विनयचन्दजी महाराज** रत्नवंश परम्परा के आचार्य बने। आपका जन्म फलौदी में ओसवंशीय राजमान्य प्रतिष्ठित सद्‌गृहस्थ श्री प्रतापमलजी पुंगलिया की धर्मपरायणा धर्मपत्नी रम्भाकुंवर की रत्न कुक्षि से वि.सं. १८९७ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी के दिन हुआ। आपके चार भाई और एक बहिन थी।

संयोगवश अचानक ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और परिवार की सारी जिम्मेदारी आप पर आ पड़ी। व्यापार के आरम्भ में समर्थ सहायक की आवश्यकता अनुभव कर आप पाली (जहाँ आपके बहिन-बहिनोई निवास करते थे) आ गये। यहाँ विशेष पुण्योदय से आपको पूज्य श्री कजोडीमलजी महाराज के पावन दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य श्री की वैराग्योद्बोधक वाणी सुन कर आपके हृदय में वैराग्य भाव का वपन हुआ और आपने अपने विचार लघु भ्राता श्री किस्तूरचंदजी के समक्ष प्रकट किये। लघु भ्राता ने भी अग्रज का अनुसरण करने का संकल्प कर लिया। दोनों ही बन्धु पूज्य श्री की सेवा में रह कर साधुता सम्बन्धी ज्ञानाभ्यास करने लगे। वि.सं. १९१२ मार्गशीर्ष कृष्णा २ को दोनों बन्धुओं ने अजमेर में पूज्य श्री के पास श्रमण दीक्षा अंगीकार की। दोनों बंधुओं ने ज्ञानाभ्यास में अपने आपको पूर्ण मनोयोग पूर्वक संलग्न कर लिया। थोड़े ही अन्तराल में आपने ऐसी योग्यता सम्पादित कर ली कि आप धाराप्रवाह रूप से शास्त्रों का व्याख्यान करने लगे। दुर्दैव से अनुज भ्राता मुनि श्री किस्तूरचंदजी महाराज का असामयिक देहावसान हो गया। युगल जोड़ी खंडित हो गई।

प्रकृति की कोमलता, विनय व समर्पण से आप पूज्य गुरुदेव व सभी के प्रीति पात्र बन गये। बुद्धि की तीव्रता और अव्याहत श्रम से आप जैनागमों के तलस्पर्शी ज्ञाता बन गये। पूज्य आचार्य श्री कजोड़ीमलजी महाराज

का स्वर्गगमन होने पर चतुर्विध संघ ने वि.सं. १९३७ ज्येष्ठ कृष्णा ५ को आपको आचार्य पद प्रदान किया। आपने ३६ वर्ष तक कुशलतापूर्वक सम्प्रदाय का संचालन किया। इन ३६ वर्षों में पूर्व के २२ वर्ष पर्यन्त आपने विभिन्न क्षेत्रों में उग्र विहार कर अनेकों भव्यात्माओं को संयम-जीवन का अधिकारी बनाया तो हजारों व्यक्तियों को श्रमणोपासक व सम्यक्त्वी बना कर वीर शासन की महती प्रभावना की। जीवन के अन्तिम चौदह वर्ष नेत्र ज्योति की मंदता के कारण आप जयपुर स्थिरवास विराजे। पूज्य श्री में यह विरल विशेषता थी कि आप शास्त्रों के मर्म को समझने वाले समर्थ विद्वान बहुश्रुत महापुरुष होने के साथ ही साध्वाचार के सूक्ष्म नियमों के यथाविधि परिपालक थे। जैनागम में वर्णित कर्म-प्रकृतियों के आप विशिष्ट विवेचक थे। आपकी स्मरणशक्ति व धारणाशक्ति अद्भुत व विलक्षण थी। बीसों बरस बाद भी यदि कोई पूर्व परिचित श्रावक आकर चरण छूता तो उसकी बोली मात्र सुन कर आप उसकी पूर्व पीढियों तक की बात बता देते थे तो भगवती जैसे विशाल आगम के संदर्भों को शतक उद्देशक पत्रक वार फरमा देते थे। कौनसा विषय कहां प्रतिपादित है, आप हस्तामलकवत् या निजनामवत् बता देते थे।

अन्य सम्प्रदायों के प्रति आपकी उदारता अतुलनीय है। स्थानकवासी समाज के विभिन्न परम्पराओं के अनेकों विद्वान् मुनिराज आपसे श्रुत धारणा के लिए जयपुर पधारते तो आप भी आग्रह पूर्वक उन्हीं का प्रवचन कराते एवं उदारतापूर्वक आगम रहस्यों से उन्हें परिचित कराते। यही नहीं, मूर्ति पूजक श्रमणों से भी आप पूर्ण सद्भाव रखते एवं उन्हें शास्त्रों के अनुशीलन हेतु प्रेरित करने व उनकी शंकाओं का समाधान करने में भी सदा तत्पर रहते। खरतरगच्छीय श्री शिवजी रामजी महाराज को भी आपने आचारांग सूत्र का स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी व सूत्र पढ़ने की उनकी रुचि को जागृत किया, जिसका वे आजीवन उपकार मानते रहे।

धार्मिक कट्टरता के युग में आपकी उदारता अनूठी थी। वे कभी किसी के भी मत का खण्डन किए बिना स्वमत की विशेषता प्रतिपादित करते। व्यापक दृष्टिकोण के कारण आपके प्रवचनामृत का सब धर्मावलम्बी लाभ उठाते। पंजाबी मुनि श्री मयाराम जी म.सा., पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म.सा. की परम्परा के आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. , पूज्य श्री धर्मदासजी म. की सम्प्रदाय के पंडित रत्न श्री माधव मुनि जी महाराज आदि विभिन्न परम्पराओं के महापुरुष आपकी वत्सलता, उदारता व आगम मर्मज्ञता से प्रभावित थे। पूज्य श्री ने यह नियम बना रखा था कि जब कोई शुद्ध साधु-मर्यादा का पालन करने वाले संत आपके स्थिरवास काल में जयपुर पधारते तो उनके प्रति सत्कार प्रकट करने के लिये आप अपना व्याख्यान बन्द रखते और भक्त श्रावकों को नवागन्तुक संतों के व्याख्यान-श्रवण व सेवाभक्ति का पर्याप्त लाभ लेने हेतु प्रेरित करते। वयोवृद्ध, श्रुतवृद्ध, दीक्षावृद्ध एवं पदवृद्ध बहुश्रुत आचार्य पूज्य श्री विनयचंदजी म. की ऐसी उदारता, निरभिमानता, वात्सल्य भाव व प्रेम परायणता दुर्लभ उदाहरण हैं।

विक्रम संवत् १९७२ मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को ७५ वर्ष की वय में जैन जगत के इस ज्ञानसूर्य का अवसान हो गया।

तपस्वीरत्न श्री बालचन्दजी महाराज, स्वामी जी श्री चन्दनमलजी महाराज आपके प्रमुख सहयोगी संत थे। तपस्वी श्री पंजाब के निवासी थे। आपने दीक्षा के प्रथम दिन से ही व्याधि और पारणे के सिवाय चार विगयों (दूध, दही, मिष्ठान्न और तेल) का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। प्रासुक हरे साग का भी आपके आजीवन त्याग था। आप प्रतिमास कम से कम पांच उपवास तो करते ही, विशेष तपस्या भी प्रायः करते रहते। परीषहों को आगे होकर आमंत्रित करने हेतु आप गर्मी में ग्रीष्म आतापना व सर्दी में शीत आतापना लेते, तो कई बार कर्मों के भार का मानो आकलन करने हेतु आप कठिन अभिग्रह भी धारण कर लेते, पर आपके अन्तराय कर्म इतना हलका हो चुका

था कि अक्षय तृतीया को विवाहित द्वितीय पत्नी (प्रथम पत्नी के स्वर्गस्थ होने के अनन्तर नवोढ़ा) के साथ चांदी के थाल में दाल का हलवा एक साथ जीमने हेतु बैठे दम्पती आजीवन शीलव्रत ग्रहण करे तो आहार ग्रहण करना, जैसे दुष्कर अभिग्रह भी आपके सहज ही फलीभूत हुए। जिस दम्पती के व्रत-ग्रहण से आपका यह दुष्कर अभिग्रह फला, वे थे ब्यावर के सुश्रावक श्री आनन्दराज जी शाह एवं उनकी नवोढा धर्मपत्नी। यही नहीं जिस किसी को भी आपने तेला करने का कह दिया, उसकी विपत्ति का भी सहज निवारण हो जाता।

स्वामीजी श्री चन्दनमलजी महाराज चन्दन के समान शीतल, शान्त-दान्त-गम्भीर प्रकृति के महापुरुष थे। आपकी निष्पक्षता, गम्भीरता एवं प्रशान्तता जग जाहिर थी। यही कारण था कि पूज्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज की परम्परा में विवाद होने पर पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज का भी आग्रह रहा कि स्वामी श्री चंदनमलजी महाराज मध्यस्थ बन कर जो भी निर्णय दें तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

पूज्य आचार्य श्री विनयचंदजी महाराज के शासनकाल में श्रेष्ठिवर्य श्री सुजानमलजी की दीक्षा ने अनाथी मुनिराज के आदर्श को मानो उपस्थित कर दिया। नित्यप्रति पुष्प शय्या पर शयन करने वाले, गोठ गूगरी के शौकीन, इत्र सेवन करने वाले, उन श्रेष्ठिवर्य ने घुटनों में "दर्द दूर हो जाने पर पूज्य श्री के पास दीक्षा ले लूंगा" ऐसा चिन्तन किया तो सहज ही पीड़ा दूर हो गयी। संकल्पधनी वह महापुरुष पीछे नहीं हटा व पूज्यपाद के चरणों में दीक्षा लेकर कल का श्रेष्ठी जयपुर की गलियों में भिक्षावृत्ति हेतु घूम कर अपने को धन्य मानने लगा। कल तक अनेकों सेवकों द्वारा सेव्य, राग का धनी, वह कर्मशूर आज संत महापुरुषों की वैय्यावृत्त्य कर अपने को धन्य समझने लगा। धन्य हैं ऐसे संकल्पधनी महापुरुष। धन्य है पूज्य आचार्य प्रवर का प्रभाव व पुण्यशालिता। ऐसे ही महापुरुषों के लिये पूज्य श्री भूधर जी महाराज ने कह दिया–

रंग महल में पोढ़ते, जे कोमल सेज बिछाय।
ते कंकरीली भूमि में, सोवे संवर काय॥...वे गुरु
षट् रस भोजन जीमते, जे सुवर्ण थाल मंझार।
अब वे सब छिटकाय ने, प्रासुक लेत आहार॥ वे गुरु

बहुश्रुत आचार्य श्री विनयचंदजी म.सा. के पश्चात् **पूज्य श्री शोभाचंदजी महाराज साहब** परम्परा के आचार्य बने। आपका जन्म मरुधरा की राजधानी, रत्नवंश के पट्टनगर जोधपुर में संवत् १९१४ कार्तिक शुक्ला पंचमी को श्रेष्ठिवर्य श्री भगवानदास जी चामड़ की धर्मशीला धर्मपत्नी पार्वती देवी की रत्नकुक्षि से हुआ। सौभाग्य पंचमी को जन्म लेने के कारण आपका नाम शोभा चंद रखा गया। बाल्यकाल से ही आप बाल सुलभ चेष्टाओं में चंचलता के स्थान पर गंभीरता धारण करने वाले थे। पाठशाला में प्रवेश कराये जाने पर भी आप विद्यालय या घर में अपना अधिकतम समय मौन और एकान्त में ही व्यतीत करते थे। आपकी इन प्रवृत्तियों से खिन्न पिता ने आपको १० वर्ष की छोटी वय में ही धन्धे में लगा दिया, पर आपको तो सन्तों के चरणों में अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाने व ज्ञान सीखने में ही अपना समय बिताकर परम आनन्द होता। पुण्योदय से आपको पूज्यपाद आचार्य श्री कजोड़ीमलजी म.सा. के पावन दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अद्भुत व्यक्तित्व के धनी, साधना की साक्षात् प्रतिमूर्ति और ब्रह्मचर्य की अपूर्व शक्ति के धारी आचार्य श्री कजोड़ीमलजी महाराज के वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर बालक शोभाचंद ने संयमपथ पर आरूढ होने का निश्चय किया, पर दीक्षा की अनुमति आसान न थी। आज्ञा प्राप्त करने में कई अड़चनें व बाधाएं आई, पर आपकी दृढ लगन और निश्चय को देखकर अन्ततः माता-पिता को आज्ञा देनी पड़ी। तेरह वर्ष की अवस्था में एक विशाल महोत्सव में जयपुर में वि.सं. १९२७ माघशुक्ला पंचमी

को आचार्य श्री कजोड़ीमलजी महाराज के कर-कमलों से आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। गुरुदेव का सान्निध्य तो था ही, बड़े गुरु भ्राता श्री विनयचन्द जी म.सा. का आपके ज्ञान-ध्यान में विशिष्ट सहयोग रहा व आपका अधिक विचरण-विहार भी उन्हीं के सान्निध्य में हुआ। पूज्य श्री विनयचंदजी म.सा. के प्रति आपका शिष्यवत् समर्पण भाव था। पूज्य श्री के १४ वर्ष के सुदीर्घ जयपुर स्थिरवास में आपने पूर्ण श्रद्धा व समर्पण से उनकी अहर्निश सेवा की। कोई अनुमान नहीं लगा पाता था कि वे पूज्य श्री के गुरु भ्राता हैं या शिष्य। ऐसा सुना जाता है कि पूज्य श्री विनयचंदजी म.सा. यदि रात्रि में करवट भी बदलते तो आप जागृत हो जाते।

पूज्य आचार्य श्री विनयचंदजी म.सा. के स्वर्गवास के पश्चात् स्वामीजी श्री चन्दनमलजी म.सा. के आग्रह से आपने आचार्य पद स्वीकार किया। वि.सं. १९७२ फाल्गुन कृष्णा ८ को स्वामीजी महाराज एवं आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. द्वारा चतुर्विध संघ की उपस्थिति में आपको आचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई। पूज्य आचार्य श्री शोभाचंदजी महाराज निर्मल निस्पृह साधक थे। आपके संयम-जीवन का मुसद्दी वर्ग व अन्य मतावलम्बियों पर भी व्यापक प्रभाव था। जोधपुर के सैकड़ों मुसद्दी परिवार व माहेश्वरी भाई आपको गुरु मानते और पूछे जाने पर बेहिचक अपने गुरु का नाम पूज्य शोभाचन्द्रजी बताते। यह आपकी उदारता, सदाशयता और विराट्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण था। किसान परिवारों के अनेक ग्रामीण जन भी आपके भक्त थे। आपके सदुपदेशों से जैन श्रावक बने मूलजी विश्नोई की भक्ति की सराहना जैनाचार्य जवाहरलालजी ने अपने प्रवचनों में की।

पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज महान गुणों से विभूषित थे। वे परमत सहिष्णुता, वत्सलता, गंभीरता, सरलता, सेवाभाविता, विनयशीलता, मर्मज्ञता, आगमज्ञता और नीतिज्ञता के गुणों से सम्पन्न महापुरुष थे। आपका जीवन अप्रमत्त था, कभी प्रमाद का सेवन नहीं करते। स्वयं उनके शिष्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के शब्दों में "मेरे गुरुदेव ने कभी टेका नहीं लिया", वे सदा अपना समय जप, तप, साधना एवं स्वाध्याय में ही व्यतीत करते। उनका जीवनादर्श था-

> खण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम,
> भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम।

आपको उत्तराध्ययन सूत्र निज नामगोत्रवत् कण्ठस्थ था ; अक्षर, पद, बिन्दु की भी उच्चारण में स्खलना नहीं होती। आप सदा रात्रि के पिछले प्रहर में प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे। आपके उपदेशों में सरलता के साथ-साथ गंभीरता का पुट भी होता था। आपके प्रवचन प्राचीन शैली में होते हुए भी नूतनहृदय को प्रसन्न एवं पुलकित बनाने में समर्थ थे। जोधपुर के अनेकों न्यायाधिपति, बैरिस्टर, शासकीय अधिकारीगण आपके परम भक्त थे।

आप व्यक्तियों को परखने के निष्णात पारखी एवं जीवन-निर्माण के कुशल शिल्पी थे। बालवय में दीक्षित अपने शिष्य बालक हस्ती को आपने जिस कुशलता से गढा एवं अल्प सान्निध्य में ही अपना ज्ञान व अपने जीवनादर्श जिस ढंग से बालक हस्ती के हृदय में उँडेले, वह गुरु शिष्य-परम्परा का आदर्शतम उदाहरण है। मात्र पांच वर्ष के दीक्षावधि वाले शिष्य के भीतर रही महान आत्मा को एवं उनके भीतर रही हुई प्रतिभा को परख कर आपने जीवन के जौहरी की निष्णातता का परिचय दिया। रत्नवंश के भावी आचार्य के रूप में बालक मुनि हस्ती का चयन कर आपने रत्नवंश पर महान उपकार किया। हम सबने आचार्य हस्ती के पावन सान्निध्य का लाभ लिया है, उनके गुणों एवं जीवन में हम पूज्य आचार्य शोभाचन्दजी म. के जीवनादर्शों एवं साधना सम्पूरित गुणों की सहज झलक अनुभव कर सकते हैं। आपका

आचार्य-कार्यकाल मात्र ११ वर्ष का था, पर इस अल्प काल में ही आपने इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। आपके शासनकाल में मुनि श्री लालचंदजी महाराज, मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज, मुनि श्री चौथमलजी महाराज व श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी महाराज ने तथा केवलकुंवरजी, झमकूजी आदि १६ महासतियां जी महाराज ने दीक्षा ग्रहण की।

वि.सं. १९८३ श्रावण कृष्णा अमावस्या को जीवन के सच्चे पारखी इस महापुरुष ने जोधपुर में अपनी दैहिक जीवन-लीला समेट कर महाप्रयाण कर दिया।

आपके सुशिष्य युगमनीषी प्रातः स्मरणीय **आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी महाराज** ने बालवय में संयम ग्रहण कर एवं तरुण अवस्था में आचार्य पद पर आरूढ होकर सुदीर्घ संयम-पर्याय एवं सुदीर्घ आचार्य-काल से नव-इतिहास की रचना की। वे इतिहास लेखक ही नहीं, वरन् इतिहास निर्माता थे। वे पद से नहीं, वरन् पद उनसे महिमा मण्डित हुए, वे भक्तों से नहीं, वरन् भक्त जन उन जैसे गुरु पाकर गौरवान्वित हुए। उनका निर्मल विमल निरतिचार अप्रमत्त संयम जीवन, गुणिजनों के प्रति प्रमोद, छोटों के प्रति स्नेह-वात्सल्य एवं बड़ों के प्रति आदर भाव उन्हें महापुरुषों की शृंखला में अग्रगण्य स्थान पर अंकित करता है। वे एक सम्प्रदाय में रहते हुए भी समूचे जैन जगत में 'पूज्य श्री' के नाम से विख्यात रहे। लघु काया में विराट् व्यक्तित्व, अर्वाचीन मान्यताओं के पक्षधर, पर बुद्धिजीवी भक्त समुदाय के भगवान, ज्ञान, क्रिया एवं पुण्यशालिता के अद्भुत संगम आचार्यदेव के जीवन में अपने पूर्ववर्ती महापुरुषों का ही नहीं, वरन् आर्य स्थूलिभद्र की ब्रह्मचर्य साधना, आर्य आर्यरक्षित की मातृभक्ति व ज्ञान-पिपासा तथा बालवय में दीक्षित आर्य वज्र जैसी मस्ती, निर्भीकता एवं संयमनिष्ठा का अद्भुत समन्वय था। यह जीवन चरित्र 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' उन महामानव के जीवन को ही समर्पित है।

रत्नसंघ पट्टपरम्परा जैन जगत की दिव्य संत-परम्परा का यशस्वी अध्याय है। रत्नसंघ के सभी आचार्यों ने लघुवय में दीक्षा अंगीकार कर सुदीर्घ संयम-साधना से जिनशासन की महती प्रभावना की। सभी आचार्य भगवंत ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के अद्भुत संगम थे। सभी आचार्य एक सम्प्रदाय-व्यवस्था की परिधि में रहते हुये भी सदा इसकी भेद-रेखाओं से परे रहे। ऐसे ही महापुरुषों के बारे में आचार्य श्री भूधर जी महाराज द्वारा रचित ये पंक्तियां सार्थक कही जा सकती हैं-

वे गुरु मेरे उर बसो, जे भव जलधि जहाज
आप तिरे पर तारहिं, ऐसे श्री मुनिराज।
वे गुरु चरण जहां धरे, जंगम तीर्थ तेह।
सो रज मम मस्तक चढे, भूधर मांगे एह॥

■

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे पीपाड़नगरे

• पुण्यधरा : पीपाड़

परमप्रतापी प्रतिभामूर्ति चारित्रनिष्ठ आचार्य श्री हस्ती का जन्म जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित भारतदेश के मारवाड़ (राजस्थान) की पुण्यधरा पीपाड़ शहर में हुआ। मारवाड़ की मरुधरा के मुकुटमणि जोधपुर नगर से ६० किलोमीटर की दूरी पर जोजरी नदी के तट पर अवस्थित 'पीपाड़शहर' के सम्बन्ध में कथानक है कि इसे बप्पा रावल के वंशज पीपला रावल ने बसाया था। इतिहासविदों के अनुसार यह प्राचीन नगरी शताब्दियों तक राजस्थान के वर्तमान पाली-मारवाड़ जिले में स्थित निमाज ठिकाने के जागीरदार की जागीर का हिस्सा रही। मध्ययुग में सन्त पीपाजी ने भी इसे धर्मप्रसार का केन्द्र बनाया।

आचार्य श्री हस्ती की जन्मभूमि पीपाड़ की वसुधा अन्न एवं धन से भी समृद्ध रही है तो महान् सन्तों की पदरज से भी पावन होती रही है। इसे अनेक जैन सन्तों एवं आचार्यों ने अपने जन्म, दीक्षा, विचरण एवं महाप्रयाण से धन्य किया है। आचार्य श्री हस्ती जिस सन्त-परम्परा के सप्तम पट्टधर बने, उस रत्नवंश के मूलपुरुष यशस्वी सन्त श्री कुशलचन्द्रजी महाराज ने इसी पीपाड़ (रियां) की धरा पर जन्म लिया। स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के तेजस्वी आचार्य श्री जयमलजी महाराज, महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज (जिनके नाम से 'रत्नवंश' विश्रुत है), चारित्रनिष्ठ आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज (आचार्य श्री हस्ती के गुरु) आदि अनेक सन्तों एवं महापुरुषों ने अपने वर्षावासों एवं शेषकाल-विचरण से इस धरा की पुण्यशालिता में अभिवृद्धि की। रत्नवंश-परम्परा के ही प्रखर चर्चावादी एवं 'सिद्धान्तसार' ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध प्रभावशाली सन्त श्री कनीरामजी महाराज का देवलोकगमन भी इस धरा से हुआ।

आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध यह तपःपूत पीपाड़नगरी तब और अधिक धन्य हो उठी जब लक्षाधिक लोगों के सन्मार्ग-प्रवर्तक आचार्य श्री हस्ती का जन्म भी इसी भूमि पर हुआ। यहाँ पर यह उल्लेख करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि खरतरगच्छ की अत्यन्त प्रभावशालिनी साधिका महासती श्री विचक्षण श्री जी एवं चरितनायक आचार्य श्री हस्ती के शिष्य रत्नवंश के वर्तमान अष्टम पट्टधर आचार्य श्री हीराचन्द्र जी महाराज की जन्म-स्थली होने का सौभाग्य भी पीपाड़ की धरा को प्राप्त है।

रियासतकाल में पीपाड़ के साथ ही रीयां का नाम जुड़ा हुआ था। पीपाड़ से कच्चे रास्ते से तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित रीयाँ उस समय अत्यन्त समृद्ध ग्राम था। कहा जाता है कि मारवाड़ में पड़े भीषण अकाल के समय जोधपुर के तत्कालीन महाराजा विजयसिंहजी को धनराशि की आवश्यकता हुई तो रीयाँ के श्रेष्ठिवर जीवनसिंह जी मुणोत ने मरुधरा की सहायता के लिए खुले दिल से स्वर्ण-मुद्रा से लदे छकड़ों की कतारें लगा दी। छकड़ों की कतार रीयाँ से जोधपुर तक जा पहुँची, जिसे देखकर जोधपुर नरेश अचम्भित रह गए।

रीयाँ का यह वर्णन कवि प्रतापमल ने इस प्रकार किया है —

परतख पीपाड़ पास, रीयाँ रंग भीनो शहर।
शक्ति की मेर सेती बस्ती गुलजार है।

विजयसिंह महाराज आय, सेठ को कही थी ऐसी
क्रोड़ एक रुपियां (मोहरा) हूँ की , मेरे दरकार है।
खोल के खजानो सेठ, छकड़ा से छकड़ा जोड़।
छोटो सो काम कीनो मुल्कां माहिजहार है॥

उस समय यह माना जाता था कि मारवाड़ में समृद्धि की दृष्टि से कुल अढाई घर हैं। एक घर रीयाँ के सेठों का, दूसरा बिलाड़ा के दीवानों का तथा आधा घर जोधपुर दरबार का। इतनी समृद्धि होते हुए भी रीयाँ के सेठ मुणोत साहब अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करते थे। यह रीयाँ गाँव पीपाड़ का ही सहोदर एवं आचार्य श्री हस्ती के नाना के गोत्री पूर्वजों का गाँव था।

वर्तमान काल में रीयाँ एक साधारण ग्राम के रूप में शेष है। पीपाड़ कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग धन्धों की दृष्टि से आस-पास के ग्रामों का केन्द्र बना हुआ है, जबकि पूर्वकाल में हुए राज-विप्लवों आदि के कारण रीयाँ के श्रेष्ठि-परिवार पीपाड़, कुचामन, अजमेर, पूना, सातारा आदि विभिन्न नगरों में रीयाँ की समृद्धि एवं प्राचीन गौरव को साथ लेकर जा बसे। रीयाँ के खण्डहर इस बात के साक्षी हैं कि यह कभी एक वैभवशाली नगर (कस्बा) रहा है।

• बोहरा कुल

पुण्यधरा पीपाड़ में विक्रम की बीसवीं शती में ओसवाल वंशीय श्रेष्ठिवर श्री दानमलजी बोहरा एक प्रतिष्ठित श्रावक थे। आपका परिणय पीपाड़ के ही श्री हमीरमलजी (सुपुत्र श्री गम्भीरमलजी गाँधी) की सुपुत्री नौज्यांबाई के साथ सम्पन्न हुआ। श्री दानमलजी बोहरा की पीपाड़ एवं निकटवर्ती ग्रामों में व्यापार-व्यवसाय में प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी छवि थी। आस-पास के ग्रामों में उनका लेन-देन का व्यवसाय था। अपने वाणिज्य-व्यवसाय के साथ आप धर्माराधन हेतु भी तत्परतापूर्वक सदैव सन्नद्ध रहते थे।

समय बीतने के साथ श्री दानमलजी बोहरा की धर्मनिष्ठ धर्मपत्नी श्रीमती नौज्यांबाई की कुक्षि से दो पुत्रों रामलाल एवं केवलचन्द ने तथा चार पुत्रियों सद्दाबाई, रामीबाई, सुन्दरबाई एवं चुन्नीबाई ने जन्म लिया। नौज्यांबाई सांसारिक दृष्टि से जितनी दूरदर्शी एवं कर्मठ गृहिणी थी उतनी ही संस्कार-दात्री माता के रूप में भी सजग थी। बोहरा परिवार एक संस्कारशील परिवार था। धर्म के प्रति सबमें अगाध आस्था थी। श्री दानमलजी बोहरा जैन मुनियों और आचार्यों के चातुर्मासों में पीपाड़ के अलावा रीयां, सोजत, मेड़ता आदि स्थानों पर जाकर भी धर्माराधन-तपाराधन की क्रियाएं निष्ठापूर्वक करते थे। आप पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी कर्तव्य भावना के साथ यथासमय करने हेतु उद्यत रहते थे। आपने अपनी चारों अंगजात कन्याओं का विवाह सुयोग्य एवं कुलीन परिवारों में किया। पुत्रों को उन्होंने वाणिज्य-व्यवसाय में निष्णात बनाने का प्रयत्न किया।

• दो असह्य आघात

संसार विचित्र है। यहां पर सब दिन सुख के नहीं होते हैं। सुख-दुःख की अवस्थाएं बदलती रहती हैं। महाकवि कालिदास ने कहा भी है-

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥-मेघदूत

संसार में किसी को न तो आत्यन्तिक (पूर्ण) सुख मिला है और न ही ऐकान्तिक दुःख। सुख एवं दुःख की दशा रथ के चक्र की भाँति परिवर्तनशील है।

दानमलजी बोहरा एवं उनके परिवारजनों ने न जाने कितने स्वप्न संजोये होंगे, एक ही पल में वे धराशायी हो गए। परिवार के मुखिया श्री दानमलजी बोहरा का आकस्मिक निधन हो गया। परिवार पर एक भीषण वज्रपात हुआ। पत्नी नौज्यां बाई पर यह असह्य आघात था। अभी दोनों पुत्रों रामलालजी एवं केवलचन्दजी का विवाह भी नहीं हुआ था। परिवार के अनेक कार्य शेष थे। किन्तु संसार में यह जीवन कब धोखा दे जाय, कुछ भी नहीं सोचा जा सकता।

बड़े पुत्र रामलालजी ने हिम्मत से काम लिया और अपनी सूझबूझ से पैतृक व्यवसाय का कार्य सम्हाला। स्वयं दुकान पर बैठना प्रारम्भ किया तथा अनुज केवलचन्दजी को उगाही के लिए भेजने लगे। माता नौज्यांबाई पुत्रों की सक्रियता को देखकर राहत की सांस लेती। कभी उन्हें सत्संस्कार और हिम्मत का पाठ पढ़ाती, तो कभी उनके भविष्य के सम्बन्ध में विचार करती।

शनैः शनैः रामलालजी की योग्यता समाज के अग्रणी लोगों को लुभाने लगी। उनका विवाह प्रतिष्ठित परिवार में सानन्द सम्पन्न हुआ। बोहरा परिवार में खुशियां छा गईं। माता नौज्यांबाई के दुःख को बांटने वाली वधू का घर में आगमन हुआ। परिवार में अब चार सदस्य हो गए थे। उत्साह एवं समृद्धि का पुनः संचार हो रहा था। पीपाड़ में रामलालजी बोहरा का घर सबकी आंखों में प्रतिष्ठा बढ़ा रहा था।

प्रकृति को यह सब स्वीकार्य नहीं था। बोहरा परिवार पर पुनः आकाश फट गया। परिवार-संचालन में अग्रणी एवं दक्ष रामलालजी का असामयिक देहावसान हो गया। यह घटना न केवल इस परिवार के लिए, अपितु सम्पूर्ण पीपाड़ के लिए अविश्वसनीय थी। कोई सोच भी नहीं सकता था, कि संकट से उबरते हुए इस परिवार पर पुनः भीषण कष्ट के बादल मंडरा जायेंगे। इस दर्दनाक घटना को न माता नौज्यां बाई सहन कर सकती थी और न ही नवविवाहिता वधू। लघु भ्राता केवलचन्दजी पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी। वे सुबक सुबक कर स्वयं आँसू बहायें, या माता और भाभीजी को ढांढस बंधायें, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था।

नौज्यांबाई ने पहले अपना पति खोया, अब बड़ा पुत्र चल बसा। दो-दो आघात सहने की ताकत कहाँ से लाए? धर्म के प्रति आस्था ने ही उन्हें यह हिम्मत दी। पुत्र केवलचन्द के प्रति अपनी कर्तव्य भावना को समझा। पुत्रवधू को भी हिम्मत देने वाली वही थी। नवोढा पुत्रवधू के वैधव्य का दुःख अकल्पित था। अभी उसके कोई सन्तान भी नहीं थी। पुत्रवधू के स्वप्नों का संसार मानो एक ही क्षण में टूट चुका था। उसके लिए अब संसार में आकर्षण का कोई कारण नजर नहीं आ रहा था। संसार से विरक्ति में ही अब उसे अपना लक्ष्य दिखाई दे रहा था। मन में यह विचार दृढ़ हो गया कि अब उसे गृहस्थ-जीवन का त्याग कर श्रमणी-जीवन को अंगीकार कर लेना चाहिए। यदा-कदा पीपाड़ में सन्त-सतियों के समागम के कारण केवलचन्दजी की विधवा भाभी के वैराग्य का बीज अंकुर के रूप में परिणत होने लगा। वृद्धा सास, देवर केवलचन्दजी एवं परिवारजनों ने खूब समझाया, किन्तु दृढ़ मनोबला को अपना हित श्रमणी-धर्म अंगीकार करने में ही दिखाई दिया। "सम्पूर्ण जीवन वैधव्य के दुःख में काटने की अपेक्षा तो वैराग्य की गंगा में स्नान करते हुए पंच महाव्रतों का पालन सर्वोत्कृष्ट है" - इस तथ्य से परिवारजन भी परिचित थे। अतः रामलालजी की विधवा पत्नी के दृढ़ निश्चय के समक्ष सबको झुकना पड़ा और एक दिन आचार्य श्री जयमलजी म.सा. की परम्परा में वे मुण्डित हो गईं।

अब स्व. दानमलजी बोहरा के परिवार में नौज्यांबाई और पुत्र केवलचन्द ये दो ही सदस्य रह गए थे। माता को पुत्र का एवं पुत्र को माता का सम्बल रह गया था। केवलचन्द जी ने अपने भाई के द्वारा संचालित कारोबार को

दुःखी मन से अपने हाथ में लिया। उनके पास पिता दानमलजी बोहरा के द्वारा जो जमीन जायदाद छोड़ी गई थी, उसमें एक मकान बोहरों के बास में था, एक हवेली एवं नोहरा नयापुरा में था। इसके अलावा श्री लक्ष्मी प्रतापमलजी भंसाली के मकान की बगल में एक पोल एवं दुकान थी।

• केवलचन्दजी पर दायित्व

भाई रामलालजी के असामयिक देहावसान के पश्चात् व्यवसाय का सम्पूर्ण कार्यभार केवलचन्दजी पर आ गया। दर्जियों के मोहल्ले के बाहर वे दुकान चलाते थे।

राजस्थानी संस्कृति में तीन-तीन पीढ़ियों तक अपनी बहन-बेटियों के पावन सम्बंधों के निर्वाह की परम्परा है। बोहरा केवलचन्द जी पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के साथ पारम्परिक व्यापार के संवर्धन में भी परिश्रम पूर्वक लगे रहे।

केवलचन्द जी सुडौल देहयष्टि एवं गौरवर्ण के धनी थे। वे हँसमुख एवं स्वस्थ थे। स्वभाव से धुन के पक्के, सन्तोषी एवं भजनानन्दी थे। पीपाड़ और समीपदर्ती ग्रामों में जहाँ कहीं भी उन्हें आमंत्रित किया जाता, वे उत्साहपूर्वक भजन-कीर्तन में पहुँच जाते । उनके सुमधुर कण्ठ एवं चित्ताकर्षक गायन के कारण आबालवृद्ध सभी श्रद्धालु भाव विभोर हो झूम उठते थे।

पीपाड़ के राजमान्य श्रेष्ठिवर श्री गिरधारीलालजी मुणोत युवक केवलचन्द जी के व्यक्तित्व एवं सद्गुणों से प्रभावित थे। वे निमाज के ठाकुर का राजकार्य पीपाड़ में सम्भालते थे। उन्होंने अपनी सुपुत्री रूपकंवर का विवाह केवलचन्द जी से करने का निश्चय किया। उन्होंने यह प्रस्ताव नौज्यांबाई एवं बोहरा परिवार के अन्य सदस्यों के समक्ष रखा। प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत हुआ एवं वैशाख शुक्ला पूर्णिमा विक्रम संवत् १९६४ को बोहरा केवलचन्द जी रूपकंवर के साथ परिणयसूत्र में बंध गए।

रूपकंवर के आने से नौज्यांबाई का दीर्घावधि से शोकमग्न चित्त आह्लाद से भर गया। केवलचन्द जी का व्यावसायिक दायित्व तो बढ़ा, किन्तु घर के कार्यों की देखभाल का भार कुछ कम हुआ। नौज्यांबाई, केवलचन्द एवं रूपकंवर का यह परिवार सुख की घड़ियों का आनंद लेने लगा। सास-बहू, पति-पत्नी एवं माता-पुत्र के रिश्ते पारस्परिक अगाध प्रेम के प्रतीक बन गए। समय बीतने के साथ संयोग से रूपादेवी गर्भवती हुई। सासू नौज्यांबाई को अवरुद्ध वंशवृक्ष के पल्लवित पुष्पित होने की आशा से अपार हर्ष हुआ और कई कल्पनाएँ मन में दौड़ने लगी।

• बोहरा परिवार पर पुनः अनभ्र वज्रपात

किसे पता था कि पौत्र-जन्म, वंशवृद्धि एवं भावी सुख की कल्पनाओं में लीन नौज्यांबाई के परिवार पर अकल्पनीय पहाड़ टूट पड़ेगा। पौत्र-जन्म के दो माह पूर्व ही पुत्र केवलचन्द जी विक्रम संवत् १९६७ के आश्विन माह में प्लेग की महामारी की चपेट में आ गए और वे अपनी वृद्धा माता एवं तरुणी भार्या को बिलखती छोड़कर परलोक चल बसे।

इस घोर वज्रपात से बोहरा परिवार मर्माहत हो गया। परिवार में कौन किसे ढाढस बंधाये, यही कठिन हो गया। नौज्यांबाई पहले से ही परिवार में अपने पतिदेव और बड़े पुत्र की मृत्यु की दुःखान्तिका से उबर ही नहीं पायी थी, अब इस त्रासदी से और विचलित हो उठी। पति-परायण रूपादेवी को जीवन के उषाकाल में ही अपने सौभाग्य सूर्य के अस्त हो जाने के कारण समग्र संसार घोर अंधकारपूर्ण लग रहा था। उसका स्वप्निल मधुर जीवन श्मशान

की सी विभीषिका में बदल गया। उन्हें सम्पूर्ण प्रणय, सुख-वैभव और दाम्पत्य का नन्दन-कानन मृग-मरीचिका सा प्रतीत हुआ। कोख में नवजीवन का अमृत प्रसून पल रहा है, किन्तु सौभाग्य का कल्पवृक्ष धराशायी हो गया। रूपा देवी शोक विह्वल हो उठी। चिन्ताओं से आच्छन्न भविष्य को देखने की उसमें हिम्मत न रही। अनेक दिन उसके भाव शून्यावस्था में बीते। एक दिन गर्भस्थ शिशु के प्रभाव से उनकी चिन्ता ने चिन्तन का मोड़ लिया। वह सोचने लगी- "क्या इस संसार में एकमात्र मैं ही अभागिनी हूँ?" वह अनुभव करने लगी कि इस महामारी के ताण्डव ने एक नहीं अनेक घरों को उजाड़ा है, अगणित सुहागिनों के सिन्दूर को धूलिसात् किया है। अनेक माताओं की ममतामयी गोदें सूनी हो गई हैं। कई अबोध नन्हें बालक अनाथ हो गए हैं। उसे लगा–'यह संसार दुःख-द्वंद्वों से घिरा हुआ है। जिस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का क्रम चलता रहता है, उसी प्रकार जन्म-मृत्यु, संयोग-वियोग और सुख-दुःख का चक्र गतिशील है। यह अवश्यम्भावी क्रम न कभी रुका है और न कभी रुकेगा।' इस प्रकार चिन्तन करते-करते रूपादेवी के हृदय में विशुद्ध परिणामों की विमल धारा प्रवाहित होने लगी। उन्होंने सोचा रोने, बिलबिलाने, व्यथित होने या विलाप करने से संसार के संयोग-वियोग के क्रम को रोका नहीं जा सकता। चिन्ता एवं विलाप दुःख को दूर नहीं करते, अपितु संघर्ष की शक्ति को घटाते हैं।

रूपादेवी ने संसार के इस सत्य को जान लिया कि जीवन अनित्य है, क्षण भंगुर है, इसका कोई भरोसा नहीं है। इस सत्य को जानने के साथ ही उनमें वैराग्य के भाव जागृत हो गए। मन हुआ दीक्षा ले ली जाए। यही सही उपाय है 'न वैराग्यात् परं भाग्यम्'–वैराग्य से बढ़कर कोई सौभाग्य नहीं। मौसी जी फूलांजी एवं भाभीजी (केवलचन्द जी के बड़े भ्राता रामूजी की धर्मपत्नी) ने भी यही मार्ग अपनाया था। वैराग्य की भावना ज्यों-ज्यों दृढ़ होती गई त्यों-त्यों रूपादेवी के दुःख के घने बादल छंटते गए। उनमें एक हिम्मत आई जीवन को सही मार्ग पर लगाने की। वैराग्य में बड़ी शक्ति है, किन्तु इस समय, जब दो माह पश्चात् वह माँ बनने वाली है, श्रमणी धर्म को अंगीकार नहीं किया जा सकता। उनका अब प्रथम कर्त्तव्य सन्तति को जन्म देना एवं उसका कुछ काल तक पालन-पोषण करना था। सासू नौज्यांबाई की अभिलाषा का भी ध्यान रखना था।

प्रसवकाल सन्निकट जानकर पुत्री रूपादेवी को पिता श्री गिरधारी लालजी मुणोत अपने घर ले आये। मुणोत साहब का भवन निमाज ठिकाने के पीपाड़ नगरस्थ कोट के पीछे के भाग में अवस्थित था। रूपादेवी के यहाँ आने से उनका बाहरी वातावरण भी बदल गया। ससुराल में सासू नौज्यांबाई को देखकर पति केवलचन्द जी की दारुण स्मृति कोमल चित्त को आच्छादित कर देती थी, तो नौज्यांबाई भी बहू को देखकर पुत्र की स्मृति से शोकाकुल हो उठती थी।

रूपादेवी ने परिस्थितियों को देखकर अब यह मानस बना लिया था कि प्रसवकाल के पश्चात् भी कुछ काल तक शिशु के पालन पोषण हेतु उसका गृहस्थ जीवन में रहना आवश्यक होगा। मातृ-कर्त्तव्य का निर्वहन करने हेतु रूपादेवी समुचित आहार-विहार का ध्यान रखती हुई बड़ी सावधानी से गर्भस्थ शिशु का सुचारु रूपेण संवर्धन करने लगी। वह अपना अधिकांश समय नमस्कार मंत्र के जाप एवं धर्म-ध्यान में व्यतीत करने लगी। इसका गर्भस्थ शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्राचीन काल में आदर्श माता मदालसा ने अपने पुत्रों को गर्भावस्था में ही प्रभु भक्ति का पाठ पढ़ाया था। गर्भावस्था के व्यवहार एवं शिक्षा का गर्भस्थ शिशु पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। सुभद्रा के गर्भस्थ बालक अभिमन्यु पर पिता अर्जुन के द्वारा सिखाई गई युद्ध विद्या का प्रभाव इसका स्पष्ट प्रमाण है। यहाँ माता के वैराग्य का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर एवं पुण्यशाली गर्भस्थ शिशु के पूर्व संस्कारों का प्रभाव माता पर फलित हो रहा

था।

- महान् विभूति का जन्म

पति केवलचन्द जी के देहावसान के दो माह पश्चात् रूपादेवी के जीवन में सूर्य का उदय हुआ।पौष शुक्लाचतुर्दशी विक्रम संवत् १९६७ तदनुसार १३ जनवरी सन् १९११ को दिन में १ बजकर ४० मिनट पर रूपादेवी को पिता श्री गिरधारीलाल जी मुणोत के कोट के पीछे के गृह में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। मुणोत परिवार एवं बोहरा परिवार में नूतन आशा का संचार हुआ। रूपादेवी के नयनों में भी हर्ष के आँसू छलक आए एवं दादी नौज्यांबाई भी वंशवृक्ष की निरन्तरता से पुलकित हो उठी।

बोहरा कुल

दानमलजी बोहरा (धर्मपत्नी श्रीमती नौज्यां बाई)

- **रामलाल जी**
  - नि:सन्तान, आपके असामयिक देहावसान के अनन्तर आपकी धर्मपत्नी ने पूज्य श्री जयमलजी म. की सम्प्रदाय में दीक्षा अंगीकार की
- **केवलचन्दजी**
  - पीपाड़ निवासी गिरधारीलालजी एवं चन्द्राबाई जी मुणोत की सुपुत्री रूपादेवी के साथ वैशाख पूर्णिमा विक्रम संवत् १९६४ को परिणय। केवलचन्दजी का विक्रम संवत् १९६७ के प्लेग से भाद्रपद/आश्विन में देहावसान। पौष शुक्ला १४ संवत् १९६७ को चरितनायक हस्ती का जन्म।
- **सद्दाबाई**
  - श्री शेषमलजी कोठारी हरसौर निवासी के साथ परिणय (२ पुत्रियाँ- श्रीमती आनन्दीबाई गाँधी थांवला एवं श्रीमती सुआ बाई मूथा पीपाड़)
- **रामीबाई**
  - बासनी ग्राम में विवाहित (श्री हीरालालजी रावतमलजी आदि ४ पुत्र)
- **सुन्दरबाई**
  - श्री चुन्नीलालजी मूथा पीपाड़ के साथ परिणय (२ पुत्र -श्री फूलचन्दजी एवं श्री भंवरलालजी)
- **चुन्नीबाई**
  - श्री हरकचन्दजी मूथा हिंगणघाट के साथ परिणय (परिवार मद्रास में)

यह शिशु विश्व की एक महान् विभूति था। गुणों के अनुरूप ही शिशु का नाम रखा गया 'हस्तिमल्ल'। यह नाम माँ रूपादेवी को गर्भकाल में आए स्वप्न के आधार पर सुझाया गया था, जो शिशु की दादीमाँ नौज्यांबाई एवं नाना गिरधारी लाल जी को खूब भाया। स्वप्न में माँ ने देखा कि एक हाथी उनके मुख में प्रवेश कर रहा है। माँ का यह स्वप्न बालक के नामकरण का आधार बना और आगे चल कर बालक ने इस नाम को सचमुच सार्थक किया। वह अखिल जगत की एक 'हस्ती' बना। श्वेत गजराज की मस्ती गुरुदेव हस्ती में स्पष्टतः परिलक्षित होती थी। वे केवल 'हस्ती' नाम से ही नहीं, अपितु हस्ती के पर्यायवाची शब्दों से भी पहचाने गए, यथा 'गजेन्द्र', 'गजमुनि' आदि। (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. स्वयं अपने काव्यों में 'गजमुनि' या 'गजेन्द्र' जैसे शब्दों का प्रयोग करते थे।)

बालक हस्तिमल्ल का जब जन्म हुआ तब निखिल विश्व पर द्वितीय विश्व युद्ध के काले कजरारे बादल मंडरा रहे थे। ऐसे समय मानवता की अस्मिता को अक्षुण्ण रखने हेतु १३ जनवरी को आपका जन्म एक और विशेषता लिए हुए था। इस दिन सूर्य कर्क रेखा से मकर रेखा की ओर गमनशील था। मकर संक्रान्ति एक शाश्वत दिवस है। हिन्दी, अंग्रेजी सभी पंचांगों के अनुसार मकर-संक्रान्ति सदैव १४ जनवरी को होती है। इस शाश्वत दिवस की तैयारी से जुड़ा हुआ आपका जन्म शाश्वत लक्ष्य की प्राप्ति का संकेत दे रहा था। तीसरी बात यह कि आपका जन्म चतुर्दशी को हुआ जो तप-त्याग का संकेत देती है। चतुर्दशी धार्मिक दृष्टि से एक पर्व दिवस है तो 'चांदणी चौदस रो जायो' कहावत के अनुसार लौकिक दृष्टि से शुक्ला चतुर्दशी को जन्मा बालक पुण्यशालिता का धनी माना जाता है। चौथा तथ्य यह है कि शुक्ला चतुर्दशी के पश्चात् पूर्णिमा का आगमन होता है। यह चन्द्रमा की कला के पूर्ण विकास की पूर्वावस्था है। यह दिवस मेधावी शिशु हस्ती के भावी निर्मल आध्यात्मिक विकास का संकेत कर रहा था। इस तरह विविध आधारों से बालक हस्ती का जन्म न केवल बोहरा कुल के लिए, न केवल पीपाड़ के लिए, न केवल मारवाड़ के लिए अपितु सम्पूर्ण देश, समाज एवं प्राणिजगत् के लिए महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो रहा था।

हस्तिमल्ल नाम अनोखा नाम था। यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं, अपितु भावी पूर्वाभास था। 'शक्रस्तव' में देवेन्द्र ने तीर्थंकर को 'गन्धहस्ती' की उपमा दी है। उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में धवल हस्ती का उल्लेख है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भद्रहाथी को सर्वोत्तम माना है। चतुरंगिणी सेना में हस्ती प्रमुख होता है। बालक हस्ती के चरणों में 'पद्म' का आकार बना हुआ था, जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार प्रबल पराक्रमी एवं प्रखर प्रज्ञावान का लक्षण माना जाता है। यह हस्ती अगणित नाभिकीय परमाणु बमों की प्रलयंकारी शक्ति को शमित करने वाली अहिंसा की अनन्त ऊर्जा से युक्त महातेजस्वी था।

• कुल का एकमात्र चिराग

वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या,
जिस पथ पर बिखरे शूल न हों।
नाविक की धैर्य कुशलता क्या,
धाराएं यदि प्रतिकूल न हों।

विपदाओं में ही महानता जन्म लेती है। बालक हस्ती न अपने दादा का मुख देख सके, न ताऊ का और न ही पिता का। दादी नौज्यांबाई एवं माता रूपादेवी के आहत हृदयों को आह्लाद से भरने के लिए ही मानों हस्ती का जन्म हुआ था। दादी नौज्यां एवं माता रूपा के लिए अब हस्ती ही एक आशा की किरण थी, वही अपने प्रपितामह के कुल का एक मात्र चिराग था। उसका लालन-पालन दोनों ने बड़े दुलार एवं प्यार पूर्वक किया।

केवलचन्द जी बोहरा जब प्लेग की महामारी में दिवंगत हुए तब पीपाड़ के अनेक ऐसे लोग भी काल कवलित हो गए, जिन पर बोहरा परिवार का ऋण था। दूसरी बात जिनके पास इस परिवार का पैसा था उसकी उगाही करने वाला भी कोई न था। नौज्यांबाई ज्यों-त्यों कर पुरानी सम्पत्ति के आधार पर घर का खर्च चलाती थी। फिर उन्होंने एवं रूपादेवी ने घर पर चरखा चलाकर सूत कातना प्रारम्भ किया। इससे परिवार का आत्म-सम्मान एवं स्वावलम्बन भी सुरक्षित रहा तथा समय भी आसानी से गुजरने लगा।

• विरक्ता माता रूपादेवी

जननी रूपादेवी के मन में पुत्र के प्रति वात्सल्य था, तो वैराग्य की भावना भी अटल थी। एक ओर बालक हस्ती को बड़ा होते देख वह मन ही मन प्रसन्न थी तो दूसरी ओर वैराग्य का भाव भी हिलोरे ले रहा था। उसे लगता था कि वह शीघ्र ही सासूजी से अनुमति लेकर श्रमण धर्म में दीक्षित हो जाएगी। परन्तु यह इतना सहज नहीं था। नौज्यांदेवी कहती थी –"कुल का उजियारा शिशु पढ़ लिखकर योग्य बने तब तुम दीक्षा लेना।" रूपादेवी को इतना धैर्य कहाँ था? उसके सामने दो उदाहरण थे जो वैराग्य की उत्कट भावना के सम्बल बने रहे। एक तो उनकी मौसीजी महासती फूलांजी एवं दूसरी उनकी अपनी जेठानी, जिन्होंने अपने पति रामूजी के देहान्त के पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

रूपादेवी की दीक्षा-भावना अत्यंत प्रबल थी। एक बार वह शिशु हस्ती को अपनी दादी के पास छोड़कर नयापुरा के नोहरे में गई एवं वहाँ केश कर्तन कर श्वेत वस्त्र धारण कर लिए। यह नोहरा स्थानक के पास ही था। रूपादेवी पीहर एवं ससुराल में किसी को बताये बिना साध्वी बन जाना चाहती थी, किन्तु वह सफल नहीं हो सकी। ऐसा सम्भव भी नहीं था। उन्हें समझाया गया कि इस प्रकार साध्वी नहीं बना जा सकता। रूपादेवी के पास न रजोहरण था और न ही पात्र, न ही उन्हें साध्वी-मंडल का सान्निध्य प्राप्त था। इसके पूर्व भी एक बार रूपादेवी जी ने दीक्षित होने का प्रयास किया। रूपादेवी की मौसी फूलांजी ने जयमल सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की थी। उनका पीपाड़ से सोजत विहार हुआ था। रूपादेवी के मन में आया कि वे सोजत जाकर महासती जी से दीक्षा की प्रार्थना करें। महासती जी ने रूपादेवी को समझाया कि इस प्रकार घर वालों की अनुमति के बिना दीक्षा नहीं दी जा सकती है।

ये घटनाएं इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि बालक हस्ती की माँ रूपादेवी पर वैराग्य का रंग खूब गहरा चढ़ा हुआ था। वह श्रमणी बनने के लिए पुत्र के प्रति ममता का भी परित्याग करने के लिए तत्पर थी। रूपादेवी का संसार के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। पति केवलचन्द जी का स्वर्गवास हुआ तभी से उनके मन में संसार त्याग कर साध्वी बनने की तरंगें हिलोरें ले रही थीं। सोजतरोड़ जाना एवं वेष परिवर्तन करना उनके वैराग्य की उत्ताल तरंगों का ही परिणाम था।

परिवारजनों के द्वारा आग्रह एवं प्रेमपूर्वक यह बोध कराया गया कि इस समय पुत्र हस्ती के पालन-पोषण एवं शिक्षण का कर्त्तव्य मुख्य है, अतः उसका निर्वाह किया जाना आवश्यक है। उसके बाद दीक्षा की बात सोची जा सकती है। रूपादेवी आखिर तो माँ थी ही। परिवार जनों के प्रेमपूर्वक समझाने से उसका पुत्र के प्रति वात्सल्य उमड़ आया और उसने कुछ समय पुत्र की परवरिश में बिताने का निश्चय किया।

• पौशाल की शिक्षा

बालक हस्ती अब लगभग पाँच वर्ष का हो गया था। उसे पौशाल (चटशाला) में पढ़ने भेजा गया। गाँवों में पढ़ने के लिए जो शालाएं चलती थीं, उन्हें पौशाल कहा जाता था। पौशालों में लिपि, लेखन एवं गणित का ज्ञान कराया जाता था। हस्तिमल्ल ने पौशाल में शीघ्र ही वर्णमाला, बारहखड़ी के अक्षर लिखना, पढ़ना एवं बोलना सीख लिया। गिनती सीखने के बाद पहाड़े, जोड़-बाकी के हिसाब भी सीखे। हस्तिमल्ल की बुद्धि कुशाग्र थी, स्मरणशक्ति तेज थी एवं पौशाल जाने में नियमितता थी। वह शीघ्र ही अपने गुरुजनों का प्रिय छात्र बन गया। पौशाल में उसने पुस्तक पढ़ना, गुणा-भाग करना एवं महाजनी के हिसाब करना भी सीख लिया। पौशालों में उस समय सद्आचरण से सम्बद्ध दोहे आदि भी कंठस्थ कराये जाते थे, जिन्हें याद करने में हस्ती अग्रणी रहा।

पौशाल की महाजनी एवं व्यावहारिक ज्ञान के साथ दादी नौज्याँ बाई एवं माता रूपा ने बालक को धार्मिक एवं चारित्रिक शिक्षण भी दिया। वे हस्ती को चारित्रिक अभ्युदय की बातें बताया करती थीं। धार्मिक ज्ञान सीखने के लिए बालक हस्ती हलवाई बाजार के उपाश्रय में श्री धूलचन्द जी के पास जाता था। उसने धूलचन्द जी से लोगस्स तक सामायिक का पाठ सीखा। बाल्यावस्था में हस्ती को व्रत-प्रत्याख्यान, सामायिक-प्रतिक्रमण और नमस्कार मंत्र के जाप की महत्ता का बोध होने लगा।

• बाल-लीलाएँ

हस्तिमल्ल का बचपन प्रायः नाना एवं दादी के घर में ही बीता। उन्हें जिस प्रकार दादी नौज्यांबाई एवं माता रूपादेवी का वात्सल्य प्राप्त था उसी प्रकार नाना गिरधारी लाल जी मुणोत का भी पूरा वात्सल्य प्राप्त था। एक बार शीत ऋतु में जब बालक हस्ती अपने ननिहाल में था तब उसके खेसले (चद्दर) का पल्ला आग में गिर गया और वह आग में धू-धू कर जलने लगा तभी नाना गिरधारीलाल जी मुणोत दौड़ कर आये एवं बालक हस्ती को बचाया।

बालक हस्ती अन्य बच्चों के समान खेलकूद में भी भाग लेते थे। वे बाड़े में झूला झूलते थे एवं प्रातःकाल मक्खन और ठण्डी रोटी का नाश्ता करते थे। कुत्ते के पिल्लों को खिलाने में उन्हें बहुत आनंद आता था। पिल्ले जैसे प्राणियों से उन्हें बड़ा प्यार था। वे पिल्लों को दूध-रोटी या अन्य खाद्य वस्तुएं बड़े प्रेम से खिलाते थे।

एक बार पड़ौस के एक सूने घर में कुत्ते के पिल्लों के चीखने-कराहने की ध्वनि सुनाई दी। हस्ती से यह क्रन्दन सहा नहीं गया। वे दौड़ कर शब्दभेदी बाण की तरह घटना-स्थल पर पहुंचे तो देखा कि उनके बाल-साथी पिल्लों को सता रहे हैं। कोई उन पर पत्थर मार रहा है तो कोई उठा कर उन्हें जोर से नीचे पटक रहा है। कोई उनकी पूंछ पकड़ कर खींच रहा है तो कोई उनके लात मार रहा है। पिल्ले इन हरकतों को सहन नहीं कर पाने के कारण रुदन-क्रन्दन कर रहे थे। बाल साथी इन पिल्लों को तंग कर आनन्दित हो रहे थे। बालक हस्ती यह देखकर करुणित हुआ और दौड़ कर एक पिल्ले को उठाया, उसे छाती से लगाया एवं अपने साथियों से बोला-"जैसे हमारे में जीव है, उसी प्रकार इन पिल्लों में भी जीव है, हमें जिस प्रकार कोई सताये या मारे-पीटे तो हमें दुःख या पीड़ा होती है उसी प्रकार इन पिल्लों को सताये जाने पर इन्हें भी पीड़ा का अनुभव होता है। इन पिल्लों को सताना छोड़ दो। देखो यह पिल्ला जो मेरी गोद में है, कितना खुश, शान्त एवं निर्भय हो गया है। इन पिल्लों को भी अब निर्भय होने दो।" बालक हस्ती के द्वारा इस प्रकार के वचन कहे जाने पर सबने पिल्लों को सताना छोड़ दिया। इसके पश्चात् बालक हस्ती के कहने पर सब साथी उन पिल्लों को दूध-रोटी खिलाने में जुट गए।

बाल्यावस्था में भी हस्ती के हृदय की करुणाशीलता का यह अनुपम उदाहरण है। इस घटना के समय बालक हस्ती लगभग सात वर्ष के थे। इस अवस्था में करुणा का यह भाव तथा अपने साथियों पर उनका ऐसा प्रभाव उनके विलक्षण व्यक्तित्व को प्रकट करता है। इस घटना से बालक हस्ती में कुशल नेतृत्व के गुण का भी बोध होता है।

बालक हस्ती बचपन में पारस्परिक कलह को दूर करने में भी प्रवीण रहे। इस सम्बंध में एक घटना उपलब्ध हुई है। गांव के बहुत से बालक नीम के पेड़ की छांव में कबड्डी का खेल खेल रहे थे। यह खेल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का एक नमूना है। इसमें प्राणायाम से लेकर शरीर के सभी अवयवों का अच्छा व्यायाम हो जाता है। कबड्डी खेलते-खेलते बच्चों में विवाद हो गया। हुआ यह कि एक दल का खिलाड़ी दूसरे दल के पाले में कबड्डी-कबड्डी बोलता हुआ गया तब लौटते समय मध्य रेखा पर आने से पूर्व उसका श्वास टूट गया। इसका लाभ उठाने के लिए उस दल के खिलाड़ियों ने उसे छू लिया। किन्तु यह खिलाड़ी पुनः कबड्डी-कबड्डी बोलता हुआ अपने पाले में आ गया। इस खिलाड़ी का यह दावा था कि इसका श्वास नहीं टूटा, जबकि दूसरे दल के खिलाड़ी यह कहते हुए अड़ गए कि इसका श्वास टूट गया था। यह विवाद चल ही रहा था, तभी वहां उपस्थित बालक हस्तिमल्ल पास में पड़ी निम्बोलियाँ उठाकर बोला—"ये निम्बोलियां खाने पर कैसी लगती हैं बताओ।" एक साथी ने कहा-'निम्बोली कोई खायी जाती है, इससे तो मुंह कड़वा हो जाता है।' हस्ती ने अपनी प्रतिभा से सहज न्याय करते हुए कहा—

"जैसे निम्बोली खाने से जीभ कड़वी हो जाती है, वैसे ही झूठ बोलने पर मुँह कड़वा ही होगा और पाप भी लगेगा।" हस्ती की यह बात सुनकर सभी गम्भीर हो गए। झूठ बोलने वाला वह खिलाड़ी बालक आगे आया और बोला-'हस्ती मैंने झूठ बोला, मेरा श्वास टूट गया था, किन्तु मैं पुनः कबड्डी-कबड्डी बोलता हुआ अपने पाले में आ गया।' इस प्रकार हस्ती भैया के सच्चे एवं सहज-न्याय की प्रतिभा से सभी बालक अचम्भित थे।

बाल्यावस्था में पीपाड़ से फलौदी (मेड़ता रोड़) के मेले में गए। वहां शान्तिनाथ के मन्दिर में ठहरे। रेल यात्रा भी एक बार की। सम्भवत: पीपाड़ रोड से मेड़तारोड़ की यात्रा ट्रेन से की। वे एक विवाह समारोह में बैलगाड़ी से रणसीगाँव गए। ननिहाल में जाते रहते थे। कभी फूफाजी श्री चुन्नीलालजी मुथा एवं भुआजी जब अमरावती से आते तो वे वहाँ भी जाया करते थे।

बाल्यावस्था में ही हस्ती का व्यवहार एक समझदार एवं परिपक्व विचारों के व्यक्ति का सा था। वह जितना करुणा-परायण था उतना ही न्यायप्रिय भी। दूसरों का दुःख उससे सहा नहीं जाता था।

जब हस्तिमल्ल ७ से ८ वर्ष की उम्र के थे तब अपने एक बाल-सखा तेजमल बोहरा के साथ बल परीक्षा करने लगे। बल परीक्षा में कंधे पर हाथ रखकर कंधा झुकाना था। बालकों में यह जांच हुआ करती थी कि घी किसने अधिक खाया? बालक हस्ती एवं तेजमल में यही जांच हो रही थी। इस खेल में जब हस्तिमल्ल ने तेजमल के कंधे पर हाथ रखकर उसे झुकाया तो वह अचानक गिर गया और हस्तीमल की जीत में सब साथी उसकी जयकार करने लगे और उसे उन्होंने अपनी भुजाओं पर उठा लिया। किन्तु इन साथियों के कंधे पर बैठा हस्ती का मन जमीन पर गिरे अपने साथी तेजमल की ओर था। उसे जीतने की प्रसन्नता नहीं थी, बल्कि मित्र के गिरने का खेद हुआ। उन्होंने सोचा यह कैसा खेल, जिसमें खिन्नता हो। इससे बालक हस्तिमल्ल की खेल से अरुचि हो गई, और इस प्रकार के खेल में उनका कोई मिठास नहीं रहा। **चरितनायक ने स्वयं अपने संस्मरणों का दैनन्दिनी में उल्लेख किया है कि तेजमल भाई के गिरने से उन्हें "खेल में मिठास नहीं रहा।"** बल-प्रयोग एवं साथी

के गिरने से हुई विरक्ति से अरिहन्त अरिष्टनेमि एवं वासुदेव श्रीकृष्ण के बीच हुए बल-परीक्षण की घटना जीवन्त हो उठती है। इस घटना से चरितनायक की विचारशैली भी परिलक्षित होती है, कि दूसरों को गिराकर जीतने में सच्ची जीत नहीं है।

बालक हस्तिमल्ल का बचपन कठिन परिस्थितियों में अवश्य बीता-किन्तु अपनी समझ, प्रतिभा, करुणा आदि विभिन्न गुणों के कारण वह अपने बाल सखाओं में बड़े आदर की दृष्टि से देखा गया। सात-आठ वर्ष की उम्र कोई अधिक नहीं होती। उसमें नेतृत्व, न्याय एवं समझदारी की छाप उस समय भी दिखाई दे रही थी।

• परिवार के प्रति दायित्व बोध

परिवार की विषम आर्थिक परिस्थितियों से धैर्यपूर्वक जूझने एवं उसका समाधान खोजने का अदम्य उत्साह भी बालक हस्ती में विद्यमान था। जब दादी नौज्यांबाई एवं माता रूपादेवी चरखे पर सूत की पूनी कातती तो हस्तिमल्ल को यह अच्छा नहीं लगता था। वह स्वयं श्रम करके घर का खर्च चलाना चाहता था। दादी एवं माता के द्वारा किये गए श्रम के संस्का९ बालक हस्ती को श्रम करने के लिए प्रेरित करते थे। अत: विपदाएं साहस भी देती हैं और धैर्य भी। हस्तिमल्ल में इस बालवय में जो धैर्य एवं साहस था वह उसके भावी व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा था। यह काल एवं भाग्य का चक्र है जिसमें कभी अखूट सम्पदाएं होती हैं तो कभी विपदाओं का पहाड़ टूट पड़ता है। हस्तिमल्ल के दादा दानमल जी बोहरा एवं पिता केवलचन्द जी के पास जो बोहरगत का व्यवसाय था वह उनके दिवंगत होने के साथ ही डूब गया। मणिहारी की उधारी भी कौन किससे मांगता, कौन उगाहता? इस कारण देने में समर्थ लोगों ने भी उधारी नहीं लौटाई। नौज्यांबाई एवं रूपादेवी पर विकट परिस्थिति आ पड़ी। अचल सम्पत्तियों से दैनिक खर्च नहीं चलाया जाता। इसलिए उसकी व्यवस्था में दादीजी एवं माताजी का सहयोग करने हेतु बालक हस्ती भी उद्यत हो गया। स्वाभिमानी इस परिवार पर हस्ती के नाना गिरधारीलाल जी मुणोत की भी पूरी देखरेख थी। वे अपने स्तर पर समस्या का निराकरण करने का प्रयास करते रहते थे।

• सन्त-सती का प्रथम सुयोग

विक्रम संवत् १९७३ में रूपादेवी एवं पुत्र हस्ती को एक सुयोग प्राप्त हुआ। जैनाचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री बड़े धनकुंवर जी का चातुर्मास पीपाड़ में हुआ। रूपादेवी के लिए यह स्वर्णिम संयोग था। उसने इसका भरपूर लाभ उठाया। वह नित्य प्रति प्रवचन में जाती एवं बालक हस्ती को भी साथ ले जाती। बालक भी ध्यान से महासतीजी के उपदेश का श्रवण करता था। इससे रूपादेवी की वैराग्य भावना तो पुष्ट हुई ही, बालक हस्ती पर भी अच्छे संस्कारों का बीजारोपण हुआ। महासतीजी का मां- बेटे पर पूर्ण आत्मीय भाव था। उनके मन में विश्वास हो गया था कि भविष्य में ये दोनों श्रमण पथ पर आरूढ होंगे।

इसी वर्ष आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. संवत् १९७३ का जोधपुर चातुर्मास पूर्ण कर विहार करते हुए पीपाड़ पधारे। यहाँ पर अस्वस्थता के कारण कुछ दिन विराजे। रूपादेवी ने इस समय भी प्रवचन-श्रवण एवं सत्संग का लाभ उठाया। बालक हस्ती भी माता के साथ जाता एवं कुछ न कुछ सत् संस्कार अवश्य ग्रहण करता। किसे पता था कि रूपादेवी एवं बालक हस्ती आगे चलकर आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की शिष्यता अंगीकार कर आत्मकल्याण का पथ अपनायेंगे और मुनि हस्ती लाखों लोगों का प्रतिबोधक बन जायेगा।

• ननिहाल पर कहर

विक्रम संवत् १९७४ के कार्तिक माह में हस्तिमल्ल के नाना गिरधारीलालजी मुणोत के परिवार पर कराल काल का भीषण प्रहार हुआ। मारवाड़ में उस समय प्लेग का प्रचण्ड प्रकोप आया। प्लेग के इस प्रकोप ने अगणित सधवाओं की मांग का सिन्दूर पौंछ डाला, सहस्रों माताओं की गोद सूनी कर दी। अनेक पुरुष अपनी अर्द्धांगिनियों को अपने हाथों चिता की आग में जला, स्वयं जीवन भर चिन्ता की आग में जलने की स्थिति में पहुंच गए। अबोध शिशु अपने माता-पिता के प्यार से वंचित हो अनाथ हो गए। परिवार के परिवार धराशायी हो गए। मृत्युभय से कुछ लोग सुदूर ग्राम-नगरों में पलायन कर गए। जो रहे, उन पर सदैव खतरा मंडराता रहा। ऐसा भी हुआ जो मृतक की अर्थी उठा कर जा रहे थे, वे श्मशान से लौट कर नहीं आए। गांव में चिताओं की आग ठंडी नहीं हो पाती थी। पीपाड़ भी इससे अछूता नहीं रहा। मुणोत परिवार पर इस प्लेग का घातक आक्रमण हुआ। बालक हस्ती जो लगभग सात वर्ष के थे, ने अपने आदरणीय नाना गिरधारीलाल जी मुणोत को काल कलवित होते देखा। यही नहीं उस समय उनकी नानी श्रीमती चन्द्राबाई, मामाजी, मामीजी, मौसी, बड़ी नानीजी (रूपा माँ की दादी जी) भी उस भीषण प्लेग के द्वारा अपनी चपेट में लील लिए गए। रूपा देवी सबकी बड़ी तत्परता से सेवा कर रही थी, किन्तु आयुष्य पूर्ण हो जाने पर कौन किसे बचा सकता है।

माँ रूपा के जीवन पर यह दूसरा बड़ा प्रहार था, जिसने पीहर का सम्पूर्ण सम्बल एक साथ छीन लिया। कोई भी तो नहीं बचा। परिवार के ११ सदस्य एक साथ प्रयाण कर गए। अब पीहर में कोई आंसू बहाने वाला भी न था। रूपा को जीवन की क्षण-भंगुरता एवं नश्वरता के ताण्डव नृत्य ने रूपादेवी के अन्तर्मानस को झकझोर दिया। वैराग्य पर दृढ़ विश्वास हो गया।

• सत्य का बोध

हस्तिमल्ल पर भी इस घटना ने सत्य की गहरी छाप छोड़ी। जब वह गर्भ में था तब पिता केवलचन्द जी के देहावसान की घटना ने अवचेतन मन पर देह की अनित्यता का संस्कार छोड़ा था, अब वह संस्कार अपने नाना एवं उनके परिवार पर हुई मृत्यु-विभीषिका से दृढ़तर हो गया। उनमें जीवन एवं मृत्यु के गूढ़ सत्य को जानने के प्रति तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। संसार की असारता एवं पार्थिव शरीर की विनाशशीलता का उन्हें बोध हो गया। 'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' जन्म के साथ मृत्यु का सम्बंध अटल है, वे इस सत्य को जान गए। वे सोचने लगे कि इस संसार में कोई रहने वाला नहीं, सबको जाना है । एक दिन उन्हें भी इसका सामना करना होगा। इस प्रकार उन्होंने जीवन की सार्थकता को खोजना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें यह भी समझ में आ गया कि उनकी माता क्यों वैराग्योन्मुखी है? क्यों वे गृहस्थ जीवन का परित्याग कर साध्वी बनना चाहती हैं?

कितना सम्पन्न था उनका ननिहाल! पीपाड़ में कैसा वर्चस्व था! कहाँ गया वह सब? पूरे परिवार में उत्साह एवं आह्लाद था, किन्तु देखते ही देखते सब उजड़ गया। नानाजी का वात्सल्य अब मात्र कथा-शेष रह गया था। पहले हस्तिमल्ल वहाँ दौड़ कर जाता था, अब कहाँ जावे? क्यों जावे? किसके पास जावे?

जो दृष्टि या ज्ञान सुदीर्घ साधना से प्राप्त नहीं होता, अनेक शास्त्रों के अभ्यास एवं मंथन से प्राप्त नहीं होता वह ज्ञान बालक हस्ती को ननिहाल की इस घटना से हो गया। सम्भव है बालक हस्ती के वैराग्य में इस घटना ने बहुत बड़ा कार्य किया हो।

गिरधारीलालजी मुणोत पीपाड़ में निमाज ठिकाने का कार्य देखते थे। उनके खेती का धंधा भी था। 'हाली' से खेती कराते थे। खूब सम्पत्ति थी। किन्तु प्लेग के प्रलय ने सर्वनाश कर दिया। घर एवं सम्पत्ति पर राज्य ने कब्जा कर लिया। रूपा देवी एवं बालक हस्ती को राज्य ने उसमें से कुछ भी नहीं दिया। सत्य द्रष्टा रूपा देवी एवं उनके लाड़ले सुपुत्र को इसकी चाह भी नहीं थी –'विरक्तस्य तृणं जगत्'।

• दादी भी दिवंगत

प्लेग के प्रलय के कुछ समय पश्चात् बालक हस्ती की प्यारी दादी नौज्यांबाई अचानक अस्वस्थ हो गईं। वह निरन्तर असह्य आघातों और अपनी अवस्था के कारण क्षीणकाय हो चुकी थी। दादी की अस्वस्थता से माता रूपा देवी एवं बालक हस्ती को चिन्ता हुई। उन्होंने वैद्य को बुलाकर दिखाया, समुचित उपचार भी कराया, किन्तु दादीजी के स्वास्थ्य पर कोई अनुकूल प्रभाव न पड़ा। 'अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि'– आयु बीत जाने पर धन्वन्तरि वैद्य भी कुछ नहीं कर पाते। बहू रूपा सासू जी को नित्य प्रति बृहदालोयणा, प्रतिक्रमण, भजन आदि सुनाने लगी। पौत्र हस्ती भी दादीजी के पास बैठ कर उन्हें अच्छी-अच्छी बातें बताता। दादीजी को कभी अपने हाथ से दवा देता, दूध पिलाता। पोशाल के पश्चात् वह अपना अधिकांश समय दादीजी के पास बिताता एवं उन्हें मोह एवं ममता से दूर रहकर वीतराग प्रभु के ध्यान और नमस्कार मंत्र के जाप में लीन रहने की बात कहता। नौज्यांबाई अपने पौत्र एवं बहू द्वारा की गई सेवा-सुश्रूषा से प्रसन्न होती। चित्त को समाधि में रखने की बातें, स्तवन एवं भजन भी उन्हें अच्छे लगते।

जब एक दिन नौज्यांबाई की तबीयत अधिक बिगड़ गई, श्वास लेने में भी कठिनाई होने लगी, तो पड़ौसियों एवं समाज के गणमान्य लोगों से परामर्श कर रूपादेवी ने नौज्यांबाई की भावनानुसार संथारा करा दिया। संथारा पहले सागारी कराया एवं फिर शरीर की स्थिति देखकर जीवनपर्यन्त के लिए करा दिया गया। आस-पड़ौस के एवं समाज के अनेक लोग नौज्यांबाई के दर्शन करने आए। बालक हस्ती समाधिस्थ दादी को एकटक देखता तथा उसे लगता कि मृत्यु की यह सर्वश्रेष्ठ कला है। बालक हस्ती ने इस बात को अन्तर्हृदय से समझ लिया था कि मृत्यु सुनिश्चित है, वह प्लेग जैसे बाह्य प्रकोप के कारण भी हो सकती है तो वृद्धावस्था आदि अन्य कारणों से भी हो सकती है। अतः जब मृत्यु सन्निकट हो तो संथारापूर्वक समाधिस्थ होकर मृत्यु का आलिङ्गन करना ही उचित है। लगता है संथारे का यह संस्कार बालक के अन्तर्मन में गहराई से बैठ गया हो और जो आगे चलकर पुष्ट होता हुआ निमाज में फलीभूत हुआ हो।

दादी नौज्यांबाई ने संथारे के दूसरे दिन नमस्कार मंत्र का मन्द स्वर में उच्चारण करते हुए हिचकियां लीं एवं बड़ी शान्तमुद्रा में देह का त्याग कर दिया। परिवार में अब मात्र दो प्राणी ही रह गए थे। तेजस्वी, शान्त एवं विवेकशील बालक हस्ती और उनकी श्रद्धेया एवं प्रेरणाप्रदात्री माता। माता एवं पुत्र दोनों जीवन के इस शाश्वत सत्य से पूर्णतः परिचित हो गये थे कि यह जीवन लीला कभी भी समाप्त हो सकती है, इसका विनश्वर होना सत्य है। इसलिए दोनों का लक्ष्य तप-त्याग एवं संयम के पथ को अपनाने की ओर केन्द्रित हो गया था, तथापि अभी दीक्षा-ग्रहण करने का समय नहीं आया था। क्योंकि परिवार में हस्ती की देखभाल के लिए माता का रहना आवश्यक था।

माता ने बोहरा परिवार के अन्य सदस्यों पर आश्रित होने की अपेक्षा स्वावलम्बन को महत्त्व दिया। इसलिए उन्होंने चरखा चलाकर भी आजीविका की व्यवस्था का क्रम जारी रखा। बालक हस्ती भी श्रम में भागीदार बनना

चाहता था। अतः घूम-घूमकर मणिहारी का सामान बेचा। माता को यह प्रक्रिया नहीं जंची। वस्तुतः माता रूपा देवी चाहती थी कि उनका लाडला हस्ती व्यापार में प्रवृत्त न होकर अपना अध्ययन जारी रखे तथा शेष समय माता के साथ धर्म-क्रियाओं में व्यतीत करे। अतः उसने सुझाव दिया कि पिछले आठ वर्षों से मणिहारी की विपुल सामग्री सुरक्षित रखी है, क्यों न इसे किसी व्यापारी को बुलाकर अन्य दो तीन ईमानदार एवं अनुभवी व्यापारियों की मध्यस्थता में बेच दिया जाए। हस्ती ने ऐसा ही किया। वह पौशाल से लौटते समय दुकानदारों को बुला लाया और पिता केवलचन्द जी के देहावसान के पश्चात् से बन्द दुकान का मणिहारी का सारा सामान बेच दिया गया। इससे पुराने सामान का उपयोग भी हो गया तथा जीवन यापन भी सुकर हो गया।

• सन्त-सतियों का पुनः सुयोग

प्रचण्ड विभीषिकाओं के पश्चात् पीपाड़ में सन्तों एवं साध्वियों का पदार्पण हुआ, जिससे यहाँ का वातावरण धर्ममय हो गया। महासती तीजांजी महाराज को रुग्णता के कारण दीर्घावधि तक पीपाड़ में ही विराजना पड़ा। उनके पुनीत सान्निध्य में रूपा देवी ज्ञानार्जन, पुनरावृत्ति एवं तप-साधना में आगे बढ़ती रही।

इसी समय वि.संवत् १९७५ (सन् १९१८) में आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज की सम्प्रदाय के सन्त स्वामीजी श्री भोजराज जी महाराज, श्री अमरचन्द जी महाराज एवं श्री सागरमल जी महाराज ठाणा ३ पीपाड़ पधारे और अस्वस्थ महासती श्री तीजांजी को दर्शन दिए। इन तीनों तपःपूत श्रमणों के दर्शन एवं प्रवचन-श्रवण से रूपा देवी ने चिरकाल से संजोये हुए वैराग्य भाव को और संवारा। इन तीनों सन्तों को जब यह विदित हुआ कि रूपादेवी संसार से विरक्त हो दीक्षा ग्रहण करने के लिए लालायित है, किन्तु अपने पुत्र की अल्पावस्था के कारण अभी तक दीक्षित नहीं हो सकी है तो उन्होंने भी रूपा देवी को उद्‌बोधन देते हुए उसकी वैराग्य भावना को पुष्ट किया।

कुछ दिनों पश्चात् ही रूपादेवी के प्रबल पुण्य के उदय से आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री पानकंवर जी, महासती श्री बड़े धनकंवर जी आदि ठाणा विभिन्न क्षेत्रों के भव्यों को जिनवाणी के उपदेशामृत का पान कराते हुए पीपाड़ नगरी में पधारे। रूपादेवी ने अपने पुत्र के साथ महासतियों के दर्शन किये। उनके उपदेशामृत का पान किया। महासती जी ने रूपादेवी को पृथक् से भी जीवन के रहस्य एवं श्रमणी धर्म के महत्त्व का रसास्वादन कराया। बालक हस्ती को भी इस बार महासती जी के दर्शन एवं उपदेश श्रवण से ऐसी आनन्दानुभूति हुई कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल सतियों के दर्शन करने के लिए नियमित रूप से उपाश्रय पहुँच जाता। पौशाल से लौटते ही भोजन से निवृत्त हो स्थानक में जाकर अपना अधिकांश समय महासतियों की सेवा में बैठकर धार्मिक शिक्षण प्राप्त करने एवं जीवन को उच्च बनाने वाली शिक्षाएं ग्रहण करने में ही व्यतीत करने लगा।

बालक हस्ती पर जन्मकाल से ही सुसंस्कारों की गहरी छाप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' लोकोक्ति उन पर पूर्णतः चरितार्थ हो रही थी। यद्यपि उन पर वैराग्य के संस्कारों की छाप रत्नगर्भा माता के अध्यात्म-चिन्तन एवं उत्कट वैराग्य के कारण गर्भकाल में ही अंकित हो गई थी, तथापि वह समय-समय पर वृद्धिगत होती गई। महासती जी के द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं से उन संस्कारों को बल मिला। फिर इस समय हस्तिमल्ल आठ वर्ष का हो चला था, अतः उसमें पूर्वापेक्षा चिन्तन की शक्ति भी बढ़ गई थी।

महासती बड़े धनकंवर जी का पीपाड़ से विहार हो जाने के पश्चात् रूपादेवी अपने घर पर ही अधिकांश समय ज्ञानाभ्यास और धर्माराधन में व्यतीत करने लगी। एक दिन महासती बड़े धनकंवर जी महाराज से सीखे हुए कुछ पाठ बालक ने अपनी माता को सुनाये। उन पाठों को पुत्र के मुख से यथावत् सुनकर रूपा देवी बड़ी प्रमुदित

हुई।

• माता की भावाभिव्यक्ति

अपने अन्तर्मन की भावना को पुत्र के समक्ष प्रकट करने का उपयुक्त अवसर समझ कर रूपादेवी ने बालक हस्ती से कहा :– "वत्स ! यह संसार दुःखों का मूल है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है। देखते-देखते ही तुम्हारे दादाजी, बड़े पिताजी एवं पिताजी चले गए। मेरे पीहर का भरा-पूरा विशाल परिवार समाप्त हो गया। वहाँ पर मेरे आँसू पोंछने वाला भी कोई नहीं रहा। यही नहीं, 'अब तुम्हारा लाड़ लडाने वाली तुम्हारी प्रिय दादीजी भी तुम्हें और मुझे असहाय छोड़कर चली गई। इस नाशवान संसार में एकमात्र धर्म ही सहारा है। पुत्र ! ज्ञानियों ने कहा है कि जीव अकेला ही आता है, अकेला ही जाता है। उसके साथ उसके किए हुए अच्छे सुकृत तथा बुरे कर्म के अतिरिक्त और कोई नहीं जाता। संसार के ये सब नाते-रिश्ते माता-पिता, पुत्र-बंधु आदि सम्बंध स्वप्न के समान हैं, मिथ्या हैं, छलावा मात्र हैं। यदि माता-पिता, पिता-पुत्र पति-पत्नी आदि के नाते-रिश्ते वस्तुतः सच्चे होते तो कोई किसी को छोड़कर नहीं जाता। पर वास्तविक स्थिति यह है कि सब अपने-अपने सम्बंधियों को, अपने-अपने आत्मीयजनों को छोड़कर एक न एक दिन परलोक को चले जाते हैं। मैं तुम्हारी अनुमति चाहती हूँ। स्पष्ट शब्दों में कहो, क्या तुम मुझे दीक्षित होने की अनुमति सहर्ष दे दोगे?" "सन्तों का आसरा (आश्रय) ही सच्चा आसरा है, यहाँ और कोई अपना नहीं । वत्स ! तुम्हारे पिता के देहावसान के पश्चात् से मुझे यह सम्पूर्ण संसार विषवत् त्याज्य लग रहा है। उस घोर दुःखद विपत्ति के समय ही इस असार संसार से मुझे विरक्ति हो गई थी। तुम्हारे जन्म के पश्चात् कुछ समय तक तुम्हारा लालन-पालन करना भी अनिवार्य रूपेण आवश्यक था। इस कारण मैं चाहते हुए भी इस असार संसार से छुटकारा दिलाने वाली भागवती दीक्षा नहीं ले सकी। जब तुम अढाई वर्ष के थे उस समय यह समझ कर कि तुम्हारे दादीजी और नाना-नानी तुम्हारा पालन-पोषण कर लेंगे, मैंने स्वतः ही मुंडित होकर साध्वियों जैसे श्वेत वस्त्र भी धारण कर लिए थे, किन्तु मेरे माता-पिता और तुम्हारे दादीजी के अनुरोध पर अनिच्छा होते हुए भी मुझे घर पर ही रहना पड़ा।

एक बार मैं श्रमणी धर्म में दीक्षित होने के लिए पीपाड़ से सोजत रोड़ भी चली गई, किन्तु सासूजी की आज्ञा न होने के कारण मुझे दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। आज इस संसार में तुम्हारी और मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। पुत्र ! मैं दुःखों से भरे इस असार संसार को अग्नि की ज्वालाओं से धधकती हुई भट्टी के समान समझती हूँ। इसीलिए तेरे पिता के परलोक गमन के समय से ही मैं इस संसार के सभी दुःखों से छुटकारा दिलाकर अक्षय शाश्वत सुख प्रदान करने वाली चारित्र धर्म की दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ। तुम्हारे पिता को स्वर्ग सिधारे हुए आठ वर्ष होने आये हैं। मैं एक मात्र तुम्हारे कारण ही आठ वर्षों से अभी तक घर में हूँ। अब तुम बड़े होने आये हो, समझदार हो। अपना भला-बुरा सोच सकते हो। इसलिए मैं अब अपने आत्म-कल्याण के लिए संसार छोड़कर दीक्षा लेना चाहती हूँ।"

• पुत्र भी विरक्ति का पथिक

बालक हस्ती ने वयस्क व्यक्ति की भांति गंभीर स्वर में कहा–"माँ ! तुमने अपने अन्तर्मन की बात आज मेरे सम्मुख प्रकट की है, परन्तु यह तुम्हारे अन्तर्मन की ही बात नहीं, मेरा भी मन इसी प्रकार हिलोरें ले रहा है। माँ ! जबसे मैंने होश सम्भाला है तभी से तुम्हें साधारण स्त्रियों से भिन्न पाया है। मैंने प्रायः तुम्हें उदास, विचारमग्न और

गंभीर मुख मुद्रा में ही देखा है। मैंने अपनी बाल बुद्धि के अनुसार तुम्हारी इस उदासीन वृत्ति पर, प्रायः सभी स्त्रियों से भिन्न प्रकृति पर, कई बार विचार किया है और इन पर विचार करते-करते मेरी स्वयं की वृत्ति और प्रवृत्ति भी लगभग तुम्हारे जैसी ही बन गई है। माँ ! तुम्हारे इस उदासीन जीवन का तुम्हारी चिन्तन धारा का, तुम्हारी विरक्ति और अनुभूतियों का, मुझ पर भी प्रभाव पड़ा है। मैंने अपने साथियों को, उनके पिता से मिले प्यार-दुलार को जब-जब भी देखा, तब-तब मेरे मानस में भी संसार की दशा के सम्बंध में तरह-तरह की विचार तरंगें उठी हैं। तुम्हारे ही कृपा प्रसाद से मैंने भी अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार इस संसार की भयावह दुःखद स्थिति को थोड़ा-थोड़ा समझा है। माँ ! तुम्हारे नियमित धर्माराधन, चिन्तन-मनन और जाप आदि को देख कर न मालूम कब से मेरी यह धारणा बन चुकी है कि जो तुम कह रही हो वह सही है। वास्तव में संसार असार है, यहाँ कोई रहने वाला नहीं। जो आया है एक दिन सबको जाना है। ननिहाल में मैंने भी अपनी आँखों से इस संसार की नश्वरता को देखा है। मेरा भी मन संसार में रहने का नहीं है। तुम अपना मन दीक्षा का बना रही हो, तो मैं भी तुम्हारे साथ ही दीक्षित होना चाहता हूँ। संसार में रहकर क्या करना है। सन्तों की सत्संग ही मेरे मन को भाती है। उनके साथ ही मैं अपना जीवन बिताना चाहता हूँ तथा ज्ञान-ध्यान सीखकर जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ। माँ ! संसार के प्रपंच में फंसे हुए अनेक लोगों को मैं दुःखी होते हुए देखता हूँ। दूसरी ओर देखता हूँ कि साधु-साध्वी सब प्रकार के प्रपंचों से दूर हैं। इनके मुख पर सदा विराजमान शान्ति और संतोष के साम्राज्य को देखकर मेरा मन भी होता है कि है कि मैं भी ऐसी शान्ति को प्राप्त करूँ। माँ ! मैं इस बार महासतीजी धनकंवर जी महाराज के निकट सम्पर्क में आया, उनके शान्त एवं पवित्र जीवन से, उनके उपदेशों से मैंने इस बार जो सीखा है, उससे अद्‌भुत आनंद का अनुभव किया है, वह सब मैं तुम्हारे सामने शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। मैंने तुम्हारे साथ चौधरी जी की पोल में जाकर महान् धर्माचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज के भी दर्शन किये थे, उनके उपदेश भी सुने थे। उनकी शान्त, दान्त, सौम्य सम्मोहक मूर्ति आज भी मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रही है। उनकी मधुर वाणी आज भी मेरे कानों में अनेक बार गूंजती रहती है। माँ ! उन पूज्यश्री के प्रथम दर्शन के समय से ही मेरा मन जीवन भर उनके चरणों की सुखद शीतल छाया में रहने को करता है। उन्हें पहली बार देखने पर भी मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने उन्हें अनेक बार देखा है। ”

पुत्र की बातें सुनकर रूपादेवी को मन ही मन विश्वास हो चला कि उसका होनहार हस्ती भी त्यागमार्ग का पथिक बनने का दृढ़ संकल्प कर चुका है। इससे आश्चर्य के साथ-साथ उनके आनंद एवं हर्ष का भी पारावार न रहा। रूपादेवी के नेत्रों से हर्षाश्रुओं की अविरल धाराएं प्रवाहित हो उठीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों सुदीर्घावधि से दुःखदावाग्नि दग्ध संतप्त यशस्वी बोहरा कुल के गृहांगण का समस्त ताप-संताप हरने के लिए अमृततोया गंगा और यमुना प्रवाहित हो उठी हों। रूपादेवी का मुखमंडल असीम आनंद की अलौकिक आभा से दमक उठा। अपने करतल युगल से पुत्र के मस्तक एवं कपोलों को शनैःशनैः सहलाती हुई माता रूपादेवी ने हर्षावरुद्ध कण्ठस्वर में केवल इतना ही कहा—"वाह वत्स ! तुम्हारे विचार सुनकर एवं तुम्हारा निश्चय जानकर मैं धन्य -धन्य हूँ। मुझे तुम्हारी माता होने पर गर्व है।"

तदनन्तर रूपादेवी अपने धर्माराधन के समय में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करती रही। श्री हस्ती भी पाठशाला से लौटने के पश्चात् अपनी माता के पास बैठ कर पौशाल में पढ़े गए विषय के पाठों और महासतीजी बड़े धनकंवर जी आदि साध्वियों से प्राप्त धार्मिक ज्ञान का पुनरावर्तन करते रहे।

• शिक्षागुरु का प्रभाव

बालक हस्ती के जीवन-निर्माण में बाबाजी श्री हरखचन्दजी म.सा. का बड़ा योगदान रहा। उन्हीं की सत्प्रेरणा एवं सम्बल से माता रूपादेवी एवं पुत्र हस्ती एक दिन प्रव्रज्या अंगीकार करने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने में समर्थ हुए। बाबाजी श्री हरखचन्द जी म. को जब यह ज्ञात हुआ कि पीपाड़ में एक माता एवं पुत्र विरक्त हैं तथा दोनों संयम-मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं तो इससे उन्हें अतीव प्रमोद हुआ। पीपाड़ तो वे विचरण करते हुए आ ही रहे थे, किन्तु श्रावकजनों से इस सूचना को सुनकर विरक्तात्माओं के प्रति भी उनके मन में एक प्रमोद का भाव जागृत हुआ। जब स्वामीजी श्री हरखचन्द जी म.सा. पीपाड़ पधारे तो अन्य श्रावक-श्राविकाओं के साथ रूपादेवी भी सन्त-दर्शन के लिए स्थानक में आई। पुत्र हस्तीमल भी साथ में आया। सन्तों के दर्शन कर हस्ती को उनमें आत्मीयता का भाव परिलक्षित हुआ। स्वामी श्री हरखचन्द जी म. ने भी माता रूपा के उत्कृष्ट वैराग्य और हस्ती की तीक्ष्णबुद्धि एवं धर्मानुरागिता के सम्बंध में पहले ही सुन रखा था। वे उसकी प्रतिभा एवं वैराग्य का परीक्षण करना चाहते थे। उन्होंने बालक हस्ती से प्रश्न किया–"वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है ?"

"गुरुदेव ! मुझे हस्तिमल्ल कहते हैं।"

"वत्स ! तुमने क्या-क्या सीखा है ?"

"मैंने पौशाल (पाठशाला) में पढ़ना-लिखना, महाजनी गणित और प्रारम्भिक धार्मिक-ज्ञान प्राप्त किया है। घर पर माताजी से भी सीखता रहता हूँ।"

"तुम्हारी माता तो अब शीघ्र दीक्षित हो जाना चाहती है। माता के दीक्षित हो जाने पर तुम क्या करोगे, क्या इस बात पर तुमने विचार किया है ?"

"भगवन् ! माँ दीक्षा ग्रहण कर रही है तो मैं भी उनका अनुसरण करूँगा। मेरा मन भी उनके साथ ही दीक्षा लेने का है।"

माता और पुत्र दोनों के साथ सम्पन्न बातचीत से स्वामीजी को पूर्ण विश्वास हो गया कि वे दोनों मुक्तिपथ पर आरूढ होने के लिए कटिबद्ध हैं।

स्वामीजी से बातचीत के पश्चात् रूपादेवी अपने पुत्र के साथ घर लौट आयी। खाना बनाकर थाली पुत्र के समक्ष रखी, दूसरी रोटी परोसते समय माता ने देखा कि थाली ज्यों की त्यों रखी है और हस्ती विचारमग्न है।

माँ ने पूछा–"खाना नहीं खा रहे हो ? किस विचार में खोये हो ?

विचारतन्मयता से चौंक कर हस्ती ने कहा- "माँ मुझे तो भोजन का ध्यान ही नहीं रहा। मैं तो स्वामीजी महाराज के साथ हुई बातचीत के बारे में सोचता रहा।

"माँ, तुमने देखा नहीं ? मुझ पर उनका कितना अगाध स्नेह था।" भोजन कर लेने के उपरान्त हस्ती ने कहा-"माँ यदि तुम कहो तो मैं स्वामी जी के पास जाकर उनसे कुछ सीखूं।" माँ ने अनुज्ञा प्रदान करते हुए कहा- "जरूर जाओ।"

बालक हस्ती सीधा स्वामी जी की सेवा में पहुँचा और बड़ी देर तक स्वामी जी के पास ज्ञानाभ्यास करने के साथ-साथ अनेक नई बातें सीखता रहा। उसका मन क्षणभर के लिए भी स्वामीजी से विलग होना नहीं चाह रहा था।

वातावरण में मधुर मुस्कान से अमृत सा घोलते हुए स्वामीजी ने बालक से कहा-"वत्स ! जब भी तुम्हारी

इच्छा हो, तुम दया पाला करो। जब तक हम यहाँ हैं, जितना सीख सकते हो, उतना सीख लो। बालक हस्ती ने भी सुदृढ़ स्वर में तत्काल निवेदन किया-"गुरुदेव एक बार चरण शरण ग्रहण कर लेने के पश्चात्, छोड़ना मुझे मेरी माँ ने नहीं सिखाया है। अब मैं कभी आपका साथ छोड़ने वाला नहीं हूँ। अब तो जहाँ आप जायेंगे, मैं भी साथ चलूँगा।"

स्वामीजी विचार करने लगे, सच ही कहा है कि माता सहस्रों अध्यापकों से भी श्रेष्ठ अध्यापिका है। माता द्वारा डाली गई संस्कारों की नींव पर यदि किसी महान् आध्यात्मिक कुशल शिल्पी का सुयोग मिल जाए तो निश्चय ही यह बालक आगे चल कर शासन को दिपाने वाला हो सकता है। आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज वस्तुतः इस युग के एक महान् आध्यात्मिक शिल्पी हैं। उन्हें इस विलक्षण बालक के सम्बंध में सूचित किया जाए तो सभी प्रकार से श्रेयस्कर होगा।

बालक हस्ती को स्वामीजी के रूप में अभीष्ट आध्यात्मिक ज्ञान का अक्षय भंडार मिल गया। श्रद्धालु श्रावक-श्राविका वर्ग इन दोनों को एक साथ देखकर आश्चर्याभिभूत थे। कहाँ तो एक आठ वर्ष का बालक और कहाँ साठ वर्ष के तपोपूत योगी। उम्र में कितना अन्तर, तथापि परस्पर एक दूसरे के कितने पास। परस्पर एक दूसरे से लौ लगते ही भौतिक और आध्यात्मिक दूरियां कितनी सन्निकट हो आती हैं। स्वामीजी को यह देखकर संतोष था कि सभी प्रकार के शुभ लक्षणों और सुसंस्कारों से सम्पन्न कुशाग्रबुद्धि बालक पूर्ण निष्ठा एवं लगन के साथ आवश्यक ज्ञान के अर्जन में प्रगति कर रहा है।

• शोभा गुरु की सेवा में

इसी दौरान माता और पुत्र दोनों के जीवन में पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान आध्यात्मिक आलोक की शुभ छटा प्रकट कर देने वाले आचार्य श्री शोभाचन्द जी महाराज साहब बड़लू से विहार कर ठाणा ३ से पीपाड़ नगर में पधारे एवं गाढमल जी चौधरी की पोल में विराजे। स्वामीजी ने आचार्य श्री से निवेदन किया-"यही है वह बालक। इसने इन थोड़े से दिनों में ही अनेक बोल-संग्रह कंठस्थ करने के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा में भी संतोषप्रद प्रगति की है।' आचार्य श्री बालक की प्रगति के समाचार सुनकर प्रमुदित हुए।

बालक के लक्षण, चेष्टाएँ, आँखों की चमक, विनय एवं वाणी की माधुरी से आचार्य श्री को यह समझने में देर नहीं लगी कि यह बालक आगे चलकर जिनशासन का महान् सेवक बनेगा।

स्वामी श्री हरखचन्द जी म.सा. ने गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी. म.सा. के चरणारविन्दों में निवेदन करते हुए इंगित किया कि बालक हस्ती एवं विरक्ता रूपादेवी मुमुक्षु हैं एवं उनके निरन्तर अध्ययन की महती आवश्यकता है, जो पीपाड़ में सम्भव नहीं है। आचार्यप्रवर ने श्रावकों को संकेत किया कि सुयोग्य बालक हस्ती के अध्ययन की समुचित व्यवस्था हो सके, ऐसा चिन्तन अपेक्षित है।

• अजमेर में अध्ययन-व्यवस्था

श्रद्धालु एवं विवेकशील श्रावकों ने शिक्षा की दृष्टि से प्रसिद्ध अजमेर नगर को उपयुक्त समझा। अजमेर में श्रेष्ठिवर श्री छगनमल जी मुणोत रियां वालों ने दोनों विरक्तात्माओं के शिक्षण एवं ज्ञानाराधन की व्यवस्था करते हुए उन्हें मोती कटला स्थित अपने विशाल भवन में परिवार के सदस्यों की भांति अपने साथ रखा। यहाँ पर पं. श्रीरामचन्द्र जी को तेजस्वी बालक हस्ती को संस्कृत एवं हिन्दी का शिक्षण देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पंडित जी

भी सुयोग्य शिष्य को प्राप्त कर प्रसन्न थे एवं उत्साहपूर्वक नित्य नव ज्ञानाराधन कराते थे। वे बालक की विलक्षण प्रतिभा, विनयशीलता एवं स्मरणशक्ति से बड़े प्रभावित हुए। रुचिपूर्वक अध्ययन करने के कारण बालक हस्ती को भी अल्पकाल में ही महती उपलब्धि हुई। उन्होंने पीपाड़ में स्वामी श्री हरखचन्द जी म.सा. से एक मंत्र पाया था, जिसका उन्होंने जीवनभर उपयोग किया-

खण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम॥

पण्डित जी से अध्ययन करते समय विक्रम संवत् १९७७ (सन् १९२०) में स्वामी जी श्री हरखचन्द म.सा. के अजमेर चातुर्मास के सुअवसर पर उन्हें स्वामी जी का यथेष्ट मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ। यहाँ पर शिक्षार्थी हस्ती ने सन्त-चरणों में रहकर रात्रि में चौविहार का त्याग प्रारम्भ कर दिया तथा आठवाँ वर्ष लगते ही कच्चे पानी के सेवन का भी त्याग कर दिया।

पंडित रामचन्द्र जी शिक्षार्थी श्री हस्ती को लघुसिद्धान्त कौमुदी, शब्दरूपावली, धातुरूपावली और हिन्दी भाषा की शिक्षा देते, साथ ही अमरकोष का अध्ययन भी जारी था। प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्यावेला में स्वामी जी महाराज ने श्री हस्ती को स्तोकसंग्रहों के अतिरिक्त दशवैकालिक आदि सूत्र पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। रात्रि के समय भी स्वामी जी महाराज रोचक एवं शिक्षाप्रद कथा-कहानियों के माध्यम से धार्मिक सुसंस्कारों को सबल और सुदृढ़ करने का प्रयास करते। धीरे-धीरे श्री हस्ती में कविता, कथा आदि लेखन की प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी। आपने अनेक स्तोकों तथा स्तोत्रों को कंठस्थ कर ज्ञानवर्धन किया। वैराग्य काल में ही आपने प्रतिक्रमण, २५ बोल, नवतत्त्व, लघुदण्डक, ९८ बोल का बासठिया, १०० बोल का बासठिया, समकित के ६७ बोल, समिति गुप्ति का थोकड़ा, आहारपद, संज्ञापद, इन्द्रिय पद, श्वासोच्छ्वास, रूपी-अरूपी, पाँच देव, ६ भाव, गति-आगति, अवधिपद, धर्माधर्मी, सुत्ताजागरा, पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी २० बोल, २३ मोक्ष जाने के बोल, १३ बोल-भवि द्रव्य आदि, साधु के सुख आदि थोकड़े कण्ठस्थ कर लिए थे। अजमेर के सरावगी मौहल्ले की शाला में बालक हस्ती ने गणित आदि का व्यावहारिक शिक्षण भी लिया। अजमेर में सांड परिवार के आग्रह पर अभयमल जी गम्भीरमलजी सांड के यहाँ केसरगंज में भी आप कुछ दिन रहे।

■

प्रव्रज्या-पथ के पथिक

वैरागी हस्ती के अध्ययन एवं महाव्रत पालन की योग्यता में निरन्तर संवर्धन हो रहा था। माता रूपा जी प्रव्रज्या अंगीकार करने के लिए आतुर हो रही थी, तो विरक्त हस्ती भी प्रव्रजित होने के लिए उत्सुक था। चातुर्मासार्थ पीपाड़ विराजित आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की सेवा में दीक्षा प्रदान करने हेतु विनति की गई। किन्तु जैन धर्म में विरक्तात्मा को श्रमण-दीक्षा तभी दी जाती है जब वह अपने माता-पिता या निकटस्थ सम्बंधियों का आज्ञा-पत्र प्रस्तुत करे।

बालक हस्ती बोहरा कुल का एक मात्र चिराग था, अतः निकट परिवारजनों ने आज्ञा प्रदान करने से मना कर दिया एवं कहा कि समस्त बोहरा कुल-वंश की भावी पीढ़ी की आशा इसी हस्ती पर टिकी है, परिवार में यही एक मात्र पुत्र सन्तति है। बार-बार समझाने पर भी परिवार के लोग राजी नहीं हुए। अन्ततोगत्वा माँ रूपा ने आगे बढ़कर वीरता का परिचय देते हुए गुरुजनों से निवेदन किया कि बालक हस्ती को आज्ञा प्रदान करने के लिए तत्पर मैं स्वयं हूँ, इसका मुझे अधिकार भी है। आप बालक हस्ती को सहर्ष दीक्षित कीजिए। इस प्रकार बालक हस्ती की प्रव्रज्या के लिए तो रूपादेवी ने अनुमति प्रदान कर दी, किन्तु स्वयं रूपादेवी की दीक्षा के लिए निकटस्थ परिजनों का आज्ञा-पत्र आवश्यक था। माता रूपादेवी को इसके लिए काफी संघर्ष करना पड़ा, किन्तु माता-पुत्र के प्रबल वैराग्यभाव के कारण एवं सिरहमलजी दूगड़, लक्ष्मीचन्दजी कवाड तथा रीयां के रूपचन्दजी गुंदेचा के सत्प्रयत्न एवं समझाइश पर देवर रूपचन्द जी ने लिखित अनुमति प्रदान कर दी। इससे न केवल विरक्त आत्माओं में, अपितु समस्त श्रावक समाज में हर्ष की लहर छा गई। दीक्षा की अनुमति होते ही माता रूपादेवी ने पीपाड़ में पतासीबाई (सूरजकरण) के यहाँ रखे भांड-बर्तन आदि का विक्रय कर पीपाड़ का लेन-देन साफ किया, घर भी सम्हलाया। इससे यह प्रतिफलित होता है कि माता रूपादेवी एवं बालक हस्ती संसार के कर्ज से मुक्त होकर कर्मों के कर्ज से मुक्त होने के पथ पर आगे बढना चाहते थे।

आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. का संवत् १९७७ का चातुर्मास सकारण (दाहज्वर के कारण) पीपाड़ में हुआ। चातुर्मास समाप्ति पर अजमेर के सेठ मगनमलजी का संदेश प्राप्त हुआ कि गोचरी पधारते समय गिरजाने से स्वामीजी श्री हरकचन्द जी म.सा. को गहरी चोट लगी है। समाचार मिलते ही आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. ब्यावर होते हुए अजमेर पधारे।

यहाँ आने पर आचार्यश्री ने संघ के आग्रह पर गुरुवार माघ शुक्ला द्वितीया विक्रम संवत् १९७७ (१० फरवरी १९२१) का दिन दीक्षा हेतु निश्चित कर दिया। विरक्त हस्ती एवं उनकी माता रूपा के साथ ही वैरागी श्री चौथमल जी एवं विरक्ता बहन अमृतकंवर जी की भी दीक्षा होना तय हो गया। दीक्षा का स्थल अजमेर में ढड्ढा जी का बाग निर्धारित हुआ।

दीक्षा चेतना का ऊर्ध्वगामी रूपान्तरण है जिसमें आत्मा अपने कषाय-कलुषों का प्रक्षालन करने के लिए सन्नद्ध होती है। **दीक्षा के लिए आगमों में 'प्रव्रज्या' शब्द का प्रयोग हुआ है जो इस तथ्य को इंगित करता है कि एक बार गृहस्थ जीवन का त्याग कर देने के पश्चात् उसमें पुनः लौटना नहीं होता। प्रकृष्ट**

रूप से व्रज्या अर्थात गमन ही प्रव्रज्या है। यह मुक्ति का मार्ग है। अतः इस सुअवसर पर सभी का प्रमुदित होना स्वाभाविक है। प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले की जीवनशैली पूर्णतः बदल जाती है। पंच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्तियों का पालन करते हुए रत्नत्रय के समाराधनपूर्वक आत्म-प्रक्षालन की यह साधना सबके लिए सुकर नहीं होती, किन्तु जैन धर्म के अनुसार मुक्ति के पथिक को संसार से आसक्ति त्याग कर संयम के पथ पर वीरता के साथ बढ़ना होता है।

अजमेर जैसे नगर में चार मुमुक्षुओं का एक साथ प्रव्रज्या पथ पर कदम रखना एक उत्साह एवं आह्लाद का अवसर था, किन्तु समाज में कुछ दोषदर्शी एवं नकारात्मक चिन्तन वाले लोग भी होते हैं, अतः बाजार में इस प्रकार के कुछ व्यक्ति यह कहते सुनाई पड़े कि दश वर्ष की लघुवय में दीक्षा देना उचित नहीं है। नकारात्मक चिन्तन जल्दी तूल पकड़ता है, इसलिए यह विचार परचेबाजी के रूप में भी सामने आया कि हस्तीमल्ल को दीक्षा न दी जावे, क्योंकि वह अभी मात्र दश वर्ष का बालक है। किन्तु आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा. के विद्वत्तापूर्ण एवं तेजस्वी चिन्तन के समक्ष बाल-दीक्षा के विरोधी लोग नतमस्तक हो गये। आचार्य प्रवर द्वारा जैन धर्म एवं भारतीय संस्कृति के उन अनेक महापुरुषों के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये गये जिन्होंने बालवय में दीक्षित होकर अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। समाज के प्रतिष्ठित सेठ मगनमल जी, दूगड़ जी, सांड जी, मोतीलालजी कांसवा, दुधेड़ियाजी, रूपचन्दजी ढड्ढा, बोहराजी आदि अग्रगण्य श्रावकों ने भी इसमें गहरी रुचि ली एवं दीक्षा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

जैन समाज में यह प्रश्न अभी भी बार-बार उठता है कि बालवय में दीक्षा देना उचित है अथवा नहीं? इस सम्बंध में यह कहा जा सकता है कि लघुवय में भी यदि कोई मुमुक्षु साध्वाचार का पालन करने में समर्थ हो तथा ज्ञानदर्शन का आराधन करने में तत्पर हो तो उसे दीक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। यह कहावत कि 'पूत के लक्षण पालने में ही नजर आ जाते हैं' इस सम्बंध में मानदंड बन सकती है। इतिहास पुराण साक्षी है कि व्यास पुत्र शुकदेव जन्म ग्रहण करते ही अध्यात्म पथ पर आरूढ़ होकर वन की ओर चल पड़े थे। भक्त शिरोमणि ध्रुव पांच वर्ष की वय में ही भक्ति के बल पर भगवद् दर्शन कर चुके थे। जैन परम्परा में आर्य वज्र को जन्मते ही जातिस्मरण ज्ञान एवं वैराग्य हो गया और शिशु अवस्था में ही साधना पथ के पथिक बन गये थे। अतिमुक्त कुमार भी बालवय में ही प्रव्रज्या ग्रहण कर भगवान महावीर के शिष्य बने थे। आचार्य हेमचन्द्र बचपन में दीक्षित होकर कलिकाल सर्वज्ञ के रूप में विख्यात हुए। यशस्वी रत्नवंश परम्परा तो बाल ब्रह्मचारी आचार्यों की परम्परा रही है। पूज्य श्री गुमानचन्दजी म.सा. एवं पूज्य श्री हम्मीरमलजी म.सा. ने मात्र १० वर्ष की वय में ही दीक्षा अंगीकार कर जिनशासन का उद्योत किया। संस्कृत साहित्य के महाकवि बाण भट्ट कहते हैं–"अयमेव ते काल उपदेशस्य विषयानास्वादितरसस्य' अर्थात् जब तक विषय भोगों का आस्वादन नहीं किया तब तक ही उपदेश का प्रभाव सुकर होता है। विषय भोगों के आस्वादन के पश्चात् प्रव्रज्या अंगीकार करना और उसका निर्दोषता पूर्वक दृढता से पालन करना अतिदुष्कर है।

दूसरी बात यह है कि जीवन का प्रारम्भिक काल तेज और शक्ति का ऐसा पुंज होता है जो ज्ञानाभ्यास के लिए तो उत्तम अवसर प्रदान करता ही है साथ ही जीवन-निर्माण के लिए भी योग्य संस्कारों का सृजन करता है।

वैरागी हस्ती १० वर्ष १९ दिन के थे तथापि उनमें साधना के प्रति निष्ठा, विचारों के प्रति दृढ़ता और ज्ञानाराधन के प्रति तत्परता तथा समर्पण इस बात के द्योतक थे कि संयम की साधना पर बढ़कर वे निश्चित ही आत्मकल्याण के साथ जगत् के कल्याण में भी भास्कर की भांति देदीप्यमान होंगे।

दीक्षा की वह प्रतीक्षित ऐतिहासिक घड़ी माघ शुक्ला द्वितीया वि.सं. १९७७ गुरुवार तदनुसार १० फरवरी सन् १९२१ उपस्थित हो ही गई। दीक्षा का वह समारोह अद्भुत था। अजमेर में वर्षों से ऐसा उत्सव नहीं हुआ था। सम्पूर्ण अजमेर दूर-दूर से आए हुए श्रावक-श्राविकाओं, बाल-वृद्धों के आगमन से उल्लसित हो रहा था। बड़ा ठाट था। मोती कटले में समवसरण की सी शोभा थी। सूर्योदय से पूर्व ही मोती कटला के प्रागंण में और दरगाह-पथ पर विशाल जनमेदिनी एकत्रित होने लगी। यहां वैरागी और वैरागिनियों का अभिनंदन किया जा रहा था, विविध वाद्ययंत्रों की सुमधुर ध्वनियां समूचे वातावरण को गुंजायमान कर रही थीं। यहाँ से ही दीक्षार्थियों की महाभिनिष्क्रमण यात्रा प्रारम्भ होकर दीक्षास्थल ढड्ढा जी के बाग की ओर प्रस्थान करने वाली थी। इस यात्रा का दृश्य देखते ही बनता था। दीक्षार्थियों के दर्शन हेतु जन-समूह सागर की उत्ताल तरंगों की भांति उमड़ रहा था। चारों मुमुक्षुओं के बैठने के लिए एक सुन्दर बग्गी सजी हुई थी। विरक्तों को सुन्दर वेश एवं आभूषणों से सजाया गया था। लोग श्रद्धा से उन्हें नमन कर कंठे पहना रहे थे, रुपया मुँह में लेकर लौटाने को कह रहे थे।

निश्चित समय पर मुमुक्षु हस्तिमल्ल, चौथमल, रूपादेवी और अमृत कंवर बग्गी में आरूढ़ हुए, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप मूर्त हो उठें हो। इतिहास में ऐसे विरले ही उदाहरण हैं जब जननी और जात (माँ-बेटा) एक साथ मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर हुए हों। दस वर्षीय हस्ती के मुख पर बालसुलभ सारल्य भी था और मुनियों जैसा गांभीर्य भी दमक रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो इस पंकिल विश्व में जैसे सौम्यभाव का नव उत्पल खिला हो स्वर्णकमल जैसा। जयघोषों के साथ महाभिनिष्क्रमण यात्रा प्रारम्भ हुई। सबसे आगे जैन ध्वज, पश्चात् विविध वादकों के समूह, उनके अनन्तर स्वर्णरजत के आभूषणों से अलंकृत अश्व और पीछे बग्गी थी। बग्गी के चारों कोणों में सुसज्जित दीक्षार्थी मानों चारों दिशाओं में यह सन्देश प्रसारित कर रहे थे कि वैराग्य से बढ़कर आत्मा का कोई बंधु नहीं है। 'न वैराग्यात् परो बंधुः।' अपनी दिनचर्या में सत्ता, सम्पर्क और साधनों के पीछे भागने वाली जनमेदिनी आज इन विरक्तात्माओं का अनुसरण करती नहीं थकती थी। तिजोरियों की अखूट सम्पदा के स्वामी भी आज वैरागियों के दृष्टिपात के लिए लालायित थे। सभी का अन्तःकरण पुकार रहा था, ये धन्य हैं जो जीवन निर्माण के सही पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। शोभायात्रा के नगाड़े सभी का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। किसी की नज़र दीक्षार्थियों के सिर पर धारण किये गये मखमली जरी युक्त लाल छत्रों पर जा रही थी तो कोई सुहागिनों द्वारा सेवित दीक्षार्थिनियों के अभिभावकों को धन्य-धन्य मानकर उनका भी जयजयकार कर रहे थे। अपार श्रावक समूह के जयघोषों तथा अलंकृत नारी-समूह के मंगल गीतों से महाभिनिष्क्रमण यात्रा की शोभा द्विगुणित हो रही थी। वैरागियों के दर्शनार्थ पथ के दोनों छोर, भवनों के गवाक्ष, छतों पर कंगूरे, हवेलियों के झरोखे, नर-नारियों, बच्चों, युवक-युवतियों से ठसाठस भरे थे। महाभिनिष्क्रमण यात्रा मंथर गति से ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रही थी त्यों-त्यों पथ के दोनों ओर खड़े विशाल जनसमूह भी उसमें सम्मिलित होते जा रहे थे।

इस प्रकार चलती हुई महाभिनिष्क्रमण यात्रा के पुष्कर मार्ग पर पहुंचते-पहुंचते तो जनसमूह का ओर छोर ही नजर नहीं आ रहा था। जहां तक दृष्टि पहुंचती थी वहाँ तक जनमेदिनी ही जनमेदिनी दृष्टिगोचर हो रही थी। इससे पूर्व दीक्षा के अवसर पर नगर में इतना विराट् जनसमूह कभी नहीं उमड़ा था। अजमेरवासी भी अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे। ढड्ढाजी के बाग में स्थित विशाल मैदान में पहुंचते ही शोभायात्रा विशाल धर्मसभा में परिवर्तित हो गई।

आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा., ब्यावर से पधारे आचार्य श्री मन्नालाल जी म.सा., जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.सा., स्थविर मुनि श्री मोखमचन्द जी म.सा. आदि श्रमण श्रेष्ठ अपनी अपनी सन्त-मंडली के साथ दीक्षा-स्थल पर

वटवृक्ष के नीचे सुशोभित हो रहे थे। रत्नवंश के सन्तों में आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के अतिरिक्त स्वामी जी श्री हरखचन्दजी म.सा., श्री लाभचन्दजी म.सा. श्री सागरमल जी म.सा. , श्री लालचन्दजी म.सा. पाट पर विराजमान थे। बाबाजी श्री सुजानमलजी म.सा., श्री भोजराजजी म.सा. एवं अमरचन्दजी म. सा. नागौर के श्रावकों में विशेष धर्मध्यान एवं तपस्या होने तथा समय की अल्पता के कारण नहीं पधार सके थे। सन्तों के समीप ही भूमि पर महासती श्री छोगाजी, बड़े राधाजी, पानकंवर, धन्नाजी, इन्द्रकंवरजी, केसरकंवरजी की शिष्या राधाजी, भीमकंवरजी की शिष्या दीपकंवर जी आदि ठाणा १९ का सतीमंडल भी विराजित था। अनेक श्रावक श्राविकाएं सामायिक का धवल वेश धारण कर मंच के सम्मुख अपना ध्यान केन्द्रित कर मन ही मन साधु-जीवन को धन्य-धन्य कह रहे थे। वे चिन्तन कर रहे थे कि हम तो एक मुहूर्त या कुछ काल के लिए ही सामायिक में रहते हैं, किन्तु वे धन्य हैं जो जीवन भर के लिए तीन करण एवं तीन योगों से सावद्य प्रवृत्ति का त्याग कर सामायिक अंगीकार करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग थे जो स्वयं को संयम मार्ग पर आरूढ़ होने में असमर्थ जानकर उसी प्रकार अपुण्यशाली मान रहे थे जैसे श्रीकृष्ण ने अपने को दीक्षित नहीं होने के कारण अधन्य एवं अकृतपुण्य समझा था। "अहं णं अधण्णे अकयपुण्णे_ णो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।"(—अंतगडदसासूत्र, वर्ग ५, अध्ययन १) सामायिक वालों के पीछे जन सैलाब को शान्त कर बिठाया जा रहा था, तथापि वह मैदान में समा नहीं रहा था। अतः वृक्ष की डालियों एवं गाड़ियों की छतों पर खड़े होकर भी इस समारोह का आनंद लेने वाले कम नहीं थे।

चारों मुमुक्षु सांसारिक बग्गी से उतरकर मोक्ष की बग्गी में आरूढ़ रत्नत्रयाराधक आचार्यों, सन्तों एवं सतीमंडल के चरणों में पहुंचकर सविधि वन्दन करने लगे। तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दन करने के पश्चात् मांगलिक पाठ का श्रवण कर वे वेश परिवर्तन एवं मुंडन के लिए बने कक्षों की ओर गए। चारों में अदम्य उत्साह झलक रहा था। सांसारिक अलंकृत वेशों को सदा के लिए त्याग कर वे जब मंच की ओर बढ़े तो मानो संदेश दे रहे थे "_ सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा" (उत्तराध्ययन १३.१६) अर्थात् ये समस्त अलंकार एवं विविध वेशों का आकर्षण हेय है। उनके द्वारा धारित श्वेत वर्ण के वेश मन को निर्मल बनाने की प्रेरणा कर रहे थे। श्वेतवर्ण निर्मलता एवं शान्ति का प्रतीक है। मुख पर बंधी मुखवस्त्रिका निर्दोष भाषण एवं मौन संधारण का संकेत कर रही थी। एक हाथ में धारित रजोहरण न केवल जीवरक्षा का प्रतीक दृग्गोचर हो रहा था, अपितु वह मन से राग-द्वेष की रज को दूर करने की प्रेरणा कर रहा था। दूसरे हाथ में पात्रों की झोली अकिञ्चन साधक बनकर अभिमान को विगलित करने का संदेश दे रही थी। अब वे ऐसे साधना मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए उद्यत थे, जिसमें यावज्जीवन कंचन एवं कामिनी का पूर्ण त्याग होता है। वे न पादत्राण धारण कर सकते हैं, न किसी वाहन में सवारी कर सकते हैं, न ही स्नान एवं विभूषा का वरण कर सकते हैं। उनका तो एक मात्र लक्ष्य अपने को साधकर सदा के लिए मुक्ति का वरण करना होता है। शीत,उष्ण, भूख-प्यास आदि बावीस परीषहों को सहन करते हुए मान-अपमान, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ आदि में समभाव ही उनकी साधना का प्रथम चरण होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है-

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ॥-उत्तरा. १९.९१

साधु विषम परिस्थितियों में भी समभाव में जीता है। यही उसका प्रथम चारित्र 'सामायिक' है। निर्दोष भिक्षावृत्ति ही उसके भौतिक शरीर का सम्बल है, वह घर-घर जाकर संयम की यात्रा के लिए आहारादि की भिक्षा लाता है। इसमें भी गवेषणा के ४२ नियमों से बंधा होता है। संयम-यात्रा हेतु शरीर के निर्वाह के लिए गोचरी लेकर

ये सन्त समाज को कई गुनी अधिक लाभकारी अक्षुण्ण शान्ति की राह दिखाते हैं। इनके श्रमणत्व की तुलना में आजीविकाधारियों का श्रम नगण्य है।

श्रमणत्व अंगीकार करने हेतु प्रस्तुत इस चतुष्टयी में प्रव्रज्यापथिक हस्ती सर्वाधिक आकर्षण के केन्द्र थे। वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे सूर्य को लिए पूर्व दिशा जगत् को प्रकाशित करने चली हो। जनमेदिनी की आँखें तब ठहर सी गईं जब उन दीक्षार्थियों में बाल वैरागी हस्ती अपनी तेजस्वी अनुपम छटा बिखेरते हुए नजर आए। खेलने-कूदने की उम्र में भी सागरवत् गंभीर, अल्पवय में गहन चिन्तनशील, छोटे कद में भी चौड़े चमकते ललाट के धनी, कोमलकदमों वाले पर दृढ़ संकल्पी बाल हस्ती की अद्वितीय अध्यात्म मस्ती सभी का मन मोह रही थी। चारों मुमुक्षुओं ने परिजनों एवं उपस्थित सकल संघ से क्षमा याचना करते हुए दीक्षा हेतु अनुमति मांगी। परिजन जहाँ भारी मन से, पर अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हुए अपने प्रिय जनों को गुरु चरणों में सदा सर्वदा के लिए समर्पित होने हेतु अनुमति प्रदान कर त्याग के इस महायज्ञ में श्रद्धा व समर्पण का अर्घ्यदान कर रहे थे, वहीं उपस्थित सकल जन-जन के साथ ही उनके रोम-रोम से अणु-अणु से यही भावना यही आशीर्वाद निसृत हो रहा था—"नाणेणं दंसणेणं च चरित्तेण तहेव य खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य" (उत्तराध्ययन सूत्र २२.२६) आप मुमुक्षु ज्ञान-दर्शन-चारित्र आराधक उत्कट संयमधनी आचार्य श्री शोभा के मुखारविन्द से भवबन्धन काटने वाला संयम धन स्वीकार कर निरन्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप, क्षमा व मार्दव भाव में निरन्तर आगे बढ़ते रहें, आपकी उत्कट भावना व वैराग्य भाव निरन्तर वृद्धिगत होते रहें। आप शीघ्र अपने लक्ष्य मोक्ष हेतु अभीष्ट साधना कर इस भव-भय बन्धन की जंजीरों को तोड़कर कर्मों का मूलोच्छेद कर सिद्ध, बुद्ध व मुक्त हों। आज इन मुमुक्षु आत्माओं के गुरु चरणों में सर्वतोभावेन समर्पण, संयम ग्रहण के इन क्षणों के साक्षी बनकर व रत्नत्रयाराधक आचार्य भगवन्त रत्ननिधि महापुरुषों के पावन दर्शन कर हम वस्तुतः धन्य-धन्य हैं।"

हस्ती समेत चारों मुमुक्षु आचार्य श्री शोभा के समक्ष श्रद्धावनत विनयविनम्र होकर वन्दनपूर्वक दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना करने लगे।

चतुर्विध संघ के पूज्य, मुमुक्षुचतुष्टयी के आराध्य, संघनायक आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म. भी अन्तर्हृदय से पुलकित थे, जिन्होंने बालहस्ती के भीतर अव्यक्त रूपेण विद्यमान धर्मनायक ऐरावत गजराज को पूर्व में ही परख लिया था। आचार्यप्रवर दीक्षार्थियों के परिजनों का लिखित आज्ञापत्र सुनकर, प्रव्रज्या हेतु तत्पर रूपादेवी, अमृतकंवर, चौथमल एवं स्वयं हस्ती के प्रार्थना स्वरों से गद्गद् हो सर्वप्रथम उन्हें भागवती दीक्षा का मर्म एवं महत्त्व समझाने लगे और यह अवसर था जब समस्त पाण्डाल एक स्वर से अनुमोदन की अभिव्यक्ति जय-जयकार से करने लगा। उन्होंने फरमाया -"दीक्षा वह संस्कार है जो शरीर जैसे नश्वर साधन से अविनश्वर आत्म-स्वभाव प्रकट करने का मार्ग प्रशस्त कर मोक्ष सुख का वरण करने में सहायक है।" उन्होंने समझाया "साधु के पास भी वही शरीर है, वे ही इंद्रियाँ हैं, वही मन है और वही आत्मा है, किन्तु वह इनका उपयोग साधना के लिए करता है। आप चारों साध्वाचार का पथ अपनाने के लिए तत्पर हैं, यह प्रमोद का विषय है, किन्तु जिस उत्साह एवं वीरता के साथ आप यह पथ अपनाने के लिए तत्पर हुए हैं उसकी निरन्तरता का निर्वाह साधु-साध्वी बनने के पश्चात् भी करना है। जो सिंह की भांति वैराग्य का पथ अपनाकर उसे सिंह की भांति पालता है, वह श्रेष्ठ है।"

स्थानांगसूत्र में प्रतिपादित प्रव्रज्या के मर्म को समझाते हुए आचार्य श्री ने कहा— "प्रव्रज्या का सम्यक् रूपेण इन्द्रियनिग्रह और कषायविजय के साथ पालन किया जाए तो वह सुख की शय्या बन जाती है और यदि प्रव्रजित

होने के बाद भी इन्द्रियविषयों के प्रति आकर्षण बना रहता है, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष बने रहते हैं तो वह दुःख की शय्या बन जाती है। मैं समझता हूँ कि आप प्रव्रज्या को सुख की शय्या बनायेंगे।" इसके साथ ही आचार्य श्री ने बताया कि साधु सावद्य प्रवृत्तियों का तीन करण एवं तीन योग से जीवनभर के लिए त्याग करता है। वह न तो स्वंय सावद्य (दोषपूर्ण) प्रवृत्ति करता है, न दूसरों से कराता है और न ही करते हुए का अनुमोदन करता है। वह मन से बुरा नहीं सोचता, वाणी से बुरा नहीं बोलता और काया से बुरा नहीं करता हुआ मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्तियों का संयम करता है। वैराग्य काल में साधु-साध्वी के सान्निध्य में रहने से दीक्षार्थी साध्वाचार से परिचित तो थे ही, अब गुरुमुख से साधुचर्या के महत्त्व को सुनकर उन्हें दीक्षा अंगीकार करने में पलभर की देरी भी असहज प्रतीत होने लगी। तभी आचार्यश्री ने '**करेमि भंते... सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं....**' के शास्त्रीय पाठ से उन्हें भागवती दीक्षा प्रदान की। स्तब्ध होकर दर्शक बना हुआ पाण्डाल सहसा "मुनि हस्ती की जय, मुनि चौथमल की जय, साध्वी रूपा की जय, साध्वी अमृत कंवर की जय" करते हुए जयकार से गूंज उठा।

दीक्षा प्रदान करने के अनन्तर मुनि श्री हस्तिमल्ल जी म. आदि की शिखा के अवशिष्ट केशों का लुंचन किया गया। यह लुंचन प्रतीक बना साध्वाचार के उत्कट मार्ग पर आरोहण का। केशलोंच साध्वाचार की परम्परा रहा है। यह परीषह-जय की कसौटी है। आचार्यश्री ने नवदीक्षित साधुद्वय को स्वयं की निश्रा में, साध्वी रूपासती जी को बड़े धनकंवर जी म.सा. की निश्रा में तथा साध्वी अमृतकंवर जी को छोटे राधाजी म.सा. की निश्रा में रखने की घोषणा की।

श्रमणधर्म अंगीकार करने के उपरान्त अभी नवदीक्षितों का परीक्षा एवं पर्यवीक्षा का काल चल रहा था। आचार्य श्री ने अत्यन्त सावधान करते हुए नवश्रमण-श्रमणियों को पुनः पुनः साधुवादपूर्वक श्रमण जीवन का स्वरूप प्रस्तुत किया और समझाया कि प्रतिकूल अथवा अनुकूल सभी प्रकार के घोरातिघोर परीषह आने पर भी अपने श्रमणत्व के मनोबल को क्षीण मत होने देना।

दशवैकालिक सूत्र में निरूपित श्रमण के कर्तव्यपालन पर भी आचार्यश्री ने बल दिया तथा षट्जीवनिका की वाचना देकर साधु के षट्कायप्रतिपाल स्वरूप को उजागर किया। साधु-साध्वी जीवन पर्यन्त पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय (द्वि-त्रि-चतुर्-पंचेन्द्रिय) के जीवों की विराधना से बचते हुए षट्काय जीवों के प्रतिपालक होते हैं।

सात दिनों का पर्यवीक्षाकाल समापन पर था। वि.सं. १९७७, माघ शुक्ला नवमी तदनुसार १७ फरवरी १९२१ गुरुवार के शुभ दिन अजमेर में ही आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के मुखारविन्द से नवदीक्षित साधु-साध्वियों की बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई। वे छेदोपस्थापनीय चारित्र में आरूढ़ हुए। मुनिहस्ती का चारित्र में आरोहण हो गया। अब वे पंच महाव्रतों के पालक, ईर्या आदि पाँच समितियों के आराधक एवं मनोगुप्ति वचनगुप्ति, एवं कायगुप्ति के धारक महान् साधक बन गए। दशवैकालिक सूत्र में निर्ग्रन्थ साधु की इसी प्रकार की विशेषताएँ बताते हुए कहा गया है—

पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया।
पंच निग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥-दशवैकालिक -३.११

निर्ग्रन्थ साधु पाँच आस्रवों के त्यागी, तीन गुप्तियों से गुप्त , षट्काय जीवों की यतना करने वाले, पाँच इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, धीर एवं ऋजुदर्शी होते हैं। ■

शोभागुरु के सान्निध्य में मुनि-जीवन

(वि. संवत् १९७७ से १९८३)

• **सन्त-जीवन का अभ्यास और अध्ययन की निरन्तरता**

अजमेर नगर के श्रावक-श्राविकाओं की प्रबल अभिलाषा थी कि नवदीक्षित सन्तों के साथ आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी महाराज चातुर्मासार्थ अजमेर में ही विराजें। संयोगवश पूज्य श्री का विहार आगे नहीं हो सका। इधर स्वामीजी श्री सुजानमलजी महाराज आदि तीन सन्त जो दीक्षा के प्रसंग पर नहीं पधार सके थे, मारवाड़ से पूज्य श्री की सेवा में पधारे। नागौर एवं अजमेर के श्रावकों की पुरजोर विनतियों को लक्ष्य में रखते हुए मुनि श्री सुजानमल जी महाराज आदि सन्तों का चातुर्मास नागौर के लिये स्वीकृत किया गया। इधर बाबा जी श्री हरखचन्दजी म. वयोवृद्ध होने से लम्बे विहार में असमर्थ थे तथा आचार्य श्री भी दाहज्वर आदि कारणों से पूर्ण स्वस्थ नहीं थे। अतः अजमेर श्री संघ की विनति को बल मिल गया और आचार्य श्री ने जब अजमेर चातुर्मास हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान की तो प्रमोदमय वातावरण बन गया। आचार्य श्री चातुर्मास हेतु मोतीकटला में स्व. सेठ छगनमलजी के सुपुत्र सुश्रावक श्री मगनमलजी के मकान में विराजे।

सेठ मगनमल जी ने अवसर देखकर एक बार पूज्य श्री से प्रार्थना की—गुरुदेव ! नवदीक्षित मुनियों को शिक्षण देने के लिये आपकी मर्यादानुसार मेरे यहां व्यवस्था है। पण्डित रामचन्द्र जी भक्तामर स्तोत्र आदि सिखाने हेतु हवेली प्रतिदिन आते हैं, नवदीक्षित मुनियों ने वैराग्यावस्था में उनसे अध्ययन किया है। वे एक दो घण्टे इधर भी आ सकते हैं। अनुकूल जानकर पूज्यप्रवर ने स्वीकृति प्रदान की और प्रतिदिन चरितनायक एवं मुनि श्री चौथमलजी पण्डित जी से प्रतिदिन संस्कृत पढ़ने लगे।

मुनि श्री ने इस चातुर्मास में ज्येष्ठ एवं अनुभवी सन्तों से साधु-मर्यादा का सूक्ष्म बोध प्राप्त किया। वे सभी सन्तों के प्रति विनय भाव रखते, उनसे पृच्छा करते एवं सम्यक् साध्वाचार का पालन करने हेतु उत्सुक एवं तत्पर रहते। ज्ञान-सम्पन्नता, दर्शन-सम्पन्नता एवं चारित्र-सम्पन्नता का पाठ उन्होंने अपने गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. एवं शिक्षा गुरु श्री हरखचन्द जी म.सा. के सान्निध्य में सीखने में जो रुचि दिखाई उससे सभी पुलकित एवं प्रसन्न थे। सन्त जीवन के नये-नये अनुभवों से उनका साक्षात्कार प्रारम्भ हो गया था।

सन्त-जीवन पापकर्मों से विरति का जीवन है। इसमें पदे-पदे यतना या विवेक हो तो पाप कर्म का बन्ध नहीं होता है-

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ॥

चलना, उठना, बैठना, शयन करना, आहार करना, बोलना आदि सभी क्रियाएँ यतना पूर्वक करने का मुनि श्री हस्ती अभ्यास बढ़ाते रहे। आचार्य श्री एवं ज्येष्ठ सन्तों की शिक्षाओं के प्रति वे प्रतिपल जागरूक थे। साधारण

बालक जहाँ उपद्रवी एवं नादान होते हैं, वहाँ सन्त-जीवन पूर्णत: नियमों में बंधा हुआ होता है। लघुवय के सन्त कैसे अपने चंचल मन को वश में करते होंगे ? बड़ा कठिन कार्य है। किन्तु लघुवय मुनि हस्ती ने मन, इन्द्रिय एवं शरीर की चंचलता को जीतना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने यह पाठ सीख लिया था -

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥

एक अपनी आत्मा या मन को जीत लेने पर पांच इन्द्रियां एवं चारों कषायों को जीता जा सकता है।

पंचिंदियाणि कोहं माणं, मायं तहेव लोहंच।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥ उत्तराध्ययन ९.३६

आपने उत्तराध्ययन सूत्र के विनय अध्ययन के अनुसार अपनी जीवन शैली को बनाने का प्रयास करते हुए जान लिया था-

नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए।
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमप्पियं ॥

गुरुजनों द्वारा बिना पूछे व्यर्थ न बोलना, पूछने पर झूठ नहीं बोलना, बुरा लगने पर भी क्रोध नहीं करना और गुरु के द्वारा कहे गए अप्रिय वचन को भी प्रिय या हितकारी समझना आदि विशेषताओं को मुनि हस्ती ने बाल्य अवस्था में ही आत्मसात् कर लिया। किस प्रकार के दुराचरण से कोई साधु पाप-श्रमण कहलाता है, उसे भी उन्होंने भली-भांति जानकर वर्जनीय आचरण को सर्वदा के लिए हेय समझ लिया था।

पांच समिति और तीन गुप्ति का निर्मल आचरण मुनि हस्ती की जीवनचर्या का अंग बन गया। मन, वचन एवं काया को नियन्त्रित करने की साधना में वह लघु शिल्पी सफलता की ओर दृढ कदम बढा रहा था। ईर्या, भाषा, एषणा, निक्षेपणा और परिष्ठापनिका समिति के प्रति सजगता देखते ही बनती थी।

जीवन की नश्वरता का उन्हें पहले से ही बोध था, अत: प्रमाद को त्याग कर समय का सदुपयोग करने हेतु वे तत्पर थे। 'समयं गोयम ! मा पमायए' को उन्होंने गुरुमन्त्र समझ कर अध्ययन एवं साधना की सजगता को लक्ष्य बना लिया।

दशविध समाचारी का स्वरूप एवं प्रयोग भी मुनि हस्ती को हस्तामलकवत् स्पष्ट हो रहा था। 'आवस्सइ' एवं 'निस्सीहइ' शब्दों के उच्चारण उन्हें बाह्य गमनागमन की प्रक्रिया से परिचित करा रहे थे।

मुनि हस्ती गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज की आज्ञा के पालन में अपने जीवन का विकास देख रहे थे। उन्हें गुरुभ्राताओं एवं ज्येष्ठ सन्तों से भी निरन्तर दिशा निर्देश एवं प्रशिक्षण मिल रहा था।

पण्डित रामचन्द्र जी से संस्कृत में लघुसिद्धान्त कौमुदी, शब्द रूपावली, धातु रूपावली के साथ अमर कोष का अध्ययन चल रहा था। हिन्दी भाषा का अध्ययन भी कर रहे थे। सन्तों से आगम एवं थोकड़ों का अध्ययन चल रहा था।

चातुर्मास के अन्तिम चरण में सातारानिवासी सेठ बालमुकुन्द जी मुथा के सुपुत्र सेठ मोतीलाल जी मुथा पूज्य आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ अजमेर पधारे। आप उस समय साधुमार्गी जैन कांफ्रेस के प्रधानमंत्री थे। आपके साथ पण्डित दु:खमोचन जी झा भी आए थे, जो कान्फ्रेंस के साप्ताहिक पत्र जैन प्रकाश के सम्पादक थे और संस्कृत के

उद्‌भट विद्वान होने के साथ जैन परम्परा से परिचित थे। आप पूज्य श्री जवाहर लाल जी म., पूज्य श्री गणेशीलालजी म. एवं मुनि श्री घासीलालजी महाराज के पास वर्षों तक अध्यापन सेवा कर चुके थे। सेठ मोतीलालजी इन्हें अपने साथ इस विचार से लाए थे कि यदि पूज्य श्री की आज्ञा हुई तो नवदीक्षित मुनियों के अध्ययन हेतु इन्हें नियुक्त कर देंगे। पूज्य श्री को सुश्रावक मुथाजी ने अपनी भावना से अवगत कराया तो आचार्य श्री ने पण्डित जी से कल्याण मंदिर के एक श्लोक का अर्थ कराया एवं आवश्यक पूछताछ के पश्चात् पण्डित जी की योग्यता एवं शील स्वभाव को देखकर साधुभाषा में अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

पण्डित झा साहब से संस्कृतभाषा आदि का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। नवदीक्षित मुनि हस्ती को बहुत अच्छा लगा। पण्डित झा भी उनकी प्रतिभा, स्मरणशक्ति एवं व्युत्पन्न मतित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए। पं. दुःखमोचन झा जो भी पाठ पढ़ाते, उसे वे दूसरे दिन पूरा याद करके सुना देते। अध्ययन का क्रम निरन्तर बढ़ता गया। संस्कृत भाषा आदि का अध्ययन करते हुए प्रथम चातुर्मास (विक्रम संवत् १९७८) अजमेर में सानंद व्यतीत हुआ।

अजमेर में आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा., स्वामी जी श्री हरखचन्द जी म.सा., श्री लालचन्द जी म.सा. एवं नवदीक्षित श्री चौथमल जी म.सा. के साथ मुनि श्री हस्तिमल्ल जी महाराज सा. का प्रथम चातुर्मास यतनापूर्वक साध्वाचरण की कसौटी पर खरा उतरा।

इसी चातुर्मास में आपने 'पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि' (पुरुष ! तुम ही तुम्हारे मित्र हो, बाह्य मित्र की इच्छा करना व्यर्थ है । –आचारांग १.३.९) , अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं (जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है। – सूत्रकृताङ्ग २.१.३) अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरइ (आत्मा स्वयं अपने द्वारा कर्मों की उदीरणा करता है, स्वयं ही उनकी गर्हा - आलोचना करता है तथा स्वयं ही उनका संवर करता है। – भगवती सूत्र १.३) जैसे आगम - वाक्यों का भी अध्ययन कर अपने जीवन को आध्यात्मिक दिशा प्रदान कर दी थी।

अजमेरवासियों की उमंग एवं धर्माराधन की लगन के साथ चातुर्मास सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

• प्रथम पद-विहार : मेड़ता की ओर

वर्षाकाल की समाप्ति हुई। मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा के दिन पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. और सन्तमंडल के साथ ढड्ढा जी के बाग से विहार कर पुष्कर, थांवला, पादु, मेवड़ा रीयां, आलणियावास, पांचरोलिया आदि क्षेत्रों में धर्मलाभ देते हुए चरितनायक मेड़ता पधारे। यह अनेक नये अनुभवों से ओत-प्रोत मुनि हस्ती की प्रथम पदयात्रा थी। नन्हें-कोमल कदमों की आहट और पाद-निक्षेप धरा के किसी जीव को त्रस्त न कर दे, इस विवेक से युक्त मुनि हस्ती 'दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं' का अभ्यास अपनी प्रथम पदयात्रा में कर रहे थे। प्रकृति के परिवेश का पर्यालोचन करते हुए मुनि हस्ती पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में जीवत्व के सत्य का साक्षात्कार कर रहे थे। सूक्ष्मातिसूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव के पिण्ड से छेड़छाड़ भी हिंसा है, ऐसे चिन्तन को संजोए प्राणिमात्र के प्रति अभय की भावना के मूर्तरूप बने वे जन-जन के दुलारे बन गए। इस विहार ने क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषह सहने के सामर्थ्य का वर्धन किया। बाल मुनि के स्वाभाविक भोलेपन और कठोरचर्या के संगम को देख श्रावक समुदाय विस्मित था। श्रीमालों के उपाश्रय में श्रद्धालुओं की उमड़ती भीड़ भक्तिमती मीरां की पावन मातृभूमि पर निरन्तर प्रवचनामृत बरसाने हेतु आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. से विनति करने लगी। आठ दिवस तक आचार्य श्री एवं सन्तों की अमृतवाणी का रसास्वादन मेड़ता निवासियों तथा प्रवासियों

ने किया।

• बीकानेर के धोरों का अनुभव

पूर्वाचार्यों द्वारा रत्नत्रयी के बोधिबीज का वपन, अंकुरण और सिञ्चन बीकानेर क्षेत्र में हुआ जानकर आचार्य श्री ने नवदीक्षित संतों का मनोबल बढ़ाने हेतु तथा कष्ट सहिष्णुता जगाने हेतु चरितनायक को बीकानेर विहार का संकेत किया। आचार्य श्री चाहते थे कि हमारे नवदीक्षित सन्त अतिकठिन समझे जाने वाले, बालू के समुद्र वाले मरुप्रदेश में विचरण कर नये-नये अनुभव प्राप्त करें। भुरण्ट (कांटे) से भरे बालू के बड़े-बड़े टीलों और मैदानों के पारगामी कण्टकाकीर्ण पथों पर दृष्टि गड़ाए चलने से इन्हें अपनी चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने का अभ्यास होगा, आत्मविश्वास जागृत होगा। उन्होंने इस बात को अपने मन में रेखांकित किया कि अजमेर से मेड़ता तक प्रथम विहार में वय की अपेक्षा सबसे छोटे एकादशवर्षायुष्क मुनि हस्ती ने अपने दृढ़ मनोबल का परिचय दिया है। अतः यह होनहार संत निश्चय ही श्रमण धर्म के कठोर परीषहों को सहन कर एक दिन सन्त-परम्परा का आदर्श स्थापित करेगा।

आचार्य श्री शोभा गुरु की छत्रछाया में मुनि हस्ती खजवाणा, मूंडवा होते हुए नागौर पधारे, जहाँ बीकानेर के प्रेमी श्रावक विनति हेतु उपस्थित हुए। नागौर से गोगोलाव, अलाय आदि ग्राम नगरों को फरसते हुए कक्कू-भग्गू के धोरों को पार कर देशनोक की तरफ अग्रसर हुए। बालुका से परिपूर्ण विस्तृत मैदानों के कैर, बेर, बबूल, खेजड़े और फोग की झाड़ियों और पेड़-पौधों से भी पथिक मुनि हस्ती ने सीख ली कि कंटीला और कठोर जीवन भी आनंदमयी और परोपकारी हो सकता है। धोरों की धरती के ऊंचे रेतीले टीलों पर धंसते पैरों से श्रमपूर्वक चढ़ते हुए बाल मुनि का भाल मोती जैसे स्वेद बिन्दुओं से चमकने लगा। गुरुवर ने ठीक ही तो कहा था कि साधना की ऊंचाई पाने हेतु श्रमणत्व की कठोर चर्या साधन है जो मोक्ष की अलख ऊंचाई की प्राप्ति कराता है। 'टीबा कुण का भारा राखै है' लोकोक्ति का अर्थ मुनि हस्ती ने समझ लिया कि सही ढंग से किया गया श्रम कभी निष्फल नहीं होता। रेतीले रास्तों की पद-यात्रा की परीक्षा में भी मुनि हस्ती उत्तीर्ण रहे। बीकानेर नगर प्रवेश के अनन्तर मालूजी की कोटडी में विराजे। यहाँ श्रावकों ने सन्तों से प्रश्नोत्तरों का लाभ लिया। सेवा में भी उपस्थित होते। सेठिया भैरोंदानजी, राव सवाईसिंह जी , सुराणा भेरूमलजी, बाबू आनन्दराजजी , लाभचन्दजी डागा आदि ने सन्तों का विशेष लाभ लिया। बीकानेर पूज्य जवाहराचार्य का प्रमुख विचरण क्षेत्र था। अतः सतारा विराजते हुए उन्होंने श्रावकों को सन्तों की सेवा का लाभ लेने हेतु विशेष भोलावण भिजवाई। जोधपुर, नागौर और समीपवर्ती स्थानों से समागत तथा स्थानीय श्रावक-दर्शनार्थियों का तांता लग गया। मुनि हस्ती को तो ज्ञानाभ्यास की लगन लग गई। श्री भैरोदान जी सेठिया द्वारा मुनि श्री के अध्यापन की समुचित व्यवस्था से उनका शास्त्रीय अध्ययन परवान पर चढ़ने लगा। पूर्व पठित एवं कण्ठस्थ किये गए शास्त्रों एवं व्याकरण, कोश, स्तोक आदि के परावर्तन का क्रम निरन्तर मुनि श्री को उत्साहित करने लगा। पारमार्थिक संस्था के पण्डितों का शिक्षण में सहयोग मिलता रहा। बीकानेर नगर के निवासियों, उनके रहन-सहन एवं उनकी भाषा आदि का परिचय पाकर वे अपने अनुभव को पुष्ट करने में भी थोड़ा-थोड़ा समय लगाते थे।

बीकानेर प्रवासकाल में मुनि श्री हस्ती और उनके सतीर्थ्य मुनि श्री चौथमलजी महाराज का होली चौमासी पर केशलुञ्चन स्वामी जी श्री भोजराज जी महाराज द्वारा बड़े स्नेहपूर्वक किया गया। दिन प्रतिदिन बाल मुनि की कोमल काया परीषह सहन करने में उत्तरोत्तर सक्षम बनती गई। अजमेर से बीकानेर और अब बीकानेर से नागौर की ओर

विहारकाल में मुनिश्री को जो अभिनव अनुभव हुए, उनसे उनके उत्साह में और अधिक वृद्धि हुई।

• भोपालगढ़ की ओर

वापसी यात्रा में नागौर में कतिपय दिन धर्मलाभ देकर रूण, नोखा-चांदावतों का होकर हरसोलाव में हवेली में विराजे जहां पूज्य श्री कानमलजी एवं चैनमलजी म.सा. का आगमन एवं प्रेम मिलन हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में दया धर्म का प्रचार करते हुए आचार्य श्री मुनिश्री हस्ती के साथ ७ ठाणा से रजलाणी होते हुए आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की ऐतिहासिक क्रियोद्धार स्थली भोपालगढ़ (बड़लू) पधारे। भोपालगढ़ तथा आस-पास की ढाणियों और जोधपुर आदि नगरों से दर्शनार्थ पहुंचे आबाल वृद्ध नरनारी वृन्द ने आचार्य श्री शोभा गुरु और तेजस्वी मुनि हस्ती सहित सातों सन्तों को ऐसे देखा जैसे सप्तर्षि मंडल धरती पर उतर आया हो। भोपालगढ़ के श्रावकों की धर्म के प्रति अटल श्रद्धा, अविचल निष्ठा और अटूट आस्था प्रसिद्ध रही है। सन्तों के आगमन के स्वागत में नारी समाज के गीतों का हृदयहारी संगीत शासनपति श्रमण भगवान महावीर तथा उनके क्रमागत पाटानुपाट उत्तराधिकारी के रूप में तत्कालीन अस्सीवें पट्टधर आचार्य श्री शोभागुरु के जयघोषों से बालमुनि हस्ती भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, व्रत-प्रत्याख्यान, पौषधोपवास आदि की होड़ सी लग गई। मुनि हस्ती का अध्ययन क्रम भी नया बास स्थित श्री जालमचन्द्र जी ओस्तवाल के मकान में विराजने पर सुचारुरूपेण चलता रहा। साध्वाचार एवं क्रियोद्धार के सम्बंध में अनेक जिज्ञासाएं प्रकट कर मुनि हस्ती ने आचार्य शोभा गुरु तथा बाबाजी हरखचन्द जी महाराज आदि सन्तों से पर्याप्त जानकारी प्राप्त की।

यहाँ पर सतारा से सुप्रसिद्ध दानवीर श्रावक सेठ श्री मोतीलालजी मुथा आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के दर्शनार्थ पधारे। नवदीक्षित सन्तों को देखकर आचार्य श्री को निवेदन किया—"छोटे छोटे सन्त हैं, विद्यार्थी हैं, अत: इन्हें पारणक में छाछ और खांखरा देने की बजाय दूध में घी देना चाहिये ताकि इनकी बुद्धि अधिक कार्य कर सके।" आचार्यप्रवर ज्यों ही इसका प्रतिवाद करने को उन्मुख हुए, वहां विद्यमान सुज्ञ एवं दृढ श्रद्धालु श्रावक श्री मोतीचन्दजी चोरड़िया तुनक कर बोले - "यह जहर देने की बात क्यों करते हो ? क्या इनके बडेरे पढे-लिखे नहीं थे? क्या वे बहुश्रुत नहीं थे ? क्या वे प्रतिदिन दूध और घी खाते थे ? वे तो पौरसी करते थे। अत: आप सन्तों को रसलोलुप न बनाएँ।" शास्त्र भी कहता है -

दुद्धदहिविगइओ आहारेइ अभिक्खणं।
अरए तवोकम्मे पावसमणेत्ति वुच्चइ॥-उत्तराध्ययन सूत्र १७.१५

जो दूध, दही आदि विगयों का नियमित सेवन करता है एवं तपकार्य में अरति रखता है। वह पाप श्रमण कहलाता है।

मोतीचन्द जी चोरड़िया का कथन आचार्य श्री की आचार संहिता को पुष्ट कर रहा था।

• जोधपुर के पाँच वर्षावासों (संवत् १९७९-१९८३) में योग्यता-वर्धन

भोपालगढ़ से विहार कर हीरादेसर, दहीखेड़ा, सूरपुरा, महामंदिर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आचार्य श्री के साथ आप जोधपुर पधारे। जोधपुर में विक्रम संवत् १९७९ का चातुर्मास अजमेर निवासी श्री उम्मेदमलजी सा. लोढा के पेटी के नोहरे में हुआ। ज्ञातव्य है कि आचार्य श्री के अजमेर प्रवास के समय उनकी सत्प्रेरणा से यह मकान लोढाजी ने धर्मध्यान के लिये खाली रखने के भाव अभिव्यक्त किये थे। मुनिश्री के लिए अध्यापक श्री धनराज जी,

श्री कन्हैयालाल जी, पंडित श्री सुखलाल जी और पंडित श्री सदानंद जी आदि का सुयोग उनके ज्ञानवर्धन में सहयोगी बना। 'पढमं नाणं तओ दया' की परिपालना में मुनि श्री के जीवन में ज्ञान और क्रिया का अनूठा समन्वय रहा। आचार्य शोभा गुरु के सान्निध्य में मुनि श्री हस्ती का आगम-ज्ञान तथा संस्कृत अध्ययन निखरता गया। मुनि हस्ती के अध्ययनकाल में पण्डित सदानंद जी ने एक व्यंग्योक्ति की- "पण्डित जैन साधु भी एक साधारण पढ़े-लिखे ब्राह्मण के बराबर नहीं होता।" पण्डितजी की इस व्यंग्योक्ति को उन्होंने जैन श्रमण परम्परा के स्वाभिमान को दी गई चुनौती के रूप में स्वीकार किया एवं मन ही मन संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का गहन अध्ययन करने का दृढ संकल्प कर लिया।

इधर मुनिश्री जोधपुर प्रवासकाल में अहर्निश परिश्रम से विद्याभ्यास में संलग्न थे और उधर **अजमेर में विक्रम संवत् १९७९ भाद्रपदकृष्णा अमावस्या के दिन बाबाजी श्री हरखचन्द जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया।** बाबाजी श्री हरखचन्द जी म.सा. के द्वारा ही मुनिश्री में प्रारम्भिक शिक्षा-संस्कारों का बीजारोपण हुआ था तथा उनके वात्सल्यमय संरक्षण में ही मुनि श्री को मुनि-जीवन पर आरूढ होने की प्रेरणा और सम्बल मिला था। मुनि श्री पर इस घटना से वज्राघात हुआ, नयनों पर बाबाजी महाराज की वात्सल्यमयी मूर्ति मंडराने लगी। मुनि श्री ने तत्त्वों का अध्ययन ही नहीं, चिन्तन भी किया था। वे शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता से परिचित थे। उन्होंने स्वर्गस्थ बाबाजी को श्रद्धांजलि स्वरूप 'चार लोगस्स' का ध्यान किया और दृढ़ मनोबल से वे इस आघात को सह गए। मुनि श्री हस्ती के दृढ़ मनोबली जीवन पर आचार्य श्री शोभागुरु की छाप थी। आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. स्वभाव से शान्त व धीर एवं हृदय से विशाल थे।

चातुर्मासोपरान्त जोधपुर शहर से विहार कर मुनि श्री हस्ती अपने गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज के साथ महामंदिर पधारे। मार्ग में विहार के समय भक्तिवश सैंकड़ों लोग नंगे पैर साथ चले। महामंदिर में सभी सन्त कांकरियों की पोल में विराजे। यहाँ पर हरसोलाव निवासी श्री लूणकरणजी बाघमार की भागवती दीक्षा का मुहूर्त मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा का निश्चित किया गया। संयोगवश उन्हीं दिनों ऐसी घटना घटी कि एक बहिन ने स्वप्न में महासती छोगाजी के दर्शन किए। उस बहिन ने आचार्य श्री की सेवा में निवेदन किया कि महासती जी म. सा. यहाँ पधार जावें तो मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँ। इधर बहिन कहकर गई और आचार्य श्री आहार के लिए विराजे। कुछ ही काल पश्चात् द्वार पर आकर किसी ने आवाज लगाई कि महासती छोगां जी पधारे हैं। सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। बहिन का मनोरथ पूर्ण हो गया एवं उसने अपनी प्रतिज्ञा का सहर्ष निर्वाह किया।

महामंदिर की ही एक अन्य बहन ने भी दीक्षा की भावना व्यक्त की। जोधपुर के प्रमुख श्रावक श्री चन्दनमल जी मुथा के प्रयासों से **मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन मुथा जी के मंदिर में एक साथ तीन दीक्षाएं-श्री लूणकरण, श्रीमती छोगाजी (लोढण जी) एवं श्रीमती किशनकंवर की सम्पन्न हुई।** मुनिश्री हस्ती के प्रव्रजित होने के पश्चात् आचार्य श्री शोभागुरु की निश्रा में प्रव्रज्या-समारोह का यह द्वितीय अवसर था। नवदीक्षित लूणकरण का नाम मुनि श्री लक्ष्मीचन्द रखा गया तथा उन्हें स्वामीजी श्री सुजानमल जी म. का शिष्य घोषित किया गया। इससे पूर्व जोधपुर के सिंहपोल में वैशाख माह में **संवत् १९७९ में ही दो विरक्ता बहनों श्रीसज्जनकँवर जी एवं श्री सुगनकँवर जी पारख की दीक्षाएँ सम्पन्न हुई थीं।**

आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. वृद्धावस्था के कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से दुर्बल हो चले थे। समय-समय पर होने वाले ज्वर से उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी एवं आवश्यक दिनचर्या में थकान का अनुभव करने लगे थे।

उनकी यह स्थिति देखकर जोधपुर के प्रमुख श्रावक श्री चन्दनमलजी मुथा, नवरतनमलजी भाण्डावत, तपसीलालजी डागा, छोटमलजी डोसी आदि गणमान्य श्रावकों ने स्थिरवास के रूप में जोधपुर विराजने की विनति की। साथ ही यह भी निवेदन किया कि क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. ने भी अपनी अन्तिम सेवा का लाभ इसी नगर को दिया, फिर आपकी तो यह जन्मभूमि है। शरीर की लाचारी और व्याधि के कारण विनति को स्वीकार कर संवत् १९७९ माघपूर्णिमा को आचार्य श्री ने ठाणा ७ से जोधपुर में स्थिरवास कर लिया, जो संवत् १९८३ तक चला।

इस अवधि में चरितनायक मुनि हस्ती एवं अन्य शिक्षार्थी सन्त भी आचार्य श्री शोभागुरु की सन्निधि में ही रहे। यहाँ पर मुनि हस्ती को पण्डित श्री दुःखमोचन जी झा से अध्ययन का संयोग प्राप्त हुआ। मुनि श्री हस्ती के अतिरिक्त मुनि श्री चौथमल जी एवं नवदीक्षित मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी भी पंडित जी से विद्याध्ययन करते थे। पण्डितजी शिक्षार्थी सन्तों को प्रातः, मध्याह्न और रात्रि को तीनों समय लगन से अभ्यास कराते थे। रात्रि को वे आवृत्ति कराते और कभी कोई कथा कहते। इसी समय कभी सुभाषित श्लोक याद कराते थे। इस प्रकार बिना रटे पाठ याद हो जाता था। पण्डितजी के शान्ति, शील, सन्तोष आदि सद्गुण भी अभ्यासी मुनियों के लिए शिक्षाप्रद रहे। यहाँ पर मुनि श्री हस्ती ने सिद्धान्त कौमुदी, किरातार्जुनीय, भट्टिकाव्य, तर्कसंग्रह, परिभाषेन्दुशेखर की फक्किकाएं, रघुवंश आदि अनेक संस्कृत ग्रंथों का गहन अध्ययन करने के साथ हिन्दी से संस्कृत एवं संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने एवं निबंध लिखने का भी अच्छा अभ्यास किया। धाराप्रवाह संस्कृत बोलने में भी मुनिश्री प्रवीण हो गए। संस्कृत में प्रावीण्य के साथ मुनि श्री हस्ती ने आचार्य श्री शोभागुरु से आगमों का अध्ययन भी जारी रखा। उन्होंने यहाँ रहते हुए दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नंदी सूत्र, वृहत्कल्प, अनुत्तरौपपातिक, आवश्यक सूत्र और विपाकसूत्र का गंभीर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त जिज्ञासु मुनि हस्ती यदाकदा अवसर मिलने पर ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, स्वरविज्ञान और मन्त्रविद्या के सम्बंध में भी प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों से कुछ सीखते रहते थे। उन्हें इतर साहित्य कथा, कहानी, पत्र-पत्रिका आदि पढ़ने का शौक नहीं था। स्वामीजी श्री भोजराज जी म. चरितनायक मुनि के बहुमुखी बौद्धिक विकास के लिए सदा सजग एवं प्रयत्नशील रहते थे। अन्य मुनियों का भी सहयोग प्राप्त था। मुनि श्री स्वयं दत्तचित होकर निष्ठापूर्वक अध्ययन में लगे रहते थे।

चरितनायक अपने गुरुदेव की छत्र-छाया में सहज रूप से मस्त थे। उन्होंने अपने संस्मरण में स्वयं लिखा है—"गुरुदेव की छत्र छाया में इतना मस्त था कि कौन आया और कौन गया, इसका पता नहीं। किसी से बात करने का मन ही नहीं होता—भगिनी-मण्डल से तो बात ही नहीं करता, अपनी दीक्षिता माँ और साध्वीरत्न श्री धनकंवरजी आदि से भी बात नहीं की। हम बच्चों के साथ बैठकर कभी गप-शप नहीं करते। दो-चार बूढे लोग-सन्त या पण्डितजी यही हमारे बात का परिवार था।" जोधपुर स्थिरवास काल में अन्यान्य परम्पराओं के सन्त भी पधारे एवं उनसे आचार्य श्री का स्नेह सौहार्दपूर्ण मिलन हुआ। इनमें प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज आदि ठाणा एवं पूज्य अमरसिंह की परम्परा के मुनि श्री नारायणदास जी म., मेवाड़ी सम्प्रदाय के श्री मोतीलालजी म., मन्दिरमार्गी सन्त श्री हरिसागर जी म. आदि नाम विशेष उल्लेखनीय है।

• संघनायक के रूप में चयन

इस प्रकार मुनि श्री हस्ती अल्पवय में ही संस्कृत एवं आगम के पंडित हो गए और ज्ञान की विविध विधाओं तथा अनुभवों की व्यापकता के कारण वे चतुर्विध संघ की दृष्टि के केन्द्र बिन्दु बन गए। आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की अस्वस्थता एवं वृद्धावस्था के कारण चतुर्विध संघ के सदस्यों के अन्तर्मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक

था कि भावी संघनायक कौन होगा? संघ सदस्यों की नजरें मुनि श्री हस्ती पर टिकी थीं, जिनमें संघनायक के समस्त गुण विद्यमान थे।

बाल मुनि हस्ती की उस समय ज्ञानार्जन - और अधिक से अधिक सीखने की रुचि थी। शास्त्रों के तलस्पर्शी ज्ञान के पूर्व उनकी बोलने में रुचि नहीं थी, तथापि श्री उदयराजजी लुणावत प्रभृति श्रावकों द्वारा आचार्य श्री की सेवा में बार-बार निवेदन करने पर बाल मुनि श्री हस्ती ने अपना प्रथम प्रवचन दिया।

मुनि श्री हस्ती ने अपने प्रथम प्रवचन में ही चतुर्विध संघ के श्रोताओं का मन जीत लिया। आचार्य श्री शोभागुरु की सेवा-सुश्रूषा से मुनि श्री का वैयावृत्य तपोगुण भी प्रकट हुआ। शोभागुरु के अन्यान्य परम्पराओं के सन्त-सती वर्ग के प्रति सद्भाव-सम्बंधों के साक्षी मुनि श्री हस्ती में उदारता, सौहार्द तथा सम्प्रदायातीत समन्वयभाव का अद्भुत विकास हुआ। उनका आचार्य शोभागुरु के प्रति प्रगाढ़ भक्तिभाव एवं समर्पण था। इस प्रकार अनेकविध गुणों के निधान एवं सर्वाधिक योग्य होने से मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की लघुवय में आचार्य शोभागुरु ने उत्तराधिकारी संघनायक के रूप में उनका चयन किया एवं इसका लिखित संकेत सतारा के अनन्य गुरुभक्त एवं निष्ठावान प्रमुख सुश्रावक श्री मोतीलालजी मुथा को सौंप दिया। इस छोटी सी वय में आचार्य पद पर चयन की यह एक ऐतिहासिक घटना हुई, जिसमें आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा. की परीक्षण योग्यता एवं दीर्घदृष्टि भी अभिव्यक्त हुई।

• आचार्य श्री शोभागुरु का स्वर्गारोहण

जोधपुर स्थिरवास में आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. को अपनी बढ़ती हुई रुग्णावस्था एवं क्षीण होती हुई देहयष्टि से यह विश्वास होने लगा कि अब इस जीर्ण-शीर्ण जराजर्जरित देह से आत्मदेव के प्रयाण का समय सन्निकट है। इस विश्वास से उनकी आत्मलीनता और अधिक एकाग्र और ऊर्ध्वमुखी होती गई। आचार्य श्री जैसे मृत्युञ्जयी पथप्रदर्शक के लिए मृत्यु का वरण तो महोत्सव है, चिन्ता का विषय हो ही नहीं सकता। उन्हें भलीभाँति ज्ञात था — 'मरणं हि प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः।' मृत्यु तो शरीरधारियों का स्वभाव है। मृत्यु सबकी सुनिश्चित है। यह आश्चर्य है कि हम जी रहे हैं, मृत्यु का झोंका किसी भी क्षण इस जीवन लीला को समाप्त कर सकता है। पर्वत पर रखा दीपक यदि तूफानी हवा से भी नहीं बुझता है तो यह आश्चर्य की बात है, उसके बुझने में कोई आश्चर्य नहीं।

अपना अन्तिम समय जान विक्रम संवत् १९८३ की श्रावणी अमावस्या की प्रातःकालीन पावन-वेला में आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी ने संलेखनापूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया। आत्म-चिन्तन में लीन उस महान् आत्मा का मध्याह्न में स्वर्गारोहण हो गया। आचार्य श्री विक्रम संवत् १९१४ की कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन जोधपुर की जिस पावनभूमि साण्डों की पोल जूनी धान मंडी में जिस शरीर के साथ जन्मे, उसी धरती पर लगभग ६९ वर्ष पश्चात् उनका महाप्रयाण हुआ।

वयोवृद्ध स्वामीजी श्री सुजानमलजी म., स्वामीजी श्री भोजराज म. आदि वरिष्ठ सन्तों से परामर्श कर परम्परा के प्रमुख श्रावक श्री मोतीलालजी मुथा सतारा द्वारा जोधपुर, जयपुर, बरेली, पाली, अजमेर, पीपाड़, भोपालगढ़, नागौर, ब्यावर आदि स्थानों के श्री संघों के प्रमुख श्रावकों की बैठक में आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के लिखित संकेत को पढ़कर सुनाया गया कि मुनि हस्तीमल जी महाराज इस गौरवशाली रत्नवंश परम्परा के सप्तम पट्टधर होंगे।

उपस्थित सभी श्रावकों ने 'श्रमण भगवान महावीर स्वामी की जय' 'क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की जय', 'आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. की जय' एवं 'आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. की जय' के जय-निनादों के साथ इसका सहज अनुमोदन कर अपने को गौरवान्वित अनुभव किया। इस समय समाज के अग्रणी श्रावकों में श्री चन्दनमलजी मुथा-जोधपुर, श्री रतनलाल जी नाहर-बरेली, श्री मुन्नीमलजी सिंघवी-जोधपुर , श्री भँवरीलालजी मूसल-जयपुर, श्री छोटमलजी डोसी जोधपुर, श्री नवरत्नमलजी भाण्डावत-जोधपुर, श्री शम्भुनाथजी मोदी-जोधपुर, श्री केशरीमलजी कोठारी-जयपुर भी उपस्थित थे। संघ द्वारा चरितनायक को इस सम्बन्ध में निवेदन किए जाने पर उन्होंने ५ वर्ष का समय अभ्यास के लिए दिया जाए, ऐसा फरमाया। उनकी भावना जानकर संघ के परामर्श से यह निर्णय लिया गया कि अन्तरिम समय के लिए वयोवृद्ध श्री सुजानमल जी महाराज को संघ-व्यवस्थापक और स्वामीजी भोजराज जी महाराज को उनका परामर्शदाता बनाया जावे।

मनोनीत आचार्य के लघुवय होने पर भी सुज्ञ श्रावकों के सद्भाव और गुरुभक्ति से संघ की अन्तरिम काल में व्यवस्था निराबाध सुचारु चलती रही।

आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के स्वर्गारोहण के अनन्तर विक्रम संवत् १९८३ के जोधपुर चातुर्मासावास के शेष साढे तीन मास संघ-व्यवस्थापक स्वामीजी श्री सुजानमलजी महाराज के प्रेरणादायी प्रवचनों, भावी संघ-नायक के प्राकृत, न्याय आदि के उच्चतर अध्ययन एवं आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के मधुर जीवन प्रसंगों की स्मृति के साथ धर्माराधन को गति देते हुए सम्पन्न हुए। इस चातुर्मास में आचार्यश्री के अतिरिक्त ९ सन्त थे–(१) स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. (२) बाबाजी श्री भोजराजजी म.सा. (३) श्री अमरचन्दजी म.सा. (४) श्री लाभचन्द्रजी म.सा. (५) श्री सागरमलजी म.सा. (६) श्री लालचन्द्रजी म.सा. (७) मुनि श्री हस्तीमलजी म.सा. (८) श्री चौथमलजी म.सा. (९) श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म.सा.।

इस चातुर्मास के समापन के समय अजमेर में संवत् १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा को संघ-व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी म.सा. की व्यवस्था एवं आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज की आज्ञा से अजमेर में महासती श्री छोगाजी के पास १२ वर्ष की अवस्था में श्री सुन्दरकंवर जी की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। महासती श्री सुन्दरकंवरजी आगे चलकर प्रवर्तिनी पद से विभूषित हुए।

■

आचार्य पद-ग्रहण के पूर्व अन्तरिम-काल

(संघ-व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी म. एवं परामर्शदाता स्वामी श्री भोजराजजी म. का सान्निध्य)

तेजस्वी मुनि हस्ती का संघनायक आचार्य के रूप में चयन हो गया, किन्तु वे अभी अपने अध्ययन को महत्त्व देते हुए वयोवृद्ध श्री सुजानमल जी म.सा. के संघ व्यवस्थापकत्व एवं स्वामीजी श्री भोजराजजी महाराज के परामर्शत्व में निश्चिन्त एवं आनन्दित थे। संघ व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी महाराज के निर्देश पर सन्तों का अलग-अलग संघाडों में विचरना हुआ। चरितनायक विभिन्न क्षेत्रों को फरसते हुए नागौर पधारे, जहाँ आप यदा-कदा प्रवचन फरमाते। परन्तु अधिकांश समय अध्ययन एवं चिन्तन में ही देते। यहां पर ज्ञानचन्दजी सिंघवी के साथ सामयिक प्रश्नोत्तर हुए। वहां से ग्राम - नगरों को फरसते हुए आप पाली पधारे, जहां संघ व्यवस्थापक स्वामीजी श्री सुजानमलजी म., स्वामी जी श्री भोजराजजी जी म. पहले से ही विराजमान थे । वहाँ आप सब सन्त ओसवाल पंचायती नोहरे में विराजे। पाली में ही विराजमान तपस्वी बख्तावरमलजी महाराज ने न्याति नोहरे में पधार कर चरितनायक से कुछ प्रश्न किये एवं उनकी योग्यता से प्रमुदित हुए। किशोरवय मनोनीत आचार्य श्री की प्रतिभा, ज्ञानगरिमा व गांभीर्य से तपस्वी जी महाराज अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हें लगा कि जिनशासन का यह उदीयमान सूर्य मेरी विद्याओं का सच्चा पात्र है और सच्चे पात्र को पाकर उन्होंने कतिपय विद्याओं को चरितनायक को प्रदान किया। आपकी अनुज्ञा से वैशाख माह में पीपाड़ निवासी श्री छोगमलजी गांधी एवं सुन्दरबाई की सुपुत्री और श्री मूलचन्दजी कटारिया की धर्मपत्नी **धूलाजी की हरमाड़ा में वैशाख माह में श्री भीमकंवर जी म.सा. की निश्रा में दीक्षा सम्पन्न हुई।**

इस पाली शेष काल में श्री नथमल जी पगारिया, श्री सुराणाजी, श्री बालियाजी एवं श्री केसरीमलजी आदि श्रावकों ने सेवा-भक्ति का अच्छा लाभ लिया। यहीं पर हाकिम मूलचन्दजी ने स्थविर सन्तों के समक्ष प्रार्थना की कि चरितनायक का अलग चातुर्मास कराया जाए, ताकि व्याख्यान आदि की उनकी योग्यता विकसित हो सके।

- **पीपाड़ चातुर्मास (संवत् १९८४)**

संघ-प्रमुखों की विनति के अनुसार चरितनायक का चातुर्मास स्वामीजी श्री भोजराजजी म. एवं श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के साथ पीपाड़ स्वीकृत हुआ। बाबाजी श्री भोजराज जी, मुनि श्री चौथमल जी और मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी के साथ चरितनायक पाली से विहार कर भोपालगढ़ होते हुए पीपाड़ पधारे। यहाँ के राता उपासरा में चातुर्मासार्थ विराजे। संघ-व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी महाराज का चातुर्मास ठाणा ३ से पालीनगर में हुआ। उनके साथ मुनि श्री अमरचन्दजी एवं मुनि श्री लालचन्द्र जी रहे। मुनि श्री लाभचन्द्रजी एवं मुनि श्री सागरमलजी का चातुर्मास अजमेर हुआ। चातुर्मास के पूर्व पूज्य रघुनाथजी महाराज की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध तपस्वी श्री छगनलालजी महाराज की अस्वस्थता को देखकर संथारा सीझने तक मुनि श्री सागरमलजी एवं लाभचन्द्रजी उनकी सेवा में पाली ही विराजे।

चरितनायक अपनी अल्पवय में ही बड़े-बड़े राज्याधिकारियों, सेठ-साहूकारों, सन्तों, विद्वानों तथा पण्डित

मनीषियों को अपनी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित और मुग्ध करने लगे।

पीपाड़ नगर के चातुर्मास में चरितनायक के व्याख्यानों तथा विशुद्ध श्रमणाचार के पालन से पीपाड़ निवासी अत्यंत प्रमुदित और गौरवान्वित हो रहे थे। चरितनायक के शास्त्रीय व्याख्यान ओजस्वी वाणी के साथ सबको प्रेरणाप्रद लग रहे थे। उनकी प्रत्येक क्रिया की शुद्धता एवं व्यवहार की प्रभावशालिता सबके लिए प्रिय बनती जा रही थी। वे दूसरों को भी अपना बनाने में निष्णात हो गए थे तथा क्रोधी, आवेशी एवं दुर्भावना-ग्रस्त को भी शान्त वाणी एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व से निरुत्तर करने में सक्षम हो गए थे। जैन-अजैन सभी उनसे प्रभावित थे। रामद्वारा के सन्त सीताराम जी भी उनकी सेवा में आया करते थे।

एक दिन राता उपासरा में अध्ययनरत मुनि श्री के पास एक सज्जन आए और बिना प्रसंग के ही बोले--"तुम्हारे पिताजी तो मंदिर की भजनमंडली में अच्छा भाग लेते थे।" इसके आगे वे कुछ बोलें इसके पूर्व ही स्मितमुद्रा में बांठिया जी की ओर दृष्टिपात करते हुए **प्रत्युत्पन्नमति चरितनायक ने उनकी व्यंग्योक्ति का तत्काल उत्तर देते हुए कहा-"विज्ञ श्रावक जी! यदि पिता खारा पानी पीवे तो क्या पुत्र को भी खारा पानी ही पीना चाहिए?" बांठिया जी हतप्रभ हो, लौट गए।**

खरतरगच्छ के यति श्री चतुरसागर जी म. भी चरितनायक की विलक्षण मेधा-शक्ति से अत्यंत प्रभावित थे और उनका आदर करते थे। भोजराजजी म.सा. के सान्निध्य में अध्ययन-कार्य भी निर्विघ्न रूप से चलता रहा। पीपाड़ चातुर्मास की समाप्ति पर संघ के नरनारियों ने विदाई गीतों और धार्मिक उद्घोषों के बीच मुनिमंडल को तालाब के समीपवर्ती बगीची तक पहुंचा कर अश्रु भरे नयनों से भाव भीनी विदाई दी। उसके पश्चात् रीयां में पुनः अध्ययन का क्रम चला।

चातुर्मास के पश्चात् थांवला में श्री **चुन्नीलालजी आबड़ की सुपुत्री चूना जी की** आपकी अनुज्ञा से महासती श्री भीमकंवरजी के द्वारा मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई।

• श्री सागरमुनि जी म.सा.का अद्वितीय संथारा

चातुर्मास के पश्चात् चरितनायक आस-पास के क्षेत्रों में विचरते रहे। स्वामी जी भोजराज जी महाराज के दर्शन कर श्री लाभचन्दजी म. एवं श्री सागरमुनि जी म. पुनः अजमेर पधारे। वहां मुनि श्री सागरमल जी म. अस्वस्थ हो गए। उनकी पाचन नली में खराबी होने से आंते फूल जाती और उनकी अन्न के प्रति रुचि कम हो गई। श्रावकजनों ने उपचार के लिए प्रार्थना की, परन्तु मुनि श्री ने अपने गुरुदेव पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के स्वर्गारोहण के पश्चात् दवा मात्र का त्याग कर दिया था। यहाँ तक कि सोंठ, लवंग आदि घरेलू उपचार की वस्तुएं भी उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। साथ में विराजित श्री लाभचन्द जी महाराज के समझाने पर भी मुनि श्री ने यही कहा-'मुझे अन्न नहीं लेना। जब पेट खाने से कष्ट पाता है तो खाना छोड़ना ही मेरे लिए हितकर है।'

मुनि श्री के स्वास्थ्य के समाचार चरितनायक एवं स्वामीजी सुजानमल जी महाराज की सेवा में भी पहुंचे। समाचार मिलते ही स्वामीजी भोजराज जी ने अजमेर की ओर विहार कर दिया। जोधपुर से सेवाभावी श्रावक श्री चन्दनमलजी मुथा आदि भी पहुंचे। तब तक मुनि श्री सागरमलजी म. किशनगढ़ पधार गए और वहां उन्होंने उपवास चालू कर दिया। स्वामीजी श्री भोजराजजी महाराज ने मुनि श्री की परिस्थिति देख सारी सूचना बाबाजी श्री सुजानमलजी महाराज एवं चरितनायक को करायी, जो उस समय रींया विराज रहे थे। खबर मिलते ही वे रींया से

पीपाड़ पधारे। स्वामीजी ने श्री धूलचन्दजी सुराणा, जो प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी एक अच्छे ज्योतिषी, वैद्य, घड़ीसाज, कवि एवं सन्तों को अध्ययन कराने वाले थे, से पूछा - "सागरमलजी म. संथारा करना चाहते हैं, इस सन्दर्भ में आप क्या कहना चाहेंगे ?" श्री धूलचन्दजी सुराणा ने नक्षत्र आदि के आधार पर कहा - "जिस नक्षत्र में तप चालू किया है, उसमें संथारा लम्बा चलेगा। एक महीने पहले संथारा सीझने की स्थिति नहीं है, आप जल्दी पधारें, ऐसी आवश्यकता नहीं, आप तो धीरे-धीरे भी पधार सकते हैं।" चरितनायक संघ-व्यवस्थापक बाबाजी महाराज के साथ मेड़ता होते हुए २५ दिनों में किशनगढ़ पहुंचे। श्री सागरमलजी महाराज की तपस्या की बात तब तक आस-पास के क्षेत्रों में हवा की तरह फैल गई थी। श्री सागरमुनि जी ने अपनी शारीरिक स्थिति बताते हुए संथारे के लिए प्रार्थना की। बहुत कुछ समझाने के पश्चात् भी दृढ़ मनोबली सागरमुनिजी अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए।

मुनिश्री का तप चल ही रहा था। चरितनायक से अनुज्ञा मिलने पर चतुर्विध संघ की साक्षी से उन्हें यावज्जीवन संथारे के प्रत्याख्यान करवा दिए गए। ज्यों-ज्यों संथारे का समय बीतता गया, तप के प्रभाव से शरीर में कोई वेदना ही नहीं रही। सागरमुनिजी म. शान्त, दान्तभाव से आत्मलीन थे। अमरचन्दजी छाजेड़ की पोल में सन्तदर्शन हेतु मेला लग गया। चरितनायक भी स्वाध्याय सुनाकर अपने गुरुभ्राता मुनि की इस धर्म-साधना में सहयोग प्रदान कर रहे थे। शास्त्र और अध्यात्म ग्रन्थ का स्वाध्याय सुन मुनि श्री बहुत प्रसन्न होते। दर्शनार्थ आने वाले हजारों भाई-बहनों के गमनागमन से किशनगढ़ तीर्थभूमि बन चुका था। गुजरात, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश आदि विभिन्न प्रदेशों से दर्शनार्थी किशनगढ़ की ओर उत्सुकता से आ रहे थे। श्रावक बन्धुओं में बरेली के श्री नगराजजी नाहर, लाला रतनलालजी नाहर, सेठ चन्दन मलजी मुथा सतारा वाले, श्री आनन्दराज जी सुराणा जोधपुर, श्री लालचन्दजी मुथा गुलेजगढ़, श्री धीरजभाई तुरखिया एवं जयपुर, जोधपुर, अजमेर, दिल्ली आदि के श्रावक संघ-सेवा का अलभ्य लाभ ले रहे थे।

यद्यपि समभावस्थ मुनिश्री आत्मभाव में लीन होकर अपनी साधना में मग्न थे, पर ग्रीष्मकालीन तीक्ष्णताप और संथारे का लम्बान लोगों के लिए चिन्ता का विषय था। मुनि-मन पर उसका कोई असर नहीं था। किन्तु कुछ भक्तों के मन को सन्तोष नहीं था। भावुक भक्त गम्भीरमलजी सांड ने खिन्न मन से चौक में बग्घी पर खड़े होकर अंग्रेजी में भाषण दिया कि मुनिश्री को इस तरह भूखे न मारा जाय। बात दरबार तक पहुंची। तप के ४० वें दिन दरबार ने वहां के अंग्रेज दीवान पावलस्कर को जानकारी के लिये भेजा। दीवान सन्तों के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने श्री सागरमलजी म.सा. से पूछा - "आपको क्यों मारा जा रहा है ?" महाराज श्री ने शान्त भाव से उत्तर दिया - "मुझे कोई नहीं मार रहा है । यह शरीर मुझे छोड़ने को तैयार है, तो मैं इसे क्यों न छोड़ दूँ। मैं आपसे एक बात पूछता हूँ–"आपको कोई घर से घसीट कर बाहर निकालना चाहे और कहे कि दो घण्टे के भीतर-भीतर घर खाली कर दो, नहीं तो घसीट कर धक्के देकर बाहर निकाल दिया जायेगा - दीवान साहब, ऐसे में आप क्या करेंगे ?" उत्तर था - "मैं खुद घर छोड़ दूँगा।" बस यही बात है। छोड़ने में आनन्द है, छूट जाने में दुःख । आप ही बताइए मेरा शरीर काम नहीं करता, वह मुझे छोड़ देना चाहता है , तो मैं खुद उसे क्यों नहीं छोड़ दूँ। मुझे कोई नहीं मार रहा। मैंने अपनी इच्छा से यह संथारा किया है।" दीवान साहब को बात समझ में आ गई उन्होंने तपस्वी सन्त को नमन किया एवं दरबार को रिपोर्ट दी। प्रजा में शान्ति थी। सभी मुनिश्री की सहज शान्ति-साधना एवं संकल्प की दृढ़ता से प्रभावित थे। लोगों को यह बात भलीभाँति समझ में आ गयी थी कि संलेखना-संथारा आत्महत्या नहीं, अपितु आत्म-कल्याण का साधन है । आत्महत्या तो राग-रोष के आवेश में आकर अशुभ भावों में की जाती है, जबकि संथारा पूर्वक समाधिमरण का वरण समतापूर्वक शुभ भावों में किया जाता है -

आत्म-हत्या तु सावेशा, राग-रोष-विमिश्रिता।
समाधिमरणं तावत्, समभावेन तज्जयः॥

संथारा पूर्वक समाधिमरण तो राग-द्वेष आदि पर विजय प्राप्ति की साधना है। इसे आत्म-हत्या समझना भ्रान्ति है। आत्महत्या जहाँ कषायपरिणति का फल है, वहाँ संथारा ग्रहण करना कषाय विजय की साधना की ओर कदम है। संथारा विवेकपूर्वक विषय-कषायों की उपशान्ति में देह के अन्तिम समय को जानकर ग्रहण किया जाता है, जबकि आत्मघात या आत्महत्या अविवेक पूर्वक, विषय-कषायों से आविष्ट होकर कभी भी की जा सकती है। आत्महत्या जहाँ छिपकर तथा विवशता में की जाती है वहाँ संलेखना-संथारा देव, गुरु एवं धर्म की साक्षी से, चतुर्विध संघ के समक्ष स्वेच्छा से ग्रहण किया जाता है। आत्महत्या से जहाँ अनन्त संसार बढ़ता है वहाँ संलेखना-संथारा संसार-चक्र को घटा कर सद्गति को प्राप्त कराता है। वीर साधक मृत्यु को निकट आया जानकर पण्डित मरण से उसका वरण करने को तत्पर रहते हैं, क्योंकि उससे सैकडों जन्मों के बन्धन कट जाते हैं एवं मरण सुमरण बन जाता है-

इक्कं पंडियमरणं छिण्णइ जाइसयाइं बहुयाइं।
तं मरणं मरियव्वं जेण मओ सुम्मओ होइ॥-महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक, ४९

एक उपवास में कष्टानुभव करने वाले मुनि श्री सागरमलजी महाराज ५९ दिनों का सुदीर्घ संथारा समाधिभाव में पूर्ण कर वि. संवत् १९८५ की श्रावण कृष्णा १३ को इस नश्वर देह को छोड़कर महाप्रयाण कर गए। भक्तों ने बड़े समारोह से दाह संस्कार किया। उनकी पुण्यस्मृति में सबकी सहमति से एक पाठशाला खोलकर मांसभोजी घरों के बालकों को शिक्षा के माध्यम से अहिंसा के संस्कार देना तय हुआ। यह पाठशाला किशनगढ में अद्यावधि 'सागर जैन पाठशाला' के नाम से चल रही है। अपने सुदीर्घ सेवाकाल में सागर जैन विद्यालय से हजारों छात्र-छात्राओं ने अध्ययन किया है। इसमें बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के बच्चों को एक साथ बिठाकर अध्ययन कराया जाता है।

• किशनगढ चातुर्मास (संवत् १९८५)

जीवनभर के लिए औषधि त्याग करने वाले सागरमुनिजी का संथारा चातुर्मास प्रारम्भ होने के १३ दिन बाद तक चला, अतः विक्रम संवत् १९८५ का वर्षावास किशनगढ़ में सम्पन्न हुआ। किशनगढ एवं मदनगंज के भाइयों ने धर्माराधन का पूरा लाभ लिया। वर्षावास के अनन्तर चरितनायक मदनगंज, हरमाड़ा होते हुए जयपुर पधारे, तो वहाँ के श्रीसंघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। विज्ञ श्रावकों ने अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ प्रकट कर सन्तवृन्द से समाधान प्राप्त किया। फाल्गुन शुक्ला १० को श्री बिदामकंवर जी की भागवती दीक्षा ब्यावर में महासती धनकंवरजी म.सा. की निश्रा में सम्पन्न हुई। यहाँ से मारवाड़ का पथ लेते हुए अजमेर, मसूदा होकर चरितनायक ब्यावर पधारे, जहाँ आपश्री के व पूज्य मोतीलाल जी म. मेवाड़ी के व्याख्यान संयुक्त रूप से रायली कम्पाउण्ड में हुए।

ब्यावर में अगले वर्ष के चातुर्मास हेतु जयपुर और भोपालगढ़ के श्रावकों की पुरजोर विनति थी। बढ़ते उत्साह से भोपालगढ़ ने अधिक व्रत-नियम, पौषध करना स्वीकार कर चातुर्मास की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

• भोपालगढ़ चातुर्मास (संवत् १९८६)

चरितनायक का विक्रम संवत् १९८६ का चातुर्मास ठाणा ५ से भोपालगढ़ की उस धरा पर हुआ जो स्वनाम

धन्य आचार्य श्री रत्नचन्द जी म.सा. की क्रियोद्धार स्थली रही है। रत्नवंशीय श्रमण-परम्परा के अनुरूप चरितनायक का स्वागत हुआ तथा अत्यंत उल्लासपूर्वक ज्ञान, तप और अध्यात्म की त्रिवेणी में जनमानस आप्लावित रहा। यहां बालक, युवक, वृद्ध सभी में अपार उत्साह था। जहाँ एक ओर स्थानीय श्रावक पूरे उत्साह से धर्मध्यान में भाग ले रहे थे, वहीं निकटवर्ती क्षेत्रों के भक्तजन भी त्याग व तप के साथ अपना योगदान कर रहे थे। श्री पनराजजी बाफना रजलानी, श्री चुन्नीलालजी सेठिया धनारी एवं मूलजी विश्नोई बुचेटी ने अठाई तप कर भक्ति का परिचय दिया। दया, पौषध, पंचरंगी का ठाट रहा। धर्मज्ञ सुश्रावक श्री जोगीदासजी बाफना एवं कुन्दनमलजी चोरड़िया ने तत्त्वचर्चा में अच्छा रस लिया। जालमचन्दजी बाफना, गजराजजी ओस्तवाल, घेवरचन्दजी कांकरिया आदि कार्यकर्ताओं का सेवा-व्यवस्था में काफी रस था। श्री जवरी लाल जी कांकरिया आदि तरुण धूम्रपान आदि व्यसनों के विरोध में शिक्षाप्रद संवाद एवं नाट्य प्रस्तुत कर अपने उत्साह का परिचय दे रहे थे। भोपालगढ़ के प्रवासी नागरिक श्री विजयराजजी भीकमचन्दजी कांकरिया एवं श्री लूणकरणजी ओस्तवाल आदि भी बम्बई से आकर सेवा-लाभ ले रहे थे। गच्छीपुरा, बासनी, गारासनी, हरसोलाव, बारनी, नाडसर, हीरादेसर, खांगटा आदि आस-पास के क्षेत्रों के दर्शनार्थी भी सन्त-सेवा एवं धर्माराधन का लाभ ले रहे थे।

भोपालगढ़ से विहार कर चरितनायक संघ-व्यवस्थापक स्वामी जी श्री सुजानमल जी म.सा. के नेतृत्व में बारणी, हरसोलाव, खांगटा आदि क्षेत्रों को चरणरेणु से पावन करते हुए पीपाड़ नगर पधारे। मुनि श्री लाभचन्द्रजी, लालचन्द्रजी और चौथमल जी भी अजमेर चातुर्मास सम्पन्न कर पीपाड़ पधारे।

चरितनायक हस्तीमुनि के तलस्पर्शी अध्ययन, विनय एवं अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यवहार, आचार निष्ठा आदि गुणों से चतुर्विध संघ संतुष्ट था। आचार्य पद के योग्य सभी ३६ गुणों से उन्हें सुसम्पन्न अनुभव किया जा रहा था - पाँच महाव्रतों एवं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा वीर्य नामक पंचाचारों का पालन , पंचेन्द्रिय - विजय, क्रोधादि चार कषायों का परिहार, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन, पांच-समिति एवं तीन गुप्तियों का निरतिचार पालन करने के साथ उनमें अष्टविध सम्पदाएं भी परिलक्षित हो रही थी। उन्नीस वर्ष से भी कम वय के चरितनायक में प्रौढ आचार्य की परिपक्वता दिखाई पड़ती थी। तात्पर्य यह है कि वे आचार्य के योग्य गुणों से सुशोभित एवं संघ संचालन के लिए सर्वथा सक्षम थे।

■

आचार्यपद पर आरोहण

संवत् १९८६ के चातुर्मास के पश्चात् पूज्यश्री रत्नचन्द्र जी महाराज की सम्प्रदाय के सभी संतों और प्रमुख श्रावकों का पीपाड़ नगर में सम्मेलन हुआ। उस समय स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. संघ में सबसे वरिष्ठ एवं संघ-व्यवस्थापक सन्त थे। आपके जीवन में उदारता एवं सहयोग की भावना कूट-कूट कर भरी थी। आप चरितनायक से दीक्षा में २६ वर्ष बडे होने पर भी संघ-सेवी और आज्ञाराधक सन्त थे। आपने सन्तों एवं प्रमुख श्रावकों के समक्ष अपने विचार रखते हुए फरमाया - "अब समय आ गया है कि हम आचार्य भगवन्त श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के आदेश का शीघ्र पालन करें। अब हमें पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. को आचार्यपद की चादर ओढ़ाकर उऋण हो जाना है।" स्वामीजी महाराज के विचारों को श्रवण कर श्रावकों ने 'हर्ष-हर्ष' , 'जय-जय' के जयनादों के साथ अपनी सहमति एवं प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की।

पद-प्राप्ति के लिए संसार में जहाँ मनमुटाव एवं झगड़े देखे जाते हैं, वहाँ इस धर्म-संघ में सौहार्द एवं प्रमोद का वातावरण था। जोधपुर संघ का अत्यधिक आग्रह रहा कि आचार्यपद महोत्सव का कार्यक्रम धर्मप्राण नगरी जोधपुर में सानन्द सम्पन्न हो। इस पर स्वामी जी म.सा. ने अपने सन्त-सतियों व प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं से विचार-विमर्श कर जोधपुर संघ को इस महोत्सव हेतु अनुमति प्रदान की, साथ ही संवत् १९८७ की अक्षय तृतीया का पावन दिवस इस समारोह के आयोजन हेतु नियत किया गया। इस सर्वसम्मत निर्णय की खबर वासन्ती हवा की तरह सब ओर फैल गई। पीपाड़ से स्वामीजी श्री सुजानमल जी महाराज तथा अन्यान्य क्षेत्रों में जहाँ जहाँ जो भी सन्त-सती विराजमान थे, सभी ने जोधपुर की ओर विहार कर दिया।

जोधपुर के प्रमुख कार्यकर्ताओं द्वारा एक 'आचार्य पद महोत्सव समिति' का गठन किया गया। आवश्यक तैयारियां प्रारम्भ कर दी गईं। महोत्सव के अवसर पर एकत्रित होने वाले हजारों अतिथियों के आवास, भोजन आदि की व्यवस्था हेतु स्थान निर्धारण तथा स्वयं सेवकों के संगठन तैयार किये गए और देश-विदेश के विभिन्न प्रदेशों में निवास करने वाले रत्नवंशी उपासकों को इस महोत्सव की सूचना भेजी गई। महोत्सव का स्थल सवाईसिंह जी की पोल (सिंह पोल) निर्धारित किया गया।

वैशाख के शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ होते ही हजारों श्रावक-श्राविकाओं एवं श्रद्धालु नर-नारियों का जोधपुर में आगमन होने लगा। नगर में सर्वत्र हर्षोल्लास का वातावरण छाया हुआ था। ऐसे ही वातावरण में अक्षय तृतीया का वह शुभ दिन आ पहुँचा, जिसकी देश-विदेश के रत्नवंशीय चतुर्विध संघ के सदस्य उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

सूर्योदय के साथ ही रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे सामाजिकों और श्रमणोपासकों के समूह सिंहपोल की ओर बढ़ने लगे। देखते ही देखते समारोह-स्थल खचाखच भर गया।

समारोह स्थल में पाटों पर स्थविर स्वामी जी श्री सुजानमल जी महाराज, बाबाजी श्री भोजराज जी म., मुनि श्री अमरचंन्द जी म., मुनि श्री लाभ चन्द्र जी म., मुनि श्री लालचन्द्र जी म., मुनि श्री चौथमल जी म. और लक्ष्मीचन्द जी महाराज विराजमान थे। इन्हीं संत-वृन्द के साथ हमारे चरितनायक अत्यंत ही शान्त एवं गंभीर मुद्रा लिये विराज रहे थे।

इस मुनि-मंडल से थोड़ी ही दूर भूमि पर साध्वी समुदाय में से ३५ महासतियाँ विराजमान थीं– (१) महासती श्री केसर कंवर जी, (२) सुगन कंवर जी (किशनगढ़), (३) तेजाजी, (४) छोटा राधा जी, (५) सज्जनकंवर जी (ओसियां), (६) किशनाजी, (७) नैनाजी (भोपालगढ़), (८) छोगाजी, (९) केवल जी, (१०) सुन्दर कंवर जी, (११) इन्दर कंवर जी, (१२) दीप कंवर जी, (१३) भीम कंवर जी, (१४) चुन्ना जी, (१५) इचरज कंवर जी, (१६) धनकंवरजी (बड़े), (१७) हरखकंवरजी, (१८) किशनाजी (१९) धूला जी, (२०) रत्न कंवर जी, (२१) चैन कंवर जी, (२२) चरित नायक की संसार पक्षीय माताश्री रूप कंवर जी, (२३) अमर कंवर जी, (२४) सुगन कंवर जी (डागावाला), (२५) केवल जी, (२६) लाल कंवर जी, (२७) अनोप कंवर जी, (२८) गोगा जी, (२९) छोटा छोगा जी, (३०) फतहकंवर जी, (३१) बख्तावर कंवर जी, (३२) धनकंवर जी (छोटे) (३३) हुलासकंवर जी, (३४) सुवा जी और (३५) मैनाजी महाराज। ।

पीपाड़ में स्थिरवास की हुई पानकंवर जी, खम्माजी, सुन्दर कंवर जी, प्यारा जी और अजमेर में स्थिरवास रूप में विराजित बड़ा राधा जी, राजकंवर जी और झमकूजी ये सात महासती जी महाराज इस महोत्सव में अपनी वृद्धावस्था के कारण उपस्थित नहीं हो सके।

सिंहपोल के प्रांगण में कहीं तिल धरने को जगह नहीं थी, तथापि उपस्थित विशाल जनसमूह पूर्णतः अनुशासित एवं शान्त था। सभी की दृष्टि चरितनायक के तेजस्वी मुखमंडल पर टिकी हुई थी। महिलाएं माताजी महाराज रूपकंवर जी के भाग्य की सराहना में उनकी कोख को लाख-लाख धन्यवाद देती कह रही थीं कि माता हो तो रूपकंवर जैसी, जिन्होंने हस्ती जैसे बालक को जन्म देकर अपने पूरे कुल का नाम रोशन किया। उनके मुखमंडल पर अथाह शान्ति और संतोष का अखंड साम्राज्य व्याप्त था।

जोधपुर के जाने-माने मुसद्दियों और श्रेष्ठियों के मार्ग-दर्शन में सिंहपोल का महोत्सव-स्थल धर्म प्रभावना का भव्य एवं विराट् रूप लिये सबके आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। चरितनायक हस्तीमलजी महाराज अपनी बालवय में भी तारामंडल से घिरे नीलगगन में पूर्ण चन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे। मात्र १९ वर्ष, तीन मास और उन्नीस दिन की ही तो उम्र थी। लगभग यह उम्र 'कलिकाल सर्वज्ञ' विरुदधारी हेमचन्द्र सूरि (ईसवीय १२वीं शताब्दी) के आचार्य बनने की रही, मगर उसके बाद जैन इतिहास में सम्भवतः यह पहला ही अवसर था जबकि बीस वर्ष से कम उम्र के किशोर श्रमण को एक बहुप्रतिष्ठित संघ के गौरवपूर्ण (आचार्य) पद पर अधिष्ठित किया जा रहा हो।

सम्मोहक स्वागत गीतिकाओं और जन-जन के मन को आनंदित करने वाले अभिनंदन मय काव्यपाठ के साथ महोत्सव की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। तदनन्तर रत्नवंशीय चतुर्विध संघ के व्यवस्थापक स्थविर पद विभूषित स्वामी जी श्री सुजान मल जी महाराज ने सर्वप्रथम भाव विभोर हो सिद्ध भगवान की मंगल स्तुति प्रारम्भ कीः-

अविनाशी अविकार, परम रसधाम है।
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम है।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध, अनादि अनंत हैं।
जगत् शिरोमणि, सिद्ध सदा जयवन्त हैं... सदा जयवन्त हैं।

और कहा - "तपःपूत सन्त-सती वृंद एवं श्रावक-श्राविका वर्ग! आज का यह आचार्यपद महोत्सव का मंगलमय दिवस हमारे चतुर्विध संघ के लिए अगाध आनंदप्रदायी दिवस है। यशस्विनी रत्नवंशीय- परम्परा के षष्ठ पट्टधर स्वनामधन्य प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज को स्वर्गस्थ हुए आज ३ वर्ष ९ मास और ३ दिन पूरे होने जा रहे हैं। उन्होंने स्वर्गस्थ होने से कतिपय मास पूर्व ही हमारे बीच विराजमान मुनिश्री

हस्तीमल जी म. को उस समय लघुवयस्क होने पर भी होनहार और आचार्य पद के योग्य समझकर अपने उत्तराधिकारी आचार्य के रूप में मनोनीत कर अभिप्राय पत्र लिखवा दिया था।

यह वही नगर है जहाँ वि. सं. १९८३ की श्रावणी अमावस्या को आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. ने पेटी के नोहरे में स्वर्गारोहण किया। उस समय हस्तीमल जी म.सा. की अवस्था १६ वर्ष से भी कम मात्र १५ वर्ष ६ मास और १६ दिन की थी। आचार्य श्री की इच्छा और उनके द्वारा किये गये मनोनयन के अनुसार जब आचार्य पद की चादर प्रदान की बात संघ के समक्ष आई तो उस समय स्वयं श्री हस्तीमल जी म. ने अपने अध्ययन को सम्पन्न करने के लिए समय मांगा, पंडित श्री दुःखमोचन जी झा ने भी वर्ष डेढ़ वर्ष तक अध्ययन आवश्यक बताया था। चतुर्विध संघ ने मुनि श्री की दूरदर्शिता और श्लाघनीय विवेकपूर्ण इच्छा को बहुमान देकर इन्हें अध्ययन का अवसर दिया और संघ संचालन की व्यवस्था का दायित्व मुझे सौंपा। मुनि श्री हस्तीमल जी महाराज अपना अध्ययन सम्पन्न कर सुयोग्य विद्वान् बन गये हैं। इनके सर्व विदित विनय, विवेक, वाग्वैभव, प्रत्युत्पन्नमतित्व, विलक्षण प्रतिभा, कुशाग्र बुद्धि, क्रियापात्रता, अथक श्रमशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, मार्दव, आर्जव, निरभिमानता आदि गुणों पर हम सबको गर्व है। ये सुयोग्य आचार्य के आवश्यक सभी गुणों से सम्पन्न हैं। आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के द्वारा कृत इस मनोनयन की अन्तर्मन से श्लाघा करते हुए उनकी अन्तिम इच्छा को मूर्त रूप देने में हम अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव कर रहे हैं। आज हम सब इन्हें आचार्यश्री रत्नचन्द्र जी महाराज की सम्प्रदाय के सातवें पट्टधर के रूप में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करते हैं। चतुर्विध संघ अब इनकी आज्ञा में रहकर ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि करे। सर्वथा सुयोग्य मुनिवर को अपने आचार्य के रूप में पाकर हम सब अपने आपको सौभाग्यशाली मानते हैं और कामना करते हैं कि आप शतायु हों। सुदीर्घकाल तक संघ को अभ्युदय, उत्थान और उत्कर्ष के पथ पर अग्रसर करते रहें। हस्तीमल जी म.सा. वय से भले छोटे हैं, किन्तु गुणों एवं पद से बहुत बड़े हैं। मुझे भी आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना है और आप सब सन्त-सतियों तथा श्रावक-श्राविकाओं को भी ऐसा ही करना है। इस गरिमामय संघके संचालन का दायित्व मैं आज श्री हस्तीमल जी म.सा. को सौंपते हुए अत्यन्त हर्षानुभव कर रहा हूँ। वे युगों युगों तक चतुर्विध संघ का कल्याण एवं मार्गदर्शन करें।"

इस प्रकार आशीर्वचन के साथ स्थविर श्री सुजानमल जी महाराज और स्वामीजी श्री भोजराज जी महाराज आदि वयोवृद्ध सन्तों ने गरिमापूर्ण एवं महिमामंडित धवलवर्णा आचार्यश्री शोभाचन्द्रजी म.सा. की सुरक्षित रखी पूज्य पछेवड़ी मुनिवर श्री हस्तीमल जी म. के वृषभतुल्य सबल समर्थ स्कन्धों पर ओढाई और 'नमो आयरियाणं' का सुमधुर समवेत घोष उद्घोषित करते हुए उन्हें विधिवत् आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। आचार्य पद की चादर को ओढ़ने के साथ ही मुनि श्री हस्तीमल जी 'आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज' के रूप में संघ के जनगण-मन अधिनायक हो गये। सिंहपोल का सारा सभा-मंडप भगवान् महावीर, आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म., आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म. एवं सप्तम पट्टधर आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज की जय जयकार से गुञ्जित हो उठा।

रत्नवंश के सप्तम आचार्यपद पर अधिष्ठित महामनस्वी पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने अपनी भावाभिव्यक्ति में आभार प्रकट करते हुए फरमाया-

"आज इस वेला में चतुर्विध संघ ने श्रद्धा व समर्पण की प्रतीक यह चादर ओढाकर मुझे परम उपकारी महनीय गुरुदेव द्वारा सौंपे गए दायित्व निर्वहन का आदेश दिया है। परम पूज्य गुरुदेव की आज्ञा व संघ की अपेक्षाओं पर खरा उतर सकूँ इस क्षण से मेरा यही उत्तरदायित्व होगा। तीर्थेश श्रमण भगवान महावीर द्वारा

संस्थापित धर्म-संघ की पूर्वाचार्यों द्वारा संरक्षित इस यशस्विनी रत्नसंघ परम्परा की मर्यादाओं को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं इसकी गौरव अभिवृद्धि हेतु प्रयासरत रहने का मैं संकल्प करता हूँ। इसमें सभी बड़े महापुरुषों श्रद्धेय स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा., श्री भोजराज जी म.सा., श्री अमरचन्दजी म.सा., श्री लाभचन्द जी म.सा. आदि का सहज स्नेह तो मुझे प्राप्त ही है। मैं इन्हीं पूज्य सन्तों तथा बड़ी सतियों के सहयोग से इस गरिमामय पद को निभाने में सक्षम बन सकूँगा। परम पूज्य स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. ने मेरे अध्ययनकाल में संघ-संचालन के साथ ही मेरे संरक्षण व संघ की सारणा-वारणा का जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है वह गौरवशाली रत्नपरम्परा के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है। चतुर्विध संघ के सभी अंग साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका उत्तरदायित्व निर्वहन व शासन-संचालन में मुझे पूर्ण सहयोग देंगे, ऐसी अपेक्षा है। यह चादर जो आपने मुझे ओढायी है, वह संघ-संगठन, परस्पर-मैत्री, समन्वय व श्रद्धा-समर्पण की प्रतीक है। चादर में ताना बाना जिस तरह परस्पर जुड़े हैं, वैसे ही हमारा संघ गुण-वीथिका में ग्रथित रहकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि करते हुए जिन शासन की जाहो जलाली मे संलग्न रहे। मैं विश्वासपूर्वक चतुर्विध संघ को आश्वस्त करता हूँ कि मैं अपनी पूर्ण शक्ति एवं योग्यता के साथ संघ के प्रति समर्पित रहूँगा और आपके सहकार से पंचाचार एवं रत्नत्रय की निर्विघ्न साधना में हम निरन्तर आगे बढते रहेंगे।"

इस अवसर पर संघ द्वारा लब्धप्रतिष्ठ मैथिल ब्राह्मण पण्डित श्री दुःखमोचन जी झा का विशेष सम्मान के साथ हार्दिक अभिनन्दन किया गया। पं. झा से चरितनायक, मुनि श्री चौथमल जी महाराज एवं मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी ने विक्रम संवत् १९८० से १९८६ के मध्य संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा तथा विविध ग्रन्थों का अध्ययन कर तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था। पं. श्री झा के कौशल और अथक श्रम की चतुर्विध संघ ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

जौहरी भाई दुर्लभजी द्वारा आचार्य पद का महत्त्व बताकर गुणगान करने के बाद भंडारी दौलतरूप चन्दजी, भण्डारी गुमानमलजी ने मंगलमय गीतिकाओं से स्तुति की। समारोह संक्षिप्त एवं आडम्बर रहित होने के साथ संघ में नवचेतना, उमंग व उत्साह के संचार में समर्थ था। सबके मुखमण्डल की आभा से प्रमोद का उद्घोष हो रहा था। समारोह को सफल बनाने में जोधपुर संघ के प्रमुख श्रावकगण श्री नवरत्नमल जी भाण्डावत, श्री शम्भुनाथ जी मोदी, श्री चन्दनमलजी मुथा, श्री छोटमलजी डोसी, श्री नाहरमलजी पारख, श्री धूलचन्दजी रेड, श्री चाँदमल जी सुराणा एवं युवारत्न श्री विजयमल जी कुम्भट, श्री सुमेरमल जी भण्डारी आदि की उल्लेखनीय भूमिका रही। समारोह में सभी सम्प्रदायों का पूरा-पूरा सहयोग था।

• आचार्य पद के दायित्व का बोध

अब चरितनायक पूज्य हस्ती के स्कन्धों पर चतुर्विध संघ के संचालन का महान् दायित्व आ गया था, जो उन्हें अपने आन्तरिक व्यक्तित्व एवं चेतना को और अधिक ऊर्जावान बनाने की प्रेरणा कर रहा था। अन्तःकरण में चिन्तन की धाराएँ प्रस्फुटित हो रही थीं। विवेक उन्हें सम्यक् राह दिखा रहा था। भावी स्वतः ही सफलीभूत होने के लिए तत्पर दिखाई पड़ रहा था। आचार्य श्री हस्ती मुख से कुछ न बोलकर भी चेहरे से अपने ओजस्वी भाव प्रकट कर रहे थे। वे शान्त, किन्तु गम्भीर मुद्रा में चिन्तनमग्न होकर भावी की रेखाओं का निर्माण सोच रहे थे।

आचार्य पद पर संघ द्वारा अभिषिक्त रत्नवंश के सप्तम पट्टधर बाल ब्रह्मचारी श्री हस्तीमल जी महाराज की सेवा में इस अवसर पर अनेक नगरों एवं ग्रामों के श्रीसंघों ने वि.सं. १९८७ का चातुर्मासावास अपने यहाँ करने की भावभरी विनतियां की। वयोवृद्ध सन्तों से परामर्श कर जयपुर संघ द्वारा की गई विनति को संघहित में प्राथमिकता

प्रदान कर आचार्य श्री हस्ती ने यह चातुर्मास जयपुर में करने की साधुभाषा में स्वीकृति प्रदान की। आचार्य पद-महोत्सव के अनन्तर जोधपुर श्री संघ की भावभरी विनति को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री का अपने सन्तवृन्द के साथ कतिपय दिनों के लिए जोधपुर में ही विराजना रहा। पूर्व आचार्यश्री शोभाचन्द्र जी म.की रुग्णावस्था और स्थिरवासकाल में आपश्री वि.सं. १९७९ से १९८३ के चातुर्मास काल तक जोधपुर नगर में विराजमान रहे थे। इस कारण जोधपुर संघ के आबाल-वृद्ध सभी आपके व्यक्तित्व से भली-भांति प्रभावित थे। इस बार आपको अपने श्रद्धालु उपासकों के साथ ज्ञानचर्चा, शंका-समाधान, मार्गदर्शन, संघसंचालन सम्बंधी उत्तरदायित्व के कारण नगरवासियों से पूर्वापेक्षा अधिक निकट सम्पर्क में आना पड़ा। सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से उसके आध्यात्मिक कार्यकलापों का पूरी तरह से लेखा-जोखा लेने और उसे सुपथ पर अग्रसर होते रहने की प्रेरणा देने की प्रवृत्ति सबको लुभाने लगी, फलतः जन-जन के मन में आपके प्रति बहुमान एवं श्रद्धा बढ़ने लगी। अपनी अप्रतिम स्मरण-शक्ति के लिए तो आप बाल्यकाल से ही प्रसिद्ध रहे। एक बार जिसे देख लिया उसे जीवन भर न भूलना आपकी स्मरण-शक्ति का अद्‌भुत चमत्कार था।

आचार्य पद महोत्सव के दिन सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि आवश्यकों से निवृत्त होकर स्वाध्याय-ध्यानादि के पश्चात् जब सोने के लिए पाट पर लेटे तो बड़ी देर तक आपको निद्रा नहीं आई। निद्रा नहीं आने के कारण के सम्बंध में विचार करने पर आपको अनुभव होने लगा कि आप पर संघ-निर्माण का बहुत बड़ा दायित्व आ गया है। आप तत्काल उठ बैठे और मन ही मन अपने आत्मदेव से कहने लगे—"अब पहले की भांति सोना कहाँ! अब तो मुझे आज से ही उन सब कार्यकलापों की एक सर्वांगपूर्ण रूपरेखा तैयार करनी होगी, जिनके निष्पादन से श्रमण भगवान महावीर का यह धर्मसंघ और अधिक उत्कर्ष की ओर अग्रसर हो सके।" फलस्वरूप आपने समय-समय पर एतद्‌विषयक चिन्तन करने का दृढ़ संकल्प किया। यही कारण था कि आगे चलकर संघहित के अनेक कार्य पूज्य गुरुदेव द्वारा सम्पन्न हुए।

दूसरे दिन प्रातःकाल वयोवृद्ध सन्तों के अनुरोध पर आपने श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं के विशाल समूह के समक्ष प्रवचन किया। चतुर्विध संघ ने आपकी प्रवचन शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। वयोवृद्ध सन्तों एवं सती-वृन्द के हर्ष का पारावार न रहा। आपश्री के आचार्यपद महोत्सव के समय जो ३५ सतियां उपस्थित थीं, उनमें आपकी माताजी महाराज श्रीरूपकंवर जी भी थीं। सभी तपःपूता साध्वियों ने व्याख्यान के अनन्तर अपने आचार्यदेव को वन्दन-नमन कर आपश्री का वर्द्धापन किया।

• साध्वी माँ से संवाद

सभी सतियों ने माताजी महाराज श्री रूपकंवर जी को रत्नवंश परम्परा के नवोदित ज्ञानसूर्य आचार्यश्री से बात करने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। बड़ी देर तक सतीजी श्री रूपकंवर जी मौन खड़ी रहीं। अन्त में अपनी गुरुणी महासतीजी श्री बड़े धनकंवर जी के आदेश को शिरोधार्य कर आचार्यश्री के समक्ष अपने श्रद्धासागर का उंड़ेल दिया। दोनों के बीच का यह वार्तालाप उल्लेखनीय है—

सती श्री रूपकंवर जी-'आचार्यदेव! आपके सुखसाता है?'

आचार्य श्री- "धरित्रीतुल्य धैर्यमूर्ति की गोद में पले प्राणी को अमंगल कभी भी छू नहीं सकता। गुरुदेव के प्रताप से और आप सबके सद्‌भावनापूर्ण स्नेह से आनंद मंगल है।"

सतीश्री रूपकंवर जी-"ज्ञान सूर्य ! आपके व्याख्यान को सुनकर तो कृतकृत्य हो गई।"

आचार्यश्री-"मूल देन तो आप ही की है।"

सांसारिक पक्ष की दृष्टि से माता और पुत्र, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से आचार्य और आज्ञानुवर्तिनी साध्वीजी के इस संक्षिप्त पर सारगर्भित संवाद को सुनकर सभी ने अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति की।

हर्षविभोर महासती छोगांजी ने कहा-"सूर्य तो सदा प्राची से ही प्रकट होता है।"

आचार्यश्री-"महासतीजी ! प्राची की यह विशेषता भी भुलाई नहीं जा सकती कि सूर्य को प्रकट कर प्राची उसे केवल अपनी ममता तक ही सीमित नहीं रखती। उसे सभी दिशाओं-विदिशाओं को धर्मपुत्र के रूप में गोद दे देती है।" इस पर पूरा सतीवृन्द श्रद्धाभिभूत हो समवेत स्वरों में उमड़ पड़ा-"भगवन् ! आपका फरमाना शत प्रतिशत सत्य तथ्य है। धन्य है प्राची, धन्य है प्राची का सूर्य और धन्य है रत्नवंशीय चतुर्विध संघ, जिसे प्राची और सूर्य दोनों ही नवजीवन प्रदान कर रहे हैं।"

• रत्नवंश के आचार्यों की विशेषता

रत्नवंश परम्परा की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही कि उसमें जितने भी आचार्य हुए, वे सब लघुवय में दीक्षित बाल ब्रह्मचारी सन्तरत्न थे। चरितनायक आचार्य श्री ने उन सभी का स्मरण किया। प्रसंगवशात् पूर्वाचार्यों के जन्म एवं दीक्षा का उल्लेख किया जा रहा है—

१. बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री गुमानचन्द जी महाराज का जन्म विक्रम संवत् १८०८ में हुआ और वे १० वर्ष की वय में विक्रम संवत् १८१८ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को श्रमणधर्म में दीक्षित हुए।

२. बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का जन्म वि.सं. १८३४ में वैशाख शुक्ला ५ को हुआ और १४ वर्ष की वय होते-होते वे वि.सं. १८४८ वैशाख शुक्ला ५ को दीक्षित हुए।

३. बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री हमीरमल जी महाराज का जन्म वि.सं. १८५२ में हुआ और वे १० वर्ष की वय में वि.सं. १८६२ फाल्गुन शुक्ला ७ को दीक्षित हुए।

४. बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री कजोडीमल जी महाराज का जन्म वि.सं. १८७५ में हुआ और १२ वर्ष की वय में प्रवेश करते-करते वि.सं. १८८७ माघशुक्ला ७ को दीक्षित हुए।

५. बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज का जन्म वि.सं. १८९७ में आश्विनशुक्ला १४ को हुआ और वे वि.सं. १९१२ में मार्गशीर्ष कृष्णा २ को १५ वर्ष की वय में दीक्षित हुए।

६. बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री शोभाचन्द्र जी महाराज का जन्म वि.सं. १९१४ में कार्तिक शुक्ला ५ को हुआ और वे १३ वर्ष की वय में ही वि.सं.१९२७ में माघ शुक्ला ५ को दीक्षित हुए।

चरितनायक बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज का जन्म वि.सं. १९६७ की पौष शुक्ला चतुर्दशी के दिन हुआ। आप १० वर्ष और १८ दिन की लघु वय में ही विक्रम संवत् १९७७ की माघ शुक्ला दूज के दिन श्रमण धर्म में दीक्षित हुए।

रत्नवंश सम्प्रदाय

पूज्य श्री धर्मदासजी म.

↓

पूज्य श्री धन्नाजी म.

↓

पूज्य श्री भूधर जी म.

↓

पूज्य श्री रघुनाथ जी म.सा. | पूज्य श्री जयमलजी म.सा. | पूज्य श्री जेतसी जी

↓

रत्न वंश के मूल पुरुष पूज्य श्री कुशल चन्द्र जी (कुशलोजी म.सा.) (वि.सं. १७९४ से वि.सं. १८४० तक)

(पूज्य श्री दुर्गादास जी म.सा. को विद्यमानता में पूज्य श्री रत्न चन्द जी म.सा. ने शासन संभालते हुए भी (विक्रम संवत् १८५८ से १८८२ तक) पूज्य पद स्वीकार नहीं किया।

प्रथम पट्टधर पूज्य श्री गुमानचन्दजी म.सा. (संवत् १८४० से१८५८ कार्तिक शुक्ला अष्टमी)

↓

द्वितीय पट्टधर पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. (मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी १८८२ से ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी १९०२)

↓

तृतीय पट्टधर पूज्य श्री हमीर मलजी म.सा. (१९०२ के आषाढ़ कृणा १३ से कार्तिक कृष्णा १ संवत् १९१०)

↓

चतुर्थ पट्टधर पूज्य श्री कजोडीमलजी म. (माघ शुक्ला ५ संवत् १९१० से वैशाख शुक्ला तीज संवत् १९३६)

↓

पंचम पट्टधर पूज्य श्री विनयचन्द्रजी म.सा. (ज्येष्ठ कृष्णा ५ संवत् १९३७ से मार्गशीर्ष कृष्णा १२ संवत् १९७२)

↓

षष्ठ पट्टधर पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. (फाल्गुन कृष्णा ८ संवत् १९७२ से श्रावण कृष्णा अमावस्या संवत् १९८३)

↓

सप्तम पट्टधर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. (चरितनायक) (अक्षयतृतीया वैशाख सुदी ३ वि.सं. १९८७ से वैशाख शुक्ला ८ संवत् २०४८)

↓

अष्टम पट्टधर पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. (ज्येष्ठ कृष्णा ५ संवत् २०४८ से निरन्तर)

संघनायक के विहार और चातुर्मास

जैन सन्तों की विहारचर्या और वर्षावास उनके संयममय जीवन के अनिवार्य अंग हैं। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि विहार क्यों? संयम की साधना का अनिवार्य सूत्र है—अनासक्ति। शास्त्रसम्मत अवधि से अधिक एक स्थान पर रहना साधु को नहीं कल्पता। यदि वह एक ही स्थान पर उन्हीं लोगों के साथ अधिक काल तक रहे तो कदाचित् वहां के लोगों से पारस्परिक आसक्ति होना सम्भव है, जबकि धर्म आसक्ति को तोड़ने के लिए है, उसे जन्म देने के लिए नहीं। अतः भगवान महावीर के द्वारा साधु-साध्वी की चर्या में विहार को आवश्यक बताया गया है। इसके लिए एक लौकिक कथन भी है—

"बहता पानी निर्मला, पड़ा गंदला होय।"
साधु तो रमता भला, दागे न लागे कोई॥

सम्पूर्ण राजस्थान आपके विचरण-विहार का प्रमुख केन्द्र रहा। साथ ही आपने अपने जीवनकाल में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र , आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा एवं गुजरात प्रान्तों के सहस्रों ग्राम-नगरों में जिनशासन की अद्भुत प्रभावना की।

विहार का दूसरा उद्देश्य जन-जन का कल्याण है। श्रमण-श्रमणी को जो ज्ञान और क्रिया की साधना प्राप्त है, उसका लाभ वे जन-जन में पहुँचाते हैं। संसार में योगियों को जो कुछ प्राप्त है, उसे वे करुणा, अनुकम्पा और मैत्रीभाव से वितरण करते हैं। आचार्य श्री ऐसी भागीरथी थे जिन्होंने अपने विहारकाल एवं विभिन्न चातुर्मासों में जन-जन की अध्यात्म-तृषा को तृप्त करने के लिए उन्हें सामायिक और स्वाध्याय के प्रवाह से जोड़ा। आचार्य श्री का फरमाना था कि जिस प्रकार शरीर की पुष्टि के लिए व्यायाम आवश्यक है उसी प्रकार मन को स्वस्थ बनाने के लिए सामायिक उपयोगी है। आत्म-स्थित कषायों की विजय का यह प्रथम सोपान है। व्यक्ति स्वयं का जीवन तो इसके माध्यम से निर्मल एवं व्यवस्थित बनाता ही है, साथ ही उसके परिवार और समाज के साथ भी सम्बंध सुधरते हैं। आचार्यप्रवर ने दूसरा शंखनाद स्वाध्याय का फूंका। जैन समाज में इससे पूर्व स्वाध्याय की बहुत ही क्षीण परम्परा रही है जिसे अपने प्रवचनामृतों से चरितनायक ने पुनरुज्जीवित किया। गुरुदेव का फरमाना था कि स्वाध्याय के बिना जीवन को प्रकाश नहीं मिलता। स्वाध्याय से जीवन की अधिकांश समस्याओं का निराकरण स्वतः हो जाता है और व्यक्ति को सही समझ और सम्यक् दिशा मिलती है। आचार्य श्री का बल जीवन उन्नायक शास्त्रों और सत्साहित्य के अध्ययन-मनन पर था। विकृति उत्पन्न करने वाले उपन्यासों और कथाओं से वे सदैव बचने के लिए प्रेरित करते रहे। आचार्य श्री के समक्ष जो कोई भी उपस्थित होता, उसे वे न्यूनातिन्यून पन्द्रह मिनट का स्वाध्याय करने का नियम दिलाया करते थे। उन्हें लगता था कि कोई मेरे समीप अध्यात्म की प्यास और जीवन की समस्या को लेकर उपस्थित हुआ है तो उसका निराकरण करना मेरा दायित्व है । इसके लिए वे स्वाध्याय और सामायिक को औषधि के रूप में प्रदान कर प्रमुदित होते थे। यह सत्य है कि जिसने भी इन दोनों साधनों को नियमित रूप से पूर्ण श्रद्धा के साथ अपनाया है उसे अपने जीवन में तेजस्विता एवं शान्ति की प्राप्ति हुई है।

भारतीय भूभाग के सहस्राधिक ग्रामानुग्रामों में विहार करते हुए आपने सहस्रों नरनारियों को सामायिक और

स्वाध्याय की सीख देकर जनकल्याण का महनीय कार्य किया।

जनकल्याण की भावना से ही आचार्य प्रवर ने अनेकविध प्रत्याख्यानों का प्रसाद प्रवासकाल में जन-जन को वितरित किया। गुरुदेव का यह स्वभाव था कि वे जिसकी जो पात्रता होती थी, तदनुरूप ही उसे दोष- प्रत्याख्यान (त्याग) के लिए प्रेरित करते। इस क्रम में उन्होंने सहस्रों व्यक्तियों को शिकार, जुआ, मद्य, मांस, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि का त्याग करा कर उनके जीवन को उन्नत बनाया। इससे जैन और अजैन सभी जातियों के परिवार लाभान्वित हुए। इनमें हरिजन परिवारों से लेकर ठाकुर परिवारों के सदस्य भी सम्मिलित थे।

आचार्य श्री को जब यह ज्ञात हो जाता कि अमुक व्यक्ति में अमुक प्रकार का व्यसन है तो वे अवसर देखकर उस व्यक्ति में त्याग की ऐसी भावना जागृत करते कि व्यक्ति स्वयं हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान स्वीकार करने के लिए तत्पर हो जाता। प्रायः चेहरा देखकर ही वे व्यक्ति के व्यसनों और दुर्गुणों का अनुमान कर लेते थे। क्रोधी और अभिमानी व्यक्ति के स्वभाव को पहचानकर वे बड़े दुलार के साथ उसके इन विकारों को कम करने का उपाय सुझाते थे। जब उन्हें यह विदित होता कि अमुक व्यक्ति रिश्वत, अनीति और अनुचित साधनों से धन उपार्जन करता है तो वे उसे भी प्रेमपूर्वक समझाकर नीति मार्ग पर लाने का प्रयास करते थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि कई व्यक्तियों ने आचार्य श्री के समक्ष रिश्वत न लेने का संकल्प किया। इसी प्रकार कई व्यापारियों और उद्योगपतियों ने आत्म-शान्ति के लिए परिग्रह-परिमाण व्रत को अंगीकार कर प्राप्त धनराशि का कुछ अंश कल्याणकारी प्रवृत्तियों में लगाने का संकल्प किया। गुरुदेव का लक्ष्य व्यक्ति का आंतरिक परिवर्तन करना रहा।

अधिकाधिक लोगों का हित हो सके, इस दृष्टि से आचार्य श्री ग्रामानुग्राम विचरण करने में तत्परता बरतते थे। विहार में जन-जन को आचार्यश्री के प्रत्यक्ष दर्शनों का लाभ प्राप्त होता था और साक्षात् संयममूर्ति के द्वारा जब कोई प्रेरणा की जाती, तो निश्चय ही वह दर्शक और श्रोता समुदाय पर प्रभाव छोड़ती और वे श्रोता-दर्शक जन अपने आपको धन्य समझ कर गुरुदेव के श्रीमुख से सुनी हुई बात पर अमल करने का प्रयास करते। इस दृष्टि से आचार्य श्री के व्यापक विहार अत्यंत उपयोगी रहे।

विचरण एवं विहारकाल में ही जन-जन द्वारा निर्दोष साधुजीवन चर्या को देखने और परिग्रह शून्य साधु -जीवन के आनंद को आत्मसात् करने, समझने, जानने का सुअवसर प्राप्त होता है। अनुकरण करना, व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक गुण है और उससे प्रेरित हो साधुजन के सम्पर्क से योग्य पात्र में वैराग्य की जागृति भी सम्भव होती है। इस प्रकार वैराग्य भाव का प्रसार भी विहार चर्या का प्रतिफल है।

आचार्य श्री ने विहार के कष्टों की परवाह किए बिना अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों को अनदेखा कर कंकरीले कण्टकाकीर्ण दुर्गम विषम मार्गों पर मौसम के प्रभावों से विचलित न होते हुए 'साधु तो रमता भला' लोकोक्ति को चरितार्थ किया। मार्ग में बिवाइयां फट जाती, आहार-पानी प्राप्ति में अनेक बाधाएं आती, भूख-प्यास परीषह, सर्दी-गर्मी सभी में समभाव से रहते। कई रातें पेड़ों के नीचे बरामदे या तबेलों में टूटी-फूटी हवेलियों में भी बितानी पड़ी, किन्तु आपश्री का लक्ष्य अपनी संयमयात्रा को दोषमुक्त रखते हुए अधिकाधिक लोगों को महावीर का संदेश सुनाकर उस पर आचरण से जीवन को उन्नत कराना था। संयम, सामायिक और स्वाध्याय से जन-जन को उन्नत पथ पर अग्रसर करते और उनसे कहते कि इससे तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा —

जीवन उन्नत करना चाहो तो सामायिक साधन कर लो।
आकुलता से बचना चाहो तो सामायिक साधन कर लो॥

आचार्य श्री का जहाँ-जहाँ विहार होता, हर गली, हर डगर पर ग्राम हो या नगर यह नारा गूंजता--

गुरु हस्ती के दो फरमान
सामायिक स्वाध्याय महान्।

सन्तों को देखकर कई नये गांवों में ग्रामीण बन्धु, जाट, गुर्जर, अहीर विश्नोई, माली जैसे खेतिहर लोग सन्तों को मुँहपत्ती बांधे देख उनके वेश-परिधान पर आश्चर्य व्यक्त करते, पर जैसे ही गुरुदेव के सम्पर्क में आकर उन्हें सच्चे धर्म का रंग चढता तो वे सन्तों की सेवा में लग जाते और आगे से आगे जाकर सन्तों का परिचय कराते।

गुरुदेव के कदम जिस रफ्तार से मार्ग तय करते थे, उससे सहस्रगुणी गतिशीलता (तीव्र गति) से उनका चिन्तन अध्यात्म की ऊँचाइयों को छूता था। उन सरीखा अप्रमत्त जीवन उनका ही था। एक क्षण भी प्रमाद में नहीं गंवाते थे। अध्ययन-मनन, वाचन, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग उनके जीवन की धुरी बन गए और परिधि में था जनहित।

विहार काल और चातुर्मास प्रवास में आपका सम्पर्क अनेक सम्प्रदायगत यतियों, संन्यासियों, संतों, साधुओं, आचार्यों आदि से हुआ। परस्पर सौहार्द का स्रोत प्रवाहित हुआ। धर्म और समाज के उन्नायक विषयों पर घंटों वार्तालाप हुआ। मन-मुटाव के प्रसंगों का प्रक्षालन हुआ। शास्त्रज्ञान के संवर्धन के उपायों पर विचार-विमर्श हुए। पाण्डुलिपियों अथवा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़े ज्ञान के संचित कोश के भण्डारण और उपयोग का लक्ष्य साधा गया। काल और परिस्थितियों के प्रभाववश शिथिल होते श्रमणाचार और श्रावकाचार की सुदृढ़ समाचारी के लिए दृढ़तापूर्वक नेतृत्व कर आचार्य श्री ने सत्पथ प्रवर्तन किया। सत्ता, सम्पत्ति और शरीर की क्षणभंगुरता का दिग्दर्शन कराकर संयम मय जीवन यात्रा का पथ प्रशस्त किया।

विचरण-विहार एवं वर्षावास के दौरान जहाँ भी गुरुदेव के चरण पड़े, उसे उन्होंने अपना क्षेत्र समझा और वहाँ के लोगों ने भी उनकी चरणरज से अपने क्षेत्र को पावन एवं अपने आपको धन्य समझा। सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद एवं तेरे-मेरे की परिधि से वे सदैव परे रहे। वे स्वयं फरमाया करते थे--"जब तक इस सफेद चदरिया में दाग नहीं है, तब तक हर क्षेत्र एवं हर श्रावक हमारा अपना है।" चरितनायक ने जिनशासन की सेवा को मुख्य लक्ष्य बनाया। सम्प्रदाय के आचार्य पद को उन्होंने पूज्य गुरुदेव द्वारा सौंपा गया दायित्व मात्र समझा, जिसका निर्वाह करते हुए अपने आपको उन्होंने जिनशासन का सेवक ही माना।

■

संघनायक का प्रथम चातुर्मास जयपुर में

(विक्रम संवत् १९८७)

विक्रम संवत् १९८७ के वर्षावास की जयपुर संघ की विनति रत्नवंश के सप्तम पट्टधर आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने जोधपुर में पद-महोत्सव के पुनीत प्रसंग पर ही स्वीकार कर ली थी। फलतः आचार्यश्री ने संघ-व्यवस्था सम्बंधी सभी कार्यों का समीचीनतया निष्पादन कर अपने सन्तवृन्द के साथ जोधपुर से जयपुर की ओर ठाणा ८ से विहार किया। पीपाड़, अजमेर, किशनगढ़ आदि क्षेत्रों को अपने प्रवचनामृत से अंकुरित, पुष्पित एवं पल्लवित करते हुए आचार्यश्री स्थविर मुनिश्री सुजानमल जी महाराज, स्वामी जी श्री भोजराज जी महाराज आदि के साथ जयपुर पधारे। अमानीशाह के नाले से लेकर सेठ फूलचन्द जी नोरतन मल जी संकलेचा के विशाल भवन (लाल भवन) तक भक्तजनों का अपार जन समूह आचार्यश्री के वंदन के लिए उमड़ पड़ा। श्रमणकल्प की परिपालना करते हुए आचार्यश्री ने वर्षावास की आज्ञा लेकर मुनिमंडल के साथ लाल भवन में प्रवेश किया।

आचार्य श्री के पाण्डित्य, प्रवचन-पटुता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, आचार-पालन के प्रति कठोरता आदि गुणों की यशोगाथा जयपुरवासियों की जिह्वा पर नाच रही थी। प्रवचन सभा में जयपुर संघ को सम्बोधित करते हुए आचार्य प्रवर ने फरमाया-"संसार में सत्ता, सम्पत्ति आदि सभी कुछ सुलभ हैं, किन्तु संसार की उलझन में मनुष्य यह भूल जाता है कि ये चार साधन अत्यंत दुर्लभ हैं—मनुष्य जन्म, धर्म का श्रवण, धर्म में श्रद्धा और संयम की आराधना—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमंमि य वीरियं॥

मनुष्य देह, धर्म-श्रवण आप सभी को प्राप्त है। धर्म में श्रद्धा भी प्रायः सभी में है। इस चातुर्मास को स्वर्णिम सुअवसर मानकर यदि संयम की आराधना में आपका पराक्रम प्रकट होता है, तो इसी में इस चातुर्मास की सार्थकता है।"

"हीरे-जवाहरात के चाकचिक्य से समृद्ध इस नगरी का अत्यंत सौभाग्य रहा कि आचार्य श्री कजोड़ीमल जी महाराज (छह वर्षावास) आचार्यश्री विनयचन्द्र जी महाराज (बीस वर्षावास) आचार्यश्री शोभाचन्द्र जी महाराज (प्रायः बीस वर्षावास) का पदार्पण इस धरा पर हुआ। जयपुर धरा को छह-छह मुमुक्षुओं, श्री मुलतानमल जी, भींवराज जी, सुजान मल जी, छोटे किस्तूरमल जी पटनी, श्री लाभचन्दजी और श्री सागरमल जी को दीक्षा दिलाने का गौरव प्राप्त है। रत्नवंशीय श्रमण-परम्परा का जयपुर संघ के साथ सदा से ही सद्भावना पूर्ण सम्बन्ध रहा है, जिससे जिनवाणी का प्रचार-प्रसार सहज ही होता रहा है। मैं आशा करता हूँ कि अब इस चातुर्मास में श्रमण भगवान महावीर के विश्वबंधुत्व के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने हेतु सुनियोजित कार्यक्रमों को मूर्तरूप दिया जाए और अभिनव धर्मजागरण किया जाए।"

इसी क्रम में लाल भवन में प्रातःकाल नियमित सामायिक करने वालों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और नियमित प्रवचन, आगम-वाचना, प्रश्नोत्तर एवं धार्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था से आध्यात्मिक जागृति

का शंखनाद गूंजा।

आचार्यश्री ने इस बात पर बल दिया कि श्रावक और श्राविका वर्ग साधु-साध्वी के प्रति अपने 'अम्मापियरो' के दायित्व का यदि सावधानीपूर्वक निर्वाह करें तो निश्चय ही श्रमणाचार में शिथिलता को अवकाश नहीं मिल सकता। आचार्य श्री की प्रेरणा एवं सक्रियता से दशवैकालिक सूत्र के ज्ञान से सम्पन्न जिनशासन के प्रहरियों की एक सबल टुकड़ी प्रशिक्षित हो गई। युवा एवं प्रौढ़ श्रावक वर्ग के समवेत स्वरों में किए गए शास्त्रीय पाठों और स्वाध्याय घोष से उन दिनों लाल भवन गुंजायमान हो उठता था। प्रातःकाल नियमित सामायिक करने वाले बालक-बालिका , युवक - प्रौढ सभी प्रतिदिन आचार्य प्रवर को अपनी प्रगति से अवगत कराते एवं नया पाठ, स्तोत्र आदि सीखते। आचार्य श्री के सान्निध्य में ५५ उपवास की लम्बी तपस्या कर भोपालगढ़ वाले श्री धनराज जी बोथरा की धर्मपत्नी ने अपने को धन्य माना। बरेली के सुश्रावक श्री नगराजजी नाहर ने चार माह जयपुर में सेवा कर शास्त्रज्ञान अर्जित किया।

आचार्यश्री की उदारता अद्भुत थी। आचार्यपद पर आसीन गुरु हस्ती ने चातुर्मासावधि में अपने श्रावकों से उर्दू एवं अंग्रेजी का भी अभ्यास किया। उन्होंने साहित्यिक पत्रिकाओं एवं आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य से नये ज्ञान-विज्ञान का भी परिचय प्राप्त किया। जयपुर के वयोवृद्ध श्रावक श्री केशरीचन्द जी चोरड़िया, श्री मगनमल जी कोठारी, श्री श्रीचन्दजी गोलेछा, श्री शान्तिलाल जी दुर्लभजी आदि सुश्रावकों का इस ज्ञानवर्धन में सीधा सहयोग रहा। सर्व श्री मुन्नीलाल जी सेठ, श्री भंवरीलालजी मूसल, जतनमलजी नवलखा, मूलचन्द जी कोठारी, केसरी मल जी चोरड़िया, केसरीमलजी कोठारी आदि श्रावकों ने सेवा-भक्ति का लाभ लिया।

अपराह्न काल में तरुणवय के आचार्य श्री द्वारा टीका से शास्त्र-वाचन एवं उसकी व्याख्या सुनकर जयपुर के शास्त्रमर्मज्ञ श्रावक अत्यन्त प्रमुदित होते थे। इन्हीं दिनों सैलाना वाले रतनलालजी डोशी का एक प्रश्न पत्र, जो प्रमुख सन्तों के पास भेजा गया था, चरितनायक के पास भी आया। इसमें प्रमुख प्रश्न थे - (१) तीर्थङ्कर भगवान वस्त्ररहित होते हैं, उनके मुँहपत्ति नहीं होती है, तो फिर वे उपदेश कैसे करते हैं? (२) राजप्रश्नीय सूत्र में 'धूवं दाऊणं जिणवराणं' का क्या अर्थ है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर लिखवाने का चरितनायक के लिए प्रथम अवसर था। शास्त्र, टीका और चिन्तन के आधार से उत्तर लिखवाए। पृच्छक डोशीजी को सन्तोष हुआ। उन्होंने प्रत्युत्तर में लिखा कि मैंने चार-पाँच स्थानों पर प्रश्न भेजे, पर मुझे पं. रत्न शतावधानी जी म. और आपके उत्तर ही स्पष्ट और सन्तोषजनक प्राप्त हो सके।

दीक्षा स्थविर, वयस्थविर सन्तों द्वारा अपने लघुवयस्क आचार्य श्री के प्रति प्रदत्त बहुमान अश्रुतपूर्व था। बड़े सन्त भी प्रत्येक बात के लिए यही फरमाते–'पूज्य श्री से निवेदन करो'। चतुर्विध संघ के लिए उनकी आज्ञा ही प्रमाण थी।

आचार्यपद ग्रहण करने के पश्चात् चरितनायक का यह प्रथम चातुर्मास जयपुर नगर में सभी दृष्टियों से उत्तम रहा। संघ में धर्म के प्रति अभिनव उत्साह का संचार और आध्यात्मिक चेतना का जागरण चातुर्मास की महती उपलब्धि थी।

• आचार्य श्री हाड़ौती की ओर

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को अपने सन्तवृन्द के साथ आचार्य श्री ने जयपुर से टोंक की ओर विहार किया।

इससे पूर्व जयपुरसंघ के आबाल वृद्ध सदस्य बड़ी संख्या में लाल भवन में एकत्रित हुए। आचार्य श्री ने उपस्थित जनसमुदाय को सुधासिक्त सुमधुर सन्देश में फरमाया कि "हमें श्रमण भगवान् महावीर की सकलभूत हितावहा जिनवाणी को गांव-गांव एवं घर-घर में पहुंचाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। आप सबने जो कुछ इस चातुर्मास में सीखा है उसे आगे बढ़ाना है। "

जयपुर संघ ने जयपुर-टोंक मार्ग पर सन्तवृन्द के साथ चलकर जयघोषों के बीच भारी मन से अपने पूज्य धर्माचार्य और सन्तवृन्द को विदाई दी। आचार्य श्री ठाणा ८ से सांगानेर आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए टोंक पधारे। यहाँ पर सैलाना निवासी तत्त्वरसिक एवं तार्किक श्रावक श्री रतनलाल जी डोशी आचार्य श्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। श्री डोशी जी आचार्यप्रवर के तलस्पर्शी तात्त्विक ज्ञान, तर्ककौशल, प्रवचन पाटव, वाग्वैभव आदि गुणों से परिचित थे। डोशीजी ने आचार्य श्री से अनेक शास्त्रीय विषयों पर गहन चर्चा की। आचार्य श्री ने डोशी जी की समस्त शंकाओं एवं प्रश्नों का शास्त्रीय उद्धरणों के साथ समुचित समाधान किया। डोशी जी एवं टोंक के श्रावक-श्राविकावृन्द इस तत्त्वचर्चा से बड़े प्रभावित हुए।

टोंक से विहार कर तेजस्वी धर्माचार्य श्री हस्ती चौथ का बरवाड़ा होते हुए सवाईमाधोपुर पधारे, जहां कोटा सम्प्रदाय के श्री हरखचन्द जी म.सा. के साथ बाजार में प्रवचन हुआ। यहां से आलनपुर, श्यामपुरा, रावल आदि गाँव फरसकर कुस्तला, चोरू, अलीगढ, उनियारा, देई आदि क्षेत्रों में जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करते हुए बूंदी एवं कोटा पधारे। कोटा बूंदी पुराने धर्म क्षेत्र रहे हैं, जिनकी प्रसिद्धि महिलाएँ भजन के माध्यम से गाया करती हैं।

चरितनायक के आध्यात्मिक एवं शास्त्रीय प्रवचनों को श्रवण कर बूंदी एवं कोटा के श्रद्धालु श्रोताओं ने आनंद की अनुभूति की। उन्होंने अनेक व्रत-नियम अंगीकार कर अपने जीवन को सम्यक् दिशा प्रदान की। शोभागुरु के भक्त श्री चुन्नीलाल जी बाबेल अपने नगर में आचार्य हस्ती की प्रतिभा एवं प्रवचनपटुता को देखकर चकित रह गए।

■

आचार्य श्री मालव प्रदेश में

(विक्रम संवत् १९८८-१९८९)

आचार्य पद पर आरूढ़ हो जाने के पश्चात् भी चरितनायक में जिज्ञासावृत्ति एवं अध्ययनशीलता वृद्धिगत होती रही। होली चौमासी (फाल्गुनी पूर्णिमा) के बाद कोटा से झालरापाटन, बकानी , रायपुर, सुन्हेल, भवानी मण्डी, भानपुरा, रामपुरा पधारे। यहां पर शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्री केसरीमल जी से शास्त्रज्ञान का आदान-प्रदान किया तथा रामपुरा की विनति देखकर अपना चातुर्मास रामपुरा के लिए निश्चित किया। वहाँ से संजीत होते हुए मन्दसौर की ओर विहार किया। मन्दसौर में तत्र विराजित आचार्यश्री मन्नालालजी एवं वैराग्यमूर्ति श्री खूबचन्द जी म.सा. आदि सन्त-मण्डल के साथ चरितनायक आचार्यश्री का सुमधुर समागम हुआ। निवास एवं व्याख्यान साथ हुआ। आप श्री ने पूज्य श्री मन्नालालजी म.सा. की सन्निधि में अनेक सैद्धान्तिक धारणाओं और छेदसूत्र की वाचना प्राप्त की। चरितनायक ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि पूज्य श्री दीक्षा के अवसर पर विराजमान थे, अतः उनकी बड़ी वत्सलता रही। सुश्रावक सेठ लक्ष्मीचन्दजी से भी पुराने सन्तों की धारणाएं जानने एवं सुनने का सुखद योग भी बना। मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज भी आचार्यद्वय के मन्दसौर प्रवासकाल में साथ रहे। श्री ओंकारलाल जी बाफना, श्री कालूराम जी मारू, श्री चैनराम जी, श्री चांदमल जी, श्री धनराज जी मेहता और किस्तूर चन्दजी जैसे सिद्धान्तरसिक श्रावकों ने बड़ी लगन एवं श्रद्धा से आचार्य श्री एवं सन्तवृन्द की सेवा की। मन्दसौर और झमकूपुरा के श्रावक-श्राविकाओं को छेद सूत्रों की वाचनाओं, तात्त्विक प्रश्नोत्तरों, प्रवचनों और बाह्य आभ्यन्तर तपश्चरण से अपने कर्म कालुष्य धोने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आचार्य श्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर जैन और जैनेतर धर्मो के अनुयायी बड़ी संख्या में उपस्थित होते। हसन बेग जैसे श्रद्धालु अपनी कविताओं से मुनिवृन्द के प्रति श्रद्धा प्रकट करते, जिससे श्रोता आनंद विभोर हो जाते। मन्दसौर में करजूवाले श्री चैनरामजी, चाँदमल जी और उनकी धर्मपत्नी की धर्माचार्यों एवं धर्मगुरुओं के प्रति श्रद्धाभक्ति सराहनीय रही।

आपके आचार्य बनने के पश्चात् यह प्रथम अवसर था, जब आठ सन्त होते हुए भी तीन चातुर्मास स्वीकृत किए गये। अपना चातुर्मास रामपुरा के लिए तथा स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. आदि तीन सन्तों का चातुर्मास रायपुर के लिये पहले ही स्वीकृत कर चुके थे। अब मन्दसौर के श्रावकों की धर्माराधन की भावना को ध्यान में रखकर आचार्य श्री ने दो सन्तों श्री लाभचन्द जी एवं चौथमलजी का वर्षावास मन्दसौर में करने की स्वीकृति प्रदान की और उन्हें आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करते रहने के निर्देश दिए। इससे आचार्यप्रवर की सूझबूझ एवं जिनशासन की अधिक से अधिक प्रभावना की दृष्टि का बोध होता है।

पीपलिया, मल्हारगढ़, नारायणगढ़ आदि क्षेत्रों को पावन करते आपश्री बाबाजी श्री भोजराजजी एवं मुनि श्री लालचन्द जी के साथ ठाणा ३ से विक्रम संवत १९८८ की आषाढ़ कृष्णा अष्टमी के दिन महागढ़ पधारे। धर्मस्थान के अभाव में श्री पन्नालालजी चौहान की दुकान में विराजे। सुश्रावक पन्नालाल जी के युवा पुत्र लक्ष्मीचन्द जी की धर्माराधना ने आचार्य श्री का भी ध्यान आकृष्ट किया और स्वयं लक्ष्मीचन्द तो ऐसे गुरुदेव को पाकर धन्य हो उठा

तथा आचार्य श्री की सेवा में सदा रहने के अपने दृढ संकल्प से स्वजनों को अवगत करा दिया।

• रामपुरा चातुर्मास (संवत् १९८८)

विहार क्रम से आंतरी, संजीत, चपलाणा, मनासा, कुकडेश्वर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आचार्य श्री ठाणा ३ से रामपुरा पधारे। संवत् १९८८ का चातुर्मास यहाँ की हवेली में हुआ। हवेली के पुराने आंगन में लीलन-फूलन उत्पन्न न हो एतदर्थ विवेकशील श्रावक श्री राजमलजी कडावत ने आंगन में तेल डालकर उसे लीलन-फूलन से पहले ही बचा लिया था। चातुर्मास में आचार्य श्री ने सटीक जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति तथा पुरातन टीकाकार और नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरि की वृत्तियों सहित आगमों की वाचनी की। यहाँ पर श्रावक केसरीमलजी सुराणा शास्त्र जानकारी के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हें इस वाचना से बहुत प्रमोद हुआ। श्रावकजी प्राचीन धारणा वाले थे। टब्बा वाचन का उन्हें अभ्यास था। आचार्य श्री की दृष्टि अत्यंत पारखी थी। पंजाब निवासी श्रावक ने यहाँ अपने पुत्र कर्मचन्द को आचार्यश्री की सेवा में समर्पित करने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने परख लिया कि वह मुनि दीक्षा के योग्य नहीं है।

आचार्य श्री से अतीव प्रभावित श्री लक्ष्मीचन्द जी महागढ़ ने श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किये। रामपुरा के समाज में भी धार्मिक विकास की लहर दौड़ी। पर्युषण के पश्चात् विट्ठल चौधरी ने अपने स्वप्न के अनुसार आचार्य श्री के दर्शन कर समाज में धार्मिक पाठशालाएं चलाने के लिए अपनी द्रव्य राशि का दान कर दिया। शिवचन्दजी धाकड़, बसन्ती लाल जी नाहर और राजमलजी सुराणा भी अच्छे सेवाभावी श्रावक थे।

चातुर्मास पश्चात् चरितनायक कुकडेश्वर से मनासा होते हुए कंजार्डा पधारे। यहाँ पर भाई पूनमचन्दजी अच्छी लगन वाले स्वाध्यायशील श्रावक थे। संघ में धर्म-भावना का अच्छा उत्साह था। तदुपरान्त रतनगढ़, खेरी होते हुए सिंगोली पधारे। यह पहाड़ी प्रदेश में आया अच्छा धार्मिक क्षेत्र है। प्रवचन-प्रेरणा के माध्यम से धर्मजागृति कर वहां से बेगू, कदवासा जाट, कणेरा आदि गांवों में विचरकर जावद हवेली में विराजे। ऐसे विकट बीहड़ पहाड़ी प्रदेश में भी जैन सन्त उपदेशामृत का पान कराने पधारते हैं, यह श्रावकों द्वारा साश्चर्य अनुभव किया गया। पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. का स्वर्गवास इसी जावद ग्राम में हुआ। स्थानीय संघ की गौरवगाथा स्मरणीय और अनुकरणीय है। कणेरा से जावद का मार्ग एकदम सुनसान, भयावह एवं विकट है। इसमें सन्तों के साथ चल रहे पं. दुःखमोचन जी झा के कोमल मन में झाडी के पत्तों की खड़खड़ को सुनकर ऐसा अनुभव हुआ –"शेर कहता है मैं खाऊँ और चोर कहता है मैं आऊँ।" ऐसे विकट रास्तों पर भी निर्भय निर्द्वन्द्व पाद विहार, इस बात के प्रमाण हैं कि चरितनायक वय एवं पद की दीर्घता की दृष्टि से भले ही लघु थे, पर उनका आत्मबल उनका तप-तेज कितना महान् था। यहाँ से सैलाना विहार हुआ, जहां सैलाना नरेश के धर्मानुराग एवं दीवान प्यारेकिशन जी की प्रबल विनति से राजभवन में आचार्यश्री के प्रवचन का आयोजन अत्यंत प्रेरणादायी रहा।

रतलाम संघ की संयुक्त विनति की स्वीकृति के अनुरूप आचार्य श्री रतलाम नगर पहुंचे, जहां संघ के नर-नारी यह शुभ समाचार सुन अत्यंत हर्षित हुए। प्रथम प्रवचन में ही आचार्यश्री ने भगवान महावीर के विश्वबंधुत्व का संदेश देश-विदेश के कोने-कोने में पहुंचाने की प्रेरणा देते हुए 'मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई' के संदेश को अंगीकार करने की प्रेरणा करते हुए कहा–"संसार के सभी प्राणी मेरे मित्र हैं, मेरा किसी से वैर-विरोध नहीं है।" उस समय मालव प्रदेश के प्रमुख धार्मिक केन्द्र रतलाम नगर श्री संघ के तीन धड़ों में हुए बिखराव का भी आचार्यश्री के प्रभाववश समन्वय हुआ, जिससे रतलाम संघ के हर्ष का पारावर नहीं रहा। समत्वसाधक, प्राणिमात्र

के प्रति कल्याणकामना एवं सुदृढ जैन संघ के अभिलाषी आचार्य भगवन्त का पदार्पण ही स्नेह-सरिता प्रवाहित करता और बिखरे हुए संघ सहज समन्वय के सूत्र में बंध जाते।

रतलाम में आचार्य श्री द्वारा धर्म-सौहार्द की प्रभावना हुई। तत्र विराजित सन्तों स्थविर मुनि श्री ताराचन्द जी म., पं रत्न श्री किशनलाल जी महाराज, मालव केसरी श्री सौभाग्यमल जी महाराज, कविवर्य श्री सूर्यमुनि जी महाराज, शतावधानी श्री केवलचन्द जी म. आदि के साथ संघहित के पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान, तत्त्व-चर्चा, ज्ञान-गोष्ठियाँ आदि एक ही मंच से हुए। धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री वर्द्धमान जी पीतलिया ने यहां चरितनायक से महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्राप्त किया।

जिनशासन के उत्थान और उत्कर्ष को दृष्टि में रखते हुए रतलाम के सभी सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने आचार्यश्री की सेवा में विक्रम संवत् १९८९ का चातुर्मास करने की आग्रहभरी विनति की, जो स्वीकृत हुई। शेषकाल में रावटी, थांदला, पेटलावद, राजगढ़ क्षेत्रों को फरसते हुए आचार्य श्री इतिहास प्रसिद्ध धारानगरी पधारे जो संस्कृत भाषा के विकास स्थल, भारतीय संस्कृति एवं विविध कलाओं का केन्द्र एवं शक्तिशाली मालव राज्य की राजधानी रहा है।

स्थानकवासी परम्परा के लिए तो वस्तुतः धार नगर बड़ा ही ऐतिहासिक महत्त्व का नगर है। विक्रम सम्वत् १७५९ में यहाँ धर्मप्राण आचार्य श्री धर्मदास जी महाराज ने अपने एक शिष्य को स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किये हुए संथारे से विचलित देखकर जिनशासन की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए स्वयं ने उसका स्थान ग्रहण कर अपने प्राणों की आहुति दे दी थी।

आचार्यश्री धर्मदास जी महाराज विक्रम की अठाहरवीं शताब्दी के एक महान् क्रियोद्धारक, प्रभावक एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए हैं। वर्तमान में मारवाड़, मेवाड़, मालवा तथा सौराष्ट्र आदि प्रान्तों में विचरण करने वाले अधिकांश साधु-साध्वीवृन्द उन्हीं की शिष्य सन्तति में हैं।

आचार्यश्री ने अपने उद्बोधन में धारनगर के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा कि यहाँ के जैन श्रावक शिरोमणि ने मुगलकाल में धार के लोगों के जीवन और धन की रक्षा के लिए जो अप्रतिम शौर्य, साहस और त्याग दिखाया वह इतिहास का बेजोड़ उदाहरण है, जिस पर जैन समाज को गर्व है।

जैन संघ के गौरव की प्रतीक एवं प्रासङ्गिक होने से इस ऐतिहासिक घटना का विस्तृत उल्लेख किया जा रहा है। एक बार मुगलों की एक सशक्त विशाल सेना ने धारनगर को चारों ओर से घेर लिया। शत्रुओं से रक्षा के लिए नगर के प्रवेश द्वारों के लोह कपाट बंद कर दिये गये। मुगल सेनापति ने नगर द्वारों और परकोटे के बाहर घोषणा करवा दी कि कल मध्याह्न से पूर्व २० सहस्र स्वर्णमुद्राएं नगर निवासियों से एकत्रित कर प्रस्तुत कर दी जाएं, अन्यथा नगर को कत्लेआम करवा कर लूट लिया जायेगा।

सेनापति की इस घोषणा से चारों ओर त्राहि-त्राहि, भय और आतंक का साम्राज्य छा गया। मुगलों की विशाल सैन्य शक्ति के समक्ष मुट्ठी भर नगर रक्षक सेना आटे में नमक तुल्य थी। निर्दोष नर-नारियों के सम्भावित हत्याकांड से नगर सेठ द्रवित हो उठा। कुछ क्षण विचारमग्न रहा और फिर अपने आसन से उठा। तलवार, ढाल और भालों से सुसज्जित हो घोड़े पर आरूढ़ हुआ और अंगरक्षकों के साथ चल दिया।

नगर सेठ ने नायक से भेंट की। नायक ने सेनापति को संदेश देते हुए कहा-"सल्तनत-ए- मुगलिया की जांबाज फौजों के आलाकमान की खिदमत में धारनगर के नगर श्रेष्ठी हाजिर होना चाहते हैं। हुजूर! ऐसा जांबाज

जवांमर्द इस खादिम ने आज से पहले कभी नहीं देखा। दौलत, दानिशमंदी और दिलेरी, इन तीनों की रूहें बहिस्ते से अलविदा कर मानों एक ही जिस्म में उतर आई हैं। हुक्म हो तो हाजिर करूं ?"

'नहीं, मैं खुद चलता हूँ' कहते हुए सेनापति अपने कक्ष के द्वार की ओर बढ़ा। नगर श्रेष्ठी को देखते ही 'आदाब' अर्ज करते हुए सेनापति ने अपने दोनों हाथ नगरश्रेष्ठी की ओर बढ़ा दिये। अभिवादन का उत्तर देते हुए नगर श्रेष्ठी ने भी अपना हाथ सेनापति की ओर बढ़ा दिया। सेनापति अपने दोनों हाथ से नगरश्रेष्ठी का हाथ थामे अपने कक्ष के मध्य भाग में रखे सुखासनों की ओर बढ़ा। एक सुखासन पर नगरश्रेष्ठी को बाअदब बिठाया और दूसरे पर स्वयं बैठते हुए सेनापति ने खैर मुकद्दम अनन्तर पूछा-'अकेले ही, इस वक्त शाही सेना के खेमे में तशरीफ आवरी का कारण ?

नगर श्रेष्ठी बोला-"निरपराध नर-नारियों और मासूम बच्चों की करुण पुकार मुझे आप तक खींच लाई है। आह अग्निवर्षा की कारण होती है और वाह पुष्प वर्षा की। जिनके धौंसे की धमक से धरती धूजती थी, वे बड़ी-बड़ी जोरो जुल्म करने वाली सल्तनतें भी निर्बलों की आह की आग में जल कर खाक बन गई। उनका नामोनिशां तक सदा-सदा के लिए मिट गया। जिन शासकों पर वाह -वाह की पुष्पवर्षा हुई वे अमर हो गये। आज भी लोग बड़े आदर के साथ उन शासकों का, उन हुकूमतों का नाम लेते हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि शाही खजाना बेगुनाहों के खून से भरा जाएगा या दौलत से? सेनापति नगरश्रेष्ठी के ओजस्वी मुखमंडल पर दृष्टि गड़ाये बड़े ध्यान से सब बातें सुनता रहा। अन्त में सेनापति से नगर श्रेष्ठी ने प्रश्न किया-"कितनी स्वर्ण मुद्राएं चाहिए हुकूमत को? आपके कोषपाल को मेरे साथ भेज दीजिए। नगरद्वार पर उन्हें आपकी इच्छानुसार स्वर्णमुद्राएं सम्हला दी जायेंगी।"

"क्या सब कुछ आप अपने पास से ही देंगे ?" आश्चर्याभिभूत सेनापति ने प्रश्न किया।

सस्मित नगरश्रेष्ठी ने पूर्ववत् गंभीर स्वर में उत्तर दिया-"इसमें आश्चर्य की क्या बात है सेनापति ! मैं जब इस दुनियां में आया तो अपने साथ कुछ भी नहीं लाया। इसी मिट्टी में पला, छोटे से बड़ा हुआ। जिसे धन, वैभव अथवा दौलत कहा जाता है, यह सब इसी मिट्टी से प्राप्त हुआ। जब यहाँ से जाऊंगा तो साथ में कुछ नहीं ले जा सकूँगा। इस मिट्टी से मिली सारी सत्ता और सम्पदा इसी मिट्टी में रह जाएगी।" यदि यह दौलत निरपराध निर्बल अबलाओं, मासूम बच्चों, बूढ़ों एवं अवाम की रक्षा के काम आ जाए तो इससे बढ़कर दौलत का और क्या अच्छा उपयोग हो सकता है?

नगरश्रेष्ठी ने अपने कथन का संवरण करते हुए कहा-"धारनगर चिन्ता के सागर में डूबा हुआ है। नागरिकों के मन, मस्तिष्क में उथल-पुथल मची हुई है। निस्सहाय, निरीह, निर्बलों के प्राण सूखे जा रहे हैं। शीघ्रता कीजिए। अपने सैनिकों और खजान्वी को मेरे साथ भेज दीजिए और बता दीजिए कि मैं आपके खजान्ची के साथ कितनी धनराशि भेज दूँ।"

सेनापति ने अपने सैनिक अधिकारी को शाही सेना के कूच की तैयारी का आदेश देते हुए नगरश्रेष्ठी से कहा-"आप जैसे फरिश्तों की गैबी रूहानी ताकत के बलबूते पर ही असीम आसमान बिना खम्भों के अधर खड़ा है। आप इस जहान के इंसान नहीं बहिस्त के फरिस्ते हैं। मैं शाही हुक्म से बंधा हुआ हूँ, वरना बिना एक कानी कौड़ी तक लिए ही इसी वक्त फौज के साथ यहाँ से कूच कर जाता। नगर का घेरा उठाने के लिए मैं स्वयं आपके साथ चल रहा हूँ। आप ५००० मोहरें अपने आदमियों के साथ ही पहुंचा दीजिए। आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं है।"

सेनापति ने अपने सेनानायकों को घेरा हटाने का आदेश दिया। पलक झपकते ही घेरा हटा। सैनिक टुकड़ियों ने शिविर की ओर प्रयाण कर दिया।

नगरश्रेष्ठी ने अपने कोषाध्यक्ष से रेशम की थैलियों में ५ हजार स्वर्ण मुद्राएं मंगवाई और चार घोड़ों की बग्घी में बैठ सेनापति की ओर कूच किया। बग्घी में बैठे नगरश्रेष्ठी को अपनी ओर आते देख सेनापति अपने अश्व से उतरा व बग्घी से उतरकर श्रेष्ठी बोला-"सेनापते! आपने नगर का घेरा उठवा कर हजारों लोगों को संतोष की सांस दी है। वे सब लोग आपकी दीर्घायु और बहबूदी के लिए दुआ कर रहे हैं।"

सेनापति ने जवाब दिया-"यह तो आपकी जर्रानवाजी है, जो ऐसा फरमा रहे हैं। दर हकीकत यह सब कुछ आपकी दानिशमंदी, दिलेरी और दौलत का ही करिश्मा है। सच तो यह है कि आपने मुझे रूहानी रोशनी दिखा कर दरिन्दों से भरे पाताल भेदी अन्धेरे दर्रों में गिरने से बचा लिया है। अब कत्लेआम के काले कलाम इस जुबां से कभी नहीं निकलेंगे।"

नगरश्रेष्ठी ने अपने खजांची की ओर इशारा किया और सेनापति से कहा-'ये ५००० स्वर्णमुद्राएँ हाजिर हैं।'

सेनापति बोला-"अब इनकी कोई जरूरत नहीं है। आपने जो नेक नसीहत मुझे दी, उस पर न्यौछावर हूँ। यह कह सेनापति अपने अश्व पर आरूढ़ हो प्रस्थान कर गया। सारे नगर में 'नगरश्रेष्ठी की जय हो'। 'नगरश्रेष्ठी अमर हो', के नारे गूंजने लगे।

अपने प्रवचन का संवरण करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया कि "अहिंसा के परमोपासक श्रावकरत्न! उसी नगरश्रेष्ठी का रक्त आपकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा है। आप भी अहिंसा के उपासक और रत्नत्रयी के धारक श्रावक हैं। यदि आप भी अपने नगरश्रेष्ठी के शौर्य, साहस और अपूर्व अनुकरणीय त्याग का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दें तो जन-जन के लिए आदरणीय और अनुकरणीय बन सकते हैं।"

आचार्यश्री के इस ऐतिहासिक प्रवचन को सुनकर जन-जन के मन में परोपकार की प्रेरणा प्रस्फुटित हुई। बड़ी संख्या में श्रावक-श्राविका वर्ग ने सामायिक, स्वाध्याय, जप-तप आदि धर्माराधन के नियम भी ग्रहण किए।

धर्म-जागरण के इस क्रम में आचार्य श्री इन्दौर पधारे। यहाँ स्थविर मुनि श्री ताराचन्द्र जी म., श्री किशनलाल जी म. एवं श्री सोभागमुनि जी म. से मधुर मिलन हुआ। सन्त-समागम से संघ में बड़ा उल्लास का वातावरण था। वयोवृद्ध श्री ताराचन्दजी म. बडे सरल एवं परम वत्सलता वाले थे। बाबाजी श्री सुजानमलजी महाराज के ओजस्वी प्रवचन से सब प्रभावित थे। यहां के प्रमुख श्रावक श्री कन्हैयालालजी भण्डारी के आग्रह से एक दिन उनकी मिल में भी व्याख्यान हुआ। समाज में उनका एवं श्री केसरीचन्दजी भण्डारी का प्रमुख स्थान था। भण्डारी जी की वत्सलता से रामपुरा के दो सौ-तीन सौ जैन परिवार इन्दौर आ बसे थे। थियोसोकिकल सोसायटी में भी आचार्य श्री का जैनधर्म पर प्रवचन हुआ।

यहाँ से आचार्य श्री ने धर्म, संस्कृति, विद्या एवं कला के पुरातन केन्द्र इतिहास प्रसिद्ध उज्जैन नगरी में पदार्पण किया। स्वामीजी श्री सुजानमलजी महाराज आदि सन्तवृन्द भी अन्यान्य क्षेत्रों को फरसते हुए वहाँ पधार गए। तत्र विराजित आत्मार्थी श्री इन्द्रमल जी म. और मोतीलाल जी म. आदि मुनिवृन्द के साथ पारस्परिक वात्सल्य सम्बन्ध प्रेमपूर्ण एवं प्रशंसनीय रहा। व्याख्यान और ज्ञानचर्चा साथ ही हुआ करती थी। यहां पर संयोगवश बरेली के सुश्रावक श्री रतनलाल जी नाहर दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उन्होंने मुमुक्षु श्री लक्ष्मीचन्द जी की अनगार धर्म में दीक्षित होने की प्रबल भावना एवं उत्कण्ठा को देखते हुए आचार्यश्री से निवेदन किया कि अब इन्हें शीघ्र ही दीक्षा देने की

अनुमति प्रदान करें। इसके लिए श्री नाहर मुमुक्षु लक्ष्मीचन्द जी के ग्राम महागढ़ भी गये और उनके चाचा श्री इन्द्रमलजी चौहान आदि स्वजनों से अनुमति प्राप्त की। वैरागी प्रसन्न हो उठे। वि.सं. १९८९ की आषाढ़ कृष्णा पंचमी के शुभ मुहूर्त में दीक्षा उत्सव होने की सानंद तैयारियां होने लगी और निश्चित वेला में चतुर्विध संघ की विशाल उपस्थिति में परम विरक्त एवं परम विनीत श्रीलक्ष्मीचन्द जी को आचार्य श्री हस्तीमल म.सा. ने अपने मुखारविन्द से भागवती दीक्षा प्रदान की। नवदीक्षित मुनि ने तपश्चरण और शास्त्राध्ययन के साथ सेवाधर्म को प्राथमिकता दी। ये मुनि आचार्य श्री के प्रथम शिष्य थे, जो छोटे लक्ष्मीचन्द जी के नाम से विश्रुत हुए एवं अटूट सेवा-भक्ति के कारण आगे चलकर सन्तों के द्वारा 'धाय माँ' समझे गये।

• रतलाम चातुर्मास (संवत् १९८९)

रतलाम चातुर्मास धर्मदास मित्रमण्डल और हितेच्छु मण्डल की संयुक्त विनति से धर्मदास मित्रमंडल के धर्मस्थानक में हुआ, जिसमें जिनशासन की प्रभावना तथा अभिनव सामूहिक धर्मजागरण से धर्म क्रान्ति का वातावरण निर्मित होने लगा। रतलाम के उक्त वर्षावासकाल में पण्डित श्री दुःखमोचन जी झा भी आचार्यश्री की सेवा में रहे। पण्डित जी के पास दोनों लक्ष्मी मुनियों का अध्ययन सुचारू रूप से प्रगति करता रहा। धर्मदास मित्रमंडल के धर्मस्थान के विशाल जैन पुस्तकालय में प्रायः सभी आगमों, टीका, भाष्य, चूर्णि आदि विषयों के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का बड़ा अच्छा संग्रह था। सभी सन्तों ने विशेष कर आचार्यश्री ने इस पुस्तकालय का बड़ी रुचि के साथ उपयोग किया। कतिपय जटिल ग्रन्थों का अध्ययन आचार्यश्री ने पं. दुःखमोचन जी के साथ भी किया। आचार्य श्री ने इस प्रकार के पुस्तकालय और हस्तलिखित आगमों, आगमिक ग्रन्थों की पांडुलिपियों के ज्ञान भंडारों की आवश्यकता जोधपुर, जयपुर जैसे प्रमुख नगरों में भी महसूस की ताकि सन्तों, सतियों, श्रावकों, श्राविकाओं, स्वाध्यायियों, साहित्यसेवियों एवं शोधार्थियों का सहज सुलभ एवं उत्तम ज्ञानार्जन हो सके। इतिहास साक्षी है कि महापुरुषों के अन्तर्मन में उत्पन्न समष्टि के हित की भावनाओं को फलीभूत होने में अधिक विलम्ब नहीं होता। आचार्यश्री की इस भावना को दर्शनार्थ आये जोधपुर के चन्दनमल जी मुथा ने मूर्तरूप देते हुए कहा कि सवाईसिंह जी की पोल (सिंह पोल) में एक ऐसे ही विशाल पुस्तकालय की स्थापना का पूर्ण मनोयोग के साथ प्रयास किया जाएगा, जिसमें सभी शास्त्रों, उनकी टीकाओं, चूर्णियों, भाष्यों, महाभाष्यों तथा आगमिक साहित्य विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह होगा।

रतलाम चातुर्मासावास की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वहाँ विभिन्न सम्प्रदायों के सुदृढ़ गढ़ होते हुए भी सम्पूर्ण संघ में पारस्परिक सौहार्द और सद्भाव का वातावरण रहा। नीम का चौक स्थिरवासार्थ वयोवृद्ध श्री नन्दलालजी म.सा. विराजित थे। उनके साथ परस्पर पूर्ण प्रेम एवं वात्सल्य का दृश्य रहा। संघ के अग्रगण्य सुश्रावक श्री वर्द्धमानजी पीतलिया, श्री धूलचन्द जी भण्डारी एवं अन्यान्य जिज्ञासुओं की आचार्यश्री की सन्निधि में ज्ञानचर्चा एवं तत्त्वगोष्ठियां होती रहीं। स्वाध्याय एवं अध्यात्मचिन्तन का वातावरण बना रहा। गजोड़ावाले वयोवृद्ध हीरालालजी गांधी, चांदमल जी गांधी, लक्ष्मीचन्दजी मुणोत आदि की सेवाएं विशेष उल्लेखनीय रहीं। इस चातुर्मास में आचार्य श्री को टाइफाइड हो गया। तब वहाँ के संघ ने एवं वैद्य रामबिलास जी राम स्नेही ने पूर्ण तत्परता से सेवा की।

■

अजमेर साधु-सम्मेलन में भूमिका

(संवत् १९९०)

अखिल भारतीय जैन कान्फ्रेंस ने समग्र भारत की बाईस सम्प्रदायों के नाम से विख्यात स्थानकवासी साधुओं का एक बृहत् सम्मेलन अजमेर नगर में चैत्र शुक्ला १० संवत् १९९० तदनुसार ५ अप्रेल १९३३ से आयोजित करने का निश्चय किया। समाज के वयोवृद्ध श्रावक प्रमुख-मुनियों से सम्पर्क कर एक भूमिका तैयार करने में संलग्न थे। आचार्य श्री की सेवा में भी कान्फ्रेन्स का शिष्ट मण्डल रतलाम पहुँचा। शिष्ट मण्डल की प्रार्थना एवं मुनि संघ के हित की भावना से आप श्री का भी विहार इस लक्ष्य से मालवा से राजस्थान की ओर हुआ। सैलाना, खाचरोद, पीपलोदा होते हुए आप प्रतापगढ़ पधारे। यहाँ ऋषि सम्प्रदाय के प्रमुख संत श्री आनंद ऋषि जी म.सा. जो कि आगे चलकर श्रमण संघ के आचार्य बने, से आपका मधुर मिलन हुआ, जिससे पारस्परिक सौहार्द में अभिवृद्धि हुई। आचार्य श्री क्रमशः छोटी सादड़ी, निम्बाहेड़ा एवं चित्तौड़ पधारे और अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन और संकलन किया। हमीरगढ़ आदि क्षेत्रों में अलख जगाते हुए आचार्य श्री भीलवाड़ा पधारे और भव्यात्माओं को अध्यात्म का रसास्वाद कराते हुए बनेड़ा पहुंचे। बनेड़ा से केकड़ी पधारे जहाँ अन्यपक्षीय श्रावकों के साथ ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ। १६ फरवरी १९३९ से एक सप्ताह तक मूर्तिपूजक समाज के साथ चले लिखित शास्त्रार्थ में आपने प्रांजल संस्कृत भाषा में सटीक समीचीन एवं पाण्डित्यपूर्ण समाधान दिए, जिससे शास्त्रार्थ निर्णायक कट्टर मूर्तिपूजक पण्डित श्री मूलचन्दजी शास्त्री अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने निर्णय दिया कि आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के उत्तर जैन धर्म की दृष्टि से बहुत सटीक एवं समुचित हैं। इस शास्त्रार्थ के पश्चात् केकडी के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का जोश ठंडा पड़ गया और स्थानकवासी सन्त-सतियों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारना बन्द हो गया। इस शास्त्रार्थ में स्थानीय मन्त्री श्री धनराजजी नाहटा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। शास्त्रार्थ में हुई विजय से आपकी यशकीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। यहाँ धनराजजी नाहटा, चाँदमलजी, सूरजमल जी आदि तरुणों में बड़ा उत्साह था। सरवाड़ की भावभीनी विनति को ध्यान में रखकर आचार्यश्री वहाँ पधारे। यहाँ श्री साईणसिंहजी, श्री ताराचन्दजी कक्कड़ आदि ने सेवा का पूरा लाभ लिया। धर्म-प्रचार और संगठन के लिए आचार्यश्री की प्रेरणा से यहाँ नियमित प्रार्थना और धार्मिक शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। सरवाड़ आदि क्षेत्रों से होते हुए किशनगढ़ आगमन हुआ। तत्र विराजित प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म.सा. ने आचार्यश्री की अत्यन्त भावविभोर होकर अगवानी की। प्रवर्तक श्री आपकी लघुवय में ज्ञान-ध्यान की प्रखरता एवं तेजस्विता देखकर अभिभूत हो उठे। पंजाब केसरी युवाचार्य श्री काशीरामजी महाराज, प्रवर्तक पूज्य श्री पन्नालालजी म. के साथ आचार्यश्री के स्नेह मिलन की त्रिवेणी को देखकर किशनगढ़ संघ आनंद विभोर हो उठा। प्रमुख सन्तों में अजमेर में होने वाले वृहद् साधु सम्मेलन के सम्बंध में विचार विनिमय हुआ। सम्मेलन में सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व किनको दिया जाए यह निर्णय करने एवं खास-खास बातों में परम्परा की भूमिका रखने के सम्बन्ध में स्थविर मुनियों एवं आचार्य श्री की सन्निधि में सब सन्तों से विचार विमर्श हुआ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के आगमन की सूचना पाकर चरितनायक अपने साधुवृन्द के साथ लीड़ी

ग्राम पधारे। दोनों महान् सन्तों का मिलन परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के कारण और भी महत्त्वपूर्ण बन गया। वृहद् साधु सम्मेलन का समय नजदीक था, आचार्य श्री ने अपने सन्तों के साथ अजमेर की ओर प्रस्थान किया।

मंझला कद , उन्नत भाल, पृष्ठ भाग पर धर्मशास्त्रों के पुट्ठे, नीची नजर, स्कन्ध पर रजोहरण धारण किये तरुण वय आचार्य प्रवर में मानो धर्माचरण साकार हो उठा हो। ऐसे श्वेतवस्त्रधारी आचार्य श्री के चरणकमल अजमेर धरा पर पड़ते ही जय-जयकार के नारों से गगन गुंजायमान होने लगा। जनमेदिनी साधुचर्या के कायक्लेश से चिन्तित थी और आचार्य श्री विभिन्न इकाइयों में विभक्त होकर छिन्न-भिन्न हो रहे जैन समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करने का चिन्तन कर रहे थे। श्रमण-श्रमणी वर्ग में व्याप्त भिन्न-भिन्न समाचारियां, भिन्न-भिन्न आचार-विचार पर्वाराधन की तिथियों में मतभेद, द्रव्य और भाव के भेद से मतान्तर आदि पर विचार कर समान श्रमणाचार और समान तिथि पर्व कैसे हों, इत्यादि संघ-ऐक्य विषयक चिन्तन करने लगे।

अचानक पण्डित रत्न शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की ओर से वृहद् साधु सम्मेलन को एक वर्ष आगे स्थगित किये जाने की संस्तुति पर आचार्य श्री हस्तीमल जी म. ने पूर्व निर्धारित समय पर ही सम्मेलन करने का अभिमत प्रकट किया। इससे चरितनायक की दृढ़ निर्णय क्षमता का परिचय मिला।

वृहद साधु सम्मेलन का दृश्य अद्भुत था। ५ से १९ अप्रेल १९३३ तक चले इस सम्मेलन में स्थानकवासी परम्परा की विभिन्न सम्प्रदायों के ४६३ श्रमणों एवं ११३२ श्रमणियों में से इस सम्मेलन में २३८ श्रमण एवं ४० श्रमणियां उपस्थित थीं। सम्मेलन में २६ सम्प्रदायों के ७६ प्रतिनिधि मुनिराजों ने भाग लिया। चरितनायक आचार्य श्री हस्ती पूज्य श्री रत्नचंदजी म.सा. की सम्प्रदाय का नेतृत्व कर रहे थे। परम्परा के वयोवृद्ध अनुभववृद्ध स्वामीजी भोजराजजी म. एवं श्री चौथमलजी म. भी आपके साथ प्रतिनिधि थे।

अजमेर नगर में धर्म देवों का शुभागमन ऐसा लगता था कि मानों स्वर्ग से देव ही भूमि पर आये हों। विभिन्न प्रांतों से पधारे संतों को समीर शुभ कार्यालय, केसरी चंदजी की हवेली एवं कचेरी में ठहराया गया। राजस्थान, गुजरात और पंजाब के संत समीर शुभ कार्यालय में विराजे। आचार्य श्री तीसरी मंजिल में विराज रहे थे। मध्य में कविवर्य श्री नानचन्दजी म.सा., श्री मणिलालजी म.सा. एवं शतावधानी श्री रत्नचंदजी म.सा. विराज रहे थे। कुएं के पास कच्छ के पूज्य श्री नानचन्द जी म. सा. , दरवाजे पर पंजाबकेशरी युवाचार्य श्री काशीरामजी म.सा., उपाध्याय श्री आत्मारामजी म.सा., गणिवर्य श्री उदयचंदजी म.सा., वाचस्पति श्री मदनलालजी म.सा. आदि पंजाबी संत विराजे हुए थे। नीचे के भाग में मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा., श्री छगनलालजी म.सा., और श्री कुन्दनमलजी म.सा. आदि संतगण सब सन्त मुनिराजों की देखरेख एवं सम्हाल के लिये विराजे हुए थे। सम्मेलन के समय लगभग ५० हजार श्रावक-श्राविका अजमेर में उपस्थित थे।

समीर शुभ कार्यालय भवन (ममैयों के नोहरे) में बड़ के नीचे सम्मेलन की बैठकें होती थीं, जिनमें प्रतिनिधिगण गोलाकार विराजते। सम्मेलन का शुभारम्भ शतावधानी श्री रत्नचंदजी म.सा. द्वारा प्रार्थना एवं आपश्री द्वारा संस्कृत में मंगलाचरण के साथ हुआ। आप द्वारा प्रस्तुत स्वरचित मंगलाचरण की कुछ मंगल कड़ियाँ इस प्रकार हैं–

"सफलयतु मुनिसम्मेलनमदो, विजयतां मुनिसम्मेलनमदः।
कालाद् बहोः सुषुप्तां जैनीं जातिमहो सम्मदः।
सम्बोधयति नेतुमार्हतमध्वानं सम्पदः॥"

सम्मेलन की कार्यवाही को शान्तिपूर्वक संचालित करने हेतु गणिवर्य श्री उदयचन्दजी म.सा. एवं शतावधानी श्री रत्नचंदजी म.सा. को शान्तिरक्षक बनाया गया। मुनि सम्मेलन का मुख्य लक्ष्य पक्खी, संवत्सरी के विवाद को मिटा कर समाज में एक वाक्यता लाना था। परन्तु पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म.सा. की सम्प्रदाय के दो पूज्यों के एकीकरण हेतु श्री मरुधरकेशरी जी म.सा. के सत्याग्रह एवं जनता के आंदोलन से मुनि सम्मेलन का अधिक समय उसी में चला गया। अंततोगत्वा धर्मवीर श्री दुर्लभजी एवं सेठ श्री वर्द्धमान जी पितलिया की सूझबूझ और पूर्ण आग्रह से आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने स्वीकार किया कि शतावधानी जी महाराज , पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज और युवाचार्य श्री काशीरामजी म.सा. आदि प्रमुख संत बंद लिफाफे में जो निर्णय देंगे, उसे हम मान्य करेंगे। कुछ काल के बाद शतावधानी जी म.सा. आदि मुनि मंडल ने दोनों आचार्यों के समाधान की घोषणा की। हर्षध्वनि के साथ पूरे संघ में हर्ष व जय जयकार के नारों के साथ आकाश गूंज उठा। दोनों आचार्यों का एक साथ आहार संबंध चालू हुआ।

सम्मेलन का सबसे बडा लाभ एक दूसरे से दूर रहने वाले संतों का प्रेम मिलन और पीढियों से बिछुड़े भाइयों का मिलन था। बाल दीक्षा, संवत्सरी पर्व, सचित्ताचित्त विचार एवं प्रतिक्रमण आदि चर्चा के मुख्य विषय थे। समाचारी में कई सर्वमान्य नियमों का निर्णय हुआ।

बाल-दीक्षा पर बहस के बाद उत्सर्ग में १६ वर्ष की आयु नियत की गई। संवत्सरी की एकता के लिये साधु-श्रावकों की एक समिति बना कर उसका निर्णय सर्वमान्य रखा गया। सचित्त अचित्त निर्णय पर भी चर्चा हुई। नाज की चर्चा पर उपाध्याय श्री आत्मारामजी म. के साथ आचार्य श्री का भी नाम था। विचार विमर्श के बाद बीजों का व्यवहार में संघट्टा टालना तय हुआ। एक प्रतिक्रमण के लिये गठित समिति में श्री छगनलालजी म. श्री सौभाग्यमुनिजी म. एवं पूज्य आचार्य श्री थे। एक प्रतिक्रमण एवं संवत्सरी के प्रतिक्रमण में २० लोगस्स का निर्णय मान्य हुआ। सम्मेलन में एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि का कार्य - पंजाब की विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित पगी और परंपरा के भेद का सदा के लिये हल निकालकर पंजाब श्रमण संघ की एकता स्थापित करना था।

सम्मेलन में समागत विविध सम्प्रदायों के ६-७ आचार्यों में रत्नवंश के प्रतिनिधि हमारे चरितनायक आचार्य श्री लघु वय के आचार्य थे फिर भी सब उनका सम्मान रखते थे, उनकी हर बात को ध्यान से सुना गया एवं हर निर्णय में उनकी राय को महत्त्व दिया गया। उनका ज्ञान-वृद्धत्व 'वृद्धत्वं जरसा विना' की उक्ति को सार्थक कर रहा था। संतों में पारस्परिक वात्सल्य, गुणों की कद्र और समाजहित की भावना थी।

सम्मेलन में चरितनायक के अनेक अज्ञात गुण रेखांकित हुए। उनका चिन्तन भी मुखरित हुआ, जैसे –१. बुद्धिमान को चाहिए कि वह उपायों के साथ अपायों (बाधाओं) का भी विचार कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही कर ले। २. विवादग्रस्त एवं जटिल बातों के हल विद्वत् समिति से हों। ३. संगठन भेदभाव मिटाता है। मैं बड़ा और मेरी सम्प्रदाय बड़ी की भावना के स्थान पर 'हम सब महावीर के पुत्र हैं और सभी हमारे बांधव हैं।' इस प्रकार का सद्भाव सफलता का द्वार है। ४. कल्याण के कार्यक्रम शास्त्र व लोक से अनुमोदित हों। ५. निष्पक्ष व निरभिमानी को प्रमुख बनाया जाए। ६. चर्चा अथवा वाद में सम्बंधित पक्षों की उपस्थिति आवश्यक है। उनका यह चिन्तन बड़े-बड़े सन्तों को भी सटीक लगा।

आचार्यश्री को सम्मेलन की कार्यवाही के लिए 'विषय निर्धारण समिति' का सदस्य, मेवाड़ और मालवा प्रान्त के कार्यवाहक मंत्री, मारवाड़ प्रदेश के ज्ञानप्रचारक मंडल के सदस्य, साधु-श्रावक प्रतिक्रमण विधि, पाठ शुद्धि -

अशुद्धि, दीक्षाविधि और प्रत्याख्यान विधि निर्णय समिति का सदस्य तथा आगमोद्धारक समिति का सदस्य मनोनीत किया गया, जो चरितनायक की गम्भीरता, सजगता, विद्वत्ता के साथ सर्वप्रियता को रेखांकित करता है। अनेक जटिल और विवादास्पद मत वैभिन्य के विषयों को सुलझाने में आपकी योग्यता की सभी ने सराहना की। सम्मेलन के अन्तिम दिन कॉन्फ्रेंस के अधिवेशन में न जाकर चरितनायक ने अतीव दूरदर्शिता का परिचय दिया। उस दिन अनेक पूज्य मुनिराजों को ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना पड़ा। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. नहीं बोले , अन्य सन्तों ने उसका प्रायश्चित्त लिया, किन्तु पूज्य चरितनायक हस्तीमलजी म.सा. तो पूर्णतः निर्दोष रूपेण बच गए, जिसकी सर्वत्र श्लाघा हुई। पूज्य जवाहराचार्य की भाषा में —"आचार्य हस्तीमलजी म.सा. सबसे चतुर निकले। "

प्राथमिक होने पर भी अजमेर सम्मेलन में जो कार्य हुआ, उतना आगे के सम्मेलनों में नहीं हो सका। चरितनायक ने अपने संस्मरण में स्वयं लिखा है —"साम्प्रदायिक समस्याओं में बिना उलझे सरल मन से गीतार्थों को कार्य करने का अवसर दिया जाता तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता था। "

■

मारवाड़ एवं मेवाड़ में विचरण

(संवत् १९९०-१९९४)

• **जोधपुर चातुर्मास : उपाध्याय श्री आत्मारामजी के साथ (संवत् १९९०)**

जोधपुर श्री संघ की ओर से श्री चन्दनमलजी मुथा, श्री शम्भूनाथ जी मोदी, श्री लच्छीरामजी सांड प्रभृति श्रावकों की भावभरी उत्कट विनति के कारण उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज एवं चरितनायक का संयुक्त चातुर्मास (संवत् १९९०) जोधपुर के लिए स्वीकृत हुआ। प्रथम मिलन होने पर भी दोनों परम्पराओं के मुनियों में आत्मीयता की लहर दौड़ गई। दोनों महापुरुष अपने मुनि-मण्डल सहित अजमेर से विहार कर पुष्कर, थांवला, मेड़ता सिटी आदि ग्राम-नगरों में धर्मोद्योत करते हुए हुए पीपाड़ पधारे। उपाध्याय श्री काबरों के नोहरे में और चरितनायक उपाश्रय (पुखराज की पाठशाला) में विराजे। दोनों महापुरुषों के व्याख्यान एक ही स्थान काबरा के नोहरे में होते रहे। तदुपरान्त वि.सं.१९९० का संयुक्त चातुर्मास करने हेतु जोधपुर पधारे। जोधपुर के नागरिक हर्षित एवं उत्साहित थे। धर्माराधन खूब हुआ। सन्तों में परस्पर इतना प्रेम भाव था कि किसी को सम्प्रदाय भेद का आभास ही नहीं होता था। दोनों संघाटकों के श्रमणों ने शास्त्रों के अध्ययन-वाचन का आनन्द लिया। उपाध्याय श्री आत्माराम जी म. और पूज्य श्री के इस संयुक्त चातुर्मास में अनेक उपलब्धियां हुईं। इसी चातुर्मास में उपाध्याय श्री ने तत्त्वार्थसूत्र के सभी सूत्रों का जैनागमों में उद्‌गम खोजा जिससे 'जैनागम तत्त्वार्थ समन्वय' ग्रन्थ तैयार हुआ। इसकी पाण्डुलिपि का लेखन पं. दुःखमोचन जी झा ने किया। चरितनायक की मौन और ध्यान-साधना का भी विकास हुआ।

जोधपुर के धर्म प्रेमी भक्तों ने सन्तों की सेवा एवं समाधि का पूरा ध्यान रखा। एकदा उपाध्याय श्री आत्मारामजी म.सा. के एक सन्त मोहवश अदृश्य हो गए। उन्हें नये प्रदेश में इस प्रकार की घटना से विशेष दुःख हुआ। आचार्य श्री को भी बड़ा विचार हुआ, पर आगे प्रकाश दिखा। उत्साही युवा समाजसेवी श्री विजयमलजी कुम्भट ने अपने सहयोगियों के माध्यम से बिना किसी को खबर दिए गवेषणा की और अदृश्य हुए मुनि को वापस उपाध्याय श्री की सेवा में पहुंचाकर शान्ति की सांस ली। युवकों में गोपनीयता, अनुशासन और निष्काम सेवा देख सन्त-समुदाय को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। बुजुर्ग श्रावकों में चन्दनमलजी मुथा, नाहरमलजी पारख, धूलचन्दजी रेड, पारसमलजी लुणावत आदि की सेवाएँ भी स्मरणीय थीं। श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी के मधुर भजन सबके आकर्षण के केन्द्र थे। चतुर्विध संघ में शान्ति, प्रीति और सहयोग की नीति से ओसवाल सिंह सभा जोधपुर द्वारा संचालित सरदार हाई स्कूल में एक धार्मिक पुस्तक तीनों सम्प्रदायों को मान्य हो, वैसी तैयार कर चालू की गई। शाह नवरत्नमलजी भाण्डावत उस समय सरदार हाई स्कूल के अध्यक्ष थे।

चरितनायक आचार्य श्री ने स्वयं अपने संस्मरणों में इस वर्षावास का स्मरण करते हुए लिखा है "उपाध्याय श्री के सहवास में ज्ञान-ध्यान , विचार चर्चा में आदान-प्रदान का बड़ा लाभ मिला। मौन और ध्यान-साधना में हमें काफी प्रेरणा मिली। वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध होकर भी वे आचार्य पद का आदर रखते थे। "

आचार्य श्री अमरसिंहजी म.सा. के समय रत्नवंशीय वादीमर्दन श्री कनीराम जी महाराज का उनसे वात्सल्य

सम्बन्ध था। फिर बहुश्रुत आचार्य श्री विनयचन्दजी महाराज के समय सरल स्वभावी आत्मार्थी श्री मयाराम म. का वात्सल्य सम्बन्ध रहा। इस चातुर्मास से पुरानी स्मृतियां जीवन्त हो उठी।

चातुर्मास के पश्चात् स्वामीजी श्री भोजराजजी म. और श्री लक्ष्मीचन्दजी म. पूज्य उपाध्याय श्री आत्मारामजी म.सा. की सेवार्थ पाली तक साथ पधारे। पारस्परिक सौहार्द का यह अनूठा उदाहरण होने के साथ ही चरितनायक की सूझबूझ, विशालता एवं सरलता का प्रतीक था।

आचार्य श्री बनाड़, दईकड़ा होते हुए भोपालगढ़ पधारे। स्वामीजी श्री भोजराजजी म. एवं श्री बडे लक्ष्मीचन्दजी महाराज ठाणा २ उपाध्याय श्री आत्मारामजी म. को पाली पहुंचाकर आचार्य श्री की सेवा में भोपालगढ पधार गए। पूज्य उपाध्याय श्री ने सन्तों की सेवा से प्रसन्नता व्यक्त की। यहाँ से नाडसर, रजलानी, बारणी आदि गांवों में धर्म-प्रचार करते हुए नागौर पधारे।

चरितनायक आचार्य भगवन्त का चिन्तन रहा कि चतुर्विध-संघ के संचालन, विकास एवं अभ्युदय में साध्वीमंडल की अहम भूमिका है। इतिहास याकिनी महत्तरा प्रभृति साध्वीमंडल द्वारा किये गये उपकार का साक्षी है। रत्नवंशीय साध्वी समुदाय को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के क्षेत्र में विशेष ख्याति रही है। यह ख्याति - परम्परा और वर्धमान हो, इस हित-चिन्तन के अनुरूप यहाँ साध्वी-संघ के लिए एक अभ्युदयकारिणी मर्यादित दिनचर्या निश्चित की गई। महासती छोगांजी, अमरकंवर जी, बड़े धनकंवर जी आदि साध्वियाँ भी वहीं विराज रही थीं। अतः चतुर्विध संघ का एक मनोहारी समागम हुआ। परस्पर गहन विचार-विमर्श भी हुआ।

• पीपाड़ चातुर्मास (संवत् १९९१)

यहाँ से पुनः भोपालगढ, पीपाड़, जैतारण नीमाज, मेला का बिराँठिया , बर, ब्यावर एवं सेन्दडा को पावन करते हुए चौदहवां चातुर्मास करने वि.सं. १९९१ में पीपाड़ पधारे। चातुर्मास काल में धर्मदीप प्रदीप्त हुआ। श्री जुगराज जी मुणोत, सोहनमलजी कटारिया, केवलचन्दजी कांकरिया, सज्जनराजजी चौधरी, रावतमल जी मुथा आदि ने भजन-भाव एवं सन्त-सेवा में प्रगाढ रस लिया। अनेक तरुणों ने थोकड़े सीखे। **चातुर्मास के प्रारंभ में आचार्य प्रवर की अनुमति से जोधपुर के महामन्दिर में महासती श्री सुगनकंवर जी ने आषाढी पूर्णिमा को संथारा ग्रहण किया था जो ५२ दिनों में भाद्रपद शुक्ला ७ को सीझा।** दिवंगत साध्वीरत्ना को चार लोगस्स से श्रद्धाञ्जलि दी गई। चातुर्मास में सतारा के सेठ श्री मोतीलाल जी मुथा, गुलेजगढ के लालचन्दजी मुथा तथा सिरेहमल जी आदि अनेक श्रद्धालुओं के परिवार दक्षिण-भारत से आकर मुनि-सेवा और धर्मध्यान में निरत रहे। प्रज्ञाचक्षु धूलचन्दजी सुराणा की प्रतिभा सबको चकित किए बिना नहीं रही। यह चातुर्मास आध्यात्मिक ठाट-बाट से सानन्द सम्पन्न हुआ। तदुपरान्त विहार कर आप ठाणा ६ के साथ जोधपुर सिंहपोल में विराजे।

यहाँ दो विरक्त बहनों की संयम लेने की भावना फलवती हुई। माघ शुक्ला पंचमी के दिन जोधपुर निवासी स्व. सांवतराज जी बागरेचा की धर्मपत्नी स्वरूपकंवर जी एवं भोपालगढ़वासी श्री बख्तावरमल जी मूथा की धर्मपत्नी बदनकंवरजी की भागवती दीक्षा महासती श्री अमरकंवर जी महाराज की निश्रा में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर पूज्य श्री जवाहरलालजी म. की परम्परा के श्री शोभागमल जी म.सा. भी उपस्थित थे। जोधपुर से आप ब्यावर में धर्मजागरण करते हुए अजमेर पधारे। यहाँ माहेश्वरियों के न्याति नोहरे में विराजे।

• पाली चातुर्मास (संवत् १९९२)

वि.सं. १९९२ का चातुर्मास सम्पन्न करने के लिए आचार्य श्री ठाणा ६ से पाली पधारे। यहाँ नारेलों के भखार में आपका चातुर्मास हुआ, जो कालुरामजी रेड की धर्मपत्नी के नेश्राय में था। संघ का संगठन, अनुशासन और धर्मप्रेम श्लाघनीय रहा। सभी सम्प्रदायों के श्रावक-श्राविकाओं ने धर्माराधन का लाभ लिया। पाली का चातुर्मास सानन्द धर्मवृद्धि पूर्वक सम्पन्न हुआ। चातुर्मास में सर्व श्री हस्तीमलजी सुराणा, पुखराजजी लूंकड, इन्द्रमलजी डोसी, नथमलजी पगारिया, हस्तीमलजी रेड आदि व्यवस्था में अग्रणी थे। वयोवृद्ध श्रावक श्री मुन्नीलालजी, मूलचन्दजी कटारिया आदि शास्त्र-श्रवण के रसिक थे।

इस चातुर्मास काल में पूज्य श्री सोहनलाल जी म.सा. (पंजाबी) का अमृतसर में स्वर्गगमन होने पर, आचार्यप्रवर ने संस्कृत भाषा में अपनी गेय भावाञ्जलि इस प्रकार समर्पित की-

काल ! किमु निष्कारुण्यं कृतम् ॥ध्रु. ॥
हन्त काल ! निर्दयता - स्वीकृतहृदा त्वया किं कृतम्।
निर्धनधनमिव मुनिसर्वस्वं सौवर्णं किं हतम् ॥१ ॥
चिरपालितं मुनीन्द्र - निधानं ज्ञानेनालङ्कृतम्।
वीरसंघमुद्बोधयितुं यैः प्रान्ते यतनं धृतम् ॥२ ॥
नो मुनिवृन्दं संघटितं नो शास्त्रं स्वं वोद्धृतम्।
जिनशासनोद्दिधीर्षा - विधितो विधिना पृथक्कृतम् ॥३ ॥
यतमानानां साधनहीनं शमिनां समयाऽऽदृतम्।
पूज्यैः सोहनलालमुनीन्द्रैर्देवत्वं संभृतम् ॥४ ॥
हस्तिमल्लमुनिरभ्यर्थयते गीर्वाणालयसृतम्।
सदा कार्यमार्यैराहतमिह दिव्यतयोपकृतम् ॥५ ॥

रचना का भाव इस प्रकार है - "हे काल ! तुमने निर्दयता स्वीकार कर यह क्या किया ? निर्धन के धन की भाँति मुनि सर्वस्व सौवर्ण का हरण कर लिया। ज्ञान से अलङ्कृत मुनि श्री ने पंजाब में वीरसंघ को उद्बोधित करने का यत्न किया।" पं. दुःखमोचनजी झा ने पृथक् रूपेण संस्कृत भाषा विरचित श्रद्धाञ्जलि प्रेषित की।

पाली का सफल चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य श्री सोजत, ब्यावर होते हुए वयोवृद्ध महासती जी बड़े राधाजी को दर्शन देने अजमेर पधारे। अजमेर श्री संघ एवं स्थिरवास विराजित महासतीजी के आग्रह से अगले चातुर्मास के लिए अजमेर की विनति स्वीकार की गई। महासतीजी को दर्शन देकर आप श्री किशनगढ, मदनगंज आदि क्षेत्रों को पावनकर शेषकाल में जयपुर पधारे। मार्ग में पूज्य श्री मन्नालालजी म. की परम्परा के आत्मार्थी मुनि श्री खूबचन्दजी म.सा. के साथ आपका प्रेम-मिलन हुआ। जयपुर में धर्मप्रचार कर चातुर्मासार्थ अजमेर पधारे।

• अजमेर चातुर्मास (संवत् १९९३)

आचार्य श्री का १६वां चातुर्मास वि. संवत् १९९३ में ठाणा ६ से अजमेर में हुआ। अजमेर में वैराग्यवती बहन श्रीमती हरकंवर जी (कोटा निवासी श्री तेजमल जी बोहरा की धर्मपत्नी) दीक्षित होने के लिए अत्यंत उत्कण्ठित थी। श्वसुर पक्ष से दीक्षा के लिए आज्ञा में विलम्ब जानकर बरेली के सेठ श्री रतनलाल जी नाहर ने अपने पर जिम्मेदारी लेकर अभिभावक के रूप में दीक्षा की अनुमति दी। बड़े धनकंवर जी महाराज की निश्रा में इनकी दीक्षा

द्वितीय भाद्रपद शुक्ला पंचमी को सम्पन्न हुई। केकड़ी में पूर्व में हुए तात्त्विक प्रश्नोत्तरों का क्रम यहाँ भी चलता रहा। कृष्णलाल जी बाफना जोधपुर ने कई प्रश्न किए, जिनका समीचीन समाधान किया गया। मूर्तिपूजक समाज की तरफ से मुखवस्त्रिका और मूर्ति के प्रश्नों को लेकर विवाद हुआ और चरितनायक को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा गया। इसे तत्काल स्वीकार कर लिया गया, किन्तु सुगनचन्द जी नाहर आदि समाज प्रमुखों द्वारा लिखित रूप में प्रकट किए गए शान्ति संदेश को सुनकर दोनों ओर के संत अपने स्थान पर लौट आए और समाज की वह हलचल सदा के लिए बन्द हो गई। इस प्रकार अजमेर का ऐतिहासिक चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास का विहार तो सुख शान्तिपूर्वक हो गया, पर चातुर्मास में श्रम की अधिकता से आचार्य श्री ज्वर से पीड़ित हो गये। आपश्री को कमजोरी व पीलिया के कारण महीने भर श्री गुमानमलजी लोढ़ा की कोठी में विराजना पड़ा। स्वस्थ हो कर विहार की तत्परता कर रहे थे कि सहसा मुनिश्री छोटे लक्ष्मीचन्द जी के पैर पर तांगे का पहिया फिर जाने के कारण गहरी चोट आने से आचार्यश्री का अजमेर में अधिक ठहरना हुआ। पीढियों से ही चतुर्विध-संघ की अगाध-भक्ति पूर्वक सेवा करने वाले अनन्य गुरुभक्त परम्परा के प्रमुख श्रावक सतारानिवासी वयोवृद्ध श्रेष्ठिवर्य श्री चन्दनमलजी मुथा चातुर्मास काल में ही आचार्य श्री एवं मुनिमण्डल की सेवा में यह निवेदन कर गये थे कि “आज तक तो मैं सेवा में आता रहा । अब गुरुदेव ! मेरा अन्तिम आना है। अब तो आप ही महाराष्ट्र को पावन करने की कृपा करेंगे तो मुझे दर्शन हो सकेंगे।” श्रावकजी की गद्गद् भाषा में की गई प्रार्थना असरकारक थी। अतः मुनि लक्ष्मीचन्द जी के स्वास्थ्यलाभ करने पर चरितनायक ने मुनिमंडल के साथ महाराष्ट्र को लक्ष्य कर अजमेर से प्रस्थान किया। अजमेर केसरगंज से नसीराबाद, बान्दनवाड़ा, भिनाय, टांटोटी, विजयनगर, गुलाबपुरा, बनेड़ा होते हुए भीलवाड़ा पधारे। वहां होली चातुर्मास हुआ। शेखेकाल में आचार्यश्री के कपासन में हुए व्याख्यानों से धर्मप्रभावना हुई। वहाँ से विहार कर करेड़ा, मावली, देबारी होते हुए आयड पधारे। वहाँ कोठारी जी की बाड़ी में विराजे। वहाँ से उदयपुर पधारे। यहाँ पर समाचार मिले कि सतारा में चातुर्मास की विनति करने वाले सेठ चन्दनमल जी मुथा का निधन हो गया है। यह सुनते ही विहार की गति मन्द पड़ गई। अवसर जानकर उदयपुर श्री संघ ने वि.सं. १९९४ का वर्षावास उदयपुर में करने हेतु भावभरी विनति की, जो स्वीकृत हुई।

• उदयपुर चातुर्मास (संवत् १९९४)

इस बीच आस-पास के अन्य क्षेत्रों में जैन धर्म के प्रचार के लक्ष्य से आप गोगुंदा पधारे। प्रकृति की गोद में बसे इस गांव में देव, गुरु एवं धर्म की आराधना का ठाट रहा। तदनन्तर नाथद्वारा में कतिपय दिन बिराजे। देलवाड़ा से एकलिंगजी होते हुए उदयपुर के विशाल पंचायती नोहरे में चातुर्मासार्थ पधारे। यहां का सम्पूर्ण स्थानकवासी जैन समाज धर्म-ध्यान में प्रगाढ़ रुचि लेता रहा। पर्युषण के दिनों में धर्म-ध्यान के साथ तपश्चर्या की तो मानो झड़ी ही लग गई।

इस चातुर्मास में दीवान बलवन्त सिंह जी कोठारी की महत्त्वपूर्ण श्रद्धा-भक्ति एवं भूमिका रही। मुख्यतः उनके आग्रह से ही यह चातुर्मास उदयपुर में हुआ। आप प्रतिदिन आचार्यप्रवर का प्रवचन श्रवण करने के अनन्तर ही दरबार में पहुंचते, अतः प्रायः विलम्ब हो जाता। महाराणा ने दीवान साहब से विलम्ब का कारण पूछा तो दीवान साहब ने फरमाया कि यहाँ मारवाड़ के लघुवय के जैनाचार्य विराज रहे हैं, मैं प्रतिदिन उनका प्रवचन सुनकर दरबार में आता हूँ, अतः विलम्ब हो जाता है। महाराणा के मन में जैनाचार्य के दर्शन एवं प्रवचन श्रवण की उत्कट अभिलाषा हुई और दीवान बलवन्त सिंह जी से कहा-“हमें भी लघुवय के जैनाचार्य के दर्शन कराइए, दरबार में

व्याख्यान कराइए और महल में पगल्या कराइए।" दीवान कोठारी साहब ने महाराणा की भावना से आचार्य श्री को अवगत कराया। आचारनिष्ठ आचार्य श्री ने दरबार में जाने की स्वीकृति प्रदान नहीं की। दीवान साहब असमंजस की स्थिति में थे। महाराणा को ना करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं हो रहा था, अतः उन्होंने एक युक्ति सोची और गुरुदेव के समीप संदेश भिजवाया - "गुरुदेव ! मैं अस्वस्थ हूँ, कृपया मांगलिक देकर कृतार्थ करें।" आचार्यप्रवर वहाँ पधारे, किन्तु वहाँ दरबार के पधारने की तैयारी देखकर दीवान साहब से बोले - "मेरे सामने भी अन्यथा कहते हो।" आचार्य श्री तुरन्त जिस दिशा से आए थे उसी दिशा की ओर लौट गए। यह घटना आचार्यप्रवर के अनासक्त जीवन की द्योतक होने के साथ इस यशस्विनी रत्नवंश परम्परा के पूर्वाचार्य महापुरुषों के जीवनादर्श कि 'डोकरी के घर में नाहर रो कंई काम' की सहज स्मृति दिला देती है। कहाँ एक ओर अपनी यश प्रसिद्धि के लिये राजा महाराजाओं, सत्ताधीशों को बुलाने का उपक्रम व कहाँ आग्रह होने पर भी ऐसे अवसरों से बचने का भाव। यदि व्यसन-मुक्ति, व मद्यमांस त्याग का प्रसंग हो तो अलग बात है , अन्यथा मात्र यशकामना, प्रशंसा प्रसिद्धि के लिये ऐसे प्रसंगों से परे रहना इस परम्परा के महापुरुषों की मौलिक विशेषता रही है। महाराणा उनकी इस फक्कड़ता एवं सन्त-स्वरूपता पर मुग्ध थे।

वैज्ञानिक डा. दौलतसिंहजी कोठारी की उपस्थिति में चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र का आचार्य श्री ने टीका सहित वाचन किया। डा. कोठारी के खगोलज्ञान का आगम शास्त्रीय खगोल वर्णन से तुलना का क्रम भी चला। मेवाड़ ही नहीं, अपितु मारवाड़ और सुदूर प्रान्तों के लोग भी बड़ी संख्या में दर्शन और प्रवचन का लाभ लेने आए।

• सैलाना की ओर

उदयपुर से कानोड, बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी होते हुए मालव भूमि में प्रवेश किया और सैलाना पधारे। सैलाना में महाराज दिलीप सिंह जी का राज्य था। यहाँ के दीवान प्यारे किशन जी सत्संग के प्रेमी थे। उन्होंने इस अवसर पर एक विद्वत्सभा का आयोजन किया, जिसे सम्बोधित करते हुए आचार्यश्री ने कहा "आर्यावर्त की प्राचीन अध्यात्मपरक संस्कृति को पुनर्जीवित करने का भार विद्वानों पर है। वे नई पौध में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि लोककल्याणकारी भावनाओं के संस्कार भरकर भारत की भावी पीढ़ी के नैतिक, सामाजिक और धार्मिक धरातल को ऊँचा उठाने का प्रबल प्रयास करें।"

इसी दौरान आचार्य श्री की आज्ञा से जोधपुर के महामंदिर में मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को श्रीमती फूलकंवर जी (धर्मपत्नी श्री पृथ्वीराज जी भंसाली) की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। इन्हें हुलासकँवरजी की शिष्या घोषित किया गया।

• स्वामीजी भोजराजजी महाराज का स्वर्गारोहण

सैलाना से जावरा होते हुए आचार्य श्री रतलाम पधारे। महागढ़ से वयोवृद्ध स्वामी श्री भोजराज जी आचार्यश्री की सेवा में रतलाम आते समय मार्ग में अस्वस्थ हो गए। थोड़े ठीक होते ही स्वामीजी रतलाम पधार गए। विहार और बुखार की दुर्बलता से स्वास्थ्य में विशेष कमजोरी आ गई थी। विशेषज्ञ चिकित्सकों एवं प्रख्यात वैद्य रामबिलासजी द्वारा लगन से उपचार किए जाने पर भी लाभ नहीं हुआ। तपःपूत स्वामीजी को मन ही मन आसन्न अवसान का आभास हो गया था। अतः उन्होंने अपने पास के पन्ने सन्तों को सम्हला दिए। उन्होंने श्री अमरमुनिजी के विषय में भोलावण दी, इस पर चरितनायक ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा-"आप निश्चिन्त रहिए।

मुनिश्री जिस प्रकार आपके गुरुबंधु हैं, मेरे भी बड़े भाई हैं।" स्वामी जी का वि.सं. १९९४ की फाल्गुन शुक्ला एकादशी को संथारापूर्वक देहत्याग हुआ। इस क्षति से वातावरण विषादमय हो गया। अन्तिम यात्रा में रतलाम एवं आस-पास के ग्राम-नगरों के हजारों श्रद्धालुओं ने भाग लिया। स्वामीजी श्री भोजराजजी महाराज ने विक्रम संवत् १९५८ में दीक्षा ग्रहण कर लगभग ३६ वर्ष संयम पालन किया। उन्होंने तीन आचार्यों आचार्य श्री विनयचन्द्रजी म.सा., आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. एवं आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. की सेवा का लाभ प्राप्त किया। मीठा, तेल, दूध तथा दही के त्यागी स्वामीजी म.सा. ने आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के अध्ययन में जो अन्य कार्यों से निश्चिन्तता प्रदान की, वह चिरस्मरणीय रहेगी। जब आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. अध्ययनरत रहते थे, तब स्वामीजी भोजराजजी म.सा. आगन्तुक दर्शनार्थियों को दूर से खिड़की आदि में से दर्शन करने के लिये कह देते थे, ताकि अध्ययन में व्यवधान न हो। शान्त, दान्त, सेवाभावी एवं सरलप्रकृति के सन्त स्वामी भोजराजजी को श्रद्धांजलि देते हुए सबकी आँखे नम थीं। आचार्य श्री ने स्वयं अपने संस्मरण में लिखा है –"स्वामी श्री भोजराजजी म. के स्वर्गवास से रत्न श्रमणवर्ग में ही नहीं, पूरे स्थानकवासी समाज में एक सेवाभावी और उच्च विचारक सन्त की कमी हो गई। स्वामीजी साधु-साध्वी वर्ग के लिए 'धाय माँ' के समान वात्सल्य भाव में अजोड़ थे।"

■

महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की धरा पर

(संवत् १९९५-१९९९)

स्वामीजी के स्वर्गारोहण के अनन्तर फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को आचार्य श्री के निर्देशानुसार महासती बड़े धनकंवर जी, रूपकंवर जी म. आदि सतियों ने मारवाड़ की ओर विहार किया और आचार्य श्री ने अगले दिन महाराष्ट्र की ओर। कसारों के मंदिर से दिलीप नगर, धराड़, विलपांख, वरमावर, मूलथान, बदनावर, कानवन, नागदा को पदरज से पावन करते हुए चैत्र शुक्ला एकम को धारनगर पधारे। तीन प्रवचन करने के पश्चात् देवला, नालछा होते हुए माण्डू के किले में स्थित प्राचीन जैन मन्दिर में विराजे। वहाँ से भगवानियां घाटा, ऊस ग्राम, धामणोद, निबराणी, ठीकरी, खुर्रमपुरा, वरूफाटक, जुल्वाणिया, बालसमुद्र, भोरशाली, सेन्धवा, गवाड़ी, पलासनेर, सांगवी, हाउखेड़, दहीवद सिरपुर, बगाड़ी, जातड़ा, वरसी, नडाणा, करमाणी पधारे। महाराष्ट्र के इस मार्ग का अधिकांश भू भाग पहाड़ी है। भगवानिया घाटा भयानक घाटा है, जिसमें चढ़ाई के साथ-साथ नौ किलोमीटर की ढलान है। ठीकरी ग्राम में जैनों के दो घर हैं। सेन्धवा में काठियावाड़ी के स्थानकवासियों के सात-आठ घर हैं। आचार्य श्री के प्रवचनों से यहाँ के जैन धर्मावलम्बियों में अभिनव स्फूर्ति का संचार हुआ। सेन्धवा से सिरपुर के बीच अधिकतर भीलों की बस्ती हैं। इस विहारकाल में श्री तख्तमल जी कटारिया सेवा में साथ रहे। सन्तों को एक ग्राम से दूसरे ग्राम पद-यात्रा करते हुये कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यह इस यात्रा में सहज अनुभव किया जा सकता था। बीहड़ जंगल, ऊँची पहाड़ियां, अजैन बस्तियाँ, अपरिचित लोग, सभी कुछ प्रतिकूल होने पर भी साध्वाचार के नियमों के प्रति अडिग भाव एवं परिस्थितियों के प्रति समभाव, यह ही तो साधना है। साधु समस्त परीषहों में भी प्रसन्नता का भाव लुप्त नहीं होने देता। कहा गया है– सम-सुह-दुक्ख-सहे य जे स भिक्खू (दशवैकालिक १०.११) जो सुख और दुःख को समभाव पूर्वक सहन करता है, वह भिक्षु है। भिक्षु शान्त होता है एवं अपने कर्तव्य पक्ष को सम्यक् प्रकार से जानता है–'उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू (दशवैकालिक १०.१०)

विहार क्रम में आप अक्षय तृतीया के पावन दिन सोवनगिरि पधारे। यहां एक दिगम्बर जैन मंदिर में विराजे। तदनन्तर धूलिया पधारे। श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अगवानी की गई। अहमदनगर के श्रीसंघ के २५ श्रावक प्रमुखों ने अहमदनगर चातुर्मास हेतु प्रार्थना की। धूलिया में स्वाध्याय और तप-त्याग की झड़ी सी लग गई। यहाँ आचार्य श्री के परम भक्त श्री भीकमचन्द जी चौधरी, लालचन्दजी, सेठ मिश्रीमलजी आदि ने सेवा का अच्छा लाभ लिया। यहाँ मनसा, वचसा, कर्मणा संघ-सेवा में समर्पित गुरुभक्त स्व. श्री चन्दनमलजी मुथा के भतीजे श्री मोतीलालजी मुथा दर्शनार्थ पधारे। उनके मन में खेद था, जिसे प्रकट करते हुए आपने गुरुदेव से कहा–"काकाजी की भावपूर्ण विनति के अनुरूप आप श्री तो अत्यन्त कृपा कर विकट परीषहों को सहते हुए महाराष्ट्र पधारे, पर दैवयोग से काकाजी नहीं रहे। आपके इस भूमि पर पदार्पण एवं आपके दर्शन कर वे कितने प्रमुदित होते।"

• अहमदनगर चातुर्मास (सं. १९९५)

मालेगांव, मनमाड़, येवला आदि क्षेत्रों को प्रवचन-पीयूष से पुनीत कर आप आम्बोरी, पीपलगांव, भिंगार होते हुए

चातुर्मासार्थ अहमदनगर के नवीपेठ धर्मस्थानक में पधारे। वि. संवत् १९९५ के आपके इस १८वें चातुर्मास में लगभग ५०० जैन घरों वाले इस व्यावसायिक नगर में जैन-अजैन सभी ने धर्माराधन का लाभ लिया। चरितनायक ने यहां आगम-सम्पादन का कार्य अपने हाथ में लिया। इसे अहमदनगर चातुर्मास की विशेष उपलब्धि ही कहा जाएगा। बम्बई विश्वविद्यालय में अर्धमागधी के प्रशिक्षण हेतु पाठ्य पुस्तक दशवैकालिक सूत्र दुर्लभ है, यह जानकर दशवैकालिक सूत्र सरल संस्कृत टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित तैयार करवाया और अमोलकचन्दजी सुरपुरिया ने उसका मराठी अनुवाद किया। सतारा के श्रेष्ठिवर श्री मोतीलाल जी मुथा का इसमें विशेष सहयोग रहा। अहमदनगर महाराष्ट्र का प्रमुख नगर एवं स्थानकवासी जैन संघ का प्रमुख केन्द्र होने से यहाँ अच्छी धर्मप्रभावना होती थी। नगर का संघ सरल, भक्तिमान, सेवाभावी और महाराष्ट्र का कर्णभूषण कहा जा सकता है। श्री माणकचन्दजी मुथा, भाऊ सा. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री पूनमचन्द जी भण्डारी आदि यहाँ के प्रमुख कार्यकर्ता थे। श्री सिरहमलजी लोढा, धोंडी रामजी आदि श्रावक शास्त्र-श्रवण के उत्तम रसिक थे। सेवाभावी श्री मेघराजजी मुणोत एवं श्री कुन्दनमलजी जसराजजी गूगले की भक्ति विशेष सराहनीय थी। यहाँ एक श्रावक ऐसे थे जो १७ वर्षों से दुग्धाहार ही करते थे एवं मौन रखते थे । रत्नवंश की परम्परा के मूलपुरुष पूज्य कुशलोजी म. के सांसारिक वंशज सोनई के श्री केशरीमलजी, उत्तमचन्दजी चंगेरिया का परिवार भी यहाँ ही रहता था। चंगेरिया परिवार ने भी सेवा का पूरा लाभ लिया।

चरितनायक महाराष्ट्र के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में यत्र-तत्र बसे हुए लोगों को धर्मबोध देने के लक्ष्य से आरणगांव, अकोलनेर, सारोला, आस्तगांव, राजनगांव, बेलबण्डी, लूनी, पारगांव आदि क्षेत्रों में पधारे और धर्म मार्ग से उदासीन हुए जैन गृहस्थों को बोध देते हुए श्रीगोमदा पधारे। यहाँ से धर्म-प्रचार करते हुए कुण्डे गव्वण, विट्ठाण होते हुए पौषकृष्णा १३ को घोड़नदी पधारे। वहाँ कोटा सम्प्रदाय के स्थविर मुनि श्री प्रेमचन्द जी म. आदि सन्त एक ही उपासरे में आचार्यश्री के साथ बिराजे। परस्पर सौहार्द रहा। **स्थानकवासी सत्तर घरों की बस्ती वाले इस गांव में पशु बाजार लगता था जिसमें वध के लिए पशुओं का क्रय-विक्रय होता था। आचार्य श्री की प्रेरणा से यहां के प्रमुख श्रावक श्री प्रेमराज जी खाबिया ने उस पशु बाजार को बन्द करवाया तथा जिन स्थानों पर बकरों या पाडों की बलि दी जाती थी वहां बलि भी बंद करवाई।** यहाँ सेठ झूमरमलजी, खाबियाजी आदि श्रावक बड़े सेवारसिक थे। अधिकांश लोग मारवाड़ के कोसाणा आदि ग्रामों से आए होने से उनको पूर्व की गुरु-परम्परा की स्मृति सहज थी। साधु-साध्वियों के पठन-पाठन की दृष्टि से यह क्षेत्र अच्छा साताकारी था। महासती मगनकँवरजी ने यहाँ से दीक्षा ग्रहण कर पूज्य छगनलालजी महाराज की सन्निधि में साध्वीवर्ग की पूर्ति की थी। आचार्यश्री ने पूना की ओर प्रस्थान करते हुए मार्गस्थ ग्रामों के साधुमार्ग की श्रद्धा से शिथिल हुए लोगों को प्रेरणाप्रद बोध देकर धर्म में स्थिर किया। कारेगांव, राजणगांव, कोढापुरी, तलेगांव, फूलगांव, बागोली, ऐरवाड़ा होते हुए माघशुक्ला सप्तमी को पूना पदार्पण किया।

पूना में सादड़ी मारवाड़ के जैन बंधु अपनी अनेक दुकानें चलाने के साथ संघोपयोगी कार्यों में उदारता के साथ धनराशि लगाते थे। यहाँ स्थानकवासी परम्परा के १५० घर थे। पूना में बड़े स्थानक में सतियाँ विराजमान थीं, अतः आप छोटे स्थानक में विराजे। वहाँ के सिद्धान्तप्रेमी श्रावकों में श्री मुल्तानमलजी, श्री हीरालालजी , श्री धोंडीरामजी आदि मुख्य थे। श्राविका समाज में केशरबाई प्रतिभा सम्पन्न थी।

यहाँ कुछ दिन विराजने के अनन्तर आप खिड़की पधारे। यहाँ जैन विद्यालय चल रहा था। लूंकड परिवार की गुरुभक्ति से धर्मध्यान का अच्छा ठाट रहा। यहाँ वि.सं. १९९६ के चातुर्मास हेतु सतारा का शिष्टमंडल रायबहादुर सेठ श्री मोतीलालजी मुथा के नेतृत्व में उपस्थित हुआ। श्रुतसेवा के महत्त्वपूर्ण कार्य को आगे बढ़ाने की दृष्टि से

आचार्यप्रवर ने सतारा हेतु स्वीकृति प्रदान की। इसी बीच माघ शुक्ला १३ संवत् १९९५ को महामन्दिर जोधपुर में लाडकंवरजी (धर्मपत्नी श्री जुगराजजी भण्डारी) की दीक्षा सम्पन्न हुई। लाडकँवर जी म. ने आगे चलकर प्रवर्तिनी पद को विभूषित किया।

• सतारा चातुर्मास (संवत् १९९६)

आचार्य श्री खिड़की से विहार कर चिञ्चवड़, केड़गांव स्टेशन, बोरी, वरवंड एवं पारस होते हुए दौंड़ पहुँचे। मार्ग के ग्राम नगरों को फरसते हुए आप ठाणा छह से सतारा के भवानी मंदिर में चातुर्मास हेतु बिराजे। यहां स्थानकवासियों के १५ घर एवं माहेश्वरी समाज के अस्सी घर थे जो सभी सत्संग प्रेमी थे। महाराष्ट्र और कर्नाटक के जैन धर्मावलम्बियों ने इस चातुर्मास में सतारा आकर धर्मलाभ लिया। यहाँ पर चातुर्मास में एकदा आप प्रातःकाल स्थण्डिल के लिए पधार रहे थे, तब करुणाशील चरितनायक ने दयाभाव से नागराज की रक्षा कर उसके प्राण बचाए। **यह रोमांचकारी घटना आपके द्वारा लिखित संस्मरणों में से यहाँ यथारूप प्रस्तुत है**–"प्रातःकाल जंगल जाते रोड़ पर लोगों को इकट्ठे देखा। एक के हाथ में लट्ठ था। एक प्रहार किया। दूसरा करने वाला था। हमारी नजर रोड़ के सांप पर पड़ी। मैंने भाई के हाथ की लाठी पकड़ी और नीचे सांप को अपने हाथ पोंछने का कपड़ा डालकर उठा लिया। शरीर रोमाञ्चित था। मुनि लक्ष्मीचन्द साथ थे। मैं ज्योंही उसको लिए चला, सब देखते रह गए। एक भाई पीछे आया और बोला - महाराज ! इसको छोड़ दो। यह चोट खाया हुआ सांप है। इसका विश्वास नहीं। मैंने उसकी बात को सुनी-अनसुनी की और जंगल में एक नाले के पास पहुँच कर सर्प को छोड़ दिया। उसके आगे नहीं बढने पर जरा कपड़े से छुआ, तब उसने भी मुँह फेर कर देखा और चल दिया। हमने ओघे की दण्डी पर और हाथ में भी पकड़ा, पर उसमें कोई कलुषित भाव नहीं देख पाए। प्रभु नाम की बड़ी शक्ति है। जीवन में श्रद्धा और साहस का यह पहला प्रसंग था।" इसमें आचार्यप्रवर की न केवल जीवरक्षा की प्रबल भावना प्रकट हुई, अपितु उनकी निर्भयता एवं प्रभावशालिता का सिंहनाद गूंज उठा।

आचार्य श्री के सान्निध्य में सतारा के अहिंसा प्रेमी विद्वान् श्री आटले जी के प्रयासों से आठ अगस्त को **अहिंसा दिवस** मनाया गया। इस दिन सभी प्रकार की हिंसा पूर्णरूपेण बन्द रखी गई। कत्लखानों पर दिन भर ताले लगे रहे। प्रेमपूर्वक मुस्लिम भाइयों ने भी हिंसा बन्द रखी। मछली पकड़ने वालों ने भी मछली पकड़ना बन्द रखा। सभी धर्मों के अनुयायियों ने मिलकर अहिंसा की महिमा बताई, जो सतारा के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। महाराष्ट्र में फूलमाला का उपयोग विवाह के प्रसंग में सर्वत्र अनिवार्य रूप से होता है, किन्तु अहिंसा के पुजारी श्री आटलेजी ने अपने पुत्र के विवाह में भी इसका उपयोग नहीं किया। वे इस विचार के थे कि शाकाहार में होने वाली हिंसा से बचने का भी कोई न कोई उपाय खोज निकाला जाए।

सतारा के चातुर्मास काल में श्रुतसेवा का चिरस्थायी कार्य भी सम्पन्न हुआ। यहाँ सेठ चन्दनमल जी ने ज़ो धनराशि सुकृत फण्ड के रूप में निकाल रखी थी, उसका उपयोग दशवैकालिक सूत्र संस्कृत अवचूरि तथा हिन्दी भाषानुवाद एवं मराठी भाषानुवाद के प्रकाशन में कर लिया गया। इसका सम्पादन पं. दुखमोचन जी झा द्वारा किया गया था। इसी चातुर्मास में आचार्य श्री ने नन्दिसूत्र के सम्पादन एवं टीकानुवाद का कार्य प्रारम्भ किया।

आचार्य श्री ने आश्विन शुक्ला द्वादशी के दिन अपने द्वितीय शिष्य के रूप में वारणी (मारवाड़) के श्रीजालम चन्द्र जी (सुपुत्र श्री सम्पतमल जी मूथा) को दीक्षित किया। इनकी दीक्षा यहां बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुई।

दीक्षा महोत्सव पर सम्पूर्ण व्यय भार श्री मोतीलाल जी मुथा ने वहन किया। इस प्रसंग पर श्री मुथा जी के द्रव्य सहयोग से एक स्पेशल ट्रेन जोधपुर से सतारा आई जिसमें जोधपुर मारवाड़ के अनेक गांवों के लगभग ३०० नर नारी सतारा पहुँचे। महाराष्ट्र के अनेक ग्राम नगरों के श्रावकगण सामूहिक रूप से आये। श्रमण धर्म में दीक्षित हो जाने के पश्चात् श्री जालमचन्द जी का नाम मुनिश्री जोरावरमल जी रखा गया। इन्हीं दिनों जयपुर से कार्तिक शुक्ला १ को बारह गणगौर के स्थानक में महासती श्री अमर कंवर जी के देवलोक हो जाने के समाचार मिले। वे २९ वर्ष की वय में फाल्गुन शुक्ला २ वि. संवत् १९५९ को श्री जसकंवर जी म.सा. की शिष्या के रूप में सिंहपोल जोधपुर में दीक्षित हुई थी। उन्हें १५०-१७५ थोकड़े कण्ठस्थ थे। तेले के तप में ही आपने विनश्वर देह का त्याग किया। ३८ वर्ष की संयम पर्याय में आपकी पाँच शिष्याएं हुईं — सुगनकंवरजी , केवलकंवरजी, स्वरूप कंवरजी, बदनकंवरजी एवं लाडकंवर जी। आप जिज्ञासु बहनों को ज्ञान देने हेतु सदैव तत्पर रहती थी। एक बार उनकी सहवर्तिनी साध्वियों ने मिलकर आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. की सेवा में प्रेमभरा उपालम्भ दिया कि ये अमरकंवर जी महाराज भोजन को छोड़कर आगन्तुक बहनों को पाठ देने लग जाती हैं। अतः आपसे विनम्र निवेदन है कि ये भोजन पर बैठने के पश्चात् किसी भी बहन को पाठ देने न उठें, ऐसा नियम करा दें। सतियों की बात सुनकर आचार्य श्री ने जब महासती जी से पूछा तो बोले- "गुरुदेव ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर क्या करूँ मैं विवश हूँ, मन मानता ही नहीं कि कोई मुझसे आध्यात्मिक ज्ञान सीखने आए और मैं उन्हें ज्ञान-दान नहीं दूँ।" जयपुर चातुर्मास में एक बार साध्वियों ने आहार लाकर आपकी सेवा में रखा, तो आपने देखा कि पात्र में स्थित खीर में बिच्छू है। महासती जी ने अन्य साध्वियों को बिना बताए उसमें से बिच्छू निकाल कर पाट के एक ओर कोने में रख दिया तथा अपनी लघु साध्वियों से कहा-"आज मेरी इच्छा है कि सारी खीर मैं ही खा लूँ।" साध्वियाँ भला अपनी गुरुणी जी की अभिलाषा को क्यों रोकती। महासती जी ने धर्मरुचि अणगार के समान अपने भावों को उच्च बनाया एवं सम्पूर्ण खीर पी गयीं। खीर पीने के पश्चात् आपने साध्वियों को स्पष्ट भी कर दिया था कि उन्होंने यह खीर स्वाद के कारण नहीं, अपितु बिच्छू गिर जाने के कारण पी है। उन्होंने साथ ही उस गृहस्थ के यहाँ भी सूचना कराने का निर्देश दिया, कि वहाँ उसका भक्षण कोई न करे। जीव-रक्षा का ऐसा उच्चकोटि का भाव धर्मरुचि अणगार के पश्चात् यह ही ध्यान में आता है। ऐसी त्याग, सजगता एवं अप्रमत्तता की प्रतिमूर्ति थीं महासती अमरकंवर जी महाराज। आठ दिन पश्चात् ही कार्तिक शुक्ला ९ को सिंहपोल जोधपुर में महासती लालकंवर जी का स्वर्गवास होने से उन्हें भी चार लोगस्स से श्रद्धाञ्जलि दी गई। आप भी महासती जसकंवरजी की शिष्या थी तथा अधिकतर महासती अमरकंवरजी के साथ ही विहार व चातुर्मास करती थीं। आपने दीक्षा ग्रहण कर पिता श्री शिवचन्द्र चामड़ जोधपुर के कुल को एवं स्व. पति श्री केसरीमलजी सिंघवी के परिवार को सुशोभित किया। महासती अनोपकंवरजी, सुगनकंवरजी एवं सूरजकंवरजी आपकी शिष्याएं हुईं।

आचार्य श्री का यह सतारा चातुर्मास बहुत ही यशस्वी रहा। ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं जीवदया के कार्य का अनूठा संगम था। छत्रपति शिवाजी की ऐतिहासिक नगरी सतारा में चातुर्मास सम्पन्न करने के अनन्तर मुनिमंडल के विहार का समय आया, तब कर्नाटक प्रदेश के प्रमुख श्रावक श्री लालचन्दजी मुथा, गुलेजगढ़ वालों ने गुरु चरणों मे अपने क्षेत्र को चरण रज से पावन करने की प्रार्थना की। विनती को ध्यान में ले कर आचार्य श्री का शोलापुर की ओर विहार हुआ। आप बडूद पारली, देवर साल्या लौंणू, नीरा आदि ग्रामों में धर्म प्रचार करते हुए बारामती पधारे। बारामती में कुछ दिन विराज कर आचार्यश्री ने वहां के अनेक गृहस्थों को धर्म की ओर प्रवृत्त किया। तदनन्तर बारामती से श्री मुन्दा, दौंड आदि अनेक ऐसे ग्रामों में धर्म-प्रचार किया, जहाँ जैन साधुओं का आगमन कठिनाई से ही होता है।

इस प्रकार अनेक ग्रामों में अहिंसा-धर्म का प्रचार करते हुए आचार्य श्री करमावास पधारे, जहाँ धार्मिक-शिक्षण की भी व्यवस्था थी। गुजरात के धारसी भाई यहाँ जैन संघ को ऊँचा उठाने हेतु प्रयत्नशील थे। उन्होंने अपने साथियों के साथ वारसी पधारने के लिए विनति की, जिसे स्वीकार कर आचार्य श्री वारसी पधारे, और संघ के धार्मिक भवन में ठहरे । यहाँ कोचेटा जी जैसे मारवाड़ी श्रावक भी रहते थे, जिन्हें समाज के लिये दर्द था। छात्रालय, सामूहिक-प्रार्थना और पुस्तकालय आदि चालू कर ज्ञान-वृद्धि करने की युवकों में भावना थी। मन्दिर मार्गी समाज के साथ भी अच्छा प्रेम था। कुछ समय तक यहाँ आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक अभ्युत्थान के लिए मार्गदर्शन करने के अनन्तर आचार्यश्री पानगांव, वैराग, सैलगांव, बड़ाला, कारम्मा आदि क्षेत्रों में धर्म का प्रचार करते हुए शोलापुर पधारे। **इन्हीं दिनों सं. १९९७ मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी को भोपालगढ़ में उगमकंवरजी (धर्मपत्नी सुखलालजी बाफणा) की दीक्षा बड़े धनकंवर जी म.सा. के सान्निध्य में सानंद सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त आपका नाम महासती उगमकंवर ही रखा गया ।**

शोलापुर में आचार्य श्री लिंगायत सम्प्रदाय के एक मकान में विराजे। प्राचीन काल में यहां शताब्दियों तक जैन धर्मानुयायी राजाओं का राज्य रहा। दिगम्बर जैन अच्छी संख्या में हैं, स्थानकवासी जैन समाज के घर बहुत कम हैं। दिगम्बर जैनों की कई शिक्षण संस्थाएं हैं, पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होता है। महाराष्ट्री भाषा में भी जैन पत्र प्रकाशित होता है। इधर की लिंगायत सम्प्रदाय पर जैन संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। सिद्धप्पा, वसमप्पा आदि नाम प्राकृत भाषा की छाप छोड़ते थे। यहाँ से विहार कर आचार्य श्री टीकैकर, वाड़ी, हुंडगी, जंक्शन, जवलगी, ताडबल पधारे। ताडबल से विहार कर भीमानदी पर बने रेलवे पुल को पार करते हुए आचार्यश्री लच्चान पधारे। तदनन्तर हंडी, तडवल, अतरगी, नागाधाम आदि क्षेत्रों को अपनी पदरज से पुनीत करते हुए माघ (शुक्ला) पूर्णिमा के दिन बीजापुर पधारे।

बीजापुर इतिहास प्रसिद्ध नगर है। छत्रपति शिवाजी का यह मुख्य कर्म-स्थल रहा। यहाँ धर्म का प्रचार कर आचार्यश्री जुमनाल, मूलवाड, हलद, गेहनूर, कोल्हार, वारगण्डी, सुनग, हनगवाड़ी आदि क्षेत्रों को फरसते हुए फाल्गुन शुक्ला दूज के दिन बागलकोट पधारे। स्थानीय लोगों में धर्म के प्रति गहन रुचि, शास्त्र-श्रवण की उत्कट अभिलाषा एवं सामायिक, स्वाध्याय, व्रत, नियम,प्रत्याख्यान की झड़ी से प्रमुदित हो आचार्य श्री ने यहां के संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर होली चातुर्मास भी यहीं सम्पन्न किया। यहां श्री कन्हैयालालजी सुराना, बेताला जी आदि मुख्य श्रावक थे। यहां आसपास के अनेक क्षेत्रों के लोग सैकड़ों की संख्या में दर्शनार्थ आये। सबने अपने अपने क्षेत्र की विनतियां प्रस्तुत की।

यहाँ रायबहादुर लालचन्द जी मूथा अपनी माताश्री और कतिपय श्रावकों के साथ गुलेजगढ़ में चातुर्मास हेतु विनति लेकर पुनः उपस्थित हुए। श्रेष्ठी श्री लालचन्द जी ने तख्तमल जी कटारिया के माध्यम से आचार्यश्री के विहार की परिधि में आये हुए सभी ग्रामों तथा उनके आस-पड़ौस के क्षेत्रों के स्थानकवासी परिवारों की जनगणना करवाई और सभी मुख्य-मुख्य श्रावकों को बागलकोट में आमंत्रित किया। सबने मिलकर कर्नाटक प्रान्त की स्थानकवासी जैन सभा की स्थापना की।

चैत्र कृष्णा एकम के दिन बागलकोट से सिरह होकर गुलेजगढ की ओर विहार किया। सतारा से गुलेजगढ तक श्री तख्तमलजी कटारिया विहार में मुनिमण्डल के साथ थे। बीजापुर से गुलेजगढ तक श्रेष्ठिवर श्री लालचन्द मुथा भी पद-विहार के समय आचार्य श्री की सेवा में रहे। गुलेजगढ़ में महावीर जयन्ती का महापर्व भी धर्माराधना

के साथ मनाया गया। यहाँ कर्णाटक प्रान्त के निवासी साधुमार्गी श्रावकों का सम्मेलन भी हुआ जिसमें कर्नाटक प्रान्त के जैन धर्मावलम्बियों के अभ्युत्थान एवं उत्कर्ष के लिए अनेक निर्णय लेकर कार्यक्रम भी निर्धारित किये गये।

• गुलेजगढ़ चातुर्मास (संवत् १९९७)

यहां से इरकल, कुष्ठगी गजेन्द्रगढ़, (ग्रीष्म में भी अठाई आदि तप-त्याग सम्पन्न) गुणाधर, गुडूर, कामन्दगी, सिरूर, बागलकोट होते हुए आप आषाढ़ शुक्ला नवमी वि.सं. १९९७ के बीसवें चातुर्मासार्थ गुलेजगढ़ पधारे। मारवाड़ियों, माहेश्वरियों तथा अन्यान्य समाजों के पारस्परिक सहयोग से चातुर्मास सानंद धर्माराधन पूर्वक सम्पन्न हुआ। जैन घरों की कमी कभी नहीं खली। व्याख्यान-स्थल सदैव भरा रहता था। राव साहब लालचन्द जी, प्रतापमलजी गुंदेचा आदि श्रावकों के ८-१० घरों में भी सेवा की व्यवस्था में कोई कमी नहीं रही। बागलकोट, बीजापुर, इरकल आदि समीपवर्ती क्षेत्रों का अच्छा सहयोग रहा। मद्रास संघ की ओ.. से विनति के लिए शिष्टमंडल के समाचार मिलने पर उन्हें संकेत करा दिया गया कि वे चातुर्मास की विनति के लक्ष्य से नहीं आएं। मद्रास के प्रमुख श्री मोहनमलजी चोरड़िया एवं मांगीचंदजी भंडारी की भावनाएँ साकार नहीं हो सकीं।

यहाँ पंडित दुःखमोचनजी झा के साथ उनके सुपुत्र शशिकान्त झा पहली बार आचार्यश्री की सेवा में आए और आचार्य श्री द्वारा कृत नन्दीसूत्र की टीका का पुनरालेखन कर पाण्डुलिपि तैयार की।

• महासती रूपकंवर अस्वस्थ

भोपालगढ़ में महासती रूपकंवर जी अस्वस्थ हैं, तथा उन्हें दर्शनों की अभिलाषा है, इन समाचारों के साथ भोपालगढ संघ की विनति को ध्यान में रखकर आप दक्षिण की ओर बढ़ने की अपेक्षा पश्चिम (मारवाड़) की ओर उन्मुख हुए।

विहार-क्रम से आप बीजापुर पधारे। बीस-पच्चीस घर होते हुए भी वहाँ का संघ प्रभावशाली माना जाता था। प्रेम एवं संगठन का अच्छा वातावरण था। इतिहास बताता है कि वहाँ का राजा 'विज्जन' जैन धर्मावलम्बी था। मन्त्री ने धोखा देकर राज्य पर अधिकार जमा लिया। मान्यता है कि तभी से लिंगायत सम्प्रदाय की स्थापना हुई। यहाँ के गोल गुम्बज आदि स्थल ऐतिहासिक एवं दर्शनीय हैं। सेठ चुन्नीलाल जी रूणवाल, श्री उत्तमचन्दजी रूणवाल आदि अच्छे श्रावक थे।

• कर्नाटक में प्लेग का आतङ्क

वि.सं. १९९७ के अन्तिम चरण में कर्नाटक प्रदेश के हीनाल, यादगिरि, सोरापुर और रायचूर तक के सैंकड़ों गांव और नगर प्लेग-महामारी की चपेट में आ जाने से आचार्यश्री को मासकल्प तक यहाँ रुकने का आग्रह किया गया। आचार्य श्री इसके पूर्व रायचूर की ओर विहार की अनुमति दे चुके थे। अतः वे अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। आपने प्लेग से आतंकित क्षेत्र में धर्म की शरण को ही श्रेष्ठ बताया और धर्म पर अडिग रहने की प्रेरणा दी। शान्त और गम्भीर स्वर में संघ मुख्यों को समझाया-"महामारी के प्रकोप से प्रपीड़ित लोगों को ढाढस बंधाना, इस विपत्ति को साहसपूर्वक समभाव से सहने की प्रेरणा देना और जिनवाणी के अमृत का अनुपान कराना परमावश्यक है। आप हमारी ओर से निश्चिन्त रहें। सन्तों का प्रादुर्भाव त्रिविध ताप से त्रस्त लोगों को सुख पहुंचाने के लिए ही होता है। जीवन-मरण से जूझते उनके लिए अभी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है धर्म की शरण, सत्संग और सन्तों की

शरण।" आचार्य श्री की प्रेरणा से महामारी पीड़ित लोगों को आत्मिक शान्ति एवं सम्बल मिला।

अब आचार्यश्री ठाणा ४ से हिनाल, मनगोली, यरनाल, वागेवाड़ी, हिपरिंगी, कोहनूर, तालीकोट, सोलडगी, सुरापुर एवं यादगिरि (धोका परिवार प्रमुख कार्यकर्त्ता था) होते हुए सोरापुर पहुँचे, जहाँ कपड़े वाले तम्बू (छोलदारी) में विराजे। महामारी के कारण वहाँ के लोग किले से निकलकर कपड़े के तम्बुओं में रह रहे थे। अतः सन्तों को भी उनमें ही ठहराया गया। व्याख्यान आदि हुए। आचार्य श्री के वहां विराजने से स्थानीय लोगों को ऐसी राहत मिली जैसे महामारी उनके यहाँ आई ही न हो। आचार्य श्री द्वारा धर्म शिक्षा की प्रेरणा से वहां के प्रमुख श्रावक श्री मोहनलालजी बोहरा आदि ने शिक्षण शाला खोलने का निर्णय लिया।

यहाँ से आचार्यश्री रायचूर पधारे। "जहां जहां पधारे आचार्य श्री, वहाँ वहाँ से भागी महामारी" का ग्रामीणों ने साक्षात् अनुभव किया। आबाल ब्रह्मव्रती महापुरुष के अक्षुण्ण ब्रह्मचर्य व शील का यह साक्षात् प्रभाव था। रायचूर में मांस, मछली एवं मद्य का कई बंधुओं ने परित्याग किया। समाज के प्रमुख श्री दलीचंद सेठ व श्री कल्याणमलजी ने मिलकर ऐसी व्यवस्था कायम की कि प्रातःकाल ९ बजे से पूर्व कोई दुकान नहीं खोलेगा, सब लोग धर्मस्थान में आकर प्रार्थना करेंगे और जब तक आचार्य श्री यहां विराजेंगे, व्याख्यानश्रवण का लाभ कोई व्यापारी नही छोडेगा। इस व्यवस्था में सबको सरलता से संत-सेवा का अवसर मिलता रहा। गुजरात के प्राण शंकर भाई ने भी सेवा का अच्छा लाभ लिया। वहीं कर्नाटकीय-बन्धुओं श्री शंकर और श्री बाजीराव ने भी भक्ति-भावना का परिचय देते हुए सदा के लिये मांस मछली एवं मद्य सेवन का परित्याग कर दिया। यहां जैन समाज के ३०-३५ घर होने पर भी संगठन और एक वाक्यता से नगर में मारवाड़ी समाज का अच्छा प्रभाव था। यहाँ सेठ कालूरामजी के पुत्र श्री हस्तिमलजी, बस्तीमलजी और श्री चांदमलजी मुथा प्रमुख समाजसेवी थे। जीव दया के क्षेत्र में यहां मुथा चांदमलजी ने बड़ा काम किया था। श्री पारसमलजी मुथा की जीवदया के कार्य में अभिरुचि थी। श्री कुशलचंदजी भंडारी, श्री मुकन चंदजी, श्री धनराजजी आदि भी अच्छे कार्यकर्ता थे।

करुणामूर्ति एवं तेजस्वी आचार्य श्री के यहाँ पधारने के पूर्व रायचूर के अनेक लोग नगर से बाहर आत्मरक्षा हेतु निकल चुके थे, किन्तु जैन लोग शहर के भीतर ही इस विचार के साथ डटे रहे कि गुरुदेव पधारने वाले हैं, अब हमारा गांव छोड़कर जाना कायरता होगी। हमें तो अब गुरुप्रवर की मंगल छाया में धर्म-ध्यान की सम्यक् आराधना करनी चाहिए। करीब २२ दिनों के प्रवास के बाद आपका वहां से विहार हुआ।

ग्रामानुग्राम होते गुलबर्गा पधारे। यहाँ ओसवाल समाज के चार-पाँच घर ही थे। आचार्य श्री का यहाँ अधिक ठहरने का भाव नहीं होते हुए भी सेठ हीरालालजी भलगट की धर्मपत्नी ने अठाई के भाव से उपवास का प्रत्याख्यान कर लिया। सेठजी के अत्याग्रह और बहिन की प्रबल भावना को देख आचार्य श्री वहाँ ९ दिन विराजे। बहिन की तपस्या के उपलक्ष्य में सेठजी ने पीपाड़ में धर्मशिक्षण के लिए पांच हजार रुपये निकाले। इसके अतिरिक्त विभिन्न संस्थाओं को दान दिया। जहाँ अठाई आदि की तपस्या और धार्मिक शिक्षण हेतु दान को बढ़ावा मिला। अल्पसमय में धर्म-ध्यान का ठाट सबके लिए आश्चर्यकारक था। यहाँ से हीरापुर, अकलकोट होते हुए **शोलापुर पहुंचने के पूर्व एक रात जंगल में बबूल वृक्ष के नीचे गुजारी।**

प्रातःकाल बलसंग होते हुए चैत्र कृष्ण तृतीया के दिन शोलापुर पधारे। यहाँ दिगम्बर धर्मशाला में विराजकर धर्म जागरण करने के अनन्तर बालागांव, साब, लेसर, माहोल, येवली होते हुए अनगर के जैन मंदिर में विराजे। फिर माडा, कुरड़वाड़ी, टोपले, सालसे, करमाला, वारसी आदि ग्राम नगरों को पावन किया। वारसी में स्थानकवासी,

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और दिगम्बर समाज ने मिलकर आचार्यप्रवर के सान्निध्य में महावीर जयन्ती का उत्सव मनाया। धारसी भाई का प्रयास इस आयोजन में सराहनीय रहा। वारसी से आप श्री केड़गांव, केतु होते हुए वाड़ी पधारे। रात्रि-विश्राम वाड़ी रेलवे स्टेशन की चौकी पर किया। वैशाख कृष्णा एकम के दिन भिगवान में मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्द जी महाराज आदि ठाणा २ सातारा आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। यहाँ से रावणगांव, धौण्ड, वरबण्ड केडगांव स्टेशन पधारे। यहाँ पर अहमदनगर और पूना के श्री संघों ने संवत् १९९८ के चातुर्मास हेतु आग्रह भरी विनति प्रस्तुत की। आचार्य श्री ने श्रावक संघ की विशालता और सेवाभक्ति को देखते हुए अहमदनगर का चातुर्मास स्वीकृत किया और पूना की ओर विहार की दिशा ली। मध्यवर्ती येवत, उरली एवं लूणी आदि ग्राम नगरों में धर्म-प्रचार करते हुये पूना के भवानी पेठ स्थानक में विराजे। यहाँ पर ऋषि सम्प्रदाय की महासती श्री सूरजकंवर जी महाराज आदि सतियाँ प्रतिदिन आचार्य श्री एवं सन्तवृन्द के दर्शनों का लाभ लेती थी। पूना में कुछ दिन धर्म जागरण करने के अनन्तर घोडनदी होते हुये संवत् १९९८ के अपने २१ वें चातुर्मास हेतु ठाणा ६ से अहमदनगर पधारे।

• अहमदनगर चातुर्मास (संवत् १९९८)

संवत् १९९८ का यह चातुर्मास महाराष्ट्र की धरा पर साहित्यिक साधना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा। नन्दी सूत्र का सम्पादन , संशोधन एवं हिन्दी भाषानुवाद का कार्य युगमनीषी संत ने अहमदनगर के इस द्वितीय चातुर्मास में पूर्ण किया। सतारा के मोतीलाल जी मुथा ने इसी चातुर्मास में इसका प्रकाशन भी कर दिया। कर्नाटक के विभिन्न ग्राम-नगरों, पूना, सतारा आदि क्षेत्रों के श्रमणोपासकों के आवागमन का तांता सा लगा रहा। आचार्य श्री का अहमदनगर में यह द्वितीय चातुर्मास तप-त्याग एवं धर्माराधन के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मासकाल में बम्बई महासंघ की विनति को ध्यान में रखकर शेष काल फरसने हेतु स्वीकृति प्रदान की।

चातुर्मास समापन पर विहार कर आचार्य श्री मार्गशीर्ष कृष्णा एकम को पाथर्डी पधारे। पाथर्डी में युवाचार्य श्री आनंद ऋषि जी म.सा. के साथ आपका मधुर मिलन हुआ। यहाँ की सिद्धान्तशाला तथा तिलोकऋषि विद्यालय से आप अवगत हुए। यहाँ कुछ दिन विराजने के पश्चात् ब्राह्मणी, बाम्बोरी, धातेरा, ढोकेश्वरी, ढाकली, डेहरा, निमल, हींगणगांव, मालूणी, धौलपुर, आनावोर होते हुए बोरी पधारे। यहाँ से विहार कर पीपलवण्डी, नारायण गांव , मंचर, पैठ, खेड़, चाकण, सिन्दुवरा, बडगांव, कारला, लुणावला, खण्डाला होते हुए पहाड़ की विकट घाटी को पार कर खपोली, खानपुरा , चौक, वारवई होते हुए माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन पनवेल विराजे। मुलुण्ड, भाण्डुप, घाटकोपर, माटुंगा, चिंचपोकली, कांदावाड़ी आदि बम्बई के उपनगरों में पधारने से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। घाटकोपर मुनिचर्या की दृष्टि से अधिक अनुकूल होने से आचार्यश्री मासकल्प वहाँ धर्मस्थानक में धर्माराधन हेतु विराजे, चैत्री ओली के समय वहाँ अच्छा धर्माराधन हुआ। नेत्रपीड़ा के कारण आचार्यप्रवर कुछ दिन व्याख्यान नहीं दे सके। चैत्री पूर्णिमा को ओली तप की पूर्णाहुति के अनन्तर अगले दिन आप विहार कर इगतपुरी में श्रावक वर्ग को साधना पथ पर अग्रसर कर नासिक पधारे। यहाँ के लोगों में धार्मिक श्रद्धा प्रमोदकारी थी। जैन छात्रावास भी चल रहा था। ऐतिहासिक तीर्थस्थल नासिक के बाद आप प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण लासलगांव पधारे, जहाँ **आपके प्रवचन-प्रभाव से वहाँ के परिवारों में व्याप्त आपसी मनमुटाव तुरन्त समाप्त हो गए।** सेठ खुशालचन्द्रजी ब्रहेचा, श्री भिक्खूजी सांड आदि प्रमुख श्रावकों ने मिलकर प्रेम से समस्या का समाधान कर लिया। प्रातःकाल सबने मिलकर मुनिमण्डल से चातुर्मास की प्रार्थना की। लासलगांव में आपके २२वें चातुर्मास (विक्रम संवत् १९९९)

की स्वीकृति से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे उन्हें चिन्तामणि रत्न मिल गया हो।

• लासलगांव चातुर्मास (संवत् १९९९)

चातुर्मास मान्य कर आप आस-पास के क्षेत्र में विचरण करते हुए आषाढ के शुक्लपक्ष में चांदवड़ पधारे, जहाँ दिन-भर वर्षा रहने के कारण सन्तों के उपवास हो गया। उपवास के दूसरे दिन लासलगांव नगर में प्रवेश हुआ। चातुर्मास गाँव के बाहर स्थित विद्यालय भवन में हुआ। गुरुदेव के प्रवचनों का सब लोग लाभ ले सकें, एतदर्थ सबने यह निर्णय किया कि जब तक व्याख्यान चालू रहे, व्यापार नहीं करेंगे, दुकान नहीं खोलेंगे। आड़त-बाजार में सैंकड़ों गाड़ियाँ आती, पर जैनों के गए बिना बोली नहीं लगती। प्रेम और संगठन का इतर समाज पर भी प्रभाव था। युवकों ने कार्य का बंटवारा कर आगन्तुकों की अच्छी सेवा-भक्ति की। संवत्सरी के दिन चांदवड़ से २०० छात्र पहुँचे, किन्तु प्रवचन में पूर्ण शान्ति रही। तपस्वियों के साथ दिखावे एवं बैंड-बाजे का प्रयोग नहीं हुआ। तपस्या के उपलक्ष्य में आडम्बर एवं अपव्यय की अपेक्षा सामाजिक संस्थाओं को सहयोग प्रदान कर अर्थ को सार्थक किया गया। चातुर्मास की ऐतिहासिक उपलब्धि के रूप में साप्ताहिक मौन चालू हुआ जो वर्षों तक चालू रहा। यहाँ शिक्षा क्षेत्र में महावीर जैन विद्यालय और जैन छात्रावास सम्बंधी श्लाघनीय विकास-कार्य हुए।

इस चातुर्मास में यह अनुभव किया गया कि जिनेन्द्र प्रभु की आगमवाणी का लाभ सन्त-सतियों के माध्यम से कुछ ही लोग ले पाते हैं, अत: आगमवाणी, जैनदर्शन, इतिहास और जैन संस्कृति का ज्ञान सम्पूर्ण देश एवं विदेश में प्रसारित करने के लिये कोई मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाए तो इससे लोगों की स्वाध्याय-प्रवृत्ति को भी बल मिलेगा एवं उन्हें नियमित रूप से पाठ्य सामग्री सुलभ हो सकेगी। जिनेन्द्र वाणी को नियमित एवं दूरस्थ स्थानों पर पहुंचाने का इसे उत्तम साधन मानकर भक्त श्रावकों ने 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका के प्रकाशन का निर्णय लिया। श्रमण संस्कृति की प्रतीक जिनवाणी पत्रिका में सन्त-प्रवचन एवं आगम वाणी के साथ जैन संस्कृति, इतिहास एवं धर्म-दर्शन से सम्बद्ध जानकारी की विविध रचनाओं का समावेश करने का लक्ष्य रहा। इसका प्रथम अंक वि.सं. १९९९ पौष शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार जनवरी १९४३ में श्रीजैनरत्न विद्यालय भोपालगढ़ से प्रकाशित हुआ। प्रकाशन कार्य में जोधपुर के युवा कार्यकर्ता श्री विजयमल जी कुम्भट का सराहनीय सहकार रहा। वर्तमान में यह पत्रिका सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल जयपुर से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है एवं इसके स्वाध्याय, सामायिक, श्रावक धर्म , जैन संस्कृति और राजस्थान, अहिंसा, कर्म-सिद्धान्त, अपरिग्रह, तप, साधना, सम्यग्दर्शन, जैनागम-साहित्य आदि विषयों पर अनेक विशेषाङ्क , प्रशंसित हुए हैं।

• महासती रूपकंवर जी का स्वर्गारोहण

चातुर्मास समाप्त होते-होते भोपालगढ़ से महासती माताजी श्री रूपकंवर जी महाराज की चिन्तनीय हालत के समाचारों के साथ आचार्यश्री की सेवा में यह संदेश भी आया कि माताजी महाराज आपके दर्शनों की उत्कट भावना रखती हैं। इस प्रकार के समाचार प्राप्त होने के कारण चातुर्मास पूर्ण होने पर आचार्य श्री ने अपने मुनिमंडल के साथ मारवाड़ की ओर विहार कर दिया। किन्तु आचार्य श्री धुलिया भी नहीं पहुँच पाये थे कि सहसा समाचार मिले कि मार्गशीर्ष शुक्ला ग्यारस को माताजी महाराज का समाधिमरण हो गया है। इन समाचारों को सुनते ही सन्तवृन्द ने चार-चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। विहार की गति मन्द हो गई। धुलिया में कुछ दिन विराजे। यहाँ से शिरपुर की ओर विहार हुआ। ■

उज्जैन होते हुए राजपूताना में

(संवत् २०००-२००८)

आपके प्रवचनों से प्रबुद्ध हो शिरपुर में सुखलाल भाई आदि सात सद् गृहस्थों ने शीलव्रत धारण कर जिनधर्म की प्रभावना की। यहाँ मारवाड़ी भाई चुन्नीलालजी सेवा में प्रमुख थे, अच्छे श्रद्धावान एवं क्रियारुचि वाले श्रावक थे। अत: महती धर्मप्रभावना हुई। शिरपुर से धामनोद, मांडू होते हुए नालछा पधारे।

क्यों सोया भर नींद में रे, अब तो सुरत सम्भाल,
नहीं वसीला होगा तेरे, दिल में सोच विचार॥

ऐसी टेर सुनाकर आचार्य श्री ने नालछा में कई युवकों की आध्यात्मिक प्यास जगा दी और व्यसनों से मुक्त कराया। युवक मांगीलाल पर इस टेर का विशेष असर हुआ। उसने व्यसनों का त्याग कर सन्तों से सामायिक आदि पाठ सीखना प्रारम्भ किया। भाई मूलचन्दजी छाजेड़ और उनके मित्र का धर्म-साधना में आगे बढ़ाने में बड़ा सहयोग रहा। उन्होंने मुनिमण्डल के विहार में मांगीलाल को साथ कर दिया। नालछा से सभी सन्त धार पधारे। पण्डित मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्र जी के ज्वर के कारण आचार्यश्री कई दिन धार में विराजे। यहाँ से बदनावर होते हुए कानवन पधारे। कानवन में सेठ चाँदमल जी अच्छे सेवाभावी श्रावक थे। उन्होंने स्वास्थ्य आदि कारणों से सन्तों के डेढ माह ठहरने तक भावनापूर्वक सेवा का अच्छा लाभ लिया। इस बीच जयपुर संघ के केसरीमलजी लाल हाथी वाले आदि श्रावक चातुर्मास की विनति लेकर आए, किन्तु पण्डित मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं होने से विनति स्वीकार नहीं की गई। स्वास्थ्य में सुधार होने पर रतलाम पधारे। यहां उज्जैन का श्रावक संघ चातुर्मास हेतु आग्रह भरी विनति लेकर उपस्थित हुआ, जिसे मान्य कर लिया गया। रतलाम से खाचरोद पधारने पर विरक्त अभ्यासार्थी मांगीलाल को देखकर सेठ हीरालालजी नांदेचा ने जिज्ञासा की कि इनको वैराग्य सुदृढ होते हुए भी दीक्षा क्यों नहीं दी जा रही है। उनकी ऐसी भावना थी कि दीक्षा का लाभ उन्हें मिले तो बहुत अच्छा हो। मुनिमण्डल के समक्ष यह बात रखी तो उन्होंने कहा कि अभी वैरागी के पिता की अनुमति प्राप्त नहीं है। सेठजी ने विरक्तभाई का भाव देखकर कहा"इनकी आज्ञा मैं प्राप्त कर लूँ, तब फिर यहीं दीक्षा होनी चाहिए।" उन्होंने नालछा से विरक्त -भाई के पिता श्री हजारीमलजी कांकरेचा एवं माता धनकंवरजी से जी से आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया। तदनन्तर वहाँ **वैरागी मांगीलाल की बड़ी उमंग से आषाढ-शुक्ला द्वितीया संवत् २००० को आचार्य श्री के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा हुई जो दीक्षोपरान्त 'माणक मुनि' कहलाए।**

दीक्षा महोत्सव में मालवभूमि के अनेक नगरों, खाचरोद के आस-पास के ग्रामों तथा अजमेर, जयपुर, उदयपुर एवं मारवाड़ में जोधपुर सहित अनेक ग्राम-नगरों के श्रद्धालु भक्तगण बडी संख्या में उपस्थित हुए।

दीक्षा के दूसरे दिन आचार्य श्री ने यहाँ से पन्द्रह मील का उग्र विहार कर एक घर में रात्रि विश्राम किया। उज्जैन के कतिपय श्रावकों का निवेदन था कि आचार्य श्री उस मकान में नहीं ठहरें। श्रावकों की धारणा थी कि वहां सर्पों का वास है। लेकिन निर्भय एवं दृढमनोबली साधक आचार्य श्री वहीं विराजे। षट्काय प्रतिपालक को किसी से भय भी कैसे हो।

• जवाहराचार्य का देहावसान

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. का १० जुलाई १९४३ को बीकानेर में संथारा पूर्वक सांयकाल पांच बजे स्वर्गवास होने पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई तथा चरित्त नायक ने उनके गुणों एवं अपने संस्मरणों का स्मरण करते हुए फरमाया –

"आप धीर वीर और प्रभावक तथा प्राचीनता का न्याय-युक्ति से शोधन करने वाले आचार्य थे। आपकी उपदेश शैली स्थानकवासी समाज में आदर्श समझी जाती रही। आपके प्रवचन क्रान्तिकारी एवं सुधारण के विचार को लिये रहते थे। सम्मेलन के सामान्य परिचय के सिवाय मेरा पूज्य श्री से दो ही बार सम्मिलन हुआ। एक तो सम्मेलन के पूर्व लीरी गांव में और दूसरा जेठाना में । उस समय के वे प्रेमल प्रसंग आज भी स्मृति चिह्न बनाए हुए हैं। जेठाना से विहार के समय तो आपने प्रीति की अतिशयता कर दिखाई। प्रीत्यर्थ या मेरे आचार्य पद के सम्मानार्थ मुझे मांगलिक सुनाने को फरमाया, जो प्रेमावेश के बिना छोटे मुँह से बड़ी बात सुनना होता। मैंने भी आपके अनुरोध से मौन खोलकर काठियावाड़ से पुनरावर्तन की कुशल कामना करते हुए मांगलिक सुनाया। उस समय आपकी भावुकता व श्रद्धा का दृश्य दर्शनीय था। "

• उज्जैन चातुर्मास (संवत् २०००)

वि.सं. २००० का यशस्वी चातुर्मास भव्य नगरी उज्जैन के नमक मण्डी-स्थानक में ठाणा ६ से हुआ। यहाँ वर्षा की झड़ी लगी रहती, तथापि प्रवचन आदि के क्रम में कोई रुकावट नहीं आई और आहार-पानी की गवेषणा में अन्तराय नहीं आयी। **यहाँ एक जर्मन महिला श्रीमती सुभद्रा (क्राउजे सरलोटे) भारतीय वेश में ऊन का आसन बिछाकर प्रतिदिन प्रवचन-लाभ लेकर कृतकृत्य हुई। उसकी जैनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा थी। रात्रि में भोजन भी नहीं करती थी।** उसने जैन धर्म के कुछ विषयों पर लेख भी लिखे। पर्युषण के व्याख्यान शान्ति भवन में हुए। यहाँ पर ही मूर्तिपूजक समाज में धर्मसागरजी महाराज का चातुर्मास था। एक दिन जंगल (शौच) से लौटते समय आचार्यप्रवर से उनका मिलन हुआ। धर्मसागरजी ने कहा - 'मन्दिर एवं मूर्ति की मान्यता के संबंध में चर्चा कर ली जाए।' प्रज्ञावान आचार्य श्री ने कहा –"मुनिजी चर्चाएं तो पूर्व महापुरुषों के द्वारा बीसियों बार हुई हैं, परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। फिर भी आप चर्चा करना चाहें और आपके संघ की ओर से ऐसी मांग हो तो मैं चर्चा के लिए तैयार हूँ, आपकी व्यक्तिगत भावना से नहीं। कारण कि उसके पश्चात् भी संघ अपनी असहमति व्यक्त कर सकता है।" समाज में जब यह बात फैली तो हलचल मच गई। इसे पारस्परिक कलह उत्पन्न करने का कारण माना गया। मूर्तिपूजक समाज ने निर्णय लिया कि उज्जैन में दोनों समाजों में प्रेम का वातावरण है। हम चर्चा-परचा करके अशान्ति उत्पन्न करना नहीं चाहते। इस प्रकार आपसी समझ से विवाद की बात समाप्त हो गई। यदि आचार्यप्रवर गुरु हस्ती उस समय विवेक से संघ-निर्णय की बात न कहते तो उस चर्चा से अनावश्यक रूप से वहाँ का वातावरण विषाक्त हो जाता। एक नया शुभारम्भ भी इस चातुर्मास में हुआ। दो स्वाध्यायियों (श्री लालचन्दजी जैन आदि) को सन्त-सतियों के चातुर्मास से विरहित क्षेत्रों में पर्युषण पर्वाराधन हेतु भेजा गया। विक्रम की द्विसहस्राब्दी का यह चातुर्मास अतीव प्रभावशाली एवं आध्यात्मिक जागरण का निमित्त रहा। श्री छोटमल जी मूथा, जमनालालजी, लक्ष्मीचन्दजी, नाथूलालजी और दीपचन्दजी आदि ने बड़े प्रेम से सेवा की। चातुर्मास के अन्त में इन्दौर निवासी कन्हैयालालजी भण्डारी की प्रार्थना एवं आग्रह से इन्दौर फरसने की स्वीकृति प्रदान की।

उज्जैन से विहार कर आचार्य श्री इन्दौर पधारे, जहाँ कुछ दिन विराजने से चातुर्मास जैसा धर्माराधन हुआ। यहाँ से हातोद, बड़नगर, खाचरोद, जावरा, प्रतापगढ, छोटी सादड़ी , बड़ी सादड़ी होते हुए मंगलवाड़ से आगे जाने ही वाले थे कि कानोड़ संघ के प्रबल आग्रह से आप ठाणा ३ से कानोड़ पधारे। तत्र विराजित श्री इन्द्रमल जी म.सा. आदि संतों से स्नेह मिलन यादगार बना। साथ में रहे एवं साथ ही व्याख्यान आदि हुए। उदयपुर संघ विनति के लिए उपस्थित हुआ। यहाँ से खेरोदा पधारे। खेरोदा में जयपुर संघ का शिष्ट मण्डल चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। जिसमें श्री गुलाबचन्द जी बोथरा, श्री मोतीचन्दजी हीरावत, भौंरीलाल जी मूसल, स्वरूप चन्दजी चोरडिया आदि अनेक प्रमुख श्रावक थे। श्रावकों ने अपने दृढ़ संकल्प के साथ भावपूर्ण विनति की एवं यह निश्चय कर बैठ गए कि उत्तर मिलने पर ही आहार करना, अन्यथा नहीं। भावना के अतिरेक को देखकर विनति स्वीकार कर ली गई। दूसरे दिन उदयपुर संघ के श्री केशवलालजी धाकड़िया, मदनसिंह जी कावड़िया, विजयसिंह जी कावड़िया आदि श्रावकों का शिष्ट मण्डल उपस्थित हुआ। उन्होंने मुनिमण्डल का चातुर्मास अपने पक्ष में प्रदान करने की जयपुर संघ से मांग की। जयपुर संघ प्राप्त सेवा का लाभ छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। उदयपुर वालों को मिला हुआ अवसर हाथ से निकल जाने का बड़ा खेद हुआ। उदयपुर पधारने पर आप कोठारीजी की हवेली में विराजे। श्रावकों ने मुनियों को कमरे में घेर लिया एवं निवेदन किया कि हमारा क्षेत्र खाली नहीं रहना चाहिए।

• जयपुर चातुर्मास (संवत् २००१)

उदयपुर की आग्रहपूर्ण विनति को ध्यान में रखते हुए उदयपुर चातुर्मास के लिए स्वामी श्री सुजानमल जी. म., पंडित लक्ष्मीचन्द म. एवं नवदीक्षित माणक मुनि जी म. की स्वीकृति दी एवं आप स्वयं उदयपुर के आस-पास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते हुए भीलवाड़ा, विजयनगर, बडांगा, बांदनवाड़ा होते हुए भिनाय पधारे जहाँ पूज्य पन्नालालजी म. से मधुर मिलन हुआ । फिर नसीराबाद, अजमेर, किशनगढ़, दूदू आदि क्षेत्रों को अमृतवाणी से पावन करते हुए जब संवत् २००१ के चातुर्मास के लिए बारह गणगौर के स्थानक में पहुंचे तो जयपुर निवासियों के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सामायिक, स्वाध्याय, तपस्या तथा आगम अध्ययन के ठाट लगे। देश के विभिन्न भागों से श्रद्धालुओं का आगमन हुआ। सैंकड़ों बालक-बालिकाओं ने सामायिक और प्रतिक्रमण के पाठ कण्ठस्थ किये। सैंकडों युवकों ने भक्तामर स्तोत्र के साथ दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन सूत्र के अनेक अध्ययन कण्ठस्थ किये।

जयपुर चातुर्मास के पश्चात् आप ब्यावर पधारे और स्थिरवास में तत्र विराजित पूज्य श्री खूबचन्द जी म. से संघ और समाजहित की चर्चा हुई। उन्हीं दिनों मुनि श्री रामकुमारजी (कोटा सम्प्रदाय), मुनि श्री हजारीमल जी म., मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' , पं. मुनि श्री सिरेमलजी , पूज्य जवाहरलाल जी म.सा. की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध मुनि श्री बौथलालजी तथा शोभालालजी भी ब्यावर विराज रहे थे। उन सभी से यहाँ प्रेम मिलन हुआ। तदनन्तर पीपाड़ होकर जोधपुर पधारे। यहाँ से महामंदिर होते हुए भोपालगढ पधारे। यहाँ **ज्येष्ठ शुक्ला १४ को क्रियोद्धार भूमि में आचार्यप्रवर श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. के पुण्य-दिवस (स्वर्गारोहण) की शताब्दी का विशाल आयोजन किया गया। परम प्रतापी आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की उत्कृष्ट ज्ञान-क्रिया की स्मृति को चिरस्थायी बनाने हेतु सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल की स्थापना की गई, जो सम्प्रति जयपुर में कार्यरत है।** मण्डल से प्रतिमाह जिनवाणी पत्रिका प्रकाशित हो रही है तथा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यह संस्था स्वाध्याय एवं ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है।

• जोधपुर चातुर्मास (संवत् २००२)

तीन सम्प्रदायों की संयुक्त विनति पर विक्रम संवत् २००२ के चातुर्मास का सौभाग्य जोधपुर नगर को सम्प्राप्त हुआ। आचार्य श्री दक्षिण का प्रवास कर कई वर्षों पश्चात् जोधपुर पधारे थे, भक्तों में उमंग एवं उल्लास का सागर उमड़ रहा था। व्याख्यान की व्यवस्था आहोर ठाकुर की हवेली के विशाल प्रांगण में थी। धर्मध्यान एवं तप-त्याग का तो कहना ही क्या, बारनी के भण्डारी वजीर चन्दजी ने बारनी वालों की ओर से दया-पौषध की एक नवरंगी अलग से करवाई। दूसरी नवरंगी शहर के मूल निवासी श्रावकों ने करायी। भण्डारी जी ने अपनी वृद्धावस्था में भी धूम्रपान का जीवन भर के लिए त्याग किया। श्री किशोरमलजी लोढा की धर्मपत्नी ने २१ दिवस की तपस्या करके फिर मासखमण तप किया। मोहनराजजी संकलेचा की धर्मपत्नी एवं सोहनराज जी भंसाली दईकड़ा वालों ने मासखमण किया। मिलापचन्दजी फोफलिया की धर्मपत्नी ने ४५ की तपस्या की। पन्द्रह, ग्यारह, आठ आदि की अनेक तपस्याएँ हुई।

इन सब अध्यात्मपरक गतिविधियों के साथ-साथ आचार्य श्री का चिन्तन जैन-धर्म को जन-धर्म बनाने, श्रमण-जीवन में विशुद्ध शास्त्रीय स्वरूप की पुनः संस्थापना करने, सम्पूर्ण श्रमण-श्रमणी वर्ग को समान आचार, विचार, व्यवहार और समाज समाचारी के एक सुदृढ़ सूत्र में सुसम्बद्ध करने, पर्वाराधन आदि के सभी विभेदों को समाप्त कर एकसूत्रता लाने, श्रमण-श्रमणी और श्रावक-श्राविका वर्ग को एक सूत्र में आबद्ध कर जैन संघ को सुगठित सुदृढ , अभेद्य एवं अनुशासनबद्ध बनाने तथा उसे पुरातन प्रतिष्ठित पद पर अधिष्ठित करने के व्यावहारिक हल खोजने में लगा। इसे आचार्य श्री ने समय-समय पर अपने प्रवचनों में भी रखा।

इस चातुर्मास काल में ही स्त्री-समाज में धार्मिक शिक्षा-विषयक प्रेरक प्रवचनों से प्रेरित होकर वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला की स्थापना की गई। इस पाठशाला की स्थापना एवं संचालन में सज्जनजी बाई सा एवं इन्द्रजी बाई सा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

संघहित और समाजोत्थान के लिए इस प्रकार अनेक कार्य हुए। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल के माध्यम से लेखन, प्रकाशन, प्रचार-प्रसार के कार्य उल्लेखनीय रहे। श्री रतनलालजी संघवी, श्री रत्नकुमारजी 'रत्नेश' आदि के सहयोग से कर्मठ कार्यकर्ता श्री विजयमलजी कुम्भट की देखरेख में साहित्य-निर्माण का कार्य अग्रसर हुआ। इसी चातुर्मास में आचार्यश्री के प्रवचनों से प्रभावित हो पुण्यशालिनी बहनों सायरकंवर जी और मैनाकंवर जी में सांसारिक प्रपञ्चों से विरक्ति का भाव जागृत हुआ। जोधपुर में इस वर्ष आचार्य श्री जयमलजी म. की सम्प्रदाय के स्थविर मुनि श्री चौथमलजी महाराज का भी चातुर्मास था। दोनों सम्प्रदायों के मुनि मण्डल में प्रशंसनीय सौहार्द और वात्सल्यभाव रहा।

चातुर्मास के प्रारम्भ में श्रावण कृष्णा २ सम्वत् २००२ को पीपाड़ में विराजित रत्नवंशीया श्रद्धेया महासती श्री पानकंवरजी म.सा. का समाधिमरण हो गया। महासतीजी आत्मार्थिनी एवं भद्रिक परिणामिनी होने के साथ आगम एवं थोकड़ों की मर्मज्ञ थी। ४५ वर्ष की उम्र में दीक्षित होने के पश्चात् आपने रेत में अंगुलि से रेखाएं खींच कर अक्षर लिखना सीखा एवं जिज्ञासा और लगन की उत्कटता से आगम तथा थोकड़ों का असाधारण ज्ञान अर्जित कर लिया। स्वामीजी श्री चन्दनमलजी महाराज उनके ज्ञानवर्धन में सहायक रहे। सुनते हैं पण्डितरत्न श्री समर्थमल जी

म.सा. ने भी आपसे कई धारणाएं की। पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने भी वैराग्यावस्था में पीपाड़, अजमेर तथा पुष्कर में आपसे स्तोकों का ज्ञान किया था। महासती जी ने सहजभाव से अनेक सन्त-सतियों को अपने ज्ञान से लाभान्वित किया। अन्त में नेत्र ज्योति चली जाने से आप पीपाड़ में स्थिरवास विराज रहे थे। मस्से आदि की तकलीफ होते हुये भी आपने शान्ति एवं समाधि भावों को स्थिर रखा। आपका ४० वर्षीय संयमी-जीवन कई सन्त-सतियों के लिये प्रेरणास्रोत था।

यहाँ से मंडोर, तिंवरी, मथानिया बावड़ी फरसते हुए भोपालगढ़ पधारे। श्री जैन रत्न विद्यालय के वार्षिक अधिवेशन पर शिक्षा सम्बंधी विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित किये गए। वहाँ से रतकूडिया, खांगटा, कोसाणा, रणसीगांव फरसते हुए पीपाड़ पधारे। स्वामी श्री सुजानमलजी म.सा. के घुटने की पीड़ा और मुनि श्री अमरचन्द जी म.सा. की जंघा में अमर बकरे के सींग के आघात के कारण आपको कुछ समय पीपाड़ में विराजना पड़ा। रीयां, पालासनी (होली चातुर्मास) एवं पाली प्रवास हुआ। पाली में आचार्यश्री गणेशीलाल जी महाराज और चरितनायक का श्री शान्ति जैन पाठशाला के भवन में स्नेह सम्मेलन हुआ। संघाभ्युदय, समाजोत्थान और पारस्परिक सहयोग आदि अनेक विषयों पर आचार्यद्वय ने खुले दिल से विचारों का आदान-प्रदान किया। दूर-दूर के दर्शनार्थियों का मेला सा लग गया।

आचार्यद्वय के मधुर मिलन के सुखद प्रसंग पर भोपालगढ के सुज्ञ श्रावक श्री जोगीदास जी बाफना, श्री सूरजराजजी बोथरा आदि श्रावकों ने भोपालगढ़ चातुर्मास हेतु भावभरी विनति एवं प्रबल आग्रह करते हुए प्रार्थना की कि वयोवृद्धा महासती श्री बड़े धनकँवरजी अस्वस्थता के कारण भोपालगढ विराजमान हैं उनकी भी यही भावना है। आचार्य श्री ने स्वामीजी महाराज से परामर्श कर विनति स्वीकार की।

• भोपालगढ चातुर्मास (संवत् २००३)

शेषकाल में पाली से सोजत पदार्पण के पश्चात् आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. से पुनर्मिलन हुआ। आप श्री यहां से बिलाडा होकर पीपाड़ पधारे। कुड़ी ग्राम को फरसते हुए आचार्य श्री संवत् २००३ के चातुर्मासार्थ भोपालगढ पधारे। प्रवेश के समय विद्यालय के छात्रों एवं श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा उच्चारित जय जयकार के समवेत स्वरों का दृश्य अनुपम था। सारा गांव आपके दर्शनों को उमड़ पड़ा।

भोपालगढ़ के शान्त ग्रामीण वातावरण में श्रुत-शास्त्रों का गहन अध्ययन एवं अवगाहन करते हुए आपने गणिपिटक के द्वितीय अंग सूत्रकृत का मूल, व्याख्या, टीका और अनुवाद सहित सम्पादन प्रारम्भ किया। इस चातुर्मास में ग्रामवासियों व आगन्तुकों ने ज्ञानाभ्यास व तप-त्याग का भरपूर लाभ लिया।

आचार्य श्री का विहार कुड़ची, धनारी, थली के अनेक ग्रामों में धर्मोद्योत करते हुए बीकानेर की ओर गोगोलाव तक हुआ । इधर बारणी निवासी रिडमलचन्द जी भण्डारी की दो पुत्रियों की इच्छा बहुत दिनों से दीक्षा लेने की थी। उनके माता-पिता तथा दादा आदि परिजन दीक्षा बारणी में कराना चाहते थे। अतः उनके दादा वजीरचन्द जी भण्डारी और किशोरमलजी मेहता दीक्षा का मुहूर्त निकलवाकर आचार्य श्री की सेवा में नागौर पहुँचे। विशेष आग्रह किया कि बारनी पधार कर दीक्षा प्रदान करावें। भण्डारी जी की विनति पर बीकानेर का प्रयाण स्थगित रखकर आचार्य श्री गोगोलाव से पुनः नागौर मुण्डवा खजवाणा , रूण, गारासनी असावरी होते हुए बारणी पधारे।

पारस्परिक प्रेम और सहयोग से ओतप्रोत अधिकतर किसानों की जनसंख्या वाले छोटे से गांव **बारणी में माघशुक्ला तेरस विक्रम संवत् २००३ के शुभ मुहूर्त पर आचार्यश्री ने माता श्रीमती जतनदेवी और पिता रिड़मल चन्द जी भंडारी की दोनों पुत्रियों सायरकंवरजी और बालब्रह्मचारिणी मैनाकंवरजी को भागवती दीक्षा प्रदान की। भव्य दीक्षा समारोह के अनन्तर दोनों महासतियों को बदनकंवरजी म.सा. की शिष्या घोषित किया गया।** इस अवसर पर महासती हरकंवरजी, महासती सज्जन कंवरजी, महासती बदनकँवरजी आदि ठाणा १२ का सती-मण्डल विराजमान था। यहाँ गाँव के लोगों ने कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान लिए। कई किसानों ने बकरे, भेडें आदि कसाइयों को विक्रय करने का त्याग किया। एक सप्ताह पश्चात् भोपालगढ में स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. द्वारा दोनों नवदीक्षिता महासतियों की बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई। आचार्य श्री बारनी से हरसोलाव गोटन होते खांगटा पधारे जहाँ स्वामीजी म.सा. का भी पदार्पण हुआ। आचार्य श्री लाम्बा, भंवाल आदि ग्रामों को फरसते हुए मेड़ता पधारे। होली चातुर्मास यहीं हुआ। फिर पाचरोलिया, जड़ाऊ आदि गाँवों को पावन करते हुए पादू पहुँचे। यहाँ जयपुर का संघ चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ।

यहाँ से मेवड़ा, थांवला, पुष्कर होते हुए अजमेर पधारे। अजमेर में ममैयों के नोहरे में विराजे। अजमेर में स्थविरापद विभूषित महासती श्री छोगाजी, बडे राधाजी आदि सतीवृन्द विराजमान था। अजमेर में चातुर्मास हुए कई वर्ष हो गए थे। यहाँ चातुर्मास हेतु संघ का प्रबल आग्रह था। महासतीजी छोगांजी महाराज आदि के यहाँ विराजित होने से अजमेर संघ की विनति को और अधिक बल मिल गया एवं आचार्य श्री ने आगामी चातुर्मास हेतु अजमेर की विनति स्वीकार कर ली। पाली और जयपुर संघ की आशा सफलीभूत न हो सकी। आचार्य श्री शेषकाल में जयपुर संघ की विनति को मान देते हुए किशनगढ़ होते जयपुर पधारे। वहाँ धर्मोद्योत कर पुनः मार्गस्थ ग्राम नगरों को पावन करते हुए आचार्य श्री अजमेर पधारे। **इसी कालावधि में ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को जोधपुर में आपकी आज्ञा से श्री माणकमलजी सिंघवी की धर्मपत्नी श्री उमराव कँवरजी की भागवती दीक्षा उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुई।**

• अजमेर चातुर्मास (संवत् २००४)

संवत् २००४ के अजमेर चातुर्मास में भारत देश अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त हुआ। १५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्र भारत का तिरंगा लहराया। इस चातुर्मास में धर्माराधन में भी विशेष उत्साह दिखाई दिया। आचार्य श्री के निर्देशन में पंडित श्री दुःखमोचनजी झा ने पूर्व आचार्यों का ऐतिहासिक परिचय लिखने का कार्य सम्पन्न किया। अत्र विराजित स्थविरा महासती श्री छोगाजी महाराज, बड़े राधाजी महाराज आदि सतीवृन्द को आचार्यश्री का सान्निध्य मिलने से आध्यात्मिक तोष हुआ। संघ में धर्मध्यान का अच्छा ठाट रहा। श्री उमरावमल जी ढड्ढा, गणेशमलजी बोहरा, रेखराजजी दुधेड़िया, जीतमलजी सुराणा आदि श्रावकों की सेवाएँ उल्लेखनीय रहीं।

अजमेर चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य श्री का विहार मेरवाड़ा के ग्राम-नगरों की ओर हुआ। आप भिनाय, टांटोटी, गुलाबपुरा, विजयनगर, मसूदा होते हुए ब्यावर पधारे। होली चातुर्मास यहाँ स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. आदि सन्तों के साथ किया। ब्यावर संघ की चातुर्मास हेतु कई वर्षों से आग्रहभरी विनति चल रही थी। रत्नवंश की परम्परा के **स्थविर मुनि श्री चन्दनमलजी म.सा.** ने वि. संवत् १९६३ में यहाँ चातुर्मास किया था। श्रीचन्दजी अब्बाणी आदि श्रावकों के आग्रह एवं अनुनय के कारण पाली की पुरजोर विनति होते हुए भी संवत् २००५ के चातुर्मास की स्वीकृति का सौभाग्य ब्यावर नगर को प्राप्त हुआ।

शेषकाल में आप ब्यावर से सेंदडा , बर, बिरांठिया, झूठा, रायपुर, सोजत होते हुए पाली पधारे। आचार्य श्री द्वारा आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करते समय वयोवृद्ध स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. की तबीयत अचानक खराब हो गई। अतः उनको पाली रखकर आचार्य श्री का ठाणा ३ से ब्यावर चातुर्मासार्थ विहार हुआ।

• ब्यावर चातुर्मास (संवत् २००५)

ब्यावर नगर में प्रवचन, शास्त्र वाचन, शंका-समाधान एवं प्रश्नोत्तर के अतिरिक्त चरितनायक का अधिकांश समय शास्त्रों की टीकाओं, चूर्णियों, भाष्यों, निर्युक्तियों आदि के अध्ययन-अवगाहन में व्यतीत हुआ। यहाँ सेठ श्रीचन्दजी अब्बाणी, श्री विजयराजजी चौधरी, श्री सोहनमलजी डोसी आदि श्रावकों ने बड़ी लगन से चतुर्विध संघ-सेवा का लाभ उठाया। संघ हितैषी श्रावकों के सहयोग से यह वर्षावास कुन्दन भवन में आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। इस चातुर्मास में महासती श्री बदनकंवजी म.सा. आदि साध्वी-मण्डल के विराजने से महिलाओं में भी धर्माराधन का ठाट रहा।

यहाँ से विहार कर अजमेर में कल्याणमलजी उमरावमलजी ढड्डा के भवन में विराजे तब आचार्य श्री ने वयोवृद्धा महासती छोगा जी और रत्नवंशीय गणमान्य श्रावकों के विनम्र, किन्तु आग्रहपूर्ण निवेदन पर मर्यादोचित प्रायश्चित्त प्रदान कर उन मुनिद्वय वयोवृद्ध मुनि श्री लाभचन्द जी और मुनि श्री चौथमलजी को संघ में सम्मिलित किया, जिन्हें न्याय डूंगरी नामक ग्राम में बिना आज्ञा के स्वेच्छापूर्वक चातुर्मास की हठ के कारण संवत् १९९९ में आज्ञाबाहर कर दिया था। आचार्य श्री आचार-पालन के प्रति कठोर थे। इसीलिए उन्होंने आठ सन्तों में से भी दो के कम होने की परवाह किए बिना उन्हें स्वच्छन्द-विचरण करने पर आज्ञा बाहर कर दिया था। अब दोनों सन्त अपनी भूल का एहसास करते हुए पूर्ण प्रायश्चित के साथ नतमस्तक होकर गुरुदेव की आज्ञा में आ गए। दोनों सन्तों ने आचार्य श्री द्वारा प्रदत्त प्रायश्चित्त जिस सरलता, विनम्रता एवं सहज समर्पण के साथ स्वीकार किया वह अपने आप में अद्वितीय था। संघ में जहां एक ओर दोनों मुनियों के पुनः आने की प्रसन्नता थी वहीं दूसरी ओर दीर्घ दीक्षापर्याय वाले सन्तों को दीक्षा-छेद व पुनर्दीक्षा जैसे कठोर प्रायश्चित्त दिए जाने की सहानुभूति में नयनों से अश्रु छलक आना भी स्वाभाविक था। प्रायश्चित्त स्वीकार करते मुनियों में समर्पण के उत्कट भाव के साथ ही यशस्विनी निज परम्परा में लौट आने की गौरवपूर्ण प्रसन्नता स्पष्टतः झलक रही थी। इस प्रकार आचार्य श्री हस्ती का दृढनिश्चय , कठोर अनुशासन , आचार-निष्ठा तथा गणना की अपेक्षा गुणों की प्राथमिकता का संदेश स्वतः ही प्रतिध्वनित हो रहा था।

यहाँ पर ही एक घटना और घटी। पंजाब से दो सन्त श्री शान्ति मुनि एवं श्री रतनमुनि साधुवेश का परित्याग कर आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर पुनः दीक्षा की याचना करने लगे। उनकी आन्तरिक प्रबल आकांक्षा और प्रार्थना से द्रवीभूत होकर आचार्य श्री ने उन दोनों को पुनः श्रमण धर्म में दीक्षित किया। ये दोनों सन्त बिना किसी की प्रेरणा के स्वतः ही आत्म-भाव से यहाँ आए थे। इनमें रतन मुनि जी गृहस्थ पर्याय में आचार्य श्री द्वारा प्रतिबोध प्राप्त थे, किन्तु उनकी माता एवं धर्मपत्नी के द्वारा अनुमति नहीं दिए जाने पर पंजाब जाकर श्री प्रेमचन्द जी म.सा. के पास दीक्षित हो गये थे। स्वभाव-मेल न होने के कारण असमाधि का अनुभव कर अलग हो गए थे। अब इन सन्तों को मिलाकर आचार्य श्री ठाणा १० से अजमेर में विराज रहे थे।

अजमेर से विहार कर पूज्य श्री ठाणा ५ से बड्डू, बोरावड़ होते हुए कुचामन पधारे। यहाँ मासकल्प विराजे। रीयां वाले सेठ श्री फतेहमलजी तेजमलजी मुणोत का यहाँ पुराना घर था। सेठजी साहित्य प्रेमी थे। उनकी प्रेरणा से ही रत्नवंश के महान् चर्चावादी जिनशासन प्रभावक **स्वामीजी श्री कनीराम जी म.** ने यहाँ **सिद्धान्तसार** नामक

ग्रन्थ की रचना की थी, जो दया-दान की चर्चा विषयक प्रथम ग्रन्थ रहा है। मुणोत परिवार ने अपने यहाँ संगृहीत शास्त्रादि की पुरानी प्रतियाँ ज्ञान भण्डार को समर्पित की। कालान्तर में आपने दोनों मुनियों की आन्तरिक इच्छा न होते हुए भी संघ व समाज में सद्‌भाव बना रहे, इस लक्ष्य से, उन्हें समझा बुझा कर वापस पूर्व गुरुओं के पास पंजाब जाने की आज्ञा दी। दोनों मुनियों ने अनिच्छा होते हुए भी आचार्यदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर पंजाब की ओर प्रयाण किया, पर श्री रत्न मुनि पंजाब से पुनः उग्र विहार कर आचार्य श्री की सेवा में वापस आ गये। यहां से पुनः बोरावड़, मेड़ता, भोपालगढ़ होते हुए चैत्र शुक्ला पंचमी को जोधपुर पधारे। यहाँ आप सरदारपुरा स्थित कांकरिया बिल्डिंग में विराजे। पालीनिवासी श्री हस्तीमलजी सुराणा अपने साथियों के साथ पाली चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुए। गतवर्ष से ही पाली संघ की विनति चल रही थी। श्री हस्तीमलजी सुराणा के साथ ही श्री सिरहमलजी कांठेड, श्री नथमलजी पगारिया एवं श्री मूलचन्दजी सिरोया आदि आपके वर्षावास हेतु सतत प्रयत्नशील थे। उनकी श्रद्धासिक्त विनति को ध्यान में लेकर आचार्य श्री ने संवत् २००६ का चातुर्मास पाली स्वीकार किया। यहाँ से पीपाड़ आदि क्षेत्रों को पावन किया।

• पाली चातुर्मास (संवत् २००६)

संवत् २००६ का चातुर्मास पाली-मारवाड़ में हुआ। स्वाध्याय, दया, दानादि विविध गतिविधियों में आबालवृद्ध श्रावक-श्राविका वर्ग ने भाग लिया। मद्रास, धूलिया, सैलाना आदि दूरस्थ नगरों के अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने आत्मीयजनों के साथ आकर चार मास पाली को ही अपना निवास बना लिया।

प्रवचनों की झड़ी लगी। एक दिन जैन साधु वन्दनीय क्यों, विषय पर अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयग्राही प्रवचन फरमाया –

"संसार के समस्त त्यागी वर्ग में आज जैन त्यागी (साधु) वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो अपने कुछ आदर्श को बनाये हुए है। धन-संग्रह, दार-संग्रह और भूमि-संग्रह आदि से जहां संसार का त्यागीवर्ग दूषित है, यह वहां अपवाद साबित हुआ है। यह वर्ग वाहन का उपयोग नहीं करता, हर समय पैदल यात्रा करता है। इस वर्ग के साधु भोजन-पान-वस्त्रादिक भी स्वयं भिक्षा से प्राप्त करते हैं। सादा और निर्व्यसनी जीवन इनका आदर्श है। ऐसे साधु संसार के सम्मान पात्र हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु आज उनकी वन्दनीयता की आधार शिला दोलायमान हो रही है। आज उनको निद्रा-विकथा-प्रमाद आदि विकारों ने घेर रखा है। ज्ञान-ध्यान एवं त्याग का अभ्यास शनैः शनैः घट रहा है। ऐसी दशा में आज संशोधक और आलोचक वृत्ति के लोगों में उनका सम्मान बना रहना कठिन है। मेरी समझ में **साधु-साध्वियों को अपनी वन्दनीयता की आधार शिला स्थिर करनी चाहिए, जिसके लिये निन्दा-त्याग, विकथा-प्रपंच-त्याग, शोभा एवं स्त्री-संसर्ग, का त्याग करते हुए उपशमभाव एवं असंग्रहवृत्ति को अपनाना चाहिए।**

पूर्व समय के संत महात्मा व्यक्तिगत या सांप्रदायिक किसी भी प्रकार की निंदा नहीं करते थे। शास्त्र में निंदा का निषेध करते हुए कहा है 'पिट्ठी-मंसं न खाइज्जा' अर्थात् परोक्ष में किसी की बुराई करना पृष्ठ मांस भक्षण करना है। अतएव किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। आत्मार्थी संत दूसरों के दोष सुनने में भी रस नहीं लेवे।

विकथा और गृहस्थों के परिचय बाबत शास्त्र में कहा है कि - 'मिहो कहाहिं न रमे' परस्पर विकथाओं में रमण मत करो। तथा - 'गिहिसंथवं न कुज्जा' गृहस्थों से अधिक परिचय मत करो।

उपर्युक्त दोनों नियमों के पालनार्थ पहले के संत सावधान रहते थे। छोटे बड़े गाँवों में आगन्तुक स्त्री-पुरुषों के साथ उनको संभाषण भी करना पड़ता था। सामाजिक जानकारी भी करनी पड़ती, किन्तु छोटे बड़े सभी साधु-साध्वी उसमें संलग्न नहीं रहते थे। विकथा प्रपंच से बिल्कुल निर्लेप रहने वाले भी महात्मा मिलते थे, जो सदा ज्ञान-ध्यान या सेवा में ही मस्त रहते थे। प्रमुख संत-सती भी प्राथमिक एवं आवश्यक परिचय के उपरान्त वार्तालाप से बचे रहते थे। इसीसे उनको आत्म-बल की साधना का अवसर भी प्राप्त होता था। सांसारिकों का अति परिचय नहीं होने से उन्हें जनता के अवज्ञापात्र होने का प्रसंग नहीं आता था। खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज हम संतों मे विकथा का प्रमाद इतना बढ़ गया है कि गृहस्थों से हम घुल मिल गये हैं। इसी से गृहस्थ हमारी बहुत सी अंतरंग बातें भी जानने लगे हैं और साधु वर्ग पर भी उनका असर होने लगा है। मुनियों को विकथा और गृहिसंसर्ग से सदा बचते रहना चाहिए।

'विभूसा इत्थि संसग्गं' शास्त्र में कहा है कि शरीर आदि की शोभा और स्त्रियों का संसर्ग ब्रह्मचारी के लिये हलाहल विष के समान है। इसलिये पूर्वाचार्यों ने मर्यादा की है कि सुबह व्याख्यान और तीसरे प्रहर शास्त्र-वाचन या चौपाई के अलावा संतों के यहां स्त्रियों को तथा सतियों के यहां पुरुषों को नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि अधिक संसर्ग से मोह बढ़ता है, जो समय पर दोनों के अहित का कारण हो सकता है। किसी बाई को धार्मिक विषय में कुछ पूछना हो, संत-सतियों के समाचार कहना हो, विदेश का कोई दर्शनार्थी हो या संघ-सम्बन्धी परामर्श करना एवं खास आलोयणा करना हो तो समझदार भाई की साक्षी से संतों के स्थान पर स्त्रियाँ आवश्यकतानुसार बात कर सकती हैं। ऐसा ही सतियों के स्थान पर भाइयों के लिए भी समझें। परन्तु यह संभाषण संघाडे के प्रमुख तथा दीक्षा या ज्ञान से स्थविर संत-सतियों के अलावा सबको नहीं करना चाहिये। बड़ों को कभी अवकाश नहीं हो और किसी को बात सुननी पड़े या किसी को कुछ कहना समझाना पड़े तो बड़ों के सामने या अनुमति से करना चाहिए। सारांश यह है कि धर्मोपदेश और ज्ञान-ध्यान के सिवा अन्य समय में स्त्रियों को खाली बिठाकर बातें करना मोह वृद्धि का कारण है, अतः साधुओं को मर्यादा विरुद्ध स्त्री-संसर्ग और साध्वियों को पुरुष-संसर्ग से सदा बचते रहना चाहिये। खास कर आज के युग में तो इसका अधिक सावधानी से पालन करना जरूरी है।

प्राचीन समय के संत महात्मा उपशम भाव के आदर्श थे। वे क्षमा और निरहंकार भाव का यथोचित रूप से पालन करते थे। वे शास्त्र के आदेशानुसार 'वंदे न से कुप्पे वंदिओ से समुक्कसे' वंदना नहीं करने वाले पर क्रोध नहीं करते और वंदना पाकर अहंकार नहीं करते थे। साधुओं के दशविध धर्म में क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मार्दव, निरभिमान आदि वृत्तियां प्रधान धर्म हैं। समूह में रहने वाले साधु-साध्वियों में क्रोध आदि कषायों की मन्दता नहीं होने से वे स्वपर को अशान्ति के कारण मान बैठते हैं। वर्तमान में दृष्टिगोचर होने वाले कलह, कदाग्रह और गुरुजनों की आज्ञा का तिरस्कार , ये क्रोध-मान के ही परिणाम हैं। क्योंकि अनुपशान्त कषायवाले को गण कैद और साधु-साध्वी शत्रु से दिखाई देते हैं। गण से पृथक् रहने वालें साधु-साध्वी अधिकांश इसी के प्रमाण हैं। त्यागी वर्ग की यह दशा देख कर गृहस्थों की श्रद्धा-भक्ति भी कम हो जाती है। लोग कहने लगते हैं कि संसार की झंझटों को छोड़ कर जब साधु बन गये, तब उनमें झगड़ा कैसा ? झगड़े तो मानापमान के होते हैं। जिन्होंने मान अपमान को छोड़ दिया उनकी अशान्ति कैसी? यह तो वैसी बात है कि 'एक अंचंभो हो रह्यो, जल में लागी आग।' आजकल अधिकांश देखा जाता है कि विरक्त दशा में शान्त, दान्त और विनय शील दिखने वाले व्यक्ति भी संयम का बाना धारण करके ४-६ महीने में ही रंग बदल देते हैं जबकि पूजनीय संत-मंडली में आकर तो उन्हें अधिक सद्गुणों का विकास करना चाहिये। मुनिवरों को चाहिये कि वे अपने उपशम भाव को अबाधित बनाये रखें, और सबसे मिल

जुल कर रहें। सावधानता रखते हुये कदाचित् कारणवश क्रोध आ भी जाय तो मुनियों के मन में पानी में खिंची हुई लकीर से ज्यादा उनका टिकाव नहीं होना चाहिये। 'अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति' इस अनुभूत उक्ति के अनुसार क्षमाशील मुनिओं के संसर्ग में क्रोधियों की भी क्रोधाग्नि शान्त हो जाती है। राष्ट्र के महापुरुष गांधी इन्हीं सद्गुणों के कारण जगत्पूज्य हुए हैं। निन्दा और स्तुति में से वे निन्दा की बात को पहले सुनना चाहते थे। सुभाष बोस जैसे क्रान्तिकारी विचारकों के साथ विचार भेद होने पर भी वे मैत्री पूर्ण व्यवहार करते देखे गये। फिर विश्व पूज्य भगवान महावीर के अनुयायी संतों में तो ऐसा आदर्श सहज प्राप्त होना चाहिये, तभी शासन का उत्थान और श्रमणों की वन्दनीयता जगत्-मान्य हो सकती है।

जैन साधुओं के लिये शास्त्र में निर्ग्रंथ या भिक्षु पद का अधिकता से प्रयोग किया गया है। निर्ग्रन्थ या भिक्षु का मतलब होता है कालान्तर में उपयोग लेने के लिये किसी भी वस्तु का संग्रह कर गांठ नहीं बांधना, किन्तु आवश्यकता उपस्थित होने पर जरूरत के अनुसार वस्त्र, पात्र, अन्न आदि भिक्षा से प्राप्त कर लेना। उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये जैन साधु मर्यादा के उपरान्त किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं रखते। इसमें मुनियों की सच्ची आत्मनिर्भरता प्रगट होती है। यह मुनियों की कपोतवृत्ति है। जैसे कठिन से कठिन दुर्भिक्ष में भी कबूतर दाना संग्रह नहीं करता अपने श्रम, सामर्थ्य और निश्चय के सहारे जीवन बिताता है, वैसे ही साधु भी वस्त्रादि की दुर्लभता के विचार से अपनी आत्म-निर्भरता नहीं खोते। संग्रह वृत्ति को रोकने के लिये एक यह भी नियम रखा गया है कि साधु अपने वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि को स्वयं ही उठाकर चले। किसी भारवाही से नहीं उठवावे और न किसी गृहस्थ के यहां कपाट आदि में बंद कर रखवावे। आवश्यकता से अधिक या संत-सतियों को देने के उपरान्त बची हुई सामग्री को गृहस्थ (श्रावक) के पास अपनापन हटाकर वोसरा देना चाहिये।

इन नियमों को जीवन में अपना कर रहने वाले साधु-साध्वी समूह विशेष के नहीं, जगत् के पूजनीय हो सकते हैं। भाषाज्ञान और व्याख्यान कला से विकल होने पर भी यदि आदर्श चारित्र बल और शुद्ध मनोबल की शक्ति है तो हर समय दुनियां उनके पीछे दौड़ी आयेगी। सत्ताबल से संघबल और संघबल से आत्म-बल अधिक शक्तिशाली है। जमाना चाहे किधर भी चले आपको (साधु-साध्वी वर्ग को) तो जगत् के प्रवाह का मुकाबला करना है। अतः धैर्य और श्रद्धा के साथ संयम में खड़े रहिये और भौतिकवाद एवं बुद्धिवाद के विनाशकारी भंवर से स्वपर को बचाते रहिये । यदि ऐसा हुआ तो संसार सदा मुनिजनों का स्वागत करेगा और वे भी देश के लिये अनुपयोगी सिद्ध नहीं होंगे।"

प्रवचनों के अनन्तर चार माह तक आपका अधिकांश समय शास्त्र-सम्पादन में ही व्यतीत हुआ। पाली का चातुर्मास सम्पन्न कर गोडवाड़ क्षेत्र के अनेक ग्रामों में लोगों को प्रतिबोध देते हुए आचार्य श्री तखतगढ, सादड़ी, गुढा-बालोतरा, आहोर, जालोर, शिवगंज पधारे। ग्रामानुग्राम धर्मजागरणा करते हुए फाल्गुन शुक्ला १२ को जोधपुर पधारे।

गाँधी मैदान में स्वामीजी श्री सुजानमल जी महाराज प्रभृति सन्तों के साथ होली चातुर्मास किया। बाद में सिंहपोल विराजकर आप पुनः सरदारपुरा पधारे। यहां पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के स्थविर मुनि श्री इन्द्रमलजी म., मुनि श्री मोतीलालजी म. , मुनि श्री लालचन्दजी आदि सन्तों के साथ प्रेमपूर्वक सम्मिलन हुआ। परस्पर में समाचारी को लेकर वार्तालाप हुआ।

चैत्र मास में ही घोड़ों के चौक में स्थिरवास विराजित महासती जी श्री तीजाजी का स्वर्गवास हो गया।

महावीर जयन्ती के अवसर पर पीपाड़ का शिष्ट मंडल अगले चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। भावपूर्ण विनति स्वीकार कर ली गई। यहाँ से विहार कर विभिन्न ग्राम-नगरों को पदरज से पावन करते हुए आचार्य श्री सोजत पधारे, जहाँ पं. रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. के साथ आपका मधुर मिलन हुआ। यहीं पर मुनि श्री सहसमल जी म.सा. के साथ भी आपका प्रेम मिलन हुआ। संघ हित, समाचारी आदि अनेक विषयों पर दोनों महापुरुषों के साथ सार्थक विचार-विमर्श हुआ। सोजत से विहार कर आप, अक्षय तृतीया के अवसर पर सोजत रोड पधारे, जहाँ जोधपुर की अनेक तपस्विनी बहनों ने आकर वर्षीतप का पारणक किया।

इस बीच आचार्य श्री की आज्ञा से **मसूदा निवासी श्री धनराजजी रांका की सुपुत्री एवं श्री मांगीलालजी सोनी ब्यावर की धर्मपत्नी श्री सन्तोषकंवरजी की दीक्षा विक्रम संवत् २००७ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को अजमेर में सम्पन्न हुई।**

सोजत रोड़ से विहार कर आचार्य श्री जैतारण, निमाज, मेडता, गोटन होते हुए भोपालगढ एवं फिर पीपाड़ पधारे।

• पीपाड़ चातुर्मास संवत् (२००७)

विक्रम संवत् २००७ के पीपाड़ चातुर्मास में आचार्य श्री द्वारा सम्पादित प्रश्न व्याकरण सूत्र एवं उनके प्रवचनों की पुस्तक 'गजेन्द्र मुक्तावली' प्रकाशित हुई। द्वितीय पुस्तक का सम्पादन शशिकान्त जी झा द्वारा किया गया। चरितनायक की जन्म-स्थली के आबाल वृद्ध नर-नारी अत्यन्त उल्लसित होकर धर्माराधन का पूरा लाभ ले रहे थे। पीपाड़ नगर का वर्षावास सानन्द सम्पन्न कर आचार्य श्री मार्गस्थ ग्राम-नगरों को पावन करते हुए अजमेर पधारे एवं यहां विराजित स्थविरा वयोवृद्ध सतीवृन्द तथा संघ की विनति स्वीकार कर शेषकाल तक यहां ही विराजे। शेषकाल के अनन्तर आप सन्त-मण्डल के साथ अनेक ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए विजयनगर पधारे। यहाँ मेड़तानगर के शिष्टमण्डल ने उपस्थित होकर विक्रम संवत् २००८ का चातुर्मास अपने क्षेत्र में करने की विनति की । मेड़ता संघ की आग्रहभरी विनति को स्वीकार किया।

• मेड़ता चातुर्मास (संवत् २००८)

अनेक ग्राम नगरों को चरणरज से पावन करते हुए आचार्य श्री चातुर्मासार्थ मेड़ता पधारे। मेड़ता श्री संघ ने सामायिक, स्वाध्याय पौषध, उपवास, दया, दान आदि आराधना में अनुकरणीय उत्साह दिखाया। चातुर्मास में श्री जौहरी मलजी ओस्तवाल, श्री प्रेमराज जी मुथा, श्री हेमराजजी डोसी, श्री भूरमल जी बोकड़िया आदि सुश्रावकों की भक्ति सराहनीय थी। पर्युषण के आठों दिन बाजार बन्द रहा।

यहाँ पर अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कांफ्रेन्स के मंत्री श्री धीरजभाई तुरखिया अपने शिष्टमंडल के साथ श्रमण-संघ के निर्माण की योजना पर विचार करने उपस्थित हुए। तब आचार्य श्री ने प्रस्तावित योजना को सबके लिए स्वीकार करने योग्य बनाने हेतु सुझाव देते हुए कहा कि **यदि राजनैतिक पार्टियों के गठन की भांति श्रमण संघ का गठन भी प्रजातांत्रिक ढंग से किया गया तो धर्म के स्थान पर यह संघ अधिकार हथियाने का अखाड़ा बन जाएगा। उन्होंने शास्त्र प्रतिपादित श्रमणाचार को दृष्टिगत रखते हुए श्रमणसंघ का संविधान बनाने और श्रमण-श्रमणी वर्ग की समाचारी निर्माण करने पर बल दिया तथा ऐसा होने पर अपने सहयोग की सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।**

चातुर्मासकाल में आचार्य श्री श्रीमालों के उपासरे में थे। एक दिन दया-पौषध में बैठे श्रावकों को रात्रि के समय किसी के धमधमाहट के साथ भीतर आने का सन्देह हुआ और सब चौंक कर चिल्लाने लगे। घबरा से गए। आचार्यप्रवर पाट पर विराजे हुए बोले –"शान्ति से पंच परमेष्ठी का ध्यान करो। घबराने की कोई बात नहीं है।" चमत्कार सा हुआ। किसी का कुछ नहीं बिगड़ा। लोगों को शक था कि मणिभद्र यक्ष मायावी रूप बनाकर आया है। इस घटना में आत्मिक शक्ति के आगे दैविक-शक्ति पराभूत हुई। देव अपने स्थान पर लौट गया। धमधमाहट विलुप्त हो गई। गुरुदेव के आश्वस्त करने पर सब निर्भय हुए। मेड़ता चातुर्मास में बृहत्कल्पसूत्र एवं गजेन्द्र मुक्तावली भाग २ का प्रकाशन भी हुआ।

चातुर्मासोपरान्त मेड़ता से भोपालगढ़ पधारकर वयोवृद्धा एवं अस्वस्थ महासती श्री बडे धनकंवर जी म.सा. को मासकल्प दर्शनों का लाभ देकर आचार्य श्री जोधपुर पधारे। इसी समय **भोपालगढ़ में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को माताजी महाराज महासती श्री रूपकंवरजी की गुरुणी महासती श्री बड़े धनकंवर जी का स्वर्गारोहण हो गया।** आप अतीव भद्रिक, दृढ़ आचारशील एवं मधुर व्याख्यानी सती थीं। देशनोक के समीपस्थ सुरपुरा ग्राम में जसरूपमलजी गोलेछा के यहां जन्मी धनकँवरजी ने रत्नवंश में आगम एवं थोकड़ों की विशेषज्ञा महासती श्री मल्लां जी की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की और गुरुणी जी से शास्त्रों एवं थोकड़ों का अच्छा ज्ञान अर्जित किया। आपको अनेक थोकड़े कण्ठस्थ थे। आपका सान्निध्य पाकर रूपादेवी एवं बालक हस्ती ने वैराग्य की ओर कदम बढ़ाये। यह युग एवं मानव जाति उनकी ऋणी रहेगी कि उन्होंने प्रेरणा कर चरितनायक आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज जैसा परमयोगी इस समाज को दिया। वृद्धावस्था के कारण महासती १२-१३ वर्षों तक भोपालगढ़ में स्थिरवास विराजीं। आपकी अनेक शिष्याएँ हुईं - १. महासती श्री हरखकँवरजी २. महासती धापू जी ३. महासती किशन कँवर जी ४. महासती धुलाजी ५. महासती रतनकँवर जी ६. महासती रूपकँवर जी ७. महसती चैनकँवर जी ८. महासती उत्तमकँवर जी ९. महासती छोटा हरखु जी १०. महासती नैनाजी।

■

सादड़ी सम्मेलन, सोजत सम्मेलन, भीनासर सम्मेलन एवं संवत् २००९ से २०१४ तक के चातुर्मास

• सादड़ी सम्मेलन (संवत् २००९)

भगवान महावीर के धर्मशासन की प्रभावना एवं जन-साधारण को वीतराग धर्म के विश्व कल्याणकारी मार्ग की ओर अग्रसर करने हेतु संगठित प्रयास युग की आवश्यकता थी। पूर्व में अजमेर-सम्मेलन में इसकी भूमिका तय हो गई थी। चरितनायक एवं विभिन्न महापुरुष इस ओर गतिशील थे।

भगवान महावीर की इस विशुद्ध परम्परा का संचालन एक संघ, एक आचार्य एवं एक समाचारी के साथ हो, इस लक्ष्य से सादड़ी (मारवाड़) में वि.सं. २००९ वैशाख शुक्ला ३ तदनुसार दिनांक २७ अप्रेल १९५२ से वृहद् साधु सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय हुआ। परम पूज्य आचार्य श्री सदैव विशुद्ध आचार-परम्परा के हिमायती थे। संगठन में मूल लक्ष्य एक समाचारी का हो, आचारनिष्ठा संघ-संचालन का आधार हो, अपने ये विचार आपने स्पष्टतः कॉन्फ्रेन्स के पदाधिकारियों के समक्ष रख दिये थे। इसी भावना के साथ आपने संगठन में सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की थी।

सम्मेलन अपने उद्देश्य में सफल हो, इस पुनीत लक्ष्य से प्रमुख मुनिराजों का पूर्व सम्मेलन अजमेर में आयोजित किया गया था। चरितनायक आचार्य श्री को भी इस पूर्व सम्मेलन में निमन्त्रित किया गया। आप श्री इसमें सम्मिलित होने की भावना से फाल्गुन शुक्ला ११ को उग्र विहार कर अजमेर पधारे, जहाँ प्रमुख मुनियों ने खुले हृदय से शासन-हित चिन्तन कर सर्व सम्मति एवं मतभेद में मनभेद न हो, यह मार्गनिर्देशक सिद्धान्त तय कर सादड़ी की ओर प्रस्थान किया। सम्मेलन की शुभ घड़ी आई। उस दिन स्थानकवासी परम्परा की २२ सम्प्रदायों के ३४१ मुनि व ७६८ साध्वियों के प्रतिनिधियों के रूप में ५४ सन्तों ने भाग लिया। देश के विभिन्न कोनों से आये लगभग ३५ हजार श्रद्धालु श्रावक-श्राविका भी इस अवसर पर उपस्थित थे। चरितनायक ने ८ मुनियों एवं ३३ आर्यिकाओं के प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मेलन में भाग लिया। आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की परम्परा का प्रतिनिधित्व चरितनायक एवं पं. मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी म. ने किया।

सम्मेलन में स्थानकवासी समाज की २२ सम्प्रदायों के महापुरुषों ने विशुद्ध शासन हित एवं जिन शासन के सुदृढ संगठन की मंगल भावना से अपनी-अपनी परम्परा का विलीनीकरण कर 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के निर्माण में अपनी महनीय युगान्तरकारी भूमिका निभाई।

आगम महोदधि पूज्य श्री आत्माराम जी म.सा. को इस श्रमण संघ का आचार्य, पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा. को उपाचार्य, पं. रत्न श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. को प्रधानमंत्री एवं चरितनायक पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. एवं पं. रत्न श्री प्यारचन्दजी म.सा. को सहमंत्री बनाया गया।

संघ का एक आचार्य के नेतृत्व में संगठन हो गया। आचार की दृढता के पक्षधर महापुरुषों ने विलीनीकरण

करते वक्त अपनी भावना व्यक्त कर दी थी कि एक सुदृढ समाचारी व एक आचार का दृढता से पालन उनका लक्ष्य है, इसकी पूर्ति में वे अपना सदा सहयोग देते रहेंगे। आचार दृढता व समाचारी के पालन में कमी आने पर वे इस बारे में स्वतंत्र रहेंगे।

सम्मेलन में संघ-संगठन की दृढता व समाचारी की एकरूपता सम्बन्धी विचार-विमर्श में चरितनायक की महनीय भूमिका रही। विभिन्न समितियों में प्रमुख महापुरुषों के साथ आपका यशस्वी नाम था। आप जिन मुख्य समितियों में थे, वे इस प्रकार हैं–

१. प्रायश्चित्त समिति – १. पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म.सा.
२. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.

२. पाक्षिक तिथि निर्णायक समिति – १. पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा.
२. पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म.सा.
३. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.

३. साहित्य-शिक्षण समिति – १. पूज्य श्री घासीलालजी म.सा.
२. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.

४. सचित्ताचित्त निर्णायक समिति – १. पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म.सा.
२. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. आदि

सम्मेलन वैशाख शुक्ला त्रयोदशी ७ मई १९५२ को सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने के पश्चात् नागौर संघ के विशिष्ट आग्रह पर पूज्य चरितनायक ने विनति स्वीकार कर जोधपुर की ओर विहार कर दिया।

अब चरितनायक का चिन्तन संघ ऐक्य को ग्राम-ग्राम नगर-नगर में स्थापित करने हेतु मूर्तरूप लेने लगा। जहाँ भी आप गए वहाँ श्रावकों को "वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ" की स्थापना हेतु प्रेरणा करने लगे।

• जोधपुर में आगमन

विहार क्रम से आपके जोधपुर पदार्पण के अनन्तर यहाँ भी 'वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ' की स्थापना के साथ सारे श्रावक एकसूत्र में आबद्ध हो गए। श्री इन्द्रनाथजी मोदी इस संघ के अध्यक्ष बने।

जोधपुर में आगमप्रेमी दो सन्तों का महामिलन स्मरणीय रहा। पूज्यश्री अपनी सन्तमण्डली के साथ सरदारपुरा के कांकरिया भवन में विराज रहे थे। भैरूबाग में विराजित मूर्तिपूजक प्रसिद्ध सन्त श्री पुण्यविजयजी पूज्य श्री के पास पधारे। उनके निवेदन पर जब पूज्यश्री भैरूबाग पधारे तब पुण्यविजयजी ने व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा आदि शास्त्रों एवं चूर्णियों की प्राचीन पाण्डुलिपियों की माइक्रो प्रतियाँ दिखाईं। चरितनायक ने उनका सूक्ष्मदर्शी शीशे से अवलोकन एवं अध्ययन किया। उन प्रतियों के कतिपय महत्त्वपूर्ण स्थलों की ओर आपने मुनिजी का ध्यान आकृष्ट किया। पूज्य चरितनायक की आगमरुचि और पाण्डुलिपियों के प्रति तत्परता एवं अनुराग देखकर मुनि श्री पुण्यविजय जी अत्यन्त प्रभावित एवं पुलकित हुए।

चरितनायक के आगमिक, ऐतिहासिक एवं अन्यान्य विषयों की प्राचीन प्रतियों के प्रति इस प्रकार के प्रगाढ़ प्रेम का ही यह सुपरिणाम रहा कि उनकी प्रेरणा से जयपुर के लाल भवन में आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार,

जोधपुर की सिंह पोल में श्री रत्न जैन पुस्तकालय तथा जलगांव में जैन ग्रन्थागार जैसे विशाल ज्ञान भंडार जैन जगत् को उपलब्ध हो सके।

चरितनायक नागौर चातुर्मास के लक्ष्य से महामन्दिर पधारे। इधर जयमलजी म. सा. की सम्प्रदाय के श्री चौथमलजी म.सा. ने अत्यधिक रुग्ण होने से संथारा ग्रहण कर लिया था। मुनि श्री की प्रबल अभिलाषा थी कि पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. इस अन्तिम धर्म-साधना में उनके साथ रहें। वे उन्हें बार-बार याद कर रहे थे। चरितनायक नागौर की ओर निर्धारित विहार स्थगित कर मुनि श्री की सेवा में आहोर की हवेली पधारे। चातुर्मास काल निकट था तथापि धर्माराधन एवं मुनि श्री की अभिलाषा को ध्यान में रखकर संथारे के सीझने तक उनके पास स्वयं रहने की सहर्ष स्वीकृति ही नहीं दी, वरन् स्वात्म-बोध, आत्म-जागरण के संदेश देने वाले भजनों के अलावा स्वयं ने अपने ध्यान-चिन्तन से चार अध्यात्म-गीतिकाओं की रचना कर उन्हें सुनाया और मृत्यु को महोत्सव बनाते हुए उन्हें परलोक की महायात्रा के लिए प्रचुर पाथेय प्रदान किया। 'मेरे अन्तर भया प्रकाश' , मैं हूँ उस नगरी का भूप' 'समझो चेतन जी अपना रूप' आदि आध्यात्मिक गेय पदों की रचना चरितनायक ने इसी समय की। आषाढ शुक्ला द्वितीया को १३ दिवसीय संथारा पूर्ण होने पर संस्कृत भाषा में आपने काव्यात्मक श्रद्धांजलि समर्पित की–

मरौ धरायां जयमल्लपूज्योऽभवत्प्रसिद्धो मुनिनायकः शमी।
कलिप्रभावात्तस्यैव वंशे-क्षीणेऽभवत्तूर्यमल्लो यशस्वी ॥१॥
निरस्ततन्द्रेण तितीर्षुणा व्रतं, वीरोचितं भक्त-त्यागादिरूपम्।
अमोहभावेन निजात्मशुद्धया , आसेवितं साम्यसुरेण चेतसा ॥२॥
रुजातिरेकः समपीडयत्तनुं, सोढुं न शक्यं बलधारिभिर्नरैः।
सहिष्णुतायां मुनिपुङ्गवेन, चमत्कृताः स्वेतरदर्शका जनाः ॥३॥
शाश्वत हिता संयमयोगचर्या, भद्रा त्वदीयाचरणस्य श्रेणिः।
व्यक्तं तनुं नश्वरभावभाजं, नित्यं शिवं मुक्तिपदजिगीषुणा ॥४॥
आश्चर्यभावं भजते मदीयं, चित्तं चरित्रं हि दृष्ट्वा त्वदीयम्।
यस्यां तिथौ मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्तमेव स्वर्गारोहोऽप्याकार्षीः ॥५॥
भूयो भूयोऽपि वंदेऽहं, शान्तं धीरं महत्तरम्।
सुमनोऽहं कृपादृष्टः किंचित् सर्वमुपार्जयम् ॥

इसके अनन्तर आप स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. की सेवा में पधारे और अपराह्न में उनसे मांगलिक श्रवण कर नागौर की ओर उग्र विहार किया। दिन में दो-दो बार उग्र विहार कर आषाढ शुक्ला १३ की अपराह्न नागौर पधारे। वहाँ सुराणा की बारी के बाहर मोहनलालजी बोथरा के मकान में विराजे।

• नागौर चातुर्मास (संवत् २००९)

सं. २००९ के नागौर चातुर्मास में प्रथम दिन से ही आध्यात्मिक उल्लास का वातावरण बन गया। तपस्या का ठाट लगा। प्रबोधक प्रवचनों की धारा बही। चरितनायक महिला जागृति एवं बालिकाओं में संस्कारों पर अधिक बल देते थे। आपका चिन्तन था कि बालिका यदि संस्कारित होती है तो वह एक नहीं, दो कुलों को शिक्षित एवं संस्कारित करेगी। इस दृष्टि से आपने कन्या पाठशाला की आवश्यकता पर बल देते हुए श्राविकावर्ग में धार्मिक संस्कारों को जगाने की प्रेरणा की। आपने फरमाया–**"जिस प्रकार चारों पहियों के समान रूप से सुदृढ़ एवं गतिशील होने पर ही कोई रथ प्रगति पथ पर निरन्तर अग्रसर हो सकता है, ठीक उसी प्रकार श्रमण**

भगवान महावीर के धर्मसंघ रूपी रथ के साधु-साध्वी, श्रावक एवं श्राविका रूप चारों पहिये संघोत्कर्ष की दिशा में सक्रिय एवं द्रुतगतिशील होंगे तभी यह संघ अपने परम लक्ष्य पर पहुँच सकेगा। महिला-वर्ग, मातृ-वर्ग, श्राविका-वर्ग चतुर्विध संघ-रथ का चतुर्थ पहिया भी सुदृढ हो , यह आवश्यक है। मैं तो आप सभी माताओं बहनों से यह कहूँगा कि पुरुष वर्ग से पहले स्त्री-वर्ग में धार्मिक-शिक्षा एवं आध्यात्मिक संस्कार अनिवार्यत: होने चाहिए। आप एक नहीं, दो-दो कुलों को रोशन करने वाली हैं, आप पुरुष की निर्मात्री हैं, उसे संस्कार देने वाली हैं। अत: आज के समाज में नारी वर्ग को बाल्यावस्था में ही धार्मिक पाठशालाओं के माध्यम से धार्मिक-शिक्षा दी जानी चाहिए।

अत्यन्त प्रभावी, प्रेरणास्पद इन प्रवचनों से प्रेरित हो नागौर के समाज-सेवियों ने इसी वर्षावासकाल में कन्या-धार्मिक शिक्षा शाला की स्थापना कर बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देना प्रारंभ किया। इसी चातुर्मास में श्री हीरालाल जी गांधी (वर्तमान आचार्यश्री हीराचन्द्र जी म.सा.) ने अनेकशः दयाव्रत के साथ सामायिक, प्रतिक्रमण, २५ बोल आदि चरितनायक के चरणों में रहते हुए कण्ठस्थ कर लिए। आचार्यश्री की प्रेरणा से यहाँ भी जोधपुर की भांति श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ की स्थापना हुई।

नागौर चातुर्मास के अनन्तर आप पीपाड़ पधारे, जहाँ पाली के श्रेष्ठी श्री हस्तीमलजी सुराणा ने दो बहनों एवं एक भाई की दीक्षा पाली में आयोजित करने हेतु विनति रखी।

मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पाली मारवाड़ में दीक्षा का भव्य आयोजन हुआ। इसमें पीपाड़ के श्री जालमचन्द जी चौधरी एवं दो बहनों घीसीबाई पाली एवं सुआबाई कांकरिया, भोपालगढ़ ने प्रव्रज्या-पथ पर अपने चरण बढ़ाए। दीक्षा के अनन्तर जालमचन्द जी का नाम जयन्तमुनि निर्धारित कर उन्हें स्वामी श्री अमरचन्द जी म. की निश्रा में रखा गया। श्रीमती सुआबाई का नाम महासती श्री शान्तिकंवर जी एवं घीसीबाई का नाम ज्ञानकंवर जी रखा गया।

• सोजत सम्मेलन (संवत् २०१०)

इधर सोजत में मंत्रि-मुनिवरों का सम्मेलन १७ से ३० जनवरी १९५३ तक आयोजित होना निश्चित हो गया, अतः आचार्यश्री का विहार बिलाड़ा होते हुए सोजत की ओर हुआ। बिलाड़ा में स्वामी जी श्री रावतमल जी म., मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म. आदि श्रमणवरों से विचार-विमर्श हुआ। सम्मेलन में १४ मंत्री मुनिवर पधारे, जिन्होंने सादड़ी में हुए वृहद् साधु-सम्मेलन के पारित प्रस्तावों एवं नियमों को क्रियान्वित करने एवं समितियों को निर्णयार्थ सौंपे विचारों को अन्तिम रूप देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस सम्मेलन में चरितनायक ने अपने बुद्धिकौशल से संघ-ऐक्य के प्रति महती भूमिका निभायी। कुल ३३ निर्णय लिए गए एवं चरितनायक को मारवाड़ और गोड़वाड़ प्रान्त में साधु-साध्वियों के चातुर्मास, विहार, सेवा, आक्षेप निवारण और प्रचारकार्य की व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया । आपको साधु-साध्वियों के पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु निर्मित संयुक्त समिति तथा तिथिपत्र समिति में सदस्य मनोनीत किया गया।

सोजत सम्मेलन के पश्चात् चरितनायक श्रमण संघ के प्रधानमंत्री श्री आनंद ऋषि जी म. के साथ विहार करते हुए जोधपुर पधारे। यहाँ से मेड़ता, गोविन्दगढ़ होते हुए लाडपुरा पधारे। यहाँ लाडपुरा के श्री सुगनचन्द्र जी खटोड़ एवं भिनाय निवासी जड़ावकंवरजी की श्रामण्य दीक्षा ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत् २०१० को सम्पन्न हुई। दीक्षा के

प्रसंग पर प्रधानमंत्री श्री आनंद ऋषि जी म., वयोवृद्ध श्री छोटमल जी म. (श्री पन्नालाल जी के संघाटक) एवं महासती श्री हरकंवर जी आदि सती-मंडल उपस्थित था। दीक्षोपरान्त सुगनचन्द्रजी का नाम सुगनमुनि रखा गया।

• जोधपुर का संयुक्त ऐतिहासिक चातुर्मास (संवत् २०१०)

विक्रम संवत् २०१० का जोधपुर चातुर्मास अनेक संतों का संयुक्त ऐतिहासिक चातुर्मास था, जिसमें चरितनायक श्री हस्तीमल जी म.सा. आदि ठाणा ६ के अतिरिक्त उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. आदि ठाणा ८, प्रधानमंत्री श्री आनंदऋषि जी म.सा. आदि ठाणा ५, व्याख्यान वाचस्पति श्रीमदनलाल जी म.सा. आदि ठाणा २, कवि श्री अमरचन्दजी म.सा. आदि ठाणा ५, पं. रत्न श्री समर्थमलजी म.सा. स्वामी जी श्री पूर्णमल जी म.सा. आदि ठाणा २ एक साथ सिंहपोल स्थानक में विराजे।

सिंहपोल में छह श्रमण प्रमुखों का यह संयुक्त चातुर्मास स्वर्णिम चातुर्मास था, जिसमें एक साथ इतनी विभूतियों के दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण एवं ज्ञानचर्चा का लाभ न केवल जोधपुरवासियों को, अपितु समस्त देशवासियों को आह्लादित करता था। चातुर्मास काल में देश के अनेक स्थानों से श्रद्धालुओं का आवागमन बना रहा। श्रमण-श्रेष्ठों ने शास्त्रों, भाष्यों, टीकाओं, चूर्णियों आदि का आलोडन करते हुए अनेक गूढ़ विषयों पर चिन्तन प्रकट किया। तप-त्याग एवं धर्माराधन की झड़ी सी लग गई। श्रमणवरों ने चार मास तक नियमित रूप से घण्टों बैठकर सर्वमान्य साधु समाचारी निर्धारित करने के लक्ष्य से गंभीरतापूर्वक विचार-मंथन कर अनेक सर्वसम्मत निर्णय लिए। संघ और अनुशासन पर चरितनायक ने एक दिन प्रवचन में फरमाया "अनुशासनहीन समाज रक्तहीन देह की तरह अवसान की ओर प्रयाण करता है। उसका चिरकाल के लिये अस्तित्व संभव नहीं। इसलिये महावीर ने संघ की स्थापना की । उनकी संघ-व्यवस्था में यह विशेषता है कि उनके समवसरण में चाहे देव हो या मानव, राजा हो अथवा दरिद्र, सभी नियमानुसार सभा में स्थान ग्रहण करते थे। बड़े से बड़ा व्यक्ति भी पहले बैठे हुए छोटे को हटाकर नहीं बैठता था और न कोई बीच में होकर जाता था। जरूरी कार्य से भी कोई किसी को उठाकर नहीं ले जाता और न कोई सभा में संभाषण ही करता था। देव, मनुष्य पशु और साधु-साध्वी सभी यथा स्थान बैठकर विधि पूर्वक देशना का लाभ लिया करते थे। इसी अनुशासनशीलता से संघ देव तुल्य पूजनीय माना गया था।"

"श्रावक संघ श्रमण संघ का सहयोगी है , अतः उसमें भी व्यवस्थित अनुशासन रहे तभी सफलता मिल सकती है। उसको कोरा आलोचक या बातूनी नहीं होना चाहिये। जबानी जमा खर्च या टीका टिप्पणियों से समाज का हित नहीं हो सकता। इसके लिये सक्रिय कदम उठाना होगा। गोपनीय कार्यों की सुरक्षा यहां तक हो कि कार्य से पहले पड़ौसी भी आपके विचार को नहीं समझ सके। अधिक करके थोड़ा कहने की नीति को सदा ध्यान में रखा जाय। समाज हित के लिये सबकी एक आवाज हो और शासन रक्षा में सर्वस्व न्यौछावर की तैयारी हो।"

चातुर्मासोपरान्त छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के नासूर की शल्य चिकित्सा के कारण चरितनायक को कुछ दिन जोधपुर रुकना पड़ा।

• स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. का स्वर्गारोहण

संवत् २०१० की माघ कृष्णा चतुर्दशी को स्वामीजी श्री सुजानमल जी म.सा. का समाधिपूर्वक सहसा देहावसान हो गया। उनकी अभिलाषा के अनुसार चरितनायक अन्तिम समय में उनके पास ही थे और उन्होंने चरितनायक के मुख से मंगलाचरण सुनकर १८ पापों की आलोचना की। श्री सुजानमल जी म. बड़े गम्भीर,

क्रियानिष्ठ आत्मसाधक एवं वर्चस्व के धनी सन्त थे। उन्होंने पूज्यपाद आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के देवलोकगमन के पश्चात् मनोनीत लघुवय आचार्य (चरितनायक) की ओर से लगभग पौने चार वर्ष के अन्तराल काल के लिए शासन संभाला एवं उनके युवा होते ही उन्हें विधिवत् आचार्यपद पर अधिष्ठित कर अपने आपको सदा गौरवान्वित अनुभव किया। उन्हें 'पूज्य श्री' के रूप में सम्बोधित कर बाबाजी म.सा. सदा प्रमुदित रहते। यह था गौरवशाली रत्नवंश की परम्परा का अनुशासन एवं आदर्श।

जोधपुर के अनन्तर ठाणा ८ से भोपालगढ फरसकर पीपाड़ में अक्षय तृतीया पर धर्म-प्रभावना करते हुए चरितनायक मादलिया पधारे, जहाँ आपने दो धड़ों में विभक्त श्रावकों को एक सूत्र में बांधकर उनका पारस्परिक वैमनस्य दूर कर दिया। इससे आस-पास के सभी गाँवों में धर्म की प्रभावना बढ़ी। अजमेर में स्वामी श्री ताराचन्द जी म. एवं कवि अमरचन्द जी म. से मधुर मिलन हुआ। सभी सन्त एक ही स्थान पर विराजे और जब तक अजमेर में रहे तब तक एक ही स्थान पर प्रवचन फरमाते रहे। संघहित एवं समष्टि हित की दृष्टि से विचारों का आदान-प्रदान हुआ। चरितनायक एवं कवि श्री अमरमुनि जी के बीच सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् जो शास्त्र-चर्चा होती थी, उसे सुनने के लिए श्रोता आकृष्ट हो बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। अजमेर से मार्गस्थ ग्राम-नगरों को पावन करते हुए वि.सं. २०११ के चातुर्मास हेतु आप ठाणा ८ से जयपुर के लाल भवन में पधारे।

• जयपुर चातुर्मास (संवत् २०११)

इस जयपुर चातुर्मास में श्रावक-श्राविका वर्ग ने 'बिजली के झबूके मोती पोना हो तो पोय ले' उक्ति को चरितार्थ करते हुए ज्ञानसूर्य चरितनायक श्री हस्ती के सान्निध्य में ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की सम्पदा का उपार्जन करने की होड़ सी लगा दी। बालक-बालिका, किशोर-किशोरी, सब में सीखने का उत्साह था। नियमित सामूहिक-सामायिक, शास्त्र-वाचन, स्तोत्रपाठ आदि के अनेक व्यक्तियों ने नियम ग्रहण किए। चरितनायक ने अपने प्रवचनों में फरमाया-"अर्थोपार्जन केवल इस जन्म में सीमित रूप से काम आता है, जबकि धर्माराधन द्वारा उपार्जित आध्यात्मिक सम्पदा एक ऐसा अनमोल दिव्य धन है जो भव-भवान्तरों तक काम आने वाला तथा भवपाश से मुक्त कराने वाला है।" पूज्य श्री के प्रवचन-पीयूष से प्रभावित जन-मानस ने धर्मसाधना का अनूठा लाभ लिया। इस चातुर्मास में महासती श्री सोहनकँवर जी, प्रभावतीजी, पुष्पवतीजी आदि ठाणा ६ एवं विदुषी महासती श्री जसकँवर म.सा. आदि ठाणा ४ से जयपुर ही विराज रही थीं।

२९ अक्टूबर १९५४ को जैन दर्शन की विशालता और तत्त्वज्ञान विषय पर प्रवचन श्रवणार्थ जर्मन विद्वान् लूथर वेण्डल उदयपुर के हिम्मतसिंह जी सरूपरिया के साथ उपस्थित हुए। पूज्य श्री के व्याख्यान का तत्काल अंग्रेजी अनुवाद सरूपरिया जी लूथर को सुनाते रहे। व्याख्यान सम्पन्न होने पर लूथर ने आचार्य श्री के ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसने अपने सम्बंध में यह भी बताया कि वह जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रति गहरी रुचि एवं आस्थावान होने के कारण पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है तथा मक्खन का सेवन भी छोड़ दिया है।

चरितनायक ने जर्मन विद्वान् को संस्कृत और प्राकृत भाषा के अध्ययन की प्रेरणा की। श्री सुमेरचन्द जी कोठारी ने आप श्री द्वारा सम्पादित एवं अनूदित नन्दी सूत्र की प्रति और जैन धर्म विषयक कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की पुस्तकें भेंट की। श्रमण संघ के आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा.के जन्म-दिन भाद्रपद कृष्णा द्वादशी के दिन सभा को सम्बोधित करते हुए चरितनायक ने उनके नियमित आगम-स्वाध्याय एवं सम्पादन के

अतिरिक्त चारित्रिक गुणों की प्रंशसा करते हुए हृदयोद्‌गार अभिव्यक्त किए। इस चातुर्मास के समय लाल भवन में अनन्य गुरु भक्त लाल हाथी वाले श्रेष्ठी श्री केसरीमल जी कोठारी के कर कमलों से पुस्तकालय का उद्‌घाटन सम्पन्न हुआ।

• **मुख्यमंत्री द्वारा प्रवचन श्रवण**

चातुर्मास के अनन्तर आदर्शनगर, हीराबाग आदि स्थानों पर प्रवचनामृत का पान कराने के पश्चात् १७ नवम्बर ५४ को गुलाब निवास में आपका अहिंसा विषयक विशिष्ट प्रवचन हुआ, जिसके श्रवण हेतु राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया एवं अन्य मंत्रीगण भी उपस्थित हुए। चरितनायक ने प्रवचन में फरमाया कि अहिंसा केवल साधुओं अथवा धर्मनिष्ठ श्रावकों के लिए ही नहीं, अपितु मानवमात्र के द्वारा आचरणीय है। आचार्य प्रवर ने फरमाया कि विश्व का कल्याण एक मात्र अहिंसा के सिद्धान्तों की परिपालना से ही हो सकता है। अहिंसा के दो रूप हैं — एक रूप तो यह कि किसी को कष्ट नहीं देना। दूसरा रूप यह कि तन, मन एवं वचन से यथा शक्ति दूसरे को कष्ट से बचाने का पूरा प्रयास करना। प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह यथासम्भव अपनी दिनचर्या में दोनों प्रकार की अहिंसा को अधिकाधिक स्थान दे। २८ नवम्बर ५४ को आर.वी. दुर्लभ जी एमरेल्ड हाउस में शिक्षा प्रणाली पर आयोजित प्रवचन के समय राजस्थान सरकार के मंत्री श्री रामकिशोर जी व्यास, आयुक्त श्री भगवतसिंह जी आदि अनेक गणमान्य अधिकारी उपस्थित हुए। चरितनायक ने फरमाया कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र आजीविका नहीं, अपितु जीवन निर्माण भी है। आधुनिक शिक्षा में संस्कार-निर्माण पर ध्यान नहीं है, जिसकी महती आवश्यकता है।

• **डिग्गी, मालपुरा होकर किशनगढ**

२९ नवम्बर १९५४ को चरितनायक पं.मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज, माणकमुनिजी और रतनमुनिजी महाराज के साथ सांगानेर पधारे। यहाँ पर संघ की सुदृढता हेतु प्रेरणाप्रद प्रवचन हुआ, श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं ने यथाशक्ति संघ-ऐक्य के लिए संकल्प किया। सांगानेर से डिग्गी मालपुरा होते हुए आप किशनगढ पधारे। कतिपय दिन यहाँ भव्य-जनों की ज्ञान-पिपासा शान्त करते हुए अजमेर पधारे। यहां पर स्थविरा महासती श्री छोगाजी म.सा. की भावना, उनकी शारीरिक स्थिति एवं अजमेर संघ की आग्रह भरी विनति को ध्यान में रखकर चरितनायक ने साधुभाषा में संवत् २०१२ के चातुर्मास की स्वीकृति फरमा दी।

अजमेर चातुर्मास के पूर्व चरितनायक मसूदा में स्वामीजी श्री पन्नालाल जी म.सा., प्रधानमंत्री श्री आनंद ऋषि जी म.सा., मुनि श्री मोतीलाल जी, मुनि श्री चम्पालाल जी, कवि श्री अमरचन्द जी म.सा. से मिले तथा भीनासर में होने वाले साधु-सम्मेलन के सम्बंध में गहन विचार-विमर्श किया। चरितनायक वहाँ से विजयनगर, धनोप, सरवाड़, केकड़ी आदि ग्राम-नगरों को पावन करते हुए भीलवाड़ा पधारे, जहाँ अक्षय तृतीया का पर्व हर्षोल्लास एवं तप-त्याग पूर्वक मनाया गया। भीलवाडा से विहार कर चातुर्मासार्थ अजमेर पधारे तथा केशरीसिंहजी की हवेली में आपका सन्त - मण्डल के साथ भव्य प्रवेश हुआ।

• **अजमेर चातुर्मास (संवत् २०१२)**

अजमेर चातुर्मास में चरितनायक एवं सन्तमंडल के साथ प्रधानमंत्री श्री आनंद ऋषिजी म.सा. के दो शिष्य

पुष्प ऋषि जी एवं हिम्मत ऋषि जी भी साथ ही विराजे। पारस्परिक सौहार्दपूर्ण व्यवहार से अजमेर निवासी प्रसन्न थे। चार मास तक धर्माराधन एवं तपश्चरण का आह्ल्यादकारी ठाट रहा। यहां मिर्जापुर निवासी श्रीमती राजकंवर जी (धर्म पत्नी श्री रूपचंद जी सुराणा) ने कार्तिक शुक्ला १० एवं सादड़ी निवासी बाल ब्रह्मचारिणी बहन श्री जतनकंवरजी (सुपुत्री श्री दानमल जी) ने मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को श्रमणी धर्म की दीक्षा अंगीकार की।

• भीनासर सम्मेलन (संवत् २०१३)

अब २६ मार्च से ६ अप्रैल १९५६ तक भीनासर में आयोज्यमान सम्मलेन निकट था। अतः चरितनायक अजमेर से जोधपुर भोपालगढ़ होते हुए पहले माघ शुक्ला ४ संवत् २०१२ को नोखामंडी पधारे, जहाँ अनेक प्रमुख श्रमण-श्रमणी पूर्व विचार-विमर्श हेतु एकत्र हो रहे थे। यहाँ पारस्परिक विचार- विमर्श के साथ जोधपुर के संयुक्त चातुर्मास की कार्यवाही तथा प्रतिवेदनों पर विचार कर निर्णायक स्वरूप प्रदान किया गया। प्रायश्चित्त विधि पर विचार कर उसे भी अन्तिम रूप दिया गया। देशनोक में फाल्गुन कृष्णा षष्ठी को प्रतिनिधि मुनियों का चुनाव किया गया, जिसमें २२ सम्प्रदायों के ५२ प्रतिनिधि चुने गये। इनमें चरितनायक एवं पं. श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज सम्मिलित थे। बीकानेर होते हुए आप भीनासर पहुँचे। सम्मेलन में १३५ मुनिवर एवं १४७ महासतियों का पदार्पण हुआ। प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अन्य मुनियों एवं महासती-मण्डल को दर्शक के रूप में बैठने की अनुमति प्रदान की गई। प्रतिनिधि सन्तों ने नोखामण्डी देशनोक, बीकानेर और भीनासर इन चार स्थानों पर लगभग ४२ दिनों तक पारस्परिक विचार-विमर्श करने के अनन्तर श्रमणसंघ को सुदृढ बनाने और सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करने के लक्ष्य से अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए।

चरितनायक ने सम्मेलन में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा "**सादड़ी सम्मेलन में आप सब मुनिवरों ने संघ ऐक्य की भावना से जो त्याग और साहस दिखाया वह अपूर्व था। आरम्भ में हमने आचार्य श्री को देव समझकर उनकी आज्ञा से कार्य करने की प्रतिज्ञा ली और उनके प्रति निष्ठा प्रकट की थी। किन्तु आज की हमारी स्थिति ऐसी नहीं है । यही कारण है कि संघ-ऐक्य का भव्य भवन चार वर्षों के लम्बे समय में भी पूरा नहीं हो सका। हम संघ में असम्मिलित साधु-साध्वियों का सहयोग प्राप्त नहीं कर सके। इतना ही नहीं संघ में सम्मिलित आत्मार्थी योग्य सन्त भी स्थिति नहीं सुधरी तो किनारा कर सकते हैं। इस सम्मेलन में हमें इन स्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।**

चरितनायक ने अपने उद्बोधन में इस बात पर बल दिया कि श्रमण का सबसे बड़ा बल, सबसे महत्त्वपूर्ण धन अथवा जीवन सर्वस्व आचारबल ही है। ज्ञान के साथ क्रिया का आराधन करना ही उसकी सबसे बडी निधि है।

भीनासर सम्मेलन में निम्नाङ्कित उल्लेखनीय निर्णय हुए—

१. कम से कम १० मिनट की प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना कराना।

२. ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नहीं करना (पंजाब एवं उत्तरप्रदेश के सन्तों को एक निर्णय के लिए छोड़ा गया)

३. एकल विहारी साधु एवं एक या दो के संघाटक में विचरण करने वाली साध्वी को श्रमणसंघ में सम्मिलित करते समय उनके स्वच्छन्द विहार काल की दीक्षा छेद करना)

४. प्रतिक्रमण करते समय संघाटक के मुख्य साधु को आचार्य की एवं आचार्य को श्रमण भगवान महावीर

की आज्ञा लेने का निर्णय हुआ।

५. सचित्ताचित्त विषय में प्रस्ताव पारित हुआ कि बादाम, पिस्ता, नौजा, चारोली, इलायची, सफेद और काली मिर्च अखण्ड नहीं लेंगे। पीपर बिना पिसी नहीं लेंगे। पानी का बर्फ नहीं लेंगे। ककड़ी , तरबूज, खरबूज, नारंगी, केला, अंगूर आदि बिना शस्त्र परिणत नहीं लेंगे।

६. सम्यक्त्व देते समय वीतराग अरिहन्त देव, पंच महाव्रत, पाँच समिति एवं तीन गुप्ति का पालन करने वाले को गुरु तथा केवली प्ररूपित दयामय धर्म को धर्म स्वीकार करना।

७. सम्वत्सरी की एकता के सम्बन्ध में १७ सदस्यों की एक समिति बनायी गई जिसका संयोजक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म. को बनाया गया।

८. १ अप्रेल १९५६ को चरितनायक सहित चार उपाध्याय स्वीकृत हुए—

१. पं. आनन्द ऋषि जी महाराज

२. चरितनायक पं. श्री हस्तीमल जी महाराज

३. पं. प्यारचंद जी म.

४. कवि श्री अमरचन्दजी म.

भीनासर सम्मेलन के पश्चात् संवत् २०१३ का आपका चातुर्मास बीकानेर स्वीकृत हुआ। इसी समय आषाढ कृष्णा ४ संवत् २०१३ को ७७ वर्ष की आयु में स्थविरा महासती श्री छोगाजी का अजमेर में स्वर्गारोहण हो गया।

महासती छोगाजी रत्नवंश की देदीप्यमान एवं प्रभावशाली साध्वी थीं। विक्रम संवत् १९४० में बुचेटी के श्री पन्नालालजी ललवाणी के यहाँ जन्मी छोगाजी पर बालवय में वैधव्य का पहाड़ टूट पड़ा। १५ वर्ष की उम्र में आपने महामंदिर में दीक्षा अंगीकार की। वर्षों तक गुरु बहिन श्री राधाजी महाराज की सेवा में अजमेर रहीं। महासती सुन्दरकंवरजी आदि सात-आठ विदुषी महासतियां आपकी शिष्याएं हुई। आप मधुर व्याख्यानी एवं अतिशयसम्पन्न महासती थीं। आपके प्रवचनों की भाषा सरल, सरस, हृदयोद्रारक एवं प्रेरक थी। आपके शब्द अन्तःस्पर्शी थे। आप अपनी अन्तेवासिनी सतियों का जीवन निर्माण करने में पूर्णतः सक्षम एवं दक्ष थी। आपके अतिशय के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि विक्रम संवत् २००० के गुलाबपुरा (भीलवाड़ा) चातुर्मास की बात है , एकदा आपने जिक्र किया कि मैंने तो कभी बाढ़ देखी नहीं । कुछ ही दिनों बाद श्रावण कृष्णा १३ को भयंकर मूसलाधार वर्षा हुई। चारों ओर पानी-पानी हो गया, घर पानी से भर गए। भाइयों ने आपसे अन्य मकान में पधारने का निवेदन किया, परन्तु आपने सचित्त पानी में जाना स्वीकार नहीं किया। प्रातः महासती सुन्दरकँवरजी ने समस्त शास्त्र एवं उपकरण ऊपर रख दिये और आप सब सीढियों पर बैठकर स्वाध्याय करने लगीं। पानी सीढ़ियों पर चढ़ने लगा तो आपने पानी को इंगित कर कहा – "देख लिया, भई देख लिया।" और देखते ही देखते पानी उतरने लगा । सबने शांति की सांसें ली।

• बीकानेर चातुर्मास (संवत् २०१३)

पूज्यप्रवर का बीकानेर चातुर्मास स्वाध्याय, सामायिक, पौषध, तपश्चरण, व्रत-प्रत्याख्यान आदि में उत्साह एवं उमंग के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास में आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री बदनकँवर जी म.सा. आदि ठाणा भी विराज रहे थे। इस चातुर्मास में तमिल प्रदेशी विरक्त श्रीराम तथा पीपाड़ के विरक्त श्री हीरालाल जी गांधी (वर्तमान आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.) चरितनायक की सेवा में अध्ययनरत रहे। श्री हीरालाल जी गांधी के पिता श्री

मोतीलाल जी गांधी ने संवत् २०१३ से जीवन भर अपनी सेवाएँ संघ को समर्पित की। आपने जीवन पर्यन्त जैन इतिहास की सामग्री के संकलन एवं विनयचन्द्र ज्ञान भंडार जयपुर में अपनी उल्लेखनीय सेवाएँ दी ।

बीकानेर चातुर्मास के पश्चात् ऊदासर, देशनोक, नोखा, नागौर, मेड़ता आदि ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए आप थांवला पधारे, जहाँ उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज से संघहित के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर वार्तालाप किया। पुष्कर में आप दोनों श्रमण वरेण्यों का मंत्री श्री पुष्कर मुनि जी म.सा. से मधुर मिलन हुआ। अजमेर में चरितनायक का बीकानेर वर्षावास में साथ रहे वयोवृद्ध मुनि श्री रामकुमार जी से पुनः मिलन हुआ। यहाँ पर श्रावक वर्ग को संघ-शक्ति को उत्तरोत्तर दृढ़ करने की प्रेरणा करने के अनन्तर आप किशनगढ़ पधारे, जहाँ मन्त्री श्री पन्नालाल म.सा. के साथ विचार विमर्श हुआ।

चरितनायक के मन में संघ के ऐक्य एवं श्रमणाचार के निर्दोष परिपालन की तत्परता थी। विजयनगर में आपका उपाचार्य श्री गणेशीलाल म., पं. श्री पुष्कर मुनि जी म. और पं. श्री शेषमल जी म. के साथ मिलन हुआ। यहाँ भी आपने संघोत्कर्ष विषयक विचार-विमर्श किया। गुलाबपुरा में श्री लालमुनिजी एवं कान्हमुनि जी से आपका स्नेहमिलन हुआ। अक्षय तृतीया के पुनीत प्रसंग पर केकड़ी विराजे, जहाँ पर आपने दान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए फरमाया कि न्यायनीति से उपार्जित धन का शुभकार्यों में बिना किसी स्वार्थ के विवेकपूर्वक दिया गया दान ही सात्त्विक दान है। सरवाड़ होते हुए फतहगढ़ पधारने पर श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ की स्थापना की गई। यहाँ धर्मनिष्ठ दम्पतियों ने सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किये। चरितनायक के पधारने से यहाँ के स्थानकवासी समाज में व्याप्त मन मुटाव दूर हो गया। कइयों ने शतरंज, तास, चौपड़ आदि नहीं खेलने का नियम लिया। एक पुस्तकालय की भी स्थापना हुई। फतहगढ़ की विशेषता यह थी कि यहाँ ओसवाल, सरावगी और माहेश्वरी समाज की सम्मिलित गोठ (पंचायत) है, जो इन समाजों की सर्वविध समस्याओं का समाधान करती थी। फतहगढ से किशनगढ चातुर्मास हेतु विहार किया।

• किशनगढ़ चातुर्मास (संवत् २०१४)

चरितनायक विक्रम संवत् २०१४ के किशनगढ़ चातुर्मास में ठाणा ७ से विराजे। वर्षावास में आध्यात्मिक महोत्सव का वातावरण बन गया। तपश्चरण की झड़ी लग गई। अठाई आदि की अनेक तपस्याएँ हुई। श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ की स्थापना हुई तथा श्री सागर जैन विद्यालय को आत्म-निर्भर बनाने का कार्य सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के पश्चात् मदनगंज में श्री सोहनलाल जी महाराज से स्नेह मिलन हुआ। इन दिनों श्रमण संघ में सम्वत्सरी के प्रश्न को लेकर चर्चा चली एवं कान्फ्रेंस के अधिकारियों ने चरितनायक से चर्चा कर जिज्ञासा का समाधान किया। उसे दिल्ली की व्यवस्था समिति तथा श्रमण सम्पर्क समिति की बैठक में पारित करवाया। यह प्रस्ताव २२ नवम्बर ५७ के जैन प्रकाश में प्रकाशित हुआ है-"उक्त समिति के सदस्यों का अत्यधिक बहुमत चातुर्मासादिक आषाढ शुक्ला १५ पक्खी से ४९ या ५०वें दिन संवत्सरी मनाये जाने के पक्ष में है। अतः कांफ्रेंस की व्यवस्था समिति और श्रमण सम्पर्क समिति उपर्युक्तानुसार चौमासी पक्खी आषाढ़ शुक्ला १५ से ४९ या ५० वें दिन संवत्सरी मनाने का निर्णय देती है तथा समस्त स्थानकवासी जैनों से अपील करती है कि संवत्सरी महापर्व भारत में एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्थानकवासी जैनों में सांवत्सरिक एकता बनी रहे।" इस प्रकार चरितनायक ने समाज के महत्त्वपूर्ण मुद्दे 'साम्वत्सरिक एकता' का पथ प्रशस्त किया।

मदनगंज से आप दूदू, गाडोता होते हुए जयपुर पधारे, जहाँ लगभग २५ दिनों तक लालभवन में धर्माराधना कराकर आपका अलवर में पदार्पण हुआ। इस विहार क्रम में श्री सोहनलाल जी म.सा. आपके साथ रहे। यहाँ धर्मोपदेश में इन्द्रिय नियंत्रण एवं आसक्तिजय पर प्रभावी प्रवचन दिये । अलवर से दिल्ली जाते समय मार्ग में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म.सा. से आपका स्नेह मिलन हुआ। दिल्ली वासियों की आग्रहपूर्ण विनति पर विक्रम संवत् २०१५ का चातुर्मास दिल्ली को मिला।

■

दिल्ली से सैलाना तक

(सं. २०१५ से २०१९)

- दिल्ली में चातुर्मास (संवत् २०१५)

वि.सं. २०१५ का चातुर्मास स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली के सब्जीमंडी क्षेत्र के स्थानक में हुआ। दिल्ली के जिन राजमार्गों से आपका पदार्पण हुआ, वे अपार जन-समूह की जय-जयनाद से गूँज उठे। चातुर्मास के पूर्व आपने दिल्ली के चांदनी चौक, सदर बाजार आदि प्रमुख स्थानों पर जिनवाणी की अमृत गंगा प्रवाहित की। आपकी पीयूषपाविनी पातक प्रक्षालिनी वाणी संयमनिष्ठ जीवन एवं दृढ आचार-निष्ठा से दिल्ली के श्रावक अत्यंत प्रभावित हुए। लाला श्री बनारसी दास जी, मिलापचन्द जी, जीवन लाल जी आदि चातुर्मास की व्यवस्था में तत्पर रहे। आपके तात्त्विक प्रवचनों से श्रोतागण बड़ी संख्या में लाभान्वित हुए। **एक दिन हंगरी निवासी बौद्ध धर्म के विद्वान् फैलिक्स बैली जैन सिद्धान्तों की विशेष जानकारी के लिए उपस्थित हुए और स्याद्वाद के बारे में विशद चर्चा की। आचार्यश्री ने उन्हें बताया "स्याद्वाद जगत् के वैचारिक संघर्षों को सुलझाता है। दूसरे शब्दों में यह वाणी और विचार की अहिंसा भी कहा जा सकता है।** एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, इसीलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी उपलब्ध होते हैं। सारे पक्षों या दृष्टिकोणों को विभेद की दृष्टि से ही नहीं, अपितु समन्वय की दृष्टि से भी समझकर वस्तु की यथार्थता का दर्शन करना ही इस सिद्धान्त की गहराई में जाना है। किसी वस्तु विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर उसे सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। अतः किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर देखने-समझने व वर्णित करने वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद है। सिद्धान्तरूप में इसे अनेकान्तवाद या सापेक्षवाद भी कहा गया है।" सर्व साधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता से परिचित कराने के लिए भी आचार्य श्री ने दृष्टान्त दिया—"एक ही व्यक्ति अपने अलग-अलग रिश्तों के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा और भानजा आदि हो सकता है, किन्तु वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो पिता की दृष्टि से पुत्र, भतीजे की दृष्टि से काका है तो काका की दृष्टि से भतीजा। ऐसे ही अन्य सम्बंधों के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारों ओर देख सकते हैं। इन रिश्तों की तरह ही एक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास भी होता है। अतः यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप पर लागू होती है कि वह भी एक साथ सत् -असत्, नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, एक-अनेक, क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य आदि गुणों वाली होती है। द्रव्य की दृष्टि से वह सत् , नित्य, एक, सामान्य आदि होती है तो पर्याय की दृष्टि से उसे असत्, अनित्य, अनेक, विशेष आदि कहा जाता है।"

दिल्ली का यह चातुर्मास अत्यन्त ज्ञानवर्धक रहा। लाला श्रीबनारसीदास जी, लाला मिलापचन्द जी, लाला किशनचन्द जी , हकीम हेमराजजी एवं स्थानीय श्रीसंघ की सेवाएँ और धर्मानुराग सराहनीय रहा।

चातुर्मास में स्वामीजी श्री अमरचन्दजी म.सा. का स्वास्थ्य अधिक नरम हो जाने से चातुर्मास के पश्चात् भी चरितनायक का यहां से विहार न हो सका। क्षेत्र की अनुकूलता और श्रावकजनों की भक्ति भी सराहनीय रही।

उधर कांधला से पण्डित मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज ठाणा २ से चातुर्मास सम्पन्न कर स्वामीजी की सेवा में दिल्ली पधार गए। लाला बनारसीदासजी, श्री रतनलालजी पारख और मिलापचन्द जी ने आवश्यक उपचार कराया, किन्तु रोग पर नियन्त्रण नहीं हो सका। अन्त में श्री सरदारमलजी सांड के प्रयत्न से जोधपुर वाले गुरांसा उदयचन्दजी की दवा चालू की, जो लाभकारी प्रतीत हुई। उस समय गुरां सा ने ७ दिन दिल्ली रहकर बड़ी तत्परता से सेवा की। ऋतु की प्रतिकूलता और दूरी के कारण उपचार पूरी तरह कारगर नहीं हुआ।

आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. का भावपूर्ण आग्रह था कि चरितनायक लुधियाना पधारें तो इन क्रियानिष्ठ साध्वाचार के सजग तपःपूत संतरत्न के पदार्पण से पंजाबवासी भक्तजन लाभान्वित होंगे। चरितनायक की भी भावना उनके दर्शनार्थ जाने की थी। किन्तु स्वामी जी श्री अमरचन्दजी म.सा. का स्वास्थ्य एकदम प्रतिकूल रहने से आगे बढ़ना सम्भव नहीं हो सका।

पूज्यप्रवर ने अन्यान्य कार्यों की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता प्रदान की। स्वामीजी भोजराजजी म.सा. की शासन सेवा एवं उनकी भोलावण भी आपकी सहज स्मृति में थी ही। संघनायक होते हुए भी आपने स्वामीजी महाराज के स्वास्थ्य समाधि हेतु स्वयं सेवाभाव को प्रमुख लक्ष्य रखा।

प्रशांतात्मा श्री अमरचन्दजी म.सा. के उपचार में दिल्ली के हकीम हेमराजजी, डॉ. ताराचन्दजी पारख एवं डॉ. लालचंदजी ने पूरा रस लेकर सेवा की। आप शीघ्र ही रुग्ण स्वामी जी महाराज के साथ अलवर, बैराठ, शाहपुरा होते हुए जयपुर पधारे। इस बीच महासती श्री छोटे धनकंवरजी महाराज साहब का माघ शुक्ला षष्ठी संवत् २०१५ को ब्यावर में तीन दिन के संथारे के साथ देवलोकगमन हो गया। कुछ काल पश्चात् फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को महासती श्री अमरकंवर जी महाराज साहब का समाधिमरण हो गया। आप संवत् २०१५ का निमाज चातुर्मास सम्पन्न कर महासती श्री धनकुँवर जी म.सा. के दर्शनार्थ ब्यावर पधारे। यहाँ आप ज्वर एवं खाँसी से आक्रान्त हो गए। निरन्तर स्वास्थ्य में गिरावट के कारण आप नश्वर देह को छोड़ कर चल दिए। विक्रम संवत् १९६० में किशनगढ़ के बोहरा कुल में श्री हीरालाल जी के यहाँ जन्मे अमरकँवर जी ने अल्पायु में विधवा होने के पश्चात् महासती राधाजी के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर दीक्षा अंगीकार की थी। चरितनायक लगभग १७ माह मुनि श्री अमरचन्दजी म.सा. की सेवा में जयपुर विराजे। इस दौरान ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत् २०१६ को गुरु भक्त सुश्रावक श्री पूनमचन्दजी हरिश्चंद्र बडेर के यहां से तमिलप्रान्त निवासी वैरागी श्री राम की दीक्षा सम्पन्न हुई, जो मुनि श्री श्रीचन्द जी महाराज साहब के नाम से जाने गये।

• जयपुर चातुर्मास (संवत् २०१६)

संवत् २०१६ के आपके चातुर्मास का सौभाग्य ठाणा ८ से जयपुर को प्राप्त हुआ। आपका चातुर्मास लालभवन में था तथा सरलमना महासती श्री बदनकँवर जी म.सा. आदि ठाणा का चातुर्मास बारह गणगौर के स्थानक में हुआ। जयपुर के लाल भवन में सम्पन्न इस चातुर्मास में आचार्यप्रवर के प्रवचन अत्यन्त प्रभावी रहे। पर्युषण पर्व पर व्याख्यान सुबोध इण्टर कॉलेज के विशाल प्रांगण में हुए। सामायिक सप्ताह का आयोजन हुआ, जिसमें सामायिक-आराधना करने व सामायिक सूत्र के पाठ सीखने-सिखाने की प्रेरणा की गई। अठाई, तेले, आयम्बिल आदि का आराधन पर्याप्त संख्या में हुआ। पर्युषण पर्वाराधन में स्वाध्यायी भाई-बहनों को सन्त-सती विरहित क्षेत्रों में भेजे जाने का व्यवस्थित कार्यक्रम सर्वप्रथम इसी चातुर्मास में बना। इस पुनीत कार्य में जोधपुर के श्री रिखबराज जी कर्णावट ने यथाशक्य प्रतिवर्ष अपनी सेवाएँ देने की भावना व्यक्त की। इसके अनन्तर जयपुर,

जोधपुर भोपालगढ आदि स्थानों के १५ अन्य स्वाध्यायी भी तैयार हुए, यथा– चन्दूलाल जी मास्टर पाली, केवलमलजी लोढा जयपुर, चांदमल जी कर्णावट उदयपुर, चुन्नीलालजी ललवाणी जयपुर, हीराचन्द जी हीरावत जयपुर, राजमलजी ओस्तवाल भोपालगढ, हरकचन्दजी ओस्तवाल भोपालगढ, प्रेमराजजी जैन जयपुर, हीरालाल जी गांधी (वर्तमान आचार्य श्री) , कुन्दनमलजी जैन, देवराज जी भण्डारी जयपुर एवं जसकरणजी डागा, टोंक । श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ की स्थापना यद्यपि संवत् २००२ में हो गई थी, किन्तु इसकी धीमी गति को इस चातुर्मास में ऐसा बल मिला कि फिर यह निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ता ही गया। आज स्वाध्याय संघ , जोधपुर के अन्तर्गत ७०० से अधिक स्वाध्यायी हैं, जो समय-समय विभिन्न क्षेत्रों में जाकर पर्युषण पर्वाराधन कराते हैं।

धर्मप्राण लोंकाशाह ने आगमों के स्वाध्याय के आधार पर ही तो सद्धर्म का, वीतराग प्रभु के सिद्धान्तों के मर्म का बोध पाया एवं आगे चल कर शुद्ध साध्वाचार के स्वरूप को समाज के समक्ष लाकर अभिनव धर्म-क्रान्ति की। श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ के अभिन्न अंग हैं। शासन के उत्थान में उनका दायित्व कम नहीं। उनका कर्तव्य पूज्य संत-सती वर्ग के ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्रगति में मात्र सहायक का नहीं, वरन् 'अम्मापियरो' के माफिक उनके रत्नत्रय के पोषण का है।

श्रद्धेय स्वामीजी श्री पन्नालालजी महाराज साहब के मन में श्रावकों की इस दायित्व भावना एवं इसके आधार पर उनके द्वारा स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार की भावना जगी। उन्होंने समाज के समक्ष स्वाध्याय संघ की योजना रखी। परम पूज्य चरितनायक ने इस योजना का महत्त्व ही नहीं समझा, अपितु इसे अभिनव क्रान्ति का रूप दिया। आपने अपने प्रबल पुरुषार्थ से श्रावक-श्राविकाओं के मन में स्वाध्याय की ज्योति आलोकित कर एक विशाल स्वाध्यायी वर्ग का गठन किया, जिसे वे सदैव भगवान महावीर की शास्त्रवाहिनी शान्ति सेना के रूप में संबोधित किया करते।

जिस समय में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि श्रावक वर्ग स्वाध्याय से आगम अनुशीलन एवं थोकड़ों के ज्ञान से अपने को समृद्ध कर सेवा देने को कृत संकल्प हो सकता है व जिनवाणी के प्रचार के पवित्र लक्ष्य से आठ दिन निःस्वार्थ सेवा देने हेतु घर से बाहर अन्य ग्राम-नगर में जाकर पर्युषण पर्वाराधन करा सकता है उस समय इस योजना को उपहास के साथ देखा जा रहा था, अतः इसे हाथ में लेना एक अति क्रान्तिकारी कदम था। आपका स्पष्ट मन्तव्य था कि आगम-अध्ययन व अनुशीलन साधु-साध्वियों का ही विशेषाधिकार नहीं है। निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रावक-श्राविकाओं के लिये आगम-स्वाध्याय का कहीं निषेध नहीं है। आपका स्पष्ट चिन्तन था कि श्रावक-श्राविका आगम-अवगाहन कर स्वयं तो ज्ञान-क्रिया सम्पन्न व श्रद्धानिष्ठ बनेंगे ही, साथ ही श्रमण-श्रमणी वर्ग की ज्ञान-दर्शन-चारित्र साधना में सहयोगी बन जिनशासन के प्रहरी की भूमिका निर्वहन कर सकेंगे। एक दूर द्रष्टा प्रबल पुरुषार्थी एवं जिनशासन सेवा में सर्वस्व समर्पण करने को उद्यत महापुरुष ही ऐसा साहस कर सकता था। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में रहने वाले स्वाध्यायशील श्रावकों के हृदय में, जिनशासन की सेवा करने की भावना व साहस जागृत करने एवं उनका मार्गदर्शन करने का परिणाम आज सामने है कि देश के कोने-कोने में प्रतिवर्ष सैकड़ों नहीं, वरन् हजारों शान्ति सेनानी आठ दिन के लिए अपना घर, व्यवसाय व नौकरी छोड़ कर एक मात्र चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में जिनवाणी की पावन धारा को प्रवाहित करने के लक्ष्य से अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं एवं उनके माध्यम से सैकड़ों क्षेत्रों के भाई-बहिन, पर्युषण को ही चातुर्मास मान कर सामायिक, प्रतिक्रमण, शास्त्र-श्रवण, व्रत-प्रत्याख्यान व तप त्याग से अपने जीवन को भावित करते हैं। वस्तुतः पूज्य भगवन्त वे भगीरथ थे, जिन्होंने स्वाध्याय संघ के माध्यम से जिनवाणी की पावन गंगा को शास्त्रों के पन्नों की गिरि उपत्यकाओं से बाहर निकालकर

भारत के कोने-कोने तक पहुंचाने का महान् उपक्रम किया है। **यदि उन महामनीषी द्वारा जिनशासन की जाहो जलाली हेतु जीवन पर्यन्त किये गये विभिन्न योगदानों में से मात्र इस एक अभिनव क्रान्ति को ही लिया जाय तो भी उनका नाम जिनशासन प्रभावक आचार्य भगवंतों में अग्रगण्य पंक्ति में अंकित किये जाने हेतु पर्याप्त है। युग-युग तक उन महापुरुष का नाम सामायिक स्वाध्याय के संदेशवाहक के रूप में पूर्ण समादर से स्मृत किया जाता रहेगा।** स्वाध्याय एवं आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब दोनों ही मानों एक दूसरे के पर्याय बन गये थे एवं जहां-जहां स्वाध्याय का जिक्र आयेगा वहां स्वतः ही परम पूज्य आचार्य भगवन्त का नाम लिया जायेगा व जब भी परम पूज्य आचार्य भगवन्त का नाम लिया जायेगा तो स्वाध्याय की प्रेरणा सहज ही मिल सकेगी।

स्वामी श्री अमरचन्द जी म.सा. की अस्वस्थता के कारण पूज्य श्री चातुर्मास के पश्चात् भी ठाणा ६ से जयपुर ही विराजे। उस समय प्रार्थना पर आपके अत्यन्त सारगर्भित, विचारपरक एवं हृदयग्राही प्रेरक प्रवचन हुए जो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के माध्यम से 'प्रार्थना प्रवचन' पुस्तक के रूप में जन-जन के लिए सुलभ हुए। सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना का प्रयोजन प्रतिपादित करते हुए आपने फरमाया—"जैसे अंजन नहीं चाहता कि मैं किसी की नेत्र ज्योति बढाऊँ, तथापि उसके सेवन से नेत्र की ज्योति बढ़ती ही है, उसी प्रकार निष्काम - निस्पृह एवं वीतराग सिद्ध परमात्मा भले ही किसी को लाभ पहुंचाना न चाहें, मगर उनके सेवन से, उनके ध्यान और स्तवन से अवश्य ही लाभ पहुँचता है । सिद्ध भगवान की अलौकिक ज्ञानकिरणों को, चिन्तन के काँच के सहारे, यदि हम अपने अन्तःकरण में केन्द्रित करेंगे तो अज्ञान दूर होगा, मन की अशान्ति दूर हो जाएगी और चित्त की आकुलता विनष्ट हो जाएगी।" भगवान पार्श्वनाथ जयन्ती पर सामायिक एवं एकाशन का विशेष आयोजन हुआ। जयपुर एवं जोधपुर के १३ श्रावकों ने सपत्नीक आजीवन शील-व्रत अंगीकार किया। पौष शुक्ला चतुर्दशी को पूज्य प्रवर ने अपनी ५० वीं जन्म तिथि पर १ वर्ष में पचास शीलव्रती तैयार करने का संकल्प लिया। गुरुदेव का यह संकल्प पूर्ण हुआ। प्रतिवर्ष गुरुदेव ने फिर अपने जीवन के व्यतीत वर्षों की संख्या के जितने आजीवन शील-व्रती बनाने का नियम ही बना लिया। ५१ वें वर्ष में उन्होंने ५१ शील व्रती , ५२ वें वर्ष में ५२ शील व्रती बनाये। इस प्रकार क्रमिक रूप से बढती हुई संख्या में शील-व्रती बनाने का क्रम चलता रहा। इसी प्रकार चरितनायक ने १२ व्रतधारी श्रावक भी बनाए। आपके लिये तो अपना जन्म-दिन विगत वर्ष के कार्यों का आकलन व नूतन वर्ष के लिये संकल्प का दिवस होता था।

आपके इस जयपुर प्रवास के समय आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार नामक पुस्तकालय की स्थापना हुई। गौरवशाली रत्नवंश परम्परा के पंचम आचार्य आगममहोदधि बहुश्रुत पूज्य श्री विनयचन्द्रजी म.सा. विक्रम संवत् १९५९ से १९७२ तक १४ वर्ष के लम्बे काल के लिए स्थिरवास विराजे, जिनके ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय संयम-जीवन की अनूठी छाप जयपुर के जन मानस पर अंकित है, उन्हीं महापुरुष की स्मृति में इस ज्ञान भण्डार का नामकरण उनके नाम पर हुआ। आज इस ज्ञान भंडार में हजारों प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त हस्तलिखित ग्रन्थों, पत्रों, चित्रों, पाण्डुलिपियों, ताम्रपत्रों आदि का अनूठा संकलन है। ज्ञान भंडार को व्यवस्थित करने में श्री सोहनमलजी कोठारी ने समर्पित भाव से अपनी अप्रतिम सेवाएं प्रदान की।

संवत् २०१७ की महावीर जयन्ती पर आचार्य श्री की प्रेरणा से १०८ भाइयों ने अग्राङ्कित प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं:—

१. लड़के - लड़कियों की शादी पर डोरा (बींटी) , दहेज नहीं मांगेगे।

२. प्राणी-हिंसा से निर्मित जूते, चप्पल आदि नहीं पहनेंगे।

३. मद्य-पान नहीं करेंगे। मांस, मछली, अण्डे आदि अभक्ष्य का सेवन नहीं करेंगे।

४. प्रतिवर्ष एक माह का समय धर्म-प्रचार में देंगे।

५. अपनी सामर्थ्य - शक्ति अनुसार स्वधर्मी भाई-बहनों को नौकरी, व्यवसाय, छात्रवृत्ति अथवा सेवा के द्वारा सहयोग देंगे।

६. साम्प्रदायिक झगडों से दूर रहेंगे, हो सके तो उन्हें शान्त करने, उनका समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

७. धार्मिक परिचय में अपने आपको जैन कहेंगे।

८. माल में मिलावट करके नहीं बेचेंगे।

९. आश्रित नौकर या पशु से प्रेम, स्नेह का व्यवहार करेंगे।

१०. चोरी, हत्या जैसे मामलों में सहयोगी नहीं बनेंगे।

११. महावीर जयन्ती के दिन कम से कम आधा दिन व्यवसाय बन्द रखेंगे।

१२. अपने गाँव में , गाँव के पास कसाई खाना हो, हिंसा की वृद्धि होती हो तो उसके लिए खुला विरोध करेंगे।

१३. लोगों को शाकाहार के लाभ और मांसाहार के दोष समझाकर मांसाहारियों को निरामिष-भोजी बनाने का प्रयत्न करेंगे। (कम से कम ५० मांसाहारी व्यक्तियों को शाकाहारी बनाने का संकल्प लिया गया।)

• अमरचन्दजी म. का स्वर्गवास

आषाढ़ कृष्णा ३ रविवार संवत् २०१७ (१२ जून १९६०) को प्रशान्तात्मा स्वामी श्री अमरचन्दजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। आप भयंकर असह्य वेदना में भी समता बनाए रखकर समाधिमरण को प्राप्त हुए। भोपालगढ के मूल निवासी श्री धनराजजी एवं श्रीमती सुन्दरकंवरजी बच्छावत के सुपुत्र श्री अमरचन्दजी ने १२ वर्ष की वय में पूज्य आचार्यश्री विनयचन्द्रजी म.सा. से वि.सं. १९६७ में माघ शुक्ला दशमी को दीक्षा अँगीकार की। आपको स्वामीजी श्री चन्दनमलजी म.सा. का शिष्य घोषित किया गया। आप उत्कट क्रियावान, चौथे आरे की बानगी, आहार गवेषणा के विशेषज्ञ संत रत्न थे। आपका समूचा जीवन सरलता, वत्सलता व सेवाभाव का अप्रतिम उदाहरण है। श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मोतीलाल जी गांधी के सुपुत्र श्री हीरालाल जी गांधी (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने पाँच वर्षों तक विवाह न करने की प्रतिज्ञा ली तथा जयपुर के श्री उमराव मल जी सेठ की सुपुत्री सुश्री तेजकँवर जी ने भी शील-व्रत अँगीकार किया। अमरचन्द जी म.सा. की पावन स्मृति में जयपुर संघ ने श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी की स्थापना की। लाल भवन के समीप व जैन अस्पताल के रूप में आज भी यह सोसायटी जन-सेवा में संलग्न है।

• अजमेर चातुर्मास (संवत् २०१७)

अजमेर संघ की आग्रहभरी विनति को ध्यान में रखते हुए आपने चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की तथा

जयपुर से विहार कर अजमेर नगर के महावीर भवन में चातुर्मासार्थ विराजे।

वि.सं. २०१७ के अजमेर चातुर्मास में धर्म-प्रभावना के विभिन्न कार्यों के साथ एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि यहाँ के बूचडखानों में दुधारू गायों और बैलों का जो कत्ल होता था वह आचार्य श्री के संकेत से एवं श्रावकों के प्रयास से पर्युषण के दौरान बन्द हो गया। जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र पूज्यप्रवर ने पर्युषण के आठ दिनों के सम्बन्ध में मार्मिक प्रवचन दिए। आपने फरमाया कि आठ कर्म, आठ मद एवं आठ प्रमाद छोड़ने योग्य हैं तथा पाँच समिति एवं तीन गुप्ति रूप अष्ट प्रवचन माता ग्रहण करने योग्य है। इसी प्रकार आठ सिद्धियाँ, आत्मा के आठ गुण एवं अष्टांग योग भी ग्राह्य हैं। इस प्रकार पर्युषण के आठ दिनों का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कृपानाथ ने श्रावक-समुदाय में सदाचार की महती प्रेरणा की। उल्लासपूर्ण वातावरण में तप-त्याग की शृंखला के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

• पीपाड़, भोपालगढ होकर जोधपुर की ओर

अजमेर चातुर्मास के पश्चात् चरितनायक किशनगढ़, तिहारी होते हुए विजयनगर पधारे। यहाँ आपका मंत्री श्री पुष्करमुनि जी से मधुर मिलन हुआ। फिर आप ब्यावर होते हुए निमाज पधारे जहाँ पौष शुक्ला चतुर्दशी को आपका ५१वां जन्मदिवस मनाया गया। यहाँ के नियमित शिकारी कुंवर श्यामसिंह जी ने गुरुदेव के वचनों से प्रभावित होकर शिकार का सदा के लिए त्याग कर दिया। यह कुंवरसा द्वारा अपने प्रधान बनने की खुशी में गुरु चरणों में अनुपम भेंट थी। अपने ५१ वें जन्म-दिवस के अवसर पर अध्यात्मरसिक चतिरनायक ने वर्षभर में ५१ स्वाध्यायी बनाने का संकल्प लिया तथा गतवर्ष किए गए संकल्प का पुनरवलोकन कर शीलव्रतियों एवं बारह व्रतियों की संख्या बढाने की प्रतिज्ञा की। विहार क्रम में राणीवाल ग्राम में श्री बालारामजी ने शिकार करने का त्याग किया। यहां से आप रणसीगांव, मादलिया होते हुए पीपाड़ पधारे, जहाँ मुनिश्री लाभचन्दजी म.सा. चौथमलजी म.सा. आदि का समागम हुआ। उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन की वाचनी हुई। यहाँ बंशीलालजी मुथा, हस्तीमलजी एवं चौधरी जी के बास के अजैन बन्धु ने शीलव्रत अंगीकार किया। पीपाड़ से आप रीयां पधारे, जहाँ श्री प्रेमराज जी मुणोत ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत ग्रहण किया। यहाँ से साथिन पधारने पर कोट की कचहरी में तथा रतकूडिया पधारने पर मन्दिर में व्याख्यान हुए। पूर्णिमा को मेघ-वर्षा के कारण विहार नहीं हो सका, प्रतिपदा को विहार कर भोपालगढ़ पधारे। भोपालगढ़ में शिक्षा पर आपके प्रवचन से प्रभावित होकर स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा विद्यालय समिति का गठन किया गया, जिसके संचालन का दायित्व श्री रिखबराजजी कर्णावट और श्री रतनलालजी बोथरा को सौंपा गया। साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए जिन्हें जोधपुर तथा जयपुर के ज्ञान भंडारों में भेज दिया गया। श्री चन्दनमलजी कर्णावट, धूलचन्दजी ओस्तवाल, श्री माणकचन्दजी पारख, श्री पूसाराम जी छीपा आदि ने शीलव्रत लिए। बाइयों में दया की पंचरंगी एवं बड़ी तपस्याएं भी हुई। विद्यालय के छात्रों ने व्यसन त्याग के नियम लिए। भोपालगढ से श्रमणसंघ के उपाध्यायप्रवर पूज्य चरितनायक जोधपुर पधारे।

जोधपुर के उदयभवन में गुरुदेव के अहिंसा-विषयक प्रवचन से प्रभावित होकर ठाकुर उदयसिंह जी ने शिकार आदि के रूप में आजीवन हिंसा नहीं करने और चैत्र मास में अभक्ष्य के त्याग का नियम लिया।

• स्वाध्याय एवं सामायिक की प्रवृत्ति को बढ़ावा

चैत्र शुक्ला तीज को घोडों का चौक स्थानक में दस दिवसीय स्वाध्याय शिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ जिसमें ७१ स्वाध्यायियों ने भाग लिया। पूज्यप्रवर स्वाध्याय की प्रवृत्ति को जीवन के वास्तविक निर्माण हेतु आवश्यक मानते थे। उनके सान्निध्य में हुआ यह स्वाध्याय शिक्षण शिविर श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ का सम्भवत: प्रथम शिविर था। इस शिविर में अनेक नये स्वाध्यायी श्रावक तैयार हुए। स्वाध्यायियों को स्वाध्याय संघ के माध्यम से पर्युषण पर्वाराधन हेतु अन्य क्षेत्रों में भेजना प्रारम्भ हुआ। यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। पूज्यप्रवर चरितनायक ने स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने हेतु पद्य-रचनाएँ भी की, जो लोकप्रिय हुई। आपने स्वाध्याय की मशाल को घर-घर में दीप्त करने की प्रेरणा करते हुए फरमाया—

घर घर में अलख जगा देना, स्वाध्याय मशाल जला देना।
अब जीवन में संकल्प करो ...। तन धन दे जीवन सफल करो।
अज्ञान अन्धेरा दूर करो, जग में स्वाध्याय प्रकाश करो।

आपने बिना ज्ञान के क्रिया को शून्य बतलाते हुए कहा –

श्रमणों ! अब महिमा बतलाओ, बिन ज्ञान, क्रिया सूनी गाओ।
'गजमुनि' सद्ज्ञान का प्रेम भरो....।

उनका चिन्तन था कि प्रत्येक ग्राम, नगर एवं प्रान्त में स्वाध्यायी हो –

देकर प्राणों को शासन की, हम शान बढ़ायेंगे।
हर प्रान्तों में स्वाध्यायी जन, अब फिर दिखलायेंगे॥

स्वाध्याय ही अज्ञान अन्धकार को दूर करने का उपाय है, इसलिए नित्य स्वाध्याय की प्रवृत्ति पर बल देते हुए उन्होंने फरमाया –

हम करके नित स्वाध्याय , ज्ञान की ज्योति जगायेंगे।
अज्ञान हृदय को धोकर के, उज्ज्वल हो जायेंगे॥

मनुष्य : प्राय: आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान में रहकर अपना जीवन व्यर्थ गँवाता है, पूज्य श्री ने उसे त्यागकर स्वाध्याय को स्थान देने का आग्रह किया –

घर-घर में स्वाध्याय बढ़ाओ, तजकर आरत ध्यान।
जन-जन की आचार शुद्धि हो, बना रहे शुभ ध्यान॥

मन के मैल को दूर करने का सुगम उपाय है 'स्वाध्याय'। इसलिए आप जहाँ भी पधारे, जन-जन के आत्म-विकास एवं निर्मलता हेतु स्वाध्याय की प्रेरणा करते रहे –

करलो श्रुतवाणी का पाठ, भविक जन मन मल हरने को।
बिन स्वाध्याय ज्ञान नहीं होगा, ज्योति जगाने को।
राग रोष की गाँठ गले नहीं, बोधि मिलाने को॥

ज्ञान के साथ क्रिया को आगे बढ़ाने हेतु उन्होंने 'सामायिक' को सम्बल बताया। यहाँ पर सामायिक संघ की भी स्थापना की गई। सामायिक संघ का प्रारम्भ संवत् २०१६ में हो गया था। फिर गाँव-गांव, नगर-नगर में यह संदेश प्रसारित करने का प्रयास किया गया, ताकि नियमित सामायिक करने वालों की संख्या में अभिवृद्धि हो।

सामायिक समभाव की साधना है। इसका आराधन मन की आकुलता को दूर करता है, समता एवं शान्ति प्राप्त होती है तथा समभाव के आचरण के माध्यम से जीवन उन्नत बनता है। चरितनायक ने यह संदेश पद्य में इस प्रकार गूँथा –

जीवन उन्नत करना चाहो, तो सामायिक साधन कर लो।
आकुलता से बचना चाहो, तो सामायिक साधन कर लो।

मन की निर्मलता एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति भी सामायिक से सम्भव है –

तन पुष्टि-हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला।
आध्यात्मिक बल पाना चाहो, तो सामायिक साधन कर लो।।

विकारों को जीतने, पाप-प्रवृत्तियों से बचने का सामायिक स्वाधीन उपाय है । यह जीवन निर्माण का सच्चा साधन है –

अगर जीवन बनाना है, तो सामायिक तूं करता जा।
हटाकर विषमता मन की, साम्यरस पान करता जा।।
भटक मत अन्य के दर पर स्वयं में शान्ति लेता जा।।

सामायिक से पूज्य चरितनायक ने आत्म-जीवन सुधार के साथ देश एवं समाज का सुधार भी स्वीकार किया–

सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला।
निज सुधार से देश, जाति, सुधरी हो जावेला।।

मनुष्य तन का मैल दूर करने के लिए तो प्रतिदिन स्नान करता है, किन्तु मन के मैल को दूर करने हेतु कोई उपाय नहीं करता। सामायिक इस मैल को दूर करने का प्रभावी उपाय है। चरितनायक ने इस उपाय पर बल देते हुए कहा –

करलो सामायिक रो साधन, जीवन उज्ज्वल होवेला।
तन का मैल हटाने खातिर, नित प्रति न्हावेला।।
मन पर मल चहुँ ओर जमा है, कैसे धोवेला।।

समता की प्राप्ति के बिना कोई जीव मोक्ष में नहीं जाता –

जो भी गए मोक्ष में जीव, सबों ने दी समता की नींव।

समता रूप सामायिक का दो घड़ी (४८ मिनट) का अभ्यास भी मानव को आत्मबली बना सकता है–

घड़ी दो कर अभ्यास, महान् बनाते जीवन को बलवान्।

सामायिक से मन की व्यथा को दूर कर समता की सरिता का आनन्द लिया जा सकता है –

मन की सकल व्यथा मिट जाती, स्वानुभव सुख सरिता बह जाती।

चरितनायक की भावना थी कि सामायिक संघ के माध्यम से सामायिक का घर-घर प्रचार हो एवं सामायिक का आराधन कर व्यक्ति सदाचार, सुनीति एवं प्रामाणिकता को अपना लें तो उनका जीवन सदा के लिए उन्नत एवं सुखी हो जाएगा। मनुष्यलोक में स्वर्ग का दर्शन हो जाएगा–

निर्व्यसनी हो, प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो।
संसार में पूजा पाना हो, तो सामायिक साधन कर लो।।

चैत्रकृष्णा चौथ को चरितनायक श्री थानचन्दजी मेहता के यहाँ ठहरते हुए पंचमी को सरदारपुरा पधारे। महावीर जयन्ती पर प्रवचन बड़े प्रभावकारी रहे। इस दिन श्री शैतान चन्द जी बारणी वाले, श्री कालूजी नाहर, श्री खेमचन्द जी सिंघवी एवं श्री दशरथमलजी लोढा ने आजीवन शीलव्रत का नियम अंगीकार किया। संवत् २०१८ के चातुर्मास हेतु सैलाना, भीलवाड़ा, भोपालगढ़ हरसोलाव, पाली और जोधपुर संघ ने पुरजोर विनति प्रस्तुत की। पूज्यप्रवर ने जोधपुर संघ की विनति को स्वीकार कर लिया। चैत्र मास की आयम्बिल ओली एवं महावीर जयन्ती के अवसर पर सैंकडों आयम्बिल, एकाशन एवं दयाव्रत हुए।

• बालोतरा की ओर

बालोतरा संघ का अत्याग्रह होने से चरितनायक ने बालोतरा की ओर विहार किया। विहार के समय बड़ी संख्या में श्रावक-श्राविकाएँ बासनी तक पहुँचे। सालावास में आप केशरीमलजी बागरेचा के नोहरे में विराजे। यहाँ भीखमचन्दजी एवं दीपचन्दजी कवाड अच्छे धर्मप्रेमी थे। रेलवे लाइन के पास से आठ नौ मील चलकर लूणी जंक्शन पधारे। यहाँ से कच्चे रास्ते से सथलाणा, भासन्ना होते हुए वैशाख कृष्णा अष्टमी को आप दुन्दाड़ा पधारे। भगवान पार्श्वनाथ की प्रार्थना के मधुर पद्य गाकर मांगलिक सुनाया। यहाँ मंदिर और स्थानक के पटिये के सम्बंध में बहुत मतभेद था। आचार्यश्री ने सबकी बातों को शान्तिपूर्वक सुनकर समरसता का संचार किया।

अजीत से भलडारावाड़ा होते हुए चरितनायक समदड़ी पधारे। यहां आपके धर्म के स्वरूप विषयक प्रभावशाली प्रवचन हुए। भक्तों ने प्रश्नचर्चा भी की। इस विषयक सारांश चरित नायक की डायरी के आधार पर उद्धृत किया जा रहा है-

"धर्म हृदय की बाड़ी में उत्पन्न होता है, वह किसी खेत में पैदा नहीं होता, न किसी हाट दुकान पर ही मिलता है। वह तो हृदय की चीज है। राजा हो या रंक, जिसके मन में विवेक है, सरलता है जड़ चेतन का भेदज्ञान है, वहीं वास्तव में धर्म का अस्तित्व है।

सत्य से धर्म की उत्पत्ति होती है। चोर, लम्पट और हत्यारा भी सत्यवादी हो तो सुधर सकता है। यदि सत्य नहीं तो अच्छे से अच्छा सदाचारी और साहूकार भी गिर जाता है, बिगड़ जाता है।

धर्मरूप कल्पवृक्ष की वृद्धि दया-दान से होती है। इसलिए कहा है कि "दयादानेन वर्धते"। बढ़ा हुआ धर्मवृक्ष क्षमा के बिना स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये कहा है कि "क्षमया च स्थाप्यते धर्मः" सहिष्णुता-क्षमा से धर्म की रक्षा होती है, कामादि विकार सहिष्णु साधक को पराभूत नहीं कर सकते।"

धर्म का नाश किससे होता है? इसके उत्तर में चरितनायक ने फरमाया कि "क्रोधलोभाद् विनश्यति" क्रोध और लोभ से धर्म का नाश होता है। जहां प्रशांत भाव के बदले क्रोध का प्रभुत्व है, वहां ज्ञानादि सद्गुण सुरक्षित नहीं रहते, आत्मगुण नष्ट हो जाते हैं। लोभ भी सब सद्गुणों का घातक है, इसलिये इन दोनों को धर्मनाशक कहा गया है।

सृष्टि की आदि कब से है और कैसे हुई? इसका समाधान करते हुए आप श्री ने फरमाया-"सबसे पहले आप को एक अनादि सिद्धान्त ध्यान में लेना चाहिये कि "नाऽसतो विद्यते भावो, नाऽभावो विद्यते सतः" सर्वथा असत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती और सत् पदार्थों का सर्वथा नाश नहीं होता। आप जानते हैं कि सुवर्ण की डली को भस्म बनाकर उड़ा दिया जाये तब भी परमाणु रूप में सोना कायम ही रहता है। इसी प्रकार संसार के जड़ चेतन पदार्थ भी सदा विद्यमान रहते हैं, कभी

उनका सर्वप्रथम निर्माण हुआ हो ऐसा नहीं, जड़ चेतन का विभिन्न रूप में संयोग ही सृष्टि की विचित्रता का कारण है।

यदि ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं और जीव स्वयं ही अपना कर्मफल भी भोग लेता है तो ईश्वर की विशिष्टता ही क्या रहेगी? इसका समाधान करते हुए चरितनायक ने फरमाया "ईश्वर की विशिष्टता सृष्टि कर्तृत्व आदि की दृष्टि से नहीं, किन्तु उसके गुण विशेषों से है। ईश्वर शुद्ध, बुद्ध, पूर्ण और मुक्त है। जीव को उसके ध्यान, चिन्तन एवं स्मरण से प्रेरणा और बल मिलता है। आत्म शुद्धि में ईश्वर का ध्यान खास निमित्त है। उसको जीव के कर्मभोग में सहायक मानना अनावश्यक है। गीता में स्वयं श्री कृष्ण कहते हैं-न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं, स्वभावस्तु प्रवर्तते। प्रभु न संसार का कर्तृत्व और न कर्म का ही सर्जन करते हैं, कर्म फल का संयोग भी नहीं करते, वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि वह प्रवृत्त होता है। सोच लीजिये आपके दो बालक हैं एक अधिक प्रेम पात्र है और दूसरा कम। जो प्रेम पात्र है वह भंग की पत्तियां घोट कर पीता है और जिस पर कम प्रेम है वह ब्राह्मी की पत्तियां घोटकर पीता है। प्रेमपात्र नहीं होने पर भी जो ब्राह्मी का सेवन करता है, उसकी बुद्धि बढ़ेगी या नहीं और जो प्रेमपात्र होकर भी लापरवाही से भंग पीता है उसकी बुद्धि निर्मल और पुष्ट हो सकेगी क्या? जैसे ब्राह्मी से बुद्धि बढ़ना और भंग से ज्ञान घटना इसमें किसी गुरु की कृपा अकृपा कारण नहीं है। वैसे ही भले बुरे कर्म भी जीव के द्वारा ग्रहण किये गये, बिना किसी न्यायाधीश के अपने शुभाशुभ फल देने में समर्थ होते हैं। बाल जीवों को ईश्वर की ओर आकृष्ट करने के लिये हो सकता है कि विद्वानों ने उसे एक राजा की तरह बतलाया हो, पर वास्तव में ज्ञान दृष्टि से सोचने पर मालूम होगा कि ईश्वर तो शुद्ध एवं द्रष्टा है, वह हमारी तरह कर्म या कर्मफल भोग का कर्त्ता धर्त्ता नहीं है।

जीव स्वयं चेतनाशील होने से कर्म का कर्त्ता, भोक्ता और संहर्ता है। जड़ चेतन का अन्तर ही यह है कि जड़ चलाये चलता, डुलाये डुलता, दूसरे के संभाले संभलता है, किन्तु चेतन स्वयं चलता, डुलता एवं अपने बिगाड़ को अनुभव कर अनुकूल निमित्त भी स्वयं मिला पाता है। यह घड़ी बिगड़ जाने पर भी स्वयं घड़ीसाज के पास नहीं जाती, पर अपने शरीर में बिगाड़ हो और मन में संशय हो तो उसको मिटाने आप, हम स्वयं चिकित्सक और गुरु के पास जाते हैं। अतः उसके लिए किसी फलदाता की आवश्यकता नहीं है। रामायण में तुलसीदास भी कहते हैं कि-'कर्मप्रधान विश्वकरि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।' गीता में कृष्ण ने अक्षर ब्रह्म को कूटस्थ कहा है, जैसे-

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।"

साकार और निराकार के विषय में समाधान करते हुए आप श्री ने फरमाया-"संसार में दो प्रकार की धार्मिक परम्पराएं चिरकाल से चली आ रही हैं, एक प्रतीक प्रतिमा के द्वारा पूज्य देव की पूजा करती है तो दूसरी परम्परा स्मरण एवं जप स्तुति द्वारा गुणों को याद कर पूज्य की पूजा करती है। यदि प्रतीक और प्रतिमा को ही कोई देव मान कर पूजता है तो गलत है।

लोक देव-पूजा के स्थान पर प्रतीक पूजा करते हैं और देव के नाम पर बड़ा आडंबर तथा हिंसा करते हैं। यह गलती है। पूज्य और पूजा का विवेक होना चाहिये।" यहां आपके प्रवचन पीयूषामृत से प्रभावित होकर श्री सोहनमल जी एवं ठाकुर फौजमलजी ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

समदड़ी से विहार कर पूज्य प्रवर पारलू पधारे। यहां व्याख्यान में विजय कुंवर का प्रसंग होने से एक सजोड़े शील का खंध हुआ। यहां से कानाना फरसते हुए ५.३० बजे आपका विहार जानियाना के लिए हुआ। रास्ते में सवा छह बजे आप बारहमासी क्वार्टर के पास नीम वृक्ष के नीचे रात्रिवास हेतु ठहरे। दूसरे दिन, जानियाना से आप धोवन पानी लेकर बालोतरा पधारे।

अक्षय तृतीया पर आप बालोतरा बिराजे, जहाँ लूणी, सालावास, करमावास, पाली, जयपुर, अजमेर, जोधपुर आदि स्थानों से आए हुए २० तपस्वियों के पारणे सम्पन्न हुए। इस अवसर पर १३ दम्पतियों (श्री धींगडमलजी बाफना, श्री केसरीमलजी, श्री बुधमलजी पाटोदी वाले, श्री लक्ष्मणजी भण्डारी, श्री मुलतानमल जी भंसाली, श्री मुकनचन्दजी पचपदरा वाले, श्री प्रेमजी गुडवाले, श्री सांवल जी , श्री तुलसीरामजी, श्री मिश्रीमलजी पाटोदी वाले, श्री भगवानदासजी हुण्डिया, श्री हजारीमल जी एवं श्री प्रभुलाल जी) ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

यहाँ व्याख्यान में एक दिन बालकों में धर्म-जागृति विषयक प्रवचन से प्रभावित होकर श्रावकों ने परस्पर विचार-विमर्श कर धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ करने की घोषणा की। यह पाठशाला सम्प्रति श्री वर्द्धमान आदर्श विद्या मंदिर के नाम से नियमित रूप से चल रही है, जिसमें एक कालांश धार्मिक अध्ययन का होता है। इसमें जैन-जैनेत्तर सभी छात्र जैन धर्म-सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं।

यहाँ से आपश्री सात किलोमीटर दूर स्थित खरतरगच्छीय बड़ा भंडार देखने पधारे। यति सुमेरमलजी, यति माणकचन्द जी ने पूर्ण सहयोग किया। वहाँ भगवती सूत्र और सचित्र कल्पसूत्र दर्शनीय थे। यहाँ छह व्यक्तियों ने सपत्नीक शीलव्रत स्वीकार किया। कुरूढियों के निवारण की भी आचार्य श्री ने महती प्रेरणा की। इस प्रकार क्षेत्र पर उपकार व धर्मोद्योत करते हुए आप बालोतरा से ७ मील का विहार कर पचपदरा पधारे जहाँ तीनों समय व्याख्यान होने लगे। कभी यहाँ ओसवालों के ७०० घर थे, वर्तमान में १००-१२५ घर हैं। केशरीमलजी लादानी यहाँ के प्रमुख श्रावक थे। सेठ गुलाबचंद जी ने सामाजिक एकता का प्रयास किया। पचपदरा से पाटोदी का ११ मील का विहार अत्यन्त विकट था। पाँवों के नीचे चुभती कंकरीली भूमि एवं ऊपर से तपता हुआ आकाश मानो मुनि धर्म के परीषहों एवं योगीराज की सहिष्णुता का परिचय ले रहा था। पुनः पचपदरा होते हुए बालोतरा पधारने पर आपकी प्रेरणा से ज्येष्ठ शुक्ला ३ को धार्मिक पाठशाला की स्थापना हुई। चरितनायक ने यहाँ आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा दी। आपने फरमाया— "सत्य, सरलता और सादगी ही साधु का भूषण है। धर्म में गणना का महत्त्व नहीं, गुणों का महत्त्व है।" धर्म और विज्ञान के सम्बन्ध में आपने फरमाया —

१. धर्म विज्ञान का सहारा ले तो मानव की दुर्बलता है।

२. विज्ञान धर्म की शरण ले तो इसमें विश्व की रक्षा है।

३. विज्ञान आरम्भ-परिग्रह को बढ़ाने वाला है।

४. विज्ञान से मानव-मन में लालसा बढ़कर अशान्ति पैदा होती है।

५. धर्म लालसा का शमन कर मानव मन को शान्ति प्रदान करता है।

६. निष्कपट प्रेम ही विश्व को सुखी करने वाला है। (गुरुदेव की डायरी से)

५१ दयाव्रत के पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को यहाँ से विहार कर आप जसोल पधारे, जहाँ आपका रात्रि-प्रवचन हुआ।

प्रातः काल आसोतरा के रास्ते में तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. से आपका स्नेह मिलन हुआ। कुसीप में ठाकुर हणवंतसिंह जी को मद्यमांस का त्याग कराकर एवं श्री जेठमलजी को शीलव्रत का स्कन्ध कराकर आप सिवाना पधारे। जालोर संघ की प्रबल भावना को दृष्टिगत कर आपने बालवाड़ा होते हुए जालोर की ओर विहार किया। विहार क्रम में आप बिशनगढ होते हुए तिरखी पधारे। यहाँ पर जिला श्रावक संघ की सभा हुई, जिसमें स्वाध्याय और सामायिक संघ को प्रसारित करने का निर्णय लिया गया। श्री कल्याणविजय जी म. आदि ठाणा ३ का प्रेममिलन हुआ। यहाँ आपकी प्रेरणा से भंडार की प्रतिलेखना कर सूची तैयार की गई। जालोर में आपने लगभग ५० भाइयों को प्रार्थना एवं सामायिक का संकल्प कराया।

जालोर से देवावास, भंवराणी होते हुए चरितनायक खंडप पधारे, जहाँ तीन दिन विराजे। आप श्री के उद्बोधन से प्रभावित होकर श्री लूंकड जी ने मुख्याध्यापक जी के सहयोग से धार्मिक-शिक्षण की व्यवस्था की। यहाँ के अमर जैन ज्ञान भंडार में लगभग ११५० पुस्तकें एवं १७० के लगभग हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। इसकी व्यवस्था में धनराजजी लूंकड का प्रयत्न प्रशंसनीय है। यहाँ से विहार कर आप भोंरडा, धाणा, गेलाव-मांडावास, जेतपुरा होते हुए रूपावास पधारे, जहाँ वर्षा के कारण आहारादि का योग भी नहीं बना। यहाँ से विहार कर आपका पाली पदार्पण हुआ।

• पाली पदार्पण

द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् २०१८ को आपने पाली समाज में व्याप्त कलह को दूर करने की दृष्टि से प्रेरणाप्रद उद्बोधन दिया। दोनों पक्षों ने मंत्रणा कर गुरुदेव से निवेदन किया कि उनके विराजने से सुलह हो जाएगी और अन्ततः तपःपूत तेजस्वी सन्त पूज्य गुरुदेव की वाणी के प्रभाव से सोहनराजजी डोसी, घीसूजी, सम्पतजी कोठारी, विजय जी बालिया आदि श्रावकों ने सक्रिय भूमिका निभायी एवं परस्पर सुलह कर, पूज्य श्री की जय-जयकार बोलते हुए दोनों दलों ने आकर रात्रि १०.३० बजे मंगलपाठ सुना। गुरुदेव ने अखंड जाप की प्रेरणा की, पक्खी को अखंड जाप हुआ। २० दिनों तक यहाँ धर्माराधन का ठाट रहा। यहाँ से आगामी चातुर्मासार्थ जोधपुर की ओर विहार हुआ। मार्ग में पुनायता, चोटिला, रोहट, लूणी, सालावास में जैन-अजैन बन्धुओं को अनछना पानी, बीड़ी सिगरेट आदि का त्याग कराया। चोटिला में दर्जी एवं ब्राह्मण भी नमस्कार मन्त्र का जाप करते हैं। गुरुदेव ने इन्हें स्वधर्मिबन्धु कहा।

• जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०१८)

विक्रम संवत् २०१८ का चातुर्मास जोधपुर के सिंहपोल में ठाणा ८ से विशेष प्रभावशाली रहा। इस चातुर्मास में अनेक स्वाध्यायी बन्धु तैयार हुए। ५१ लोगों ने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया, चार मासखमण तप हुए। अनेक व्यक्तियों ने १२ व्रत अंगीकार किये। सामायिक एवं स्वाध्याय का शंखनाद हुआ। चातुर्मास की सफलता के मापदण्ड के आज के परिप्रेक्ष्य में यह समझना आवश्यक है कि त्यागी महापुरुषों के सान्निध्य में सम्पन्न त्याग-प्रत्याख्यान और व्रत-ग्रहण ही उनकी सच्ची सेवा है, उनकी सच्ची भक्ति है। निज-पर कल्याणकारी महापुरुषों के जीवन का यही लक्षण है कि उनकी स्वयं की साधना के विकास के साथ उनके सान्निध्य में आने वाले भक्तजन भी पापों से विरति कर संवर, संयम-साधना से जुडें। चरितनायक पूज्य प्रवर चातुर्मास खोलते समय भी इसी लक्ष्य को प्रधानता देते व इसी से प्रमुदित होते। चातुर्मास में आडम्बर, आवागमन व आयोजनों से चातुर्मास को

ऐतिहासिक , अभूतपूर्व व सफल मानने से वे कभी सहमत नहीं हुए।

आपने समभाव की साधना पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुये फरमाया - "जब भी कोई साधक साधना के महत्त्व को हृदयंगम कर उसके वास्तविक स्वरूप को अपने जीवन में उतारता है, तब उसे एक नया मोड़, आत्मानंदी अवस्था का अनुभव होता है।

श्रावक के बारह व्रतों में नवमां सामायिक व्रत तथा श्रमण-जीवन की हर पल, हर क्षण की सामायिक एक ऐसी साधना है जो तन और मन से साधी जाती है और लक्ष्य को सिद्ध करती है। इस व्रत की आराधना में तन की दृष्टि से इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित कर एक स्थान पर एकाग्रता से शारीरिक स्थिरता लाई जाती है तो मन की दृष्टि से विचारों के उद्वेग एवं मन के चांचल्य स्वभाव का निरोध कर उसे आत्मोन्मुखी बनाने का प्रयत्न किया जाता है। मन में क्षण-प्रतिक्षण जो नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं, सामायिक का समभाव उन पर नियन्त्रण कर चित्त-शुद्धि लाता है।

इस संसार में जितने भी दुःख, द्वन्द्व, क्लेश और परेशानियाँ हैं, वे सभी चित्त के विषमभाव की देन हैं। इनसे यदि बचना है, इनको यदि दूर रखना है अपने से, तो उसका एक मात्र उपाय है - समभाव की साधना, सामायिक-व्रत की आराधना। समभाव ऐसा अमोघ कवच है, जो प्राणि-मात्र को हर प्रकार के आघात से सुरक्षित कर सकता है। जो भाग्यवान समभाव के सुरम्य सरोवर में सदा अवगाहन करता रहता है, उसे संसार का कोई ताप पीड़ा नहीं पहुंचा सकता । समभाव वह लोकोत्तर रसायन है, जिसके सेवन से समस्त आन्तरिक व्याधियाँ एवं वैभाविक परिणितियाँ नष्ट हो जाती हैं। आत्मा रूपी निर्मल गगन में जब समभाव का सूर्य अपनी प्रखरता के साथ उदित होता है तो राग, द्वेष, मोह आदि उलूक विलीन हो जाते हैं। आत्मा में तब अपूर्व ज्योति प्रकट हो जाती है और उसके समक्ष आलोक ही आलोक प्रसारित हो उठता है।" यहां सामायिक संघ की विधिवत् स्थापना कर उसके कार्यों को गति दी गई।

चातुर्मास काल में श्रावणकृष्णा १३ को किशनगढ में महासती छोटा हरकँवरजी का स्वर्गवास हो गया। महासती जी के संयममय जीवन की जानकारी देते हुए श्रद्धांजलि दी गई।

जोधपुर-चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर चरितनायक मार्गशीर्ष प्रतिपदा को डागा बाजार होते हुए श्री नरसिंहदास जी लूंकड की फैक्टरी में विराजे, जहाँ आपके व्याख्यान से प्रभावित होकर सरदारमल जी लूंकड़ ने वर्ष भर में बारह व्यक्तियों को हिंसा छुड़ाने एवं दानादि के अनेक नियम स्वीकार किये। पचासों बहनों ने सामायिक में मौनव्रत रखने की प्रतिज्ञा की।

चरितनायक यहां से विहार कर महामन्दिर पधारे व ढालिया स्थानक में विराजे। जैन स्कूल में हुए रविवारीय प्रवचन में पूज्य चरितनायक ने फरमाया—"साधना के अंतरंग एवं बहिरंग साधन हैं। आहारशुद्धि, सत्संग और आवास शुद्धि बहिरंग साधन हैं तथा त्याग, विराग एवं अभ्यास अंतरंग साधन हैं। इनमें त्याग महत्त्वपूर्ण है। त्याग ही सफलता की कुञ्जी है। त्याग से ही धर्म-बीज फलता-फूलता है।" मंगलवार के प्रवचन में फरमाया — "संघ की आवश्यकताओं का विचार कर श्रावक-श्राविकाओं को भी धर्म नायक का सहकारी होना चाहिए। साधु की अपेक्षा श्रावक के धर्मप्रसार का क्षेत्र विशाल है।" धार्मिक-शिक्षण की आवश्यकता पर जोर देते हुए आपने फरमाया कि अपने बालवर्ग में भी धर्म शिक्षा का प्रसार नहीं हो, यह हास्यजनक स्थिति है।

• भोपालगढ़, नागौर होकर अजमेर

महामन्दिर से बनाड होते हुए चरितनायक दहीखेड़ा पधारे। मार्ग में काँटेदार भुरट बहुत थे, अतः सन्तों ने कष्टपूर्वक मार्ग तय किया। फिर बुचेटी से मार्गशीर्ष कृष्णा ९ को दोपहर का ध्यान कर एक बजे बडा अरटिया के लिए विहार हुआ। रास्ता धूलभरा था। नांदिया होते हुए अरटिया पधारे, जहाँ एक कमरे में रात बितायी। छोटा अरटिया में दशमी का मौनव्रत था। कुड़ी में पटेल हरखा जी के पुत्र, दरजी, रेंवतरामजी आदि की भक्ति अच्छी रही। यहाँ के अनेक भक्त चौधरी परिवार नियमित सामायिक व धर्माराधन के साथ अच्छी श्रद्धा वाले हैं। इस विहार क्रम में श्री ब्रह्माचंदजी भंडारी ने विशेष सेवा की। यहाँ से बडलू (भोपालगढ) पधारने पर आपने जैनरत्न विद्यालय में 'विद्यार्थी, विद्या और विद्वान्' विषय पर प्रवचन फरमा कर बालकों को झूठ, चोरी , नशा और वर्ष में २ से अधिक चित्रपट (फिल्म) देखने का त्याग कराया। संस्कारशीलता की प्रेरकशक्ति चरितनायक में अनुपम थी। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को ध्यान के पश्चात् विहार कर नारसर होते हुए वारणी पधारे, जहाँ महासती जैनमतीजी, केसरजी आदि ठाणा छह से दर्शनार्थ पधारी। रजलाणी से भी तेरह सतियाँ दर्शनार्थ आयीं। एक किसान ने भेड़-बकरे बेचने और तम्बाकू पीने का त्याग किया। यहाँ से आसावरी, रूण, खजवाणा पधारे। यहां नमस्कार मन्त्र के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए फरमाया – **"आत्मिक विकास की अपेक्षा से ही अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को आराध्य माना गया है। ये पाँचों ही स्तुति योग्य, नमन योग्य और पूज्य हैं। चैतन्य एवं उपयोग गुण से सभी जीव समान हैं, किन्तु रागादि विकारों की अधिकता और ज्ञान की क्षीणता से जीव निंदा योग्य तथा रागादि की हीनता और ज्ञान की अधिकता से स्तुति योग्य होता है। जैन धर्म में इस मंत्र की बड़ी भारी महिमा बतलायी गयी है। दुःखी-सुखी आदि किसी भी अवस्था में इस मंत्र का जप करने से समस्त पापों का क्षरण हो जाता है।"** फिर मूंडवा होते हुए नागौर पधारे।

नागौर में आपका मूर्तिपूजक संत पूज्य पदमसागर जी म.सा. से पौष कृष्णा पंचमी को प्रेम मिलन हुआ। उन्होंने अपने यहाँ के शास्त्र दिखलाये। उत्तराध्ययन सूत्र की एक प्रति आपको भेंट की गई। अठियासण होते हुए कुचेरा पहुँचने पर स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी महाराज, पंडित श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' आपको लेने सामने पधारे। पौष कृष्णा दशमी को छात्रों ने पार्श्वनाथ जयंती मनाई। आपश्री ने मौन होते हुए भी व्याख्यान देकर श्रोताओं को वीतराग वाणी से तृप्त किया एवं स्थायी लाभ हेतु सबको स्वाध्याय की प्रेरणा की। यहाँ पर मंत्री जी महाराज के साथ संघ की समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ। उनमें से प्रमुख हैं-

१. गत काल से अब तक नियमों का पालन किसके द्वारा कैसा हुआ ?

२. अधिकारी मुनियों ने अपने अधिकार का किस हद तक पालन किया ?

३. समाचारी के भेद मिटाना, एकरूपता लाने का प्रयास करना आदि।

यहाँ से पूज्यप्रवर बुटाटी पधारे। प्रातःकाल आपने दुःखमुक्ति हेतु तप, जप और स्वाध्याय-साधना की प्रेरणा की। बुटाटी में सत्संग का जागरण करने वालों से ब्रह्म एवं माया पर चर्चा हुई। कई भाइयों को माला फेरने एवं कम नहीं तोलने का नियम कराया। रेण होते हुए पौष कृष्णा १३ को मेड़ता पहुंचे। पौष शुक्ला तीज को भूधरजी म.सा. के जीवन पर प्रवचन करते हुए आपने शास्त्रों के रक्षण व स्वाध्याय की प्रेरणा की। अनन्य गुरुभक्त श्री हेमराजजी डोशी ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर गुरुचरणों मे श्रद्धा अभिव्यक्त की। यहाँ के उत्साही भक्त श्री जौहरीमलजी

ओस्तवाल व श्री डोशी जी के उल्लेखनीय प्रयासों से भूधर जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना हुई। श्री भूरमलजी बोकड़िया की अध्यक्षता व श्री जतनराजजी मेहता के मंत्रित्व में पुरातत्त्व साहित्य के संरक्षण का निश्चय किया गया। यहाँ स्थित मन्दिर के भण्डार का पूज्य प्रवर ने तीन घण्टे अवलोकन किया। इसमें ४०-४५ पुट्ठे थे एवं पाँचवी शताब्दी से पूर्व का भी साहित्य उपलब्ध था। कल्याणकर पूज्यवर ने भण्डार को व्यवस्थित करने की प्रेरणा की। यहाँ से गवारडी होते हुए आप छोटी पादू पधारे। करुणानाथ ने छोटी पादू आना यहाँ की फूट समाप्त होने के आश्वासन पर स्वीकार किया था। अतः आपके पदार्पण से पारस्परिक कलह, प्रेम के सुखद वातावरण में बदल गया। प्रवचन में 'दुःख का कारण कषाय है' ऐसा समझाते हुए क्रोध के सम्बन्ध में दुर्योधन का उदाहरण दिया, जिससे महाभारत का युद्ध हुआ। बडी पादू के उपाश्रय के खम्भे पर संवत् १७४८ के दो शिलालेख थे, जिनकी नकल श्री जतनराजजी मेहता मेड़ता ने की। प्रवचन में आप श्री ने फरमाया –"संसार का राग देव, गुरु एवं धर्म के प्रति अनुराग में बदल दो। तन, धन एवं कुटुम्ब का राग संसार का फेरा बढ़ाने वाला है और देव, गुरु एवं धर्म के प्रति अनुराग फेरा घटाने वाला है।" विहार में श्रावकों का प्रेम द्रष्टव्य था। मेवड़ा पहुंचने पर आपने शान्तिनाथ की प्रार्थना के साथ शान्तिनाथ भगवान के पूर्वभव मेघरथ राजा का परिचय देते हुए प्रवचन फरमाया कि मेघरथ ने कबूतर की रक्षा के लिये अपने प्राणों की परवाह नहीं की, वचन को निभाया । इसलिये शान्तिनाथ के रूप में माता के उदर में आते ही सर्वत्र शान्ति हो गई। तापत्रय को मिटाने हेतु पूज्य श्री ने गाँव-गाँव एवं घर-घर में शान्तिनाथ की प्रार्थना करने हेतु प्रेरणा की। चरितनायक कई बार भगवान शान्तिनाथ की स्तुति करते थे। आत्मिक शान्ति हेतु प्रभु शान्तिनाथ पर उन्होने प्रार्थना की रचना भी की, जिसमें सर्वत्र शान्ति की भावना भायी गई है –

भीतर शान्ति, बाहिर शान्ति, तुझमें शान्ति मुझमें शान्ति।
सबमें शान्ति बसाओ, सब मिल शान्ति कहो ॥

मेवड़ा से भेरूंदा, थांवला एवं तिलोरा में भोग से योग की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा करते हुये सन्तमण्डल सहित आपका अजमेर नगर में पदार्पण हुआ।

अजमेर में पौष शुक्ला द्वादशी, १७ जनवरी, १९६२ को ओसवाल हाई स्कूल के विशाल प्रांगण में आपश्री के श्रीमुख से श्रीमती इचरज कुंवर जी (धर्मपत्नी श्री मोहनलाल जी नवलखा) की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। इस अवसर पर जयपुर निवासी श्री केवलचन्दजी हीरावत, श्री किशोर चंदजी बोथरा व ब्यावर के श्री मिश्रीमलजी बोथरा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। पौष शुक्ला चतुर्दशी को पाली, जयपुर और सैलाना की विनतियाँ हुईं।

• आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का स्वर्गवास

माघकृष्णा दशमी को अजमेर में प्रातःकाल जंगल से लौटते ही ज्ञात हुआ कि रेडियो की खबर के अनुसार आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है। इस समाचार को सुनते ही पूज्य हस्ती अवाक् रह गए। सभी सन्तों ने कायोत्सर्ग किया। इस शोक में पूरा अजमेर बंद रहा। मुस्लिम भाइयों को प्रेरणा देने से उन्होंने भी कत्लखाने बंद रखे। अपराह्न दो बजे श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई जिसमें चरितनायक ने फरमाया कि आत्माराम जी म.सा. जैसे आचार्यों का जीवन- चरित्र प्रेरणाओं का झरना होता है जो अविरल बहता रहता है। उन्होंने आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन सार्थक करने को कहा। आपश्री ने बताया कि स्व. आचार्य श्री आत्माराम जी म. के जीवन को दो विशेषताएँ थी। प्रथम तो वे सतत स्वाध्यायनिरत रहते थे। शास्त्रों एवं ग्रंथों का

अध्ययन, मनन, चिन्तन उनकी दिनचर्या थी। दूसरा इस गहन अध्ययन व मनन से उत्पन्न विचारों को लेखनबद्ध कर नवीन ग्रंथों का आलेखन किया करते थे। चरितनायक ने संस्कृत भाषा में 'आत्माराम-अष्टक' बनाकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। तीन दिन शान्तिजाप चला।

अपराह्न में आगम-वाचना का क्रम पूज्यप्रवर की नियमित दिनचर्या का अंग था। अजमेर में बृहत्कल्प सूत्र की वाचना पूर्ण होने पर माघ शुक्ला २ को निशीथसूत्र की वाचना प्रारम्भ की गई। श्रावकों में साप्ताहिक सामूहिक स्वाध्याय प्रारम्भ कराया।

• किशनगढ होकर विजयनगर

अजमेर में २७ दिन विराज कर आपने मदनगंज की ओर विहार किया। पुलिस लाइन के पीछे लोहारवान के क्वार्टर में रात्रि बितायी। फिर माघ शुक्ला चतुर्दशी को १४ मील का विहार कर ध्यान का समय होने पर दोपहर १२ बजे सड़क पर ही ध्यान किया एवं दिन में १.३० बजे मदनगंज के उपाश्रय में पदार्पण किया।

मदनगंज में माघपूर्णिमा के पावन दिवस पर गुरुदेव ने फरमाया –**'आत्मा का स्वरूप समझकर विकार दूर कीजिए। पानी गर्म होकर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, आग को बुझा ही देता है। इसी प्रकार क्रोधादि की अवस्था में भी हम अपना गुण क्यों छोडें। मनुष्य को काच के बर्तन की तरह कमजोर नहीं होकर सुवर्ण पात्र की तरह ठोस होना चाहिए। कांचभाण्ड के समान मूर्ख व्यक्ति जरा सी ठेस में टूट जाता है, स्वार्थ की चोट से उसका प्रेम वैर में परिणत हो जाता है । परन्तु ज्ञानी सुवर्ण भाण्ड के समान होता है। बड़ी चोटों या प्रहारों से भी वह सहसा टूटना नहीं जानता। आप सुवर्ण भाण्डसम बनें, कांच भाण्ड सम नहीं। स्वर्ण और पानी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते, तब हम चेतन मानव अपना शान्त, शुद्ध स्वभाव कैसे छोड़ सकते हैं। जरा शान्त मन से सोचिए।"**

आपके प्रवचन व प्रेरणा से कई व्रत-प्रत्याख्यान हुए, बारह श्रावकों ने प्रतिमाह दया-पौषध का नियम लिया। मदनगंज से आपका किशनगढ पदार्पण हुआ। यहाँ आपने संघ में ऐक्य व समन्वय के लिए महती प्रेरणा की। संघ-एकता के लिए बैठक रखी गई। रावसा पारख एवं श्री कुन्दनमल जी नाहर के सत्प्रयत्नों से बैठक सफल रही। यहाँ से गोधियाणा, तिहारी, कानपुरा मंडाणी, नसीराबाद, झडवासा, बांदनवाड़ा सिंगावल आदि ग्रामों में व्यसन-मुक्ति, धर्म शिक्षण, स्वाध्याय, सामायिक आदि की प्रेरणा करते नसीराबाद होते हुए विजयनगर पधारे, जहाँ स्वामी जी श्री पन्नालाल जी म.सा. के सन्त आपकी अगवानी के लिए आए।

विजयनगर के प्रांगण में स्थविर पद विभूषित पण्डितरत्न श्री पन्नालालजी म.सा., मंत्री श्री पुष्कर मुनि जी म.सा. एवं चरितनायक ने श्रमण-संघ की स्थिति पर विचार विनिमय कर प्रस्ताव तैयार किया–"समस्त स्थानकवासी समाज के अन्तर्मानस की भव्य-भावना को लक्ष्य में रखकर श्रद्धेय आचार्य श्री और उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के चरणारविन्दों मे निवेदनार्थ हमने एक प्रस्ताव भी निर्मित किया, पर ३० नवम्बर १९६० को उदयपुर में उपाचार्य श्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण संघ से अलग घोषित किया, जिसे हम संघ-हितकर नहीं मानते हैं। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुनः संघहित व जिनाशासनोन्नति को लक्ष्य में रखकर इस पर गंभीरता से विचार करें और उलझी हुई समस्याओं को परस्पर विचार-विमर्श द्वारा किसी माध्यम से हल करके संघ-श्रेय के भागी बनें।

हमारा यह दृढ मंतव्य है कि वर्तमान में हमारी आचार-व्यवस्था किन्हीं कारणों से शिथिल हो गई है। अत: उस पर कड़ा नियन्त्रण आवश्यक है, क्योंकि आचार-निष्ठा में ही श्रमण संघ की प्रतिष्ठा है। हम चाहते हैं कि प्रमुख मुनिवरों के परामर्श से शिथिलाचार को आमूल नष्ट करने के लिये दृढ कदम उठाया जाय। हम शिथिलाचार को हर प्रकार से दूर करने के लिय तैयार हैं। जब तक संघ में पारस्परिक मतभेद दूर होकर इसके लिए सुव्यवस्था न हो जाय तब तक अधिकारी मुनिवर अपने आश्रित श्रमणवर्ग की आचार शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखे। यदि कदाचित् किसी भी सन्त व सतीजन की मूलाचार में कोई स्खलना सुनाई दे तो तत्काल उसकी जांच कर शुद्धि कर दी जाय। बहिनों का संसर्ग व स्वयं हाथ से पत्र लेखन जो साधक जीवन के लिये अयोग्य हैं, उन्हें बिल्कुल बन्द कर दिया जाय।

अंत में हमारी ही नहीं, अपितु संघ के सभी सदस्यों की भावना है कि श्रमण-संघ अक्षुण्ण व अखंड बना रहे। आचार और विचार की दृष्टि से दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर दृढता से बढ़ता रहे व जन-जन के हृदय से यही नारा निकले कि अखंड रहे यह संघ हमारा।"

तीनों सन्त-प्रवरों ने मिलकर आचार्य श्री के समक्ष कतिपय विचारणीय बिन्दु भी रखे-

१. सर्वप्रथम हम चाहते हैं कि आचार्य श्री एवं उपाचार्य श्री हमारे निवेदन को सम्मान देकर पारस्परिक मतभेद मिटा दें और पुन: वे संघ का संचालन करें।

२. यदि वे पारस्परिक मतभेद नहीं मिटाते हैं तो संघ को अखंड बनाने के लिए आचार्य श्री की घोषणानुसार पांच मुनियों की समिति वृहद् साधु-सम्मेलन तक काम करे।

३. यदि वह भी संभव न हो और संघ छिन्न-भिन्न होने की स्थिति में हो तो संघ में वर्तमान में एकता बनाये रखने के लिये निम्नाङ्कित योजना कार्यान्वित की जा सकती है -

जिन श्रमण-श्रमणियों का लोक व्यवहार में आचार शुद्ध है और संयम के रंग में रंगा हुआ प्रतिष्ठित जीवन है, उनके साथ निम्नाङ्कित व्यवहार अवश्य रखा जाय -

१. संघ के श्रमण-श्रमणियों का एक क्षेत्र में एक ही वर्षावास हो और एक ही व्याख्यान हो। कारणवशात् एक ही क्षेत्र में विभिन्न स्थानों में संत-सतीजन विराज रहे हों तो अनुकूलता होने पर वे एक स्थान पर सम्मिलित व्याख्यान करें, पृथक् व्याख्यान न करें।

२. दीक्षा, संथारा आदि विशिष्ट प्रसंगों पर जाने में किसी भी प्रकार का संकोच न करें।

३. किसी संत व सतीजन के रुग्ण होने पर उन सन्त-सतीजन की सेवा आदि के लिए उचित व्यवस्था की जाय, उपेक्षा बुद्धि न रखी जाय और अनुकूलता के अनुसार उनकी पूछताछ की जाय।

४. परस्पर ज्ञान के आदान-प्रदान करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं रखा जाये।

५. एक-दूसरे संत-सतीजन के मिलने पर सम्मानपूर्वक शिष्टाचार का व्यवहार किया जाय।

६. व्याख्यान-वार्तालाप आदि में किसी भी प्रकार दूसरे संत-सतीजन की निन्दा व हीनता सूचक शब्दावली का प्रयोग न किया जाय और न व्यवहार से सूचित ही किया जाय कि इनमें परस्पर में मतभेद है, वैमनस्य है।

७. स्नेह-सम्बन्ध रहने पर भी वन्दन, आहार और शिष्य का आदान-प्रदान ऐच्छिक रखा जाय।

यहाँ कुछ दिन विराजकर आपने होली चातुर्मास गुलाबपुरा में किया। जयपुर एवं सैलाना संघ की ओर से विनति हुई। सामायिक संघ एवं स्वाध्याय के संचालन का कार्य प्रारम्भ हुआ। गुलाबपुरा से आप हुरड़ा में प्रार्थना

एवं स्वाध्याय का नियम कराते हुए कोण्डी, कोठिया, सांगरिया, धनोप, फूलिया, रडावास, देवरिया, खामोर पधारे जहाँ बालचन्दजी ने शीलव्रत अंगीकार किया व श्री हरिसिंह जी ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किए। यहाँ से भटेरा जाने के लिये उपरेडा होते हुए बनेड़ा पधारे।

बनेड़ा में सैलाना संघ की विनति लेकर परम गुरुभक्त श्रावक श्री प्यारचन्दजी रांका ने उपस्थित होकर अपने संघ की भावभरी विनति प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया –"भगवन् ! हम १२ वर्ष से प्रतिवर्ष श्री चरणों में चातुर्मास की विनति प्रस्तुत करते रहे हैं। १२ वर्ष में तो आम्रवृक्ष भी फल देता है, पर हमें आपकी स्वीकृति का कृपाप्रसाद नहीं मिला।" भक्त हृदय सुश्रावक की विनति को लक्ष्य लेकर सहज मुस्कान के साथ पूज्यप्रवर ने संवत् २०१९ के चातुर्मास हेतु स्वीकृति फरमा दी।

• भीलवाड़ा चित्तौड़ होकर उदयपुर

मारवाड़ एवं मेवाड़ की ओर से अब आपका विहार सैलाना की ओर होना स्वाभाविक था। इस क्रम में आप मालपुरा, केकड़ी में सामायिक संघ की स्थापना करते हुए विक्रम संवत् २०१९ की महावीर जयन्ती पर भीलवाड़ा के ज्ञान भवन में विराजे। आपने महावीर जयन्ती को अन्य जयन्तियों से भिन्न बताते हुए भगवान महावीर के शासन की विशेषताओं की विशद व्याख्या की। आपने फरमाया-"वैशाख शुक्ला १० को भगवान महावीर ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर एकादशी को धर्मदेशना दी। प्रभु की अमोघ वाणी श्रवण कर हजारों मुमुक्षुओं ने संयम ग्रहण किया और अनेकों ने देशविरति श्रावक-धर्म अंगीकार किया। महावीर के शासन में तब साधारण स्खलना भी उपेक्षित नहीं होती थी। आज उसी वीर की मंगल जयन्ती है। हमारा कर्त्तव्य है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार कर स्व-पर कल्याण करें।" आपने भगवान महावीर के संदेश को जीवनव्यापी बनाने की आवश्यकता प्रतिपादित की तथा यह फरमाया कि वीतराग भाव की ओर बढ़ना ही महावीर की सच्ची भक्ति है। भीलवाड़ा के भोपालगंज एवं शान्ति भवन में नियमित सामायिक एवं स्वाध्याय करने वाले तैयार हुए। आचार्य भगवन्त ने अपनी डायरी में अनुभवों में लिखा है – "धार्मिक रुचि सामान्य रूप से घटती चली जा रही है । चन्द लोग श्रद्धाबल से आते-जाते रहते हैं। परस्पर कुछ मतभेदों से युवकों में उत्साह घट गया है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं है। धार्मिक कक्षा चलती है। मास्टरजी एक घण्टा परिश्रम करते हैं, परन्तु बच्चे पूरे नहीं आते हैं।" माणक जी आदि युवकों ने स्वाध्याय को चालू रखने का विचार किया। चाँदमल जी सिंघवी, अमरचन्दजी संकलेचा, भूरालालजी गांधी, पाँचूलाल जी गाँधी आदि यहाँ के उत्साही कार्यकर्त्ता थे।

यहाँ पर उदयपुर का शिष्ट मण्डल संघमंत्री श्री तखतसिंहजी, उपाध्यक्ष श्री लक्ष्मीलालजी, श्री डूंगर सिंहजी वकील एवं श्री केशूलालजी ताकडिया के नेतृत्व में विनति करने हेतु आप श्री के चरणों में उपस्थित हुआ। वहाँ पर पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा. विराजमान थे। चरितनायक ने सकारात्मक आश्वासन दिया। आप पुर, गाडरमाल, पहुंना होते हुए ऐतिहासिक नगर चित्तौड़ पधारे। यहाँ आपने खातर महल में व्याख्यान फरमाया। उदयपुर का शिष्ट मण्डल पुनः उपस्थित हुआ। यहाँ से पांडोली फरसकर दो फलांग दूर ग्राम के बाहर वटवृक्ष के नीचे रात्रिवास किया। एक भाई ने संवर किया। फिर आप श्री सांवता, नालेरा, सिंहपुर, कांकरिया, निम्बाहेड़ा, केसरखेड़ी होते हुए कपासन पधारे। यहाँ प्रार्थना पर आपका प्रभावशाली प्रवचन सुनकर २१ व्यक्तियों ने प्रतिदिन धर्मस्थान में आकर सामूहिक प्रार्थना करने का नियम लिया। सनवाड़ पधारने पर मेवाड़ी मुनि श्री मांगीलाल जी आदि सन्त जो यहाँ पहले से ही बिराजे हुए थे, आचार्यश्री की अगवानी के लिए सामने आए।

• उदयपुर में पूज्य गणेशीलालजी म.से मिलन

यहाँ से खेमपुर, वल्लभनगर, खेरी, डबोक देबारी , आयड़ होते हुए आपका ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा रविवार के दिन उदयपुर के भोपालपुरा में पदार्पण हुआ, जहाँ तपस्वी श्री केशूलाल जी म.सा. एवं पण्डित श्री नानालाल जी म.सा. अगवानी के लिए पधारे। चरितनायक ने उदयपुर नगर में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. का दर्शनलाभ लिया। दोनों चारित्रिक आत्माओं के हर्ष का पारावार नहीं रहा। प्रेम के आधिक्य में पूज्य श्री गणेशीलाल जी म.सा ने फरमाया-"बूढ़े को याद कर लिया।" यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि श्री गणेशीलालजी म.सा. वर्द्धमान श्रमणसंघ को छोड़ चुके थे एवं चरितनायक उन्हें संघ में ही सम्मिलित रहने का प्रेम पूर्वक निवेदन कर रहे थे। चरितनायक ने प्रवचन में फरमाया-"मैं उदयपुर देखने नहीं आया। मैं तो गणेश सागर से मोती लेने आया हूँ।" चरितनायक ने दो दिनों तक उपाचार्य श्री से पारस्परिक विचार-विनिमय किया एवं संघ में रहकर ज्ञान-क्रिया को सुदृढ़ बनाने पर बल दिया, किन्तु जिन स्थितियों में उपाचार्य श्री ने संघ छोड़ा था, उनका निराकरण नहीं होने से बात आगे नहीं बढ़ पाई।

चरितनायक का उदयपुर से विहार हो गया। आपने आयड़ में फरमाया-"पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष जैसे रोगों को समूल नष्ट करने के लिए एक ही औषधि है, 'स्वाध्याय'। समाज में यदि स्वाध्याय को बढ़ावा दिया जाए तो इससे ज्ञानवृद्धि होगी और ज्ञान से वैर, ईर्ष्या, द्वेष आदि का शमन होगा। झगड़े टंटे नहीं रहेंगे।" देवारी से दरवाजे की ओर शाम को विहार कर आप सूर्यास्त पूर्व वहाँ पहुंचे। स्थानाभाव के कारण दो सन्तों ने द्वार पर, दो ने बाहर वृक्ष के नीचे और एक ने द्वार के बाजू की खोह में शयन किया। यहाँ लंगूर बहुतायत में थे। दैनन्दिनी में आपने अंकित किया है कि द्वार पर लंगूरों का प्रभुत्व था। मन्दिर और कपाटों पर उनके नियत निवास थे ।

दरौली पधारने पर बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म.सा. की सतियाँ, जो वहाँ विराजित थीं, दर्शनार्थ पधारीं। दरौली में अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि विभिन्न जातीय सज्जनों में किसी सामाजिक विषय को लेकर पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को नीचा दिखाने की ताक में रहता था और मौका मिलते ही भड़क उठता था। अपने इस आपसी संघर्ष में लोग हजारों रुपयों का पानी कर चुके थे। ऐसे समय में चरितनायक का पदार्पण दरौली के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

आपने अपने सदुपदेशों द्वारा वैमनस्य भाव दूर किया, जिससे वहाँ सौहार्द और भाईचारे का वातावरण बना।

• भगवान की आज्ञा में चलने वाले का कल्याण

खेरोदा होते हुए चरितनायक ज्येष्ठ शुक्ला ९ सोमवार को कुसावास (कुंथुवास) पधारे। यहाँ आप रावला में ठहरे। रात्रि में षट्कर्म का विवरण देते हुए अर्जुन माली की कथा कही। आप श्री ने लोगों से कहा कि जो भगवान की आज्ञा में चलेगा, वैर-विरोध घटायेगा, उसका कल्याण होगा। कौरव आपसी फूट में नष्ट हो गये। राम, लक्ष्मण सुमति के कारण आबाद रहे। इसलिए आपसी वैर-विरोध को त्याग कर प्रेमभाव एवं भाईचारे का भाव रखना चाहिए। यहाँ से आप मगरे की ऊँची-नीची भूमि और खजूर के वृक्षों युक्त वनप्रदेश को पारकर भीण्डर पहुँचे। शीतल वायु एवं बादलों के कारण दिन ठण्डा रहा। यहाँ से आपने कानोड़ के लिए प्रस्थान किया एवं जवाहर विद्यापीठ के छात्रों के जयनाद के साथ पंचायत भवन में विराजे। व्याख्यान में स्वाध्याय की प्रेरणा करते हुए फरमाया – "स्वाध्याय के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। मनोबल में स्थिरता नहीं रहेगी। नन्दन मणियार प्रभु महावीर

का श्रावक होकर भी स्वाध्याय एवं सत्संग के अभाव में चलचित्त हो गया और आर्तध्यान में मरकर मेंढक हुआ। तुंगिया के श्रावक स्वाध्यायी थे। ३३ श्रावक मित्र स्वाध्याय एवं सत्संग से स्थिरभाव में करणी करके इन्द्र के गुरु हुए। स्वाध्याय से सामायिक की साधना भी व्यवस्थित होती है। साधना-बल से आकुलता समाप्त होकर मानव को परम शान्ति प्राप्त होती है।" पूज्य प्रवर ने फरमाया – "दुःख के तीन कारण हैं– १. अज्ञान, २. कुदर्शन और ३ मोह। प्रभु ने दुःख मुक्ति के लिए भी उत्तराध्ययन सूत्र के ३२ वें अध्ययन में तीन उपाय बताये हैं–१. ज्ञान का प्रकाश करो। २. अज्ञान - मोह को दूर करो। ३. राग-द्वेष का नाश करो।" गुरुदेव की प्रेरणा से पाँच युवकों ने नियमित स्वाध्याय का नियम लिया। आप यहाँ से विहार कर बोहेडा होते हुए बड़ी सादड़ी के बडी न्यात के नोहरे में विराजे।

• बड़ी सादड़ी

बड़ी सादड़ी में गोकुल हरिजन ने आजीवन जीव-हिंसा व मांस-भक्षण का त्याग किया। यहाँ महासती चूना जी आदि ठाणा ४ स्थिरवास विराजमान थे। उन्होंने गुणस्थानों में आहारक-अनाहारक सम्बन्धी प्रश्न किये जिनका पूज्यवर ने तात्त्विक समाधान किया। श्रावकों ने पं. लक्ष्मीचन्द जी म.सा. के चातुर्मास हेतु विनति की। यहाँ के जागीरदार के काका श्री भीमसिंह जी का मद्य-मांस का सेवन और शिकार करना दैनिक कार्य था। ऐसा करना वे राजपूतों के लिये जरूरी मानते थे। आचार्य श्री ने मूक प्राणियों की हत्या का विवेचन करते हुए कहा कि **"प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है। कैसी भी स्थिति हो लेकिन उसकी जिजीविषा की भावना सदैव बलवती रही है और मृत्यु का नाम सुनते ही वह भयभीत हो उठता है। मनुष्य होकर जो धर्म के नाम पर या अपनी आकांक्षा पूर्ति के लिए प्राणि-हत्या करते हैं वे मनुष्य होकर भी राक्षसी वृत्ति वाले हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरों का विनाश करने के साथ-साथ अपने लिए रौरव नामक नरक का रास्ता बनाते हैं।"** आचार्य श्री का सदुपदेश सुनकर भीमसिंह जी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने अपने किये हुए पर पश्चात्ताप किया और सदैव के लिए जीव-हिंसा तथा मद्य-मांस का त्याग कर दिया।

बड़ी सादड़ी से साटोला होते हुए धाकडों के गाँव मानपुरा पधार कर धाकडों की पोल के बाहर रात्रि विश्राम किया। यहाँ से कच्चे रास्ते पहाड़ की घाटी उतर कर छोटी सादड़ी पधारे। धर्म-ध्यान अच्छा रहा। गुरुदेव ने अपनी डायरी में लिखा है–"यहाँ पर पढे-लिखे काफी हैं, पर स्थानीय संघ में उनके द्वारा कोई लाभ नहीं लिया जाता।" यहाँ का गोदावत जैन गुरुकुल किसी समय बड़ा जाना माना गुरुकुल रहा है। यहाँ पर रतनलाल जी संघवी अच्छे अभ्यासशील श्रावक थे, किन्तु समाज में ऐक्य नहीं था। यहाँ से चीताखेड़ा, जीरण, मल्हारगढ़ को फरसते हुए मेवाड़ में स्वाध्याय-सामायिक की अलख जगाकर एवं व्यसनों से अनेकों को मुक्त कराकर आप पीपलिया मंडी पधारे। दोपहर में यहाँ विराजित महासती रामाजी की शिष्या सती दीपकंवर जी और कंचनकंवर जी दर्शनार्थ पधारीं एवं शास्त्रीय प्रश्नोत्तर हुए।

• मालव प्रदेश की ओर

पीपलिया मंडी से विहार कर आप विहारक्रम से बोतल गंज, नयी बस्ती, जनकपुरा एवं मन्दसौर पधारे। प्रातः जनकूपुरा में आषाढ कृष्णा १० को गुरुदेव ने प्रवचन में फरमाया –"जिनशासन जीवन निर्माण की कला सिखाता है। चण्डकौशिक ने प्रभुकृपा से इसी कला को सीखकर आत्म-कल्याण किया।" "समाज धर्म है – उपशम भाव। सर्वथा कषाय के वेग को स्वाधीन नहीं कर पाओ तो इतना तो अवश्य ध्यान रखना कि घर के झगड़े धर्म-समाज में

नहीं डालना। घर के झगड़े समाज में डालना बड़ी भूल है।" यहाँ पर तपस्वी मुनि श्री मनोहरलालजी म. ठाणा २ का मिलन हुआ एवं साथ ही ठहरे। प्रेम वात्सल्य रहा। यहाँ के पुस्तकालय में एक हजार पुस्तकों में कई प्राचीन भी हैं। मन्दसौर के व्याख्यान में पूज्यप्रवर ने फरमाया –"**वीतराग बनने के लिए पहले देव, गुरु एवं धर्म के प्रति अनुरागी बनना होगा। यदि इनके प्रति अनुराग होगा तो आप त्याग भी कर सकेंगे। बिना प्रीति के त्याग नहीं होता।**" यहाँ पर पूज्य मन्नालाल जी म.सा. की पुण्य तिथि पर आपने फरमाया – "पूज्य श्री मन्नालालजी म. को स्वाध्याय एवं आगम प्रिय थे। आप उनका आदर करते हैं तो उनकी प्रियवस्तु को अपनाइए अन्यथा आपकी उनके प्रति श्रद्धा कहने मात्र की होगी।" प्रात: मन्दसौर से विहार कर आप आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी, शनिवार को खिलचीपुरा धर्मस्थानक में पधारे। श्रद्धालु भक्तजनों की विशाल संख्या में उपस्थिति को देखते हुए धर्मस्थानक में व्याख्यान नहीं हो सकने के कारण बाजार में व्यवस्था की गई।

चरितनायक पूज्य श्री ने धर्म और नीति शिक्षा पर जोर दिया तथा सत्संग का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए फरमाया कि सदाचार ही जीवन को उन्नत बना सकता है। पश्चिम के लोग नीति के नाम से कुछ शिक्षाएँ जीवन में उतारते हैं। भारत धर्मप्रधान देश है। यहाँ के वासियों को विशेष ध्यान देकर धर्म को जीवन में उतारना चाहिए। इसी में देश का कल्याण है।" यहाँ से विहारक्रम में दलोदा, कचनारा, ढोढर होकर आप श्री जावरा पधारे।

जावरा के श्रावक बहुत दिनों से चातक की भांति आपश्री की प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ आपने पूज्य श्री मन्नालाल जी म.सा के श्रावक-समुदाय के स्थानक में पदार्पण किया। यहाँ का श्री संघ दो दलों में विभक्त था। चरितनायक ने अपने प्रवचन में उन्हें वार्तालाप द्वारा समस्या के समाधान का सुझाव दिया। आपने फरमाया-"**जिणधम्मो य जीवाणं अपुव्वो कप्पपायवो' जिनधर्म जीवों के लिए अपूर्व कल्पवृक्ष है, इससे सभी अभिलाषाओं की पूर्ति स्वत: हो जाती है अत: मनमुटाव छोड़कर जिनधर्म का आश्रय ग्रहण करें। आपको कैंची नहीं, सुई बनना है। कैंची एक बड़े कपड़े को काट कर अनेक टुकड़े कर डालती है, जबकि सुई अनेक बिखरे हुए टुकड़ों को सिलती हुई बढ़ती है। इसी प्रकार श्रावकों को अपने संघ में एकता लाने के लिए सुई की तरह व्यवहार करना चाहिए।** "

प्रामाणिक वृहत् जैन इतिहास के लेखन के लिए मूल स्रोतों का पता लगाने हेतु आपने मेवाड़, मारवाड़, महाराष्ट्र और गुजरात के सुदूरवर्ती गाँवों की लम्बी यात्राएँ की। सैंकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थों का अवलोकन किया। जावरा में भी आपने १६वीं शताब्दी के ५ बस्ते देखे जिनमें हस्तलिखित ग्रन्थ थे। श्रेष्ठिवर रांकाजी के साथ सैलाना का श्रावक मण्डल उपस्थित हुआ। चरितनायक ने आषाढ़ शुक्ला चौथ को प्रवचन में फरमाया –"धर्मरूप कल्प वृक्ष की शरण आये हो। इसका सिंचन करो। डाल पर बैठकर इसका छेदन मत करो। धर्म संसार का त्राण करने वाला है। मगधाधिपति श्रेणिक ने जिनशासन की सेवा कर तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन किया। पूज्य माधव मुनि ने धर्म दिपाने वाले श्रावक को सूर्य के समान तपने वाला बताया है। धर्म तभी दिपेगा जब आपमें उपशम भाव होगा। चतुर्विध संघ में प्रीति का व्यवहार होगा।" जावरा से पालिया, लुहारी, नामली होते हुए पचेड़ी पधारे। आपश्री के प्रवचन से प्रभावित होकर ३ व्यवसायियों ने खोटे तोल-माप का त्याग किया।

पंचेडी से विहार कर धामनोद पधारे। यहाँ चरितनायक ने उद्बोधन में फरमाया– " किसी के यहाँ जब कोई अतिथि आता है तो गृहपति अच्छे-अच्छे पदार्थों से उसका सत्कार करता है। हम संत भी अतिथि हैं परन्तु भेंट पूजा, पैसे लेने वाले नहीं हैं। हमारा आतिथ्य व्रत-नियम से होता है। सत्संग से आप शिक्षा लेकर जीवन शुद्धि करें, इसी

में संतों की प्रसन्नता है।"

चरितनायक ने अपने तात्त्विक उद्बोधन में मनुष्य-जन्म की दुर्लभता व इसका महत्त्व समझाते हुए सोने की चरी में खल पकाने वाले सेठ व सुंद उपसुंद की कथा सुनाते हुए फरमाया कि अनन्त ज्ञानादि निधि को पाकर जो हिंसा, झूठ, मान, बडाई और भोगों में अपने को खोता है उसे अंत में पछताना पड़ता है। प्रवचन से प्रभावित होकर सात महाजनों ने कूट तोल-माप का त्याग किया और किसान बंधुओं ने सामूहिक हिंसा छोड़ी। सामायिक और स्वाध्याय के भी कई नियम लिये गये।

• सैलाना चातुर्मास (संवत् २०१९)

यहां से विहार कर आषाढ शुक्ला नवमी को आपने चातुर्मासार्थ सैलाना नगर में प्रवेश किया। ३० वर्षों के बाद मालवा के इस प्रदेश में आचार्य श्री का चातुर्मास प्राप्त कर सभी फूले नहीं समा रहे थे। चरितनायक के दर्शनार्थ जैन जैनेतर आबालवृद्ध युवक सभी उमड़ पड़े। इससे पहले आप रामपुरा में चातुर्मास करके दक्षिण प्रवास की ओर बढ़ते हुए सैलाना पधारे थे। आपने अपने प्रथम प्रवचन में फरमाया—"अब आप और हमको चार मास के इस समय का सदुपयोग करना है। छोटे को विनय और अनुशासन का पालन करना और बडों को प्रेम से सबका ध्यान रखना होगा। तरुण बन्धु ऐसी व्यवस्था करें कि उनको भी कुछ ज्ञान का लाभ हो और सेवा कार्य भी होता रहे। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि में ही आपके हमारे समय का सदुपयोग होगा।" आषाढ शुक्ला दशमी को फरमाया —"**जो विकारों को नष्ट करता है वही पूर्ण ज्ञानी होता है। जो पूर्ण ज्ञानी हो वही धर्म या तीर्थ की आदि कर सकता है। स्तुति करने वाले यह शंका करते हैं कि प्रभु तारने वाले नहीं, फिर स्तुति क्यों? उनको समझना चाहिए कि प्रभु भक्ति तुम्ब की तरह तारक है। मन की मशक में प्रभु भक्ति एवं सद्विचार की वायु भरने से आत्मा हल्की होकर तिर जाती हैं।**" इस चातुर्मास में आपने एक दिन प्रवचन में फरमाया-"सन्त लोग त्याग-विराग का उपदेश प्रतिदिन क्यों देते हैं? जैसे जल को ऊपर चढ़ाने के लिए नल की अपेक्षा होती है वैसे ही जीवन की धारा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए सत्संग, शास्त्र-श्रवण और शिक्षा का सहारा अपेक्षित है। **भौतिकता के प्रभाव में जो लोग जीवन को उन्नत बनाना भूल जाते हैं वे संसार में कष्टानुभव पाते हैं और जीवन को अशान्त बना लेते हैं।**" गाँव के बाल, तरुण और हिन्दू-मुस्लिम सब में अपूर्व उत्साह था। एक मुसलमान भाई ने प्रवचन में उर्दू कविता सुनाकर वातावरण को हर्षित कर दिया। चातुर्मास में महासती श्री मदनकंवर जी (बदनकँवरजी) म.सा. भी यहीं विराज रहे थे और जयपुर की तेजकंवर जी, नागौर की बरजीबाई जोधपुर के मानमल जी सेठिया और मगनमल जी मुणोत विरक्तावस्था में ज्ञानाभ्यास कर रहे थे। चातुर्मास में उपासकदशांग सूत्र, अंतगडदशांग सूत्र, निरयावलिका आदि पाँच सूत्रों का वाचन हुआ। आवश्यक सूत्र पर टीका प्रारम्भ की। यहाँ आपश्री के प्रभाव से धर्म-ध्यान एवं तपश्चर्या का ठाट रहा। श्री केसरीमल जी सिंघवी, श्री इन्द्रचन्द जी हीरावत आदि अनेक श्रावकों ने ब्रह्मचर्य का नियम लिया।

आचार्यप्रवर का यह मन्तव्य था कि जैनों का कोई संघ-धर्म होना चाहिए, जिसका सभी लोग पालन करें। आपश्री का चिन्तन था कि संघधर्म के बिना श्रुत और चारित्र धर्म दृढ नहीं रह सकते। आपने संवत् २०१९ के सैलाना चातुर्मास की दैनन्दिनी में एतदर्थ कुछ आवश्यक नियम सूचित किए हैं, जिनका पालन प्रत्येक जैन भाई के लिए अपेक्षित है—

१. चलते-फिरते किसी जीव पर आक्रमण कर नहीं मारना।

२. मद्य, मांस, मछली एवं अण्डे का सेवन नहीं करना।

३. वीतराग परमात्मा और निर्ग्रन्थ गुरु को ही वन्दनीय मानना।

४. सामूहिक प्रार्थना एवं स्वाध्याय को चालू करना।

५. धर्म-स्थान या सन्तों के पास फल-फूल या सचित जल नहीं लाना।

६. सन्तों -सतियों के पास रुमाल या मुँहपत्ती लगाये बिना नहीं जाना।

७. रात्रि में सामूहिक भोजन नहीं करना।

८. प्याज, लहसुन आदि तामसी भोजन नहीं करना।

९. गाँव में रहे साधु-साध्वी के दर्शन करना।

१०. बिना छना जल नहीं पीना।

चातुर्मास की समाप्ति पर सैलाना के स्थानकवासी जैन श्रावक संघ ने दृढ़धर्मी, बारहव्रती एवं सेवाभावी श्रावक श्री प्यार चन्द जी रांका को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए एक अभिनंदन पत्र भेंट किया। इसमें उल्लेख किया गया कि रांकाजी ने हनुमान बनकर संजीवनी पहाड़ को उठा लाने का महान् कार्य किया है।

यहाँ ९ नवम्बर १९६२ को सामायिक संघ का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। जयपुर के उत्साही कार्यकर्ता श्री चुन्नीलालजी ललवानी को सामायिक संघ का संयोजक मनोनीत किया गया। विहार के दिन सैंकड़ों नर-नारियों के मन उदास थे। सबको चार माह में धार्मिक सत्प्रवृत्तियों में व्यतीत किये गये समय का एक-एक क्षण स्मरण हो रहा था। जयपुर, जोधपुर, पाली, धुलिया, अमरावती, भोपालगढ एवं मालवा के अनेक ग्राम नगरों के श्रावक भी उपस्थित थे। कार्तिक शुक्ला १५ को जोधपुर में स्थिरवास विराज रही महासती श्री हुलासकंवर जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। आप नारी समाज में धर्म-ध्यान की जागरणा करती रहीं। आपका जीवन सरल एवं तपस्या में संलग्न था।

यहाँ से चरितनायक आदिवासी बस्ती में पधारे, जहाँ उनके प्रभावी प्रवचन के परिणाम स्वरूप कई बच्चों और आदिवासी व्यक्तियों ने कुल-परम्परा का खाना-पीना मांस-मदिरा आदि का त्याग किया।

■

मालवा से पुनः राजस्थान की धरा पर

(संवत् २०१९ शेषकाल से संवत् २०२२)

• सैलाना से भोपाल होकर कोटा

सैलाना से धामनोद, डेलनपुर, पलसोडा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए आप मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को रतलाम पधारे। सैलाना से मुहम्मद अजीज आदि भक्त साथ में थे। यहाँ लक्ष्मीचन्द जी मुणोत के माध्यम से शास्त्र भण्डार देखे। आपकी प्रभावी प्रेरणा से अनेक पशुओं को अभयदान मिला। आपका प्रवचन सुनने के लिए रतलाम नरेश भी उपस्थित हुए। ६ दिसम्बर १९६२ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को विरक्ता बरजीदेवी (धर्म पत्नी स्व. श्री मदनलालजी कर्णावट) की दीक्षा धामनोद एवं सैलाना के बीच में आपके द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न हुई। नवदीक्षिता का नाम वृद्धिकंवर रखा गया और उन्हें महासतीश्री बदनकंवर जी म.सा. की शिष्या घोषित किया गया। पुनः नामली होकर सेंमली पधारे। यहाँ कुंवर भारतेन्द्र सिंह सत्संग में आये। रिंगणिया रात्रि विश्राम कर खाचरोद में आपने प्रवचन फरमाते हुए कहा—" **जीवन का लक्षण गतिमत्ता है। जिसमें गति नहीं वह जीवन कैसा? साधक को भी साधना में गतिमान होना चाहिए। संसार में आप तरक्की चाहते हैं वैसे अध्यात्म में भी तरक्की का विचार आवश्यक है।** " यहाँ पर महासती सूरजकंवरजी (मैन कँवरजी की शिष्या) ने जिज्ञासाएँ रखी एवं समाधान प्राप्त किया। दया-पौषध हुए। नियमित स्वाध्याय के नियम कराये गए। यहाँ से आप नागदा पधारे। यहाँ आपने जैन रत्न पुस्तकालय का अवलोकन भी किया। फिर चरितनायक महीदपुर, खेडा खजूरिया, घट्टिया (वैष्णव मंदिर में विराजे) लिपाणी होते हुए पौषकृष्णा ९ को उज्जैन पधारे।

उज्जैन में आपने शास्त्र भंडार का अवलोकन किया। इस भंडार में मूल एवं अर्थ सहित शास्त्रों और टीकाओं का अच्छा संग्रह है। लगभग ३०० वर्ष प्राचीन भगवती, पन्नवणा, चन्द्रप्रज्ञप्ति एवं उत्तराध्ययन सूत्र मूल के साथ सचित्र विद्यमान हैं। यहाँ अनेक हरिजन भाई भी आपके प्रवचन श्रवणार्थ आते थे। व्याख्यान सभा में उन्हें दूर बिठाने का व्यवहार चरितनायक को उचित प्रतीत नहीं हुआ। वे भी जिनवाणी का रसास्वादन कर सकें, अतः आपके उपदेश से हरिजन भाइयों को प्रवचन सभा में आगे बिठाया गया। हरिजन भाइयों ने करुणाकर महापुरुष के मंगलमय उद्बोधन से मद्य मांस का त्याग कर दिया। उज्जैन से नयापुरा होते हुए आप फ्रीगंज पधारे। यहाँ जेसिंगपुर ग्रन्थ भंडार एवं सुमतिनाथ के मंदिर में सुखराम जी यति का संग्रह देखा। और चार ग्रन्थ रद्दी में से निकाल कर उन्हें व्यवस्थित करने की प्रेरणा दी। ताजपुर विजयगंज मंडी, कायथा, लक्ष्मीपुर, मक्सी, कनासिया को फरसते हुए १ जनवरी १९६३ को आप शाजापुर पधारे। मध्यप्रदेश युवक संघ के अध्यक्ष श्रीसागरमल जी बीजावत एम.ए. ने ५० पर्युषण-सेवा देने वाले स्वाध्यायी श्रावक एवं २५० साधारण स्वाध्यायी बनने तक तली हुई वस्तु न खाने का नियम लिया । ३० व्यक्तियों ने सप्त कुव्यसन के त्याग किये। युवक संघ की सभा हुई, जिसमें ५० युवकों ने प्रतिदिन स्वाध्याय करने एवं सामूहिक भोज में रात्रि में नहीं खाने की प्रतिज्ञा ली। मार्ग के ग्रामों को फरसते हुए आप नलखेड़ा होकर सारंगपुर पधारे। यहाँ एवं मार्गस्थ ग्रामों में कई भाइयों ने मांस-मदिरा, शिकार एवं

बीड़ी के त्याग किये।

माघ कृष्णा ४ रविवार को व्याख्यान के पश्चात् पूज्य गणेशीलाल जी म.सा. के ११ जनवरी १९६३ को स्वर्गवास होने के समाचार मिले। आचार्यश्री व संतों ने निर्वाण कायोत्सर्ग किया एवं दूसरे दिन श्रद्धांजलि सभा आयोजित हुई।

चरितनायक ने उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए श्रद्धाञ्जलि के रूप में भावभीनी काव्याञ्जलि प्रस्तुत की–

पूर्ण संयम संगठन के मार्ग दर्शक सो गये।
जब सुना हमने गणेशीलाल मुनि सुर हो गये॥
गत दिनों की याद से मन सहज तरंगित बन गया।
नेष्ट काल कराल ने हा कार्य निन्दा का किया॥१॥
शील संयम का धनी मुनिवर जगत से हर लिया।
लाभ क्या तुमको हुआ नरलोक सूना कर दिया॥
लघु चाल से संचय प्रदेशों का नहीं तेरे कहा।
जीत तेरी है नहीं अमरत्व चेतन में रहा॥२॥
अनजान बदला रूप लख मन शोक करते मोह से।
मतिमन्द जन उत्सव मनाते ज्ञान के संदोह से॥
रथ दूर करके कर्म का निजरूप पाना इष्ट है।
हो अमर पूज्य गणेश हार्दिक कामना यह श्रेष्ठ है॥३॥

सारंगपुर से सुरसलाई, आकोदिया होकर सुजालपुर पधारे, जहाँ शास्त्र भंडार का अवलोकन कर उसे व्यवस्थित करने की प्रेरणा दी।

यहाँ से मण्डी अरण्डिया हकीमाबाद आस्टा, सीहोर आदि मार्गस्थ अनेक ग्राम-नगरों को धर्म-गंगा से पावन करते हुए आप माघ शुक्ला २ को भोपाल पधारे। **'श्रमण ' शब्द की व्याख्या करते हुए आपने फरमाया - "लोभ, काम और स्वार्थ से किये जाने वाले श्रम एवं निष्काम भाव से आत्म-शुद्धि की भावना से किए जाने वाले श्रम में अन्तर है। यही कारण है कि एक श्रमिक कहलाता है तथा दूसरा 'श्रमण' । समण का दूसरा अर्थ है मन को आकुलता - व्याकुलता रहित सम रखना या दुर्मन को त्याग कर सुमन रखना।"** अन्य दिन फरमाया - "आज के उपासक अपना कर्त्तव्य भूल गए हैं। अब फिर उन्हें उत्साहपूर्वक धर्मरक्षा में लगना है। चित्त ने प्रदेशी राजा को केशी श्रमण के चरणों मे लाने का काम किया। उसके माध्यम से प्रदेशी का सुधार हो गया। सम्प्रति ने भी धर्मप्रसार में बड़ा योग दिया । **आज भी प्रचार का क्षेत्र श्रावक सम्हालें तो परस्पर के सहयोग से शासन की अनुपम सेवा हो सकती है।"**

भोपाल में २ व ३ फरवरी १९६३ को सामायिक-स्वाध्याय सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें वैद्य संतोषी लालजी , डा. शिवलालजी, श्री विजयसिंहजी सुराना, वकील निहालचन्दजी , श्री रतनसिंहजी , श्री बालारामजी बरेली आदि कई श्रावक स्वाध्यायी बने। यहाँ आपने शास्त्र भण्डार का अवलोकन किया। इस भंडार में आपको कई रचनाएँ प्रभावी लगी। 'देश श्रावक चरित्र' प्राकृत रचना अपूर्व सी लगी। जोधपुर में वैरागी मानचन्द्रजी तथा विरक्ता तेजकँवरजी की सम्भावित दीक्षा के कारण चरितनायक के विहार की गति तीव्र हो गई। ग्रामों में ठहराव भी कम रहा। भोपाल से माघ शुक्ला १४ को विहार कर आपने टेकरी पर महावीर मन्दिर के पास गुफा में रात्रिवास किया।

यहाँ ५-६ पौषध भी हुए। यहाँ से आप खजूरी, सीहोर, इच्छावर पधारे, जहाँ भोपाल के सेठ छोगमलजी, रतनचन्दजी कोठारी, सेजमलजी आदि उपस्थित हुए। यहाँ रात्रि में मोतीलाल जी से सांख्य एवं वेदान्त दर्शन में अन्तर पर चर्चा हुई। प्रातःकाल व्याख्यान में अधिकतम अजैन लोग थे। हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के आग्रह से पूज्यप्रवर ने बच्चों को नैतिक शिक्षा पर उद्बोधन दिया। बालकों ने चोरी, नशा, निरपराध की हत्या एवं हिंसात्मक आन्दोलन के त्याग किये। शिक्षकों को भी जीवन निर्माणकारी शिक्षा देने हेतु प्रेरणा की। फिर चरितनायक धामनदा, पोंचानेर से नदी-मार्ग तय करते हुए अरणिया सुजालपुर मण्डी, तलेन, पचोर, खुजनेर छापेडा, जीरापुरा, बकाणी रीछवा आदि क्षेत्रों में जीवन निर्माणकारी नियम दिलाते हुए फाल्गुन शुक्ला तीज को पाटन पधारे। यहाँ के पंचायती भण्डार में १६ वीं शती तक के तीन चार बस्ते हैं। गोडीदासजी महाराज के शास्त्र दो पेटियों मे बन्द हैं। पाटन तक छोटे-छोटे ग्रामों में भी दूर दूर से भक्त श्रावक कृपालु गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुँचते रहे। चरितनायक के प्रवचन-पीयूष से न जाने कितनों को सही राह मिली। बकाणी में आपने फरमाया—"**मनुष्य जीवन को काम भोग में गंवाना केसर को गारे में मिलाना है।**" पाटन में प्रश्नोत्तर आदि के माध्यम से धर्म प्रेरणा कर रायपुर पधारकर आप धूपियाजी की धर्मशाला में विराजे। प्रातः ९ बजे तक व्यवसाय के हाथ न लगाने हेतु धूपिया जी ने ३ वर्ष की प्रतिज्ञा स्वीकार की। फिर पूज्यपाद ने झालावाड़, सुकेत, मोडक, मंडाणा अलनिया फरसते हुए कोटा में होली चातुर्मास किया।

यहाँ आपश्री ने व्याख्यान में फरमाया—"**समकित किसी को दी या ली नहीं जा सकती। वह तो वास्तव में आत्मा का गुण है। मोह का आवरण दूर करने पर स्वतः प्राप्त होती है। व्यवहार में तत्त्व समझाने की दृष्टि से सम्यक्त्व देना कहते हैं और बोधदाता गुरु को सम्यक्त्वदाता कहते हैं। असलियत में सम्यग्दर्शन आत्मा का ही गुण है।**" सुस्पष्ट है कि सम्यक्त्व बोध देने के बारे में आपके विचार कितने पवित्र पावन थे। आपने जीवन में बड़े से बड़े व्यक्ति को भी स्वयं उनका प्रबल आग्रह व अतिशय भक्ति होने पर भी कभी पूर्व गुरु आम्नाय परिवर्तन कर गुरु आम्नाय नहीं दी। आपसे उपकृत व प्रेरित अनेकों भक्तहृदय साधक आपसे गुरु आम्नाय न मिलने पर भी आपको सदा भगवद् तुल्य मान कर आपकी सेवाभक्ति का लाभ लेने में कभी पीछे नहीं रहे। यहीं पर किसी दिन आपने श्रावकों को उद्बोधन करते हुए प्रवचन में फरमाया —"अतिशय ज्ञान की प्राप्ति में चार बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—१. आहारशुद्धि का बराबर ध्यान रखे। २. चार विकथाओं का परित्याग करे। ३. विवेक और व्युत्सर्ग से आत्मा को सम्यक् रूपेण भावित करे। ४. पूर्वापर रात्रि के समय धर्मजागरण करे।" "कम से कम श्रावक में तीन बातें तो होनी ही चाहिए। तभी वह साधारण श्रेणि का श्रावक होता है। वे तीन बातें हैं-

१. इच्छा पूर्वक किसी त्रस जीव को जानकर नहीं मारना।

२. मद्य-नशा और मांस-अण्डे आदि प्राण्यंग का उपयोग नहीं करना।

३. नमस्कार मन्त्र को ही आराध्य मानकर श्रद्धा रखना।

सच्चे श्रावक-श्राविका वीतराग को छोड़कर इधर-उधर नहीं भटकते। सुख-दुःख तो स्वकृत पुण्य-पाप का फल हैं।

यहाँ पर कोटा, भोपालगढ़, पाली , पीपाड़, अजमेर , जयपुर, विजयनगर, मेड़ता आदि संघों ने चातुर्मास हेतु आग्रहपूर्ण विनति रखी। कोटा के श्रावकसंघ में पारस्परिक मनमुटाव था। चरितनायक के प्रेरक उद्बोधन से युवकों एवं बुजुर्गों में एकता कायम हुई एवं संघ में हर्ष का वातावरण बन गया। कोटा में चरितनायक ने विजयगच्छ का भण्डार देखा। अनेक पुस्तकें सन्दूकों में बन्द थीं। समुचित व्यवस्था न होने के कारण करीब गाड़ी भर पुस्तकें मिट्टी

हो जाने से प्रवाहित करनी पड़ी। यहाँ आपने खरतरगच्छ का समृद्ध ज्ञान भण्डार भी देखा। इसमें १०० बस्ते लिखित एवं अन्य मुद्रित थे। सुरक्षा की व्यवस्था ठीक थी। देवीलाल जी पोरवाड नित्यनियमी एवं गम्भीर स्वभावी थे। महिलाओं ने सामायिक का स्वरूप समझा और अच्छा धर्माराधन हुआ।

- **बूँदी, केकड़ी होकर अजमेर**

कोटा के नयापुरा से तालेडा, नया गाँव, देवपुरा होते हुए आप बूँदी पधारे व कलक्टर मेहता सा. की कोठी पर विराजे। पीपाड़ के श्रावक विनति करने आए। दूसरे दिन चैत्र कृष्णा नवमी को आदिनाथ जयन्ती पर बूँदी शहर में प्रभावी प्रवचन हुआ। प्रभु के आदेश पर चलने की प्रेरणा की। यहाँ पर आपने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर ज्ञान भण्डार का अवलोकन किया। बूँदी से विहार कर आपने बडा नयागाँव के उच्चतर विद्यालय में शिक्षा के साथ संस्कार के महत्त्व पर पौन घण्टे प्रवचन फरमाया। घाटी उतरने चढ़ने के कारण इस गाँव का हिण्डोली नाम सार्थक है। पहाड़ी और तलाई के कारण प्राकृतिक दृष्टि से रमणीक है। देवली में बीड़ी के अभिकर्ता कालूजी तेली के निवेदन पर उनके बच्चों को १० मिनट जप, सूर्योदय के समय निद्रित नहीं रहने एवं चोरी नहीं करने के नियम दिलाए। वहां से चलकर आपने नदी के पास मण्डपी में रात्रि विश्राम किया। फिर बोगला के आदिवासी आश्रम पर ठहरे। मार्ग में श्रमिक को शराब एवं सिगरेट का त्याग कराते हुए आप कालेड़ा एवं फिर केकड़ी पधारे।

केकड़ी में सामायिक पर प्रवचन करते हुए पूज्यपाद ने फरमाया -"**प्रभु ने वीतराग स्वरूप की प्राप्ति के लिए सामायिक की साधना बतलायी। वह साधनारूप भी है और सिद्धिरूप भी। इसका आरम्भ चतुर्थ गुणस्थान से ही हो जाता है। यह साधना का प्रारम्भिक रूप है। दूसरी श्रेणि पंचम गुणस्थान और तीसरी श्रेणि पूर्ण संयमी की है। यथाख्यात चारित्र सामायिक का सिद्धि स्थान है। प्रारम्भिक काल में राग-द्वेष की विषमता रहती है, उसको सम करने के लिये ही मुहूर्त भर का अभ्यास किया जाता है। जो लोग सोचते हैं कि मन शान्त एवं स्थिर रहे तभी सामायिक करना, तो यह भूल है।**" यहाँ जयपुर का शिष्ट मण्डल उपस्थित हुआ। केकडी में दीपचन्दजी पांड्या प्राचीन साहित्य के अन्वेषणशील थे। एक व्याख्यान के बाद ही केकड़ी से सरवाड़ के लिए प्रस्थान करते समय प्रातःकाल कुछ श्रावकों ने धर्मस्थानक में नियमित एवं कुछ ने साप्ताहिक स्वाध्याय करने का नियम लिया। आपने मास्टर कन्हैयालाल जी लोढा को धर्म शिक्षण के लिए प्रेरणा दी।

सरवाड़ में आपने अपने प्रवचन में फरमाया-"मनुष्य की विशेषता शरीर और परिवार के विकास से नहीं, आध्यात्मिक विकास से है। भारत में अध्यात्म-परम्परा शिथिल हो रही है। उसे जगाइए। इसी में देश, समाज एवं आपका कल्याण है।" गोयला में रात्रि-उद्बोधन करते हुए फरमाया -"चार प्रकार के मनुष्य हैं - एक राम की तरह वैभव-सुख पाकर सदुपयोग से सुख , कीर्ति एवं सद्गति का भागी बनता है। दूसरा रावण और ब्रह्मदत्त की तरह दुरुपयोग से दुःख, अकीर्ति तथा दुर्गति का भागी होता है। तीसरा साधनहीन भी सुमति एवं सद् आचार से सुगति का भागी होता है तथा चौथा दोनों खोता है। "

उस समय विहार में लोग अन्य गाँवों से साइकिल के द्वारा भी आते थे। सोकल्या की ओर विहार के समय दो सज्जन नसीराबाद से साइकिल द्वारा आये।शुभकरण गुरां कम्पाउण्डर ने सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया एवं झूठ बोलने का त्याग किया। सोकल्या पहुँचने पर बादलों के छा जाने से दिन ठण्डा रहा। दो-तीन गर्जन के साथ वर्षा भी हुई। यहाँ आपने धनराज को उसकी योग्यता के अनुसार नवकार मंत्र की जगह 'अरिहंत सिद्ध - साहू' सिखाया।

नसीराबाद में आपने शान्तिनाथ की प्रार्थना के बाद नश्वरता का अर्थ बतलाकर प्रत्येक को शान्तिनाथ के समान वीतराग बनने की प्रेरणा की। चरितनायक ने स्वाध्याय की विशेष प्रेरणा की। आपने अपनी दैनन्दिनी में लिखा है - "तरुणवर्ग में इस समय ठीक जागरण दिखाई दिया। प्रार्थना का कार्यक्रम बराबर चलता है। स्वाध्याय का सिलसिला नहीं जमा है। माला, पाठ और भजन में ही अधिकांश समय बीत जाता है। हर सन्त एवं सतीवर्ग इसके लिये प्रेरणा करे, यह अपेक्षित है। "

आचार्य श्री का यह कथन मात्र नसीराबाद के लिए नहीं, अपितु अनेक ग्राम नगरों के लिये प्रेरणाप्रद है। यहाँ पर व्याख्यान में फरमाया - **"मनुष्य बच्चों के घरोंदे की तरह नाशवान को ही बनाने का प्रयत्न करता है। जो अपना और अविनाशी है उसको बनाने की फिक्र नहीं करता वह अज्ञान और मोह के पर्दे में सत्य को देख नहीं सकता। यदि इन पर्दों को दूर कर लिया जाय तो पूर्णता और प्रकाश दूर नहीं।"** नसीराबाद से दातां होकर माखूपुरा के पास आने पर सूर्यास्त का समय हो जाने से आप होटल के पास ठहरे। प्रातः अजमेर के निकट पं. कुन्दनमुनि जी एवं सोहनमुनि जी सामने पधारे। यहां आप विष्णुदत्त जी के बंगले पर विराजे। महासती सुन्दरकंवरजी, महासती बदनकंवरजी एवं ज्ञानकंवरजी भी सेवा में पधारे। दोपहर बाद सन्तों के स्वाध्याय के अनन्तर सतीमण्डल से प्रश्नोत्तर हुए। जयपुर के श्रावक बोथरा जी, श्रीचन्दजी गोलेछा, ललवाणी जी, बडेरजी , हरिश्चन्द्रजी, रतनलालजी सेठ एवं श्राविकाओं ने दर्शनलाभ कर चातुर्मास हेतु विनति रखी। हरिश्चन्द्र जी बडेर से श्रद्धा, दान और विदेश के व्यवहारों पर वार्ता हुई।

संवत् २०२० चैत्र शुक्ला एकादशी गुरुवार प्रातःकाल अजमेर में स्वामीजी श्री पन्नालालजी महाराज एवं कवि जी (अमरचन्दजी) म.सा. के साथ मधुर मिलन हुआ। आपने महावीर जयन्ती पर सामूहिक स्वाध्याय पूर्वक सामायिक की प्रेरणा दी। अनुशासन के सम्बन्ध में आपने स्वामीजी महाराज से हुई चर्चा में अपने विचार रखे—**"अनुशासन का संघ में कठोरता से पालन हो। ढुलमुल नीति से संघ का तेज अक्षुण्ण नहीं रहेगा। वर्तमान में कई स्थानों पर स्मारक, मूर्त्ति और कीर्तिस्तम्भ बन रहे हैं। यह श्रमण संस्कृति के सर्वथा विपरीत है।"** प्रमुख सन्तों से एक समाचारी और गणव्यवस्था पर वार्ता हुई। जयपुर, भोपालगढ, विजयनगर, बालोतरा आदि स्थानों के श्रावक विनति लेकर पुनः उपस्थित हुए।

अजमेर में महावीर जयन्ती का कार्यक्रम उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। भगवान महावीर के जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए उनके उपदेशों को अपनाने की प्रेरणा की गई।

• जोधपुर की ओर

जोधपुर में दीक्षा का प्रसंग सन्निकट था, अतः दो दिन के अल्पप्रवास के बाद आपका जोधपुर के लिये द्रुत गति से विहार हुआ। ढड्ढा जी के बाग में एक दिन विराजने के अनन्तर फिर आपने दो दिन में पुष्कर किशनपुरा, गोविन्दगढ एवं आलणियावास फरस कर आगे के लिये विहार किया। आलणियावास में आपने प्रवचन में फरमाया –"प्रदेशी ने आत्म तत्त्व को समझकर तदनुकूल आचरण किया तो सद्गति का अधिकारी हुआ। इसी प्रकार आत्मविश्वास के साथ जीवन शुद्धि का अभ्यास करें।" पीसांगण के भाइयों की विनति समयाभाव के कारण स्वीकार नहीं की जा सकी। बडी रीयां में मध्याह्न के ध्यान के पश्चात् व्याख्यान में फरमाया -"लोग समझते हैं - गरीब धर्म नहीं कर पाते, परन्तु ऐसा समझना भूल है। धर्म और पाप के चार साधन हैं - तन, मन, वाणी और धन। दान से तिजोरी खाली होने का और व्रत से शरीर दुर्बल होने का भय रहता है, पर शुभ विचार एवं प्रियवचन

उच्चारण में क्या तकलीफ है? परन्तु कर्माधीन प्राणी से यह भी नहीं होता।" वहाँ से जडाऊ होकर आज चामुंडिया पहुँचे जहाँ रात्रि में रामदेव के चबूतरे पर विराजे।

मेड़ता सिटी में बालकों के संस्कार हेतु करुणाकर ने फरमाया -**"आप में से बहुत से भाई पिता बने हुए हैं। बालक के लालन-पालन व रक्षण में हजारों रुपया पूरा कर देते हैं। समझते हैं कि बच्चे को पढ़ा लिखा शादी कर काम लायक कर देना हमारा फर्ज है, किन्तु उसको सद्ज्ञान देना, सुनीति एवं सदाचारमय जीवन बनाना फर्ज नहीं है क्या ?"** "आप समझ रहे हैं कि धर्मरक्षा एवं सत्शिक्षा साधुओं का काम है। किन्तु यह भूल है। चार-पाँच भी श्रावक हर स्थान पर ब्रह्मचारी वर्ग के रूप में सेवा दें तो संघ-व्यवस्था उचित ढंग से चल सकती है।" प्रार्थना आदि के नियम कराये गए।

वैशाख कृष्णा ७ को मेड़तासिटी से इन्दावड़ पधारे। यहाँ आपने अपने प्रवचनामृत में सद् गुरु का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए फरमाया - **"गुरु कर्म काटने का मार्ग बतलाते हैं, परन्तु कर्म स्वयं को काटना पड़ता है। जैसे किसी अटवी को पार करते समय अकेले यात्री को पीछे कदम रखता हुआ जवान साथी मिल जाय तो साहस आ जाता है। वैसे ही जीव को सद्गुरु के सहयोग से बल मिलता है।** "कच्चे मार्ग से बायड़ होकर आप पुन्दलु पधारे, जहाँ ग्रामीणजनों को आपने बीडी, तमाखू छोड़ने की प्रतिज्ञा करायी। यहाँ एक पंजाबी बाबा ने अपनी निर्लेपवृत्ति का परिचय दिया। फिर कवासपुरा, चौकडी होकर कोसाणा पधारे तो ग्राम के जैन - अजैन अनेक भाई सम्मुख आए। व्याख्यान में फरमाया-"स्वार्थ एवं माया की चकाचौंध में भगवान को न भूलना। भगवान को भूलने वाला मार्ग चूक जाता और पश्चाताप का भागी होता है। अपना काम व्यवहार में करते हुए भी प्रभु की आज्ञा का ध्यान रखना। "

प्रार्थना के पश्चात् प्रातःकाल प्रस्थान करते समय भी चरितनायक प्रेरणा करना नहीं भूलते थे। यहाँ भी प्रेरणा की। फलतः तीन लोगों ने बीड़ी पीने के त्याग किए। बच्चों ने माह में पाँच दिन सामायिक का नियम लिया। पीपाड़ पहुँचने से एक मील पूर्व ही श्रावकों का आना प्रारम्भ हो गया। पहुँचने पर पार्श्वनाथ की प्रार्थना के पश्चात् उद्बोधन दिया। कटारियाजी प्रभृति श्रावकों की भावना वैरागियों की बन्दोली निकालने की थी, पर गाजे-बाजे का आडम्बर बढ़ाने की बात सामने आने पर आपने निषेध कर दिया। यहाँ पुखराजजी ने सजोडे शीलव्रत ग्रहण किया। बुचकला, डांगियावास होते हुए टांका की प्याऊ पर रात्रिवास किया। फिर बनाड़ में जोधपुर के श्रावक मोदीजी आदि सेवा में पहुंचे। जोधपुर पधारने पर कम से कम २५ बारहव्रती एवं २५ स्वाध्यायी तैयार होने के लिए प्रेरणा की।

अक्षय तृतीया पर आपका प्रवचन सिंह पोल में हुआ। श्री कानमुनिजी म. भी साथ थे। इसी स्थान पर ३३ वर्ष पूर्व चरितनायक को आज ही के दिन आचार्य पद की चादर ओढाई गई थी। चरितनायक ने अपने मंगलमय उद्बोधन में दानधर्म और तपधर्म की विशिष्टता बतलाई। इस अवसर पर वर्षीतप के ११ पारणक हुए। श्रद्धालु गुरुभक्त सुश्रावक श्री उमरावमलजी जालोरी ने अपने आराध्य गुरुवर्य के आचार्यपद दिवस पर सजोडे शीलव्रत अंगीकार कर सच्ची श्रद्धा अभिव्यक्त की।

वैशाख शुक्ला सप्तमी को आपने वर्धमान जैन कन्या पाठशाला भवन घोड़ों का चौक में अपने प्रवचन में फरमाया - **"साधु और श्रावक की श्रद्धा और प्ररूपणा में साम्य तथा स्पर्शना में अंतर है। गृहस्थ संसार में रहते हुए संपूर्ण हिंसा आदि पापों का त्याग नहीं कर सकता है, फिर भी उसका विचार शुद्ध होता है,**

वह पाप को पाप और षट्कायिक जीवों को अपने समान समझता है। चतुर्थ से तेरहवें गुणस्थान तक की श्रद्धा प्ररूपणा एक है, समान है, क्षयोपशम का अंतर होने पर भी दोनों की दृष्टि एक है। ज्ञान के बिना कषाय का जोर नहीं हटता, आप भी स्वाध्याय शील रहें तो आचार की त्रुटियाँ सहज दूर हो सकती हैं।"

अष्टमी को अपने प्रवचन में आपने नय निरूपण करते हुए फरमाया - "महावीर ने कहा - **सापेक्ष वचन सत्य है। सिक्के का एक बाजू मुद्रांकित और दूसरा राज सिंहासन अशोक चक्र वाला है। सिक्के के दोनों बाजू समझने पर ही उसका पूर्ण परिचय हो सकता है। मंडप का खंभ मेरी दृष्टि से पूर्व में ही है, पूर्व वाले की अपेक्षा पश्चिम, दक्षिण वाले से उत्तर और उत्तर वाले से दक्षिण में कहना सर्वमान्य है। प्रत्येक वचन अपना कथन करता है पर दूसरे का निषेध नहीं करता, यही सुनय है।"** नवमी को अपने प्रभावोत्पादक प्रवचनामृत में चरितनायक ने फरमाया - "प्रभु ने दो मार्ग बतलाये हैं एक विचार का और दूसरा आचार का। विचार मार्ग में ज्ञान, दर्शन समाविष्ट हैं एवं आचार मार्ग को साधु और गृहस्थ की दृष्टि से, त्याग की पूर्णता की दृष्टि से भिन्न भिन्न कर दिया है।" दशमी को चरितनायक ने अपने हृदयोद्बोधकारी प्रवचन में धर्ममार्ग में पुरुषार्थ की महिमा निरूपित करते हुए फरमाया - **"त्यागी पुरुष संसार के भोगों का अमूर्छित भाव से उपभोग कर मधुमक्खी की तरह उड़ जाता है, किन्तु रागी-अज्ञानी मल की मक्खी की तरह फंस कर प्राण गंवा देता है। दुःखमय संसार में प्राणियों की रति देख कर शास्त्रकार भी आश्चर्य करते हैं-"अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो"।**

• मुमुक्षुद्वय की दीक्षा

वैशाख शुक्ला १३ सोमवार ६ मई १९६३ को सरदार हाई स्कूल के प्रागंण में ५८ वर्षीय मुमुक्षु श्री मगनराजजी मुणोत (सुपुत्र श्री सोनराजजी एवं अमरकंवर जी मुणोत) और बालब्रह्मचारी मुमुक्षु श्री मानचन्द्र जी सेठिया (सुपुत्र श्री अचलचन्दजी एवं छोटा बाई जी सेठिया) की भागवती दीक्षा सोल्लास सम्पन्न हुई। वीर पिता श्री अचलचंद जी सेठिया ने चारों खन्ध (सचित्त जल का त्याग, रात्रि चौविहार-त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, हरी का त्याग) किए। महामन्दिर मे बड़ी दीक्षा हुई। **म.सा. वर्तमान में उपाध्यायप्रवर के रूप में प्रतिष्ठित होकर जिन शासन की सेवा कर रहे हैं।**

दीक्षा के पश्चात् महामन्दिर एवं मुथाजी के मन्दिर पधारे। पुनः सरदारपुरा होकर जस्टिश भंडारी जी के बंगले पहुँचे। वहाँ शान्तिनाथ की प्रार्थना के बाद सभी आगन्तुकों को दस मिनट प्रार्थना एवं स्वाध्याय के नियम की प्रेरणा की। जोधपुर के उपनगरों को फरसने के बाद यहाँ से आपका विहार हुआ। बनाड़ होते हुए आप ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को जाजीवाल पधारे। भीषणगर्मी व लू के कारण आपकें अन्तेवासी सुशिष्य श्री सुगनमुनिजी का असामयिक स्वर्गवास हो गया। लाडपुरा निवासी श्रीमान चुन्नीलालजी एवं श्रीमती अलोलबाई के सुपुत्र इस साधक ने ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत् २०१० को दीक्षा अंगीकार की थी। आप थोकड़ों के ज्ञाता सरल मनस्वी संतरत्न थे। संयम में प्रतिपल जागरूकता आपके जीवन में झलकती थी। थोकड़े सीखने सिखाने में आपकी विशेष अभिरुचि थी। मारणान्तिक उपसर्ग आने पर भी आपने हंसते हंसते मृत्यु का वरण स्वीकार किया। संयम के उत्कृष्ट पर्याय आचार्य देव के चरणों में जिन्होंने अपना जीवन समर्पण किया, गुरुदेव की शिक्षा को जिन्होंने भगवत् प्रसाद के रूप में सहज स्वीकार किया वे महापुरुष भला उपसर्गों से कब घबराने वाले थे।

भोपालगढ़ पधारने पर चरितनायक भक्तजनों को चैत्र की अमावस्या के पश्चात् तिल नहीं रखने का नियम दिलाया। श्री जैन रत्न विद्यालय के कार्यकर्ताओं को प्रेरित करते हुए आपने विद्यालय में धार्मिक शिक्षा की सुचारु व्यवस्था तथा बच्चों को धार्मिक व नैतिक संस्कार प्रदान करने पर बल दिया। गुरुदेव ने प्रवचन में फरमाया– **"छोटा सा दुकानदार लाइन से काम करे तो पाँच-दस वर्ष में तरक्की कर लेता है। फिर साधना में बीसियों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी सफलता क्यों नहीं, इसके तीन कारण हैं- चल, मल और विक्षेप। जब तक किसी भी कार्य में स्थिरता न आ जाय सिद्धि नहीं मिलती। इसी प्रकार मल को दूर करना भी आवश्यक है। जब चल और मल दोष दूर हो जायें तब विक्षेप ही बाधक रहता है। इसके लिए सत्पुरुषों ने एकान्त एवं शान्त स्थान में साधना करना अभीष्ट माना है। शरीर के त्रिदोष की तरह साधना के इन दोषों को दूर कर लें तो दिल के दर्पण में आत्मा की शुद्ध छाया दिख सकती है"।** पूज्यप्रवर द्वारा महारम्भ को छोड़कर अल्पारम्भ से जीने की शिक्षा दी गई।

यहाँ कतिपय दिवस ठहरकर चरितनायक रतकूडिया पधारे। रतकूडिया में आपने ग्राम निवासियों को हिंसा से विरत करते हुए फरमाया कि अपने प्राणों के समान ही दूसरे के प्राणों को जानना चाहिए। लोगों को धन प्यारा है, पुत्र प्यारा है, परन्तु प्राणों के सामने वे भी निर्मूल्य हैं। कहा है–

प्रथम तो प्रिय धन सब ही को
द्रव्य से लागे सुत नीको।
पुत्र से वल्लभ तन जानो
अंग में अधिक नयन मानो।
नयन आदि सब इन्द्रियाँ
अधिक पियारा प्राण।
या कारण कोई मत करो
पर प्राणन की हाण॥

यहाँ से खांगटा होकर पूज्य प्रवर का कोसाणा पदार्पण हुआ। यहाँ पर वाचस्पति श्री मदनलालजी म.सा. के स्वर्गवास के समाचार मिलने पर निर्वाण कायोत्सर्ग किया गया। व्याख्यान बन्द रहा। संवेदना पत्र अमृतसर भेजा गया। यहाँ पर पूज्य प्रवर ने अपने प्रवचन में फरमाया कि किसी भी समाज की उन्नति के लिए सार-सम्भाल करने वाले प्रचारकों की आवश्यकता है। पूज्यप्रवर के इस सदुपदेश का अनुकूल प्रभाव हुआ और धीरे-धीरे अनेक स्थानों पर ऐसे धर्म प्रचारक तैयार हुए जिन्होंने समाजहित में भी कार्य किया। यहाँ से चरितनायक ने पीपाड़ चातुर्मास हेतु विहार किया।

• पीपाड़ चातुर्मास (संवत् २०२०)

वि.स. २०२० के पीपाड़ चातुर्मास में अनेक उपलब्धियाँ हुईं। पर्याप्त त्याग-प्रत्याख्यान हुए। प्रवचन श्रवण के लिए लोग उमड़ पड़े। आपके विविध विषयों पर प्रवचन हुए।

उन दिनों सोवियत रूस द्वारा वेलेन्तीना तेरिस्कोवा नामक महिला को अन्तरिक्ष में भेजा गया था। चरितनायक ने इस सम्बन्ध में ३ जुलाई १९६३ को अपने विचार प्रकट करते हुए व्याख्यान में फरमाया – **"आज का युग भौतिक उन्नति का है। रूस आदि राष्ट्रों में मानव को अन्तरिक्ष में भेजने की होड है। विज्ञान**

के इस प्रयोग में मानव भले ही अन्तरिक्ष में उड़ान का उपक्रम करले पर उसे अन्ततः नीचे आना ही पड़ता है। हमारा आध्यात्मिक विज्ञान मानव को अन्तर के अनन्त आकाश में ऊपर उठने की शिक्षा देता है। अन्तरिक्ष - यात्री को कई मास की साधना से शरीर को हल्का और वातावरण के अनुकूल बनाना होता है। यदि हम आत्मा को हल्का करें और मन को संतुलित रखने की तालीम हासिल करें तो अनन्त आकाश में स्थित हो सकते हैं और सदा-सदा के लिये लोकाग्र में स्थित सिद्ध शिला में स्थिर ज्योति पुञ्ज बन सकते हैं, जहाँ से कभी भी वापस नीचे नहीं आना पड़ता। साधकों का यह विलक्षण उड्डयन है।" यह उड़ान सामायिक की साधना से ही सम्भव है। कहा भी है –

"करने जीवन का उत्थान, करो नित समता रस का पान ।"

चातुर्मास में श्रमणसंघ के अनुशासन को दृष्टिगत रख कर एक दिन आपने फरमाया- **"शास्त्र और श्रमण संघ की मर्यादा है कि साधु साध्वी फोटो नहीं खिचवावें और मूर्ति पगल्ये आदि कोई स्थापन्न करे तो उपदेश देकर रोके। रुपये पैसे के लेन-देन में नहीं पड़े और न कोई टिकिट आदि पास रखे। साधु-साध्वी स्त्री-पुरुषों को पत्र नहीं लिखे और न मर्यादा विरुद्ध स्त्रियों का सम्बन्ध ही रखे। तपोत्सव पर दर्शनार्थियों को बुलाने की प्रेरणा नहीं करे। महिमा पूजा एवं उत्सव से बचे। धातु की वस्तु नहीं रखे, न अपने लिए क्रीत वस्तु का उपयोग करे। इत्यादि बहुत सी बातों का सम्मेलन में निर्णय हो चुका है। जिनको हमने चतुर्विध संघ के समक्ष स्वीकार किया है। इसको दृढ़ता से पालन करना हम साधु-साध्वी का पुनीत कर्तव्य है। "** (जिनवाणी, नवम्बर १९६३ के अंक से उद्धृत) श्रमण सम्मेलनों में स्वीकृत समाचारी श्रावकों के समक्ष रखने का स्पष्ट हेतु यही प्रतीत होता है कि जिन लक्ष्यों व पुनीत भावना से श्रमण संघ का गठन किया गया था, वह समाज के समक्ष रखा जावे व संघ में आती शिथिलता दूर हो सके। चरितनायक संगठन के लिये संयम व साध्वाचार निष्ठा को अनिवार्य मानते थे। संगठन के नाम पर संयम व मर्यादा में शैथिल्य आपको कतई इष्ट नहीं था।

चातुर्मास में उपासकदशांग सूत्र के आधार पर कामदेव आदि श्रावकों के जीवन का बहुत ही रोचक एवं प्रेरणाप्रद विवेचन हुआ। लेखन, आगम वाचनी आदि के कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे। चरितनायक स्वयं भी कभी-कभी आहार-गवेषणा के लिए पधारते थे।

यहाँ पर बहुत से लोगों ने निम्नांकित त्याग-प्रत्याख्यान या नियम किये–

१. चैत्र की अमावस्या के बाद तिल को अधिक समय नहीं रखना।

२. बारात वालों को रात्रि भोजन नहीं कराना, खाने के बाद जूठा नहीं छोड़ना।

३. प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना।

४. बीड़ी-सिगरेट, शिकार, मांस-मदिरा और चाय का उपयोग नहीं करना।

५. सामूहिक बंदोली में बीड़ी सिगरेट, नृत्य आदि का त्याग रखना।

६. गाय, भैंस, सुअर आदि की हिंसा के कारणभूत चरबी लगे वस्त्रों का त्याग करना।

७. तपस्या में आडम्बर और जीमणवार में रात्रि-भोजन का त्याग करना।

८. मुनि दर्शन के लिए जाने पर रात्रि-भोजन नहीं करने का सामूहिक नियम।

९. मुखवस्त्रिका या रूमाल (उत्तरासन) का प्रयोग करके ही मुनि दर्शन करना।

१०. शादी पर टीका प्रथा का त्याग।

११. मृत्यु पर रात्रि रुदन का त्याग।

• मुमुक्षु हीरालालजी की दीक्षा

कार्तिक शुक्ला षष्ठी विक्रम सं. २०२० को प्रातः ९ बजे पीपाड़ में हिन्दू महासभा के पाण्डाल में २५ वर्षीय मुमुक्षु श्री हीरालालजी गाँधी (सुपुत्र श्री मोतीलालजी गाँधी) को चरितनायक ने अपने मुखारविन्द से विधिवत् दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के अवसर पर पूज्यपाद ने अपने विचार प्रकट करते हुए फरमाया - "भाइयों और बहिनों! अभी जिस मंगलमय प्रसंग पर आप सब उपस्थित हुए हो, वह प्रेरणा दे रहा है कि मानव को आत्म-साधना द्वारा भौतिक प्रपंचों से अलग होकर आत्म-कल्याण करना चाहिये, क्योंकि भोग से योग की ओर, राग व भोग से त्याग की ओर, तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। अधिकतर जीव भोगों में फंसकर हाय हाय कर खाली हाथ रवाना हो जाते हैं। कोई शूरवीर ही यह सोचता है कि दुनिया और उसका वैभव मुझे छोड़ेगा, उसके पहले मैं दुनिया को छोड दूँ। धन, पद, कुटुम्ब और परिवार ये सब मुझे छोड़ेंगे, उसके पहले मैं इनको छोड़ दूँ। विश्व की रक्षा के लिए शस्त्रधारी सेना की अपेक्षा शास्त्रधारी सेना की अधिक आवश्यकता है। यदि संयमधारी सेना मजबूत नहीं होगी तो देश की आध्यात्मिक रक्षा नहीं होगी। मानसिक विकार, आध्यात्मिक रोग, वैर-विरोध, कलह और अनीति के हमले से बचाने वाली सेना संयमधारी ही है। इस अवसर पर हर समाज के लोग बडी उमंग, उत्साह व लगन से आए हैं। मैं समझता हूँ कि इन सबको भी कुछ व्रत ग्रहण करना है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति और सामायिक-साधना की लहर हर गांव के बच्चे से लेकर बूढे तक जगानी है।"

प्रव्रजित होने के पश्चात् नवदीक्षित सन्त का नाम 'मुनि हीराचन्द्र' रखा गया। आप सम्प्रति रत्नवंश के अष्टम पट्टधर आचार्य के रूप में जिन शासन की महती सेवा कर रहे हैं।

चातुर्मास में तप-त्याग का ठाट रहा। अनेक लोगों ने चारों खन्ध लिए। युवक भी स्वाध्याय से जुड़े। यहाँ पर डॉ. नरेन्द्र भानावत दर्शनार्थ पधारे तथा पूज्य श्री से आपकी धर्म, साहित्य, संस्कृति, और इतिहास विषयक कई बिन्दुओं पर चर्चा हुई। कई स्थानों से अनेक प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं ने आकर लाभ लिया। श्री इन्दरनाथजी मोदी के नेतृत्व में सामायिक संघ का अधिवेशन हुआ।

• पीपाड़ से जोधपुर होकर जयपुर

चातुर्मास के पूर्ण होने पर पालासनी आदि विभिन्न ग्रामों को पावन करते हुए चरितनायक का जोधपुर नगर में पदार्पण हुआ। मुनि श्री मिश्रीमल जी म.सा. एवं पारस मुनि जी म. से स्नेहमिलन हुआ। यहाँ आपके प्रवचन से प्रभावित होकर सिन्ध निवासी मजिस्ट्रेट इंगानी ने जीवन भर के लिए मद्य-मांस का त्याग किया।

पाली पधारने पर पूज्यप्रवर का मंत्री श्री पुष्करमुनिजी म. एवं श्री देवेन्द्र मुनिजी म. से स्नेह मिलन हुआ व परस्पर ज्ञानचर्चा हुई। चरितनायक जहां भी पधारते , आबालवृद्ध सहज ही खिंचे चले आते। संयमशिरोमणि महापुरुष के सान्निध्य में आकर सामायिक स्वाध्याय व व्रत प्रत्याख्यान से अपने जीवन को भावित करते। आपके इस पाली प्रवास में अनेकों व्रत-प्रत्याख्यान हुए। लगभग २०० बालकों व तरुणों ने दयाव्रत की आराधना की।

भक्तों की उपस्थिति व व्रताराधन से शेखेकाल में ही चातुर्मास सा दृश्य उपस्थित हो गया। पाली से विहार कर आप जाडन, सोजत सिटी आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए सांडिया पधारे, जहां आपने हनुमानजी की तिबारी में रात्रिवास किया। यहां से पूज्यप्रवर चण्डावल, करमावास, कुशालपुरा फरसते हुए निमाज पधारे।

महापुरुषों के सान्निध्य में आने वाला व्यक्ति सहज ही आधि-व्याधि व कष्टों से मुक्त हो जाता है। आपके जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आये कि भयंकर से भयंकर प्रेत बाधा से ग्रस्त व्यक्ति सहज ही आपके दर्शन कर मुक्त हो गये। यहां भी एक भाई प्रेत बाधा से मुक्त हुआ। यहां से महेसिया, गिरी, बूँटीवास, रास, सेवरिया होते हुए पीसांगण पधारने पर आपकी प्रेरणा से समाज का झगड़ा मिट गया। पूज्यश्री ने फरमाया-"कोई किसी को बुलावे या कोई जावे तो रोक-टोक नहीं होनी चाहिए। अर्हन्त की साक्षी से आज तक की सब गलतियों को भूलकर परस्पर क्षमा प्रदान करें तो सब एक हो सकते हैं।"

गोविन्दगढ़, पुष्कर, अजमेर, डीडवाडा, दूदू, गाडोता, बगरू होते हुए माघ कृष्णा ११ को आपने जय-जयकारों की ध्वनियों के साथ जयपुर के लाल भवन में प्रवेश किया। यहाँ पंजाब से आ रहे मंत्री श्री प्रेमचन्द जी म.सा., पं.फूलचन्द जी म.सा. आदि सन्तों के सम्मुख संतगण गए और सब संत साथ ही विराजे। १६ सन्तों को एक साथ विराजे देख संघ ने हर्ष की अनुभूति की। मुनि श्री प्रेमचन्द जी म. ने चरितनायक से पंजाब की समस्या और संघ सम्बंधी वार्तालाप किया।

माघ शुक्ला २ वि.सं. २०२० दिनांक १६ जनवरी १९६४ को विरक्ता तेजकंवर जी (सुपुत्री सेठ श्री उमराव मल जी) जयपुर की आतिश मार्केट में सविधि दीक्षा सम्पन्न हुई। दो विदेशी व्यक्ति एवं जयपुर की महारानी गायत्री देवी भी इस समारोह में सम्मिलित हुई। जर्मनी के युवक-युवतियों की जिज्ञासाओं का पूज्यप्रवर ने लाल भवन में समाधान करते हुए मांसाहार एवं शाकाहार का सही तात्पर्य बताया। फाल्गुन कृष्णा एकम बुधवार को कवि श्री अमरमुनि जी पधारे, जिनके साथ चर्चा में श्रमण-संघ की स्थिति की समीक्षा की गई।

जयपुर के उपनगरों को फरस कर आप गाडोता पधारे। वहाँ महादेव जी पटेल ने आपकी प्रेरणा से आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। विविध ग्रामों को अपनी पद रज से पवित्र करते हुए आप अजमेर पधारे।

• शिखर सम्मेलन (अजमेर)

यहाँ अधिकारी मुनियों का शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें अनेक मुद्दों पर विचार किया गया। आचार्यश्री आत्माराम जी म.सा. के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् आचार्य का पद रिक्त था। इस सम्मेलन में उपाध्याय श्री आनंद ऋषि जी म.सा. को श्रमण संघ का आचार्य मनोनीत किया गया। फाल्गुन शुक्ला एकादशी रविवार को उन्हें अजमेर में ही समारोह पूर्वक आचार्य पद की चादर ओढ़ायी गई।

चरितनायक का यहाँ प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म.सा. और अन्य विराजित सन्तों के साथ संघ विषयक विचार-विमर्श हुआ। ध्वनियंत्र प्रयोग सम्बंधी विचार भी हुआ जिसमें सभी ने इसका निषेध किया।

तबीजी, जेठाणा, खरवा होते हुए आप ब्यावर पधारे। यहाँ आपका प्रवर्तक श्री मिश्रीमलजी म. मधुकर से मधुर मिलन हुआ तथा महासती जी श्री जसकंवर जी ने भी आपकी सेवा व सान्निध्य का लाभ लिया। द्वितीय चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को महावीर जयन्ती पर आपने अस्वस्थ होते हुए भी प्रवचन में फरमाया – "जयन्ती के विविध बाहरी रूप तो आप प्रस्तुत करते हो। हमें उसके अन्तररूप का भी विचार करना चाहिए। महावीर ने बोलने के पहले

धर्म का आचरण किया । उसका जीवन में साक्षात्कार कर फिर साढे बारह वर्ष के पश्चात् उ.देश दिया। एक ही उपदेश में ४४०० प्रतिबुद्ध हो गए। आप भी महावीर जयन्ती पर कुछ क्रियात्मक कार्य करें --१. रात्रि भोज छोड़ें २. शीलव्रत का पालन करें। ३. एक घंटा शास्त्र-वाणी का स्वाध्याय करें एवं ४. कटुवचन का त्याग करें।" स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से आप यहाँ पर मासकल्प विराजे।

यहाँ से गोला, नागेलाव, कालेसरा, पीसांगण , गोविन्दगढ में धर्मजागृति करते हुए मेवड़ा पधारने पर कई किसान भाइयों ने आपसे कसाइयों को पशु न बेचने व धूम्रपान न करने का नियम लिया। कांटों से युक्त मार्ग तय करते हुए पीपल के नीचे रात्रि बिताकर आप मेड़ता पधारे।

ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा को चरितनायक मेड़ता में विराज रहे थे। भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का देहान्त होने से दो दिन बाजार बन्द रहे। चरितनायक ने संसार की क्षण भंगुरता को देखकर विषय-कषाय घटाने की प्रेरणा की । यहाँ से कुचेरा पधारे, जहाँ स्वामीजी श्री रावतमलजी म. से मेघकुमार के पूर्व भव में समकित प्राप्ति की चर्चा कर आप फिरोजपुर मूंडवा, इठ्यासण होकर नागौर पधारे। यहाँ पर आपने व्याख्यान में फरमाया-"**आज का मानव जीवन-शोधन भूल रहा है। तन पर जरा-सा भी धब्बा लग जाए तो हम उसको साफ करते हैं। लोग प्रतिदिन नहाते-धोते हैं, किन्तु मन पर चारों ओर मैल जमा है, उसकी जरा भी परवाह नहीं करते। ज्ञान के निर्मल जल में सत्करणी की धुलाई से आत्मा को शुद्ध करो तो कल्याण ही कल्याण है।**" यहाँ पर प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रों में रुचिशील पंडितरत्न श्री पद्मसागर जी म. आप श्री के दर्शन करने पधारे एवं प्रसन्न भाव से ज्ञान-चर्चा की। मन्त्री श्री पुष्करमुनि जी म.सा. के भी कई दिन व्याख्यान साथ में हुए। दोनों के सान्निध्य से नागौर का सामाजिक तनाव दूर हुआ। यह मिलन आनन्ददायी रहा तथा कई विषयों पर चर्चा हुई।

खजवाणा, रूण, नोखा, हरसोलाव, वारणी एवं नारसर फरसकर आषाढ शुक्ला ९ को चरितनायक भोपालगढ़ पधारे।

• भोपालगढ चातुर्मास (संवत् २०२१)

विक्रम सवंत् २०२१ में आपका चौवालीसवाँ चातुर्मास भोपालगढ़ में हुआ, जहाँ सामायिक व स्वाध्याय का शंखनाद फूंकने के साथ आपने व्याख्यान में निम्नांकित पाँच नियमों के संकल्प की प्रेरणा दी--

१. मुनि-दर्शन को जाते समय मिठाई का त्याग।

२. सामूहिक रात्रि-भोजन का त्याग।

३. मास में कम से कम एक एकाशन करना।

४. सामायिक में हेण्डलूम या खादी के अलावा मिल आदि के वस्त्रों का त्याग।

५. डोरा टीका की माँगनी का त्याग।

यहाँ पर लगभग २५ अठाई तप और ३ मासखमण तप हुए। तपस्या की झड़ी सी लग गई । तीन दिनों में ही ४२५ व्रत हुए। एक नापित भाई ने ब्रह्मचर्य की महिमा सुनकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। एक हरिजन बहन ने सुश्रावक श्री जोगीदास जी बाफणा की धर्मपत्नी मानकंवर जी के मासखमण तप से प्रभावित होकर अठाई तप किया। इस बहन के अठाई तप के पारणे पर हरिजन मंडल ने सामूहिक मद्य-मांस का त्याग किया। गुरुदेव के श्रीमुख से अनेक श्रावकों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। विद्यालय के बालकों ने भी दयाव्रत आदि में भाग

लिया।

इस चातुर्मास में एक महत्त्वपूर्ण योजना जैन धर्म के मौलिक इतिहास के लेखन की बनी जिसके अनुसार भाद्रपद कृष्णा १३ शुक्रवार को इसका लेखन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया।

आचार्यश्री ने समागत जैन विद्वान् हरीन्द्रभूषण जी को प्रेरणा करते फरमाया – "जो विद्वान् संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के ज्ञाता हैं, उन्हें इन भाषाओं में रचना करना चाहिए। अनुवाद के आधार पर शोध-कार्य तो अन्य विद्वान् भी कर लेंगे पर इन भाषाओं में मौलिक लेखन तो इनके विशेषज्ञों द्वारा ही सम्भव है। इन भाषाओं की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों के सम्पादन का कार्य प्राथमिकता के तौर पर किया जाना चाहिए। लेखन के साथ-साथ संस्कृत-प्राकृत की रचना-धर्मिता को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है।"

पूज्यप्रवर ने संस्कृत-प्राकृत की पत्रिका की भी आवश्यकता प्रकट की। उल्लेखनीय है कि पूज्यश्री की यह प्रेरणा कालान्तर में 'स्वाध्याय शिक्षा' पत्रिका के रूप में सफल हुई।

पूज्यश्री ने नारी शक्ति को संगठित होने की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप महावीर जैन श्राविका संघ का गठन हुआ। उन्होंने आह्वान किया -'नारी शक्ति कुरीतियों से मुक्त होकर अपना सर्वांगीण आध्यात्मिक विकास करे।' आपके इस आह्वान एवं नारी-शिक्षण की प्रेरणा के फलस्वरूप सैंकड़ों-हजारों बहनों का जीवन बदला है और उन्होंने अपने जीवन का विकास किया है।

इस चातुर्मास में पूज्यप्रवर की प्रेरणा से युवक संघ का गठन हुआ जिसके अन्तर्गत युवक सम्मेलन आयोजित हुआ और उसमें कई क्रान्तदर्शी निर्णय लिये गये।

आचार्यप्रवर ने युवकों को सम्बोधित करते हुए फरमाया –"आप में शक्ति है, जोश है, पर ध्यान रखिएगा अपनी शक्ति का दुरुपयोग न हो और जोश में आप अपने होश को न भूल जाएं। आपकी शक्ति सदैव रचनात्मक कार्यों में लगनी चाहिए। आज की युवा पीढ़ी जिस तरह फैशन, विदेशी संस्कार, व्यसन, नशा, होटलों- टी.वी., सिनेमा आदि की शिकार हो रही है, आपको उससे बचकर रहना है। आप मादक पदार्थों के सेवन तथा अन्य व्यसनों से दूर रहें। अपने जीवन में सादगी और अपने खान-पान में सात्त्विकता बरतें।"

बालकों को संस्कार देने हेतु आपने चार नियम कराये – १. चोरी नहीं करना २. नशा नहीं करना ३. गाली नहीं देना और ४. नमस्कार मन्त्र का जाप करना। अनेक स्थानों से श्रद्धालु श्रावक - श्राविकाओं ने आकर त्याग-तप एवं व्रत-नियम अंगीकार किए।

स्वाध्याय का महत्त्व आप श्री के रोम-रोम में व्याप्त था। आपने एक दिन श्रावक-समाज को उद्बोधन देते हुए फरमाया–"स्वाध्याय वर्तमान समय की प्रथम आवश्यकता है। इसके लिये रुचि का जागृत होना आवश्यक है। लोंकाशाह ने अपने स्वाध्याय के बल पर शासन में बडी क्रान्ति उत्पन्न की, तब स्वाध्याय के लिए आज जैसे ग्रंथादि भी सुलभ नहीं थे, किन्तु जिज्ञासा ऐसी थी कि आपके पूर्वज श्रावक लोंकाशाह के घर जाकर धर्म श्रवण करते थे। आज आपको स्वाध्याय के लिए विशाल सामग्री तो उपलब्ध है, पर जिज्ञासा की कमी है। आपको जिज्ञासा जागृत करनी चाहिए, रुचि बढ़ानी चाहिए।"

सम्पूर्ण चातुर्मास स्थानीय श्रावकों के उत्साह एवं उमंग के साथ सम्पन्न हुआ। यह चातुर्मास धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टियों से अत्यन्त उपलब्धि पूर्ण रहा। विदाई के समय विद्यालय के बालकों सहित लगभग तीन हजार नर-नारियों का विशाल समूह जय जयकार करता हुआ साथ चल रहा था, जो अपने आप में अपूर्व था।

• जोधपुर एवं पाली की ओर

भोपालगढ़ से विहार कर खांगटा में ३२ वर्ष के तरुण नथमलजी कोठारी को आजीवन शीलव्रत का प्रत्याख्यान कराकर आप रणसीगांव , पीपाड़, बिसलपुर, पालासनी आदि ग्रामों में जिनवाणी का अमृतरस पान कराते हुए पौष शुक्ला पंचमी ८ जनवरी १९६४ को जोधपुर पधारे।

पौष शुक्ला १४ संवत् २०२१ को चरितनायक की जन्म जयन्ती जोधपुर में प्रवर्तक पण्डित श्री पुष्कर मुनिजी महाराज आदि के सह-सान्निध्य में तप-त्याग पूर्वक मनाई गई। चरितनायक ने इस अवसर पर फरमाया कि मेरा जीवन-लक्ष्य सामायिक-स्वाध्याय है। चतुर्विध संघ के सहकार से यदि मैं सामायिक-स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार का अपना उद्देश्य पूर्ण कर सका तो जीवन की सफलता समझूँगा। पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा. एवं श्री मगनमुनि जी की चिकित्सा के कारण आप जोधपुर में लगभग साढे तीन माह विराजकर स्वाध्याय, सामायिक एवं धर्म प्रवृत्तियों का वर्धापन करते रहे। सरदारपुरा में माघकृष्णा द्वादशी २९ जनवरी १९६५ को आपने प्रवचन में फरमाया - **"राजशासन के लिए कोष और सैन्यबल समृद्ध होना अपेक्षित है। वैसे ही धर्मशासन में चारित्र कोष और श्रावक हमारी सैन्य शक्ति हैं। इनमें निष्ठा एवं व्यक्तिगत मोह से ऊपर उठकर शासन के प्रति वफादारी होनी चाहिए। सम्मेलन के नियमों का जो पालन करे उन्हीं को साधु मानना चाहिए। श्रमणों को आचारधर्म का प्रामाणिकता से पालन करना चाहिए। आचार ही शासन की निधि है। हमें संगठन या सुधार के नाम पर संयम या आचार को नहीं झुकाना है। ज्ञान, क्रिया, विचार या आचार की तुलना में आचार के बिना विचार निर्मूल्य हैं।"** मेवाड़ प्रान्तमन्त्री श्री पन्नालालजी म.सा. की सम्प्रदाय की वयोवृद्धा महासतीजी श्री धनकुँवरजी ८० वर्ष की अवस्था में भी ग्रामानुग्राम विचरण करती हुई आपके दर्शनलाभ कर प्रमुदित हुई।

जोधपुर से लूणी पधारते समय मार्ग में आपका यति भेरूजी से वार्तालाप हुआ। एक वैष्णव साधु की हाथी पर सवारी निकल रही थी, आचार्य श्री को देखकर वह हाथी से उतरा, वन्दन किया और कहा कि मैंने आपके प्रकाण्ड पांडित्य, प्रवचन-पटुता और वाग्वैभव आदि गुणों की यशोगाथाएँ सुन रखी थी, आज आपके दर्शन कर मैं धन्य धन्य हो गया।

अक्षय तृतीया पर पाली के पंचायती नोहरे में वर्षीतप के पारणे हुए। चरितनायक ने यहाँ प्रवचन में प्रेरणा दी कि वैशाख शुक्ला एकादशी शासन जयन्ती के रूप में मनाई जानी चाहिए। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी महावीर के भौतिक पिण्ड का जन्म-दिन है जबकि वैशाख शुक्ला एकादशी महावीर की महावीरता का जन्म-दिन है। जन्म-जयन्ती लौकिक मंगल है तो शासन जयन्ती लोकोत्तर मंगल है। इससे आचार्य श्री के मौलिक चिन्तन का बोध हुआ। पाली से पुनायता, केरला, गढवाडा, जेतपुरा आदि को फरसते हुए आप मांडावास पधारे। यहाँ पर मंदिरमार्गी व स्थानकवासियों में मनमुटाव था। आपस में हुई गलत फहमियों को दूर करने हेतु गुरुदेव के द्वारा प्रेरणा की गई, जिससे परस्पर शीघ्र ही सुलह हो गई। यहाँ से आप गेलावास, ढींढस (यहां श्री चुन्नीलालजी ने शीलव्रत अंगीकार किया), मजल, कोठड़ी, राणी दहिपुरा एवं दसीपुरा पधारे, जहाँ १५ वर्ष के भेरू ने १० वर्ष शीलपालन का नियम लिया। यहाँ से समदड़ी में पुष्करमुनिजी म. से विचार-विमर्श कर देवेन्द्र मुनिजी को साहित्य एवं अध्ययन लेखन की प्रेरणा करके आप करमावास, राखी, मोकलसर होते हुए वीर दुर्गादास की ऐतिहासिक भूमि सिवाना पधारे, जहाँ आपको विदित हुआ कि सिवांची क्षेत्र के १४४ ग्राम पारस्परिक कलह में डूबे हुए हैं। पूज्य प्रवर ने इस कलह को

दूर करने का मन में दृढ़ संकल्प कर लिया एवं कलह - निवारण न होने तक दुग्ध - सेवन का त्याग कर दिया, जिसका सन्तों के अतिरिक्त किसी को भी पता नहीं था। तप का अपना प्रभाव होता है। गुरुदेव सन्तमण्डली के साथ चातुर्मासार्थ बालोतरा पधारे।

• बालोतरा चातुर्मास (संवत् २०२२)

संवत् २०२२ के बालोतरा चातुर्मास में पूज्यश्री ने सिवांची क्षेत्र में व्याप्त इस पारस्परिक मतभेद को दूर करने हेतु प्रयत्न किए, जो सफल रहे। यहाँ के कलह की यह स्थिति थी कि रोटी बेटी का व्यवहार बंद था। वधू को लाने गया हुआ जामाता ससुराल का अन्न-जल भी ग्रहण नहीं कर सकता था तो लाडले भय्या को राखी बांधने पितृगृह आई हुई बहिन, पितृगृह में पानी भी स्वीकार नहीं कर सकती थी। गुरुदेव की भावना थी कि ये टूटे तार फिर से जुड़ जाने चाहिए। इसके लिए आपने समाज-प्रमुखों को समझाया। प्रवचन भी क्रोध-कलह के शमन एवं प्रेम-भाव की अभिवृद्धि को लक्ष्य में रखकर फरमाये। आपने फरमाया कि धर्म ऋजु हृदय में ठहरता है और ऋजु होने के लिए कलह-द्वेष का निराकरण आवश्यक है। समाज में एक-दूसरे पर विश्वास आवश्यक है। शरीर में आंख में चूक से कभी पैर में काँटा लग जाय तो क्या पैर आंख पर भरोसा नहीं करेगा ? और क्या आँख पैर का कांटा निकालने में सहयोग नहीं करेगी ?

पूज्यपाद गुरुदेव ने फरमाया कि मनुष्य में इतना प्रेम क्यों नहीं कि वह दूसरे के हृदय में स्थान बना सके। छोटा सा कीड़ा पत्थर में घर कर लेता है। वह इंसान क्या जो दिल में घर न कर सके। आचार्य श्री यहाँ पर प्रतिदिन प्रवचन में कषाय शमन की प्रेरणा करते थे। वह प्रेरणा हृदयस्पर्शी बन गई। चरितनायक ने बालोतरा के प्रमुख श्रावक श्री बच्छराजजी अन्याव को दायित्व बोध कराते हुए फरमाया –"अन्याव जी ! समय बीत जाएगा, मात्र यश-अपयश शेष रहना है। आप इस प्रकरण में अपनी भूमिका निभाकर क्षेत्र को लाभान्वित करें।" अन्यावजी ने आपके शान्ति व प्रेम के संदेश को हृदयंगम कर समाज प्रमुखों को बुलाकर बातचीत करना प्रारम्भ किया। जोधपुर के वकील श्री संपतमलजी व गणपतचन्दजी को मध्यस्थ तय किया गया।

चरितनायक ने समाज एवं मध्यस्थों का मार्गदर्शन करते हुए फरमाया –"जैन धर्म अनेक दृष्टियों और वस्तु को भीतर-बाहर दोनों दृष्टि से निर्णय करने को कहता है। इसके सन्देशानुसार चलने से संघर्ष नहीं होता। जातीय खार मिटाने हेतु दो धाराओं को नदी के रूप में प्रवाहित करना है। छोटा सा किसान भी धारा के बीच की मिट्टी को अलग कर दे तो दोनों धाराएँ एक हो जाती हैं। आपने चतुरविज्ञानी व शोधक बुलाये हैं। उन्हें खारे स्रोत के स्थान पर मीठे पानी का स्रोत निकालना है। आप उनके सहायक होंगे, शान्ति बनी रहे। मध्यस्थ मध्य में रहने वाले होते हैं। उनको सबकी सुनकर मन की करना है। समाज के हित की करना है, दोनों को थोड़े निकट लाना है। आशा ही नहीं, पूरा भरोसा है कि मध्यस्थ समाज की समस्या को सुलझा कर सर्वांग पूर्ण निर्णय देंगे। भविष्य की बाधा की रोकथाम करेंगे।'

इस कलह को दूर करने हेतु पहले विभिन्न सम्प्रदायों के महापुरुषों ने प्रयत्न किया, किन्तु सिवांची पट्टी के लोग अड़े रहे। अन्त में चरितनायक के द्वारा स्नेह एवं सद्भाव के लिए की गई प्रवचनामृत रूपी औषधि ने मनमुटाव के विष को धो दिया।

चरितनायक के प्रवचनामृत से प्रभावित होकर श्री बच्छराज जी अन्याव के साथ श्री बादरमलजी अन्याव, श्री धनराजजी चोपड़ा, श्री भीकमचन्दजी सिवाणा, श्री आसाराम जी, श्री श्रीमलजी हुंडिया, आहोर के श्री हजारीमल जी,

मुकनजी आदि भी आगे आए।

मध्यस्थगण श्री सम्पतमलजी एवं श्री गणपतचन्दजी ने समत्वसाधक चरितनायक के मैत्री एवं समरसता के सन्देश के अनुसार समाधान निकालने हेतु सबकी बात सुनकर समझकर सुलह का फैसला सुनाया तो समूचे सिवांची क्षेत्र में प्रेम व हर्ष की लहर दौड़ गई। सभी युगमनीषी चरितनायक का उपकार मान रहे थे। सर्वत्र एक ही चर्चा थी कि जो कार्य अनेक प्रयासों से नहीं हो पाया, वह इन आबाल ब्रह्मव्रती महापुरुष के पदार्पण व अतिशय से सहज ही सम्पन्न हो गया। धन्य है महापुरुष जिनके चरण जिस ओर भी अंकित हो जाये वहां कलह अशान्ति रह ही नहीं सकते। समाज में छायी शान्ति, प्रसन्नता व मैत्री भाव के संचरण से चरितनायक को भी प्रमोद व स्वाभाविक सन्तोष था। झगड़ा प्रेम में बदल गया, पारस्परिक क्रोध का शमन हुआ, शान्ति सरिता लहराने लगी, स्नेह सद्भाव के तराने गूंजने लगे।

सितम्बर १९६५ में सीमा पर भारत की सेनाएं आक्रान्ता पाक सेनाओं का सामना करते युद्धरत थी। पाकिस्तान द्वारा जोधपुर तक अपने युद्धक विमानों द्वारा बम वर्षा की जा रही थी। जोधपुर के लोग भयाक्रान्त थे। हजारों की संख्या में नागरिक जन सुरक्षित स्थानों की चाह व मृत्युभय से जोधपुर छोड़ चुके थे। जैसे ही रात्रि होती, नगर जनों में एक ही आशंका थी कि न जाने कल का प्रभात देख पायेंगे या नहीं? कहीं आज की रात्रि काल रात्रि बन कर हम नगरवासियों को सामूहिक रूप से अपने आगोश में न ले ले।

ऐसे समय में देश के कोने-कोने में रहे हुए हजारों लाखों भक्तों के मन के किसी कोने में अपने आराध्य गुरु भगवंत के बालोतरा विराजने से अनेक आशंकाएं व दुश्चिन्ताएं जन्म लेना सहज स्वाभाविक था। अन्य महापुरुषों के मन में भी पूज्य श्री के कुशल-मंगल के बारे में चिन्ता लगी रहती थी। स्वयं परम पूज्य आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज साहब का परामर्श था कि ऐसी स्थिति में पूज्य श्री बालोतरा से अन्यत्र विहार कर दें तो आपवादिक स्थिति में शास्त्रीय मर्यादा के निर्वहन में कोई बाधा नहीं है। पर स्वयं भगवन्त के मन में तो कोई ऊहापोह नहीं था, उन्हें तो अपने आत्मबल पर पूर्ण विश्वास था, अपनी संयम-साधना के सुरक्षा कवच में यह महापुरुष अडोल अकम्प था। आपवादिक परिस्थितियों में भी उनके मन में अन्यत्र विहार करने की कल्पना भी न थी।

भेद विज्ञान का ज्ञाता जीवन-मरण की चिन्ताओं से परे, साधना सुसम्पन्न, संयम व्रती महापुरुष तो विपरीत परिस्थितियों में दृढ रहे संभव है, पर बालोतरा के दृढ आस्तिक गुरु भक्तों के ही नहीं वरन् सामान्य-जन के मनों में भी न तो कोई चिन्ता थी , न कोई ऊहापोह। यद्यपि जोधपुर बम वर्षा करने आने वाले पाक विमानों का मार्ग बाड़मेर के सीमान्त जिले से ही था, युद्धक्षेत्र सन्निकट ही था, पर बालोतरावासियों को तो मृत्यु का भय छू भी नहीं पाया था। वे तो अभय थे। उनके मन में सहज विश्वास था कि असंख्य देवी-देवताओं द्वारा स्मरणीय पंच परमेष्ठी मंत्र के तृतीय पद का धारक, जिनशासन का अनुशास्ता, अभय का देवता एवं प्राणिमात्र के हित को चाहने वाला, भगवत् तुल्य महायोगी हमारे यहां साक्षात् विराजमान हो जिनवाणी की पवित्र गंगा प्रवाहित कर रहा है तो मृत्यु हमें भला छू भी कैसे सकती है, क्योंकि जहाँ जहाँ महापुरुष विराजते हैं, वहाँ वहाँ विपत्तियाँ या प्राकृतिक आपदाएं प्रवेश भी नहीं कर पाती। परम पूज्य भगवन्त के प्रति ऐसी जन आस्था जिनशासन की महिमा बढ़ा रही थी व सुदूर बैठे भक्तों की आशंकाओं को निर्मूल कर उन्हें भी परम पूज्य की छत्रछाया के रक्षा कवच में आने को प्रेरित कर रही थी।

गुरुदेव ने सभी को साहस बंधाते हुए फरमाया कि आप सब धैर्य रखें। कुछ भी नहीं होगा और यही हुआ,

खाइयाँ खुदी की खुदी रह गई और सुरक्षा परिषद् ने ४८ घंटों में युद्ध बन्द का आदेश दे दिया। चरितनायक का यहाँ पर लेखन कार्य चलता रहा। धर्म श्रद्धालुओं का दूर-दूर से आवागमन रहा तथा बहुविध तप-त्याग से चातुर्मास पूर्ण सफल रहा। इन क्रियानिष्ठ ज्ञान के संगम, प्रबल पुण्यवानी व अतिशय के धनी महापुरुष के प्रति जिन धर्मानुयायी ही नहीं, समूचा बालोतरा नगर श्रद्धा व समर्पण से नत मस्तक था। चारों माह की अवधि तक सभी ने चरितनायक व संत मुनिराजों के ज्ञान क्रियासम्पन्न जीवन को देखा था, उनकी पातक प्रक्षालिनी वाणी का श्रवण किया था व उनके साधनातिशय का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। जन - जन के मन-मन्दिर के वे आराध्यदेव थे, जिनकी प्रेरणा पर वे सब कुछ समर्पण करने को तत्पर थे। भक्तों के इस श्रद्धा समर्पण व भक्ति को चरितनायक ने सामायिक-स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार से जोड़ने का अभिनव प्रयास किया। कहना न होगा बालोतरा क्षेत्र को धर्म क्षेत्र के रूप में प्रतिष्ठित करने में यह चातुर्मास मील का पत्थर साबित हुआ।

आपने कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को लोंकाशाह जयन्ती के अवसर पर फरमाया कि लोंकाशाह ने स्वाध्याय के बल से ज्ञान प्राप्त कर क्रान्ति का शंख फूंका। आज भी उसी स्वाध्याय और क्रान्ति की आवश्यकता है।

■

गुजरात की भूमि पर

(संवत् २०२३)

बालोतरा से विहार कर विभिन्न ग्रामों को अपनी पद रज से पावन बनाते हुए चरितनायक सुदूरवर्ती रेगिस्तानी क्षेत्र बाड़मेर पधारे। यहाँ लम्बे समय के बाद क्रियानिष्ठ संतों का पदार्पण हुआ था। सच्चे संयम आराधक संतों के सान्निध्य के अभाव में लोग सामायिक स्वाध्याय आदि सम्यक् आराधना की बजाय द्रव्य परम्पराओं की ओर आकर्षित व समर्पित हो रहे थे। ऐसे समय में भगीरथ के समान इस रेतीले प्रदेश में आपका पदार्पण हुआ। आपके श्रीमुख से जिनवाणी का पान कर लोग पुनः शुद्ध परम्परा में दृढ हुए। धर्माचरण में शिथिल हुए लोग पुनः स्थिर बने। कहना न होगा आपने पधार कर सुप्त लोगों को पुनर्जागृत किया, धर्म व आचार के शुद्ध स्वरूप का लोगों को पुनः बोध कराया। आपकी प्रेरणा से यहां सामायिक संघ की स्थापना हुई। आपने यहाँ शास्त्र भंडार का अवलोकन भी किया। बाड़मेरवासियों को धर्मोपकार से उपकृत कर आप ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सिणधरी पधारे। अचला जी जाट ने आजीवन शीलव्रत का नियम लिया एवं कई चारण और जाट लोगों ने तम्बाकू, बीड़ी आदि के त्याग किये। वहाँ से पायला, नादिया, मोरसीम, बाली, झाब होते हुए आप सांचोर पधारे, जहाँ सामायिक संघ की स्थापना हुई एवं एक दिन में १००० सामायिकें हुईं। यहाँ से धानेरा, डीसा आदि विभिन्न क्षेत्रों में धर्मजागृति करते हुए आप गुजरात पधारे। आपने कई स्थानों पर व्यसन-त्याग कराये तथा सामायिक एवं स्वाध्याय की प्रेरणा की। धानेरा में आपने फरमाया – "**सामायिक विश्वकल्याण की साधना है। दुःख का मूल ममता है और उसके उच्छेद का उपाय समता है। सामायिक मन की विषमता मिटाने का प्रमुख उपाय है।**" आपकी प्रेरणा से डीसा में ९ भाई साप्ताहिक सामूहिक स्वाध्याय के लिए तैयार हुए।

पालनपुर के ज्ञान भंडार में आपने भूधरवंशी सन्तों के लिखे कई शास्त्रों का अवलोकन किया और संवेगी उपाश्रय के ज्ञान भण्डार की करीब १६००-१७०० प्रतियां (४१ डिब्बों मे) देखकर आप प्रमुदित हुए। यहाँ पर जैन दर्शन में भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए आपने एक दिन फरमाया - "**हमारी मूल परम्परा में भक्ति को विनय शब्द से कहा है । विनय में स्व-पर के हित का खयाल होता है। वहाँ मोह नहीं होकर गुणानुराग होता है। भक्त भजनीय के स्वरूप में अपने को एक रूप करता जाता है।**"

इसके अनन्तर १२ दिनों के प्रवास में पाटण के प्राचीन ग्रन्थ भण्डारों के सिंहावलोकन में गुरुदेव ने १४वीं एवं १५ वीं शती की दो ताड़पत्रीय प्रतियाँ देखीं। संवत् ११८८ की प्राचीन प्रति, कतिपय प्रशस्तियाँ, तेलगू लिपि के कई ग्रन्थ एवं लगभग डेढ़ हजार ग्रन्थ सुरक्षित देखकर आप अत्यंत प्रमुदित हुए। विमलगच्छ के भण्डार में तीन हजार हस्तलिखित प्रतियाँ, ज्ञानमंदिर में १३ हजार प्रतियाँ, श्री विमल उपाध्याय भण्डार में तीन हजार ग्रन्थों (संवत् १५२२ स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र सहित) का अवलोकन कर पाटण के ताड़पत्रीय संग्रह से आपश्री अत्यधिक पुलकित हुए। इसमें मुनि पुण्यविजयजी का पूरा सहयोग रहा। चरितनायक यहाँ से धीणोज, मेहसाणा, धोलासण, झूलासण होकर कलोल पधारे। कलोल में आपसे पूज्य श्री चुन्नीलालजी म. एवं महासती ताराबाई का मिलन हुआ। सुशील मुनि जी

अगवानी में आए। अडालज में आपका श्री पारस मुनिजी के साथ प्रवचन हुआ। यहाँ से पूज्यवर्य साबरमती पधारकर चैत्र शुक्ला ४ संवत् २०२३ को बुधाभाई आगममंदिर शान्तिनगर स्थानकवासी जैन सोसायटी पधारे।

यहाँ पर प्रवचन में आपने पुण्य-पाप का विवेचन करते हुए फरमाया - **"नादान भुगत करणी अपनी। पाप लोहे की बेड़ी और पुण्य सोने का कड़ा है। मनुष्य गति , पंचेन्द्रिय जाति आदि का लाभ पुण्य का फल है। बाह्य साधन पाकर भी सत्कर्म में रुचि नहीं होना, यह पाप का फल है। ब्रह्मदत्त को छः खण्ड का राज्य मिला। चित्तमुनि जैसे ज्ञान देने वाले मिले, पर वह आर्यकर्म भी नहीं कर सका, व्रताराधन नहीं कर सका - यह पाप का उदय है। पुण्यानुबंधी पुण्य मनुष्य को धर्म के अभिमुख करता है, यही उपादेय है ।"** आप आगम-टीकाकार पूज्यश्री घासीलाल जी म.सा के दर्शनार्थ सरसपुर पधारे, जहाँ पूज्यश्री घासीलाल जी म.सा. ने स्वयं सामने पधार कर दर्शनों की कृपा की और भावभीने गुणाष्टक द्वारा चरितनायक का स्वागत किया। पूज्य श्री घासीलाल जी म.सा. ने फरमाया-"पुरुषों में हस्ती की समानता नहीं। समाज में मैंने तीन रत्न पाए-श्री आत्मारामजी महाराज, श्री समर्थमल जी महाराज और मेरे पास बैठे श्री हस्तीमल जी म.। पुरुषों में गन्धहस्ती ही ग्राह्य है जिनके प्रताप से दूसरे गज भाग जाते हैं, सामना करने की और खड़े रहने की भी उनकी ताकत नहीं। इन हस्तीमल जी को मैंने आज ही देखा। पहले सुना करता था कि मारवाड़ में ऐसा तेजस्वी साधु है। (विनोद में कहा) उन्हें मैं क्या कहूँ? जोधपुर का राजा कहूँ या नव कोटि मारवाड़ का सरताज।" यह कहते हुए उन्होंने संस्कृत में स्वरचित प्रशस्ति सुनाई जिसे बाद में चरितनायक को अर्पित किया। पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. द्वारा अर्पित गुणाष्टक का प्रथम पद्य इस प्रकार है —

असारं संसारं वदति सकलो बोधयति नो,
बुधे बोद्धा बुद्ध्या सकलजनताबोधनपरः।
यदीये सद्वाक्ये स्फुरति महिमा कोऽप्यनुपमो,
गणी हस्तिमल्लः शमितकलिमलः शुभमतिः॥

इस संसार को सब मनुष्य असार अर्थात् मिथ्या कहते हैं, किन्तु इसके सच्चे तात्पर्य को नहीं समझाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्यों में ज्ञानी मनुष्य ही इसके सत्य स्वरूप को समझाते हैं। जिनकी सद्वाणी में कोई अनुपम महिमा प्रकट होती है, ऐसे शुभ बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल जी को देखकर कलियुग के पाप स्वयं शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार अपने भाव बतलाकर आपने प्रसन्नता प्रकट की कि ऐसे शान्त शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार विचरने वाले गणीजी से मेरा मिलन हुआ है।

नगर सेठ के बंडे के स्थानक में सती विमलाजी मंजुलाजी ने चरितनायक आचार्य श्री से दण्डक पर प्रश्नोत्तर किये। आपने यहां १५००-२००० मुद्रित पुस्तकों एवं कुछ हस्तलिखित प्रतियों वाले गुलाबवीर भण्डार को देखा। छीपापोल में सती वसुमती जी ने भक्तिगीत प्रस्तुत किया। खेड़ा में शांतिमुनि जी से आपकी बातचीत हुई।

२० अप्रेल १९६६ को समुद्रतट के किनारे रत्नपारखी नगर खम्भात में चरितनायक के स्वागतार्थ आचार्य श्री कान्तिऋषि जी पधारे। आपश्री ने ज्ञान-भंडारों का निरीक्षण किया। कपाटों में बन्द ग्यारह अंग, उपांग, कल्पसूत्र कर्मग्रन्थ आदि की लगभग २० हजार प्रतियाँ थी। प्रत्येक प्रति अलग कपड़े में बंधी हुई देखी। आपने भण्डार के कई डिब्बों का अवलोकन किया।

अक्षयतृतीया के दिन आठ वर्षीतप आराधकों का पारणक हुआ। आप श्री ने प्रवचन में फरमाया कि भगवान आदिनाथ ने जिस प्रकार इक्षुरस का पान किया उसी प्रकार अपने को ज्ञानरस का पान करना चाहिए। यहां आपकी

संवेगी साधुओं से स्नेह वार्ता हुई। सामायिक संघ के संयोजक श्री चुन्नीलाल जी ललवाणी ने एक दिन व्याख्यान में सामायिक संघ का परिचय दिया। यहाँ पर चरितनायक द्वारा ताडपत्रीय भण्डार का अवलोकन भी किया गया। चरितनायक जहाँ भी पधारते उस ग्राम-नगर के ज्ञान-भण्डार का अवलोकन किए बिना नहीं रहते। साहित्य एवं ज्ञान के प्रति आपकी लगन अनुपम थी। कान्ति ऋषि जी ने आपकी प्रेरणा से लेखन का अभ्यास प्रारम्भ किया।

स्वाध्यायियों को शान्ति सैनिक की संज्ञा देते हुए आपने स्वाध्याय मण्डल के गठन की प्रेरणा की। पं. दलसुख भाई मालवणिया चरितनायक के दर्शनार्थ पधारे। जैन दर्शन पर ज्ञान-चर्चा खम्भात का अविस्मरणीय प्रसंग रहा। आपने उनके साथ सीमन्धर और स्तम्भन पार्श्वनाथ के प्राचीन मन्दिर की कलाकृति देखी एवं नयी शाला में शिक्षार्थियों को पढाते हुए सन्तों से मिले। चरितनायक ने खम्भात प्रवास के दौरान यहाँ की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है –**"धर्मशासन में शिथिलता का इतना प्राबल्य है कि शीघ्र ही किसी महापुरुष को क्रान्ति करनी पड़े। महिमा-पूजा का रोग फैल चुका है। "** प्रेम सूरि शिक्षायतन में छात्रों को सम्बोधित करते हुए आपने फरमाया कि अर्थ से अधिक धर्म को महत्त्व देना चाहिए। भरत का उदाहरण देते हुए फरमाया कि वह चक्ररत्न को छोड़कर प्रभुवन्दन को गया। आपश्री खम्भात में लगभग एक माह विराजे। खम्भात से विहार कर आप अगास आश्रम आए। यहाँ पूज्यपाद ने उपदेश माला और उपदेश तरंगिणी पुस्तकों का वाचन किया। वहाँ से आप आणंद में वीरवाणी का प्रचार करते हुए नडियाद, संधाणा, वारेजा, बटेवा, मणिनगर होते हुए छीपापोल पधारे, जहाँ इतिहास कार्य के लिए स्थानीय सहकार की प्रेरणा दी।

• अहमदाबाद चातुर्मास (संवत् २०२३)

यहाँ से आपने स्थानकवासी सोसायटी होते हुए विक्रम संवत् २०२३ के चातुर्मास हेतु आषाढ शुक्ला ६ शुक्रवार २४ जून १९६६ को आश्रम भवन में प्रवेश किया। यहाँ आपकी पं. सुखलाल जी संघवी से ज्ञान चर्चा हुई। चातुर्मास में पं. रूपेन्द्र कुमार पगारिया ने सेवा का लाभ लिया। एक दिन आप लाल भाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर का अवलोकन करने पधारे, जहाँ आपका प्राकृत एवं जैनदर्शन के विद्वान् पं. बेचरदास जी एवं पं. दलसुख भाई मालवणिया से इतिहास संशोधन के सम्बंध में विचार-विमर्श हुआ। चरितनायक ने उत्तराध्ययन, प्रश्नव्याकरण और भगवती सूत्र से मुँहपत्ती के प्रमाण भी दिये।

यहाँ पर ही २८ जुलाई १९६६ को आपने सम्वत्सरी पर्व के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए फरमाया - "आज हम भगवान महावीर की ज्ञाननिधि के बल से ही अपना जीवन निर्माण करते हुए अपने आचार और विचार में प्रकाश पाते हैं। आगम में कुछ बातों पर यानी मुक्ति-मार्ग पर स्पष्ट उजाला है , जैसे प्रकाश में पहाड़ स्पष्ट दिखाई देता है। कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिन पर स्पष्ट रूप नहीं है। जिस बाबत खुली दिशा प्रकट नहीं की गई वहाँ आचार्य का जीत व्यवहार ही उनके विचारों का निर्णय कहलाता है, जिन्होंने प्राचीन परम्परा को लेकर विचारों को सुलझाया है, वही निधि लेकर संघ आज तक चल रहा है।"

यहाँ पर आपका श्री जिनविजय जी से इतिहास के परिचय और परामर्श पर वार्तालाप हुआ और लोंकागच्छ से सम्बंधित सामग्री प्राप्त हुई। चातुर्मास में पट्टावली का मिलान व सिद्धान्त शतक का अर्थ आदि लेखन-पठन का बहुत काम हुआ। यहां आपने गुजरात विद्यापीठ के संग्रह से योगशास्त्र की पुस्तकें देखी। उत्तराध्ययन चूर्णि का वाचन किया। चातुर्मास में एक दिन आपको सिर में भारीपन व छाती पर दर्द का असर अनुभव हुआ तो भेदविज्ञान ज्ञाता, उन महापुरुष ने यह चिन्तन किया–"मैं यह शरीर नहीं, मैं तो इसमें अवस्थित चिदानन्द स्वरूप

आत्मा हूँ। मैं तो रोग व शोक से सर्वथा परे हूँ। शुद्ध स्वरूपी आतम राम। रोग रहित मैं हूँ निष्काम। ये रोग और शोक भला मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं।" "रोग शोक नहीं देते मुझे जरा मात्र भी त्रास, सदा शान्तिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास" इस अध्यात्म चिन्तन से तुरन्त लाभ हुआ व चरितनायक स्वस्थ हो गये। चरितनायक के गायक भक्त दौलतरूपचन्दजी भण्डारी एवं विद्वान् स्वाध्यायी पारसमलजी प्रसून भोपालगढ ने यहाँ भी अपने गायन का प्रभाव छोड़ा। चातुर्मास में सदार शीलव्रत के अनेक प्रत्याख्यान हुए। बाहर से कई प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं का आगमन हुआ। यहाँ सामायिक-स्वाध्याय का अच्छा प्रचार हुआ। पूनमचंद जी बरडिया जैसे अनेक श्रावकों ने इस चातुर्मास में सक्रिय सेवा का लाभ लिया। चातुर्मासकाल में लगभग १२०० अठाई तप हुए। स्वधर्मी वात्सल्य का लाभ लालभाई ने लिया।

अहमदाबाद में विविध प्रकार की सत्प्रवृत्तियों में वि.सं. २०२३ का वर्षावास व्यतीत कर चरितनायक ठाणा ७ से मार्गशीर्ष कृष्णा एकम को साबरमती होते हुए जब सरसपुर पधारे तो पूज्य श्री घासीलाल जी म.सा. आपका सम्मान एवं स्नेह व्यक्त करने हेतु द्वार तक पधारे और प्रार्थना के पश्चात् दो शब्द व्यक्त करते हुए चरितनायक को कल्पवृक्ष की उपमा देकर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। पालड़ी, सरखेज (आचार्य श्री धर्मदासजी म.सा. की जन्म भूमि), नड़ियाद, आणंद, वासद एवं छाणी होते हुए आपने बड़ौदा की ओर विहार किया। छाणी में आपका प्रेमविजयसूरिजी से मधुर मिलन हुआ।

आपने बड़ौदा में श्री आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिर में कान्तिविजयजी और हंसविजय जी के शास्त्र संग्रह का अवलोकन किया, जिसमें करीब ८००० हस्तलिखित ग्रन्थ थे। नरसीजी की पोल के सामने स्थित इस ज्ञानमन्दिर की प्रथम मंजिल में मुद्रित ग्रंथ और ऊपरी मंजिल में ताडपत्र एवं कर्गल लेख हैं। कुल ६५ ताडपत्र प्रतियाँ तथा नक्शे, चित्रपट और सुवर्णाक्षरी कल्पसूत्र आदि भी हैं। सूचीपत्र स्पष्ट एवं लेखनकाल सहित उपलब्ध हैं। वहाँ पर स्थित प्राच्य विद्या मन्दिर में आपने तीन दिन पधारकर विभिन्न ग्रन्थों का निरीक्षण किया। इस पुस्तकालय में जैन ग्रन्थ हजारों की संख्या में हैं। कहते हैं कि दस हजार प्रतियाँ इस विद्यामन्दिर को यति श्री हेमचन्द जी ने दी है। यहां आपने स्थानकवासी तेजसिंह गणी जी की कई रचनाएँ देखी एवं १७ प्रशस्तियों का लेखन किया।

आप बड़ौदा में १५ दिन विराजकर छाणी, वासद आदि ग्रामों को फरसकर २६ जनवरी को प्रांतीज पधारे जहाँ धार्मिक पाठशाला प्रारंभ हुई। मास्टर चंदूलाल जी ने शाला में शिक्षण प्रारंभ किया। गणतन्त्र दिवस के दिन श्रावकों की संख्या उत्साहजनक थी। यहाँ बुद्धिसागरसूरि जैन ज्ञानमन्दिर का अवलोकन करते समय आपने आर्यामहाकंवर का निरयावलिका सूत्र सं. १७७९ का लिखा हुआ देखा। यहां आपने ढुंढकरास का अध्ययन कर उसका सार लिखा। गुजरात में ज्ञान भण्डारों से इतिहास विषयक सामग्री मिली। अध्यात्मरसिक एवं आत्मलक्ष्यी सन्त होते हुए भी इतिहास में आपकी गहन रुचि थी। हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत के साथ प्राचीन भाषा एवं लिपि के आप विशेषज्ञ थे। इस प्रवास में आपने 'जैनाचार्य चरितावली' का पद्यबद्ध लेखन किया एवं जैनधर्म का मौलिक इतिहास प्रस्तुत करने हेतु आपके प्रयासों को बल मिला।

■

जयपुर, पाली, नागौर एवं मेड़ता के चातुर्मास (संवत् २०२४-२०२७)

• उदयपुर की ओर

राजस्थान में दीक्षा की सम्भावना के कारण प्रान्तीज से सताल, हिम्मतनगर, आगियोल, रूपाल , सरडोई, टींटोई, सामलाजी, बीछीवाड़ा खेरवाड़ा, ऋषभदेवजी (संवत् १७५४ काष्ठा संघ का शिलालेख नोट किया), प्रशाद, टीडी आदि ग्राम-नगरों को सम-विषम मार्गों से पावन करते हुए माघपूर्णिमा संवत् २०२३ को आपका मेवाड़ की धरा उदयपुर में आगमन हुआ। यहाँ पर आप भोपालपुरा के गाँधीधाम में विराजे। यहाँ महासती शीलकंवरजी एवं अन्य साध्वियों ने चरितनायक के दर्शन किये तथा प्रान्तीज आदि स्थानों के श्रावक दर्शनार्थ आए। अस्वस्थ सतियों (कौशल्याजी व समर्थमल जी म.सा. की सतियों) को दर्शन देने आप स्वयं पधारे। महासती कुसुमवतीजी के पधारने पर अनुयोगद्वार सूत्र के प्रश्नोत्तर हुए।

उदयपुर में मास्टर पूनमचन्दजी, बम्ब सा., बिहारीलालजी सुराणा आदि बहुत सेवाभावी श्रावक थे। यहां आपके दर्शनार्थ सिविल जज श्री उमरावमलजी चोरडिया वकील जीवनसिंह जी के साथ आए। एक दिन रात्रि में परमाणु के वर्णादि परिवर्तन के सम्बन्ध में चर्चा हुई। **चरितनायक ने फरमाया कि एक गुण से अनन्तगुण कालादि का परिणमन सम्भव है। मूलगुण का परिवर्तन सम्भव नहीं, क्योंकि गुण गुणी से सर्वथा भिन्न नहीं रहता।** आप यहाँ कान्तिसागर जी महाराज का संग्रह देखने गए तथा उनसे चर्चा भी हुई। यहाँ पर आपने एक दिन व्याख्यान में फरमाया – **"आत्मा के पतन और दुःख का कारण अज्ञान एवं मोह है। अज्ञान ज्ञान से मिटाया जाता है और ज्ञान सत्संग तथा स्वाध्याय से मिलाया जाता है। जब तक सद्ज्ञान का प्रसार नहीं होगा, समाज सुधर नहीं सकेगा।"** यहीं पर एक दिन अपने प्रवचनामृत में फरमाया– **"सद्गृहस्थ भोगसामग्री को मिलाते हुए भी असद्मार्ग से बचकर चलता है। असद्मार्ग से मिलायी गई सम्पदा से वह धन की गरीबी को अच्छी मानता है। शरीर की सहज कृशता शोथ (सूजन) के मोटापे से अच्छी है।"**

• नाथद्वारा, भीलवाड़ा, अजमेर होकर जयपुर

तदनन्तर आपश्री एकलिंगजी होकर फाल्गुन शुक्ला ६ संवत् २०२३ को देलवाड़ा पधारे। वहाँ आपने पाँच भाइयों को प्रतिमाह एक दयाव्रत दो वर्ष तक करने के नियम कराये, राजमलजी बोकाड़िया को दैनिक सामायिक करने, रात्रि-भोजन, जमीकन्द और अब्रह्म सेवन की मर्यादा तथा अधिक ब्याज न लेने का नियम कराया, कुछ भाइयों को माह में १५ सामायिक करने के नियम कराये एवं तीन युवकों को दो वर्ष तक दैनिक प्रार्थना का संकल्प कराया। ओडण में भी इसी प्रकार धर्मप्रेरणा की। यहाँ पर अध्यात्म साधक चरितनायक ने एक धुन की रचना की –

भगवन् पाप से मुक्त करो, विमल ज्ञान उद्योग करो।
दुर्बलता मन दूर करो, साहस का भण्डार भरो॥
शरण तुम्हारा श्री वर्धमान , आज्ञा पालूँ हो बलवान्।
शुद्ध-बुद्ध मैं निर्मल रूप, काम क्रोध नहीं मेरा रूप॥

नाथद्वारा में पूज्यपाद के विराजने से लगभग ४०-५० दयाव्रत हुए, सामायिक एवं स्वाध्याय की ज्योति जगी। कांकरोली एवं नाथद्वारा क्षेत्र में वकील, शिक्षक, सी. ए , इंजीनियर आदि का पढा-लिखा वर्ग भी चरितनायक के 'साधना क्यों'? विषयक प्रवचन से प्रभावित हुआ। यहां से कुंवारिया, पोटला होते हुए साहडा पधारे, जहाँ श्री वल्लभमुनिजी गंगापुर से अगवानी हेतु सामने उपस्थित हुए। वहाँ से गंगापुर होकर भीलवाड़ा पधारे। कलक्टर नारायणदास जी मेहता को रात्रिकालीन प्रश्नचर्चा में गुणस्थानों के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासाओं के समाधान प्राप्त कर प्रमोद हुआ। वहाँ से मांडलगाँव, वेरा, सरेडी, कंवलियास में धर्म-प्रेरणा करते हुए गुलाबपुरा पधारे। श्री कुन्दनमुनि जी एवं श्रावक-श्राविका सामने अगवानी में उपस्थित थे। श्री वल्लभमुनिजी ने चरितनायक की स्तुति में अष्टक सुनाया, जिसका प्रथम पद्य इस प्रकार था -

श्रामण्यदीक्षां जिनधर्म शिक्षाम्
तत्त्वसमीक्षां, ' भवतो मुमुक्षाम्।
बाल्यात्प्रभृत्येव तु यः सिषेवे
विद्ववरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः॥

यहां आपकी पं. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल से इतिहास विषयक बातचीत हुई। यहाँ के विद्यालय एवं छात्रावास के विद्यार्थियों को स्वाध्याय के महत्त्व और उपयोग पर प्रेरणात्मक सन्देश दिया। फिर चैत्रशुक्ला २ संवत् २०२४ को आपाक विजयनगर पदार्पण हुआ। दो दिन पश्चात् यहाँ सम्वत्सरी के सम्बन्ध में वार्तालाप हेतु ब्यावर से शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। चरितनायक ने अपना मन्तव्य फरमाया – "आषाढी चौमासी से ४९-५० दिन से सम्वत्सरी पर्व हो। अर्थात् चातुर्मास में मास वृद्धि की स्थिति में दो श्रावण हो तो दूसरे में और दो भाद्रपद हो तो प्रथम में पर्व मनाया जावे, तो कोई बाधा नहीं।"

चरितनायक श्रमणसंघ की गिरती स्थिति से चिन्तित थे। **उनका चिन्तन इस प्रकार था –"समयधर्मी ग्रुप से हमारे विचारों का मेल सम्भव नहीं लगता।"** यहाँ से राताकोट, बांदनवाड़ा, झडवासा, नसीराबाद, दांता होते हुए आप अजमेर पधारे, जहाँ फरमाया कि सामायिक के आन्तरिक अभ्यास से मोह का जोर घटाया जा सकता है। यहाँ पर महावीर जयन्ती सहित दो दिन विराजकर आपने जयपुर की ओर विहार कर दिया। वैशाख कृष्णा ११ को मोती डूँगरी, जयपुर में प्रवचन करते हुए शास्त्र-रक्षण के सम्बन्ध में फरमाया – "द्वादशांगी वाणी अर्थ से नित्य एवं शब्द से अर्वाचीन है। भगवान् महावीर के पश्चात् ९८० वर्ष तक यह परम्परा चलती रही। तब देवर्धिगणी ने आगम लिपिबद्ध कराये। उनके अनुग्रह से ही हमको आज श्रुत उपलब्ध हो रहा है। इसका संरक्षण करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। " वैशाख शुक्ला तृतीया को लालभवन में अनेक स्थानों के श्रावकों ने अपने-अपने क्षेत्र की विनतियाँ प्रस्तुत की। वैशाख शुक्ला ६ सं. २०२४ को गीजगढ निवासी श्री कुन्दनमल जी चोरडिया एवं श्रीमती रूपवती जी चोरड़िया की सुपुत्री रतनकंवर जी का दीक्षा-समारोह सम्पन्न हुआ, जिन्हें महासती श्रीमदनकंवर जी म.सा. की शिष्या घोषित किया गया। बड़ी दीक्षा के दिन लालभवन में राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. माथुर से शैक्षिक वातावरण के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ।

• जयपुर चातुर्मास (संवत् २०२४)

चरितनायक का ४७वां संवत् २०२४ का चातुर्मास जयपुर में विशेष उपलब्धियों वाला रहा। महासती श्री बदनकँवर जी म.सा. का चातुर्मास भी यहीं पर था। स्वाध्याय और सामायिक का इस चातुर्मास में विशेष शंखनाद किया गया, जिसकी गूँज अन्य प्रदेशों में भी सुनाई दी। आचार्यप्रवर की प्रेरणा से स्वाध्याय संघ की जगह-जगह पर स्थापना हुई। स्वाध्यायी श्रावक तैयार हुए, जो पर्युषण पर्व में विभिन्न स्थानों पर जाकर शास्त्रवाचन, व्याख्यान, त्यागव्रत आदि के कार्यक्रम आयोजित करवाते रहे। अपने संघ के साधु-साध्वियों को भी आपने यह समझाया कि दीक्षा के पूर्व शिक्षा होना जरूरी है। प्रथम शिक्षा, फिर परीक्षा, फिर दीक्षा और उसके बाद भिक्षा सफल होती है। इसी चातुर्मास में आपने प्रबंध पट्टावली का सम्पादन एवं आवश्यक संशोधन किया। चरितनायक आचार्य श्री की प्रेरणा से रत्नव्यवसायी श्री नथमल जी हीरावत ने कर्मग्रन्थ सीखना शुरू किया, गलुण्डिया जी ने प्रतिक्रमण याद किया। इस प्रकार श्रावकों में ज्ञान-ध्यान की होड़ लगी और श्राविकाओं में तपस्या की। इस चातुर्मास में १० मासखमण तप, शताधिक अठाइयाँ हुई और १२ ब्रह्मचर्यव्रती बने। बालक-बालिकाओं, किशोर-किशोरियों और युवक-युवतियों में भी सामायिक, प्रतिक्रमण, आगम आदि कण्ठस्थ करने की होड़ लगी। पूज्यप्रवर ने एक दिन फरमाया – **"जिनशासन दूसरे की महरबानी पर जीने की बात नहीं कहता। वह भीतर से शक्ति प्रकट करने को कहता है। महावीर ने स्वयं ऐसा ही किया।"** यहाँ जिनवाणी मासिक पत्रिका की व्यवस्था का कार्य श्री नथमलजी हीरावत ने सम्हाला। उनकी सूझबूझ से जिनवाणी पत्रिका निरन्तर सुदृढता पूर्वक आगे बढ़ती गई। चरितनायक ने श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के दिवंगत आचार्य श्री आत्माराम जी म. के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में भाद्रपद कृष्णा १२ को आध्यात्मिक हर्षोल्लास के साथ आयोजित प्रवचन-सभा में उनके गुणानुवाद करते हुए आपने चतुर्विध संघ को श्रमण-संघ के नियमों, उपनियमों का पूर्णतः पालन करने की प्रेरणा की।

• श्रमणसंघ से पृथक् होने की घोषणा

चातुर्मास सम्पन्न कर तत्कालीन 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के उपाध्याय चरितनायक पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. जब जयपुर के उपनगर आदर्शनगर में पधारे तब आपने मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया दिनांक १९ नवम्बर १९६७ को श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा करते हुए उसका स्पष्टीकरण किया। चरितनायक 'श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ' के गठन के समय से ही सर्वत्र श्रावकों को 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ' के अन्तर्गत एक सूत्र में बांधने हेतु प्रयत्नशील रहे। संघ का ऐक्य उन्हें स्वीकार्य था, किन्तु शैथिल्य नहीं। उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. पहले ही श्रमण संघ छोड़ चुके थे। चरितनायक ने उन्हें भी संघ से पुनः जोड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। कांफ्रेंस के लोग भी युगीन परिवर्तन के नाम पर शिथिलाचार को प्रोत्साहन दे रहे हैं, यह उन्हें उचित नहीं लगा। ध्वनि-वर्धक यन्त्र की अनुमति चरितनायक को स्वीकार्य नहीं थी, किन्तु कांफ्रेंस के आग्रह पर श्रमणों ने इसका उपयोग प्रारम्भ कर दिया था। संवत्सरी की एकता का प्रश्न भी उलझा रहा। साधु-साध्वी अपनी अनुकूलतानुसार कभी गुरु से तो कभी प्रान्तमन्त्री से आज्ञा प्राप्त करते हुये किसी एक के अनुशासन में नहीं रहे। प्रधानमंत्रीजी के त्यागपत्र एवं उपाचार्य श्री के पृथक् होने के पश्चात् संघ में व्यवस्था शिथिल हुई। चरितनायक जब संघ से जुड़े थे तब आपने अपना यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूपेण व्यक्त किया था –"जिनशासन की मर्यादा के अनुकूल सम्पूर्ण ऐक्य बना रहे तो संघ-हितार्थ मंजूर है।" चरितनायक ने ऐक्य के लिए पूरी

शक्ति लगा दी थी। बढ़ते शैथिल्य को गुरुदेव निराकृत करना चाहते थे। किन्तु उसमें सहयोग न मिलने एवं अव्यवस्थाओं के मद्देनजर संयम आराधक, प्राच्य संस्कृति एवं विशुद्ध साध्वाचार के हिमायती चरितनायक के समक्ष एकमात्र विकल्प श्रमण संघ से पृथक् होना ही शेष था।

मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी को आपने धर्म की आस्था विषयक प्रवचन फरमाया। इस प्रवचन सभा में राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलालजी सुखाडिया ने भी उपस्थित होकर आपके मंगलमय पावन दर्शन व वचनामृत का लाभ प्राप्त किया।

• सवाई माधोपुर की ओर

आचार्य श्री ने जयपुर के गाँधीनगर, बजाजनगर आदि को पावन करते हुए सवाई माधोपुर की ओर चरण बढ़ाए। मार्ग में सांगानेर, शिवदासपुरा होकर लोक भारती संस्थान में अहिंसक जीवन पर उद्बोधन देते हुए आप चाकसू पधारे, जहाँ विद्यालय के बालकों को नशा, चोरी और गाली का प्रयोग न करने का संकल्प दिलाया। यहाँ आपका पूज्य आनन्दऋषि जी से मधुर वार्तालाप हुआ। फिर कौथून के पंचायत भवन, गुनसी की पाठशाला में एक रात्रि ठहर कर आपने निवाई, सिरस, पावडेढा होते हुए सन्त रामनिवासजी म., महासतियाँ जी एवं श्रावक-श्राविकाओं द्वारा की गई जय-जयकार के साथ चौथ का बरवाड़ा के स्थानक भवन में प्रवेश किया। आपने पौष कृष्णा १० को पार्श्वनाथ जयन्ती पर भ. पार्श्वनाथ द्वारा कमठ उद्धार की घटना से शिक्षा लेने की प्रेरणा की। स्वाध्याय और धर्म शिक्षा हेतु अभिमुख होने का उद्बोधन दिया। यहाँ गोविन्दरामजी आदि श्रावकों ने बारह व्रत अंगीकार किए। तदनन्तर आचार्यश्री ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सवाईमाधोपुर पहुंचे, जहाँ अनेक श्रावकों ने १२ व्रत अंगीकार किए और स्कूल के बच्चों ने नैतिक नियम स्वीकार किये। सवाईमाधोपुर पधारते समय आपने बणजारी, एकडा, डेकवा आदि ग्रामों को भी फरसा। यहाँ से आलनपुर, शेरपुर, रावल, कुण्डेरा, श्यामपुरा, एण्डा, धनोली, सूरवाल, पुनः आदर्शनगर, सीमेण्ट फैक्ट्री, आलनपुर, कुस्तला, पचाला होते हुए आपने चोरू पदार्पण किया, जहाँ ३ फरवरी माघ शुक्ला पंचमी संवत् २०२४ को वयोवृद्ध श्री पन्नालाल जी म.सा. के स्वर्गवास के सायंकाल समाचार सुनकर निर्वाण कायोत्सर्ग किया।

श्रद्धाञ्जलि सभा में आचार्य श्री ने उनके जीवन एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए फरमाया- "स्वामीजी महाराज के स्वर्गवास से श्रमण समाज में एक क्रियावान, निष्ठावान, मर्यादाशील, सिद्धान्तवादी सन्त की रिक्तता हुई है। मेरे साथ आपका वर्षों से प्रेम सम्बन्ध चलता रहा। पारस्परिक विश्वास के साथ सामाजिक स्थिति में विचार की हमारी एकता निरन्तर अद्यतन निभती रही। वे आज नहीं हैं, पर उनके सद्गुण और प्रेरक उद्बोधन आज भी समाज को जागृत कर रहे हैं। वे एक विद्वान सन्त, प्रखर वक्ता और सुन्दर साहित्य सर्जक थे। क्रान्ति और शान्ति दोनों का स्वामीजी में एक साथ वास था। स्थानकवासी समाज ऐसे मुनिरत्नों का स्मरण कर अपने आप में गौरवानुभव करता है।"

दृढ़तापूर्वक जैन धर्म का पालन करने वाले मीणा जैनों के ५०-६० घर वाले अलीनगर (जैनपुरी) ग्राम में पधारे, जहाँ आपने जन समुदाय को जीवन की असारता का उद्बोधन दिया। उखलाना में मुनिश्री गोपीलालजी म.सा.से आपका स्नेह मिलन हुआ। यहाँ से अलीगढ़-रामपुरा में आपकी प्रेरणा से त्रिदिवसीय सामायिक शिविर में २५ सामायिक संघों की स्थापना हुई, जिसका क्षेत्रीय कार्यालय सवाईमाधोपुर एवं प्रधान कार्यालय जयपुर तय किया गया। तदुपरान्त बिलोता, पाटोली, देवली, गाडोली, खातोली, समिधी, जरखोदा, बणसोली, देई, नैनवां, दूणी, आवाँ, भरणी होते हुए चरितनायक

फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को टोंक पधारे। इन क्षेत्रों में कई भाइयों ने रात्रि- भोजन के त्याग किए, १२ व्रत अंगीकार किए सपत्नीक शीलव्रत ग्रहण किये और व्याख्यान से प्रभावित हो सप्त कुव्यसन का त्याग किया। नैनवाँ में आपने अग्रवाल भाइयों को स्पष्ट किया कि साकार और निराकार भक्ति में निराकार भक्ति श्रेष्ठ है, शास्त्र बिना गुण के आकार को वन्दनीय नहीं मानता। टोंक में चातुर्मास की विनतियों तथा तप-त्याग के वातावरण में आचार्यश्री के दर्शनों का लाभ पाकर चतुर्विध संघ हर्षित हुआ। फाल्गुन शुक्ला ग्यारस १० मार्च को महासती श्री नैनाजी के स्वर्गवास के समाचार पाकर चरितनायक ने कायोत्सर्ग के साथ सतीजी के जीवन का परिचय दिया।

• विजयनगर होकर अजमेर

यहाँ से चरितनायक डोंडवाड़ी, लाम्बा, टोडारायसिंह (पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म.सा. की जन्मस्थली), केकड़ी, मेवदा होते हुए फूलिया पधारे, जहाँ महासती यशकंवरजी म.सा. ने श्रावक के देशावगासिक पौषध संबंधी जिज्ञासाएँ रखी। यहाँ से आप धनोप, देवलिया, बड़ली, विजयनगर पधारे। गुलाबपुरा में १४ अप्रैल ६८ को हुई स्वाध्यायियों की बैठक इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही कि उस दिन कई श्रावकों ने स्वाध्यायी बनने का संकल्प किया। रामगढ़, ब्यावर, खरवा, जेठाणा, तबीजी होते हुए आप अजमेर के मदार गेट स्थानक में पधारे, जहाँ अक्षयतृतीया को वर्षीतप के पारणे हुए तथा उमरावमलजी चौधरी आदि ने १२ व्रत अंगीकार किए। वहाँ से किशनगढ़ प्रवास पर आप श्री ने नये पुराने कार्यकर्ताओं को मिलजुल कर चलने का संदेश दिया, जिससे पूर्व मनमुटाव मिटकर कई समस्याएँ हल हुईं। आचार्य श्री के प्रवासकाल में उनके जहाँ जहाँ पधारने की खबर मिलती, आस-पास विचरणशील संत-सती स्वयं आकर आपश्री के दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ समझते थे।

• पाली चातुर्मास (संवत् २०२५)

किशनगढ से विहार कर पूज्यपाद अजमेर, पुष्कर, तिलोरा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुये थांवला पधारे। यहाँ समाज में लम्बे समय से पारस्परिक कलह का वातावरण था। समत्व व साधना के पर्याय महामनीषी चरितनायक के पावन अतिशय व समाज ऐक्य की प्रेरणा से वैषम्य समाप्त हुआ और समाज में एकता व मैत्री का संचार हुआ। यहाँ से विहार कर आप मेवड़ा, पादू, मेड़ता, इन्दावर, गगराना, कवासपुरा, कोसाना, पीपाड़ आदि क्षेत्रों को फरसते हुए भगवन्त जोधपुर पधारे। चातुर्मास काल समीप था। आपका आगामी चातुर्मास पाली स्वीकृत हुआ था। अतः जोधपुर में अल्प प्रवास के बाद ही आप लूणी, रोहट, चौटीला आदि विहारवर्ती गांवों को फरसते हुए आषाढ शुक्ला दशमी दिनांक ५ जुलाई १९६८ को ठाणा ६ से चातुर्मासार्थ सुराणा मार्केट, पाली पधारे। महासती श्री सुन्दरकंवजी म.सा. आदि ठाणा ३ के चातुर्मास का लाभ भी पाली को मिला।

पूज्यपाद के विराजने व चतुर्विध संघ के सान्निध्य से पाली निवासियों में प्रबल उत्साह था। आपने धर्म नगरी पाली के श्रोताओं को उद्बोधित करते हुए फरमाया – "जैसे बिना पाल के तालाब में पानी नहीं ठहरता उसी प्रकार व्रत-प्रत्याख्यान के बिना जीवन में सद्गुण नहीं ठहरते।" आपकी प्रेरणा से नगर वासियों में व्रत-प्रत्याख्यान की होड़ लग गई। मासखमण अठाई, आयम्बिल आदि तपस्याओं की झडी लगी थी तो अनेक भाई बहिन संवर-साधना में भाग लेकर अपने जीवन को भावित करने लगे। इस चातुर्मास में प्रति रविवार सामूहिक दयाव्रत में लगभग ५०० भाई बहिन सम्मिलित होते। मासक्षपण के पूर के दिन एक साथ ८०० आयम्बिल हुए, पाप भीरू अनेक भाई बहिनों ने आपसे श्रावक के बारह व्रतों का स्वरूप समझ कर अपने जीवन को मर्यादा में स्थिर किया, तो अनेक दम्पतियों ने

शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को सुशोभित किया। जैनेतर भाई भी तपत्याग में पीछे नहीं रहे। प्राणिमात्र को अभय देने वाले षट्काय प्रतिपालक सन्त-महापुरुषों की वाणी से हिंसक व्यक्तियों में भी दया व करुणा का संचार हुआ। आपसे प्रतिबोध पाकर तीन मछुआरों ने जीवन पर्यन्त मछली मारने का त्याग कर दिया, कई हरिजन भाइयों ने आपके पावन दर्शन कर मद्य-मांस का त्याग कर अपने आपको पवित्र बनाया। तप-त्याग ही नहीं, धार्मिक-शिक्षण के क्षेत्र में भी चातुर्मास विशेष उपलब्धिपूर्ण रहा। पाली के अनेक मोहल्लों में धार्मिक पाठशालाएं प्रारम्भ हुई। पूज्यपाद द्वारा छोटे संतों को ज्ञानदान देने व सन्त-सती वृन्द के साथ शास्त्र-वाचन का क्रम चलने से चातुर्मास ज्ञानाराधन की दृष्टि से भी उपयोगी रहा।

चातुर्मास में जोधपुर , जयपुर, बालोतरा आदि स्थानों के श्रावकों का विशेष आवागमन बना रहा। सामायिक संघ एवं स्वाध्याय संघ की गतिविधियों को आगे बढाने हेतु कार्यकर्तागण चिन्तनशील रहे।

• राणावास, पीपाड़, भोपालगढ होकर जोधपुर

चातुर्मासोपरान्त यहाँ से आप रावल गाँव, लाम्बिया, खारची, मारवाड़ जंक्शन, रडावास, केसरीसिंह जी का गुडा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को राणावास पदार्पण कर छात्रावास में विराजे। कन्या पाठशाला की भी जानकारी ली। यहां से आप सिरीयारी, सारण होते हुए वोपारी पधारे, जहाँ आपकी पावन प्रेरणा से संघ का मतभेद समाप्त हुआ। यहाँ से सोजत रोड़, सोजत शहर, पिचियाक, भावी आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए आपने पीपाड़ पदार्पण किया, जहाँ महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा दर्शनार्थ पधारे। लकवे से ग्रस्त वयोवृद्धा महासती श्री रुकमा जी म.सा. को दर्शन देने आचार्य श्री स्वयं पधारे।

तपागच्छ के आचार्य श्री समुद्रविजय जी म.सा. एवं उनके आज्ञानुवर्ती श्री जयविजयजी म.सा. का भी इसी समय पीपाड़ आगमन हुआ। रीयां में हिन्दू-मुस्लिम समस्त धर्मावलम्बियों ने आचार्य श्री के दर्शनों का लाभ लिया। पीपाड़ में पुनः पधारने पर आचार्य श्री की जन्म जयन्ती सामायिक, स्वाध्याय, दया, तप, त्यागपूर्वक २ जनवरी १९६९ को मनायी गई। आचार्य श्री का जैन एकता पर सदा से बल रहा। सम्प्रदायातीत भगवान महावीर के सिद्धान्तों का प्रतिपालन चतुर्विध संघ का प्रमुख ध्येय रहे, एतदर्थ एकता के विभिन्न प्रस्ताव आचार्य श्री के सान्निध्य में श्रावकों द्वारा पारित किए गए, यथा—

१. धर्मस्थान धर्माराधन के लिए है, किसी जाति या सम्प्रदाय द्वारा उस पर अधिकार जता कर झगड़ा करने हेतु नहीं, अतः धर्म-स्थानों के लिए झगड़ा नहीं किया जावे।

२. सम्प्रदाय या संघभेद के बिना पंच महाव्रतधारी साधु-साध्वी की सेवा एवं उनकी संयमसाधना में सहयोग देंगे तथा संयमविरुद्ध प्रवृत्ति को रोकने हेतु व्यक्तिगत निवेदन करेंगे। पर्चे निकालना अथवा समाज का वातावरण दूषित करना उचित नहीं।

३. सम्प्रदाय परिवर्तन के लिए प्रेरणा देना प्रेम में बाधक है, अतः विभिन्न सम्प्रदायों में प्रेम सम्बंध बढ़ाया जावे, एतदर्थ सम्प्रदाय परिवर्तन की प्रेरणा नहीं करेंगे।

इस प्रसंग में नैतिक एवं चारित्रिक उत्थान के प्रयत्नों हेतु मार्मिक अपील की गई। १४ जनवरी ६९ को धार्मिक पाठशाला भी प्रारम्भ हुई।

पीपाड़ से साथिन, कोसाणा, खांगटा, रतकूड़िया, कूडी होते हुए चरितनायक के भोपालगढ़ पधारने पर मद्य

निषेध दिवस मनाया गया। यहाँ मेघवाल बंधुओं ने व्याख्यान में मद्य-निषेध की प्रतिज्ञा की। कई जोड़ों ने शीलव्रत अंगीकार किए। यहाँ से आप नाडसर, वारणी, हरसोलाव, नोखा, रूण, खजवाणा, मूंडवा आदि में धर्म-प्रचार करते हुए नागौर पधारे। रात्रि में विविध विषयों पर प्रश्नोत्तर हुए। बालकों तथा बड़ों ने बीड़ी सिगरेट के त्याग किए। चरितनायक के ग्रामानुग्राम विचरण करते समय जैनेतर घरों के सदस्यों में भी तपस्या, कुव्यसन-त्याग आदि के प्रति अनन्य उत्साह देखा गया। डेह में आचार्यश्री ने भृगु पुरोहित पर प्रवचन दिया जो जैन तथा जैनेतर समाज के लिए अत्यंत प्रेरणास्पद रहा। कुचेरा, मेड़ता होते आप रणसीगाँव पधारे। शिक्षा या विद्या, जीवन चलाने के लिए नहीं, किन्तु जीवन-निर्माण के लिए है, इसे समझाते हुए आचार्य श्री ने फरमाया कि **साक्षरता रहित ज्ञान वाले पशु-पक्षी भी जीवन चलाते देखे जाते हैं। भोजन, पान तथा गृह निर्माण आदि कलाओं में निपुण, किन्तु अनपढ़ पशु-पक्षी जीवन बना नहीं सकते, केवल चलाते हैं। यदि हम मानव होकर विद्या पढ़कर भी इसी प्रकार जीवन चलाकर संतोष कर लें तो यह हमारी भूल होगी।** रणसीगाँव में दिया यह शिक्षा व्याख्यान किसी दीक्षान्त समारोह के वक्तव्य से भी बढ़कर था।

जोधपुर के सरदार विद्यालय के विशाल प्रांगण में ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी संवत् २०२६ गुरुवार २२ मई १९६९ को आचार्य श्री के सान्निध्य में विरक्ता सुशीलाकुमारीजी (सुपुत्री श्री भैरव सिंह जी एवं श्रीमती उगमकंवर जी मेहता, जोधपुर) को दीक्षा प्रदान कर उन्हें महासती श्री मदनकंवर जी म. की शिष्या घोषित किया गया ।

जोधपुर के सभी सम्प्रदायों व जातियों के भक्तों पर आपका व्यापक प्रभाव रहा है। आप जब कभी जोधपुर पधारते, स्थानकवासी , मूर्तिपूजक, वैष्णव सभी लोग बिना किसी साम्प्रदायिक भेद के आपके दर्शन, प्रवचन-श्रवण का लाभ लेने हेतु उद्यत रहते। इस प्रवास में तपागच्छ के क्रिया भवन में आपके दो प्रवचन हुए। उन प्रवचनों में आपने पांच समवाय में पुरुषार्थ की प्रधानता का निरूपण किया। सरदारपुरा, मुथाजी का मन्दिर, महामन्दिर आदि उप नगरों में भी आपका विराजना हुआ।

• नागौर चातुर्मास (संवत् २०२६)

संवत् २०२६ (सन् १९६९) का आपका चातुर्मास नागौर में हुआ। नागौर पुराना क्षेत्र है। रत्नवंशीय परम्परा से इस क्षेत्र का दीर्घकाल से संबंध रहा है। अपने आराध्य गुरु भगवंत जन-जन की आस्था के केन्द्र पूज्य चरितनायक का वर्षावास पाकर नागौर निवासियों में प्रबल उत्साह था। इस चातुर्मास में ज्ञान, ध्यान, तप-त्याग व व्रत-प्रत्याख्यान का ठाट रहा। इस चातुर्मास में ९ दम्पतियों ने शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को भावित किया, कई व्यक्ति पर्युषण सेवा देने हेतु सक्रिय स्वाध्यायी बने। इस चातुर्मास में स्वाध्यायियों के ज्ञानाराधन हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम की रूपरेखा बना कर चार कक्षाएँ निर्धारित की गई एवं उनके प्रशिक्षणार्थ दिनांक २६ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक शिक्षण शिविर का आयोजन भी किया गया। इस चातुर्मास में सरदारपुरा, जोधपुर में विराजित स्वामी जी श्री लाभचन्दजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। श्री लाभचन्दजी म.सा. ने विक्रम संवत् १९७० की अक्षय तृतीया को १८ वर्ष की युवावय में पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा. से भागवती श्रमण दीक्षा अंगीकार कर साधना-मार्ग में अपने कदम बढ़ाये थे। कायोत्सर्ग कर स्वामी जी म.सा. को श्रद्धांजलि समर्पित की गई।

• शीलव्रत के पालन पर बल

नागौर का वर्षावास सम्पन्न कर चरितनायक कडलू, मूंदियाड, गोवा, बासनी, गच्छीपुरा, सोयला फरसते हुए

धनारी पधारे। साधना एवं शील के साकार स्वरूप आचार्य भगवन्त जिन क्षेत्रो में पधारते, वहाँ सामायिक स्वाध्याय के संदेश गूंजने लगते। ब्रह्मचर्य भी आपकी प्रमुख प्रेरणा थी। बचपन से वैरागी अखंड बालब्रह्मचारी इन महापुरुष के ब्रह्मचर्य दीप्त मुख मडल को निहार कर भक्त निहाल हो जाते, नयन कभी तृप्त ही नहीं होते, तो दूसरी ओर आपका पावन सान्निध्य भक्तजनों को सहज ही शील आराधन की प्रेरणा देता। इस विहारक्रम में आपने बराबर इस बात पर बल दिया कि शीलव्रत के पालन से आरोग्य, बुद्धिबल व सहनशीलता बढ़ती है। शील पालन के लिये उत्तेजक आहार एवं विषय विकारों को प्रोत्साहित करने वाले निमित्तों से बचना आवश्यक है, तो नयनों की चपलता से बचना भी आवश्यक है। साधक के मन में माताओं बहिनों के लिये मातृभाव व भगिनी भाव हो तो भोग की ओर आकर्षण ही नहीं होगा। आपके साधनानिष्ठ जीवन, ब्रह्मचर्य-दीप्त तेजोपुञ्ज मुखमंडल के दर्शन, पीयूष पाविनी वाणी व प्रेरणा से इन छोटे-छोटे क्षेत्रों में भी लोग शीलव्रत ग्रहण हेतु सहज प्रेरित हुए और २३ दम्पतियों ने शीलव्रत अंगीकार कर आपके चरणारविन्दों में सच्ची भेंट प्रदान की।

आपकी प्रेरणा से बावड़ी में धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ हुई। यहां से विहार कर चरितनायक वीराणी, हीरादेसर, भोपालगढ़, अरटिया, दईकड़ा, थबूकड़ा, सूरपुरा होते हुए पौष शुक्ला ११ को जोधपुर के उपनगर महामंदिर पधारे। घोड़ों के चौक स्थानक में आपश्री की जन्मतिथि त्याग-तप से मनायी गई।

१९ फरवरी १९७० माघशुक्ला १३ संवत् २०२६ को वैरागी शीतलराज जी (पुत्र श्री मदनराजजी सिंघवी) की सादगीपूर्ण वातावरण में दीक्षा सम्पन्न हुई। इस प्रसंग पर १५ भाई-बहिन आजीवन ब्रह्मचारी बने। दीक्षा के एक दिन पूर्व पूज्य आचार्य प्रवर ने फरमाया था – **"दीक्षार्थी एवं साधना का सत्कार बाहरी आडम्बर से नहीं, साधना से करो। दीक्षार्थी जीवनपर्यन्त पूर्ण ब्रह्मचर्य अंगीकार करता है। आप सब भी अब्रह्म त्याग की मर्यादा करें तथा जो भुक्तभोगी हो चुके, उन्हें तो पूर्ण खंध कर लेना चाहिये।"**

• अजमेर होकर जयपुर

यहाँ से पालासनी, बिलाड़ा, जैतारण, निमाज, बर, कोटड़ा, ब्यावर क्षेत्रों में ज्ञान-वर्षा करते हुए एवं कन्हैयालाल जी छाजेड़, बक्सीराम जी राजपूत, सेठ भंवरलाल जी निमाज वाले, भंवरलाल जी पदावत खरवा वाले आदि कई भव्यों को ब्रह्मचारी बनाते हुए आप चैत्र शुक्ला एकादशी को अजमेर पधारे। आपके सान्निध्य में महावीर जयन्ती को विदुषी महासती श्री जसकंवर जी म.सा. की निश्रा में विरक्ता बहिन मीना कुमारी मेहता की दीक्षा सम्पन्न हुई। फिर अजमेर से आप किशनगढ़ होते हुए जयपुर पधारे जहाँ अक्षय तृतीया पर १८ पारणक हुए। आचार्य श्री ने यहाँ भगवान आदिनाथ के तप एवं लोकधर्म शिक्षण पर प्रकाश डाला तथा फरमाया कि तप लोकसुख की कामना से करने पर आत्म-कल्याणक नहीं बनता। तप का एक मात्र उद्देश्य कर्म-निर्जरा होना चाहिये।

• स्वाध्याय शिक्षण शिविर

२० से २८ मई १९७० तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल के तत्त्वावधान में जयपुर में स्वाध्यायी शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें सवाईमाधोपुर क्षेत्र के ३० अध्यापकों सहित ८९ शिविरार्थियों ने भाग लिया। आचार्यप्रवर ने शिविरकाल में प्रातःकाल व्याख्यान के समय श्रावक के १२ व्रतों का सुन्दर प्रभावकारी विवेचन किया, अपराह्न काल में जैन दर्शन के मूल तत्त्वों का बड़ी बारीकी के साथ सरल सुबोध शैली में विश्लेषण किया तथा रात्रि में शिविरार्थियों के प्रश्नों का समाधान किया। इस अवसर पर ४० नये स्वाध्यायी बने। यह अपने आपमें

बहुत ही महत्त्वपूर्ण शिविर था, जिसके पश्चात् ग्रीष्मकाल में लगभग प्रतिवर्ष शिविरों का आयोजन प्रारम्भ हुआ।

आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की पुण्य तिथि ज्येष्ठ शुक्ला १४ को ५०० सामायिक दया, पौषध की आराधना के अनन्तर आप जयपुर से किशनगढ़ होते हुए अजमेर पधारे। अजमेर से पादू पधारने पर पंडितमुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा. आदि ठाणा ३ के साथ मिलन हुआ एवं एक दिन साथ विराजकर आपका चातुर्मासार्थ मेड़ता की ओर विहार हुआ।

• मेड़ता चातुर्मास (संवत् २०२७)

संवत् २०२७ के पचासवें चातुर्मास के लिए आपका जयघोष करते नर-नारियों, बालक-बालिकाओं के विशाल समूह के साथ ठाणा ६ से आषाढ शुक्ला ९ सोमवार १३ जुलाई १९७० को मेड़ता स्थानक में प्रवेश हुआ। आपकी प्रेरणा और सदुपदेश से श्रावण पूर्णिमा के दिन मीरा की नगरी मेड़ता में भूधर जैन पाठशाला का उद्घाटन हुआ। यहीं पर श्री गजेन्द्र जैन सामायिक स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई। यहाँ श्री हीराचन्द जी म.सा. (वर्तमान आचार्य) ने 'जय श्री शोभाचन्द्र' पुस्तक लिखी। आपकी आज्ञानुवर्तिनी स्थविरा महासती श्री हरकँवरजी म.सा. ठाणा ४ से यहाँ ही विराजमान थी। महासती श्री किशनकंवरजी ने मासक्षपण की तपस्या की। श्री रतनलालजी सिंघी के जीवन में परिवर्तन हुआ।

इस चातुर्मास में छोटी-बड़ी अनेक तपस्याओं का ठाट रहा, ग्यारह श्रावक १२ व्रती बने एवं पाँच दम्पतियों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

पूज्य गुरुदेव के साधनाकाल के ५० वर्ष आगामी माघ शुक्ला द्वितीया संवत् २०२७ को पूर्ण होने के परिप्रेक्ष्य में श्रावक समुदाय ने इसे समारोहपूर्वक मनाने हेतु अपनी भावना बार-बार पूज्यवर्य के समक्ष प्रस्तुत की, पर पूज्य वर्य का स्पष्ट उत्तर था—"आप हमें साधक मानते हैं, साधकों के जीवन प्रसंग पर तो संयम साधना व त्याग-प्रत्याख्यान की ही भेंट देकर अपनी भावनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं।"

आपश्री के श्रीमुख से यह फरमाने पर कि "मेरा क्या, इस समय (माघ शुक्ला पंचमी) तो मेरे जीवन निर्माता पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचंदजी म.सा. की दीक्षा की शताब्दी का प्रसंग है" श्रावक वर्ग ने सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्त्वावधान में इस अवसर पर साधना कार्यक्रम आयोजित करने का निर्णय लिया।

तदनुसार न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथजी मोदी की अध्यक्षता में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की बैठक आयोजित की गई एवं "आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. दीक्षा शताब्दी साधना-समारोह समिति" का गठन कर मात्र अठारह वर्ष के छात्र श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना को इसके मंत्री पद का दायित्व सौंपा गया।

पूज्यपाद को अपनी प्रशंसा, अभिनन्दन व अपने स्वयं के नाम में कोई आयोजन स्वीकार्य ही नहीं था। निरतिचार साधना के ५० वर्ष पूर्ण होने पर भी आपसे ऐसे किसी आयोजन की सहमति मिलने की कोई संभावना नहीं थी। संयोग से पूज्यपाद गुरुदेव की दीक्षा शताब्दी का प्रसंग साथ में होने से व भक्तों का प्रबल भक्तियुक्त आग्रह होने से आपने भक्तों के उत्साह को साधना एवं त्याग-वैराग्य से जोड़ने का यह अभिनव प्रयास किया। जो भी कार्य हुआ उसे पूज्य गुरुवर्य के नाम से जोड़ना आपकी निर्लिप्तता, उत्कट गुरुभक्ति तथा आपकी विनम्रता का परिचायक रहा।

शोभागुरु की दीक्षा-शताब्दी एवं स्वयं की दीक्षा-अर्द्धशती अजमेर में

मेड़ता का चातुर्मास सानंद सम्पन्न कर श्रावकों के अत्यंत आग्रह पर आचार्यश्री थाँवलाँ, बांदनवाडा, भिनाय, विजयनगर होते हुए सती-मंडल धनकंवरजी, उमराव कंवरजी, महासतीश्री विचक्षणश्रीजी की शिष्याओं को प्रेरणा देते अजमेर पधारे, जहाँ स्व. आचार्यश्री शोभाचन्द्र जी म.सा. का दीक्षा शताब्दी साधना-समारोह माघ शुक्ला प्रतिपदा से सप्तमी वि. संवत् २०२७ (२७ जनवरी से २ फरवरी ७१) तक 'साधना सप्ताह' के रूप में पं. रत्न श्री सोहनलालजी म.सा. ठाणा ३ के सह-सान्निध्य में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्त्वावधान में मनाया गया। यह मणिकांचन संयोग था कि गुरु-शिष्य की दीक्षा तिथियों में मात्र तीन दिन का अन्तर था। पूज्यपाद आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा. की दीक्षा तिथि माघ शुक्ला पंचमी है तो उनके सुयोग्य श्रेष्ठ शिष्य चरितनायक की दीक्षा तिथि माघ शुक्ला द्वितीया है। गुरु शिष्य दोनों की दीक्षा में ५० वर्ष का अंतर था। इस समारोह समिति के अध्यक्ष श्री रिखबराज जी कर्णावट एवं मंत्री श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना के नेतृत्व में श्री मदनराजजी सिंघवी जोधपुर, श्री पारसमलजी बाफना भोपालगढ़, श्री संपतराजजी बाफना भोपालगढ़, श्री रामसिंह जी हुंडा ओस्तरां (हीरादेसर), श्रीमती सरदार बाई मुणोत अजमेर प्रभृति अनेक भक्त श्रावकों के सत्प्रयासों से यह साधना समारोह गाँव-गाँव और नगर-नगर में मनाया गया। समारोह के आयोजकों ने प्रचार-प्रसार के निवेदन-पत्रों में प्रेरणा की कि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय आदि से बचने के लिए सत्पुरुषों के सत्संग, संस्मरण, दीक्षा आदि के प्रसंग सुषुप्त मानव-मन को जागृत करते हैं। फलस्वरूप आशा से अधिक सफलता मिली। कार्यकर्त्ताओं ने १०० नये स्वाध्यायी, १०० बारह व्रतधारी , १०० एक वर्षीय शीलव्रतधारी, १०० आजीवन शीलव्रती १०० शाकाहारी, १०० मद्यत्यागी, १०० धूम्रपान त्यागी एवं ५० स्थानों पर सामायिक संघ की स्थापना का लक्ष्य रखा। ग्राम-ग्राम एवं नगर-नगर में उत्साहपूर्ण उपलब्धियाँ रही। स्थान-स्थान पर प्रतिज्ञा-पत्र भरे गए। प्रतिज्ञा-पत्र भरने वालों की संख्या इस प्रकार रही– मांस-त्यागी ६८६, मद्यत्यागी ६८१, धूम्रपान-त्यागी ७८१, वार्षिक शीलव्रती २११, स्वाध्यायी २१०, बारह व्रतधारी १२४, आजीवन शीलव्रती १७३ जोड़े, सामायिक संघ ५०, छात्र-वृत्तिदाता ४६ । निर्धारित लक्ष्य से कई गुना अधिक संकल्प-पत्र भरना सबके लिए प्रमोद का विषय था। इनमें से अनेको व्यक्तियों ने पूज्यपाद आचार्य श्री शोभाचंदजी म.सा. की दीक्षा शताब्दी के पावन दिन पर व्यक्तिश: उपस्थित होकर पूज्य चरितनायक के मुखारविन्द से प्रत्याख्यान अंगीकार कर अपने जीवन को भावित करते हुए जिनशासन की महती प्रभावना की। इनके साथ ही फूलिया कलां में स्वाध्याय मित्र मंडल, धनोप व बागसुरी में जैन धार्मिक पाठशाला, जोधपुर में महिला स्वाध्याय मंडल का शुभारम्भ हुआ। इस पावन प्रसंग पर अनेक महानुभावों ने श्री वर्धमान सेवा समिति के कोष संवर्धन एवं स्वाध्याय संघ , जोधपुर को पाँच वर्षों तक अर्थ-सहयोग देने का संकल्प किया।

आचार्य श्री के मौन, माला और मनन का चतुर्विध संघ पर अनूठा प्रभाव परिलक्षित हुआ। २८ से ३१ जनवरी १९७१ तक अजमेर के मोतीकटला मैदान में भव्य समारोह का आयोजन हुआ। हजारों धर्मानुरागी तप-त्याग, व्रत-नियम, सामायिक-स्वाध्याय की श्रद्धा से प्रमुदित एवं अभिभूत थे। अनेक साधु-साध्वी तथा श्रावकों ने आचार्य

श्री के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके कठोर साधक जीवन का गुणगान कर अपने जीवन को यत्किंचित् आगे बढाने की प्रेरणा ग्रहण की। पण्डितमुनि श्री सोहनलालजी म.सा., पं. श्री चौथमलजी म.सा., पं. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा., महासती श्री सुन्दरकंवरजी, महासती श्री मैनासुन्दरी जी आदि ने गुरु-शिष्य की अद्भुत गुणसम्पन्न जोड़ी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जनसमुदाय को उद्बोधित किया।

अन्त में चरितनायक ने अपने गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के अनन्य गुणों का गान कर गुरु का अपने जीवन पर उपकार मान कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें नमन किया तथा विशाल जनमेदिनी को सम्बोधित करते हुए फरमाया -"सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्र में व्यक्ति का अभिनंदन उसे प्रसन्न कर सकता है, किन्तु हमारा साधक जीवन दूसरे ही प्रकार का है। हमने इन सारे झंझटों को छोड़कर केसरिया कसूमल, दाग-दागिने, भूषण-आभूषण, विभूषण आदि सभी भौतिक वस्तुओं का पूर्णतः परित्याग कर दिया है। "

"साधना के पथिक को आत्मा का खटका होता है। अतः स्वाध्याय और सामायिक से सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर अपने आपको पढ़ो और अपने आपको सोचो, सभी समस्याओं का समाधान पुरस्कृत हो जाएगा। जिस भूमि पर आप और हम बैठे हैं, वह कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। इसी भूमि पर पट्टा बिछाकर आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा., आचार्य श्री मन्नालाल जी म.सा., जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.सा. और पं. श्री मोखमचन्द जी म.सा. जैसी बड़ी-बड़ी विभूतियों ने त्याग और तप की रोशनी से जिनवाणी की वर्षा की थी। ५० वर्ष पश्चात् यह मैदान फिर सजीव हो उठा है। (५० वर्षों पूर्व इसी भूमि पर चरितनायक की श्रमण-दीक्षा सम्पन्न हुई थी।) अब समय है सामाजिक और साम्प्रदायिक वैमनस्य को छोड़ स्वाध्याय से ज्ञान-प्राप्ति कर भ्रातृत्व तथा संयम का पथ अपनाएँ। जयन्तियाँ मनाने की सार्थकता तभी होगी जब जीवन में आध्यात्मिकता की पहल होगी। साधु-जीवन की मर्यादा होने से समाज और देश-विदेश में सुसंस्कारों का प्रचार-प्रसार एक ऐसे श्रावक समुदाय से हो जो सुसंस्कृत, सुशिक्षित तथा सुव्रती हो।"

चरितनायक ने स्वाध्याय का महत्त्व प्रकट करते हुए फरमाया –"सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना है तो स्वाध्याय करो। हमारे सामने हजारों समस्याएँ हो, परन्तु उन सबका समाधान मैंने स्वाध्याय और सामायिक में पाया है। समाज में झगड़े क्यों होते हैं ? सम्प्रदाय में झगड़े क्यों होते हैं? इनके पीछे भी मूल कारण यही है कि आज समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं है।"

अपने गुरु आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए कहा –

"आचार्य श्री मेरे धर्मगुरु , मेरे धर्माचार्य , परम मंगल जीवन जीने वाले श्री शोभाचन्द्र जी महाराज, की
साधना के आज १०० वर्ष पूरे हो गए। सं. १९२७ में १३ वर्ष की वय में उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य ही नहीं, बल्कि
तन, मन और वाणी से संयमित रहने के महाव्रत स्वीकार किये। पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज ने सन्त-जीवन का
आदर्श प्रस्तुत किया। वे महान् त्यागी, तपस्वी, शान्त, सरल और मृदु स्वभाव के थे। वे सम्प्रदाय के भेदभाव की
भावना से ऊपर उठे हुए थे। किसी के प्रति तिरस्कार की भावना उनमें नहीं थी। सबके साथ उनके बड़े मधुर सम्बन्ध
थे। उन्होंने हृदय से प्रेम करना सीखा था। हम सत्कार करने वालों से प्रेम कर सकते हैं, पर विरोध करने वालों से
प्रेम करना मुश्किल है। विरोधियों से प्रेम करने वाले वे पूजनीय सन्त थे। "

"आचार्य श्री शोभागुरु ज्ञान और क्रिया दोनों के धनी थे। शार्दूल केसरीवत् आप श्री शान्त एवं सौम्य थे
तथा निर्धारित पथ पर चलने में उसकी भांति तेजस्वी भी थे। उनका मन्तव्य था कि अपनी नीति-रीति पर चलने

वाले व्यक्ति को किसी से डरने की आवश्यकता नही हैं। उनकी नीति थी –

जे आचार ऊजला, ते शादूला सींह।
आपो राखे ऊजलो, तो किण रो आण ब्रीह।।

जो आचार में उज्ज्वल हैं, वे शार्दूल सिंह की भाँति है। उन्हें फिर किसी अन्य से डरने की आवश्यकता नहीं होती।

"गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज के मेरे पर अनन्त उपकार हैं। उनके चरणों में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया है। मैं उनके संघाड़े का अधिकारी हूँ, लेकिन मेरे मन में उन्होंने इस प्रकार के संस्कार भरे हैं कि एक सम्प्रदाय में रहकर भी सम्पूर्ण जिनशासन के हित में काम करूँ। एक समय आया, जब मै संघ में रहा, पर वहाँ जब मैं काम नहीं कर सका तो अपने आपको सुरक्षित रखते हुए अलग हो गया। उसके बाद भी मेरा यही लक्ष्य रहा कि मैं चतुर्विध संघ की उन्नति के लिए कार्य करता रहूँ।"

"एक समय की बात है, आचार्य गुरुदेव किसी नये क्षेत्र में पधारे तो वहाँ के सम्प्रदायवादी लोग बोले–"महाराज! आप जैसे सन्तों की सेवा का मन तो रहता है, पर आप हमारे विरोधी सम्प्रदाय के संतों के साथ बैठकर व्याख्यान करते हो। यदि ऐसा न करो तो हम आपकी सेवा भक्ति करने को तैयार हैं।"

आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. ने कहा – **"भाई! तुम्हारी भक्ति और वन्दना रहने दो। मैंने तुम्हारी वन्दना के लिए संयम नहीं लिया है, जो तुम्हारे कहे अनुसार संतों के साथ बैठना छोड़ दूँ। हाँ, जिन-आज्ञा के विपरीत किसी का व्यवहार दिखा तो जरूर विचार करूँगा। संयम को निर्मल रखकर चलने वालों को स्वर्ग के देव भी वन्दन करते हैं और यदि हम अपने मार्ग पर नहीं चलेंगे तो वन्दना करने पर भी हमारा कल्याण नहीं होगा।"**

आचार्य श्री शोभागुरु की दृढ़ता और संयमनिष्ठा से विरोधी भी नतमस्तक थे। आचार्य श्री त्यागी, विरागी, विद्वान्, तपस्वी और पहुंचे हुए संत थे। स्वमत-परमत के ज्ञाता होकर भी वे जिन-वचनों पर अटल श्रद्धावान थे। आहार, विहार, आसन, शयन, स्वाध्याय, ध्यान में वे नियमित थे। वे आचार्य की आठ सम्पदाओं से युक्त एवं निरभिमानी थे। हम सत्कार करने वालों से प्रेम करते हैं, पर विरोध करने वालों से प्रेम करना मुश्किल होता है। वे विरोधियों से प्रेम करने वाले पूजनीय सन्त थे। उनके हजारों गुणों में से मैंने कुछ ही गुणों को गिनाया है।"

चरितनायक ने फरमाया – "यदि जिनशासन को उन्नत करना है, साधु-समाज को ऊँचा रखना है तो साधुओं और श्रावकों के बीच एक मध्यमवर्ग की स्थापना करना आवश्यक है। यह वर्ग देश-विदेश में धर्म प्रचार कर सकता है।"

आपने इस समारोह के अंतिम दिन शताधिक लोगों को शीलव्रत का नियम कराते हुए फरमाया –**"बुराई की जानकारी के उपरान्त उसके त्याग से ही सुख-समृद्धि सम्भव है।"** परिवार नियोजन के आज तरह-तरह के कृत्रिम उपाय किए जाते हैं, परन्तु भगवान महावीर ने इसका बड़ा सरल उपाय बताया है। उनके द्वारा बताये गए ब्रह्मचर्य से तेजस्विता आएगी। परिवार-नियोजन भी यथेच्छ हो जाएगा और जीवन बड़ा आनन्दमय होकर व्यतीत होगा।" इस प्रसंग पर मद्य-मांस त्याग, धूम्रपान-निषेध आदि अनेक उपलब्धियों के साथ शताधिक दम्पतियों द्वारा ब्रह्मचर्यव्रत का नियम स्वीकार किया गया। तत्कालीन कलक्टर श्री अनिलजी बोरदिया ने आचार्य श्री के अजमेर

पदार्पण को अजमेर के लिए सौभाग्य तथा सुखद संयोग माना। अजमेर शहर के कत्लखाने बन्द रहे। समापन समारोह के अवसर पर सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के माननीय अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथ जी मोदी ने 'साधना समारोह समिति' के मानद मंत्री श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना को स्वर्णपदक प्रदान कर सम्मानित किया। साधना-समारोह समिति के मंत्री के आभार-प्रदर्शन के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

अजमेर का यह कार्यक्रम धर्म-क्रियाओं एवं धर्म-प्रभावना की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध हुआ।

■

जोधपुर, कोसाणा और जयपुर चातुर्मास

(संवत् २०२८ से २०३०)

दीक्षा शताब्दी एवं दीक्षा स्वर्णजयन्ती के अनन्तर चरितनायक ठाणा ७ से अजमेर से विहार कर किशनगढ, गोदियाणा, तिहारी, झाडोल, गोठियाणा, डबरैला आदि क्षेत्रों को फरसते हुए फतेहगढ पधारे। यहाँ आपकी प्रेरणा से जैन पाठशाला प्रारम्भ हुई। फतेहगढ से विहार कर आप सरवाड, केकड़ी, देवली आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए होली चातुर्मासार्थ दूणी विराजे। होली चातुर्मासोपरान्त पूज्यपाद नैनवाँ, देई, जरखोदा, खातोली होते हुए संवत् २०२७ चैत्र कृष्णा एकादशी को अलीगढ - रामपुरा पधारे। यहाँ पूज्य आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म.सा. विराज रहे थे। उनके दो सन्त पूज्य प्रवर की अगवानी हेतु पधारे। आचार्यद्वय का स्नेह मिलन श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र था। दोनों आचार्यप्रवर ने संयुक्त संघ-योजना पर विचार-विमर्श करते हुए इसके लिये प्रस्तावित नियमावली पर चर्चा की।

दोनों महापुरुषों के कन्या पाठशाला में संयुक्त व्याख्यान हुए। तीन दिनों के विचार-विनिमय के अनन्तर विहार कर आप चैत्र शुक्ला २ संवत् २०२८ को सवाईमाधोपुर पधारे। यहां चार दिन विराजे। मुमुक्षु खेमसिंह जी ने गुरु-चरणों में उपस्थित होकर शीघ्र दीक्षित कर अपने चरण-सरोजों में लेने की प्रार्थना की।

मुमुक्षु खेमसिंह की तीव्र वैराग्य-उत्कण्ठा व जयपुर श्री संघ की विनति को लक्ष्य में रखकर परम पूज्य आचार्य भगवन्त ने दीक्षा-महोत्सव जयपुर में आयोजित करने की स्वीकृति प्रदान की।

सवाईमाधोपुर से विहार कर पूज्यप्रवर श्यामपुरा, कुण्डेरा व चौथ का बरवाड़ा क्षेत्रों में धार्मिक शिक्षण की प्रेरणा करते हुए निवाई पधारे। वहाँ से मार्गवर्ती विभिन्न क्षेत्रों को पावन करते हुए वैशाख कृष्णा अष्टमी को जयपुर पधारे।

२ मई १९७१ विक्रम संवत् २०२८ वैशाख शुक्ला अष्टमी को यहां के रामलीला मैदान में मुमुक्षु युवक श्री खेमसिंह (सुपुत्र श्री राम बक्स जी राजपुरोहित) की भागवती श्रमणदीक्षा सोल्लास सम्पन्न हुई। दीक्षार्थी की महाभिनिष्क्रमण यात्रा अनन्य गुरुभक्त श्री अनोपचन्द जी सिरहमलजी बम्ब के निवास स्थान से प्रारम्भ हुई, जिसमें स्थानीय व आगन्तुक हजारों भाई-बहिन सम्मिलित हुए। बड़ी दीक्षा भी जयपुर में ही सम्पन्न हुई तथा नवदीक्षित मुनि श्री का नाम 'मुनि शुभचन्द्र' रखा गया। दीक्षा-प्रसंग पर भोपालगढ के मूल निवासी श्री भंवरलालजी बोथरा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर संयम का सच्चा अनुमोदन किया।

• जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०२८)

जयपुर से विहार कर आचार्य श्री बगरू, दूदू, किशनगढ़, अजमेर, पुष्कर, गोविन्दगढ़, मेड़ता, गोटन आदि क्षेत्रों में धर्म-ज्योति का पावन प्रकाश फैलाते हुए खांगटा पधारे, जहाँ श्री मधुकर मुनि जी से सुमधुर वार्तालाप हुआ। यहाँ से आप पीपाड़, पालासनी आदि क्षेत्रों में वीतरागवाणी की ज्ञान गंगा बहाते हुए आषाढ़ शुक्ला १० को ठाणा ९ से

संवत् २०२८ का ५१वां चातुर्मास करने हेतु जोधपुर पधारे। आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म.सा. भी अपने सतीमण्डल के साथ घोडों का चौक विराज रहे थे। इस अवधि में श्रावकों ने श्री गजेन्द्र सेवा समिति का गठन किया। २० से २४ अक्टूबर ७१ तक आयोजित स्वाध्याय शिक्षण शिविर का उद्घाटन श्री शान्तिचन्द्रजी भंडारी ने किया। प्रो. श्री चाँदमल जी कर्णावट, श्री कन्हैयालाल जी लोढा, श्री पारसमलजी प्रसून आदि ने प्रशिक्षण दिया। अन्य विद्वानों ने भी वार्ताएं दी। श्री नेमीचन्द्रजी भावुक के मुख्यातिथ्य तथा प्रसिद्ध एडवोकेट श्री थानचन्द जी मेहता की अध्यक्षता में शिविर का समापन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ, जिसमें महिला जागृति की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया। आपने स्वाध्यायियों को उद्बोधन में फरमाया – "स्वाध्यायी अपने विचारबल से छोटा सा भी ऐसा वर्ग निर्मित करे, जो शासन को सही रूप में दिपा सके।" अज्ञान-आवरण दूर करने के लिए आपने स्वाध्याय एवं सामायिक की आराधना को आवश्यक बताया। इस समय सामायिक पर आपने एक पद की रचना की, जिसकी कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

सामायिक में सार है, टारे विषय विकार है।
करलो भय्या (प्यारे) सामायिक तो , होगा बेड़ा पार है।।टेर।।
भरत भूप ने काच भवन में, सामायिक अपनाया हो।
विषय कषाय को दूर हटाकर, वीतराग पद पाया हो।।
जड़ जग से मन मोड़ के , पाया केवल सार है।।करलो ।।२।।
मेतारज मुनि सामायिक कर, तन का मोह हटाया हो -२
प्रबल वेदना सहकर उसने, केवलज्ञान मिलाया हो...२।।

चातुर्मास में पाँच मासखमण तप बिना बाह्य आडम्बर के हुए। चरितनायक ज्ञान को समाज की आँख के रूप में मानते थे। आपने इतिहास के ज्ञान को भी वर्तमान को समुन्नत, भविष्य को उज्ज्वल एवं कल्याणकारी बनाने हेतु आवश्यक प्रतिपादित किया। चातुर्मास में अच्छी ज्ञानाराधना हुई। इस चातुर्मास में मारवाड़ , मेवाड़, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मद्रास आदि प्रान्तों के श्रावकों का आगमन विशेष रहा। बैंगलोर से ६०० श्रावकों का संघ संघपति श्री मांगीलालजी गोदावत के नेतृत्व में आचार्यप्रवर के दर्शन लाभ कर कृतार्थ हुआ। श्री जसराज जी गोलेच्छा की धर्मपत्नी श्रीमती धापूबाई ने ८५ वें उपवास का प्रत्याख्यान किया।

जोधपुर के पावटा, महामन्दिर, मुथाजी के मन्दिर आदि उपनगरों में विराजकर चरितनायक शास्त्रीनगर पधारे, जहाँ श्री पुखराज जी भंसाली एवं जवरीलालजी कूमट ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। उपनगरों में जिनवाणी की ज्ञानगंगा बहाते हुए आपने जन-जन को देश-विदेश में धर्म-प्रचार की प्रेरणा दी। यहाँ से आप बम्बोर, आगोलाई, ढाढणिया होकर बालेसर पधारे। यहां आपके प्रवचनामृत रूपी पावन उद्बोधन व केरू वाले श्री मोहनलालजी के प्रयासों से समाज में पारस्परिक झगड़ा समाप्त हुआ व परस्पर मैत्री व स्नेह भाव का संचार हुआ। बालेसर सता से मार्गशीर्ष पूर्णिमा को बालेसर दुर्गावतां पधारे, तब भारत-पाकिस्तान के युद्ध में ३-१२-७१ को जोधपुर पर बमबारी हुई , किन्तु, आयम्बिलव्रत की आराधना से जैसे द्वारिकानगरी पर देव का वश नहीं चला, उसी प्रकार धर्म के प्रताप से शहर में कुछ भी हानि नहीं हुई। मात्र एक बम फट कर रह गया।

बालेसर दुर्गावता में सीढियों से फिसलने के कारण आपके कमर में गहरी चोट आयी। किन्तु आपमें इतनी शान्ति एवं समता की अजस्रधारा प्रवाहित थी कि आपके चेहरे पर कोई शिकन नहीं। जोधपुर से आए चिकित्सक डॉ. पी.एल. बाफना ने जब चोटग्रस्त अंग को देखना चाहा तो आपने रात्रि में टार्च से देखने की भी अनुमति नहीं दी। शरीर पर चोट का प्रभाव तो था ही। इसलिए आपको यहाँ पर पांच दिन विराजना पड़ा। इसके पश्चात् आप

आगोलाई में स्वास्थ्य लाभ हेतु १७ दिन विराजे। यहां कुंवर महेन्द्रसिंहजी द्वारा शराब के त्याग, घेवरजी संचेती द्वारा धूम्रपान-त्याग एवं रूपा घांची द्वारा चिलम पीने का त्याग किया गया, जो यह सिद्ध करते हैं कि आचार्य श्री का प्रभाव गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी के जन-जन पर था। ग्रामवासियों ने धर्माराधन व ज्ञानाराधन का उस अवधि में जो लाभ लिया उसे ग्रामवासी आज भी स्मरण करते हैं। पूज्यपाद के विराजने से आगोलाई ग्राम धन्य धन्य हो गया। आज यह छोटा सा गाँव रत्नवंश का विशिष्ट क्षेत्र है व यहाँ के सभी भाई-बहिन सामायिक-स्वाध्याय व संघ-सेवा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

आगोलाई से चरितनायक कल्याणपुर पधारे। यहाँ आपने ज्ञान भंडार का अवलोकन किया। यहाँ से डोली, धवा, लूणावास बोरानाडा आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आपने जोधपुर के उपनगर सरदारपुरा क्षेत्र में पदार्पण किया। अपने आराध्य गुरुदेव के पदार्पण से उत्साहित जोधपुर वासियों ने पूज्यपाद के पावन दर्शन, वन्दन व प्रवचनामृत का सोत्साह लाभ लिया। पूज्यवर्य का जोधपुर के जन-जन पर कितना व्यापक प्रभाव था, इसका अनुमान आपके अनन्य भक्त प्रसिद्ध भजनीक श्री दौलतरूपचंदजी भंडारी द्वारा व्यक्त इस बात से लगाया जा सकता है कि जब भी पूज्य महाराज पधारते हैं तो भीतों (दीवारों) से आदमी निकल आते हैं। कहने का आशय यही कि आप भले ही ग्राम-नगर, महानगर अथवा जंगल में जहाँ कहीं भी विराजते, नित्यप्रति सैकडों भक्त आपके दर्शनार्थ पहुँच कर अपने आपको सौभाग्यशाली समझते।

यहाँ फाल्गुन कृष्णा १२ शुक्रवार दिनांक १३ फरवरी १९७२ को आपके अन्तेवासी संत श्री मगनमुनि जी म.सा. का ज्वर के अनन्तर घोड़ों का चौक स्थानक में स्वर्गवास हो गया। श्री मगनमुनि जी म.सा. जोधपुर के सुश्रावक श्री सोनराज जी मुणोत के सांसारिक पुत्र थे व आपने जोधपुर में ही संवत् २०२० वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को परम पूज्य चरितनायक के मुखारविन्द से श्रमण दीक्षा अंगीकार की थी। आप शान्त, दान्त, तपस्वी एवं सेवाभावी सन्त थे। थोकड़े सीखने सिखाने-में आपकी विशेष अभिरुचि थी। आपके संयमनिष्ठ जीवन का परिचय देते हुए आपको श्रद्धांजलि दी गई।

यहीं पर दिनांक १७ फरवरी को आचार्यप्रवर के परम भक्त, प्रखर प्रतिभा के धनी, अग्रगण्य संघसेवी प्रखर विचारक इस यशस्वी परम्परा के यशस्वी श्रावक श्री इन्द्रनाथ जी मोदी का स्वर्गवास हो गया। मोदी सा राजस्थान उच्च न्यायालय के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश पद से सेवानिवृत्त हुए । वे ओसवाल सिंह सभा, जोधपुर वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल आदि विभिन्न संस्थाओं के वर्षों तक अध्यक्ष रहे। समर्पित सुज्ञ श्रावक एवं विवेकशील व्यक्तित्व के निधन से श्रावक समाज को धक्का लगा।

फाल्गुनी चातुर्मासिक पूर्णिमा को सरदार स्कूल के प्रांगण में चरितनायक का प्रभावी प्रवचन हुआ, जिसके श्रवणार्थ जोधपुर के पूर्व नरेश गजसिंह जी ने उपस्थित होकर अपने आपको कृतकृत्य समझा। जोधपुर से विहार कर आप काकेलाव पधारे। यहाँ आपने पल्लीवाल मन्दिर में ज्ञान भंडार का अवलोकन किया। यहां से रोहट पधारने पर जैन जैनेतर सभी ने आपके पावन-दर्शन एवं प्रवचन-पीयूष का लाभ लिया। आपके संयमनिष्ठ जीवन एवं तपःपूत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्री गणेशजी पुरोहित ने आपसे धर्म का स्वरूप समझा व आपको अपना गुरु बना कर अपने आपको धन्य-धन्य माना। यहां से खारडा, गुमटी होते हुए चरितनायक चैत्रकृष्णा १२ को पाली पधारे। यहाँ ज्ञानगच्छीय महासती जी श्री सुमति कंवरजी, महासती श्री उमराव कुंवरजी 'अर्चना' , मेवाड़सिंहनी

महासती श्री जसकंवर जी, महासतीजी केसर कंवर जी तथा पंजाब से पधारे महासती मंडल ने आपके दर्शन व सान्निध्य का लाभ लिया। यहां आपका स्वामी श्री ब्रजलालजी म. पं. रत्न श्री मधुकर मुनिजी म. से स्नेह मिलन हुआ व महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर कपड़ा बाजार में सम्मिलित प्रवचन भी हुआ। आपके इसी प्रवास के मध्य यहां बहुश्रुत पंडित रत्न श्री समर्थमलजी म.सा. का पदार्पण हुआ। दोनों महापुरुषों ने परस्पर चर्चा व वार्तालाप किया। बहुश्रुत जी म.सा. ने आपको अपने सन्तों का परिचय देते हुए प्रमोद का अनुभव किया।

प्रथम वैशाख शुक्ला पंचमी संवत् २०२९ को बड़े हरकँवरजी म.सा. का मेड़ता सिटी में स्वर्गवास हो गया। राजस्थान के बूंदी जिला स्थित समिधी ग्राम में श्री छोगालाल जी पोरवाल की धर्मपत्नी की कुक्षि से पौष कृष्णा ५ विक्रम संवत् १९५४ को जन्मे हरकँवरजी ने सवाईमाधोपुर में कार्तिक शुक्ला १२ संवत् १९७२ को भागवती दीक्षा अंगीकार कर प्रव्रज्या पथ अपनाया था। बड़े धनकंवर जी म.सा. की शिष्या रही इन महासती ने ५७ वर्षों तक निरतिचार संयम का पालन कर अपनी आत्मा को भावित किया।

पाली से विहार कर पूज्यप्रवर जाडण, बागावास, सोजत, सांडिया, पीपलिया, निमाज, बर, ब्यावर, पीसांगन पुष्कर आदि विभिन्न क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए प्रथम वैशाखी पूर्णिमा को अजमेर पधारे। यहाँ द्वितीय वैशाख शुक्ला तृतीया को सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से जैन स्थानक लाखन कोटडी में गुणी अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया गया। न्यायमूर्ति श्री सोहननाथ जी मोदी के मुख्य आतिथ्य व डॉ नरेन्द्र भानावत के संयोजकत्व में सम्पन्न इस समारोह में शास्त्रीय विद्याध्ययन के लिये श्री हिम्मत सिंह जी सरूपरिया उदयपुर का, जीवन में ज्ञान व क्रिया के योग हेतु श्री चांदमलजी कर्णावट भोपालगढ का अध्यात्म चिन्तन एवं नूतन गवेषणा हेतु चिन्तनशील मनीषी विद्वान् श्री कन्हैयालालजी लोढा, केकडी का एवं संघ-सेवा हेतु श्री सरदारमलजी सांड का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर अपने मंगल उद्बोधन में आपने समाज में ज्ञान एवं आचार के सामंजस्य की आवश्यकता पर बल दिया।

पूज्यप्रवर का चिन्तन था कि संघ व समाज में अनेकों कार्यकर्ताओं, त्यागव्रती श्रावक -श्राविकाओं एवं चिन्तनशील प्रबुद्ध विद्वानों की भूमिका विकास में महनीय है, पर उनका योगदान जन-सामान्य के समक्ष नहीं आ पाता, वे तो बिना यश कामना के अपनी भूमिका अदा कर जाते हैं। वस्तुतः संघ-रचना एवं शासन की प्रभावना के मुख्य सूत्रधार तो ये ही नींव के पत्थर हैं। शीर्ष के कंगूरों की शोभा इन्हीं नींव के पत्थर माफिक संघ-सेवियों द्वारा किये गये योगदान से है। संघ-समाज के समक्ष इनके योगदान को लाया जा सके, इसी पुनीत लक्ष्य से संघ ने गुणी-अभिनन्दन योजना को अपनाया। 'गुणिषु प्रमोदं' की महनीय भावना से प्रारम्भ इस योजना के पीछे उन महापुरुष के मनोमस्तिष्क में जहाँ एक ओर इन छिपे रत्नों को प्रकाश में ला कर समाज में प्रमोद भाव को बढ़ावा देने का लक्ष्य था, वहीं कार्यकर्ताओं के पुरुषार्थ, विचारशील विद्वद्वर्ग के चिन्तन एवं त्यागव्रती श्रावकगण के अंतर्हृदय से उद्भुत शुभ कामनाओं को सूत्रबद्ध कर एकाकार करना भी था। वस्तुतः तीनों ही ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की तरह एकाकार होकर सुन्दर आदर्श संघ-संरचना का दायित्व निर्वहन कर सकते हैं।

एक भावना यह भी परिलक्षित होती है कि विद्वान् मात्र ज्ञान-साधना तक ही सीमित न हो, उसके ज्ञान में श्रद्धा एवं संघ के प्रति समर्पण का बल हो और इसी समर्पण भाव के साथ वह भी 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' का आदर्श अपना कर अपने जीवन में यथाशक्य व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण कर धर्म को अपने आचरण में अपनाये। त्यागव्रती सुश्रावकगण तपत्याग के साथ ही ज्ञान-स्वाध्याय-साधना को अपना कर सोने में सुहागा की कहावत चरितार्थ करे

एवं अपने तप-त्याग के बल से कायकर्ताओं का बल बनें। कार्यकर्तागण अपने को संघ सेवा में समर्पित करने के साथ विद्वद्वर्य के चिन्तन एवं त्यागी सुश्रावकगण के संरक्षण के प्रति पूर्ण समादर रखें तथा उनके मार्गदर्शन में संघ को प्रगति पथ पर अग्रसर करने का पुरुषार्थ करें तथा स्वयं भी अपने जीवन में स्वाध्याय से ज्ञान ज्योति प्रज्वलित करने व सामायिक से व्रत ग्रहण कर साधना-शीलता को साथ में अपनाने का लक्ष्य रखें।

इन्हीं सब भावनाओं को समाहित करते हुये संघ ने गुणी-अभिनन्दन योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष कम से कम एक विद्वान्, एक साधक श्रावक एवं एक समाजसेवी कार्यकर्ता का अभिनन्दन कर उनके महनीय योगदान को उजागर करने का लक्ष्य रखा।

पूज्यवर्य फरमाया करते कि गुणीजनों का अभिनन्दन वस्तुतः गुणों का अभिनन्दन है , गुणीजनों द्वारा समाज पर किये गये उपकार से उऋण होने का एक छोटा सा प्रयास मात्र है। गुणियों के अभिनन्दन से गुणी- जन नहीं वरन् स्वयं समाज गौरवान्वित होता है।

अजमेर में इस समय प्रवर्तक श्री छोटमल जी म.सा. , पं. रत्न श्री सोहनलाल जी म. भी ठाणा ३ से विराज रहे थे, अचानक प्रवर्तक स्वामी श्री छोटमलजी म. का अक्षय तृतीया पर स्वर्गवास हो गया। कायोत्सर्ग कर गुणानुवाद सभा की गई।

• कोसाणा चातुर्मास (संवत् २०२९)

अजमेर से तिलोरा, थांवला, भैरूंदा, मेवड़ा, पादू बड़ी-छोटी, मेड़तासिटी, गोटन, रजलाणी नारसर, भोपालगढ़, रतकुड़िया, खांगटा, मादलिया फरसते हुए चरितनायक आचार्य श्री ने ठाणा ६ (लघु लक्ष्मीचन्दजी म.सा., श्री माणकचन्दजी म.सा., श्री जयन्तमुनि जी म.सा., श्री हीराचन्दजी म.सा., श्री शुभमुनिजी म.सा. सहित) के साथ संवत् २०२९ का ५२वां चातुर्मास करने हेतु कोसाणा गांव में आषाढ शुक्ला प्रथम दशमी को प्रवेश किया। पूरा गाँव स्वागत में उमड़ पड़ा और आप श्री के प्रवचन प्रभाव से दशाधिक युगलों ने आजीवन शीलव्रत ग्रहण किया तथा मद्य-मांस त्याग के साथ ही प्रतिवर्ष ५ जीव अमर करने का नियम भी लिया। कोसाणा में आयम्बिल, दया, उपवास, बेले, तेले, अठाई आदि तपस्याओं का अद्भुत ठाट रहा। विश्नोई समाज के अमराजी ने २१ दिन की तपस्या की। धर्मध्यान में विश्नोई भाई मोतीजी, अणदाजी , फगलूजी, सालू जी आदि पचासों व्यक्तियों ने लाभ लेकर आचार्यप्रवर के चरणों में अपनी भक्ति अर्पित की।

कोसाणा से साथिन पदार्पण पर आपकी प्रेरणा से ठाकुर गोविन्दसिंहजी ने जीवन पर्यन्त शिकार एवं अखाद्य के त्याग का नियम लिया। यहाँ से सेठों की रियां में आजीवन शीलव्रत कराते हुए पीपाड़ पधारे। श्रावकधर्म पर आचार्य श्री के प्रवचन से प्रेरणा लेकर अनेक भाई-बहनों ने १२ व्रत अंगीकार किए। यहाँ से भावी, बिलाड़ा, बालाग्राम, कापरड़ा, बीनावास, पालासनी, बिसलपुर, डांगियावास, बनाड़ को फरसते हुए तथा अनेक श्रावक-श्राविकाओं को शीलव्रत से मर्यादित करते हुए आप जोधपुर पधारे। इस बीच बालाग्राम से कापरड़ा की ओर विहार के समय आचार्य श्री चलते-चलते अचानक अपने साथ चल रहे श्रावकों से बोल उठे - "जिन शासन रूपी मान सरोवर का हंसा आज उड़ गया है।" यह जानकर विस्मय होता है कि कुछ समय पश्चात् जोधपुर से आये श्रावक श्री पारसमलजी रेड ने बताया कि बहुश्रुत पण्डितरत्न श्री समर्थमलजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है। आचार्यप्रवर को बहुश्रुत पण्डित मुनि जी के स्वर्गवास का पूर्वाभास हो गया था। श्री रेड जी से सूचना मिलने पर निर्वाण कायोत्सर्ग कर श्रद्धांजलि दी गई।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आचार्य श्री जोधपुर पधारे, जहाँ आपका श्री पुष्करमुनि म.सा. के साथ व्याख्यान हुआ। ४ जनवरी १९७३ को पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. के स्वर्गवास की सूचना मिलने पर उन्हें कायोत्सर्ग के साथ श्रद्धाञ्जलि दी गई। पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. के द्वारा स्थानकवासी सम्प्रदाय को मान्य आगमों की संस्कृत टीका करने सहित अनेक ग्रन्थों के रूप में उनके योगदान का स्मरण किया गया। आचार्यप्रवर की प्रेरणा से जोधपुर में अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने शीलव्रत एवं १२ व्रत अंगीकार किए। महिलाओं ने सामायिक में विकथा न करने का नियम लिया। महामंदिर, मंडोर, बावड़ी, बिराई फरसते हुए आप माघ कृष्णा अष्टमी को भोपालगढ़ पधारे। यहाँ ठाकुर रामसिंहजी ने आचार्य श्री से प्रभावित होकर अहिंसा का प्रचार किया तथा पंच दिवसीय अल्पकाल में २० व्यक्तियों ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। यहाँ से आप रजलाणी, गोटन, लाम्बाजाटा होते हुए मेड़ता पधारे। यहाँ से भखरी पधारने पर माघ शुक्ला १३ दिनांक १५ फरवरी १९७३ को बस्तीमल जी लोढा (सुपुत्र श्री खेमराजजी लोढा) और श्रीमती सूरज कुंवर (धर्मपत्नी श्री मोहनलालजी सुराणा) की दीक्षा सम्पन्न हुई। यहाँ से आप थाँवला, तिलौरा, पुष्कर होते हुए अजमेर पधारे, जहाँ गणेशमलजी बोहरा की बहिन को संथारा कराया जो ६ घंटे बाद सीझ गया। यहाँ से मदनगंज पधारने पर बादरमल जी मोदी को यावज्जीवन संथारा कराया और मांगलिक दिया। शाम को ६ बजे उनका संथारा सीझ गया। यह घटना सबके लिए आश्चर्यजनक थी। यहाँ से आचार्य श्री किशनगढ़, डीडवाना, पडासोली, गागरड़ू, हरसोली, दूदू , पालू, गाढ़ोता, बगरू, हीरापुर को पावन करते हुए जयपुर पधारे। कुछ दिन वहाँ विराज कर आप आमेर, कूकस, अचरोल होते हुए चंदवाजी पधारे, जहाँ पर एक हरिजन भाई ने मांस-मद्य व निरपराध जीव की हत्या का जीवन पर्यन्त त्याग किया। यहां सरपंच देवीसहाय जी से संस्कृत में वार्ता करते समय प्रसंगवश भगवद्गीता के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' श्लोकांश पर जिज्ञासा का समाधान करते हुए आपने फरमाया-" जो लोग कृष्ण के आश्रय से वर्ग, धर्म सम्प्रदाय आदि सब धर्मों का परित्याग अर्थ बतलाते हैं, वे वस्तु तत्त्व से अनभिज्ञ हैं। कृष्ण जैसे उदारमना महापुरुष इस प्रकार मानव को मानव से विग्रह का शिक्षण नहीं दे सकते। यहां स्वधर्म का अभिप्राय आत्मधर्म से है। भूतधर्म शरीर और इन्द्रिय के धर्मों को छोड़कर मेरी अर्थात् आत्मा की शरण स्वीकार करने के लिए कृष्ण का उपदेश हो सकता है।"

यहाँ से आप मनोहरपुरा, शाहपुरा होते हुए भीलवाड़ी पधारे। ग्राम पंचायत के समीप आपने शिक्षकों को साधुधर्म से अवगत कराया। एक शिक्षक ने पृच्छा की- शरीर का तप हिंसा है या नहीं? पूज्यपाद ने समाधान करते हुए फरमाया-"शरीर का तप हिंसा नहीं अहिंसा है। शरीर शुभाशुभ क्रिया में करण है, अतः हितभाव से शिक्षक द्वारा बालक के ताड़न की तरह शरीर का तप-संयम से नियन्त्रण किया जाता है।" पूज्यपाद के सदुपदेश से प्रभावित शिक्षकों ने सदा के लिए धूम्रपान का त्याग कर दिया।

भीलवाड़ी से बैराठ, थानागाजी होते हुए वैशाख कृष्णा १४ को आपने अलवर पदार्पण किया व विशाल जनसमूह के जयघोषों के साथ महावीर भवन में प्रवेश किया। यहाँ आप १७ दिन विराजे। श्री जवरीमलजी चौधरी, ज्ञानचन्द जी ठाकुर, जयचन्दजी संचेती सहित अनेक बंधुओं ने सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया। वैशाख शुक्ला १२ को कुचेरा में स्वामीजी श्री रावतमलजी के स्वर्गस्थ होने पर श्रद्धाञ्जलि दी गई।

अलवर में ५ मई ७३ को अक्षय तृतीया पर न्यायमूर्ति श्री सोहननाथ जी मोदी की अध्यक्षता में सम्पन्न समारोह में समाज-सेवा हेतु कमला बहिन का अभिनन्दन किया गया। प्रश्नोत्तर के समय आत्मा के होने की सिद्धि में आपने फरमाया कि स्वानुभूति ही आत्मा के होने में पुष्ट प्रमाण है। आप यहाँ पर लगभग १५ दिन विराजे। यहाँ

से आप बुर्जा, मालाखेड़ा, बारा भड़कोल, मौजपुर, हरसाना पधारे। आप द्वारा ब्रह्मचर्य पर दिए गए प्रवचन से प्रेरणा लेकर पटवारी लक्ष्मीनारायण जी आदि ने शीलव्रत का नियम लिया। यहाँ से कच्चे मार्ग से पहाड़ की तिरछी चढ़ाई को पार करते हुए खोह गाँव पधारे। पल्लीवाल क्षेत्र आपकी अमृतवाणी से उपकृत हुआ। क्षेत्र में व्रत-नियमों की महत्ती प्रभावना हुई। वहाँ से मण्डावर, रसीदपुर, सिकन्दरा, दौसा, कानोता होते हुए आपने जयपुर के सेठी कॉलोनी, आदर्श नगर, तिलक नगर आदि उपनगरों को पावन किया। आचार्य श्री के साथ समय-समय पर श्री खेलशंकर दुर्लभजी, डा. शीतलराज जी मेहता, श्री डी.आर. मेहता आदि दर्शनार्थी श्रावकों द्वारा ज्ञान-विज्ञान की चर्चा होती रही। आचार्य श्री उपवास को स्वास्थ्य के लिए हितकारी मानते हुए कई रोगों के निदान में भी उसे सहायक मानते थे। इस संदर्भ में आपने फरमाया – "मनुष्य नियमित रूप से समय-समय पर उपवास करके अपने पेट को विश्राम देता रहे, तो उसे व्याधियाँ परेशान नहीं करेंगी। उपवास से सात्त्विक भाव का जागरण और तामस-राजस भावों का विनाश होता है।"

आचार्य श्री के संवत् २०३० के चातुर्मास हेतु जयपुर की विनति स्वीकार करने पर समूचा जयपुर समाज प्रफुल्लित हो उठा। इसी दौरान लाल भवन स्थित आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार के सक्रिय एवं उत्साही संयोजक श्री सोहन लाल जी कोठारी का २६ मई ७३ को स्वर्गवास हो जाने के समाचारों ने सबको विह्वल कर दिया। आचार्यप्रवर ने कोठारी जी को एक ऐसा प्रचेता बताया जिसका विभिन्न क्षेत्रों में मूल्यवान योगदान रहा।

श्री कोठारी जी जैन इतिहास समिति के मंत्री, निष्ठावान कार्यकर्ता और समर्पित समाज सेवी थे। विद्वान् एवं प्रोफेसर नहीं होने पर भी आपने जिस सूझबूझ से आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार को व्यवस्थित किया वह अपने आप में अप्रतिम उदाहरण था।

• जयपुर-चातुर्मास (संवत् २०३०)

आचार्य श्री संवत् २०३० के वर्षावास हेतु जब ठाणा १२ (पं. लक्ष्मीचन्दजी म.सा. , सेवाभावी श्री लघु लक्ष्मीचन्दजी म.सा., श्री माणकचन्द जी म.सा., पं. श्री चौथमलजी म.सा., बाबाजी श्री जयन्तमुनिजी म.सा., श्री श्रीचन्द्रजी म.सा., श्री मानचन्द्रजी म.सा., श्री हीराचन्द्रजी म.सा., श्री शीतलमुनिजी म.सा., श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. तथा श्री बस्तीमलजी म.सा.) से लालभवन में पधारे तब सम्पूर्ण नगर में हर्ष की लहर दौड़ गई और विशाल जनमेदिनी अगवानी हेतु उपस्थित हुई। इस चातुर्मास की अनेक उपलब्धियाँ रहीं। देश में भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष की तैयारियाँ चल रही थी, इसी क्रम में संघ की ओर से न्यायमूर्ति श्री सोहनलालजी मोदी की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय वीर निर्वाण साधना समारोह समिति', का गठन किया गया, जिसका मंत्री उत्साही कार्यकर्ता श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना को बनाया गया। समिति ने समाज के समक्ष २५ सूत्री साधना-संकल्प का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। समिति का मुख्य कार्यालय घोडों का चौक जोधपुर में था। इस कार्यक्रम में मांस-भक्षण, मद्यपान, धूम्रपान आदि दुर्व्यसनों का त्याग, दहेज एवं सामूहिक रात्रि-भोज आदि कुरीतियों का उन्मूलन तथा सामायिक, स्वाध्याय आदि जीवन निर्माणकारी प्रवृत्तियों का प्रचार-प्रसार तथा इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य एवं श्रावक व्रत अंगीकार करने जैसे जीवनोत्थानकारी कार्यक्रम सम्मिलित थे। २५ सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन के फलस्वरूप ६ माह की अल्पावधि में समिति के कार्यकर्त्ताओं के प्रयासों व आपश्री के सदुपदेश से ४३० ब्रह्मचर्यव्रती, ९३ बारह व्रती,१३९ स्वाध्यायी श्रावक, ९०४ प्रेमी स्वाध्यायी, ८३३ साप्ताहिक सामायिक व्रती,१२२७ मांस-त्यागी, १३१७ मद्यत्यागी, ९३२ धूम्रपान-त्यागी, ६६५ प्रामाणिक मापतौल व्रती,२२ संघ सर्वेक्षक तथा ४५० सामायिक-संघ के सदस्य बने।

आचार्यप्रवर ने प्रेरणा दी कि "जैसे छोटे से बीज में भी बड़ी सामर्थ्य-शक्ति होती है वैसे ही मानव की चेतना-शक्ति में बड़ा सामर्थ्य होता है, आवश्यकता उसे क्रिया द्वारा प्रकट करने की है।" इसी अवधि में आचार्य श्री द्वारा लिखित 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के दोनों भाग उदयपुर विश्वविद्यालय द्वारा एम.ए. पाठ्यक्रम में स्वीकृत किए गए।

इस चातुर्मास में लगभग ३० मासखमण एवं ३०० अठाई तप हुए जो एक नूतन कीर्तिमान रहा। मेवाड़सिंहनी महासती श्री जसकंवर जी म.सा.भी इस समय जयपुर में ही विराज रहे थे। श्री अस्थिर मुनिजी के ५७ दिवसीय तप के समापन समारोह पर ६२ अठाई तपस्वियों का जुलूस शिवजीराम भवन से लाल भवन आया। यह दो परम्पराओं के सुन्दर मिलन व सौहार्द का अनुपम अवसर था। ऐसे ही ३० जुलाई को तपस्वियों का एक विशाल जुलूस सुबोध कालेज से रवाना होकर लाल भवन आया। यहाँ अठाई तप वाले १८१ तपस्वियों ने परमपूज्य आचार्य भगवन्त से एक साथ प्रत्याख्यान किये। मध्याह्न में आचार्य श्री प्रतिदिन श्री सूयगडांग सूत्र एवं बृहत्कल्पभाष्य की वाचना फरमाते थे, जिसमें सन्तों के साथ अनेक ज्ञानरसिक श्रावक लाभ लेते थे। ५ से ९ अक्टूबर ७३ तक धार्मिक कार्यकर्ताओं का शिक्षण शिविर लगाया गया, जिसमें जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, सवाई माधोपुर आदि क्षेत्रों के ३२ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

चातुर्मास की समाप्ति के अनन्तर ठाणा ६ से पुलिस मेमोरियल, आदर्श नगर होते हुए गांधीनगर पधारे, जहाँ आप श्री चन्द्रराजजी सिंघवी के बंगले पर विराजे । यहाँ जैन विद्वान तैय्यार करने के पुनीत लक्ष्य से 'श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान' की स्थापना की रूपरेखा बनी । संस्थान के माध्यम से संस्कृत, प्राकृत, दर्शन एवं जैन विद्या की उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान कर जैन धर्म के मर्मज्ञ विद्वान, प्रभावी वक्ता, सफल लेखक और कुशल सम्पादक तैयार करने का लक्ष्य रखा गया।

आचार्य प्रवर ने शिक्षा, दीक्षा और संस्कार के समन्वित प्रयासों पर बल देते हुए फरमाया—"आज बोध और शोध दोनों दृष्टियाँ आवश्यक हैं।" उद्घाटन अवसर पर राजस्थान सरकार के सहकारिता मंत्री श्री रामनारायणजी चौधरी ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों को आज के युग के लिए उपयोगी बताया और उनके व्यापक प्रचार-प्रसार पर बल दिया। मुख्य अतिथि श्री निरंजननाथ जी आचार्य ने भगवान महावीर के अहिंसा-अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तों को युग की मांग बताते हुए जीवन में मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए ऐसे संस्थानों की स्थापना को महत्त्वपूर्ण बताया। समारोह की अध्यक्षता श्री श्रीचन्दजी गोलेछा ने की।

२१ नवम्बर को आचार्य श्री विनयचन्दजी म.सा. की पुण्यतिथि पर श्री निरंजननाथ जी आचार्य, राजस्थान के वित्तमंत्री श्री चन्दनमल जी बैद एवं खाद्यमंत्री ने प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया तथा आचार्य श्री से जीवनोपयोगी विचार-विमर्श किया।

■

सवाईमाधोपुर, ब्यावर, बालोतरा एवं अजमेर चातुर्मास (संवत् २०३१ से २०३४)

• भरतपुर होकर आगरा : पल्लीवाल समाज में धर्म जागरण

गांधीनगर से १ दिसम्बर १९७३ को गोलेछा गार्डन होते हुए आप कानोता पधारे। यहाँ छात्रों को उद्बोधित कर मोहनपुरा, गोठड़ा, भंडाणा को पावन करते हुए दौसा पधारे। जन-जन को हितबोध देते हुए आप लालसोट, मण्डावरी, डाबर, बड़ा गाँव, बामनवास, सफीपुरा होते हुए प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र श्रीमहावीर जी पधारे।

मार्ग में बन्धे की पाल से गुजरते समय आपको जो अनुभूति हुई वह आपके ही शब्दों में दैनन्दिनी से उद्धृत है–**"पाल पर से पानी हिलोरें खाते ऐसा दिख रहा था, मानो अन्तर में मोह पवन से तरंगित मन की तरंगें संयम-नियम की पाल से टकराकर पीछे जा रही हों।"** आपकी यह अनुभूति प्रकृति से भी अध्यात्म का अध्ययन करने की प्रवृत्ति को इंगित करती है। जो सीखना चाहता है वह प्रकृति के तत्त्वों से भी अध्यात्म की सीख ग्रहण कर सकता है। मार्गस्थ ग्राम-जनों को धर्म के प्रति प्रेरित कर आप बरगमां, झारेडा एवं हिण्डौन पधारे। यहाँ २४ दिसम्बर को स्वाध्याय शिविर आयोजित हुआ। नई मंडी, शेरपुर जैसे गाँवों में किसानों द्वारा वृद्ध पशु के विक्रय करने का त्याग करना तथा आपश्री को अपना गुरु बनाना, आपश्री के प्रभावी व्यक्तित्व एवं पातक प्रक्षालिनी वाणी का प्रत्यक्ष प्रमाण था। कच्चे मार्ग पर बसे धाधरेन जैसे गाँव में ४०-५० गूजरों द्वारा धूम्रपान, मद्यपान, तम्बाकू-सेवन आदि व्यसनों का त्याग, मानव जीवन निर्माण की कड़ी में महत्त्वपूर्ण कदम था। पौष शुक्ला ७ को बयाना पदार्पण के समय तहसीलदार रणविजयजी एवं उपजिलाधीश ललितप्रसादजी शाह अगवानी के लिये सामने आए। जिलाधीश एवं भरतपुर के भाई भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। बयाना से आप उच्चैन पधारे, जहाँ पुराने ताड़पत्रों का अवलोकन आचार्यश्री के विद्या-व्यसन को परिलक्षित कर रहा था। ४ जनवरी १९७४ पौष शुक्ला एकादशी को आपने भरतपुर में प्रवेश किया। भरतपुर के जिलाधीश पशुपति नाथ जी भंडारी ने सप्त व्यसन तथा रिश्वत लेने-देने का त्याग करने के नियम ग्रहण किए। स्थानीय जेल में आपका प्रभावी व्याख्यान हुआ। महावीर भवन में श्री चंदूलालजी, हजारीमलजी, रेवतीलालजी और फूलचंदजी ने आजीवन शीलव्रत का नियम लिया। यहाँ से आप बछामदी पधारे, जहाँ राजस्थान के डी.आई.जी. ज्ञानचन्दजी सिंघवी ने दर्शनलाभ लिया। वहाँ से चिकसाना, अछनेरा, अंगूठी होते हुए चरितनायक लोहामंडी, आगरा पधारे। यहाँ उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी म.सा. ने आप श्री की अगवानी की और आपके आचार्य पद का सम्मान किया। दोनों मुनिवरों का बड़ा आत्मीय मिलन हुआ। आप पौषधशाला पधारे, जहाँ आपका पूज्य श्री पृथ्वीचंदजी म.सा. से मिलन हुआ। आपने मोतीकटरा, बेलनगंज एवं मेयरकोठी को भी पावन किया। मोतीकटरा में धर्म, अहिंसा और श्रावक के दायित्व पर सरस प्रवचन करते हुए आपने फरमाया "संयम-साधना में सहयोग दे सकें तो दें, पीछे तो नहीं खींचे।" लोहामण्डी कोठी में २८ जनवरी १९७४ माघशुक्ला पंचमी वि. संवत् २०३० को जैन महिला महाविद्यालय के प्रांगण में पीपाड़ निवासी दीक्षार्थी भाई श्री चम्पालालजी (सुपुत्र श्री जीवराजजी मुथा एवं श्रीमती तीजा बाई, पीपाड़ सिटी) को आपश्री ने भागवती दीक्षा

प्रदान की। कवि जी म.सा. ने नवदीक्षित मुनि का नाम चम्पक मुनि दिया। यहाँ आचार्य श्री एवं कवि अमरचन्दजी म.सा. के ज्ञान एवं क्रिया विषय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुए।

आचार्य श्री वापसी में भरतपुर से सेवर, पहरसर, डेहरा, मही, बरखेड़ा, वैर, भुसावर, सांथा, खावदा को पावन कर नया गाँव होते हुए फाजिलाबाद पधारे। यहाँ पर कुन्दनमल जी, प्यारेलाल जी, प्रभुदयाल जी, रामदेव जी खावदा और रामजीलाल जी ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। यहाँ से विहार कर पूज्य प्रवर ने हिण्डौन, कजानीपुरा, रायपुर, वजीरपुर, सेवाग्राम, गंगापुर को पावन किया। फाल्गुनी पूर्णिमा पर आप गंगापुर विराजे। यहाँ आपकी प्रेरणा से श्री प्रकाशचन्दजी भागचन्द जी के संयोजकत्व में स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन सम्पन्न हुआ। तदुपरान्त आप मच्छीपुर,वाटोदा, बेहतेड़, चकेरी, श्यामपुरा, कुण्डेरा पधारे, जहाँ पंडित जगन्नाथजी ज्योतिषी से ज्योतिष पर विचार-विमर्श किया। पण्डित जी ने आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर संस्कृत में एक पद्य समर्पित किया –

चातुर्यं चतुराननस्य निभृतं गाम्भीर्यमम्भोनिधे
रौदार्यं विबुधद्रुमस्य मधुरां वाचं च वाचस्पतेः।
धैर्यं धर्मसुतस्य शर्म सकलं देवाधिपस्याहरत्।
धीमान् ख्यातनयः सदा सविनयः श्रीहस्तिमल्लः सुधीः॥

यहाँ से चैत्रकृष्णा अमावस्या को आप सवाईमाधोपुर पधारे। संवत् २०३१ का शुभागमन सवाई माधोपुर में हुआ।

• सवाईमाधोपुर में पोरवाल समाज की जागृति

सवाईमाधोपुर में आपके आगमन से वहाँ के पोरवाल समाज में जागृति की लहर आई। फलस्वरूप संगठित होकर घर-घर में नियमित सामूहिक प्रार्थना, स्वाध्याय एवं सामायिक की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। ५० श्रावक स्वाध्याय-संघ के सदस्य बने, जिनमें से अधिकांश बाहरी क्षेत्रों में जाकर धर्माराधन कराने में सक्षम थे। करीब २० भाई-बहन १२ व्रती बने। महावीर जयन्ती के अवसर पर त्याग, तप और नियमों की झड़ी लग गई। वीरवाल, खटीक, गूजर, कोली आदि जातियों के लोगों ने शराब, मांस-सेवन एवं जीवहिंसा न करने के संकल्प लिए। यहाँ से विहार कर आलनपुर, कुस्तला, चोरू, बिलोता, खातोली, समिधि, जरखोदा, देई, बांसी, राणीपुरा, दबलाणा होते हुए आप बूंदी पधारे। यहाँ कोटा, इन्दौर, सवाईमाधोपुर तथा सौराष्ट्र के श्री संघ द्वारा क्षेत्र स्पर्शन की विनति की गई। यहां डॉ. कल्याणमलजी लोढा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया तथा आगम साहित्य सेवा हेतु श्री गजसिंह जी राठौड़ का अभिनन्दन किया गया। चरितनायक ने कोटा प्रवास काल में संकल्प व्यक्त किया - 'जहाँ चातुर्मास में निःशुल्क सामूहिक भोजन की चौका पद्धति होगी, वहाँ मैं चातुर्मास नहीं करूँगा।" यह आचार्य प्रवर का युगानुकूल क्रान्तिकारी कदम था।

आप दूरदर्शी एवं चिन्तनशील साधक थे। आपने समझ लिया था कि अब आवागमन के साधनों की उपलब्धता बढ़ती जा रही है। अतः निःशुल्क चौका प्रथा के रहते छोटे-छोटे क्षेत्र अपने यहाँ चातुर्मास कराने का साहस कैसे जुटा पायेंगे। करुणा सिन्धु पोरवाल क्षेत्र को वीतरागवाणी से उपकृत करना चाहते थे, अतः उनका संकल्प लोगों को अटपटा लगते हुए भी यह एक क्रान्तिकारी एवं समुचित कदम था। आचार्यप्रवर के इस संकल्प का परिणाम तत्काल ही सामने आया और सवाईमाधोपुर के श्रद्धालु-भक्तों की मनोकामना पूर्ण हो गई। चातुर्मासार्थ उनकी भावभरी विनति स्वीकृत हो गई।

कोटा छावनी में महासती छगनकुंवर जी ठाणा १२ से वंदन हेतु पधारीं। पंजाबी महासती श्री

कौशल्याकुंवरजी आदि ठाणा ४, महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा. ठाणा ४ ने भी दर्शन-वन्दन आदि की सेवा का लाभ लिया। प्रवचन से प्रभावित हो त्रिलोकजी कोठारी ने २५० शराब-त्यागी एवं २५० शाकाहारी बनाने की प्रतिज्ञा की। महावीरजी भण्डारी, चाँदमलजी बोथरा, राजमलजी पोरवाल आदि अनेक श्रावकों ने सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया।

अपने जीवन का निर्माण करने के प्रति आप सदैव सजग रहते थे। उसमें कभी विराम का अवकाश ही नहीं था। संयम जीवन के ५३ वर्ष व्यतीत हो जाने पर आपने एक दिन विचार किया–"परमात्मा का जो शुद्ध-बुद्ध वीतरागतामय स्वभाव है वही मेरा स्वभाव है। कर्मों के आवरण ने जो मेरे स्वभाव को ढक रखा है, दृढ संकल्प के साथ मुझे आवरण दूर कर अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करना है। काम-क्रोध-लोभ-मोह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं दृढता से निश्चय करता हूँ कि कैसी भी परिस्थिति हो, मुझे काम-क्रोध-लोभादि के अधीन नहीं होना है। जब भी प्रसंग आयेगा, मैं दृढता से विकारों का मुकाबला करूँगा।" गुरुदेव का यह संकल्प उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। उस शुद्ध स्वर्णमय चारित्र में मणि का प्रकाश मिल गया।

• सवाईमाधोपुर चातुर्मास (संवत् २०३१)

कोटा से केशोराय पाटन, कापरेन, लबान, लाखेरी, इन्द्रगढ़, बाबई, बगावदा, पचाला,चौथ का बरवाड़ा, बिलोपा,बजरिया, आलनपुर होते हुए संवत् २०३१ के ५४ वें चातुर्मासार्थ आप सन्तमण्डल के साथ ठाणा ८ से आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को सवाईमाधोपुर पधारे। बड़े महापुरुषों के चातुर्मास का सवाईमाधोपुर क्षेत्र में यह क्वचित् प्रथम संयोग था। संतों की सुविहित परम्परा के शुद्ध साध्वाचार की समाचारी से बहुत कम लोग परिचित थे, लोगों के धर्मध्यान के लिये अपेक्षित स्थान भी उपलब्ध नहीं था। सामान्यत: क्षेत्र की स्थिति साधारण थी। कोई कल्पना ही नहीं कर सकता था कि लक्षाधिक भक्तों के पूज्य, जन-जन के आराध्य, देश के कोने कोने में जिनवाणी की पावन गंगा प्रवाहित करने वाले भगीरथ, सामायिक स्वाध्याय के संदेशवाहक ही नहीं वरन् पर्याय, ज्ञानक्रिया के उत्कृष्ट आराधक, प्रबल अतिशय के धनी, युगमनीषी युग प्रभावक आचार्य भगवन्त के चातुर्मास का लाभ छोटे से क्षेत्र सवाईमाधोपुर को मिल सकता है ? यहाँ के सीधे सरल सामान्य लोग भी मन ही मन सोचते रहते, व्यवस्था होगी, पूज्यपाद के दर्शनार्थ पधारने वाले सहस्रों श्रद्धालु भक्तों का स्वधर्मी वात्सल्य हम 'सुदामा के चावल' के माफिक किस प्रकार कर पायेंगे।

पूज्यपाद बस स्टेण्ड के पास बंसल भवन में विराजे। प्रवचन योग्य कोई स्थान नहीं था। भक्तगण ने बंसलभवन के बाहर ही पाट लगाकर प्रवचन की व्यवस्था की। चार माह तक का यह दृश्य सहज ही पूर्वाचार्यों द्वारा दुकानों में किये गये वर्षावासों की स्मृति दिला देता था। इसीलिये तो स्थानकवासी परम्परा के महापुरुषों को 'ढूंढिया' संबोधन से संबोधित किया गया है।

महापुरुषों की कृपा जिस पर हो जाय, उसका भाग्योदय होना सहज स्वाभाविक है। भला 'पारस' का स्पर्श कर लोहा 'स्वर्ण' बनने से कब रुका है। महापुरुषों की चरण रज जिस धरती पर पड़ जाय वह क्षेत्र साक्षात् प्रत्यक्ष तीर्थधाम हो जाता है। कहना न होगा, पूज्यप्रवर के इस चातुर्मास ने सवाईमाधोपुर क्षेत्र का कायाकल्प कर दिया। जिस क्षेत्र में कम ही लोग सामायिक करने वाले मिलते, वहां सैकडों स्वाध्यायी तैयार हो गये, जो आज भी भारत के कोने-कोने में पर्युषण के अवसर पर अपनी सेवाएँ प्रदान कर 'गुरु हस्ती' के संदेश स्वाध्याय व सामायिक का उद्घोष करते हुए जिनशासन की महती प्रभावना कर रहे हैं। आज सवाईमाधोपुर क्षेत्र आर्यभूमि भारत के धार्मिक

नक्शे में प्रमुख क्षेत्र के रूप में अंकित है।

इस चातुर्मास के कारण सवाईमाधोपुर क्षेत्र के बन्धु बाहर के भक्तों के परिचय व सम्पर्क में भी आये। आज यह क्षेत्र आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा व धर्माराधन सभी क्षेत्रो में आगे बढा है।

आचार्य श्री का सवाईमाधोपुर चातुर्मास पोरवाल क्षेत्र के लिए वरदान सिद्ध हुआ। यहाँ पर २ स्वाध्यायी शिविर लगे, ५१ स्वाध्यायी बने, लगभग २० दम्पतियों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया तथा अनेक बारह व्रती बने। पचासों व्यक्तियों ने एक वर्ष का शीलव्रत स्वीकार कर अपने जीवन को संयम की ओर मोड़ा। इस चातुर्मास से इस क्षेत्र में न केवल धार्मिक जागृति आई , अपितु सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी सुधार हुआ। अनेक अजैन बन्धुओं ने भी चातुर्मास का लाभ उठाया। निकटवर्ती ग्राम-नगरों एवं पल्लीवाल क्षेत्र के बन्धु भी लाभान्वित हुए। इस पंचमासी वर्षावास में आचार्यश्री ने साम्वत्सरिक पर्व को सभी जैन सम्प्रदायों द्वारा एक दिन मनाये जाने हेतु अपनी भावना अभिव्यक्त की तथा समाज में एकता की दृष्टि से उत्सर्ग करने का आह्वान भी किया। जयन्ती भाई, हिम्मत भाई, आनन्दराज जी, वृद्धिचन्दजी आदि के नेतृत्व में बम्बई से एक शिष्टमण्डल भी उपस्थित हुआ जो ज्ञान क्रिया के समन्वय इन महायोगी के पावन दर्शन व शासन हितकारी विचारों से प्रभावित हुआ। आचार्यप्रवर के सान्निध्य में प्रथम भाद्रपद में सम्वत्सरी पर्व मनाया गया तथा दूसरे भाद्रपद में साधना- सप्ताह मनाया गया। इसी चातुर्मास में देशभर में भ. महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा था। (जिसकी उपलब्धियों का संकेत पहले संवत् २०३० के जयपुर चातुर्मास के विवरण के साथ में किया गया है।) आचार्यप्रवर ने इस अवसर पर साध्वीप्रमुखा श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया तथा महासती श्री जसकंवरजी म.सा. को शासन प्रभाविका के पद से अलंकृत किया।

वीर निर्वाण दिवस पर प्रवचन में आपने फरमाया कि वर्तमान में भगवान महावीर के उपदेशों को अपनाने की महती आवश्यकता है। अपरिग्रह पर विचार प्रकट करते हुए आपने उद्बोधन दिया –**"पशु वनों में मुक्त मन से मिलकर खाते-पीते हैं, अधिकार नहीं जताते, वैसे ही मानव बिना अधिकार एवं ममता के रहे तो कोई दुःख नहीं हो।"**

आचार्य श्री को अपने नाम, प्रशंसा आदि से दूर रहना ही प्रिय था। आपके कितने ही लेख जिनवाणी में पूर्व में 'बटुक' के नाम से प्रकाशित होते रहे। इस चातुर्मास का यह भी एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जाएगा, जब आपने यह घोषणा की कि भविष्य में आपके नाम के पूर्व १००८ नहीं लगाया जाए। तीर्थङ्करों में १००८ गुण होने के कारण उनके पूर्व ही यह संख्या लगाना उचित है। आपने ने फरमाया कि साधु तो षट्काय प्रतिपालक होता है। इससे बढ़कर उसके लिए और क्या विशेषण हो सकता है ? कोई नहीं।

चातुर्मासकाल में राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री भगवती प्रसादजी बेरी, भरतपुर के सेशन जज श्री जसराज जी चौपड़ा, राज्य के शिक्षामन्त्री श्री फारुख हुसैन आदि ने आचार्य श्री के दर्शन कर प्रमोद का अनुभव किया। यादव जी, दरडाजी एवं मुंसिफ जज ने सप्त व्यसनों का त्याग किया। ज्ञानाराधन, तप-आराधन आदि के साथ गुरुदेव का लेखन कार्य भी प्रगति पथ पर चलता रहा। बहनों ने भारी मूल्य के कपड़े एवं जेवर पहनकर व्याख्यान में आने का त्याग किया। धर्म की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए आपने फरमाया – **"धर्म केवल स्थानक की वस्तु नहीं, वह जीवन-व्यवहार के हर क्षेत्र से जुड़ा हुआ होना चाहिए। धर्म को जीवन की प्रयोगशाला में लाना चाहिए। जिस प्रकार रक्त सारे शरीर में व्याप्त न रहे, केवल किसी एक अंग – हाथ, पैर या**

मस्तिष्क में ही केन्द्रित रहे तो शरीर के अन्य अंग रक्त के अभाव में निष्प्राण हो जायेंगे। इसी प्रकार धर्म की सार्थकता या उपयोगिता जीवन के हर अंग, हर व्यवहार में प्रवाही रहने में ही है। प्रवाही धर्म जीवन में उसी प्रकार तेजस्विता लाता है जिस प्रकार प्रवाही रक्त तन में तेजस्विता लाता है।"

इस चातुर्मास काल में लगभग एक माह आपने आलनपुर के स्थानक में विराजकर साधना की । यहाँ अन्नाजी आदि हरिजन बन्धुओं , मोहनजी गूजर, सीता शर्मा आदि ने सप्तव्यसन, होटल गमन, मद्यपान, प्याज एवं अण्डा सेवन आदि का यथेच्छ त्याग किया। कई भाइयों ने चातुर्मास में मद्य-मांस के त्यागी बनाने के संकल्प लिए। वीर निर्वाण दिवस पर उपवास, दयाव्रत एवं मौन सामायिक का आराधन हुआ। कार्तिक शुक्ला एकम को २५ व्यक्तियों ने सामूहिक रूप से एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्यव्रत का नियम लिया।

आप समागतों को नियम दिलाकर उनका जीवन-निर्माण करने के प्रति भी सदैव जागरूक रहे। आपने जीवन-निर्माण के लिए जो नियम प्रस्तावित किए, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

१. प्रातः एक प्रहर दिन तक क्रोध नहीं करना।

२. परस्पर बातचीत में सामने वाले को जोश आवे तब बात को आगे के लिए स्थगित कर देना।

३. किसी भी साथी की पीछे से निन्दा नहीं करना।

४. किसी भी संस्था या सभा को वचन देकर पार निभाना।

५. एक घण्टा मौन का अभ्यास करना।

६. प्रतिदिन १५ मिनट 'ॐ अर्हम्' या 'सोऽहम्' का ध्यान करना।

७. कम से कम १२ बार अरिहन्त को वन्दन करना।

८. अपने साथी स्वाध्यायी में बन्धुभाव रखना।

सवाईमाधोपुर का ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य श्री मुनिमंडल सहित बजरिया पधारे, जहाँ कई खटीकों ने मांस-सेवन का त्याग किया। आबाल ब्रह्मव्रती महापुरुष के पदार्पण एवं अपने निवास पर विराजने की खुशी में श्रद्धाभिभूत भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी गुलाबसिंह जी दरडा ने एक वर्ष के शील का नियम स्वीकार कर अपनी श्रद्धाभक्ति अभिव्यक्त की। वहाँ से करेला, चौथ का बरवाड़ा, पांवडेढ़ा होते हुए आप सिवाड़ पधारे। उल्लेखनीय है कि विभिन्न ग्रामों में २५ चमार घरानों ने मांस-मदिरा का त्याग किया, विभिन्न जातियों के विभिन्न लोगों में आपसी मनमुटाव का शमन हुआ तथा शीलव्रत के नियम लिए गए।

• जयपुर में तप-महोत्सव

परम पूज्य गुरुदेव का विहार मालव भूमि की ओर होने की संभावना थी। इधर जयपुर में महातपस्विनी सुश्राविका श्रीमती इचरजकंवर जी लुणावत की दीर्घ तपस्या चल रही थी। उनका दृढ संकल्प था कि परम पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रत्याख्यान लेकर ही वे अपनी दीर्घ तपस्या का पारणक करेंगी। जयपुर संघ व लुणावत परिवार ने भावभरी विनति व महातपस्विनी बहिन का संकल्प भगवन्त के चरणों में प्रस्तुत किया।

तपस्विनी बहिन की भावना का समादर करते हुए आचार्यप्रवर का विहार जयपुर की ओर हुआ। ग्रामानुग्राम विहार करते हुये आपका जयपुर पदार्पण हुआ।

बहिन इचरजकंवर जी की १६५ दिवसीय दीर्घ तपस्या का पूर सन्निकट था । जयपुर संघ तप के इस महा आयोजन को विराट् रूप देने को उत्सुक था। इस दिन का प्रवचन जयपुर के रामलीला मैदान में था, प्रवचन सभा में अनेकों ग्राम नगरों के भाई-बहिन तप का अनुमोदन करने हेतु उपस्थित थे। भारत सरकार के तत्कालीन खाद्य मंत्री श्री जगजीवन राम राज्य के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी, वित्तमंत्री चन्दनमल वैद आदि राजनेता भी उपस्थित थे।

परम पूज्य गुरुदेव ने तप का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए राजनेताओं एवं जन समुदाय में तप की प्रेरणा की। अपने विचार व्यक्त करते हुये आपने फरमाया कि देश के स्वतंत्रता संग्राम में गांधी के तप की महनीय भूमिका रही है, आज के राजनेताओं को भी इस बात को समझना चाहिये। हितकर पथ्य श्री जगजीवनराम को मित व इष्ट नहीं लगा एवं वे अपने भाषण में अति कर गये। भक्त समुदाय की भावनाएं आहत थीं, पर क्षमा आदि यतिधर्म के आराधक महासंत ने इसे सहज रूप में लिया और ध्यान का समय होते ही वे अपने दैनन्दिन नियम के अनुसार ध्यान-साधना में निरत हो गये।

पश्चात् लाल भवन पधारे । प्रबल उत्साही युवा भक्त श्री विमल चन्दजी डागा, जयपुर ने गुरुदेव के चरणों में निवेदन किया –"भगवन् ! आज तो तीसरा नेत्र खोल देते।" क्षमा सागर, संयम साधक का त्वरित प्रत्युत्तर था– "भोलिया ! तूने बैठे-बैठे ही पंचेन्द्रिय जीव की हत्या का पाप मोल ले लिया। करना तो दूर, मेरे मन में भी ऐसा ख्याल आ जाता तो मेरी साधुता ही चली जाती।"

आपके दर्शन पाकर तथा आपसे वार्ता कर मंत्रीगण, न्यायाधिपति, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि,लेखक, प्रशासनिक अधिकारी, प्रोफेसर, चिकित्सक, वकील, उद्योगपति, व्यापारी आदि लक्ष्मी तथा सरस्वती के प्रतीक अपने को गौरवान्वित अनुभव करते थे। जनसाधारण भी आपसे प्रभावित था।

आचार्य श्री विहार क्रम में ठाणा ७ के साथ दूदू, हरसोली, पडासोली, डीडवाना, किशनगढ़ मदनगंज आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आप ३ फरवरी १९७५ को अजमेर पधारे, जहाँ १३ फरवरी को महावीर भवन पाण्डाल में आपश्री की दीक्षा जयन्ती मनायी गयी। जिलाधीश रणजीतसिंह जी कूमट ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हमें इस आध्यात्मिक हीरे से आध्यात्मिकता का प्रकाश प्राप्त कर अपने हृदय में स्वाध्याय की ज्योति जगानी चाहिए। १६ फरवरी को वयोवृद्ध प्रवर्तक श्री हगामीलालजी म.सा. के साथ स्वामीजी श्री पन्नालालजी म.सा. की पुण्यतिथि एवं आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की दीक्षा तिथि पर संयुक्त प्रवचन हुआ। यहाँ से केसरगंज, तबीजी, बिडगच्यावास होते हुए लीड़ी, खरवा, ब्यावर, बर, निमाज, जैतारण, बिलाड़ा, भावी, पीपाड़, कोसाणा, मादलिया, रतकूड़िया होते हुए आप चैत्रशुक्ला पंचमी को भोपालगढ़ पधारे। भोपालगढ़वासियों ने महावीर जयन्ती हेतु भावभरी विनति गुरुचरणों में प्रस्तुत की। चरितनायक ने पाँच कार्यों के संकल्प की भावना के आधार पर स्वीकृति प्रदान की –१. मौन सामायिक २. दयाव्रत ३ व्यसन-त्याग ४. अहिंसा प्रचार ५. शिक्षण का उचित संकल्प। महावीर जयन्ती के अनन्तर आप बड़ा अरटिया, बुचेटी, दईकड़ा बनाड़ होते हुए जोधपुर पधारे।

• जोधपुर में दीक्षा-प्रसङ्ग

जोधपुर के सिंहपोल में अक्षय तृतीया के अवसर पर वर्षीतप के १७ पारणे हुए तथा न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमलजी लोढा एवं प्रियगायक भण्डारी दौलत रूपचन्दजी ने सदार आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। आपश्री के सान्निध्य में भींवराज जी कर्णावट भोपालगढ़ की वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को और श्री ज्ञानराज जी

अब्बाणी (सुपुत्र श्री गुलराज जी एवं रतनकंवर जी अब्बाणी) जोधपुर तथा श्री महेन्द्र जी लोढा (सुपुत्र श्री पारसमलजी एवं सोहनकंवर जी लोढा) महामन्दिर जोधपुर की भागवती दीक्षा वैशाख शुक्ला चतुर्दशी संवत् २०३२ तदनुसार २४ मई १९७५ को स्टेडियम मैदान में सम्पन्न हुई। स्थविर सौभागमुनि जी एवं श्रुतधर प्रकाशमुनि जी आदि ठाणा दीक्षा में पधारे। महासती सुन्दरकँवरजी म., उमरावकंवरजी 'अर्चना', बिलमकंवरजी आदि सती-मंडल भी दीक्षा के अवसर पर उपस्थित हुआ। समस्त कत्लखाने बन्द रहे। यह दिवस अहिंसा दिवस के रूप में मनाया गया। आचार्यप्रवर ने फरमाया– **"दीक्षा आत्मा को अन्तरात्मा और फिर परमात्मा बनाने का साधन है। आत्मा पर राग, द्वेष एवं मोह का आवरण आया हुआ है। इसी आवरण के कारण आत्मा का असली स्वरूप दिखाई नहीं देता। दीक्षा इसी आवरण को हटाने का साधन है।"**

• ब्यावर चातुर्मास (संवत् २०३२)

यहाँ से ज्येष्ठ कृष्णा १२ को विहार कर फिटकासनी होते हुए चरितनायक काकेलाव पधारे, जहाँ गंगाविष्णु सरपंच, लालचन्दजी माहेश्वरी आदि ने धूम्रपान का त्याग किया। फिर पालासनी, भेटूंदा, सांवलता मोटा, भाखरी, दूधिया बगड़ी, कानजी मंदिर होते हुए आप पाली विराजे। आषाढ कृष्णा एकम संवत् २०३२ को महासती छोटे किशनकंवरजी का स्वर्गवास होने पर श्रद्धांजलि दी गई। फिर जाडन, धाकड़ी, सोजत सिटी, सोजत रोड़, सांडिया , चंडावल, पीपलिया, झूठा, कुशालपुरा, निमाज , बर, सेंदडा आदि में कइयों को सामायिक स्वाध्याय का नियम दिलाते, अनेकों से कुव्यसन छुड़ाते, रात्रि भोजन न करने के महत्त्व को समझाते, अभक्ष्य भक्षण का निषेध कराते आप ग्रामानुग्राम विहार करते संवत् २०३२ के चातुर्मास हेतु ब्यावर पधारे, जहाँ तपश्चर्या के कीर्तिमान स्थापित हुए। विरक्त गौतम जी आबड पालासनी से ही ज्ञानाराधन हेतु आचार्य श्री के चरणों में साथ थे। महासती सायरकंवरजी, महासती मैनासुन्दरीजी आदि ठाणा ५ का चातुर्मास भी यहीं हुआ। आचार्य पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. की पुण्यतिथि पर ५०० आयंबिल हुए तथा आयम्बिल साधना का क्रम अनवरत चलता रहा। सप्त दिवसीय स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। 'स्वाध्याय संघ' तथा 'श्री महावीर जैन वाचनालय' का शुभारम्भ हुआ। स्वाध्याय संघ जोधपुर के सभी स्वाध्यायियों का पहली बार त्रिदिवसीय सम्मेलन रखा गया, जिसमें आचार्यप्रवर ने श्रावक समाज में स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवृद्धि कर भगवान् महावीर के पावन सन्देश को घर-घर पहुँचाने की पावन प्रेरणा की। स्वाध्याय संघ के तत्कालीन संयोजक श्री संपतराजजी डोशी ने सम्मेलन में बताया कि संवत् २००२ में तीन क्षेत्रों में सेवा देने वाले ५-६ स्वाध्यायियों से प्रारम्भ स्वाध्याय संघ में सम्प्रति ४८५ स्वाध्यायी हैं तथा ८८ स्थानों पर १८८ स्वाध्यायियों ने पर्युषण-सेवा दी है। स्वाध्याय संघ की इस प्रगति पर सबने प्रमोद का अनुभव किया। इस अवसर पर स्वाध्यायियों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने निम्न लिखित व्रत-नियम धारण किए–

१. शादी में दहेज, टीका आदि का ठहराव नहीं करेंगे और दहेज उत्पीड़न नहीं करेंगे।

२. सप्त कुव्यवसन तथा बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू सेवन का त्याग रखेंगे।

३. दीपावली, उत्सवों एवं समारोहों में आतिशबाजी नहीं करेंगे।

४. होली के अवसर पर अपशब्दोच्चारण तथा कीचड़ आदि का प्रयोग नहीं करेंगे।

५. बारात में नृत्य नहीं करेंगे।

६. प्रतिदिन २० मिनट स्वाध्याय करेंगे।

इसके अतिरिक्त तपस्या पर आडम्बर और लेन-देन न करने तथा मृत्यु भोज न करने पर भी बल दिया गया। बरेली के नोहरे में 'श्री वर्धमान जैन रत्न पुस्तकालय' का शुभारम्भ हुआ। चातुर्मास समापन अवसर पर स्वाध्याय संघ के संयोजक श्री सम्पतराज जी डोसी का अभिनंदन किया गया।

अभी तक चतुर्विध संघ की सार सम्हाल व संघ सदस्यों से सम्पर्क का कार्यभार सम्यग् ज्ञान प्रचारक मंडल द्वारा सम्पादित किया जा रहा था। मंडल पर साहित्य प्रकाशन, स्वाध्याय संघ के संचालन आदि अन्य महनीय कार्यों का दायित्व भी था। अनेक सुज्ञ एवं संगठन प्रेमी श्रावकों की लम्बे समय से भावना थी कि संघ श्रावकों का औपचारिक संगठन कायम किया जाकर संघ सदस्यों के संगठन, समन्वय व उनसे सतत सम्पर्क का कार्य व्यवस्थित रूप से आगे बढाया जाय। इस चातुर्मास काल में ब्यावर में विभिन्न क्षेत्रों के श्रावकों का सम्मलेन हुआ एवं सर्वसम्मति से 'अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ' के नाम से श्रावक संघ का औपचारिक संगठन कायम किया गया। न्यायमूर्ति श्री सोहननाथ जी मोदी को संस्थापक अध्यक्ष मनोनीत किया गया और नवयुवक ज्ञानेन्द्रजी बाफना को मंत्री पद का दायित्व सौंपा गया। संघ संगठन कायम करने में भीलवाड़ा निवासी दृढ संघनिष्ठ सुश्रावक श्री पांचूलालजी गांधी व जयपुर निवासी संगठनप्रेमी श्रावक श्री चन्द्र सिंहजी बोथरा की महनीय भूमिका थी।

• बाड़मेर की ओर

ब्यावर से विहार कर आप जैतारण, सोजत, राणावास, नाडोल होते सादड़ी, फालना, सांडेराव, तखतगढ़ को पावन करते हुए आहोर पधारे। आहोर तथा गोदन में आपने प्राचीन हस्तलिखित भण्डारों का अवलोकन किया। आपके जालोर पदार्पण पर शिक्षाविदों, न्यायविदों तथा विज्ञानविदों के साथ धर्म-चर्चा का चिरस्थायी प्रभाव रहा। यहाँ से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आप सिवाना पधारे, जहाँ धार्मिक पाठशाला का शुभारम्भ हुआ, स्वाध्याय की प्रवृत्ति अभिवृद्ध हुई। यहाँ से कुशीप, थापण, आसाढा, नाकोडा, सिणली, डांडाली, सणपासरनु, रावतसर आदि को पावन कर बाड़मेर पधारे। यहाँ पर श्री मधुकरजी म. एवं श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल' के साथ मधुर मिलन हुआ।

• माणकमुनि जी का संथारा

पूज्यवर्य का विहार क्रम बाड़मेर की ओर था। इधर जोधपुर में विराजित भजनानन्दी श्री माणकमुनि जी महाराज साहब ने संथारा स्वीकार कर लिया।

इधर संथारा दिन प्रतिदिन आगे बढ रहा था, उधर गुरुदेव के चरण बाड़मेर की ओर बढ़ रहे थे। संथारास्थ
मुनिवर्य की भावना बलवती थी, मन में प्रबल विश्वास था कि जीवन की इस अंतिम बेला व अंतिम मनोरथ की
पूर्णाहुति में जीवन के अनन्य उपकारी संयमदाता महनीय गुरुदेव दर्शन व साज देने एवं पाथेय प्रदान करने अवश्य
पधारेंगे। जन-मानस में भी यह चर्चा थी कि गुरुदेव के बाड़मेर की ओर बढ़ते चरण इस बात के इंगित हैं कि संथारा
अभी लम्बा चलना है। संथारा आगे बढ़ रहा था, स्वास्थ्य में निरन्तर सुधार हो रहा था, आत्मबल बढ़ रहा था।

संथारा-ग्रहण के पूर्व जो साधक भयंकर क्षुधारोग से त्रस्त था, भूख जिसे असह्य थी, आज अपने अंतिम मनोरथ की
साधना में शांत सहज लेटे आत्मभाव में लीन था। मानो जीवन की सभी इच्छाएँ आकांक्षाएँ पूर्ण हो गई हों, आत्म-विजय
का यह अपने आप में अद्वितीय उदाहरण था। महामुनि के चेहरे पर अपूर्व तेज था। दर्शनार्थी ही नहीं अन्य धर्मों के साधक,
फक्कड़ भी समाधिस्थ महात्मा को देखकर आश्चर्याभिभूत रह जाते। बाड़मेर पधारने के पश्चात् पूज्य गुरुदेव का पुनः
जोधपुर की ओर विहार हुआ और उग्र विहार कर २८ फरवरी १९७६ को गुरु भगवन्त जोधपुर पधारे।

गुरु से पाथेय पाकर शिष्य आत्म-विकास की ओर सतत गतिमान था। विभिन्न ग्राम नगरों से दर्शनार्थी उपस्थित हो रहे थे। यही नहीं विभिन्न धर्मावलम्बी भी जीवित समाधि का यह साक्षात् स्वरूप देखकर आश्चर्याभिभूत थे। मरणविजेता महासाधक से साता पूछने पर एक ही प्रत्युत्तर था-आनन्द है।

३५वें दिन फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को प्रशान्तात्मा श्री माणकमुनि जी म.सा. का यह मनोरथ सीझा और उनकी आत्मा इस नश्वर मानव देह का त्याग कर देवलोक गमन कर गई। दूसरे दिन उनके पार्थिव देह की अंतिम यात्रा में जोधपुर व अन्य ग्राम-नगरों के हजारों लोग उपस्थित थे। अंतिम यात्रा के मार्ग में दोनों ओर हजारों लोग पंक्तिबद्ध श्रद्धांजलि समर्पित करने हेतु उपस्थित थे। जोधपुरवासियों की स्मृति में यह अनूठी अंतिम यात्रा थी।

ऋषभदेव जयन्ती के अवसर पर आपने शीतला माता की पूजा के बहाने ठंडे और बासी भोजन सेवन की प्रथा में निहित अज्ञान के मर्म को उजागर किया। आपने फरमाया –"प्राचीन काल में लोग फल-फूलों पर निर्भर थे। उन लोगों के गरम खाने का तो प्रश्न ही नहीं था, अतः महिलाओं को शीतला माता के प्रकोप का झूठा बहम दिल से निकाल देना चाहिए।" केन्द्रीय कारागार में एक दिन आप प्रवचन हेतु पधारे। कैदियों को देखकर आप द्रवित हो उठे। हृदय करुणा से आप्लावित हो गया। जैन दर्शन के कर्म सिद्धान्त का स्मरण हो आया। आपने प्रवचन में फरमाया "बुराइयों के फल से बचने का उपाय है – जीवन में सदाचार को अपनाना। दूसरों के साथ हम अच्छा आचरण करके अच्छे बन सकते हैं। कृतकर्मों का परिणाम सबको भोगना पड़ता है, किन्तु सहज रूप से कर्मों का परिणाम भोगने वाला व्यक्ति कर्मों के बोझ से हलका होकर भविष्य को सुधार लेता है।"

• भोपालगढ में दीक्षाएँ

यहाँ से भोपालगढ़ पधार कर आपने तीन दीक्षार्थिनी बहनों की दीक्षा के अवसर पर संयम और साधना मार्ग के महत्त्व तथा साधक जीवन के कष्टों को धैर्य, साहस और समभाव से सहन करने के मर्म को उद्घाटित किया। श्रीमती सज्जनकंवर खींवसरा जोधपुर, कु. सोहनकंवर कांकरिया, भोपालगढ़ तथा कु. मंजु चंगेरिया अजमेर की दीक्षाविधि चैत्र शुक्ला नवमी वि. संवत् २०३३ दिनांक ८ अप्रैल १९७६ को आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से सोल्लास सम्पन्न हुई। इस दीक्षा में १० सन्त मुनिराज तथा साध्वीप्रमुखा सुन्दर कंवर जी आदि १२ महासतियों का सान्निध्य प्राप्त था। दीक्षा प्रदान करते हुए आचार्यप्रवर ने फरमाया –"जीवनभर के लिए संयम ग्रहण करने वाली इन मुमुक्षुओं का अब कोई सांसारिक परिवार नहीं रहा। सारा साधु-साध्वी समाज ही अब इनका परिवार है। इन्हें संयममार्ग में आने वाले कष्टों को धैर्य और समभाव के साथ सहन करना होगा।" दीक्षित बहनों के नाम क्रमशः सरल कंवर जी, सौभाग्यवतीजी एवं मनोहरकंवर जी रखे गए।

भोपालगढ़ से आचार्य श्री २८ अप्रेल ७६ को पीपाड़ पधारे, जहाँ मानव सेवा और स्वधर्मी वात्सल्य के लिए पद्मश्री मोहनलाल जी चोरड़िया का, धार्मिक शिक्षण एवं समाज सेवा के लिए श्रीमती सज्जनजी बाई सा. (धर्मपत्नी श्री स्व. श्री जवाहरनाथ जी मोदी) तथा श्रीमती इन्द्रकँवर जी बाई सा. (धर्मपत्नी स्व. श्री चांदमल जी मेहता) जोधपुर का अभिनंदन किया गया। अक्षय तृतीया के इस प्रसंग पर ज्ञानगच्छीय महासती श्री भीका जी, सुमति कंवर जी ठाणा ७, श्री कानकंवरजी ठाणा ३, श्री लाड़कंवरजी ठाणा ४ एवं मुनि धर्मेशजी, गौतममुनिजी आदि ठाणा भी विराजमान थे। तदनन्तर आप रीयां, पालासणी होकर जोधपुर पधारे।

आपके जोधपुर प्रवास पर आपके सान्निध्य में २९ मई से १ जून १९७६ तक चार दिवसीय साधक शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री कन्हैयालालजी लोढ़ा, केवलमलजी लोढ़ा, डा. नरेन्द्र भानावत, श्री

चांदमलजी कर्नावट, श्री जसकरण जी डागा, श्री सम्पतराजजी डोसी जैसे १६ वरिष्ठ साधकों ने भाग लिया। आचार्य श्री ने साधना-पद्धति, साधना का महत्त्व, साधकों की तैयारी तथा योग्यता पर विशेष प्रवचन और प्रेरक उद्बोधन दिए। स्वाध्याय के साथ चरितनायक श्रावकों को साधना की श्रेष्ठता एवं उसमें निरन्तर अभिवृद्धि से जोड़ना चाहते थे। यह प्रयत्न उसी दिशा में प्रारम्भ हुआ।

• बालोतरा चातुर्मास (संवत् २०३३)

आचार्य श्री का ५६वां चातुर्मास संवत् २०३३ में बालोतरा में ठाणा ६ से हुआ। जनमेदिनी ने दर्शन तथा जिनवाणी का श्रवण कर अपने आपको धन्य किया। आचार्यप्रवर की प्रेरणा से बालोतरा की लूनी नदी में मछली मारना तथा कसाईखाना बंद रहा।

पर्युषण पर्व से कुछ दिनों पूर्व व्याख्यान में आचार्यप्रवर ने फरमाया कि यदि इस पर्व के पुनीत अवसर पर आठ दिनों तक अपना व्यापार, कारोबार, कमठा आदि आरम्भ का कार्य बन्द रखा जाए तो आपके समाज के लिए गौरव की बात होगी। इससे सहज ही आप आरम्भ परिग्रह से बच कर दया संवर आदि व्रताराधन से जुड़ कर अपने जीवन का निर्माण तो करेंगे ही, पर्वाराधन का सच्चा स्वरूप भी शासन प्रभावना का हेतु बनेगा तथा भावी पीढ़ी को भी धर्म के सम्मुख होने का सहज अवसर समुपलब्ध होगा।

इस संकेत का फल यह हुआ कि **संघ ने सर्व सम्मति से पर्युषण के आठ दिनों पर आरम्भ एवं व्यवसाय के कार्य बन्द रखने का निर्णय कर लिया। स्थानकवासी समाज के इस निर्णय से प्रभावित होकर तेरापंथी एवं मन्दिरमार्गी समाज का भी मन हुआ कि सम्पूर्ण ओसवाल जैन समाज में पर्युषण के दिनों में व्यापार एवं आरम्भ के कार्य बन्द रखे जावें तो अत्युत्तम रहे।** तीनों समाज ने मिलकर ओसवाल समाज को इसके लिए प्रार्थना पत्र दिया। यह योजना ओसवाल समाज की बैठक में सर्वसम्मति से पारित कर दी गई। इस प्रकार गुरुदेव का संकेत ऐसा सफल हुआ कि आज तक सम्पूर्ण जैन समाज के सदस्य पारस्परिक समन्वय से ८ या ९ दिनों के लिए पर्युषण में अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान एवं निर्माण कार्य बन्द रखते हैं।

अनेक प्रभावशाली लक्ष्मीपति दम्पतियों द्वारा आजीवन शीलव्रत ग्रहण करना, त्रिदिवसीय ध्यानयोग-साधना शिविर का आयोजन, श्री अखिल भारतवर्षीय महावीर जैन श्राविका समिति का द्वितीय अधिवेशन समारोह, नारी शिक्षा एवं नारियों में अंधविश्वास निवारण हेतु चेतना-जागृति कार्यक्रम बालोतरा चातुर्मास की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रहीं। प्रवचनों से प्रेरित होकर संपूर्ण जैन समाज ने पर्युषण पर्व के पावन दिनों में आरंभ समारंभ रूप व्यवसाय बंद रखने का निर्णय लिया, जो अब भी फेक्टरियों को बंद रखकर पालन किया जा रहा है। चातुर्मास समापन के अवसर पर जिलाधीश सज्जननाथ जी मोदी ने जैसलमेर पधारने की विनति की।

आत्म-नियन्ता आचार्य श्री यहाँ से विहार कर कनाना, पाडलू तथा समदड़ी पधारे। आप श्री के प्रभाव से तीनों गाँवों में व्याप्त विवाद एवं मन मुटाव दूर होकर परस्पर सौहार्द का वातावरण बना। निकटवर्ती क्षेत्रों में अपने संयम के आदर्श से जन-जीवन को मूक तथा मुखर साधना संदेश देते हुए आपश्री २४ दिसम्बर ७६ को पाली पधारे। स्थविर सौभागमुनिजी, श्रुतधर प्रकाशमुनि जी, उत्तम मुनि जी आदि ठाणा ४ अगवानी में सामने पधारे। यहाँ तपस्वीराज श्री चंपालालजी म. ठाणा ८ का सुराणा मार्केट स्थानक में मिलन हुआ। पौषशुक्ला चतुर्दशी को परमपूज्य चरितनायक के जन्मदिन पर तपस्वीराज पूज्य श्री चंपालालजी म.सा. ने 'हलाहल कलयुग मत जाणो रे बडे

बडे मुनिराज..' भजन द्वारा अपने भाव व्यक्त किये। वीर पुत्र पं. रत्न श्री घेवरचंदजी म.सा. ने अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति करते हुए 'बाल्येऽपि संयमरुचिं चतुरं' नामक संस्कृत श्लोक की रचना कर आपका गुणानुवाद किया।

इस अवसर पर उपाध्यायप्रवर श्री पुष्करमुनिजी म.सा.के शिष्य श्री रमेशमुनिजी शास्त्री ने आपके यशस्वी जीवन पर संस्कृत में अष्टक प्रेषित किया, जिसके कुछ पद्य इस प्रकार थे-

जगत्सु सन्तो बहवो महान्तः
परन्तु सन्तं महतां महान्तम्।
अहं वरेण्यं मुनिषूद्भटं तम्।
तपस्विनां हस्तिमल्लं स्तवीमि ॥१॥

पदे-पदे सत्यकथं सुतथ्यम्
निरन्तरं यस्य मुनेश्चरित्रम्।
समीक्ष्य सन्तोऽपि पुनर्नमन्ति
मुनिं तमाचार्यमहं ब्रवीमि ॥२॥

सुनिश्चितं मे मतमेतदेवम्
जिनप्रभोः शासनसद्मनीति।
ज्वलत्प्रभापूर्णविकासिदीपः
प्रकाशमायाति मुनीश एषः ॥३॥

भवादृशाः साधुषु धीरवीराः
समन्विताः स्युः यदि साधुसंघे।
परस्पराभाफलिते सुरत्ने
यथा तु शोभा रमते तदा वः ॥४॥

पाली से सोजत, बगडी, पीपलिया होते पूज्यपाद २८ दिसम्बर को निमाज पधारे। यहाँ महासती कंचन कंवर जी मोतीझरा की अस्वस्थता के कारण विराज रही थी। आचार्य श्री ने स्वयं पधार कर मंगलपाठ सुनाया। जैतारण में आपने प्रवचन में फरमाया – "आत्मा का धर्म एक है। संस्था भेद से धर्म भिन्न नहीं होता। वीतरागता की ओर बढाने वाला आचरण ही धर्म है। पानी को साफ करने के प्रकार भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही आत्म-शुद्धि के प्रकार अलग-अलग हो सकते हैं। मूल में जो आत्मशुद्धि की ओर विशेष अग्रसर करे वही प्रचार संस्था उपादेय है।" यहाँ से बिलाड़ा, पिचियाक, खेजरला, चिलराणी , पीपाड़, रीयां, चोढ़ा , पालासनी फरसकर आप जोधपुर पधारे, जहाँ यथासमय २ मार्च ७७ को दृढ़धर्मी सेवाभावी स्व. विजयमल जी कुम्भट की धर्मपत्नी राजुल बाई जी कुम्भट की दीक्षाविधि सम्पन्न हुई। नवदीक्षिता राजमती जी को महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की निश्रा में रखा गया। दीक्षा प्रसंग पर स्वामीजी ब्रजलालजी म., मिश्रीमल जी म. 'मधुकर' भी ठाणा ४ से पधारे।

कोसाणा में अक्षय तृतीया पर्व-प्रसंग पर निःस्वार्थ समाजसेवी दाऊलाल जी सारड़ा, न्यायाधीश श्री मगरूप चन्द जी भण्डारी, डा. बख्तावरमल जी मेहता एवं श्री मनोहरलाल जी चण्डालिया (अजमेर) का समाजसेवा के लिए अभिनंदन किया गया। यहाँ बरवाला (गुजरात) परम्परा के आचार्य श्री चम्पक मुनि जी म.सा. के शिष्य श्री सरदारचन्द जी म.सा., श्री तरुणमुनि जी एवं श्री सवाईमुनि जी से स्नेह वार्ता हुई। मरुधर केसरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी म.सा. की अस्वस्थता के समाचार प्राप्त हुए। आचार्य श्री उनकी सुखसाता की पृच्छा हेतु खवासपुरा

पधारे। यहाँ से गोटण, हरसोलाव होते हुए आपश्री आसावरी पधारे, जहाँ महासती श्री झणकार कंवर जी ने वन्दन-प्रवचन सेवा का लाभ लिया। यहाँ से आप नोखा, खजवाणा, नीमली, कुचेरा, मुंडवा होते हुए नागौर पधारे, जहाँ आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की १३२वीं पुण्यतिथि १३२ दया-पौषध के साथ मनायी गई। एक स्वाध्याय शिविर भी आयोजित हुआ।

• अजमेर चातुर्मास (संवत् २०३४)

नागौर में धर्मोद्योत कर खजवाना, मेड़ता रोड़, मेड़तासिटी, जसनगर (केकीन), गोविन्दगढ़ को पदरज एवं वाग्वैभव से समृद्ध करते हुए आपका अजमेर में संवत् २०३४ के चातुर्मासार्थ शुभागमन हुआ। यह आपश्री का सत्तावनवां चातुर्मास था। आपके गुरु पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी की म. पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में आपश्री ने देव और गुणी आचार्य गुरु के स्वरूप का प्रतिपादन कर तीर्थंकर महावीर में दोनों रूपों की विद्यमानता बतायी तथा वर्तमान में हमारे देव प्रत्यक्ष नहीं होने से सद्गुरु की आराधना को ही मानव के लिए कल्याणकारी बताया। क्योंकि निर्दोष मार्ग का पथिक तथा प्रणेता सद्गुरु ही होता है।

पर्युषण में आपके उद्बोधन विषय-विकारों का शमन कराने वाले, तप और संयम की प्रेरणा करने वाले तथा जीवन में अध्यात्म आलोक को प्रज्वलित करने वाले थे। जिससे देश-देशान्तरवर्ती श्रावकों के जीवन को सही दिशा मिली और उनके चिन्तन का दृष्टिकोण निर्मल हुआ। यहाँ पहली बार बहनों एवं भाइयों में दया-पौषध की अलग-अलग नवरंगी की आराधना हुई। २० अक्टूबर १९७७ से षड्-दिवसीय स्वाध्याय-साधना शिविर प्रारम्भ हुआ जिसमें ४० स्वाध्यायी साधकों ने भाग लिया। शिविर में विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, अधिवक्ता, शिक्षक एवं व्यापारियों ने भाग लेकर ध्यान एवं मौन के साथ कषाय-विजय का अभ्यास किया। सहायक आयकर आयुक्त श्री बी.आर. कुम्भट ने शिविर का उद्घाटन किया तथा समापन समारोह के मुख्य अतिथि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के अध्यक्ष श्री सत्यप्रसन्न सिंहजी भण्डारी थे। जयपुर की श्राविकारत्न श्रीमती लाडबाई जी बोथरा (धर्मपत्नी श्री उग्रसिंह जी बोथरा) अपने ३३ उपवास पर अजमेर आई एवं ४२ दिन की तपस्या पूर्ण की।

मासखमण तप करने वाली तपस्विनी श्राविकाओं का अभिनंदन, शिविरार्थियों का स्वाध्याय साधना-शिविर, श्राविका समिति का अधिवेशन, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल का वार्षिक अधिवेशन, लोंकाशाह जयन्ती समारोह आदि प्रसंग उल्लेखनीय एवं प्रेरणादायी रहे।

• भोपालगढ़ में आचार्य श्री नानालालजी म. से मिलन

अजमेर के उपनगरों को फरसते हुए पुष्कर पधारने पर मरुधर केसरी जैन पारमार्थिक संस्था भवन में आपका प्रवचन अतीव प्रभावोत्पादक रहा। नदी में पानी के कारण मार्ग बदलकर तबीजी, सराधना, लीडी खरवा होते हुए आप ब्यावर के गोलेच्छा गार्डन में विराजे। यहाँ से फिर गिरी में सामाजिक सामरस्य स्थापित कर निमाज, जैतारण होकर आप बिलाड़ा पधारे। यहाँ पर आपके कृष्णादशमी का मौनव्रत था। आचार्य श्री प्रत्येक गुरुवार एवं कृष्णादशमी को मौनव्रत रखते थे। प्रवचन , वाचना आदि को छोड़कर आप मौन के समय में आत्म-साधना, स्वाध्याय एवं ध्यान में ही संलग्न रहते थे। बिलाड़ा से पीपाड़, कोसाणा होते हुए १७ जनवरी १९७८ को आप भोपालगढ़ पधारे।

भोपालगढ़ प्रवासकाल में आचार्यश्री की ६८वीं जन्म-जयन्ती पर आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. तथा आपश्री के संयुक्त प्रवचन हुए। दोनों आचार्यों के मधुर-मिलन को देखकर आबालवृद्ध नरनारी भावविभोर हो उठे।

दोनों परम्पराओं के महापुरुषों का पीढ़ियों से प्रेम सम्बन्ध था। पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज सा. व पूज्य श्री मन्नालालजी म.सा. की परम्परा के मध्य विवाद के समय भी उन महापुरुषों के मन में यह श्रद्धाभिभूत भाव था कि रत्नवंशीय प्रशान्तात्मा महामुनि श्री चन्दनमल जी म.सा. जो भी निर्णय देंगे, वह स्वीकार्य है।

चरितनायक के पूज्यपाद गुरुदेव पूज्य श्री शोभाचंद जी म.सा. के बीकानेर पधारने पर श्रावकों को पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने यही समाचार कराये कि ये महनीय महापुरुष ज्ञान, क्रिया व संयम के उत्कट धनी हैं, इनकी सेवा मेरी सेवा है, यह समझ कर संघ इनके सेवा-सान्निध्य का पूर्ण लाभ ले।

चरितनायक जी का युवावय से ही पूज्य जवाहराचार्य व उनके उत्तराधिकारी महापुरुषों से निकट सम्पर्क रहा। प्रथम श्रमण-सम्मेलन में वरिष्ठ आचार्यों में से एक पूज्य जवाहराचार्य ने वय में सबसे छोटे आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब की प्रतिभा को पहिचानते हुए फरमाया- "ये यहाँ उपस्थित सभी आचार्यों में वय में छोटे हैं, पर सलाह सूचन में मैं इनको अपने से भी आगे देख रहा हूँ।"

बाद में श्रमण संघ के गठन से ही चरितनायक का उपाचार्य पूज्यश्री गणेशीलाल जी महाराज साहब से निकट सम्बन्ध रहा। दोनों महापुरुषों मे वैचारिक साम्य, एवं परस्पर निकटता तथा शासन हित भावना रही।

अब इन्हीं महापुरुषों के उत्तराधिकारी आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के मारवाड़ की ओर पधारने पर एवं मैत्री सम्बन्ध को नवीन रूप देने की भावना ने आपके मन को भी सहज आकर्षित किया। दोनों महापुरुषों का क्रियोद्धार भूमि भोपालगढ़ में स्नेह मिलन हुआ। परस्पर चर्चा-विमर्श हुए। दोनों परम्पराओं में निकटता स्थापित हुई। अनुयायी श्रावक संघों के कार्यकर्ताओं में भी परस्पर चर्चाएं हुई। दोनों महापुरुषों मे हुई चर्चा के उपरांत परस्पर मैत्री सम्बन्ध मजबूत करने हेतु कई बातें तय हुईं। आचार्य श्रीनानालालजी म.सा. का आगामी चातुर्मास मारवाड़ के पट्टनगर जोधपुर में घोड़ों का चौक में हुआ जिसमें रत्नवंशीय श्रावक-श्राविकाओं ने सेवा का पूर्ण लाभ लिया।

श्री जैन रत्न विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती वर्ष के शुभारम्भ के उपलक्ष्य में नशाबंदी अभियान तथा धार्मिक-शिक्षण के विकास को गति प्रदान की गई। २६ जनवरी को आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज की स्वर्गारोहण तिथि मनाने के अवसर पर दोनों आचार्यों ने महान् आत्माओं के पद-चिह्नों पर चलकर जीवन सफल बनाने की प्रेरणा की। यहाँ से २८ जनवरी को आप हीरादेसर पधारे। लोढा एवं बोथरा परिवार ने सेवाभक्ति का लाभ लिया। यहाँ से विराई, विराणी, सेवकी आदि ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए जोधपुर पधारने पर पुनः उक्त आचार्यद्वय का सम्मेलन हुआ।

• पालासनी में दीक्षा

श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के तत्त्वावधान में माघ शुक्ला दशमी १७ फरवरी १९७८ को दीक्षार्थी श्री गौतमचन्द जी आबड़ (सुपुत्र श्री जांवतराजजी श्रीमती शान्तादेवीजी आबड़, पालासनी) , विरक्ता सुश्री कौशल्या देवीजी (सुपुत्री श्री पन्नालालजी कमलादेवी जी कटारिया, थाँवला) और सुश्री सोहनकंवरजी (सुपुत्री श्री उदारामजी दाखीबाई भाटी, बारणी खुर्द) को पालासनी में आचार्यप्रवर द्वारा आजीवन सामायिक-व्रत अंगीकार करा कर भागवती दीक्षा प्रदान की गई। बरगद की सघन छाया युक्त सभामंडप जय घोषों के नारों से गूंज उठा। इस अवसर पर प्राणिमित्र करुणामूर्ति, सतत स्वाध्यायी श्री डी.आर. मेहता का अभिनंदन किया गया। धार्मिक एवं सामाजिक सेवाओं के उपलक्ष्य में श्री सोहननाथ जी मोदी तथा श्री सिरहमल जी नवलखा का बहुमान किया गया। जोधपुर में

बड़ी दीक्षा २४ फरवरी को आचार्यद्वय के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। यहाँ सिंहपोल में आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. ठाणा १४, आचार्य श्री नानालालजी म.सा. ठाणा ८, प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकंवरजी म.सा. ठाणा २२ एवं महासती नानूकंवरजी म.सा. आदि सतीमण्डल का सौहार्दपूर्ण मिलन सबके हृदय - स्थल में अंकित हो गया। यहाँ पर धर्मोद्योत की अद्‌भुत लहर रही। नवदीक्षितों के नाम क्रमशः गौतम मुनि, महासती कौशल्यावती एवं महासती सोहनकंवर रखे गए।

यहां से आपका विहार पीपाड़ की ओर हुआ। दूरी कम करें पीपाड़ में फाल्गुन कृष्णा १४ को पं. रत्न श्री लालचंदजी म. अगवानी हेतु सामने पधारे। महासती नन्दकंवरजी ने शंका-समाधान प्राप्त कर प्रमोद का अनुभव किया।

विहार क्रम में आप पीपाड़ से चिरडाणी, खेजडला, रणसीगांव, हरियाडाणा, बोरुन्दा, गगराना होते हुए इन्दावर पधारे, जहाँ आचार्य श्री नानालालजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी सती बादामकंवरजी आदि ठाणा ४ सेवा में पधारीं एवं तत्त्व-चर्चा कर आपसे सम्यक् समाधान प्राप्त कर प्रमुदित हुई। यहाँ से विहार कर आप मेड़ता पधारे तब धर्मशाला के पास ही अगवानी में प्रवर्तक श्री कुन्दनमुनि जी आदि सन्त उपस्थित थे। फाल्गुनी शुक्ला एकदशी को मेड़ता में इन्दौर संघ का प्रतिनिधिमण्डल श्री फकीरचन्दजी मेहता के नेतृत्व में आगामी चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। फाल्गुनी पूर्णिमा पर मेड़ता संघ धर्माराधन से कृतार्थ हुआ। जयपुर के श्री श्रीचन्दजी गोलेछा ने गुरुदेव से तत्त्वचर्चा की । सवाईमाधोपुर क्षेत्र की विनति हुई। सवाईमाधोपुर क्षेत्र के जागरण पर आपकी फूलचन्दजी आदि श्रावकों से वार्ता हुई। चैत्रकृष्णा द्वितीया को जयपुर का श्रावक संघ श्राविकावृन्द के साथ चातुर्मास हेतु आग्रहभरी विनति लेकर उपस्थित हुआ। चोरड़ियाजी, मन्त्री सरदारमलजी चोपड़ा और इन्दरचन्दजी हीरावत ने अत्यन्त आग्रह किया। आचार्यप्रवर ने इस दिन प्रवचन में फरमाया –"धर्मतीर्थ में सन्तों के साथ श्रावकों के सहयोग की भी व्यवस्था है। श्रावकों के सहयोग से ही धर्म का प्रचार-प्रसार व्यापक रूप ग्रहण करता है। भरत, बिम्बिसार, चेड़ा, उदायन, सम्प्रति, कुमारपाल आदि राजा त्यागी जैन सन्तों से प्रभावित थे। उन्होंने धर्म की बड़ी प्रभावना की। उस समय राजतन्त्र पर धर्म का अंकुश था। धर्म को आज भी श्रावक व्यापकता दे सकते हैं।" जयपुर की विनति को बल देते हुए समर्पित श्रद्धालु श्रावक श्री इन्दरचन्दजी हीरावत ने कहा कि चौमासा होने पर वे चार माह अपना व्यावसायिक कार्य छोड़ देंगे। आचार्य श्री का मानस मध्यप्रदेश की ओर विहार का हो चुका था। अतः चोरड़िया जी एवं चोपड़ा जी ने कहा – "मध्यप्रदेश की ओर आगे न बढ़ना हो तो जयपुर को कृतार्थ करें।" आचार्यप्रवर के सान्निध्य में विनतियों का क्रम चलता रहता था। चातुर्मास हेतु विनतियाँ प्रायः फाल्गुनी पूर्णिमा के आस-पास हुआ करती थी। इसके पूर्व भी लगातार भावनाएँ अभिव्यक्त करने के अवसर का श्रीसंघ लाभ उठाया करते थे। किन्तु आचार्य श्री स्वविवेक से निर्णय लेते थे। चातुर्मास खोलने के पूर्व अनेक बातों को ध्यान में रखने के साथ धर्माराधन की उत्कृष्ट भावना एवं सम्भावना को वे अधिक महत्त्व देते थे। एक ग्राम से दूसरे ग्राम पदार्पण करते समय ग्रामवासियों की धर्मभावना को आगे बढ़ाना एवं स्वयं की संयम-यात्रा को निर्मल रखना आपके जीवन का उच्च लक्ष्य था।

विनति की प्रबलता से कभी लघु मार्ग को छोड़कर दीर्घ एवं कष्टपूर्ण मार्ग पर चरण बढ़ाते हुए भी आपको प्रमोद का ही अनुभव होता था। जिनशासन के सेवक एवं जन-जन में धर्मनिष्ठा और सदाचारी जीवन के प्रेरक आचार्यश्री को कैसा कष्ट? आपने जयपुर संघ को स्वीकृति न देकर धर्म-प्रचार की भावना से इन्दौर का पथ लिया। डांगावास जाते समय मार्ग में वर्धमानसागरजी आदि तीन दिगम्बर मुनियों से मिलन हुआ। उनसे कुशलता एवं

विचरण विहार के बारे में वार्ता हुई । यहाँ व्याख्यान के पश्चात् एक वकील के प्रश्न पर मन एवं आत्मा की भिन्नता समझाते हुए फरमाया कि मन पौद्गलिक है, जबकि आत्मा चेतन तत्त्व है। मन करण है और आत्मा कर्ता है। आपने रात्रिवास धर्मशाला में किया। विजयनगर के श्रावकों ने दर्शन लाभ लिया ।

तदुपरान्त आप मेवड़ा (स्थविरपद विभूषित पं. रत्न श्री चौथमल जी म.सा. की जन्म-स्थली), पादुकला, छोटी पादू, रीयां बड़ी होकर आलणियास पधारे। आहार के अनन्तर नित्य नियत ध्यान के पश्चात्, ग्रामीणों को प्रेरणा कर आपने उन्हें धूम्रपान के त्याग कराये। ग्रामीण किसी भी जाति या समाज के हों, पूज्यचरणों में बैठकर जीवन को नया मोड़ देकर प्रसन्न होते थे। गोविन्दगढ़ जाते समय वर्षा आने से आप मुस्लिम ढाणी के छप्पर में ठहरे एवं वर्षा की बूंदे बन्द होने पर विहार किया। पीसांगन में सूयगडांग सूत्र की वाचना हुई। रात्रि तत्त्व-चर्चा में श्री मिलापचन्द जी आदि श्रावकगण ने भाग लेकर संतुष्टि प्राप्त की। पीसांगन से कालेसरा होकर संवत् २०३५ के प्रथम दिन जेठाना में विराजे। ब्यावर का शिष्ट मण्डल उपस्थित हुआ। यहाँ से किराप और फिर मसूदा पधारे। श्रावकों का आवागमन बना रहा। फिर गोविन्दगढ़, शेरगढ़, राताकोट, सथाना, फरसते हुए आप विजयनगर पधारे।

• विजयनगर, गुलाबपुरा होकर भीलवाड़ा .

विजयनगर में इन्दौर का शिष्टमण्डल (फकीरचन्द जी मेहता, भंवरलालजी बाफना, माणकचन्दजी सांड, शिरोमणिचन्द जी जैन आदि सहित) चातुर्मास की विनति लेकर पुनः उपस्थित हुआ। उज्जैन की ओर से भी पारसमलजी चोरड़िया ने विनति प्रस्तुत की। सैलाना के सेठ प्यारचन्दजी रांका ने भावभरी विनति श्री चरणों में रखी। धनोप, फूलिया आदि के श्रावक भी उपस्थित हुए। महावीर जयन्ती पर धर्माराधन का ठाट रहा। यहाँ से आप गुलाबपुरा पधारे, जहाँ पर विधानसभा के पाँच विधायकों ने आचार्यश्री के दर्शनों का लाभ लिया। यहाँ के किस्तूर चन्द जी नाहर (मुनीम जी) ने रात्रिकालीन प्रश्नचर्चा के समय आपसे धर्मचर्चा की। यहां १५-२० युवकों ने सामूहिक स्वाध्याय का नियम लिया।

यह उल्लेखनीय है कि ग्रामानुग्राम विहार के अवसरों पर स्थानीय श्रावक-श्राविकाओं के अतिरिक्त देश-विदेश के नागरिक आचार्य श्री की सेवा में प्रस्तुत होकर दर्शन लाभ लेते रहे। इनमें से अनेक श्रावक स्वयं भी अपने कार्य क्षेत्र के ख्यातिलब्ध व्यक्तित्व वाले रहे हैं। विस्तार भय से नाम-गणना अशक्य है, तथापि यह भी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आचार्य श्री की चरण-सेवा में आने वाले ऐसे श्रावक भी थे जो श्रावक स्वयं में एक-एक संस्था रही है। अपने-अपने क्षेत्रों के लिए विनति करते हुए सहृदय श्रावकों के सजल नेत्रों को अनेकशः सभाओं में देखा गया है। विदाई अवसरों पर महिलाओं और पुरुषों की कतारों के बीच अश्रुजलधार प्रवाह ने अनेकों बार सहृदयों को हिलाया है। गुरुदेव का चतुर्विध संघ के प्रति यह वात्सल्य ही तो है जिससे विश्व के कोने-कोने में बसे आपके अनुयायी और अनुमोदक इस प्रकार जुड़ गए, जैसे एक माला में विभिन्न वर्णों के रत्न पिरोए हों। सम्पूर्ण जैन समाज एवं रत्नवंश का एक-एक श्रावक और श्राविका आपके धर्म-स्नेह से सराबोर है। जो कार्य कई सरकारें मिलकर अथाह अनुदान राशि खर्च करके असंख्य अधिकारियों के प्रयास से नहीं कर सकती, वह कार्य आचार्य श्री की गाँव-गाँव और डगर-डगर, शहर-शहर और नगर-नगर की पदयात्राओं के माध्यम से मानव-संसाधन के सुधार और स्नेह संवर्धन के रूप में सम्पन्न हुआ। भारत का वैभव अचेतन धन-सम्पदा की वृद्धि की अपेक्षा सचेतन मानव-संसाधन के सकारात्मक विकास में निहित है। इसीलिए गुरुदेव ने संयम पथ का मार्ग सुझाकर स्वयं सहकर दूसरों के लिए सुख-साधनों के विसर्जन की कला अपरिग्रह का पाठ जन-जन को पढ़ाया और

अपने उस मर्यादित साधु जीवन का अद्वितीय आदर्श जन-जन के समक्ष प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया कि दृढ़ इच्छा-शक्ति हो तो साधना कठिन नहीं है।

गुलाबपुरा से पुरातत्त्ववेता मनीषी जिनविजयजी की जन्मभूमि रूपाहेली में मास्टर चाँदमल जी आदि को ज्ञान-चर्चा से लाभान्वित कर वैशाखकृष्णा तृतीया को कंवलियास पधारे। यह धर्म रुचि की दृष्टि से अच्छा क्षेत्र है। यहाँ पर भारतीय जहाजरानी निगम, दिल्ली के निदेशक श्री वी.आर. मेहता ने सपत्नीक दर्शनलाभ कर प्रसन्नता का अनुभव किया। यहां से सरेड़ी के साताकारी धर्मस्थान में एक रात्रि व्यतीत कर आप रायला रोड़ के माच्छर भवन में विराजे। दूसरे दिन आपने बनेडा जाते समय वटवृक्ष के नीचे चबूतरे पर रात बिताई। बनेड़ा में रतलाम के प्रतिनिधि मण्डल (पी.सी. चौपड़ा, जीतमल जी छाजेड, बसन्तीलाल जी सेठिया आदि) ने चातुर्मास हेतु विनति की। सायंकाल चाँदनी चौक दिल्ली के लाला किशोरीलाल जी जैन ससंघ उपस्थित हुए।

फिर छापरी, सांगानेर होते हुए आपका भीलवाड़ा में प्रवेश हुआ। भोपालगंज भीलवाड़ा में वर्षीतप पारणों का तपोत्सव-समारोह आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत वातावरण में सम्पन्न हुआ। भोपालगंज में उपस्थित जन-जन आचार्य श्री को परम पावन तीर्थराज का मूर्त रूप समझ रहा था, जिनके मुखारविन्द से प्रकट जिनवाणी-सरिता में अवगाहन कर सभी स्वयं को निर्मलमना बनाने का प्रयास कर रहे थे। यहाँ वर्षीतप पारणे के अवसर पर अन्य मासक्षपण आदि तपस्याओं के भी पारणक हुए। क्षुधा-पिपासा विजय तथा दृढ़ इच्छा-शक्ति के प्रतीक तपाराधन से उत्पन्न तेज का अनूठा माहौल जैन तथा अजैन समाज को विस्मित कर रहा था। प्रवचन सभा में महासती श्री यशकुंवरजी म.सा. ने पूज्यचरण आचार्यप्रवर के विशिष्ट व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपने विचार प्रकट करते हुए फरमाया - **"मुझे आचार्य श्री के सान्निध्य में दो चातुर्मास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैंने साधना का अति उत्कृष्ट रूप जैसा आप में देखा, अन्यत्र दुर्लभ है। अगर मै आपको श्रमण वर्ग के पुष्करराज की संज्ञा दूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।** " आचार्य प्रवर ने प्रवचन में तप के महत्त्व पर प्रकाश डाला। गुरुदेव की जयघोषों के साथ समारोह सम्पन्न हुआ। रणजीत मुनिजी आदि ठाणा ३, शासन प्रभाविका यशकंवर जी म. आदि ठाणा १५, सती पानकंवरजी आदि ठाणा ६ के साथ अनेक संघ प्रमुखों से यहाँ चतुर्विध संघ की विकास चर्चाएँ हुई। जोधपुर निवासी भंडारी प्रकाशचंदजी ने ३२ वर्ष की अवस्था में वर्षीतप के साथ आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया।

विगत कतिपय माह से चल रही विनति को इन्दौर संघ ने पुनः पुरजोर शब्दों में रखा एवं यह भरोसा दिलाया कि आचार्य श्री की विचारधारा एवं रीति-नीति का इन्दौर संघ पूर्णरूप से पालन करेगा। ध्वनियन्त्र का उपयोग नहीं किया जायेगा। तदनन्तर आचार्यप्रवर ने इन्दौर संघ को साधु-मर्यादा के अनुरूप स्वीकृति फरमायी। यहाँ पर एक दिन व्याख्यान में मोक्षमार्ग का विवेचन करते हुए सम्यग्दर्शन का विश्लेषण किया एवं फरमाया -- "भगवान महावीर ने देव-देवियों के पुजारियों को आत्मपूजा और आत्मजागरण की शिक्षा दी। शान्ति का स्रोत अपने भीतर बतलाकर पुरुषार्थ को उसकी प्राप्ति का उपाय बताया।"

• चित्तौड़ स्पर्शन

काशीपुरी, स्वरूपगंज, हमीरगढ़, गंगरार रोड़, पुठोली को फरसते हुए आचार्यप्रवर वैशाख शुक्ला ११ वि. संवत् २०३५ को मीरानगर चित्तौड़ पधारे। आपके प्रवचनों से प्रभावित युवकों ने नित्य स्थानक में आकर सामायिक-स्वाध्याय करने का नियम लिया। आचार्य श्री ने हिन्दूकुल सूर्य प्रताप के हितैषी भामाशाह की आन, बान और शान का स्मरण कराते हुए उपस्थित श्रोताओं को धर्म-क्षेत्र में अपनी शक्ति लगाने का आह्वान किया। ■

मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश एवं कर्नाटक में धर्मोद्योत

(संवत् २०३५से २०३९)

• राजस्थान से मालव भूमि की ओर

चरितनायक आगामी चातुर्मास में इन्दौर विराजने की स्वीकृति प्रदान कर चुके थे। उसी लक्ष्य से अब आपके चरण शस्य श्यामला मालव भूमि की ओर बढ रहे थे। आप सेंती, सतखंडा, मांगरोल, निम्बाहेड़ा, बागेड़ा होते हुए राजस्थान से मध्यप्रदेश पधारे। दिनांक २७ मई १९७८ को धारा १४४ लगी होने पर भी जावद में आपका भव्य प्रवेश हुआ। आपकी पातकप्रक्षालिनी पीयूषपाविनी मंगलमय प्रवचन सुधा कर पान करने जावदवासी भारी संख्या में उपस्थित थे। यहाँ सैलाना संघ विनति लेकर उपस्थित हुआ। जावद से दो किलोमीटर का विहार कर आप पुलिस स्टेशन भवन विराजे। वहाँ से प्रातः विहार कर नीमचछावनी पधारे। यहाँ आपने ज्ञान मन्दिर में प्रवचन फरमाया। यहाँ से कृपानिधान का विचरण-विहार नीमच सिटी, कटआर सिटी, सावन, महागढ, झाड़ी नारायणगढ रोड, पीपल्या मंडी, बोतलगंज प्रभृति ग्राम नगरों में हुआ। आप जहाँ भी पधारे, आबालवृद्ध सभी आपके प्रवचनामृत से प्रभावित हो अध्यात्म मार्ग पर चलने को प्रेरित हुए। नीमच में अपने मंगलमय उद्बोधन में आपने विचारों की पवित्रता एवं स्थिरता के लिये आहार-शुद्धि पर बल दिया। नीमच से विहार कर रास्ते में आपका रात्रिवास आम्रवृक्ष के नीचे हुआ। साथ चल रहे तीन भाइयों ने भी अपने आराध्य गुरुदेव के सान्निध्य में ही संवर किया। गर्मी का मौसम, हवा का झोंका तक नहीं, ऐसी प्रतिकूलता में भी जिनकी आत्मा में समत्व, क्षमा व शान्ति का सागर लहरा रहा हो, उन्हें भला बाह्य परीषह क्या प्रभावित कर पाते। प्रातःकाल जो चिन्तन चला, उसके बारे में आपने अपनी दैनन्दिनी में अंकित किया है –**"प्रातः सामने प्रहरी वृक्ष अडोल खड़े अपने मोहक आदर्श से शिक्षा दे रहे थे"। अध्यात्मचेता मनीषियों के लिये तो प्रकृति व बाह्य परिवेश भी शिक्षा के सूचक होते हैं। आपने चिन्तन किया कि जिस प्रकार विषम परिस्थितियों में भी वृक्ष अडोल रहकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं वैसे ही संत को भी जीवन में अनुकूलताओं-प्रतिकूलताओं में अडिग रहकर कर्त्तव्य का निर्वहन करते रहना है।** हिन्दी कवि ने भी अपनी रचना में कहा है –"खड़ा हिमालय बता रहा है, डरो न आँधी पानी से। खड़े रहो तुम अविचल होकर, सब संकट तूफानों में ।" ज्येष्ठ माह, भयंकर गर्मी, धूप से तप्त भूमि पर परीषह विजेता महापुरुष को अपनी शिष्य मंडली के साथ नंगे पाँव पाद-विहार करते देख जैनेतर ग्रामीण जन आश्चर्य-विमुग्ध सहज श्रद्धाभिभूत हो आपके चरणों में झुक जाते।

निकटवर्ती ग्राम-नगरों के श्रावक-श्राविका आत्म-साधक आचार्य श्री हस्ती के सान्निध्य में पहुँचकर अपने को धन्य मानते थे। जिस ग्राम की ओर विहार सम्भावित है, वहां से विनति के लिए श्रावकों का पूर्व ग्राम में उपस्थित होना एवं बाद मे निकट के गांवों मे पहुंचने पर सन्तों की सेवा में उपस्थित होकर अपनी धर्मभावना को आगे बढ़ाना

एक सहज साधारण बात थी। छोटे-छोटे ग्रामों में बड़े बड़े शहरों के धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविकाएँ पहुँच कर जब सामायिक, संवर, उपवास, पौषध आदि करते थे तो वहाँ के लोग इन तपःपूत महासाधक के ज्ञान-दर्शन चारित्र के साथ ही इनके पुण्यातिशय एवं भक्तों के अपने आराध्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति से सहज ही प्रभावित हो जाते।

इस विचरण विहार में अनेक व्यक्ति सामायिक स्वाध्याय से जुड़े तो कई व्यक्तियों ने महाव्रतधारी इस महापुरुष से बारहव्रत अंगीकार कर अपना जीवन मर्यादा में स्थिर किया।

पूज्यपाद के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ तथा गणधर गौतम के समान अहर्निश गुरुचरणों में समर्पित सुशिष्य श्री छोटे लक्ष्मीचन्द जी म.सा. ने जब से दीक्षा अंगीकार की, उनके सांसारिक परिजनों की ही नहीं समस्त महागढ वासियों की उत्कट आकांक्षा उनका चातुर्मास अपने यहाँ कराने की थी। गुरु के चरणों में ही जिन्होंने स्वर्ग समझा था, गुरु-सेवा ही जिनके जीवन का लक्ष्य व साधना का केन्द्र बिन्दु था, वे महापुरुष गुरुचरणों से पृथक् चातुर्मास करने के अनिच्छुक थे। पर पूज्यपाद के मालव भूमि में प्रवेश करते ही महागढवासियों की दीर्घकाल से अन्तहृदय में संचित भावना पुनः हिलोरें लेने लगीं व वहाँ के श्रीसंघ ने अपनी भावना सम्पूरित विनति आपके चरणसरोजों में प्रस्तुत की तो आपने महागढवासियों की भावना समझते हुए श्री छोटे लक्ष्मीचन्द जी म.सा. का वर्षावास महागढ के लिये स्वीकृत किया।

• मन्दसौर में दीक्षा प्रसंग

सवाईमाधोपुर निवासी मुमुक्षु श्री महावीर प्रसादजी जैन लम्बे समय से पूज्य गुरुदेव की सेवा में ज्ञानाराधन कर रहे थे। उनकी दीक्षा लेने की उत्कट भावना थी, उनके वैराग्यसिक्त हृदय में यही कामना थी कि मैं शीघ्रातिशीघ्र पूज्य गुरु चरणों में सदा-सदा के लिये समर्पित हो आत्म-कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ूँ। धर्मनिष्ठ संयमानुरागी भक्त सुश्रावक श्री प्यारचंदजी रांका, सैलाना ने मुमुक्षु महावीरप्रसादजी के परिजनों से आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा नियत करने में निर्णायक भूमिका का निर्वाह कर जिनशासन सेवा का उत्कृष्ट लाभ प्राप्त किया।

विहारक्रम में पूज्यपाद नारायणगढ पधारे, जहां आपने धर्म का सही स्वरूप समझाया व सप्त कुव्यसन त्याग की प्रभावी प्रेरणा की। पीपल्यामंडी में अपने प्रेरक उद्बोधन में धर्मस्थान व प्रवचन सभा में आते समय श्रावक के लिये ध्यान रखने योग्य पांच अभिगमों की उपादेयता श्रोताओं को समझाते हुए फरमाया कि श्रावक को धर्मस्थान व प्रवचन सभा में प्रवेश के पूर्व सचित्त वस्तुओं का बाहर ही त्याग कर देना चाहिये, अचित्त वस्तुओं का भी विवेक रखना चाहिए यानी जूते, चप्पल, मुकुट आदि को भी अन्दर नहीं लाना चाहिए, मुख पर मुखवस्त्रिका या उत्तरासन धारण कर ही प्रवेश करना चाहिये। इस विवेक के साथ ही जैसे ही पूज्य संत-सतीवृन्द दृष्टिगत हो, हाथ जोड़कर दोनों हाथ ललाट पर लगाकर मन को सांसारिक कार्यों से हटा कर धार्मिक कार्यों में एकाग्रता के साथ गुरुचरणों में वन्दन करना चाहिये। यहाँ पर नयी आबादी में सांसद श्री सुन्दरलाल जी पटवा (मुख्यमंत्री भी रहे) ने युगमनीषी आचार्य भगवन्त के पावन दर्शन व वन्दन का लाभ लिया।

बोतलगंज से विहार कर इतिहासमार्तण्ड आचार्य श्री ने आर्यरक्षित की विचरण भूमि, दशार्णभद्र की दीक्षास्थली ऐतिहासिक वैभव सम्पन्न दशपुर (मन्दसौर) में प्रवेश किया। मंगल स्तुतियों तथा स्वागत गीतों को गुंजाती जनमेदिनी आचार्य श्री की अगवानी कर विशाल व्याख्यान सभा के रूप में परिणत हो गयी। **मंदसौर में**

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत् २०३५ तदनुसार १६ जून १९७८ को आचार्यश्री के मुखारविन्द से श्री रामनिवासजी जैन के सुपुत्र एवं श्री रमेशचन्द जी के अनुज श्री महावीरप्रसाद जी जैन (सवाई माधोपुर) की भागवती दीक्षा चतुर्विध संघ की जनमेदिनी की जय-जयकार के बीच सम्पन्न हुई। 'नन्दीषेण' संज्ञा को प्राप्त नवदीक्षित मुनि की दीक्षा के समय आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. आदि ठाणा ८ से विराजमान थे। इस अवसर पर श्री इन्दरमलजी म.सा., श्री महेश मुनि जी, श्री उदयमुनि जी म.सा. ठाणा ३ , आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री वल्लभ कंवर जी म.सा., महासती श्री पेपकंवर जी म.सा. आदि ठाणा १२ तथा पूज्य चरितनायक की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. आदि ठाणा ४ का आशीर्वाद एवं सुसान्निध्य प्राप्त हुआ।

• सैलाना में समरसता का संचार कर रतलाम पदार्पण

मन्दसौर से विहार कर चरितनायक दलोदा, कचनारा, ढोढर होकर जावरा पधारे , जहाँ जवाहर पेठ के स्थानक एवं चौपाटी के स्वाध्याय भवन में आपके प्रभावी प्रवचन हुए। चौपाटी के प्रवचन में विनति लेकर उपस्थित रतलाम के तीनों संघों को लक्ष्य कर फरमाया– **"हमें निश्चय करना है आचार की प्रधानता हो या प्रचार की? आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज ने जिनशासन की सेवा के लिए जीवन दे दिया, फिर भी संघ ने पगलिये नहीं रखे, किन्तु आज आप भूल रहे हैं।" जिनशासन की सुविहित आचार परम्परा के प्रबलपक्षधर आचार्य भगवन्त द्रव्य निक्षेप की बजाय भाव निक्षेप के हिमायती थे। आपने जीवन में कभी भी प्रचार को महत्ता नहीं दी। आपका स्पष्ट मंतव्य था कि साधक का आचारसम्पन्न जीवन स्वयं जो छाप छोड़ने में सक्षम है वह छाप प्रबल प्रचार नहीं छोड़ सकता। स्वयं के जीवन में दोष लगाकर धर्मप्रचार का प्रयास तो वैसा ही है "हाथ भी जले व होले भी ढुले"**। रात्रि में षड्द्रव्य, नवतत्त्व आदि विषयों पर हुए प्रश्नोत्तरों से जन समुदाय लाभान्वित हुआ। प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि में प्रायः जब भी जहाँ भी श्रावकों द्वारा जिज्ञासाएँ रखी जाती थी, तो उनका समाधान आचार्यप्रवर बहुत ही रस लेकर किया करते थे। श्रावकों के न पूछने पर आप ही सन्तों या श्रावकों से प्रश्न पूछकर उनका रोचक शैली में ज्ञानवर्धन किया करते थे। मानव मुनि जी ने यहाँ आचार्यप्रवर की सेवा में उपस्थित होकर अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा शान्त की। यहाँ से पीपलोदा होकर आप सैलाना पधारे। सैलाना के स्थानीय संघ में परस्पर समन्वय में कुछ कमी थी। पूज्यपाद के 'कषाय-नियन्त्रण' विषयक उपदेश से संघ में मधुर ऐक्य की लहर दौड़ गई। सैलाना से २५ जून को विहार कर आचार्य श्री धामनोद होते हुए आषाढ कृष्णा षष्ठी संवत् २०३५ को रतलाम पधारे। वहाँ धर्मदास मित्रमंडल में आपने मांगलिक और व्याख्यान फरमाकर जन-जन की प्यास बुझाई। रतलाम का जैन ट्रस्ट बोर्ड तीन सम्प्रदायों (आचार्य श्रीनानालाल जी, पूज्य श्री धर्मदास जी एवं जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.सा.) की संयुक्त-संस्था है, जिसके तत्त्वावधान में आचार्यप्रवर के रतलाम आगमन पर हुई संयुक्त-व्यवस्था एवं दया आदि कार्यक्रमों का आगन्तुकों ने लाभ उठाया। २०० से अधिक दयाव्रत हुए। रतलाम में तीनों सम्प्रदायों के पृथक्-पृथक् स्थानक व संघ-व्यवस्था है। परस्पर अपेक्षित समन्वय नहीं है, पर समता साधक चरितनायक का जीवनादर्श व पुण्यातिशय ही ऐसा था कि आप जहाँ भी पधारते, अनेकों पक्ष के लोग सारे भेद-विभेद भूलकर एक हो जाते एवं आपके सान्निध्य का लाभ लेते।

रात्रि में किसी श्रावक के द्वारा प्रश्न किया गया कि जैन धर्म में मन्त्र-साधना क्यों प्रचलित हुई? इतिहासज्ञ

आचार्यप्रवर ने फरमाया—"संघर्षकाल में जिनशासन की रक्षार्थ मन्त्रसाधना का प्रचलन हुआ।" यहाँ से आपश्री धराड़, विलपांक, सर्वन-जामुनिया, सिमलावदा फरसते हुए बदनावर पधारे, जहाँ प्रवर्तक सूर्यमुनिजी के दो सन्त आचार्यप्रवर की अगवानी में सामने पधारे और भव्य नगर-प्रवेश हुआ। यहाँ आपका प्रवर्तक सूर्यमुनिजी एवं श्री उमेश मुनिजी 'अणु' से इतिहास और शासन के उत्थान हेतु विचारों का आदान-प्रदान हुआ। यहाँ से विहार कर आप कानवन पधारे, जहाँ तपस्वी श्री लालमुनि जी म. एवं श्री कानमुनि जी म. ने आचार्यदेव से अनेक विषयों पर उचित समाधान पाकर प्रमोद व्यक्त किया।

४ जुलाई को आचार्यप्रवर नागदा पधारे। आचार्यप्रवर की प्रेरक वाणी के प्रभाव से यहाँ स्वाध्याय मंडल का गठन हुआ, जिसमें श्री सागरमल जी सियाल श्री लालचन्द्र जी नाहर, श्री गेंदालाल जी चौधरी (सपत्नीक चारों खंधों के पालक), श्री रामलाल जी नाहर व श्री तेजमल जी चौधरी पाँच सदस्य चुने गये। चार आजीवन ब्रह्मचर्य के स्कन्ध हुए। नागदा से आचार्यश्री शादलपुर, वेटमा, शिरपुर होते हुए अहिल्या की नगरी इन्दौर के उपनगर जानकी नगर पधारे। महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. ठाणा ४ का भी इन्दौर पदार्पण हुआ।

- इन्दौर चातुर्मास (संवत् २०३५)

इन्दौर संघाध्यक्ष श्री सुगनमल जी भंडारी, कांफ्रेंस मंत्री श्री फकीरचन्द जी मेहता एवं समस्त श्री संघ के उत्साह और उल्लास का पारावार नहीं था, क्योंकि विक्रम संवत् २०३५ में आचार्य श्री का ५८वां चातुर्मास इन्दौर में हो रहा था। भावुक भक्तों की भावभीनी अगवानी ने चातुर्मास के सम्भाव्य फल का संकेत कर दिया था। यहाँ महावीर भवन, इमली बाजार में जनमेदिनी मानो सागर की तरह उमड़ पड़ी और व्याख्यान सुनने एवं धर्माराधन करने हेतु सब तत्पर रहे।

युगमनीषी युगप्रभावक चरितनायक आचार्य प्रवर ने अपने मंगलमय प्रवेश के अवसर पर अपने प्रभावी प्रवचन के माध्यम से जनमानस को उद्बोधित करते हुए फरमाया —"श्रावक-श्राविकाओं को चाहिए कि वे अपने को सामायिक-स्वाध्याय की प्रवृत्ति से जोड़ें। बालकों में संस्कारों का वपन करें। धर्मस्थानों में नियमित स्वाध्याय की प्रबल प्रेरणा करते हुए भगवन्त ने फरमाया—"धर्मस्थान में आने वालों के लिए बैठने के आसन तो मिलेंगे, किन्तु पाठकों के लिए रुचिपूर्ण स्वाध्याय-ग्रन्थों का छोटा-सा भी संग्रह नहीं मिलता।"

"मुनिराजों के स्वागत समारोह, अभिनन्दन और पुस्तक-विमोचन जैसे जलसे निर्ग्रन्थ - संस्कृति के अनुरूप नहीं हैं। व्यक्तिगत महिमा-पूजा से अधिक संघ एवं शासनहित का लक्ष्य रखेंगे तो वर्षाकाल में शक्ति का अपव्यय नहीं होगा।"

"हजारों दर्शनार्थियों का चाहे मेला न लगे, पर नगर के लोग यदि ज्ञान-ध्यान से अपने पैरों पर खड़े हो गए और चातुर्मास के पश्चात् भी धर्मस्थान में साधना और स्वाध्याय की गंगा बहती रही तो चातुर्मास की सच्ची सफलता होगी।"

"प्राचीन समय में जहाँ एक चातुर्मास हो जाता, वहाँ आबालवृद्ध जनों में ऐसी धर्म चेतना आती कि वर्षों के बाद भी धर्मस्थान में उसका असर दिखाई देता, लोगों की धर्म-भावना स्थिर होती और बीसियों सामायिक, प्रतिक्रमण एवं तत्त्वज्ञान के ज्ञाता तैयार हो जाते। कई अजैन बन्धु भी जैन धर्म के श्रद्धालु बनते और वर्षों तक चातुर्मास की सुवास बनी रहती। आज दर्शनार्थियों के मेलों पर साधु-साध्वियाँ और श्रावकगण सन्तोष मान लेते हैं।

फलस्वरूप चार माह में चार-पांच श्रावक भी जानकार तैयार नहीं होते।"

"समय की मांग है कि जैन समाज त्यागी सन्तों के सत्संग का मूल्य समझे और उसमें समाज-निर्माण के किसी ठोस कार्य को गति दे। अभी जैन समाज की स्थिति बड़ी दयनीय है। गांव या नगर, कहीं भी देखिए, धर्मस्थान में रजोहरण और पूंजनी की भी बराबर व्यवस्था नहीं मिलेगी। बिल्डिंग लाखों की होगी, पर नियमित आने वाले दस - बीस भी मुश्किल से होंगे।"

"आवश्यकता है वर्षाकाल में समाज की इस दुर्बलता को दूर करने हेतु स्थान-स्थान पर स्वाध्याय और साधना का शिक्षण देने की। **शिक्षण देते समय शिक्षक और सन्त-सती वर्ग सम्प्रदायवाद से बचकर तुलनात्मक ज्ञान देने का खयाल रखें तो संघ के लिए अधिक लाभकारी हो सकता है। व्यक्तिगत या वर्गगत किसी की न्यूनता बताकर, अपने आपको ऊँचा बताने का समय नहीं है, इससे शासन की प्रभावना नहीं होगी।** साधु-धर्म, श्रावक धर्म और सिद्धान्त की मौलिक जानकारी देते हुए परम्परा भेदों का तटस्थ परिचय कराइए, पर स्वयं आलोचना कर रागद्वेष को जागृत न कीजिए।"

"स्थानकवासी समाज को साधुवृन्द का ही अवलम्बन है। त्यागीवर्ग पर जिनशासन की रक्षा का बड़ा दायित्व है। उन्हें अपनी महिमा का खयाल छोड़कर चतुर्विध संघ की रक्षा के लिए गांव-गांव और नगर-नगर में स्वाध्याय और सामायिक-साधना का व्यवस्थित रूप चालू करना चाहिए।"

"जिनशासन की रक्षा और हित में हमारी रक्षा एवं हित है। इसलिए परस्पर की निन्दा-आलोचना छोड़कर त्यागीवर्ग भी समाज में निष्पक्ष भाव से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हो, ऐसा कार्य करेगा तो चातुर्मास की सफलता, संघ की स्थिरता और धर्मभाव में दृढ़ता की वृद्धि होगी। "

संयममूर्ति चरितनायक ने संयम, संगठन, स्वाध्याय और साधना रूप मार्गचतुष्टयी के लिए गतिशील होने का आह्वान किया।

श्रावक-श्राविकाओं में विशेष धर्माराधन, युवकों में ज्ञानवृद्धि, स्वाध्याय, शिक्षण और बालकों हेतु श्री महावीर जैन स्वाध्याय शाला का प्रारम्भ इस चातुर्मास की उपलब्धि रही। उपनगरों में चार स्वाध्याय केन्द्र स्थापित हुए। महावीर भवन में शास्त्र ग्रन्थों के संग्रह हेतु आध्यात्मिक ग्रन्थालय का श्रीगणेश किया गया। इन्दौर में पहले पर्युषण के दिनों में धर्मस्थानक में ध्वनि यंत्र से प्रतिक्रमण कराया जाता था। उसकी व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। स्वाध्यायी भाई के द्वारा प्रतिक्रमण कराया गया और पूर्व प्रचलित प्रथा बन्द हो गई। **इस चातुर्मास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही–'अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्' का गठन।**

दिनाङ्क १२ व १३ नवम्बर १९७८ को जैन विद्वानों का सम्मेलन हुआ, जिसमें जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, रायपुर, इन्दौर, अहमदाबाद, बैंगलोर, बम्बई, भोपाल, छोटी सादड़ी, कानोड़, सवाई माधोपुर, शुजालपुर, शाजापुर, ब्यावर आदि नगरों के ५० से अधिक विद्वानों ने भाग लिया। अलग-अलग क्षेत्रों में बिखरे समाज के जैनविद्या में निरत विद्वानों, श्रीमन्तों, कार्यकर्ताओं और संस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क व सामंजस्य स्थापित करते हुए जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि के अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन, संरक्षण-संवर्धन, शोध-प्रकाशन आदि को प्रोत्साहन देने के लिए यहाँ अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद् का गठन किया गया। परिषद् के अध्यक्ष श्री सौभाग्यमलजी जैन मनोनीत किए गए तथा महामन्त्री का दायित्व जिनवाणी के मानद सम्पादक डॉ. नरेन्द्र जी भानावत को सौंपा गया। इन्दौर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. देवेन्द्र जी शर्मा ने परिषद् का उद्घाटन किया।

आचार्यप्रवर ने विद्वानों को उद्बोधन देते हुए फरमाया कि वे जैन शास्त्र और श्रद्धा को सुरक्षित रखने के लिए वैज्ञानिक चिन्तन प्रस्तुत करें, धर्म-परम्परा के लिए विघटन या विध्वंस की नीति न रखकर निर्माणात्मक-रक्षणात्मक नीति का उपयोग करें, इतिहास के भ्रान्त विचारों का निराकरण करें, स्वाध्याय का प्रचार करें और स्वयं शास्त्र-ग्रन्थों का अध्ययन करें। श्री फकीर चन्द जी मेहता ने विद्वत् परिषद् के अन्तर्गत जैन दिवाकर जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष 'जैन दिवाकर स्मृति व्याख्यानमाला' आयोजित कराने की घोषणा की। परिषद् का कार्यालय जयपुर रखा गया।

चातुर्मास में प्यारचंद जी रांका सैलाना वालों ने सपरिवार सेवा का लाभ लिया। अनेक भाइयों ने सदार शीलव्रत अंगीकार किया। प्रातः तत्त्वार्थसूत्र एवं दोपहर में व्यवहार सूत्र का वाचन-विवेचन चला।

१२ से १४ नवम्बर १९७८ तक अ.भा. श्री जैनरत्न हितैषी श्रावक संघ जोधपुर, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल जयपुर, अ.भा. श्री जैन रत्न युवक संघ एवं अ.भा. श्री महावीर जैन श्राविका समिति के अधिवेशन सानंद सम्पन्न हुए। जोधपुर से अधिवेशन के अवसर पर भोपालगढ निवासी सुज्ञ श्रावक श्री जोगीदासजी बाफना के सुपुत्र श्री सुगनचन्द बाफना के सौजन्य से ५५० सदस्यों की विशेष ट्रेन आई तथा जयपुर आदि क्षेत्रों से भी अनेक बसें आई।

चातुर्मास में श्री भंवरलाल जी बाफना, श्री बादलचन्दजी मेहता, श्री बस्तीमलजी चोरड़िया, श्री फूलचन्दजी जैन, हस्तीमलजी आदि की उल्लेखनीय सेवाएं रही। श्राविकाओं में श्रीमती हीरा बहन बोरदिया एवं श्रीमती भुवनेश्वरी देवी भण्डारी का उत्साह प्रशंसनीय रहा।

• उज्जैन में धर्मजागरण

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को जयघोष के नारों के साथ आचार्य श्री का चातुर्मास स्थल से विहार हुआ। चरितनायक न्यू पलासिया स्वाध्याय भवन, महावीर नगर, क्लर्क कालोनी, जानकी नगर, स्नेहलता गंज, भंवरसला, धर्मपुरी, तराणा सांवेर, पिपलाई आदि विभिन्न क्षेत्रों को पावन करते हुए १ दिसम्बर १९७८ को फ्रीगंज होकर मध्याह्न में उज्जैन के महावीर भवन में पधारे।

कालिदास की प्रिय नगरी अवन्ती (उज्जैन) की पुण्यभूमि में २ दिसम्बर को आचार्य श्री के दर्शनार्थ पंजाब से विरक्त बंधु श्री राजेन्द्र कुमार एवं श्री राकेश कुमार (पं. रत्न श्री सुदर्शन मुनिजी म.सा. के सान्निध्य में अध्ययनरत) उपस्थित हुए। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल जयपुर के अध्यक्ष श्री उमरावमल जी ढड्ढा अजमेर, श्री चुन्नीलाल जी ललवाणी जयपुर तथा श्री समर्थमल जी बम्ब जयपुर ने आचार्य श्री की सेवा का लाभ लिया। अ.भा. श्री साधुमार्गी जैन संघ के प्रमुख श्रावकों श्री गणपतराजजी बोहरा, श्री सरदारमलजी कांकरिया , श्री पी.सी. चौपड़ा एवं श्री गुमानमलजी चोरड़िया का शिष्टमण्डल सेवा में उपस्थित हुआ।

महागढ़ का चातुर्मास सम्पन्न कर श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. आदि ठाणा ३ तथा जानकीनगर इन्दौर का चातुर्मास सम्पन्न कर महासती श्री सायरकंवरजी म.सा. आदि ठाणा ४ का भी पदार्पण उज्जैन में हुआ। १४ दिसम्बर को आचार्य श्री नानालालजी म.सा. के शिष्य श्री प्रेममुनि जी आदि ठाणा ३ ने भोपाल का चातुर्मास सम्पन्न कर उज्जैन में आचार्य श्री का सान्निध्य लाभ लिया। आचार्यश्री के सान्निध्य में १९वें तीर्थंकर भगवती मल्लिनाथ के जन्म-कल्याणक महोत्सव के अवसर पर सामायिक-स्वाध्याय, दया-पौषध, तप-त्याग आदि धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए। इस अवसर पर स्थानीय संघ प्रमुखों ने स्वाध्यायशाला प्रारम्भ करने का निश्चय किया। आध्यात्मिक अभिरुचि

व उल्लास के साथ ही २४ दिसम्बर को आचार्यप्रवर के सान्निध्य में २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म-कल्याणक सामूहिक दयाव्रत के साथ मनाया गया।

• धुलिया की ओर

अवन्ती में धर्मोद्योत की पावन अमृतधारा बहाकर आचार्य श्री ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए २८ दिसम्बर को पुनः इन्दौर पधारे। यहाँ तपस्वीराज श्री लालमुनि जी म.सा. व पंडित श्री कानमुनि जी म.सा. अगवानी हेतु आपके सामने पधारे। सामायिक स्वाध्याय के पर्याय आचार्य भगवन्त द्वारा वर्षावास में लगी स्वाध्याय बगिया का पुनः सिंचन करने पर सबने प्रमोद व्यक्त किया। ७ जनवरी १९७९ को जोधपुर में प्रातः ५.३० बजे पंडित श्री बड़े लक्ष्मी चन्द जी म.सा का देवलोक गमन हो गया, व्याख्यान स्थगित रखकर प्रकाश दाल मिल के भवन में प्रातः १० बजे सभा में चार लोगस्स से श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई। परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने फरमाया - 'रत्नवंश रूपी बहुमूल्य हार की एक अनमोल मणि निकल गई है।' पं. रत्न श्री लक्ष्मी चन्द जी म.सा. वास्तव में एक बहुमूल्य रत्न मणि थे। आप मर्मज्ञ शास्त्रवेत्ता, आगम रसिक, शोधप्रिय इतिहासज्ञ एवं विशुद्ध श्रमणाचार पालक और प्रबल समर्थक सन्त थे। लगभग ५६ वर्षों की सुदीर्घ अवधि तक अनन्य निष्ठा के साथ श्रमणधर्म का पालन करते हुए आपने अनेक हस्तलिखित एवं प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन कर स्थानकवासी परम्परा के विशिष्ट कवियों, तपस्वियों, साध्वियों आदि के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला। श्री रतनचन्द्र पद मुक्तावली, सुजान पद सुमन वाटिका, तपस्वी मुनि बालचन्द्रजी, सन्त-जीवन की झांकी आदि अनेक कृतियां आपके परिश्रम से ही प्रकाश में आ सकीं। सन्त-सतियों के विद्याभ्यास में आपकी गहन रुचि थी और समय-समय पर आप उनको पढ़ाया भी करते थे। सं. १९६५ में मारवाड़ के हरसोलाव ग्राम में श्री बच्छराजजी बागमार की धर्म पत्नी श्रीमती हीराबाई की कुक्षि से जन्मे लूणकरण जी अल्पायु में पिताश्री का वियोग होने पर विक्रम संवत् १९७९ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को १४ वर्ष की वय में मुथाजी के मंदिर, जोधपुर में आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में भागवती दीक्षा अंगीकार कर मुनि लक्ष्मीचन्द बन गए थे। आपको प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। पुराने सन्त-सतियों का जीवन चरित्र, जो सहज उपलब्ध नहीं होता था, उसे श्रमपूर्वक खोज कर आपने समाज के सामने रखा। संयम धर्म की उपेक्षा आपको कतई पसन्द नहीं थी। आप सत्य बात कहने में स्पष्ट रहते थे। अन्दर और बाहर से आप एक थे। सरल एवं भद्रिक प्रकृति के सन्त थे। लम्बे कद एवं सुडौल देहधारी पण्डित श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज विहार का सामर्थ्य न रहने पर गत दो वर्षों से जोधपुर में स्थिरवास विराजित थे। आपके सुशिष्य श्री मानमुनि जी म.सा. ने आपकी तन-मन से सेवा कर एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया। बाबा जी श्री जयन्तमुनि जी एवं बसन्त मुनि जी ने भी सेवा का लाभ लिया। कालधर्म को प्राप्त होने के लगभग १० दिन पूर्व पाट से गिर जाने के कारण आपकी गर्दन की हड्डी टूट गई थी, जिसके अनन्तर आपने देह की विनश्वरता को जानकर आचार्यप्रवर की स्वीकृति मिलने पर आलोचना प्रायश्चित्तपूर्वक चित्त को समाधि में लगा लिया था।

आपके देहावसान पर जोधपुर, पीपाड़ , पाली, भोपालगढ़, फलौदी, मंडावर, ब्यावर, सोजत सिटी, रतलाम, मेड़ता सिटी, जयपुर आदि अनेक स्थानों पर श्रद्धांजलि अर्पित कर गुण-स्मरण किए गए।

मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. ने काव्य रूप में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा -

ले गयो जस लक्ष्मी मुनि, झोलो भर-भर जोर।
शिष्य सुजान की साधना, मानी दूनी कठोर॥

सरल और शास्त्रज्ञ थे, रखते मधुर मिलाप।
संगठन चाहते सदा, पच्चखे पाप प्रलाप ॥
व्याधि से विरला गयो, शान्ति उर अपनाय।
कसर पड़ी मुनि संघ में, वा पूरण किम थाय ॥

पौषशुक्ला चतुर्दशी को चरितनायक के ६९ वें जन्म-दिवस पर श्रावकों ने वर्ष में ५ दिन दाल मिलें बन्द रखने का निर्णय कर षट्काय प्रतिपालक गुरुदेव के प्रति सच्ची श्रद्धा अभिव्यक्त की तथा श्री महावीर जैन स्वाध्याय शाला के छात्रों ने अच्छी संख्या में दयाव्रत किए।

२१ जनवरी को आचार्यप्रवर के सान्निध्य में व्यसन-निवारण दिवस मनाया गया, जिसमें दाल मिलों के लगभग ८० श्रमिकों ने मांस-मदिरा सेवन का त्याग किया। २३ जनवरी को यहाँ से विहार कर ठाणा ४ से कस्तूरबा ग्राम, सिमरोल, वाई, चोरल, बलवाड़ा होते हुए बड़वाह पधारे। यहाँ आचार्य श्री की दीक्षा-तिथि पर श्री संघ द्वारा स्वाध्याय संघ की शाखा तथा स्वाध्याय शाला की स्थापना की गई। यहाँ से आप सनावद, बेड़िया फरसते हुए रोड़िया पधारे, जहाँ भावसार बंधुओं और दशोरा महाजनों ने आचार्य श्री के प्रति अत्यंत श्रद्धा- भक्ति प्रदर्शित की। फिर आप अन्दड़, गो गांव, खरगोन, ऊन, सैगांव, जुलवानियाँ, बालसमन्द होते हुए सेंधवा पधारे। यहाँ पर धर्म की ज्योति प्रदीप्त कर गवाड़ी पधारे, जहाँ पंचायत भवन में विराजे। यहाँ सेन्धवा एवं खरगोन के श्रेष्ठि श्रावक उपस्थित हुए। जैनधर्म के कर्मवाद एवं गीता के कर्मयोग पर चर्चा करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया –**"गीता का कर्मयोग निष्काम भाव से कर्म/पुरुषार्थ करने की प्रेरणा करता है, जिससे जैनधर्म का विरोध नहीं है, किन्तु कर्मबन्धन से बचने के लिए जैन कर्मवाद में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। कर्मों को ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य , नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार का बताया है। इनके पूर्णक्षय से ही मुक्ति सम्भव है। इसके लिए सबसे पहले मोहकर्म को जीतना होता है, क्योंकि वही कर्मों का राजा है। मोह को जीतने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं अन्तराय कर्म स्वतः नष्ट हो जाते हैं। ये चारों घाती कर्म हैं। शेष चार कर्म अघाती हैं जो केवलज्ञानी का शरीर छूटने के साथ क्षय हो जाते हैं। जैन कर्म-सिद्धान्त के अनुसार स्वयं आत्मा ही अपने कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता एवं उनसे मुक्ति पाने वाला है। इस दृष्टि से जैन दर्शन आत्मवादी एवं पुरुषार्थवादी है। निष्कामभाव से कर्म करना भी मोह को जीतने का ही उपाय है।"** आचार्यप्रवर से इस तात्त्विक विषय का सहज सरल भाषा में समाधान प्राप्त कर श्रोताओं को प्रमोद का अनुभव हुआ। फिर आप बीजासन घाट, पलासनेर, हाड़ाखेड़, दहीवद होते हुए शिरपुर पधारे। मालव एवं मध्यप्रदेश में चरितनायक के इस विचरण-विहार से जिनशासन की महती प्रभावना हुई। विशुद्ध जिनशासन की जाहो जलाली व जन-जन के जीवन में धर्म संस्कार के बीज वपन करने के पुनीत लक्ष्य से आप द्वारा सदाचार, निर्व्यसनता, स्वाध्याय एवं सामायिक की प्रेरणा से अनेकों व्यक्तियों ने अपने जीवन को भावित किया। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के संगम पुण्यनिधान पूज्यपाद की असाम्प्रदायिक वृत्ति, जन-जन की कल्याण-कामना व एकमात्र जिनशासन की प्रभावना की निःस्वार्थवृत्ति से यहां के लोग आपसे बहुत प्रभावित हुए व आप उनकी अनन्य आस्था के केन्द्र तथा हृदय सम्राट बन गये। अब आपका लक्ष्य महाराष्ट्र में धर्मोद्योत करने का था। महाराष्ट्र की धरा पर आपके पदार्पण का उसी प्रकार स्वागत हुआ, जैसे कई वर्षों की अनावृष्टि के बाद हुई वर्षा का । महाराष्ट्र के विभिन्न ग्रामों व नगरों के श्रद्धालुओं का मन हुआ कि इन अध्यात्मनिष्ठ संतों की पदरज एवं अमृतमयी वाणी से उनका हृदय एवं ग्राम नगर भी पावन बनें, अतः आगे से आगे विनतियों का सतत क्रम चलता

रहा।

शिरपुर में श्रावक-श्राविकाओं ने विविध प्रत्याख्यान अंगीकार कर विशेष श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया। प्रातः एवं अपराह्न दोनों समय यहाँ उपस्थित होकर धुलिया, जलगांव, गोलयाना, नन्दुरबार, वर्शी, नरडाणा आदि क्षेत्रों के धर्मप्रेमियों ने भगवन्त की सेवा में अपने-अपने क्षेत्र स्पर्शन हेतु आग्रह एवं विनययुक्त निवेदन किया। शिरपुर से आपश्री वर्शी पधारे । यहाँ श्री कान्तिलाल जी बाफना जो अमेरिका में कोयले से पेट्रोल तैयार करने सम्बंधी विषय पर पी- एच. डी. के लिए शोध कार्य कर रहे थे, ने आचार्य श्री से विधिवत् श्रावक धर्म की दीक्षा ग्रहण की। आपके पदार्पण पर नरडाणा में संघ का मतभेद प्रेम में बदल गया।

आप विद्वत्ता के साथ सरलरूपेण तत्त्वज्ञान को श्रोतृ-समुदाय को समझाने में दक्ष थे। इसलिए आपके शान्त, गम्भीर एवं मन्द स्वर भी एकाग्रतापूर्वक सुने जाते थे। आपको अपने यश की नहीं, जिनशासन की सेवा एवं जन-जन के सच्चे जीवन-निर्माण की चिन्ता थी। इसलिए आप किसी को अपने से न जोड़कर जिनेन्द्र भगवान एवं उनकी वाणी से ही जोड़ने का लक्ष्य रखते थे। किन्तु भक्त की आस्था, भगवान से अधिक गुरु के प्रति जुड़ जाए, यह भी स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया है। अतः कई भक्तों ने तो गुरु हस्ती को ही अपने हृदय के भगवान के रूप में स्वीकार किया है।

नरडाणा से मालिच, सोनागिर, नगांव होते हुए आप २३ फरवरी को धुलिया पधारे। आपके शुभागमन पर महाराष्ट्र के लोकप्रिय दैनिक 'स्वतंत्र भारत' ने पूरे पृष्ठ में आपश्री के विराट् व्यक्तित्व पर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की, जिसकी सैकड़ों प्रतियाँ हाथों-हाथ समाप्त हो गईं।

नगरप्रवेश का दृश्य अतीव मनमोहक था। "आचार्य श्री आये हैं, नयी रोशनी लाये हैं" के जयघोषों से सम्पूर्ण नगर आह्लादित था। चरितनायक ने यहाँ अमोलक ज्ञानालय में हस्तलिखित शास्त्रों एवं ग्रन्थों का अवलोकन कर ऐतिहासिक तथ्य संकलित किये। यहाँ स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई। प्राकृत ग्रन्थ 'कुवलयमाला' में वर्णित चण्डसोम, मान भट्ट, मायादित्य, लोभदेव और मोहदत्त के आख्यानों के माध्यम से आत्म-कर्तृत्व, कर्म, कषाय, सम्यक्त्व, भव-भ्रमण, मुक्ति आदि विषयों पर आचार्य श्री द्वारा की गई व्याख्या से शिवाजी विद्या प्रसारक संस्थान के कला, विज्ञान और वाणिज्य कालेज के प्रोफेसर (प्राकृत) श्री विश्वनाथ जंगम तथा अनेक विद्यार्थी अत्यंत प्रभावित और श्रद्धाभिभूत हुए। यहाँ ३० व्यक्तियों ने नित्यप्रति स्वाध्याय करने व माह में एक दया करने का संकल्प कर साधनामार्ग में अपने चरण बढाये। २ मार्च से एक सप्ताह तक आपने मालेगांव के विभिन्न उपनगरों को फरसते हुए धर्म की महत्ती प्रेरणा की। यहाँ सुश्रावक श्री मालूजी के नेतृत्व में बीस-पच्चीस युवकों ने स्थानक में नित्य आकर सामूहिक सामायिक-स्वाध्याय करने के संकल्प लिए। यहां महासती प्रीतिसुधाजी म.सा. आदि ठाणा एवं मूर्तिपूजक परम्परा के सन्त श्री चन्द्रशेखरजी आदि ठाणा चरितनायक के दर्शनार्थ पधारे। हीरादेसर (मारवाड़) के लोढा बन्धुओं की गुरुभक्ति एवं संघसेवा उल्लेखनीय रही। लासलगाँव की प्रबल विनति एवं आन्तरिक भावना को महत्त्व देकर करुणानिधान ने शताधिक मील की अतिरिक्त पदयात्रा के कष्ट को भी गौण कर दिया। इसलिए लासलगाँव होकर जलगाँव जाने का लक्ष्य बनाया।

• लासलगाँव होकर खानदेश में प्रवेश

मालेगांव से पाटणा, सोदाणा फरसते हुए आप उमराणा पधारे। यहाँ फाल्गुनी चौमासी पर आपकी महती प्रेरणा से दैनिक स्वाध्याय की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। रामदेव टेकरी के अहिंसा भगत जबरी बाबा ने आध्यात्मिक-सन्त

शिरोमणि आचार्य श्री को अपने यहाँ विराजने का आग्रह किया। फिर चिचुआ से चांदवड़ पधारते समय आपने ३ मील की दुर्गम पहाड़ी पार कर मार्ग में नेमिनाथ ब्रह्मचर्याश्रम में छात्रों को सम्बोधित किया। फिर कांजी, सांगवी होते हुए चरितनायक लासलगांव पधारे। वहाँ श्री आनन्दराज जी मूथा के नेतृत्व में 'युवक धर्म से विमुख क्यों?' विषय पर आयोजित गोष्ठी में आचार्य श्री ने अनेक युवकों की शंकाओं का समाधान करते हुए उन्हें नित्य स्वाध्याय की प्रेरणा दी। आपने फरमाया—**"भौतिकता का आकर्षण मनुष्य को जल्दी प्रभावित करता है, धर्म एवं अध्यात्म का महत्त्व देर से समझ में आता है। किन्तु जो धर्म और अध्यात्म के लिए गुरुजनों की सत्संगति में नहीं आते, वे सदा के लिए सही समझ से वंचित हो जाते हैं। बुजुर्गों का आचरण भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वे धर्म को अपने जीवन-व्यवहार में अपना लें तो कोई कारण नहीं कि उनके सम्पर्क में आए युवा धर्म से विमुख हों। धर्म की आवश्यकता क्यों, इसका चिन्तन युवकों में प्रसारित करने की आवश्यकता है।"**

आचार्य श्री के ३६ वर्षों बाद शुभागमन से लासलगाँववासियों को यह प्रतीत हुआ कि हमारा भाग्योदय है कि ऐसे उत्कृष्ट संयमधनी युग-मनीषी अध्यात्म योगी के चरण इस छोटे से गांव में पड़े हैं। ग्रामवासियों ने पूर्ण मनोयोग से आपके पदार्पण का लाभ उठाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। तपस्या का तांता लग गया। सामूहिक दयाव्रत, पौषध, उपवास आदि के साथ ३५ युवकों ने प्रतिदिन स्थानक में आकर सामूहिक स्वाध्याय करने का संकल्प लिया। पूरे एक सप्ताह पर्युषण जैसा धर्माराधन का ठाट रहा। ब्रह्मेचा एवं सांड परिवार ने आगन्तुकों के सेवा-सत्कार का लाभ लिया। जोधपुर में महासती श्री बिरदीकंवर जी म.सा. के देहावसान के समाचार प्राप्त होने पर धर्मसभा में आचार्य श्री ने सतीजी की सेवा, कष्टसहिष्णुता एवं संयमी जीवन पर प्रकाश डाला और चार लोगस्स का कायोत्सर्ग कर स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति शान्ति की कामना की।

अप्रमत्त साधक आचार्य श्री दक्षिण भारत के दुर्गम मार्गों को पार करते हुए भी बिना थके पूर्ण उत्साह के साथ जिनशासन प्रभावना व जनकल्याण के कार्यों के प्रति जागरूक थे। आपका इन क्षेत्रों में यह आगमन जन-जन के मानस में त्याग, तप, स्वाध्याय, सामायिक एवं व्रत-नियमों के प्रति आस्था एवं उमंग प्रकट कर रहा था। जहां-जहां भी आपके कदम पड़ते, वहाँ के लोग अपने जीवन को धन्य-धन्य समझते।

लासलगाँव से विहार कर आचार्य श्री पालखेड़, पीपलगाँव, बसवन्त, दावचवाड़ी, नान्दूर्डी, तलेगाँव रोडी होते हुए मनमाड़ पधारे, जहाँ स्वाध्याय-प्रवृत्ति का श्री गणेश हुआ। श्री पी.एस. सिंघवी संयोजक नियुक्त किये गए। अंकाई में मद्रास के सुश्रावक श्री पृथ्वीराजजी कवाड़ ने सपरिवार धर्मलाभ लिया। पूज्यपाद यहाँ से २१ किलोमीटर का उग्र विहार कर येवला पधारे। यहाँ से १ अप्रेल १९७९ को विहार कर आपके अन्दरसूले पधारने पर औरंगाबाद एवं जालना संघ के प्रतिनिधिमण्डल अक्षयतृतीया पर अपने यहाँ विराजने हेतु भावपूर्ण विनति लेकर उपस्थित हुए । सूरेगाँव से बैजापुर पधारने पर आपके प्रवचन से युवकों में धार्मिक चेतना का संचार हुआ व उन्होंने श्री ऋषभचन्दजी संचेती के नेतृत्व में नित्य स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा की। फिर खण्डाला, भीवगांव, घूघरगांव में जिनवाणी का पान कराते हुए आप लासूर स्टेशन पधारे, जहाँ १० अप्रेल १९७९ महावीर जयन्ती पर अध्यात्म-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री ने भगवान महावीर के उपदेशों की उपादेयता का प्रभावी प्रतिपादन किया। आपकी प्रेरणा से लासूर गांव एवं लासूर स्टेशन पर स्वाध्याय मण्डल का गठन हुआ। यहाँ जलगाँव का शिष्टमण्डल विनति लेकर उपस्थित हुआ। बोदवड़ जामनेर विराजित सेवाभावी श्री लघु लक्ष्मीचन्दजी महाराज आदि

ठाणा की सहमति जानकर करुणानाथ ने अक्षयतृतीया पर औरंगाबाद पधारने की स्वीकृति फरमायी, जिससे औरंगाबाद संघ को अतीव प्रमोद हुआ और जामनेर विराजित सन्तों ने भी अपने विहार की दिशा औरंगाबाद की ओर की।

आचार्य श्री जहाँ भी पधारते, प्रायः श्रद्धालु भक्तों का वहाँ आगमन होता रहता था। यह क्रम न केवल मारवाड़ एवं मेवाड़ के ग्रामों में देखा गया, अपितु मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत के प्रान्तों में भी इसकी छाप दृष्टिगोचर हुई। इसमें आचार्य श्री का प्रभावशाली व्यक्तित्व ही प्रमुख कारण था, जो श्रावकों को दुर्गम एवं दूरस्थ स्थलों पर भी खींच लेता था। आपके सान्निध्य में श्रद्धालुभक्त शान्ति का अनुभव करने के साथ अपने आपको आध्यात्मिक ऊर्जा से समृद्ध अनुभव करते थे। आपश्री लासूर से डोण गांव, जम्भाला होते हुए औरंगाबाद छावनी पधारे। वहाँ के उपनगरों में आपके आध्यात्मिकता से ओतप्रोत प्रेरणादायी प्रवचन हुए। उनमें अक्षयतृतीया के दिन महावीर भवन कुमारवाड़ा के विशाल प्रांगण में भगवान् आदिनाथ की तपसाधना की महत्ता पर दिया गया आध्यात्मिक प्रवचन अद्वितीय रहा। इस अवसर पर अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के द्वारा न्यायाधिपति श्री चाँदमलजी लोढा जोधपुर, डॉ. सूर्यनारायणजी अजमेर, श्री चन्द्रराज जी सिंघवी जयपुर, श्री बादल चन्दजी मेहता इन्दौर का उल्लेखनीय सेवाओं के लिए अभिनन्दन किया गया तथा यहाँ स्वाध्याय समिति का गठन किया गया। महाराष्ट्र क्षेत्र में स्वाध्याय के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु श्री टीकमचन्दजी हीरावत जयपुर एवं श्री पनराजजी ओस्तवाल ने कतिपय क्षेत्रों का दौरा किया। लम्बे समय से जलगांव श्री संघ आगामी चातुर्मास हेतु आपकी सेवा में विनति कर रहा था। अक्षय तृतीया के प्रसंग पर उन्होंने अपनी विनति पुनः करुणाकर गुरुदेव के चरणों में प्रस्तुत की। चातुर्मास की स्वीकृति पाकर जलगांव वासियों के मन मयूर नाच उठे और वहाँ के संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। यहां से पूज्यपाद दौलताबाद, विश्वविख्यात लेणी गुफा होते हुए एलोरा पधारे व श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम विराजे। यहाँ से आप हत्तनूर, कन्नड़-अन्धानेर एवं भाँवरवाड़ी पधारे। यहाँ मराठवाड़ा की सीमा समाप्त होकर खानदेश की सीमा प्रारम्भ होती है।

मराठवाड़ा से खानदेश में प्रवेश करते हुए आपका विहार चालीसगांव की ओर हुआ। यहां अगवानी में विशाल संख्या में भक्तजनों ने चुंगी चौकी से ही विहार में सम्मिलित होकर जय-जयकारों के साथ पूज्यपाद का प्रवेश कराया। यहां के ४-५ दिन के प्रवास में अनेक श्रद्धालु भक्तों ने नियमित स्वाध्याय एवं मासिक व साप्ताहिक दयाव्रत के नियम अंगीकार किये। चरितनायक चालीसगांव से बागली , कजगांव, भडगांव, पांचोरा, महिन्दले, टिटवी, शिरसमणी, पारोला, बहादुरपुर आदि क्षेत्रों को अपनी पदरज से पावन बनाते हुए आमलनेर पधारे, जहां ५ जून से जैनधर्म संस्कार शिविर प्रारम्भ हुआ। शिविर में ३४ छात्रों व ३५ छात्राओं ने भाग लिया। यहां से पूज्यपाद दहीवद नीमगंवाड़ फरसते हुए चौपड़ा पधारे, जहां २० छात्रों व ३० छात्राओं ने भीषण गर्मी में भी स्थानीय धार्मिक संस्कार शिविर में नियमित उपस्थित होकर ज्ञानार्जन किया। युगप्रभावक आचार्य भगवन्त के पावन प्रवचनामृत से प्रभावित भव्य जनों ने अनेक व्रत-प्रत्याख्यान स्वीकार किये। मधुर व्याख्यानी श्री हीरामुनि जी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर) ने अपने प्रवचनों के माध्यम से रात्रि-भोजन त्याग व सामायिक स्वाध्याय की प्रभावी प्रेरणा की। चौपड़ा से २० जून १९७९ को श्रद्धासिक्त भावभीने वातावरण में विहार कर करुणाकर अडावद चिंचोली, साकली, यावल व नीमगांव में धर्म प्रेरणा करते हुए भुसावल पधारे। भुसावल में जिनवाणी की पावन सरिता प्रवाहित करते हुये आपका विहार चातुर्मासार्थ जलगांव की ओर हुआ।

• जलगांव चातुर्मास (वि.सं. २०३६)

जलगांव चातुर्मास की स्वीकृति के समय से ही जलगांववासी अति उत्साहित मन से आचार्य भगवन्त के पावन पदार्पण की प्रतीक्षा में थे। सबके मन में प्रबल उत्कंठा व दृढ संकल्प था कि शीघ्र भगवन्त पधारें और हम उनके चातुर्मासिक सान्निध्य में नित्य प्रति पावन दर्शन, वन्दन व प्रवचन श्रवण का लाभ लें। अपने जीवन में व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान अंगीकार कर साधना के सुमेरु आचार्य देव के चरणारविन्दों में अपनी भक्ति के पुष्प अर्पित करें तथा अपने आपको धन्य धन्य बनायें। साकेगांव, नशीराबाद होते हुए दिनांक ५ जुलाई १९७९ को पूज्यपाद के वि.सं. २०३६ के ५९ वें चातुर्मासार्थ जलगांव पदार्पण से जलगांव का कण-कण मानो नाच उठा, सभी के चेहरों पर अपने सौभाग्य के प्रति प्रमोद व्यक्त होने के साथ ही इस चातुर्मास में कुछ कर गुजरने का प्रबल उत्साह व श्रद्धा का आवेग परिलक्षित हो रहा था। जैन धर्म, श्रमण भगवान महावीर एवं गुरु हस्ती की जय-जयकार से जलगांव के राजमार्ग व नवजीवन मंगल कार्यालय की ओर जाने वाले सभी मार्ग गूंज उठे। श्रावक श्राविका आबालवृद्ध जैन-जैनेतर के कदम मानो स्वत: आपके चातुर्मास स्थल की ओर उठ रहे थे। मंगलमय प्रवेश की वेला में जलगांव के अग्रगण्य श्रावक प्रबुद्ध स्वाध्यायी श्री नथमलजी लूंकड़, उज्ज्वल विरासत के धनी श्री ईश्वर बाबू ललवानी, परम पूज्य गुरुदेव के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण करने को समुत्सुक समाजसेवी श्री सुरेशकुमार जी जैन, शाकाहार के प्रबल प्रेरक भी रतनलाल जी बाफना आदि गणमान्य सुश्रावकगण व अन्य वक्ताओं ने प्रमुदित मन से आराध्य गुरुदेव का अभिनन्दन करते हुए अपने मन के भाव श्री चरणों में अर्पित किये। यहां प्रथम प्रवचन में ही पूज्यपाद गुरुदेव ने स्वाध्याय का संदेश प्रसारित करते हुए जलगांव वासियों को धर्मसाधना से जुड़ कर स्वाध्याय के माध्यम से जिनवाणी की पावन सरिता को महाराष्ट्र के कोने-कोने में पहुंचाने का आह्वान करते हुए फरमाया - "आत्मा के भीतर अनन्त शक्ति और सामर्थ्य है, इसको पहिचानने का माध्यम है 'स्वाध्याय'। ज्ञान की ज्योति जगाने का सशक्त साधन है 'स्वाध्याय'। श्रद्धाशील भक्तों के मानस पटल पर आपके जादुई शब्द मानो अंकित हो गये थे। समाजसेवी सुश्रावकों ने अपनी आस्था के अनन्य केन्द्र आचार्य हस्ती की प्रेरणा को मूर्त रूप देने का दृढ संकल्प किया और ८ जुलाई को ही यहां महाराष्ट्र जैन स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई जो अद्यावधि स्वाध्याय संघ, जोधपुर की क्षेत्रीय ईकाई के रूप में महाराष्ट्र प्रान्त में स्वाध्याय की अलख जगाये हुए है व इसके द्वारा शिविरों और धार्मिक पाठशालाओं के माध्यम से सक्रिय स्वाध्यायी तैयार करने व पर्युषण पर्वाराधन हेतु सैकड़ों क्षेत्रों में स्वाध्यायी भेज कर जिनशासन-सेवा का महान् कार्य किया जा रहा है।

महाराष्ट्र स्वाध्याय संघ की स्थापना मानो इस चातुर्मास में सम्पन्न होने वाले कार्यों का शुभारम्भ था। पूरे चातुर्मास में दीर्घगामी संस्थाहितकारी प्रवृत्तियों के शुभारम्भ का क्रम चलता ही रहा। चातुर्मास में धीरे धीरे बहूमंडल व सास मंडल की बहिनों में जैनधर्म व दर्शन के शिक्षण के माध्यम से ज्ञान-प्रसार का कार्य तो आगे बढ़ा ही, साथ ही जैन आचार शैली, समन्वय-शान्ति युक्त गृहस्थ जीवन के संस्कारों को हृदयंगम कर बहिनों ने घर-घर में शान्ति, स्नेह व समन्वय का आदर्श अपना कर आदर्श जैन परिवारों की संरचना का अभिनव कार्य किया। उस समय ज्ञानाराधन कर जो बहिनें श्राविका-मंडल से जुड़ी, उनमें श्रीमती विजया जी मल्हारा, रसीला जी बरडिया प्रभृति बहिनें आज बहूमंडल व स्वाध्याय संघ के माध्यम से बहिनों में स्वाध्याय, शिक्षा व संस्कार निर्माण का सन्देश प्रचारित करने में कुशलतापूर्वक अपना योगदान कर रही हैं।

यह चातुर्मास महाराष्ट्र में स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार हेतु मील का पत्थर साबित हुआ। यहां के कुशल कर्मठ

कार्यकर्ताओं ने पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा को साकार स्वरूप देने में कोई कसर न रखी। इस चातुर्मास में स्वाध्याय शिक्षण हेतु, तीन शिविर आयोजित किये गये, जिनमें संख्या व प्रतिनिधित्व क्षेत्र का निरन्तर विस्तार होता गया। जलगांव में आयोजित प्रथम स्वाध्यायी शिक्षण शिविर में महाराष्ट्र के २० स्थानों से आये विद्यार्थियों, अध्यापकों, श्रेष्ठिवर्यों, डाक्टरों व प्रोफेसरों ने भाग लेकर अपने आपको गुरु हस्ती की प्रेरणा की अजस्र धारा स्वाध्याय-संघ का सदस्य बन कर जिनशासन संरक्षण हेतु सजग शास्त्रधारी शान्ति सैनिक बनकर अपना सौभाग्य समझा। इस शिविर में शिविरार्थियों को विविध श्रेणियों में विभक्त कर उन्हें वक्तृत्व कला , शास्त्राध्ययन, थोकड़ों आदि का ज्ञानाभ्यास कराया गया। आचार्य भगवन्त ने इस प्रथम शिविर में उपस्थित प्रबुद्ध शिविरार्थियों को उद्बोधित करते हुए फरमाया - "आकांक्षा यह है कि एक-एक माह में दस-दस के हिसाब से चातुर्मासकाल में चालीस स्वाध्यायी भाई तैयार हो जाने चाहिए। मैं यह कोटा कम दे रहा हूँ , अधिक नहीं दे रहा हूँ। जब आप इस दीपक को प्रज्वलित करेंगे तब ऐसा लगेगा कि हम सब मौजूद हैं, हमारे साथ में सैकड़ों, हजारों समाज सेवी हैं। स्वाध्याय का ऐसा दीपक प्रज्वलित कर दें तो आपके धर्मस्थान, उपासना मन्दिर, स्थानक, ज्ञान शिखर से प्रदीप्त रहेंगे। आप अपनी भावी पीढ़ी को भी प्रेरणा दे सकेंगे।" युग प्रभावक आचार्य भगवन्त का यह आह्वान महाराष्ट्र के लिये एक युगान्तरकारी सन्देश था।

दिनांक २२ से २६ सितम्बर १९७९ तक श्री महाराष्ट्र जैन स्वाध्याय संघ की ओर से द्वितीय शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ४२ स्वाध्यायी भाइयों व ६१ बहिनों ने भाग लेकर १३ क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व किया। शिविरकाल में हजारों सामायिक, उपवास, बेले, दया आदि के साथ शिक्षण-प्रशिक्षण के कार्यक्रम हुए। दिनांक २८ अक्टूबर से यहाँ साधना-शिविर का आयोजन हुआ। दिनांक ३० अक्टूबर से प्रारम्भ तृतीय शिविर में १३४ शिविरार्थियों ने भाग लिया।

चरितनायक आचार्य भगवन्त के सान्निध्य में इस वर्ष का पर्युषण-पर्वाराधन जलगांववासियों के लिये एक अनूठा अनुभव था। श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्ररूपित साधुमर्यादा के अनुरूप श्रमण समाचारी का पालन करने वाले रत्नाधिक संतों द्वारा शास्त्र-वाचन, वीरशासन के ८१ वें पट्टधर युगमनीषी युग-प्रभावक, आचार्य देव का जीवन निर्माणकारी उद्बोधन, व्रत-प्रत्याख्यान हेतु तत्पर जलगांव के जन-जन – ये सब मिल कर समवसरण का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। प्रार्थना, प्रवचन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान सभी कार्यक्रमों में आशातीत उपस्थिति आध्यात्मिक आनन्द की छटा को शतगुणित कर रही थी। महापर्व संवत्सरी के पावन प्रसंग पर तपोधनी आचार्य भगवन्त ने नवतत्त्वों का निरूपण करते हुए आत्म-निरीक्षण पर बल देते हुए श्रद्धा, संगठन, संयम एवं स्वाध्याय की आवश्यकता प्रतिपादित की।

परम पूज्य भगवन्त जहां एक ओर अपने प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से सहज ही भक्तजनों के हृदय में नैतिकता, निर्व्यसनता, प्रामाणिकता व अनुकम्पा के भाव जागृत कर देते, वहीं अपनी सहज सरल भाषा में धर्म का स्वरूप समझा देते। वर्षावास में नैतिक बल जागृत करने व श्रावक के तीसरे व्रत अदत्तादान के अतिचार 'चोर की चुराई वस्तु ली हो' से बचने की प्रेरणा देते हुए करुणाकर ने फरमाया - "आप सोना-चांदी के व्यापारी हैं, दुकान पर बैठे हैं - कोई आदमी आभूषण बेचने आया या घड़ियां बेचने आया और कम कीमत में बेच रहा है। एक ओर मन में विचार आया कि १००-१५० घड़ियां खरीद लेनी चाहिए। ३०० रुपये की घड़ी १५० रुपये में मिल रही है, यह लोभ मन में आ गया। दूसरी ओर उसी वक्त यह ध्यान आया कि हराम की चीज है, मुझे किसलिए लेनी है, हो न हो यह चोरी या तस्करी का माल है, मुझे ऐसा माल नहीं चाहिए। इसको लेने से मेरा मन चंचल और भयभीत रहेगा, अन्याय को प्रोत्साहन मिलेगा। यह व्यर्थ में खतरे का प्रसंग है, इसलिये मुझे नहीं चाहिए। मन को रोका तो गिरती

हुई आत्मा को रोक लिया।"

मनुष्य की मकड़ी से तुलना करते हुए आपने फरमाया - **"मकड़ी अपना जाल फैलाती है सुरक्षा के लिए, किन्तु वह जाल बन जाता है मकड़ी को उलझाने के लिए। यही हालत मनुष्य की है। वह भी अपने बनाये हुए जाल में स्वयं फंस जाता है । फिर भी दोनों में एक अन्तर है। जाल बनाने वाली मकड़ी में जाल बनाने की ताकत है, जाल को तोड़ने की नहीं। लेकिन मानव में दोनों योग्यताएं हैं । वह ज्ञान एवं क्रिया के माध्यम से अपने जाल को समाप्त कर सकता है।"**

साधर्मी सेवा के सम्बन्ध में एक दिन करुणाकर आचार्य भगवन्त ने अपने प्रवचनपीयूष में फरमाया- "आप लोगों के यहां शादी-विवाह के अवसर पर लापसी या गुड़ बांटने का मौका आया होगा। घर-घर में हांती दी जाती होगी, पाव-आधा पाव लापसी की। पहले उस हांती से कमजोर स्थिति वालों की गुजर चलती थी। समाज में जब उसका वितरण होता था, तब यह देखा जाता था कि किसी बुढ़िया या विधवा के यहां हांती जा रही है , जिसके कोई कमाने वाला नहीं है। उसके घर पर पहुँचते और लापसी के नीचे सोने की मुहर रख कर लापसी के बहाने उसके घर पहुंचा देते। क्या आपके इतने बड़े नगर में ऐसा वात्सल्य करने वाला मिलेगा ? जलगांव क्या, पूरे महाराष्ट्र में खोजने जायेंगे तो कोई मिलेगा, जो **यह कहे कि मेरी जो बहिनें और मेरे जो भाई आर्थिक स्थिति से कमजोर हैं उन भाई-बहिनों की मदद करना, वात्सल्य करना मेरा काम है, क्योंकि मेरे पास दो पैसे का साधन है और इनके पास नहीं है। इनकी मदद नहीं करूंगा तो मेरी हलकी होगी।** कई ऐसी बहिनें हैं जो गावों में गोबर चुनकर लाती हैं और अपना गुजर चलाती है। आप लोग गद्दी पर बैठकर काम चलाते हैं, लेकिन महाजनों की लड़कियाँ दूसरे के यहाँ पानी भरती हैं, दूसरों के यहां सिलाई का काम करती हैं, आटा पीसती हैं और इस तरह से अपना गुजर चलाती हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि भगवान महावीर के अहिंसा एवं संयम धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ ऐसे होते हैं, जिन्हें अपने धन का त्याग करना पड़े तो त्याग में संकोच नहीं करते।"

जगतवत्सल करुणानाथ के इस प्रवचन का सकारात्मक प्रभाव हुआ। परम पूज्य गुरुदेव का चिन्तन था कि **अनुकम्पा भाव सम्यक्त्व का लक्षण है। समाज के अग्रगण्य मुखियाओं का यह कर्तव्य है कि वे ये समझें कि समाज एक देह की भांति है जिसके सभी अंगों की देखभाल करने की उनकी जिम्मेदारी है। पूज्यपाद का चिन्तन था कि समृद्ध व्यक्ति यदि त्यागवृत्ति अपनाते हैं तो इसका द्विविध लाभ होगा, समृद्ध व्यक्तियों के जीवन में आरम्भ, परिग्रह व ममत्व घटेगा और जरूरतमंद भाई-बहिन अभावजन्य आर्त-रौद्र से बचकर सहज ही धर्म से जुड़ेंगे।** चरितनायक के प्रियभजन "दयामय ऐसी मति हो जाय" की उद्बोधकारी कड़ियों को आपकी पीयूषपाविनी मंगलमयी वाणी-सुधा से श्रवण कर भला किनका हृदय वात्सल्यसिक्त व अनुकम्पा सम्पन्न नहीं हो जाता–

"औरों के दुःख को दुःख समझूं, सुख का करूं उपाय.... दयामय ऐसी मति हो जाय...."

चातुर्मास समाप्ति के पूर्व चतुर्दशी को आपने फरमाया–"आज चातुर्मास समाप्ति की चवदश हो गई। आज प्रतिक्रमण जो कर सकें उनको प्रतिक्रमण करना चाहिए। रात्रि-भोजन और कुशील का त्याग आज सबको करवा रहा हूँ। सामायिक साधना का कार्यक्रम भी आपके ध्यान में रहे।

हम संतों से संबंधित दो बातों की ओर आपका ध्यान रहे। एक तो विहार के समय अथवा कभी भी कोई भी व्यक्ति हम संतों में से किसी की भी फोटो खीचें नहीं और खिचावें नहीं। फोटो खिंचाने की हमारी परम्परा नहीं

है । मुनि सम्मेलन में प्रतिबंधित है और हमारी परम्परा में भी इस पर प्रतिबंध है। आपके सिद्धान्त आपके पास हैं, उनके अनुसार हर अवसर पर फोटो खींच लेने की आपकी परंपरा है, उसको संतों के फोटो खींचने के काम में न लावें। ऐसे नमूने हो चुके हैं , इसलिए आपको सावधान किया है। कोई भी व्यक्ति संतों के फोटो नहीं खींचेगा। (आपने सबको इसका त्याग करवाया)

दूसरी बात याद रहे कि **अब तक पुस्तकें और कुछ ग्रंथ लिखने, संपादन करने, संशोधन करने-कराने का जो काम आया उसमें हम संशोधन करते रहे। छपाने के सम्बन्ध में प्रेरणा करने का ऐसा हमारा सम्बन्ध नहीं रहा, तथापि कुछ विचार करके हमने उचित समझा कि आज से लेखक के नाम से किसी ग्रन्थ पर हमारा नाम प्रकाशित नहीं किया जायेगा। हमारे नाम से किसी पुस्तक का प्रकाशन नहीं किया जायेगा। यह निर्णय आज लिया गया है।**

जलगाँव में पूज्यपाद का यह चातुर्मास स्वाध्याय, साधना, धर्मप्रचार सभी दृष्टियों से एक सफल ऐतिहासिक चातुर्मास था। इस वर्षावास का प्रभाव खानदेश के बहुत बड़े भूभाग के ग्राम-नगरों पर पड़ा। इसका कारण रहा विचार की ठोस नींव पर आचार का प्रचार। इस चातुर्मास से जलगांव आर्यधरा भारत के धार्मिक नक्शे पर प्रमुख केन्द्र बिन्दु के रूप में मण्डित हो गया। महाराष्ट्र स्वाध्याय संघ की स्थापना के साथ-साथ उदीयमान समाजसेवी, अनन्य गुरुभक्त श्री सुरेश दादा जैन द्वारा २५ अक्टूबर १९७९ को 'महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ' की स्थापना इस चातुर्मास की प्रमुख उपलब्धि और जिनशासन सेवा का उल्लेखनीय सोपान था। प्रबुद्ध विद्वान् स्वाध्यायी श्री प्रकाशचन्द जी जैन के प्राचार्यत्व में विद्यापीठ द्वारा जैन दर्शन के विद्वान अध्यापक तैयार करने का महान् कार्य किया जा रहा है। श्री सुरेश दादा जैन के जीवन एवं विचारों में परम पूज्य गुरुदेव के पावन दर्शन व सान्निध्य लाभ से आया परिवर्तन एवं उनके परिवार की मर्यादित जीवन शैली, उनके द्वारा शासन सेवा हेतु किया गया समर्पण और अपने आराध्य गुरुदेव की प्रेरणाओं को साकार स्वरूप देने की तत्परता, संघ व समाज के लिये गौरव का विषय है। जलगांव के सुज्ञ उदारमना श्रीमन्त श्रावकों द्वारा वात्सल्य समिति के गठन के माध्यम से जरूरतमंद स्वधर्मी बन्धुओं को आजीविकोपार्जन के साधन जुटाकर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास सराहनीय एवं अन्य क्षेत्रों के लिये प्रेरक है।

• महाराष्ट्र भ्रमण

जलगांव का ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर चरितनायक का विहार महाराष्ट्र के विभिन्न ग्राम-नगरों के विचरण के लक्ष्य से हुआ। यहां से मार्गस्थ विभिन्न ग्रामों को अपनी पद रज से पावन बनाते हुए पूज्यपाद जामनेर पधारे। सामायिक स्वाध्याय के संदेशवाहक आचार्य भगवन्त के पावन सान्निध्य एवं मंगलमय उद्बोधन से ५१ व्यक्तियों ने सामायिक व २५ व्यक्तियों ने स्वाध्याय के नियम अंगीकार किये। ज्ञानाराधन हेतु आपकी प्रेरणा से यहां स्वाध्यायशाला का शुभारम्भ हुआ। दक्षिणवासी भक्तजन दीर्घकाल से यह भावना मन में संजोये हुए थे कि परम पूज्य गुरुदेव राजस्थान से आगे बढें तो हम उनके पावन विचरण-विहार की हमारी चिर संचित अभिलाषा को श्री चरणों में निवेदन करें। इस अभिलाषा को मद्रास संघ-अध्यक्ष पद्मश्री मोहनमलजी चौरडिया ने जामनेर उपस्थित होकर भगवन्त के चरणों में अपने संघ, तमिलनाडु व समूचे दक्षिण क्षेत्र की ओर से भावभीनी विनति प्रस्तुत की।

जामनेर से आचार्य श्री पहुर पधारे। यहां समाज में १५ वर्षों से परस्पर वैमनस्य का वातावरण था। मैत्री, करुणा एवं प्रमोदभाव के जीवन्त प्रतीक पूज्यप्रवर ने अपने मांगलिक उद्बोधन में पारस्परिक कषाय छोड़कर प्रेम, सद्भाव एवं मैत्री भाव अपनाने की प्रेरणा की, जिसके फलस्वरूप दोनों गुटों के मुखिया श्री ऋषभजी व श्री मोहनजी

ने परस्पर क्षमा मांग कर इस कलह को समाप्त कर संघ को सामरस्य एवं सद्भाव में आबद्ध किया।

पहुर से पूज्यपाद सेंदूर्णी, पलासखेडा, बाकोद में धर्म का अलख जगाते हुए तोंडापुर पधारे। यहां श्री नामदेव पाटिल ने आपसे सजोड़े शीलव्रत अंगीकार कर अपनी भक्ति का परिचय दिया। यहां से आप फतेपुर पधारे। यहां आपकी पावन प्रेरणा व मंगलमय आशीर्वाद से युवकों व बालिकाओं के धार्मिक शिक्षण के लिये भी महावीर जैन स्वाध्यायशाला की स्थापना हुई। धर्मनिष्ठ श्रद्धालु युवारत्न श्री रतनलाल जी ने संयमधनी तपःपूत आचार्यदेव के फतेपुर पधारने की खुशी में सजोड़े एक वर्ष का शीलव्रत अंगीकार कर श्रद्धा-भक्ति का क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया। मार्गस्थ गांवों व यहां पर कई अन्य व्यक्तियों ने आजीवन शीलव्रत के प्रत्याख्यान किये।

फतेपुर से पूज्यवर्य गोदरी पधारे, जहां मात्र एक जैन घर होते हुए भी सम्पूर्ण गांव के लगभग ७०० व्यक्ति आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। यहां से आपका विहार पहाड़ी घाटियों के विकट मार्ग को पार करते हुए हुआ। परीषह विजेता साधक महापुरुषों की परीक्षा में प्रकृति भी पीछे नहीं रहती है। अचानक वर्षा प्रारम्भ हुई एवं पूज्यपाद ने शिष्य मंडल के साथ एक किसान की कुटिया में विराज कर उसे पावन किया। ५ घंटे वहां विराजने के उपरान्त विहार कर आप जब धावड़ा ग्राम पहुंचे तो शाम हो चुकी थी। सभी सन्तवृन्द के सहज ही उपवास हो गया था। धावड़ा से पीपलगांव, भोकरदन, केदारखेडा, चांडई, राजूर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए भगवन्त जालना पधारे। यहां अपने प्रेरक उद्बोधन में आपने कषाय भाव को पाप कर्मों के बन्धन का हेतु बताते हुए संगठन व सद्भाव की प्रेरणा की। आपकी मंगलमयी ओजस्वी प्रवचन सुधा के प्रभाव से समाज में परस्पर समझौता होने से स्नेहमय वातावरण का निर्माण हुआ। स्वाध्याय की आपकी प्रबल प्रेरणा से बच्चों में संस्कार व धार्मिक शिक्षण देने हेतु यहां स्वाध्यायशाला का श्री गणेश हुआ। यहां पर आपने श्री शोभागसिंहजी चण्डालिया के संग्रह का अवलोकन किया, जिसमें १५५५ लेख-निर्युक्तियाँ थीं। यहां वस्त्र, पात्र एवं ओघा आदि उपकरणों का भी भंडार था। फतेपुर से धर्मनिष्ठ श्रावक श्री रतनलालजी फूलफगर के नेतृत्व में ७० भाई-बहिनों के संघ ने आकर पूज्यपाद के पावन दर्शन व वंदन का लाभ लिया।

पूज्यवर्य जालना से विहार कर गोलापांगरी, अम्बड, धाकलगांव गेवर, गेवराई, गड्डी आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए बीड पधारे। मार्ग में धाकलगांव में श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के अध्यक्ष श्री जवाहरलालजी मुणोत ने सपरिवार एवं मंत्री श्री चम्पालालजी संकलेचा ने पूज्यपाद के पावन दर्शन, वन्दन व सान्निध्य का लाभ लेकर मार्गदर्शन प्राप्त किया। गेवराई में श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर में सर्वजनहिताय आपका प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेव २ दिन बीड विराजे। आपके दो दिनों के इस अल्पकालिक प्रवास में ही ओस्तवाल, खींवसरा एवं डूंगरवाल भाइयों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को सुशोभित करते हुए आपके श्री चरणों में श्रद्धा भक्ति समर्पित की। बीड से विहार कर भगवन्त पाली होते हुए मोरगांव पधारे। यहां शोलापुर संघ एवं चौशाला के श्रावक-श्राविकाओं ने आचार्य देव की सेवा में अपना क्षेत्र फरसने की पुरजोर विनति प्रस्तुत की। उस्मानाबाद ज़िले की सीमा में आपका प्रवेश होते ही चौशाला गांववासी प्रमुदित हो उठे। आपने यहां अपने प्रेरक उद्बोधन में श्रावक द्वारा करणीय षट्कर्म का विवेचन करते हुए 'देव' का स्वरूप समझाते हुए फरमाया कि जो राग-द्वेष से रहित होते हैं एवं कनक व कामिनी को पूर्णतः जीत लेते हैं, वे ही सच्चे देव हैं, श्रावक के लिये वे ही आराध्य हैं। कहा भी है–

देव वही जो राग रोष से हीना।
कनक कामिनी विजय करन प्रवीना॥

परम पूज्य गुरुदेव से जिन्हें सम्यक्त्व बोध लेने का सौभाग्य मिला है, वे सब इस बात के साक्षी हैं कि गुरुदेव सम्यक्त्व के माध्यम से जैन श्रावक-दीक्षा देते हुए भक्तजनों को आत्मा, धर्म व आराध्य का सरल सहज भाषा में बोध करा देते थे। आप फरमाया करते थे कि जो राग-द्वेष से सर्वथा परे हैं, जो न तो स्तुति प्रशंसा से प्रसन्न हो वरदान देते हैं, और न ही निन्दा से नाराज हो अभिशाप देते हैं, जो सांसारिक ऐश्वर्य, धन-वैभव व शृंगार की बजाय अनन्त आत्मवैभव से सम्पन्न हैं, जिनके पार्श्व में न तो देवी है न ही जिनके हाथों में हिंसा प्रतिहिंसा के प्रतीक अस्त्र-शस्त्र ही हैं, जो सदा-सदा के लिये कृतकृत्य हो चुके हैं, जिन्होंने सदा सर्वदा के लिए जन्म-मरण का बन्धन समाप्त कर दिया है, जो न तो लीला करते हैं, न ही देह धारण, जो अठारह दोषों से रहित हैं, वे ही सच्चे परमात्मा हमारे आराध्य देव हैं। उनकी आराधना कर यह आत्मा भी परमात्मा बन सकता है, फिर आराधक और आराध्य में कोई भेद नहीं रहता।

चौशाला से विहार कर चरितनायक पार गांव पधारे, जहां विराजित महासती श्री शीतलकंवर जी आदि ठाणा ने आपके दर्शन, वंदन व प्रवचन-सेवा का लाभ लिया। यहां पर प्रवचन में बीड , वार्शी, चौशाला आदि क्षेत्रों के श्रावक-श्राविका भी उपस्थित थे। पूज्यपाद जहां भी पधारे, निकटवर्ती ग्राम-नगरों के श्रावक-श्राविकाओं में यह क्रम चलता रहा। पारगांव से विहार कर पूज्यपाद ने येसमंडी, तेरखेडा, पीपल पाथरी, धानोरा, कुशलंब आदि क्षेत्रों को अपनी पद रज व पीयूष प्रवचनामृत से पावन बनाते हुए ३८ वर्ष के दीर्घ अन्तराल के पश्चात् वार्शीनगर पदार्पण किया। यहां रायचूर का शिष्टमंडल आपके चरणों में क्षेत्र स्पर्शन व आगामी चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। वार्शीनगर से करुणानाथ पानगांव, वैराग, बडाला होते हुए महाराष्ट्र के सीमावर्ती औद्योगिक नगर शोलापुर पधारे। यहां पौष शुक्ला १४ को आपका ७० वां जन्म दिवस मनाने हेतु महाराष्ट्र की जनमेदिनी उमड़ पड़ी। जलगांव, मद्रास, बैंगलोर, जयपुर, इन्दौर, उज्जैन, रायचूर, बीजापुर, बागलकोट प्रभृति विभिन्न क्षेत्रों से श्रद्धालु भक्तजन अपनी अनन्य आस्था के केन्द्र महनीय गुरुदेव की जन्म-जयन्ती के इस पावन प्रसंग पर मंगलमय दर्शन-वन्दन व पातकहारिणी पीयूष पाविनी वाणी का पान करने हेतु उपस्थित थे। त्यागमूर्ति गुरुदेव का जन्म-दिवस उपवास दयाव्रत, सामायिक व स्वाध्याय की आराधना के साथ मनाया गया। स्थानकवासी समाज के करीब ५०, मन्दिर मार्गी समाज के २०० और दिगम्बर परम्परा के करीब चार हजार घरों वाले इस श्रद्धाशील नगर के युवकों ने सड़कों पर नृत्य करने का सामूहिक त्याग कर समूचे जैन संघ की ओर से जिन शासन के युगप्रभावक आचार्यदेव को सच्ची भेंट प्रदान की। युवा बन्धुओं ने स्वाध्याय का नियम अंगीकार कर "गुरु हस्ती के दो फरमान, सामायिक स्वाध्याय महान्" को जीवन में अंगीभूत करते हुए धर्मशासन की प्रभावना की। इस अवसर पर यादगिरि से उपस्थित एक बहिन ने ३० का प्रत्याख्यान कर त्याग-तप के इस आयोजन में अपनी भक्ति का अर्घ्य दिया तो आपकी सेवा में निरत श्री हरिप्रसाद जी जैन भी रात्रि मे चौविहार त्याग एवं एक वर्ष का शीलव्रत अंगीकार कर श्रद्धा समर्पण में पीछे नहीं रहे।

शोलापुर से विहार कर मार्गस्थ क्षेत्रों को पावन करते हुए चरितनायक लश्कर पधारे। मार्ग में श्राविका नगर में आपने दुःखमुक्ति एवं अनन्त अव्याबाध अक्षय सुखों की प्राप्ति पर उत्तराध्ययन सूत्र की गाथा नाणस्स सव्वस्स पगासणाए ' का मार्मिक विवेचन करते हुए फरमाया - "वस्तुतः मोह एवं अज्ञान ही दुःख के मूल कारण हैं। इन पर विजय से दुःखों से मुक्ति निश्चित है। "

• कर्नाटक में प्रवेश

महाराष्ट्र के विभिन्न अंचलों में जिनवाणी की पावन सरिता प्रवाहित कर अपूर्व धर्मोद्योत व जिन शासन का जय-जय नाद दिग्-दिगन्त में गुंजायमान करने के पश्चात् युगप्रभावक आचार्य पूज्य हस्ती के चरणारविन्द कर्नाटक की ओर अग्रसर थे। आपने बडकवाल, टाकली होते हुए कर्नाटक प्रान्त की सीमा में प्रवेश किया तो समूचे कर्नाटक में हर्ष की लहर दौड़ना स्वाभाविक था। पीढ़ियो व बरसों से यहां बसे प्रवासी राजस्थानी भाइयों के हर्ष का पारावार न था। उन्हें तो यह लगा कि शास्त्र मर्यादा के सजग प्रहरी, आगमों के तलस्पर्शी ज्ञाता एवं जिनशासन के कुशल नायक आचार्य हस्ती के रूप में साक्षात् धर्म ने ही कर्नाटक प्रान्त में अपने चरण अंकित किये हैं। सुश्रावक श्री सुगनमलजी भण्डारी निमाज के सुपुत्र अनन्य गुरुभक्त श्री गणेशमलजी भण्डारी एवं श्री मोतीमलजी भण्डारी जोधपुर के सुपुत्र श्रद्धानिष्ठ समर्पित सुश्रावक श्री महावीरमल जी भण्डारी बैंगलोर ने बीजापुर से दुर्गम विहार-सेवा व गुरु भक्ति का लाभ लिया।

कर्नाटक प्रान्त में विचरण विहार के क्रम में पूज्यपाद बल्लोली, होर्ति, तिरुगुण्डी को फरसते हुए प्राचीन ऐतिहासिक नगर बीजापुर पधारे। बीजापुर का इतिहास गौरवशाली रहा है। सम्प्रति यहाँ लगभग २५० जैन घर एवं स्थानक, मन्दिर आदि अनेकों धर्म स्थान हैं। यहां गोंडल सम्प्रदाय की महासती श्री पुष्पाजी आदि ठाणा ५ ने पूज्यपाद के सान्निध्य एवं ज्ञानध्यान में वृद्धि का लाभ लिया। पूज्यप्रवर ने अपने प्रवचनों के माध्यम से जिनशासन की उन्नति के लिये ज्ञान-साधना पर बल दिया। आपकी अमृततुल्य वाणी को हृदयंगम कर यहां के सुज्ञ श्रावकों ने यहां १० जनवरी १९८० को स्वाध्याय संघ की स्थापना की व १४ जनवरी को वर्द्धमान जैन रत्न पुस्तकालय का शुभारम्भ किया। संस्कार-निर्माण व धार्मिक-अध्ययन की आपकी महती प्रेरणा से यहां धार्मिक शिक्षणशाला का श्रीगणेश हुआ। आपकी पातक प्रक्षालिनी भवभय हारिणी पीयूषपाविनी वाणी व आपके सहज सरल शैली में फरमाये गये उद्बोधक प्रवचनों का यहां व्यापक प्रभाव पड़ा। युवकों ने आपसे सप्त कुव्यसन एवं नृत्य के त्याग कर जीवन निर्माणकारी एवं समाजहितकारी प्रवृतियों को अपनाया, तो सुज्ञ श्रद्धालुवृन्द श्री हीरालालजी, श्री ताराचन्दजी, श्री देवीलालजी, श्री दुर्गालाल जी, श्री देवकिशन जी तोषनीवाल, श्री गोपीलालजी भूतड़ा आदि कई भाइयों ने शीलव्रत अंगीकार कर अखंड बाल ब्रह्मचारी पूज्य हस्ती के सान्निध्य से अपनी आत्मा को भावित किया। यहां कर्नाटक प्रान्त के हुबली, गजेन्द्रगढ, गुलेदगढ, सोरापुर, यादगिरि प्रभृति विभिन्न क्षेत्रों के संघ क्षेत्र-स्पर्शन की विनतियाँ लेकर उपस्थित हुए। अन्य क्षेत्रों की भांति यहाँ पर भी पूज्य हस्ती ने सामायिक-साधना से जीवन-निर्माण की प्रेरणा दी। आपका फरमाना था –

करलो सामायिक रो साधन, जीवन उज्ज्वल होवेला।
सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला।
निज सुधार से देश, जाति, सुधरी हो जावेला।।

सामायिक से व्यक्ति, जाति, समाज व राष्ट्र सभी का सुधार सम्भव है।

बीजापुर से विहार कर करुणाकर गुरुदेव जुमनाल, होगनहल्ली, रुणिहाल होते हुए कृष्णा नदी के तट पर स्थित कोर्ति पधारे। षट्काय प्रतिपाल, प्राणिमात्र के अभयदाता आचार्य हस्ती ने अहिंसा का प्रभावकारी उपदेश देते हुए दया को धर्म का मूल बताया व फरमाया कि पशुबलि पाप है, धर्म के नाम पर की गई हिंसा भी धर्म नहीं वरन् हिंसा ही है। प्रवचन सभा में गांव के कन्नडभाषी मुखिया एवं स्थानीय ग्रामीण भी उपस्थित थे। एक भाई ने

पूज्यपाद के मंगल उद्बोधन का कन्नड़ भाषा में अनुवाद किया। अहिंसा, संयम एवं तप रूप धर्म के साकार स्वरूप, करुणासागर की वाणी से धर्म का सच्चा स्वरूप समझ कर पाप भीरू मुखिया व ग्राम के अन्य लोग प्रभावित हुए और देवी के समक्ष होने वाली बलि रुक गई, मारे जाने वाले बकरे को अभयदान मिला। लोगों ने मूक बकरे की आँखों से बार-बार झलकते कृतज्ञता के भावों को अनुभव किया। यह पशुबलि हमेशा के लिए रुक जाय व ग्रामीण जन संकल्पबद्ध हो जाए, इस हेतु कर्मठ समाजसेवी श्री भरतकुमार जी रुणवाल बीजापुर आदि ने सद्प्रयत्न किये, जिससे गांव वालों ने भविष्य में पशुबलि न करने की लिखित प्रतिज्ञा की। दयाधर्म के आराधक, जघन्यातिजघन्य प्राणी को भी अपने समान समझने वाले, प्राणिमात्र के प्रति मैत्री एवं करुणा बरसाने वाले अकारण करुणाकर संत महापुरुष जहां जहां पधारते हैं, वहां सहज ही घर-घर में मंगल तथा जन-जन का कल्याण हो जाता है। कहा भी गया है—

साधु सरिता बादली, चले भुजंगी चाल।
ज्यां ज्यां देसां नीसरे, त्यां त्यां करे निहाल॥

साधु, सरिता व बादल अपनी इच्छा पूर्वक चलते हैं, बुलाये नहीं आते, पर जहां-जहां से होकर निकलते हैं, उन उन स्थानों को निहाल कर देते हैं, समृद्ध बना देते हैं। इसीलिए तो सन्त महापुरुष नियमित विचरण करते रहते हैं।

कोर्ति में दया धर्म का सन्देश प्रदान कर पूज्यपाद अनगवडी, बागलकोट, सिरुर आदि क्षेत्रों में वीतरागवाणी की अमृत गंगा बहाकर गुलेजगढ पधारे। यहां धर्मस्थान के बारे में परस्पर विवाद से सुज्ञ श्रद्धालु चिन्तित थे। उनकी भावना थी कि समता, स्नेह व समन्वय की त्रिवेणी बहाने वाले पूज्य गुरुदेव के पावन चरणारविन्द हमारे क्षेत्र की ओर बढ रहे हैं तो एकता के सूत्र में आबद्ध होकर हमको भी पवित्र पावन बन जाना है। इसी मंगल भावना को संजोकर यहां के श्रावकगण माघ शुक्ला षष्ठी को ही सिरुर में पूज्यपाद की सेवा में उपस्थित हो गये। पूज्यपाद से संघ में बन्धुत्व, मैत्री, क्षमा व सामरस्य का सन्देश पाकर गुलेजगढवासियों का परस्पर वैमनस्य व कलुष समाप्त हो गया। श्री दलीचन्द जी ने आगे होकर अपने ट्रस्ट का मकान जैन संघ को समर्पित करने का निश्चय किया तो संघ व समाज में सौहार्द का वातावरण बन गया। पूज्य गुरुदेव के गुलेजगढ पधारने पर सबने एक होकर उनके सान्निध्य का लाभ लेते हुए व्रत-प्रत्याख्यान व धर्माराधन में अपने कदम बढाये।

गुलेजगढ से चरितनायक कमतगी की मलयप्रभा नदी के किनारे पर वृक्ष तले रात्रिवास कर अमीनगढ, हुनगुंद होते हुए इलकल पधारे। यहां के लोग धर्मरुचि वाले व सरल थे तथा यहां धार्मिक अध्ययन हेतु धार्मिक पाठशाला भी संचालित थी। यहां अपने प्रवचन में चरितनायक ने फरमाया - "बुढापा आने पर शरीर, इन्द्रियों व मन की शक्ति क्षीण हो जाती है, अत: जब तक जरा का आक्रमण न हो, शरीर, इन्द्रियाँ व मन स्वस्थ हैं, तब तक धर्म-साधना कर लेनी चाहिये।" यहां से विहार कर आपने बलकुण्डी में मजदूरों के डेरे के पास विश्राम किया व प्रात: यहां से २४ किलोमीटर का दीर्घ विहार कर हनमसागर पधारे। यहां पर विद्यालय के शिक्षकों की प्रार्थना पर पूज्यप्रवर ने बालकों को संस्कार-निर्माण व दुर्व्यसन-त्याग की प्रभावी प्रेरणा की। विहार सेवा का लाभ ले रहे श्रावकों ने हिन्दी भाषी आचार्य भगवन्त के इस मंगल उद्बोधन का स्थानीय कन्नड़ भाषा में अनुवाद कर छात्रों तक पहुंचाने का गौरव हासिल किया। यहां से विहार कर चरितनायक बेनकनाल होते हुए माघ शुक्ला पूर्णिमा ३१ जनवरी ८० को गजेन्द्रगढ पधारे। यहां आपके सुशिष्य श्री हीरामुनि जी म.सा. (वर्तमान आचार्य श्री) ने स्थानीय कालेज में प्रवचन फरमाया। व्यसनमुक्ति के संदेश से कालेज के अनेकों छात्रों ने व्यसन त्याग के नियम लिये। गजेन्द्रगढ में गदग, हुबली, कोप्पल, सिन्धनूर एवं होस्पेट के संघों ने उपस्थित होकर पूज्य वर्ग के चरणों में अपने क्षेत्र-स्पर्शन की

भावभीनी विनतियाँ प्रस्तुत की।

एलबुर्गा, कुकनूर ,भानापुर होते हुए पूज्य चरितनायक कर्नाटक के धार्मिक ऐतिहासिक क्षेत्र कोप्पल नगर पधारे। यहां की गिरिशालाओं पर अनेकों जैन मुनियों व उपासकों के संलेखना व्रतों की प्रसिद्धि है। यहां कई जगह खुदाई में शिलालेखों में चन्द्रगुप्त, भद्रगुप्त, चामुण्डराय एवं प्राचीन जैन गौरव तथा इस क्षेत्र में जैन धर्म के व्यापक प्रभाव के उल्लेख मिलते हैं। जब पाटलिपुत्र आर्यधरा भारत की राजधानी था, तब कोप्पल नगर उपराजधानी रहा। यानी एकीकृत शासन के समय में यह नगर दक्षिण भारत का प्रमुख केन्द्र रहा। पूज्यपाद का यहां ४० वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद पदार्पण हुआ था। आपके सान्निध्य व प्रवचनामृत का स्थानीय संघ ने धर्माराधन व व्रत ग्रहण कर पूरा लाभ लिया। सामायिक स्वाध्याय के आपके सन्देश से यहां धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ हुई व २५ नवयुवकों ने सामायिक करने का नियम लिया।

कोप्पल से विहार कर आचार्य देव किडदाल, गिनगेरा, होसल्ली, मुनिराबाद (रायचूर जिले का अन्तिम ग्राम) फरसते हुए होस्पेट पधारे। होस्पेट में तुंगभद्रा नदी पर विशाल बांध बना हुआ है व इससे बिजली उत्पन्न की जाती है। आचार्य भगवन्त सांसारिक घटनाओं व स्थानों से भी अध्यात्म के सूत्रों का पोषण करने में दक्ष थे। संसारी प्राणी जहाँ धर्माराधन के क्षेत्रों व अवसरों पर भी कर्मों से अपनी आत्मा को भारी कर लेता है, वहीं वीतराग मार्ग का पथिक संसार के स्थानों व घटनाओं से भी शिक्षा व प्रेरणा लेकर कर्म रज को झाड़ लेता है। श्रमण भगवान महावीर का उद्घोष रहा है -"जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा।"

सब कुछ व्यक्ति के चिन्तन मनन पर निर्भर है। भगवन्त तो निकटभवी महापुरुष थे, जिनका संसार परिमित हो जाता है, उनका चिन्तन भी उच्च शिक्षाप्रद व आत्महितकारी ही होता है । तुंगभद्रा पर बने इस विशाल बांध को देखकर आपके साधनानिष्ठ मानस में जो चिन्तन हुआ, वह उन्हीं महापुरुष की हस्तलिखित दैनन्दिनी से उद्धृत है- "वैज्ञानिकों ने दिमागी चिन्तन से पानी का बहाव नियंत्रित कर लिया। भगवान महावीर ने वासना की विशाल नदी को संयम के बांध से नियन्त्रित करने की सीख देकर जनगण को विनाश से बचाया। महावीर ने स्वयं के अनुभव से संवर के बांध से विनष्ट होती आत्मगुणों की सम्पदा बचाकर कितना अपूर्व लाभ का मार्ग प्रस्तुत किया। प्रभु की ज्ञान गरिमा का क्या वर्णन किया जा सकता है। "

यहां से पूज्यपाद पुनः होस्पेट सदर, कारीगनूर, धर्मसागर, तोरंगल, कुरतनी आदि ग्रामों में विचरण करते हुए कोल बाजार पधारे तथा गणपति मंदिर में विराजे। मार्ग में भी आपको कहीं शालाभवन तो कहीं पंचायत भवन में विराजना पड़ा। यह विहार अति दुष्कर था, मार्ग में गोचरी की पर्याप्त उपलब्धता नहीं थी। सन्त कभी उपवास तो कभी एकाशन करते हुए दीर्घ विहार कर रहे थे। कोल बाजार से करुणाकर गुरुदेव बल्लारी पधारे , जहाँ पूज्य श्री कान्ति ऋषिजी आदि ठाणा ४ आपकी अगवानी हेतु सामने पधारे। बल्लारी में पूज्यपाद का विराजना धर्म प्रभावना का निमित्त बना। यहाँ के संघ ने सामायिक और स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रारम्भ कर पूज्य हस्ती के संदेश को साकार रूप प्रदान किया। १६ भाइयों ने दयाव्रत एवं २५ व्यक्तियों ने प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय का संकल्प स्वीकार किया। आपकी महती प्रेरणा से यहां धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था प्रारम्भ हुई व अनेकों युवकों ने व्यसन-त्याग का संकल्प लिया। भण्डारी, बालड, भोजाणी, नाहर आदि कई भाइयों ने सपत्नीक शीलव्रत अंगीकार कर गुरुदेव के चरणों में सच्ची श्रद्धाभिव्यक्ति की।

आचार्य प्रवर के इस दक्षिण प्रवास में अनेक कठिनाइयां एवं परीषह उपस्थित हुए, किन्तु आचारनिष्ठ साधना

के अडोल अविचल साधक इस परीषह विजेता महापुरुष ने तनिक भी शिथिलता को अवकाश नहीं दिया। ग्रामों की दूरियां, उग्र विहार, प्रासुक आहार व निरवद्य जल की उपलब्धता में कठिनाई, श्रावकों द्वारा टिफिन से आहार ग्रहण करने की भावपूर्ण अनुनय विनति, किन्तु उस आत्मसाधक ने प्रतिकूल-अनुकूल किसी भी परीषह में कभी साध्वाचार में टण्टा नहीं लगने दिया। अपने आराध्य गुरु की शिक्षा, श्रमण भगवान द्वारा प्ररूपित निर्मल साध्वाचार एवं रत्नवंश की गौरव गरिमायुक्त समाचारी के प्रति प्रतिबद्ध सन्त महापुरुष गवेषणा करते, पर मार्गवर्ती ग्रामीणजन विशुद्ध साधु मर्यादा, ग्रहणीय गोचरी के नियमों से अनभिज्ञ, दो समय आहार मिलने की संभावना ही क्षीण, कई बार एक बार भी प्रासुक आहार मुश्किल से मिलता तो रत्नाधिक शिष्य परिवार उपवास, एकाशन कर अपनी श्रमण गरिमा अक्षुण्ण रखता एवं महनीय गुरु की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना कर निरन्तर आगे बढ़ता रहता । संसारी जन जहां सुविधाओं के प्रति लालायित रहते हैं, वहां सच्चे सन्त तो सुविधा को नहीं वरन् साध्वाचार की सुरक्षा को ही महत्त्व देते हैं।

• पूज्यपाद का पदार्पण आन्ध्र की धरती पर

२३ फरवरी १९८० को कर्नाटक के सीमावर्ती ग्राम जोलदराशि फरसकर पूज्य चरितनायक आन्ध्रप्रदेश सीमा के प्रथम ग्राम गडेकल होते हुए गुण्टकल पधारे। यहां आपने मंगलमय उद्बोधन में सामायिक-साधना का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए फरमाया—

अगर जीवन बनाना है, तो सामायिक तू करता जा ।
हटाकर विषमता मन की, साम्य रस पान करता जा॥

सामायिक जीवन में राग-द्वेष, काम-क्रोध जन्य आकुलता को नष्ट कर समभाव को संस्थापित करने वाली साधना है। आपकी भव्य प्रेरणा से प्रेरित १५ व्यक्तियों ने सामायिक के नियम अंगीकार किये। दक्षिण के इस प्रवास में आपके प्रवचन पीयूष के पूर्व प्राय: श्री हीरामुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर व अन्य संत व्याख्यान फरमाया करते थे। आन्ध्र का यह विचरण विहार अत्यन्त दुष्कर था। प्राय: दीर्घ विहार करने होते, मार्गस्थ ग्रामों में मांस-भक्षण करने वाले लोगों की बहुलता थी, शाकाहारी लोगों में भी अधिकतर जैन साध्वाचार की मर्यादा से अनभिज्ञ थे, जिससे संतों को इस विहार में आहार-पानी की गवेषणा में बहुत अधिक श्रम करना पड़ा व अनेक परीषहों का सामना करना पड़ा। २९ फरवरी को पूज्य चरितनायक २९ किलोमीटर का उग्र विहार कर गुत्ती पधारे। आचार्य भगवन्त के तमिल भाषी उग्र तपस्वी शिष्य श्री श्रीचन्दजी म.सा. राजस्थान के भरतपुर से १८०० किलोमीटर का दीर्घ विहार कर ठाणा ३ से गुत्ती पधारे एवं पूज्य गुरुदेव के पावन दर्शन कर अत्यन्त हर्षित हुए। आचार्यप्रवर जब पामडी, गार्डिन्ने, अनन्तपुर, मरूर, चिन्ने, कोत्तपल्ली गुट्टूर होते हुए विषम दुर्गम पहाड़ी मार्ग से आगे बढ रहे थे, तो वहाँ कुछ ग्रामीण महिलाएं इस अद्भुत योगी व संत महापुरुषों के प्रति सहज भक्ति से कदलीफल लेकर आई व स्वीकार करने का आग्रह करने लगी तो उन्हें समझाया गया कि जैन सन्त इस प्रकार सामने लाया हुआ प्रासुक आहार भी ग्रहण नहीं करते हैं। इस युग में भी दृढव्रती ऐसे साधकों से प्रेरित होकर उन ग्रामीण बहिनों ने रविवार को व्रत करने का नियम अंगीकार कर अपना अहोभाग्य माना। यहाँ से पूज्यपाद चालकूर होते हुए १३ मार्च को ठाणा १० से आन्ध्रप्रदेश के सीमावर्ती नगर हिन्दुपुर पधारे। कहने को तो इस नगर का नाम हिन्दुपुर था, किन्तु वहां मांसाहार सेवन करने वाले लोगों की बहुलता होने से करुणानिधान आचार्य भगवन्त को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वहाँ अहिंसा सांसें ले रही हों।

• पुनः कर्नाटक में

हिन्दुपुर से आपका विहार पुनः कर्नाटक की ओर हुआ। यहाँ से पूज्यपाद कुडमलकुंटे, गोरी, बिदनूर आदि छोटे-छोटे गांवों को अपनी पद रज से पावन करते हुए तोंडभावि पधारे। रविवार का दिन होने से बैंगलोर महानगर के अनेक श्रावक-श्राविका पूज्य आचार्य भगवन्त की सेवा में उपस्थित हुए और बैंगलोर फरसने की विनति की। यहां से आप खम्भात सम्प्रदाय के २ सन्तों को मिलाकर ठाणा १२ से दौंड बालापुर पधारे। पूज्य कान्तिऋषि जी म.सा. आदि ठाणा ४ भी आगे-पीछे विहार करते हुए यहाँ तक साथ पधारे। यहाँ श्री मांगीलाल जी रुणवाल के नेतृत्व में मैसूर संघ ने उपस्थित होकर क्षेत्र स्पर्शन की विनति प्रस्तुत की। मद्रास, मंड्या, बैंगलोर, चिकबालपुर आदि अनेक क्षेत्रों के श्रावक भी यहां उपस्थित थे।

पूज्यपाद ने उपस्थित जन समुदाय को प्रेरणादायी सम्बोधन करते हुए फरमाया - **"धन के लिये पुत्र, मित्र घर-द्वार एवं अपना देश-प्रदेश छोड़ने वाले व्यक्ति जिनशासन और धर्म के लिये त्याग को भारी मानें, यह आश्चर्य की बात है।"** आपकी पावन प्रेरणा से यहाँ कई भाई बहिनों ने कई नियम अंगीकार किये।

यहाँ से विहार कर पूज्यवर्य राजनकूटे, यलहंका, गंगेणहल्ली आदि गांवों में धर्मोद्योत करते हुए दिनांक २३ मार्च १९८० को दश ठाणा से कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर के उपनगर यशवन्तपुर पधारे। यहाँ पधारने वाले आप स्थानकवासी परम्परा के प्रथम आचार्य थे। नगर-प्रवेश के अवसर पर बैंगलोर शहर के श्रावक-श्राविकाओं एवं अन्य ग्राम-नगरों से आए संघ-सदस्यों की विशाल जनमेदिनी के उल्लास एवं उमंग का दृश्य अद्‌भुत था। जिसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। यशवन्तपुर श्री संघ के साथ श्री मोतीलालजी कोठारी, श्री नौरतन जी नन्दावत, श्री सुगनमलजी गणेशमलजी भण्डारी आदि के परिवार प्रसन्नता से आप्लावित थे। वर्षों की भक्ति व पूर्वजों के संस्कारों से समृद्ध भण्डारी परिवार ने श्रद्धा-समर्पण के साथ भक्ति का परिचय दिया। आपके पावन सान्निध्य व मंगलमय उद्बोधन से प्रेरित होकर यहां २० युवा बन्धुओं ने सामायिक करने के नियम अंगीकार किए। यशवन्तपुर दो दिन विराज कर पूज्यप्रवर २५ मार्च को २५ जैनघरों की आबादी वाले मल्लेश्वरम् में पधारे। तदनन्तर आपका पावन पदार्पण श्रीरामपुर में संघ ऐक्य का सन्देश लेकर हुआ। आपके उद्बोधन से स्थानीय संघ में कलह कलुष दूर हुआ व सामरस्य का संचरण हुआ। यहाँ से पूज्यपाद बैंगलोर महानगर के हृदयस्थल चिकपेट पधारे। चिकपेट में लगभग ५००० जैन परिवार निवास करते हैं। यहाँ आप श्री ने २५० हस्तलिखित ग्रन्थों का अवलोकन कर प्राच्य ग्रंथों के प्रति अपनी अभिरुचि प्रकट की। चिकपेट में आपके विराजने से धर्म की लहर दौड़ गई। यहाँ के लालबाग ग्लास हाऊस में २९ मार्च को महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर आयोजित प्रवचन सभा में हजारों श्रोता उपस्थित थे। इस अवसर पर पूज्यपाद के प्रवचन पीयूष से बैंगलोर सामायिक-स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई। बैंगलोर महानगर के लब्धप्रतिष्ठ समाजसेवी श्री फूलचन्दजी लूणिया एवं श्री भँवरलालजी गोटावत ने संकल्प लिया कि जब तक धर्मस्थान में सामायिक करने वालों की संख्या २०० तक नहीं पहुँचती है व १०० व्यक्ति स्वाध्यायी नहीं बन जाते हैं, वे मीठा नहीं खायेंगे। इसी अवसर पर कर्नाटक प्रान्तीय स्वाध्याय संघ की स्थापना, कर्नाटक प्रान्त में सामायिक-स्वाध्याय का सन्देश पहुँचाने की ओर एक बड़ा कदम था। बैंगलोर नगर के सुज्ञ श्रावकगण श्री प्रकाशजी मास्टर, श्री पन्नालालजी चोरड़िया, श्री सोहनजी रेड़ व मुखियाद्वय श्री लूणिया जी व श्री गोटावत जी के संकल्प युक्त प्रयासों से स्वाध्याय की गति को बल मिला।

आगामी अक्षयतृतीया वि.सं. २०३७ दिनांक १७ अप्रेल १९८० को प्रभावक आचार्य हस्ती के आचार्य पद

ग्रहण के पचास वर्ष पूर्ण होने वाले थे। संघ के कार्यकर्ताओं ने साधना-कार्यक्रम के लक्ष्य के साथ पूज्य चरितनायक की दीक्षा अर्द्धशताब्दी मनाने का निर्णय किया। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि एवं सामाजिक कुरीतियों के निकन्दन के लक्ष्य से पन्द्रह सूत्री कार्यक्रम हाथ में लिया गया यथा—मांसभक्षण त्याग, मद्यपान-त्याग, धूम्रपान-त्याग, एक वर्ष तक रात्रि-भोजन त्याग, नित्यप्रति १५ मिनट स्वाध्याय, सप्ताह में कम से कम एक सामायिक, प्रतिदिन कोई एक प्रत्याख्यान अवश्य करना, एक वर्ष शीलव्रत का पालन, आजीवन रात्रि भोजन त्याग, आजीवन चौविहार त्याग, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन, श्रावक के १२ व्रत अंगीकार करना, नित्यप्रति सामायिक, सक्रिय स्वाध्यायी बनकर पर्युषण-पर्वाराधन हेतु प्रवास करना, दहेज में लेन-देन व ठहराव और प्रदर्शन का त्याग, जीवों को अभयदान का संकल्प, जीवन व्यवहार में हिंसक वस्तुओं का त्याग , जरूरतमंद भाई-बहिनों को शैक्षणिक व आर्थिक सहयोग प्रदान करना आदि। इन नियमों में प्रत्येक के लिये पचास-पचास व्रतियों का लक्ष्य रखा गया। यह भी तय किया गया कि स्थानीय समारोह अपने-अपने क्षेत्रों में आयोजित किये जायें। बैंगलोर श्री संघ ने भावभीनी विनति प्रस्तुत करते हुए पूज्यपाद से इस अवसर पर बैंगलोर विराजने की प्रार्थना की। त्रिदिवसीय समारोह के अन्तर्गत सामूहिक नियम तय कर सभी श्रद्धालुजनों को इनके पालन की प्रेरणा की गई—(१) सभी व्यक्ति तीन दिनों में कम से कम तीन घण्टे स्वाध्याय करें (२) तीन दिनों में कम से कम तीन सामायिक करें (३) तीन दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करें (४) तीन दिन का समय प्रमाद में व्यतीत न करें (५) तीन दिनों तक कोई रात्रि भोजन नहीं करें। (६) प्रत्येक घर में कम से कम एक उपवास, एकाशन या आयम्बिल अवश्य हो (७) तीन दिन कषाय शमन का प्रयास करें। शिक्षाप्रेमी शासन हितैषी श्रेष्ठिवर्य श्री छगनमलजी मुथा की आग्रहभरी विनति को लक्ष्य में रखकर पूज्यपाद चामराज पेठ, ब्लाक पल्ली एवं शिवाजी नगर आदि उपनगरों को फरस कर शूले बाजार स्थित हिन्दी विद्यालय पधारे, जहाँ सामायिक के गणवेश में श्रावकों ने सामायिक-स्वाध्याय पर्याय आचार्य भगवन्त की अगवानी की। यहाँ वैशाख कृष्णा चतुर्दशी व अमावस्या को सामूहिक दयाव्रत का आयोजन हुआ। सामूहिक व्रताराधन का यह अपूर्व नजारा देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो पूज्यपाद मरुधर मारवाड़ के धर्मक्षेत्र में ही विराज रहे हैं, जहाँ महापुरुषों के पधारने पर दया-संवर आराधना का क्रम चलता ही रहता है। चरितनायक के दीक्षा अर्द्धशताब्दी पर त्रिदिवसीय साधना-समारोह विषयक सभी कार्यक्रम इसी हिन्दी विद्यालय के प्रांगण में सम्पन्न हुए।

दिनांक १५ अप्रेल से १७ अप्रेल तक आयोजित त्रिदिवसीय कार्यक्रम का प्रथम दिवस ज्ञानाराधना, द्वितीय दिवस सामायिक-साधना एवं तृतीय दिवस तप-साधना हेतु समर्पित था। प्रथम दिवस में व्याख्यान के अतिरिक्त विद्वद् गोष्ठी एवं ज्ञान-चर्चा आयोजित की गई, दूसरे दिन सामूहिक सामायिक में भाग लेकर गुरु हस्ती के सामायिक संदेश को साकार किया गया, तो तीसरे दिन व्रत-प्रत्याख्यान कर इस त्रिविध साधना -कार्यक्रम को सम्पूर्णता प्रदान की गई। इस अवसर पर अनेकों व्यक्तियों ने बारह व्रत एवं शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन में साधना का सूत्रपात किया। अक्षय तृतीया के इस पावन प्रसंग पर वर्षीतप के २९ पारणे हुए। संघ की ओर से समाजसेवियों व तपस्वियों का अभिनन्दन किया गया। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में श्री गणेशमलजी भंडारी, श्री सुकनराजजी भोपालचंदजी पगारिया, श्री जसराजजी गोलेछा, श्री महावीरमलजी भंडारी, श्रेष्ठिवर्य श्री छगनमलजी मुथा, श्री मोतीलालजी सांखला श्री संपतराजजी मरलेचा, श्री अनराजजी दुधेड़िया, श्री जोधराजजी सुराणा आदि की सराहनीय सेवाएँ रहीं।

अक्षय तृतीया के पावन पर्व के पश्चात् पूज्यवर्य अलसूर बयपनहल्ली, कृष्णराजपुरम आदि क्षेत्रों में जिनवाणी की पावन धारा प्रवाहित करते हुए होसकोटे पधारे। यहाँ वैशाख शुक्ला दशमी को चरम तीर्थंकर शासनपति श्रमण

भगवान महावीर का कैवल्य कल्याणक मनाया गया। यहाँ से चरितनायक २८ अप्रेल को विहार कर तावरीखेड़ा होते हुए ४० किलोमीटर दूर कोलार तथा वहां से ३१ किलोमीटर दूर कोलार गोल्ड फील्ड पधारे। वहां से भगवन्त वेतमंगला, वी. कोटे, नाइकनेरी पेरणम पैठ, गुडियात्तम ग्राम, केवीकुप्पम् फरसते हुए विरंजीपुरम पधारे। प्राणिमात्र के अभयदाता षट्काय प्रतिपालक पूज्य आचार्य भगवन्त की प्रेरणा से यहाँ पशुबलि बन्द हुई व अबोध जीवों को अभयदान मिला। यहाँ से विहार कर आप ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या दिनांक १२ मई को वेल्लूर पधारे।

आराध्य गुरुदेव के वेल्लूर पधारने पर समूचे तमिलनाडु में निवास कर रहे श्रद्धालु भक्तों व प्रवासी राजस्थानी भाइयों के मन में नव उत्साह का संचार हुआ और उनके मन में गुरु-भक्ति के साथ शासन-सेवा हेतु समर्पण भाव हिलोरें लेने लगा। अपने चिकित्सा केन्द्र व क्रिश्चियन मेडिकल कालेज के कारण प्रसिद्ध इस वेल्लूर नगर में पूज्य चरितनायक की प्रेरणा से विश्रान्ति गृह 'शान्ति भवन' के मैनेजर श्री लालसिंह जी राजपूत द्वारा सपरिवार आजीवन मांस-भक्षण का त्याग वेल्लूरवासियों के लिये प्रेरणा का स्रोत रहा। यहाँ पूज्यपाद ने अपने प्रभावक प्रवचन में दर्शन, श्रवण, अवधारण व आचरण रूप चतुर्विध भक्ति का निरूपण करते हुए दर्शन-भक्ति के अन्तर्गत धर्मस्थान में जाने के लिये पाँच अभिगम की व्याख्या करते हुए निम्नांकित रचना प्रस्तुत की -

कर सचित्त परिहार, अचित्त संवृत कर राखे।
अंजलि बाँधी विनय सहित, गुरुवर मुख देखे।
तन-मन पाप निषेध, जिनेश्वर आज्ञा पाले,
मुख पर उत्तरासंग धार, निरवद वच बोले।
अभिगम पाँच पाले सही, चूक करे नहीं एक ही
समझूँ श्रावक मान लो, जिन आराधक वही॥

यहां से पूज्यवर्य दिनांक २३ मई को विहार कर तमिलनाडु के महत्त्वपूर्ण स्थल आरकाट, बालाजी पेठ, बालचेट्टिछत्रम् आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए २८ मई को वैष्णव संस्कृति के प्रमुख स्थल कांचीपुरम पधारे, जहां पूज्य संतों के शुभागमन से चिलचिलाती धूप भी प्रसन्न प्रकृति में बदल गई। यहाँ पर प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला १४ को क्रान्तद्रष्टा क्रियोद्धारक पूज्य आचार्य श्री रतनचन्दजी म. सा. की १३५ वीं पुण्यतिथि के पावन प्रसंग पर पूज्य आचार्य भगवन्त ने उनके जीवन की झांकी व जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करते हुए धर्मशासन में मर्यादा पर बल दिया।

कांचीपुरम् से विहार कर बालाजाबाद सुंकुवारछत्रम् पेरुम्बुदूर आदि मार्गस्थ क्षेत्रों को अपनी पद रज से पावन करते हुए पूज्यपाद ठाणा ८ से मद्रास महानगर के प्रवेश द्वार पुनमली पधारे। पुनमली में धर्म प्रेरणा कर आप कुणतुर फरसते हुए ताम्बरम् पधारे, जहाँ नवयुवक मंडल गठित हुआ ताम्बरम् से क्रोमपेठ होकर आप पल्लावरम् पधारे।

यहाँ अपने प्रवचनामृत में पूज्यप्रवर ने बुभुक्षु से मुमुक्षु बनने की प्रेरणा करते हुए श्रावक के तीन कर्तव्य बताये - श्रद्धा, विवेक और क्रिया। ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को आलन्दूर में आपने त्याग व संयम की श्रेष्ठता का विवेचन करते हुए फरमाया -**"परिग्रह से चिपका आज का श्रावक धर्म को अच्छा मान कर भी उसका आचरंण क्यों नहीं करता ? भोग से अलग कर संयम के सिंहासन पर बिठाने पर भी जो दुःख का अनुभव करे, वह कैसा जैन?"** यहाँ समाज में काफी लम्बे समय से मतभेद व मनोमालिन्य था, जो आपके पदार्पण व पावन प्रेरणा से मिटा तथा समाज में स्नेह व मैत्री का वातावरण निर्मित हो गया। संघ व समाज को अनेकविध उपकारों से उपकृत करते हुए पूज्यप्रवर सइदापेठ पधारे। यहां क्रान्तदृष्टा चरितनायक ने अपने क्रान्तिकारी उद्बोधन में

फरमाया - अहिंसक समाज में दहेजप्रथा क्षोभजनक है, समाज के लिये यह कलंक है। समाज को इसे दूर कर महिलाओं की पीड़ा को दूर करना चाहिये। प्रेरक उद्बोधन से प्रेरित कई व्यक्तियों ने इस संबंध में संकल्प लेकर समाज सुधार की दिशा में अपने कदम बढ़ाये। यहाँ से भगवन्त माम्बलम् पधारे। पं. रत्न श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म.सा., पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर) भी अन्य उपनगरों को फरस कर यहाँ पूज्य गुरुदेव की सेवा में पधार गये। १९ जून ८० को आप मैलापुर पधारे। जोधपुर विराजित पं. रत्न श्री चौथमलजी म. सा. का द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को संथारा पूर्वक स्वर्गगमन के समाचार से मैलापुर की व्याख्यान सभा ने श्रद्धांजलि सभा का रूप ले लिया। पूज्यप्रवर ने अपने सहदीक्षित गुरुभ्राता मुनि श्री के प्रति भावपूर्ण मार्मिक उद्गार व्यक्त करते हुए उनका गुण स्मरण किया। पं. रत्न श्री चौथमलजी म. सा. सरल, सहज, शान्त, प्रसन्नवदन, सेवाभावी, मधुर व्याख्यानी, आगम ज्ञाता संत थे। आपने अनेक प्रान्तों में विचरण विहार कर धर्म-प्रचार व जिन-शासन की प्रभावना में अपना महनीय योगदान किया। दिवंगत मुनिवर्य के गुण-स्मरण के पश्चात् चार लोगस्स का ध्यान कर श्रद्धांजलि प्रस्तुत की गई। जोधपुर में ही २१ जून को महासती ज्ञानकंवर जी म.सा. के संथारा पूर्वक स्वर्गारोहण पर श्रद्धांजलि दी गयी।

२३ जून को पूज्य आचार्यप्रवर अडयार पधारे। यहाँ धर्म प्रेरणा कर आप रायपेठ व इसके अनन्तर नक्शा बाजार पधारे। यहां द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी दिनांक २७ जून को क्रियोद्धारक आचार्य भगवन्त श्री रत्न चन्द जी म. सा. की १३५ वीं पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में सामूहिक व्रताराधन का आह्वान किया गया। इस अवसर पर १३५ से अधिक दया-पौषध हुए। (ज्येष्ठ माह दो होने से यह पुण्य तिथि दूसरी बार मनायी गई।)

चिन्ताद्रिपेठ, इग्मोर, पुरुषवाक्कम, शूले आदि उपनगरों में धर्म ज्योति का प्रकाश फैलाते हुए पूज्यपाद पेराम्बूर पधारे। यहाँ प्रवचन में आपने जीवन में धर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए फरमाया - **"संसार की बड़ी से बड़ी सम्पदा पाकर भी जीवन में धर्म के बिना शान्ति नहीं मिलती, अतः धन-जन से ममता बढ़ाना उचित नहीं। कामनाओं पर नियन्त्रण , कोमलता का त्याग व तप का आराधन दुःख-मुक्ति का सच्चा उपाय है।"**

• मद्रास चातुर्मास (वि.सं. २०३७)

पूज्यपाद ने १९ वर्ष की वय में जब आचार्य पद को सुशोभित किया, तब से ही मद्रास में व्यवसाय हेतु निवास कर रहे भंडारी परिवार, चोरड़िया परिवार, दुगड परिवार , सुराणा परिवार, बागमार परिवार, हुण्डीवाल परिवार एवं अन्य ग्राम-नगरों से यहाँ आये भक्तों की यह भावना थी कि रत्नवंश के जाज्वल्यमान रत्न, जिनशासन के उदीयमान सूर्य पूज्य हस्ती के पावन पाद विहार से तमिलनाडु समेत दक्षिण अंचल पवित्र-पावन बने व हम मद्रास स्थित प्रवासी मारवाड़ी भक्त अपने आराध्य गुरुवर्य के वर्षावास से निरन्तर चार माह तक पावन दर्शन, वन्दन व मंगल प्रवचन- श्रवण का लाभ लेकर व्रताराधन व ज्ञानाराधन में आगे बढ अपना आत्म-कल्याण कर सकें, साथ ही तमिलभाषी जनता भी अध्यात्म सूर्य हस्ती से जीवन के मर्म व धर्म के स्वरूप को समझ कर वीरवाणी के प्रसाद से लाभान्वित हो सके। अपने शासन के प्रारम्भिक काल में सतारा तक पधार कर भी आपका यहां पधारना नहीं हो सका। बुजुर्ग लोग अपनी आस हृदय में ही संजोये परलोकगमन भी कर गये। अब इस ज्ञान सूर्य का संयम जीवन के ६० वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त इस सुदूर भूमि पर पदार्पण हुआ है। आपने अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय से प्रतिपल सजगता, अपनी अद्वितीय प्रतिभा व शासन संचालन योग्यता से शासन की प्रभावना करते हुए आचार्य

पद सुशोभित किया है। ऐसे महनीय दीक्षा स्थविर, वय-स्थविर, पद-स्थविर व ज्ञान-स्थविर पुण्य निधान आराध्य गुरु भगवन्त के चरणों से पवित्र होने का तमिलनाडु की धरा को यह प्रथम अवसर मिला है और क्वचित् दूसरी बार मिलना भी संभव नहीं है। इस देव दुर्लभ अवसर का लाभ उठाने में हमें कोई कोर कसर नहीं रखनी है, अपने पूर्वजों की अतृप्त अभिलाषा को पूरा कर हमें तमिलनाडु में परमपूज्य भगवन्त के सन्देशों व जिनवाणी की पावन गंगा को प्रवाहित करने के भगीरथ प्रयासों में सहयोगी बनना है। ज्यों-ज्यों चातुर्मास सन्निकट आ रहा था, भक्तों के मन में कुछ कर गुजरने का उत्साह उत्ताल तरंगों की भांति बढ़ता जा रहा था।

कुंडीतोप, धोबीपेट रायपुरम आदि उपनगरों में सामायिक स्वाध्याय का उद्घोष करते हुए पूज्यपाद का शिष्य मंडली के साथ ठाणा १० से संवत् २०३७ की आषाढ कृष्णा त्रयोदशी २५ जुलाई १९८० को उल्लसित श्रावक-श्राविकाओं द्वारा उच्चरित जय-जयनादों के बीच विशाल जनमेदिनी के साथ, चातुर्मासार्थ साहूकार पेठ स्थित धर्मस्थानक में मंगल प्रवेश हुआ। यह पूज्यवर्य का ६० वां चातुर्मास था।

चिर प्रतीक्षा के बाद प्राप्त इस वर्षावास का मद्रास वाले भाई बहिन पूर्ण लाभ ले रहे थे। चातुर्मासार्थ पूज्य गुरुदेव के मंगल प्रवेश के साथ ही धार्मिक गतिविधियों ने जोर पकड़ लिया। प्रातः प्रार्थना से लेकर रात्रि में ज्ञानगोष्ठी पर्यन्त सभी कार्यक्रमों में मद्रासवासी पूर्ण अभिरुचि व उत्साह से भाग लेकर ज्ञानाराधन कर अपने आपको समृद्ध कर रहे थे। साहूकार पेठ धर्मस्थानक का विशाल हाल प्रवचन में श्रद्धालु श्रोताओं की उपस्थिति के कारण छोटा पड़ने लगा। चातुर्मास में राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र कर्नाटक आदि प्रान्तों के श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं के आराध्य गुरुदेव के दर्शनार्थ सतत आवागमन बना रहा।

महामहिम आचार्य भगवन्त अपनी पातकप्रक्षालिनी भवभयहारिणी वाणी-सुधा द्वारा धर्म के मर्म को अपनी सहज सुबोध सुग्राह्य भाषा में समझाते तो उपस्थित श्रद्धालु जन 'खम्मा, खम्मा' बोल उठते। प्रवचन सुधा में अवगाहन कर वे अपने आपको धन्य-धन्य बना रहे थे। पूज्यवर्य ने यथासमय अपने जीवन निर्माता गुरुदेव आचार्य भगवन्त पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा., आदर्श साधुता के श्रेष्ठ पर्याय, मरण विजेता गुरुभ्राता श्री सागरमल जी म. सा. आदि महापुरुषों की पुण्यतिथियों के प्रसंगों पर उनके गुणानुवाद करते हुए जीवन को उन्नत व संयत बनाने की प्रेरणा की। सम्वत्सरी महापर्व के दिन तमिलनाडु के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री प्रभुदासजी पटवारी ज्ञान-क्रिया के उत्कृष्ट आराधक , जिनशासन सरताज पूज्यप्रवर आचार्य श्री हस्ती के पावन दर्शनार्थ पधारे। अनन्त पुण्यनिधान साधनातिशयसम्पन्न आचार्यदेव के पावन दर्शन व उनकी आध्यात्मिक आनन्द प्रदायिनी अमोघवाणी से निःसृत जिनवाणी को श्रवण कर माननीय राज्यपाल महोदय ने अपने आपको धन्य-धन्य माना। क्षमापर्व संवत्सरी पर पूज्यप्रवर ने "भूलों का पुनरावर्तन रोकना, क्षमादिवस मनाने की सार्थकता है" इस सार गर्भित संदेश से जन-जन को आत्मोत्थान की प्रेरणा की।

जिनशासन प्रभावक आचार्य भगवन्त का चिन्तन था कि अहिंसा, अनेकान्त व अपरिग्रह एक दूसरे के पूरक ही नहीं, वरन् सहधर्मी जीवन मूल्य हैं? श्रमण भगवान महावीर के ये सार्वजनिक, सार्वकालिक चिन्तन सत्य-सिद्धान्त विश्व शांति व मानव मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। युग मनीषी इतिहासवेत्ता आचार्य देव के मन में एक पीड़ा थी कि जो जैनधर्म कभी दक्षिण में जन-जन का धर्म था, वह आज व्यवसायी वर्ग तक सिमट गया है। आज पुनः तमिलभाषी भाई-बहिनों को श्रमण भगवान महावीर के सिद्धान्तों एवं जैन जीवन शैली से जोड़ने की आवश्यकता है।

चातुर्मास काल में एकदा आपने प्रवचनामृत में साधन-सम्पन्न जैन समाज को अपना कर्तव्य बोध कराते हुए फरमाया –"दक्षिण में जैन श्रावकों के सत्तारूढ होने से शताब्दियों तक जैन धर्म का प्रचार-प्रसार होता रहा। जैन साहित्य की अमूल्य निधि दक्षिण में मूडबिद्री के जैन भंडारों में सुरक्षित है। आज यद्यपि जैन समाज सम्पन्न है, तथापि अहिंसा के प्रचार के लिये ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। आवश्यकता इस बात की है कि जैन समाज स्थानीय समाज में अहिंसा की उदात्त भावना जागृत करे। शासन सेवा में श्रम, शक्ति व अर्थ का सदुपयोग करने वाले ही सदा यशस्वी बने हैं।"

चातुर्मास काल में जिनवाणी के मानद् सम्पादक प्रख्यात जैन विद्वान् डॉ. नरेन्द्र भानावत के संयोजकत्व में विद्वद् गोष्ठी का आयोजन हुआ। देशभर से आये हुए मनीषी विद्वानों ने महामनीषी आचार्य भगवन्त का आशीर्वाद पाकर युवापीढी की समस्याओं पर चिन्तन-मनन करते हुए उन्हें धर्म, अध्यात्म व रचनात्मक कार्यों से जोड़ने हेतु चिन्तन प्रस्तुत किया।

भेदविज्ञान के ज्ञाता, आगमवेत्ता, संयम-जीवन के उषा काल से ही देह भिन्न, मैं भिन्न, ये तन-जन-परिजन मेरे नहीं, मैं तो शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, शाश्वत अविनाशी हूँ, यह चिन्तन स्वरचित आत्म बोधकारी रचनाओं "मैं हूँ उस नगरी का भूप", मेरे अन्तर भया प्रकाश" के माध्यम से प्रकट कर चुके थे। समय के साथ आपका यह चिन्तन निरन्तर निखरता गया। धर्म के नवनीत सम यह चिन्तन आपके प्रवचनामृत में समय-समय पर प्रकट होता रहा। जन्म, जरा व मत्यु ये जीवन के अटल सत्य हैं। जरा व मृत्यु के शाश्वत सत्यों को समझने वाला साधक इनमें कष्टानुभव नहीं करता, वरन् इनमें भी हित भाव ढूँढ लेता है। कार्तिक शुक्ला ९ को अपने आत्मोद्बोधक प्रवचन में पूज्यपाद ने बुढापावाचक जरा के बारे में फरमाया -

"जरा जगाने को आती, मृत्यु निकट पहचान।
जगमाया को छोड़कर, जालम धर प्रभु ध्यान।
नश्वर तन में बसत है, ज्ञानस्वरूपी देव।
अजर अमर निर्मल दशा, करलो उसकी सेव॥
तन - धन - परिजन क्षणिक हैं, भय चिन्ता के स्थान।
निज में निज को देख ले, अविचल आनन्द सिन्धु समान॥"

चातुर्मास काल में अनन्य गुरुभक्त अग्रगण्य समाजसेवी श्री हंसराज चन्दजी भंडारी (सुपुत्र स्वर्गीय श्री मांगीचंद जी भंडारी) के असामयिक निधन से रत्न श्रावक समाज व मद्रास स्थानकवासी समाज में अपूरणीय क्षति हुई। परम पूज्य आचार्य भगवन्त ने परिजनों को धर्म की शरण ग्रहण करने की प्रेरणा करते हुये फरमाया "अल्पवय की मृत्यु और रोग-शोक से बचने का मार्ग नियत एवं शुद्ध आहार तथा आसक्ति का परिहार है।"

यह चातुर्मास विविध धार्मिक आयोजनों, जन-जन की सहभागिता एवं व्रत-प्रत्याख्यानों की आराधना से सम्पन्न अनूठा चातुर्मास रहा। इस चातुर्मास की अनेक उपलब्धियाँ रहीं, यथा-

(१) शताधिक भाइयों तथा बहिनों द्वारा थोकड़ों और शास्त्रों का अध्ययन किया गया (२) ३०० से भी अधिक बालकों व युवकों द्वारा सामायिक , प्रतिक्रमण, २५ बोल आदि कण्ठस्थ किये गये (३) शताधिक अजैन भाइयों द्वारा कुव्यसनों तथा अभक्ष्य-भक्षण का त्याग किया गया (४) शताधिक युवकों द्वारा सामायिक और स्वाध्याय के नियम लिए गए (५) सन्त सान्निध्य में धर्म-चर्चा के आयोजन का लाभ मिलता रहा (६) शान्ति सप्ताह, साधना सप्ताह,

आयम्बिल आराधना, मौन-साधना, दया-संवर का आराधन, रात्रि संवर, स्वधर्मीवात्सल्य, दान आदि प्रवृत्तियाँ प्रभावक रहीं (७) अनेक दम्पतियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य का स्कंध व कइयों ने ब्रह्मचर्य की मर्यादा स्वीकार की (८) मासक्षपण, अठाई आदि विविध तपों का ठाट रहा (९) धर्मनिष्ठ गुरुभक्त श्रावक श्री शंकर लालजी ललवानी, जलगांव ने ६० दिनों तक अखण्ड मौन साधना की। (१०) कौनबरा, अडयार तथा मद्रास विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों के उपयोग से जैन धर्म व इतिहास विषयक कई नवीन बातें प्रकाश में आयीं, जिससे इतिहास लेखन के कार्य को गति मिली।

• बैंगलोर की ओर

मद्रास का ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर पूज्य चरितनायक २३ नवम्बर १९८० को शिष्य समुदाय के साथ विहार कर चिन्ताद्रिपेठ पधारे। यहाँ श्री भभूतचन्दजी मुथा ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार कर शीलधर्म के आराधक महापुरुषों का सच्चा स्वागत किया। यहाँ से सन्तमण्डल का तीन संघाटकों में अलग-अलग क्षेत्रों में विहार हुआ। अपने ज्येष्ठ शिष्य सेवाभावी पं. रत्न लघु लक्ष्मीचन्दजी म.सा., आगमज्ञ श्री हीरामुनि जी म.सा. (वर्तमान आचार्यश्री) आदि ठाणा ४ को कालाड़ीपेठ, तमिलभाषी आत्मार्थी सन्त तपस्वीश्री श्री चन्दजी म.सा. आदि ठाणा २ को बडपलनी की ओर विहार कराकर पूज्यपाद दूसरे दिन बडपल्ली पधारे। आपने यहाँ सामायिक स्वाध्याय की प्रेरणा देते हुए फरमाया –"स्थानक की शोभा सामायिक एवं स्वाध्याय से है।" आपकी प्रभावी-प्रेरणा से कई श्रद्धालुओं ने नियमित सामायिक-स्वाध्याय के नियम लिए। यहाँ से आप कोडमवाक्कम् व पोरुर में भी सामायिक-स्वाध्याय का अलख जगाते हुए पुनमली पधारे। सन्तों की अस्वस्थता के कारण आप यहां १० दिन विराजे। इस अवधि में आपके दर्शनार्थ श्रद्धालुओं का आवागमन बराबर बना रहा। पुनमली से पूज्यपाद आवड़ी, तिन्नानूर, त्रिवल्लूर, कडमतूर, पेरमवाकम आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत व नियमित सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा करते हुए तक्कोलम पधारे, जहाँ श्री मोहन लालजी कोठारी ने एक वर्ष तक शीलव्रत पालन का संकल्प लिया। २१ दिसम्बर को आपका पदार्पण आरकोनम हुआ। यहाँ बैंगलोर के दृढधर्मी श्रावक श्री चम्पालालजी डूंगरवाल, श्री सांगरमलजी बोहरा, श्री सुकनराजजी पगारिया, श्री भँवरलालजी गोटावत, श्री प्रेमचन्दजी भण्डारी, स्वाध्याय प्रेमी श्री प्रकाशजी मास्टर आदि श्रावकों ने उपस्थित होकर बैंगलोर पधारने के साथ ही दीक्षा की भावभीनी विनति प्रस्तुत की। आपकी प्रेरणा से यहां अनेकों व्यक्तियों ने सामायिक-स्वाध्याय का संकल्प लिया, धर्मप्रेमी श्रावक श्री कन्हैयालालजी गादिया ने महीने में चार दयाव्रत आराधन का नियम लिया। पूज्यप्रवर यहां से नीमली, कावेरीवाक़म, बालाजापेठ, आरकाट, रत्नागिरी आदि क्षेत्रों को अपने पादविहार से पावन करते हुए पौष कृष्णा सप्तमी को बेल्लूर पधारे। पं. रत्न श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. आदि ठाणा व आत्मार्थी श्री श्री चन्दजी म.सा. आदि ठाणा भी विविध क्षेत्रों में धर्म प्रेरणा करते हुए यहाँ पूज्य गुरुदेव की सेवा में पधार गये। पूज्य गुरुदेव ३१ दिसम्बर १९८० पार्श्वनाथ जयन्ती तक शिष्य समुदाय के साथ वहीं विराजे। पूज्यपाद ने अपने प्रेरक उद्बोधन द्वारा प्रेरणा की कि मोह व अज्ञान तिमिर को नष्ट कर ज्ञान प्रकाश के प्रकट होने से ही आत्म-कल्याण सम्भव है। पूज्यपाद के विराजने से यहां व्रत-प्रत्याख्यान , तप-त्याग का ठाट लगा रहा, श्री भँवरलालजी भटेवड़ा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

वेल्लूर से विरंजीपुरम, केबी कुप्पम्, गुडियातम, परनामवह् आदि क्षेत्रों को अपनी पदरज से पावन करते हुए पूज्यपाद ने तमिलनाडु से आंध्रप्रदेश के नाइकनेरी में पदार्पण किया। इस पूरे विहार क्रम में मार्ग में भक्त श्रावकों का आगमन बराबर बना रहा। पूज्यपाद चाहे किसी महानगर में विराज रहे हों, चाहे वन-खण्डों अथवा छोटे-छोटे ग्रामों में, हर जगह पुण्यनिधान पूज्य हस्ती के पावन-दर्शन करने हेतु श्रद्धालु भक्तगण आते ही रहते, यह आपके

साधनातिशय व साधक-जीवन का दिव्य प्रभाव था। विहार काल में मद्रास, वेल्लूर व बैंगलोर आदि क्षेत्रों के भक्त श्रावकों ने विहार-सेवा का लाभ लेकर गुरु-भक्ति का परिचय दिया। मुस्लिम बहुल ग्राम विकोटा में पूज्यप्रवर डाक बंगले पर ठहरे। दयाधर्म के आराधक आचार्य भगवन्त ने यहां चार-पांच व्यक्तियों को अण्डा, मांस व मछली का त्याग करा कर उन्हें हिंसा से विरत किया। बेतमंगल में आप पाठशाला भवन में विराजे। यहां से पूज्य आचार्य भगवन्त के. जी. एफ. पधारे। आचार्य श्री नानेश के शिष्य श्री धर्मेश मुनिजी ठाणा ३ आपकी अगवानी में सम्मुख पधारे। श्रावक समुदाय भी उल्लसित भाव से पूज्यपाद की अगवानी में उपस्थित था। श्री धर्मेशमुनि जी आदि ठाणा पूज्यपाद के साथ ही विराजे। पौष शुक्ला अष्टमी को आचार्य श्री नानेश की दीक्षातिथि पर पूज्य चरितनायक ने फरमाया–"भोपालगढ की पुण्य भूमि में उन्होंने एवं हमने स्थानकवासी समाज के संगठन की भूमिका स्वरूप मैत्री सम्बन्ध किया। मैत्री के इस कल्पवृक्ष का रक्षण, पोषण एवं सिंचन चतुर्विध संघ को करना है। सरलता व आत्मीयता से ही इसका रक्षण संवर्धन संभव है।"

के. जी. एफ. में पौष शुक्ला चतुर्दशी संवत् २०३७ को चरितनायक पूज्य हस्ती का ७१ वां जन्म दिवस तपत्याग एवं दया-संवर की आराधना के साथ मनाया गया। बैंगलोर, मद्रास, जलगांव, जयपुर, भोपालगढ एवं आस-पास के क्षेत्रों के श्रावकगण ने पूज्यपाद के पावन दर्शन व अमृतमयी जिनवाणी का पान करते हुए धर्म-साधना का लाभ लिया। परम गुरु भक्त श्री रतनलाल जी बाफना ने इस अवसर पर पांच वर्ष के लिये रात्रि चौविहार के प्रत्याख्यान किये।

परमपूज्य गुरुदेव के लिये जन्म-दिवस साधना-संकल्प दिवस था, बालवय में महनीय गुरु के चरणों में जो समर्पण किया, उसे स्मरण कर आगे बढने हेतु संकल्प लेने का दिवस था। पूज्यप्रवर ने इस दिन अपनी रचना के माध्यम से जो संकल्प लिया, उसकी कुछ पंक्तिया प्रस्तुत हैं -

गुरुदेव चरण वन्दन करके, मैं नूतन वर्ष प्रवेश करूं।
शम-संयम का साधन करके, स्थिर चित्त समाधि प्राप्त करूँ॥
हो चित्त समाधि तन-मन से, परिवार समाधि से विचरूँ।
अवशेष क्षणों को शासनहित, अर्पण कर जीवन सफल करूँ॥

उपर्युक्त पंक्तियां पूज्य हस्ती की उत्कट गुरु-भक्ति, आत्मोन्नति की तीव्र अभिलाषा, शासनहित समर्पण, शम दम के प्रति प्रीति आदि गुणों को प्रकट करते हुए हमें भी जन्म-दिवस मनाने के सच्चे प्रयोजन का दिग्दर्शन कराती हैं।

ग्रामानुग्राम विचरण-विहार करते हुए आचार्य भगवन्त बंगारपेठ फरसते हुए कोलार पधारे जहाँ श्री जेवतराज जी धारीवाल ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। यहां से नरसापुर, होस्कोटे आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए पूज्यपाद २६ जनवरी १९८१ को कृष्णराजपुरम पधारे। दिनांक २७ जनवरी को करुणाकर बैंगलोर के उपनगर अलसूर पधारे।

के. जी. एफ. से बैंगलोर का यह विहार परीषहों से पूर्ण था। आहार पानी का कोई योग नहीं था। मार्ग में सेना के आवास थे । सेना के लोग मांसाहार का प्रयोग करते थे। दयाधर्म के आराधक षट्काय प्रतिपाल पूज्य हस्ती की प्रेरणा से बटालियन के अधिकारी ने संकल्प किया कि बटालियन के सामूहिक भोजन में मांसाहार का उपयोग नहीं किया जायेगा। यह अहिंसा के पुजारी महान सन्त इस महायोगी के प्रबल पुण्यातिशय का ही दिव्य

प्रभाव था।

अलसूर में दीक्षार्थी विरक्तों का अभिनन्दन किया गया। यहां श्री माणकचन्दजी गादिया ने पांच वर्ष के लिये शीलव्रत पालन का संकल्प लिया। यहां से पूज्यप्रवर अशोक नगर शूले पधारे, जहां श्री चम्पालालजी बोरूंदिया ने आजीवन शीलव्रत का स्कन्ध स्वीकार किया। आपके शिवाजी नगर पधारने पर प्रख्यात जैन विद्वान श्री शान्तिलालजी वनमाली सेठ ने आपके पावन दर्शन, सान्निध्य व तत्त्वचर्चा का लाभ लिया।

बैंगलोर महानगर के हृदयस्थल चिकपेट में आपका दर्शनाचार के आठ अंगों पर बड़ा ही मार्मिक प्रवचन हुआ। माघ कृष्णा चतुर्दशी ३ फरवरी १९८१ को पूज्यप्रवर के सान्निध्य में बाबाजी श्री सुजानमलजी म.सा. व खादीवाले श्री गणेशीलालजी म.सा. की पुण्यतिथि विशेष तपत्याग व व्रताराधन पूर्वक मनाई गई। इस अवसर पर यहां विरक्त मुमुक्षुओं का अभिनन्दन भी किया गया।

मद्रास पधारने के पूर्व पूज्यपाद के बैंगलोर पदार्पण के अवसर पर महासंघ अध्यक्ष श्री फूलचन्दजी लूणिया व चिकपेट सिटी संघ अध्यक्ष श्री भंवरलालजी गोटावत ने धर्मस्थानक में २०० व्यक्ति नियमित सामायिक साधना वाले होने तक मिठाई त्याग का जो संकल्प लिया था, वह पूर्ण हो गया था। आचार्य हस्ती का सामायिक-स्वाध्याय का पावन सन्देश अब बैंगलोर महानगर के कोने-कोने में पहुँच चुका था। बैंगलोर के प्रत्येक उपनगर के स्थानक नियमित धर्म-साधना के केन्द्र के रूप में सुशोभित हो रहे थे। जहां- जहां चरितनायक का पदार्पण हुआ, वहां धर्माचरण का वातावरण निर्मित हुआ। पूर्व में जिन धर्मस्थानकों के कपाट यदा-कदा ही खुलते, वहां नियमित सामायिक-साधना व जिनवाणी के पावन उद्घोष की ध्वनियाँ गुञ्जित होने लगीं।

यहां के उपनगर जयनगर में ९ फरवरी १९८१ को श्री प्रकाशमलजी भंडारी, जोधपुर श्री धनञ्जय जी चोरडिया शिरपुर, कावेरी पट्टनम् निवासी श्री गुरुमूर्ति एवं श्री जम्बू जी ने पूज्यपाद से श्रमण दीक्षा अंगीकार की। इनके साथ ही पंजाब सिंहनी महासती श्री केसरदेवी जी म.सा. की निश्रा में मुमुक्षु बहिन विजया देवी बैंगलोर ने भी पूज्यपाद के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा अंगीकार की। भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति श्री बासप्पा दानप्पा जत्ती एवं कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल श्री गोविन्द नारायणसिंह राग से विराग, भोग से योग एवं असंयम से संयम की ओर बढते मुमुक्षुजनों के पुरुषार्थ से दीक्षा समारोह में अभिव्यक्त वैराग्य से एवं संयम के गौरव व संयमनिष्ठ तपः पूत ज्ञान-क्रिया के संगम युग मनीषी पूज्य आचार्य देव की दिव्य विभूति से अभिभूत थे।

दीक्षा समारोह के अनन्तर पूज्यपाद ठाणा १४ से लालबाग में स्व. श्री हंसराज चन्दजी भंडारी के बंगले विराजे। यहां श्रेष्ठिवर्य श्री छगनमलजी मूथा व सरलमना गुरुभक्त श्री मोतीलालजी सांखला ने बडी दीक्षा अशोक नगर शूले में करने की आग्रह पूर्ण विनति प्रस्तुत की। उनके आग्रह व भक्ति को मान देते हुए पूज्य आचार्य भगवन्त के सान्निध्य में दिनांक १६ फरवरी को नवदीक्षित सन्तों की बड़ी दीक्षा अशोक नगर शूले में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर महानगर संघ अध्यक्ष श्री फूलचन्दजी लूणिया व श्री कन्हैयालालजी सिंघवी, चिकपेट ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर संयम-साधकों का अनुमोदन किया, ४० श्राविकाओं ने दयाव्रत आराधन व कई व्यक्तियों ने पौषधोपवास का लाभ लिया। इस अवसर पर कावेरी पट्टनम के १८ तमिल भाइयों ने जन-जन कल्याणकारी जैन धर्म स्वीकार कर अपने आपको पावन बनाया।

कुमारा पार्क, मल्लेश्वरम् आदि उपनगरों को फरसते हुए पूज्यप्रवर यशवन्तपुरा पधारे व सुज्ञश्रावक श्री सुगनमलजी गणेशमलजी भंडारी के निवास पर विराजे। यहां श्री गोविन्दस्वामी जी ने सदार आजीवन शीलव्रत

अंगीकार किया। पूज्यपाद ने यहां सुखी जीवन के लिए भोगोपभोग परिमाण व्रत की प्रेरणा की।

विहारक्रम में पूज्यप्रवर जिन्दल फैक्ट्री विराजे। फैक्ट्री की अनूठी विशेषता थी कि यहां के सभी कर्मचारी निर्व्यसनी व संस्कारशील थे, कोई भी मद्य-मांस सेवन व धूम्रपान नहीं करता था। फैक्ट्री परिसर में ही व्यवस्थापकों ने कर्मचारियों के धर्माराधन का सेवन व उपासना हेतु समुचित प्रावधान कर रखा था। संस्कार, सदाचार, सात्त्विकता व निर्व्यसनता की इस भावना से पूज्यप्रवर भी प्रमुदित हुए।

यहां से विहार कर नलमंगला, टी वेगुर, दासवपेठ, हीरहेल्ली, टुमकुर, कोराग्राम, नलिहाण्ड, कल्लमबेला, सीराग्राम, मानंगी, जवानगोदन हल्ली, आदिवाड़शाला आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों को पद रज से पावन करते हुए चरितनायक हिरियूर पधारे। यहां से पुनः संतों का अलग-अलग संघाटकों में विहार हुआ। आचार्य भगवन्त होर्तीकोटा, सणिकेरा, वल्लकेरा (चर्णिगेरा) को पावन करते हुए तलक पधारे। यहां उर्दू भाषा के अध्यापक श्री सैयद जिज्ञासा भाव से आपकी सेवा में उपस्थित हुए। वे आपसे जैन साधु-चर्या का परिचय पाकर अत्यन्त आश्चर्याभिभूत व प्रमुदित हुए। अहिंसा धर्म से प्रभावित हुए श्री सैयद ने करुणानाथ के श्री चरणों में निवेदन किया कि हमें पहले खबर की जाती तो दो चार सौ लोग आपका उपदेश सुनने को उपस्थित हो जाते, और वे भी अहिंसा धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हो जाते। अहिंसा धर्म श्रेष्ठ है, पर जैन लोग आप जैसे गुरुओं की सेवा का लाभ खुद ही लेते हैं, इससे हमको क्या फायदा ? जैसे क्रिश्चियन लोग बाइबिल के उपदेश को साधारण लोगों में वितरण करते हैं, वैसे ही महावीर के उपदेश को छोटी छोटी बुक (पुस्तक) के रूप में अवाम को दें तो उसका उन्हें लाभ मिल सकता है। हम ऐसी पुस्तकें यहां लाइब्रेरी में भी रख सकते हैं। उर्दू-अध्यापक द्वारा व्यक्त विचारों पर जैन समाज विचार कर इसे कार्यरूप में परिणत करे तो जैन-धर्म जन-जन तक पहुँच सकता है व लाखों लोगों को अहिंसा का पावन सन्देश देकर हिंसा की प्रवृति के प्रसार को रोकने में सफलता प्राप्त कर सकता है। उर्दू अध्यापक ने मुसलमानों में मांस के प्रचलन पर कहा–"मुसलमानों में गोश्त का प्रचार कैसे हुआ? लड़ाई के समय एक बार अरब में मांस खाने की बात कही गई, क्योंकि वहाँ पर दूसरी व्यवस्था नहीं थी, परन्तु वह रिवाज अब तक चल रहा है।" इससे ज्ञात होता है कि मांस का सेवन मुसलमानों में भी एक रूढि ही है, धर्म नहीं।

तलक से जगतवत्सल आचार्य भगवन्त हिरेहल्ली, विजीकेरा आदि क्षेत्रों को फरसते हुए पहाड़ी मार्ग से प्रकृति की विस्मयकारी रचना से गुजरते हुए रायपुरा पधारे। अमकुण्डी में बल्लारी निवासी ड्राइवर श्री रसूल शेख ने पूज्यपाद से मांस-मदिरा व धूम्रपान का त्याग कर अपने जीवन को पापों से विरत करने के साथ ही कइयों के लिये अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया।

• आन्ध्र की सीमा में प्रवेश कर पुनः कर्नाटक की धरा पर

अब आचार्य भगवन्त का कर्नाटक प्रदेश से पुनः आंध्र सीमा में प्रवेश हुआ। ओवलपुर ग्राम, रायल सीमा को पार कर चरितनायक बल्लारी पधारे। यहां पूर्व विराजित श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य श्री पद्मसागर जी म.सा. आपके दर्शनार्थ पधारे। यहां आचार्यप्रवर के तमिलभाषी आत्मार्थी शिष्य श्री श्रीचन्दजी म.सा. आदि ठाणा भी तमिलनाडु, कर्नाटक व आंध्र के विभिन्न क्षेत्रों को फरसते हुए पधारे। फाल्गुनी चौमासी के अवसर पर पूज्यपाद ने अपने प्रवचन पीयूष में कषाय भाव को जला कर आत्मा को तपस्या के रंग में रंग कर कर्म-निर्जरा करने की प्रेरणा दी तथा द्रव्य होली की बुराइयों से ऊपर उठने का आह्वान किया - दूसरे लोग द्रव्य कचरा जला कर, धूल मिट्टी उछाल कर, गालियाँ आदि बोल कर कर्मबन्ध का कार्य करते हैं, जबकि सच्चे जिनधर्मानुयायी इस दिन तपाग्नि द्वारा

कर्मों की निर्जरा कर अपने आपको आत्म-गुणों के रंग में रंग कर सुशोभित करते हैं । यहीं पर चैत्र कृष्णा अष्टमी को आदिनाथ जयन्ती के अवसर पर आपने जन-साधारण के भगवान ऋषभदेव के आदर्शों एवं मानव जाति पर किये गये उपकारों से अवगत कराया। आपकी प्रेरणा से यहां धार्मिक-शिक्षण प्रारम्भ हुआ।

विहार क्रम में अलीपुर ग्राम में आचार्य भगवन्त मुनिदयाल जाति की वृद्धा नर्स की पुत्री पार्वती देवी के मुख से वन्दनोपरान्त नमस्कार मंत्र का शुद्ध उच्चारण सुन कर अत्यन्त प्रमुदित हुए । सत्य है गुण पूजा के आदर्श को प्रस्तुत करने वाला जैन धर्म जाति, कुल, देश एवं वेश के बंधनों में आबद्ध नहीं है।

यहाँ से विहार कर भगवन्त कुडतनी ग्राम पधारे व वैष्णव मंदिर में विराजे। दक्षिण भारत के ग्राम-ग्राम में करुणाकर आचार्य भगवंत ने 'सब जीवों को जीवन प्यारा, रक्षण करना धर्म हमारा' का मन्त्र पाठ दिया। नई दरोजी में करुणानाथ ने ग्रामवासियों को मांस त्याग का उपदेश दिया, जिससे ग्रामवासियों को हिंसा से विरत होने की प्रेरणा मिली। आपके प्रेरणादायी उपदेश से प्रभावित नवयुवक सरपंच श्री नरसिंह ने सदा-सदा के लिए मद्य-मांस का त्याग कर अपने जीवन को पाप-कालिमा के गर्त में डूबने से बचाया।

यहाँ से पूज्यप्रवर पहाड़ी मार्ग से मेट्रो, कम्पली के लिंगायत मठ होते हुए गंगावती पधारकर श्री पन्नालालजी बांठिया के मकान पर बिराजे। यहां आपके प्रवचन सेठी भाई के भवन में हुए। तीनों सम्प्रदायों के लोगों ने आपके प्रवचन पीयूष का लाभ लिया। पूज्यपाद के सान्निध्य लाभ से ग्रामवासियों का उत्साह देखते ही बनता था। यहाँ आपने अपने प्रेरक उद्बोधन में फरमाया - "श्रमण भगवान महावीर के उपदेश को श्रवण, ग्रहण, और धारण कर आचरण में लाना है, तभी कल्याण है।" श्री रामनगर कार्डगी होते हुए आप गोरेवाल ग्राम पधारे व नहर के तट पर अवस्थित चरण वसवेश्वर के मन्दिर में विराजे। यहाँ अजैन भाइयों की सेवा-भक्ति सराहनीय रही। यहां से विहार कर पूज्यप्रवर सिन्धनूर पधारे, जहां महावीर जयन्ती उत्साहपूर्वक मनाई गई। इस अवसर पर देश के विभिन्न २१ नगरों के संघ प्रतिनिधि उपस्थित थे। महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर श्री पुखराजजी रुणवाल ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया व कई युवाओं व प्रौढ व्यक्तियों ने जीवपर्यन्त सप्त कुव्यसन का त्याग कर अपने जीवन को पावन किया।

सिन्धनूर से विहार कर चरितनायक जबलगेरे, पोतनाल, कोटनेकल, मानवी होते हुए कपगलु (कफगल) पधारे। जहां करुणाकर गुरुदेव ने अब्दुल्लाह को उसके मकान पर मांस-सेवन, धूम्रपान व परस्त्रीगमन का त्याग कराया। यहाँ से विहार कर आप कल्लूर, रेड्डीकेम्प फरसते हुए रायचूर पधारे।

• भागवती दीक्षा का आयोजन

रायचूर में आचार्य श्री के सान्निध्य में अक्षय तृतीया का पावन पर्व व्रत-प्रत्याख्यान व तप-त्याग के साथ मनाया गया। परम पूज्य चरितनायक आचार्य हस्ती के आचार्य पद दिवस पर स्थानीय बंधुओं के साथ देश के विभिन्न भागों से आये भाई-बहिनों ने प्रवचनामृत का लाभ लिया।

वैशाख शुक्ला षष्ठी दिनांक ९ मई ८१ को मुमुक्षु बहिन बालब्रह्मचारिणी सरला जी कांकरिया सुपुत्री श्री रिखबचन्दजी कांकरिया मद्रास एवं बाल ब्रह्मचारिणी चन्द्रकला जी हुण्डीवाल सुपुत्री श्री भंवरलालजी हुण्डीवाल भोपालगढ ने परमाराध्य आचार्य गुरुदेव के मुखारविन्द से भागवती श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर मुक्ति मार्ग में अपने कदम बढाये। दीक्षा-महोत्सव पर उपस्थित स्थानीय व बाहर से पधारे श्रद्धालु श्रावक श्राविकाओं ने दीक्षा के

अनुमोदनार्थ अनेक व्रत-व्याख्यान स्वीकार किये। वीर पिता श्री रिखबचन्दजी कांकरिया मद्रास, श्री मदनलाल जी कांकरिया भोपालगढ़, श्री किशनलालजी भण्डारी रायचूर, श्री सज्जनराजजी भण्डारी रायचूर, श्री लालचन्दजी धोका यादगिरी एवं श्री सन्तुराजनजी मदुरै ने बाल ब्रह्मचारिणी बहिनों द्वारा जीवन भर के लिये संयम ग्रहण के इस प्रसंग पर आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर सच्ची भेंट प्रदान की। कांकरिया परिवार ने अपनी लाडली सुपुत्री के साधना-मार्ग पर प्रवेश की खुशी में अपने मूल निवास क्रियोद्धार भूमि भोपालगढ में सम्यग्ज्ञान जैन धार्मिक पाठशाला स्थापित करने की घोषणा की।

बड़ी दीक्षा के अनन्तर पूज्यपाद ठाणा ४ से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यादगिरी पधारे। यहाँ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को परमपूज्य आचार्य भगवन ने क्रियोद्धारक आचार्य देव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. की १३६ वीं पुण्य तिथि पर उन महापुरुष के आदर्शों व उपदेशों को प्रस्तुत करते हुए उन्हें जीवन में अपनाने का आह्वान किया। कियोद्धारक महापुरुष के पुण्य दिवस पर श्री पन्नालालजी धोका ने सदार आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। अनेकों भाई-बहिनों ने दया, उपवास, आयम्बिल आदि विविध तप व पांच-पांच सामायिक की आराधना कर अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की।

• रायचूर चातुर्मास (संवत् २०३८)

आन्ध्रप्रदेश व कर्नाटक के विभिन्न ग्राम-नगरों में सामायिक-स्वाध्याय का शंखनाद और जिनवाणी की पावन गंगा प्रवाहित करने वाले आचार्यप्रवर का १० जुलाई आषाढ शुक्ला १० को ठाणा ७ से उल्लसित भक्तों द्वारा उच्चरित जय-जयनाद के साथ रायचूर चातुर्मासार्थ मंगलप्रवेश हुआ।

पूज्यपाद का यह ६१ वां वर्षावास ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सौरभ से सुरभित व तपाराधन की दीप्ति से दीप्तिमान रहा। इस चातुर्मास में रायचूरवासियों ने आचार्य देव के पावन सान्निध्य व त्यागी संत-महापुरुषों की सेवा का पूर्ण लाभ लेते हुए ज्ञानाराधन व व्रताराधन दोनों ही क्षेत्रों में आगे बढने का पुरुषार्थ कर अन्य क्षेत्रों के लिये भी चातुर्मास के उद्देश्यों का सच्चा अनुकरणीय आदर्श प्रशस्त किया। रायचूर के शान्त वातावरण में सम्पन्न चरितनायक का यह वर्षावास सभी दृष्टियों से सफल रहा। प्रतिदिन प्रार्थना व प्रवचन में आबाल वृद्ध सभी ने पूरे चातुर्मास में उपस्थित होकर जिनेन्द्र-भक्ति व पावन जिनवाणी में अवगाहन कर प्रवचन-सुधा का पान किया। अपराह्न आचार्य श्री के विद्वान् आगमज्ञ शिष्य पं. रत्न श्री हीरामुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर) द्वारा शास्त्र-वाचना का क्रम बराबर चलता रहा। संयमधनी महापुरुषों के सान्निध्य में रायचूरवासियों ने संवर-साधना में अपनी गतिशीलता का आदर्श उपस्थित किया। प्रत्येक रविवार को २०० से अधिक दया-संवर, चातुर्मास की विशेषता रही। बहिनों में सतरंगी, अठाई, मासक्षपण की आराधना बराबर चलती रही। चातुर्मास प्रारम्भ से सम्वत्सरी महापर्व तक अखण्ड जप-साधना बराबर चलती रही। सामूहिक क्षमापना की गरिमामयी परम्परा रायचूर संघ की अनूठी विशेषता है।

चातुर्मास काल में अनेकों अठाइयों के साथ ५ मासक्षपण हुए, विजयाबहिन चोपड़ा ने ५१ दिन की तपस्या की। गुरु भक्त श्रावक श्री शंकरलालजी ललवानी, जामनेर ने ६५ दिवस की मौन साधना कर वाणी - संयम का आदर्श उपस्थित किया। श्री ईश्वर बाबू ललवानी द्वारा अपने पिता श्री की इस मौन साधना का अनुमोदन दान द्वारा किया गया। आचार्य भगवन्त के समर्पित श्रावक श्री पूनमचन्द जी बडेर, जयपुर ने चातुर्मास काल में अखण्ड मौन, जप, ध्यान एवं दयाव्रत की साधना की। चातुर्मास काल में ११ दम्पतियों (१. श्री पुखराजजी रुणवाल २. श्री सुगनचन्दजी कर्नावट, इन्दौर ३. श्री बस्तीमलजी बाफना, भोपालगढ ४. श्री केशरीमलजी नवलखा, जयपुर ५. श्री

सूरजमलजी मेहता, अलवर ६. श्री हीरालालजी ७. श्री प्रेमचन्दजी डागा, जयपुर ८. श्री सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास ९. श्री जोधराजजी सुराणा, बैंगलोर १०. श्री प्यारेलालजी कांकरिया, रायचूर एवं ११. श्री रत्नकुमारजी रत्नेश, बम्बई) ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

चातुर्मास काल में पाली, निवाई, जयपुर, सवाईमाधोपुर, जलगांव, मद्रास, जोधपुर, महागढ, नीमच आदि के श्रावकों ने आकर कई दिनों तक धर्मसाधना का लाभ लिया। इन्दौर से श्री भँवरलालजी बाफना ने परिवार की पांच पीढियों व संघ के साथ परमाराध्य गुरुदेव के पावन-दर्शन, वन्दन व प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया। गुरुदेव के अनन्य भक्त करुणामूर्ति श्री देवेन्द्रराजजी मेहता ने २७ सितम्बर को पूज्यपाद के दर्शन कर स्थानीय संघ को अहिंसा के क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने की प्रेरणा की।

१४ अगस्त को प्रवचन में युवकों व प्रौढों ने समाजसुधार एवं दहेजप्रथा उन्मूलन हेतु कतिपय संकल्प लिये, यथा - (१) विवाह सम्बन्ध में दहेज, डोरा या बींटी की मांग नहीं करेंगे (२) किसी अन्य माध्यम से मांग नहीं करायेंगे (३) दहेज का प्रदर्शन नहीं करेंगे (४) कम अधिक देने की बात को लेकर पुत्रवधू अथवा सम्बन्धी जन से ऊँचा नीचा नहीं कहेंगे। अगले ही दिन जैन युवक संघ की साधारण सभा व १९ अगस्त को श्रावक संघ की साधारण सभा ने इन नियमों को सर्व सम्मति से पारित कर सामाजिक नियम के रूप में स्वीकार किया। इसी सम्बन्ध में यहां दक्षिण भारत जैन सम्मेलन का भव्य आयोजन हुआ, जिसमें दहेज प्रथा उन्मूलन व सामाजिक कुरीतियों के निकन्दन हेतु ठोस निर्णय लिये गये।

चातुर्मास में बालकों व युवकों को संस्कारित करने व उन्हें धार्मिक शिक्षण से जोड़ने के विशेष प्रयास हुए। विभिन्न प्रतियोगिताओं के माध्यम से छात्रों व युवकों को वतर्मान युग में महावीर के सिद्धान्तों की उपयोगिता का बोध दिया गया। महान अध्यवसायी श्री महेन्द्र मुनि जी म.सा. की प्रेरणा से १०० से अधिक छात्र-छात्राएं धार्मिक शिक्षण में प्रगति कर धार्मिक-परीक्षा में सम्मिलित हुए।

यहां दिनांक ८ से १० नवम्बर तक २० क्षेत्रों से पधारे ७० विद्वानों व स्वाध्यायी बन्धुओं ने स्वाध्याय संगोष्ठी में भाग लेते हुए पूज्यपाद के चिन्तन "यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्" यानी जो क्रियावान है वही विद्वान् है, को चरितार्थ करने पर बल दिया। 'आचार्य श्री रत्नचन्द्र स्मृति व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत श्री गजसिंह जी राठौड जयपुर, श्री चम्पालालजी मेहता कोप्पल, श्री जोधराजजी सुराना बैंगलोर, प्रो. एस. एन. पाटिल हुबली, डॉ एम.डी. वसन्तराज, मैसूर प्रभृति इतिहासविदों व विद्वानों ने 'कर्नाटक में जैन धर्म' व कन्नडभाषा और साहित्य को जैनों का योगदान' विषयों पर सारगर्भित शोधपूर्ण व्याख्यान देकर श्रोताओं का ज्ञानवर्द्धन किया।

इस चातुर्मास में परम पूज्य गुरुवर्य हस्ती के विराजने से रायचूर संघ को चिरस्थायी लाभ प्राप्त हुआ। चातुर्मास में हुए ज्ञानाराधन व स्वाध्याय के शंखनाद से यह क्षेत्र आज भी उपकृत है। अद्यावधि इस क्षेत्र में निरन्तर ज्ञानगंगा प्रवाहित हो रही है। चातुर्मास में श्री रिखबचन्दजी सुखाणी, श्री किशनलालजी भण्डारी, श्री शान्तिलालजी भण्डारी, श्री सोभागराजजी भण्डारी, श्री मोहनलालजी संचेती, श्री जंवरीलालजी मुथा, श्री पारस जी, श्री प्यारेलालजी कांकरिया, श्री हुकमीचंदजी कोठारी, श्री माणकचन्दजी रांका, श्री मोहनलालजी बोहरा, श्री बाबूलालजी बोहरा आदि सुश्रावकों का उत्साह, संघ-सेवा व समर्पण सराहनीय रहा।

• हैदराबाद की ओर

रायचूर का सफल चातुर्मास सम्पन्न कर पूज्य चरितनायक का विहार हैदराबाद की ओर हुआ। राजेन्द्र गंज, कल्याण मंडप, शक्तिनगर, मेहबूबनगर आदि क्षेत्रों में ज्ञान सूर्य आचार्य हस्ती के पदार्पण व प्रवचनामृत का जनमानस पर प्रेरणादायी प्रभाव रहा। मेहबूब नगर के जिलाधीश श्री मुरलीधर जी ने पूज्यपाद के साधना सम्पूरित व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मद्यपान का त्याग कर अपने जीवन को व्यसन मुक्त बनाया। उदारमना श्री भीमराजजी ने जैनभवन की ऊपरी मंजिल सदा के लिये धर्माराधन हेतु उपलब्ध कराने की घोषणा की, जो संघ में स्थान की उपलब्धता से सामूहिक सामायिक-साधना व स्वाध्याय करने वाले भाई बहिनों की संख्या में अभिवृद्धि एवं संघ के उत्साह अभिवर्धन का कारण रहा। स्थानीय संघाध्यक्ष श्री लक्ष्मीचन्दजी कोठारी, श्री मिलापचन्दजी कोठारी व श्री जीवराजजी ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत, अंगीकार कर अपने जीवन को यशस्वी बनाया। इस विहारकाल में पं. रत्न श्री हीराचन्दजी म.सा. (वर्तमान आचार्य श्री) के हृदयग्राही ओजस्वी प्रवचनों का श्रोताओं के मानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सुश्रावक श्री अनराजजी विमलचन्दजी अलीजार की भक्ति सराहनीय रही।

आंध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद, इसके सहनगर सिकन्दराबाद, बोलाराम, शमशीरगंज, डबीरपुरा, लालबाजार, काचीगुडा आदि प्रमुख उपनगरों में पूज्य आचार्य श्री हस्ती के सामायिक स्वाध्याय के आह्वान से यहाँ के धर्म स्थानकों में धर्मसाधना का क्रम प्रारम्भ हुआ एवं इनके कपाट नियमित रूप से खुलने लगे। आप श्री की प्रेरणा से धर्मस्थानकों में आकर सामायिक-स्वाध्याय करने वाले भाई-बहिनों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई।

८ जनवरी १९८२ पौष शुक्ला चतुर्दशी को पूज्य आचार्य हस्ती की जन्म जयन्ती गुजराती भवन में सामायिक संकल्प, श्रावक व्रत-ग्रहण, दहेज-त्याग व शीलव्रत ग्रहण के साथ मनाई गई। श्री किशनलालजी बोहरा झूठा, श्री माणकचन्दजी डोशी पाली एवं श्री पन्नालालजी मुणोत ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर श्रद्धाभिव्यक्ति की।

९ जनवरी १९८२ को रात्रि में बीजापुर में वयोवृद्ध स्थविर पं. रत्न श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. का अकस्मात् हृदयाघात होने से स्वर्गवास हो गया। पं. रत्न श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. आचार्य भगवन्त के ज्येष्ठ व श्रेष्ठ शिष्य थे। आप वैय्यावृत्त्य, साधुचर्या, विनय एवं उत्कट गुरुभक्ति के पर्याय थे। आप गोचरी के विशेषज्ञ संत व संतों के लिये 'धाय मां' के तुल्य थे। पं. रत्न श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. स्वयं थोकड़ों के विशेषज्ञ थे व आपकी आगन्तुक भक्तों को थोकड़ों का ज्ञान कराने की विशेष अभिरुचि थी। संकेत तो दूर की बात, आप शारीरिक चेष्टामात्र से ही समझ लेते कि गुरुदेव को क्या अभीष्ट है, ऐसे गुरु आज्ञा में सदा तत्पर, शासनसेवी इन संतरत्न के देवलोक गमन से इस यशस्वी श्रमण परम्परा में अपूरणीय क्षति हुई। परम पूज्य आचार्य भगवन्त ने अपने सुशिष्य श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के आदर्श सन्त-जीवन एवं निरतिचार संयम-साधना का स्मरण करते हुए श्रद्धांजलि व्यक्त की।

सिकन्दराबाद से विहार कर आचार्य श्री ठाणा ६ से मनोहराबाद, तूपरान, चेगुण्टा, बिकनूर, कामारेडी होते हुए निजामाबाद पधारे, जहाँ से पं. रत्न श्री शुभेन्द्र मुनि जी एवं श्री गौतम मुनि जी ने जालना होते हुए राजस्थान की ओर विहार किया। कामारेडी में श्री पन्नालालजी बोहरा ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया तथा कई धर्म प्रेमियों ने प्रतिदिन सामायिक करने का संकल्प ग्रहण किया।

• आन्ध्र से महाराष्ट्र की सीमा में

आचार्यप्रवर ठाणा ४ से निजामाबाद से २६ जनवरी ८२ को विहार कर मामीडीपल्ली, आरमूर, किसाननगर,

निर्मल घाटा पार कर ३ फरवरी को आदिलाबाद पधारे, जहाँ तपागच्छीय आचार्य श्री पद्मसागर जी एवं महासती श्री जयश्री जी से मिलन के साथ तत्त्व चर्चा हुई। यहाँ से माघ पूर्णिमा को महाराष्ट्र की सीमा में प्रवेशार्थ पेनगंगा नदी को पार कर आचार्य श्री पाटन बोरी होते हुए पांढ़रकवड़ा, पधारे, जहाँ संघ प्रमुख श्री धनराजजी चोपड़ा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। पीतलिया, बोगावत आदि परिवारों ने सेवा- भक्ति का अच्छा लाभ लिया। यहाँ से पिंपरी, मारेगांव, मांगरूल होते हुए वणी पधारे, जहाँ उदयराज जी मोहनराज जी मूथा ने दर्शन प्रतिमा एवं एकान्त बाल सम्बंधी प्रश्नों का आचार्यप्रवर से सटीक समाधान प्राप्त किया। फिर सावरला फरसते हुए वरोरा पधारे, जहाँ गोंडल सम्प्रदाय की महासती सन्मतिप्रभाजी आदि ठाणा ३ ने दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण के अतिरिक्त शास्त्रीय प्रश्नों के समाधान प्राप्त किए। फाल्गुन कृष्णा ११ को विहार कर माढेली, नागरी होते हुए हिंगनघाट पदार्पण हुआ। मार्ग में श्री विमलमुनिजी, वीरेन्द्र मुनि जी म. ठाणा २ ने आगरा से आंध्र की ओर जाते समय सुखशान्ति की पृच्छा की।

१ मार्च ८२ को आचार्यप्रवर ने नागपुर सदर में प्रवेश किया, जहाँ स्थानकवासी और मंदिर मार्गी भाई एक संघ के रूप में मिलकर कार्य करते हैं। तीन दिवस तक वहाँ धर्मोद्योत करके आचार्य श्री वर्धमान नगर एवं फिर इतवारी नगर पधारे, जहाँ कई स्थानों के श्री संघों ने आचार्यश्री के दर्शन किये। इस अवसर पर १३-१४ फरवरी को विदर्भ जैन श्वेताम्बर सम्मेलन रखा गया, जिसमें समाज-सुधार के विभिन्न मुद्दों पर व्यापक चर्चा व सहभागिता के साथ अनेक निर्णय लिए गए। सम्मेलन के अवसर पर आये प्रतिनिधियों को उद्बोधन देते हुए पूज्यप्रवर ने शुद्ध आहार-विहार व परिग्रह-परिमाण की प्रेरणा देते हुए तपस्या के प्रसंगों पर आडम्बर व मृत्यु के पश्चात् रोने-विलाप करने जैसे अनर्थदण्ड के त्याग का आह्वान किया। इस अवसर पर श्री भंवरलाल जी सुराणा, श्री भीकमचन्दजी सुराणा, श्री मोहनलालजी कटारिया, श्री चम्पालालजी भण्डारी, श्री भंवरलालजी मुणोत, श्री हीराचन्दजी फिरोदिया, लाला किशन चन्दजी तातेड दिल्ली एवं श्री जवरीलालजी मुथा हास्पेट इन आठ दम्पतियों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

२५ मार्च ८२ को आचार्य श्री पवनार स्थित विनोबा आश्रम में विराजे। आचार्य श्री का मौन दिवस था। यहाँ विनोबा जी के लघु भ्राता वयोवृद्ध शिवाजी राव भावे ने आचार्य श्री के दर्शन कर उन्हें आश्रमवासियों की ब्रह्मचर्य के साथ सादगीपूर्ण ढंग रहने की दिनचर्या सम्बंधी जानकारी दी। विक्रम संवत् २०३९ के नये वर्ष में वर्धा से अगवानी करने आए हुए अनेक भाई-बहनों ने भगवान महावीर एवं आचार्य श्री के जयनारों से आकाश गुंजायमान करते हुए नगर प्रवेश कराया।

वर्धा विदर्भ का एक जिला है। महात्मा गाँधी और विनोबा भावे के आंदोलन का यह केन्द्र रहा है। वर्धा से विनोबा भावे का आश्रम ९ कि.मी. दूर है। आस-पास के जन-मानस पर अहिंसा का प्रभाव परिलक्षित होता है। कर्मठ कार्यकर्ता श्री मूलचन्द जी वैद्य के श्रम से महावीर भवन में छोटा सा पुस्तकालय, छात्रावास और सामायिक प्रार्थना का क्रम चलता है। यहाँ रालेगाँव, यवतमाल, धामनगाँव, पूलगाँव, चान्दूर रेलवे आदि क्षेत्रों के संघ पूज्यपाद के दर्शन तथा जिनवाणी-श्रवण का लाभ लेकर आनंदित हुए। यवतमाल के चार भाइयों ने १०० स्वाध्यायी बनाने का संकल्प लिया। इस धर्म-प्रभावना से आचार्यश्री ने ११० कि.मी. का चक्कर होते हुए भी यवतमाल की ओर विहार किया। २८ मार्च को आचार्य श्री वर्धा से विहार कर सांवगी, देवली, भिड़ी, कामठवाड़ा होते हुए कात्री पधारे, जहाँ एक रात्रि के धर्मोपदेश के फलस्वरूप २३ व्यक्तियों ने मांस-मदिरा सेवन का त्याग किया।

कात्री से रालेगाँव पधारने पर ७० भाई-बहनों ने सामायिक-स्वाध्याय के नियम ग्रहण किए। रात्रि में

'जिन-शासन' शब्द पर चर्चा चलने पर आचार्य प्रवर ने फरमाया-"जीवन में हिताहित की शिक्षा देने वाले वचन संग्रह को शासन कहते हैं। सत् शिक्षा से जीवन में सुमार्गस्थ रहने वाले आचार्य शास्ता और उनके द्वारा सारणा, वारणा, धारणा 'शासन' कहलाता है।"

फिर आप चापरड़ा होते हुए यवतमाल पधारे, जहाँ भगवान महावीर का जन्म-कल्याणक महोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। १०० भाई-बहनों ने सामायिक एवं नित्य स्वाध्याय की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की। ९ अप्रैल ८२ को उत्तरवाढोणा में शीलव्रत के नियम कराकर आप नेर, परसोयत, बडफली, नांदगाँव, बड़नेरा होते हुए अमरावती पधारे। ३५० जैन घरों की बस्ती वाले इस प्रसिद्ध नगर में अच्छा धार्मिक उत्साह देखा गया, स्वाध्याय संघ की भी स्थापना हुई। अक्षय तृतीया पर ३५ नगरों के श्रावक -श्राविकाओं ने उपस्थित होकर तपोधनी आचार्य भगवन्त के दर्शन-वन्दन व प्रवचनामृत का लाभ लिया। सामायिक स्वाध्याय का शंखनाद करने वाले आचार्य देव के आचार्य पद - ग्रहण - दिवस के इस अवसर पर विदर्भ में स्वाध्याय के रथ को गतिशील करने का संकल्प लिया गया। श्री जवाहरलाल जी मुणोत आदि ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। तपस्या करने वालों का अभिनंदन किया गया। वैशाख शुक्ला तृतीया २६ अप्रेल १९८२ को ही आचार्यप्रवर की आज्ञा से जोधपुर में २० वर्ष की वय में महासती शान्तिकंवरजी म.सा. की शिष्या के रूप में बालब्रह्मचारिणी मुमुक्षु बहिन सुश्री इन्दुबाला सुराना (सुपुत्री श्री मांगीलाल जी एवं श्रीमती ज्ञानबाई जी सुराना नागौर) की भागवती दीक्षा उत्साह एवं उल्लास के साथ सम्पन्न हुई।

पूज्यपाद के आगामी चातुर्मास हेतु नागपुर, अमरावती, जलगांव, भोपाल आदि क्षेत्रों की भाव भीनी विनतियां हुई। अपने-अपने क्षेत्र के लाभ हेतु श्रावकवृन्द प्रयत्न शील थे, किन्तु आपका लक्ष्य राजस्थान की ओर बढने का होने से तथा संघहित व धर्मप्रभावना के स्थायी कार्य को दृष्टिगत रखकर पूज्यपाद ने जलगांव संघ को चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की।

अमरावती से विहार कर आचार्य श्री भगवान महावीर के केवलज्ञान-कल्याणक पर बड़नेरा में विराजते हुए कुरूम पधारे, जहाँ गोंडल सम्प्रदाय की महासती श्री मुक्ताप्रभाजी ठाणा ८ ने चरितनायक के दर्शन किए एवं अपनी अनेक जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर प्रमुदित हुई। फिर यहाँ से आकोला, बालापुर, खामगाँव, नादूरा होते हुए मलकापुर पधारे। खामगाँव में श्री माणकचन्दजी लुणावत ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। मलकापुर में श्रुतरसिक भीकमचन्द जी संचेती के सत्प्रयत्न से बुलढाणा भंडार में पुरातत्त्व प्रेमी इतिहास मार्त्तण्ड आचार्यप्रवर ने प्राचीन हस्तलिखित पन्नों का अवलोकन किया। यहाँ से देवढाबा, चिंचखेड़ा, सिरसाले होते हुए कच्चे मार्ग से आचार्य श्री बोदवड़ को फरसकर जामठी, सेलवड़, राजनी क्षेत्रों में धर्म-प्रभावना कर फतेहपुर पधारे जहाँ बाबू रतनलालजी फूलफगर की बीमार माँ श्रीमती मदन कंवरजी ने भेदविज्ञान ज्ञाता आचार्य हस्ती से संथारा स्वीकार कर अपना जन्म सफल किया। श्राविकाजी का यह संथारा २३ घण्टे चला। इस उपलक्ष्य में श्री भंवरलालजी ढेढिया एवं बंशीलालजी ओस्तवाल ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। पूज्यप्रवर की प्रेरणा से यहाँ धार्मिक पाठशाला प्रारंभ हुई। कई व्यक्तियों ने नियमित प्रार्थना एवं सामायिक के नियम लिए। फिर आपने वाकंडी शाहपुर होते हुए जामनेर में प्रवेश किया जहाँ महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. आदि ठाणा तथा भुसावल चातुर्मासार्थ जाते महासती श्री कमलावती जी म.सा. ठाणा ११ दर्शनार्थ पधारीं। जामनेर से विहार कर आप शंकरलाल जी ललवाणी के बंगले पर रुककर आषाढ शुक्ला ११ को शंकरलाल जी चोरड़िया के बंगले पधारे, जहाँ मंदिरमार्गी श्री चन्द्रकीर्ति जी म.सा. दर्शनार्थ पधारे। श्री नेमीचन्दजी मुणोत ने जीवन भर के लिए शीलव्रत लिया।

• जलगाँव चातुर्मास (संवत् २०३९)

जलगांव का संघ उन इने गिने सौभाग्यशाली क्षेत्रों में से एक था जिन्हें युगप्रभावक आचार्य हस्ती के दो चातुर्मास के अन्तराल के बाद ही पुनः वर्षावास का लाभ मिला। सभी के हृदय में संवत् २०३६ में हुए धर्मोद्योत की स्मृतियां सजीव थी। जलगांववासी पूज्यपाद के सान्निध्य का पुनः लाभ पाकर हर्षोत्फुल्ल थे। सभी के मानस में यह चिन्तन था कि परमपूज्य का यह वर्षावास जलगांव ही नहीं, महाराष्ट्र में पूज्यपाद के सामायिक-स्वाध्याय संदेश को व्यापक बनाने का निमित्त बने व यह क्षेत्र शासन-सेवा के चिरस्थायी महत्त्व के कार्यों का केन्द्र बने।

चातुर्मास में धर्मध्यान का अनूठा ठाट रहा। आचार्य श्री की पातक प्रक्षालिनी वाणी का भव्य श्रोताओं द्वारा नित्यप्रति रसास्वादन किया जाता रहा। आचार्य भगवन्त ने अपने प्रेरक उद्बोधनों में जलगांववासियों को समाज और धर्म की अभ्युन्नति, शासनहित व समष्टिहित के लिये पूर्ण सामर्थ्य से आगे बढने का आह्वान किया। सामायिक के पर्याय व स्वाध्याय के सूत्रधार ज्ञान सूर्य हस्ती का मन्तव्य था कि साधु अपने संयम जीवन की मर्यादा में आचार के माध्यम से प्रचार का कार्य करते हैं, उनके विचरण विहार की सीमाएँ हैं। देश-विदेश में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार श्रमण भगवान महावीर के शास्त्रधारी शान्ति सैनिक स्वाध्यायी बंधुओं द्वारा किया जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सम्राट् सम्प्रति ने जैन धर्म को देश विदेश में फैलाने के लिये धर्म प्रचारकों को भेजने का कार्य किया था। आज इस कार्य को आगे बढा कर श्रमण भगवान महावीर का विश्वकल्याणकारी संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित किये जाने की आवश्यकता है। हिंसा, कदाचार व हठाग्रह से पीड़ित मानवता के घावों को जिनवाणी की पावन ज्ञान गंगा के मरहम से ही भरा जा सकता है।

पूज्यपाद की संयम-यात्रा में देश के विभिन्न कोणों में किये गये दीर्घ विचरण-विहार से स्वाध्याय का राजस्थान में पूर्व से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक व मध्यप्रदेश से महाराष्ट्र, दक्षिण में आन्ध्र से कर्नाटक व तमिलनाडु आदि सभी क्षेत्रों में शंखनाद हुआ। जलगांव वर्षावास में आप द्वारा की गई महती प्रेरणा से महाराष्ट्र के विभिन्न ग्राम-नगरों में स्वाध्यायशालाओं की स्थापना हुई, जिनमें आज तक हजारों व्यक्तियों ने सामायिक, प्रतिक्रमण से आगे का भी अध्ययन कर ज्ञानाराधना में अपने चरण बढाये हैं। यहां ५ से ८ अगस्त तक स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर व एक दिवसीय स्वाध्यायी अधिवेशन का आयोजन हुआ, जिसमें प्रतिक्रमण, व्याख्यान, भजन, अन्तगडसूत्र, कर्म-प्रकृति, समिति-गुप्ति, जैन इतिहास व सप्त कुव्यसन आदि विषयों का विशद अध्ययन-अध्यापन हुआ।

प्राच्य पुरातन साहित्य एवं ज्ञाननिधि के संरक्षण बाबत परम पूज्य के पावन उद्बोधन से प्रेरणा पाकर समाजसेवी श्री सुरेश दादा जैन ने 'श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ' के अन्तर्गत 'श्री महावीर जैन रत्न ग्रन्थालय' की स्थापना करने की घोषणा की व चातुर्मास में ही चार-पाँच हजार से अधिक पुस्तकों का संग्रह कर इस घोषणा को अमली रूप दिया गया।

चातुर्मास काल दया संवर, व्रताराधन व तपाराधन से समृद्ध रहा। प्रत्येक रविवार को सामूहिक दया का सफल आयोजन रहा। सरलमना गुरुभक्त सुश्रावक श्री पूनमचंद जी बडेर, जयपुर ने मौन पूर्वक ६० दिवसीय दया-संवर की साधना कर व्रताराधन का आदर्श उपस्थित किया। जलगांव के मनीषी श्रावक श्री नथमलजी लूंकड़ की पुत्रवधू सौ. उज्ज्वला ने 'तपस्या का एक मात्र उद्देश्य कर्म-निर्जरा है, के अनुरूप १५ उपवास की निराडम्बर तपस्या की। तपस्या के निमित्त कोई भी जुलूस, जीमणवार अथवा आरम्भ-समारम्भ नहीं कर लूंकड़ परिवार ने अन्य

भाई-बहिनों के लिये मार्गदर्शन किया। चातुर्मास में श्रीमती प्रेमाबाईजी श्रीश्रीमाल ने श्रेणी तप, श्री गोविन्दप्रसादजी की धर्मपत्नी ने मासक्षपण, श्रीमती जतनबाईजी के ५१ उपवास एवं सुश्रावक श्री शंकरलालजी ललवाणी की १०३ दिन की अखंड मौन पूर्वक जप-तप-संवर साधना तपाराधन के क्षेत्र में कीर्तिमान रहे। श्री केवलमलजी सुराणा दुर्ग, श्री सूरज़मलजी करेला वाले सवाई माधोपुर, श्री चम्पालालजी कर्णावट मुम्बई, श्री माणकचन्दजी कर्णावट कुडी, श्री सम्पतराजजी खिंवसरा जोधपुर, श्री उमरावमलजी अजमेर आदि श्रद्धालु गुरुभक्तों ने परमाराध्य गुरुदेव से आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को शील सौरभ से सुवासित किया।

परमाराध्य गुरु भगवन्त द्वारा अपने प्रवचनों के माध्यम से समय-समय पर सैद्धान्तिक जानकारियां भी दी जाती रहीं। प्रवचन में एक दिन पूज्यपाद ने मुनि ज्ञानसुन्दरजी द्वारा रचित 'मूर्ति पूजा का प्राचीन इतिहास' का सन्दर्भ देते हुए फरमाया- "आर्य सुधर्मास्वामी से आर्य शय्यम्भव तक किसी ने जड़मूर्ति को वन्दन किया हो, दर्शन करने हेतु कोई मन्दिर गये हों, ऐसा कहीं शास्त्रीय उल्लेख नहीं है। यदि उस समय मूर्तिपूजा चालू होती तो शास्त्र में श्रमण भगवान महावीर की प्रतिमा और मन्दिर का उल्लेख अवश्य होता।"

कहना न होगा करुणाकर पूज्य आचार्य भगवंत के इस चातुर्मास से यहां ज्ञान-दर्शन-चारित्र व तप सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण प्रगति हुई व जलगाँव धर्मशासन सन्देश के प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। चातुर्मास में शिक्षा, स्वाध्याय और समाज सेवा के क्षेत्र में श्री सुरेशकुमारजी जैन, श्री दलीचन्दजी चोरड़िया और श्री रमेश कुमारजी जैन का सराहनीय योगदान रहा। चातुर्मास में भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति, जयपुर के सहयोग से विकलांग सहायता शिविर का आयोजन किया गया व २०३ विकलांगों के कृत्रिम पैर लगाकर उन्हें कैलिपर प्रदान कर सेवा व अनुकम्पा का आदर्श प्रस्तुत किया गया। समाजसेवी श्री सुरेशकुमार जी जैन द्वारा शासन प्रभावना हेतु किये गये उल्लेखनीय योगदान हेतु उनका 'समाज चिन्तामणि' की उपाधि से बहुमान किया गया।

• इन्दौर की ओर

जलगाँव से विहार कर पूज्य चरितनायक मार्गवर्ती अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए हिंगोना, धरणगांव, अमलनेर को फरसते हुए धुलिया पधारे। यहाँ श्री हीरा ऋषि जी, श्री महेन्द्र ऋषिजी एवं श्री कल्याण ऋषि जी तथा महासती जी श्री चाँदकंवरजी म.सा. ठाणा ८ पूज्यपाद के दर्शनार्थ पधारे। श्री उत्तमचन्दजी वेदमुथा, श्री दीपचन्दजी संचेती, श्री धर्मचन्दजी संचेती आदि ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर पूज्यवर्य के श्री चरणों में अपनी श्रद्धा समर्पित की। धुलिया से माण्डल, नरडाणा, शिरपुर होते हुए आप २१ दिसम्बर को बाडी पधारे। यहाँ इसी दिन स्थविर वयोवृद्ध श्री जयन्तमुनि जी म.सा. का जोधपुर में मार्गशीर्ष शुक्ला ६ संवत् २०३९ को स्वर्गवास होने के समाचार मिलने से निर्वाण कायोत्सर्ग कर श्रद्धांजलि दी गई। पीपाड़ निवासी श्री दानमल जी चौधरी के सुपुत्र श्री जालमचन्दजी चौधरी ने ५६ वर्ष की प्रौढावस्था में पूज्य आचार्य भगवंत से मार्गशीर्ष शुक्ला १० संवत् २००९ को दीक्षा अंगीकार कर 'पाछल खेती निपजे तो भी दारिद्र दूर' का आदर्श उपस्थित किया। आप पिछले कुछ समय से जोधपुर स्थिरवास विराज रहे थे। 'जयन्तमुनि जी' के नाम से ख्यात बाबाजी म.सा. का संयम-जीवन साधना, सेवा व वैय्यावृत्य हेतु समर्पित था। संयम में आपका प्रबल पुरुषार्थ प्रेरणादायी था। आप सरल, संयमनिष्ठ और सहनशील व्यक्तित्व के धनी थे।

बाडी से विहार कर पूज्यपाद खेतिया, सेन्धवा, धामनोद, नाईघाट, भेरूघाट, जामली आदि क्षेत्रों व राजेन्द्र नगर, आडा बाजार, राज मोहल्ला, राजवाड़ा आदि इन्दौर के उपनगरों को अपनी पदरज से पावन करते हुए उपनगर

जानकीनगर पधारे। करुणाकर के आत्मार्थी शिष्य श्री श्रीचंदजी म.सा. काफी समय से अस्वस्थ थे, स्वास्थ्य में सुधार परिलक्षित नहीं हो रहा था। उनकी शारीरिक स्थिति को देखकर संथारे का प्रत्याख्यान कराया गया। १७ जनवरी १९८३ को मुनि श्री का समाधिमरण के साथ महाप्रयाण हुआ। मूलतः तमिलनाडु के निवासी श्री राम सुपुत्र श्री बंकट स्वामीजी नायडू के मन में भोपालगढ में करुणाकर गुरुदेव के पावन दर्शन से जीवदया एवं धर्म के संस्कार जागृत हुए। नवकार मंत्र से आपने ज्ञानाराधन प्रारम्भ किया। अपने अटल संकल्प से उन्होंने परिजनों से आज्ञा प्राप्त कर जयपुर में वि.सं. २०१६ में करुणाकर चरितनायक पूज्य हस्ती के चरणों में श्रमण दीक्षा अंगीकार कर अपने जीवन की दिशा ही बदल ली। भवभव से संचित कर्मरज के भार को हलका करने की महनीय कामना से उन्होंने निरन्तर विविध तप- साधना का मार्ग चुना। पचोले-पचोले की तपस्या कर कर्म-निर्जरा की। इसी कारण वे 'तपस्वी' श्री श्रीचंदजी म.सा. कहलाये। मुनिश्री ने १८ वर्षों तक आडा आसन नहीं किया। ऐसे घोर एवं उग्र तपस्वी ने कई थोकड़े कण्ठस्थ कर प्रवचन कला में भी प्रावीण्य प्राप्त किया। भक्तों को पाप से विरत कर धर्म से जोड़ने व प्रवचन देने में उनकी विशेष अभिरुचि थी। भजनकला का आपको विशेष शौक था। उन्होंने 'निर्ग्रन्थ भजनावली' के रूप में भजनों, स्तोत्रों व प्रार्थनाओं का संकलन भी किया। राजस्थान के पोरवाल एवं पल्लीवाल क्षेत्रों में आपने आचार्य देव के स्वाध्याय-सामायिक सन्देश को ग्राम-ग्राम पहुंचाकर विशेष शासन प्रभावना की। उनके मन में अदम्य इच्छा थी कि मैं तमिलनाडु प्रवास कर तमिलभाषी भाइयों को इस पतित पावन पातकप्रक्षालिनी जिनवाणी का सुधापान करा कर उन्हें दयाधर्म के संस्कारों से जोड़ सकूँ। तमिलभाषी इस यशस्वी महापुरुष ने अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि संकल्पधर्मा व्यक्ति अपने जीवन की धारा को बदल कर साधना मार्ग में गति कर सकता है, पूर्व जीवन कोई बाधा उपस्थित नहीं कर पाता। उनके देहावसान से रत्नवंश ही नहीं वरन् समूचे जैन संघ को कमी का अहसास हुआ।

१९ जनवरी को जानकीनगर इन्दौर में चरितनायक आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा, मधुर व्याख्यानी श्री हीरामुनि जी म.सा. ठाणा ८ एवं महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. ठाणा ४ के सान्निध्य में कडलू (राजस्थान) निवासी सुश्रावक इन्द्रचन्द जी मेहता की सुपुत्री सुश्री शान्ता मेहता की भागवती दीक्षा का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ। इन्दौर में स्वाध्याय संघ के कार्यकर्ताओं और स्वाध्यायियों का सम्मेलन उल्लेखनीय रहा। यहाँ अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की आमसभा के अवसर पर आचार्य श्री कुशलचन्द जी म.सा. की पुण्यतिथि की द्विशताब्दी को समारोहपूर्वक मनाने का निर्णय लिया गया। तदर्थ २९ सूत्री कार्यक्रम स्वीकार किया गया। मध्यप्रदेश स्वाध्याय संघ की ओर से अ.भा. महावीर जैन श्राविका संघ की उपाध्यक्ष श्रीमती भुवनेश्वरी देवी भंडारी को समाजप्रभाविका उपाधि से अलंकृत किया गया। २७ जनवरी को महावीर भवन में १०० से अधिक दयाव्रत हुए। बाहर के अनेक श्री संघों ने आचार्य श्री से अपने क्षेत्रों को फरसने एवं चातुर्मास करने की विनति की। मालवा की प्रसिद्ध नगरी इन्दौर में धर्मजागरण का एक प्रेरक दृश्य जैन-जैनेतर समाज को देखने को मिला।

भौतिकवादी इस युग में जहाँ वस्त्रों से कपाट भरे होने पर भी खरीद रुकती नहीं, वहाँ तन ढकने मात्र के श्वेत वस्त्र धारण किये, बिना तकिया-बिछौने के शयन एवं बिना वाहन और पादत्राण के विहार करने वाले सन्तों का, मुख वस्त्रिका और रजोहरण के प्रतीक वाला अहिंसक वेश सबको लुभा रहा था। कई कमरों वाले भवनों की भारी सज्जा के उपरान्त भी जिनका जी नहीं भरता, ऐसे लोगों को घर की चिन्ता से विहीन, वैराग्य की मूर्तिस्वरूप, विहार में ही रमण करने वाले सन्तों को देखकर विस्मय तो होता ही। तपता सिर, झुलसते पैर, पास में पैसा नहीं, परिवार का परिग्रह नहीं, निर्दोष आहार मिलने की गारण्टी नहीं, फिर भी देदीप्यमान ललाट, करुणा सरसाते नेत्र, दया पालन

के प्रेरक सन्त-सती मंडली को देख चकित होना स्वाभाविक था। ऐसी पावनमूर्ति आचार्य श्री की ७३वीं जन्म तिथि पर २८ जनवरी ८३ को आचार्य श्री के जीवन पर चतुर्विध संघ द्वारा प्रकाश डाला गया। गुणानुवाद की स्वरलहरियाँ सभी के हृत् तंत्रों को झंकृत करने लगी। आचार्य श्री के अभिनन्दन स्वरूप श्रावक-श्राविकाओं ने तप, त्याग और नियम की भेंट अर्पित की। मध्यप्रदेश स्वाध्याय संघ ने स्वाध्याय के पर्याय आचार्य हस्ती के ७३ वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में आगामी वर्ष में ७३ स्वाध्यायी पर्युषण पर्वाराधन हेतु भेजने का संकल्प किया। समाजसेवा के रूप में भूख-प्यास और गरीबी मिटाने के कई उपक्रम इस अवसर पर हुए। चरितनायक ने महावीर नगर कॉलोनी, परदेशीपुरा कॉलोनी, पद्मावती पोरवाल भवन, जंगमपुरा आदि स्थानों को भी प्रवचनामृतों से पावन किया। १५ फरवरी को आपकी ६३ वीं दीक्षा जयन्ती जानकीनगर में सामूहिक दयाव्रत एवं सामायिक स्वाध्याय के प्रेरणाप्रद वातावरण में मनायी गयी। इस अवसर पर जयपुर का पचास सदस्यीय शिष्टमण्डल चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। १७ फरवरी ८३ को खरतरगच्छ संघ की प्रभावक आर्या श्री विचक्षण श्री जी म.सा. की शिष्या श्री मणिप्रभा श्री जी म.सा. आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ पधारीं। श्रमणोचित कुशलक्षेम के पश्चात् आचार्य श्री ने साध्वी जी को विचक्षण श्री जी के समान जिनशासन को देदीप्यमान करने की प्रेरणा एवं मंगलपाठ दिया।

• उज्जैन होकर राजस्थान की ओर

विहार क्रम से उज्जैन पधारने पर बालोतरा की ९ विरक्ता बहनों ने आचार्य श्री के दर्शन एवं प्रवचन का लाभ लिया। विहार मार्ग में अनेकानेक साधु-साध्वी आचार्य श्री के दर्शन एवं प्रवचन लाभार्थ पधारते ही रहते थे। उज्जैन में तपस्वी श्री लालचन्दजी म.सा. ठाणा ३, महासती श्री कौशल्याजी एवं महासती श्री मैनाजी आदि ठाणा १० ने दर्शन-लाभ लिया। महासती श्री विचक्षण श्री जी की शिष्या श्री वर्द्धमान श्री जी ने ठाणा ४ से दर्शन किए।

यहाँ से चरितनायक नजरपुर, घोंसला होते हुए महिदपुर पधारे, जहाँ आपकी पावन प्रेरणा से धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ हुई एवं नवयुवकों ने १५ मिनट स्वाध्याय करने का संकल्प लिया। यहाँ से झारेड़ा पधारने पर मूर्तिपूजक समाज की महासती श्री अमितगुणाजी की दो शिष्याएँ आपके दर्शनार्थ पधारीं। यहाँ से इन्दोख होते हुए आप बड़ोद पधारे। लगभग १०० जैन घरों के इस नगर में आचार्य प्रवर के प्रवचनों से प्रभावित होकर कई युवकों ने प्रतिदिन/ सप्ताह में १५ मिनट स्वाध्याय करने का संकल्प लिया।

■

राजस्थान की धरा पर पुनः प्रवेश

जयपुर, जोधपुर एवं भोपालगढ़ में चातुर्मास (संवत् २०४० से २०४२)

- आवर होकर कोटा सवाईमाधोपुर

फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को बड़ोद से कच्चे मार्ग से कंकरीली भूमि पार करते हुए पूज्य चरितनायक राजस्थान की सीमा मे प्रवेश कर प्रातः लगभग ११.३० बजे डग के धर्मस्थानक में पधारे। यहां १०० जैन घरों की बस्ती है। रात्रि में ज्ञान पिपासु श्रावक श्री मांगीलालजी ने ज्ञान सूर्य आचार्य हस्ती से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि की। यहां से विहार कर आप हरनावदा पधारे व मन्दिर में विराजे। दूसरे दिन आप आवर पधारे। संवत् २०३९ फाल्गुनी पूर्णिमा के अवसर पर इस छोटे से ग्राम आवर में ७२ दयाव्रत , उपवास व पौषध हुए। संयम साधक आचार्य भगवन्त की पावन प्रेरणा से प्रतिवर्ष स्थानक के समक्ष होने वाला होलिका-दहन नहीं हुआ, इतना ही नहीं जन समुदाय ने भविष्य के लिये भी होलिका-दहन व रंग खेलने का त्याग कर दिया। करुणाकर के साधनातिशय व पावन प्रेरणा का ही सुफल है कि यहां जैन-अजैन कोई भी व्यक्ति होलिका-दहन नहीं करता व रंग कीचड़ नहीं उछालता।

जन-जन की अनन्य आस्था के केन्द्र पूज्य आचार्य हस्ती का पांच वर्ष से अधिक अन्तराल के पश्चात् राजस्थान की भूमि पर पदार्पण हुआ था। धर्मभूमि राजस्थान के सभी क्षेत्रों के निवासियों के मन में आशा, उमंग व उत्साह का संचार था। सभी इस बात से प्रमुदित थे कि हम अब सहजता से पूज्यपाद के पावन दर्शन, वन्दन व सान्निध्य का लाभ ले सकेंगे व जिनवाणी की पावन गंगा अब हमारे क्षेत्र को भी पावन कर भक्तों के हृदय के अज्ञान तिमिर को हर कर ज्ञान का शुभ्र प्रकाश फैलायेगी। सभी क्षेत्र समुत्सुक थे कि उनके क्षेत्र को इस ज्ञान सूर्य के सान्निध्य का शीघ्र व प्रथम लाभ मिले। इसी भावना से आवर मे होली चातुर्मासी के अवसर पर जोधपुर, कोटा, सवाई माधोपुर , अलीगढ-रामपुरा के श्री संघ एवं जयपुर का शिष्ट मंडल अपनी-अपनी विनति लेकर उपस्थित हुए।

आवर से २९ मार्च १९८३ को विहार कर पूज्यपाद के करावन पधारने पर १२ बन्धुओं ने सामायिक संघ के सदस्य बन कर नियमित सामायिक आराधना का संकल्प लिया व श्री अमरालाल जी मेहर ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को सम्पन्न बनाया। यहां से पूज्यप्रवर बोलिया, मिश्रोली, पचपहाड़ आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए भवानीमण्डी पधारे। मार्गस्थ क्षेत्रों में पं. रत्न श्री हीरामुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर) के सामायिक, स्वाध्याय एवं शीलव्रत पर प्रेरक प्रवचन हुए। महापुरुषों का सान्निध्य जीवन-निर्माण करने वाला व वाणी सुफलदायिनी होती है। बोलिया में श्री कन्हैयालालजी एवं श्री शंकरलालजी ने आजीवन शीलव्रत अँगीकार कर अपना जीवन धन्य किया। आचार्य हस्ती के सामायिक स्वाध्याय संदेश को जीवन में अपना कर अनेक व्यक्तियों ने सामायिक व स्वाध्याय के नियम ग्रहण किये।

भवानीमण्डी से आपका पदार्पण भैंसोदा हुआ। यहाँ चैत्र कृष्णा सप्तमी को शीतला सप्तमी के दिन करुणाकर ने माता का सच्चा स्वरूप बताते हुए फरमाया कि आज 'दयामाता' का आश्रय लेकर धर्म-मार्ग में प्रवृत्त होने की

आवश्यकता है। 'दया माता' की शीतल छांव में ही यह आत्मा पाप कालिमा व भव-भ्रमण से सुरक्षित रह सकती है। यहाँ ज्ञातासूत्र का वाचन हुआ। सायंकाल विहार कर आप ग्राम की धर्मशाला में विराजे। संधारा में धर्मोद्योत कर पूज्यप्रवर रामगंजमंडी पधारे। यहाँ कोटा, मोडक, चेचट आदि क्षेत्रों के दर्शनार्थियों ने अपने-अपने क्षेत्र की विनतियाँ प्रस्तुत कीं। पूज्यप्रवर ने यहां श्री हरबंसलालजी, कोटा को परिग्रह मर्यादा हेतु प्रेरणा की। ज्ञानाराधना की प्रेरणा देते हुए करुणाकर गुरुदेव ने अपने मंगल उद्बोधन में फरमाया कि सद्ज्ञान ही शुभ संस्कारों को फैलाने व बढ़ाने का कारण है। अपराह्न में प्रश्नोत्तर के माध्यम से आपने बहिनों को तत्त्वज्ञान सीखने की प्रेरणा की। आपकी महनीय प्रेरणा से यहां २१ व्यक्तियों ने नित्य सामायिक-स्वाध्याय व २६ व्यक्तियों ने साप्ताहिक स्वाध्याय के नियम लिए। इस विहारकाल में परमगुरुभक्त श्री बिशनचन्दजी मुथा, हैदराबाद ने एक मास तक आराध्य गुरुदेव की सेवा का अनुपम लाभ लिया।

रामगंजमंडी से विहार कर पूज्यपाद ११ अप्रेल को आदित्यनगर मोडक स्टेशन पधारे। यहाँ पर अपने प्रभावी प्रवचनामृत के माध्यम से आपने फरमाया—"अर्थ-लाभ के साथ धर्म-लाभ का भी लक्ष्य रखें, धर्मलाभ को गौण न समझें। आत्मा के लिए तो धर्मलाभ अर्थलाभ से भी बढकर है।" विहारक्रम में आपने दरागांव में गूजर परिवार के लोगों को अनछना पानी काम में न लेने एवं जीव हिंसा न करने का उपदेश दिया। घाटी पार कर दरा स्टेशन होते हुए संवत् २०४० के प्रथम दिन चैत्रशुक्ला प्रतिपदा को मंडाणा पधारे। बदलते मौसम एवं असमय बून्दें गिरती देखकर आचार्य भगवन्त का चिन्तन चला "परिवर्तनशील काल को जान कर उससे लाभ उठाने वाला ही सुज्ञ है।" केवलनगर फैक्ट्री होते हुए पूज्यपाद १६ अप्रेल को अनन्तपुरा पधारे।

यहाँ कच्चे मकानों वाले अजैन घरों की बस्ती थी। आचार्यप्रवर सरपंच के मकान में विराजमान थे, जिसके पास देवी का चबूतरा था। यहाँ एक हरिजन परिवार देवी को बकरे की बलि चढाने वाला था। इस परिवार को बलि न चढ़ाने हेतु प्रेरित किया गया। उसे देवी के रूठने की आशंका थी, अत: समझाने पर भी नहीं माना। अन्त में जिसे देवी आती थी, वह पुजारी आया। सन्त एवं श्रावक सायंकालीन प्रतिक्रमण कर रहे थे। पुजारी को जैसे ही देवी आयी, वह बोला – "अरे दुष्टों ! मेरा नाम बदनाम करते हो। जो महापुरुष यहाँ बैठा हुआ है, देवताओं का राजा इन्द्र भी जिसकी वाणी को नहीं ठुकराता है, उसके सामने तुमने मुझे बदनाम किया है कि देवी बलिदान मांगती है। मैंने कब बकरे मांगे हैं ? तुम तुम्हारे खाने के लिए बकरे मेरे नाम पर बलि करते हो । तुम्हारे कार्य का फल तुम भोगोगे।" इतना कहकर देवी शरीर से निकल गई। गाँव वाले करुणावतार की महत्ता से चकित रह गए और वहाँ सदैव के लिए बकरे की बलि देना बन्द हो गया। बलिबंद में सरपंच देवीदयाल जी का प्रयास सराहनीय रहा।

अनन्तपुरा से ५ कि.मी. का विहार कर रविवार १७ अप्रैल ८३ को कोटा के उपनगर तलवण्डी में धर्मध्वजा फहराते हुए चरितनायक ने कोटा के दादाबाड़ी, छावनी आदि उपनगरों को पावन किया तथा रामनवमी के पावन प्रसंग पर रामपुरा बाजार के बूंदी चौक में व्याख्यान सभा को सम्बोधित किया। आपने राम के आदर्श चरित्र को अपनाने की प्रेरणा करते हुए संस्कार निर्माण में चार कारणों को समझने एवं सुधारने पर बल दिया – (१) घर का वातावरण (२) शिक्षा (३) संगति और (४) भाषा। जोधपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर , भोपालगढ, कोटा आदि विभिन्न संघों की विनति के अनन्तर जयपुर संघ को चातुर्मास हेतु एवं सवाईमाधोपुर संघ को अक्षयतृतीया हेतु स्वीकृति प्रदान की। इसी दिन सत्र न्यायाधीश श्री जसराजजी चौपड़ा के निवेदन पर अपराह्न में कोटा सेन्ट्रल जेल में आपका प्रभावी प्रवचन हुआ। सिविल लाइन्स में करुणानाथ के प्रभावक प्रवचन से प्रेरित हो तत्कालीन जिलाधीश श्री परमेशचन्द्र जी ने मांस-भक्षण त्याग का नियम लिया तथा भारतीय प्रशासनिक अधिकारी श्री इन्द्रसिंह जी कावडिया

ने आजीवन धूम्रपान छोड़ दिया। आपने प्रवचन में फरमाया कि मानव समाज की शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए चार भूमिकाएँ हैं —(१) शरीर-स्वास्थ्य के लिये चिकित्सक (२) सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के लिए शासक (३) संस्कृति की रक्षा के लिए शिक्षक (४) मन की पवित्रता के लिए सन्त ।

कोटा के जे.के. बेडमिंटन हाल में आयोजित महावीर जयन्ती कार्यक्रम के अवसर पर आपने फरमाया कि हमें आहार, व्यवहार, विचार और आचार को शुद्ध रखते हुए जन समाज में निर्व्यसनता के साथ भगवान महावीर के संदेशों का प्रचार करना चाहिए। सभा में तत्कालीन न्यायाधीश श्री जसराज जी चौपड़ा ने इस पावन प्रसंग पर संघ-एकता का आह्वान किया। श्री बंशीलालजी लूंकड, श्री पुखराजजी सकलेचा, श्री हरबंसलालजी जैन एवं श्री सांवतमलजी मेहता ने आजीवन शीलव्रत ग्रहण कर गुरु चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित किए। आपके कोटा जंक्शन पधारने पर श्री हेमराजजी सुराना एवं श्री प्यारचन्दजी सुराना ने शीलव्रत अंगीकार किया। आचार्यप्रवर ने दूसरे दिन प्रवचन में युवकों को जीवन-निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने का आह्वान किया। आपने फरमाया कि "भारतीय संस्कृति में सदा से त्याग-तप और आचार की महिमा रही है। क्योंकि यहाँ राम, कृष्ण और महावीर की जयन्ती मनायी जाती है, किसी बादशाह की नहीं।" सामायिक के सम्बन्ध में आपने फरमाया कि सामायिक आत्मा को पाप से हल्का करने की कला है। इन दिनों विरक्त प्रमोदजी आचार्यप्रवर के श्री चरणों में अपना समर्पण कर चुके थे। विहारकाल में भी वे कुछ माह से साथ में थे। कोटा से आचार्य श्री केशोरायपाटन, अरनेठा, कापरेन , घाट का बराना, लबान, लाखेरी, सुमेरगंज मंडी, इन्द्रगढ आदि ग्राम-नगर फरसते हुए ७ मई को बाबई ग्राम पधारे। मार्ग में अजैन बस्तियों को निर्व्यसनता की प्रेरणा की, जैनों के आचार की जानकारी से ग्रामीण प्रसन्न हुए। करुणाकर के पावन दर्शन व प्रेरणा से प्रेरित हो लाखेरी में युवक अशोक कुमार ने एक वर्ष के लिए मांस एवं शराब का त्याग किया। सुमेरगंजमण्डी एवं इन्द्रगढ में स्वाध्याय एवं सामायिक की प्रेरणा करते हुए आपने फरमाया कि स्वाध्याय से मन की चंचलता को कम किया जा सकता है, सामायिक से समभाव की कला सीखी जा सकती है। बाबई में रात्रि के समय वृक्ष के नीचे विराजे। ध्यानस्थ आचार्य श्री से अत्यंत प्रभावित हुए राजपूत कुल के सवाईमाधोपुर के निवर्तमान जेलर, जो प्रतिदिन शराब पीकर परिजनों को कष्ट पहुँचाते थे, ने आजीवन शराब न पीने की सौगन्ध ली। यहाँ से १३ कि.मी. का विहार कर आप बगावदा पधारे, जहाँ श्री लड्डूलालजी एवं गहरीलालजी ने शीलव्रत का नियम लिया। रात्रि में धर्मकथा से प्रभावित अनेक ग्रामवासियों ने व्यसनमुक्ति के नियम लिए । आचार्यप्रवर की प्रेरणा और जयपुर के श्रावकों के सत्प्रयासों से संघ में पुनः एकता कायम हुई। यहाँ से आप कुस्तला ग्राम होकर आलनपुर पधारे। १३ मई ८३ को प्रातः सवाई माधोपुर के परकोटे में पधारते ही भक्तों ने बड़ी संख्या में एकत्र होकर भाव भरे नारों के जयघोष से दिग्दिगन्त गुंजा दिया—

'खुला बगीचा प्यारा है, हस्ती गुरु हमारा है।'
'हिमालय की ऊँची चोटी, हस्ती गुरु की पदवी मोटी।'
'प्रेम का झूला झूलेंगे, हस्ती गुरु को नहीं भूलेंगे।'

ठाणा १० से आचार्य श्री तथा ठाणा ४ से महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा. के यहाँ विराजने से महावीर भवन में धर्मध्यान का अपूर्व ठाट लग गया। अक्षयतृतीया पर ७९ तपस्विनी बहनें आचार्यप्रवर के दर्शन-वन्दन से कृतकृत्य हो उठीं। आगन्तुकों ने अनेक व्रत-नियम धारण किए गए। क्षेत्र में धार्मिक आयोजन का उत्साह देखने योग्य था। जयपुर, पाली, धनारीकला, मद्रास एवं पल्लीवाल क्षेत्र से लगभग २००० श्रावक-श्राविका तथा पोरवाल क्षेत्र से लगभग ५००० व्यक्तियों ने सन्त-दर्शन एवं तप-अनुमोदना का लाभ लिया। परमपूज्य चरितनायक के

आचार्य पदारोहण के इस दिवस पर श्री बजरंगलाल जी सवाईमाधोपुर, श्री रूपचन्दजी बणज्यारी, श्री मांगीलालजी सुराणा नागौर, श्री हरिवल्लभ जी सूरवाल तथा श्री सोहन लालजी मूथा, पाली ने आजीवन शीलव्रत ग्रहण कर श्रद्धाभिव्यक्ति की। भगवन्त की प्रभावी प्रेरणा से अनेकों व्यक्तियों ने तपस्या के अवसर पर लेन-देन व आडम्बर का त्याग कर अन्यों के लिये प्रेरणा का कार्य किया। आपने संघ में समन्वय व एकता की प्रेरणा की। पूज्यप्रवर के आलनपुर पधारने पर संघ के सभी सदस्यों ने धर्मध्यान का अच्छा लाभ लिया।

आलनपुर से विहार कर आचार्य श्री बजरिया, आदर्श नगर होते हुए गम्भीरा पधारे। इस छोटे से ग्राम में सामूहिक रूप से सप्त कुव्यसनों का त्याग कराया। यहां बाबूलालजी उज्ज्वल के पिताजी ने सदार आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। यहाँ से वैशाख पूर्णिमा को कुस्तला पधारने पर आपने अपने मंगल प्रवचन में फरमाया कि वैशाखी पूनम के चाँद की तरह आत्मा को भी पूर्णतः द्युतिमान करने में ही सत्संग और उपदेश-श्रवण की सार्थकता है। यहाँ से पचाला, चोरू होते हुए आप चौथ का बरवाड़ा पधारे, जहाँ रत्नवंश के मूलपुरुष पूज्य श्री कुशलचन्द जी म.सा. की पुण्यतिथि का द्वि शताब्दी समारोह तप-त्याग और सामायिक-स्वाध्याय की साधना के साथ मनाया गया। उसके अनन्तर ३ जून को आपश्री पुनः चोरू होते हुए जैनपुरी पधारे, जहाँ मीणा जाति के अनेक जैन भाइयों ने धूम्रपान का त्याग किया तथा नियमित सामायिक का नियम लिया। यहाँ से उखलाना पधारने पर वहाँ भी सामायिक, आयम्बिल, एकाशन आदि के व्रत दिलाने के साथ धूम्रपान का त्याग कराया गया।

• टोंक, निवाई होकर जयपुर

६ जून ८३ को सायं ६ बजे दशमी की मौन-साधना में विहार कर आचार्य श्री अलीगढ़- रामपुरा पधारे, जहाँ बीस से अधिक युवकों ने उस वर्ष पर्युषण में बाहर जाकर स्वाध्यायी-सेवा देने की प्रतिज्ञा की, कइयों ने सामायिक व्रत के नियम लिए। श्री गजानन्दजी उखलाना एवं श्री श्रीनारायणजी गाडोली ने शीलव्रत के नियम लिए। ज्ञानसूर्य आचार्य हस्ती ने प्रवचन में ज्ञानवर्धन की प्रेरणा करते हुए फरमाया –"सूर्य का प्रकाश होने पर जिस प्रकार पक्षी चहचहाते हैं, उसी प्रकार आप भी ज्ञान के प्रकाश में गतिशील बनिये।" यहाँ चार दिनों तक पातक प्रक्षालिनी वाणी का प्रभाव अंकित कर आप उनियारा पधारे, जहाँ आपके पावन सान्निध्य एवं पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा. की प्रेरणा से यहाँ का वर्षों पुराना वैमनस्य समाप्त हो गया तथा संघ में एकता की लहर व्याप्त हो गई। फिर आप ढिकोलिया, ककोड़, घास, चंदलाई होते हुए टोंक पधारे। धर्म जागरणा के साथ आप सोयला, पहाड़ी होते निवाई पधारे, जहाँ २३ जून को जलधारा कण्डक्टर्स प्रा. लि. के प्रांगण में पचासों श्रमिकों ने आपकी ओजस्वी वाणी का रसास्वादन कर धूम्रपान का त्याग किया। २४ जून को दिगम्बर जैन नसियां मन्दिर में क्रियोद्धारक महापुरुष आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.का १३८ वाँ स्मृति-दिवस तप-त्याग के साथ मनाया गया। डॉ. नरेन्द्र भानावत ने आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. की काव्य -साधना पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर जोधपुर, जयपुर, अलीगढ (टोंक), चौथ का बरवाड़ा, सवाईमाधोपुर, टोंक, उखलाना आदि के भक्तों की अच्छी उपस्थिति थी। भँवरसिंह जी मीणा उखलाना ने आजीवन शीलव्रत का नियम लिया।

निवाई में 'जैन धर्म की प्रासंगिकता' विषय पर विचार गोष्ठी में डा. लक्ष्मीलाल ओड, प्रिन्सिपल वनस्थली विद्यापीठ आदि शिक्षाविदों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। आचार्यप्रवर ने इस अवसर पर फरमाया–"भगवान महावीर ने साधारण आदमी को उपदेश देते हुए फरमाया कि यदि व्रत ग्रहण नहीं कर सकते हो तो कम से कम सम्यक्त्व तो स्वीकार करो। जो मनोबल वाला है, व्रत की भावना रखता है उससे कहा कि देखो, सबसे उत्तम तो यह

है कि तुम श्रमणधर्म ग्रहण करो, साधुवृत्ति अंगीकार करो। सम्पूर्ण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन करो। यदि तुम महाव्रत नहीं ले सकते हो तो अणुव्रत लो। सर्वथा क्रियाशून्य मत रहो। बिना मर्यादा के मत रहो। श्रावक धर्म को स्वीकार करने से मानव शान्ति की ओर बढ़ सकता है।" २५ जून को निवाई से विहार कर कौथून, चाकसू, शिवदासपुरा, बीलवा सांगानेर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए पूज्यप्रवर १ जुलाई को जयपुर के महावीर नगर में पधारे एवं श्री चन्द्रराजजी सिंघवी के बंगले बिराजे। यहां करुणाकर गुरुदेव के दर्शनार्थ जयपुर के आबालवृद्ध नर नारियों का तांता लग गया। सिंघवी दम्पती ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को धन्य किया।

३ जुलाई ८३ को आचार्य श्री साधना-भवन बजाज नगर पधारे, यहाँ धुलिया में दिवंगत स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी म. को श्रद्धांजलि देने हेतु व्याख्यान स्थगित कर कायोत्सर्ग किया गया। आचार्य श्री सौहार्द और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति थे। चतुर्विध संघ के सदस्य किसी सम्प्रदाय या जाति के हों, किसी देश या प्रान्त के हों, दीक्षा पर्याय अल्प या अधिक हो, उनकी उदार गुणग्राहकता चारित्र की कसौटी पर परख करती थी और वे चारित्रात्माओं के प्रति अनन्य वात्सल्य भाव रखते थे। यहाँ श्री बलवन्तराजजी सिंघवी ने सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया। साधना-भवन में श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत छात्रों से चर्चा कर उनका मार्गदर्शन किया। ४ जुलाई को श्री सिरहमल जी नवलखा ने अपने निवास पर विराजित आचार्यप्रवर के श्रीमुख से सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया। तदनन्तर पूज्यप्रवर श्री गुमानमलजी चोरड़िया एवं श्री पूनमचन्दजी हरिश्चन्द्रजी बडेर के बंगले पर विराजे। जयपुर में आपके इस प्रवास में श्री चुन्नीलालजी ललवाणी के नेतृत्व में घर-घर जाकर चलाये गये अभियान से बड़ी संख्या में श्रावक-श्राविका सामूहिक प्रार्थना एवं सामायिक साधना से जुड़े। १६ जुलाई को प्रख्यात वैज्ञानिक तथा जैन दर्शन के विद्वान डॉ. डी. एस. कोठारी ने आचार्य श्री के सान्निध्य में आयोजित विचार-गोष्ठी 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म की खोज' विषय पर महत्त्वपूर्ण एवं नूतन चिन्तन प्रस्तुत किया। **आचार्यप्रवर के साथ डॉ. डी. एस. कोठारी की विद्युत् एवं अग्नि के सम्बन्ध में चर्चा हुई। संगोष्ठी में यह चिन्तन उभरा कि आज धर्म में व्यवहार के स्थान पर व्यवहार में धर्म की अधिक आवश्यकता है।**

• जयपुर चातुर्मास (संवत् २०४०)

वि. संवत् २०४० के चातुर्मास की खुशी में जयपुर संघ में प्रबल उत्साह, गुरुश्रद्धा में समर्पण का भाव, व्रत-प्रत्याख्यान द्वारा जीवन निर्माण की उमंग व अभिरुचि परिलक्षित हो रही थी। १८ जुलाई १९८३ को चातुर्मासार्थ लालभवन में सभी सन्तों के साथ आपके प्रवेश के अवसर पर विशाल जनमेदिनी अगवानी को उपस्थित थी। 'शासनपति श्रमण भगवान महावीर की जय', 'परमपूज्य आचार्य हस्ती की जय', 'जैन धर्म की जय' के जयघोष करते हुए उल्लसित भक्तों की उपस्थिति ने सहज एक भव्य दृश्य उपस्थित कर दिया। स्थानीय श्रद्धालुओं के अतिरिक्त इस मंगलप्रवेश के अवसर पर अनेक स्थानों के श्रावक-श्राविका भी उपस्थित थे। अपने मंगलमय उद्बोधन में आचार्यप्रवर ने जयपुर संघ के साथ अपनी यशस्विनी परम्परा के ऐतिहासिक संबंध की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए फरमाया कि "विक्रम संवत् की १६ वीं शती के अन्त में जयपुर स्टेट के दीवान श्री टोडरमल जी थे। उस समय किसी स्थानकवासी तपस्वी सन्त का अकस्मात् जयपुर आगमन हुआ। उनकी तेजस्विता एवं तपस्या के प्रभाव से दीवान सा. विशेष प्रभावित हुए और तब से इस क्षेत्र में स्थानकवासी संतों का आगमन प्रारम्भ हुआ।"

"हमारी परम्परा के पूज्य आचार्यों एवं मुनिराजों का यहाँ विशेषतौर से आगमन होता रहा। हम जयपुर के

लिए नये नहीं हैं। पूज्य आचार्य श्री विनयचन्द्र जी म.सा. ने १४ वर्षों तक लगातार यहाँ विराजकर जैन-संघ को मजबूत किया। वे एक सम्प्रदाय के आचार्य थे, परन्तु उनका जीवन सम्प्रदायवाद से परे था। पंजाब, मालवा की सम्प्रदायों के सन्तों के साथ पं. रत्न श्री ज्ञानचन्दजी म.सा. की परम्परा, बाबा जी पूर्णचन्द्र जी म., इन्द्रमल जी म. आदि विभिन्न परम्पराओं के विशिष्ट संत महीनों तक उनकी सेवा में बैठकर ज्ञान-ध्यान की आराधना करते रहे। पूज्य माधवमुनि जी म. ने आचार्य श्री विनयचन्द्र जी म.सा. की सेवा में रहकर ज्ञान-ध्यान की आराधना की। दोनों पूज्य सन्त एक साथ विराजे। दोनों की काया भिन्न थी, परन्तु मन में वैचारिक समरूपता तथा हृदय में आत्मीयता व साहचर्य भाव था।

आचार्य श्री ने संघ-सौहार्द की सुदृढ़ परम्परा के निर्वाह पर बल दिया। खरबूजे और नारंगी के स्वरूप के माध्यम से प्रेरणा देते हुए आपश्री ने फरमाया कि संघ के सदस्यों को चाहिए कि वे बाहर से नारंगी की भांति एक प्रतीत हों तथा भीतर से खरबूजे की तरह एक हों। इस प्रकार एक रूप एवं एक रस होने पर ही 'संघ' शासन की जिम्मेदारी की भूमिका तन्मयता से निभा सकेगा। मांगलिक-श्रवण के लिए उत्सुक अपार जनमेदिनी को आचार्य श्री ने मांगलिक प्रदान किया। महासती श्री शान्तिकँवर जी म.सा. आदि ठाणा ४ का २१ जुलाई को चातुर्मासार्थ बारह गणगौर स्थानक में प्रवेश हुआ।

आचार्य श्री के सान्निध्य में ध्यान एवं मौन -सामायिक शिविरों का आयोजन, दया की पंचरंगियां, अतिविशिष्ट एवं विशिष्ट व्यक्तियों का दर्शनार्थ आगमन उल्लेखनीय रहे। **फ्रांस के विद्वान् डॉ. जे.एन. मोनसुयर, आचार्य श्री के संयम एवं त्यागमय जीवन से अत्यंत प्रभावित हुए उन्होंने जैन-धर्म-दर्शन पर आचार्य श्री से विचारों का आदान-प्रदान किया। अंग्रेजी-हिन्दी रूपान्तर श्री उमरावमल जी ढड्ढा ने किया। प्रसिद्ध वैष्णव संत श्री ओंकारानन्द जी स्वामी भी आपके दर्शन हेतु पधारे।** श्री दिनेन्द्र कुमार जी छाजेड़ जयपुर ने ४२ वर्ष की तरुणायु में आजीवन शीलव्रत का आदर्श प्रस्तुत किया। सवाईमाधोपुर से युवक संघ के ३५ सदस्यों ने उपस्थित होकर सामायिक-स्वाध्याय का नियम ग्रहण किया।

इस चातुर्मास काल में पर्वाधिराज पर्युषण की महावेला में महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा. ने १० दिवसीय एवं तपस्वी श्री प्रकाश मुनि जी म.सा. ने १२ दिवसीय तप किया। दीर्घ तपस्विनी श्रीमती इचरज कंवरजी लुणावत ने ७५ उपवास किए, १५ मासक्षपण तप हुए, बेले-तेले की तपस्याएँ अगणित हुईं, १०० अठाई तप हुए, रत्न व्यवसायी श्री पूनमचन्दजी बडेर ने ६५ दिन की मौन-साधना जपसंवर के साथ की। कुशलचन्द जी हीरावत ने अपना व्यवसाय छोड़कर संवर-साधना के साथ पूरे चार माह मौनव्रत रखा। इस प्रकार अनेकविध तपस्वियों ने लालभवन को तपोभवन बना दिया। अधिकांश तपस्वियों के पारणे बिना आडम्बर के सादगीपूर्वक हुए। पं. रत्न श्री मानमुनि जी (वर्तमान उपाध्याय प्रवर), मधुर व्याख्यानी श्री हीरामुनिजी (वर्तमान आचार्य श्री) आदि सन्तों के प्रवचनामृत से जन-जन प्रभावित थे। उनके व्याख्यान श्रावक-श्राविकाओं को सत्पथ पर अग्रसर करने में जादू सा कार्य करते थे। कोई सूक्तियों, दोहों, पद्यों और लघु कथाओं के माध्यम से गहन आध्यात्मिक विषय को समझाने में निपुण रहे तो कोई स्वरचित भजनों, गीतिकाओं और भाव भरे उद्बोधनों से सरलता और सहजता को अंगीकार करने का पाठ पढाते रहे। कोई धैर्यपूर्वक सधी हुई वाणी से द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, धर्मकथानुयोग और गणितानुयोग के मर्म को स्थानीय भाषा में प्रकट करने में सिद्धहस्त रहे तो कोई उपमा, उत्प्रेक्षा की थाह को भांपते हुए, देश, काल और परिवेश के अनुकूल सुमधुर और प्रभावशाली भाषा में अपने चिन्तन को मुखरित कर जन-जन को आत्म विभोर करते रहे। साध्वी मंडल भी पीछे नहीं रहा। गुरु हस्ती की कृपा का प्रसाद अद्भुत है। पात्र के भीतर छिपी योग्यता

को विकसित करने की विलक्षण प्रतिभा चरितनायक के अनूठे व्यक्तित्व को प्रमाणित करती थी।

आचार्य श्री चातुर्मासकाल में मोती डूँगरी तथा तख्तेशाही रोड पर क्रमश: नवलखाजी एवं बडेरजी के बंगले पर भी विराजे। यहाँ भी धर्माराधन का ठाट रहा। अपराह्न में पं. श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. ने जैन इतिहास पर विशद व्याख्यान दिए। पर्युषण पर्व पर लाल भवन में एवं 'प्रेम निकेतन' मोती डूंगरी पर सात दिन नवकार मन्त्र का अखण्ड जाप चला।

१४ से १६ अक्टूबर तक विशिष्ट साधकों का साधना-शिविर एवं ३० अक्टूबर से १ नवम्बर तक स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। आचार्य श्री ने स्वाध्यायियों को ज्ञान एवं आचार के क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रभावी प्रेरणा की तथा महिला स्वाध्यायी तैयार करने हेतु समाज का ध्यान आकृष्ट किया। अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर , अ.भा. महावीर जैन श्राविका संघ, मद्रास के वार्षिक अधिवेशन तथा अ.भा. श्री जैन विद्वत् परिषद् द्वारा आचार्य श्री रत्नचन्द्र स्मृति व्याख्यानमाला और सामायिक संगोष्ठी के सफल आयोजन हुए।

इस चातुर्मास में स्थानीय संघ ने तन, मन, धन से सेवा एवं धर्माराधना के संकल्प को साकार किया। बरसाती झरनों की तरह दर्शनार्थी बंधुओं का आवागमन जारी रहा, स्थानीय संघ पलक पावड़े बिछाए स्वागत सत्कार में लगा रहा। अपने आराध्य आचार्य प्रवर के चातुर्मास की पूर्णाहुति पर दर्शनार्थ उपस्थित हुए देश के कोने-कोने के हजारों लोगों में परस्पर सौहार्द और भ्रातृत्व-भाव सजीव हो उठा। चारों दिशाओं से आए लोगों के व्यापार और वाणिज्य, शिक्षा और रहन-सहन की जानकारी और आदान-प्रदान के साथ संयम पथ पर अग्रसर होने का सम्बल बढ़ा। देश के कोने कोने से आये लोगों में परस्पर अपनेपन की जागृति हुई। हजारों लोग यह जानते और मानते थे कि गुरुदेव मेरे हैं/हमारे हैं और मैं गुरुदेव का हूँ/हम गुरुदेव के हैं। आचार्य श्री के इस विराट् व्यक्तित्व को ऋग्वेद के शब्दों में -'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः' कहा जा सकता है।

२१ नवम्बर १९८३ को आचार्य श्री एवं संतों की विदाई वेला में जयपुर का 'चौड़ा रास्ता' भी सकड़ा पड़ गया। लाल भवन से विहार कर आचार्य श्री मोती डूंगरी एवं सुबोध कॉलेज होते हुए कइयों को एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष एवं जीवन पर्यन्त के लिए शीलव्रत कराते हुए २५ नवम्बर को उपनगर बजाजनगर के साधना-भवन में पधारे। यहाँ श्रमण संघ के युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. के हृदयाघात से नासिक (महाराष्ट्र) में देवलोक होने की सूचना मिली। संवेदना सभा में युवाचार्य श्री के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए चतुर्विध संघ ने श्रद्धांजलि अर्पित की। आचार्यप्रवर की अनुज्ञा से मद्रास में शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. द्वारा तीन वैरागिन बहनों को मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को भागवती दीक्षा प्रदान की गई। सुश्री पूर्णिमा, सुश्री सविता तथा सुश्री अंजू का दीक्षा के पश्चात् नाम क्रमशः साध्वी ज्ञानलताजी, दर्शनलताजी एवं चारित्रलताजी रखा गया।

• मुमुक्षु प्रमोद कुमार जी की दीक्षा

१५ दिसम्बर ८३ गुरुवार को विजय योग के शुभ मुहूर्त में दोपहर सवा बारह बजे जयपुर के बालोद्यान रामनिवास बाग में हजारों श्रद्धालुओं के मध्य आचार्य श्री ने श्रमणजीवन की सार्थकता का विवेचन करते हुए विरक्त बंधु श्री प्रमोदकुमार जी मेहता (सुपुत्र श्री सूरजमलजी मेहता FCA एवं श्रीमती प्रेमबाई मेहता, अलवर) को भागवती दीक्षा प्रदान की। अलवर के सुशिक्षित सुसंस्कारित परिवार के इस उच्च शिक्षा प्राप्त युवक के मोक्ष-मार्ग में अग्रसर होने के इस क्षण के साक्षी बन हजारों श्रद्धालु अपने को धन्य मान रहे थे एवं साधनानिष्ठ गुरु के पावन सान्निध्य में उनके सर्वतोभावेन समर्पण का यह स्वर्णिम सुअवसर अपलक दृष्टि से देख अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहे थे। इससे पूर्व दीक्षार्थी प्रमोद कुमार की उत्कट वैराग्य भावना एवं अनूठे त्याग की अनुमोदना में अ.भा. श्री जैन रत्न

हितैषी श्रावक संघ, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, महावीर जैन श्राविका संघ, जयपुर श्रावक संघ आदि अनेक संस्थाओं की ओर से भावभीना अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर लम्बे समय से प्रतीक्षित 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग-३' की प्रति डॉ. डी. एस. कोठारी को ससम्मान प्रदान कर विमोचित की गई। परमपूज्य गुरुदेव के पावन सान्निध्य में २२ दिसम्बर को नवदीक्षित श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. की बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई और उन्होंने सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र में आरोहण किया। चारित्र आरोहण के इस अवसर पर डिस्ट्रिक्ट जज श्री गणेशचन्द जी सक्सेना ने आजीवन मद्यपान का त्याग किया तथा श्री जौहरीलाल जी पटवा, श्री दलपतराज जी सिंघवी जयपुर, श्री अमरचन्दजी लोढा, श्री मनमोहनचन्द जी लोढा नागौर, श्री महताब जी नवलखा, कमलजी मेहता, जयपुर एवं श्री हरिप्रसादजी जैन महुआ ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

• अजमेर की ओर

३१ दिसम्बर को १३ कि.मी. का लम्बा विहार कर आचार्य श्री बगरू होते हुए महलां, गाड़ोता, पालू, गिधाणी, दूदू, पड़ासोली, दांतड़ी, डीडवाना, किशनगढ़ आदि में धर्मोद्योत करते हुए मदनगंज पधारे। यहाँ श्रमणसंघ के उपाध्याय श्री पुष्करमुनि म.सा. एवं पं. रत्न श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री (पश्चात् आचार्य श्रमण संघ) अपने मुनि मंडल सहित आचार्य श्री की अगवानी में सामने उपस्थित हुए। यह संगम चतुर्विध संघ के लिए प्रमोदकारी था। दोनों महापुरुषों ने चरितनायक आचार्यप्रवर का गुणानुवाद करते हुए जीवन के विभिन्न स्नेहिल प्रसंगों का उल्लेख किया। यहाँ से कालूसिंह जी बाफना की डाइंग फैक्ट्री पधारने पर बाफनाजी ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत पालन का नियम लेकर श्री चरणों में अपनी आदर्श श्रद्धा अर्पित की। फिर यहाँ से आचार्य श्री १४ जनवरी मकर संक्रान्ति को १४ कि.मी का विहार कर गगवाना, घूघरा होते हुए अजमेर पधारे, जहाँ सन्त-सती मंडल द्वारा आचार्यश्री का अपूर्व स्वागत किया गया। यहाँ शास्त्रीनगर में आप मूलराज जी चौधरी के बंगले विराजे।

आचार्य श्री की ७४ वीं जन्म-जयन्ती पर ५७ सन्त-सतियों (प्रवर्तक पं. रत्न श्री कुन्दनमलजी म.सा., पं. रत्न श्री सोहनलालजी म.सा. आदि ठाणा ५, मेवाड़सिंहनी महासती श्री जशकंवरजी म.सा. आदि ठाणा, महासती श्री कुसुमवतीजी म.सा. आदि ठाणा) एवं हजारों की संख्या में उपस्थित श्रावकों ने १७ जनवरी को अजमेर की महावीर कॉलोनी में उसी बरगद के पेड़ के समीप एकत्रित हो आपके साधनामय जीवन का गुणगान किया, जहाँ लगभग ६४ वर्ष पूर्व आचार्यप्रवर की चारित्र साधना 'दीक्षा' का श्री गणेश हुआ था। इस अवसर पर राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक प्रान्तों के करीब ४० क्षेत्रों के लगभग ४००० श्रद्धालु श्रावक-श्राविका उपस्थित थे। मेवाड़सिंहनी महासती श्री जसकंवर जी म.सा. ने आचार्य श्री को जिनशासन का तीर्थराज बताते हुए फरमाया कि समाज की महान् हस्ती ने संस्कृति-रक्षण और मर्यादा-पालन में बहुत बड़ा योगदान दिया है। ऐसे गुरुराज की मेरी एक जुबां क्या महिमा कर सकती है। पं. रत्न श्री मानमुनि जी म.सा. (वर्तमान उपाध्यायप्रवर) ने आचार्य देव को मिश्री की डली की उपमा से उपमित किया और कहा कि आपके जीवन की हर क्रिया एवं अप्रमत्त भाव मिश्री की भांति मधुर हैं। वे कथनीय के साथ अनुकरणीय भी हैं।

चतुर्विध संघ ने आचार्यप्रवर को नाना उपमाओं से मण्डित किया। महासती श्री दिव्यप्रभा जी म.सा. ने जीव से शिव, नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा को जोड़ने वाले गुरु की उपमा दी। पण्डित रत्न श्री सोहनलाल जी म.सा. (पश्चात् आचार्य) ने सामायिक और स्वाध्याय को घर-घर फैलाकर ज्ञान-क्रिया की ज्योति का शुभ सन्देश देने वाले चरितनायक आचार्यश्री की दीर्घायु की प्रार्थना की। महासती श्री कमला जी म.सा., श्री वल्लभ मुनि जी, श्री

गौतम मुनि जी आदि ने अपनी भावांजलि व्यक्त की। पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा. (वर्तमान आचार्य प्रवर) ने अजमेर नगर को चतुर्विध संघ-मिलन का जंक्शन, मेला, तीर्थ और समवसरण बताते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप रूप मार्गचतुष्टय की आराधना का अनूठा संगम-स्थल बताया और आराध्य आचार्य भगवन्त के चरणों में अधिकाधिक चतुरंगी साधना का संकल्प करने का आह्वान किया।

परमपूज्य आचार्य भगवन्त संत-मुनिराजों व भक्तों के द्वारा व्यक्त हृदयोद्गारों को अनमने भाव से श्रवण करते हुए आत्मोत्थान का ही चिन्तन कर रहे थे। अपने मंगल उद्बोधन में आपने फरमाया–" गुण-ग्राम करने की अपेक्षा आप यदि व्रताराधन, तप-त्याग व प्रत्याख्यान अंगीकार करते हैं व जिनवाणी के पावन संदेश को जीवन में उतारने व जन-जन तक पहुँचाने का कार्य करते हैं तो यह आपके जीवनोत्थान व शासन प्रभावना का कारण होगा, यही आपकी सच्ची भेंट होगी।" प्रवर्तक श्री कुन्दनमलजी म.सा. के साथ पन्द्रह दिनों का सहवास बड़ा आनन्दप्रद एवं परिवार सा रहा।

• मेड़ता होकर मारवाड़ भूमि में

श्रावकों द्वारा 'गुरु हस्ती के दो फरमान सामायिक स्वाध्याय महान्' आदि उद्घोषों के बीच शिष्य-मंडली सहित आचार्य श्री ३० जनवरी १९८४ को पुष्कर पधारे। वहाँ धर्मोद्योत कर आप तिलोरा, थांवला, भैरुंदा, होते हुए हुए मेवड़ा पधारे। यहाँ श्री मोतीलालजी राजपूत एवं श्री भंवरलालजी छाजेड़ ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत का नियम लिया। बड़ीपादु में सामायिक संघ की शाखा स्थापित की गई। आप जहाँ कहीं भी पधारते, आपकी महनीय प्रेरणा से स्थानक में सामूहिक सामायिक करने वालों की संख्या बढ़ती गई। फिर छोटी पादु, सेसड़ा, जड़ाउ, चामुण्ड्या फरसते हुए आप मेड़ता पधारे।

दक्षिण भारत की सुदूर पद-यात्रा के पश्चात् परम पूज्य आचार्य श्री का मारवाड़ में यह प्रवेश अनन्य आस्था एवं उमंग के वातावरण में सम्पन्न हुआ। अनेक क्षेत्रों के श्रावक-श्राविकाओं ने विनतियाँ प्रस्तुत की। इसी शृंखला में जोधपुर श्री संघ की ओर से न्यायमूर्ति श्री श्रीकृष्णमल जी लोढा एवं आशुकवि स्वाध्यायी श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी द्वारा चातुर्मास हेतु हृदय को झंकृत कर देने वाली काव्यमयी विनति प्रस्तुत की गई। गोटन, नागौर, भोपालगढ एवं पीपाड़ के श्री संघों ने क्षेत्र-स्पर्शन हेतु विनति रखी।

मेड़ता में त्रिदिवसीय बाल-सामायिक शिविर आयोजित किया गया। २० फरवरी १९८४ को प्रवर्तक श्री कुन्दनमलजी म.सा. के स्वर्गवास के समाचार पाकर हार्दिक श्रद्धांजलि दी गई तथा चार लोगस्स द्वारा कायोत्सर्ग किया गया। प्रवर्तक श्री शान्त स्वभावी, सरल परिणामी श्रमण संस्कृति के हिमायती एवं निराडम्बरी सन्त थे। यहाँ श्री नेमीचन्दजी बाफना ने आजीवन शीलव्रत की प्रतिज्ञा ली।

चरितनायक यहाँ से कलरू, गोटन, हरसोलाव, नोखा (चांदावतां) रूण, खजवाणा आदि ग्रामों में धर्मगंगा प्रवाहित करते हुए पालड़ी (जोधा) पधारे। वहाँ ज्ञानगच्छीय महासतीजी श्री भँवरकवर जी म. आदि ठाणा ८ आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारीं।

७ मार्च १९८४ को पूज्य गुरुवर मूण्डवा फरस कर गेंदतालाब, अट्यासन होते हुए नागौर पधारे, जहाँ शिष्यमंडली अगवानी हेतु उपस्थित हुई। ११ मार्च को श्री माणकमुनि जी म.सा. की पुण्यतिथि श्रावकों द्वारा विविध तप-त्याग, सामायिक, स्वाध्याय के नियमों को स्वीकार करते हुए मनाई गई। फाल्गुनी चौमासी पर अनेक क्षेत्रों ने श्री

चरणों में अपनी-अपनी विनतियाँ प्रस्तुत की। पूज्यपाद ने अहमदाबाद के लिए सन्तों के एक सिंघाडे के चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। यहाँ निकटवर्ती स्वधर्मी बन्धुओं का आवागमन बना रहा। संसद सदस्य श्री नाथूरामजी मिर्धा ने प्रवचन-सभा में समाज की कुरीतियों को दूर करने हेतु बल दिया।

नागौर में पूज्यपाद के विराजने से स्वाध्याय मंडल की स्थापना, जैन पुस्तकालय की सुव्यवस्था आदि उल्लेखनीय कार्य हुए। आचार्य श्री के नागौर आगमन पर चातुर्मास की तरह तपस्याओं का ठाट रहा। सामूहिक दया, सामायिक की पंचरंगी, १२ व्रतधारण के अतिरिक्त आजीवन शीलव्रत भी ग्रहण किए गए एवं वैरागिन बहन सुश्री निर्मला जी सुराणा की दीक्षा निश्चित होने की प्रसन्नता में सुराणा भाइयों ने अपनी विशाल भूमि श्री जैन रत्न श्रावक संघ को ट्रस्ट बना कर समर्पित की।

- दीक्षा-प्रसङ्ग

७ अप्रैल ८४ चैत्र शुक्ला षष्ठी को नागौर स्थित प्रेमजी सुनार की बाड़ी में अपार जनसमूह के बीच आचार्य श्री ने सन्तवृन्द ठाणा ११, महासती श्री सुगनकंवरजी आदि ठाणा ४, जयमल्लगच्छीया महासती श्री झणकार कंवरजी आदि ठाणा ६, बहुश्रुत जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री भीखा जी आदि ठाणा ४, पायचन्द गच्छ की महासती श्री सुमंगला जी आदि ठाणा २ की उपस्थिति में सोमपुरगोत्रीय विरक्त बंधु हरिदास जी (यल्लपा) एवं बाल ब्रह्मचारिणी विरक्ता बहन सुश्री निर्मला जी सुराणा (सुपुत्री श्री भंवरलालजी एवं श्रीमती किरणदेवी जी सुराणा, जोधपुर) को जैन भागवती दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के इस पावन प्रसंग पर जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री नगराज जी मेहता ने नित्य सामायिक व्रत, पुलिस अधीक्षक श्री रामकिशन जी मीणा तथा उप पुलिस अधीक्षक श्री प्रेमनाथ जी ने सप्त कुव्यसन-परित्याग का व्रत लिया।

अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने हेतु अत्यंत आग्रहपूर्ण विनतियों के होने पर भी आचार्य श्री ने अनुकूलता रहते वि. संवत् २०४१ का चातुर्मास जोधपुर में करने, अक्षय तृतीया पर पीपाड़ सिटी में विराजने और बड़ी दीक्षा तथा महावीर जयन्ती कडलू में करने के भाव साधु-मर्यादा में फरमाए।

- पीपाड़ सिटी में अक्षयतृतीया

तदनुरूप रामनवमी को आचार्य श्री मेहलसर (ताउसर) की ओर विहार करते हुए फिडोद से कडलू पधारे और १३ अप्रैल को दशवैकालिक सूत्र के छज्जीवणी अध्ययन से श्री हरीशमुनि जी (पूर्व नाम यल्लपा जी) तथा सती निःशल्यवती जी (पूर्व नाम निर्मला जी) को बड़ी दीक्षा प्रदान की। यहाँ से आचार्य श्री मुंदियाड़, गोवा, वासनी, आसोप, वारणी, नाडसर आदि क्षेत्रों को अपने पाद विहार से पवित्र करते हुए भोपालगढ़ पधारे। यहाँ श्री सूरजराजजी ओस्तवाल एवं श्री सोहनलालजी हुण्डीवाल ने संजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को समृद्ध किया। भोपालगढवासियों को सम्बोधित करते हुए आचार्यप्रवर ने प्राचीन गौरव की स्मृति, परस्पर ऐक्य व संगठन का सन्देश देते हुए फरमाया –"**हाथों की पांचों अंगुलियाँ एक पंजे के रूप में सक्षम और कार्यशील रहती हैं। एक अंगुली कोई भी कार्य नहीं कर सकती।** आचार्य श्री रत्नचंदजी म.सा. की क्रियोद्धार भूमि का यह क्षेत्र महापुरुषों के उपकार से उपकृत रहा है। आप सब परस्पर प्रेम से हिल मिलकर रहें तो धर्म प्रभावना के साथ भोपालगढ का गौरव सुरक्षित रह सकता है।"

यहाँ से विहार कर पूज्यपाद रतकूड़िया, खांगटा, कोसाणा होते हुए पीपाड़ पधारे, जहाँ अक्षय तृतीया के

उपलक्ष्य में २१ पारणार्थी तपस्वी भाई-बहनों के पारणे हुए। १४ मई को वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को आचार्य श्री जयमल जी म.सा. की १८८ वीं पुण्यतिथि पर लगभग २०० दयाव्रत हुए। चरितनायक ने आचार्यप्रवर श्री जयमलजी म.सा. के जीवन पर प्रकाश डालते हुए फरमाया कि जीवन के संग्राम में समता से विजयी बनना चाहिए। आचार्य श्री जयमलजी म.सा. साहस और सत्पुरुषार्थ के धनी थे। पूज्य श्री कुशलचन्दजी म.सा. के साथ उनका अविचल सम्बन्ध रहा। श्री ज्ञानचन्दजी, श्री धनराजजी मुथा, श्री मांगीलाल जी प्रजापत आदि ने शीलव्रत अंगीकार कर कृपा निधान के चरणों में अपनी भेंट अर्पित की।

• भोपालगढ़ में कुशलचन्दजी म. का द्विशताब्दी पुण्यतिथि समारोह

भोपालगढ़ में आचार्यप्रवर के सान्निध्य में राजस्थान उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधिपति सुश्रावक श्री चांदमल जी लोढ़ा के मुख्य आतिथ्य में पूज्य श्री कुशलचन्द जी म.सा. के द्विशताब्दी पुण्य तिथि साधना-समारोह का समापन २० मई को त्याग-व्रत पूर्वक सम्पन्न हुआ, जिसमें श्री हीरामुनिजी, श्री ज्ञानमुनिजी, श्री गौतममुनिजी आदि सन्त-सती गण के अतिरिक्त सुश्री डॉ. सुषमा जी गांग (वर्तमान में श्रीमती सिंघवी), श्रीमती सुशीला जी बोहरा, श्री दौलत रूपचन्द जी भण्डारी, श्री रतनलाल जी बैद, श्री छोटूराम जी प्रजापत आदि ने पूज्य श्री कुशलचन्द जी म.सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सारगर्भित विचार प्रकट किए।

३७ वर्ष आड़े आसन नहीं सोने वाले श्री कुशलचन्द जी म.सा. रत्नवंश के मूलपुरुष थे। उनकी साधना, सेवा-भावना, अप्रमत्तता एवं उनका निश्छल समर्पण-भाव रत्नवंश का वैसे ही आधार रहा जैसे वृक्ष की शोभा का आधार उसका मूल (जड़) होता है। इस अवसर पर उनकी स्मृति में श्री कुशल जैन छात्रावास की घोषणा हुई जो उच्च शिक्षण के अभ्यासार्थी जैन छात्रों के लिए आज भी जोधपुर में संचालित है। महासाधक गुरुदेव के साधनामय सान्निध्य में आयोजित इस साधना समारोह के अवसर पर १२ दम्पतियों (श्री किशनलालजी, श्री सुगनचन्दजी ओस्तवाल, श्री सुगनचन्दजी , श्री दलीचन्दजी कांकरिया, श्री सायरचन्दजी खींवसरा, श्री चम्पालालजी हुण्डीवाल, श्री शिम्भुलालजी चोरड़िया, श्री मांगीलालजी छीपा, श्री रामसुखजी पुठिया, श्रीलालजी सरगटा, श्री सांवतरामजी सुथार एवं श्री गंगारामजी गहलोत) ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का नियम लेकर इस अवसर पर आदर्श प्रस्तुत किया। साधना कार्यक्रम के तहत नवयुवकों में व्यसनमुक्ति अभियान चलाया गया, जिसके अन्तर्गत धूम्रपान, चाय आदि व्यसनों का १७९ व्यक्तियों ने प्रत्याख्यान किया। भोपालगढ श्री संघ ने व्यसनमुक्ति कार्यक्रम के साथ २१ दिवसीय शान्तिपाठ एवं नवकार मंत्र जाप का आराधन किया। नई पीढ़ी के बालक-बालिका विनयशील, सदाचारी तथा जैन सिद्धान्तों के ज्ञाता बनकर भविष्य में सामाजिक उत्क्रान्ति, नैतिक जागृति और जिनशासन की प्रभावना में मूल्यवान योगदान दे सकें, इसी लक्ष्य से आचार्य श्री की प्रेरणा से २७ मई से १५ दिवसीय बाल शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें १३१ शिविरार्थियों ने भाग लिया। इसका समापन समारोह श्री पृथ्वीराज जी कवाड़ मद्रास के मुख्य आतिथ्य में, श्री चम्पालाल जी कर्णावट मुम्बई की अध्यक्षता में और श्री केसरीचन्द जी नवलखा जयपुर के विशिष्ट आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। शिविर की निम्नांकित विशेषताएँ रहीं-

१. प्रतिदिन आचार्यप्रवर से मार्गदर्शन एवं तदनुसार क्रियान्विति।

२. शिविरार्थियों को तिक्खुत्तो के पाठ का शुद्ध उच्चारण तथा विधि सहित गुरुवन्दन करने का अभ्यास।

३. पद्मासन लगाकर नमस्कार मंत्र का ध्यान करने का अभ्यास।

४. चोल पट्टे, दुपट्टे आदि सामायिक के वेश में सामायिक का अभ्यास।

५. शिष्टाचार, सदाचार, नियम एवं अनुशासन पर विशेष बल।

६. सामायिक-प्रतिक्रमण के पाठों को शुद्धता के साथ पढ़ने का प्रशिक्षण।

शिविर में बालक-बालिकाओं द्वारा निम्नांकित नियम लिए गए-

१. महीने में कम से कम ५ सामायिक उपाश्रय में आकर करना।

२. अष्टमी, चतुर्दशी को प्रतिक्रमण करना।

३. धूम्रपान एवं नशे का आजीवन त्याग करना।

४. यथाशक्ति चाय, पान एवं कन्दमूल का त्याग रखना।

५. प्रतिदिन स्वाध्याय करना।

• जोधपुर की ओर

भोपालगढ़ में १० जून को आचार्य श्री पद्मसागरजी म. नागौर से पूज्यपाद के दर्शनार्थ पधारे। ज्ञान-क्रिया के अद्भुत संगम 'गुणिषु प्रमोदं' के मूर्त स्वरूप, साधना के साकार देवता, युग मनीषी आचार्य श्री के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त आदर, श्रद्धा व विनय-भाव था। पूज्यपाद के श्रीचरणों में विराजकर उन्होंने साधना के बारे में मार्गदर्शन प्राप्त किया। १४ जून को भोपालगढ़ से विहार कर आचार्य श्री रतकूड़िया एवं साथिन फरसते हुए पीपाड़ शहर पधारे। पूज्यपाद का दो दिवसीय अल्प प्रवास भी सुफलदायी रहा। १७ युवकों ने पर्युषण में स्वाध्यायी के रूप में सेवा देने का नियम लिया व अनेक युवकों ने धूम्रपान एवं चाय आदि का त्याग किया।

यहाँ से सेठों की रियां, बुचकला होते हुए आचार्य श्री भंसाली परिवार के आग्रह से पहली बार कूड़ पधारे। गाँव के कृषक, मुनियों की चर्या देखकर आश्चर्यचकित रह गए। उनके दर्शन और वीरवाणी श्रवण कर उन्होंने भी अपने जीवन में कुव्यसन-त्याग के महत्त्व को पहचाना। कूड से विहार कर पूज्यवर्य बीनावास, बिसलपुर, पालासनी, बनाड़ होते हुए जोधपुर पधारे।

१ जुलाई १९८४ को अगवानी हेतु सैंकडों भक्तगण बनाड़ तक पहुँच गए। बनाड़ से पावटा (जोधपुर) पधारते-पधारते जनमेदिनी उमड़ पड़ी। १४ कि.मी. के समूचे विहार में भक्त समुदाय, विशेषतः बहिनों एवं युवकों का उत्साह देखते ही बनता था। भक्तगण जैनधर्म की जय, शासनपति श्रमण भगवान् महावीर की जय, निर्ग्रन्थ मुनिमण्डल की जय, गुरु हस्ती के दो फरमान, 'सामायिक-स्वाध्याय महान्' के जय निनाद से देव, गुरु एवं धर्म का जयगान करते हुए परमाराध्य गुरुदेव एवं मुनिमण्डल के पदार्पण की आनन्दानुभूति को अभिव्यक्त कर रहे थे। पद-विहार में अनेक भक्तप्रवर नंगे पांव संवर-साधना में चल रहे थे। व्यवस्था एवं विहार में भक्तों का अनुशासन सराहनीय था।

पावटा पधारते समय मार्ग में श्री भंवरलाल जी बागमार ने अपने आवास को पावन कराते हुए एक वर्ष कुशील सेवन का त्याग किया। गिडिया भवन में अशेष जन समुदाय पूज्य गुरुदेव के दर्शन-वन्दन एवं प्रवचन-पीयूष का पान करने के लिए एकत्रित हो गया। स्वाति के प्यासे चातक की भांति बाट जो रही अत्रस्थ वयोवृद्धा स्थविरा प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकंवरजी म. अपने सती-मण्डल के साथ श्रद्धाकेन्द्र आचार्यदेव के, सात वर्षों पश्चात् दर्शन

कर श्रद्धाभिभूत हो उठी। अखिल भारतीय श्री जैनरत्न हितैषी श्रावक संघ के कार्याध्यक्ष डा. सम्पतसिंह जी भाण्डावत तथा चातुर्मास समिति के संयोजक श्री गणपतराज जी अब्बाणी ने अपार जनमेदिनी के साथ आचार्य श्री का भावभीने शब्दों से स्वागत किया।

आचार्यप्रवर ने प्रेरक उद्बोधन में फरमाया –"आप सभी के हृदय में भक्ति-भावना है। आपने मानसिक, वाचिक एवं कायिक स्वागत तो किया ही, पर इसके आगे भी भक्ति है। मुनि-मण्डल के पदार्पण एवं विराजने से आप अपने जीवन को ऊँचा उठाएँ। अपने आपको व्रत-ग्रहण, त्याग-प्रत्याख्यान एवं सामायिक-स्वाध्याय के प्रचार में आगे बढायें, तभी मुनिमण्डल का सच्चा स्वागत होगा।" श्री पुखराज जी गिड़िया ने एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर त्याग-प्रत्याख्यान का शुभारम्भ किया।

तदनन्तर पूज्य श्री सरदारपुरा एवं घोड़ों का चौक पधारे। सरदारपुरा में पारख भवन विराजने पर श्री छोटमलजी पारख ने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन का नियम लिया। व्याख्यान ओसवाल जैन छात्रावास में हुआ। घोड़ों के चौक विराजते समय आचार्य श्री रायपुर हवेली में विराजित ज्ञानगच्छीय वृद्ध सन्त श्री सोभागमलजी म.सा. आदि मुनिमण्डल को दर्शन देने पधारे। दूसरे दिन पं. रत्न श्री घेवरचन्दजी म. आदि सन्तवृन्द घोड़ों के चौक में आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारे।

• जोधपुर चातुर्मास (संवत् २०४१)

पूज्यपाद ७ वर्ष की दीर्घ अवधि के अनन्तर जोधपुर पधारे थे। १३ वर्ष के अन्तराल के बाद आपके चातुर्मास का लाभ रत्नवंश के पट्टनगर जोधपुर को प्राप्त हुआ था। जोधपुर के जैन-जैनेतर भक्त पूज्यपाद के चातुर्मासिक सान्निध्य से अपने जीवन-निर्माण व धर्म-प्रभावना की अनेक कल्पनाएँ मन में संजोये तीव्र उत्सुकता से चातुर्मास प्रारम्भ की प्रतीक्षा कर रहे थे।

शुभ घड़ी आई। ६ जुलाई १९८४ को पूज्यप्रवर ने अपने चातुर्मास स्थल पावटा स्थित रेनबो हाउस के लिये घोड़ों का चौक से शिष्य-समुदाय के साथ विहार किया तो विहार के पूर्व ही सैकड़ों नर-नारी आराध्य गुरुदेव के विहार में सम्मिलित होने हेतु उपस्थित थे। जयनाद के घोष जोधपुर के कोने-कोने में पूज्यप्रवर के चातुर्मास की घोषणा कर रहे थे, नगर के कोने-कोने से श्रद्धालु भक्तों का हुजुम उमड़ पड़ा, रेनबो हाउस पहुँचते-पहुँचते विशाल जनमेदिनी उपस्थित थी। वृद्ध, प्रौढ और युवक ही नहीं जोधपुर के बच्चे-बच्चे में अपने आराध्य गुरुदेव के प्रति अनन्त आस्था है। जोधपुर की बहिनों में पूज्यपाद हस्ती के प्रति आस्था का कैसा सैलाब था, इसे प्रत्यक्षदर्शी ही अनुभव कर सकते हैं। आस्था के सैलाब से युक्त पूज्यपाद का यह चातुर्मासार्थ प्रवेश अनुपम था। मंगल-प्रवेश के इस भव्य प्रसंग पर आपने अपने आशीर्वचन में फरमाया –"आप लोग जागे हुए तो हैं, मैं आपको चलाने आया हूँ, मंजिल तो चलने पर ही तय होती है।" समाज-ऐक्य व संगठन का सन्देश देते हुए आपने फरमाया - 'पाँचों अंगुलियों का उपयोग सहयोग पर निर्भर है। प्रत्येक अंगुली का अलग-अलग कार्य है, वे परस्पर हस्तक्षेप नहीं करतीं, फिर भी इनमें परस्पर सहयोग व समन्वय समझने योग्य है। इसी प्रकार समाज के छोटे-बडे, पढे-लिखे, अनपढ अनुभवी, समर्थ-असमर्थ, संकोची-मुखर सभी सदस्य परस्पर सहयोग कर कार्य करें, इसी में संघ, समाज व कार्य की शोभा है।'

१२ जुलाई को चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन परमपूज्य आचार्य श्री हस्ती ने अपनी पातकप्रक्षालिनी प्रवचन

सुधा में फरमाया – "श्रवण-ग्रहण, धारण व आचरण में सर्वाधिक महत्त्व आचरण का है। धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में ढिलाई और आलस्य छोड़ उत्साह एवं दृढता से आगे बढना होगा, तभी समाज के स्तर पर स्वाध्याय की गतिविधियाँ आगे बढेंगी।"

चातुर्मास में समय-समय पर पूज्यपाद ने अपनी पीयूषपाविनी वाणी के माध्यम से जिनवाणी की पावन-सरिता प्रवाहित करते हुए विविध विषयों पर अपने हृदयोद्बोधक विचार व्यक्त कर श्रोताओं को धर्म के सम्यक् स्वरूप का बोध दिया, साथ ही जिनशासन प्रभावना व समाजोन्नति विषयक प्रेरणाएं भी की। श्रावण कृष्णा द्वितीया, रविवार को प्रवचन सभा में भक्तगण विशाल संख्या में पूज्यपाद की पातक प्रक्षालिनी भवभयहारिणी जीवन निर्माणकारी वाणी सुनने को उपस्थित थे। इस धर्मसभा में राजस्थान उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधिपति व संभागीय आयुक्त भी उपस्थित हो आपका मार्गदर्शन पाने को उत्सुक थे। अन्याय, अनीति, व्यसन एवं कदाचार से सामान्य जन की रक्षा में राजनेता, न्यायाधिपति एवं धर्माचार्य के लक्ष्य की समानता का उल्लेख करते हुए पूज्यप्रवर ने फरमाया–"राजनेता एवं न्यायाधिपति दण्ड-व्यवस्था से पाप दबाने का कार्य करते हैं, जबकि धर्माचार्य पापी का मन बदल कर उसे पाप से सर्वथा अलग होने की प्रेरणा करते हैं।" दीपावली के दिन प्रेम व स्नेह का दीपक ज्योतित करने की प्रेरणा देते आपने फरमाया–"स्वधर्मी भाई को अपने सगे भाई की भांति समझो। स्वधर्मी की कमी को फैलाओ मत, मिटाओ।"

भक्तों का पुरुषार्थ जगाते हुए आपने भाद्रपद शुक्ला द्वितीया को अपने मंगल प्रवचन में फरमाया– "साधना में गुरु निमित्त होता है, किन्तु कर्म स्वयं को ही काटने होते हैं। " सम्वत्सरी महापर्व पर आपने आत्म-शोधन की प्रेरणा तो दी ही, साथ ही इस अहिंसा पर्व पर नारी-वर्ग के प्रति सामाजिक हिंसा के प्रतीक दहेज-त्याग की प्रेरणा भी की।

परम पूज्य आचार्य भगवन्त पंचाचार व साधुमर्यादा की कठोरता से पालना के हिमायती थे। अपने स्वयं के जीवन में सकारण दोष भी आपको इष्ट नहीं था। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को श्रवणेन्द्रिय में फुंसी की सफाई हेतु टार्च से कान के अन्दर देखने को उद्यत डाक्टर पुरोहित को निषेध करते हुए आपने फरमाया–"आवश्यक हो तो आप धूप में देख सकते हैं।" दोष-सेवन से बचने को सजग एवं निज पर अनुशासन करने वाला महापुरुष ही संघ का शास्ता बन सकता है।

एक सम्प्रदाय के आचार्य होते हुए भी पूज्यपाद के विराट् व्यक्तित्व से सभी धर्म-संघ प्रभावित थे। आपके सामायिक स्वाध्याय-सन्देश व शासन-प्रभावना हेतु आपके प्रबल पुरुषार्थ, आपकी अप्रतिम प्रतिभा, साधनातिशय व प्रभावक व्यक्तित्व से सभी चमत्कृत थे। पर्युषण के पश्चात् निमाज की हवेली में विराजित श्रमण संघीय श्री रूपमुनि जी म.सा. , श्री सुकनमुनिजी म.सा. सांवत्सरिक क्षमापना हेतु पधारे। भाद्रपद शुक्ला ८ को गांधी मैदान में विराजित तेरापंथ संघ के आचार्य श्री तुलसी के विद्वान् शिष्य श्री महाप्रज्ञ भी क्षमापना हेतु पधारे। इसी दिन मूर्तिपूजक परम्परा की प्रभावक महासती जी श्री विचक्षण श्री जी की शिष्या महासती जी सुलोचना श्री जी आदि ठाणा ६ भी क्षमापना हेतु पधारी।

चातुर्मास में कई विशिष्ट व्यक्तियों ने युगमनीषी आचार्य पूज्य हस्ती के पावन दर्शन कर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया। प्रख्यात विद्वान प्रो. कल्याणमलजी लोढा आपसे अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर प्रमुदित हुए। २ अक्टूबर १९८४ को जोधपुर के सांसद व केन्द्रीय खेल उपमंत्री श्री अशोक जी गहलोत आपके पावन दर्शन व

मंगल आशीर्वाद हेतु उपस्थित हुए। पूज्यपाद ने उन्हें अहिंसा का सन्देश देते हुए फरमाया–"राजस्थान जीव-दया उपासक सात्त्विक प्रान्त रहा है। यहाँ हिंसा का प्रसार न हो, परस्पर सद् भाव कायम रहे, इस ओर शासकों को सजग रहना है।" ३० अक्टूबर १९८४ को भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या से समूचे राष्ट्र के अन्य हिस्सों की भांति इस नगर में भी वातावरण शोकमग्न था। दया, अनुकम्पा, सौहार्द व करुणा के संदेशवाहक पूज्य हस्ती ने जैन समाज के माध्यम से राष्ट्र को सन्देश दिया कि हिंसा व प्रतिहिंसा से हिंसा ही बढती है। अहिंसा से ही राष्ट्र में शान्ति सम्भव है। कोई भी मत, पंथ या शास्त्र हिंसा का पाठ नहीं पढाता।

ज्ञानसूर्य पूज्य हस्ती के इस चातुर्मास में ज्ञानाराधना के महनीय प्रयास हुए। १२ से १४ अक्टूबर तक 'श्रावकधर्म एवं वर्तमान सामाजिक स्थिति' विषय पर त्रिदिवसीय विद्वद् गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें ५० शोध पत्र पढे गये। सेवामन्दिर रावटी के संचालक, क्रियानिष्ठ विद्वान् एवं पूज्यप्रवर के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ समाज सेवी श्री जौहरीमल जी पारख ने संगोष्ठी का उद्घाटन किया। संगोष्ठी के समापन पर ज्ञान-क्रिया-संगम आचार्य भगवन्त ने विद्वानों को नियमित स्वाध्याय, मौन व सामूहिक रात्रि-भोजन निषेध के नियम करा कर उन्हें क्रियानिष्ठ जीवन जीने का जीवन सूत्र दिया।

आचार्य श्री रत्नचन्द्र स्मृति व्याख्यान माला में डॉ. इन्दरराज वैद का 'आदर्श जीवन के सूत्रकार सन्त तिरूवल्लुवर' विषयक व्याख्यान महत्त्वपूर्ण रहा। इसकी अध्यक्षता जोधपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. एस.एन.मेहरोत्रा ने की। कुलपति डॉ. मेहरोत्रा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में विद्वत् परिषद् की जैन-विद्या प्रोत्साहन छात्रवृत्ति एवं ज्ञान प्रसार पुस्तकमाला योजना को उपयोगी बताया। डॉ. मेहरोत्रा ने जोधपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत एवं दर्शनशास्त्र विषयों में एम.ए. स्तर पर जैन धर्म-दर्शन विषयक वैकल्पिक प्रश्न पत्र रखने की घोषणा की।

१४ अक्टूबर से एक सप्ताह का स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर एवं १९ से २१ अक्टूबर तक तीन दिनों का स्वाध्यायी सम्मेलन आयोजित हुआ। शिविर एवं सम्मेलन का उद्घाटन क्रमशः श्री रणतजीत सिंह जी कूमट (आई. ए एस.) एवं डॉ. सम्पतसिंह जी भाण्डावत ने किया। शिविर में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान के ५८ स्वाध्यायियों ने भाग लिया। समापन के अवसर पर आचार्य श्री ने स्वाध्यायियों को अग्राङ्कित नियम कराये–१. सभी प्रकार के व्यसनों का त्याग, २. दहेज ठहराव नहीं करना ३. बारातों में नाच नहीं करना तथा नाच होने वाली बारात में शामिल नहीं होना ४. मृत्यु भोज नहीं करना तथा उसमें नहीं जाना। ५. होली पर रंग एवं दीपावली पर पटाखे नहीं चलाना। स्वाध्यायियों ने नियमित सामायिक-स्वाध्याय के भी नियम लिए। शिविर के समापन की अध्यक्षता एडवोकेट हुकमीचन्दजी मेहता ने की। स्वाध्याय संघ के संयोजक श्री सम्पतराजजी डोसी सहित अनेक वरिष्ठ स्वाध्यायियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया गया। तरुण जैन के सम्पादक श्री फतहसिंह जी जैन को भी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए प्रशस्तिपत्र प्रदान किया गया। डॉ. सम्पतसिंह जी भाण्डावत अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के नये अध्यक्ष मनोनीत हुए । निवर्तमान अध्यक्ष प्रबुद्ध चिन्तक श्री नथमलजी हीरावत एवं उनके सहयोगियों द्वारा की गई संघ-सेवा के उल्लेख के साथ संघ का अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास में दया, संवर व तपाराधन के उल्लेखनीय कीर्तिमान बने। स्वाध्यायी सुश्रावक श्री सम्पतराज जी बाफना ने चातुर्मास के प्रारम्भ से ही पूर्ण मौन के साथ संवर की आराधना से अपने जीवन को भावित किया, कर्मठ सेवाभावी सुश्रावक श्री कुन्दनमलजी भंसाली ने मौन सहित तप व संवर-साधना का आदर्श प्रस्तुत किया। इस चातुर्मास काल में कुल २७ मासक्षपण तप सम्पन्न हुए। ३५ वर्षीय युवारत्न श्री मूलचन्द जी बाफना ने मासक्षपण कर

श्रावक वर्ग का प्रतिनिधित्व किया, शेष २६ मासक्षपण बहिनों ने किए। छह मासक्षपण के पूर के दिन ११ अगस्त को नगर में सभी कत्लखाने बन्द रहे व अबोध मूक जीवों को अभय दान मिलने से अहिंसा प्रतिष्ठित हुई। दिनांक १२ अगस्त को 'सामायिक दिवस' के अवसर पर कभी सामायिक नहीं करने वाले युवा-बंधुओं ने भी सामायिक का आराधन कर गुरु हस्ती के सामायिक सन्देश को जीवन में अपनाया। संवर-साधना के रूप में इस दिन ५०० दयाव्रत हुए। यह चातुर्मास २७ मासक्षपण तप, २५० अठाई तप, ६०० आयम्बिल एवं पर्युषण में ग्यारह रंगी दया पौषध के आराधन से सम्पन्न हुआ। २७ दम्पतियों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को शील सुवास से सुरभित किया।

चातुर्मास अवधि में आप ज्वरग्रस्त हुए, स्वास्थ्य चिन्ताजनक हो गया। आराध्य गुरुदेव के स्वास्थ्य की स्थिति से भक्त समुदाय व संघ के कार्यकर्ता विचलित थे। उनके मन में अनिष्ट आशंका के अनेक संकल्प-विकल्प जन्म लेने लगे। शिष्य-परिवार भी गुरुदेव के स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित था। पं. रत्न श्री हीरामुनि जी (वर्तमान आचार्य प्रवर) ने आपके स्वास्थ्य को लेकर चतुर्विध संघ की चिन्ता व्यक्त की तो आपने फरमाया - 'अभी मेरे संथारे का समय नहीं आया है।' तभी आपने अपने संथारा-स्थल के कुछ संकेत बताए, जिन्हें पं. मुनि श्री द्वारा अपनी दैनन्दिनी में अंकित कर लिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि निमाज के सुशीला भवन में ये सारे संकेत यथार्थ रूप में मिले।

स्वास्थ्य की विषम स्थिति में भी धीर-वीर-गम्भीर पूज्यपाद के मन में कोई ऊहापोह नहीं था। भेदज्ञान विज्ञाता यह महापुरुष तो आत्म-चिन्तन में लीन था -**"काया का पिंजर ने पंछी, मत घर मान खरा।"** हे आत्मन् पंछी ! तूने कर्मों के वशीभूत इस देह पिंजर को धारण कर रखा है, वस्तुतः यह तेरा घर नहीं है, तूं तो अजर-अमर-अक्षय-अव्याबाध मोक्ष नगर का वासी है।

तन में व्याधि, पर मन में अपूर्व समाधि थी। आपका चिन्तन था-**"रोग शोक नहीं देते, मुझे जरा मात्र भी त्रास, सदा शान्तिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास"**। ये रोग इस विनश्वर देह को त्रास दे सकते हैं मुझे कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकते हैं, क्योंकि मैं तो अक्षय शान्ति का भंडार हूँ, सुख-दुःख सभी परिस्थितियों में सदा अविचल रहने वाला अविनाशी आत्मा हूँ। आत्मचिन्तन के तेज से दीप्त आनन पर अपूर्व शान्ति का दर्शन कर चिकित्सकगण विस्मय विमुग्ध थे। शारीरिक असमाधि में आत्म-समाधि का यह अपूर्व नजारा देख वे सहज ही योगिराज के चरणों में श्रद्धावनत हो धन्य-धन्य कह उठते। आत्म-बल, समाधि एवं उपचार से आपने त्वरित स्वास्थ्यलाभ प्राप्त किया। आपके स्वास्थ्य-लाभ से भक्तों की समस्त आशंकाएं दूर हुई और संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई।

३१ अक्टूबर १९८४ को भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के पश्चात् फैली हिंसा के प्रसंग से कर्त्तव्यबोध कराते हुए आपने फरमाया—

"प्रतिशोध के वातावरण में यदि कोई अविवेकपूर्ण कदम उठाया जाता है तो वह सदैव हानिकारक होता है। यह देश की खुशनसीबी है कि पक्ष और विपक्ष के सब लोग चाहते हैं कि देश में शांति हो, लोग मिल-जुल कर रहें, देश का अहित न हो। हम साधक भी यही चाहते हैं कि सभी लोग सहयोग की भावना से कार्य करें और देश में शांति बनाये रखें।"

"अगर देश में शांति होगी तो धर्म-साधना में भी शांति रहेगी। ठाणांग सूत्र के अनुसार राष्ट्र के शासक के दिवंगत होने पर अस्वाध्याय होती है। बुधवार को जब हमें दिन में यह सूचना मिली तो हमने शास्त्रों का स्वाध्याय

बंद कर दिया। धर्म-साधक देश से अलग हो, ऐसी बात नहीं है। धर्म साधक चाहते हैं कि देश में शांति हो, देश कल्याण के रास्ते पर चले। आप जानते हैं कि सर्दी के समय गर्म साधन की आवश्यकता होती है और गर्मी के समय ठंडे साधनों की। गर्मी की वेदना शांत करने के लिए ठंडा उपाय किया जाता है। आज देश में भी गर्मी है, अत: प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह हरेक के मन में स्नेहामृत का सिंचन करे। इस उफान को शांत करने के लिये सभी समाज के लोगों का सहयोग आवश्यक है।" "देश की शांति बनाये रखने में सबसे सद्भावमय आचरण जैनियों को करना होगा। जैन समाज आगे आवे और देश में शांति कायम करने में अपना सहयोग दे। जैन धर्म की शिक्षा मात्र जैनियों के लिये ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के लिये है।"

"देश को आजादी अहिंसा से मिली, अत: देश का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो या ईसाई हो, ऐसे समय में उसका कर्त्तव्य है कि देश में शांति कायम करने में उत्तेजना से बचा रहे।"

रेनबो हाउस में यह ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न कर विशाल जनमेदिनी की उपस्थिति में मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को पूज्यपाद विहार कर महामन्दिर पधारे। यहाँ आपने अपने प्रवचन में जोधपुरवासियों को स्वाध्याय का सन्देश देते हुए फरमाया—"सन्तों के जाने के पश्चात् उनकी वाणी एवं धर्म क्रिया को न भूलें। निराकार उपासक सिक्ख, आर्यसमाजी एवं मुस्लिम बन्धुओं की तरह शास्त्र को सम्मुख रख कर स्वाध्याय व साधना करें। जैसे-सूरदास ने हाथ छुडाकर जाने पर भी दिल से इष्ट भक्ति को नहीं जाने दिया, उसी प्रकार भक्ति को साधना का अंग समझें।"

महामन्दिर से करुणाकर गुरुदेव मुथाजी का मन्दिर विराज कर घोड़ों का चौक पधारे। यहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को आचार्य श्री पद्मसागर जी म. आपके दर्शनार्थ व सुख-शान्ति पृच्छा हेतु पधारे। घोडों का चौक के अनन्तर पूज्यपाद निमाज की हवेली, सिंहपोल, कन्या पाठशाला, उदयमंदिर फरस कर पावटा पधारे। २८ नवम्बर १९८४ मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी संवत् २०४१ बुधवार को यहां करुणाकर गुरुदेव के सान्निध्य में बालब्रह्मचारिणी मुमुक्षु बहिनों सुश्री निर्मला जी पीपाड़ा (सुपुत्री श्री घीसूलालजी पीपाड़ा, बल्लारी) एवं सुश्री सुशीला जी चौपड़ा (सुपुत्री श्री भंवरलालजी एवं श्रीमती बिदामबाई जी चौपड़ा, जोधपुर) की भागवती श्रमणी दीक्षा त्याग, वैराग्य एवं उमंग भरे वातावरण में सम्पन्न हुई। दीक्षा समारोह में साध्वी प्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकंवर जी म.सा., उपप्रवर्तिनी महासती जी श्री बदनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा १८ का सान्निध्य भी प्राप्त था। दीक्षा समारोह में ज्ञानगच्छीय पं. रत्न श्री घेवरचंद जी म.सा. ठाणा ५ व महासतीजी श्री भीखाजी, सुमतिकंवर जी आदि ठाणा ८ का आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। मुमुक्षु बहिनों के अभिनिष्क्रमण के इस महान् प्रसंग पर वीरपिता श्री घीसूलालजी पीपाड़ा, वीरपिता श्री भंवरलालजी चौपड़ा व सुश्रावक श्री चम्पालाल जी बागरेचा ने सदार आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर सच्चा त्यागानुमोदन किया। बड़ी दीक्षा के उपरान्त नव दीक्षित महासती द्वय के नाम क्रमश: नलिनी प्रभा जी म.सा. एवं सुश्रीप्रभाजी म.सा. रखा गया।

गुरुभक्त श्रावक न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमलजी सा लोढा ने करुणाकर गुरुदेव के अपने आवास पर विराजने की खुशी में आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर श्रद्धाभिव्यक्ति की। यहां से पूज्यप्रवर महावीर भवन, नेहरु पार्क विराजे। यहां दर्शनार्थ उपस्थित ७ विरक्त बहिनों को आपने दृढता पूर्वक राग से विराग की ओर बढ़ने की प्रेरणा की। मौन एकादशी के दिन निष्ठावान भक्त श्री दौलतमलजी चौपड़ा, श्री सायरचंदजी कांकरिया एवं श्री शान्तिचन्दजी भण्डारी ने सदार आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को संयमित बनाया। यहाँ जैन दर्शन के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. नथमल जी टाटिया आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए एवं विभिन्न विषयों पर आगमों के तलस्पर्शी

ज्ञाता ज्ञानसूर्य चरितनायक से वार्ता कर प्रमुदित हुए।

कोठारी भवन में महासती मंडल को उद्बोधन देते हुए पूज्य चरितनायक ने फरमाया कि संघरक्षा हेतु सती मण्डल का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना सन्तों का। यहां से विहार कर आप शास्त्रीनगर पधारे व श्री सोहनराजजी मेहता (हक्कू सा) के बंगले विराजे।

शास्त्रीनगर से पूज्यपाद सरदारपुरा, प्रतापनगर, सूरसागर आदि उपनगरों में धर्मोद्योत करते हुए रावटी पधारे। यहाँ आपने क्रियानिष्ठ विद्वान श्री जौहरीमलजी पारख के सेवा मन्दिर पुस्तकालय का अवलोकन किया। यहाँ से पूज्यप्रवर पावटा, घोड़ों का चौक फरसते हुए महावीर भवन पधारे।

• हीरक जयन्ती एवं ६५ वीं दीक्षा जयन्ती

६ जनवरी १९८५ पौष शुक्ला चतुर्दशी को पूज्य आचार्य हस्ती का ७५ वां जन्म-दिवस हीरक जयन्ती के रूप में तप-त्याग के विविध-आयोजनों के साथ मनाया गया। हीरा कठोरता एवं आलोक दोनों का ही सूचक है। परम पूज्य गुरुदेव जहाँ एक ओर संयम-पालन एवं अनुशासन में हीरक मणि की तरह कठोर थे, उसमें कोई शिथिलता उन्हें ग्राह्य नहीं थी, वहीं उनका जीवन साधना की चमक, आराधना की दमक व गुण सौरभ से देदीप्यमान था। ज्ञानसूर्य पूज्य हस्ती जिनशासन के जाज्वल्यमान दिवाकर एवं रत्नवंश परम्परा के देदीप्यमान रत्न थे। पूज्य संतवृन्द, महासती वृन्द व श्रावक-श्राविकाओं ने संघशास्ता, चरित्र तेज से तेजस्वी एवं ज्ञान-आलोक से ज्योतिर्मान, पूज्य आचार्य हस्ती के साधनामय जीवन की विभिन्न विशेषताओं का गुणानुवाद करते हुए शतायु होने की मंगल कामना की। साधना के दिव्य आलोक पूज्यप्रवर के हीरक जयन्ती के इस प्रसंग पर श्री सुल्तानमलजी सुराणा, श्री उम्मेदराजजी गांग, श्री दीपचन्दजी कुम्भट, श्री दशरथमलजी भंडारी व श्री नारायण स्वरूप जी दाधीच ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर शील के तेज से अपने जीवन को दीप्तिमान बनाया। इस अवसर पर करुणाकर गुरुदेव ने अपने प्रेरक पावन उद्बोधन में व्यक्ति और समाज को आगे बढाने के चार सूत्रों का निरूपण किया। आपने फरमाया-शिक्षा, साहित्य, संस्कार और सेवा, इन चार सूत्रों को अपनाकर कोई भी व्यक्ति व समाज प्रगति कर सकता है। चरित्र और संस्कार-निर्माण के पथ के तीन सोपान हैं—सामायिक, स्वाध्याय और साधना।

२३ जनवरी १९८५ माघ शुक्ला द्वितीया को महावीर भवन, नेहरु पार्क में आपकी ६५ वीं दीक्षाजयन्ती ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना के साथ आयोजित की गई। इसके ६५ वर्ष पूर्व इसी दिन बालक हस्ती जिनशासन में 'णमो लोए सव्व साहूणं' के पद पर आगे बढ़ कर जैन जगत में द्वितीया के चन्द्र के रूप में शोभित हुए थे। साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका इस चतुर्विध संघ में आज ये ६५ वर्ष की दीक्षा सम्पन्न साधना निष्ठ महापुरुष ग्रह, नक्षत्र व तारों के बीच पूर्णचन्द्र की भांति सुशोभित थे व भव्य जीवों को ही नहीं, प्राणिमात्र को अपने सुखद सान्निध्य की शीतल छाया प्रदान कर रहे थे । अद्भुत तेजस्विता-सम्पन्न पुण्यनिधान आचार्य भगवन्त के पावन दर्शन व वन्दन कर कृतार्थ जनसमूह, आपकी प्रवचन सुधा का पान करने को आतुर था। उत्सुक श्रद्धालु संघ को अपनी भवभयहारिणी पातकप्रक्षालिनी पीयूषपाविनी वाणी से पावन करते हुए भगवन्त ने फरमाया - "जयन्तियाँ स्नेहानुराग की प्रतीक हैं, मानव द्विजन्मा है, जिसका प्रथम जन्म मातृकुक्षि से प्रकट होना तथा दूसरा जन्म गुरुजनों से संस्कारित होना है। लाखों वर्षों का जीवन भी बंध का कारण बनकर व्यर्थ हो जाता है, किन्तु जिस वक्त गुरुजनों के चरणों में व्रत ग्रहण करने का समय आता है, वह क्षण धन्य हो जाता है । असंयमी व्यक्ति को संयम-धन प्रदान करते हुए गुरु उसे जीवन में कठिनाइयों से भयाक्रान्त न होने का आशीर्वाद देते हैं कि साधक कहीं अटके नहीं, भटके नहीं। पूज्यपाद गुरुदेव

के मंगल आशीर्वाद के प्रताप व उनके पावन शिक्षा सूत्रों से ही मेरे जीवन का निर्माण हुआ है।"

सुदीर्घ संयम-जीवन के धनी, निरतिचार साधना के पालक आचार्य हस्ती के ये विनम्र उद्गार उनकी उत्कट गुरुभक्ति, श्रद्धा, समर्पण एवं विनय के साथ इस बात के परिचायक हैं कि उनके जीवन में सर्वाधिक महत्त्व किसी बात का था तो वह है संयम। वस्तुतः संयमविहीन जीवन मृत्यु से भी बदतर है, असंयम में व्यतीत सभी रात्रियाँ सभी घडियाँ व सभी क्षण व्यर्थ हैं। श्रमण भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में अपनी देशना में फरमाया है –

अधम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ।

यहाँ से पूज्यपाद कोठारी भवन पधारे जहाँ डॉ. शिव मुनिजी (सम्प्रति श्रमण संघ के आचार्य) व पं. रत्न श्री मूलमुनिजी ने आपके पावन दर्शन किए व सेवा का लाभ लिया।

• पाँच मुमुक्षुओं की दीक्षा

३१ जनवरी १९८५ माघ शुक्ला दशमी गुरुवार का शुभ दिन, रेनबो हाउस स्थान, आचार्य श्री, सन्तमंडल तथा प्रवर्तिनी श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. एवं सतियों सहित ४३ संत-सतियों का सान्निध्य, प्रायः २५ से अधिक क्षेत्रों के श्रीसंघों की उपस्थिति, मंगलाचरण एवं दीक्षार्थी भाई-बहनों के अबाध संयमी जीवन की मंगल-कामना करती सभा, श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना का संचालन, सब कुछ दिव्य और अद्‌भुत लग रहा था, और ऐसे में हुई इन पाँच मुमुक्षुओं की भागवती दीक्षा-१. श्री दुलेहराज जी सिंघवी, पाली २. सुश्री विमला कांकरिया, मद्रास ३. सुश्री इन्दिरा जैन भनोखर, अलवर ४. सुश्री सुनीता जैन सहाड़ी, अलवर, ५. सुश्री मीना जैन, हिण्डौन। दीक्षोपरान्त नव दीक्षित साधकों के क्रमशः श्री दयामुनिजी, विनयप्रभाजी, इन्दिराप्रभाजी, शशिप्रभाजी एवं मुक्तिप्रभाजी नाम दिए गए। इस अवसर पर शिक्षा-दीक्षा समिति के संयोजक श्री चम्पालालजी धारीवाल पाली, कर्मठ समाजसेवी श्री भंवरलालजी बाघमार मद्रास, श्री सूरजमल जी मेहता अलवर, कुशल वैद्य श्री सुशील कुमारजी जैन जयपुर एवं श्री हरिप्रसादजी जैन मण्डावर को उल्लेखनीय संघ-सेवा के लिए संघ द्वारा सम्मानित किया गया।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारण से पूज्यपाद का विराजना जोधपुर में ही रहा, तथापि आप किसी एक क्षेत्र में न विराजकर सरदारपुरा, पावटा, भाण्डावत भवन आदि विभिन्न स्थानों पर धर्मोद्योत करते रहे। पूज्य गुरुदेव सदैव संघ को प्रमुख समझते हुए व्यक्ति को इसकी एक इकाई मात्र मानते थे। गुरुदेव का दृष्टिकोण था कि व्यक्ति संघ-सिन्धु का एक बिन्दु मात्र है। ९ फरवरी ८५ को पावटा प्रथम पोलो में महासती-मण्डल ने पूज्यपाद के श्री चरणों में प्रश्न किया कि भगवन्! व्यक्ति की उन्नति, प्रतिष्ठा, यशकीर्ति की अभिलाषा अच्छी है या संघ की उन्नति में उन्नति मानना अधिक उपयुक्त है। संघनिष्ठ पूज्यप्रवर ने सहज समाधान करते हुए फरमाया–"महासती जी ज्ञानकंवरजी, इन्द्रकंवरजी, धनकंवरजी, लालकंवरजी, राधाजी, केसर कंवरजी आदि अनेक महासतियां व स्वामीजी चन्दनमलजी म.सा. आदि बीसियों संत चले गये, लेकिन वे संघ की उन्नति में तत्पर रहे, अतः संघ आज भी कायम है। व्यक्ति न रहा है, न रहेगा, अतः संघ बड़ा है, इस सिद्धान्त पर चलने की जरूरत है।"

• बालोतरा होकर पाली

जोधपुर से विहार के क्रम में ११ मार्च को पूज्यपाद शास्त्रीनगर पधारे। यहाँ श्री कोमलचन्दजी मेहता ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को संयमित किया। पालगांव में श्री जतनराजजी मेहता, मेड़ता ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर श्रद्धा समर्पित की। पाल से बोरानाडा दूरी कम, लुणावास होकर धवा

पधारे। यहाँ भोपालगढ़, पीपाड़ आदि क्षेत्रों के संघ आगामी चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुए। भोपालगढ़ और पीपाड़ क्षेत्र के संघ सं. २०२० की भांति एक दूसरे के प्रतियोगी थे। चरितनायक ने दोनों क्षेत्रों को बराबर तराजू में रखते हुए इस बार भोपालगढ को चातुर्मास की वरीयता प्रदान करते हुए स्वीकृति फरमायी। यहाँ से परिहारों की ढाणी, चिंचड़ली आदि मार्गस्थ गांवों को अपनी पद रज से पावन करते हुए पूज्यपाद आगोलाई पधारे। आगोलाई गांव का जन-जन पूज्यप्रवर के प्रति श्रद्धालु है। आपकी महनीय प्रेरणा से अनेकों व्यक्तियों ने सप्त कुव्यसन व धूम्रपान का त्याग कर अपना जीवन सुरभित किया। कई युवकों ने महीने में पाँच सामायिक करने का नियम लेकर गुरु हस्ती के सामायिक सन्देश को अपनाया। श्रद्धालु भक्त श्री राणीदान जी ने सदार आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को शील सौरभ से सुरभित किया। कोरणा पधारने पर करुणाकर की पावन प्रेरणा से ठाकुर मनोहरसिंहजी ने जीवनपर्यन्त मांस, मछली, शराब एवं शिकार का त्याग कर अपने जीवन को पाप पंक से उबारा। पूज्यपाद जहां भी पधारते, जाति व सम्प्रदाय से परे सभी आपकी करुणा व प्रेरणा से प्रभावित होते, पूर्ण श्रद्धा व आस्था से आपके पावन दर्शन, वन्दन व सेवा का लाभ लेते। मण्डली, बागावास, ढाणीरा, थोब एवं पुरोहित-ढाणी में अनेक कृषक भक्तों ने धूम्रपान, अफीम सेवन व कुशील का त्याग कर अपने जीवन को पावन बनाया। ढाणीरा में षट्काय प्रतिपालक करुणाकर गुरुदेव से दया धर्म की प्रेरणा पाकर प्राणि-हिंसा व मांस-सेवन का त्याग किया। यहाँ आप एक झोंपे में विराजे। झोंपे के बाहर खुले शान्त वातावरण में छोटे वृक्ष के नीचे विराजे सन्त एवं श्रद्धालु भक्तगण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे एक कल्पवृक्ष की छांव तले बैठे हों। वस्तुतः पूज्यपाद चतुर्विध संघ एवं श्रद्धालुभक्तों के लिये एक कल्पवृक्ष के समान ही तो थे। यहाँ से पूज्यप्रवर पचपदरा फरसते हुए ६ अप्रेल को बालोतरा पधारे, जहां आपके सान्निध्य में अक्षय तृतीया का पावन पर्व सम्पन्न हुआ।

बालोतरा से विहार कर पूज्य चरितनायक जाणियाना, कनाना (वीर दुर्गादास राठौड़ की जन्म भूमि), जेठन्तरी, समदड़ी एवं करमावास में व्रत-नियम कराते हुए मजल पधारे। यहाँ पूज्य आचार्यश्री जयमल जी म.सा. की पुण्यतिथि वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन आचार्य श्री ने फरमाया कि पूज्य श्री जयमलजी म.सा. के त्याग एवं साधनामय तथा स्वाध्यायशील जीवन से शिक्षा लेते हुए हमें भी अपने जीवन को सार्थक करना चाहिए।

मजल से विहार कर आप ढींढस, लाम्बड़ा, मांडावास, जैतपुर, गडवाला, चारेलाव, केरला एवं जवेड़िया में धर्म-प्रभावना करते हुए १२ मई को पाली पधारे। यहाँ आचार्य श्री रघुनाथ जी म.सा. की परम्परा की श्री तेजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा ६, पूज्य हुकमचन्द जी म.सा की परम्परा की महासती श्री सूरजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा ५, पं. रत्न श्री समर्थमल जी म.सा.की परम्परा की श्री सुमति कंवर जी म.सा. ठाणा ४, महासती कमलेशजी आदि ठाणा ४ एवं अमरसिंह जी म. सा. की परंपरा की महासती शीलकंवर जी, उमराव जी, चंदनबालाजी, चंद्रप्रभाजी ठाणा १४ ने आपके पावन दर्शन व प्रवचन का लाभ लिया। पं. रत्न श्री समर्थमल जी म.सा. की परम्परा के श्री पूसाराम जी म.सा. के स्वर्गवास के समाचार जानकर उन्हें यथाविधि श्रद्धांजलि दी गई। सुराणा मार्केट के स्थानक भवन में एक दिन समाज की दोष दर्शन की प्रवृत्ति पर आपने बहुत ही मार्मिक प्रसंग सुनाया–“ **किसी चित्रकार ने एक सुन्दर चित्र बनाकर नगर के मुख्य मार्ग के चौराहे पर लगा दिया। उसके शीर्ष स्थान पर लिखा था-'गलती बताओ।' आने वाले पथिकों में जो भी देखता, कोई न कोई गलती जरूर बताता। दूसरे दिन चित्रकार ने चित्र को अधिक सुन्दर बनाकर शीर्ष स्थान पर लिखा – 'गलती सुधारो।' किसी ने एक भी गलती नहीं सुधारी। समाज में इसी प्रकार गलती बताने वाले बहुत हैं, पर सुधारने वाला विरला ही होता है।"**

ज्येष्ठ शुक्ला चौथ को आपने भोपालगढ़ के श्रावकों के पाली आने पर उद्बोधन में फरमाया –“जेठ आषाढ

की तेज गर्मी में कष्ट की परवाह किए बिना किसान खेत की सम्भाल करते हैं। आने वाली वर्षा से पूर्व वे खेत साफ करते हैं। आपको भी चातुर्मास में धर्म की अच्छी खेती हो, इसके लिए तैयारी करनी है। कितने प्रतिक्रमण वाले, कितने स्वाध्यायी और कितने बारहव्रती तैयार करने हैं, आदि।"

दूसरे दिन २४ मई को यहाँ से विहार कर करुणानिधि धनराज बछावत की फैक्ट्री, निमली, इन्द्रों की ढाणी, झीतडा, भेटूंदा, लोलाव (वैष्णव मन्दिर में विराजे) होकर मौटुका पधारे। यहां करुणाकर से दया धर्म का महत्त्व समझ कर राजपूत युवाओं ने मांससेवन व बड़ी हिंसा का त्याग किया व सेशराम ने जीवन भर के लिए मद्यपान का त्याग कर अपने को व्यसनमुक्त बनाया।

वहाँ से गोलगाँव होकर पूज्यपाद कंकरीली सड़क पर चलते हुए १ जून ८५ को पालासनी पधारे। यहाँ बाहर से कई भक्तों का आगमन हुआ। जयपुर से श्री सुमेरसिंह जी बोथरा के साथ उनकी पुत्री अन्नू अमेरिका जाने की भावना से आराध्य गुरुदेव के दर्शनार्थ आई, उसे आपने सप्त कुव्यसन का त्याग कराया। पालासनी से बिसलपुर, दांतीवाडा, कूड, बुचकला, रीयां फरसते हुए पूज्यप्रवर पीपाड़ पधारे। यहाँ धर्म प्रभावना कर आप कोसाणा, साथिन, रतकूडिया में सामायिक-स्वाध्याय का नियम कराते हुए माली ढाणी, होकर नारसर पधारे। यहाँ श्री माणकचन्द जी लोढा ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया व रमण मुथा ने प्रतिमाह ५ सामायिक का नियम स्वीकार किया। यहाँ से भोपालगढ़ के जैनरत्न विद्यालय एवं कूडी ग्राम को पावन कर १ जुलाई ८५ को आचार्य श्री का भोपालगढ़ में नगर प्रवेश हुआ।

• भोपालगढ चातुर्मास (संवत् २०४२)

पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की क्रियोद्धार भूमि बडलू (भोपालगढ) रत्नवंश के महापुरुषों के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित अनुयायी श्रद्धालु श्रावकों का क्षेत्र है। परम पूज्य गुरुदेव की महती कृपा का आशीर्वाद इस क्षेत्र को सदैव मिला है। यहाँ के जैन जैनेतर सभी पूज्यपाद के प्रभावक व्यक्तित्व एवं पावन कृतित्व से प्रभावित एवं श्रद्धावनत हैं। २१ वर्ष बाद इस क्षेत्र को पूज्यपाद के वर्षावास का लाभ प्राप्त हुआ था। स्थानीय भक्तों के साथ ही प्रवासी भोपालगढ निवासियों के मन में आराध्य गुरुदेव के सान्निध्य में रह कर पावन दर्शन-वन्दन प्रवचन-श्रवण के साथ जीवन-निर्माण की भावनाएँ ज्वार की भांति हिलोरें ले रही थीं।

पूज्यप्रवर आचार्य हस्ती का यह वर्षावास ज्ञान-दर्शन-चारित्र साधना से सम्पन्न रहा। चातुर्मास में अखण्ड जाप एवं सामूहिक दया पौषध के आयोजन हुए। चातुर्मास में १२ मासक्षपण तप सहित अनेक तप एवं संवर-साधना के आयोजन हुए। पं. रत्न श्री हीरामुनि जी (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने अपने प्रवचनों के माध्यम से पांच करणीय कर्तव्यों का निरूपण किया - पारस्परिक प्रेम, गुणग्राहिता, परिग्रह का उचित वितरण, आत्मदोष-निरीक्षण एवं सेवा।

यहाँ २५ सितम्बर को हुई शिक्षक-संगोष्ठी के अवसर पर समुपस्थित शिक्षक जनों को आचार्य श्री का उद्बोधन, २० से २२ अक्टूबर को हुई विद्वत्गोष्ठी में 'अपरिग्रह एवं उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत' विषय पर प्रस्तुत विद्वानों के शोध-लेख तथा विद्वानों द्वारा कतिपय नियम ग्रहण, आचार्य श्री रत्नचन्द स्मृति व्याख्यान (पंचम) आदि से यह चातुर्मास भोपालगढ़ का ऐतिहासिक चातुर्मास बन गया।

शिक्षक-संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए ज्ञानसूर्य आचार्य श्री ने फरमाया—**"जीवन का निर्माण ज्ञान और क्रिया के समन्वय से होता है। जानना, समझना और विचारों में प्रबुद्ध संस्कारों को जागृत करना, यह**

शिक्षा का काम है। मुमुक्षु की आत्म-साधना हेतु भी ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता है। व्यवहार मार्ग में व्यक्ति के जीवन, समाज और राष्ट्र की समृद्धि के लिए भी ज्ञान पहला कदम है। इसीलिए शिक्षा कैसी हो, सुधार कैसे हो, आदि विचार महात्मा गांधी के युग से लेकर आज तक भी परिचर्चा के विषय हैं। विद्या या शिक्षा वरदान तब होती है जब उसकी वृद्धि के साथ नैतिक आचरण की समृद्धि बनी रहे, बुरी आदतें मिटें। गाँवों की अपेक्षा शहरों में शिक्षक अधिक हैं, किन्तु चोरी और हत्याओं का सिलसिला शहरों में अधिक क्यों है? जहाँ शिक्षक शहरों में ज्यादा हैं, वहाँ पर बुराइयाँ क्यों? शिक्षा-पद्धति से देश में शान्ति बढ़े, शिक्षकों का सम्मान बढ़े, ऐसी शिक्षा आवश्यक है।" नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध में आपने फरमाया – "आज जो लड़का सबसे ज्यादा अंक लाकर पास होता है उसका तो सम्मान होता है, पर क्या कभी उस लड़के का भी सम्मान किया जाता है जो सत्यवादी है? जो पूर्ण नैतिक जीवन जी रहा है ? उस लड़के का सम्मान क्यों नहीं हुआ जो निर्व्यसनी है? **सत्यवादी, निर्व्यसनी और अनुशासन में रहने वाले छात्रों के सम्मान से अन्य छात्रों को प्रेरणा प्राप्त होगी।"**

"यदि शिक्षक समुदाय गली-गली, घर - घर जाकर व्यसनमुक्ति के लिए प्रयास करे तो बहुत बड़ा काम हो सकता है।'.. **मैं सोचता हूँ शिक्षा पद्धति को ऐसा रूप दिया जाय जिससे बुराइयाँ घटे तथा शील, सदाचार, शान्ति, मैत्री एवं भाईचारा बढे। शिक्षा से सद्गुण बढ़ने चाहिए। अगर सद्गुण नहीं बढते तो समझना चाहिए कि शिक्षा-पद्धति में दोष है।"**

"आज शिक्षण प्राप्त लोगों में स्वावलम्बन कम होता जा रहा है। श्रीमन्त गाड़ी में बैठता है, पर गाड़ी साफ नहीं करता, **स्वावलम्बन की कमी के साथ ही हमारी सहनशक्ति भी कम हो गई है। विनम्रता भी कम हो गई है। आप शिक्षा का सुन्दर रूप देखना चाहते हैं, तो इन विकारों को निकालें।"** "साक्षर व्यक्तियों की बुद्धि उलट जाय तो वे राक्षस बनते देर नहीं करते। शिक्षा से शान्ति, मैत्री एवं सौहार्द का भाव आना चाहिए।"

विद्वत्गोष्ठी में भारत के विभिन्न प्रान्तों से आए विद्वानों ने 'अपरिग्रह एवं उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत' विषयक निबंध और विचार प्रस्तुत किए। समागत विद्वानों को प्रेरणा देते हुए आचार्य भगवन्त ने फरमाया – **"विद्वान् वह है जो ज्ञान को आचरण में उतारे। अनगिनत बालकों का जीवन-निर्माण करने वाले शिक्षक और विद्वान् का जीवन सरल, सादगीयुक्त, व्रत और मर्यादा के नियम से युक्त हो, तभी समाज उससे लाभान्वित हो सकता है, अन्यथा नहीं।" आचार्य श्री के प्रेरणास्पद आह्वान पर उपस्थित विद्वानों ने सामूहिक रूप से एक वर्ष के लिए उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत सम्बंधी नियम ग्रहण किए।**

विद्वानों द्वारा गृहीत प्रमुख नियम इस प्रकार हैं– (१) उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के अन्तर्गत २६ बोलों में से २३ बोलों के पदार्थों का प्रतिदिन ५ से अधिक का उपयोग नहीं करना। वत्थविहि में वर्ष में ५ से अधिक पहनने योग्य नई ड्रेस नहीं बनवाना। सचित्तविहि में प्रतिदिन १५ से अधिक सचित्त वस्तुओं का उपयोग नहीं करना और दव्वविहि में प्रतिदिन ३० से अधिक द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना, (२) आजीविका की दृष्टि से १५ कर्मादानों का त्याग। इसमें भाडीकम्मे के अन्तर्गत ५ मकान तक आजीविका के लिए किराये देने का आगार रखा गया, (३) सप्त कुव्यसनों का त्याग, (४) चाय-दूध को छोड़कर रात्रि-भोजन का त्याग। इस व्रत में माह में चार दिन का आगार रखा गया। (५) १०१ हरी - लीलोती की मर्यादा की गई। माह में अष्टमी, चतुर्दशी अथवा किन्हीं चार दिन हरी-लीलोती का उपयोग नहीं करना (६) हिंसक चमडे का उपयोग नहीं करना। (७) विदेश से बिना अनुमति के कोई चीज नहीं

लाना (८) टिकट के बिना यात्रा नहीं करना। (९) ब्रह्मचर्यव्रत का सप्ताह में दो दिन अवश्य पालन करना एवं अधिकाधिक निजी मर्यादा रखना।

यह थी आचार्य श्री की दृष्टि। विद्वानों को भी वे साधना में आगे बढ़ा हुआ देखना चाहते थे। स्थानीय संघ की ओर से श्री डी आर मेहता, विद्वत् परिषद के अध्यक्ष श्री भंवरलाल जी कोठारी एवं महामन्त्री डॉ. नरेन्द्र भानावत का सम्मान किया गया। इस प्रकार यह चातुर्मास शिक्षा, शिक्षक,सेवा एवं धर्माराधन की दृष्टि से मंगलकारी सिद्ध हुआ।

अन्तिम पाँच चातुर्मास

पीपाड़, अजमेर, सवाई माधोपुर, कोसाणा एवं पाली (संवत् २०४३ से २०४७)

• मेड़ता, अजमेर, ब्यावर, पाली होकर जोधपुर

भोपालगढ़ का ऐतिहासिक चातुर्मास सानंद सम्पन्न कर २८ नवम्बर को आचार्य श्री हीरादेसर पधारे। यहाँ से पुनः भोपालगढ़ होते हुए नाडसर, वारणी, हरसोलाव, गोटन, लाम्बा, कलरू आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए पूज्यपाद मेड़ता शहर पधारे। यहाँ २२ से २८ दिसम्बर ८५ तक बालकों का धर्म-शिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ। मेड़ता में आपका ७ जनवरी १९८६ तक विराजना हुआ। अनेक श्रद्धालु भक्तों ने सामायिक-स्वाध्याय का नियम स्वीकार कर पूज्यप्रवर के सामायिक-स्वाध्याय के संदेश को जीवन में अंगीकार किया। यहाँ से ८ जनवरी को विहार कर आप पांचरोलिया, झड़ा, सेसड़ा, पादू छोटी, पादू बड़ी एवं मेवड़ा में धर्मोद्योत करते हुए १९ जनवरी को थांवला पधारे। थांवला में आचार्यश्री की ७६वीं जन्मतिथि मंगल आयोजनों के साथ मनायी गई।

थांवला से पुष्कर होते हुए भगवन्त अजमेर पधारे। यहाँ न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल जी लोढा जोधपुर के साथ उनके सुपुत्र न्यायाधीश राजेन्द्र जी लोढा, न्यायाधिपति श्री मिलापचन्दजी जैन एवं न्यायाधिपति श्रीमती कान्ताजी भटनागर ने दर्शन एवं चर्चा का लाभ लिया। श्री अमरचन्दजी कांसवा, श्री मोतीलालजी कटारिया, श्री चांदमलजी गोखरू ने आचार्य श्री के ६६ वें दीक्षा दिवस पर ११ फरवरी ८६ को आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। दिवाकर परम्परा के श्री प्रेम मुनि जी एवं श्री गौतम मुनि जी ठाणा २ से दीक्षा-दिवस कार्यक्रम में पधारे। इस अवसर पर यहां धार्मिक शिक्षण-शाला का शुभारम्भ हुआ। महावीर कालोनी में श्री सूरजमलजी गांधी ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। यहाँ से १८ फरवरी को विहार कर चरितनायक तबीजी, केशरपुरा होकर फैक्ट्री में व्यसन-त्याग कराकर जेठाना, नागेलाव होते हुए ब्यावर पधारे। श्री ईश्वरमुनिजी आदि ठाणा अगवानी में विद्यालय तक पधारे। ब्यावर में कतिपय भाइयों ने एक वर्ष का शीलव्रत स्वीकार किया। बहुश्रुत पं. श्री समर्थमलजी म.सा. की परम्परा की महासती श्री भंवरकंवरजी म.सा. आदि ठाणा २१, महासतीजी ज्ञानलताजी म.सा. आदि ठाणा ५ भी आचार्य श्री की सेवा में पधारे। यहाँ श्री भंवरलालजी देवलिया ने शीलव्रत का स्कन्ध लेकर अपना जीवन सुरभित किया। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को ७०० आयंबिल हुए। होली चौमासी पर वर्षावास हेतु अनेक संघों ने पूज्यपाद के श्री चरणों में विनतियां प्रस्तुत कीं। यहाँ से ३१ मार्च को विहार कर चांग, नानणा में आचार्यप्रवर अरावली की पर्वत शृंखलाओं से घिरे गाँव 'गिरी' पधारे। नानणा में भ. ऋषभदेव के जन्म-कल्याणक पर आदिनाथ जैन धार्मिक पाठशाला का प्रारम्भ हुआ। पूज्य चरितनायक की पावन प्रभावक प्रेरणा से छोटे से ग्राम गिरी में अनेकों व्यक्तियों ने व्यसन-त्याग किया व ठाकुर गुमानसिंह जी सहित ८ व्यक्तियों ने शीलव्रत अँगीकार किया। यहाँ से विहार कर हाजीवास एवं खोखरी ग्राम में व्यसन-त्याग कराते श्री आसूलालजी एवं पाबूदान जी को सजोड़े आजीवन शीलव्रत दिला कर आप निमाज पधारे, जहाँ ८ अप्रेल को जोधपुर में साध्वीप्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री सुंदरकंवरजी म. के संथारा सीझने के समाचार के साथ कायोत्सर्ग किया गया एवं गुणानुवाद सभा में महासतीजी की विशेषताओं पर

प्रकाश डाला गया।

गंगवाल भवन में धर्मगंगा बहाकर आप जैतारण, रानीवाल, खारिया होकर बिलाड़ा पधारे। यहाँ २३ अप्रेल को महावीर जयन्ती का पर्व जोधपुर, कोसाणा, भोपालगढ, पीपाड़ सैलाना आदि स्थानों के श्रावकों की उपस्थिति में तप-त्याग पूर्वक मनाया गया। बिलाडा से वरणा, अटपडा, रुन्दिया, चौरड़ियाजी की फैक्ट्री होते हुए सोजत पधारे। यहां श्री हुकमीचन्दजी ने परिग्रह परिमाण किया।

सोजत रोड में युवाचार्य श्री मधुकरजी म.सा. की परंपरा की सती सोहनजी एवं कमलाजी प्रवर्तिनी श्री सुन्दर कँवरजी म.सा. के संस्मरण सुनाने सेवा में पधारे। यहाँ से घिनावास, धाकडी, जाडण होते नवा गांव के विद्यालय में पधारे, जहाँ काफी संख्या में भाई-बहन, सन्तों के दर्शनों के लिए आतुर थे। विद्यालय के बच्चों को प्रसाद रूप में व्यसन-त्याग आदि के तीन नियम कराये। यहाँ से ६ मई ८६ वैशाखकृष्णा १३ को आप पाली पधारे। अक्षय तृतीया पर वर्षीतप करने वाले २६ तपस्वी श्रावक-श्राविकाओं ने दर्शनलाभ लेकर एवं नवीन त्याग-प्रत्याख्यान कर अपने को धन्य समझा।

पाली में वैशाख शुक्ला षष्ठी १५ मई १९८६ को श्री जवरीलाल जी मुणोत की सुपुत्री मुमुक्षु बहिन श्रीमती मुन्नीबाई धर्मपत्नी श्री लिखमीचन्दजी लोढा घिनावास एवं सुश्री समिता सुराणा सुपुत्री श्री मांगीलालजी एवं ज्ञानबाई जी सुराणा, नागौर ने आराध्य गुरुदेव के मुखारविन्द से चतुर्विध संघ व हजारों दर्शनार्थी भाई-बहिनों की साक्षी में भागवती श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर मोक्षमार्ग में अपने कदम बढाये। दीक्षोपरान्त आपके नाम क्रमशः महासती श्री सुमनलता जी एवं महासती श्री सुमतिप्रभाजी रखे गए।

रघुनाथ स्मृति भवन में २२ मई को लगभग ५०० उपवास - आयम्बिल हुए। सुराणा मार्केट से २६ मई को विहार कर हाउसिंग बोर्ड, रोहट, नींवला, काकाणी को फरसकर कच्चे मार्ग से कूडी, झालामण्ड होकर आप जोधपुर पधारे। यहाँ आपने इण्डस्ट्रियल एरिया में श्री माणकमलजी भण्डारी को आजीवन सदार शीलव्रत एवं प्रकाश जी को उनके बंगले पर एक वर्ष का शीलव्रत कराया। घोड़ों का चौक, सरदारपुरा, पावटा, महामन्दिर आदि स्थानों में विराजते समय श्री पारसमलजी कुम्भट, श्री चन्दनराजजी अध्यापक, श्री तखतराजजी सिंघवी आदि को आजीवन शीलव्रत कराकर एवं तप-त्याग द्वारा जिन शासन की प्रभावना कर आपने २५ जून १९८६ को चातुर्मासार्थ पीपाड़ के लिए विहार किया।

• पीपाड़ चातुर्मास (संवत् २०४३)

मार्ग में बुचकला एवं कोसाणा में विशेष धर्मोद्योत करते हुए पूज्य चरितनायक ने ठाणा १० से १३ जुलाई रविवार आषाढ शुक्ला ६ संवत् २०४३ को ६६ वें चातुर्मास हेतु श्रावक-श्राविकाओं के प्रफुल्लित आस्यों से उच्चरित जयनादों के साथ पीपाड़ शहर के विकास केन्द्र कोट में मंगल पदार्पण किया।

आचार्य श्री की जन्मभूमि पीपाड़ में त्याग-तप की झडी लग गई। १५ अगस्त के व्याख्यान में अहिंसा का महत्त्व निरूपित करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया-"देशवासियों को अहिंसा से आजादी मिली, किन्तु आज हिंसा की आग फैल रही है। इसे रोकने के लिए हमें अहिंसा को ही हृदय में बिठाना होगा।" त्रिदिवसीय (१५-१७ अगस्त १९८६) स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर में देश के ३० प्रमुख स्वाध्यायियों ने भाग लिया। आचार्य श्री की धर्मसभा में स्थानीय हरिजन श्री बंसीलाल ने आचार्य श्री से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया तथा मद्यमांस का त्याग

किया। समाज द्वारा उनका सम्मान कर त्यागानुमोदन किया गया।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष सरदार काबुल सिंह तथा महासचिव ओंकार सिंह ने अहिंसा के पुजारी आचार्य भगवन्त के मंगलमय पावन दर्शन कर उनसे पंजाब समस्या के समाधान हेतु मार्गदर्शन प्राप्त किया। राजस्थान प्रदेश कांग्रेस (इ) के तत्कालीन अध्यक्ष श्री अशोकजी गहलोत एवं विदेश सचिव श्री रोमेशजी भण्डारी ने दर्शन एवं प्रवचन-लाभ लिया। ४ सितम्बर ८६ को २० वर्षीय युवक श्री कैलाश जी सिंघवी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। संघ द्वारा उनका एवं डॉ. नरेन्द्र जी भानावत का सम्मान किया गया । चातुर्मास में कुछ समय आप रींया विराजे।

यहाँ पधारने पर जोधपुर जिले के समस्त स्काउट विद्यार्थियों ने आचार्य श्री की अगवानी की। ५ से १२ अक्टूबर तक स्वाध्यायी शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें निकट एवं दूरवर्ती ११० स्वाध्यायियों ने भाग लिया। शिविरार्थियों के शैक्षणिक स्तर को देखते हुए पाठों को रटाने की अपेक्षा उनका जीवन में महत्त्व समझाने पर विशेष जोर दिया गया। सच्चे धर्म का स्वरूप, सच्चे सुख की पहचान, विषय-कषाय का स्वरूप आदि तथ्य स्पष्ट करने का प्रयास किया गया। शिविर में डा. सुषमाजी गांग एवं डॉ. चेतन प्रकाशजी पाटनी के विशेष व्याख्यान हुए।

१० अक्टूबर को स्वाध्यायी शिविर स्वाध्यायी-सम्मेलन के रूप में परिवर्तित हो गया, जिसका उद्घाटन राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति श्री जसराज जी चौपड़ा ने किया। श्री डी.आर. मेहता ने स्वाध्यायियों को अहिंसा और सेवा के क्षेत्र में व्यक्तिगत स्तर पर कार्य करने का उद्बोधन दिया। साधक श्री जौहरी मल जी पारख रावटी (जोधपुर) ने 'सुखी जीवन कैसे जीएँ?' विषय पर अपने मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किए।

स्वाध्यायी सम्मेलन का समापन १२ अक्टूबर को राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री वसन्तदादा पाटिल की गौरवपूर्ण उपस्थिति और न्यायाधिपति माननीय श्री गुमानमल जी लोढ़ा की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर अनेक स्वाध्यायी विद्वद्वृन्द का सम्मान किया गया। सभी स्वाध्यायियों ने आचार्य श्री के श्रीमुख से निम्नांकित नियम ग्रहण किए –

(१) स्वाध्यायी आपस में एक दूसरे पर कोर्ट का मुकदमा नहीं लडेंगे।

(२) प्रत्येक स्वाध्यायी सप्त कुव्यसन का त्यागी होगा।

(३) शादी-विवाह के अवसर पर कन्दमूल का उपयोग नहीं करेंगे।

(४) प्रत्येक स्वाध्यायी धार्मिक क्षेत्र में वर्षभर में हुई अपनी प्रगति का लेखा-जोखा रखेगा।

(५) हर स्वाध्यायी कम से कम २० मिनट प्रतिदिन स्वाध्याय करके नया ज्ञान अर्जन करेगा।

'धर्म जीवन में कैसे उतारें' विषयक विद्वत्परिषद् की संगोष्ठी १२ से १४ अक्टूबर तक आयोजित हुई, जिसमें लगभग ४० विद्वानों ने भाग लिया। संगोष्ठी में डॉ. सागरमल जैन वाराणसी, श्री रणजीत सिंह जी कुम्भट जयपुर, डॉ. महेन्द्र भानावत उदयपुर, श्री भंवरलाल जी कोठारी बीकानेर के भी व्याख्यान हुए। डॉ. इन्दरराज बैद की अध्यक्षता में एक कवि-गोष्ठी का आयोजन भी किया गया।

१२ से १५ अक्टूबर ८६ तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल के अन्तर्गत संचालित साधना-विभाग की ओर से 'समभाव साधना-शिविर' आयोजित हुआ, जिसमें राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र के प्रतिनिधि साधकों ने भाग लिया, जिनमें इन्दौर की ५ बहनें भी सम्मिलित थीं। शिविर में समभाव का अभ्यास किया गया। इस शिविर में १०

नये साधक बने। समापन समारोह की अध्यक्षता उदारमना गुरुभक्त श्री पृथ्वीराजजी कवाड़ ने की। सभी साधकों ने दहेज, सप्त कुव्यसन, मृत्युभोज, विवाह में आतिशबाजी एवं नृत्य तथा बड़े भोज में जमीकन्द के त्याग के नियम लिए। चातुर्मास की सफलता में श्री मोफतराज जी मुणोत और उनके परिवार की समर्पण युक्त सेवाएं सराहनीय रहीं। चकित कर देने वाली तपस्याओं, नियम-व्रत, अंगीकार करने आदि का ठाट रहा। ९ मासखमण एवं उससे अधिक की तपस्या के अलावा ५९ अठाई एवं १९० तेलातप हुए। श्री बंसीलाल जी, श्री मोहनलालजी चौधरी, गजराजजी मुथा आदि ८ व्यक्तियों ने सजोड़े आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। कार्तिक पूर्णिमा को श्राविका मण्डल का अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को विहार कर ओसवालों का नोहरा, कन्याशाला, चिरडानी, रुणकियावास (ठाकुर के घर विराजे) होकर पूज्यप्रवर रणसीगांव पधारे। यहाँ आपने फरमाया –"मानव सुख चाहता है, फिर भी क्यों प्राप्त नहीं कर पाता। इसका कारण है अपने ही कर्म, अपनी ही प्रवृत्तियाँ । कहा है –

करे बुराई सुख चहे, कैसे पावे कोय।
रोपे पेड़ बबूल को, आम कहा ते पाय॥

श्रावकों द्वारा प्रतिदिन १० दया करने की भावना व्यक्त करने पर आप यहाँ मार्गशीर्ष अमावस तक विराजे। यहाँ से विहार कर एक खेत में ३ घण्टे विराजित शीलसाधक चरितनायक के जीवन व प्रेरणा से प्रेरित हो लालसिंह जी ठाकुर ने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की । यहाँ से आप मादलिया पधारे। यहाँ भी भक्त श्रावकों का दर्शन-प्रवचन एवं नियमादि का लाभ लेने हेतु आगमन होता रहा। यहाँ से कोसाणा, साथिन होते हुए पुनः पौष शुक्ला ९ को पीपाड़ पधारे।

यहाँ पौष शुक्ला चतुर्दशी १३ जनवरी १९८७ को आचार्य श्री की ७७ वीं जन्म जयन्ती उपवास, पौषध, दयाव्रत आदि के साथ उत्साहपूर्वक मनायी गई। अनेक स्थानों से विशिष्ट श्रावकों ने उपस्थित होकर अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया एवं गुरुदेव से व्रत-नियम स्वीकार किए।

• जोधपुर पदार्पण

पीपाड़ में जिनवाणी की गंगा प्रवाहित कर रीयां, बुचकला आदि मार्गस्थ क्षेत्रों को फरसते हुए पूज्यपाद आचार्यप्रवर २७ जनवरी को जोधपुर पधारे। जोधपुर की जनता के अनन्य आस्था केन्द्र गुरु भगवन्त के पदार्पण का सन्देश पाकर जोधपुर के विभिन्न क्षेत्रों के लोग आपके दर्शनार्थ उमड़ पड़े। उच्च शिक्षित मुसद्दियों के दिलों पर आपका न जाने कैसा अद्भुत प्रभाव था कि जब-जब भी आप जोधपुर पधारते नर नारी, आबालवृद्ध कोई आपके सान्निध्य सेवा से वंचित नहीं रहना चाहता था। आपका शेखे काल प्रवास भी चातुर्मास जैसा दृश्य उपस्थित कर देता। भक्त मानस पर ऐसा व्यापक प्रभाव होने पर भी परमपूज्य साम्प्रदायिकता से सर्वथा परे थे। आपका चिन्तन था कि सम्प्रदाएँ परस्पर प्रेमपूर्वक एकान्त शासन हित के साथ कार्य करें तो ये धर्म प्रभावना में बाधक नहीं, साधक हो सकती हैं व मान्य समाचारी के पालन की सूत्रधार बन सकती हैं।

३१ जनवरी , माघ शुक्ला द्वितीया को अपने दीक्षा दिवस पर आचारनिष्ठ अनुशास्ता आचार्य भगवन्त ने चतुर्विध संघ को सम्बोधित करते हुए फरमाया - **"उज्ज्वल आचार, परस्पर प्रेम एवं अनुशासन हो तो सभी क्षेत्र अपने हैं।"** संयम-दिवस के इस पावन दिवस पर आपने उत्कट संयम आराधिका उपप्रवर्तिनी स्थविरा महासती श्री बदनकंवरजी म.सा. को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया। श्री सत्यप्रसन्नसिंहजी भंडारी व श्री सोहनराजजी सिंघवी ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को संयमित बनाया। बड़ी संख्या में गुरुभक्त श्रद्धालुजनों ने सामायिक

व शीलमर्यादा पालन का संकल्प कर करुणानाथ के प्रति सच्ची श्रद्धाभक्ति समर्पित की। श्री जम्बूविजय जी म.सा. से पंचसूत्रक एवं योगशास्त्र तृतीय भाग ये दो सूत्र प्राप्त हुए।

यहाँ जलगाँव निवासी श्री नथमल जी लूंकड़ से प्राप्त विचारात्मक लेख 'श्रमण संघ का भविष्य' के उत्तर में आपने लिखवाया-**"जैन श्रमण सदा से आचारप्रधान दृष्टि वाला रहा है। सम्प्रदाय के आदिकाल में श्रमण आचारभेद से अलग रहकर भी निन्दा विकथा से बचे रहते थे, सम्प्रदाय के पीछे वाद नहीं था। पूज्य श्री जीवराज जी म., पूज्य लवजी ऋषि जी म., पूज्य धर्मदासजी म. आदि क्रियोद्धारक महापुरुष अलग रहकर भी परस्पर प्रेमपूर्वक धर्मप्रचार करते रहे। कुछ मान्यताओं के भेद हुए तो उन्होंने उनका समाधान कर प्रेम सम्बन्ध को दृढ़ किया।** उदाहरण के रूप में संवत् १८११ में पूज्य श्री भूधर जी म., पूज्य अमरसिंहजी म., पूज्य ताराचन्द जी म. आदि प्रमुख सम्प्रदायों का संगठन उज्ज्वल अतीत की स्मृति दिला रहा है। श्रमणों में अपनी स्वीकृत समाचारी का स्वेच्छा से पालन करने की तत्परता होनी चाहिए। वर्तमान की सम्प्रदायों में एक-दूसरे से अपने को अच्छा बताने की प्रवृत्ति ने स्थान पा लिया, 'अपना सो सच्चा' इस वृत्ति के कारण संघ वाले सम्प्रदायों को, और सम्प्रदाय वाले संघ को दोषी कहने लगे। आवश्यकता है आत्म-निरीक्षण की। सादड़ी और भीनासर सम्मेलन में अनुभवी मुनियों ने बड़ी चर्चा और शास्त्रीय ऊहापोह के साथ प्रायः एक राय से समाचारी निर्मित की है। संघ के समस्त साधु-साध्वी वर्ग उसका निष्ठापूर्वक पालन करें।"

• दो दीक्षाएँ

यहाँ ८ फरवरी को रेनबो हाउस के प्रांगण में श्री रामजीलाल जी 'त्यागी' (खोह-अलवर) एवं श्री कैलाश जी सिंघवी सुपुत्र श्री शुभलालजी एवं श्रीमती उच्छबकँवरजी (जोधपुर) ने पूज्यप्रवर के मुखारविन्द से भागवती श्रमण दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा महोत्सव पर १७ सन्तों एवं २५ महासतियों का सान्निध्य प्राप्त था। संघ द्वारा मुमुक्षु साधकों के जीवन पर्यन्त छहकाय जीवों को अभयदान देने के इस प्रसंग पर प्रशासन ने जोधपुर में कत्लखाने बन्द करने का आदेश प्रसारित कर अभयदान व दयाधर्म का अनुमोदन किया। श्री चन्दजी सुराणा 'सरस' से स्वाध्याय शिक्षा की रूपरेखा के सम्बन्ध में चर्चा के अनन्तर सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल से 'स्वाध्याय-शिक्षा' पत्रिका का शुभारम्भ हुआ। यह पत्रिका प्राकृत, संस्कृत एवं आगम-अध्ययन को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से प्रारम्भ हुई, जो अभी डॉ. धर्मचन्द जैन के सम्पादन में प्रकाशित हो रही है। महामन्दिर में श्री सम्पतराजजी लोढा एवं श्री चैनरूपचन्दजी भण्डारी जलगांव वालों ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। यहाँ जज श्री ज्ञानचन्दजी सिंघवी एवं जिलाधीश नागौर श्री ललितजी कोठारी ने आपके दर्शन सान्निध्य का लाभ लेकर अपने जीवन को संकल्प सम्पन्न किया। सात दिनों बाद १५ फरवरी को निमाज की हवेली में बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई। बड़ी दीक्षा के अवसर पर श्री मोहनजी मेहता एवं श्री माणकजी संचेती ने एक वर्ष तक कुशील सेवन का त्याग कर अपने जीवन को मर्यादा में आबद्ध किया।

१७ फरवरी १९८७ को प्रातः ७६ वर्ष की आयु में जयमल संघ के आचार्य श्री जीतमल जी म.सा. का जोधपुर में ही समाधिपूर्वक स्वर्गवास होने के समाचार मिले। व्याख्यान स्थगित रखकर दिवंगत आत्मा को चार लोगस्स से श्रद्धांजलि दी गई।

पूज्यपाद गुरुदेव के जोधपुर प्रवास में अपराह्न शास्त्रवाचन चर्चा व ज्ञानाराधन का क्रम बराबर चलता रहा। यहां आप द्वारा पच्चीस बोलों का नवीन चिन्तनपूर्वक विवेचन लिखवाया गया। आपकी पातकप्रक्षालिनी वाणी-सुधा

में भक्तजन नियमित अवगाहन कर जीवन-निर्माण के सूत्र ग्रहण करते रहे। सरदारपुरा विराजते समय एक दिन पूज्यप्रवर ने अपने प्रवचनामृत में श्रावक की श्रेणियों का निरूपण करते हुए व्याख्यायित किया कि श्रावक तीन प्रकार के होते हैं - सरल, ग्राहक एवं दर्शक। दर्शक श्रावक के मन में मात्र दर्शन का भाव होता है। सरल श्रावक के मन में प्रवचन के प्रति श्रद्धा होने पर भी वह व्रताराधन नहीं कर पाता, पर ग्राहक श्रेणी के श्रावक में गुण ग्रहण करने एवं व्रत नियम अंगीकार करने का भाव होता है। यहां टांटोटी, विजयनगर आदि स्थानों के श्रावकों ने पूज्यपाद के दर्शन व प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया।

३ मार्च १९८७ को आपकी आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री इचरजकंवरजी म.सा. का ६९ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। महासती जी ने संवत् २०१८ पौष शुक्ला १२ को महासती श्री सुन्दरकंवरजी म.सा. की शिष्या के रूप में प्रव्रज्या पथ अंगीकार कर अपना जीवन सेवा, वैय्यावृत्य व साधना में सम्पन्न किया। महासतीजी ९ वर्षों से जोधपुर के पावटा स्थानक में स्थिरवास विराज रहे थे।

पूज्यपाद के दर्शनार्थ विभिन्न सम्प्रदायों के संत-सतियों का आगमन बना रहा। कोठारी भवन में १० मार्च १९८७ को आचार्य श्री विजयसूरीश्वरजी म.सा श्री नयरत्नजी म. के साथ पधारे। यहां श्री कान्तिसागर सूरिजी के शिष्यों ने भी पूज्यप्रवर के दर्शन किए। आचार्य श्री नानालालजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री सुलक्षणा जी म.सा. आदि ठाणा ५ पूज्य चरितनायक के दर्शनार्थ पधारीं।

फाल्गुनी चतुर्दशी दिनांक १४ मार्च को भोपालगढ संघ महावीर जयन्ती एवं अक्षयतृतीया की विनति के साथ उपस्थित हुआ। अलीगढ-रामपुरा के शिष्ट मंडल ने श्री गोपाललालजी जैन वैद्य के नेतृत्व में सन्त-सतियों के चातुर्मास की विनति भगवन्त के चरण सरोजों में प्रस्तुत की। किशनगढ, जयपुर के श्रावकों द्वारा भी अपनी विनतियां प्रस्तुत की गई। १७ मार्च को अजमेर श्री संघ ने पूज्यपाद के आगामी चातुर्मास हेतु अपनी प्रबल आग्रहभरी विनति प्रस्तुत की। पूज्यप्रवर ने सामायिक, स्वाध्याय व शासनप्रभावना को प्राथमिकता देने का चिन्तन व्यक्त किया।

कुछ दिन पावटा विराज कर पूज्य आचार्य देव रेनबो हाउस पधारे। आपके मंगल पदार्पण की खुशी में अनन्य भक्त डॉ. सम्पतसिंहजी भांडावत ने वर्ष में तीन माह का समय धर्माराधन व संघ-सेवा हेतु देने का संकल्प किया। उन्होंने सन्त-सती मंडल के विराजने हेतु रेनबो हाउस सदा खुला रखने की भी भावना व्यक्त की। सन्तों ने त्रिषष्टिश्लाका पुरुषचरित का अध्ययन-वाचन किया।

जैन स्कूल महामन्दिर में भी आपके प्रवचन-पीयूष का लाभ मिला। भोपालगढ की ओर विहार के क्रम में १ अप्रेल को आपका बनाड़ पदार्पण हुआ। बनाड़ से आप जाजीवाल फरसते हुए थबूकड़ा पधारे। यहाँ हरियाडाणा ग्राम के अध्यापक धर्म पिपासु श्री रामेश्वर जी ब्राह्मण ने करुणाकर गुरुदेव से धर्म का सही स्वरूप समझ कर सिगरेट सेवन के त्याग एवं सामायिक-साधना का संकल्प किया। कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी आपके पावन सान्निध्य का लाभ लेते हुए धूम्रपान त्याग का नियम लिया। दईकड़ा में ग्रामीणजनों को अमल, बीड़ी, आदि व्यसनों से मुक्त कराते हुए पूज्यपाद छोटी सेवकी में विश्वकर्मा मन्दिर में विराजे। यहां से आप बुचेटी, कुड़ी में धर्मोद्योत करते हुए ९ अप्रेल १९८७ को क्रियोद्धार भूमि भोपालगढ पधारे।

यहां नागौर, जयपुर, मेडता, बीकानेर, अलीगढ-रामपुरा, बजरिया, कोसाणा आदि संघ विनतियां लेकर उपस्थित हुए। अजमेर संघ के ५ अग्रगण्य श्रावकों ने पूज्यपाद का चातुर्मास होने पर ५१ स्वाध्यायी तैयार करने अथवा घृत

या मीठे का त्याग करने का संकल्प किया। धर्म प्रभावना व स्वाध्याय प्रसार के लक्ष्य से पूज्य आचार्य भगवन्त ने साधु भाषा में अगला वर्षावास अजमेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

दिल्ली के युवाबन्धु श्री सुभाषजी ओसवाल के पत्र के उत्तर में २८ अप्रेल १९८७ को आपने लिखवाया-"हमारे पूर्वाचार्यों ने स्थानकवासी जैन समाज का आधार शास्त्रानुकूल शुद्ध आचार को माना है। आडम्बर रहित निर्दोष तप-त्याग ही हमारा धर्म चिह्न है। आज युवक सुधारवाद की हवा में बह रहा है। वह समझ रहा है कि समय के अनुसार धर्म के आचार-विचार में परिवर्तन होना चाहिए। उनके अनुसार धर्म को टिकाने के लिए परिवर्तन आवश्यक है। यहाँ ध्यान रखना होगा कि समय जैसा आज बदला है, वह आगे भी बदलता रहेगा, किन्तु ऐसा परिवर्तन मूल आचार में नहीं होता। यदि मूल नियम भी परिवर्तनीय हों तो जैन संघ आज कहाँ का कहाँ चला जाता। अभी तो ध्वनि-यन्त्र, पैर में चप्पल, चलने को यान-वाहन, शौच के लिए फ्लश शौचालय जैसी कुछ ही समस्याएँ हैं। अगली शताब्दी में और कितने ही नवीन प्रश्नों के साथ आचार-सुधार की लाइन में बढ़ने को उत्सुक होंगे, यथा साधु के पास बिना भाई के साध्वी को पढ़ाना, साधु द्वारा साध्वी को वन्दन, एक पाट पर आसन, स्थानाभाव से एक मकान में रहना आदि प्रबल रागी गृहस्थ के लिए वर्ज्य नहीं, तब उपशान्त रागी साधु के लिए वर्ज्य क्यों? क्या वे इतने विश्वास के योग्य भी नहीं? हर युग व काल में युवकों को ऐसे प्रश्नों, प्रतिप्रश्नों का शास्त्रज्ञान और अनुभव के आधार से चिन्तन कर समाधान प्राप्त करना होगा। त्रिकालज्ञ श्रमण भगवान द्वारा श्रमण-श्रमणियों के लिए नियत की गई साधु समाचारी स्वपर कल्याणक है, साथ ही शासन प्रभावना की हेतु भी है। ज्ञानियों द्वारा सुनिश्चित यह मर्यादा जैन साधु की पहिचान है। यदि युग प्रभाव से इसी प्रकार मर्यादा में संशोधन समझौते करते रहे तो साधुता कहाँ शेष रहेगी, मात्र वेश ही रह जायेगा।

१ मई अक्षय तृतीया का पावन पर्व पूज्यपाद के सान्निध्य में आदिनाथ पारणक दिवस, आपश्री के ५७ वें आचार्य पदारोहण दिवस व आचार्यप्रवर श्री कजोड़ीमलजी म.सा. की पुण्यतिथि के रूप में त्याग-तप व संघ-सेवा के उत्साह से उल्लसित वातावरण में मनाया गया। पूज्यपाद आचार्य भगवन्त ने माधुर्य एवं कोमलता की प्रेरणा देते हुए अपने मंगलमय प्रेरक उद्बोधन में फरमाया - "जैसे इक्षु में मधुरता और कोमलता का सर्वप्रिय विशिष्टगुण है, उसीप्रकार प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को मिठास और कोमलता से ओतप्रोत करे।" वर्षीतप करने वाली २४ बहनों को स्थानीय संघ के द्वारा सम्मानित किया गया।

भोपालगढ़ से मांगलिया की ढाणी, रतकूडिया, खांगटा, चौकड़ी, खवासपुरा, पुल्लू, गगराना, इन्दावड़ आदि विभिन्न ग्राम-नगरों में विचरण कर धर्म-जागरण करते हुए आप १९ मई को मेड़ता सिटी पधारे जहाँ अनेक विशिष्टजनों के साथ राजस्थान के शिक्षा मन्त्री श्री दामोदर प्रसादजी ने दर्शनलाभ लिया। यहाँ आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की १४२ वीं पुण्यतिथि पर दया, उपवास, पौषध आदि का विशेष आयोजन हुआ।

वहाँ से १२ जून को ठाणा ६ से आपका विहार हुआ। मार्ग में लाम्पोलाई, पादू, भेरूंदा, थांवला, तिलोरा पुष्कर आदि क्षेत्रों को अपनी पद रज से पावन करते हुए पूज्यपाद ने चातुर्मासार्थ अजमेर की ओर प्रयाण किया।

• अजमेर चातुर्मास (संवत् २०४४)

अजमेरनगरवासी दीर्घकाल से पूज्यपाद चरितनायक के चातुर्मास के लिये प्रयासरत थे। ६७ वर्ष पूर्व इसी पुण्यधरा पर पूज्यप्रवर ने पूज्यपाद आचार्य श्री शोभाचंद जी म.सा. के मुखारविन्द से श्रमण दीक्षा अँगीकार कर मोक्षमार्ग में अपने कदम बढ़ाये थे। पूज्य आचार्य श्री कजोड़ीमलजी म.सा. प्रभृति महापुरुषों व महासती श्री छोगांजी

म.सा. आदि पूज्या महासतीवृन्द के पावन-सान्निध्य का लाभ समय-समय पर इस क्षेत्र को मिलता रहा है।

पूज्यपाद आचार्यप्रवर के चातुर्मासार्थ पदार्पण से ही अजमेर में धर्मोद्योत का अपूर्व ठाट लग गया। व्रत-प्रत्याख्यान व तपस्या का वातावरण निर्मित हो गया। चातुर्मास काल में लाखन कोटड़ी व महावीर कॉलोनी दोनों ही क्षेत्र आप श्री के विराजने से लाभान्वित हुए। स्थण्डिल भूमि की सुविधा एवं शान्त वातावरण की दृष्टि से पूज्यप्रवर महावीर कॉलोनी में अधिक विराजे। सेवाभावी महासती श्री संतोष कंवरजी म.सा. आदि ठाणा का भी अजमेर में चातुर्मास होने से बहिनों में भी विशेष धर्म जागृति रही। चातुर्मास में तपस्या का ठाट लगा रहा। आचार्य प्रवर के सान्निध्य में अठाई तप व सैकडों तेले हुए।

आप श्री के पावन दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण तथा सान्निध्य-लाभ लेने हेतु विभिन्न क्षेत्रों के दर्शनार्थियों का सतत आवागमन बना रहा। परम पूज्य गुरुवर का सदा यही चिन्तन रहता कि संत-समागम जीवन-निर्माणकारी हो व त्याग-प्रत्याख्यान की ओर गतिमान होने में सहायक हो, अन्यथा यह भ्रमण मात्र है, जो आगन्तुक व स्थानीय दोनों के ही समय व श्रम का अपव्यय है। चातुर्मास काल में अनेक बार ऐसे अवसर आये कि एक नहीं अनेक संघों के आतिथ्य सत्कार का अजमेर श्री संघ को लाभ मिला। ऐसे ही अवसर पर अपने सारगर्भित उद्बोधन में आपश्री ने फरमाया—"दर्शनार्थी बन्धु यहाँ आगमन को मेला नहीं समझें, अपितु सन्त-सतियों के त्यागमय जीवन एवं साधना से कुछ न कुछ प्रेरणा ग्रहण करें, जिससे आपका व आपके परिजनों का जीवन शान्त, सुखी, समृद्ध और सेवाभावी बन सके। "

करुणाकर गुरुदेव का जीवनादर्श था - सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्, माध्यस्थभावं विपरीतवृतौ ।" मैत्री, प्रमोद एवं माध्यस्थ भाव के धनी करुणाकर गुरुदेव के हृदय में प्राणि- मात्र के प्रति अनुकम्पा व असीम करुणा थी। आपके जीवन की मंगल कामना थी—"सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।" किसी दुःखी तड़फते प्राणी को देखकर आपका मन करुणार्द्र हो जाता। ७ अगस्त को स्थंडिल पधारते अतीव कृशकाय एक गाय को देखकर आपके करुणार्द्र कोमल हृदय की अनुकम्पा भावना प्रवचनामृत में प्रकट हुई। अनुकम्पा सम्यक्त्व का लक्षण है। करुणाकर के अनुकम्पाभाव सम्पूरित उद्बोधन से प्रेरणा प्राप्त कर स्थानीय संघ जीव दया की ओर प्रवृत्त हुआ।

दिनांक ३० सितम्बर से ४ अक्टूबर तक यहां विशिष्ट स्वाध्यायियों एवं साधकों का शिविर आयोजित हुआ। साधना के शिखर आचार्यदेव ने स्वाध्यायियों एवं साधकों को आत्म-चिन्तन व आत्म-निरीक्षण की सीख देकर उनका पथ प्रशस्त किया। स्वाध्यायी बन्धुओं ने अनेक संकल्प ग्रहण कर क्रिया के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाये। स्वाध्यायी वर्ग द्वारा ग्रहण किये गये संकल्प इस प्रकार हैं -

१. प्रतिवर्ष कम से कम एक नवीन धार्मिक ग्रंथ का वाचन करना।

२. प्रतिवर्ष कम से कम एक नया स्वाध्यायी बनाना।

३. कोर्ट कचहरी के मुकद्दमे बाजी से दूर रहना।

४. दहेज का ठहराव नहीं करना।

५. चमड़े से बने बेग, जूते, पर्स आदि काम में नहीं लेना।

६. मृत्यु भोज का न तो आयोजन करना, न ही उसमें भाग लेना।

साधक श्रावकों ने पूज्यपाद से कुछ अतिरिक्त नियम भी अँगीकार किये -

१. प्रतिदिन कम से कम नवकारसी अवश्य करना।

२. रात्रि भोजन नहीं करना व रात्रि में चौविहार त्याग का प्रयास करना।

३. भोजन में जूठा नहीं छोड़ना।

४. प्रतिदिन बड़ा स्नान नहीं करना।

इस अवसर पर देश के कोने-कोने से आगत कई श्रावकों ने सामायिक-स्वाध्याय के नियम ग्रहण किये। श्री प्रेमचन्द जी जैन, रशीदपुर ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपना जीवन शील सौरभ से सुरभित किया।

आश्विन शुक्ला दशमी को तपोधनी आचार्य श्री भूधर जी म. सा. का जन्म व पुण्य तिथि महोत्सव तथा आश्विन शुक्ला एकादशी को धर्मप्राण आचार्य श्री धर्मदास जी म.सा. की दीक्षा जयन्ती तपत्याग पूर्वक मनाई गई। इस अवसर पर श्री गुलाबचंदजी संचेती, अलवर ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत ग्रहण किया। जयपुर से आये गुरुभक्त संघनिष्ठ कई श्रावकों ने महीने में दो दिन दया संवर करने का संकल्प किया।

परमपूज्य गुरुदेव सदैव द्रव्य-निक्षेप की अपेक्षा भाव-निक्षेप को ही महत्त्व देते थे। स्थानकवासी परम्परा में देव के निराकार स्वरूप व गुरु के गुणों का ही महत्त्व व प्रतिष्ठा है। एकदा स्थण्डिल हेतु पधारते समय एक भाई द्वारा अनायास आपका फोटो खींचे जाने पर आपने उसे कड़े शब्दों में उपालम्भ देते हुए फरमाया – "सन्तों की फोटो खींचना श्रमणाचार के अनुकूल नहीं है। चोरी छिपे जो श्रावक फोटो खींच कर उसका प्रचार करते हैं, वे परम्परा का उल्लंघन करते हैं। ऐसा कार्य स्थानकवासी परम्परा के विरुद्ध व शास्त्र-मर्यादा के अनुसार निषिद्ध है।"

लाखन कोटड़ी स्थानक में आचार्यप्रवर का पदार्पण यदा-कदा होता। व्याख्यान आदि धर्म प्रभावना के दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वहन पं. रत्न श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. करते थे।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा ५ नवम्बर १९८७ को चातुर्मास की पूर्णाहुति व लोंकाशाह जयन्ती के अवसर पर प्रवचन में विशाल जनमेदिनी की उपस्थिति में सम्वत्सरी पर्व सा ठाट दृष्टिगत हो रहा था।

इस प्रकार सामायिक-स्वाध्याय के उद्घोष व तप-त्याग के अपूर्व ठाट के साथ यह चातुर्मास सम्पन्न करने के अनन्तर पूज्य चरितनायक ने हजारों श्रावक-श्राविकाओं के बीच विहार किया। उल्लसित भक्तों द्वारा जय-जयकार के नारों से गगन-मंडल गूंज उठा। लाखनकोटड़ी से विहार कर पूज्यप्रवर श्री मोहनलालजी लोढा के बंगले पधारे। यहाँ श्री पूनमचन्द जी चोपड़ा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपना जीवन शील-सौरभ से सुरभित किया, कई भाइयों ने एक वर्ष तक शील पालन का संकल्प किया। बैंक कालोनी में महासती श्री प्रेमकंवर जी म.सा. ठाणा ३ ने पूज्यपाद के दर्शन व सेवा का लाभ लिया।

• किशनगढ में पार्श्वनाथ जयन्ती

मार्गस्थ ग्रामों को अपनी चरणरज से पावन करते हुए करुणानाथ मदनगंज के उपनगर शिवाजी नगर में श्री बंसीलालजी कोचेटा के बंगले पर विराजे। तीन दिन तक यहां धर्मोद्योत करने के अनन्तर आपका पदार्पण मदनगंज हुआ। यहां से आप किशनगढ शहर पधारे।

यहाँ पौष कृष्णा दशमी को परम पूज्य गुरुदेव के पावन सान्निध्य में पार्श्वनाथ जयन्ती जप, तप व संवर साधना

के साथ मनाई गई। इस अवसर पर १५५ दया-संवर हुए व ७५ व्यक्तियों ने स्वाध्याय का संकल्प किया। बालक-बालिकाओं व युवाओं के धार्मिक अध्ययन हेतु यहाँ २२ से २८ दिसम्बर १९८७ तक धार्मिक स्वाध्याय-शिक्षण शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें २०० शिविरार्थियों ने ज्ञानार्जन किया।

पूज्यप्रवर आचार्य हस्ती के पावन जन्म-दिवस पौष शुक्ला चतुर्दशी दो जनवरी १९८८ से १२ दम्पतियों ने आजीवन व १० दम्पतियों ने एक वर्ष का शीलव्रत अंगीकार कर साधना-मार्ग में चरण बढ़ाते हुए अपना जीवन संयमित किया। निरतिचार संयम पालक, महाव्रत आराधक आराध्य गुरुदेव के जन्म-दिवस के इस प्रसंग पर ३१ श्रावक-श्राविकाओं ने श्रावक के बारहव्रत अंगीकार कर उनके संयममय जीवन का सच्चा अनुमोदन किया।

• जयपुर प्रवास

अशक्तता होते हुए भी दृढ मनोबली पूज्य चरितनायक किशनगढ से विहार कर डीडवाना, बांदर सींदरी, दातरी, पडासोली, दूदू आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुये जयपुर पधारे। जयपुर में आपका विभिन्न उपनगरों में विराजना हुआ। आपका जब कभी भी किसी के आवास पर विराजना होता, तो उसे कोई न कोई नियम अवश्य कराने का लक्ष्य रखते। श्रद्धाशील भक्त भी आराध्य गुरुदेव की प्रेरणा को जीवन में उतार कर व उनसे व्रत-नियम लेने में अपना अहोभाग्य व उद्धार ही समझते तथा त्याग-प्रत्याख्यान को संयम-सुमेरु गुरु भगवन्त से कृपा-प्रसाद के रूप में ही ग्रहण करते । श्री अजीतराज जी मेहता व श्री चुन्नीलाल जी ललवानी के बंगलों पर विराजने पर उन्होंने क्रमशः दो वर्ष व एक वर्ष के लिए शीलव्रत का संकल्प किया। सुबोध कालेज परिसर में विराज कर पूज्यपाद महावीर नगर पधारे। करुणहृदय श्री डी. आर. मेहता व श्री भंवरलाल जी कोठारी ने वनस्पति को कष्ट का अनुभव कैसे होता है, विषय पर ज्ञान दिवाकर गुरुदेव से चर्चा का लाभ लिया।

२८ जनवरी १९८८ को आचार्यप्रवर आदि ठाणा १८ एवं महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा. आदि सतियों के सान्निध्य में महावीर नगर, जयपुर में विरक्त बंधु श्री रामावतार जैन (मीणा) निवासी उखलाना की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. कल्याणमल जी लोढ़ा ने मुमुक्षु के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए जैन धर्म में प्रतिपादित प्रव्रज्या एवं मानवीय मूल्यों को उजागर किया। आचार्यप्रवर ने अपने उद्बोधन में कहा-"**आज विश्व को शस्त्रधारी सैनिकों की नहीं, शास्त्रधारी सैनिकों की आवश्यकता है। समाज में तप-संयम का बल जितना बढ़ेगा, उतनी ही सुख-शान्ति कायम होगी। वीतराग पद पर कोई भी व्यक्ति अग्रसर हो सकता है, चाहिए दृढ़ इच्छा-शक्ति, वैराग्य और उत्साह।**" बड़ी दीक्षा के पश्चात् नवदीक्षित मुनि का नाम 'अर्हद्दास मुनि' रखा गया। श्री इन्दरचन्दजी डागा एवं श्री गोपी जी कुम्हार ने सदार आजीवन शीलव्रत का नियम लिया।

दीक्षा के पश्चात् साधना-भवन बजाज नगर, रामबाग स्थित गुरुभक्त सुश्रावक श्री पूनमचन्दजी बडेर के बंगले, श्री एस. आर. मेहता के बंगले होकर भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति परिसर में विकलांगों को निर्व्यसनता की प्रेरणा करते हुए गुलाब निवास फरसकर पूज्यपाद ४ फरवरी ८८ को लालभवन पधारे। गुरुभक्त चिन्तक श्रावक श्री श्रीचन्दजी गोलेछा ने सन्त-सती मण्डल में ज्ञान की अभिवृद्धि विषयक विचार गुरुचरणों में प्रस्तुत किये। लाल भवन से बरडिया कॉलोनी, मोती डूँगरी फरसकर आप जवाहर नगर पधारे व श्री राजेन्द्र जी पटवा के बंगले पर विराजे। यहां से आप आदर्शनगर पधारे। मोती डूंगरी में फाल्गुनी पूर्णिमा ३ मार्च ८८ को सवाईमाधोपुर, अलीगढ, रामपुरा, चौथ का बरवाड़ा आदि स्थानों के श्रावक विनति लेकर उपस्थित हुए। एवरेस्ट कॉलोनी, न्यू लाइट

कॉलोनी होते हुए महावीर जयन्ती पर करुणानाथ महावीर नगर विराजे। श्री प्रकाशजी कोठारी ने विवाह में फूलों की सज्जा का प्रयोग नहीं करने एवं रात्रि भोजन नहीं करने का व्रत लिया। स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से आचार्य श्री का जयपुर विराजना हुआ।

अक्षयतृतीया पर १५ तपस्वी बहनों ने श्रद्धा समर्पित की एवं शीलव्रत के अनेक नियम हुए। आराध्य गुरुदेव के आचार्य पद आरोहण के इस दिवस पर श्री सुमेरसिंहजी बोथरा ने वर्ष में ६१ दिन, श्री लालचन्दजी कोठारी, श्री ज्ञानचन्दजी कोठारी एवं श्री मोतीचन्दजी कर्णावट ने ३१ दिन तथा श्री ज्ञानचन्दजी बालिया ने १५ दिन संघ-सेवा में देने का संकल्प लेकर गुरु चरणों में आस्था व्यक्त की। चरितनायक के प्रति श्रद्धालु गुरु भक्त श्रावकों की अपार आस्था ही थी कि वे संघ-सेवा के लिए अपना गृहस्थ जीवन का मूल्यवान समय देने के लिये तत्पर होते तथा गुरुदेव भी उन्हें कर्मक्षय का नितनूतन मार्ग प्रशस्त करते रहते। यहाँ पर अपराह्न की वाचना नियमित रूप से चलती रही। संयमधन गुरुदेव से बारह व्रत अंगीकार कर श्री चन्द्रराज जी सिंघवी ने अपना जीवन संयमित बनाया।

• आचार्य श्री रत्नचन्दजी म. की १४३ वीं पुण्यतिथि

आचार्यश्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की १४३वीं पुण्यतिथि पर ३० मई ८८ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को १४३ दया एवं पौषध हुए तथा चरितनायक ने उन पूज्यप्रवर महापुरुष का गुणानुवाद करते हुए फरमाया—"महावीर के प्रतिनिधि के रूप में धर्माचार्यों की महत्ता सांसारिक प्राणियों के लिए बनी हुई है। संसार में तीन बड़े उपकारी माने गये हैं—

१. माता-पिता, जो जन्म देकर बड़ा करते हैं।

२. जीवन को लौकिक व्यवहार में सक्षम बनाने वाला गुरु, कलाचार्य, शिक्षक आदि।

३. आध्यात्मिक क्षेत्र में धर्म का बोध देने वाले आध्यात्मिक गुरु।

आज हम ऐसे धर्म गुरु रूप धर्माचार्य का स्मृति-दिवस मना रहे हैं जो जैन जगत् एवं सन्त समुदाय में कोहिनूर हीरे की भांति प्रकाश फैलाने वाला था। आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की परम्परा २२५ वर्षों से जयपुर की जनता को प्रतिबोध देती आ रही है। सभी आचार्यों एवं बड़े-बड़े सन्तों ने यहाँ चातुर्मास कर समाज को धर्मदेशना से उपकृत किया है।"

• सवाईमाधोपुर की ओर

२२ जून बुधवार ज्येष्ठ शुक्ला एकम को सवाईमाधोपुर चातुर्मास के लक्ष्य से विहार कर पूज्य चरितनायक सांगानेर गोशाला में पधारे। श्रावक-श्राविकाओं ने यहाँ भी बड़ी संख्या में आकर अपने गुरुदेव से जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को उज्ज्वल बनाने हेतु मार्गदर्शन लिया। यहाँ से पूज्यपाद गुरुदेव ने वाटिका मोड के शिवमन्दिर में रात्रि विश्राम किया।

विहार में सन्तों को जो भी उपयुक्त निरवद्य स्थान मिलता है, वहाँ पर ही रात्रि-विश्राम किया जाता है। कभी तरु के तले, कभी मन्दिर में, कभी विद्यालय भवन में, कभी पंचायत भवन में तथा कभी किसी बाड़े में रहकर भी वे अपने चित्त में किसी प्रकार के भय एवं विषम भावों से आक्रान्त नहीं होते। आचार्य श्री की सहजता एवं समत्वभावों से न केवल सहवर्ती सन्त अपितु श्रावक-गण भी अभिभूत थे। औद्योगिक स्थलों में ठहरते समय श्रमिक वर्ग को निर्व्यसनता की एवं उद्योगपतियों को उदारदृष्टि की प्रेरणा करना आपश्री का स्वभाव था। आपने मार्ग में

अरिहन्त पेपर मिल्स, भण्डारी केबल्स, बडेर जी की फैक्ट्री (चाकसू) आदि के प्राङ्गणों में भी धर्म संस्कारों व उदात्त जीवन मूल्यों की प्रेरणा की।

विहार-काल में २९ जून ८८ को कौथून ग्राम में दिन व रात्रि में मेघ वर्षा होती रही। जिस तिबारे में गुरुदेव अपनी सन्तमण्डली के साथ ठहरे थे, वह भी ऊपर से चूने लगा। सन्तों ने बैठे-बैठे रात निकाली। गुन्सी, मुण्डिया, चैनपुरा होते हुए आप निवाई धर्मशाला में विराजे। यहां सवाई माधोपुर क्षेत्र के पचासों भाई दर्शनार्थ आए। यहाँ से पाद-विहार में लगभग १५ भक्त साथ हो गए। निवाई से रेल की पटरी के साथ वाली पगडंडी से विहार में कांटे एवं कंकर थे, किन्तु आत्मबली परीषह विजेता महापुरुष के लिये ये साधक जीवन में आने वाले सहज परीषह थे। दैहिक कोमलता व सुखाभिलाषा त्यागने वाले दृढ आत्मबली महापुरुष ही मोक्षमार्ग का आरोहण कर सकते हैं। नलागाँव में जाट ग्रामीणों को बीड़ी, सिगरेट आदि धूम्रपान का प्रत्याख्यान करा कर उन्हें व्यसन मुक्त करते हुए पूज्यपाद सिरस में महादेवजी के मन्दिर में विराजकर गाँव में पधारे। यहां दिगम्बर जैन भाई श्री रतनलालजी अग्रवाल की सेवा-भक्ति सराहनीय रही। शिवाड़, ईसरदा होकर आपने बनासनदी का पुल भी पटरी के रास्ते से पार किया। थोड़ी जगह होने से इस पुल को पार करना अत्यन्त कठिन है। अनेक बार यहाँ दुर्घटनाएँ भी हुई हैं। वर्षा का भी जोर था, किन्तु मार्ग की कठिनाइयों की परवाह न करते हुए पूज्य गुरुदेव सवाई माधोपुर की ओर बढ़ते रहे। कठिनाइयां व बाधाएं आत्मविजेता महापुरुषों का पथ कब अवरुद्ध कर पाई हैं। सुरेली ग्राम, चौथ का बरवाड़ा, एकड़ा चौकी, देवपुरा को फरसते हुए धमूण चौकी में रेलवे क्वार्टर में रुककर पूज्यप्रवर १५ जुलाई ८८ को बजरिया पधारे।

• सवाई माधोपुर चातुर्मास (संवत् २०४५)

विक्रम संवत् २०४५ सन् १९८८ में आपके ६८वें चातुर्मास का सौभाग्य सवाईमाधोपुर को प्राप्त हुआ। आचार्य श्री ने जयनाद करते सैंकडों श्रद्धालुओं के साथ २० जुलाई ८८ आषाढ शुक्ला ६ को महावीर भवन में मंगल प्रवेश किया। प्रवेश के समय चार सन्तों के बेले की तपस्या थी। सवाईमाधोपुर में १४ वर्षों के पश्चात् आपका यह द्वितीय चातुर्मास था, जिसमें अतीव प्रबल उत्साह देखा गया। महावीर भवन में धर्माराधन का ठाट लग गया। महासती श्री सुशीला कंवर जी म.सा. आदि ठाणा ६ के चातुर्मास का भी इस नगर को सुयोग मिला, जिससे महिलाओं के ज्ञानार्जन एवं धर्माराधन को बल मिला। ५० युवकों ने यथाशक्ति एक माह, दो माह एवं पूरे चातुर्मास काल में ब्रह्मचर्य पालन का नियम तथा दो माह एवं चार माह तक रात्रिकालीन संवर-साधना का संकल्प ग्रहण कर संयमधनी रत्नत्रयाराधक गुरु भगवंतो का सच्चा स्वागत अभिनन्दन किया। चातुर्मास में मासखमण सहित दीर्घ तपस्याएँ, प्रतिदिन लगभग एक हजार सामायिकें, अखंड नवकार मंत्र का जाप, युवकों द्वारा धार्मिक अध्ययन आदि कार्यक्रम विशेष आकर्षक रहे। स्थानक के पास रहने वाले सिक्ख सरदारजी ने मांस का त्याग किया तथा उन्होंने संत-समागम प्रवचन-श्रवण व धर्म-साधना का नियमित लाभ लिया। जैनेतर बहिन श्रीमती दुर्गा पटवा ने अठाई तप व राठौड़ समाज की एक बहिन ने तेले की तपस्या की। सजोड़े आजीवन शीलव्रत के पांच प्रत्याख्यान हुए। श्री सुकनराजजी गुगलिया, हैदराबाद ने वर्ष मे १२ पौषध का नियम लिया। श्री हंसराजजी जैन एण्डवा बजरिया ने ६१ दिवसीय मौन साधना कर जप, तप व मौन साधक गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा का क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया।

अपराह्न में आचार्य श्री प्रतिदिन साधु-साध्वियों के लिये विशेषावश्यक भाष्य की वाचना करते थे। महासती मण्डल के सान्निध्य में महिलाओं में धार्मिक शिक्षण चलता तथा सन्तों के सान्निध्य में स्वाध्यायरत अनेक युवक स्वाध्यायी बने। परम गुरुभक्त एवं प्रज्ञाशील श्री नथमलजी हीरावत जयपुर ने युवकों को स्वाध्याय हेतु विशेष प्रेरणा

दी। यहां १ से ५ अक्टूबर तक ध्यान साधना शिविर आयोजित हुआ, श्री महावीर रत्न कल्याण कोष की स्थापना हुई। १ नवम्बर ८८ को आचार्यप्रवर की वयोवृद्ध शिष्या महासती श्री सुगनकंवरजी म.सा. का ७९ वर्ष की अवस्था में मेड़तासिटी में संथारापूर्वक स्वर्गवास होने पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। चातुर्मास में बैंगलोर, मद्रास, जयपुर, जोधपुर हैदराबाद, नागौर, अजमेर, भरतपुर, मेड़ता, कोटा, दिल्ली, अहमदाबाद एवं पोरवाल पल्लीवाल क्षेत्र के अनेक स्थानों से दर्शनार्थी बन्धुओं का आवागमन विशेष रूप से बना रहा। चातुर्मास में श्री रामदयाल जी जैन सर्राफ, श्री राधेश्याम जी गोटेवाला, श्री बजरंग लाल जी सर्राफ, श्री नरेन्द्र मोहनजी आदि श्रावकों सहित समस्त श्रावक-श्राविकावृन्द ने भक्तिभाव व संघ-सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया।

वर्षावास की समाप्ति के पश्चात् आप मार्गशीर्ष कृष्णा एकम २४ नवम्बर को विहार कर आलनपुर पधारे। विहार का दृश्य अद्भुत था। लगभग पाँच हजार श्रावक-श्राविकाओं के जयनाद से गगन गूँज उठा। सभी के हृदय श्रद्धा से परिपूरित थे। आलनपुर में अनेक ग्राम-नगरों के श्रावक-मण्डलों ने क्षेत्र स्पर्शन की विनतियाँ प्रस्तुत की। श्री रामप्रसादजी बाबई, श्री जीतमलजी करेला वाले, श्री लड्डूलालजी चौधरी, श्री कल्याणजी माली ने आजीवन शीलव्रत व कतिपय युवकों ने दो वर्ष एवं एक वर्ष शीलव्रत-पालन का नियम स्वीकार कर अपना जीवन शील सौरभ से सुरभित करते हुए गुरु-चरणों में सच्ची श्रद्धा समर्पित की।

• अलीगढ-रामपुरा, देई होकर कोटा

आलनपुर से बजरिया पधारने पर पूज्य चरितनायक ने नवयुवकों एवं स्वाध्यायियों को शासन सेवा व स्वाध्याय की विशेष प्रेरणा दी। श्री सोभागमल जी, श्रीगणपतजी, श्री राजमलजी आदि ने यथाशक्ति एक - दो वर्ष के शीलव्रत का नियम लिया। ४ दिसम्बर को सामूहिक दयाव्रत का आयोजन हुआ। आदर्शनगर होते हुए आप करेला ग्राम पधारे, जहाँ ग्रामीणों ने मांस, मदिरा, बीड़ी, सिगरेट के त्याग हेतु नियम लिये।

करुणाकर गुरुदेव ने गम्भीरा ग्राम में प्राथमिक शाला के छात्र-छात्राओं को कुव्यसन-त्याग का सामूहिक नियम कराया। आपकी प्रेरणा से कुश्तला में बालकों के लिए धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ हुई। बिशनपुरा में फूलचन्दजी को शीलव्रत के प्रत्याख्यान कराकर पूज्यप्रवर पचाला पधारे, जहाँ ३२ वर्षों से चला आ रहा पारस्परिक विवाद समाप्त हुआ एवं हर्ष की लहर दौड़ गई। यहाँ श्री पूरणमलजी, श्री चिरंजीलालजी, श्री देवीशंकरजी सोनी, श्री प्रतापजी गूजर एवं श्री बसन्तलालजी प्रजापत ने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत का नियम ग्रहण कर अपना जीवन शील सौरभ से सुरभित करते हुए गुरु चरणों में अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की। चोरू ग्राम में श्री कल्याणमलजी हलवाई, श्री अनोखचन्दजी जैन, श्री नन्दलालजी अहीर, श्री बजरंगलालजी खवास, श्री देवीलालजी कलाल एवं श्री रामप्रतापजी नायक ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। जैनपुरी अलीनगर में श्री मोरपालजी मीणा ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपना जीवन संयमित बनाया। यहाँ पर मीणा समाज जैनधर्म का पालन करता है। उखलाना ग्राम में भी मीणा समाज का बाहुल्य है, जो भक्तिपूर्वक जैनधर्म का अनुयायी है। श्री किशनजी मीणा एवं श्री बिशनजी मीणा ने शीलव्रत स्वीकार कर गुरु चरणों में भेंट समर्पित की।

आप १७ दिसम्बर ८८ को अलीगढ-रामपुरा ग्राम में पधारे, जहाँ बाजार में प्रवचन हुए। उत्कृष्टशील साधक पूज्य गुरुवर्य के पावन सान्निध्य का लाभ लेकर श्री कुंजबिहारी जी शर्मा, श्री धन्नालालजी माथुर, रामदयालजी माथुर व राजमलजी जैन ने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। श्री राजमलजी जैन ने सादगी पूर्ण सात्त्विक जीवन शैली के २० नियमों से भी अपना जीवन अलंकृत किया। ३७ युवा स्वाध्यायी सदस्यों ने पर्युषण सेवा का नियम ग्रहण

कर गुरु हस्ती के स्वाध्याय संदेश को देश के कोने-कोने में प्रसारित करने का संकल्प लिया। यहाँ आयोजित धार्मिक शिक्षण शिविर में १५८ शिविरार्थियों ने ज्ञानार्जन का लाभ लिया। फिर पूज्यप्रवर ने बिलोता, गाडोली एवं खातोली में १० व्यक्तियों को शीलव्रती बनाया तथा धर्म के संस्कारों को आगे बढ़ाने हेतु प्रेरणा की। समिधि, बालापुरा एवं जरखोदा में भी जैन-अजैन भाइयों को शीलव्रती बनाने का प्रभावी क्रम चला। अग्रवाल, धाकड़, मीणा आदि भी शीलव्रती बने। क्रमशः विहार करते हुए आप २९ दिसम्बर को देई गाँव में पधारे जहाँ नवयुवकों ने विवाह में नृत्य नहीं करने, सप्त कुव्यसन को छोड़ने और दहेज की मांग नहीं करने के नियम स्वीकार किये। श्री निहालचन्दजी, श्री राजमलजी अग्रवाल एवं श्रीनाथजी पण्डित ने जीवनभर के लिए शीलव्रत-पालन का नियम अंगीकार किया। देई के अग्रवाल जैन समाज में श्रद्धा-भक्ति एवं धर्माराधन की निराली छटा है।

देई से भजनेरी, बांसी, सांवतगढ, राणीपुरा, दबलाना, अलोद, धनावा होकर बूँदी पधारे। बूँदी में मात्र दो दिन विराजकर देवपुरा, तालेड़ा, बावड़ी, बडगांव होते हुए आप सन्तमंडली सहित मकर संक्रान्ति १४ जनवरी १९८९ को औद्योगिक नगरी कोटा पधारे। आचार्यप्रवर एवं सन्तमण्डल के स्वागत में ५० युवकों ने सामायिक की वेशभूषा में नयापुरा से रामपुरा स्थानक तक साथ विहार-सेवा का लाभ लेते हुए अपने उत्साह व गुरु-भक्ति का परिचय दिया।

• कोटा में जयन्ती का अद्भुत रूप

आपके ७९ वें जन्म-दिवस के अभिनंदन के प्रतीक रूप में २० जनवरी १९८९ को कोटा में २० युवा दम्पतियों ने ७९ दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का संकल्प किया। आचार्य श्री की प्रेरणा से अनेक युगलों ने अपने जीवन में पति-पत्नी के सम्बन्ध को त्यागकर भावी जीवन को भाई-बहन के समान चलाने का चिन्तन कर ब्रह्मचर्य पालन का संकल्प किया। इन सबका अपराह्न में सम्मान किया गया। यहाँ पर ५१ स्वाध्यायी नवयुवक तैयार करने के संकल्प के साथ श्री जैन शिक्षण संघ की स्थापना हुई। आचार्यप्रवर ने फरमाया-"उपदेश देने वाले तो बहुत मिलेंगे, किन्तु उसे जीवन में उतारने से ही सच्चे अर्थों में जीवन निर्माण हो सकेगा। इसके लिए स्वाध्याय परमावश्यक है।" समारोह के अध्यक्ष श्री सुमेरसिंहजी बोथरा (जयपुर) एवं विशेष अतिथि श्री शान्तिलाल जी धारीवाल (कोटा) ने भी अपने विचार प्रकट करते हुए आचार्य श्री की दूरदृष्टि एवं वात्सल्य भाव की प्रशंसा की। आचार्य श्री की प्रेरणा से निर्व्यसनता के भी संकल्प हुए। हजारों की संख्या में सामायिक, उपवास, पौषध आदि हुए।

आचार्य श्री का सत्संस्कारों पर सदैव बल रहा है। यहाँ पर आपने उपस्थित बहिनों से प्रश्न किया – "ऐसी कितनी बहिनें हैं, जो बच्चों को अच्छे संस्कार देती हैं? माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बालकों में शुरू से ही अच्छे संस्कार भरें, जिससे आगे चलकर उनके बच्चे सदाचरण सम्पन्न बन सकें।" यहाँ श्री नेमीचन्दजी सुनारी वाले, श्री रामप्रसादजी उखलाना वाले, श्री लड्डूलालजी बिशनपुरा वाले, श्री महेन्द्रकुमारजी वेद, श्री पूरणजी धूपिया, श्री लक्ष्मीचन्दजी पोरवाल, श्री सूरजमलजी धूपिया, अमरचन्दजी कोठारी कुलिश जयपुर आदि ने सदार आजीवन शीलव्रत-पालन का नियम लिया। आचार्य श्री ने महावीर नगर, तलवण्डी आदि उपनगरों को भी पावन किया।

८ फरवरी को आचार्य श्री का दीक्षा-दिवस तप-त्याग पूर्वक मनाया गया। प्रमुख शिष्य पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा. ने आचार्यप्रवर के साधनाशील जीवन की त्याग एवं वैराग्यमय झलकियाँ प्रस्तुत करते हुए उनसे शिक्षा ग्रहण कर जीवन-निर्माण की प्रेरणा की। श्री पारसजी धारीवाल एवं श्री राजमलजी पोरवाल ने शीलव्रत स्वीकार किया।

• तीन महापुरुषों का स्मरण

१० फरवरी को ठाणा ८ से महावीर मिशन अस्पताल पधारे। यह बसन्तपंचमी का दिन था। आचार्य देव ने अपने प्रवचन में फरमाया –"आपने १०१ शीलव्रत आदि से धर्म की महती प्रभावना की। आज बसन्तपंचमी (माघ शुक्ला पंचमी) पर पुनः इस नगर के उपान्त्य भाग में एक नई लहर प्राचीन महापुरुषों के जन्म, दीक्षा एवं पुण्य स्मृति के रूप में उपस्थित है। आज भूधरवंश के आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज की २७९ वीं जन्म तिथि है, स्वामीजी श्री पन्नालालजी म.सा. की पुण्यतिथि है तथा गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. का दीक्षा-दिवस है । इस अवसर पर हमें चाहिए कि तीनों महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करें।"

"आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज भूधरवंश के मुख्य आचार्य थे। तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्री भिक्खुस्वामीजी श्री रघुनाथजी महाराज के ही शिष्य थे। आप बड़े त्यागी, वैरागी एवं प्रभावशाली आचार्य थे। मरुधरा में आचार्य श्री का बड़ा उपकार रहा है। दूसरे महापुरुष स्वामीजी श्री पन्नालालजी महाराज ने जिनशासन की स्थायी रक्षा के लिये स्वाध्याय संघ की स्थापना कर जैन समाज पर बड़ा उपकार किया है। तीसरे महनीय महापुरुष आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. हैं, जो हमारे धर्माचार्य एवं धर्मगुरु थे। आप बड़े ही शान्त, दान्त, गम्भीर एवं लोकप्रिय सन्त थे। समभाव की साक्षात् मूर्ति थे।

तीनों महापुरुषों के गुणस्मरण के प्रसंग पर आप कम से कम पाँच-पाँच सामायिक के साथ शीलव्रत की आराधना कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करें। "

• बूँदी, देवली, दूनी होकर टोंक

यहाँ से ११ फरवरी को विहार कर बडगांव, वल्लोप, तालेड़ा आदि को अपने पाद विहार से पावन करते हुए पूज्यपाद बून्दी पधारे। बैठक में घाव हो जाने से आपश्री का यहाँ कई दिन विराजना हुआ। आपके दर्शनार्थ एवं सुखसाता पृच्छा हेतु अनेक क्षेत्रों के श्रावकों का आवागमन बना रहा।

आपकी दैनन्दिनी से ज्ञात होता है कि ६ मार्च १९८९ को आपको ऐसा आभास हुआ कि अब यह जीवन सीमित है। प्रतिपल सजग, अप्रमत्त योगी पूज्य आचार्यप्रवर यद्यपि निस्पृह साधक थे, तथापि संघ व्यवस्था आपके पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा दिया गया उत्तरदायित्व था। आपका चिन्तन चला कि अब मुझे भावी संघ-व्यवस्था का चिन्तन कर शनै-शनै संघ-संचालन से विराम ले लेना है व पूर्ण समय हर क्षण आत्म-भाव में ही लीन रहना है। दैनन्दिनी से ऐसा भी ज्ञात होता है कि सन्तों में से एक को आचार्य व एक को उपाध्याय बनाने की इसी समय में आपके मन में स्फुरणा हुई। शिष्य मंडल को आपने त्याग, तप एवं ज्ञानाराधन का बन्धुभाव से लाभ लेने एवं कर्तव्य निर्वहन में संघ की शोभा बढ़े, यह प्रेरणा दी । श्रावक समाज को भी प्रेम, संगठन व अनुशासन की प्रेरणा दी। परस्पर सहयोग, एक-दूसरे को आगे बढ़ाने की भावना संघ-विकास का सूत्र है, यह चिन्तन निरन्तर चलता रहा। ७ मार्च को समागत भक्तों व कार्य कर्ताओं को मार्गदर्शन देते हुए आराध्य गुरुदेव ने हृदयस्पर्शी विचार रखते हुए फरमाया - **"जलता हुआ दीप अपने पास आने वाले दीप को आलोकित कर देता है, तो क्या मानव अपने पुरुषार्थ से अपने साथियों को प्रमुदित-विकसित नहीं कर सकता? अच्छा बीज मिट्टी में गिर कर भी नये वृक्षों को खड़ा कर देता है, फिर मानव अपने सम्पर्क में आये निर्बल को क्या ऊपर नहीं उठा सकता है।"**

९ मार्च को बून्दी से २ किलोमीटर का विहार कर आप ठंडी बावड़ी प्राकृतिक चिकित्सालय पधारे, जहाँ श्री

बच्छराजजी दुगड ने आजीवन शीलव्रत अँगीकार कर गुरुचरणों में अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति की। यहाँ से ऐतिहासिक स्थल तलाब गांव, सतूर फरस कर पूज्यप्रवर बडा नयागाँव पधारे। यहाँ बघेरवालों के १४ घर हैं। यहां पर प्रवचन दिन में गुरुद्वारा में हुआ। गांववालों की श्रद्धा-भक्ति व उत्साह सराहनीय रहा। यहाँ कोटा, बून्दी व देवली के श्रावक दर्शनार्थ उपस्थित हुए। जोधपुर एवं जयपुर के श्रावकों ने उपस्थित होकर श्री चरणों में अपनी विनति प्रस्तुत की।

बड़ा नयागांव से विहार कर पूज्यपाद चतरगंज होते हुए हिण्डोली पधारे। हिण्डोली से भीमगंज तक जैन शिक्षण संघ, जयपुर के युवा सदस्यों ने सामायिक वेश में विहार-सेवा का लाभ लिया। यहां से पूज्यपाद पेच की बावड़ी, इटून्दा होते हुए टीकड़ गांव पधारे। यहाँ जयपुर श्री संघ के शिष्ट मंडल ने उपस्थित होकर चातुर्मासार्थ भावभीनी विनति प्रस्तुत की। मार्गस्थ क्षेत्रों को अपने पाद विहार से पावन करते हुए करुणाकर गुरुदेव देवली पधारे। यहाँ जयपुर जोधपुर, अजमेर, किशनगढ, ब्यावर, केकडी, देई, सवाई माधोपुर आदि क्षेत्रों के प्रतिनिधिगण पूज्यप्रवर के चातुर्मास व क्षेत्र-स्पर्शन की विनति लेकर श्री चरणों में उपस्थित हुए।

देवली में धर्मप्रभावना कर परमपूज्य चरितनायक बिसलपुर, पनवाड़, सिरोही, बनथली फरसते हुए दूनी पधारे। यहाँ स्थानकवासी समाज के १९ घर हैं, एवं उनमें धर्म के प्रति रुचि सराहनीय है।

यहां से छानगांव, मेन्दवास, बाडा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए पूज्य चरितनायक टोंक पधारे। यहाँ जैन जैनेतर सभी ने पूज्यपाद आचार्यदेव के पावन दर्शन व सान्निध्य का लाभ लिया। अरबी भाषा शोध संस्थान के निदेशक श्री शौकत अली ने आपके दर्शन व प्रवचन-श्रवण का लाभ लेकर कर अपने आपको कृतकृत्य समझा। जलगांव से दर्शनार्थ उपस्थित अनन्य भक्त अग्रगण्य समाजसेवी एवं उदीयमान राजनेता श्री सुरेश दादा जैन को मार्गदर्शन देते हुए पूज्यप्रवर ने फरमाया - "राजस्थान की भांति महाराष्ट्र में भी अहिंसा का प्रचार-प्रसार होना चाहिये।" श्रद्धालु भक्त ने श्रद्धावनत होते हुए निवेदन किया –"भगवन् प्रयास जारी है। पूर्व में सरकार की ओर से विद्यार्थियों को मांसाहार, अण्डे आदि दिये जाते थे, आपकी कृपा से वे बन्द हो गये हैं।"

टोंक में तीन दिन तक धर्मोद्योत कर आपश्री मेवग्राम, मोटूका, पहाड़ी फरसते हुए निवाई पधारे। यहाँ भी विभिन्न क्षेत्रों के श्रद्धालुभक्तों का आराध्य गुरुदेव के पावन-दर्शन, मंगलमय-प्रेरणा व धर्माराधन हेतु आवागमन बना रहा। रामनवमी के दिन करुणाकर ने मूण्डिया ग्राम में भैंसे की बलि बन्द करने की प्रेरणा की, जिसका सकारात्मक प्रभाव हुआ। यहाँ पुजारी को देवी द्वारा प्रेरणा की जाती थी, किन्तु उस दिन देवी नहीं आई। अहिंसा, संयम व तप के धनी मोक्षमार्ग आराधक षट्काय-प्रतिपालक जन्मना अखंड ब्रह्मचर्य तेज से दीप्त महापुरुषों के पावन चरण सरोजों में देव-देवी क्या देवेन्द्र भी झुकते रहे हैं। श्रमण भगवान महावीर ने अपनी पावन देशना में फरमाया भी है–

देव दाणव गंधव्वा, जक्ख-रक्खस्स-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करेंति ते॥

करुणानाथ की पावन प्रेरणा से यहां बलिप्रथा सदा-सदा के लिये बन्द हो गई, बाद में सरकार द्वारा भी पशुबलि पर रोक लगा कर इसे वैधानिक तौर पर बन्द कर दिया गया।

कौथून, जयसिंहपुरा चाकसू , यारलीपुरा, भंडारी केबल्स, शिवदासपुरा फरसते हुए सुखपुरिया गांव पधारे। यहां जयपुर से बडी संख्या में श्रावक श्राविका आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। महावीर जयन्ती लाल भवन जयपुर में करने की पूज्यपाद की स्वीकृति मिलने पर जयपुरवासियों के उल्लास का पारावर नहीं था। महावीरनगर होते हुए १७ अप्रेल चैत्र शुक्ला १२ को शिष्य मंडली सहित पूज्य आचार्य भगवन्तका जयपुर के लाल भवन में पदार्पण हुआ।

शासनेश महावीर की जयन्ती के प्रेरक प्रसंग पर युगप्रभावक आचार्य भगवन्त ने उपस्थित श्रोता समुदाय को श्रमण भगवान महावीर के उपदेशों को जीवन मे उतारने की प्रेरणा की। श्री उमरावमल जी चोरड़िया ने ५ वर्ष का शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को संयमित करने की ओर कदम बढाये। २१ अप्रेल को आप श्री संग्रामसिंहजी कोठारी के आवास पर विराजे। श्री कोठारीजी ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर परमाराध्य गुरुदेव की महनीय कृपा पर सच्ची प्रसन्नता व क्रियात्मक उल्लास व्यक्त किया। यहाँ से आप परमभक्त एवं विश्रुत विद्वान् प्रो. कल्याणमलजी लोढा के बंगले पर विराजे, जहाँ करुणाशील भक्त श्री देवेन्द्रराजजी मेहता व श्री महावीरचन्द जी भण्डारी ने अहिंसा के क्रियात्मक स्वरूप के बारे में आपका मार्गदर्शन प्राप्त किया। श्री उमरावमलजी चोरड़िया व श्री प्रकाश जी कोठारी के फार्म हाउस होकर पूज्यप्रवर बगरू, गाड़ोता, गीदाणी, दूदू पड़ासोली, वानरसिदड़ी, फरसते हुए ३ मई को किशनगढ पधारे। मार्गस्थ जिन-जिन गांवों को भी आपश्री के विराजने का लाभ मिला, आपकी जीवन-निर्माणकारी प्रेरणा से अनेक ग्रामीणजनों ने धूम्रपान-त्याग, व्यसन-त्याग आदि विविध त्याग प्रत्याख्यान स्वीकार किये।

• मदनगंज में अक्षय तृतीया एवं भागवती दीक्षा

वैशाख शुक्ला तृतीया ८ मई १९८९ को अक्षयतृतीया एवं भगवान आदिनाथ पारणक दिवस पर मदनगंज में १५ तपस्वी भाई बहिनों के पारणक हुए। परमाराध्य कृपानिधान गुरुदेव के आचार्यपद आरोहण के इस पावन दिवस पर श्री सुमेरनाथ जी मोदी जोधपुर, श्री विमलचन्द जी जैन डेहराग्राम एवं श्री धोकलचन्दजी चोरड़िया ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया।

११ मई १९८९ को बाल ब्रह्मचारिणी बहिन विमलेश जैन (सुपुत्री श्री मदनमोहन जी जैन एवं श्रीमती शकुन्तला जैन, महुआ रोड़) ने पूज्यपाद के मुखारविन्द से स्थानीय व आगन्तुक हजारों श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में भागवती श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर संयमपथ अपनाकर मोक्षमार्ग में अपने चरण बढाये। १७ मई को बड़ी दीक्षोपरान्त नवदीक्षिता महासतीजी का नाम महासती श्री विमलेशप्रभाजी रखा गया। इस अवसर पर शाकाहार एवं सेवा-भावना हेतु संघ की ओर से डा. फैयाज अली का सम्मान किया गया।

शुद्ध संयम एवं साध्वाचार की मर्यादाओं के पालक आचार्य भगवन्त ने कभी भी आचार से अधिक प्रचार को महत्ता नहीं दी। संघशास्ता पूज्यप्रवर ने संघ में सदा श्रद्धा, समर्पण व अनुशासन को प्रधानता दी। आपश्री स्वयं को भी संघ सेवक ही समझते, साथ ही दृढता से संयम व अनुशासन का पालन करवाते थे। मर्यादाओं के पालन में कभी भी व्यक्ति, परिवार, क्षेत्र या संख्या कभी भी आपकी शासन व्यवस्था में आड़े न आई। संयम धन अमूल्य है। अनन्त-अनन्त जन्मों की पुण्यवानी से ही मोक्षमार्ग मे गतिशील होने का अवसर मिलता है। करुणार्द्र गुरुदेव ने संघविरोधी गतिविधियों के लिये श्री शीतल मुनि जी को पृथक् करने का निर्णय सुरक्षित रखते हुए भी उन्हें संघमर्यादा में स्थिर होने का अवसर प्रदान किया तथा एक वर्ष के साधना वर्ष (परीक्षा वर्ष) की व्यवस्था दी। उनके साथ श्री धन्ना मुनि जी का चातुर्मास बून्दी में होना तय हुआ।

२७ मई को मदनगंज से विहार कर पूज्य चरितनायक गगवाना, घूघरा, अजमेर, पुष्कर, मेड़ता सिटी, सातलास आदि मार्गस्थ ग्राम-नगरों में धर्म प्रभावना करते हुए इन्दावड़ पधारे। प्रभावक प्रवचन में रात्रि भोजन त्याग की महती प्रेरणा से २०-२५ व्यक्तियों ने रात्रि-भोजन त्याग का संकल्प किया।

• कोसाणा चातुर्मास (संवत् २०४६)

इन्दावड़ से गगराणा, पुरलू, खवासपुरा, चौकड़ी कलां, नारायणजी चौधरी की ढाणी आदि मार्गस्थ गांवों को अपनी पदरज से पावन करते हुए चरितनायक पूज्य आचार्य हस्ती ने उल्लसित भक्तों द्वारा 'जैन धर्म की जय', 'श्रमण भगवान महावीर स्वामी की जय' 'आचार्य हस्ती की जय,' 'निर्ग्रन्थ गुरुदेवों की जय' 'अहिंसा परमो धर्म की जय' के जयनादों के साथ १३ जुलाई १९८९ आषाढ शुक्ला १० गुरुवार को संवत् २०४६ के चातुर्मासार्थ कोसाणा के धर्मस्थानक में शिष्य समुदाय के साथ पदार्पण किया। पूज्यपाद के चातुर्मास से गांव का चप्पा-चप्पा पुलकित था व बच्चा-बच्चा हर्षित था। धर्म सभा में चौधरी , वनमाली, विश्नोई, ब्राह्मण, सुथार, सोनी, राजपूत व महाजन, हर जाति के लोग उपस्थित हो, आपके मंगलमय दर्शन व पावन प्रवचनामृत से कृतकृत्य हो रहे थे। उपस्थिति को देखकर ऐसा लग रहा था कि सारा गाँव ही पतितपावन गुरुदेव एवं सन्तों के पावन दर्शन हेतु उमड़ आया हो। हर्ष विभोर संघ-मंत्री श्री घीसूलालजी बागमार एवं श्री जवाहर लाल जी बागमार ने समग्र ग्रामवासियों की श्रद्धा व समर्पण का इजहार करते हुए स्वागत वचन व गीतिका प्रस्तुत की। मंगल-प्रवेश के इस अवसर पर कृपानाथ ने निर्माणकारी प्रेरणा देते हुये फरमाया –" कोसाणा छोटा सा गाँव है और परमप्रतापी आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. का कृपा पात्र क्षेत्र रहा है। यहाँ पर हमारा यह दूसरा चातुर्मास केवल महाजनों को देखकर नहीं वरन् सारे अहिंसक समाज को ध्यान में रखकर हुआ है। अहिंसक समाज में यहाँ वनमाली, विश्नोई और चौधरी मुख्य हैं। इनका अहिंसा के प्रति अच्छा आदर भाव है।" व्यसन मुक्ति का सन्देश देते हुए आपने फरमाया - "ग्रामवासी ऐसा वातावरण तैयार करें, जिससे यह गाँव व्यसन-मुक्त बन सके।" आपने समस्त ग्रामवासियों को मिलकर प्रेम से रहने, पीड़ित एवं असहाय भाइयों की सेवा करने, पशुओं के प्रति दया भाव रखने, पर्वतिथियों पर पशुओं से काम न लेने, कम से कम श्रावण एवं भाद्रपद माह में रात्रि भोजन का त्याग करने व सन्त-समागम का लाभ उठाने की प्रभावी प्रेरणा की।

चातुर्मास में आपके विद्वान् शिष्य पं. रत्न श्री हीरामुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने अपनी सरल सहज सुबोध शैली में व्यसन-मुक्ति की प्रभावी प्रेरणा की। जैन रामायण के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम शलाका पुरुष श्री राम के जीवनादर्शों का निरूपण करते हुए आपने ग्रामवासियों को मातृपितृ-भक्ति तथा आदर्श घर, समाज व राज्य कैसा हो, पर अपनी प्रभावी प्रेरणा की। आपके मार्मिक उद्बोधन से कई भाइयों ने अमल, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू सेवन, शराब आदि दुर्व्यसनों का त्याग किया।

कोसाणा ग्राम में आचार्य भगवन्त के मंगल-प्रवेश के साथ ही भाइयों एवं बहनों में तपस्या की होड़ सी लग गई। श्री झूमरमलजी बाघमार, श्री रेखचन्दजी बाघमार की धर्मपत्नी, श्री सम्पतमल जी बोथरा की धर्मपत्नी आदि ने तपस्या में कदम बढ़ाये। १७ जुलाई को जैनेतर भाइयों ने एकाशन व्रत की आराधना कर सम्पूर्ण दिवस धर्माराधना में बिताया। श्रावणी अमावस्या को विश्नोई, ब्राह्मण, माली, राजपूत, बढई, चौधरी एवं सोनी जाति के भाइयों ने दयाव्रत का आराधन किया। मालावास के श्री जीवनसिंह जी राजपूत एवं उनकी पत्नी ने अठाई तप किया। कोसाणा निवासी अमरारामजी विश्नोई ने १२ दिवसीय तप एवं श्री अखेराजजी बाघमार ने मासखमण तप कियां। श्री सायरचन्दजी बाघमार, श्री विमलचन्दजी डागा जयपुर आदि श्रावकों ने सदार शीलव्रत के नियम लिए। श्रद्धालुओं का विभिन्न स्थानों से आवागमन बना रहा। कई श्रावक-श्राविकाओं ने आपके सान्निध्य में श्रावक के बारह व्रतों का स्वरूप समझ कर अपने जीवन को मर्यादा में स्थिर किया।

कोसाणा चातुर्मास अवधि में १२ से १४ अगस्त तक त्रिदिवसीय साधना-शिविर का आयोजन किया गया।

शिविर में साधकों को संबोधित करते हुए चारित्रनिष्ठ पूज्य आचार्य श्री ने फरमाया –"स्वाध्यायी ज्ञान की साधना करता है, पर ज्ञान के साथ क्रिया की साधना भी जरूरी है। स्वाध्यायी अच्छे वक्ता, लेखक एवं प्रवचन व भाषणकला में निपुण हो सकते हैं , परन्तु उनमें आचरण भी उसी के अनुरूप होना आवश्यक है। साधक साधना के द्वारा आचरण की रूपरेखा तैयार करते हैं तथा कषाय, इन्द्रिय आदि को वश में कर साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं। सभी साधकों को साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ना है। ध्यान एवं मौन की साधना के साथ यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करेंगे तो आपकी आत्मा का कल्याण होगा।"

पर्युषण पर्व पर आचार्य श्री के उद्बोधन का लाभ सभी धर्मावलम्बियों ने लिया। आपने फरमाया कि "दूर-दूर से सन्त-सती-सेवा में आने वाले लोगों को अपने आगमन के उद्देश्य का विचार-चिन्तन करना चाहिए। सन्त-जीवन का नमूना अपने जीवन में उतारने से ही यहाँ आने का आपका प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।"

"पर्युषण लौकिक पर्व नहीं है, इन दिनों को मेला नहीं समझकर जप-तप के साथ मनाने में ही सार्थकता है। तपस्या के साथ त्याग भी जरूरी है। तपस्या करने वाले भाई-बहन बाहरी आडम्बरों से दूर रहें। तपस्या के प्रसंग पर मायरा आदि न लें। बहिनें स्वर्णजटित आभूषणों से सुसज्जित होकर तपस्या न करें। तपस्या को प्रदर्शन का रूप न दें। तपस्या के साथ कुछ त्याग करें। स्वधर्मी भाइयों को सहयोग दें। दिखावे के भाव से की गई तपस्या का पूरा लाभ नहीं मिलता। दिखावे में खतरा है तथा तपस्या में आत्मशान्ति है। पर्युषण के आठ दिनों में आठ मदों को छोड़ना है, आठ कर्मों की गांठ काटनी है। पाँच समिति तीन गुप्ति रूप आठ गुण प्रकट करने हैं।"

"शुभप्रवृत्ति में दान भी श्रावकोचित गुणों का विकास करता है।" "जीवन में सरलता आवश्यक है, तभी धर्म टिकेगा और जीवन सफल बनेगा। किसान भी तो जुते हुए खेत में बीज डालता है, सड़क या खण्डहर में नहीं, क्योंकि वह अंकुरित नहीं होगा और व्यर्थ चला जायेगा।"

पूज्यपाद का चिन्तन था कि अहिंसा व अपरिग्रह एक दूसरे के पूरक ही नहीं वरन् अंगभूत हैं। अपरिग्रह का साधक ही अहिंसा को जीवन में उतार सकता है। तप का यथावत् आराधन भी अहिंसा का पालक ही कर सकता है। तप का मुख्य उद्देश्य हिंसादि पापों से विरत होकर जीवन में अहिंसा को प्रतिष्ठापित करना है। परिग्रह निवृत्ति व परिग्रह बढाने की लालसा रोकने की ओर, प्रदर्शन रोकना अनिवार्य व प्रथम कदम है। जितना-जितना प्रदर्शन रुकेगा, समाज में परिग्रह का महत्व घटेगा, और अधिक कमाने की दौड़ स्वतः कम होगी, येन केन प्रकारेण धन जोड़ने की अंधी दौड़ से मुक्त हो व्यक्ति स्वयं आरम्भ-परिग्रह की प्रवृत्तियों से परे होकर धर्म-साधना व तप से जुड़कर साधना-पथ पर अग्रसर होगा। परिग्रह का ममत्व कम कर व्यक्ति स्वयं दुःखी जनों को सहयोग देने व दान देने की ओर आगे बढ़ेगा, किसी प्रेरणा की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

आचार्य श्री ने नशाबंदी कराने, हिंसा एवं व्यभिचार को रोकने, बूचड़खाने नहीं खुलने देने, श्रावकों को अपनी शक्ति तथा मंत्रिजन को अपने प्रभाव का उपयोग करने की प्रेरणा की। इस अवसर पर राजस्थान के तत्कालीन गृहमंत्री श्री अशोक जी गहलोत, देवस्थान विभाग मंत्री श्री राजेन्द्र जी चौधरी और सहकारिता मंत्री श्री रघुनाथ जी विश्नोई ने आचार्य श्री के दर्शन एवं प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया। आचार्यश्री के सान्निध्य में ११ नवम्बर को त्रिदिवसीय 'जैन सिद्धान्त प्रचार-प्रसार-संगोष्ठी' का शुभारम्भ हुआ, जिसमें ४० विद्वानों पत्रकारों आदि ने भाग लिया। विद्वत् संगोष्ठी में आए सुझावों के क्रियान्वयन पर भी बल दिया गया कि विदेशी भाषाओं में जैन आगमों

के अनुवाद हों तथा जैन ध्यान-केन्द्र व अन्तर्राष्ट्रीय जैन साहित्य अकादमी की स्थापना हो। १३ नवम्बर को सामायिक संघ के वार्षिक अधिवेशन में श्री राजेन्द्र जी पटवा ने संघ की प्रवृत्तियों का परिचय दिया। कोसाणा का यह चातुर्मास तप-त्याग व व्रताराधन के विभिन्न सोपानों से सानन्द सम्पन्न हुआ।

• पीपाड़ पदार्पण

स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से पूज्य चरितनायक चातुर्मास सम्पन्न होने के पश्चात् भी कुछ समय तक कोसाणा ही विराजे। इस अवधि में आचार्यकल्प श्री शुभचन्दजी म.सा. आदि ठाणा ५, नानकगच्छीय श्री वल्लभमुनि जी म.सा., श्री सुदर्शन मुनिजी म.सा. आदि ठाणा ३ ने पूज्यपाद के दर्शनार्थ पधार कर सुखसाता पृच्छा की। ब्यावर वर्षावास सम्पन्न कर आपके सुयोग्य शिष्य पं. रत्न श्री मानमुनि जी म.सा. (वर्तमान उपाध्याय प्रवर) आदि ठाणा गुरुचरणों में उपस्थित हुए। उनके पधारने के पश्चात् पूज्यप्रवर शिष्य मंडल के साथ विहार कर ६ दिसम्बर १९८९ को पीपाड़ पधारे।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्य भगवन्त का दीर्घावधि तक पीपाड़ विराजना हुआ। पूज्यपाद के विराजने से आचार्यदेव की जन्मभूमि पीपाड़ नगर तीर्थधाम बन गया। पूज्य संत वृन्द, पूज्या महासती मंडल व श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं का आपश्री के दर्शनार्थ पधारना होता रहा। आपश्री के सान्निध्य में पीपाड़वासियों को समवसरण का दृश्य लम्बे समय तक देखने को मिला, स्वधर्मी बन्धुओं के वात्सल्य व पूज्य संत-सतीवृन्द की सेवा का अनुपम लाभ मिला। पीपाड़ निवासी सहज ही प्राप्त देवदुर्लभ इस स्वर्णिम सुअवसर का लाभ उठाने में बढ़चढ़ कर भाग ले अपनी पुण्य वृद्धि कर रहे थे। ज्ञानगच्छीय पं. रत्न श्री घेवरचन्दजी म.सा. 'वीर पुत्र' आदि ठाणा पूज्यपाद के दर्शन व सान्निध्य लाभ हेतु पधारे। ८ दिसम्बर १९८९ को पं. रत्न वीरपुत्र जी म.सा. ने पूज्यप्रवर के सुदीर्घ संयम-जीवन, निरतिचार साध्वाचार एवं जिनशासन सेवा के अभिनन्दन स्वरूप स्वरचित अधोनिर्दिष्ट संस्कृत पद्य समर्पित किया -

> बाल्येऽपि संयमरुचिं चतुरं सुविज्ञम्,
> कान्तं च सौम्यवदनं सदनं गुणानाम्।
> मौनेन ध्यानसहितेन जपेन युक्तम्,
> पूज्यं नमामि गुणिनं गणिहस्तिमल्लम्॥

९ दिसम्बर १९८९ को पूज्यपाद आचार्यदेव ने उत्कट संयम आराधिका, सेवा, सरलता व त्याग की प्रतिमूर्ति, दीर्घ संयमी महासती श्री लाडकंवर जी म.सा. को 'उप प्रवर्तिनी' पद प्रदान किया। पूज्य प्रवर के स्वाध्याय संदेश को कर्नाटक में प्रचारित करने में महनीय योगदान देने वाले सुश्रावक श्री भंवरलालजी गोटावत ने आजीवन शीलव्रत अँगीकार कर शीलसम्पदा-सम्पन्न आचार्य हस्ती के प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की।

१ जनवरी १९९० को जिनशासन प्रभावक आचार्य भगवन्त ने अपनी विदुषी सुशिष्या बाल ब्रह्मचारिणी महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. को 'शासन प्रभाविका' के विरुद से अलंकृत किया। १० जनवरी १९९० पौष शुक्ला चतुर्दशी को पीपाड़ की पुण्यधरा के लाल साधना-सुमेरु पूज्यपाद आचार्य हस्ती का पावन जन्म-दिवस त्याग-तप, व्रताराधन व शासन-सेवा के संकल्पों के साथ मनाया गया। इस अवसर पर बालोतरा, निमाज, भोपालगढ़, पाली, जोधपुर, अजमेर प्रभृति अनेक क्षेत्रों के सघों व शिष्टमंडलों ने उपस्थित होकर पूज्यपाद के श्री चरणों में अपनी भावभीनी विनतियाँ प्रस्तुत की।

संघशास्ता आचार्य का धर्म बडा कठोर है। शासन की अग्लान भाव से सेवा करने वाले संघनायक को भी संघहित व धर्म-शासन के अनुशासन को सुनिश्चित करने हेतु कई बार अप्रिय निर्णय भी लेने होते हैं। इनमें भी उनका एक मात्र लक्ष्य जिन-शासन की सुरक्षा व आचार-प्रधान धर्म प्रभावना का ही होता है। संघहित व शासन-सुरक्षा का प्रश्न खड़ा होने पर न तो वे किसी व्यक्ति, क्षेत्र या परिवार के राग से बंधे होते हैं, न ही किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष ही उनके मन में होता है। शिष्य-परिवार की कल्याण कामना व उनके जीवन-निर्माण की भावना से आचार्य निष्पक्ष होकर सारणा-वारणा करते हुये उन्हें आवश्यक दिशा बोध, निर्देश, शिक्षा व आज्ञा भी प्रदान करते हैं। आचार्य का धर्म होता है 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' उनकी आज्ञा विनीत शिष्य के लिये औषधि के समान सदैव हितकारिणी व शिरोधार्य होती है, किन्तु हित-मित-पथ्य शिक्षा भी शिष्य द्वारा ग्राह्य न होने पर आचार्य को कठोर दृढ निर्णय लेकर उसे संघ से बहिष्कृत भी करना पड़ता है। ऐसा ही श्री शीतल मुनि जी व श्री धन्नामुनि जी के संदर्भ में हुआ। महती कृपा कर सुधार का एक और अवसर प्रदान करते हुए करुणहृदय दयानिधान गुरुदेव ने उनके लिए बूँदी चातुर्मास नियत करते समय उन्हें साधना वर्ष के रूप में समय देते हुए उनके आत्म-कल्याणार्थ, संयम-सुरक्षा व शासन हितार्थ कुछ नियमों के पालन का निर्देश दिया, पर 'गहना कर्मणो गतिः' - कर्मों का विपाक देखिये कि उन्होंने प्राणिमात्र के प्रति करुणा , वात्सल्य व स्नेह सरसाने वाले गुरु भगवंत की आज्ञा, निर्देश व उनके द्वारा नियत किये गये नियमों का पालन न कर अपनी भावी दिशा स्वयं ही नियत कर ली। उनके साथ श्री धन्ना मुनि जी ने भी गुरु आज्ञा व संघ-मर्यादा का पालन नहीं किया। षट्कायप्रतिपालक पूज्यपाद को ऐसा भी लगा कि उन दोनों को मेरी हित-मित-पथ्य आज्ञा निर्वहन में भी कष्ट होता है। इन सब परिस्थितियों को देखते हुये गुरु आज्ञा व संघ-मर्यादा-उल्लंघन के कारण पूज्यपाद संघशास्ता आचार्य भगवन्त ने उन दोनों को अपनी आज्ञा व रत्न-संत-मंडल से बहिष्कृत घोषित कर दिया।

पूज्यपाद के इस पीपाड़ प्रवास में धर्म-प्रभावना व व्रताराधन के अनेक कार्य सम्पन्न हुए। २१ जनवरी को युवारत्न बन्धुओं ने श्री जैन रत्न युवक मंडल, पीपाड़ का गठन कर पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में सप्त व्यसन त्याग, साप्ताहिक सामूहिक सामायिक व दैनिक १५ मिनट स्वाध्याय का संकल्प लेकर संगठन व धर्मनिष्ठा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत किया। २४ जनवरी से प्रबुद्ध चिन्तक एवं ध्यान साधक श्री कन्हैयालालजी लोढा के संयोजन में सप्त दिवसीय ध्यान-साधना-शिविर का आयोजन हुआ। २८ जनवरी माघ शुक्ला द्वितीया को युगमनीषी आचार्य भगवन्त का दीक्षा दिवस दया, उपवास, पौषध आदि विविध व्रतों के आराधन, तप-त्याग व प्रत्याख्यान के साथ मनाया गया।

यहाँ ९ फरवरी १९९० माघ शुक्ला षष्ठी संवत् २०४६ को विरक्ता बहिन बाल ब्रह्मचारिणी सुश्री शशिकला (सुपुत्री श्रीमती उमरावकंवरजी व श्री पुखराजजी बाफना) तथा बाल ब्रह्मचारिणी सुश्री बबीता (सुपुत्री श्रीमती पुष्पा देवी एवं श्री मनोहर लालजी जैन) पूज्यपाद आचार्य भगवन्त के मुखारविन्द से श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर प्रव्रज्या पथ पर अग्रसर हुई। बड़ी दीक्षा भी पीपाड में सम्पन्न हुई। बड़ी दीक्षा के अनन्तर नव दीक्षिता महासतीजी के नाम क्रमशः महासती श्री शशिकला जी व महासती श्री विनीत प्रभा जी रखे गये।

संघ ने भावभीनी विनति श्रीचरणों में रखी—"भगवन् ! जोधपुर रत्नवंश के श्रावकों का पट्ट नगर है, पूज्या प्रवर्तिनी महासती जी म.सा. भी लम्बे समय से आपके दर्शन की उत्कंठा में हैं। स्वास्थ्य, चिकित्सा, शासन-प्रभावना आदि सभी दृष्टियों से जोधपुर का क्षेत्र अनुकूल है। रत्नवंश के सभी आचार्य भगवंतों, प्रभावक महापुरुषों एवं आप श्री स्वयं की कृपादृष्टि सदा हम पर रही है। भगवन् ! अब तो आपके पदार्पण, क्षेत्र-स्पर्शन व स्थिरवास का लाभ हमें ही मिलना चाहिये।" पीपाड़वासी भक्त अपनी बात पर अड़े थे कि भगवन् ! स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है, इस

परिस्थिति में हम आपको विहार नहीं करने देंगे। भगवन् ! यदि स्थिरवास करने का अवसर है तो भी हमारे संघ को यह लाभ मिलना चाहिये।" वय स्थविर, दीक्षा स्थविर ज्ञान स्थविर व पद स्थविर पूज्यप्रवर का मन अभी स्थिरवास का नहीं था। उनका चिन्तन था कि जब तक जंघाबल क्षीण न हो, शारीरिक क्षमता हो व संतों के सहारे भी चलने का सामर्थ्य हो, तब तक स्थिरवास नहीं किया जाना चाहिये। इसी निश्चयानुसार आपने शारीरिक अनुकूलता न होने पर भी १७ मार्च १९९० को राता उपासरा, पीपाड़ से शिष्य मंडल के साथ जोधपुर की ओर विहार कर दिया। रीयां, बांकलिया बुचकला, बेनण, बिनावास, बनाड़ आदि मार्गस्थ क्षेत्रों को अपनी पावन चरण रज से पवित्र करते हुए पूज्यपाद का जोधपुर पदार्पण हुआ। पीपाड़वासी श्रद्धालु जनों एवं मार्गस्थ ग्रामवासी भक्तों को कहाँ पता था कि अब भगवन्त के पावन चरण पुनः इस धरा को पवित्र नहीं करेंगे, हमारे नगर में ज्ञान सूर्य आचार्य हस्ती की प्रवचन-सुधा का पान नहीं होगा ?

• जोधपुर पदार्पण

जोधपुर नगर का कोना-कोना पूज्यपाद के आगमन की प्रतीक्षा में था। हर भक्त के मन में यह अटल विश्वास था कि जिनशासन के सेनानायक अब जोधपुर पधार गये हैं, उनका सुदीर्घ अवधि तक हमें वरद हस्त प्राप्त होगा। उनकी मनमोहक छवि के दर्शन, अमिय दृष्टि, पावन मांगलिक श्रवण व सुखद स्नेहिल सान्निध्य से हम सम्पन्न बनेंगे। पूर्व में महाप्रतापी क्रियोद्धारक आचार्य भगवन्त पूज्य श्री रत्नचन्द जी म.सा., जीवन-निर्माण के कुशल शिल्पी पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द जी म.सा., बाबाजी श्री सुजानमलजी म.सा. प्रभृति तपःपूत महापुरुषों के स्थिरवास से भी यह नगर उपकृत हुआ है, अब हमें परमाराध्य गुरुदेव के श्री चरणों में अपना आग्रह, अनुनय, विनति प्रस्तुत कर उनके स्थिरवास का लाभ प्राप्त करना है। इन महापुरुष ने बाल-वय से लेकर अद्यावधि निरन्तर साधना के उच्च सोपानों पर आरोहण कर लाखों किलोमीटर पाद विहार कर भारत भूमि के कोने-कोने में श्रमण भगवान महावीर के पावन सन्देशों को जन-जन तक पहुँचा कर उन्हें धर्माभिमुख करते हुए अपूर्व धर्मोद्योत किया है। महावीर के धर्म रथ का यह अप्रमत्त सारथी अविराम गति से जिनवाणी का पावन घोष दिग्-दिगन्त में गुंजाता रहा है। भगवन् ! अब बहुत हो चुका। जरा अपने इस तपःपूत देह का भी ध्यान कीजिये, संघ पर अनुग्रह कीजिये व अब यहीं विराजकर आपकी छत्रछाया का लाभ दीजिये, यह पुरजोर विनति श्री चरणों में करनी है। सभी अपने-अपने विश्वास के अनुसार कल्पना कर रहे थे, पर यह अद्भुत योगी संभवतः अपनी दिशा मन ही मन निर्धारित कर चुका था। न जाने उनके मन में क्या था, जोधपुर के कोने-कोने में धर्म-ज्योति प्रज्वलित करने, स्वाध्याय का शंखनाद करने यह योगी विभिन्न उपनगरों को फरस रहा था। इस क्रम में महामन्दिर, पावटा, कन्या पाठशाला, घोड़ों का चौक, उपरला बास, मुथा जी का मन्दिर फरस कर पूज्य चरितनायक भांडावत हाउस पधारे। श्री चम्पक मुनि जी जिन्हें काफी लम्बे समय से संघ-मर्यादा व अनुशासन की प्रेरणा देकर स्थिर करने का प्रयास किया जा रहा था, किन्तु कर्म की गति कितनी विचित्र है, मोह का कैसा उदय है कि जिन महनीय गुरुवर्य ने असीम करुणा कर उन्हें संयम धन प्रदान किया, जिन्होंने ज्ञान-दर्शन-चारित्र के मार्ग पर चलना सिखाया, आज उन्हीं के आज्ञा पालन व रत्नवंश की मर्यादा के पालन में प्रमाद के कारण, उन्हें आज्ञा बाहर होना पड़ा।

रेनबो हाउस के प्रांगण में भगवान आदिनाथ का पारणक दिवस संवत् २०४७ वैशाख शुक्ला तृतीया दिनांक २७ अप्रेल ९० के अवसर पर २९ तपस्वी भाई-बहिनों के पारणक सम्पन्न हुए। परम पूज्य आचार्य हस्ती के आचार्य पद-आरोहण के इस दिवस पर श्रद्धालुओं ने विविध तप-त्याग और व्रत-नियम ग्रहण कर श्रद्धाभिव्यक्ति की । इस

अवसर पर संघ की ओर से श्री गुलराज जी अब्बाणी, जोधपुर श्री बाबूलालजी नाहर, बरेली एवं श्री हीरालालजी चौपड़ा, पाली आदि संघ-सेवी व साधक श्रावकों का बहुमान किया गया। साथ ही श्री जम्बूकुमारजी जैन, जयपुर, डॉ. रामगोपाल जी, सुश्री आशा बिडला, श्री अमरसिंह जी शेखावत, श्री उगमराजजी मेहता व श्री झूमरमलजी बाघमार आदि का उनकी महनीय सेवाओं के लिये सम्मान किया गया। २९ अप्रेल को बालशोभागृह के ३० छात्र, शोभागुरु के शिष्य जन-जन के नाथ आचार्य हस्ती के पावन दर्शन कर सौभाग्यशाली बने। माता-पिता के दुलार व संरक्षण से वंचित इन बालकों को आपश्री ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए हित शिक्षा दी व जीवन निर्माणकारी संकल्प कराए। 'सम्बल' संस्था की ३९ बहिनों ने पूज्यपाद के पावन दर्शन व उनकी प्रेरणा से धर्म का सम्बल स्वीकार कर कई नियम अंगीकार किये।

भगवन्त के निमाज की हवेली (महावीर भवन) पधारने पर क्रियाभवन से ८१ वर्षीय मन्दिरमार्गी संत श्री नयरत्नविजय जी म. दर्शनार्थ पधारे। तपःसंयम से दीप्त, ज्ञान ज्योति से आलोकित, स्नेह, सौहार्द व करुणा के सागर आचार्य हस्ती के दर्शन कर उन्होंने भावाभिभूत हो अपने उद्गार व्यक्त किये - "आज मेरा जन्म सफल हो गया।" आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के पाट पर विराजित आप श्री भी उन महापुरुष के समान ही पूज्य हैं। मुझे ऐसा मंगल पाठ सुनाओ कि मेरा अन्तिम समय ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निर्मल आराधना में बीते, यही प्रार्थना है । आचार्य भगवन्त से मांगलिक श्रवण कर वे परितृप्त हो, अपने स्थान को पधार गये। कितना विराट् व्यक्तित्व था चरितनायक संयम-सुमेरु आचार्य हस्ती का। इन युग प्रभावक आचार्य-प्रवर का अन्य सम्प्रदायों के सन्तों के हृदय में भी कितना उच्च आदर युक्त एवं श्रद्धास्पद स्थान था, इसका सहज अनुमान वयोवृद्ध मुनि श्री के इन उद्गारों से लगाया जा सकता है। वस्तुतः गुरुदेव ऐसे दिव्य दिवाकर थे जिसकी ज्ञान किरणों से समूचा जैन संघ प्रकाशित हुआ, वे जिनवाणी का सुधा रस बरसाने वाले ऐसे महामेघ थे जिसके प्रवचन-पीयूष की वर्षा व पावन प्रेरणा से जैन ही नहीं जैनेतर भी जीवन निर्माण की ओर अग्रसर हुए। वे संतप्त प्राणिमात्र के लिये शीतल समीर थे, जिसके सान्निध्य से हर कोई अपना दुःख भुला कर अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव करता था।

ज्येष्ठ कृष्णा ६ को परम्परा के मूलपुरुष पूज्य श्री कुशलो जी म.सा. की पुण्य तिथि पर सिंहपोल स्थानक में करुणानाथ के सान्निध्य में धर्माराधन का ठाट रहा, भक्तों ने अनेक व्रत-प्रत्याख्यान कर अपने जीवन को भावित किया। सुश्रावक श्री धींगड़मल जी गिड़िया की प्रार्थना स्वीकार कर आप सन्त-मण्डली के साथ १८ मई १९९० को रायपुर हवेली स्थानक में विराजे। इसके अनन्तर घोड़ों का चौक, सरदारपुरा कोठारी भवन, कमला नेहरू नगर, प्रतापनगर, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, देवनगर, शास्त्रीनगर आदि उपनगरों में जिनवाणी का शंखनाद करते हुए पूज्यपाद २ जून को महावीर भवन, नेहरू पार्क पधारे।

यहाँ दिनांक ७ जून ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को पूज्यपाद के सान्निध्य में जिनशासन प्रभावक क्रियोद्धारक आचार्य पूज्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. का १४५ वाँ स्मृति दिवस व्रत-प्रत्याख्यान तप-त्याग के साथ मनाया गया। जनसमुदाय की विशाल उपस्थिति, सामूहिक सामायिक-साधना व दया-संवर की आराधना से समवसरण सुशोभित था। आबाल वृद्ध श्रावक-श्राविका सभी में प्रबल उत्साह था। आस-पास के अनेक क्षेत्रों के प्रतिनिधि पूज्यपाद के सान्निध्य व दर्शनलाभ हेतु उपस्थित थे। जिनमें पाली संघ प्रमुख था।

यहाँ से ८ जून को विहार कर पूज्यप्रवर पी. डब्ल्यू . डी. कालोनी, न्यू पावर हाउस रोड़ फरसते हुए १० जून को मधुवन कॉलोनी पधारे। जोधपुर के विभिन्न छोटे बड़े उपनगरों को फरसते देख लोग आश्चर्याभिभूत थे कि

जिनशासन का नायक, जन-जन की अनन्त आस्था का स्वामी, संतों के लिये भी सेव्य, देवों द्वारा भी वंदनीय यह महापुरुष छोटे-छोटे क्षेत्रों को भी अपनी चरण रज से पावन करने में इस अवस्था में भी कितना प्रयास कर रहा है। किसी ने नहीं सोचा था कि यह महापुरुष अनागत की झांकी को दृष्टिगत रख सभी भक्तों, श्रद्धालुओं व जन-जन को, जोधपुर के चप्पे-चप्पे को, कोने-कोने को अपनी कृपा का प्रसाद लुटा रहा है।

पाली रोड़ से सन्निकट इस छोर पर बसे उपनगर में विराजने पर पाली निवासियों की आशाएँ बलवती हो रही थी कि देव, गुरु व धर्म के प्रसाद से पूज्यपाद के पदार्पण व चातुर्मास का सौभाग्य हमें अवश्य मिलेगा, पर पूज्यपाद की शारीरिक अशक्तता व उनके वचन कि "यदि मैं पैदल चलकर आ सका तो" उनके मन को आशंकित भी कर रहे थे। वे मन ही मन मंगल कामना कर रहे थे कि भगवन्त का स्वास्थ्य शीघ्र ठीक हो व उनके श्री चरण पाली की ओर आगे बढें। जोधपुर के भक्तों का प्रबल आग्रह था –"भगवन् आपका स्वास्थ्य समीचीन नहीं है, वृद्धावस्था है और यहाँ श्रमणोचित औषधोपचार की सुविधा है, यह क्षेत्र सभी दृष्टियों से अनुकूल भी है। भगवन् ! आप कृपा कर यहीं स्थिरवास विराजें व हमारे क्षेत्र व संघ को लाभान्वित करें।"

करुणासागर गुरुदेव ने जोधपुर संघ के पदाधिकारियों व श्रद्धालु भक्तों को आश्वस्त करते हुए फरमाया–"मैं पाद विहार करके ही पाली जाऊँगा, डोली आदि के उपक्रम से जाने की भावना नहीं है।" जीवन के इस पड़ाव में भी संयमधनी पूज्यप्रवर के मन में कैसा प्रबल विश्वास, अजेय आत्मबल व स्वावलम्बन का भाव था, साथ ही इससे उनका यह चिन्तन भी परिलक्षित होता है कि वे बिना कारण, मात्र विचरण विहार व क्षेत्र स्पर्शन के लिये अन्य साधनों की तो बात ही क्या, डोली का उपयोग भी परिहार्य समझते थे। (बीच में अटक जाने पर संयमानुकूल क्षेत्र तक पहुँचने के लिए ही अपवाद स्वरूप डोली का उपयोग किया जा सकता है।) पूज्य गुरुदेव का यह चिन्तन भावी पीढ़ी के साधकों के लिये दिग्दर्शन कराता रहेगा। श्रमण जीवन सदा स्वावलम्बी, स्वाश्रित ही होता है, पर का आलम्बन साधक को इष्ट ही नहीं होता है, उसे अवलम्बन होता है प्रभु महावीर की आगम-वाणी का, विश्वास होता है अपनी आत्मा के अनन्त बल का व संयम में पुरुषार्थ का।

शरीर अशक्त था, पर मनोबल दृढ था। आप थोड़ा थोड़ा घूम कर चलने का प्रयास बढ़ाते रहे। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' दृढ मनोबल के धनी महापुरुष की गति को कौन रोक पाया है। मधुवन हाउसिंग बोर्ड से आपश्री का १२ जून को विहार हुआ। जोधपुरवासी सोच रहे थे कि भगवन्त अभ्यास कर रहे हैं, पर उनका विहार संभव नहीं है। पर आत्म-सामर्थ्य के धनी पूज्य आचार्य देव थोड़ी-थोड़ी दूर पार करते हुए आगे बढ़ते रहे। प्रकृति भी नतमस्तक हो पाली के भाग्य का साथ दे रही थी। भीषण गर्मी से धरा व आकाश तप रहे थे, बादलों के आगमन का कोई चिह्न नहीं था। सहसा सब यह देखकर आश्चर्य अभिभूत थे कि घटाटोप मेघों ने आकर सूर्य को आच्छादित कर लिया है । सुर-नर, देव-देवेन्द्र द्वारा पूजित संयम धनी महापुरुष की सेवा का लाभ लेने में प्रकृति भी पीछे नहीं रही। सुखे समाधे पाद विहार कर पूज्यपाद कुड़ी पधारे व पाठशाला भवन में विराजे। प्रकृति प्रदत्त इस सहयोग से सब विस्मयमुग्ध थे व नतमस्तक थे इस महायोगी के श्री चरणों में ।

दिनांक १३ जून को ७ किलोमीटर का विहार कर आचार्य भगवन्त मोगड़ा पधारे। आषाढ मास की भीषण गर्मी में विहार के समय घटाटोप मेघमाला ने आकाश आच्छादित कर मानो काश्मीर का सा दृश्य उपस्थित कर दिया। पूरे विहार में बादलों ने छाया बनाये रखी। मोगड़ा से मोगड़ा प्याऊ, कांकाणी, निम्बला, निम्बली आदि मार्गस्थ क्षेत्रों को पद रज से पावन करते हुये पूज्य चरितनायक १८ जून को रोहिट पधारे। यहाँ आप श्री पाँच दिन

विराज कर जैन-जैनेतर भक्त समुदाय को अपनी प्रवचन सुधा का पान कराते रहे। दिनांक २३ जून को यहां से विहार कर क्रमशः ६, ६, ४, ८ व ५ किलोमीटर का पाद विहार कर पूज्य आचार्य भगवन्त अरटिया प्याऊ, चोटिला, केरला स्टेशन, घुमटी फरसते हुए दिनांक २७ जून को कमला नेहरू नगर हाउसिंग बोर्ड, पाली पधारे। विचरण-विहार में जोधपुर एवं पाली के श्रावक-श्राविकाओं का आवागमन बराबर बना रहा। मार्गस्थ क्षेत्रों के भक्तों ने अपूर्व सेवा भक्ति का लाभ लिया। जन-जन की आस्था के केन्द्र संत-शिरोमणि पूज्य हस्ती की सेवा में जैनेतर भाई भी पीछे नहीं रहे।

• अन्तिम चातुर्मास पाली में (संवत् २०४७)

दिनांक २ जुलाई को वि.सं. २०४७ के चातुर्मासार्थ शिष्यमंडल के साथ आपका सुराणा मार्केट स्थानक में भव्य प्रवेश का दृश्य अत्यन्त मनमोहक व भक्ति से आप्लावित था। हजारों की संख्या में उपस्थित भाई- बहिनों द्वारा श्रद्धाभक्ति से विभोर होकर समवेत स्वर में उच्चरित शासनेश महावीर की जय, जैन धर्म की जय, पूज्य आचार्य हस्ती की जय, निर्ग्रन्थ मुनि भगवन्तों की जय के जय-निनादों से गगन मंडल गुंजित हो रहा था। पालीवासियों के हर्ष का पारावार नहीं था। पाली का बच्चा-बच्चा पूज्यपाद के पावन पदार्पण व अपने सौभाग्य से प्रफुल्लित व उत्साहित था। सरलहृदया पूज्या महासती सायरकंवरजी म.सा. व शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. आदि ठाणा १२ के चातुर्मास से पालीवासियों का उत्साह द्विगुणित था।

पूज्य आचार्य देव के चातुर्मासार्थ मंगल-प्रवेश के साथ ही ज्ञानाराधन व तपाराधन का क्रम प्रारम्भ हो गया। प्रतिदिन प्रार्थना, प्रवचन, प्रश्नोत्तर एवं प्रतिक्रमण में आबाल वृद्ध तरुण सभी भाई-बहिनों का उत्साह सराहनीय था। प्रवचनों में विशाल उपस्थिति व उसमें भी अधिकांश भाई-बहिनों की सामायिक साधना, पालीवासियों की वीतरागवाणी के प्रति श्रद्धा व पूज्य आचार्य भगवन्त प्रभृति संत-सतियों के प्रति सहज स्वाभाविक अनुराग की परिचायक थी।

बड़े बुजुर्गों में ही नहीं तरुणों व छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं में भी तपाराधन के प्रति अपूर्व उत्साह अन्य क्षेत्रों के लिये भी अनुकरणीय था। चातुर्मास काल में ग्यारह मासक्षपण , तीन सौ अठाई तप व इससे भी अधिक अनेक तपस्याओं ने नया कीर्तिमान स्थापित किया। ५ अगस्त को बड़ी तपस्या करने वाले भाई बहिनों के अभिनन्दन के दिन पालीवासियों ने माल्यार्पण या वाचिक स्वागत कर ही संतोष नहीं किया, वरन् उस दिन एक हजार से अधिक उपवास कर तपस्वी भाई-बहिनों का सच्चा बहुमान किया। निरन्तर दया, संवर-साधना तथा पर्व-दिनों व अवकाश के दिनों में सामूहिक दयाव्रताराधन ने धर्म-साधना का अपूर्व दृश्य उपस्थित कर धर्ममय वातावरण की संरचना की। सात दम्पतियों ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार कर अपने जीवन को शील सौरभ से सुरभित किया।

प्रातःकाल श्री गौतम मुनि जी म.सा. द्वारा सुमधुर स्वर में प्रार्थना, महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्र मुनि जी म.सा. पं. रत्न श्री मानमुनि जी म.सा., पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा., व परमविदुषी महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा. प्रभृति साध्वी-मंडल द्वारा प्रवचन सरिता का प्रवाह, मध्याह्न में महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. द्वारा मदन श्रेष्ठी की चौपाई, पं. रत्न श्री हीरामुनि जी म.सा. द्वारा जीवाभिगम सूत्र व पं. रत्न श्री मानमुनि जी म. सा द्वारा दशवैकालिक सूत्र की वाचना का नियमित क्रम श्रद्धालु श्रोताओं की ज्ञान-पिपासा को परितृप्त करता रहा। सायंकाल प्रतिक्रमणोपरान्त ज्ञानवृद्धि हेतु प्रश्नोत्तर चर्चा से युवक-युवतियों , आबाल-वृद्ध सभी में धार्मिक प्रेरणा, रुचि एवं जिज्ञासा की

आशातीत वृद्धि हुई। परमाराध्य पूज्य आचार्य गुरुदेव नित्यप्रति प्रवचन में पधार कर भावुक भक्तों को मांगलिक व दर्शनलाभ से परितृप्त करते रहे।

बहिनों एवं युवा बंधुओं को संगठित व गतिशील करने हेतु 'जैन रत्न रूपा सती बालिका मंडल' व 'श्री जैन रत्न युवक परिषद्' की शाखा का गठन हुआ। षट्काय प्रतिपाल करुणाकर गुरुदेव की पावन प्रेरणा एवं स्थानीय नगर परिषद् के धर्मनिष्ठ अध्यक्ष श्री मांगीलाल जी गांधी के प्रयासों से १८ से २५ अगस्त तक पर्वाधिराज पर्युषण के मंगलमय प्रसंग पर नगर के सभी कसाईखाने व मांस-विक्रय की दुकानें बन्द रहीं।

१६ से २० सितम्बर तक आयोजित साधना शिविर में १५ साधकों ने भाग लिया। साधना के शिखर पुरुष पूज्य आचार्य हस्ती के मार्ग-दर्शन व दिशा-निर्देश से साधकों ने अपने आध्यात्मिक जीवन-विकास को नई गति प्रदान की।

बालकों में धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों के वपन हेतु जैन धार्मिक पाठशाला का संचालन हुआ, जिसका लक्ष्य था – बालकों में 'अतिजात' बनने की योग्यता का विकास। संचालकों का प्रयास रहा कि ये बालक आगे चल कर माता-पिता एवं पूज्य धर्म गुरुओं से प्राप्त नैतिक-आध्यात्मिक संस्कारों को निरन्तर वृद्धिगत कर सदाचारमय जीवन शैली अपनाकर परिवार , संघ व समाज का यश वर्द्धन करने में सक्षम बनें। महासती मंडल के सान्निध्य में ७०-८० बालिकाओं व कई बहिनों ने नियमित शिविर-व्यवस्था के रूप में नियमित समय पर ज्ञानाभ्यास का लाभ लिया।

२२ से २९ सितम्बर तक बालिकाओं व महिलाओं का धार्मिक-शिक्षण शिविर व २६ से ३० दिसम्बर तक पंचदिवसीय स्वाध्याय-शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें मारवाड़, मेवाड़, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश आदि विभिन्न प्रान्तों के स्वाध्यायी भाई-बहिनों ने भाग लिया। दिनांक १ से ३ अक्टूबर १९९० तक त्रिदिवसीय विद्वत् गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन प्रो. कल्याणमलजी लोढा, पूर्व कुलपति जोधपुर विश्वविद्यालय ने किया। 'युवा पीढी और अहिंसा' विषय पर आयोजित संगोष्ठी इस मन्थन के साथ सम्पन्न हुई कि युवक अपनी शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों में करें। परम पूज्य आचार्य भगवन्त ने विद्वानों को प्रेरणा दी कि वे अहिंसा को आचरण में लाकर जीवन में सादगी अपना कर समाज का मार्गदर्शन करें।

चातुर्मास में जोधपुर, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, पीपाड़, उदयपुर, बालोतरा, टोंक, भोपालगढ़, सवाई माधोपुर, मेड़ता सिटी, सादड़ी, किशनगढ, आसीन्द, अलीगढ-रामपुरा, मद्रास, बैंगलोर, एदलाबाद, धार, रतलाम, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, रायचूर, कोयम्बटूर , इन्दौर, जलगांव, अहमदाबाद, कानपुर प्रभृति अनेक क्षेत्रों के संघों व श्रावक-श्राविकाओं का परमपूज्य आचार्य भगवन्त व पूज्य संत-सतीवृन्द के पावन दर्शन, वन्दन, प्रवचन-श्रवण एवं सान्निध्य लाभ हेतु आवागमन बराबर बना रहा। पाली श्री संघ ने स्वधर्मी भाइयों के वात्सल्य व सेवा का सराहनीय लाभ लिया।

इस प्रकार युग मनीषी आचार्य पूज्य हस्ती का यह पाली चातुर्मास सेवा, वात्सल्य, तप-त्याग व ज्ञानाराधन के साथ सम्पन्न हुआ।

• ८१ वाँ जन्म - दिवस

चातुर्मास के अनन्तर पूज्यपाद सुराणा मार्केट से ग्रीन पार्क पधारे। स्वास्थ्य के कारण से आपका यहाँ काफी समय तक विराजना हुआ। यहां निरन्तर धर्म-गंगा के प्रवाह से पालीवासी भाई-बहिन लाभान्वित होते रहे। प्रार्थना,

प्रवचन में उपस्थिति व पालीवासियों के उत्साह से ऐसा लगता ही नहीं था कि चातुर्मास पूर्ण हो गया है। पौष शुक्ला चतुर्दशी ३० दिसम्बर १९९० को यहाँ पूज्य चरितनायक आचार्य हस्ती का ८१ वां जन्म-दिवस त्याग-तप व उमंग-उल्लास के साथ मनाया गया। जन्म-दिवस के इस आयोजन पर अखंड शान्तिजाप, सामूहिक दया-संवर, उपवास, बेले-तेले, पाँच और अठाई तप करके तथा पचरंगी की आराधना में भाग लेकर श्रद्धालु भक्तों ने अपने आराध्य गुरुवर्य के श्री चरणों में सच्ची श्रद्धाभिव्यक्ति की। जैन भाइयों ने ही नहीं जैनेतर भाइयों ने भी जन-जन की अनन्य आस्था के केन्द्र पूज्य हस्ती के प्रति अपनी श्रद्धा-निष्ठा व्यक्त करते हुए तप-त्याग का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। मालावास निवासी श्री जीवनसिंह जी राजपूत ने जब पूज्यपाद के श्रीमुख से अठाई तप का प्रत्याख्यान लिया तो समूचा पाण्डाल जैन धर्म की जय, शासनेश वीर वर्द्धमान की जय, पूज्य आचार्य श्री की जय व तपस्या करने वालों को धन्यवाद के नारों से गूंज उठा। सामायिक स्वाध्याय के पर्याय गुरु हस्ती के जन्म-दिवस के इस प्रसंग पर कई भाई बहिनों ने सामायिक स्वाध्याय के नियम लेकर गुरु हस्ती के संदेश को जीवन में अपनाया। षट्काय प्रतिपाल करुणानाथ के ८१ वें जन्म दिवस पर पाली संघ द्वारा ८१ जीवों को अभयदान देने की घोषणा की गई।

दया धर्म के पालक, अहिंसा, संयम व तप रूप धर्म के साकार स्वरूप परमाराध्य आचार्य भगवन्त ने इस अवसर पर अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करते हुए फरमाया - **"अहिंसा के आचरण से झुलसती मानवता की रक्षा की जा सकती है।"** हिंसा को त्याज्य बताते हुए आपश्री ने क्रोध को शान्ति से, मान को मृदुता व नम्रता से, माया को ऋजुता व सरलता से तथा लोभ को संतोष से जीतने की प्रेरणा की। क्षमा, सन्तोष, सरलता व नम्रता को धर्म के चार द्वार बताते हुए आपने इन पर अमल करने की प्रेरणा की। इस अवसर पर पूज्यपाद का ८१ वाँ जन्म-दिवस महोत्सव दिल्ली के प्रीतमपुरा में प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर के मुख्य आतिथ्य में मनाया गया, जिसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों से उपस्थित हजारों लोगों ने भाग लिया। समारोह में उपस्थित विभिन्न संत सतीवृन्द, प्रधानमंत्री समेत राजनेताओं व संघ प्रतिनिधियों ने अपने भावोद्गार व्यक्त करते हुए पूज्यपाद के महनीय गुणनिधान जीवन पर प्रकाश डाला।

माघ शुक्ला द्वितीया १८ जनवरी १९९१ को पूज्यपाद का ७१ वाँ दीक्षा दिवस नेहरु नगर, पाली में सामूहिक दया-संवर-साधना, तप-त्याग व श्रद्धा समर्पण के साथ मनाया गया। सामायिक के साकार स्वरूप पूज्य हस्ती ने आज ही के दिन अपने पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य शोभा के श्रीचरणों में जीवन पर्यन्त के लिये सामायिक चारित्र स्वीकार किया था। इस उपलक्ष्य में सामायिक संघ के अधिवेशन का आयोजन कर सामूहिक सामायिक की प्रेरणा की गई। पूज्यप्रवर ने इस अवसर पर अपने हृदयस्पर्शी उद्बोधन में अपने आराध्य गुरु आचार्य पूज्य शोभाचन्दजी म.सा. व संस्कार गुरु स्वामीजी हरखचन्दजी म.सा. की हित शिक्षाओं का स्मरण करते हुए फरमाया कि गुरुजनों का उपकार मैं कभी भी नहीं भूल सकता। पूज्यपाद के सुशिष्य पं. रत्न श्री मानमुनि जी म.सा. ने संक्षिप्त भावाभिव्यक्ति में पूज्य चरितनायक की ओर इशारा करते हुए फरमाया - "आपका जीवन बोलता है, आप उपदेश दें न दें तब भी आपके दर्शन मात्र से प्रवचन का काम हो जाता हैं।"

■

अध्यात्मयोगी : महाप्रयाण की ओर

पाली चातुर्मास के अनन्तर पूज्यपाद चरितनायक का स्वास्थ्य समीचीन नहीं रहा, अतः चातुर्मास के पश्चात् आपको पाली के उपनगरों में फरसते हुए लगभग तीन माह विराजना पड़ा। आचार्यप्रवर शारीरिक असमाधि को भेद-विज्ञान से निस्तेज करते हुए संयम-साधना, ध्यान-मौन एवं आत्मानुप्रेक्षा में लीन रहे और दर्शनार्थी उपासकों को सामायिक, स्वाध्याय आदि नियमित करने की प्रेरणा करते रहे। सामायिक, स्वाध्याय एवं निर्व्यसनता का प्रचार आचार्य श्री के जीवन का मिशन था।

• जोधपुर संघ की स्थिरवास हेतु विनति

आचार्यदेव की शारीरिक शिथिल स्थिति को देखकर जोधपुर का संघ कई बार गुरुचरणों में पहुँचा एवं पुरजोर विनति – "भगवन्! आप श्री की शारीरिक स्थिति अब विहार करने योग्य नहीं है। आपने ७० वर्ष पर्यन्त सतत विचरण कर जिनशासन की महती प्रभावना की है एवं प्रभु महावीर की भव भयहारिणी मंगलवाणी द्वारा डगर-डगर, गाँव गाँव एवं नगर-नगर में अध्यात्म का अलख जगाते हुए सामायिक-स्वाध्याय के अमृतोपम आघोषों से जन-जन को उपकृत किया है। कृपानाथ! शारीरिक स्थिति को देखते हुए आपसे हमारी विनति है कि आप जोधपुर में स्थिरवास हेतु विराज कर संघ को लाभान्वित करें।" जोधपुर संघ की आग्रहभरी विनतियाँ चलती रहीं। किन्तु आत्मानुप्रेक्षी अध्यात्मनीषी ने भावी को जान लिया था। उन्होंने सन्तों को अपनें मनोगत भाव प्रकट करते हुए कहा–"मैंने अब तक संयम जीवन में सुखे समाधे जो-जो भी क्षेत्र फरसने का आश्वासन (जैसी फरसना होगी) दिया था, उन सबको गुरुकृपा एवं सन्तमण्डल के सहयोग से पूरा कर सका हूँ। एक आश्वासन निमाज श्री संघ को, विशेषतः भण्डारी परिवार को दिया हुआ है, अतः मेरी भावना निमाज फरसने की है। गुरुदेव के मनोगत भाव श्रवण कर पं. रत्न श्री मानमुनिजी म.सा. एवं पं. रत्न श्री हीरामुनिजी म.सा. आदि सन्तों ने निवेदन किया–"भगवन्! आप जैसा चाहें, आज्ञा प्रदान करावें। हम सब मिलकर आपके आदेश की पालना सहर्ष करने को तत्पर हैं।"

जोधपुर संघ की आग्रहभरी विनति चलती रही, किन्तु आचार्य श्री ने अपने निश्चय से अवगत करा दिया कि वे निमाज संघ को दिए गए आश्वासन को पूर्ण करना चाहते हैं। जोधपुर संघ ने रत्नवंश के प्रमुख पदाधिकारियों एवं अग्रगण्य सुश्रावकों को भी अपने पक्ष में करते हुए विनति रखी - "दीनदयाल! आप संघ के सर्वेसर्वा एवं लाखों भक्तों के भगवान हैं। यह शरीर जिसे आपने कभी अपना नहीं समझा, भगवन्! इस पर चतुर्विध संघ का भी अधिकार है। शरीर का स्वास्थ्य पहले है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आगार से साधुभाषा में दिया गया आश्वासन बाद में। अतः आप कृपा कर स्वास्थ्य की दृष्टि से नजदीक में सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र जोधपुर में स्थिरवास हेतु पधारें।" इस पर दृढमनोबली महापुरुष ने निर्लिप्त भावों के साथ संघ के प्रमुख श्रावकों के समक्ष वही बात दोहराई - "मुझे अभी निमाज की बात पूरी करनी है।" इस बात को सुनकर भक्तगण चिन्तित एवं मौन थे।

• पाली से पदार्पण

श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि सन्तों के सिंघाड़े के सवाईमाधोपुर चातुर्मास के अनन्तर पाली पदार्पण के

पश्चात् १० फरवरी १९९१ रविवार, फाल्गुन कृष्णा ११ को आपका विहार निमाज की ओर हो गया। विहार के समय पाली निवासियों के नयन नम थे, मन भारी हो उठा था, हृदय-कमल कुम्हला रहा था। चातुर्मास काल में एवं उसके पश्चात् भी आचार्य भगवन्त के विराजने से अनूठा ठाट रहा। किसी को क्या पता था कि पाली का यह चातुर्मास चरितनायक गुरुदेव का अन्तिम चातुर्मास होगा और जिस प्रकार शासनपति श्रमण भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में हस्तीपाल राजा की रज्जुशाला में हुआ, उसी भांति उनके ८१ वें पट्टधर पूज्य हस्तीमलजी महाराज का पाली के श्रेष्ठिवर्य हस्तीमलजी सुराना की उपासनाशाला में सम्पन्न यह चातुर्मास इतिहास का अविस्मरणीय अध्याय बन जायेगा।

रुंधे कण्ठ से 'जय गुरु हस्ती' के नारों की ध्वनि गूँज रही थी। उसका अपना प्रभाव था। पूज्य गुरुदेव हस्ती को अपनी जयकार अप्रिय लग रही थी, अतः पीछे मुड़कर जनता से कहा- "मेरी नहीं, तीर्थंकर भगवान की जय बोलो।"

आचार्यप्रवर में पदयात्रा की शक्ति नहीं थी। अतः सन्तों के सहारे से कुछ दूर पैदल चले। सन्तों ने उन्हें ले चलने के लिए डोली तैयार कर रखी थी। डोली के निकट पहुँचते ही सन्तों ने निवेदन किया—"भगवन् अब डोली में विराजमान हो हमें सेवा का दुर्लभ अवसर प्रदान करें।" सरलता की प्रतिमूर्ति एवं असीम आत्मशक्ति के धारक महापुरुष ने मधुर मुस्कान के साथ कहा— "अभी और पैदल चलने दो।" चलने की शक्ति नहीं थी, किन्तु भावों में अदम्य उत्साह था। अन्ततः सन्तों की प्रबल प्रार्थना एवं सेवा की उत्कट भावना को देखकर आचार्य श्री डोली में विराजे।

सन्त उत्साह एवं उमंग के साथ गुरुदेव को डोली में लेकर चल दिए। किसी भावुक भक्त ने जयकार लगाई- "पालकी में विराजित आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. की जय।" यह सुनकर डोली में विराजे हुए चरितनायक ने कहा "पालकी उठाने वाले सन्तों की जय।" यह सुनकर जनसमूह श्रद्धाभिभूत हो गया, सभी सन्त गद्गद् हो गए। बेजोड़ थी उनकी सरलता और निरभिमानता। शक्रेन्द्र द्वारा नमिराजर्षि की स्तुति में जो कहा गया है, वह आचार्यप्रवर के सम्बन्ध में चरितार्थ हो रहा था—

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ती उत्तमा॥

(अहो ! उत्तम है आपका आर्जव, अहो ! उत्तम है आपका मार्दव, अहा ! उत्तम है आपकी क्षमा, अहो ! सर्वश्रेष्ठ है आपकी निर्लोभता।)

आचार्य श्री की लघु देह में विशेष भार नहीं, तथापि डोली उठाने वाले सन्तों से कहते - "भाई मेरे कारण से आप सन्तजनों को कष्ट उठाना पड़ रहा है।" सन्त निवेदन करते- "पूज्य गुरुवर्य, कृपया ऐसा न फरमावें। आपने जीवन में कभी ऐसा अवसर ही नहीं आने दिया। आपका स्वावलम्बी जीवन हमारे लिए व संत समुदाय के लिये युगों-युगों तक प्रेरणादायी है। प्रभो ! भक्ति में कैसा भार व कैसा कष्ट? यह तो हमारा प्रथम कर्त्तव्य ही नहीं वरन् सौभाग्य है, सेवा का स्वर्णिम अवसर है।"

• सोजतसिटी में फाल्गुनी पूर्णिमा

सन्त इस बात से प्रसन्न थे कि उन्हें गुरुदेव की सेवा का अवसर मिला। सभी क्रमशः इस सेवा से लाभान्वित होने के लिए लालायित थे। सभी सन्त पूज्य गुरुदेव के सहज सात्त्विक वात्सल्य से अनुप्राणित थे।

२३ फरवरी १९९१ बुधवार को सन्त-मण्डली ने सोजत सिटी में प्रवेश किया। सोजत संघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। धर्माराधन की नवीन उमंग एवं उत्साह देखने को मिला। सोजत संघ एवं अनन्य भक्त श्री भोपालचन्दजी पगारिया व भंवरलाल जी गोटावत बैंगलोर, जो सोजत के ही मूलनिवासी हैं, की भावना का आदर करते हुए गुरुदेव ने फाल्गुनी चौमासी सोजत शहर में ही की। दर्शनार्थी भक्तजन दर्शन को उमड़ पड़े। आचार्य श्री जब तक सोजत विराजे, पूर्ववत् अप्रमत्त भाव से आध्यात्मिक ऊर्जा का उपयोग करते हुए आत्म-साधना में लीन रहे। आपने यहाँ पर वाणी से प्रवचन नहीं फरमाया, किन्तु स्वयं आपका साधनामय जीवन प्रवचन से बढ़कर बहुत कुछ कह रहा था। बिना उपदेश के भी आपके दिव्य आभामण्डित तेजस्वी मुखमण्डल और आचारप्रधान अप्रमत्त जीवन से, कोई भी प्रभावित एवं प्रेरित हुए बिना नहीं रहा।

आचार्य श्री सहज साधना में संलग्न थे। फाल्गुनी चातुर्मास के प्रसंग पर जोधपुर , निमाज ,मेड़ता, बिलाड़ा आदि अनेक ग्राम-नगरों के श्री संघ शेखेकाल व चातुर्मास की भावभीनी विनतियाँ लेकर उपस्थित हुए। लोग अपनी-अपनी अटकलें लगा रहे थे। विगत कुछ वर्षों से गुरुदेव होली चातुर्मासी के प्रसंग पर वर्षावास खोल दिया करते थे, पर इस वर्ष दीर्घद्रष्टा आत्मज्ञानी आचार्यवर्य वर्षावास घोषणा का मानस नहीं बना रहे थे। उनके गुरु-गाम्भीर्ययुक्त मन एवं भावी के गर्भ की थाह पाना सबके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। इसी मध्य अचानक जयपुर के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. एस.आर. मेहता भी दर्शनार्थ आ गये। वे गुरुदेव के विश्वास पात्र चिकित्सक ही नहीं वरन् पीढ़ियों के श्रावक एवं अनन्य गुरु भक्त भी हैं। डॉ. मेहता ने गुरुदेव के स्वास्थ्य का परीक्षण कर बताया "पूज्य गुरुवर्य पर किसी भी बड़े रोग का तो उपद्रव नहीं है, वृद्धावस्था के कारण कफ, खांसी, अशक्तता और श्वास का उठाव हो जाता है, जिसके लिये नियमित उपचार की आवश्यकता है ।" डॉ. मेहता सा. ने आगे गुरुदेव से निवेदन करते हुए कहा "भगवन्! अवस्था एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से अब आपको एक स्थान पर विराजना आवश्यक है एवं चिकित्सा सुविधाओं की दृष्टि से जोधपुर व जयपुर उपयुक्त क्षेत्र है। आप स्वयं दीर्घद्रष्टा, गहन अनुभवी एवं प्रबल आत्म-विश्वासी महापुरुष हैं, निर्णय के अधिकारी आप स्वयं है, आप श्री का निर्णय हम सबको मान्य एवं शिरोधार्य है।

डॉक्टर साहब की सूझबूझपूर्ण बात श्रवण करने के पश्चात् पूज्य गुरुवर्य ने चातुर्मासिक विनति करने वाले जन-समुदाय को अपना निर्णय सुनाते हुए फरमाया कि अभी अक्षय तृतीया से पूर्व कहीं पर भी चातुर्मास खोलने की भावना नहीं है। सभी आश्चर्यचकित थे, किन्तु अनागत व गुरुदेव के मन की थाह ले पाना किसी के सामर्थ्य में नहीं था। सब अपने-अपने हिसाब से कयास लगा रहे थे।

• अब मुझे जीवन का ज्यादा समय नहीं लगता

दूसरे दिन चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को सब सन्त गुरु चरणों में बैठे हुए थे। आचार्य भगवन्त ने गंभीरता के साथ संतों को रात्रिकालीन घटना का संक्षिप्त कथन करते हुए फरमाया–"भाई, मुझे रात्रि में किसी अदृश्य शक्ति ने प्रेरित करते हुए कहा–"आप तो बहुत जानकार हो। मैं आपने कई केऊँ–अब आप सावधान हो जाओ।" गुरुदेव श्री ने संतों के समक्ष अपने आपको संबोधित करते हुए कहा "अब मुझे अधिकाधिक ध्यान, मौन,चिन्तन, साधना व स्वाध्याय में लग जाना चाहिये।" सन्तों ने निवेदन किया–"भगवन्! आप तो साधना की पावन पवित्र धारा में सतत निमज्जित हुए ही रहते हैं।" इस बात को जैसे गुरुदेव ने सुना ही नहीं हो, उन महापुरुष के मुख मण्डल पर गांभीर्य की रेखायें स्पष्टतः परिलक्षित हो रही थीं।

दूसरे दिन कोट का मोहल्ला से विहार कर ज्ञानशाला स्थानक पैदल ही पधारे। दूसरे दिन भी पहले दिन वाली बात दोहराई तो सन्त विचारमग्न हो गये। विविध आशंकायें मस्तिष्क पटल से टकराने लगी। संतों को गम्भीर व विचारमग्न देखकर आचार्यप्रवर ने रहस्य का पर्दा हटाते हुए फरमाया– "अब मुझे मेरे जीवन का ज्यादा समय नहीं लगता, अतः अन्तिम समय की प्रक्रिया में सावधान हो जाऊँ।"

गुरुदेव के ये शब्द कर्णगोचर होते ही, अनागत की कल्पना मात्र से ही हृदय व्यथित हो गए, सब मौन-स्तब्ध थे, पर गुरुदेव के मुख-मंडल पर वही पूर्व निश्चिन्तता के भाव परिलक्षित हो रहे थे। उस प्रशांत भय रहित मुख-मुद्रा पर कोई शिकन मात्र भी नहीं थी। उन मृत्युंजयी महापुरुष ने अपना मौन तोड़ते हुए गमगीन बने संतों को उद्बोधित करते हुए फरमाया– "भाई, इसमें व्यथा की क्या बात? मृत्यु अवश्यम्भावी है, अतः आप लोग मुझे अन्तिम समय में पूरा साथ देना, संघ में अनुशासन व प्रेम बनाये रखना तथा दृढ़ता के साथ समाचारी का पालन करना।" पूज्यवर्य ने प्रत्येक शिष्य के मस्तक पर अपना वरद हस्त रखते हुए अमित वात्सल्य की वर्षा करते हुए सभी को योग्यतानुसार भोलावण (शिक्षा) दी। वरिष्ठ संतों को भोलावण देते हुए श्रद्धेय श्री मानमुनिजी महाराज साहब (वर्तमान उपाध्याय प्रवर) को फरमाया–"जैसे मेरे गुरुदेव पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज साहब के समय स्वामीजी श्री चन्दनमलजी महाराज साहब का और मुझे स्वामी श्री सुजानमलजी महाराज साहब का सहकार-सहयोग मिलता रहा, वैसे ही मेरे बाद संघ का ध्यान रखना।"

सन्तों के कंठ अवरुद्ध थे, वाणी मौन थी, खामोशी के साथ श्रद्धा एवं विनम्रतापूर्वक गुरुदेव की भोलावण स्वीकार कर रहे थे। निःशब्द वातावरण को देखकर मधुर स्वर में भजन गुनगुनाते हुए गुरुदेव ने सभी संतों को साथ में गाने का निर्देश दिया- "मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश..।" गुरुदेव के द्वारा स्वरचित भजन के ये बोल हृदय के तारों को झंकृत कर रहे थे। एक-एक पद में विनश्वर संसार की क्षण भंगुरता एवं जड़-चेतन के भेदज्ञान का सारगर्भित चित्रण प्रस्तुत करते हुए मानों गुरुदेव सन्तों को अपनी अन्तिम देशना दे रहे थे।

भजन के अनन्तर सभी सन्त अपनी अपनी दैनिक चर्या में लग गये, पर सभी के दिलोदिमाग में गुरुदेव के ही शब्द गुंजित हो रहे थे।

सायंकाल आहार के बाद आचार्य देव को वमन हो गया तो सभी का मन घबरा गया। सन्तों को लगा-आज ही तो गुरुदेव ने अन्तिम समय की बात कही और आज ही स्वास्थ्य में गड़बड़। प्राथमिक उपचार के पश्चात् डॉक्टर को दिखाया तो डॉक्टर बोले-"हृदय, रक्तचाप एवं नाड़ी सभी सामान्य हैं। गैस के कारण भी वमन हो सकता है।" सन्तों का दिल भावी की आशंका से भारी हो रहा था, पर वह मस्ताना अध्यात्मयोगी हस्ती तो अपनी संयम साधना की मस्ती में ही मस्त था।

"मेरे जीवन का समय अब कम है।" आचार्य देव के ऐसा फरमाने पर श्रद्धेय श्री हीराचन्द्रजी महाराज साहब (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने पूज्य गुरुदेव श्री से पूछा–"भगवन्! सती-मण्डल को दर्शन देने एवं जोधपुर संघ की भावना को रखने के लिए पहले सीधे जोधपुर चलें तो कैसा रहेगा?" पर उन वचनधनी महापुरुष को जहाँ एक ओर अपने शेष समय का ध्यान था तो आश्वासन पूर्ति का लक्ष्य भी दृष्टि में था। उन्होंने यही फरमाया –"जोधपुर से वापिस आना हाथ में नहीं, मुझे तो निमाज श्री संघ को दिया गया आश्वासन पूरा करना है, अतः संत सती निमाज आकर दर्शन-सेवा का लाभ ले सकते हैं।"

• मुझे निमाज पहुँचना है

इसी बीच गुरुदेव ने संतों को बिना कहीं ज्यादा रुके शीघ्र निमाज पहुँचने के भाव व्यक्त कर दिये। संतों ने आचार्य भगवन्त की भावना के अनुसार शीघ्र निमाज पहुँचने का लक्ष्य बना लिया और सुदूर विराजित रत्नवंशीय सभी संत-सतीगण को गुरुदेव के दर्शनार्थ सेवा में निमाज पहुँचने के संकेत करवा दिये गये। ३ मार्च ९१रविवार चैत्र कृष्णा तृतीया को गोटावत भवन ठहरते हुए रात्रिवास गुरुदेव ने समिति भवन में किया। इसके अनन्तर दो दिन सोजत रोड विराजे। दो दिन पश्चात् जब विहार की चंचलता के भाव दर्शाये तो स्थानीय श्रावकों ने अत्याग्रहपूर्वक कुछ दिन विराजने की प्रार्थना की, परन्तु गुरुदेव श्री का एक ही प्रत्युत्तर था– "मुझे निमाज पहुँचना है।" उन भावुक भक्तों को क्या मालूम था कि गुरुदेव क्या सोच कर इतनी शीघ्रता कर रहे हैं? यहां तो उस अध्यात्मयोगी ने पहले ही अपनी दिशा निर्धारित कर ली थी।

सोजत से बगड़ी, चंडावल होते हुए ८ मार्च ९१ को पीपल्या पधारे। सन्तों के द्वारा आहार के लिये निवेदन करने पर आचार्य श्री ने मना कर दिया। बार बार आग्रह करने पर फरमाया –"भाई, मुझे आहार करने की रुचि नहीं है, तुम आग्रह मत करो।" सन्तों के अत्याग्रह पर सन्तों के हाथ से उनके सन्तोष हेतु अल्प आहार लिया, किन्तु प्रतिपल जागृत उन महापुरुष को अब मात्र अपनी आत्म-साधना का ही तो ध्यान था– फरमाने लगे–**"मैं खाली नहीं जाऊँ, इसका सेवारत मुनिजन पूरा खयाल रखें। शरीर का नहीं, मेरी समाधि बनी रहे, इसका ध्यान रखें।"** कितनी उच्च भावना, कितनी सजगता, कैसा देहोत्सर्ग, कैसी समाधि भावना। अन्तर्ज्योति के आलोकपुञ्ज उन महापुरुष ने आगे फरमाया- **"मेरी चिन्ता मत करना, शरीर तो नाशवान है।" फिर भोलावण रूप में बोले-"आहार, स्थानक की गवेषणा का पूरा ख्याल रखना, पूज्य श्री रत्नचंदजी महाराज साहब की २१ नियम की समाचारी का पूरा पालन करना,** प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी, उप प्रवर्तिनी महासती श्री लाडकंवरजी प्रभृति सती-मंडल बराबर संयम आराधना करती रहें।"

• मुझे मेरा समय सामने दिख रहा है

पूज्य गुरुदेव अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार निरन्तर अपने कदम अपने अन्तिम मनोरथ की ओर बढ़ा रहे थे। इसी क्रम में उन्होंने दो-दो,तीन-तीन घंटे के सागारी प्रत्याख्यान करने प्रारम्भ कर दिये। साथ ही अपनी उत्कृष्ट भावना प्रदर्शित करते हुए फरमाया–"मेरी संथारा करने की भावना है। मानमुनिजी म.सा. से पूछ लें एवं चतुर्विध संघ की अनुमति ले लें। उस समय श्रद्धेय श्री मानमुनिजी म.सा. विहार क्रम में पीछे-पीछे चल रहे थे, अतः उन्हें भी सेवा में पधारने का संकेत कर दिया गया। संथारे की बात के ही क्रम में सभी सन्तों ने समवेत स्वर में निवेदन किया–"भगवन्! अभी इतनी क्या जल्दी है? आपका स्वास्थ्य भी ठीक है, डॉक्टर एवं ज्योतिषी की राय में भी ऐसे लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते, फिर आप ऐसा कैसे सोच रहे हैं?" इस पर आचार्य भगवन्त ने दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ फरमाया **"भाई, ज्योतिषी की गणित एवं डॉक्टर की बात मुझे फैल लग रही है। मुझे मेरा समय सामने दिख रहा है।"** जहाँ सन्त चिन्तित थे, वहीं गुरुदेव अपनी अजस्र आत्मिक ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के चिन्तन में तल्लीन थे। वे तो कहाँ क्या हो रहा था, इससे सर्वथा बेखबर अपनी ही धुन में मस्त, अनवरत आत्महित में सन्नद्ध तथा जीवन के सन्ध्याकाल के बारे में संजोये सार्थक स्वप्न को साकार करने की ओर उन्मुख थे। इसी सन्दर्भ में आपश्री ने अपनी सरलता, लघुता एवं निरभिमानता का परिचय देते हुए संकेत दिया कि अमुक-अमुक सन्तों को

खमतखामणा के समाचार दिला दो। गुरुवर्य की आज्ञा का पालन हुआ और उनका जिन-जिन से पुराना और गहरा सम्बन्ध रहा, उनकी सेवा में खमतखामणा अर्ज कराने हेतु श्रावकों द्वारा पत्र प्रेषित कर दिये गये।

९ मार्च ९१ को कुशालपुरा पहुँचे। बाहर से दर्शनार्थी उमड़ पड़े। इन सबके बीच भी गुरुदेव अपनी आत्म-साधना में निरन्तर निरत थे। इसी दिन डॉ. एस. आर. मेहता भी दर्शनार्थ पहुँचे। उन्होंने स्वास्थ्य के निरीक्षण-परीक्षण के पश्चात् स्वास्थ्य की दृष्टि से खुराक एवं दवा की आवश्यकता बतलाई, पर गुरुदेव ने उन्हें भी यह कहा कि इन सबकी अब मुझे रुचि नहीं है। डॉक्टर सा. एवं मुनिजन के अत्याग्रह से आपने अनिच्छित भाव से ही पथ्य ग्रहण करना स्वीकार किया।

• निमाज में पदार्पण : निमाजवासी पुलकित

दिनांक १० मार्च ९१ को कुशालपुरा से निमाज में पदार्पण हुआ। निमाज ग्रामवासी गुरुदेव के आगमन पर हर्षित एवं प्रफुल्लित थे, नर-नारियों के समूह जयनिनादों के साथ अगवानी हेतु उपस्थित थे। देखते-देखते ही स्थानीय व अभ्यागत बन्धु आते गये और कारवां बनता गया। गुरुदेव के पदार्पण से जैसे निमाज गाँव का कोना-कोना खिल उठा, समूचा वातावरण ही उन महापुरुष के शुभ परमाणुओं के संसर्ग में आकर पवित्र हो गया। गाँव का चप्पा-चप्पा गुरुदेव के आगमन से महक रहा था, वहाँ के कण-कण में हर्ष व्याप्त था। भंडारी परिवार का तो कहना ही क्या ? बच्चा-बच्चा खुशी से झूम रहा था, आँखों में आये हर्षाश्रु रोम-रोम से गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। गुरुदेव के पीछे-पीछे विशाल जनसमुदाय का यह काफिला निमाज की गलियों, बाजारों से होता हुआ, मुख्य मार्ग पर स्थित गंगवाल भवन (सुशीला-भवन) में आकर धर्म-सभा में परिणत हो गया।

धर्म-सभा में आचार्य गुरुदेव अपनी शिष्य-मण्डली के बीच नक्षत्र-मण्डल के मध्य दिव्य आभायुक्त सुधाकर के सदृश सुशोभित हो रहे थे। मुखमण्डल पर दिव्य तेज था। इस अन्तिम प्रवचन सभा को सम्बोधित करते हुए उन युगमनीषी महापुरुष ने अपनी धीर, वीर, गंभीर शैली में फरमाया–**"मैंने अपना आश्वासन संतों के सहयोग से पूरा कर दिया है, आज मैं उससे मुक्त हो गया हूँ।"** आश्वासन-पूर्ति के आत्म-सन्तोष से 'सागरवरगम्भीरा' उस महापुरुष की आंखें भर आईं। सभी लोग भावविह्वल हो गये, सन्तों का हृदय गद्गद् हो गया। कैसा करुणासिक्त दृश्य था। इसी दिन मधुर व्याख्याता श्री ज्ञानमुनिजी म.सा. व श्री दयामुनिजी म.सा. भी जिनका चातुर्मास रींया था, गुरुचरण-सेवा में पधार गये। आज सभी शिष्यगण अपने परमाराध्य गुरुवर्य की सान्ध्यवेला में सेवा हेतु समुपस्थित थे।

मध्याह्न में जयपुर श्री संघ ने जयपुर स्थिरवास हेतु पधारने की भावपूर्ण विनति प्रस्तुत की और निवेदन किया–"भगवन्! स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की दृष्टि से जयपुर सर्वोत्तम स्थान है।" इस पर पूज्य आचार्य भगवन्त ने यही फरमाया–**"मैं अब ठिकाने आ गया हूँ, कहीं जाने के भाव नहीं, यदि स्थिरवास का अवसर रहा तो जोधपुर को प्राथमिकता दे रखी है।"**

दिनांक ११ मार्च ९१ को प्रातः लगभग १० बजे सभी सन्तों एवं प्रमुख श्रावकों को संघ-सम्बन्धी भोलावण दी। बार-बार भोलावण देने पर अन्तेवासी गौतममुनिजी म.सा. ने सहज ही गुरुदेव से निवेदन किया–"भगवन् आप अभी से ही बार-बार भोलावण क्यों दे रहे हैं? अभी तो आप शतायु-चिरायु हो हमें अपनी वात्सल्यपूर्ण शीतल छाया प्रदान करते रहेंगे। आपके सान्निध्य में हमें क्या चिन्ता?" इस पर आत्मसाधक गुरुदेव ने अपना वरदहस्त मस्तक पर रखते हुए अत्यन्त दुलार के साथ अपने स्नेह सुधासिक्त वचनों से फरमाया–"भाई गौतम! अभी तो मैं

बोल रहा हूँ, फिर कदाचित् नहीं बोल पाऊँ?" मुनिश्री श्रद्धाभिभूत हो विचारमग्न हो गए। १२ मार्च ९१ को लगभग १२ बजे संतों ने गुरु-चरणों में सविनय साञ्जलि शीष झुकाकर निवेदन किया–"भगवन्! शरीर के लिये आहार आवश्यक है, अतः आप थोड़ा आहार ग्रहण करने का ध्यान देने की कृपा करें।" पर उन महामनीषी की दृष्टि तो अब इस तन के लिए आवश्यक आहार की ओर नहीं वरन् परलोक के भाते की ओर ही थी।

• साधना के शिखर की ओर

अपने हृदयगत भावों को प्रकट करते हुए गुरु भगवन्त बोले- "क्या मुझे खाली हाथ भेजोगे? मुझे खाली हाथ मत भेजना, यह मेरी एक मात्र अंतिम इच्छा है।" उनके पवित्र हृदय के उस दृढ़ संकल्प से सभी हतप्रभ थे। देह के प्रति कैसी निस्पृहता! न तन का मोह, न आहार का मानस, न दवा की मंशा, एकमात्र अभिलाषा थी साधक के अंतिम मनोरथ की सिद्धि कर कृतकृत्य होने की। अपने जीवन के इस सन्ध्याकाल में भी चरितनायक सतत जागरूकतापूर्वक अपनी संयम-चर्या में निरत रहते। यदि संघ-संबंधी कोई आवश्यक बात ध्यान में आती तो वे ज्येष्ठ संतों एवं प्रमुख श्रावकों को संकेतात्मक भाषा में ध्यान दिला देते, शेष समय ध्यान, जप एवं स्वाध्याय-साधना द्वारा अपनी अन्तर्ज्योति ज्योतित रखते।

१३ मार्च ९१ को सायंकाल प्रतिक्रमण से पूर्व ६.२५ बजे उस प्रतिपल सजग साधक, संयम की साकार प्रतिमूर्ति आचार्य भगवन्त ने अपनी सरलता, विनम्रता, समर्पण एवं महानता का आदर्श उपस्थित करते हुए अपने द्वारा दीक्षित संतों के समक्ष कहा-"मैं अपने गुरु आचार्य भगवन्त की साक्षी से पूर्व के दोषों की निन्दा करता हूँ, और नये महाव्रतों में आरोहण करता हूँ।" गुरुदेव के हृदय से निकले इन पावन निर्मल शब्दों ने सभी शिष्यों को आश्चर्य में डाल दिया-कि जिन महापुरुष ने संयम-पर्याय के प्रतिज्ञा पाठ के साथ ही अद्यावधि निरतिचार संयम का पालन किया, जिनका संयम युगों-युगों तक साधकों के लिये आदर्श रूप में पथ आलोकित करता रहेगा, उन महापुरुष को महाव्रतों में नवीन आरोहण जैसी क्रिया की क्या आवश्यकता? पर यही तो युगमनीषी, युगप्रर्वतक महापुरुषों की महानता होती है, जिनकी मेरु समान ऊँचाई व सागर सम गहराई की थाह पाना सामान्य जनों के सामर्थ्य के बाहर की बात है। उन्होंने आत्मिक-विकास की उस उच्च भूमि पर आरोहण कर लिया था, जो वीतरागता की ओर अग्रसर होती है।

यही नहीं आचार्य प्रवर ने सभी प्राणियों से क्षमायाचना करते हुये सभी प्रमुख सन्त सतियों की सेवा में क्षमायाचना के पत्र प्रेषित कराये। जिसका प्रारूप कुछ इस प्रकार था–

"मैं जीवन के संध्याकाल में चल रहा हूँ। मेरा स्वास्थ्य उतना स्वस्थ एवं समीचीन नहीं चल रहा है । संयम-जीवन के पिछले कई वर्षों से मेरा आपसे प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से निकट सम्पर्क व प्रेम सौहार्द सम्बन्ध रहा है। कई बार मिलने एवं विचार-विमर्श के प्रसंग आए हैं। इस बीच न चाहते हुये भी मेरे किसी व्यवहार से आपको व आपके अन्तेवासी संत-सतीवृन्द को कोई भी कष्ट हुआ हो तो मैं आत्म-शुद्धि हेतु हार्दिक क्षमायाचना करता हूँ। संघ की व्यवस्था श्री मानमुनि जी एवं श्री हीरामुनि जी संभालेंगे। उनके साथ भी आपका वैसा ही सौहार्द सम्बन्ध बना रहे , इसी भावना के साथ एक बार पुनः क्षमायाचना।"

१४ मार्च ९१ को आचार्य प्रभु अनायास ही प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में तीन चार बजे के लगभग गंगवाल भवन के पिछवाड़े के बरामदे में पधारे और **संतों के साथ छज्जीवनी का स्वाध्याय किया।** जप, ध्यान, भक्तामर

पाठ एवं प्रतिक्रमण के पश्चात् वन्दना के समय आचार्यदेव ने हर शिष्य सन्त से हाथ जोड़कर क्षमायाचना की। गुरुदेव की इस महानता, सरलता एवं सजगता से हर सन्त का हृदय श्रद्धाभिभूत एवं गद्गद् हो उठा। निवेदन करते हुए कहा - "गुरुदेव ! आपका तो हमारे ऊपर अनन्त उपकार है। अविनय आशातना तो हम बालकों से होती रही है, क्षमायाचना तो हम शिष्यों को करनी चाहिए।" इसी दिन लगभग ९ बजे सभी संत गुरुचरण-छाया में बैठे थे। वार्ता प्रसंग में पूछा-"भगवन् ! कुछ इच्छा हो तो फरमायें।" उस अनासक्त योगी ने यही फरमाया-**"समाधि लग रही है, आनन्द है, अब कांइ इच्छा है?'(अर्थात् कुछ नहीं) मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्दजी म.सा.का जन्म जोधपुर में हुआ और स्वर्गवास भी जोधपुर में ही हुआ। मेरे इस शरीर का जन्म पीपाड़ में हुआ।"** यह कह कर अपनी बात समाप्त की।

जब देखा, आगे नहीं फरमा रहे हैं तो सन्तों ने सहज जिज्ञासा एवं उत्सुकता से अति विनीत स्वरों में पूछा-"भगवन् ! आपकी अभिलाषा पीपाड़ पधारने की हो तो वैसा ही करेंगे।" प्रत्युत्तर में उस प्रज्ञापुरुष महामनीषी ने स्नेहसुधासिक्त सस्मित मुस्कान के साथ सहज, सरल, शान्त, गम्भीर एवं दृढ़ स्वर में छोटा सा उत्तर दिया-**"भाई ! पीपाड़ गाँव निमाज ठिकाने में ही आता है।"** गुरुदेव का यह संकेत तात्पर्यबोध के लिये पर्याप्त था।

गत तीन दिनों से औषधि-सेवन बिल्कुल बन्द था। आहार भी सन्तों के अत्याग्रह पर अत्यन्त अल्प। इसी बीच लगभग ४ बजे डॉ. एस. आर. मेहता दर्शनार्थ एवं स्वास्थ्य की पृच्छा हेतु पहुँचे। डॉ. मेहता सा. ने सानुरोध निवेदन किया-"गुरुदेव ! स्वास्थ्य के लिए दवा और खुराक की महती आवश्यकता है।"गुरुदेव ने फरमाया-"अब खाने की रुचि नहीं है और दवा लेने की इच्छा नहीं है। शरीर कुछ मांगता नहीं।" डॉक्टर सा. के परामर्श एव संतों के अत्यन्त भावप्रवण निवेदन पर उस अकारण करुणाकर महर्षि ने दो दिन के लिए दवा लेना स्वीकार किया। दूसरे दिन १५ मार्च ९१ को गुरुदेव के सुस्ती रही, पर जप का वही क्रम चलता रहा। प्रातःकाल पहले दिन की बात के सन्दर्भ में सन्तों ने निवेदन किया–"भगवन् ! आपने दो दिन ही दवा सेवन का निर्णय क्यों लिया ?" प्रत्युत्तर में उन अप्रमत्त योगी ने फरमाया-**"मैं कहीं खाली हाथ न चला जाऊँ, इसीलिये सावधानी रखने का परीक्षण कर रहा हूँ।"** सुनने वाले अवाक् थे, क्या गजब की सजगता और जागरूकता ! इसके बाद उस दिन गुरुदेव किसी से भी कुछ नहीं बोले। पूज्य गुरुदेव ने अन्नाहार बंद सा कर दिया। प्रायः पेय पदार्थ ही लेते। किसे पता था कि पूज्य गुरुदेव अब अन्नाहार कभी नहीं करेंगे। सन्त-जन तो यही सोच रहे थे कि अन्नाहार स्वास्थ्य की दृष्टि से बंद किया है और स्वस्थ होने पर पूज्यवर अन्नाहार अवश्य ही करेंगे।

दिनांक १६ मार्च ९१ को दिन भर पूज्य गुरुदेव के सुस्ती रही, वे किसी से भी कुछ नहीं बोले। हल्का सा बुखार भी था, जो तेज होते -होते १०४ डिग्री तक जा पहुँचा। पूज्य आचार्य गुरुदेव की इस शारीरिक स्थिति से सभी अत्यन्त व्यग्र एवं चिन्तित थे। सभी के मन में एक ही खयाल था-आचार्य भगवन्त ! कैसे भी स्वस्थ हों व आरोग्य लाभ प्राप्त करें। आवश्यक उपचार के पश्चात् अपराह्न तीन बजे लगभग ज्वर कम हुआ। सभी ने संतोष की सांस ली। इसी बीच अचानक लगभग ५ बजे पूज्य गुरुवर के शरीर में भयंकर कम्पन्न हुआ। स्थानीय सेवाभावी चिकित्सक डॉ. राकेश शर्मा ने निरीक्षण कर बताया कि मस्तिष्क में रक्त संचार अवरुद्ध होने से शारीरिक स्थिति ऐसी हो गई है। थोड़ी देर बाद तीन बार वमन होने से शरीर में कमजोरी आ गई।

संतजन चिन्तित थे। योगीराज हस्ती तो कर-कमल में माला लिये निरन्तर जप में लीन थे। कैसी विलक्षण सहिष्णुता,कैसी अदृष्टपूर्व समता, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पूज्य गुरुदेव की इस सहनशीलता से सब सन्त

भावाभिभूत थे। संध्याकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् संतगण के विनम्र अनुरोध के उपरान्त भी विश्राम न कर भगवन्त ध्यान एवं जप-साधना में ही निरन्तर लीन रहे। रात्रि में लगभग १२ बजे जब संसार के अधिकांश प्राणी प्रमाद-निद्रा में लीन होते हैं, आत्म-चिन्तन में रत वे साधक शिरोमणि समीपवर्ती बैठे संतों को अत्यन्त आत्मिक भाव से स्नेहसिक्त वात्सल्यपूर्ण मधुर वचनों के साथ संयम-साधना में सतत जागरूक रहने की प्रेरणा देते हुए भोलावण देने लगे- **"आचार्य श्री रत्नचंद्र जी म. सा. की मर्यादा निभाना, समाचारी का पालन करना, आपस में मतभेद मत रखना, मेरी आत्मा को शांति मिले, ऐसा कार्य करना, संघ में प्रेम-शांति बनाये रखना, संघ का मान रखना।"** इतना कह कर बड़ी संलेखना का पाठ श्रवण कर पूज्य प्रभु पुनः इसी अलमस्त साधना में तन्मय हो गये। **सन्तों को गुरुदेव की ओर से ये शब्द अंतिम आदेश, उपदेश एवं भोलावण के थे।**

अगले दिन १८ मार्च ९१ को मध्याह्न तक पूज्य भगवन्त कुछ भी नहीं बोले । पेय पदार्थ ग्रहण करने के लिए सन्तों द्वारा पुनः पुनः आग्रह किए जाने पर उन युग मनीषी के द्वारा प्रकट किए गए विचार , संवाद के रूप में (जिनवाणी-श्रद्धाञ्जलि अंक) से प्रस्तुत है-

गुरुदेव–मेरी आत्मा को सम्भालो, शरीर का मोह छोड़ दो। शरीर के पीछे क्यों पड़े हो! अरे भाई, म्हारा शरीर ने छोड़ो_शरीर अनन्त बार धार्यो है और छोड्यो है। म्हारो जनम खराब मत करो।

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुःखो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो॥

म्हारी आत्मा री साधना में कमजोरी मत लावो।

संतगण–शरीर में कमजोरी आ रही है भगवन्!

गुरुदेव– शरीर तो अनन्त बार धार्यो है और छोड्यो है।

संतगण–भगवन्! देवलोक में जाने की इतनी आतुरता क्यों? शरीर रहेगा तो संयम रहेगा, संयम श्रेष्ठ है या नन्दनवन (देवलोक) ?

गुरुदेव–सर्वश्रेष्ठ तो आत्मा है।

संतगण–दोनों की तुलना में भगवन्! संयम या नन्दनवन ?

गुरुदेव–नन्दवन तो क्या है, पौद्गलिक है। आत्म-भाव ही अनंत सुख देने वाला है।

संतगण – भगवन् ! जल सेवन कर लें।

गुरुदेव–आचार्य श्री की मर्यादा का पालन करने का ध्यान रखना।

संतगण–आपने प्यास नहीं लागे ?

गुरुदेव–प्यास को कांई करनो है, अनन्त बार भूख और प्यास लगी है।

संतगण–भगवन्! बिना अन्न-जल के यह शरीर कैसे चलेगा ?

गुरुदेव–शरीर तो स्वतः छूट जाई।

सन्तगण–भगवन्! आप तो इसे छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

गुरुदेव–आनन्द है।

सतंगण–भगवन् ! हम इतना निवेदन कर रहे हैं। थोडा सा जल ले लें।

गुरुदेव–साधना जितनी निर्विघ्न बनाओगे, जितना धर्म में दृढ़ बनाओगे, उतना ही आत्मिक संतोष का विषय है।

संतगण–एक बार जल ले लो भगवन् !

गुरुदेव–इरी मनवार मत करो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र री मनवार करो।

संतगण–भगवन् ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पालन में शरीर की आवश्यकता है और शरीर के लिये खुराक की।

गुरुदेव–अरे भाई, जवाब सवाल की बात नहीं, म्हारी आत्मा ने आत्मभाव में स्थिर करो।

अपराह्न चार बजे रस पीने का बार-बार आग्रह करने पर भी पूज्य गुरुदेव मना करते रहे। तब संतों ने पूछा-"**भगवन् ! आपकी भावना क्या है ?**" तो पूज्य चरितनायक ने यही फरमाया-**आहार, शरीर छोड़ने की।**

पुनः लगभग ४.२० बजे संतों ने भगवन्त को करबद्ध निवेदन करते हुए आग्रह किया-"भगवन् ! आप दवाई व आहार लिरावें। भगवन् ! आपकी जो भी रुचि हो, फरमावें। हम आपकी रुचि के माफिक ही खयाल रखेंगे। हलका आहार अथवा पेय जो भी रुचिकर हो, फरमावें।"

प्रत्युत्तर में **गुरुदेव बोले-"रुचि भी नहीं और आयु भी नहीं है।"** पुनः संतों ने लगभग ४.४५ बजे गुरुदेव को पूछा -"**भगवन् ! आपको जैसे साता हो, वैसा फरमावें।**" गुरुदेव एक शब्द ही बोले - "**समाधि में**"।

प्रश्नोत्तर काल में पूज्य गुरुदेव भगवन्त का मुखमंडल आत्म-ज्योति से दीप्त हो रहा था। सब सन्त उन तपोपूत महाश्रमण के उच्च आत्मिक भावों से परिपूर्ण उत्तर से निरुत्तर थे। युवावस्था में स्वयं द्वारा रचित रचना के भाव उनके जीवन के इस संध्याकाल में स्पष्ट नजर आ रहे थे-

"रोग शोक नहीं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास ।
सदा शांतिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास ॥"

उस संवाद के बाद एक दिन बीता, दो दिन बीते, गुरुदेव लगभग मौन ही रहे, किसी से भी कुछ नहीं बोले । सब चिन्तित थे, पर गुरुदेव सब चिन्ताओं से परे अपनी उसी चिरपरिचित मंद मुस्कान के साथ समाधिभाव में लीन रहते। उनके प्रशस्त शुभ्र दिव्य भाल पर वेदना की हल्की रेखा भी दृष्टिगत नहीं हुई। किन्तु ब्रह्म तेज से दीप्त मुखाकृति आकर्षित कर रही थी। भास्वर आँखों में वही सौम्य, स्नेह एवं करुणा का पारावार उमड़ता हुआ हर किसी को आप्लावित कर रहा था।

इसी बीच दिनांक २३ मार्च ९१ को श्री देवेन्द्रराजजी मेहता सपरिवार दर्शनार्थ आये। श्रद्धालु भक्त आत्म-भाव मे लीन अपने आराध्य गुरुदेव को मन,वचन, काया से सम्पूर्ण श्रद्धा से अभिभूत हो नमन कर रहा था तो आराध्य भगवन्त अपने इस संघसेवी श्रावक को पूर्वजों का स्मरण दिलाते भोलावण के रूप में बोल रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने मेहता जी से कुछ देर तक बातचीत की। सन्त आश्वस्त बने कि गुरु भगवन्त के न बोलने का कारण उनकी मौन साधना है न कि स्वास्थ्य की कोई गड़बड़ है।

पूज्य गुरुदेव को इस तरह आत्म-भाव में लीन देखकर प्रतीत होता था कि "जिन नहीं पण जिन

सरीखा, वीतराग नहीं पण वीतराग सरीखा" का वे साक्षात् स्वरूप हैं। गुरुदेव की आन्तरिक जागरूकता सतत बढ़ती गई। समाधिभाव में लीन उन महामनीषी को अब न तो इस जीवन के प्रति आसक्ति थी और न ही अवश्यम्भावी मृत्यु का कोई भय। पूज्य भगवन्त तो निर्लिप्त भाव से आत्म-साधना मे निरत थे।

पूज्य आचार्य भगवन्त के स्वास्थ्य के समाचार सर्वत्र फैल चुके थे। बाहर से निरन्तर सैकड़ों-हजारों दर्शनार्थी उन महायोगी के दर्शनार्थ आ रहे थे। आराध्य भगवन्त की आत्म-शान्ति में विघ्न न हो, इसी लक्ष्य से दर्शनार्थ उपस्थित भक्तजन भी अनुशासनपूर्वक पंक्तिबद्ध हो, दूर से ही दर्शन कर आत्मतोष का अनुभव कर रहे थे।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी दिनांक २८ मार्च ९१ को शासनपति श्रमण भगवान् महावीर की जन्म जयंती के पावन प्रसंग पर जन सैलाब आराध्य आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। अखण्ड ब्रह्मचर्य के अत्युद्भुत तेज से दैदीप्यमान गुरुदेव के तेजस्वी मुखमंडल को निर्निमिष नयनों से निहार कर समूचा जन समुदाय धन्य-धन्य कह उठा। आशीर्वाद की मुद्रा में उठे प्रज्ञापुरुष के कर-कमल सभी को मौन संदेश दे रहे थे। उन प्रज्ञापुंगव गुरुवर्य के मंगल दर्शन कर सभी भक्तजनों के नयन हर्षाश्रुओं से आप्लावित हो गये। हर हृदय में एक ही भावना थी कि इस युग में भगवततुल्य हमारे ये पूज्य गुरुराज शीघ्र स्वस्थ हों, शतायु हों, चतुर्विध संघ को अपने सान्निध्य की छाया प्रदान करते रहें।

दिन प्रतिदिन दर्शनार्थियों का आवागमन बढ़ता ही गया। सुदूर क्षेत्रों के भक्तजन भी पहुँचने लगे। पूज्य भगवन्त का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था। हर किसी को एक ही चिन्ता थी कि शरीर में किसी रोग विशेष के लक्षण नहीं, फिर भी स्वास्थ्य में सतत गिरावट क्यों? महापुरुष की सेवा में डॉक्टर, वैद्य एवं भक्त सदैव तत्पर, पर जिन्हें आहार एवं दवा से अरुचि ही हो गई हो, जिन्हें अपना जीवन लक्ष्य ही दृष्टिगत हो रहा हो, जिन्होंने देहोत्सर्ग के लिए सभी तैयारियाँ कर ली हों, वे भला दवा क्या ग्रहण करते ? निमाज पधारने के बाद से ही आहार (तरल के अलावा) लगभग बंद सा था । जो कुछ भी लिया वह संतों के अत्याग्रह पर और मात्र उनका मन रखने हेतु। देह का मन ही मन ममत्व त्याग कर चुके गुरुदेव तो, मात्र आत्म-भाव में लवलीन थे। **कभी-कभी वे फरमाते भी-"यह जो कुछ आहार, दवा ले रहा हूँ, तुम्हारा मन रखने के लिये ले रहा हूँ वरना मुझे इसकी भी जरूरत नहीं है।"**

जोधपुर एवं पाल के चिकित्सक और वैद्य पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु अपनी सेवा देने के लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु यह सब व्यर्थ था। चिकित्सकों की राय थी कि पूज्य श्री को इंजेक्शन, ग्लूकोज (ड्रिप) एवं आहार नलिका आदि बाह्य साधनों द्वारा दवा व आहार दिया जाना आवश्यक है।

एक ओर गुरुदेव के स्वास्थ्य की चिन्ता एवं उनके प्रति भक्तों का राग, दूसरी ओर गुरुदेव की स्वयं की भावना एवं उनका दृढ़ संकल्प। अन्ततः सन्तों की कर्तव्य भावना जागृत हुई और सब इस निष्कर्ष पर पहुँचे —गुरुदेव की भावना उनके लिये आदेश है। जिस महापुरुष ने जीवन पर्यन्त कई बार आवश्यक होने पर भी कभी भी, इंजेक्शन आदि का उपयोग नहीं किया ऐसे निरतिचार संयम के आराधक एवं जिन्होंने अन्तिम समय का संकेत देकर हमें स्वयं चेता दिया है तथा सतत साथ देने की ही भावना को व्यक्त किया है। ऐसे पूज्यवर्य की इच्छा के विपरीत हमें कोई कार्य नहीं करना है।" यद्यपि गुरुदेव के शरीर में अत्यन्त दुर्बलता थी, स्वयं उठ-बैठ नहीं पाते, चलना-फिरना बन्द सा था, पर उनके अनुपम धैर्य व आत्म बल पर शारीरिक दुर्बलता किंचित् मात्र भी आवरण नहीं डाल पाई। मुखमण्डल पर वही सहज, निश्छल, आत्मीय मुस्कान, नयन कमलों मे वही महर्घ्य मुक्ताफल की सी स्वच्छ अद्भुत

आभा दृष्टिगत हो रही थी। बार-बार पूछने पर निरतिचार संयम-साधना के धनी उन पूज्यवर्य ने इतना मात्र कहा-"भाई , मैं बहुत बोल चुका। अब तो करने का है। मेरी साधना में विघ्न मत डालो।" गुरुदेव के इस वाक्य ने सब लोगों के विचारों को और दृढ़ बना दिया।

सन्तगण ने सारी स्थिति उपस्थित प्रमुख श्रावकों के समक्ष रखते हुए कहा कि ७० वर्ष की सुदीर्घ निरतिचार विमल संयम साधना में जिस तन ने पूज्य गुरुदेव का साथ दिया है, जो शरीर इस साधक महापुरुष की आदर्श साधना एवं तप तेज से दीप्त तथा तेजोमान हुआ है, उस शरीर को पूज्यवर्य की अन्तिम साधना का साथी बना रहने दें। यही भावना स्वयं पूज्यवर्य की है एवं हम लोगों की भी यही भावना है। परन्तु संघनायक के इस तन पर समूचे चतुर्विध संघ का अधिकार है। अतः आप सामूहिक रूप से जो निर्णय करना चाहें कर हमे अवगत करायें, किसी भी अन्तिम निर्णय के पूर्व आप लोगों की सहमति अपेक्षित है। श्रावकगण ने भी समग्र स्थिति पर गहन विचार-विमर्श कर यही सम्मति प्रकट की कि हमें पूज्य भगवन्त की भावना को सर्वोपरि स्थान देते हुए, चिकित्सकों की राय से इंजेक्शन, ग्लूकोज अथवा आहार नलिका नहीं लगवानी है।

चिकित्सक दल को निर्णय से अवगत कराया गया। सभी डॉक्टर सुनकर चकित रह गये। शरीर की व्याधियों का उपचार करने वाले चिकित्सकों को भला क्या पता कि संतों में अद्‌भुत संत वे परमयोगी तो अब तन के ममत्व से परे हो चुके हैं तथा भवरोग का उपचार करने में सन्नद्ध हैं। धन्य, धन्य है इन महापुरुष का धैर्यबल, अनुपम है इनकी त्यागवृत्ति और दृढ़ है इनका आत्मबल । सभी चिकित्सकगण सहज नत मस्तक हो, गुरु गुणगान करते हुए अपने-अपने गन्तव्य स्थान लौट गये। कुछ भावुक भक्तों को यद्यपि अत्यन्त निराशा थी, पर आराध्य गुरुदेव के अटल वज्र संकल्प के आगे वे मौन एवं नत मस्तक थे। भक्तों का आवागमन निरन्तर बढ़ता जा रहा था। आने वाला हर दर्शनार्थी जब गुरुदेव के स्वास्थ्य को देखता एवं उनकी भावना को सुनता तो चिन्तित मुद्रा में दीर्घनिश्वास ले यही कह उठता-

'पूज्यराज को यह क्या जँच गई? अन्नाहार क्यों बंद कर दिया ? दवा क्यों नहीं लेते ? उपचार में इतनी निस्पृहता क्यों ? जीवन भर जिस महापुरुष ने तप, त्याग व संयम साधना में लेशमात्र कमी नहीं रखी, इस रुग्ण अवस्था में वे किस कमी को पूरा करना चाहते हैं? अति भावुक होने पर वे संतों से उलाहना भरे शब्दों में पृच्छा भी करते, पर जब उन्हें गुरुदेव के पवित्र संकल्प से कि 'जीवन के संध्याकाल में मैं कहीं खाली हाथ न चला जाऊँ' से अवगत कराया जाता तो वे सहज नत मस्तक हो उस महापुरुष के प्रति श्रद्धानत हो जाते। पूज्यपाद की वह अत्युत्कृष्ट निर्मल भावना श्रद्धासिक्त भक्तों के सभी प्रश्नों का एकमात्र समाधान थी। गुरुदेव की भावना के आगे तो कोई प्रश्न हो भी कैसे सकता है।

सभी शिष्यगण अहर्निश सेवा-परिचर्या में लगे थे। भक्ति-भावना से ओत-प्रोत गुरुभक्त श्रावकगण अपना-अपना व्यवसाय, सुख-सुविधाएँ छोड़, गुरुदेव की सेवा में ही उपस्थित रहने लगे। किसी का भी मन घर लौटने को नहीं होता। डॉक्टर एस. आर. मेहता, डॉक्टर राकेश मेहता एवं वैद्य सम्पतराज जी मेहता पूर्ण श्रद्धा-भक्ति व विवेक के साथ मर्यादानुसार उपचार में सन्नद्ध थे। परन्तु गुरुदेव अपनी मस्ती में मस्त थे। ८ अप्रेल ९१ को गर्मी के बावजूद सायंकाल चौविहार-त्याग के समय जल भी अत्यन्त अल्पमात्रा में ही लिया।

- तेले की तपस्या

९ अप्रेल ९१ मंगलवार प्रथम वैशाख कृष्णा दशमी को सन्तों के द्वारा आग्रहपूर्ण निवेदन किए जाने पर भी

आपने पेय स्वीकार नहीं किया और आपने उपवास का संकल्प कर लिया। कृष्णा दशमी को आपके वर्षों से मौन रहता था। इस दिन पूज्यवर वर्षों से चिन्तामणि भगवान पार्श्वनाथ का जप-स्मरण एवं एकान्त ध्यान साधना के साथ आत्मरमण करते थे। दूसरे दिन १० अप्रेल को भी आपने पारणा नहीं कर बेला तप कर लिया। ११ अप्रेल को सन्तों को पारणक की आशा थी, किन्तु वह भी पूर्ण नहीं हुई। आचार्य श्री मन ही मन अन्तिम मनोरथ की उत्कृष्ट साधना के लिए दृढ़ संकल्प कर चुके थे। ७० वर्ष की सुदीर्घ संयम-साधना में आपने एक से अधिक बार तेले की तपस्या नहीं की थी, किन्तु यह द्वितीय तेले का तप अद्वितीय लक्ष्य की पूर्ति का मजबूत सोपान सिद्ध हो रहा था। शरीर की अशक्तता का कोई अर्थ नहीं था। आत्मशक्ति एवं मनोबल की विजय यात्रा अपना लक्ष्य पूर्ण करने की ओर अग्रसर थी। आपका मुख-मण्डल अद्भुत दिव्य आत्म-तेज से ज्योतिर्मान था।

तेले का तप पूर्ण होने पर सन्तों को आशा थी, कि अब गुरुदेव अवश्य ही पारणक कर लेंगे, परन्तु १२ अप्रेल ९१ को सूर्य की किरणें तो उदित हुईं, किन्तु पारणक कराने की सन्तों की अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकी। सुशीला भवन के बाहर दर्शनार्थियों की अपार भीड़ थी। हर कोई एक दूसरे से पूछ रहे थे-गुरुदेव ने पारणा किया या नहीं? सभी संतमुनिवृन्द, महासती-मण्डल एवं संघ के कार्यकर्ताओं का मन अधीर हो रहा था। सभी ने पुनः गुरुचरणों में निवेदन किया कि भगवन् ! आज तो अब पारणक करावें। पारणक के लिये पुन: पुन: निवेदन करने पर शारीरिक चेष्टाओं से स्पष्ट इनकार कर दिया। आचार्यप्रवर से पृच्छा करने पर उन्होंने अपने स्मित मुख-मण्डल से सहज ही संथारा ग्रहण करने की भावना व्यक्त की। किन्तु सबको यह आसानी से स्वीकार्य कहाँ था? **काल-चक्र अबाध गति से अपने कदम बढ़ाता जा रहा था तो वे मृत्युंजयी महापुरुष उस पर विजय श्री का वरण कर मरण को अपने साधक जीवन का आदर्श बना, एक नया कीर्तिमान रच रहे थे। सैंकड़ों साधक अपने जीवन का निर्णय लेने जिन श्री चरणों में उपस्थित हुए, आज उसी नियामक के जीवन की निर्णायक घड़ी सबके सामने थी। निर्णय तो वह महासाधक कभी का ले चुका था, संघ को तो मात्र उस पर अपनी स्वीकृति (चतुर्विध संघ की स्वीकृति) की मुहर लगानी थी। अन्ततः श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म.सा., श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म.सा.प्रभृति सभी संतगण, वहाँ उपस्थित रत्नवंशीय साध्वी-मण्डल व संघ के अग्रगण्य श्रावक परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पूज्य भगवन्त ने जीवनपर्यन्त हमारे जीवन को आगे बढ़ाने में, संघ एवं जिनशासन की सेवा करने में हमारा मार्गदर्शन किया है, उन महापुरुष ने जीवन मे सदैव दिया ही दिया है, कभी कुछ माँगा नहीं, आज जीवन की इस सांध्य वेला में मांगा भी है तो पंडित मरण में सहयोग। अतः इस ऊहापोह की घड़ी में अपने हृदय को मजबूत कर गुरुदेव की भावना के अनुरूप उनके अभीष्ट पाथेय की प्राप्ति में सहयोग देना ही हमारा एक मात्र कर्त्तव्य है।**

- संथारा-समारोहण

गुरुदेव संथारा करने के लिए तत्पर थे। सभी अवाक् थे - अपने अन्तिम मनोरथ 'संथारा' की कितनी प्रबल अदम्य आकांक्षा, कैसा दृढ़ अभिनिश्चय, जीवन से कितनी निस्पृहता ! त्याग के प्रबल आग्रह के समक्ष राग को झुकना ही पड़ा। एक ओर गुरुदेव के अब अधिक सान्निध्य से वंचित हो जाने का द्वन्द्व, तो दूसरी ओर गुरुवर्य की साधना के दिव्य शिखर पर आरोहण की प्रसन्नता थी। अन्ततः हर्षमिश्रित भारी मन से चतुर्विध संघ ने गुरुवर्य की प्रकृष्ट भावना का समादर करते हुए संथारा ग्रहण करने की सहमति प्रदान कर दी।

जब श्रद्धेय श्री मानमुनिजी म.सा. एवं श्रद्धेय श्री हीरामुनिजी म.सा. संथारे की विधि पूर्ण करा रहे थे तब उपस्थित चतुर्विध संघ के सदस्य स्तब्ध होकर इस भव्य प्रकृष्ट आरोहण को अपलक निहार रहे थे। उन महापुरुष के दिव्य आभामय मुखमण्डल पर अलौकिक आत्म-ज्योति प्रकट हो रही थी तो अपने अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति का परमतोष भी झलक रहा था। उनके रोम-रोम में अपार उत्साह था। वस्तुतः दृढ़ संकल्पव्रती, श्रमण श्रेष्ठ की चिर संचित अन्तर्भावना आज साकार होने जा रही थी।

"जग मरण से डरत है, मो मन परमानन्द।
कब मरस्यां कब भेंटस्या, सहजे परमानन्द॥"

श्रद्धेय मान मुनिजी म.सा. द्वारा विधि पूर्ण कराये जाने के बाद जब आजीवन (तिविहार) आहार-त्याग के प्रत्याख्यान का पाठ श्रवण कराया जा रहा था, **भगवन्त ने पूर्ण सचेतन सजग अवस्था में स्वयं अपने श्रीमुख से 'वोसिरामि' शब्द का उच्चारण कर संथारा ग्रहण कर लिया।** साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका सभी भारी मन से आत्मसमाधिस्थ अपने आराध्य उन युग-निर्माता, युग-मनीषी, युग-प्रभावक गुरुवर्य को नत मस्तक हो, भाव-विह्वल हो, नमन कर रहे थे। **जीवन के उषा काल में ही साधना करते जिस महापुरुष ने भेद-ज्ञान का साक्षात्कार कर यह अनुभव कर लिया था कि यह शरीर 'मैं' नहीं, 'मैं' उसमें विराजित आनन्दघन आत्मा हूँ, तभी से उनकी समग्र साधना निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती गई। आज लगता है, उनकी समूची संयम-जीवन की वह सुदीर्घ साधना इस समाधिमरण के लिए की गई तैयारी थी।** योजनाबद्ध रीति से संथारा ग्रहण करने का यह शताब्दी का अप्रतिम उदाहरण था। पहले दवा बन्द, फिर अन्नाहार बन्द, फिर पेय बन्द एवं सम्बन्धित सम्प्रदायों के प्रमुख श्रमण वरेण्यों को क्षमा-याचना के पत्रों के साथ चतुर्विध संघ एवं प्राणिमात्र से क्षमायाचना पूर्वक तेले की तपस्या - यह था संलेखना का सच्चा स्वरूप और संथारे की भूमिका।

सबका आग्रह उन्हें रोक न सका, शिष्यों के स्नेह व भक्तों की भक्ति भी उन्हें बांध नहीं सकी, क्योंकि वे निकट भवी महासाधक तो सभी बन्धनों से मुक्त होने की ओर सतत अग्रसर थे। इस कठोर साधना पर आगे बढ़ना उनके अनन्त मनोबल का ही तो परिचायक है। पूज्य भगवन्त तो अन्तर्ज्योति जगा यही सोच रहे थे-

मैं हूँ उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया-धूप।
दृश्य जगत पुद्गल की माया, मेरा चेतन रूप।
पूरण गलन स्वभाव धरे तन, मेरा अव्यय रूप॥
मैं न किसी से दबने वाला, रोग न मेरा रूप।
'गजेन्द्र' निज पद को पहचाने, सो भूपो का भूप॥

यह तन मेरा नहीं, यह दुर्बलता, यह अशक्तता, ये रोग मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, मैं तो अविनाशी, अजर, अमर, शुद्ध, शाश्वत आत्मा हूँ, मुझे तो मेरा स्वरूप प्रकट करना है, सभी बन्धनों को तोड़ कर मुक्त होना है।

आत्मसमाधिस्थ पूज्य चरितनायक के सूर्य सम दैदीप्यमान चेहरे से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो गुरुदेव अपने अप्रतिम आत्म-बल से कराल काल पर विजय-वैजयन्ती फहराने को इस अध्यात्म-संग्राम में सन्नद्ध होकर कर्म-शत्रुओं को परास्त करने को कटिबद्ध हैं। वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से निरन्तर अपनी आत्मा को ऊँचा उठा कर मुक्तिश्री की ओर बढ़ रहे थे। वीतरागता की उच्च स्थिति पाने को समुत्सुक इन महाश्रमण को सहयोग देने के लिए सन्तवृन्द एवं सतीवृन्द भवभयहारिणी जिनवाणी के आगम पाठ एवं अध्यात्म-स्वरूपबोधक भजन पूज्य गुरु-चरणों में सुनाने को उद्यत थे।

आचार्य श्री के स्वास्थ्य एवं संथारा विषयक समाचार देशभर के जैन एवं जैनेतर समाज में कर्णाकर्णि तीव्रता से प्रसारित हो चुके थे। एक आचार्य को संथारा ! सदियों में होने वाली दुष्कर घटना ! देश के प्रमुख संत-सतियों के यहां से भी स्वास्थ्य एवं संथारा विषयक-पत्र आने लगे।

आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म.सा. का अहमदनगर से जो पत्र प्राप्त हुआ, उसका कुछ अंश इस प्रकार था–

"साधना का चरम लक्ष्य पण्डित मरण है। आचार्य श्री जी ने अपने शरीर पर से ममत्व उतार दिया है, यह उनकी उच्च साधना का द्योतक है।"

"संयम-जीवन में आचार्य श्री जी के साथ कई बार मिले हैं, साथ रहे हैं, शरीर दो थे, किन्तु विचार एक थे, दूध पानी की तरह रहे हैं। आचार्य श्री जी ने भी यही फरमाया है कि मेरी भी वृद्धावस्था है । शरीर के पुद्गल ढीले पड़ रहे हैं, मेरी ओर से या मेरे साथ रहने वाले अन्तेवासी सन्तों की ओर से या मेरे आज्ञानुवर्ती सन्तों की ओर से आपको कोई कष्ट पहुँचा हो, मन दुःखाया गया हो तो मैं क्षमायाचना करता हूँ।"

तपस्वीराज श्री चम्पालालजी म.सा. ने शास्त्री नगर, जोधपुर से २०.३.१९९१ को लिखवाये पत्र में पारस्परिक क्षमायाचना के अनन्तर स्पष्ट किया - "आप श्री ने दोनों सम्प्रदायों के पारस्परिक प्रेम संबंध एवं मैत्री-सम्बन्ध के विषय में जो शुभ भावना व्यक्त की है, उसका हम हृदय से सत्कार, सम्मान एवं आदर करते हैं। हमारी भी यही भावना है कि इन दोनों सम्प्रदायों में वर्तमान में जो मैत्री-सम्बन्ध एवं प्रेम-सम्बन्ध बना हुआ है वह वैसा ही बना रहे, बल्कि उसमें उत्तरोत्तर और वृद्धि होती रहे, ऐसी हमारी भावना है।"

श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री नानालालजी म.सा. ने १३ अप्रेल १९९१को मांडल-चौराहा से जो संदेश प्रेषित कराया, उसका अंश प्रस्तुत है–

"आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने वीतराग शासन में जो सेवाएं अर्पित की वे सदा प्रेरक रहेंगी। आचार्य श्री विशुद्ध ज्ञान एवं निर्मल आचरण के पक्षधर रहे हैं। आचार्य श्री के प्रभावक जीवन की अमिट रेखाएँ सदैव भव्य मुमुक्षु आत्माओं को प्रेरणाएँ प्रदान करती रहें तथा वे अपने स्वीकृत 'सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइं' के पथ को वरण करने में सन्नद्ध रहें, यही मंगल मनीषा है।"

विजयनगर से शासन प्रभाविका महासती श्री यशकुंवरजी म.सा. के यहाँ से १५ मार्च ९१ को प्रेषित पत्र के अंश बहुत ही भावपूर्ण हैं –

"जिनशासन की अमूल्य निधि, जिनशासन की गरिमा, संयम-साधना के महास्रोत, ज्ञान सूर्य, पावन पथ के राही, स्वाध्याय संघ के प्रणेता, सूर्य सम तेजस्वी, चन्द्र सम शीतल, सागर सम गंभीर, महा मनीषी, महायशस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, उपमातीत व्यक्तित्व, जिनशासन प्रभावक, आराध्य आचार्यप्रवर की अस्वस्थता के समाचार ज्ञात कर मन पीड़ा से अभिभूत हो उठा, और होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि आपश्री की कृपा दृष्टि जो सदैव रही है। आपश्री के पावन सान्निध्य में पावन श्री चरणों में बैठकर असीम आनंद की अनुभूति हुई थी, मन अपरिमित शान्ति से परिपूर्ण बना था। कल्मषहारिणी पतितपावनी, कल्याणी, जिनवाणी आप श्री के मुखारविन्द से श्रवण कर हृदय बड़ा प्रमुदित हुआ था। आप श्री के पावन दिव्य दर्शन लाभ से इन प्यासे नयनों की प्यास बुझायी थी। आपश्री के अगाध ज्ञानसागर की कुछ ज्ञान बूँदे पाकर मन प्रसन्नता से झूम उठा था, वे क्षण जो इतने पावन थे, आनन्द से परिपूर्ण थे, कैसे उन अमूल्य क्षणों को विस्मृत कर दें। आज भी अतीत के स्वर्णिम क्षणों का दृश्य नेत्रों के समक्ष साकार होता हुआ प्रतीत होता है। आप श्री की स्मृति

होती ही रहती है। **मन चाहता है कि पुण्यात्मा के पुनीत दर्शनों का लाभ मिल जाए, ये प्यासे नयन दर्शन लाभ पाकर धन्य बन जायें, दिव्य वचनामृत पान कर कर्णयुगल पावन बन जायें।**

श्रमण संघ के श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री पुष्करमुनि जी म.सा., उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी प्रभृति मुनिवृन्द ने क्षमा - याचना के पत्र का २० मार्च १९९१ को खण्डप के निकट मोरड़ा से जो पत्र प्रेषित कराया उसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है-

"पत्र पढ़कर हृदय गद्‌गद् हो उठा। आचार्यप्रवर एक महान् जागरूक पवित्र आत्मा हैं जिनके अन्तर्हृदय से क्षमा-याचना जैसी शब्दावली प्रगट हुई है। आप कितने महान् हैं इस शब्दावली से स्पष्ट घोषित है । अपराध छोटों से हो सकता है, बडों से नहीं। वर्षों से आपकी असीम कृपा हमारे पर रही है। आपश्री श्रमण संघ में थे, तब चिरकाल तक साथ में रहने के प्रसंग भी आए। साथ में कार्य करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। पर किन्हीं विशेष कारणों से आपश्री ने श्रमण-संघ से त्याग-पत्र दे दिया। तो भी आपका हार्दिक स्नेह पूर्ववत् ही चलता रहा। "

पूज्य श्री पन्नालालजी म.सा. की परम्परा के प्रवर्तक श्री सोहनलाल जी म.सा. द्वारा १४ मार्च १९९१ को देवलिया कलां (जिला अजमेर) से लिखवाए गये पत्र का अंश -

"आचार्य श्री स्वयं अप्रमत्त एवं जागरूक संयम शील महान् आत्मा हैं, उनका सान्निध्य ही समाज की धरोहर है। वे अपनी आत्म-साधना में निरन्तर सयत्न रहे हैं एवं अनेकों भव्यात्माओं को भी जागरूक कर अनन्त उपकार किया है। प्रवर्तक श्री जी पुनः आचार्य श्री जी म.सा. के चरणों में वन्दन अर्ज कर सुख शान्ति पुछवाते हैं।"

गोहाना रोड़, जीन्द से शासन प्रभावक श्री सुदर्शनलाल जी म.सा. **के** द्वारा प्रेषित १४ मार्च ९१ का संदेश–.

"आपश्री जी वीरप्रभु के जिनशासन के देदीप्यमान रत्न एवं उज्ज्वल शृंगार हैं। त्याग-तप-स्वाध्याय-प्रवचन -प्रभावना एवं अनाग्रहवृत्ति के मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। ज्योतिर्धर आचार्यों की आठ गणि सम्पदाओं एवं विद्वद्वरेण्य वाचकों की सारणा, वारणा एवं धारणा रूप लोकोत्तर शक्तियाँ आपश्री में साक्षात् परिलक्षित होती हैं।"

डेह (नागौर) से आचार्यकल्प श्री शुभचन्द्र जी म.सा. द्वारा १४ अप्रेल ९१ को प्रेषित सन्देश –

"परम पूज्य आचार्य प्रवर ने महान् कल्याणकारी वीतराग भगवान् के सिद्धान्तों के अनुसार यावज्जीवन अनशन स्वीकार करके सुदीर्घ संयमी जीवन के साथ महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है। धन्य हैं आचार्य श्री जो सेनापति की भाँति जीवन-क्षेत्र में वीरता से कदम बढ़ाते हुए विजयश्री के वरण हेतु प्रस्तुत हुए हैं। देह की नश्वरता को समझ कर अपना ममत्त्व त्याग कर आत्मस्थ होने के लिए आत्म-यज्ञ प्रारम्भ किया है, जो वस्तुतः स्तुत्य एवं स्पृहणीय है।"

जयपुर से तेरापंथ संघ के **आचार्य श्री तुलसी जी** से भी संदेश प्राप्त हुआ – "आप श्री ने अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य किया है। जिस उत्कृष्ट समाधियोग में आप बढ़े हैं, मेरी यही मंगल कामना है कि अन्त समय तक वैसे ही उत्कृष्ट परिणाम बने रहे।"

त्रिस्तुतिक समुदायवर्ती जयन्तशिशु मुनि श्री धर्मरत्नविजयजी महाराज द्वारा १७ अप्रेल ९१ को औरंगाबाद से प्रेषित सन्देश का अंश–

"सचमुच आपकी यह पहल सराहनीय है और रहेगी। भविष्य में लिखे जाने वाले इतिहास के मुख्य पृष्ठों पर यह विवरण उत्साहवर्धकता पूर्वक स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा तथा वर्तमान में आस्तिक एवं नास्तिक दोनों प्रकार के

मानवों के हृदय पटल पर स्थायीरूपेण टंकित होगा। मुझ जैसे पामर अज्ञानी के लिये निश्चित ही आपका यह कदम सदैव प्रेरणास्रोत बन प्रवहमान रहेगा। आपश्री की जागृत हुई शुभ भावना को निर्विघ्नतया निर्बाध रूप से सच्चे साधक के स्वरूप में सफलता प्राप्त होवे, ऐसी परमाराध्य परम इष्ट पूज्य गुरुदेव श्री से निरन्तर प्रार्थना करता हूँ एवं आशा रखता हूँ कि **त्यागवीर , तपवीर, ज्ञानवीर, ध्यानवीर, महावीर, धीर, वीर, गम्भीर, सन्त महन्त ऋषिमुनि भगवन्त के परम आशीर्वाद से मुझे भी पण्डितमरण की प्राप्ति हो, इसी सद्कामना के साथ ।**"

पूज्य श्री प्रकाशचन्द जी म.सा आगम रत्नाकर श्री रामप्रसादजी म. आदि का सांगरिया (राज.) से प्रेषित पत्र का अंश "**आपने जो जिनवचन अथवा जिन धर्मामृत से विभूषित देह पाया, उस भवन में आज धर्मरत्नों की स्वर्ण वृष्टि हो रही है ।** मेरा (हमारा) हृदय आपका अभिनन्दन कर रहा है। आपने जो मोक्ष साधनोपायभूत संथारा लिया है, वह मोक्षार्थ की गई परमार्थ-साधना की पराकाष्ठा है, तीर प्राप्ति है।

देवावि देव लोए भुंजंता बहुविहाइं भोगाइं।
संथारं चिंततां आसणसयणाइं मुंचंति ॥(संथारग पइन्ना)

देव भी देवलोक में विविध भोगों में रत होने पर भी (आप जैसों के) संथारे का खयाल आते ही आसन, शयन छोड़कर (आपकी वंदना करते होंगे) आपने जो जीवन संग्राम अब तक किया, आज उसके शीर्ष पर पहुँच गये हैं, विजय श्री आपके निकट ही है। आराधना पताका उच्च भावों की पावन पवन से प्रेरित होकर उच्चाकाश में फहरा रही है। **तप-संयम के शस्त्रों से सभी मुनिवर सुसज्जित होते हैं, पर संलेखना रूप सुदर्शन चक्र तो किसी-किसी संयमी चक्रवर्ती के हाथ आता है, क्योंकि धारण करने की तथा प्रयोग करने की क्षमता हर एक में नहीं होती है।**

• उमड़ पड़ा श्रावक-समुदाय

पूज्यपाद आचार्य भगवन्त के संथारा-ग्रहण करने के समाचार देश-देशान्तर में विद्युत वेग से फैल गये। जिसने भी सुना अवाक् रह गया, अनायास विश्वास ही नहीं कर पाया। सभी अपने-अपने मन में विविध कल्पनाएँ करने लगे—क्या हम श्रमण भगवान् महावीर के शासन के इस दिव्य देदीप्यमान नक्षत्र के प्रभामण्डल से अब वंचित हो जायेंगे? रत्नवंश के इस विराट् कल्पवृक्ष जिसने अपनी शीतल छाया से अपने-पराये का भेद न रख कर सभी को अपना सुखद सान्निध्य प्रदान किया, जिन-शासन सेवा में जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया, सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार एवं इनके सन्देश को घर-घर तक पहुँचाने के लिए दीर्घ विहार करने में कभी परीषहों की परवाह न की, विमल संयम-साधना एवं आचार प्रधान संगठन जिन्हें सदैव अभीष्ट रहे, साम्प्रदायिक वैमनस्य जिन्हें कभी छू भी न पाया, युवा पीढ़ी को व्यसन-मुक्त बन्धुभाव में संगठित करने में जो अपने जीवन के सन्ध्याकाल में भी पीछे नहीं रहे, अलभ्य गुण संयोग के धनी इन युग प्रधान आचार्य भगवन्त के संरक्षण से क्या हम वंचित हो जायेंगे?

पर जब सबने निमाज से विश्वस्त समाचार सुने, सभी स्तब्ध रह गये, सर्वत्र एक मौन सन्नाटा सा छा गया। सम्पूर्ण जैन समाज में एक ही चर्चा थी-आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने यावज्जीवन संथारा ग्रहण कर लिया है-धन्य-धन्य भगवन्। आपका समग्र अप्रमत्त संयमी जीवन जिनशासन की कीर्तिपताका को दिग्-दिगन्त में फहराने में सन्नद्ध रहा, तो आज आप संथारा समाधिपूर्वक मरण-विजय की ओर अग्रसर हो,आने वाली पीढ़ियों के लिये एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। सभी मन ही मन इस महापुरुष के चरणों में नत मस्तक थे।

जिसने भी सुना, उसे जो भी साधन मिला, उससे शीघ्रातिशीघ्र पूज्य चरणों में पहुँचने हेतु चल पड़ा। दूर-दूर से दर्शनार्थी उमड़ उमड कर आने लगे, कहीं मैं दर्शन-लाभ से वंचित न रह जाऊँ, इस भावना से मानो जो जहाँ खड़ा था, वहीं से दौड़ पड़ा। निमाज ग्राम महानगर बन गया,गंगवाल भवन तपोधाम बन गया। आसपास के क्षेत्रों से जैनेतर बन्धु भी विशाल संख्या में इस योगिवर्य की जीवित आत्म-समाधि को देखने व पूज्यराज के पावन दर्शन से अपने आपको धन्य करने उमड़ पड़े। दर्शनार्थियों की भारी भीड़ गुरुदेव के दर्शन को आतुर थी, हर कोई शीघ्रातिशीघ्र दर्शन पाने को तत्पर था। अत: उन भावुक भक्तों को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन था, परन्तु संघ के कार्यकर्ताओं एवं निमाज श्री संघ के सेवाभावी स्वयंसेवकों ने अचूक सूझबूझ एवं समन्वित कार्यशैली से कुशल व्यवस्था की। यह ध्यान रखा गया कि सभी दर्शनार्थी योगिराज के दर्शन कर सन्तुष्ट हो सकें, अनुशासन बना रहे व आत्मभाव में लीन पूज्यवर्य की आत्म-साधना में भी कोई व्यवधान न हो। संघ के अधिकारीगण, कार्यकर्तागण अपनी अपनी व्यस्त दिनचर्या को छोड़ अपने आराध्य गुरुदेव की इस अन्तिम सेवा के लाभ हेतु उपस्थित हो गये, एवं वहाँ रुक कर व्यवस्था सम्पादन का, सेवा का लाभ लेने लगे। सभी आगत दर्शनार्थी बन्धु गुरु-दर्शन का लाभ व्यवस्थित व अनुशासित रूप से ले रहे थे तथा इस अपार जनसमूह की सेवा में निमाजवासी पूर्ण समर्पण भाव से संलग्न थे। किसी का भी मन वहाँ से लौटने को ही नहीं होता था। सभी भक्तगण व वातावरण मानों गुरु-चरणों में दत्तचित्त हो गये।

जब सभी भक्तजन अपने आराध्य की सेवा में समर्पित थे तो गुरुभक्त नागराज (सर्प) भी कैसे पीछे रहते ! जिस दिन पूज्य गुरुदेव ने संथारा ग्रहण किया, उसी दिन मध्याह्न के समय सुशीला भवन में नागराज दृष्टिगत हुए, पर बिना किसी को कोई नुकसान पहुँचाये, विलुप्त हो गये। षटकाया-प्रतिपालक संतजनों एवं रोम-रोम से प्राणिमात्र के प्रति करुणा सरसाने वाले, मैत्री, प्रेम, दया एवं स्नेह-सुधा के सागर पूज्य भगवन्त के दर्शनार्थ नागराज का आना सहज ही था, कोई आश्चर्य की बात नहीं। जिसे भी इस घटना की जानकारी मिली, हर व्यक्ति अपनी-अपनी सोच के मुताबिक अटकलें लगाने लगा। कुछ व्यक्ति इसे धरणेन्द्र का दर्शन हेतु पदार्पण, कुछ इस घटना को सतारा में पूज्य भगवन्त द्वारा बचाये गये नाग का आगमन एवं अपने आराध्य प्रभु के इस अन्तिम साधना-काल में दर्शन करना स्वीकार कर रहे थे।

गुरु भगवन्त के संथारा-ग्रहण करने के महासंकल्प के इस अवसर पर अपना अनुमोदन व्यक्त करने में प्रकृति भी पीछे नहीं रही। जब प्रत्याख्यान स्वीकार किये गये उस समय आकाश बिलकुल साफ था, वर्षा का मौसम भी नही था। अपराह्न अनायास ही गगन मेघाच्छादित हो गया एवं ठंडी हवाओं के साथ मूसलाधार वर्षा हुई। आगन्तुक दर्शनार्थियों ने बताया कि यह वर्षा भी मुख्यत: निमाज के इलाके में ही हुई है। अनायास वर्षा से ऐसा लग रहा था मानो देवराज इन्द्र भी गड़गडाहट के साथ आत्मसमाधिस्थ श्रमणरत्न पूज्य हस्ती के गुणगान व्यक्त कर रहे हों। प्रकृति भी इन योगिवर्य के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन समर्पित कर शीतलता का सुखद संयोग प्रस्तुत कर रही थी। वस्तुत: महापुरुष जहाँ-जहाँ विराजते हैं, वहाँ-वहाँ सभी प्रतिकूलतायें भी अनुकूलताओं में परिणत हो जाती हैं तो फिर **भला यहाँ तो साधना के साक्षात् साकार स्वरूप आचार्य हस्ती श्रमण-साधना के शिखर पर आरुढ़ हो समाधि में लीन थे। उनके प्रबल पुण्यप्रताप व साधना के आगे नागराज (सर्प) , देवेन्द्र (वर्षा) अथवा प्रकृति भी गुणानुवाद कर रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं।**

• अखण्ड जाप

अपने आराध्य गुरुवर्य की इस अप्रतिम साधना का अनुमोदन करने, वहाँ आगत दर्शनार्थी सुश्रावकों ने भी

भवन के पीछे बरामदे में महामंत्र नमोकार का अखण्ड जाप प्रारम्भ कर दिया। दर्शनार्थी बन्धु बिना प्रेरणा के जाप में बैठकर अपने आपको कृतकृत्य समझते। पूज्य गुरुदेव के तप यज्ञ के अवसर पर सामूहिक रूप से समवेत-स्वर में जाप करते हुए श्रावकगण पुरातन युगीन ऋषि-आश्रम का बोध कराते। **पूज्य गुरुवर्य इस मृत्युञ्जय यज्ञ में अपने शरीर को होम रहे थे। संत-सतीगण भी आगम पाठों का उच्चारण कर रहे थे तो भक्तगण भी जप व तप द्वारा अपनी-अपनी आहुति दे रहे थे।**

जहाँ पूज्य गुरुदेव का समग्र जीवन, उनका प्रभापुञ्ज व्यक्तित्व व महनीय कृतित्व सदैव आगत व्यक्तियों को प्रेरित करता रहा, वहाँ आज समाधिमरण की ओर बढ़ाये गये उनके कदम अपना अद्भुत प्रभाव डाल रहे थे। इन तपोपूत महासाधक के आत्म-तेज को दृष्टिगत कर बिना प्रेरणा के ही प्रत्येक आगत दर्शनार्थी की यही भावना हो उठती कि पूज्य गुरुदेव के इस मृत्युञ्जय-यज्ञ में उसे भी तप एवं नियम का संकल्प कर अपनी ओर से आहुति अवश्य देनी है। धन्य गुरुदेव! आज आप भले ही मौनस्थ हैं, पर आज आपका यह तपोमय मौन प्रवचन से भी अधिक प्रेरणा प्रदायी बन हजारों पतितों को पवित्र कर रहा है।

• मुसलमान भाइयों की अनूठी श्रद्धा-भक्ति

संथारा काल में ही मुसलमानों की ईद का प्रसंग उपस्थित हुआ। अंहिसा के पुजारी आचार्य देव जिन्होंने सदैव छह काया के जीवों को अभयदान दिया, करुणा व दया से जिनका रोम-रोम आप्लावित था, प्राणिमात्र के प्रति जिनके हृदय में सहज मैत्री व स्नेह की भावना थी, ऐसे पूज्य भगवन्त के इस महात्याग से प्रेरित हो, मुस्लिम भाई-बहिनों के हृदय भी परिवर्तित हो गये। रोजों की समाप्ति के अवसर पर वे सभी **मुस्लिम भाई– बहिन, जिनका सिर खुदा के सिवाय किसी के आगे झुकता नहीं, इस अनूठे फकीर के दर्शन करने व उनके आगे सिजदा करने स्वतः उपस्थित हुए** और लगभग पौन घण्टे तक दर्शन होने तक बिना धैर्य खोये अनुशासित पंक्ति में खड़े रहे। आत्म-समाधिस्थ उन योगिराज के मंगल दर्शन कर उन मांस-विक्रेता भाइयों के मन में सहज ही अहिंसा व करुणा के संस्कार जागृत हुए और **उन्होंने पूज्य गुरुराज के संथारा चलने तक मांस-विक्रय व पशुवध करने का त्याग कर दिया। यह था अहिंसा भगवती एवं महासाधक के अतुल आत्मतेज व विमल संयम-साधना का साक्षात् स्वरूप।** वस्तुतः जहाँ भी महापुरुष विराजते हैं वहाँ का स्थान ही नहीं समूचा वातावरण ही निर्मल बन जाता है, सभी प्राणी परस्पर वैर-विरोध व हिंसा को भूल कर अलौकिक शांति का अनुभव करते हैं। हिसक भी अहिंसक बन जाते हैं। यही कारण था कि मांस-विक्रय जिनकी आजीविका है उन भाइयों ने भी अपनी आजीविका का त्याग करके अबोध प्राणियों को अभयदान देकर इन महापुरुष के प्रति एक अनूठी श्रद्धा व्यक्त की। जहाँ बड़े से बड़े भक्त भी अपना व्यवसाय सहज बन्द नहीं कर सकते, वहाँ संथारे की अवधि तक अपनी आजीविका का भी त्याग कर उन मुस्लिम भाइयों ने अत्युत्कृष्ट अश्रुतपूर्व आदर्श उपस्थित किया। जिसने भी सुना, उन भाइयों के त्याग के अनुमोदन एवं पूज्य गुरुदेव के पुण्य प्रताप की प्रशस्ति किये बिना नहीं रह सका।

धन्य गुरुदेव ! आपने अपनी साधना के प्रताप से अनहोनी (दुष्कर) को होनी कर दिखाया। भगवन्! आप जैसे महापुरुष के लिये कोई भी कार्य अशक्य नहीं है। हिंसा से ही अपना जीवन व्यापार चलाने वाले भाई-बहिन नवीन तप-त्याग अंगीकार कर अपने जीवन को आगे बढ़ाएँ तो इसमें क्या आश्चर्य ? अभयदान के इस महान् कार्य में भाई श्री अल्ताफजी व निमाज निवासी अनन्य गुरु भक्त श्री तेजराजजी, गणेशमलजी भण्डारी की प्रबल प्रेरणा

रही। सुशीला भवन के शय्यातर श्री सोहनलालजी गंगवाल ने भी अध्यात्मयोगी के चरणों में सेवा का अपूर्व लाभ लेकर स्वयं को कृतकृत्य समझा।

• निमाज बना तीर्थधाम

संथारे का समय व्यतीत हो रहा था। अनन्त उपकारी, परमाराध्य, तपोधन, श्रमणश्रेष्ठ आचार्य गुरुवर्य की अन्तिम सेवा के स्वर्णिम सुयोग को अपना अहोभाग्य समझ कर सभी मुनिवृन्द सर्वत:समर्पित भाव से गुरुचरण सेवा एवं सान्निध्य का अनुपम लाभ उठा रहे थे। किसी भी शिष्य का मन गुरुचरणों को क्षण भर के लिये भी छोड़ने का नहीं होता, आवश्यक कार्यवशात् इधर-उधर जाना पड़ता, परन्तु मन वहीं लगा रहता था। यही संकल्प रहता कि कार्य सम्पन्न होते ही पूज्य भगवन्त की सेवा में जाकर बैठें। उस अलौकिक तेज:पुञ्ज की प्रशान्त मुख-मुद्रा से दृष्टि हटती ही नहीं थी, मन अघाता ही नहीं, नयन परितृप्त ही नहीं होते थे।

ज्यों-ज्यों संथारे का समय आगे बढ़ रहा था, दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। समीपवर्ती नगरों व आसपास के क्षेत्रों से भक्तगण ही नहीं वरन् जाति,धर्म व सम्प्रदाय की दीवारों से परे सभी वर्गों के लोग एक बार दर्शन कर जैसे परितृप्त ही नहीं हो पाते, घर लौटने पर भावना पुन: पुन: दर्शन की होती और वे भावुक भक्तजन सहज ही योगिवर्य के दर्शन को लौट पड़ते तो दूरस्थ क्षेत्रों के भक्तजन व दर्शनार्थी बन्धु भी अपने व्यवसाय व काम-काज को छोड़, दर्शन-लाभ लेने हेतु उमड़ पड़े। सैकड़ों हजारों भक्तगण तो परम पूज्य गुरुदेव के अंतिम सान्निध्य, मंगल दर्शन व संघ-सेवा की पावन समर्पित भावना से अपनी गृह-सुविधाओं व कारोबार का मोह छोड़ सपरिवार निमाज में ही बस गए। हर व्यक्ति की भावना यही रहती कि पुन: पुन: परम पावन गुरुदेव के मंगल दर्शन करते रहें, अधिकाधिक समय जप, तप व स्वाध्याय में लीन रहें, यथाशक्ति अधिकाधिक नियम-व्रत अंगीकार कर अपने जीवन को आगे बढ़ाएँ। दर्शनार्थियों के सतत आवागमन से वह गंगवाल भवन का विशाल परिसर भी छोटा पड़ गया, बाहर राजमार्ग से ही दर्शनार्थियों की कतारें लग जातीं। इन अनुपम योगी की एक झलक देखने को हजारों दर्शनार्थी बन्धु, अनुशासित ढंग से घण्टों पंक्ति में खडे रहकर भी थकते नहीं, सभी का यही एकमात्र लक्ष्य कि कब नम्बर आवे, कब पतित-पावन गुरुराज के पावन मंगलमय दर्शन का लाभ मिले। गुरु के इस दरबार में सभी समान थे, न कोई विशिष्ट न कोई सामान्य।

युवा कार्यकर्तागण स्वयंसेवक के रूप में उत्साह, अभिरुचि व कुशलता से संघ के कार्यकर्ताओं के निर्देशानुसार, अपने कर्तव्य के पालन व संघ-सेवा में सन्नद्ध थे। कोई परिसर के बाहर दर्शनार्थी बन्धुओं को कतारबद्ध खड़े रहने का विनम्र अनुरोध करते, कोई परिसर के भीतर अनुशासित व्यवस्था बनाये रखने, शांति बनाये रखने में संलग्न रहते तो कुछ कार्यकर्ता गुरुदेव जहाँ विराज रहे थे, वहाँ दर्शनार्थियों को दर्शन हो और नये दर्शनार्थियों को प्रतीक्षा न करनी पड़े, यह व्यवस्था सम्भाल रहे थे। सभी साथीगण परस्पर स्नेह, सौहार्द एवं प्रेमभाव से बारी-बारी से अदल-बदल कर व्यवस्था सम्पादन में अपना सहयोग दे रहे थे। अनन्य गुरुभक्त श्री तेजराजजी भण्डारी, श्री गणेशमलजी भण्डारी दोनों भ्रातागण अपने पूरे परिवार व निमाज सकल संघ के सभी साथियों के साथ एक ओर गुरुसेवा व वहाँ विराजित सभी सन्त-सतीगण की सेवा में सन्नद्ध थे, दूसरी ओर आगत हजारों स्वधर्मी भाइयों व दर्शनार्थियों की सेवा का लाभ ले रहे थे। निमाजवासी कार्यकर्तागण प्रात: सूर्योदय के पूर्व ही सेवा में जुट जाते व देर रात तक संघ सेवा का लाभ लेते रहते। प्रात: सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन होते-होते गुरुदर्शन को लालयित भक्तों की लम्बी कतार लग जाती जो मध्याह्न १२ बजे तक अनवरत चलती रहती। पुन:१-१.३० बजे

दर्शनार्थियों की पंक्ति प्रारम्भ होती जो अपराह्न आधे घण्टे के लिए विराम के अतिरिक्त सूर्यास्त के पूर्व तक चलती ही रहती। प्रतिक्रमण के लिये सूर्यास्त के १०-१५ मिनट पूर्व दर्शनार्थियों के आवागमन को बन्द करने को कहा जाता, तब ही यह क्रम रुकता। भक्तजन इस ताक में रहते, कब मंगल दर्शन की अनुमति हो, कब हम अपने प्यासे नयनों को तृप्त करें ? कई भक्तों की इच्छा रहती कि परमाराध्य गुरुवर्य के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हो व कुछ देर गुरु-सेवा का देव दुर्लभ अवसर प्राप्त हो, पर जब दर्शनार्थियों की अपार भीड़ दृष्टिगोचर होती व समाधिस्थ गुरुदेव का वह पावन चेहरा नयनों के सामने आता तो वे भावुक भक्त अपने कर्तव्य की ओर सजग हो जाते। उन हजारों भक्तों की इच्छा पूरी करना सम्भव नहीं था व चरण-स्पर्श से समाधिस्थ गुरुदेव की समाधि में व्यवधान हो सकता था, उसी भावना से सबके लिये एक ही नियम था-बिना रुके, बिना चरण-स्पर्श किये पंक्तिबद्ध दर्शन करते जाये व चलते रहें। सभी दर्शनार्थी भाई-बहिनों ने भी स्थिति को समझते हुए पूर्ण विवेक व श्रद्धा के साथ व्यवस्था व शान्ति बनाये रखने में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

• सन्त-सन्निधि

जैन जगत् की इस दिव्य विभूति के संथारे के समाचार विभिन्न जैनाचार्यों, सन्तों एवं महासतीगण के समक्ष पहुँचते रहे, सभी का मन इन महाप्राण आचार्यप्रवर के संथारे के समाचारों से श्रद्धाभिभूत था, दूरस्थ विराजित पूज्य सन्त-सतीगण अपनी-अपनी भावनाएँ पत्रों के माध्यम से प्रेषित कर रहे थे, तो निकटस्थ सन्त मुनिराज व महासतीगण निमाज पधार कर इन योगिवर्य के दर्शन-लाभ करने को उत्कण्ठित थे। श्रद्धेय तपस्वीराज ज्ञान गच्छनायक श्री चम्पालालजी म.सा. की प्रबल भावना स्वयं पधारने की होते हुए भी अस्वस्थतावश पधारना नहीं हो सका, अतः श्रद्धेय पण्डित रत्न श्री धेवरचन्दजी म.सा. 'वीरपुत्र' ने पूज्य श्री की सेवा में पहुँचने हेतु विहार कर दिया, पर शारीरिक कारणवशात् वे पधार नहीं पाये। समताविभूति श्रद्धेय आचार्य नानालालजी म.सा. ने अपने शिष्यगण श्री ज्ञानमुनिजी म.सा.ठाणा २ को पूज्य भगवन्त की सेवा में भेजा, इधर उग्र विहार कर जयमल जैन संघ के आचार्य कल्प श्री शुभचन्द्रजी म.सा. ठाणा ३ पूज्य सेवा का लाभ लेने पधारे एवं श्री शीतलमुनिजी आदि ठाणा ३ भी गुरु-दर्शन हेतु पधारे। महासती श्री उमराव कंवरजी म.सा. 'अर्चना' आदि ठाणा, महासती श्री चेतनाजी म.सा. ठाणा ३, महासती श्री आशाकंवरजी आदि ठाणा, महासती श्री मञ्जुकंवरजी ठाणा ६ आदि महासतीगण भी पूज्य आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ पधारीं। पूज्य भगवन्त के इस अद्भुत संथारे के अवसर पर मुनि-मण्डल, महासती-मण्डल ,चतुर्विध संघ के विराजने से निमाज ग्राम एक नई चहल-पहल, नई शोभा लिये तीर्थ बन गया। सभी ग्रामवासी इस अदृष्टपूर्व दृश्य को देखकर विस्मयविमुग्ध रह जाते। गाँव की चहल-पहल व शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत होता मानो साक्षात भगवान का ही वहाँ समवसरण हो।

• आत्मरमण में लीन योगी

श्रद्धा के केन्द्र परम पूज्य गुरुदेव तो इन सबसे सर्वथा परे आत्मरमण में लीन थे, कौन आया, कौन गया, इसकी उन्हें न कोई चाह थी, न ही इस ओर कोई ध्यान था। वे आत्मसमाधिस्थ योगिराज तो अतुल आत्मबल,अदम्य उत्साह, अटल धैर्य, अथाह गाम्भीर्य व विरल शान्ति भाव के साथ सब 'पर' भावों से परे, मात्र अपनी आत्मा में ही रमण करते मग्न थे। वस्तुतः **उनकी साधना उस उत्कृष्ट अवस्था को पा चुकी थी जहाँ न तो यश व अतिशय के वशीभूत हो जीवन की कामना अवशिष्ट रहती है और न ही अशक्तता, दुर्बलता व रुग्णता**

के कारण मृत्यु की कामना। न तो उन्हें मृत्यु का कोई भय था, न ही नन्दनवन की आकांक्षा। तप साधना से दिन-प्रतिदिन शरीर कृश होता जा रहा था, पर तप, संयम व साधना का तेज मुखमण्डल पर केन्द्रित होकर एक दिव्य दैदीप्यमान आत्मज्योति को आलोकित कर रहा था। हाथों में माला लिये अनवरत जप-स्मरण का क्रम चल रहा था। कभी कभार सहज ही नयन खुलते तो उनमें मैत्री, करुणा क्षमा व अमित वात्सल्य की पीयूष धारा दृष्टिगत होती। आँखें खुली देखकर कई दर्शनार्थी भक्तों व सन्तों को भी कई बार लगता कि पूज्यवर्य अपनी स्नेहिल दृष्टि से दृष्टिनिपात कर रहे हैं, पर **वे महापुरुष तो सबके स्नेह बन्धनों से कभी के परे हो चुके थे। शिष्यों, भक्तों व आने-जाने वालों से उन्हें कोई सरोकार ही शेष न था। किं बहुना उन्हें तो अपने शरीर का भी मोह नहीं रह गया था। उनकी प्रशान्त सौम्य मुख-मुद्रा पर निस्पृह निर्लिप्त भाव सहज ही टपक रहा था। आपश्री देह से परे विदेह भाव को धारण कर अमूर्त,अविनश्वर देही की साधना में निरत थे।** "सुलभा आकृती रम्या, दुर्लभं हि गुणार्जनम्" अर्थात् आकृति से सुन्दर अनेक मिलेंगे पर रम्य आकृति के साथ गुणों का समन्वय दुर्लभ है। पूज्य गुरु भगवन्त का बाह्य व्यक्तित्व जितना सुन्दर, सम्मोहक व आकर्षक था,उससे भी शतशः गुना उनका अंतरंग व्यक्तित्व था। आचार्य श्री क्षमा, दया, आर्जव, मार्दव एवं समता के आगर तथा त्याग, तप एवं साधना की साकार प्रतिमूर्ति थे।

सहिष्णुता,क्षमा व भेदविज्ञान का जो पाठ अब तक आगम ग्रंथों व इतिहास की कथाओ में पढ़ा जाता था, वह आप श्री के संथारे में प्रत्यक्षतः देखकर प्रत्येक भक्त सहज ही श्रद्धाभिभूत था। कई शताब्दियों में ऐसे महापुरुष का सुयोग सान्निध्य संघ को मिलता है। वे सब अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं जिन्हे ऐसे अलौकिक विरल विभूति महापुरुष का साक्षात् सान्निध्य सुदीर्घ अवधि तक मिला। आपका समग्र संयमी जीवन व समाधिसाधना द्वारा मरण के वरण का यह अनूठा अभियान, दोनों ही युग-युग तक आत्मार्थी साधकों का मार्ग -प्रदर्शन करते रहेंगे।गुरुदेव की सन्निधि में बैठकर सन्तों द्वारा तो कभी महासती-मण्डल आगम-पाठ का सस्वर स्वाध्याय जारी था। कभी आत्म स्वरूप प्रकाशक भजनों की सुमधुर स्वर-लहरी वातावरण को अध्यात्म-रस से सराबोर कर देती। वह समूचा परिसर ही उस समय भवभयहारिणी पावन आगम वाणी एवं आत्म-स्वरूप प्रतिबोधक काव्यगीतिकाओं से पविंत्र बन आगन्तुक सभी दर्शनार्थियों के मनों को निर्मल बना रहा था। पंक्तिबद्ध दर्शनार्थी नयनों से अध्यात्म योगी पूज्य आचार्यदेव के मंगल दर्शन करते, तो कानों से पवित्र आगमवाणी का श्रमण कर अपने आपको प्रतिबोधित करते और मन में तप, त्याग, नियम, व्रत का नवीन संकल्प कर अपने जीवन को आवित कर रहे थे।

हजारों दर्शनार्थी जहाँ पूज्य गुरुदेव के पावन दर्शन कर धन्य-धन्य कह उठते तो कभी कभार भाव विह्वल हो मन ही मन कहने लगते कि **भगवन् ! आप जिन शासन की अनमोल मुकुटमणि हो,जैन जगत् के दिव्य रत्न हो, आप अपने अद्भुत व्यक्तित्व एवं अलौकिक कृतित्व द्वारा एक नूतन इतिहास के रचयिता हो,आप श्रुत के आधार एवं जिन शासन के संचालक हो। भगवन् ! आपने कहीं जाने की जल्दी तो नहीं कर दी ?** आपका और अधिक सान्निध्य चतुर्विध संघ को मिलता तो यह हमारा सौभाग्य होता। भावुक भक्तों की मुख-मुद्रा के भावों से प्रतीत होता-

देखो कितने नेत्र सजल हो, अपलक तुमको देख रहे।
देखो कितने हृदय व्यथित हो, आशंका को झेल रहे॥

भक्तों की यह अपार उपस्थिति पूज्य चरितनायक के साधना-सम्पूरित व्यक्तित्व व अनन्त पुण्यवानी का

प्रत्यक्ष प्रमाण था। वे योगिवर्य तो जहाँ कहीं विराजे, वही क्षेत्र तीर्थधाम बन गया, जहाँ उनके कदम पड़े, वह भूमि पावन बन गई।

अन्तर्लीन उन योगिवर्य के दर्शनार्थ जाति, वय, धर्म व पंथ की सभी दीवारें ढह गई थीं। जीवन पर्यन्त जो श्रमण-श्रेष्ठ अपनी अमोघ वाणी से लाखों श्रद्धालुओं को प्रेरित करते रहे, आज उनका संथारा हजारों दर्शनार्थी बन्धुओं की सुषुप्त अन्तर्चेतना को जागृत कर रहा था। आगत व्यक्तियों की जुबान पर रह-रह कर यह बात व्यक्त हो उठती कि इतने बड़े आचार्य प्रवर का संथारा हमने अपने जीवन में न देखा, न सुना। हाँ, आज से १९६ वर्ष पूर्व हुए महाप्रतापी आचार्य श्री जयमलजी म.सा. के संथारे की गाथाएँ अवश्य सुनी हैं।

आज पूज्य गुरुदेव के तप संथारे के १३वें दिन रविवार होने से सहज अवकाश का प्रसंग था। अथाह जनसमूह उत्ताल तरंगों की भांति समाधिलीन गजेन्द्र गुरुराज के पावन दर्शन करने को उपस्थित था। सूर्योदय की किरणों के साथ ही विविध दिशाओं से आ रहे दर्शनाभिलाषी जनसमूह लम्बी कतारों में दर्शन हेतु खड़े थे। दिन चढ़ते-चढ़ते जनसमूह ने अत्यन्त विशाल रूप ले लिया था। बाहर राजमार्ग से ही प्रारम्भ कतारे अनवरत आगे बढ़ते रहने पर भी समाप्त नहीं हो पा रही थीं।

• चौविहार-त्याग

आज पूज्य गुरुदेव के श्वास में कुछ तेजी नजर आ रही थी। सभी संतगण व सतीवृन्द गुरु-चरणों में बैठे सस्वर आगमवाणी व भजन का उच्चारण कर रहे थे। नाड़ी-गति व शरीर-चेष्टाओं में कुछ परिवर्तन प्रतीत हो रहा था। स्थिति को समझते हुए श्रद्धेय श्री मानमुनिजी म.सा. (वर्तमान उपाध्याय प्रवर) एवं श्रद्धेय श्री हीरामुनीजी म.सा. (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने परस्पर आवश्यक विचार-विमर्श के पश्चात् उन महापुरुष की पावन-पवित्र विमल भावना के अनुसार,सांयकाल ४ बजे तिविहार के स्थान पर यावज्जीवन चौविहार संथारे के प्रत्याख्यान करवा दिये। अब आशाएँ क्षीण-क्षीणतर हो रही थीं। डॉ. एस. आरमेहता भी अपने आराध्य गुरुदेव के दर्शन हेतु उपस्थित हुए। उन्होंने शारीरिक लक्षणों को देखकर अवगत करवाया कि अब मुझे गुरुदेव का अंतिम समय प्रतीत होता है।

• विनश्वर देह का त्याग

सूर्यास्त के पश्चात् सब सन्त गुरुदेव के पट्ट के चारों ओर खड़े प्रतिक्रमण कर रहे थे। श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्य श्री) ने आज पूज्य गुरुदेव को प्रतिक्रमण कराया। प्रतिक्रमण के समय संघ के अग्रगण्य श्रावक प्रतिनिधि निरन्तर गुरु-चरणों में महामंत्र नवकार जप रहे थे। प्रतिक्रमण परिपूर्ण हुआ। सभी संतों ने आज अत्यंत भाव विह्वल बन असीम श्रद्धा-भक्ति व समर्पण के साथ अपने महामहिम गुरुवर्य, संयम-साधना के साकार स्वरूप उन पूज्यप्रवर के चरण सरोजों में अनुक्रम से अपनी वन्दना समर्पित की। श्वास अब रुक-रुक कर आ रहा था, गुरुदेव के हाथ-पैर ठण्डे हो रहे थे, पर उनका सीना व मस्तिष्क गर्म था। आँखों की पुतलियाँ स्थिर थीं, अन्तत: लम्बी सांस के साथ एक हिचकी आई और उस मृत्युंजयी महापुरुष ने नश्वर देह का त्याग कर दिया।

इस प्रकार चतुर्थ तीर्थंकर देवाधिदेव अभिनन्दन प्रभु के मोक्ष-कल्याणक दिवस प्रथम वैशाख शुक्ला अष्टमी (वि.सं.२०४८) रविवार,दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को रात्रि ८ बज कर २१ मिनट पर १३ दिवसीय तप संथारे के साथ रवि पुष्य नक्षत्र व उच्च सूर्य आदि उत्तमोत्तम ग्रह स्थिति में अध्यात्म आलोक का वह दिव्य प्रभा-पुंज बुझ गया। अनन्त आस्था का केन्द्र, लाखों भक्तों का भगवान्, संघ का सरताज, सबको भाव विह्वल छोड़ चला गया। जिनकी

वाणी का ओज सहस्त्रों कार्यकर्ताओं की प्रेरणा का स्रोत था, अब उस महापुरुष की पावन स्मृतियाँ ही शेष थीं। सम्भवतः वे ही युगों-युगों तक प्रेरणा का कार्य करेंगी।

'पुरिसवरगंधहत्थीणं' उन महामनीषी आचार्य भगवन्त के देवलोक होने के समाचार वायुवेग से चारों ओर फैल गये। संघ ने दूरभाष, टेलीग्राम आदि सभी संभव उपायों से सर्वत्र यह दुःखद समाचार प्रेषित किया। आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं प्रान्तीय व राष्ट्रीय समाचार पत्रों द्वारा भी समाचार देश-देशान्तर में प्रसारित हो गये। जिसने भी सुना,स्तब्ध रह गया। उन परम पूज्य योगिवर्य के प्रयाण के समाचारों पर मानों विश्वास ही नहीं हो रहा था। परन्तु जब पुनः पुनः जानकारी मिली कि परम पावन गुरुदेव हमें छोड़कर चले गए, तो बरबस भक्तों के हृदय कह उठे – भगवन् ! आप धन्य हैं, आपने अपने जीवन को सफल किया। आपकी साधना सदियों तक स्मरण रहेगी।" कहा भी है –

"यूँ तो दुनियाँ के समुद्र में कमी होती नहीं।
लाख गौहर देख लो, इस आब का मोती नहीं॥"

आचार्य भगवन्त के शरीर को वैकुण्ठी (मांडी में) में बरन्डे में रखा तब भक्त समुदाय ने जो गीत गाते हुए अपनी श्रद्धा व्यक्त की उसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

माँ रूपा के लाल तेरी वन्दना करें
केवल कुल की शान तेरी वंदना करें॥
दुःख का मारा आया कोई सुख उसे मिला,
लाया झोली खाली जो भी भरके वह चला,
ध्यान मग्न ज्ञान बाँटा साधना करें॥वन्दना करें॥१॥

प्रभुजी अधीन आपके, पावन दयालु दीन,
हुए ज्योत में मिला के ज्योत संथारा में लीन,
मोक्ष में ठण्डी नजर भक्तों पर धरें॥वन्दना करें॥२॥

• महाप्रयाण की अंतिम यात्रा

व्यथित हृदय भक्तजन अपने परम पावन गुरुवर्य की महाप्रयाण-यात्रा में भाग लेने निमाज की ओर दौड़ पड़े। जो जहाँ था, वहीं से चल पड़ा। विविध ग्राम-नगरों से जैन-जैनेतर भक्तगण कार, बस, स्कूटर, ट्रक, ट्रैक्टर सभी उपलब्ध साधनों से निमाज की ओर चल दिए।

परम पूज्य युग मनीषी अध्यात्मयोगी के पार्थिव शरीर को वोसिराने के पश्चात् सन्तवृन्द अलग बैठे थे। संघ व निमाज के कार्यकर्ताओं ने विचार-विमर्श कर अन्तिम संस्कार के लिये मध्याह्न एक बजे का समय नियत किया। श्रावकगण व्यवस्था व प्रबन्ध हेतु इधर-उधर दौड़ रहे थे। अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पण करने हेतु निकटस्थ क्षेत्रों से हजारो जैन-जैनेतर भक्तजन रात्रि में ही आने लगे। भीड़ प्रति पल बढ़ती जा रही थी। सकल श्री संघ निमाज क्षेत्र के सभी जैन-जैनेतर बन्धु व संघ के कार्यकर्तागण,युवक संघ के स्वयंसेवक,सभी व्यवस्था में जुट गये कि बाहर से पधारने वाले आबालवृद्ध युवक किसी भी भाई-बहिन को कोई असुविधा न हो। निमाज गांव का हर व्यक्ति,इस महापुरुष की महाप्रयाण-यात्रा को अविस्मरणीय बनाने में जुट गया।

सुबह होते-होते हजारों लोग गंगवाल भवन के परिसर के भीतर -बाहर एकत्र हो चुके थे। गुरुदेव का पार्थिव

शरीर बरामदे से व्याख्यान-स्थल पर स्थित चबूतरे पर रखा जा चुका था। 'जय गुरु हस्ती', 'गुरु हस्ती अमर रहे', 'जब तक सूरज चाँद रहेगा, हस्ती गुरु का नाम रहेगा' आदि गुरु की प्रशस्ति में जय जयकार के नारे लगाते भक्तजन रात भर आते रहे, अश्रुसिक्त नयनों से पंक्तिबद्ध भक्त अपने आराध्य गुरु भगवन्त की स्मृति को नमन करते हुए दर्शन करते रहे। सूर्योदय होने पर महासतीगण भी गंगवाल भवन में संतों के दर्शनार्थ पधारी। असंख्य लोगों की वह भीड़ जब संत-सतीगण के दर्शन करती एवं गुरुदेव के स्थान को खाली देखती तो वातावरण गम्भीर और बोझिल बन जाता। वह दृश्य अत्यन्त करुणार्द्र था। भक्तों के नयनों से इसकी अभिव्यक्ति हो रही थी।

चारों दिशाओं से आने वालों का यह अटूट तांता बढ़ता गया। निमाज क्षेत्र के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब इतनी भारी भीड़ एकत्र हुई हो। बसें, मेटाडोर, जीप, ट्रक, ट्रेक्टर व कारों के लिये गाँव के बाहर खेतों में अलग पार्किंग व्यवस्था करनी पड़ी। तन-मन-धन सर्वस्व समर्पण किये सभी निमाज ग्रामवासी व्यवस्था व आगत बन्धुओं की सेवा में दौड़ रहे थे।

उत्साही ग्रामवासियों का विचार था कि महाप्रयाण-यात्रा गांव के मुख्य-मुख्य मार्गों व बाजार से होकर निकाली जाय, पर जनसमूह की अपार संख्या को देखकर यह विचार स्थगित करना पड़ा। कहीं तिल भर भी जगह नहीं थी। जहाँ भी नजर जा पाती, आदमी ही आदमी नजर आते, मानो अपार जनसागर उमड़ पड़ा। नियन्त्रण हेतु वहाँ उपस्थित पुलिस जन भी उस जनसमूह के प्रबल वेग को नियंत्रित करने में अपने आपको अक्षम पा रहे थे। व्यवस्थापकों द्वारा ध्वनियंत्र पर दिये जा रहे निर्देश उस अपार जनसमूह के कोलाहल में डूबे जा रहे थे। सांसद, विधायक, मंत्री, मुख्यमंत्री (भैरोंसिंह शेखावत), राजनेता, न्यायविद्, समाजसेवी, कार्यकर्तागण भी भक्तजनों की इस अपार भीड़ में सम्मिलित हो अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे।

राज्य सरकार ने उन षट्काय प्रतिपालक, अंहिसा व अभय के दूत श्रमण रत्न को श्रद्धांजलि स्वरूप पूरे राज्य में बूचड़खाने व मांस-विक्रय बंद रखने का आदेश प्रसारित किया, जिसका पूरा पालन किया गया। अनेक ग्राम-नगरों में बाजार भी पूर्णतः बन्द रहे।

निश्चित समयानुसार ठीक एक बजे, जब महाप्रयाण यात्रा प्रारम्भ हुई, लक्षाधिक भक्तों का सैलाब अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि देने को उद्यत था। सब अपने अन्तर में रिक्तता का अनुभव कर रहे थे। परन्तु जिनशासन के इस महामनीषी ने उत्तुंग नभ में जो आरोहण किया, उसका प्रमोद सबको भरा-भरा महसूस कराने के लिये प्रयत्नशील था। गुरु हस्ती की जय, भगवान महावीर की जय, जब तक सूरज चांद रहेगा, गुरु हस्ती का नाम रहेगा' आदि अनेक जयनादों से नभ गूंज उठा।

जैन-जैनेतर, आबालवृद्ध युवक, पुरुष व महिला, सभी महनीय महासाधक की इस महाप्रयाण की वेला में उपस्थित थे। यहाँ जाति, धर्म, लिंग, वय, सम्प्रदाय व स्तर का न कोई बंधन था, न कोई दीवार थी। जो भी था वह उन श्रमणश्रेष्ठ का पुजारी था, सभी उन महापुरुष की इस महाप्रयाण-यात्रा को व्यथित हृदय, बोझिल मन, सजल नयनों से देख रहे थे-

'इमां की शान जिसको अजीज थी, अपनी जान से।
वो खिज्र जा रहा है, देखो कितनी शान से॥'

जिस हस्ती के विराजने से वह गंगवाल भवन तीर्थ बना हुआ था, वहाँ के कोने-कोने से जिस महापुरुष की संयम-साधना की महक आ रही थी, आज वही महापुरुष भक्तों के कंधों पर आसीन हो, इस भवन को वीरान कर

जा रहा था। श्रद्धालु भक्तों ने हाथोंहाथ मांडी (अर्थी) को कंधा दिया और धीरे-धीरे वह (अर्थी) गंगवाल भवन के बाहर पहुँची। हर कोई कंधा देने को उतावला उसे छू भर लेने को आतुर, पर मांडी (अर्थी) तक पहुँच पाना क्या सरल था ? चलने को वहाँ जगह ही कहाँ थी, फिर भी हर एक चाह थी कि मैं भी कंधा दे सकूँ। जो भी कंधा देने में सफल रहा, उसे लगा मानो जीवन सफल हो गया हो, मानो जन्म-जन्म की साध पूरी हो गई हो, मानो उसने त्रैलोक्य का साम्राज्य प्राप्त कर लिया हो। यह सब भक्तों की श्रद्धा का रूप था। पार्थिव देह में अब अध्यात्म योगी का निवास नहीं था, किन्तु अभी भी वे शुभ पुद्गल लोगों की श्रद्धा को बाँधे हुए थे। इस अपार जन सैलाब में भी कोई धक्का-मुक्की नहीं, किसी को कोई चोट नहीं, गुरु-कृपा से सभी सकुशल । लोगों की जुबां पर एक ही बात-ऐसी भीड़ न कभी देखने में आई न सुनने में आई।

यह यात्रा भण्डारी परिवार द्वारा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक को अर्पित भण्डारी उपवन की ओर अग्रसर थी। भंडारी उपवन तक रास्ते में सभी मकानों की छतों पर अनगिनत बहिनें व वृद्ध भक्तगण अन्तिम दर्शन हेतु खड़े थे। सभी हाथ जोड़ नत मस्तक थे, उस कर्मयोगी आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करने को। महाप्रयाण-यात्रा में कई स्थानों से आई हुई भजन-मंडलियां यशोगान करती हुई आगे बढ़ रही थी। उनके आगे बैंड बाजे मरण पर विजय का जयगान कर रहे थे। शोक-संतप्त निमाज ग्राम का कण-कण, चप्पा-चप्पा धन्य-धन्य हो गया, पूज्य गुरुवर्य के नाम के साथ सर्वदा के लिये जुड़ गया। उपस्थित सभी दर्शनार्थी अतीत की स्मृतियों में खोये, गुरु-सेवा में बिताये अपने जीवन-क्षणों को अपने जीवन की अमोल थाती माने, उन क्षणों को पुनः-पुनः स्मरण करते आगे बढ़ते जा रहे थे। सभी का अपना, सभी का सर्वस्व, सभी का जीवनधन आज चिर यात्रा की ओर चल पड़ा। हर दिल से एक ही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी—क्या इस युग में ऐसा युग पुरुष जन्म ले पायेगा ? ऐसा महापुरुष तो सदियों में एक होता है-

'मौत उसकी है जिसका जमाना करे अफ़सोस।
यूं तो दुनिया में आए हैं मरने के लिए।।'

अंततः महाप्रयाण-यात्रा भंडारी उपवन पहुँची। उपवन के बीचोंबीच अन्तिम संस्कार की पूर्ण तैयारी की जा चुकी थी। उस अपार जनसमूह को नियन्त्रित करने पुलिस-दल व कार्यकर्ता सचेष्ट थे, पर भला सागर की उत्ताल तरंगों को भी कोई बांध पाया है? रोक पाया है? तो इन भावाभिभूत आतुर भक्तों के सैलाब को कौन रोक पायेगा? जिसको भी जहां स्थान मिला, सभी बन्धन तोड़कर बैठ गए। सैकड़ों लोग वृक्षों पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे तो कई लोग अन्तिम दर्शन कर अपने नयनों को परितृप्त कर पाने हेतु ऊँटों पर बैठकर यह नजारा देख रहे थे।

अपराह्न २ बजकर ४० मिनट पर उस महासाधक की तपोदीप्त देह को चंदन चिता पर रख दिया गया। चारों ओर से 'हस्ती गुरु अमर रहे,"जब तक सूरज चाँद रहेगा, हस्ती गुरु का नाम रहेगा।" हस्ती गुरुवर्य के निकट सांसारिक परिजन सर्वश्री सहजमलजी सा. बोहरा, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री मोफतराजजी सा. मुणोत, श्री गणेशमल जी भण्डारी व श्री सागरमलजी भंडारी ने उन महनीय योगिवर्य की उस पार्थिव देह को धधकती अग्नि को समर्पित किया तो सभी भक्तगण स्तब्ध एवं पस्त थे। **एक युग का अंत हो गया, दिनकर अस्त हो गया। अब उनके परम पूज्य गुरुवर्य अनन्त में विलीन हो चुके थे। वह विहँसता मुख-मण्डल, वे विहँसती आँखें, आशीर्वाद देते वे वरद हस्त, सदैव आगे बढ़ते वे कदम, सभी कुछ तो इस सर्वहारा अग्नि को समर्पित हो चुके थे, अब कुछ शेष थी तो मात्र स्मृतियाँ !** उन स्मृतियों को अपने दिल में संजोये, उनके गुण स्मरण करते वे असंख्य भक्तजन अपने खाली हृदय लिये अपने-अपने स्थानों के लिये

लौट पड़े। सभी भक्तजनों के हृदयों से यही प्रतिध्वनि व्यक्त हो रही थी-

'धीर वीर निर्भीक सत्य के, अनुपम अटल पुजारी ।
तुम मर कर भी अमर हो गये, जय हो सदा तुम्हारी ॥'

अनन्त में लीन हो चुके अपने महनीय गुरुवर्य के गुण-स्मरण करते वे असंख्य दर्शनार्थी भक्तजन अपने-अपने गंतव्य स्थानों के लिये रवाना होने से पूर्व गंगवाल भवन में विराजित सन्त-मण्डल के दर्शनार्थ पहुँचे।

उन महामनीषी को अपने अन्तिम समय का पहले से बोध था। इस दिन से लगभग साढे छह वर्ष पूर्व पूज्य चरितनायक द्वारा किया गया भविष्य-दर्शन चर्चा में सजीव हो उठा। रेनबो हाउस, जोधपुर में सन् १९८४ के चातुर्मास काल में रोगाक्रान्त होने पर जब स्वास्थ्य की स्थिति काफी नाजुक थी, तब श्रद्धेय श्री हीरामुनिजी म.सा. द्वारा सहज रूप से निवेदन किया गया था "भगवन् ! अन्तिम समय की जानकारी अवश्य कराएँ।" अध्यात्म मनीषी ने उत्तर दिया था –"भाई अभी समय नहीं आया है।" आगे अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव के स्थान का निर्देश करते हुए आप श्री के मुख से निकल पड़ा "वहाँ बगीचा होगा, कुँआ होगा, पास में पाठशाला होगी, मन्दिर होगा, वह मकान राजमार्ग पर स्थित होगा, विशाल परिसर होगा।" श्री हीरामुनिजी म.सा. (वर्तमान आचार्यप्रवर) ने ये बातें अपनी दैनन्दिनी में नोट कर लीं। ये सारी बातें निमाज के गंगवाल भवन के प्रसंग में वैसी की वैसी सत्य सिद्ध हुई।

उस मनीषी के जीवन-दर्शन एवं साधना के उच्च मूल्यों के प्रति सभी नतमस्तक थे । संसार एवं संघ से किस प्रकार मोह रहित हुआ जा सकता है, इसका प्रयोगात्मक पाठ इस अध्यात्मयोगी से सीखा जा सकता है। जब संघ के नायक रहे तब कर्त्तव्य का निर्वाह बखूबी किया तथा जब संसार से महाप्रयाण किया तब पूरी तैयारी के साथ , आत्मरमणतापूर्वक ममत्व एवं अहंत्व का त्याग करते हुए । धन्य हैं ऐसे महापुरुष और उनकी चरम साधना।

गंगवाल भवन में सायंकाल ५ बजे श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के वहाँ उपस्थित प्रमुख प्रतिनिधि श्रावकों ने उन दिवगंत गुरु भगवन्त को अपने अवरुद्ध कण्ठों से भावाभिभूत श्रद्धा सुमन समर्पित किये। सभा के अन्त में न्यायाधिपति श्री जसराजजी चौपड़ा ने परम पूज्य गुरुदेव द्वारा भावी संघ-व्यवस्था सम्बन्धी पूज्य गुरुदेव द्वारा स्वहस्त लिखित पत्र जो भगवन्त द्वारा संघ के वयोवृद्ध श्रावक, अनन्य संघसेवी श्रीमान् उमरावमलजी सा. ढड्ढा एवं श्री नथमलजी हीरावत को सुपुर्द किया गया था, चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पढ़ कर सुनाया। जिसमें पूज्य गुरुवर्य ने भावी संघ-व्यवस्था सम्बन्धी निर्देश देते हुए लिखा था कि श्री हीराचन्द्रजी म.सा. भावी आचार्य व श्रद्धेय श्री मानचन्द्रजी म.सा. संघ के उपाध्याय होंगे। पत्र के नीचे हस्ताक्षर करते हुए आपने अपना परिचय 'संघ-सेवक शोभाशिष्य हस्ती' के नाम से दिया था, जिसे सुनकर आपकी विनम्रता एवं लघुता (लघुता से प्रभुता मिले) के समक्ष उपस्थित जन समुदाय नतमस्तक था। समवेत स्वरों में आपकी-जय जयकार के साथ जनसमूह ने आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की जय, उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म.सा. की जय से आपके आदेश को अपनी श्रद्धाभिभूत वाणी से दिग्-दिगन्त में व्याप्त कर दिया। इसके साथ ही माननीय सदस्यों ने सभा-विसर्जन के पूर्व अपनी एकरूपता का परिचय दे दिया।

शरीर विनश्वर है, आत्मा अमर है। फूल बिखर जाता है पर उसकी सौरभ वातावरण को सुरभित कर जाती है। व्यक्ति चला जाता है, व्यक्तित्व अमर रहता है, कृतित्व युग-युग तक प्रेरणापुंज बना रहता है। वह पावन देह भले ही अनन्त में विलीन हो गई, पर उनकी गुण-सौरभ श्रद्धालुओं के जीवन को सदैव सुरभित करती रहेगी,उनके

सन्देश सदैव आने वाली पीढ़ियों को साधना की राह दिखाते रहेंगे। पावन स्मृतियाँ सदैव सम्बल देती रहेंगी। वह युग-पुरुष मिट नहीं सकता, वह महापुरुष तो चतुर्विध संघ के पावन मनों में, साधक जीवन में सदा प्रकट होता रहेगा। वह महायोगी तो अपने जीवनादर्शों व अपनी प्रेरणाओं में सदा अजर है, अमर है, अमर रहेगा एवं समग्र मानव जाति को अपना पवित्र पावन मंगलमय शुभ सन्देश देता रहेगा।

महान् अध्यात्म योगी, युगमनीषी, महासाधक के दिव्य लोक को महाप्रयाण के वृत्त जहाँ भी पहुँचे, उन्हें श्रमण-श्रमणियों एवं सहस्रों श्रद्धालु भक्तों ने नत मस्तक हो भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। देश-विदेश में गुण-स्मरण करने हेतु अनेक स्थानों पर सामूहिक सभाएं आयोजित हुईं। सैकडों श्रद्धालुओं के श्रद्धाञ्जलि पत्र जोधपुर स्थित अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं जयपुर स्थित सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के कार्यालयों में निरन्तर प्राप्त हो रहे थे। पूज्य श्रमण-श्रमणियों से भी निरन्तर श्रद्धाञ्जलि सन्देश मिल रहे थे।

यहाँ पर श्रमण-श्रमणियों से प्राप्त कतिपय पत्रों के अंश प्रकाशित किये जा रहे हैं-

हे क्रूर काल। तूने यह निकृष्ट कार्य क्यों किया ? आज दिन तक तू कितने प्रभावक ज्योतिर्धर सन्त रत्नों को ले गया? अभी तक तुझे सन्तोष नहीं हुआ ? मेरे परम स्नेही साथी आचार्य हस्तीमलजी म. को ले जाते हुए तेरे हाथ नहीं कांपे ? आज उनकी यहाँ पर कितनी आवश्यकता है ? आज चारों ओर भौतिकता की आँधी आ रही है, ऐसी विकट वेला में एक अध्यात्मयोगी को हमारे से छीनकर ले गया।

हे महासन्त ! तुमने संथारा कर सच्चे वीर की तरह मृत्यु का वरण किया है। धन्य है तुम्हारा जीवन और धन्य है तुम्हारी मृत्यु।"

-उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म.सा., जैन स्थानक, गढ सिवाना

"विगत दो दिन पूर्व प्रातः ६ बजे एक दुःखद संवाद न चाहते हुये भी इन कर्ण कुहरों में पड़ा कि जन-जन के आराध्य, वंदनीय श्रद्धा के केन्द्र बिन्दु, समाधिभाव में लीन, तपोमूर्ति, संयतात्मा, दिव्यात्मा, ज्ञान सिन्धु, जन-जन के बन्धु, रत्न संप्रदाय के जाज्वल्यमान रत्न, अध्यात्म गगन के दिव्य दिवाकर आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. महाप्रयाण कर गए हैं। यह दुःखद घटना श्रवण कर श्रद्धापूरित इस मानस सागर में अनेक प्रकार की तरंगें तरंगित होने लगी। पुण्यात्मा हँसते-हँसते सुरधाम सिधार गए शिष्य-शिष्यावृंद, भक्तगण, श्रद्धालुवृंद को पीड़ित कर। अब **पावन संयमनिधि देह दृष्ट्या हमारे समक्ष नहीं हैं, किन्तु उनका निर्मल यशःकाय युगों-युगों तक श्रद्धालुओं को मार्गदर्शन देता रहेगा।**

श्रद्धेय आचार्यप्रवर इस युग के महान् संत रत्न थे। उनकी गरिमा महिमा का वर्णन लेखनी द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। **उपमातीत व्यक्तित्व को किस उपमा से उपमित किया जाये।** मेरे अन्तर मानस में रह-रहकर कवि की निम्न पंक्तियाँ उभर रही हैं-

मैंने अपनी इन आंखों से सच ऐसे इंसान को देखा है।
जिसके बारे में सब कहते हैं, धरती पर भगवान को देखा है।

सचमुच आचार्यप्रवर एकान्त ध्यानयोगी एवं मौन साधक थे। छल, छद्म एवं पद-लिप्सा से दूर रहकर हर क्षण अप्रमत्तभाव से आत्म-जागरण के साथ आपने सच्चा श्रमण-जीवन व्यतीत किया है। आप सामायिक, स्वाध्याय के प्रबल पक्षधर थे।

इस युग की महान हस्ती आचार्यप्रवर का जीवन एक गुलदस्ता ही था जिनके अणु-अणु में संयम साधना की भीनी-भीनी गन्ध परिव्याप्त थी। लघु उम्र में ही भोग से योग की ओर, राग से विराग की ओर, भुक्ति से मुक्ति की ओर जिनके पावन चरण बढ़े थे, श्रद्धाधार पूज्य स्व. श्री शोभाचंद्र जी म.सा. की पवित्र निश्रा में संयम-सुधा का पान करने के लिये कृत-संकल्प हुए थे। गरिमा महिमामण्डित तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, संतरत्न की विद्वत्ता, योग्यता का आकलन कर आपको २० वर्ष की अल्पायु में ही आचार्य जैसे महान पद पर प्रतिष्ठित किया गया, जिसका आप श्री ने सम्यक् प्रकार से निर्वहन किया था।

सद्गुणों की महान् सुरभि लुटाकर वह दिव्य ज्योति न जाने कहाँ विलीन हो गयी? १३ दिवस की महान् तप-साधना एवं आत्म-साधना में लीन रहकर वह युग पुरुष हम सभी को छोड़कर देवताओं के प्रिय बन गए। **रह रहकर आचार्यप्रवर की दिव्य भव्य मंजुल छवि नयनों के सामने साकार सी होने लगी। प्यासे नयन दर्शन पाने के लिये समुत्सुक बने हुए हैं। अतृप्त कर्ण सुमधुर वाणी-पीयूष का पान करने के लिये लालायित बने हुए हैं। कहाँ खोजें उस मंजुल मूर्ति को ?"**

२४ अप्रेल १९९१

–जिनशासन प्रभाविका श्री यशकुंवर जी म.सा., हुरड़ा

"हमारी उनकी चरणों में अगाध आस्था थी और उनकी भी हम पर, हमारे मुनिसंघ पर में निर्व्याज , अहैतुकी कृपा रही थी। हम उनकी कृपा के चिरऋणी रहेंगे तथा उनकी स्मृतियों को अपने हृदय में सदा जीवित रखेंगे। वे पण्डितमरण स्वीकार करके अपना भव-भ्रमण घटा गए और सबके लिए एक आदर्श छोड़ गए।"

२२ अप्रेल १९९१

–शासन प्रभावक श्री सुदर्शनलालजी म.सा., गोहानामण्डी

"इस महान दिव्य पुरुष की सर्व विशेषताओं को शब्दशः प्रकट नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने समस्त साधना-काल को गन्ध हस्ती की तरह सर्वथा अप्रमत्त एवं जागरूक भावेन जीया है । यद्यपि उनके पावन चरणों में हमें यत्किंचित् ही रहने का लाभ मिला, तो भी **हम मुनिराज इस बात को गौरवपूर्ण ढंग से कह सकते हैं कि वे हमारे हृदय के अन्तरतम प्रदेश में विराजित कुछ ही इष्टतम साधकों में से एक थे। उनसे हमें जो आत्मीय स्नेह, हार्दिक भाव एवं अत्यन्त उदारपूर्ण मृदु व्यवहारमय कृपाप्रसाद मिला है वह हमारे जीवन का सुरक्षित अक्षय कोष ही रहेगा।'**

'२८ अप्रेल १९९१

–ओजस्वी वक्ता श्री प्रकाश मुनि जी म.सा., मुम्बई –

"आचार्यप्रवर ने संथारा करके अपने जीवन-भवन के उच्चशिखर पर देदीप्यमान स्वर्णकलश जड़ दिया है और देव दुर्लभ आत्म-कल्याण के लक्ष्य को अधिगत कर लिया है। दिल्ली से आए सुश्रावक श्री सुकुमाल चन्दजी तथा सुश्राविका सुदर्शना जी जब भावविभोर होकर आचार्य प्रवर के संथारे का प्रत्यक्ष हाल बता रहे थे तब एकाएक गुरु महाराज ने उन्हें फरमाया, "सुदर्शना जी ! अब यदि आप पुनः निमाज जाएँ तो आचार्यप्रवर के श्रीचरणों में हमारी तरफ से भी अर्ज करना कि जीवन की अन्तिम वेला में हमको भी संथारा आए। उनके सुखद वरद चरणों से और

किसी भौतिक लाभ की नहीं, बस इसी अन्तिम आदर्श और उत्तम समाधिमरण की मन: कामना करनी है।"

२२ अप्रेल १९९१

–जयमुनिजी म.सा., गोहाना मण्डी (हरियाणा)

"पूज्य हस्तीमलजी म.सा. स्थानकवासी समाज ही नहीं, जिनशासन के एक ऐसे ज्यतिर्मान नक्षत्र थे, जिनसे जीवन भर सम्यक् ज्ञान और चारित्र का प्रकाश प्रस्फुटित होता रहा।

पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपने रत्नत्रयात्मक व्यक्तित्व का सुदीर्घ साधना के साथ विकास किया जो प्रत्येक श्रमण-श्रमणी के लिए संभव नहीं हो पाता।

ऐसे परिपक्व, स्थिर और कर्मठ व्यक्तित्व का अभाव हो जाना समाज के लिए दु:खद ही कहा जा सकता है। श्रमण चेतना का सुव्यवस्थित नवनिर्माण तो कठिन है, किन्तु सुनिर्माणित सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व उठ जाना जिनशासन के अनुयायियों के लिए अपूरणीय क्षति ही बन जाया करती है। स्वर्गीय पूज्य आचार्य श्री के अभाव को हम ऐसी ही क्षति के रूप में अनुभव कर रहे हैं। स्वर्गीय पूज्य श्री न केवल स्वयं त्याग-तप, साधना और ज्ञान की जीवन्त प्रतिमा थे, अपितु उन्होंने समाज में सम्यक् ज्ञान-साधना के सामबिक विस्तार हेतु अपनी सीमा में अथक प्रयत्न किए।"

२३ अप्रेल १९९१

–श्री सौभाग्यमुनि जी कुमुद, कदमाल

*

सुरलोक को जाते हैं सब, पर आपका जाना अलग,
देह भिन्न और भिन्न आत्मा, तप-संथारा किया सजग।
जन-जन को सन्मार्ग से जोड़ा, ग्राम नगर में पहुँचा डग,
सामायिक की विरलमूर्ति, भूल न सकेगा सारा जग॥

जीवन उत्तम मरण भी उत्तम, साधक थे वे सर्वोत्तम,
प्रमाद नहीं जीवन में पल भी, करुणामूर्ति पुरुषोत्तम।
युगप्रभावक महामनीषी, सन्तरत्नों में रत्नोत्तम
सीख उनसे थोड़ी भी ले लें, शीघ्र बनेंगे हम उत्तम॥

■

द्वितीय खण्ड

दर्शन खण्ड

प्रस्तुत खण्ड दो अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय 'अमृत वाक्' में संकलित विचार अज्ञान रूपी अंधकार में भटके जिज्ञासु के लिए ज्योतिस्तम्भ की भांति प्रकाशक हैं। एक-एक वचन अमृत तुल्य होने के कारण इस अध्ययन का नाम 'अमृत वाक्' रखा गया है। आचार्यप्रवर श्री हस्ती के प्रवचन-साहित्य एवं दैनन्दिनियों से चयनित ये विचार जन-जन के लिए मार्गदर्शक हैं तथा किंकर्तव्यविमूढ और उलझे हुए मस्तिष्क को सम्यक् समाधान प्रदान करते हैं।

द्वितीय अध्याय 'हस्ती उवाच' में 129 विषयों पर पूज्यपाद आचार्यप्रवर के मार्गदर्शक एवं प्रेरक विचारों का संकलन है, जो श्रावकों एवं श्रमणों दोनों को अपनी साधना में आगे बढ़ाने हेतु अमूल्य पाथेय एवं ज्ञानचक्षु का उन्मीलन करने वाली औषधि प्रदान करते हैं। व्यक्ति, समाज एवं संघ के दोषों को दूर कर जीवन को उच्च बनाने में ये विविध विचार अवश्य ही सहायक सिद्ध होंगे।

अमृत-वाक्

(आचार्यप्रवर के प्रवचनों एवं दैनन्दिनी से संकलित वचन)

- श्रुत-धर्म जीवन में ज्ञान और श्रद्धा उत्पन्न करता है और चारित्र-धर्म जीवन-सुधार का कार्य करता है।
- यदि मानव में सच्चरित्रता का बल नहीं हो तो शास्त्रों का ज्ञान, वक्तृत्व-कला, निपुणता और प्रगाढ़ पाण्डित्य व्यर्थ हैं।
- आचार का मूल विवेक है। चाहे कोई श्रमण हो अथवा श्रमणोपासक, उसकी प्रत्येक क्रिया विवेकयुक्त होनी चाहिए।
- समभाव वह लोकोत्तर रसायन है जिसके सेवन से समस्त आन्तरिक व्याधियाँ वैभाविक परिणतियाँ नष्ट हो जाती हैं।
- धर्म उसी के मन में रहता है जो निर्मल हो । माया और दम्भ से परिपूर्ण हृदय में धर्म का प्रवेश हो ही नहीं सकता।
- चित्त में आराध्य, आराधक और आराधना का कोई विकल्प न रह जाना--तीनों का एक रूप हो जाना अर्थात् भेद प्रतीति का विलीन हो जाना ही सच्ची आराधना है।
- जिसका वियोग होता है, वह सब पर-पदार्थ है, जिसे आत्मा राग-भाव के कारण अपना समझ लेता है।
- निज गुणों को प्रकट करने में परमात्मस्वरूप का चिन्तन एवं गुणगान निमित्त होता है।
- सामायिक की अवस्था में मन, वचन और काया का व्यापार अप्रशस्त नहीं होना चाहिए।
- योगसाधना का सबसे बड़ा विघ्न लोकैषणा है।
- नाना प्रकार की लब्धियाँ योग का प्रधान फल नहीं हैं। अध्यात्मनिष्ठ योगी इन्हें प्राप्त करने के लिये योग की साधना नहीं करता। ये तो आनुषंगिक फल हैं।
- जब तक अन्तःकरण में पूर्णरूपेण मैत्री और करुणा की भावना उदित नहीं होती तब तक आत्मा में कुविचारों की कालिमा बनी रहती है और शुद्ध आत्मस्वरूप प्रकट नहीं होता।
- राग-द्वेष की परिणति निमित्त पाकर उभर आती है। अतएव जब तक मन पूर्ण रूप से संयत न बन जाए, मन पर पूरा काबू न पा लिया जाय, तब तक साधक के लिये यह आवश्यक है कि वह राग-द्वेष आदि विकारों को उत्पन्न करने वाले निमित्तों से भी बचे।
- मानव स्वभाव की यह दुर्बलता सर्व-विदित है कि जब छूट मिलती है तो शिथिलता बढ़ती ही जाती है।
- संसार को सुधारना कठिन है, परन्तु साधक स्वयं अपने को सुधार कर, अपने ऊपर प्रयोग करके दूसरों को प्रेरणा दे सकता है।

- घोर से घोर संकट आने पर भी सच्चे साधक-सन्त अपने पथ से चलायमान नहीं होते, बल्कि उस संकट की आग में तप कर वे और अधिक उज्ज्वल होते हैं।
- श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह साधु की संयम -साधना में सहायक बने। राग के वशीभूत होकर ऐसा कोई कार्य न करे या ऐसी कोई वस्तु देने का प्रयत्न न करे, जिससे साधु का संयम खतरे में पड़ता हो।
- पैर में चुभे कांटे और फोड़े में पैदा हुए मवाद के बाहर निकलने पर जैसे शान्ति प्राप्त होती है उसी प्रकार सच्चा साधक अपने दोष का आलोचन और प्रतिक्रमण करके ही शान्ति का अनुभव करता है। इसके विपरीत जो प्रायश्चित्त के भय से अथवा लोकापवाद के भय से अपने दुष्कृत को दबाने का प्रयत्न करता है, वह जिनागम का साधक नहीं, विराधक है।
- मनुष्य अर्थनीति में जितना समय लगाता है, उसका आधा समय भी धर्मनीति में लगावे, तो उसका उद्धार हो सकता है।
- हम जिस वस्तु के लिए सघर्षरत होते हैं, न तो उसका स्थायित्व है और न वह अपनी ही है।
- धन, जन पर यदि तीव्र आसक्ति नहीं रहेगी, तो आर्त्त नहीं होगा।
- जहाँ अपध्यान रहेगा, वहाँ शुभध्यान नहीं होगा और जब शुभ भाव नहीं आयेंगे तो बुरे भाव बढ़ेंगे।
- स्वाध्याय को नित्य का आवश्यक कर्म मान लिया जाए, तो सहज ही प्रमाद घट सकेगा। आवश्यकता है स्वाध्याय को दैनिक आवश्यक सूचि में नियमित स्थान देने की।
- संसार में दुःख के दो कारण हैं — मोह और अज्ञान। सामायिक मोह को घटाने और स्वाध्याय अज्ञान को दूर करने का अमोघ उपाय है।
- भोग सब रोगों का कारण है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये सुख के साधन नहीं हैं, वरन् दुःख की सामग्रियाँ हैं। इन्हीं के द्वारा इन्द्रियाँ मनुष्य को दुःख पहुँचाती हैं तथा मन को अशान्त बनाती हैं।
- यदि चारित्र की आराधना करेंगे तो पाप का भार, कर्म का भार घटेगा, क्षीण होगा। पाप का भार घटने से आत्मा हल्की होगी।
- सद्गुरु मन, वाणी और कर्म से एक समान होते हैं।
- संसार में साधनसम्पन्न एवं धनी-मानी युवक धर्म-मार्ग की ओर अग्रसर होकर दूसरों को इस ओर लाने का प्रयत्न करें तो उसका विशेष प्रभाव होता है।
- जिस समाज को अपने इतिहास का ज्ञान नहीं, वह कभी भी सही दिशा में आगे नहीं बढ़ सकता। वर्तमान को समुन्नत और भविष्य को उज्ज्वल एवं कल्याणकारी बनाने के लिए अतीत का ज्ञान और उसकी सतत प्रेरणा आवश्यक है।
- जो लोग अज्ञानता या वासना की दासता से अपना लक्ष्य स्थिर नहीं कर पाते, साधना करके भी वे शान्ति प्राप्त नहीं करते। जिनका लक्ष्य स्थिर हो गया है वे धीरे-धीरे चलकर भी मंजिल तक पहुँच जाते हैं।
- अनुभूति प्राप्त ज्ञानियों ने कहा है कि मानव ! तेरा अमूल्य जीवन भोग के लिए नहीं है। तुझे करणी करना है, ऐसी करणी कि तेरे अनंतकाल के बंधन कट जाएं। तेरा चरम और परम लक्ष्य मुक्ति है, इसको मत भूल।

- मनुष्य-जीवन पूर्ण अभ्युदय का आधार है, उसे व्यर्थ में गंवाना बुद्धिमानी का कार्य नहीं ।
- अतीत भोग-विलास में बीत गया और उसमें किसी प्रकार की साधना नहीं हो सकी, इसकी चिन्ता मत कीजिए। चिन्ता करिए वर्तमान की, जो शेष है। उसका निश्चय सदुपयोग होना चाहिए। मनुष्य वर्तमान अवस्था में जगकर, चेतकर आत्म-कल्याण कर सकता है।
- संसार में तीन प्रकार के प्राणी होते हैं– १. निकृष्ट (जघन्य) २. मध्यम और ३. उत्तम। जिन व्यक्तियों में सदाचार तथा सद्गुणों की सौरभ नहीं होती, वे संसार में आकर यों ही समय नष्ट कर चले जाते हैं। मनुष्य-जीवन की प्राप्ति परम दुर्लभ है और ऐसे दुर्लभ नर-जीवन को व्यर्थ में गंवाना, अज्ञानता की परम निशानी है। ऐसे व्यक्तियों को निष्कृष्ट प्राणी समझना चाहिए। मध्यम श्रेणी के प्राणी अपने जीवन-निर्वाह के साधन में लगे रहते हैं तथा स्व-पर का उत्थान नहीं कर सकते तो अधिक बिगाड़ भी नहीं करते। तीसरी कोटि के प्राणी अपने जीवन की सुरभि तथा विशेषता द्वारा अमरत्व प्राप्त करते हैं और सांसारिक लोगों के जीवन-सुधार में सहयोग दिया करते हैं। ऐसे प्राणी उत्तम या प्रथम श्रेणी के माने जाते हैं।
- जीवन के अनमोल समय को व्यर्थ ही नष्ट कर डालना, मानव की जड़ता है। जहाँ साधारण मनुष्य धन, जन, सत्ता, कोठी, बंगला और वैभव की सामग्रियाँ प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहते हैं, वहाँ विचारवान और विवेकी पुरुष उन्हें नश्वर और क्षणिक मानकर, आध्यात्मिक जीवन बनाने में तत्पर रहते हैं। संसार की समस्त नश्वर वस्तुएं बनाने पर भी विनष्ट हो जाती हैं, किन्तु उत्तम जीवन एक बार बना लिया जाए तो वह फिर नष्ट नहीं होता।
- अनजान को समझाना आसान है, जानकार ज्ञानी भी आसानी से समझ सकते हैं,परन्तु जो जानते हुए मोह वश अनजान हैं, उनको समझाना महामुश्किल है।
- जो संघ में भक्ति रखता है और शासन की उन्नति करता है, वह प्रभावक श्रावक है।
- प्राणी पाप का सम्पूर्ण त्याग किये बिना संताप मुक्त नहीं हो सकता।
- त्याग और वैराग्य के उदित होने पर सद्गुण अपने आप आते हैं। जैसे उषा के पीछे रवि-रश्मियाँ स्वतः ही जगत को उजाला देती हैं वैसे ही अभ्यास के बल पर सद्गुण अनायास चमक पड़ते हैं।
- आरम्भ और परिग्रह साधना के राजमार्ग में सबसे बड़े रोड़े हैं। जिस मनुष्य का मन आरम्भ और परिग्रह के दलदल में फंसा हो, वह सहसा उससे निकल कर साधना के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता।
- आत्म-ज्ञानविहीन व्यक्ति उस चम्मच के समान है जो मिष्ठान्न से लिप्त होकर भी उसके माधुर्य के आनंद से वंचित ही रहता है।
- लड़ाई, हिंसा या कलह से प्राप्त सम्पदा, स्वयं और परिवार किसी के लिए भी कल्याणप्रद नहीं हो सकती।
- योग्यता होते हुए भी पुरुषार्थ की आग को ढक कर रखने में ज्ञान रूपी प्रकाश नहीं मिलता।
- ज्ञान सुनने को यदि खाना कहें तो मनन करना उसको पचाना है। मनुष्य कितना ही मूल्यवान एवं उत्तम भोजन करे, पर यदि उसका पाचन नहीं करे तो वह बिना पचा अन्न, अनेक प्रकार की व्याधियों का कारण बन जाता है।
- मानव-मन में ज्ञान की ज्योति अखंड रहे, इसके लिए निरन्तर सत्संग, स्वाध्याय और साधना की स्नेह-धारा चलती

रहनी चाहिए ताकि मोह के झोंकों में उसका ज्ञान-प्रदीप बुझ न जाए।

- बिना मर्यादित जीवन के मानव को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। तृष्णा की प्यास अतृप्त ही रहती है, यह बड़वानल की तरह कभी शान्त नहीं हो पाती।
- जो मोह के कारण पाप में फँसे होते हैं उनमें त्याग की बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती।
- संसार की समस्त सम्पदा और भोग के साधन भी मनुष्य की इच्छा पूरी नहीं कर सकते हैं।
- जैसे घृत की आहुति से आग नहीं बुझती, वैसे ही धन की भूख धन से नहीं मिटती है। तन की भूख तो पाव भर अन्न से मिट जाती है, किन्तु मन की भूख असीम है। उसकी दवा त्याग और संतोष है, धन प्राप्ति या तृष्णा पूर्ति नहीं।
- यदि मनुष्य इच्छा को सीमित करले तो संघर्ष के सब कारण स्वतः समाप्त हो जाएंगे, विषमता टल जायेगी, वर्गभेद मिट कर सब ओर शान्ति और आनंद की लहर फैल कर यह पृथ्वी स्वर्ग के समान बन जाएगी।
- कुसंग में पड़ा तरुण तन बल, ज्ञान और आत्मगुण सभी का नाश करता है।
- उत्तेजक वस्तुओं के भोजन और शृंगार प्रधान वातावरण में रहने के कारण बच्चों में काम-वासना शीघ्र जागृत होती है।
- समाज यदि समय रहते बच्चों के सुसंस्कार के लिए तन, मन, धन नहीं लगाएगा तो इसके कटु फल उसे अवश्य भोगने पड़ेंगे।
- चिकित्सक रोग का दुश्मन, पर रोगी का मित्र होता है। यही दृष्टिकोण आत्म-सुधार की दिशा में भी रखा जाए तो शासन तेजस्वी रह सकता है।
- वस्तुतः मर्यादित जीवन में शान्ति है तथा अमर्यादित जीवन में अशान्ति।
- आज दूसरों को झगड़ते देख मनुष्य उपदेश देता है, किन्तु स्वयं सहनशीलता को जीवन में नहीं अपनाता, संयम और विवेक से काम नहीं लेता।
- साधना के मार्ग में प्रगतिशील वही बन सकता है, जिसमें संकल्प की दृढ़ता हो।
- जिस साधक में श्रद्धा और धैर्य हो, वह अपने सुपथ से विचलित नहीं होता। संसार की भौतिक सामग्रियाँ उसे आकर्षित नहीं करती, बल्कि वे उसकी गुलाम होकर रहती हैं।
- यद्यपि शरीर चलाने के लिए साधक को भी कुछ भौतिक सामग्रियों की आवश्यकता होती है, किन्तु जहाँ साधारण मनुष्य का जीवन उनके हाथ बिका होता है, वहीं साधक की वे दास होती हैं।
- आम के पत्तों का बन्दनवार लगाकर जो आनंद मानते हैं, वे लोग वृक्षों के अंग-भंग का दुःख भूल जाते हैं।
- समाज के अधिकांश लोग अनुकरणशील होते हैं। वे अपने से बड़े लोगों की नकल करने में ही गौरव अनुभव करते हैं। इस प्रकार देखा-देखी से समाज में गलतियां फैलती रहती हैं।
- आज धर्म और कानून की उपेक्षा कर मनुष्य व्यर्थ की हिंसा बढ़ा रहा है। फलतः देश का पशुधन और शुद्ध भोजन नष्ट होता जा रहा है।

- मनुष्य को मधुमक्खी की तरह बनना चाहिए न कि मल ग्रहण करने वाली मक्खी के समान।
- पुत्र की अपेक्षा पुत्रियों में सुशिक्षा और सुसंस्कार इसलिए आवश्यक हैं कि उन्हें अपरिचित घरों में जाना तथा जीवनपर्यन्त वहीं रहना है।
- लड़की यदि सुशीला और संस्कारवती होगी तो परिवार को प्रेम के बल पर अविभक्त और अखंड रख सकेगी।
- जो विरोधाग्नि का मुकाबला शान्ति के शीतल जल से करते हैं, वे विरोधी को भी जीत लेते हैं।
- जो ज्ञानी होकर स्वयं जागृत हैं, जड़ पदार्थ उसे अपनी धारा में नहीं बहा सकते हैं।
- ये भौतिक तुच्छ वस्तुएँ, साधारण मनुष्य के मन को हिलाकर अशान्त कर देती हैं किन्तु ज्ञानी पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, उल्टे वह इन्हीं पर अपना प्रभाव जमा लेता है।
- वस्त्राभूषणों की तरह सादगी का भी असर कुछ कम महत्त्व वाला नहीं होता।
- राजमहल का विराट् वैभव-प्रदर्शन यदि दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट करता है तो एक सादी पावन कुटिया भी चित्त को चकित किये बिना नहीं रहती।
- व्यक्ति-जागरण के बिना समाज-धर्म पुष्ट नहीं होता, कारण कि व्यक्तियों का समूह ही तो समाज है।
- स्वेच्छा से उपवास करना शमन है, किन्तु व्यक्ति के आगे से परोसी हुई थाली खींच लेना दमन है।
- पर्व के द्वारा सामूहिक साधना का पथ प्रशस्त होता है एवं इससे समुदाय को साधना करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे राष्ट्रीय- जीवन का संतुलन बना रहता है।
- मनुष्य यदि अपनी वृत्ति, विवेकपूर्ण नहीं रखे तो वह दूसरों के लिए घातक भी बन सकता है।
- असंयत मानवता पशुता और दानवता से भी बढ़कर बर्बर मानी जाती है तथा 'स्व-पर' के लिए कषाय का कारण हो जाती है।
- साधना के मार्ग में लगकर यदि साधक प्रमाद में पड़ जाए, तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।
- उपासना में तन्मयता अपेक्षित है, अन्यथा "माया मिली न राम" की स्थिति होगी।
- श्रद्धा की दृढ़ता न होने से मनुष्य अनेक देव-देवी, जादू-टोना और अंधविश्वास के फेर में भटकते रहते हैं।
- ज्ञानवान मनुष्य अशान्ति के कारणों को नियंत्रित कर लेता है।
- आवश्यकता तो प्राणिमात्र को रहती है। अन्तर इतना ही है कि एक आवश्यकता को बांध लेता है और दूसरा आवश्यकताओं से बंधा रहता है। परिणामतः पहला उतना दुःखी नहीं होता और दूसरा अशान्त तथा दुःखी हो जाता है।
- समाज में कोई दुःखी है, तो समाज के धनी व्यक्तियों पर यह दायित्व है कि वे उसकी योग्य सहायता करें।
- पाप-कर्म करने के बाद धर्मादा देने की अपेक्षा पहले ही पापों से दूर रहना अच्छा है।
- विरोध का विरोध से और गाली का गाली से प्रतिकार करने पर संघर्ष बढ़ता है।
- सद्भाव मधुर पानी का तथा दुर्भाव खारे पानी का स्रोत है।
- संताप घटाने के लिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ घटानी चाहिए।

- पापों में डूबा हुआ मानव भी यदि धर्म-जागरण करे, आत्म-स्वरूप का चिन्तन करे, तो अपने आपको ऊपर उठा सकेगा और जीवन धन्य बना सकेगा।
- मरण-सुधार के लिए जीवन-सुधार और जीवन-सुधार के लिए वृत्तियों पर संयम करना आवश्यक है।
- साधक, साधु-सन्तों के पास कुछ अर्थ (धन) लेने नहीं, वरन् अपना जीवन सुधारने जाता है, ताकि उसकी ज्ञान, दर्शन और चारित्रिक योग्यता बढ़े तथा जीवन-निर्माण की ओर उसकी प्रवृत्ति हो।
- धार्मिक, राजकीय व सामाजिक कार्यों में उग्रता के समय यदि कुछ समय टालकर जवाब दिया जाए और बीच में भगवान का भजन कर लिया जाए तो श्रेयस्कर है।
- उत्तेजना के समय किये जाने वाले काम में विलम्ब करना अच्छा है, किन्तु जीवन को उन्नत बनाने वाले कामों में प्रमाद से दूर रहना अत्यंत आवश्यक है।
- आवेश में किया हुआ कोई भी काम स्व-पर हितकारक नहीं होता।
- पागल की बातों को जैसे हम बुरी नहीं मानते, वैसे ही क्रोधादि से पराधीन व्यक्ति की बातों को भी बुरी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह परवश एवं दया का पात्र है।
- शारीरिक और वाचिक संयम कर लेने से मन आसानी से ध्यान में लग सकता है।
- भगवान के भजन में मन को लगाने के लिए शारीरिक और वाचिक संयम चाहिए। पवित्र साधना एवं पुरुषार्थ के बिना यह संभव नहीं है।
- भला ! इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या होगी कि हम भौतिक वस्तुओं को अपना समझ कर उनके लिए तो चिन्ता करते हैं, पर आत्म-धन की चिन्ता नहीं करते।
- जैसे निर्मल जल से वस्त्र की शुद्धि होती है, उसी प्रकार सत्संग से जीवन पवित्र होता है।
- निर्मलता, शीतलता और तृषा-निवारण जल का काम है। सत्पुरुषों का सत्संग भी ऐसा ही त्रितापहारी है। वह ज्ञान के द्वारा मन के मल को दूर करता है, संतोष से तृष्णा की प्यास मिटाता है और समता व शान्ति से क्रोध का ताप दूर करता है।
- आत्मोन्नति के लिए सत्संग की खुराक आवश्यक है।
- श्रुताराधन, वायु-सेवन की तरह है।
- हर एक संघ को दीपक बनकर ज्ञान की ज्योति जगाने का काम करना चाहिए।
- यदि दीपक में तेल और बत्ती है, किन्तु लौ बुझ गई है तो जलता हुआ दूसरा दीपक उसे जला सकता है।
- इतिहास साक्षी है कि श्रुतबल, स्वाध्याय तथा ज्ञान ने लाखों मनुष्यों के जीवन को सुधार दिया है।
- वस्तुतः जो शिक्षा को जीवन में उतार ले, वही दूसरों को शिक्षा देने का पूर्ण अधिकारी होता है।
- धार्मिक-जन का जीवन सफेद चादर के समान है। उजली चादर पर छोटी-सी स्याही की बूंद भी खटकती है।
- साधु-सन्त और भक्त-गृहस्थ सफेद चादर की तरह हैं, उनमें छोटा-मोटा दोष भी खटकता है।
- केवल व्यापार में ही आदमी आत्म-विश्वास के बिना पिछड़ा रह जाता हो, यह बात नहीं है; आध्यात्मिक क्षेत्र में

विश्वास नहीं होता है, तो भी पिछड़ जाता है।

- जीवनी शक्ति को बनाये रखने के लिये जितना खाना आवश्यक है, उतने का परिमाण कर लें, उससे अधिक न खाएं। साधारणतः देखा जाता है कि प्रायः सभी व्यक्तियों की अधिकाधिक खाने की इच्छा रहती है और जब पेट मना कर देता है, तभी वे खाना बन्द करते हैं।
- कम बोलना और ज्यादा करना है, जिससे आपका बोलना और करना समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सके।
- स्तुति करने वाले शंका करते हैं कि प्रभु तारने वाले नहीं, फिर स्तुति क्यों? उनको समझना चाहिए कि प्रभु-भक्ति तुम्ब की तरह तारक है। मन की मशक में प्रभु-भक्ति एवं सद्-विचार की वायु भरने से आत्मा हल्की होकर तिर जाती है।
- यदि मोह का बंधन ढीला करने के लिए भक्ति का मार्ग अपना लिया जाए तो मोह दब जायेगा। यदि मोह की जड़ भक्ति की अपेक्षा अधिक सबल होगी तो निश्चय ही भक्ति दब जाएगी।
- प्रभु शक्ति में विश्वास रखने वाला आदमी भौतिक चीजों को सहज ही में ठोकर मार देता है।
- शान्ति और समता के लिए न्याय-नीतिपूर्वक धर्म आचरण ही श्रेयस्कर है।
- अज्ञान और मोह के दूर होने पर भीतर में आत्मबल का तेज जगमगाने लगता है।
- स्वाध्याय चित्त की स्थिरता व पवित्रता के लिए सर्वोत्तम उपाय है।
- शास्त्र ही मनुष्य का वास्तविक नयन है।
- 'भाव' क्रिया का प्राण है। भावहीन क्रिया फलदायी नहीं होती ।
- मिथ्या विचार, मिथ्या आचार और मिथ्या उच्चार असमाधि के मूल कारण हैं।
- जिनका चित्त स्वच्छ नहीं है, वे परमात्म सूर्य के तेज को ग्रहण नहीं कर सकते।
- आत्मा के लिए परमात्मा सजातीय है और जड़ पदार्थ विजातीय। सजातीय द्रव्य के साथ रगड़ होने पर ज्योति प्रकट होती है और विजातीय के साथ रगड़ होने से ज्योति घटती है।
- जिससे जड़ चेतन, आत्मा-परमात्मा व बंध-मोक्ष का ज्ञान हो, उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं।
- बन्धन संसार है और चारित्र इसे काटने की क्रिया है।
- जैसे घर से निकल कर धर्मस्थान में आते हैं और कपड़े बदलकर सामायिक-साधना में बैठते हैं, उसी तरह कपड़ों के साथ-साथ आदत भी बदलनी चाहिए और बाहरी वातावरण तथा इधर-उधर की बातों को भूल कर बैठना चाहिए।
- आध्यात्मिक साधना में दृढ़संकल्पी होना, मत्सर भावना का त्याग करना और सम्यग्दृष्टि रखना परम आवश्यक है।
- इच्छा की बेल को काटे बिना और समभाव लाये बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।
- धन रोग और शोक दोनों का घर है, जबकि धर्म रोग और शोक दोनों को काटने वाला है।
- जो खुशी के प्रसंग पर उन्माद का शिकार हो जाता है और दुःख में आपा भूलकर विलाप करता है वह इहलोक

और परलोक दोनों बिगाड़ लेता है।

- अगर हमारे चित्त में किसी प्रकार का दम्भ नहीं है, वासनाओं की गंदगी नहीं है और तुच्छ स्वार्थ-लिप्सा का कालुष्य नहीं है तो हम वीतराग के साथ अपना सान्निध्य स्थापित कर सकते हैं।
- जिनशासन में तप का महत्त्व है, पर ज्ञानशून्य तप का नहीं।
- ज्ञान न मिलने का अन्तरंग कारण तो है ज्ञानावरण कर्म और ज्ञान न मिलने का बाहरी कारण है ज्ञानी जनों की संगति का अभाव।
- ज्ञानावरण का जोर रहा और बाहरी साधनों—संगति, पुस्तक आदि का संयोग नहीं मिला तो ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ज्ञानावरण का जोर घटा, क्षयोपशम हुआ और ज्ञानी की संगति मिली तो ज्ञान प्राप्त होगा।
- जिस तत्त्व के द्वारा धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य जाना जाय, उसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञान आत्मा का गुण है।
- जिन व्यक्तियों में सदाचार तथा सद्‌गुणों की सौरभ नहीं होती, वे संसार में आकर यों ही समय नष्ट कर चले जाते हैं।
- दुर्लभ नर-जीवन को व्यर्थ में गंवाना, अज्ञानता की परम निशानी है।
- मोह के कारण ही त्याग की बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है।
- गुणों का महत्त्व भूलकर गुणी का तिरस्कार करना उचित नहीं।
- आत्मा की कीमत सोने के आभूषणों से नहीं वरन् सदाचार, प्रामाणिकता और सद्‌गुणों से है।
- यदि जीवन का निर्माण करना है तो प्रत्येक को स्वाध्याय करना पड़ेगा। स्वाध्याय के बिना ज्ञान की ज्योति नहीं जलेगी।
- हमारे शिक्षणालयों का उद्देश्य होना चाहिए कि उनमें अध्ययन करने वाले छात्र सदाचारी एवं ईमानदार बनें।
- आज के अध्यापक का जितना ध्यान शरीर, कपड़े, नाखून, दांत, आदि बाह्य स्वच्छता की ओर जाता है, उतना छात्रों की चारित्रिक उन्नति की ओर नहीं जाता।
- बाह्य स्वास्थ्य जितना आवश्यक समझा जा रहा है, अन्तरंग स्वास्थ्य उससे कहीं अधिक आवश्यक है।
- सन्त लोगों का काम तो उचितानुचित का ध्यान दिलाकर सर्चलाइट दिखाना है।
- ध्यान और मौन की साधना के साथ यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करेंगे तो आत्मा का कल्याण होगा।
- आज विश्व को शस्त्रधारी सैनिकों की नहीं, शास्त्रधारी सैनिकों की आवश्यकता है।
- समाज में तप-संयम का बल जितना बढ़ेगा उतनी ही सुख शान्ति कायम होगी।
- वीतराग पथ पर कोई भी व्यक्ति अग्रसर हो सकता है, चाहिए दृढ़ इच्छाशक्ति, वैराग्य और सत्साहस।
- तप राग घटाने की क्रिया है।
- तप के समय ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे राग की भावना घटे और वैराग्य की भावना बढ़े।
- श्रद्धालु श्रावक दुःख आने पर भी श्रद्धा से दोलायमान नहीं होता।

- व्यवहार जगत में दूसरे का माथा मूंड लेने वाला भले ही चालाक कहलावे, परन्तु यह कला, कला नहीं, वरन् भीतर-बाहर दोनों ओर से कालापन ही है।
- पुण्य-पाप को समझने वाला व्यक्ति जालसाज लोगों को सुखी देखकर भी दोलायमान या चंचल चित्त नहीं होगा, क्योंकि मनुष्य कई जन्मों के कर्म के कारण सुख-दुःख पाता है।
- साधना के मार्ग में चलने से मनुष्य में निर्भयता आती है।
- जीवन-परिवर्तन में प्रमुख कारण काल, स्वभाव, कर्म-संयोग, परिस्थिति और अध्यवसाय हैं।
- ज्ञान, विवेक, सद्भाव एवं शुभ रुचि के अभाव में मानव बाह्य पुण्य का फल पाकर भी नीचे गिर जाता है।
- पापों से बचने की दृष्टि वाला साधक किसी भी व्यक्ति में गुणों को देखकर आदर करता है, यह सम्यक् दृष्टि है।
- गृहस्थ भी यदि ज्ञान का धनी है, तो वह साधु-सन्तों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाता है।
- धर्म-स्थान में साज—शृंगार करके आना दूषण है।
- परमार्थ का परिचय करने के लिए सत्शास्त्र एवं सत्संग दो साधन हैं।
- जिसकी संगति से सुबुद्धि उत्पन्न हो, दुर्व्यसनों का परित्याग हो और अहिंसा, सत्य तथा प्रभु में मानव की प्रवृत्ति हो, वह सुसंगति है।
- ज्ञान-प्राप्ति के लिए ज्ञानवान की संगति आवश्यक है। इसी प्रकार अज्ञानी और मिथ्यादर्शनी का संग जो दूषण रूप है, त्याज्य है।
- विचार की भूमिका पर ही आचार के सुन्दर महल का निर्माण होता है। विचार की नींव कच्ची होने पर आचार के भव्य प्रासाद को धराशायी होते देर नहीं लगती।
- अपशब्द के प्रत्युत्तर में निरुत्तर रहना, अपशब्द बोलने वाले को हराने की सर्वोत्तम कला है। काँटे का जवाब फूल से देना सज्जनाचार है।
- जिस धन और साधन से जीवन सुधरे, वास्तव में वही धन और साधन उत्तम है।
- चाहे साधु-धर्म हो या गृहस्थ-धर्म, सम्यग्दर्शन की दृढ़ भूमिका, दोनों के लिए अत्यावश्यक है।
- पाप और दुःख इन दोनों में कारण-कार्य भाव है।
- स्वार्थ की भावना से व्रत करना, व्रत के महत्त्व को कम करना है।
- सम्यग्दर्शनी दिखावे से आकर्षित नहीं होता, क्योंकि दिखावे की ओर झुकने वाला कभी -कभी ठगा जाता है।
- भीतर का मूल्य जहाँ ज्यादा होगा, वहाँ बाह्य दिखावा कम होगा। कांसे की थाली के गिरने पर अधिक आवाज होती है वैसी सोने की थाली के गिरने पर नहीं होती। मूल्य सोने की थाली का अधिक है, अतः उसमें झनझनाहट कम है।
- परिग्रह आत्मा को पकड़ने वाला है, जकड़ने वाला है, यह दुःख और बन्ध का पहला कारण है।
- जिन-शासन त्यागियों का शासन है, रागियों का नहीं।

- यदि मूर्च्छाभाव है तो शरीर भी परिग्रह है और वस्त्रादि भी।
- परिग्रह दुःख व बन्धन का कारण है।
- अपनी संपदा का उपयोग करना सीखेंगे तो आपका परिग्रह अधिकरण बनने के बजाय उपकरण बन जायेगा।
- परिग्रह का सम्बन्ध जितना चीजों से, वस्तुओं से नहीं, उतना मन से है।
- परिग्रह व बन्धन की गांठ को ढीली करोगे तो बाहर की सामग्रियाँ तुम्हारे पास रहकर भी दुःखदायी नहीं बनेंगी।
- धन के लिये नीति-अनीति को भुलाना, यह जैन का लक्षण नहीं है। सच्चा जैन लक्ष्मी-दास नहीं, अपितु लक्ष्मी-पति होता है।
- धन कदापि तारने वाला नहीं, केवल धर्म ही तारने वाला है।
- जो व्यक्ति जितना अधिक संयम से रहेगा वह उतना ही अधिक सुखी और सब तरह से स्वस्थ रहेगा।
- संयम सब प्रकार के दुःखों के मूल कारण पाप से बचाने वाला और अन्ततोगत्वा अक्षय सुख का दाता है।
- जीवन में प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रत्येक कार्य में संयम रखना चाहिए।
- चारित्र-धर्म का पहला चरण है—तन और वाणी पर संयम।
- तन, मन, वाणी भोगोपभोगादि और विषय-कषायों का संयम धर्म का प्रमुख अंग है।
- जीवन में यदि धर्म व चारित्र नहीं है, तो जीवन फीका है।
- मुनियों के सौम्य जीवन और त्यागमय चर्या का चिन्तन करके भी व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है।
- भूमि, जायदाद आदि से ज्यादा सोच आपको ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का होना चाहिये, क्योंकि ये आपके निज-गुण हैं।
- जब तक हमारा सम्यग्ज्ञान मजबूत रहेगा, तब तक हम कभी नहीं डिगेंगे।
- सामायिक वह महती साधना है, जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्म-मल को नष्ट किया जा सकता है।
- आसन-विजय, दृष्टि-विजय और मन-विजय - ये तीनों प्रकार की साधनाएँ सामायिक में परमावश्यक हैं।
- सही रूप में प्रायश्चित्त तभी होगा जबकि गलती करने वाला व्यक्ति मन में यह विचार करे कि वास्तव में उसने गलती करके बुरा काम किया, उसे इस प्रकार की गलती नहीं करनी चाहिये थी।
- गुरुजनों के समक्ष यदि कोई व्यक्ति अपनी गलती के किसी भी अंश को छुपा कर रखता है, तो वह प्रायश्चित्त न होकर एक और नई गलती करना हो जायेगा।
- व्यर्थ ही द्रव्य लुटाकर थोथा आडम्बर दिखाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। सच्चे अर्थ में शासन की प्रभावना के अनेक रास्ते हैं।
- तप राग घटाने की क्रिया है। तप के समय ऐसे काम होने चाहिए जिनसे राग की भावना घटे, वैराग्य की भावना बढ़े।
- जो नैतिक दृष्टि से पतित हो वह धार्मिक दृष्टि से उन्नत कैसे हो सकता है ? नैतिकता की भूमिका पर ही धार्मिकता की इमारत खड़ी होती है।

- वास्तव में जैन-शास्त्रों में प्रदर्शित श्रावक-धर्म में किसी भी काल के आदर्श की असीम संभावनाएँ निहित हैं ।
- जो अत्यल्प साधनों से ही अपना जीवन शान्तिपूर्वक यापन करता है उसे प्रभु और प्रभुता दोनों मिलते हैं।
- राजा की आज्ञा में बल होता है दण्ड का और महात्मा के आदेश में बल होता है ज्ञान और करुणाभाव का।
- ज्ञानी पुरुष के हृदय रूपी हिमालय से करुणा, वात्सल्य और प्रेम की सहस्र-सहस्र धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं और वे प्रत्येक जीवधारी को शीतलता और शान्ति से आप्लावित करती रहती हैं।
- प्रत्येक मनुष्य सबके प्रति प्रीति और अहिंसा की भावना रखकर अपनी जीवनयात्रा सरलता व सुगमता से चला सकता है। आघात-प्रत्याघात से ही जीवन चलेगा, ऐसा समझना भ्रम है।
- किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना, छेदन-भेदन न करना, यह द्रव्य-दया है। राग-द्वेष उत्पन्न न होना भावदया है।
- जीवन को परममंगल की ओर अग्रसर करने के लिए केवल द्रव्य-दया पर्याप्त नहीं है, भाव-दया भी चाहिए। भाव-दया के बिना जो द्रव्य-दया होती है, वह प्राणवान् नहीं होती।
- राग-द्वेष भावहिंसा है। भावहिंसा करने वाला किसी अन्य का घात करे या न करे , आत्मघात तो करता ही है- उसके आत्मिक गुणों का घात होता ही है ।
- श्रावक को तोलने और मापने में अनुचित-अनैतिक लाभ लेने की प्रवृत्ति नहीं रखनी चाहिए।
- छल-कपट का सेवन करके, नीति की मर्यादा का अतिक्रमण करके और राजकीय विधान का भी उल्लंघन करके धनपति बनने का विचार करना अत्यन्त गर्हित और घृणित विचार है। ऐसा करने वाला कदाचित् थोड़ा बहुत जड़-धन अधिक संचित कर ले, मगर आत्मा का धन लुटा देता है और आत्मिक दृष्टि से वह दरिद्र बन जाता है।
- श्रावक-धर्म का अनुसरण करते हुए जो व्यापारी व्यापार करता है, वह समुचित द्रव्योपार्जन करते हुए भी देश और समाज की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है।
- श्रावक अपने अन्तरंग और बहिरंग को समान स्थितियों में रखता है। वचन से कुछ कहना और मन में कुछ और रखना एवं क्रिया किसी अन्य प्रकार की करना श्रावक-जीवन से संगत नहीं है। श्रावक भीतर-बाहर में समान होता है।
- जिन्हें उत्तम धर्म-श्रवण करने का सुअवसर मिला है, उन्हें दूसरों की देखादेखी पाप के पथ पर नहीं चलना चाहिए। उनके हृदय में दुर्बलता, कुशंका और कल्पित भीति (भय) नहीं होनी चाहिए। ऐसा सच्चा धर्मात्मा अपने उदाहरण से सैंकड़ों अप्रामाणिकों को प्रामाणिक बना सकता है और धर्म की प्रतिष्ठा में भी चार-चाँद लगा सकता है।
- धर्म-शिक्षा को जीवन में रमाने के लिए काम-वासना को उपशान्त एवं नियन्त्रित करना, मोह की प्रबलता को दबाना और अमर्यादित लोभ का निग्रह करना आवश्यक है।
- जब आत्मा में सम्यग्ज्ञान की सहस्र-सहस्र किरणें फैलती हैं और उस आलोक से जीवन परिपूर्ण हो जाता है, तब काम, क्रोध और लोभ का सघन अन्धकार टिक ही नहीं सकता।
- मनुष्य के अन्तःकरण में व्याप्त सघन अन्धकार को जो विनष्ट कर विवेक का आलोक फैला देता है, वह 'गुरु' कहलाता है।

- जीवन-रथ को कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग पर चलाने के लिए और अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए योग्य गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है।
- अनुकूल निमित्त मिलने पर जीवन बड़ी तेजी के साथ आध्यात्मिकता में बदल जाता है।
- जिस प्रकार खाने से ही भूख मिटती है, भोजन देखने या भोज्य-पदार्थों का नाम सुनने से नहीं; इसी प्रकार धर्म को जीवन में उतारने से, जीवन के समग्र व्यवहारों को धर्ममय बनाने से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है।
- ज्ञानी पुरुष का पौद्गलिक पदार्थों के प्रति मोह नहीं होता।
- जो लोग आहार के सम्बन्ध में असंयमी होते हैं, उत्तेजक भोजन करते हैं, उनके चित्त में काम-भोग की अभिलाषा तीव्र रहती है। वास्तव में आहार-विहार के साथ ब्रह्मचर्य का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।
- मनुष्य के मन की निर्बलता जब उसे नीचे गिराने लगती है तब व्रत की शक्ति ही उसे बचाने में समर्थ होती है।
- व्रत अंगीकार नहीं करने वाला किसी भी समय गिर सकता है। उसका जीवन बिना पाल की तलाई जैसा है, किन्तु व्रती का जीवन उज्ज्वल होता है।
- एक मनुष्य अगर अपने जीवन को सुधार लेता है तो दूसरों पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।
- पुद्गल एवं पौद्गलिक पदार्थों की ओर जितनी अधिक आसक्ति एवं रति होगी, उतना ही आन्तरिक शक्ति का भान कम होगा।
- सम्यग्दृष्टि जीव में दर्शनमोहनीय का उदय न होने से तथा चारित्रमोहनीय की भी तीव्रतम शक्ति (अनन्तानुबन्धी कषाय) का उदय न रहने से मूर्च्छा-ममता में उतनी सघनता नहीं होती जितनी मिथ्यादृष्टि में होती है।
- जब तक परिग्रह पर नियन्त्रण नहीं किया जाता और उसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती तब तक हिंसा आदि पापों का घटना प्राय: असंभव है।
- जब तक मनुष्य इच्छाओं को सीमित नहीं कर लेता तब तक वह शान्ति नहीं पा सकता और जब तक चित्त में शान्ति नहीं, तब तक सुख की संभावना ही कैसे की जा सकती है?
- परिमाण कर लेने से तृष्णा कम हो जाती है और व्याकुलता मिट जाती है। जीवन में हल्कापन आ जाता है और एक प्रकार की तृप्ति का अनुभव होने लगता है।
- मन में सन्तोष नहीं आया तो सारे विश्व की भूमि, सम्पत्ति और अन्य सुख-सामग्री के मिल जाने पर भी मनुष्य शान्ति प्राप्त कर नहीं सकता।
- पेट की भूख तो पाव दो पाव आटे से मिट जाती है, मगर मन की भूख तीन लोक के राज्य से भी नहीं मिटती।
- एक अकिंचन निस्पृह योगी को जो अद्‌भुत आनन्द प्राप्त होता है वह कुबेर की सम्पदा पा लेने वाले धनाढ्य को नसीब नहीं हो सकता।
- अमर्यादित धन-संचय की वृत्ति के पीछे गृहस्थी की आवश्यकता नहीं, किन्तु लोलुपता और धनवान् कहलाने की अहंकार-वृत्ति ही प्रधान होती है।
- किसी महापण्डित का मस्तिष्क यदि समाज और देश की उन्नति में नहीं लगता तो उसका पाण्डित्य किस काम

का ?

- जो पूंजी पाकर स्वयं उसका सदुपयोग नहीं करता, और दूसरों की सहायता नहीं करता प्रत्युत दुर्व्यसनों का पोषण करता है, वह इस लोक मे निन्दित बनता है और अपरलोक को पापमय बना कर दुःखी होता है।
- जीवन, धन और वैभव जाने वाली वस्तुएँ हैं, किन्तु इन जाने वाली वस्तुओं से कुछ लाभ उठा लिया जाय, अपने भविष्य को कल्याणमय बना लिया जाय, इसी में मनुष्य की बुद्धिमत्ता है, विवेकशीलता है।
- स्वेच्छापूर्वक अंगीकार किया हुआ व्रत का बन्धन साहस और शक्ति प्रदान करता है। प्रतिकूल परिस्थिति में इसके द्वारा अपनी मर्यादा से विचलित न होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
- परिग्रह को घटाने से हिंसा, असत्य, स्तेय, कुशील इन चारों पर रोक लगती है। अहिंसा आदि चार व्रत अपने आप पुष्ट होते रहते हैं।
- प्रमाद और कषाय दोनों सम्यग्दर्शन और विरतिभाव की निर्मलता में बाधक हैं।
- विचार-बल यदि पुष्ट हो तो साधक अहिंसा, सत्य आदि व्रतों का ठीक तरह से निर्वाह कर सकेगा।
- भोगोपभोग की लालसा जितनी तीव्र होगी, पाप भी उतने ही तीव्र होंगे।
- सामान्य लोग भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं, जब कि साधु उनके त्याग की और उनकी अभिलाषा न करने की साधना करता है। शुद्ध आत्मोपलब्धि ही उसकी साधना का उद्देश्य होता है।
- राग की स्थिति में मनुष्य का विवेक सुषुप्त हो जाता है। जिस पर राग भाव उत्पन्न होता है, उसके अवगुण उसे दृष्टिगोचर नहीं होते। गुणवान के गुणों का आकलन करना भी उस समय कठिन हो जाता है।
- यह सत्य है कि मन अत्यन्त चपल है, हठीला है और शीघ्र काबू में नहीं आता। किन्तु उस पर काबू पाना असंभव नहीं है। बार-बार प्रयत्न करने से अन्ततः उस पर काबू पाया जा सकता है।
- किसी उच्च स्थान पर पहुँचने के लिए एक-एक कदम ही आगे बढ़ाना पड़ता है।
- धर्म-शिक्षा या अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा मन को वशीभूत किया जा सकता है।
- जो शरीर के प्रति ममतावान् है, उसे शरीर के प्रतिकूल आचरण करने पर रोष उत्पन्न होता है, किन्तु जिसने शरीर को पर-पदार्थ समझ लिया है और जिसे उसके प्रति किंचित् भी ममता नहीं रह गई है, वह शरीर पर घोर से घोर आघात लगने पर भी रुष्ट नहीं होता।
- ज्ञान अपने आप में अत्यन्त उपयोगी सद्गुण है, किन्तु उसकी उपयोगिता विरतिभाव प्राप्त करने में है।
- जो विवेकशील साधक विरतिभाव के बाधक कारणों से बचता है, वही साधना में अग्रसर हो सकता है।
- सम्यग्दर्शन आदि भाव-रत्न आत्मा की निज सम्पत्ति हैं। इनसे आत्मा को हित और सुख की प्राप्ति होती है। .
- जो मनुष्य भोगोपभोग में संयम नहीं रखता, वह प्रलोभनों का सामना नहीं कर सकता।
- जिस बुराई को मिटाना चाहते हो उसी का आश्रय लेते हो, यह तो उस बुराई को मिटाना नहीं, बल्कि उसकी परम्परा को चालू रखना है।
- समभाव की साधना की विशेषता यह है कि इससे व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त उच्च, उदार, शान्त और सात्त्विक

बनता है।

- धर्म एकान्त मंगलमय है। वह आत्मा, समाज, देश तथा अखिल विश्व का कल्याणकर्त्ता और त्राता है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता के मानस में धर्म और नीति के प्रति आस्था उत्पन्न की जाए।
- जो शासन धर्मनिरपेक्ष नहीं, धर्मसापेक्ष होगा वही प्रजा के जीवन में निर्मल, उदात्त और पवित्र भावनाएँ जागृत कर सकेगा।
- प्रत्येक साधनापरायण व्यक्ति को चार बातें ध्यान में रखनी चाहिये - (१) स्थिर आसन (२) स्थिर दृष्टि (३) मित भाषण और (४) सद्विचार में निरन्तर रमणता। इन चार बातों पर ध्यान रखने वाला लोक-परलोक में लाभ का भागी होता है।
- जिसके मन में संयमी होने का प्रदर्शन करने की भावना नहीं है, वरन् जो आत्मा के उत्थान के लिये संयम का पालन करता है, वह संयम में आयी हुई मलिनता को क्षण भर भी सहन नहीं करेगा।
- व्रती पुरुष कुटुम्ब, समाज तथा देश में भी शान्ति का आदर्श उपस्थित कर सकता है और स्वयं भी अपूर्व शान्ति का उपभोक्ता बन जाता है।
- परस्पर सापेक्ष सभी गुणों की यथावत् आयोजना करने वाला ही अपने जीवन को ऊँचा उठाने में समर्थ हो सकता है।
- ज्ञानावरण का क्षयोपशम कितना ही हो जाय, यदि मिथ्यात्व मोह का उदय हुआ तो वह ज्ञान मोक्ष की दृष्टि से कुज्ञान ही रहेगा।
- अनुभव जगाकर अपने ज्ञान-बल से भी बहुत से व्यक्ति वस्तुतत्त्व का बोध प्राप्त कर सकते हैं। पर इस प्रकार बोध प्राप्त करने के अधिकारी कोई विशिष्ट व्यक्ति ही होते हैं । निसर्ग से ज्ञान उत्पन्न होने की स्थिति में इधर उपादान ने सिद्धि की ओर जोर लगाया तो निमित्त गौण रहा, उपादान प्रधान रहा । दूसरी ओर अधिगमादि निमित्त के माध्यम से ज्ञान उत्पन्न होने की दशा में निमित्त प्रधान रहता है और उपादान गौण। प्रत्येक कार्य की निष्पत्ति में उपादान और निमित्त ये दोनों ही कारण चलते हैं।
- पाँचों व्रतों का यथाशक्ति आगार के साथ पालन, भोगोपभोग का परिमाण, अनर्थ दण्ड से बचना आदि पाप को घटाने के साधन हैं।
- विनय तप के अहर्निश आराधन से, साधारण से साधारण साधक भी गुरुजनों का अनन्य प्रीतिपात्र या कृपापात्र बन कर अन्ततोगत्वा सर्वगुण सम्पन्न हो, ज्ञान का भण्डार और महान् साधक बन जाता है।
- जैसे बिना पाल के तालाब में पानी नहीं ठहरता वैसे ही बिना व्रत के जीवन में सद्गुणों का पानी समाविष्ट नहीं हो सकता, अतः श्रावक अपने में व्रत की पाल अवश्य बांधे।
- जीव दो प्रकार के होते हैं- एक भवमार्गी और दूसरे शिवमार्गी। विश्वभर में अनन्तानंत प्राणी भव मार्ग का अनुगमन कर रहे हैं। उनकी कोई गुण-गाथा नहीं गायी जाती। उनका उल्लेख कहीं नहीं होता। उनका कोई पता नहीं होता कि किधर से आये और किधर गये। दूसरी ओर शिवमार्गी वे जीव हैं, जो संख्या में असंख्य नजर नहीं आते, किन्तु शास्त्रों में, सत् -साहित्य में उन्हीं की गुण-गाथा गायी हुई है।

- गुणियों के गुणों का कीर्तन प्रभावना का कारण है, पर साधक को प्रशंसा सुनकर खुश नहीं होना चाहिए। यही समझना चाहिये कि इसने प्रेमवश मेरे गुण देखे हैं, इसको मेरे दोषों का क्या पता ? मुझे अपने दोषों को निकाल कर इसके विश्वास पर खरा उतरना है, ताकि उसे धोखा न हो।
- हर मनुष्य के पास मन, वचन और काया के सुप्रणिधान की तीन निधियाँ हैं, जो नवविधियों की दाता हैं। गरीब से गरीब भी इनसे वंचित नहीं है। स्थानाङ्ग सूत्र के तृतीय स्थान में प्रभु ने स्पष्ट कहा है—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे।
- धर्म-साधना के लिये धन की आवश्यकता नहीं है, अमीर-गरीब सब इसका लाभ उठा सकते हैं। कम से कम तीन साधन हर मनुष्य के पास हैं। मन से किसी के लिये बुरा न सोचे, किसी की उन्नति देखकर जलन नहीं करे। क्रोध, कलह, वैर-विरोध का त्याग करे। वचन से सत्य एवं हितकर बोले, खाली समय हो तो गप्पों में बैठने की अपेक्षा भगवद् भजन करे। काय से किसी को कष्ट न दे। सेवा और सत्संग करे।
- बुद्धिवादी लोग कहते हैं कि जब तक मन शान्त न रहे, सामायिक करना बेकार है। ऐसा तर्क करने वालों को ध्यान देना चाहिये कि दवा रोग की स्थिति में ही ली जाती है, नीरोग होने पर दवा की आवश्यकता नहीं, वैसे ही राग आदि विकारों की दशा में ही सामायिक-साधना की जाती है। पूर्ण शान्ति मिलने पर तो सामायिक सिद्ध हो चुकी।
- भारत का विधान तो हर भारतीय को राष्ट्रपति बनने तक का ही अधिकार प्रदान करता है, परन्तु शास्त्र का विधान नर को नारायण और जन को जगपति बनने का अधिकार प्रदान करता है। आवश्यकता है साधना में आगे बढ़ने की।
- माताएं सुशिक्षित होंगी तो बालक को संस्कारवान बनने में देरी नहीं लगेगी।
- जब परिवार तथा समाज के क्षेत्र में आप धर्म का प्रयोग करोगे, वैर-विरोध एवं कलह के प्रसंगों को अदालत में न पहुँचा कर भीतर में सुलझाने का, हिंसा को सबल अहिंसा से जीतने का अभ्यास करोगे तो धर्म चतुर्गुण दीप्त हो उठेगा।
- शीशी में सूर्य किरण से पानी गर्म करने में अग्नि, वायु आदि का आरम्भ बच सकता है। तीन चार घण्टे में बुद्बुदे ऊपर आ जाते हैं। किरण-चिकित्सा के प्रयोग में यह अनुभव हुआ। चूल्हे पर गर्म किये जाने वाले पानी की अपेक्षा इसमें आरम्भ की बचत होती है।
- धन, अन्न, भूमि, वस्त्र आदि बचाने से घर समृद्ध होगा, देश व समाज की सेवा हो सकेगी।
- सद्गृहस्थ भोगसामग्री को मिलाते हुये भी असद्मार्ग से बचकर चलता है। असद्मार्ग से मिलायी गई सम्पदा की अपेक्षा वह धन की गरीबी को अच्छी मानता है। शरीर की सहज कृशता, शोथ (सूजन) के मोटापे से अच्छी है।
- जीवन में धर्म का स्थान वृक्ष में मूल के समान है।
- 'समता' मोक्ष का साधन है तो उसका उलटा 'तामस' नरक का द्वार है।
- बांस भी लड़कर भस्म हो जाते हैं। मनुष्य को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

- जिन धर्म अमृत सागर है। अमृत सागर के पास जाकर प्यासा आवे तो लोग मूर्ख कहेंगे। यह अमृत अनन्तकाल की तृषा मिटाता है।
- समाज पक्ष में कारीगर बनना है, मजदूर नहीं। सुई बनना है, कैंची नहीं।
- श्रावक और साधु में स्पर्शनाव्रत का अन्तर है। श्रद्धा तो दोनों की एक है।
- दुरुपयोग से दानवों ने प्राप्त वर को खो दिया और नाश के भागी बने। इस प्रकार अनन्त ज्ञानादि, निधि को पाकर जो हिंसा, झूठ, मान, बड़ाई और भोगों में खो देगा, उसे पछताना पड़ेगा। ऐसा न करो।
- सत्कर्म के बिना मनुष्य इस भूमि पर ही नरक बना लेता है।
- व्यसन छोड़िए, शीलधर्म की आराधना कीजिए और रात्रि-भोजन का त्याग कीजिए।
- मनुष्य का भाग्य और कुछ नहीं, अपने ही किये हुए पुरुषार्थ का परिणाम है।
- ज्ञान एवं वैराग्य की शिक्षा से पापी भी सुधर सकते हैं।
- दरिया में सोने की शिला पकड़ कर चलने वाला डूबता और काष्ठ पट्ट लेने वाला तिरता है। यही हाल जग में धन और धर्म का है। धन डुबाता और धर्म तिराता है।
- शस्त्रधारी सेना देश का धन बचा सकती है, पर शास्त्रधारी सेना जीवन बचाती है। क्योंकि हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार-भ्रष्टाचार शस्त्रबल से नहीं, शास्त्रबल से छूटते हैं।
- आचरणवान् या क्रियाशील ही देश-धर्म का उत्थान कर सकते हैं।
- महावीर के मार्ग और उनकी सभा में बुझदिलों का काम नहीं है। वहाँ सब कुछ प्रसन्नता से अर्पण करने वाला चाहिए।
- व्यर्थ श्रम, वाणी, क्रोधादिविकल्प, अमर्यादित भ्रमण और व्यसन में बचत करना जीवन की निधि है।
- भौतिकता के प्रभाव में जो लोग जीवन को उन्नत बनाना भूल जाते हैं, वे संसार में कष्टानुभव करते है और जीवन को अशान्त बना लेते हैं।
- मनुष्य सोचता है कि झूठ बोलना नहीं छोड़ा जाता, किन्तु जब एक दिन अभ्यास कर लोगे तो मन में हिम्मत आ जायेगी। फिर आगे बढ़ सकोगे।
- धर्म नीति प्राणिमात्र में बन्धुभाव उत्पन्न करती है। क्रोध की आग में वह प्रेम के अमृतजल का सिंचन करती है।
- बालक रत्न भी बन सकते हैं और टोल भी। माता-पिताओं को चाहिए कि अपना दायित्व समझकर बालकों के सुन्दर जीवन-निर्माण की ओर लक्ष्य दें। अन्यथा हाथ से तीर छूट जाने पर लाइलाज है।
- दुनिया के बड़े लोग सत्संग में इसलिए भी संकोच करते हैं कि वहाँ साधारण लोगों के साथ बैठना होता है। सिनेमा में उनकी पोजीशन डाउन नहीं होती, पर सत्संग में हो जाती है, कितनी विचित्र बात है।
- आप गुणज्ञ बनें, तभी सच्चा लाभ ले सकेंगे।
- सद्गृहस्थ धर्मप्रधान दृष्टि रखते हुए अर्थसाधना करता है। सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह प्रतिदिन इसका निरीक्षण करे कि मेरा 'अर्थ साधन' धर्म के विपरीत तो नहीं जाता। उसका दृष्टिकोण उस किसान की तरह होता है जो

बीज को खाता हुआ भी उसे बोना नहीं भूलता। बीज के लिये अच्छे दाने सुरक्षित रखता है।

- यदि परीक्षा में बच्चों को नैतिक व्यवहार के भी अङ्क दिए जाएं तो बच्चे देश के लिए वरदान हो सकते हैं।
- 'स्वाध्याय' संस्कार का बड़ा साधन है।
- परिग्रह छूटेगा तो आरम्भ स्वत: कम हो जायेगा।
- परिग्रह से मनुष्य की मति आकुल और अशान्त रहती है। अशान्त मन में धर्म-साधना नहीं होती।
- धर्म पहले इहलोक सुधारता है, फिर परलोक। धर्म से पहले इस जीवन में शान्ति मिलती है, फिर आगे।
- धर्म मानव-जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना वायुसेवन।
- कामना के जाल को वही काट सकता है, जिसके पास ज्ञान का बल है।
- मनुष्य जीवन का महत्त्व व्रत-नियम से है।
- राजनीति दण्ड से जीवन-सुधार चाहती है और धर्मनीति प्रेम से मन बदल कर।
- आत्मसुधार का एक निश्चित क्रम है - १. जीवन सुधार २. मरण सुधार और ३. आत्मसुधार।
- अनर्थदण्ड के प्रमुख कारण हैं— १. मोह २. प्रमाद और ३. अज्ञान ।
- किसी की उन्नति देखकर ईर्ष्या करना या उसकी हानि की सोचना अनर्थदण्ड है।
- अपध्यान में बाहरी हिंसा नहीं दिखती, परन्तु वहां अन्तरंग हिंसा है।
- अपध्यान वहाँ होता है, जहाँ तीव्र आसक्ति है।
- मनुष्य को ज्ञान का तीर लगे तो एक ही काफी है और नहीं लगे तो जन्मभर सुनते रहने पर भी कोई लाभ नहीं होता।
- मनुष्य के मन पर माया की झिल्ली आने से वह सत्तत्त्व को नहीं देख पाता और सत्कर्म में चल भी नहीं सकता।
- पारिवारिक प्रार्थना, साप्ताहिक स्वाध्याय सुसंस्कार के साधन हैं। इनके साथ निर्व्यसनी, प्रामाणिक और शुद्ध व्यवहार वाला होना आवश्यक है।
- जिसके द्वारा हित-अहित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य और धर्माधर्म का बोध हो, वही सच्चा ज्ञान है। ज्ञान के बिना विज्ञान जीवन में हितकारी नहीं हो सकता।
- तप के साथ क्रोध आदि विकारों का त्याग करना उसका भूषण है। कहा है—सोहा भवे उग्गतवस्स खंती।" अर्थात् क्षमाभाव से उग्र तपस्या की शोभा है।
- बाहरी विषमता दूर करने से शान्ति नहीं होगी। उससे कुछ समस्याएं हल हो सकती हैं, पर शान्ति के लिए समता आवश्यक है।
- गृहस्थ-जीवन दान-शील प्रधान है और मुनि-जीवन तप-संयम प्रधान है।
- बालक के संस्कार-निर्माण में पिता से अधिक मातृजीवन कारण होता है।
- अरिहन्त कहते हैं—यदि ज्ञानी बनना है तो मोह-माया का पर्दा दूर करो। ज्ञान का प्रकाश बाहर नहीं, तुम्हारे ही भीतर है।

- मानव तन , धन, परिवार, पदादि के मोह में भूला हुआ है, अतः प्राप्त सामग्री का उचित उपयोग नहीं कर पाता है।
- बिना ज्ञान के क्रिया करते हुए प्राणी अन्धकार में घूमता है, सत्य प्राप्त नहीं कर पाता।
- विद्या से विनय के बदले अविनय बढ़ता हो तो समझना चाहिए कि यह सद्विद्या नहीं है।
- ज्ञानी अपनी करणी को भौतिक पदार्थों के बदले नहीं गंवाता।
- जो निमित्त पाकर पुरुषार्थ करता है, वह अवश्य ही आत्मा का उत्थान कर लेता है। सद्गुरु का निमित्त पाकर भी जो पुरुषार्थ नहीं करता वह ज्ञान-लाभ नहीं कर सकता।
- धर्म-साधना के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। इसकी साधना इतनी सस्ती , सरल व सुलभ है कि अमीर-गरीब सब कोई इसका लाभ उठा सकते हैं।
- धन की भूख धन से नहीं मिटती, वह सन्तोष से मिटती है।
- देश के नागरिकों को सामूहिक बल से हिंसा का विरोध करना होगा।
- अहिंसा, सत्य एवं सदाचार का त्रिगुण मन्त्र धारण कर देश को संकट से बचा लेना चाहिए।
- जीवन की गाड़ी में धन का पेट्रोल ही भरते जाओगे और व्रत का जल नहीं होगा तो यात्रा खतरे से खाली नहीं होगी।
- मन बदल जाता है तो जीवन बदलते देर नहीं लगती।
- धर्म के प्रचार में भी आचार का बल चाहिए।
- पाप घटाने के लिए आवश्यकता पर नियन्त्रण आवश्यक है।
- जल जीवन है, गृहस्थ को उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।
- रागी जिन भौतिक वस्तुओं को भूषण मानकर अधिकाधिक बढ़ाना चाहता है, ज्ञानी उनको घटाना चाहता है। ज्ञानी अज्ञानी का यही खास अन्तर है।
- परिग्रह की पूजा से लोग गुणों का सम्मान भूल जाते हैं।
- श्रावक का कर्तव्य है कि वह धन-सम्पदा का साधन के रूप में उपयोग करे। उसको साध्य समझकर चलेगा तो वह बाधक बनकर उसे मूल साध्य से वञ्चित कर देगी।
- स्त्री एवं शूद्र को धर्म का अधिकारी नहीं मानना भ्रान्तिपूर्ण है।
- आठ का हो या साठ का, धर्म का मापदण्ड विवेक है।
- चार बातों में लक्ष्य आवश्यक है—तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य ।
- आचार वह है जो जीवन को पवित्र बनावे।
- जिससे अपना अहित हो वह काम छोड़ने योग्य है।
- आज अध्यात्म-शिक्षा की महती आवश्यकता है।
- सम्यग्ज्ञान ही जीवन को पवित्र बना सकता है।

- जो आत्मा को शुद्ध-बुद्ध बनाने में सहायक हो, वह साधना चाहे विचार-सम्बन्धी हो या आचार संबंधी, 'धर्म' है। इसके विपरीत जो क्रिया जीवन की अशुद्धि बढ़ावे, आत्मा को स्वभाव से दूर करे वह सब अधर्म है।
- श्रमण और श्रावक शुद्ध मन से ज्ञान-क्रिया की साधना करे तो आत्म-कल्याण हो सकता है।
- माँ ने मनुष्य को मानव रूप से उत्पन्न किया। उसको देवत्व छोड़ दानव-भाव में नहीं जाना चाहिए।
- श्रद्धा, विवेक और करणी का मेल हो वही श्रावक है।
- ज्ञानी की देव, गुरु एवं धर्म पर श्रद्धा होती है और अज्ञानी की जड़-सम्पदा पर।
- मनुष्य को भगवान की अपेक्षा माया से अधिक प्रेम होता है। इसका प्रमुख कारण अज्ञान है।
- आत्मार्थी को पाप से बचने के लिये प्रमाद और कषाय घटाने चाहिए।
- गृहस्थ संसार में रहते हुये सम्पूर्ण हिंसा आदि का त्याग नहीं कर सकता, फिर भी उसका विचार शुद्ध हो सकता है। वह पाप को पाप और षट्कायिक जीवों को अपने समान समझता है।
- ज्ञान के बिना कषाय का जोर नहीं हटता।
- आप स्वाध्यायशील रहें तो आचार की त्रुटियाँ सहज ही दूर हो सकती हैं।
- दुःखमय संसार में प्राणियों की रति देख शास्त्रकार भी आश्चर्य करते हैं।
- श्रावकपन किसी जाति या देश में सीमित नहीं होता।
- विवेकशील कोई भी मनुष्य श्रावक हो सकता है।
- सुज्ञ पुरुष चढ़ते परिणामों में साधना एवं व्रतादि कर लेते हैं।
- साधक श्रद्धा-प्रतीति होने पर भी रुचि के अभाव में चारित्र ग्रहण नहीं करता।
- जिसके संग से कुमति दूर हो, भजन की रुचि बढ़े, राग-द्वेष घटे, सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो वही सत्संग है।
- दिल के साफ आइने में ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।
- धर्म सत्य की भूमि पर पैदा होता है और दया-दान से बढ़ता है।
- चाहे माला जपें, सामायिक करें या अन्य कुछ करें, सत्य-सदाचार और प्राणिदया को जीवन में उतारना न भूलें। व्यवहार में प्रामाणिक होना मूलगुण होना चाहिए।
- विनीत शिष्य और जातिमान् वृषभ एक बार रास्ते लगने के पश्चात् बिना प्रेरित किए ही चलते रहते हैं।
- सद्विचारों से कुविचार की गंदगी मन से निकल जाती है।
- मनुष्य का जीवन मिट्टी के पिंड के समान है। उसको जैसा संग और शिक्षा मिले वह वैसे रूप में ढल सकता है।
- ब्रह्मचर्य मानव-जीवन का पानी है। जिसका पानी उतर गया वह हीरा मूल्यहीन हो जाता है।
- यदि आज का मानव महावीर के शासन को ध्यान में लेकर चले तो वर्ग-संघर्ष का नाम ही न हो।
- समदृष्टि का जीवन धर्मप्रधान होता है, अर्थप्रधान नहीं।

- चतुर कृषक जल को नाली में न डालकर बाडी में बहाता है। इसी प्रकार १८ पापों से संचित द्रव्य को आरम्भ-परिग्रह की नाली में न बहाकर ज्ञान-दान, अभय-दान, शासनसेवा , स्वधर्मिसहाय, उपकरण-दान आदि में लगाने से उसका सदुपयोग हो सकता है।
- द्रव्य, क्षेत्र , काल एवं भाव की अनुकूलता में पुरुषार्थ किया जाय तो कार्य सिद्धि हो सकती है।
- आज के श्रावक व्यावहारिक जगत् में पैतृक सम्पदा की तरह गुरु से दी गई धर्म-सम्पदा को बढ़ाकर सच्चे सपूत बनें तो विश्व का कल्याण हो सकता है।
- भला व्यक्ति भी नीच की संगति से कलंकित होता है।
- गुणशून्य बाह्य रमणीकता निस्सार है।
- श्रावक धर्म की साधना के लिए निर्व्यसनी होना प्रथम आवश्यकता है।
- ममता के चक्कर में पड़ने वाला स्वयं अशान्त हो दूसरों को भी अशान्त करता है।
- व्यसन का अर्थ ही विपत्ति है। जिससे धनहानि हो एवं जीवन दुःखमय हो वैसी कोई कुटेव नहीं रखनी चाहिए।
- एक का दिल-दिमाग बिगड़े, उस समय दूसरा सन्तुलित मन को सम्भाल ले, तब भी बिगड़ा हाल सुधर जाता है।
- मनुष्य को पर-दुःखदर्शन के समय नवनीत सा कोमल और कर्तव्य-पालन में वज्रवत् कठोर रहना चाहिए।
- गुणी ही गुण की कद्र करता है। गुणों से ही मनुष्य की पूजा होती है।
- भोग पर नियन्त्रण रखने वाला ही देश-धर्म की सेवा कर सकता है।
- ज्ञानपूर्वक मार्ग ग्रहण करने वाला कठोर परीक्षा में, उलझन के समय भी सम्भल जाता है।
- जो लोग भाई-भाई के बीच एवं सम्प्रदायों के बीच दीवाल खड़ी करते हैं, वे सपूत नहीं हैं।
- स्वतन्त्रता अमृत एवं स्वच्छन्दता विष है।
- जाति शरीर के अन्त तक है, परन्तु विचारों व संस्कारों में बदलाव होता रहता है।
- भीतरी ग्रहों का शमन करने पर बाहर के ग्रहों का कोई भय नहीं रहता।
- यदि एक बार भी क्षायिक भाव का उत्थान हो जाय तो फिर गिरने का धोखा नहीं रहता।
- विषमवृत्तियों को सम करने और कषाय की दाह का शमन करने वाली क्रिया का नाम ही सामायिक है।
- अज्ञान, मिथ्यादर्शन और कदाचार बन्ध के कारण हैं। इनको त्यागने से ही मुक्ति होती है।
- द्रव्य दया शरीर की रक्षा और भावदया आत्मगुणों की रक्षा है।
- विभूषा, स्त्री-संसर्ग और प्रणीत भोजन ब्रह्मचारी के लिए विष हैं।
- राग-द्वेष की मुक्ति व एकांत सुख के लिए ३ बातें आवश्यक हैं - (१) ज्ञान का पूर्ण प्रकाश (२) अज्ञान-मोह का विवर्जन (३) राग-रोष का क्षय।
- विषय-कषाय से मन को खाली करने पर भगवत् –निवास होता है।
- अहंकार से सत्कर्म वैसे ही क्षीण हो जाता है, जैसे मणों दूध पावरत्ती संखिया से जहरीला हो जाता है।

- महापुरुष अपनी जगहितकारी प्रवृत्तियों और कल्याण कामना से स्वयं याद आते हैं, वे याद कराये नहीं जाते।
- त्यागी होने पर भी जब तक साधु छद्मस्थ है- आहार, विहार और संग का प्रभाव होता ही है।
- गुरु और गुणीजनों की सेवा, बाल जन का संग-त्याग, स्वाध्याय और एकान्त चिन्तन भाव-निर्माण के साधन हैं।
- सद्भावों की लहरें कई बार आती हैं, परन्तु अनुकूल संग और वातावरण के बिना टिकती नहीं।
- जिसने सदाचार का पालन नहीं किया वह साहसी व निर्भय नहीं रह सकता।
- शासन एवं धर्म-रक्षण का कार्य केवल साधुओं का ही समझना भूल है, साधु की तरह श्रावक संघ का भी उतना ही दायित्व है।
- श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा स्वाध्याय अध्यात्मबल से पुष्ट होना चाहिए।
- जरा सा भी कोई सामाजिक कार्य में चूका कि लोग उसकी अच्छाइयां भूलकर निन्दा करने लग जाते हैं। सामाजिक-जीवन का यह दूषण है।
- सद्दृष्टि के अभाव में शास्त्र शस्त्र बन जाता है।
- लोभ-मोह पर जिसका अंकुश है वह स्व-पर का हित कर सकता है।
- सैकड़ों आदमी आपके सम्पर्क में आते हैं। यदि व्यवहार के साथ अहिंसा, निर्व्यसनता आदि का प्रचार करें तो अच्छा काम हो सकता है।
- साधक महिमा-पूजा और सत्कार को भी परीषह मानता है। उसमें प्रसन्न होना, फूलना एवं अहंकार करना अपनी कमाई को गंवाना है।
- संघ का कर्त्तव्य गुणी जन का आदर करना है।
- गुणप्रेमी अपना कर्तव्य समझकर सत्कार-सम्मान करे या गुणानुवाद करे, परन्तु साधक को उसमें निर्लेप रहना चाहिए।
- गृहस्थ चाहे पूर्ण पाप या आरम्भ परिग्रह का त्यागी नहीं है, फिर भी उसका लक्ष्य पाप घटाने का होना चाहिए।
- वीतरागवाणी का यह महत्त्व है कि वह सुख-दुःख के कारणों को समझाकर प्राणी को कुमार्ग से बचाती एवं सुमार्ग में जोड़ती है।
- जो मन में कुछ और रखता है तथा बोलता कुछ और है , वह धर्म का अधिकारी नहीं होता।
- मनमाना या इच्छानुकूल नहीं चलकर स्व-आत्मा के नियन्त्रण में चलना ही स्वतन्त्रता है।
- गुरु से कपट करने वाला शिष्य शिक्षा के अयोग्य होता है।
- कामी सौन्दर्य में कृत्रिमता करता है।
- यदि एक विद्वान् सही अर्थ में धर्माराधन से जुड़ जाता है तो वह अनेक भाई-बहनों के लिए प्रेरणा का स्तम्भ बन जाता है।
- असंयम दुःख और संयम सुख का कारण है।
- प्रतिदिन सामायिक का अभ्यास विषमभाव को घटाकर मन में समभाव की सरिता बहाने वाला है।

- महर्षियों ने धर्म का सार तीन बातों में कहा है—१. आत्मा को वश में करो, २. पर-आत्मा को अपने समान समझो ३. परमात्मा का भजन करो।
- शरीर में आँख की चूक से कभी पैर में काँटा लग जाय, तो क्या फिर पैर आंख का भरोसा नहीं करेगा? समाज में ऐसा ही सम्प हो तो अशान्ति नहीं होगी।
- जो इच्छा से बेईमानी नहीं करे, स्वेच्छा से घूसखोरी, नफाखोरी एवं चोरी नहीं करे, मन से नशा नहीं करे वह स्वतंत्र है।
- संयमी की शुद्ध साधना श्रावक के विवेक पर ही चल सकती है।
- साधक को हर कार्य करते समय सजग रहना चाहिए। त्रुटि हो भी जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिए। गलती करके न मानना या खुशी मनाना चोरी और सीनाजोरी करने जैसा है।
- महाविदेह की विशेषता साधना से है, भौतिक सम्पदा से नहीं।
- जैन समाज का धन प्रदर्शन के बदले ज्ञान में लगे तो समाज का हित हो सकता है।
- अर्थनीति जबसे धर्म पर प्रभुता करने लगी, संसार संघर्ष का क्षेत्र बन गया।
- मनुष्य-जन्म में करणी नहीं की तो थली के उस जाट की तरह पछताना पड़ेगा, जिसने चिड़ी उड़ाने के लिए हीरे फेंक दिए।
- परिग्रह को अफीम समझकर गृहस्थ इसकी मर्यादा करे।
- सामग्री की अल्पता में भी संतोषी सुखी होता है और विशाल सामग्री में भी कामनाशील दुःखी होता है।
- भय, लज्जा और स्वार्थ से किया गया विनय कल्याणकर नहीं होता।
- तन का संयम रोग से और वाणी का संयम कलह से बचाता है।
- वेशपूजा एवं नामपूजा के बदले गुणपूजा ही समाज को श्रेय की ओर ले जा सकती है।
- बिना साधन साध्य की प्राप्ति समझना भूल है।
- सम्प्रदाय का आवेश भी मानव से कई पाप करा डालता है।
- सम्यग्ज्ञाता ही सम्यक् कर्ता हो सकता है।
- करोड़ों की सम्पदा मानव-मन में काम-क्रोध-लोभ के ताप को नहीं मिटा सकती।
- हम वीतरागमार्गी तभी हो सकते हैं, जब राग-द्वेष को भुलाकर उपशम भाव की साधना करें।
- अज्ञान मिटाने के लिए मोह का मन्द होना आवश्यक है, जो सामायिक-साधना से ही सम्भव है।
- ज्ञानपूर्वक पुरुषार्थ करो, दुःखमुक्ति दुष्कर नहीं है।
- दृष्टि भोगप्रधान के बदले हितप्रधान बनायी जावे।
- ममता से नरक और समता से मोक्ष—यही शास्त्रों का सार है।
- वेशपूजा एवं नाम पूजा के बदले गुणपूजा ही समाज को श्रेय की ओर ले जा सकती है।
- ज्ञानादि चतुष्टय आत्म हित और समाज रक्षण के प्रमुख उपाय हैं।

- आत्मिक जीवन की सुरक्षा के लिए व्रत की बाड़ आवश्यक है।
- घर में लड़ना क्षीणता का कारण है और अपनों के सामने प्रेम से झुकना गौरव का कारण है।
- धन-सम्पदा का गर्व न कर सत्कर्म से जीवन को ऊंचा उठाना ही मानव-जीवन का साफल्य है।
- जड़ को छोड़ चेतन से प्यार करना ही सुख का साधन है।
- परिग्रह पर नियन्त्रण ही शान्ति का मार्ग है।
- समाजहित के लिए कथनी के अनुसार करणी में सहिष्णुता चाहिए।
- दया की आराधना निष्पाप जीवन जीने का अभ्यास है।
- संयम, तप व ज्ञान रूप सामायिक से राग-द्वेष की निवृत्ति होती है।
- राग को गलाने से क्लेशमुक्ति होती है।
- सम्यग्दर्शी परिग्रह को बन्धन मानता है और मिथ्यात्वी बन्दीखाने को घर मानता है। एक राग को गलाता है तो दूसरा फलाता है।
- हिंसा और परिग्रह का गाढ सम्बन्ध है। परिग्रह बढ़ेगा तो हिंसा भी बढ़ेगी।
- अज्ञान-मोह-वासना से मुक्ति ही स्वतन्त्रता है।
- मानव को सुखी रहने के लिये तन, मन और इन्द्रिय पर काबू रखना चाहिए।
- राज्य, परिवार आदि में स्थायी विजय नहीं, स्थायी विजय के लिए अविकारी होना आवश्यक है।
- समाज-व्यवस्था सुन्दर होनी चाहिए, जिससे सारे कार्य सुन्दर एवं व्यवस्थित हो सकते हैं।
- ज्ञान, दर्शन आदि विशिष्ट गुणों से धर्म की प्रभावना होती है।
- आलोचना और प्रतिक्रमण एक तरह से आत्मा का स्नान है।
- मकड़ी अपना जाल फैलाती है सुरक्षा के लिए, लेकिन वह जाल हो जाता है मकड़ी को उलझाने के लिए।
- जाल बनाने वाली मकड़ी में जाल बनाने की ताकत है, लेकिन जाल को तोड़ने की क्षमता नहीं है। वह अज्ञानी है। लेकिन मानव में दोनों योग्यताएँ हैं।
- बीज यदि जल जाय तो उसकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है। फिर उसको भूमि में डालने पर और पानी की सिंचाई करने पर भी अंकुर पैदा नहीं होता।
- कर्मबंध का मूल कारण राग-द्वेष सूख गया, ढीला पड़ गया, खत्म हो गया तो कर्मवृक्ष भी सूख जायेगा। झाड़ का मूल (जड़) यदि सूख जाय तो ऊपर के पत्ते, डालियाँ, फूल, फल कितने दिन हरे भरे रहेंगे?
- राग-द्वेष कर्म का मूल है। राग-द्वेष खत्म हो गया तो बाद में शरीर, वाणी आदि कर्मों के फल थोड़े दिन के लिए दिखाई देते हैं बाद में तो सारा कर्मवंश ही खत्म हो जाता है।
- सोना-चांदी, हीरे-जवाहारात के ऊपर तुम सवार रहो, लेकिन तुम्हारे ऊपर धन सवार नहीं हो। यदि धन तुम पर सवार हो गया तो वह तुमको नीचे डुबो देगा।
- जिस तरह सूर्य की किरणें सब जगह पहुँचती है उसी तरह ईश्वर, परमात्मा या सिद्ध का ज्ञान सब जगह पहुँचता

है। इसलिये हम कहते हैं कि वे अन्तर्यामी हैं। वे त्रिभुवन के स्वामी हैं।

- मूल में धर्म का स्वरूप अहिंसा, संयम और तप है।
- जिसमें दूसरे जीवों को सताया जाता है अथवा हैरान किया जाता है, कष्ट दिया जाता है वह हिंसा है। उनको नहीं सताना, हैरान नहीं करना, उनका रक्षण करना, उनके जीवन को बचाना, अहिंसा है।
- इन्द्रियों का निग्रह और मन की वृत्तियों पर काबू करना संयम है।
- कष्ट पड़े तो कष्ट को सहन करना, इसका नाम तप है ।
- धर्म आत्मा को दुःख से बचाने वाला है।
- कामना की पूर्ति का साधन अर्थ है और मोक्ष की पूर्ति का साधन धर्म है।
- अहिंसा, संयम और तप जहाँ है, वहीं धर्म है।
- जो गिरती हुई आत्मा को धारण करे, बचावे, उसका नाम धर्म है।
- जो विचार और आचार आत्मा को पतन से रोके, वह धर्म है।
- क्रोध पर विजय प्राप्त करनी हो तो क्षमा से प्रतिकार करें।
- धर्म का स्वरूप है सद् आचार और सद् विचार।
- भगवान महावीर के अहिंसा धर्म, संयम धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ ऐसे होते हैं, जिन्हें अपने धन का त्याग करना पड़े तो संकोच नहीं करते।
- श्रीमंतों को समाज में काजल बन कर रहना चाहिये जो खटके नहीं।
- देव स्तुति कर सकते हैं, गुणगान कर सकते हैं, शासन की शोभा करनी हो तो तीर्थंकरों के उत्सव में देव आकर साढ़े बारह करोड़ सोनैया की वर्षा कर सकते हैं, लेकिन एक घड़ी सामायिक करने का सामर्थ्य देवों में नहीं है।
- भगवान रास्ता बताते हैं। हमारे दिल-दिमाग में सर्च लाइट की तरह प्रकाश करते हैं। उस प्रकाश को हमें खुद बढ़ाना है।
- जीवन को सुन्दर बनाने के लिये आवश्यक है कि हमारे जीवन में सम्यग् ज्ञान की ज्योति जगे।
- जो लोग धर्म को मात्र परलोक के लिये समझ रहे हैं, वे इसका सही स्वरूप नहीं समझते।
- बिना श्रम के, बिना न्याय के, बिना नीति के जो पैसा मिलाया जाता है, उससे कोई करोड़पति व लखपति हो सकता है, लेकिन वह पैसा उस परिवार को शान्ति और समता देने वाला नहीं हो सकता।
- श्रावक धर्म की शिक्षा से, मानव जीवन शान्ति की ओर बढ़ सकता है।
- आज व्यापारी के भी एजेन्ट होते हैं, उसी तरह कच्चे त्यागियों को पुजाने के लिए भी एजेन्ट होते हैं।
- मानव! यदि तू अपने जीवन को अहिंसक बनाये रखना चाहता है तो यह ध्यान रख कि जिससे जीवन चलाने के लिए सहयोग ले, लाभ ले, या काम ले उसको कोई पीड़ा न हो।
- भक्ष्य-अभक्ष्य एवं खाद्य-अखाद्य का विचार करके अन्न ग्रहण करें। आहार शुद्ध होगा तभी विचार सुधरेंगे और विचार सुधरेंगे तो आचार सुधरेगा।

- अन्याय और अत्याचार का बहिष्कार आचार-शुद्धि के बल पर ही हो सकता है।
- धर्माराधक के तीन विभाग हैं—एक सम्यक् दृष्टि, दूसरा देशव्रती और तीसरा सर्वव्रती।
- सत्य की बात कहना और सत्य को मान लेना उतना कठिन नहीं है, जितना आचरण में कदम रखना ।
- यदि आत्मा को बलवान बनाना है तो त्याग और अच्छाई को आचरण में लाना होगा। गलती को कबूल करना पहला धर्म है, गलती को सर्वथा नहीं करना दूसरा धर्म है और गलती को पूरी तरह से न करने की क्षमता न होने पर एक सीमा तक स्थूल रूप में गलती न होने देना, यह तीसरा रूप है।
- भवसागर जिससे तरा जाये, जन्म-मरण का बन्धन काट करके आत्मा संसार से पार हो जाये, उस साधना को तीर्थ कहते हैं।
- कामना को वश में नहीं करने वाला कदम-कदम पर चुनौती के संक्लेश में, आकुलता-व्याकुलता के घेराव में पड़ता है, उसका मन चंचल एवं असंतुष्ट रहता है।
- अस्थिर मन से धर्म की, व्रतों की साधना नहीं होती।
- आहार पर कन्ट्रोल नहीं करेंगे तो जीवन में पवित्रता व दृढ़ता नहीं रहेगी।
- आत्मा में बहुत बड़ी शक्ति है वह सब कुछ कर सकती है।
- जिसकी इच्छा किसी वस्तु को त्यागने की नहीं है, लेकिन बाध्य होकर त्याग करना पड़ रहा है, वह व्यवहार में तो त्यागी कहा जा सकता है, लेकिन असलियत में नहीं ।
- धर्म तीन तरह से हो सकता है, स्वयं करना, कराना और करने वालों का अनुमोदन करना। अनुमोदन करने वाला भी लाभ उठाता है।
- कोई भी आदमी कमजोर नहीं है। तन से कमजोर होते हुए भी मन से बलवान हो तो वह सब कुछ कर सकता है।
- कामनाशील व्यक्ति अर्थ की साधना करता है, लेकिन मुमुक्षु धर्म की ।
- यदि समिति के रूप में प्रवृत्ति की जाय तो वह बंध को रोकने का कारण है।
- जिनशासन कहता है कि मानव ! कोई भी प्रवृत्ति करो उससे पहले देखो-भालो और खयाल करो कि तुम्हारे चलने से, खाने से, उठने-बैठने से, सम्भाषण करने से किसी को तकलीफ तो नहीं।
- परिग्रह की ममता कब दूर होगी? जब 'स्व' का अध्ययन करोगे। अपने आप को समझ लोगे और जान लोगे कि स्वर्ण, धन आदि से आत्मा की कीमत नहीं है।
- आत्मा की कीमत है सदाचार से, प्रामाणिकता से, सदगुणों से।
- मनुष्य का शरीर यदि सोने से लदा हुआ है, लेकिन वह सद्गुणी नहीं है तो निन्दनीय है।
- ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में ज्ञान करने के लिये, दर्शन को सुरक्षित रखने के लिये जिस विधि की जरूरत है उस विधि या उन नियमों से चलने का नाम है 'आचार'।
- धर्म-साधना के लिए किसी के पास एक पैसा भी नहीं है तो भी उसके पास तीन साधन हैं—तन, मन और पवित्र

वचन।

- एक श्रावक दूसरे श्रावक का ज्ञान और श्रद्धा से भी साधर्मी है और व्रत से भी ।
- सम्यक् दृष्टि श्रावक का फर्ज है कि यदि अपने सम्यक् दृष्टि श्रावकों में से कोई कमजोर है तो उसकी सहायता करें।
- समाज जितना जिन्दा होगा उतना ही वह कमजोर भाइयों की सहायता करेगा।
- चिन्तनशील समाज जगा हुआ कहलायेगा। ज्ञानवान चाहे अमीर हो या गरीब, अपने धर्म पर टिका रहेगा।
- परवश होकर बड़ी से बड़ी वस्तु को छोड़ना त्याग नहीं है और इच्छा से छोटी से छोटी वस्तु भी छोड़ना त्याग है।
- जब तक मानव के मन में राग, रोष स्वार्थ है और ज्ञानावरणीय का पर्दा मौजूद है तब तक वह सत्य को पूरी तरह समझ नहीं पाता, कह नहीं पाता और आचरण में नहीं ला पाता।
- जहाँ राग है, वहाँ रोग है, अत: राग के कारणों को घटाना चाहिए। भोग-उपभोग से कभी मन तृप्त नहीं होता, मन को तृप्त करने का साधन है तप-त्याग।
- त्यागी वह है जो उस चीज को छोड़ता है जो उसको प्यारी होती है। मन के सच्चे भाव से रमणीक वस्तु को स्वयं बिना परवशता के छोड़ना त्याग है।
- चीज पसन्द नहीं, शरीर के पीछे खाने की स्थिति नहीं, वह त्याग त्याग नहीं है जितना ज्यादा त्याग करोगे उतनी ज्यादा ताकत आयेगी।
- जो चीज अपने को पसंद है, स्वाधीन है, उपलब्ध है उसका इच्छापूर्वक त्याग करो, इसका नाम त्याग है। ऐसा त्याग करने वाले संसार में पूजनीय, आदरणीय बनते हैं, उनका वन्दन होता है।
- अन्न छोड़ना ही तप नहीं है। अन्न छोड़ने की तरह वस्त्र कम करना, इच्छा कम करना, संग्रहवृत्ति कम करना, कषायों को कम करना, यह भी तप है।
- जब तक आदमी इच्छा की बेल को काट नहीं देता है तब तक सुखी होने वाला नहीं है।
- मन का स्वभाव नीचे गिरने का है, इसलिये इसको ऊपर उठाने के लिये ज्ञान का बल लगाना पड़ेगा।
- संसार के पदार्थ तभी खींचते हैं जब उनके प्रति तुम्हारा राग होता है, ममता होती है।
- दुखः मिटाना चाहते हो तो जिन चीजों से दु:ख होता है, उनके प्रति आसक्ति को ढीली कर दो। यह समझो कि यह चीज मेरी नहीं है। जो चीज आपकी होगी वह आपसे कभी अलग नहीं होगी । जो चीज आपसे अलग होने वाली है, वह आपकी नहीं है।
- दु:ख और संताप का कारण यदि कोई है तो ममता है। यह कार, यह कोठी, यह बगीचा, यह कुँआ मेरे नहीं हैं, मेरी नेश्राय में हैं। अपने विचारों में इतना सा संशोधन भी कर लें, परिवर्तन कर लें तो कभी दु:ख का जहाज अपने पर नहीं गिरेगा।
- जिस वस्तु पर हमारा ममत्व है वहाँ दु:ख होता है, जिस पर ममत्व नहीं है वहाँ पर दु:ख नहीं होता।

- जब कभी तुम्हारा मन साधना से चला जाय, भोग की वस्तुओं में लग जाय, परिवार-जनों, पुत्र आदि में चला जाय, अर्थ पर मन चला जाय तो सबसे पहले यह सोचो कि जिनको मैं अपना समझ रहा हूँ , वे मेरे नहीं हैं और मैं भी उनका नहीं हूँ।
- गृहपति भाई-बहिन यह समझ लें कि परिवार की रखवाली करना हमारा काम है। यह धन-दौलत तो किसी दूसरे की है। मेरे साथ चलने वाली नहीं हैं। मन की चंचलता को मिटाने का यह पहला उपाय है।
- राग को कम करना है तो आरामतलबीपना छोड़ो और आतापना लो।
- शास्त्रकार कहते हैं कि बाहर जाने वाले मन को यदि रोकना है तो बाहरी बातों से उसको हटाओ, ममता को समाप्त करो, विषय-कषायों से बचते रहो।
- जो आध्यात्मिक मार्ग की ओर आगे बढ़ाने के बजाय उससे पीछे मोड़ती है, उस कथा का नाम विकथा है।
- बाहरी वस्तु से जितनी-जितनी ममता होगी, राग होगा, स्नेह होगा उतना-उतना मन चंचल बनता जायेगा।
- राग बन्ध का कारण है और विराग बन्ध-मोचन का साधन। इनके बीच में एक कड़ी और होती है राग से खींचने वाली और विराग से जोड़ने वाली, जिसका नाम है 'अनुराग'। देव, गुरु और धर्म तथा शास्त्र की ओर अनुराग होता है तो राग से खिंच जायेगा और विराग की ओर बढ़ेगा।
- यदि सहिष्णुता पैदा हो गई तो शारीरिक कष्ट सामने आने पर भी मन में चंचलता नहीं आयेगी।
- जिसने अपने शरीर को साध रखा है, मन को मनाने की क्षमता है, उसको किसी भी परिस्थिति का सामना करने में कठिनाई नहीं होती।
- मन यदि सधा हुआ है तो आप जैसा मिला उसमें सन्तोष करोगे, राग-द्वेष नहीं होगा, मन चंचल नहीं होगा।
- एक-एक व्यक्ति अपने एक-एक साथी को प्रेरणा देकर स्वाध्याय के लिये तैयार करे, समाज का एक-एक श्रोता ऐसा सोच कर चले तो कितना काम हो जाय?
- भय, लोभ, महिमा की चाह और राग का लुभावना आकर्षण–इन चार बातों से साधक साधना-मार्ग में कमजोरी से पैर इधर-उधर रखने लगता है। इन समस्याओं को हल करने के लिये उसको गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
- दुःख दूर करने की कुंजी है-कामना को दूर करना। तन की भूख मिटाना आसान है, लेकिन मन की भूख मिटाना मुश्किल है। तन की भूख कोई दूसरा भी मिटा सकता है, लेकिन मन की भूख स्वयं ही मिटा सकता है।
- यदि द्वेष को जड़ से काट दिया और राग की जड़ को हटा दिया तो संसार में रहता हुआ भी जीव सुखी हो जायेगा।
- यदि कामनाओं को वश में कर लोगे तो दुःख सदा के लिये नष्ट हुआ समझो।
- त्यागी को चाहिये कि जिस वस्तु को छोड़ दिया उसे वापस लेने की इच्छा भी नहीं करे।
- धर्म का मूल सिद्धान्त है अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त करना।
- आत्मा के भीतर अनन्त शक्ति और सामर्थ्य है, अनन्त ज्योति है। पहचानिये। इसको पहचानने का माध्यम है

स्वाध्याय। इसलिये कहा गया है कि बिना स्वाध्याय के ज्ञान नहीं होता। ज्ञान की ज्योति जगाने के लिये, आत्मा की ज्योति जगाने के लिये, स्वाध्याय एक अच्छा माध्यम है।

- जैन धर्म किसी जाति-विशेष के बन्धन में बंधा हुआ नहीं है। उसमें ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है, शूद्र है और किसान भी है तो व्यवसायी भी है।
- हमारा आहार बिगड़ गया तो स्वास्थ्य भी बिगड़ गया।
- यदि जीवन में धर्म को व्याप्त करना चाहते हो तो आहार शुद्धि पहली चीज है।
- यदि आदमी को अपने विकारों पर काबू पाना है तो पहली शर्त है कि वह आहार प्रमाण से युक्त करे दूसरी यह कि आहार दोषरहित हो।
- समाज के बहुत से भाई अर्थ की कमजोरी से और कुछ ज्ञान की कमजोरी से दोलायमान होते हैं, कुछ समाज के सहयोग की कमजोरी के कारण दोलायमान होते हैं। इधर उधर होने के ये तीन मुख्य कारण हैं।
- सच्चा सन्त प्यार की नजर से देखता है और सामने वाले को पानी पानी कर देता है।
- मन के बाहर जाने का सबसे बडा कारण राग है, इसलिये इसे कम करो। राग कम करने का उपाय है - बाहरी पदार्थों को अपना समझना छोड़ दो।
- अर्थ की गुलामी से छुटकारा पाने के लिये कामना को कम करना पड़ेगा।
- आज जैन समाज में दिखावा इतना बढ़ गया है कि देखकर विचार आता है। इससे जैन धर्म अपना नाम ऊँचा नहीं कर सकता।
- बच्चे का सुख, घर वालों का सुख, शरीर का सुख अथवा धन का सुख—ये सब सुख किससे मिलते हैं? पुण्य से। और दुःख किससे मिलता है? पाप से। फिर इस प्रकार की स्थिति में दुःख मिलने पर किसी अन्य पर रोष करना, किसी दूसरे को दुश्मन समझना, विरोधी अथवा अपना अनिष्ट करने वाला मानना उचित नहीं।
- संसार में जो दृश्यमान पदार्थ हैं, वे टिकने वाले नहीं हैं। यह सुनिश्चित है, जो उत्पन्न हुआ, उसका विनाश सुनिश्चित है,जो बनता है वह एक दिन अवश्य बिगड़ता है। ये इमारते बनीं हैं, कोठियाँ बनीं हैं, बंगले बने हैं,किले बने हैं,वे सब कभी न कभी नष्ट होंगे, यह अवश्यंभावी है। यह वस्तु का स्वभाव है।
- अगर किसी की वाणी में ऊपर से कटुता है, तो वह इतनी बुरी नहीं है, जितनी कि भीतर में भरी कटुता। ऊपर वाला बोल देगा और समाधान पाकर शान्त भी हो जाएगा, पर भीतर की कटुता बड़ी खतरनाक होती है।
- जिसमें श्रद्धा नहीं है, वह ज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकेगा।
- ज्ञान के साथ जो तपस्या है वह ऐसी बड़ी-बड़ी शक्तियों को प्रकट कर देती है, जिससे मानव का मन हिल जाता है।
- आग की चिनगारी मनों भर भूसे को जलाने के लिए काफी है, वैसे ही तपस्या की चिनगारी कर्मों को काटने के लिए काफी है।
- मन-शुद्धि और चित्त-शुद्धि करेंगे तो आत्मा में बल एवं ताकत आयेगी और कल्याण के भागी बन सकेंगे।
- जीवन चलाना महत्त्वपूर्ण बात नहीं है लेकिन महत्त्वपूर्ण बात है — जीवन बनाना।

- बन्धन संसार है और बन्धन को काटने की प्रक्रिया चारित्र है।
- ज्ञान अपने भीतर भी उजाला करता है और दूसरों के भीतर भी उजाला करता है।
- यदि विषय-कषाय नहीं घटते हैं तो कहना चाहिए कि अब तक हमारे जीवन में चारित्र नहीं है।
- चारित्र उस क्रिया का नाम है जो संचित कर्मों को काटने का काम करती है।
- चारित्रवान कभी भी सामने वाले की गलती नहीं निकालता।
- चरित्र नहीं है तो चारित्र नहीं। चरित्र आने के बाद एक लाइन और बढ़ाते हैं, 'आ' की मात्रा लगाते हैं, तब चारित्र आता है।
- नियम या प्रतिज्ञा करने में गरीब-अमीर का भेद नहीं है।
- चारित्रवान मानव नमक हैं, जो सारे संसार रूपी सब्जी का जायका बदल देते हैं।
- जब कभी भी सोते, जागते, उठते, बैठते हम वीतराग का स्मरण करेंगे, ध्यान करेंगे, चिन्तन करेंगे, वह एक-एक क्षण परम कल्याणकारी होगा, जन-जन के ताप त्रय को दूर करने वाला होगा।
- आस्रव-त्याग के साथ जो तप की आराधना होगी वह दोगुनी ताकत वाली होगी।
- चारित्र के साथ, आस्रव-त्याग के साथ तपस्या की महिमा है।
- सद्गृहस्थों का कर्त्तव्य प्रतिदिन तप करना है।
- महावीर का जो मुक्ति-मार्ग है, वह त्याग या वीतरागता-प्रधान है।
- यदि महावीर के बताये माफिक ऊनोदरी आदि तप करने लगे तो समझ लीजिए कि लोगों की आधी बीमारी कम हो जाए।
- यदि ८ दिन में या १५ दिन में एक बार व्रत होता रहे तो आदमी को बीमारी जल्दी नहीं होती और डाक्टर की शरण में जाने की जरूरत नहीं पड़ती। कहीं मेहमानदारी में जाओ तो भूख से ज्यादा न खाओ।
- छोटे-बड़े गुरुजनों का, साधु-साध्वियों का, साधर्मी-बन्धुओं का, श्रावक-श्राविकाओं का, तपस्वी भाई-बहनों का विनय करना तपस्या है।
- पर्युषण और व्रत के दिनों मे जितनी सादगी रखोगे, परिग्रह का बोझ जितना कम रखोगे, उतना ही अच्छा रहेगा। इससे मन में शान्ति रहेगी, परिवार में शान्ति रहेगी।
- वेदनीय कर्म को मिटाना है, निराबाध सुख पाना है तो इसका साधन है 'तप'।
- तप की साधना करेंगे तो आपकी वेदना का जोर कम हो जाएगा।
- बिना संयम के जो तप है वह वास्तविक तप नहीं है।
- संयम के साथ तप ज्ञान-तप है और असंयम के साथ तप अज्ञान-तप है।
- तप की पूरी ताकत मिलानी है तो वाणी का संयम करके जो तप की साधना की जाएगी उसकी ताकत चार गुणा, दस गुणा ही नहीं शत गुणा होगी।
- संयम जितना कम होगा और असंयम जितना ज्यादा होगा उतने कर्म के बन्धन भी ज्यादा होंगे।

- असंयम को ज्यादा बढ़ाना ही संयम को बन्द रखने का बड़ा कारण है।
- जहाँ संयम है, वहाँ संवर है और असंयम है, वहाँ आस्रव है।
- जहाँ कहीं भी इन्द्रियों व मन की राग वृत्ति का पोषण है, वहाँ धर्म नहीं है।
- मेरा अनुभवी मन कहता है कि बाहरी प्रदर्शनों से जैन धर्म दुनिया के सामने अपना गौरव नहीं बढा सकता, जैन धर्म तो आडम्बरविहीन रहने की बात कहता है।
- माताएँ तपस्या के साथ संयम करें, वेश-भूषा और लेन-देन में संयम करें तो हजारों लाखों जीवों की हिंसा बच सकती है।
- एक तरफ जानवरों को छुड़ाना और दूसरी तरफ हिंसा से जो चीजें बनती हैं, उनको इस्तेमाल करना, कितनी विसंगति है ?
- गुणवानों ने जीवन बनाने का जो मार्ग-दर्शन दिया है उसको पकड़ लें, यह उनका बहुत बड़ा गुणगान है।
- महावीर ने मार्ग बताया कि अपना खयाल रखकर, अपनी चोटी पहले पकड़कर, खुद सुधरते हुए संसार का सुधार करो।
- यदि दूसरों को देखकर तालियाँ बजाते रहेंगे और घर में करने-कराने को कुछ भी नहीं है तो वास्तव में समाज का कोई गौरव नहीं होगा।
- सद्गृहस्थ वह है जो सत्पात्र को रोज दान देवे।
- देव-भक्ति, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - ये गृहस्थ के षट् कर्म बताये गये हैं।
- आपका दान जनता की नजर में जल्दी आ सकता है, लेकिन साधु का दान देखने में नहीं आता।
- नाम के भूखे महानुभाव ज्यादा हैं और काम करने के कम।
- यदि दान का उचित उपयोग करें तो समाज में देने वालों की कमी नहीं है।
- आप द्रव्य का त्याग करेंगे तो ममता घटेगी। दूसरी बात समाज में त्याग की परिपाटी कायम रहेगी। तीसरी बात त्याग करने से समाज दुर्बल और पराश्रित नहीं रहेगा, अपने पैरों पर खड़ा रह सकेगा।
- जैन धर्म जैसा ऊँचा धर्म पाकर आप पिछड़े रह गये, तो इससे ज्यादा कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।
- द्रव्य-दया से ही जैन धर्म ऊँचा नहीं उठेगा, द्रव्य-दया के साथ-साथ भाव-दया भी करें।
- जैसे नमक के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता है, उसी तरह द्रव्य-दया के साथ भाव-दया भी आवश्यक है।
- आप चाहे तप कीजिये, दया कीजिये, शीलव्रत धारण कीजिये, दान दीजिये, जो कुछ भी कीजिये निष्कपट भाव से, सरल मन से कीजिये। ऐसा नहीं हो कि मन में कुछ और है और बाहर कुछ और।
- सही आराधना करनी है तो तन से, मन से, जीवन से कपट को हटाकर साधना के मार्ग में आगे आना चाहिए।
- मन में गाँठ बाँधकर रखोगे तो साथ में काम करने वालों की गाड़ी आगे नहीं चलेगी, गाड़ी अटक जाएगी।
- जिस प्रकार स्वादु फल वाले वृक्ष पर पक्षी मँडराते हैं; इसी प्रकार प्रकाम रस-भोजी को विषय घेरे रहते हैं।
- कर्णप्रिय गीत सुनना, सुन्दर रूप और चलचित्र देखना, तेल-फुलेल लगाना आदि कामनाएँ, लहरें उसी में उत्पन्न

होंगी जो सरस और उत्तेजक पदार्थों का सेवन करता है।

- हमारे भीतर जो चेतना का नाग है वह सोया पड़ा है, उसको जगाने के लिए भगवान की वाणी का मधुर स्वर सुनाना पड़ेगा।
- जब तक विषय-कषाय नहीं हटेंगे, तब तक जीवन का मैलापन नहीं हटेगा।
- जिस तरह मनुष्य को अपनी ही जूती काट खाती है, उसी तरह अपना ही मन जीव को दण्ड देता है।
- यदि अपने को, अपनी वाणी को, अपनी काया को आत्मा के अभिमुख कर दिया, आत्म-भाव में लगा दिया तो वह मन अदंड का कारण बनेगा।
- सामायिक की साधना करोगे तो तुम्हारा मन अदंड बन जाएगा, वचन भी अदंड बन जाएगा और काया भी अदंड बन जाएगी।
- दण्ड से अदण्ड में लाने वाली क्रिया का नाम सामायिक है।
- धर्म-स्थान मे बैठेंगे, महापुरुषों से सम्पर्क करेंगे तो दिल-दिमाग आर्त्त और रौद्र की ओर नहीं जाएगा।
- मोक्ष की ओर आगे बढ़ना है तो अहंकार, मान अथवा घमंड को चकनाचूर कीजिए।
- विकार से रहित होकर तपस्या करें तो कर्मों की बहुत बड़ी निर्जरा होती है।
- यदि समय थोड़ा है तो थोड़े समय में कर्म काटने का साधन है, 'तपस्या'।
- आत्म-शुद्धि के लिए गुरु के सामने जाकर अपनी आलोचना और प्रायश्चित्त करना चाहिए।
- हर सामाजिक और धार्मिक कार्यकर्त्ता को समझना चाहिए कि सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों पर नियन्त्रण रखना जरूरी है।
- सच्चे साधक अपनी गलती को मानने में और उसको गुरुजनों के सामने प्रकट करने में और प्रायश्चित लेने में संकोच नहीं करते।
- आत्मा की शुद्धि के सूत्र हैं - निरीक्षण, परीक्षण और शिक्षण।
- हर एक को अपना जीवन शुद्ध करने के लिए अपनी आलोचना खुद करनी है, बारीकी से देखना है।
- काल की गति विचित्र है। वह न बच्चा देखता है न जवान, न बूढ़ा और न तरुणी, एकदम आकर धर दबोचता है।
- दुःख-मुक्ति का रास्ता यह है कि हित-मार्ग को जानो, पहचानो, पकड़ो और तदनुकूल आचरण करो।
- धन के बीच अनासक्त रहने वाला चिन्तित नहीं होगा, किन्तु जो माया का नशा कर लेता है, उसको सदा चिन्ताएँ घेरे रहेंगी।
- यदि इन्कम के पीछे पाँच या दस टका भार हल्का करने की मन में आवे और आसक्ति तथा राग कम हो तो मैं कहता हूँ कि आसक्ति कम होते ही आपका रोग और शोक भी कम हो जाएगा।
- धन बढ़ने के साथ-साथ चिन्ता बढ़ने से रोग भी अधिक बढ़ता है, इसलिए आप लोग यह समझें कि जो धन मेरे पास है वह मेरा नहीं है, मैं तो एक ट्रस्टी हूँ, संरक्षक हूँ।

- सामायिक, पौषध, संवर आदि निज के कर्म काटने के साधन हैं।
- दान के माध्यम से समाज के योग्य क्षेत्र में संवितरण किया जाता है।
- दान करने वाले का पैसे पर ममत्व कम रहेगा, तो शोक-संताप कम होगा, बीमारी कम होगी।
- वचन की महिमा वक्ता की योग्यता पर आधारित होती है।
- मन से जिनके विकार निकल गये वे श्रमण हैं, सुमन हैं।
- शिष्य गुरु के सामने दिल खोलकर बात कर सकता है। वह शिष्य नहीं जो गुरु से खुले मन बात नहीं करे।
- उत्तम पुरुष प्रणिपात के बाद क्रोध नहीं रखते।
- जघन्य आदमी दीर्घद्विषी होता है, जब तक वह एक-एक गाली के बदले में दस गाली नहीं दे दे, तब तक शान्त नहीं होता।
- निश्छल भाव से प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़कर आगे बढ़ने का प्रयास करोगे तो अवश्य कल्याण के भागी बनोगे।
- सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता सम्पदा और वैभव के कारण सुखी नहीं हैं, वरन् वे सुखी हैं पौद्गलिक कामना कम होने के कारण। वे उपशान्तभाव में रहने वाले हैं। उनमें क्रोध, मान, माया, लोभ अति मन्द दशा में हैं।
- तन और वाणी से तो क्रिया होती रहे और मन कहीं अन्यत्र भटकता रहे, उसे द्रव्य-क्रिया समझिए।
- उजाला भय मिटाता है और अंधेरा भय फैलाता है। इसी प्रकार ज्ञान से भय मिटता है और अज्ञान से भय बढ़ता है।
- व्रत रखते हुए भी प्रमाद नहीं छोड़ा तो पाप का मूल छूटेगा नहीं।
- बंधन वाला जब तक बंधनमुक्त को लक्ष्य में नहीं लेगा, बन्धनमुक्त नहीं हो सकेगा।
- जो मूक भावदाता होते हैं, वे चुपचाप शान्त एवं त्यागमय जीवन से, शान्त मुखमुद्रा से, अपनी चर्या से, बिना बोले आगन्तुक व्यक्ति को शान्ति का रस देते हैं।
- पहले-पहल विचार-शुद्धि होनी चाहिए और उसके बाद दूसरे नम्बर पर आचार-शुद्धि होनी चाहिए।
- कर्म को काटना है तो उसका रास्ता है - श्रुतधर्म और चारित्रधर्म को अपनाना।
- श्रुतधर्म से विचारशुद्धि होती है और आचारधर्म से चारित्रशुद्धि ।
- वाणी का संयम, तन का संयम, मन का संयम ही हमारी आत्मशुद्धि में सहायक होता है।
- जहाँ भौतिक लाभ होता है, वहाँ संगठन आसानी से हो जाता है। लेकिन धार्मिक संगठन मुश्किल से होता है। वैसा संगठन करने में देर लगती है।
- मिथ्या विचार और मिथ्या आचार बन्ध के हेतु हैं।
- हमारी मनःस्थिति में, राग और द्वेष के रूप में जो चिन्तन चलता है, परिणमन होता है, वह विकार है और वही बन्ध का कारण है।
- तनयोग से, मनोयोग से और वाणीयोग से सामायिक की साधना की जाए तो अनंत-अनंत कर्म समाप्त हो सकते

हैं।

- आर्त्त-रौद्रध्यान को छोड़कर जो धर्मध्यान में लीन होता है और एक मुहूर्त का समय सामायिक या धर्मध्यान के चिन्तन में लगाता है, वह कल्याण को प्राप्त होता है।
- सामायिक-व्रत एक दर्पण है। यदि धर्म-ध्यान की ओर अग्रसर होना है तो यह जरूरी आलम्बन है।
- मन को मजबूत करने के लिये संकल्प आवश्यक है। बिना संकल्प के करणी नहीं होगी और बिना करणी के कर्म नहीं कटेंगे।
- उचित एवं हितकर मानकर भी मन उस पर स्थिर नहीं रहता, यह साधना का बड़ा विघ्न है।
- धर्म प्रेमी श्रावक अपने गाँव में बालक-बालिकाओं को धर्म तथा निर्व्यसनता की ओर प्रेरित करें तो बडे लाभ का कारण है।
- मानव जब तक मिथ्या विचार और मिथ्या आचार में रहता है तब तक अपनी आदत में , विश्वास में गलत धारणाएँ रखता है। धर्म के बारे में गलत मानता है, गलत सोचता है और गलत बोलता है।
- सम्यक् विचार और आचार बन्धन काटने के साधन हैं।
- चाय एक तरह का व्यसन है। यह खून को सुखाने वाली, नींद को घटाने वाली और भूख को कम करने वाली है।
- प्रभु की प्रार्थना साधना का ऐसा अंग है जो किसी भी साधक के लिए कष्ट सेव्य नहीं है । प्रत्येक साधक, जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति गहरा अनुराग हो, प्रार्थना कर सकता है।
- वीतरागता प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण आकुलताजनित सन्ताप आत्मानन्द के सागर में विलीन हो जाता है। वीतरागता एक ऐसा अद्भुत यन्त्र है कि उसमें समस्त दुःख, सुख के रूप में ढल जाते हैं।
- वीतरागता का साधक अपने शरीर के प्रति भी ममत्ववान् नहीं रह जाता। उस स्थिति में अपने शरीर का दाह उसे ऐसा ही प्रतीत होता है, मानो कोई झोंपड़ी जल रही है।
- देहातीत दशा प्राप्त हो जाने पर शरीर का दाह भी आत्मा को सन्ताप नहीं पहुँचा सकता।
- भगवद्-भक्ति अथवा प्रार्थना की पृष्ठभूमि में आन्तरिक आध्यात्मिक विकास ही परिलक्षित होना चाहिए, न कि भौतिक साधनों का विकास। भगवद्-भक्ति का मुख्य उद्देश्य आत्मशुद्धि है।
- विवेक-दीप प्रज्वलित होने से मन का अन्धकार दूर होगा, भावालोक प्रस्फुटित होगा और तब दुःखों का स्वतः प्रक्षय हो जायेगा।
- मन में ज्ञानालोक का उदय होने पर सारी विचारधारा पलट जायेगी और जिसे मैं आज दुःख मान रहा हूँ उसी को सुख समझने लगूँगा।
- यदि अज्ञान दूर हो जाय और विवेक का प्रदीप प्रज्वलित हो उठे तो दुःख नदारद हो जायेगा।
- जो साधक प्रार्थना के रहस्य को समझकर आत्मिक-शान्ति के लिए प्रार्थना करता है, उसकी समस्त आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं, चित्त की आकुलता और व्याकुलता नष्ट हो जाती है और वह परमपद का अधिकारी बन जाता है।

- प्रभात के समय अवश्य वीतराग का ध्यान करो, चिन्तन करो, स्मरण करो और वीतराग की प्रार्थना करके बल प्राप्त करो।
- धर्म को बाधा पहुँचा कर अर्थ और काम का सेवन करना जीवन की पंगुता है और पंगु जीवन अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।
- आत्मिक-शान्ति प्राप्त करने के लिए, मन को शान्त और स्वस्थ रखने के लिए, प्रार्थना के लिए, स्वाध्याय और सत्संग के लिए एकान्ततामय धर्मस्थान ही उपयुक्त हो सकता है।
- आत्मोत्थान के लिए ज्ञान और चारित्र की अनिवार्य आवश्यकता होती है।
- यह मन बहुत बार इधर-उधर विषय-भोगों की तरफ भटकता रहता है, मगर प्रार्थना मन को स्थिर करके आत्मा को ताकत देती है।
- ज्यों-ज्यों राग और द्वेष की आकुलता कम होती जाती है और ज्ञान का आलोक फैलता जाता है, त्यों-त्यों अन्तःकरण में शान्ति का विकास होता जाता है।
- यदि हम परमात्मा के सत्स्वरुप को लक्ष्य करके प्रार्थना करेंगे तो हमारा निशाना खाली नहीं जाएगा, हमारा प्रयत्न विफल नहीं होगा। हमारी आत्मा के विकार सदा के लिए दूर हो जाएँगे।
- जिसके पास आत्मबल है, उसके पास परमात्मबल है। जिसके आत्मबल का दिवाला निकल चुका है, उसे परमात्मबल भी प्राप्त नहीं होता।
- जिसे आत्मबल प्राप्त है, वह सदा शान्त, अडोल और अकम्प रहता है, संसार की कोई पौद्‌गलिक वस्तु या कोई घटना उसके चित्त की समाधि को भंग नहीं कर सकती।
- भक्ति की भावना से और ज्ञान-गंगा के निर्मल नीर से प्रार्थना आत्मा की मलिनता को दूर करने के लिए है। किन्तु यदि शल्य रह गया है, पर्दा रह गया है, कहीं किसी प्रकार का कपटभाव बना रह गया है, तो वह आत्मा पूर्ण रूप से शुद्ध होने में समर्थ नहीं होगी।
- जैसे समुद्र में डाला हुआ कंकर दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार जब परमात्मा की स्तुति, चिन्तन और ध्यान में मन विलीन हो जाता है और जब संसार के समस्त जंजालों से पृथक् होकर तन्मय बन जाता है तो समस्त शोक, सन्ताप एवं आधिव्याधियाँ गायब हो जाती हैं।
- जब आत्मा की ज्योति चमक उठती है और आन्तरिक तिमिर दूर हो जाता है, तब बाहर की जितनी भी आधि-व्याधि और उपाधियां प्रतीत होती है और जीवन में उनके अनुभव की जो कटुता होती है, वह सब नष्ट हो जाती है।
- आत्मा का सजातीय द्रव्य परमात्मा है। अतएव जब विचारशील मानव संसार के सुरम्य से सुरम्य पदार्थों में और सुन्दर एवं मूल्यवान वैभव में शान्ति खोजते-खोजते निराश हो जाता है, तब उनसे विमुख होकर निथरते-निथरते पानी की तरह परमात्म-स्वभाव में लीन होता है। वहीं उसे शान्ति और विश्रान्ति मिलती है।
- जिनका चित्त स्वच्छ नहीं है वे परमात्म सूर्य के तेज को ग्रहण नहीं कर सकते।
- दिल का दर्पण जब तक स्वच्छ नहीं होता, स्थिर नहीं होता या निरावरण नहीं होता तब तक शाब्दिक गुनगुनाहट

होने पर भी आत्मा में पारमात्मिक तेज प्रस्फुटित नहीं होता।

- भौतिकज्ञान की प्रगति के प्रतीक बमों और राकेटों के चमत्कार को देखकर दुनिया स्तब्ध हो जाती है परन्तु दिल रूपी दर्पण में अगर ताकत पैदा हो जाय तो वह इससे भी बड़ा चमत्कार दिखा सकती है।
- वीतरागस्वरूप के साथ एकाकार होने के साधन हैं—प्रार्थना, चिन्तन, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग, संयम आदि।
- आत्मा के समस्त गुण आत्मा में उसी प्रकार एकाकार हैं, जिस प्रकार मिश्री की मधुरता, शुक्लता और कठोरता आदि गुण उसमें एक रूप हैं। कितना ही शक्तिशाली यंत्र क्यों न हो, वह मिश्री की मधुरता, शुक्लता आदि का पृथक्करण नहीं कर सकता। इसी प्रकार आत्मा के गुण आत्मा से भिन्न नहीं हो सकते और परस्पर में भी भिन्न नहीं हो सकते।
- पारिवारिक शान्ति वहीं कायम रहती है, जहाँ परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने सुख को गौण और दूसरे सदस्यों के सुख को मुख्य मानकर व्यवहार करता है।
- दया देवी की एक बड़ी विशेषता है। वह ज्ञान सिंह पर आसीन है और तप का त्रिशूल ग्रहण किये हुए है, फिर भी उसके मस्तक पर विनय का मुकुट सुशोभित रहता है।
- अहिंसा देवी ही मरते को बचाने वाली और पालन करने वाली है। उसी की बदौलत दुःखियों के दुःख दूर होते हैं।
- मनुष्य कुछ परिमित प्राणधारियों को ही शरण दे सकता है। मगर अहिंसा भगवती की शीतल छाया तो सभी को प्राप्त होती है। राजा को, रंक को, कीट - पतंग को, मनुष्य को, देव को, इन्द्र को और महेन्द्र को, सभी के लिए वह शरणदायिनी है।
- सुख और दुःख का उद्भव अपने ही पुण्य और पाप से होता है। अपने पुण्य-पाप के अभाव में कोई किसी को सुखी या दुःखी नहीं बना सकता।
- अपने जीवन में तुम जितना-जितना अहिंसा का पालन करोगे, आराधन करोगे, उतना ही उतना तुम्हारे दुःख का, शोक का, रोग का, आधि, व्याधि और उपाधि का नाश होता जायेगा।
- साधक जब तक इन्द्रियों को वशीभूत नहीं कर लेता, तब तक उसका हृदय शांत नहीं हो सकता। इन्द्रियों की चंचलता मानसिक शांति में अन्तराय रूप है। अतएव चित्त की शांति एवं स्वच्छता के लिए जितेन्द्रियता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है।
- सच्चा साधक संकट के समय भी गड़बड़ाता नहीं है, पथविचलित नहीं होता है। हर समय उसका विवेक जागृत रहता है।
- सुखी बनने का एक ही उपाय है—कामनाओं को जीतना। अगर कामनाओं को जीत लिया है तो समझ ले कि तूने समस्त दुःखों पर विजय प्राप्त कर ली है।
- जब तक मन में दुर्बलता रहती है तभी तक मनुष्य सांसारिक पदार्थों की ओर खिंचता है। दुर्बलता दूर होते ही खिंचाव भी दूर हो जाता है और चंचलता भी दूर हो जाती है।
- मानसिक चंचलता के प्रधान कारण दो हैं—लोभ और अज्ञान। बाह्य पदार्थों के प्रति अनुराग की जो व्यक्त तथा

अव्यक्त वृत्ति है, वही लोभ कहलाती है। वह वृत्ति चित्त को निश्चल नहीं होने देती। दूसरा कारण अज्ञान है। आज देवी-देवताओं की जो उपासना चल रही है, उसका मूल कारण अज्ञान है, नासमझी है।

- मिथ्यात्व का पोषण समस्त पापों में बड़ा पाप है और समस्त पापों का जनक है।
- अगर बच्चे-बच्चियों को सिखाना है कि वे अपनी माता की सेवा करें तो पहले स्वयं अपने घर में जो बड़ी बूढ़ी माताएं हैं, उनका सन्मान, आज्ञा-पालन और विनय करना चाहिए। उनके प्रति ऐसा नम्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए कि उन्हें संतोष उपजे । इस सद्-व्यवहार को देख-देख कर ही आगामी पीढ़ी इसी प्रकार के संस्कार प्राप्त कर लेगी और गृहस्थी नरक के बदले स्वर्ग के समान बनी रहेगी।
- जहाँ मोह का आधिक्य होगा वहाँ शोक का भी अतिरेक होगा और जहां भोग की प्रबलता होगी, वहां रोग का साम्राज्य होगा।
- लोभवृत्ति मनुष्य की विचारशक्ति को कुंठित कर देती है, नष्ट कर देती है।
- जिस प्रकार दर्शनशक्ति से शून्य आँखें बड़ी होकर भी व्यर्थ हैं , ठीक उसी प्रकार धर्म के बिना कुबेर का भण्डार, भीम का बल, विज्ञानियों का विज्ञान, काम का सौन्दर्य, वसुन्धरा का धन व रत्नाकर का रत्न सब व्यर्थ हैं।
- संसारी जीव ने अपनी तूली (चित्तवृत्ति) को कभी धन से, कभी तन से और कभी अन्य सांसारिक साधनों से रगड़ते-रगड़ते अल्प सत्त्व बना लिया है। अब उसे होश आया है और वह चाहता है कि तूली की शेष शक्ति भी कहीं इसी प्रकार बेकार न चली जाए। अगर वह शेष शक्ति का सावधानी के साथ सदुपयोग करे तो उसे पश्चात्ताप करके बैठे रहने का कोई कारण नहीं है, उसी बची-खुची शक्ति से वह तेज को प्रस्फुटित कर सकता है, क्रमशः उसे बढ़ा सकता है और पूर्ण तेजोमय भी बन सकता है। वह पिछली तमाम हानि को भी पूरी कर सकता है।
- परिवार में शिक्षा देने के प्रसंग से समूह के बीच किसी की व्यक्तिगत न्यूनता नहीं कहना चाहिए। मुखिया को निद्राजित् और भयजित् होना आवश्यक है, प्रातः एवं सन्ध्या असमय में निद्रा लेने से वह परिवार को सम्भाल नहीं सकेगा और ज्ञान-श्रवण व स्वाध्याय नहीं होगा।
- गगन में सूर्योदय अन्तर में ज्ञानोदय की प्रेरणा करता है।
- मोह और अज्ञान के धूम्र एवं मेघावरण को दूर करने से अन्तर में ज्योति प्रकट हो सकती है।
- राग को गलाने से क्लेश-मुक्ति होती है।
- सम्यग्दर्शी परिग्रह को बन्धन मानता और मिथ्यात्वी बन्दी खाने को घर मानता है। एक राग को गलाता है तो दूसरा फलाता है।
- सूक्ष्म शरीर के त्याग के बाद चेतन द्रष्टा मात्र है।
- हिंसा और परिग्रह छोड़ने से ही विश्वशान्ति हो सकती है।
- भूमि पर रहने वाला मानव पदार्थों पर अधिकार जमाये बिना रहना सीखे तो वैर एवं संघर्ष का नाम न रहे।
- साधना का क्रम विनय से ज्ञान, दर्शन, चारित्र और मोक्ष की प्राप्ति है।
- धर्म को साधना का रूप दिया जाय, न कि रिवाज के रूप में रहे।

- पाप की कालिमा से कलुषित जीव को जो पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं।
- मन, वचन एवं काय योग की शुभ प्रवृत्ति से शुभ कर्म का बन्ध होता है। अतः शुभयोग को पुण्यास्रव और उससे होने वाले शुभ कर्म के संचय को पुण्य बन्ध कहा है।
- सम्यक् ज्ञान के बिना व्यावहारिक शिक्षण का कोई मूल्य नहीं।
- सम्यक् ज्ञान आँख में तारा-सा है।
- अहिंसा से अमीर-गरीब मानव मात्र सुखी हो सकता है।
- देव, गुरु, धर्म और सत्शास्त्र लोकोत्तर आवश्यक हैं।
- संयम उभय लोक हितकारी है।
- सब जीवों को आत्मवत् देखना, सम्यग्ज्ञान का लक्षण है।
- पूर्ण कला प्रगट करने के लिए ज्ञान-क्रिया की साधना आवश्यक है।
- सम्यग्दर्शन सम्पन्न त्याग-तप ही भव-बंधनहर्ता है।
- हिंसा और परिग्रह का गाढ़ सम्बन्ध है, परिग्रह बढ़ेगा तो हिंसा भी बढ़ेगी।
- सच्चा धर्म वह है जो रागादि दोष को उत्पन्न ही न होने दे।
- गुरु द्वारा सारणा, वारणा, धारणा और शिष्य द्वारा ग्रहणा, धारणा एवं आसेवना चलती रहे तो साधना प्रगति कर सकती है।
- परिग्रह और आरम्भ को घटाना ही जैन का लक्षण है।
- ज्ञान जघन्य होकर भी दर्शन व चारित्र की उत्कृष्ट साधना से सिद्धिदाता हो सकता है।
- बालक और रोगी की तरह दुर्बल आत्मा को सबल करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है।
- जग-जन के दुःख और संताप का कारण पापाचरण (पंच पाप) है।
- अहिंसादि पांच व्रत पाप-त्याग और सुख-शांति के हेतु हैं।
- अज्ञान एवं मोहवासना से मुक्ति ही स्वतंत्रता है।
- नेता को भी चाहिये कि वह अपने को सर्वेसर्वा मानकर सामान्य जनों की उपेक्षा नहीं करे। बल्कि सफल नेतागिरी तो वह है जिसमें सभी के विचारों का यथायोग्य सम्मान हो।
- संसार में जीवों के तीन वर्ग हैं—मित्र, शत्रु और उदासीन। दयाधर्म के सिद्धान्त में पापिओं को भी प्रेम से तथा अपकारियों को भी उपकार से जीतने की आज्ञा है।
- सत्यवादियों की देव भी सहायता किया करते हैं। इसलिए सत्य दूसरा भगवान है। मनुष्य के लिए सत्य वंदनीय और देव तथा असुरों के लिए पूजनीय है।
- जिस प्रकार तूली को माचिस की पेटी पर रगड़ने से ज्योति प्रकट होती है उसी तरह सद्गुरु या ज्ञानी की संगति से और प्रयास करने पर आत्मा के अन्दर छुपी हुई ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है।
- ज्ञान में और ज्ञान की साधना में यह शक्ति है कि उससे असंभव काम भी संभव हो सकता है।

- शब्द में, अक्षर में ऐसी शक्ति है कि यदि उसके साथ इच्छा-शक्ति को जोड़ दिया जाए तो शब्द वह काम कर सकता है जो बड़े-बड़े वैज्ञानिक यंत्र भी नहीं कर सकते।
- साधक जब ज्ञान का प्रकाश पा लेता है तब वह भौतिकता के सारे लुभावने आकर्षणों से दूर हट जाता है।
- ज्ञान का बल न होने से मानव इच्छा पर नियंत्रण नहीं कर पाता और रात-दिन आकुलता का अनुभव करता है। ज्ञान की बागडोर यदि हाथ लग जाए तो चंचल मन तुरंग को वश में रखा जा सकता है। इसके लिए सत्संगति और सुशिक्षा उपयोगी साधन हैं।
- व्यवसायियों का यदि दिलदिमाग शुद्ध होगा तो वे करोड़ों लोगों को अच्छे मार्ग में लगाने के भी निमित्त बन सकते हैं। यदि व्यवसायियों का दिल-दिमाग अशुद्ध है तो करोड़ों लोगों का दिल-दिमाग बिगड़ सकता है।
- आप परिग्रह के प्रति ममत्व के भीतरी बन्धन को ढीला करेंगे, तभी परिग्रह को घटा सकेंगे, अपरिग्रही बन सकेंगे, अन्यथा नहीं।
- आपको शासन-प्रभावना के कार्य करने हैं तो अनेक रास्ते हैं, जिनसे आप सच्चे - अर्थ में शासन की प्रभावना कर सकते हैं। व्यर्थ ही द्रव्य लुटाकर थोथा आडम्बर दिखाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।
- अर्थ की गुलामी से छुटकारा पाने के लिये कामना को कम करना पड़ेगा।
- समाज में यदि स्वाध्याय को बढ़ावा दिया जाए तो इससे ज्ञान-वृद्धि होगी और ज्ञान से वैर, ईर्ष्या, द्वेष आदि का शमन होगा, झगड़े टंटे नहीं रहेंगे।
- उपदेश देने वाले तो बहुत मिल जायेंगे, पर जीवन में उतारने से ही सच्चे मायने में जीवन-निर्माण हो सकेगा और इसके लिए स्वाध्याय परमावश्यक है। धर्म वही अच्छा है जिसमें आत्मोत्थान के साथ समाज-सेवा की भावना हो। मानव-सेवा से ही धर्म को आगे बढ़ाया जा सकता है ।
- स्वाध्याय से ज्ञान की उपासना बढ़ेगी और ज्ञान की उपासना बढ़ेगी तो समाज में शान्ति होगी, राष्ट्र में शान्ति होगी, विश्व में शान्ति होगी।
- यदि जीवन बनाना है, जीवन का निर्माण करना है तो प्रत्येक को स्वाध्याय करना पड़ेगा। स्वाध्याय के बिना ज्ञान की ज्योति नहीं जगेगी।
- स्वाध्याय शुद्धि का मार्ग भी बताता है, और स्वयं शोधक तत्त्व (निर्जरा) भी है।
- सत्य शब्दों में नहीं कहा जाता, वह अनुभव जन्य है।
- दुःख का मूल कर्म और कर्म के बीज राग-द्वेष हैं। दुःख मिटाने के लिए राग-द्वेष मिटाना आवश्यक है, जो ज्ञानपूर्वक अभ्यास से ही हो सकता है।
- प्रत्येक श्रावक को यह सोचना चाहिए कि वह दिन धन्य होगा, जिस दिन अपने परिग्रह में से थोड़ा दान शुभ कार्यों के लिए निकालूँगा।
- मानव जितना-जितना ममता में उलझकर कार्य करेगा, वह उसके लिए भंवरजाल में फंसाने वाला होगा।
- आप समझते हैं कि देवता रक्षा करेंगे और देव यह समझते हैं कि धर्म रक्षा करेगा। देव, देवेन्द्र भी काम पड़ने पर धर्म की शरण ग्रहण करते हैं।

- धर्म की शरण ग्रहण करना है तो अन्तर्मन से दृढ संकल्प के साथ यह समझना होगा कि कषायोदय का प्रसंग उपस्थित होने पर यदि मैं किञ्चित् भी दोलायमान हो गया तो क्रोध, मान, माया एवं लोभ मेरे आत्म गुणों की हानि कर मुझे घोर रसातल में धकेल देंगे।
- जब तक अज्ञान का जोर है, पाप की वंशवृद्धि होती रहेगी। पाप घटाने के लिए अज्ञान घटाना आवश्यक है।
- आज का पापी कल तपश्चर्या से पुण्यात्मा व धर्मात्मा बन सकता है।

■

हस्ती उवाच

(आचार्यप्रवर के प्रवचनों एवं दैनन्दिनी से संकलित विचार)

■ अनेकान्तवाद/स्याद्वाद

- जिस प्रकार सत्य के साक्षात्कार में हमारी अहिंसा स्वार्थ-संघर्षों को सुलझाती हुई आगे बढ़ती है, उसी प्रकार स्याद्वाद जगत् के वैचारिक संघर्षों की अनोखी सुलझन प्रस्तुत करता है। आचार में अहिंसा और विचार में स्याद्वाद जैन दर्शन की सर्वोपरि मौलिकता है। स्याद्वाद को दूसरे शब्दों में वाणी और विचार की अहिंसा भी कहा जा सकता है।
- किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें अनेकान्त सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी उपलब्ध होते हैं। इन सारे पक्षों या दृष्टिकोणों को विभेद की दृष्टि से नहीं, अपितु समन्वय की दृष्टि से समझकर वस्तु की यथार्थ सत्यता का दर्शन करना ही इस सिद्धान्त की गहराई में जाना है।
- किसी वस्तु विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर उसे सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। विभिन्न पक्षों या दृष्टिकोणों के प्रकाश में जब तक एक वस्तु का स्पष्ट विश्लेषण न कर लिया जाए तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने उस वस्तु का सर्वाङ्ग स्वरूप समझ लिया है। अतः किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर देखने, समझने व वर्णित करने वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद है। सिद्धान्त रूप में इसे अनेकान्तवाद या अपेक्षावाद भी कहा गया है।
- एक ही व्यक्ति अपने अलग-अलग रिश्तों के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा और भानजा आदि हो सकता है, किन्तु वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो पिता की दृष्टि से पुत्र। ऐसे ही अन्य संबंधों के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारों ओर देखते हैं। इन रिश्तों की तरह ही एक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास भी होता है। अतः यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप में लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्, असत्, नश्वर या अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य गुणों वाली हो सकती है।
- आज संसारी मानव ताज्जुब करेंगे कि जहाँ उत्पाद है, वहाँ नाश कैसा और जहाँ नाश है वहाँ उत्पाद कैसा, ध्रौव्य कैसा? लेकिन जैन तत्त्व-ज्ञान की यह बड़ी खूबी है कि जैन तत्त्वज्ञाता हर पदार्थ को दो दृष्टियों से देखते हैं–द्रव्यदृष्टि से और पर्यायदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि से प्रत्येक द्रव्य ध्रुव नित्य है। पर्याय की दृष्टि से उसमें उत्पाद और व्यय भी हैं।
- उत्पाद और व्यय दोनों एक साथ कैसे ? यह भी अतिशय ज्ञानियों के ज्ञान का चमत्कार है। उन्होंने कहा कि पहली पर्याय के क्षय के साथ ही साथ नई पर्याय की उत्पत्ति का प्रारम्भ होता है। इस स्थिति में पूर्व पर्याय का विनाश और उसके विनाश के बाद होने वाला उत्पाद दोनों एक रूप में चलने वाले हैं।

अनर्थ-दण्ड

- बिना प्रयोजन के हिंसादि पाप का सेवन अनर्थ-दण्ड है। अनर्थ-दण्ड से अणुव्रतों की मर्यादा सुरक्षित नहीं रहती। अनर्थ-दण्ड छोड़ने वाला, अर्थ-दण्ड की भी कुछ सीमा करता है। द्रव्य, क्षेत्र और काल से वह अर्थदण्ड का त्याग कर सकता है।
- अनर्थ-दण्ड के प्रमुख कारण हैं १. मोह २. अज्ञान तथा ३. प्रमाद ।
- प्रमाद से आचरित सभी कर्म अनर्थ-दण्ड हैं। अपध्यान से भी अनर्थ-दण्ड होता है। आवश्यक निद्रा अर्थ-दण्ड है और अनावश्यक अनर्थ-दण्ड। यह प्रमादकृत अनर्थ है।
- आज अनर्थ-दण्ड का प्रसार जोरों पर है। जीव-हिंसा के साधन नित नए-नए बनते जा रहे हैं। खटमल और मच्छरों को मारने की दवा, मछली पकड़ने के कांटे, चूहे-बिल्ली को मारने की गोली और न जाने क्या-क्या हिंसावर्द्धिनी वस्तुओं को बनाने में मानव मस्तिष्क उलझा हुआ है। ये सारे अनर्थ-दण्ड हैं, जिनसे बचने में ही जीव का कल्याण है।
- विवेक से काम लिया जाय तो कौतूहल, शृंगार, सजावट और दिलबहलाव के लिए की जाने वाली निरर्थक हिंसा से मनुष्य सहज ही बच सकता है। ऐसा करके वह अनेक अनर्थों से बचेगा और राष्ट्र का हित करने में भी अपना योगदान कर सकेगा।

अशुभ, शुभ और शुद्ध

- हमको अशुभ से शुभ में आना है और शुभ में आकर भी विराम नहीं करना है, टिकना नहीं है, शुभ से संतुष्ट नहीं होना है। शुभ क्रिया से शुद्ध की ओर आगे बढ़ना है। शुद्ध क्रिया से आगे बढ़कर अक्रिय हो जाना है।
- संसार के सामान्य प्राणी अशुभ क्रिया में सदा रचे पचे होते हैं। अशुभ में रहने के लिये, अशुभ क्रिया में पड़ने के लिये उनको कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- आप सामायिक करने बैठते हैं, स्वाध्याय और ध्यान करने बैठते हैं उस समय यदि शुभ विचारों से चिंतन करेंगे तो बहुत अच्छा रहेगा। अशुभ से शुभ की ओर बढ़ेंगे। मनुष्य जन्म मिला है तो शुभ और शुद्ध क्रिया करने के लिये मिला है। अशुभ क्रिया के अधिकारी अनन्त जीव हैं। शुभ क्रिया के अधिकारी अनन्त जीव नहीं होते, असंख्यात जीव होते हैं, लेकिन शुद्ध क्रिया के करने वाले संख्यात जीव ही होते हैं।

अहंकार

- साधना में सबसे खतरनाक अहंकार है। विद्या पढ़ते-पढ़ते यदि अहंकार आ गया कि मैं पण्डित हूँ, औरों से अधिक विद्वान् हूँ या तपस्या करते-करते अहंकार आ गया कि इतनी मंडली में तपस्या करने वाला मैं ही एक हूँ और सब कम तपस्वी हैं। इस प्रकार यदि विद्वान् को विद्या का, साधना करने वाले को साधना का और दानी को दान का अहंकार हो गया तो यह संभव नहीं है कि उसकी उन्नति होगी या वह आगे बढ़ सकेगा।

अहिंसा/हिंसा

- भगवान् महावीर का अहिंसा का उपदेश ऐसा है कि उसमें उन्होंने मनुष्य, पशु-पक्षी आदि का कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में फरमा दिया-"सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा..."

"सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुक्ख पडिकूला।"
सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं॥

जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा, न हणे णो वि घाइए॥

सयं तिवायए पाणे, अदुवन्नेहिं घायए।
हणंतं वाणुजाणाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो॥

अर्थात्- किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये। यही धर्म शुद्ध, शाश्वत और नित्य है। सभी प्राणी दुःख से दूर रहना और जीना चाहते हैं। कोई प्राणी मरना नहीं चाहता, अतः किसी प्राणी की हिंसा करना घोरातिघोर महापाप है। इसीलिये संसार में जितने भी त्रस अथवा स्थावर प्राणी हैं, उनमें से किसी भी प्राणी की जानकर अथवा अनजान में न स्वयं हिंसा करे और न दूसरे से उनकी हिंसा करवाए। जो व्यक्ति स्वयं किसी प्राणी की हिंसा करता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी प्राणी की हिंसा करवाता है या किसी भी प्राणी की हिंसा करने वाले व्यक्ति का अनुमोदन करता है, वह प्राणि-वध के साथ अपने अनन्तानुबन्धी वैर का बन्ध करता है।

- माताओं में जीवदया का ज्यादा प्रेम होता है। अगर उनके सामने जीवदया के नाम पर कोई पानड़ी जाएगी तो वे जरूर उसमें कुछ न कुछ लिखायेंगी। वे पढ़ाई-लिखाई का उतना महत्त्व नहीं जानतीं,जीवदया को जानती हैं। पर उनको इसके साथ इस पर विचार करना होगा कि रेशमी, मखमल के कपड़े,महाआरम्भ समारम्भ से निर्मित वस्तुओं से तैयार किये गये वस्त्र,हिंसामूलक साज-सज्जा एवं शृंगार वगैरह के प्रसाधन जो हैं, वे त्याज्य हैं। उनको त्याज्य समझ कर वे इन पदार्थों को और ऐसे वस्त्रों को घर में नहीं बसायेंगी,न इनको आने देंगी और न बढ़ावा देंगी। इस तरह से अगर वे करेंगी, तो यह सक्रिय रूप से अहिंसा का पालन कहलायेगा।
- केवल किसी को जान से मारना ही हिंसा नहीं है। किसी पर बल प्रयोग करना भी हिंसा का एक रूप है। किसी को परितापना देना,दुःख देना,धोखाधड़ी करना आदि भी हिंसा के रूप हैं। व्यवहार में किसी के साथ लेन-देन कर लिया,सौदा तय हो गया,जमीन-जायदाद अथवा किसी भी वस्तु का, कालान्तर में उनके भाव बढ़े और सौदे से इन्कार कर दिया। अथवा सामने वाले ने आप पर विश्वास किया, हजारों के माल का आर्डर दिया। लालच में आकर जैसा बताया वैसा माल नहीं भेजा, उसमें भेल-संभेल कर दिया, हल्का माल मिला दिया। नये माल के साथ कुछ पुराना माल भी निकालना है, यह सोचकर खराब माल भी उसमें मिलाकर भेज दिया। ऊन में, कपास में, खाद्यान्नों में या किसी भी वस्तु में इस तरह की धोखाधड़ी करना आदि हिंसा के नानाविध रूप हैं।
- द्रव्य-हिंसा की अपेक्षा भाव-हिंसा अधिक भयानक, दारुण दुःखदायक और आतंकपूर्ण होती है।
- एक व्यक्ति अपने शत्रु को, अपने विरोधी को मारने के लिए, जलाने के लिए ज्वालाएं उगलता हुआ आग में प्रतप्त लोहे का लाल-लाल गोला उठाता है, तो पहले स्वयं उसके ही हाथ जलेंगे। अपने हाथ जलाने के पश्चात्

ही वह अपने शत्रु पर उस आग के गोले का प्रहार कर सकेगा। शत्रु सावधान हुआ तो पैंतरा पलट कर उस आग के गोले से बच भी सकता है। क्रोध, आदि कषाय आग के गोले के समान हैं। जिस प्रकार आग का गोला सर्वप्रथम उस उठाने वाले को ही जलाएगा, उसी प्रकार क्रोध, आदि कषाय सर्वप्रथम क्रोध, मान, माया, लोभ करने वाले व्यक्ति की ही हिंसा करेंगे। क्रोध करने वाला व्यक्ति अपनी हिंसा करने के पश्चात् ही अन्य की हिंसा कर सकेगा।

- संसार की चौरासी लाख जीव-योनियों में से मनुष्य योनि की, मानव-जीवन की यही तो एक सबसे बड़ी विशेषता है कि अन्य सब जीवों की अपेक्षा मानव ने जो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, उसके उपयोग द्वारा वह अपनी, अपने आत्म-गुणों की और पर की अर्थात् अन्य प्राणियों की हिंसा करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सर्वस्वापहारी शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकता है। मानवजन्म प्राप्त करने की सार्थकता इसी में है कि हम चिन्तन द्वारा अपने ज्ञानगुण का उपयोग कर अपनी और पर की हिंसा से अपने आप को बचा लें।
- अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सेवा, दया और करुणा में है। इस क्षेत्र में साधु अपनी मर्यादा में रहते हुए समाज को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे हैं। विकलांगों का जीवन भी स्वावलम्बी एवं सुखी बने, इस दिशा में भी समाज के कर्णधारों को कोई ठोस कदम उठाने चाहिए।

■ अहिंसा व्रत

- अहिंसा को निर्मल रखने के लिए साधक को पूर्ण सावधान होना आवश्यक है। गृहस्थ को पशुओं की रक्षा एवं बाल-बच्चों की शिक्षा हेतु कभी बाँधने एवं ताड़ना-तर्जना करने की भी जरूरत होती है। पर सद्भावना और हितबुद्धि के कारण वह हिंसा का कारण नहीं होता।
- जहाँ-जहाँ कषाय का वेग हो वहाँ आत्मा परवश हो जाता है। वैसी स्थिति में स्व-पर के हित का ध्यान नहीं रहता। अतः उसका वध-बंधन हिंसा का कारण होने से अहिंसा को मलिन करने वाला है। कई लोग क्रोध में इतने बेसुध हो जाते हैं कि बच्चों के हाथ-पैर तोड़ देते हैं, गुस्से में बच्चे डूब मरते या भाग छूटते हैं। अतः अहिंसक को इस ओर बड़ा ध्यान रखना है। सर्वप्रथम तो उसे बिना मारे ही काम चला लेना चाहिए। मारपीट से बच्चों की आदत भी बिगड़ जाती है, फिर वे बात की धाक नहीं मानते, रोज के पीटने से उनमें भय भी नहीं रहता। अतः सद्गृहस्थ को अहिंसा-व्रत की रक्षा के लिए इन दोषों से बचना लाभकारी है।
- अहिंसा की निर्मलता के लिए वध एवं बंध की तरह तीन दोष अन्य हैं- छविच्छेए , अइभारे, भत्तपाणवुच्छेए। पुत्र-पुत्री के कर्णवेध आदि किए जाते हैं। रोग निवारण के लिए भी अंग काटे जाते हैं और शल्य क्रिया की जाती है। इनमें दुर्भाव नहीं है।
- पशुओं को जल्दी चलाने या क्रोध के वश कील गड़ा देना, चमड़ा काट देना, जलती सलाई से निशान कर देना अहिंसा भाव के विपरीत है। यह हिंसा का कारण है। पहले के तीन दोष क्रोध एव मोहवश लगते हैं, जबकि पीछे के दो दोष लोभवश होते हैं। स्टेशन से घर आते समय सामान के लिए मजदूर की आवश्यकता होती है। आप पैसा बचाने के लिए किसी बच्चे को मजदूरी देते हैं, उस समय बालक की शक्ति का बिना विचार किये उसके सिर पर पेटी और गांठ रख देना, तांगे में चार सवारी से ज्यादा बैठना , लोभ से गाड़ी में ४ बोरी अधिक भरना व्रत का अतिभार दोष है। मुनीम से अधिक टाइम तक काम लेना, उसके स्वास्थ्य और बल का खयाल न

रखना दोष है। पशु और आश्रित दास-दासियों को खाना खाने के समय भी लोभवश नहीं छोड़ना और उनको खाना खाते हुए उठा देना, अहिंसा व्रत का दोष है। अहिंसाव्रती के मन में अपने आश्रित पशु और दास-दासी के लिए भी आत्मवत् दृष्टि होनी चाहिए। इन दोषों से बचने वाला अहिंसा की शुद्ध साधना कर सकता है।

■ आचरण/चारित्र

- 'चर-गतिभक्षणयोः' धातु से आ उपसर्ग एवं घञ् प्रत्यय लगाने पर 'आचार' शब्द बनता है। 'आ' का अर्थ मर्यादा है तथा 'चर' से तात्पर्य चलना है। " आचर्यते इति आचारः" यानी मर्यादापूर्वक चलना ही आचार है। दूसरे शब्दों में व्यवहार और विचार की दृष्टि से मन, वचन और काया द्वारा मर्यादापूर्वक चलने को आचार कहते हैं।
- चारित्र का अर्थ करते हुए शास्त्रकार ने कहा– 'चयस्य रिक्तीकरणं चारित्रम्' संचित हुए कर्मों के मूल को जो क्रिया मन, वाणी और काया के योग से खत्म करती है, काटती है, खाली करती है, उसका नाम है चारित्र । सीधी भाषा में यों कहा जाय कि जीव को जड़ से अलग करना चारित्र है।
- जैसे भौतिक मार्ग पर चलने के लिए दो पैर बराबर चाहिए, उसी तरह मोक्षमार्ग में, साधना-मार्ग में गति करने के लिए भी दो पैर चाहिए। वे दो पैर हैं–ज्ञान और क्रिया।
- पहला नम्बर ज्ञान का है और दूसरा नम्बर क्रिया का है।
- भगवान महावीर ने कहा कि देखो मानव ! यदि तुमको रास्ता तय करना है तो ज्ञान के साथ क्रिया भी करो। क्रिया किये बिना मुक्ति नहीं होगी, लेकिन क्रिया करो ज्ञान के साथ, अर्थात् समझकर करो।
- स्वाध्याय आपको अंधेरे में से लाकर प्रकाश में खड़ा कर देगा, लेकिन प्रकाश में मार्ग तय किया जाएगा स्वयं आपके द्वारा। आगे बढ़ने का वह काम केवल स्वाध्याय से नहीं होगा। उस काम के लिए चारित्र का पालन करना होगा। इसीलिए श्रुतधर्म के पश्चात् चारित्रधर्म बताया गया है।
- भूलना नहीं चाहिये कि जीवन एक अभिन्न-अविच्छेद्य इकाई है, जिसे धार्मिक और लौकिक अथवा पारमार्थिक और व्यावहारिक खण्डों में सर्वथा विभक्त नहीं किया जा सकता। ज्ञानी का व्यवहार परमार्थ के प्रतिकूल नहीं होता और परमार्थ भी व्यवहार का उच्छेदक नहीं होता। अतएव साधक को, चाहे वह गृहत्यागी हो या गृहस्थ हो, अपने जीवन को अखण्ड तत्त्व मानकर ही जीवन के पहलुओं के उत्कर्ष में तत्पर रहना चाहिये। जैन आचार-विधान का यही निचोड़ है।
- आचारविहीन ज्ञान भारभूत है। उससे कोई लाभ नहीं होता। सर्प को सामने आता जान कर भी जो उससे बचने का प्रयत्न नहीं करता है, उसका जानना किस काम का ? ज्ञानी पुरुषों का कथन तो यह है कि जिस ज्ञान के फलस्वरूप आचरण न बन सके, वह ज्ञान वास्तव में ज्ञान नहीं है। सच्चा ज्ञान वही है जो आचरण को उत्पन्न कर सके। निष्फल ज्ञान वस्तुतः अज्ञान की कोटि में ही गिनने योग्य है।
- जब तक जीवन में चारित्र नहीं है, जब तक जीवन में संयम नहीं है, जब तक जीवन में आचरण नहीं है, तब तक यह कहना चाहिए कि हमारा वह ज्ञान, हमारी समझ और हमारे भीतर की विशेष प्रकार की जो कला है, वह कला हमारे लिए भारभूत है, बोझ रूप है।
- ऐसा देखने में आया है कि कुछ श्रावक भगवती के भाँगे बड़ी तत्परता के साथ गिना देते हैं। गांगेय अणगार के

भांगे और भगवती सूत्र के भांगे पढ़ते समय इस प्रकार तल्लीन हो जाते हैं, उसमें इस प्रकार रमण कर जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि उनकी एक सामायिक आई है या दो आई है। लेकिन भांगे पढ़ने वाले, उपयोग लगाने वालों के सामने जब चाँदी आती है, पैसा सामने आता है तब एक नम्बर के बजाय दो नम्बर भी कर जाते हैं। शास्त्र का ज्ञान नहीं करना चाहिए, भगवती नहीं पढ़ना चाहिए, यह कहने का मेरा उद्देश्य नहीं है। मेरा मतलब यह है कि ज्ञान के साथ जीवन में चारित्र नहीं, आचरण नहीं, व्यवहार-शुद्धि नहीं है तो वह ज्ञान ऊँचा उठाने के बजाय नीचे गिराने वाला बन जाता है। वह ज्ञान जीवन ज्योति जगाने के बजाय उसको खुद को भी और धर्म को भी बदनामी की ओर ले जाने वाला हो जाता है।

- यदि विषय-कषाय नहीं घटते हैं तो कहना चाहिए कि अब तक हमारे जीवन में चारित्र नहीं आया है।
- हमेशा याद रखिए कि आदमी की पूजा ज्ञान से नहीं हुई है, आदमी की पूजा अधिकार और स्थिति से नहीं हुई है, उसकी पूजा उसके रूप और वैभव से नहीं हुई है । उसकी पूजा यदि हुई है तो उसके चारित्र से हुई है।
- रावण के पास ज्ञान था, ऋद्धि थी, सम्पदा थी, लेकिन उसमें चारित्र नहीं था, इसलिए आज कोई उसका नाम रखने को तैयार नहीं हैं।
- प्राणी सदा कुछ न कुछ करता रहता है, कभी निष्क्रिय नहीं रहता। किन्तु उसको यह ज्ञान नहीं होता कि कौन सा कर्म करणीय है और कौन सा अकरणीय। बहुत बार वह ऐसे कर्म करता है कि अपने आपको उलझा लेता, फंसा लेता है। अतः ज्ञानियों ने कहा--विवेक करो, कुकर्म से अपना सुकर्म की ओर मोड़ बदलो।
- चींटी रात-दिन चक्कर काटती है फिर भी कोई मूल्य नहीं। उसके लिए कोई लक्ष्य नहीं है। चोर भी कर्म करता है, रात को गली में वह भी घूमता और संरक्षक दल भी घूमता है, पर एक का भ्रमण कुकर्म रूप है जबकि दूसरे का सुकर्म रूप। एक भयभीत रहता है तो दूसरा निर्भय आवाज मारता है। इसीलिए ज्ञानी कहते हैं कुकर्म से सुकर्म में आओ तो साधना करते अकर्म हो जाओगे।

आजीविका

- संसार में दो तरह से पेट भरा जाता है, एक तो आर्य कर्म से, जिसमें हिंसा कम हो, कूड़-कपट, छल-छिद्र, धोखा आदि के बिना ही काम करके अपना गुजारा चला लें। दूसरा वह जिसमें धोखा देकर, झूठ बोलकर, गुमराह करके, सरकारी टैक्स की चोरी करके पैसा मिलाया जावे। इन दोनों में फर्क है। गृहस्थी के लिए धंधा करना मना नहीं है, लेकिन छल कर्म करके महा आरम्भ का धंधा करना मना है। अच्छा गृहस्थ अपने खाने-पीने में और अन्य खर्च में भी कमी करके गुजर करना मंजूर करेगा, लेकिन महापाप का धंधा नहीं करेगा।
- मच्छियों का धंधा करने वाले व्यक्ति किन्हीं सेठजी के पास आकर कहे कि पचास हजार रुपये दे दो, कोई धंधा करना है। पांच रुपया सैकड़ा ब्याज दूँगा, ऊँचे से ऊँचा ब्याज दूँगा तो सेठजी उसको रुपया ब्याज पर देंगे या नहीं ? सेठजी प्रत्यक्ष में पाप नहीं करेंगे, मच्छियों का व्यापार नहीं करेंगे, बन्दरगाह पर बकरों को नहीं पहुंचायेंगे, किन्तु ऋण लेने वाला यदि उस रकम से हिंसा का कार्य करता है तो ऋण देने वाला भी पाप का भागी बनता है, यह जानने की जरूरत है।

आत्म-गुणों की उपेक्षा

- भूमि, कोठी, जायदाद और धन-सम्पत्ति, ये सब आपके निज के नहीं हैं। आपका निज तो वस्तुतः ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी आत्मगुण है। आप निज को भूलकर, निज के आत्म-गुण को भूलकर, जो आपका अनिष्ट करने वाला है, उसको अपना (निज) समझ रहे हो। इस भूमि, जायदाद आदि से ज्यादा सोच आपको ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का होना चाहिए, क्योंकि ये आपके निज-गुण हैं। एक अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति भी जिसे अपने कुटुम्ब का ध्यान हो, खतरे की स्थिति पैदा हो जाए तो जिस जगह वह वर्षों से रह रहा है, उस स्थान को छोड़ने में देर नहीं करेगा। पर बड़े आश्चर्य और दुःख की बात है कि आप निज घर को छोड़कर सर्वस्व नाशक शत्रु के घर में बैठे कराल काल की चक्की में पिसे जा रहे हो। फिर भी महाविनाश से बचने के लिए आपको कोई चिन्ता नहीं है।

आत्म-शक्ति

- अपने भीतर रहने वाला जो चेतना का बीज है उसमें तो अनन्त शक्ति है। उससे अमित दिव्य शक्तियाँ प्रकट हो सकती हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि सुयोग्य वातावरण में उस बीज को अंकुरित करें, उसे प्रस्फुटित करें।
- कारण छोटा होता है, परन्तु उससे निर्मित होने वाला कार्य विशाल होता है, भव्य होता है। आपने देखा होगा कि वटवृक्ष का बीज कितना छोटा-सा होता है, किन्तु उसका विस्तार बहुत बड़ा हो जाता है, बीज के आकार से कोटि गुणा अधिक। इसके निर्माण का कारण वह छोटा सा बीज होता है। यदि बीज न हो तो मूल वृक्ष किससे पैदा हो? उसकी पत्तियाँ, शाखाएँ, प्रशाखाएँ, फूल, फल इत्यादि किससे उत्पन्न हों? यदि बीज ठीक स्थिति में है और उसे अनुकूल संयोग प्राप्त होता रहता है, तो समय पाकर वह इतना विस्तार करता है कि दर्शक उसके विस्तार को देखकर चकित हो जाते हैं।
- मकान के मलबे के नीचे दबे हुए बीज को समय-समय पर यदि वर्षा का पानी मिलता रहे, तब भी वह दबा हुआ बीज अपना विकास नहीं कर पाएगा। क्या उस बीज में विकास करने की योग्यता नहीं है? योग्यता अवश्य है। जब तक उस बीज पर से पत्थर व मलबा न हटा लिया जाए तब तक वह अकुंरित नहीं होगा। हमारे चेतन रूपी बीज पर भी गणनातीत गिरीन्द्रों से भी अधिक मलबे और कीचड़ का भार पड़ा हुआ है, जिसमें दबे हुए हमारे आत्म-देव में चेतना की योग्यता होते हुए भी उसका आगे विकास नहीं हो पाता।
- आत्मा का प्रकाश बड़ा है या बिजली का? बिजली के प्रकाश को खोजकर किसने निकाला? अमुक-अमुक चीज़ों को जुटाने से विद्युत पैदा हो सकती है, इसे खोजकर निकाला है मनुष्य ने। बिजली का कनेक्शन नहीं होने पर भी बैटरी का खटका दबाते ही प्रकाश हो गया। बैटरी है, तो गाड़ी में बैठे हुए भी रेडियो के गीत सुन लोगे। मानव के मस्तिष्क ने ये सब चीज़ें खोज निकालीं। आत्मा इतनी तेजस्वी है कि उसने छोटे-छोटे जड़ पदार्थों में छिपी हुई शक्ति को प्रकट किया। तो शक्ति प्रकट करने वाला बड़ा या जिसने शक्ति दिखाई वह बड़ा? बिजली से अनन्तगुणी शक्ति हमारी आत्मा में है।
- यदि आत्मा को बलवान बनाना है तो कुछ त्याग को और अच्छाई को आचरण में लाना होगा।

आत्म-स्वरूप

- क्या वेश्या और क्या कसाई, सभी मूलतः अन्तर में निर्मल ज्योति स्वरूप होते हैं। सबमें समान चैतन्य धन विद्यमान है। परन्तु आत्मा की वह अन्तर-ज्योति और चेतना दबी हुई और बुझी हुई रहती है। पर जब एक प्रकार की रगड़ उसमें उत्पन्न होती है तो वह आत्मा जागृत हो जाती है। मूल स्वभाव को देखा जाए तो कोई भी आत्मा कसाई, वेश्या या लम्पट नहीं होती। वह शुद्ध, बुद्ध और अनन्त आत्मिक गुणों से समृद्ध है, निष्कलंक है। हीरक कण मूल में उज्ज्वल ही होता है फिर भी उस पर धूल जम जाती है, उसमें गन्दगी आ जाती है। इसी प्रकार शुद्ध चिन्मय आत्मा में जो अशुद्धि आ गई है, वह भी बाहरी है, पर-संयोग से है, पुद्गल के निमित्त से आई हुई है।

आदर्श एवं यथार्थ

- विश्व की एकता का नारा लगाने वाले व्यक्ति कभी मिलेंगे तो कहेंगे—जातीयता में कुछ नहीं पड़ा है, प्रान्तीयता में कुछ नहीं है, अब राष्ट्रीयता भी कुछ नहीं है। अब तो अन्तर्राष्ट्रीय की कल्पना करके उसका खाका खीचेंगे। उनकी बात सुनकर जनता विस्मित रह जाती है। लेकिन उनके घर पर जाकर आप दृश्य देखिये, भाई-भतीजों और बच्चों से इस प्रकार लड़ते हैं कि आप देख कर दंग रह जायेंगे। यह दीवार तुमने इधर क्यों बना ली? खेत की रेखा टेढ़ी-मेढ़ी क्यों खींच ली? इसके लिए आपस में जूती पैजार तक हो जाता है, मारपीट हो जाती है और न्यायालयों के द्वार खटखटाये जाते हैं। आदर्शवाद का यह कितना क्रूर मजाक है? जरा सोचें।
- आदर्शवाद और यथार्थवाद दो मुख्यवाद हैं। आदर्शवाद सुनने में, देखने में अच्छा लगता है। जिस समय आदर्शवादी लोग बात करते हैं, उस समय कहते हैं—"हम तो सबकी मानते हैं, सबकी सुनते हैं, हमारे लिए सब मत-मतान्तर बराबर हैं। हमें न तो किसी से द्वेष है, और न किसी से प्यार।" ऐसी बातें करते हैं, तब वे बातें सुन्दर लगती हैं। लेकिन उनका असली जीवन टटोलें तो पता चलेगा कि अपने ही कुटुम्ब के लोगों तथा समाज व साधर्मियों के साथ उनका व्यवहार कैसा है? जो व्यक्ति अपने समीप के लोगों से ही समान व्यवहार नहीं कर सकते, वे व्यक्ति देश, देशान्तर और जातियों के भेद मिटाने की कामना करें, तो यह प्रवंचना ही है।

आरम्भ-परिग्रह

- अर्थनीति मनुष्य को लोभी, कपटी व अशान्त बनाती है। मानव मानव को लड़ाती है, जबकि धर्मनीति प्राणिमात्र में बंधुत्व भाव उत्पन्न करती है। क्रोध की आग में प्रेम का सिंचन करती है।
- दो कारणों से जीव केवली के प्रवचन को भी नहीं सुन सकता। गौतम ने जिज्ञासा भरा प्रश्न किया-"हे भगवन्! कौनसे दो कारण हैं, जो उत्तम धर्म श्रवण में बाधक हैं?" प्रभु ने कहा-"आरम्भ और परिग्रह—इन दोनों में जो जीव उलझा है, वह इन्हें अच्छी तरह समझकर जब तक इन उलझनों की बेड़ी को काटकर बाहर नहीं निकल जाता, तब तक केवली प्ररूपित धर्म को नहीं सुन सकता।"
- परिग्रह, आरम्भ को छोड़कर नहीं रहता। आरम्भ से ही परिग्रह बढ़ता है। परिग्रह अपने दोस्त को बढ़ाने का भी बड़ा ध्यान रखता है। वह जितनी चिन्ता आरम्भ को बढ़ाने की करता है, उसकी शतांश भी संवर-निर्जरा को बढ़ाने की नहीं करता।

- आरम्भ और परिग्रह की मित्रता है, दोनों का आर्थिक गठजोड़ है, दोनों ऐसे भयंकर रोग हैं, जो हमारी चेतना-शक्ति को विकास का मौका नहीं देते।
- धन की भूख आसानी से जाती नहीं, वृद्ध हो जाने पर भी तृष्णा मानव का पिण्ड नहीं छोड़ती और वह दिन-रात उसके पीछे भागता रहता है। संसार का प्राणी आरम्भ-परिग्रह में फंसा रहता है और यही चाहता है कि दिन और बड़ा होने लगे तो वह चार घंटे और काम कर ले। तृष्णावश सदा उसकी यही मंशा रहती है। यदि वह आरम्भ, परिग्रह के परिमाण को हल्का करने के लिए तैयार नहीं होगा तो आत्म-कल्याण कैसे होगा? इसलिए बुद्धिमान आदमी वस्तुस्थिति को सोचे, समझे, विचारे और आत्मा को हल्का करने के लिए साधना करे।
- पापाचरण के मुख्य दो कारण हैं। कुछ पाप, परिग्रह के लिए और कुछ आरम्भ के लिए किये जाते हैं। कुछ पापों में परिग्रह प्रेरक बनता है। परिग्रह आरम्भ का वर्द्धक है। अगर परिग्रह अल्प है और उसके प्रति आसक्ति अल्प है तो उसके लिये आरम्भ भी अल्प होगा। इसके विपरीत यदि परिग्रह बढ़ा और अमर्याद हो गया तो आरम्भ को भी बढ़ा देगा—वह आरम्भ महारम्भ हो जाएगा।

■ आसक्ति-अनासक्ति

- विशिष्ट बुद्धि का धनी मानव रात-दिन यह देखता है कि विषय-कषायों के कारण उसकी बड़ी हानि हो रही है, अपूरणीय क्षति हो रही है, तदुपरांत भी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विषय-कषायों में उत्तरोत्तर फंसता जा रहा है। अपने आप को फांसने वाले स्थानों से बचे रहने का प्रयास करने के बजाय उल्टे उनमें फंसते जाने से बढ़कर मनुष्य के लिए शोचनीय, दुःखद एवं दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है?
- एक-सी प्रवृत्ति में भी वृत्ति की जो भिन्नता होती है उससे परिणाम में भी महान अन्तर पड़ जाता है। जितेन्द्रिय पुरुष के भोजन का प्रयोजन संयम-धर्म-साधक शरीर का निर्वाह करना मात्र होने से वह कर्म-बंध नहीं करता, जबकि रसनालोलुप अपनी गृद्धि के कारण उसे कर्म-बंध का कारण बना लेता है। यही नहीं, साधना-विहीन व्यक्ति रूखा-सूखा भोजन करता हुआ भी हृदय में विद्यमान लोलुपता के कारण तीव्र कर्म बांध लेता है, जबकि साधना-सम्पन्न पुरुष सरस भोजन करता हुआ भी अपनी अनासक्ति के कारण उससे बचा रहता है।

■ आहार-शुद्धि

- जो सात्त्विक हो, मन को उत्तेजित करने वाला नहीं हो, वह आहार लेने योग्य है।
- आचार-शुद्धि के लिए आहार-शुद्धि आवश्यक है। जब आहार शुद्ध होगा तभी विचार सुधरेंगे। और विचार सुधरेंगे तो आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त होगा। मानव-जीवन का लक्ष्य आचार-शुद्धि से आत्मा को ऊपर उठाना है।
- माताओं के हाथ से बने भोजन में उन्हें जीवन का खयाल रहता है। बनाने वाली माँ है तो उसको कितना ध्यान रहता है। भैयाजी सुख पावें, उनका मनोबल बढ़े, धर्म की लगन बढ़े, इस भावना से उसने रोटी बनाई है। घर के भोजन में सद्भावना का बल है। शुद्धता और भावना बाहर होटलों में कहाँ? मां, बहन या पत्नी द्वारा बनाये भोजन में उनके जो संस्कार हैं, उसके अनुसार वे पूरा खयाल रखेंगी कि हमारे परिवार में अखाद्य या अग्राह्य चीज न आवे। किसी जीव की हिंसा न हो, खाने वाले स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें। इस तरह की भावना के साथ

उनके हाथ से अन्न का जो निर्माण हुआ, उसमें जीवन-निर्माण का भी सम्बंध रहेगा। आदमी बाहर खाता है, लेकिन भूल जाता है कि इसके पीछे जीवन की पवित्रता गिरती है।

- यदि आदमी को अपने विकारों पर काबू करना है तो पहली शर्त है कि आहार प्रमाण से युक्त हो। अर्थात् जितनी खुराक हो उस प्रमाण से अधिक आहार न हो। दूसरी बात यह कि भोजन दोषरहित हो, सात्त्विक हो, हमारे मन को उत्तेजित करने वाला नहीं हो।

- यदि आप यह चाहते हैं कि देश के नागरिक सात्त्विक हों, शुद्ध विचार वाले हों और धर्ममार्ग का अनुसरण करें तो सबसे पहले आप अपने लिए एवं परिवार के लिए सोचिए , भावी पीढ़ी के लिए , देश के लिए सोचिए। इसको सोचने में सुविधा की तरफ न जाइये, सुन्दरता की तरफ न जाइये, भोजन के स्वाद की तरफ न जाइये, न पोशाक की तरफ जाइये। जो बुद्धि में पवित्रता लाने वाला हो, वात्सल्य भावना भरने वाला हो वही भोजन आपके लिए हितकर व सुखकारी है और आपकी आत्मा को शान्ति देने वाला है।

- समुद्र पार के देश भी आज एक मुहल्ले के समान बन गये हैं। वहाँ जाने पर खान-पान की शुद्धता की ओर खास तौर से ध्यान देने की आवश्यकता है।

- शुद्ध और सात्त्विक खान-पान के संस्कार बच्चों में डालना आज के समय में परम आवश्यक है। आजकल के बच्चों ने समझ रखा है कि जो भी चीज़ मीठी लगे, स्वादिष्ट लगे, उसे खा लेना। घर में रोटी दो बार खायेंगे, वह भी भरपेट नहीं। होटल में गये चाय, कचौड़ी, चाट ले ली। खोमचे वाले के यहाँ जायेंगे, पानी के पताशे, खटाई, नमकीन ले लेंगे, कहीं कोकाकोला, गोल्डस्पाट, गोलियाँ, आइसक्रीम ले लेंगे। फिर नगर के वातावरण में मन को मचलाने वाली वस्तुएँ जगह-जगह दिखती हैं। इससे उनका फालतू खर्च बढ़ता है। स्वास्थ्य पर कितना बुरा असर पड़ता है, यह बच्चों को खयाल नहीं होता। इसलिए बच्चों के खान-पान को शुद्ध बनाये रखने के लिए परमावश्यक है कि प्रारम्भ से ही उनके मानस में इस प्रकार के संस्कार डाले जायें कि वे आहार-शुद्धि का विवेक रखें, क्योंकि आहारशुद्धि साधना का मूल है।

■ ईश्वर /सृष्टि

- ईश्वर की विशिष्टता सृष्टि कर्तृत्व आदि की दृष्टि से नहीं, किन्तु उसके गुण विशेषों से है। ईश्वर शुद्ध, बुद्ध, पूर्ण और मुक्त है, जीव को उसके ध्यान, चिन्तन एवं स्मरण से प्रेरणा और बल मिलता है। आत्मशुद्धि में ईश्वर का ध्यान खास निमित्त है। उसको जीव के कर्मभोग में सहायक मानना अनावश्यक है।

गीता में स्वयं कृष्ण कहते हैं -

> न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः
> न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते। (अध्याय ५)

- प्रभु न संसार का कर्तृत्व करते हैं और न कर्म का ही सर्जन करते हैं। कर्मफल का संयोग भी नहीं करते, स्वभाव ही वस्तु का ऐसा है कि वह प्रवृत्त होती है। सोच लीजिये आपके दो बालक हैं—एक अधिक प्रेमपात्र है और दूसरा कम। जो प्रेमपात्र है वह भांग की पत्तियाँ घोट कर पीता है और जिस पर कम प्रेम है वह ब्राह्मी की पत्तियाँ घोट कर पीता है। प्रेम पात्र नहीं होने पर भी जो ब्राह्मी का सेवन करता है, उसकी बुद्धि बढ़ेगी और जो प्रेमपात्र होकर भी लापरवाही से भंग पीता है, उसकी बुद्धि निर्मल और पुष्ट नहीं हो सकेगी। जैसे ब्राह्मी से बुद्धि

बढ़ना और भंग से ज्ञान घटना, इसमें किसी गुरु की कृपा अकृपा कारण नहीं है, वैसे भले बुरे कर्म भी बिना किसी न्यायाधीश के अपने शुभाशुभ फल देने में समर्थ होते हैं।

- बाल जीवों को ईश्वर की ओर आकृष्ट करने के लिए हो सकता है कि विद्वानों ने उसे एक राजा की तरह बतलाया हो, पर वास्तव में ज्ञान दृष्टि से सोचने पर मालूम होगा कि ईश्वर तो शुद्ध एवं द्रष्टा है। वह हमारी तरह कर्म या कर्मफल भोग का कर्त्ता धर्त्ता नहीं है।
- भक्त ने पूछा - सृष्टि की आदि कब से है? और कैसे हुई? इसके उत्तर में सबसे पहले आपको एक अनादि सिद्धान्त ध्यान में लेना चाहिये कि "नाऽसतो विद्यते भावो, नाऽभावो विद्यते सतः" सर्वथा असत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती और सत् पदार्थों का सर्वथा नाश नहीं होता। आप जानते हैं कि सुवर्ण की डली को भस्म बनाकर उड़ा दिया जाए तब भी परमाणु रूप में सोना कायम ही रहता है। इसी प्रकार संसार के जड़ चेतन पदार्थ भी सदा विद्यमान रहते हैं। कभी उनका सर्वप्रथम निर्माण हुआ हो, ऐसा नहीं, जड़ चेतन का विभिन्न रूप में संयोग ही सृष्टि की विचित्रता का कारण है।

■ उपवास

- अठारह पापों को खुला रखें और उपवास करें, केवल न खाने का नियम लेकर रह जाएँ, यह काफी नहीं है। त्याग या उपवास व्रत में विषय-कषायों का भी त्याग होना चाहिए। आचार्यों ने उपवास के लिए तीन बातें बताई हैं, जैसे-

  विषयकषायाहाराणां, त्यागो यत्र विधीयते।
  उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः॥

- जिसमें शब्द, रूपादि विषय का त्याग हो, कषाय का त्याग हो और फिर अन्न का त्याग हो, वह उपवास है। आज हमने विषय और कषाय को तो नहीं छोड़ा, केवल अन्न का त्याग करके संतोष मान लिया। लेकिन अन्न के त्याग के साथ विषय-कषाय के त्याग की बात को भूलना नहीं चाहिए। यदि विषय-कषाय का त्याग साथ में रखते हुए उपवास करेंगे तो हमारा जीवन हल्का होगा। इसलिए हमको विषय-कषाय को छोड़ना है और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना में आगे बढ़ना है।
- उपवास तो किया, पर केवल एक घंटा धर्मस्थान में बैठे और रात भर का तथा दिन भर का आपका समय आस्रव में खुला रहा तो उपवास करके भी क्या किया ? केवल आहार छोड़ा।
- आयुर्वेद की दृष्टि से भी बीमारी के निदान में उपवास का विधान अति हितकारी माना गया है। अनेक रोगों में उपवास का बड़ा ही चमत्कारी लाभ होता है और अनेक रोग उपवास द्वारा घर बैठे ही अपने आप दूर हो जाते हैं। यदि मनुष्य नियमित रूप से उपवास करके अपने पेट को विश्राम देता रहे तो उसे व्याधियाँ परेशान नहीं करेंगी। लेकिन जो व्यक्ति असमय, अनियंत्रित भोजन करते रहते हैं और अपने पेट की मशीनरी को जरा भी आराम नहीं देते उन्हें अक्सर अनेक रोग घेर लेते हैं। मल शोधन की क्रिया बराबर नहीं होने से आंतें एवं उनके आस-पास का भाग भी प्रभावित हो जाता है। इसके कारण पेट भारी हो जाता है तथा उसमें वायु भर जाती है जिसके फलस्वरूप उबकाई आना, पेट में दर्द, भारीपन, सिरदर्द, बुखार, मंदाग्नि, घबराहट, बेचैनी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मानसिक रोगों में भी उपवास बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। उपवास से सात्त्विक भाव का जागरण और तामस-राजस भाव का विनाश होता है। उपवास के बाद गरिष्ठ भोजन नहीं लेना चाहिए। बाल,

वृद्ध और अतिकृश व्यक्ति के अतिरिक्त सबके लिए उपवास लाभकारी है।

■ एकता

- मानव जितना ही गुण-ग्राहक और सत्य का आदर करने वाला होगा, उतना ही ऐक्य-निर्माण सरल एवं स्थायी हो सकेगा। 'कारणाभावे कार्याभावः' , इस उक्ति के अनुसार भेद के कारण मिटने पर भेद स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं।
- जैन संघ में एकता का नारे लगाने वाले एवं बोलने वाले हैं, फिर भी एकता क्यों नहीं ? लौकिक एकता भय, लोभ और स्वार्थ पर आश्रित होती है, परन्तु धर्म की एकता गुणानुराग या शासन प्रेम पर आधारित होती है। जब तक राग-द्वेष के कारण समाप्त नहीं किये जाते, बाहरी दिखावे से स्थिरता नहीं आती। हमारी एकता विचार-आचार के धरातल पर होती है। जैन समाज का इतिहास बताता है कि श्रावकों ने संघ की अखण्डता का कैसा रक्षण किया और इनके सहयोग से कैसे पलभर में झगड़े मिट गये। आज समाज मातृहृदय तो है, पितृ हृदय भक्तों की आवश्यकता है।
- आज का युग मिलजुल कर काम करने का है। सामाजिक हो या धार्मिक, हर कार्य मिली-जुली शक्ति से ही अधिक प्रभावशाली और सफल होता है। राष्ट्र भी एक-दूसरे की नीति, रीति और मतभेद की उपेक्षा कर पारस्परिक सहयोग में अपना और विश्व का हित मान रहे हैं, फिर भला धार्मिक सम्प्रदायें साधारण रीति, नीति और समाचारी के भेद से एक दूसरे से बिल्कुल दूर रहे, समानताओं का उपयोग नहीं कर पावे तो धर्म शासन की शोभा एवं तेजस्विता कैसे बढ़ेगी।
- राष्ट्र के अधिकारी राग द्वेष युक्त होते हैं और धर्माधिकारी वीतरागता एवं समता के पथिक होते हैं, अतः उनके मन में छोटी - छोटी बातों से मनभेद होना शोभनीय नहीं होता। राष्ट्रों में व्यापार, संचार, औद्योगिक क्षेत्रादि में संधि होती है, वैसी धर्म-सम्प्रदायों में भी आंशिक सन्धि हो सकती है।
- कार्य की सफलता में ध्यान रखने योग्य एक आवश्यक बात यह है कि व्यर्थ नुकताचीनी नहीं की जाय। कोई भी उचित बात कहता है तो उसकी कद्र करो। संवाद भले कर लो, किन्तु विवाद नहीं करो। अपने और दूसरों के समय का मूल्य समझो और समाज-सेवा के लिये एक शक्ति से कुछ कार्य करके दिखाओ। चुप रहने वालों को यह नहीं समझना चाहिए कि हमारी कोई कीमत नहीं; किन्तु उन्हें यह समझ कर सन्तोष करना चाहिये कि बोलने वाले हमारे ही प्रतिनिधि हैं।
- कार्य प्रणाली में भेद होते हुए भी निर्मल भाव से एक दूसरे के सम्मान को सुरक्षित रखते हुए बंधुभाव से काम करना चाहिए।

■ कर्मवाद

- यदि अपनी आत्म-शक्ति को विकसित करना है तो उस पर पड़ा हुआ जो कर्म का मलबा है, उसे साफ करना होगा। उस मलबे को कोई अलग से हमाल आकर हटाएगा नहीं। इस मलबे को हटाने का कार्य हमें स्वयं को ही करना होगा। हाँ, किसी बाहरी मित्र का सहयोग उसी तरह से ले सकते हैं जिस तरह कोई कारीगर अथवा मकान-निर्माता किसी ठेकेदार या इन्जीनियर से उचित मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है क्योंकि मार्ग-दर्शक अनुपम

परामर्श देने वाला होता है। उसी तरह आत्म-शक्ति पर पड़े हुए कर्म रूपी मलबे को दूर करने के लिए प्रयत्न तो हमको स्वयं करना है। सहारे के रूप में, मार्ग-दर्शक के रूप में शास्त्रों और सद्गुरुओं का सहयोग लिया जाता है। सद्गुरु और शास्त्र, हमें मलबा कैसे दूर किया जाए, इसका उपाय बता सकते हैं।

- जीव में जिस प्रकार कर्म को करने की योग्यता है, उसी तरह कर्मों से मुक्त होने की भी योग्यता है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि प्राणी स्वयं द्वारा उपार्जित शुभ कर्मों की प्रेरणा अथवा प्रभाव से जिस प्रकार स्वर्ग में जाता है, उसी प्रकार अशुभ कर्मों के प्रभाव अथवा उनकी प्रेरणा से नरक में भी जाता है।
- जैन दर्शन की यह मान्यता है कि आत्मा कर्म करने में स्वाधीन है, किन्तु कर्मों के फल को भोगने में पराधीन अर्थात् कर्मों के अधीन है। जैन दर्शन की यह भी मान्यता है कि आत्मा जिस प्रकार कर्म करने में स्वाधीन है, उसी प्रकार कर्मों को निरस्त करने अथवा नष्ट करने में भी स्वाधीन है, स्वतंत्र है।
- संसार में प्राणिमात्र के साथ मोह लगा हुआ है। वही जीव को नचाता है। साधक ज्ञान से मोह को नियन्त्रित करता है। वह कर्मफल को भोगते हुये और शुभाशुभ प्रवृत्ति के बीच रहकर भी हल्का रहता है। कहा भी है—

  समझूँ शंके पाप से, अणसमझूं हर्षन्त।
  वे लूखा वे चीकणा, इणविध कर्म बढन्त।

- आप शंका करेंगे कि मनुष्य संचित कर्म के उदय से ही कर्म करता है, फिर उसे पाप क्यों लगता है ? शास्त्रकार ने कहा है कि वर्तमान क्रिया में होने वाला मानसिक रस ही पाप का प्रधान कारण है।
- कर्मबंध का मूल कारण राग-द्वेष यदि सूख गया, ढीला पड़ गया, खत्म हो गया तो कर्मवृक्ष भी सूख जायेगा। जिस किसी झाड़ का मूल (जड़) यदि सूख जाय तो ऊपर के पत्ते, डालियाँ, फूल, फल, हरे भरे कितने दिन रहेंगे? तत्काल तो खत्म नहीं होंगे, लेकिन कुछ दिनों के बाद नष्ट हो जायेंगे।
- कर्मों को घटाने का मतलब है-कर्मों की परिणति क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, रोष, मोह, मिथ्यात्व आदि-आदि रूपों में जो हमारे मन में, अथवा आचरण में, हम रात-दिन अनुभव कर रहे हैं, देख रहे हैं, उसे कम करना, उसके असर को घटाना।

■ कषाय

- एक घर नहीं, एक ग्राम नहीं, एक नगर नहीं, घर-घर में क्रोध, मान, माया, लोभ और विषय-कषायों के दुष्परिणामों के दृश्य प्रतिदिन देखने को मिलते हैं। आप में से प्रायः प्रत्येक को इसका कटु अनुभव अवश्य होगा। जिस दिन आप क्रोध के अधीन रहे, उस दिन आपका चिन्तन ठीक तरह से नहीं चला, सामायिक समभाव से नहीं हुई, स्वाध्याय में मन लगा नहीं, किसी भी कार्य में ठीक तरह से चित्त लगा नहीं और बिना बीमारी के बीमार हो गये। इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ में आसक्ति का कटु फल न केवल एक-दो बार ही, अपितु अनेक बार भोग चुकने के उपरान्त भी पुनः पुनः उन्हीं विषय-कषायों से प्यार करते रहे तो निश्चित रूप से यही कहा जाएगा कि हमारा ज्ञान भ्रान्त है, मिथ्या है।
- आपने किसी पर क्रोध किया तो क्रोध करते ही आपने सर्वप्रथम अपने आत्मगुणों की हिंसा कर डाली। क्रोध करने पर क्या किसी के मन में, मस्तिष्क अथवा हृदय में शान्ति रहेगी, आत्मा का सत् स्वरूप रहेगा? नहीं, क्रोध करते ही ये सब गुण नष्ट हो जाएंगे। क्रोध करने से हो सकता है कि दूसरे की हिंसा न भी हो, पर स्वयं की

हिंसा तो तत्क्षण असंदिग्ध रूप से हो ही जाती है।

- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि में फंस कर प्राणी सर्वप्रथम स्वयं की, आत्मा की हिंसा करता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि से हमारी स्वयं की हिंसा हो रही है, यह हमने सम्यग् रूप में जाना नहीं है, इसीलिए बार-बार इस रास्ते पर लग रहे हैं। यदि हम यह भली-भांति जान लें, विषय-कषायों के आत्मघाती भयावह परिणामों को समीचीनतया समझ लें, तो फिर इस रास्ते पर कभी लगेंगे ही नहीं।
- पुलिस का आदमी ३०३ बोर राइफल से किसी के शरीर पर ही फायर करता है, किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ के सिपाही तो आत्मगुणों की अमूल्य निधि पर फायर कर उसे विनष्ट कर देते हैं। पुलिस के सन्तरी द्वारा किये गये फायर से किसी व्यक्ति के शरीर के किसी भाग में चोट लग सकती है। उसका हाथ टूट सकता है। पैर टूट सकता है और कदाचित् किसी भाई का इस जन्म का शरीर भी छूट सकता है। किन्तु विषय-कषायों, क्रोध, मान, माया, लोभ के संतरियों द्वारा किये गये फायरिंग से भले ही किसी का इस जन्म में हाथ, पैर अथवा गला न भी कटे, पर उसके अनेक जन्म-जन्मातरों तक के लिए, असंख्य काल और यहाँ तक कि अनन्तानंत काल तक के लिए भी हाथ, पैर, नाक, कान, मुख कट सकते हैं अर्थात् उसका निगोद में पतन हो सकता है, तिर्यंच, नारकादि गतियों में अधोगमन हो सकता है।
- क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय से, संयम से, साधना से, धर्म की आराधना और धर्म के आचरण से स्व-पर के आत्मदेव की रक्षा हो सकेगी। जिन महापुरुषों ने क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त कर अपने आत्मगुणों की तथा अन्य आत्माओं की रक्षा की है, इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित उनके जीवन-चरित्र प्रकाश-स्तम्भ के समान हमें मार्गदर्शन करते रहते हैं।
- जैसे गर्म भट्टी पर चढ़ा हुआ जल बिना हिलाए ही अशान्त रहता है उसी प्रकार मनुष्य भी जब तक कषाय (विकार) की भट्टी पर चढ़ा रहेगा, तब तक अशान्त और उद्विग्न बना रहेगा। जल की दाहकता को मिटाने के लिए उसे गरम भट्टी से अलग रखना आवश्यक है, वैसे ही मनुष्य को भी अपने मन की अशान्त स्थिति से निपटने के लिए क्रोध, लोभादि विकार से दूर रहना होगा। जल का स्वभाव ठंडा होता है। अतः वह भट्टी से अलग होते ही अपने पूर्व स्वभाव पर आ जाता है, ऐसे ही शान्त-स्वभावी आत्मा भी कषाय से अलग होते ही शान्त बन जाता है।
- अनियंत्रित लोभ या क्रोध व्यावहारिक जीवन को कटु बना देता है और वैसी परिस्थिति में साधक का लोक-जीवन भी ठीक नहीं बन पाता। वह माता-पिता, परिजन एवं बन्धु-बान्धव आदि के प्रति भी ठीक व्यवहार नहीं रख पाता। वस्तुतः लोभ व लालसा आदि पर अकुंश लगाने वाला ही जीवन में सुखी बनता है।

■ कार्यकर्त्ता

- आज के समाज को धन या जन की कमी नहीं, कमी है तो सेवाभावी कार्यकर्त्ता की।
- यों तो समाज में हजारों कार्यकर्ता हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे, पर संस्था या समाज को अपना समझकर घरेलू हानि-लाभ का बिना विचार किये अदम्य साहस व पूर्ण प्रामाणिकता से लगन पूर्वक कार्य करने वाले कार्यकर्ता दुर्लभ हैं।

- कार्यकर्ता की कुशलता के सामने अर्थाभाव का कोई प्रश्न नहीं रहता।
- सेवाभाव से समय देने वाला अर्थदाता से भी अधिक सम्मान योग्य होता है, यह समझकर समाज कार्यकर्ताओं का सम्मान करे, उन्हें प्रोत्साहित करे , और कार्यकर्ता भी मातृ-पितृ सेवा की तरह समाज सेवा को अपना कर्तव्य समझकर काम करे तो सफल कार्यकर्ता तैयार हो सकते हैं। आज धन-जन एवं बुद्धि सम्पन्न होकर भी जैन समाज योग्य कार्यकर्ताओं के अभाव में सम्यक् ज्ञान और क्रिया का प्रचार-प्रसार नहीं कर पा रहा है।
- विदेशी प्रचारकों और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को देखते हैं तब विचार होता है कि अनार्य कहे जाने वाले लोग देश, धर्म व समाज के लिये घरबार का मोह छोड़कर जीवन अर्पण कर देते हैं, फिर क्या कारण है कि वीतराग संस्कृति में वैसे कार्यकर्ता आगे नहीं आते। तरुण पीढ़ी इस पर गहराई से विचार करे, और इस कार्य में आगे बढे, समाज में ऐसे कार्यकर्ता सुलभ हों, यही शुभेच्छा है।

■ कार्य-कारण (उपादान-निमित्त)

- प्रत्येक कार्य की निष्पत्ति में उपादान और निमित्त, ये दोनों ही कारण होते हैं। यह नहीं समझिये कि कभी किसी कार्य में एक कारण से ही कार्य सिद्धि हुई है। ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होता है। जिस तरह मंथन करने वाला मथेरणा दधि से मक्खन निकालता है, तब मंथन क्रिया करते समय क्रमशः एक हाथ पीछे रहता है तो दूसरा हाथ आगे। दोनों हाथों से क्रिया चलती है लेकिन एक हाथ आगे और दूसरा हाथ पीछे चलता है। इसी तरह ज्ञान-प्राप्ति में कभी निमित्त आगे और उपादान पीछे रहता है तो कभी उपादान आगे और निमित्त पीछे रहता है। हमारे यहाँ जिनशासन में अनेकान्त दृष्टिकोण है। इसमें व्यवहार और निश्चय ही मुख्य है। कभी व्यवहार आगे रहता है तो निश्चय पीछे और कभी निश्चय आगे तो व्यवहार पीछे रहता है। गौण एवं प्रधानता से दोनों को लेकर चलना है।
- कारण दो प्रकार के होते हैं एक प्रेरक और दूसरा उदासीन। घर में घड़ी लगी हुई है और उसमें ८.३० बज गये तो व्याख्यान में जाने का समय हो गया। घड़ी व्याख्यान के समय की याद दिलाने में कारण हुई। एक घर में माताजी, पिताजी या पुत्र ने कहा-'अभी तक तैयार नहीं हुए हो, मालूम भी है कि साढ़े आठ बज गये हैं। जल्दी करो। व्याख्यान में जाना नहीं है क्या?' घड़ी एवं घर वालों में अन्तर यह है कि घड़ी टाइम बताती है लेकिन प्रेरणा नहीं करती। अतः यह उदासीन कारण बनी, और घर के सदस्य प्रेरक कारण बन गये।
- जो उदासीन कारण होता है, उसको वस्तुतः न तो पाप ही होता है और न पुण्य ही। जैसे पढ़ने के लिए पोथी उदासीन कारण है। पोथी क्या जाने कि वह ज्ञान में सहायक निमित्त कारण बन गई है।
- मान लीजिए कि दो भाइयों के बीच में झगड़ा हो गया। दो मकान थे, एक तो गली में था और दूसरा बाजार में। बाजार वाले मकान पर दोनों भाइयों की नजर थी। लेकिन बड़ा भाई बाजार वाले मकान को अपने कब्जे में रखना चाहता था। गली वाला दूसरा मकान उसने छोटे भाई को दे दिया। मकान के निमित्त से झगड़ा पड़ गया। वह मकान झगड़े में उदासीन कारण बना। यदि मकान बीच में नहीं होता तो शायद भाइयों के बीच झगड़ा नहीं होता। वह मकान अच्छी जगह था, इसलिए उसकी अच्छी कीमत आ सकती थी। अच्छा किराया आ सकता था। इसलिए दोनों भाइयों की नजर उस पर थी। एक का ममत्व बढ़ गया, इसलिए दूसरे को भी झगड़ा करने का मौका मिल गया, कोर्ट तक जाने की नौबत आ गई। मकान के निमित्त झगड़ा हुआ, लेकिन

सजीव नहीं होने के कारण मकान को कर्म-बंध नहीं हुआ। यदि कोई सजीव चीज़ जैसे घोड़ा, हाथी, गाय है, उसके लिए झगड़ा हो जाए तो क्या गाय को भी कर्म-बंधन होगा? नहीं। क्योंकि वह उदासीन है। किसी को हानि-लाभ पहुँचाने में वह सक्रिय भाग नहीं ले रही है। उसमें समझ नहीं है। दूसरी तरफ एक पड़ौसी है, वह कहता है कि क्यों ठंडे पड़ गये हो? क्यों मकान हाथ से गंवा रहे हो? मालूम होता है खर्च से डर गये। इस तरह अन्याय के समक्ष दब जाओगे तो कमजोरी दिखेगी, इसलिए कोर्ट में दावा दायर करना चाहिए। एक तरफ तो झगड़े का कारण पड़ौसी बना, दूसरा कारण मकान बना। इन दोनों में क्या फर्क है? एक कारण तो मकान है, वह उदासीन है। वह सहायक कारण अवश्य है, पर किसी को भी प्रेरणा नहीं देता। दूसरा कारण पड़ौसी है, जो प्रेरणा देता है। इसलिए कर्मबंधन प्रेरक को हुआ। यद्यपि वह लड़ा नहीं है, कोर्ट में फरियाद वह नहीं कर रहा है। लड़ने की क्रिया कौन करता है? गृहस्वामी। लेकिन पड़ौसी प्रेरक है, इसलिए उसको कर्मबंधन होगा।

- नमिराज को ज्ञान किससे हुआ? चूड़ी से। चूड़ी जड़ होने के कारण उदासीन कारण बनी। अतः किसी प्रकार के कर्मबंध की भागीदार नहीं बनी। यदि आप किसी के धर्म-ध्यान के निमित्त बन जाएँ, जीवन भर धर्म-प्रेरणा देने का संकल्प करें तो आपको धर्म-दलाली मिलेगी और प्रेरक हेतु होने के कारण आप निश्चित रूप से पुण्य लाभ के भागी बनेंगे।
- आपका जीवन उदासीन कारण की तरफ, शुभ-अशुभ निमित्त की तरफ प्रतिपल बढ़ता जा रहा है। किसी बहिन के तन पर अच्छा गहना, कपड़ा देखकर मन में दुर्भावना पैदा हो जाए, मन में क्लेश पैदा हो जाए, आपके कपड़ों के पहनावे वेश-भूषा, खर्च आदि को देखकर दूसरों के मन में राग-द्वेष उत्पन्न हो जाये तो आपने तो उससे कुछ नहीं कहा तथापि आप उसकी पापवृत्ति में निमित्त बने, आपका खान-पान, आपका पहनना-ओढ़ना, मकान बनाना आदि सारे दुनिया के व्यवहार प्रेरक बने, अशुभ निमित्त के लिए। इसलिए आप पाप के भागीदार बने। यदि आप आत्म-सुख के प्रेरक निमित्त बनेंगे तो लाभ के भागीदार बनेंगे।
- एक बार कृष्ण ने सोचा-"मैं धर्म कर्त्ता तो नहीं बन सकता, लेकिन मैं धर्म-मार्ग का प्रेरक क्यों नहीं बनूँ? जो करता है उसका अनुमोदक क्यों नहीं बनूँ?" जो लोग तन से, मन से, वाणी से धर्म की दलाली करते हैं, खुद नहीं कर सकें तो भी दूसरों को करने की प्रेरणा देते हैं, साधना-मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं, उनको उसकी दलाली अवश्य मिलती है। कृष्ण ने सहायक, प्रेरक, अनुमोदक बनकर एकान्त पुण्य का खजाना इकट्ठा किया और वे तीर्थंकर पद के अधिकारी बन गये। श्री कृष्ण का उदाहरण प्रेरक निमित्त का उदाहरण है।
- सिद्ध भगवान कर्म काटने के निमित्त हैं और साधुजी भी कर्म काटने के निमित्त हैं। दोनों में क्या अन्तर है? सिद्ध निमित्त बने अक्रिय होकर और सन्त निमित्त बने सक्रिय होकर। साधु में भी हमारी आत्मा को तारने की शक्ति है तथा सिद्ध परमात्मा पूर्ण ज्ञानी, अक्रिय एवं वीतराग हैं, वे अक्रिय होकर भी हमारी आत्मा को तारते हैं और संत सक्रिय होकर तारते हैं।
- अकर्त्ता सिद्ध परमात्मा से अपनी अन्तरात्मा का तार जोड़कर अपने अन्तर्मन को उस प्रभु में लगाकर साधक तिर सकता है। दोनों में अन्तर यह है कि अकर्त्ता को निमित्त बनाया जाता है और कर्त्ता निमित्त बनता है, कर्त्ता प्रेरक है।
- उपादान को जागृत करने का काम प्रेरक निमित्त अच्छे ढंग से कर पाता है। प्रेरक निमित्त के द्वारा मानव मन को एक प्रेरणा मिलती है, हलचल होती है, चेतना जागृत होती है। चेतना जागृत होती है तो कुछ कर्मों का आवरण

दूर होता है और आवरण दूर होने से क्षय अथवा उपशम या क्षयोपशम होकर मानव अपने आत्म-गुणों का विकास साध लेता है।

काल का सदुपयोग

- अविकल रूप से चलने वाला काल यदि हाथ से निकल गया और बाद में सावधान बने तो फिर तुम्हारे वश की कोई बात नहीं रहेगी। क्योंकि काल तुम से बंधा नहीं है, बल्कि तुम काल से बंधे हो। आपको स्वयं काल के साथ चलना है। काल आपके साथ की अपेक्षा कभी नहीं करेगा। बिना किसी के साथ की अपेक्षा किये वह तो अपनी गति से अविकल रूपेण चलता ही रहेगा। यदि आप सजग एवं अप्रमत्त नहीं रहे और निरन्तर प्रवाही काल आपके हाथ से निकल गया तो अवसर चूक जाने के कारण आपको अन्त में हाथ मल-मलकर पछताना पड़ेगा।
- समय चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, पर यदि उसका उपयोग करना आ जाये तो थोड़े समय में भी साधक उसे अपने लिए लाभदायक बना अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है। धर्म की साधना में पल-पल, क्षण-क्षण तक के समय का सदुपयोग करने वाले जागरूक साधक के सम्बंध में सूत्रकार ने कहा है—

  जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियट्टइ।
  धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥

  अर्थात् बीती हुई रात्रियाँ फिर नहीं लौटतीं। अहर्निश धर्म की साधना में निरत रहने वाले व्यक्ति की रात्रियाँ ही वस्तुतः सफल होती हैं।
- काल प्रतिपल प्रवाही है। प्रतिपल, प्रतिक्षण, प्रतिदिन काल आगे सरकता जा रहा है और आप पीछे सरकते जा रहे हैं। कल आपकी जिन्दगी के जितने दिन थे, उनमें से आज आपकी जिन्दगी का एक दिन कट गया।
- जीवन का समय सीमित एवं स्वल्पातिस्वल्प है और जो स्वल्पतम सीमित समय है, उसका भी भावी प्रत्येक क्षण अनिश्चित है। किसी को कोई पता नहीं है कि कराल काल कब आकर उसे अपना कवल बना लेगा। संसार की चौरासी लाख जीव-योनियों में केवल एक मानव-योनि ही ऐसी योनि है, जिसमें काल का अधिकाधिक सदुपयोग कर साधक साधना द्वारा यथेप्सित आत्मकल्याण कर सकता है। जो उद्बुद्ध साधक मानव-जीवन एवं काल के इस महत्त्व को जानता है, वह अपने जीवन के एक-एक श्वासोच्छ्वास एवं काल के एक-एक क्षण को अनमोल समझ कर आत्म-कल्याण की साधना में संलग्न रहता है। वह अपने चरम लक्ष्य के सन्निकट शीघ्र ही पहुँच सकता है।

क्रोधनिग्रह

- मेरे सामने राजस्थान का रहने वाला दर्जी-समाज का एक आदमी आया और कहने लगा कि मुझे गुस्सा बहुत चढ़ता है, मैं क्या करूँ ? मैंने कहा-जब गुस्सा चढ़े तब उस स्थान से थोड़ी देर के लिये अलग हट जाओ। इसके बाद भी गुस्सा शान्त नहीं होता है तो १० मिनट तक किसी से बोलो मत। इससे भी शान्त नहीं होता है तो गुस्सा आने पर प्रायश्चित्त में नमक, मिर्ची खाना छोड़ दो। इसको वश में करने के लिये कड़ा अनुशासन रखना चाहिये।

गर्भपात

- सन्ततिनिग्रह और परिवार नियोजन के नाम से सरकार प्रबल आन्दोलन कर रही है और कैम्पों आदि का आयोजन कर रही है। यह सब बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिये किया जा रहा है। गांधीजी के सामने जब यह समस्या उपस्थित हुई तो उन्होंने कृत्रिम उपायों को अपनाने का विरोध किया था और संयम के पालन पर जोर दिया था। उनकी दूरगामी दृष्टि ने समझ लिया था कि कृत्रिम उपायों से भले ही कुछ तात्कालिक लाभ हो जाय, परन्तु भविष्य में इसके परिणाम अत्यन्त विनाशकारी होंगे। इससे दुराचार एवं असंयम को बढ़ावा मिलेगा। सदाचार की भावना एवं संयम रखने की वृत्ति समाप्त हो जायेगी।
- कितने दुःख की बात है कि जिस देश में भ्रूणहत्या या गर्भपात को घोरतम पाप माना जाता था, उसी देश में आज गर्भपात को वैध रूप देने के प्रयत्न हो रहे हैं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि अहिंसा की हिमायत करता हुआ भी यह देश किस प्रकार घोर हिंसा की ओर बढ़ता जा रहा है। देश की संस्कृति और सभ्यता का निर्दयता के साथ हनन करना वस्तुतः जघन्य अपराध है। (यह प्रवचनांश उस समय का है जब गर्भपात को वैध रूप नहीं दिया गया था।)

गुण दृष्टि

- संसार में अन्तर्दृष्टि जनों की अपेक्षा बहिर्दृष्टि लोगों की बहुलता है। बहिर्दृष्टि लोग आत्मिक वैभव की अपेक्षा पौद्गलिक वैभव को अधिक मूल्यवान मानते हैं और उसी की ओर उनका आकर्षण होता है। यही कारण है कि विद्वानों और गुणीजनों की अपेक्षा धनियों को और अधिक आदर मिलता है और उन्हीं की तारीफ होती है । वही समाज के नेता समझे जाते हैं और जाति तथा समाज की नकेल उन्हीं के हाथ में रहती है। विद्वान और गुणी पुरुष का वैभव यद्यपि धन की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है और उसका जीवनस्तर भी प्रायः उच्चतर होता है, तथापि उसकी प्रशंसा कम होती है। इस कारण उनकी ओर आकर्षण भी कम ही होता है। अगर धनी की तारीफ की तरह गुणियों और विद्वानों की तारीफ या महिमा बराबर होती रहे और सुनने में आती रहे तो आपका मन किस तरफ आकर्षित होगा ? निस्संदेह आपके मन में गुणियों के प्रति और विद्वानों के प्रति आकर्षण उत्पन्न होगा।

गुरु

- निर्ग्रन्थ गुरु के पास भक्त पहुँच जाए तो न तो गुरु उससे कुछ लेता है और न उसे कुछ देता ही है। वह तो एक काम करता है-अज्ञान के अंधकार को हटाकर शरणागत के ज्ञान चक्षु खोलता है। 'ज्ञानांजन-शलाका' के माध्यम से प्रकाश करता है और अज्ञान का जो चक्र घूमता है, उसको दूर करता है।
- देव का अवलम्बन परोक्ष रहता है और गुरु का अवलम्बन प्रत्यक्ष। कदाचित् ही कोई भाग्यशाली ऐसे नररत्न संसार में होंगे, जिन्हें देव के रूप में और गुरु के रूप में अर्थात् दोनों ही रूपों में एक ही आराध्य मिला हो। देव और गुरु एक ही मिलें, यह चतुर्थ आरक में ही संभव है। तीर्थंकर भगवान् महावीर में दोनों रूप विद्यमान थे वे देव भी थे और गुरु भी थे। लेकिन हमारे देव अलग हैं और गुरु अलग। हमारे लिए देव प्रत्यक्ष नहीं हैं, परन्तु गुरु प्रत्यक्ष हैं। इसलिए यदि कोई मानव अपना हित चाहता है, तो उस मानव को सद्गुरु की आराधना करनी

चाहिए।

- गुरु के अनेक स्तर हैं, अनेक दर्जे हैं, जिनको गुरु कहा जाता है, लेकिन वे सभी तारने में, मुक्त करने में सक्षम नहीं होते। आचार्य केशी ने बतलाया है कि आचार्य तीन प्रकार के होते हैं-कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। यदि कोई व्यक्ति कृतज्ञ स्वभाव का है और उपकार को मानने वाला है, तो उसको जिसने दो अक्षर सिखाए हैं, उसके प्रति भी आदर भाव रखेगा। जिसने थोड़ा सा खाने-कमाने लायक व्यवसाय प्रारम्भ में सिखाया है, उसको भी ईमानदार कृतज्ञ व्यक्ति बड़े सम्मान से देखेगा। इसी प्रकार जो शिल्पाचार्य हैं और उन्होंने अपने शिष्यों को शिल्प की शिक्षा दी है, उनके प्रति भी शिष्यों को आदर भाव रखना चाहिए। किन्तु कलाचार्य और शिल्पाचार्य को प्रिय है धन। जो भक्त जितनी ज्यादा भेंट-पूजा अपने गुरु के चरणों में चढ़ायेगा उसको कलाचार्य और शिल्पाचार्य समझेगा कि यही शिष्य मेरा अधिक सम्मान करता है, लेकिन धर्माचार्य की नजर में उसी शिष्य का सम्मान है, जिसने अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिए साधना की है।
- सद्‌गुरु होने की प्रथम शर्त यह है कि वह स्वयं निर्दोष मार्ग पर चले और अन्य प्राणियों को भी उस निर्दोष मार्ग पर चलावे। सद्‌गुरु की इसलिए महिमा है।
- मनुष्य जैसा पुरुषार्थ करता है , वैसा भाग्य निर्माण कर लेता है। इतना जानते हुए भी साधारण आदमी शुभ मार्ग में पुरुषार्थ नहीं कर पाता। कारण कि जीवन-निर्माण की कुंजी सद्‌गुरु के बिना नहीं मिलती। जिन पर सद्गुरु की कृपा होती है, उनका जीवन ही बदल जाता है। आर्य जम्बू को भर तरुणाई में सद्गुरु का योग मिला तो उन्होंने ९९ करोड़ की सम्पदा, ८ सुन्दर रमणियों एवं माता-पिता के दुलार को छोड़कर त्यागी बनने का संकल्प किया। राग से त्याग की ओर बढ़कर उन्होंने गुरुपूजा कर सही रूप उपस्थित किया।
- शिष्य के जीवन में गुरु ही सबसे बड़े चिकित्सक हैं। जीवन की कोई भी अन्तर समस्या आती है तो उस समस्या को हल करने का काम और मन के रोग का निवारण करने का काम गुरु करता है। कभी क्षोभ आ गया, कभी उत्तेजना आ गई, कभी मोह ने घेर लिया, कभी अहंकार ने, कभी लोभ ने, कभी मान ने और कभी मत्सर ने आकर घेर लिया तो इनसे बचने का उपाय गुरु ही बता सकता है।
- निर्ग्रन्थ, जिनके पास वस्तुओं की गाँठ नहीं होती- आवश्यक धर्मोपकरण के अतिरिक्त जो किसी तरह का संग्रह नहीं रखते हैं, वे ही धर्मगुरु हैं। साधुओं के पास गाँठ हो तो समझ लेना चाहिए कि ये गुरुता के योग्य नहीं हैं।

■ चोरी

- गृहस्थ-जीवन में जो भी व्यक्ति चोरी से विलग रहता है, वह सम्मानीय माना जाता है। सड़क पर नाजायज कब्जा, सरकारी या दूसरे व्यक्ति की भूमि पर अवैधानिक अधिकार आदि भी चोरी का ही रूप है।
- वास्तव में मानव समाज के लिए चोरी एक कलंक है। गृहस्थ को संसार में प्रतिष्ठा का जीवन बिताना है और परलोक बनाना है तो वह चोरी से अवश्य बचे।
- भारतीय नीति में चोरी चाहे पकड़ी जाए या नहीं पकड़ी जाए, दोनों हालत में निन्दनीय, अशोभनीय और दंडनीय कृत्य है। चोरी या अनीति का पैसा सुख-शान्ति नहीं देता। वह किसी न किसी रूप में हाथ से निकल जाता है। कहावत भी है कि चोरी का धन मोरी में।

जल-रक्षण

- आजकल घर-घर और गली-गली में नल हो जाने से पानी का वास्तविक मूल्य नहीं समझा जाता। किन्तु जब कभी कारणवश जल केन्द्र से पानी का निस्सरण कम हो जाता है अथवा बिल्कुल ही नहीं होता तब देखिए पैसे देने पर भी घड़ा भर पानी नहीं मिल पाता और जान मुसीबत में फंसी जान पड़ती है। भले ही प्रचुर जल वाले प्रदेश में कठिनाई प्रतीत नहीं होती हो, तब भी प्यास की स्थिति में जल का महत्त्व आसानी से समझा जा सकता है। सोना-चाँदी और वस्त्राभूषण के बिना आदमी रह सकता है, पर जल के बिना एक दिन भी नहीं रह सकता। अतः सद्गृहस्थ को यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी की एक बूँद भी व्यर्थ नहीं जाए।
- पानी के अमर्यादित उपयोग से कीचड़ फैलता है और उसमें मच्छर आदि अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं। मनुष्य यदि विवेक से काम ले तो व्यर्थ की हिंसा और मलेरिया आदि रोगों से अनायास ही बच सकता है। मरुभूमि के लोगों को मालूम है कि पानी का क्या मूल्य है।
- अनछाना पानी नहीं पीने से कितने ही जीवों की हिंसा टल जाती है। तृणभक्षी पशु भी जब ओठ से फूँक कर पानी पीते हैं, कुत्ते, बिल्ली या शेर की तरह वे जीभ से लपलप कर नहीं पीते, तब मनुष्य को तो सावधानी रखनी ही चाहिये। ऐसा करने से आरोग्य और धर्म दोनों प्रकार का लाभ है।

जिनवाणी

- जिस तरह मेघ की वर्षा जमीन पर अच्छे ढंग से पड़ जाती है तो भूमि नरम हो जाती है, कड़ी नहीं रहती और पड़ने वाला बीज अच्छी फसल पैदा कर सकता है। जगह-जगह छोटे-मोटे गड्ढे भर जाते हैं, तलाई का रूप ले लेते हैं और जंगल के प्राणियों को भी पानी सुलभ हो जाता है। छोटा-सा मेघ इतना काम कर जाता है तो भगवान् की वाणी की वर्षा पाकर आप भी कोमलता, स्वच्छता, निर्मलता और आत्मगुणों को धारण करके आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो आपको इस लोक एवं परलोक में कल्याण व आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

जीवन की दौड़

- संसार के प्राणी-बच्चे, बूढ़े, जवान सभी विजय की दौड़ में अपनी शक्ति, अपनी ताकत पूरे जोश के साथ लगाते हैं। संसार के मैदान में हमको विजय मिले, हम जीतें, हमारा नम्बर आगे रहे, इसी चिन्ता में दिन-रात दौड़ते रहते हैं। इनमें से कोई अर्थ यानी धन के लिए दौड़ता है, कोई परिवार के लिए दौड़ता है, कोई वैभव के लिए दौड़ता है, कोई कुर्सी के लिए दौड़ता है तो कोई सत्ता के लिए दौड़ता है। इस तरह इस घुड़ दौड़ में दौड़ने वाले हजारों-लाखों मानव हैं। कोई कामयाब होता है या बीच में ही रवाना होकर चला जाता है, इसका कोई ठिकाना नहीं, क्योंकि यह देह अनित्य है।
- आप मानें या न मानें, अर्थ-लालसा के पीछे हमारे जो भाई-बहिन दौड़ लगा रहे हैं, इस वास्तविक तथ्य को वे मंजूर नहीं करेंगे। उनकी दौड़ जारी रहेगी। अर्थ चाहने वालों की अर्थ के लिए, भोग चाहने वालों की भोग के लिए, पद चाहने वालों की पद के लिए भूख लगी रहेगी, लेकिन उनको पता नहीं है कि संसार में दुःख ही दुःख है।

- कुछ लोग यह आशा करते हैं कि हमको देवता बचा लेंगे, भैरोजी बचा लेंगे, चण्डी या अम्बाजी बचा लेंगी। जाप करके आशा की जाती है कि देव शक्ति-बचा लेगी। बात यह है कि समय आने पर देवों को और इन्द्र को भी अपना सिंहासन छोड़कर जाना पड़ता है, तो क्या वे आप का सिंहासन बराबर बरकरार रख सकेंगे?

■ जीवन-निर्माण

- भव-मार्ग के लिए, संसार के जीवों को जन्म-मरण के चक्र में गोता लगाने के लिए, छोटे-बड़े किसी भी प्राणी को शिक्षा देने की, समझाने की, और जीवन को आगे बढ़ाने हेतु प्रेरणा देने की आवश्यकता नहीं है। एक छोटा सा कीड़ा जो गटर में पैदा होता है, खाने-पीने की व्यवस्था वह भी कर लेता है। छोटी सी दरार में पैदा होने वाली चींटी कहाँ से लाना, कैसे लाना, पदार्थ कहाँ है, मेरे अनुकूल क्या है, प्रतिकूल क्या है, अच्छी तरह जानती है, इन सारी बातों की जानकारी उसको भी है। पक्षी में कहिए, पशु में कहिए, देव में कहिए, दानव में कहिए, आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा - ये चारों प्रकार की संज्ञाएँ सब में हैं। अपने जीवन को चलाना, बाधक तत्त्वों से अलग रहना, साधक तत्त्वों की ओर जुट जाना - इसके लिये किसी को प्रेरणा देने की जरूरत नहीं है। एकेन्द्रिय कहलाने वाला पेड़ भी पत्थर की चट्टान की ओर जड़ फैलाने के बजाय उधर जड़ फैलायेगा जिधर जमीन में कोमलता है, स्निग्धता है, आर्द्रता है, गीलापन है। इसलिए एकेन्द्रिय जीव को अपनी जड़ किधर फैलानी चाहिए, कैसे फैलानी चाहिए वह स्वयं जानता है कोई शिक्षा देने नहीं आता। इस प्रकार जीवन चलाने के लिए आहार कहाँ से प्राप्त होगा, जल कहाँ से प्राप्त होगा, हमको कैसे जीवन चलाना चाहिये, ये बातें एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सारे जीव जानते हैं।
- जैसे आप विविध कलाएँ करते हैं, उसी तरह जानवर भी करते हैं। वे भी अपना जीवन चलाने में दक्ष होते हैं, निपुण होते हैं। सामने वाले को तेजस्वी देखकर दुम दबाकर भाग जाते हैं और यदि सामने वाला कमजोर है तो एक कुत्ता भी बच्चे को देखकर, गुर्राकर, उसके सामने मुँह कर दो कदम आगे बढ़कर उसके हाथ से रोटी छीन सकता है। यदि लाठी वाला बड़ा आदमी सामने खड़ा है, उसके हाथ में लाठी है तो कुत्ता भी जानता है कि उसके हाथ से रोटी कैसे लेना। वह नीचे लेटेगा, पेट दिखायेगा, जीभ लपलपायेगा और रोटी ले लेगा। आप भी यही करते हैं। इन्सपेक्टर को देखकर हाथ जोड़ते हैं और भोले भाले आदमी को देखकर आप भी गुर्राते हैं। यदि जीवन चलाने के लिये, ग्राहक पटाने के लिए, दुकानदारी जमाने के लिए, किसी को शीशी में उतारने के लिए आपने यह किया है तो कहना चाहिए कि जानवरों से आप में कोई नवीनता नहीं है।
- जैसे जल को ऊपर चढ़ाने के लिए नल की अपेक्षा होती है वैसे ही जीवन की धारा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए सत्संग, शास्त्र-श्रवण और शिक्षा का सहारा अपेक्षित है। भौतिकता के प्रभाव में जो लोग जीवन को उन्नत बनाना भूल जाते हैं वे संसार में कष्टानुभव पाते हैं और जीवन को अशान्त बना लेते हैं।

■ जैनधर्म

- लोग आरोप लगाते हैं कि जैन धर्म व्यक्ति का स्वार्थ साधता है, समाज-हित की बात नहीं कहता। वह व्यक्ति में स्वार्थीपन की भावना जगाता है। वह हर आदमी को, अपनी आत्मा का कल्याण करो, अपना जीवन बनाओ, यह शिक्षा देता है। जैन धर्म समाज-हित की बात नहीं कहता है। लेकिन वस्तुतः ऐसा कहने वाले भाइयों में इस सम्बन्ध का सही ज्ञान नहीं है। वे वास्तविक मूल रूप को नहीं समझ रहे हैं। भगवान् महावीर केवल व्यक्ति के

व्यक्तिगत जीवन को ऊँचा उठाने की बात ही नहीं कह रहे हैं, अपितु साथ में व्यक्ति का अपना जीवन सुधारने के साथ विश्व-कल्याण का संदेश भी दे रहे हैं। यहाँ थोड़ा सा फर्क है। व्यक्ति अपना व्यक्तिगत जीवन निर्मल करता हुआ दूसरों के जीवन को निर्मल बनाता है। दुनिया के कई दूसरे मत, संप्रदाय, पार्टियाँ या राजनीतिक टुकड़ियाँ, जहाँ लोक हित, जन उपकार करने के मार्ग में व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को निर्मल करना भुला देते हैं, वहाँ हमारी जैन परम्परा कहती है कि पहले खुद का खयाल रखो, ऐसा नहीं होगा तो पददलित हो जाओगे। विश्वकल्याण की बात करते जाओ, कहीं ऐसा नहीं हो कि दूसरों के हित की बात करते हुए घर में अन्धेरा ही रहे।

- महावीर का कल्याण मार्ग केवल उपदेश के लिए ही नहीं है, लेकिन स्वयं महावीर इस पर चले हैं। पहले स्वयं उन्होंने अपने जीवन को बनाया और फिर संसार को उपदेश दिया।
- संसार को सुधारने के लिये उन्होंने कोई जाति नहीं पकड़ी, कोई प्रान्त नहीं पकड़ा, कोई देश नहीं पकड़ा। उन्होंने किसी पंथ या सम्प्रदाय के दायरे को नहीं पकड़ा। लेकिन उन्होंने अपनी आत्म-शुद्धि के साथ-साथ सारे विश्व के प्राणियों को उपदेश दिया। आर्यों में जो जैन कुल में जन्मे थे, पार्श्वनाथ की परम्परा में चल रहे थे उनको तो कल्याण के मार्ग पर चलाया ही, लेकिन जो अनार्य थे उनको भी धर्म के मार्ग पर लाकर आर्य बनाया, धर्मी बनाया, बाल को पंडित बनाया , जिससे उनका इहलोक और परलोक सुधर गया। महावीर ने स्वयं ऐसा किया है और हमको भी इस तरह चलने का संदेश दिया है। उसी रास्ते पर चलते हुए हमें पवित्र मंगल कार्य की आराधना करते हुए अपने जीवन को शुद्ध करके व्यक्ति-धर्म और समाज-धर्म दोनों का पालन करना है।
- जैन परम्परा नियतिवादी नहीं है, कर्मवादी नहीं है, भाग्यवादी नहीं है। जैन परम्परा भगवंतवादी भी नहीं है। वह आत्मवादी है, पुरुषार्थवादी है। इसलिए भगवान् कहते हैं कि मानव ! यदि तेरे को कर्मों के बंधन काटने हैं तो अपने आप पुरुषार्थ करता जा। यदि तू अपने आप जगकर चला तो आवरण दूर हो जाएगा। लेकिन जगकर नहीं चला तो आवरण दूर होने वाला नहीं है।
- भूल जाइये आप इस बात को कि जैन धर्म का ठेका अग्रवालों, खण्डेलवालों, ओसवालों, पोरवालों अथवा अन्य जैन कही जाने वाली जातियों ने ही ले रखा है। धर्म की साधना में वस्तुतः कुल का सम्बन्ध नहीं, मन का सम्बन्ध है। हाँ, इस दृष्टि से आप भाग्यशाली हैं कि जैन कुल में उत्पन्न हुए हैं। परम्परागत कुलाचार के फलस्वरूप आप सहज ही अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों से, अनेक प्रकार की बुरी प्रवृत्तियों से बच गये हैं। इतने से ही यदि आप लोग निश्चिन्त हो गये और चारित्र में आगे कदम नहीं बढ़ाया तो आत्मकल्याण नहीं कर सकेंगे।

ज्ञान/अज्ञान

- अज्ञान दशा में सुमार्ग या सन्मार्ग की ओर रुचि नहीं होती। तब आरम्भ, परिग्रह, विषय, कषाय आदि की ओर मन, वाणी एवं काया की जो प्रवृत्ति होती है अथवा जो पुरुषार्थ होता है, सारा का सारा कर्मबंध का कारण होता है।
- ये जो भौतिक पदार्थ धन, धान्य इत्यादि हैं, इनके कितने ही स्वामी बदल गये। फिर आप कैसे कहते हैं कि ये मेरे हैं। यह नगीना मेरा है, यह हवेली मेरी है, यह बंगला मेरा है इत्यादि। यह जो मेरेपन की बात है या जो बोध है, उसके बारे में शास्त्रों में कहा गया है कि अज्ञान के कारण प्राणी ऐसा समझ रहा है।

- अज्ञानी और ज्ञानी के जीवन में बड़ा अन्तर होता है। बहुत बार दोनों की बाह्य क्रिया एक-सी दिखाई देती है, फिर भी उसके परिणाम में बहुत अधिक भिन्नता होती है। ज्ञानी का जीवन प्रकाश लेकर चलता है जबकि अज्ञानी अन्धकार में ही भटकता है। ज्ञानी का लक्ष्य स्थिर होता है, अज्ञानी के जीवन में कोई लक्ष्य प्रथम तो होता ही नहीं, अगर हुआ भी तो विचारपूर्ण नहीं होता। उसका ध्येय ऐहिक सुख प्राप्त करने तक ही सीमित होता है। फल यह होता है कि अज्ञानी जीव जो भी साधना करता है वह ऊपरी होती है, अन्तरंग को स्पर्श नहीं करती। उससे भवभ्रमण और बन्धन की वृद्धि होती है, आत्मा के बन्धन नहीं कटते।
- 'ज्ञा' धातु से जानने अर्थ में 'ज्ञान' शब्द की सिद्धि होती है। उसका अर्थ होता है-'ज्ञायते हिताहितं धर्माधर्मः येन तद् ज्ञानं' अर्थात् जिसके द्वारा हिताहित या धर्माधर्म का बोध होता है, जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का और सत्य-असत्य का बोध कराता है, मोक्ष मार्ग का बोध कराता है, उसको ज्ञान कहते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ज्ञान एक वह साधन है, जिसके द्वारा आत्मा अपनी शक्ति का, सत्यासत्य के बोध में उपयोग कर सके। सत्यासत्य का बोध करने वाले गुण का नाम ज्ञान है। ज्ञान सम्यक् भी होता है और मिथ्या भी होता है। संक्षेप में कहा जाये तो पदार्थों के स्वरूप की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम सम्यक् ज्ञान है।
- मोक्ष मार्ग में जिस प्राणी को लगना है, उसके लिए सम्यक् ज्ञान का होना परमावश्यक है। अज्ञान और कुज्ञान से हटकर सम्यक् ज्ञान में जब प्राणी का प्रवेश होगा, तब समझना चाहिए कि वह मोक्ष-मार्ग का पहला पाया या पहला चरण प्राप्त कर सका है।
- वर्ण-ज्ञान, भाषा-ज्ञान, कला-ज्ञान, लेखन-ज्ञान, पदार्थ-ज्ञान, रसायन-ज्ञान इत्यादि भिन्न-भिन्न ज्ञान हैं। ये मानव को पदार्थ का बोध कराने में सहायक सिद्ध होते हैं, लेकिन जब तक सम्यक् ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक ये सभी लौकिक ज्ञान भव-बंधन को काटने में सहायक नहीं होते।
- ऐसा ज्ञान जिससे भव-बंधन की बेड़ी काटना सम्भव हो, किसी पुस्तक से, किसी कॉलेज से, किसी विश्वविद्यालय से प्राप्त होने वाला नहीं है।
- जीव का स्वभाव ज्ञानस्वरूप होने पर भी ज्ञान तब तक प्रकट नहीं होता, जब तक उस पर से आवरण दूर नहीं होता। रोशनी देना सूर्य का स्वभाव होता है। प्रकाश देना सूर्य का स्वभाव है, फिर भी यदि बादल छाए हुए हैं, धुंध छाई हुई है या धूल जमी हुई है तब तक सूर्य की रोशनी नहीं मिलती है। इसी तरह आत्मा में जो ज्ञान का गुण है, उसको रोकने वाला कर्मावरण है। पहला आवरण है मिथ्यात्व, दूसरा आवरण है कषाय तथा तीसरा आवरण है ज्ञानावरणीय कर्म। अज्ञान के हटते ही ज्ञान प्रकट हो जाता है। सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मोह कर्म, ज्ञानावरणीय कर्म और अन्तराय कर्म का क्षयोपशम जरूरी होगा। केवल ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो जाए और मोह आदि क्षय नहीं हो तो ज्ञान का सम्यक् होना सम्भव नहीं है।
- ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? मिथ्यात्व और अज्ञान के हटने से। मिथ्यात्व और अज्ञान की गांठ कैसे कटेगी? ज्ञान होगा तब। इसलिए इनका परस्पर सम्बंध है। एक को दूसरे की अपेक्षा है। शास्त्रकार ने कहा है:—

  "नादंसणिस्स नाणं।"
- जब तक मानव के मन में सच्ची श्रद्धा नहीं होगी, तब तक ज्ञान पैदा नहीं होगा और दूसरी तरफ जब तक ज्ञान प्राप्त न हो जाए, तब तक सच्ची श्रद्धा नहीं होगी। इस तरह इन दोनों का परस्पर सम्बंध है।
- मोक्ष का पहला सोपान, पहली सीढ़ी ज्ञान है। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर संसार से ममता हट जायेगी। धन की

और कुटुम्ब की ममता की बेड़ियों का बंधन ढीला हो जाएगा। इससे व्यावहारिक जीवन में भी फर्क पड़ेगा।

- चाहे छोटी क्रिया हो अथवा बड़ी क्रिया, वस्तुतः ज्ञान और विवेक से उस क्रिया की चमक बढ़ती है। जिस क्रिया में ज्ञान और विवेक का पुट नहीं है, वह क्रिया चमकहीन हो जाती है।

'नाणं सुझाणं चरणस्स सोहा।'

- उत्तम ध्यान वाला 'ज्ञान' चारित्र एवं तप की शोभा है।
- जिसके भीतर की ज्ञान-चेतना जागृत हो गई, वह आत्मा बिना सुने, बिना पढ़े भी ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करती है, जैसे नमिराज की ज्ञान-चेतना चूड़ियों की झंकार को सुनकर जागृत हो गई। मृगापुत्र ने मुनियों को देखकर ज्ञान प्राप्त कर लिया। ऐसे अनेक उदाहरण शास्त्र व साहित्य में उपलब्ध होते हैं। ऐसा भी उदाहरण उपलब्ध होता है कि चोर को वध-स्थल पर ले जाते देखा और समुद्रपाल को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यद्यपि चोर ज्ञान-प्राप्ति का निमित्त नहीं है, लेकिन सोचने वालों ने उसे अपनी ज्ञान-चेतना को जागृत करने का साधन बनाया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञान अपने अनुभव से भी प्राप्त किया जा सकता है और सन्त-समागम एवं उपदेश से भी मिलाया जाता है। आज सर्वसाधारण के लिए संत-समागम का साधन सुलभ है। अधिकांश लोगों को अधिकांश ज्ञान सत्संग के साधन से ही उपलब्ध होता है। लेकिन अनुभव जगाकर अपने ज्ञान-बल से भी बहुत से व्यक्ति वस्तुतत्त्व का बोध प्राप्त कर सकते हैं।
- जिसने जीव और पुद्गल का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आत्मतत्त्व को पहचान लिया हो, जिसकी बुद्धि परिपक्व हो और उसमें ज्ञान के साथ वैराग्य हो तो उसको कोई खतरा नहीं रहता। जैसे दीपक में तेल है और बत्ती ठीक स्थिति में है तो हवा के साधारण छोटे-मोटे झोंकों से वह दीपक बुझ नहीं सकता। लेकिन यदि तेल ही समाप्त हो गया तो वह दीपक साधारण-सा झोंका पाकर भी बुझ जाएगा। इसलिए क्या गृहस्थ जीवन में और क्या त्यागी जीवन में, यदि हम चाहते हैं कि जीवन कुमार्ग और कुसंगति में पड़कर गलत रास्ते पर नहीं लगे, तो श्रुत-ज्ञान का जल अधिक मात्रा में डालना चाहिए, तभी खतरे से बचे रहेंगे।
- ज्ञान का धर्म यह है कि वह मानव जीवन में एक विशेष प्रकार का प्रकाश प्रदान करता है। ज्ञान केवल वस्तुओं को जानना मात्र ही नहीं है।
- ज्ञान, वस्तुतः मूल में एक है। उसके पाँच भेद अपेक्षा से, व्यवहार से, किये गये हैं। केवल-ज्ञान का प्रकाश आप में, हम में मौजूद होते हुए भी जब तक पुरुषार्थ का जोर नहीं लगे और कर्मों का पर्दा नहीं हटे, तब तक प्रगट नहीं होता। जैसे चकमक पत्थर में आग की चिनगारी है लेकिन उसे रगड़ा न जाए तो वह नहीं निकलती। धूम्रपान करने वाले किसान लोग छोटी-सी डिबिया रखा करते हैं, एक नली रखा करते हैं, जिसमें वे कपड़े की बत्ती रखते हैं। ज्यों ही बटन दबाया पाषाण में घर्षण होता है और आग लग जाती है। बीड़ी जल जाती है और बीड़ी, सिगरेट पीने वालों का काम बन जाता है। किन्तु जब तक वह डिबिया पाकेट में बंद है, वह महीना, दो महीना या चार महीना वहीं पड़ी रही तो उसमें चिनगारी नहीं निकलेगी। जैसे एक चकमक की पेटी और उस पाषाण में ज्योति मौजूद है, पर घर्षण के बिना प्रकट नहीं होती, ठीक उसी तरह आप में, हम में ज्ञान की ज्योति है, लेकिन उस ज्योति को प्रकट करने के लिए घर्षण आवश्यक है। घर्षण किससे? ज्ञान प्रकट करने के लिए ज्ञानी से घर्षण हो तो ज्ञान प्रकट होता है। अज्ञानी से बातचीत कर रहे होंगे तो लड़ाई होगी, झगड़ा होगा और यदि समाज में कोई व्यक्ति प्रिय या अप्रिय बात निकालेगा तो भी झगड़ा हो जाएगा। किसी अज्ञानी या बुरे

आदमी के पास बैठेंगे तो या तो क्रोध जगेगा या मोह जगेगा या काम जगेगा। किसी कामी के पास बैठे या कामिनी के पास बैठे तो वहाँ क्रोध जगा, मोह जगा, कामना जगी, लेकिन ज्ञान नहीं जगा। यदि आप अपने भीतर ज्ञान की ज्योति जगाना चाहते हैं तो पुरुषार्थ कीजिए।

- तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को समीचीनतया समझ लेने का नाम ही सम्यग्ज्ञान है। कमाने, खाने, पीने, पहनने, राज करने, ग्राहक पटाने के ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान नहीं है। अधिकार प्राप्त करना, बिगाड़ना, अनुकूल करना, यह सब सम्यग्ज्ञान नहीं, यह तो व्यावहारिक ज्ञान है। सांसारिक व्यवहार में व्यवहार-ज्ञान का उपयोग होता है। पर सम्यग्ज्ञान का उपयोग मोक्ष-मार्ग के साधन के रूप में है। स्व-पर कल्याण के लिए जिस ज्ञान की उपयोगिता है, वह सम्यक् ज्ञान है।
- राख के विपुल-विशाल ढेर के नीचे दबे हुए ऊपले के मध्य भाग में छिपी चिनगारी के समान निगोद के जीवों में भी ज्ञान सदा विद्यमान रहता है। जिस प्रकार राख के ढेर के हट जाने पर कंडे के अन्तरंग भाग में छिपी आग की चिनगारी वायु का संयोग पाकर सजग हो जाती है। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से आत्मा का दबा हुआ ज्ञान प्रकट होकर प्रकाश में आता है।
- ज्ञान के सम्यग्-बल के बिना दर्शन की शुद्धि नहीं होती। दर्शन से मतलब श्रद्धा-विश्वास से है। ज्ञान के बिना श्रद्धा की पवित्रता, निर्मलता में व्यवस्थित रूप नहीं आता।
- कोई भी जीव, कोई भी प्राणी चेतनाशून्य और ज्ञानशून्य नहीं है। उसमें बोध है, चेतना है, लेकिन उसमें हिताहित का खयाल नहीं है, इसलिए हम उसे सामान्य ज्ञान कहेंगे। वह जरा घट गया तो अज्ञान की स्थिति में चला जायेगा।
- ज्ञान वह है, जो हमारे बंधन को काटे। बंधन को बनाने वाला मकड़ी का ज्ञान है। मकड़ी के बारे में कहा जाता है कि दूसरे जन्तु आकर उसके अण्डों को उठा न ले जाएँ इसलिए उनसे बचने के लिए वह अपने इर्द-गिर्द जाल बुनकर दूसरे प्राणियों को आने से रोकने की व्यवस्था करती है। इस तरह मकड़ी अपना जाल फैलाती है, सुरक्षा के लिए, लेकिन वह जाल हो जाता है मकड़ी को उलझाने के लिए। मकड़ी ने अपने मुँह से ताँता निकाला और उसमें उलझकर बंध गई और अपने को खत्म कर गई। ज्ञानियों ने कहा उसका ज्ञान मिथ्या है। वह अज्ञानी है, क्योंकि उसके ज्ञान ने उसी को फंसा दिया, उलझा दिया, बाहर निकलने का रास्ता नहीं रहा, इसलिए उलझकर वह मर गई।
- इसी तरह आपने अपने ज्ञान के बारे में कभी सोचा कि आपकी दशा क्या है? नौजवान लड़के ने सोचा कि एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। कल्पना उठी और उसने विवाह कर लिया। एक से दो हुआ। दो से तीन, चार, पाँच और छह हुआ। वह जब एक था तब आगे का लक्ष्य तय करने में आजाद था, यानी मुक्त था। जब चाहा तब कहीं जा सकता था, जब चाहा तब महीने भर के लिए बाहर रह सकता था। शिक्षण के लिए विलायत जा सकता था। जब चाहा तब घूमने निकल सकता था। इस तरह वह आजाद था। उसने सोचा कि एक से अनेक हो जाऊँ। उसके मुँह से ताँत या लार की तरह स्नेह की ताँत निकली और उसने बंधन स्वीकार किया। अब वह बाहर आने-जाने में स्वाधीन नहीं।
- जाल बनाने वाली मकड़ी में जाल बनाने की ताकत है, लेकिन जाल को तोड़ने की क्षमता नहीं है, क्योंकि वह अज्ञानी है। लेकिन मानव में दोनों योग्यताएँ हैं। अज्ञान के वशीभूत होकर मानव जाल फैलाता है। लेकिन

जाल को काटकर बाहर निकलने के लिए उसे ज्ञान का बल बढ़ाना होगा। जब ज्ञान होगा तभी मानव समझेगा कि "मैं कौन हूँ और जाल को कैसे काटा जाता है?"

- ज्ञान हो जायेगा तब वह समझेगा कि आत्मा ज्ञान और दर्शन वाली है, वह सर्वथा अपनी है और जो धन, कुटुम्ब, परिवार और मित्र आदि बाह्य जगत की जितनी चीजें दिखती हैं, वे सब संयोग मात्र हैं। आप अपने तन पर रहने वाले कुर्ते को भी अपना कब तक कहते हो? आपने उसको फेंक दिया, निकाल दिया तब क्या कहोगे? आपके सिर पर जब तक बाल हैं, तब तक कोई आपके बाल या चोटी को पकड़कर खींचे तो क्या करोगे? आप उससे लड़ोगे और कहोगे कि अरे भाई मेरे बालों को क्यों खींचता है? तेरे बाल खींचे जाए तो तुझे कैसा लगेगा? लेकिन आपने जब उन्हीं बालों को किसी हज्जाम से कटवा दिया और जब हज्जाम उन बालों को नाले में डालता है तब आपने उससे कभी नहीं कहा कि मेरे बालों को कहाँ डाल रहा है? बीसों बार आपने अपनी जिन्दगी में इन बालों को कटवाया होगा, लेकिन ये बाल जब तक आपके सिर पर हैं तभी तक आपने समझा कि ये मेरे हैं। आपके कपाल से जब तक इनका संयोग रहा तब तक आपने समझा कि ये मेरे हैं संयोग हट गया तो आपके नहीं रहे।
- समझ लोगे उस दिन भौतिक पदार्थों में उलझने के बजाय देव-गुरु की भक्ति में लगते देर नहीं लगेगी। आपको लगेगा कि विवेक मेरा बंधु है, ज्ञान मेरा पुत्र है और सुमति मेरी सखी है, सद्बुद्धि मेरी सच्ची अर्धांगिनी है। मेरी सदा पालन-रक्षण करने वाली प्रिया कोई है तो वह है 'सुमति'। मेरा बच्चा कौन है? ज्ञान। और बंधु है, विवेक। यदि यह समझ में आ जाए, तो संसार के बंधन में मकड़ी के जाल की तरह उलझने की स्थिति नहीं आएगी।
- आज के युग की यह विशेषता और विचित्र प्रवृत्ति है कि मनुष्य भूल करने पर भी अपनी गलती को मानने के लिए तैयार नहीं होता, दूसरों के सामने तो हरगिज नहीं। यहाँ तक कि बहुत से लोग तो दोष स्वीकार करना मानसिक दुर्बलता मानते हैं। भूल को स्वीकार न करना ही आज के मानव का सबसे बड़ा दुर्गुण है, दोष है। इस दोष को, दुर्गुण को निकालने का, दूर करने का अमोघ साधन है—आध्यात्मिक ज्ञान। जब मनुष्य अपनी आत्मा का ज्ञान करने की ओर उन्मुख होता है तो वह स्वयं ही, बिना किसी दबाव के, अपने दोषों को स्वीकार करता है और उन्हें निकाल फेंकता है।
- यों तो आत्मा का गुण होने के कारण ज्ञान एक है तथापि क्षयोपशम के भेद से ज्ञान के भी पाँच भेद माने गए हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान और केवलज्ञान। कहने को केवलज्ञान पाँचवाँ ज्ञान है, पर जब केवलज्ञान प्रकट हो जाता है, तब पहले के मति-श्रुत आदि चारों ज्ञानों की आवश्यकता नहीं रहती। उनका अस्तित्व ठीक उसी प्रकार समाप्त हो जाता है जिस प्रकार कि समुद्र में मिल जाने पर नदियों का।

ज्ञानी को दुःख नहीं होता है, ज्ञानी धीरज नहीं खोता है।
अज्ञान हटाकर ज्ञान धरो, स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो॥

- ज्ञान जब मन में, अपने सही रूप में प्रगट हो जाता है तब आदमी पैसे को साधारण चीज़ समझकर चलता है। वह सोचता है कि पैसा अलग चीज़ है और हमारा ज्ञान गुण अलग है। पैसा नाशवान है और ज्ञान शाश्वत है।
- चाहे कोई कितना ही बड़े से बड़ा सम्पत्ति वाला क्यों न हो, शरीर छूटने के साथ ही उसका अरबों-खरबों का धन यहीं धरा रह जाता है, पर-भव में वह किंचित्मात्र भी साथ नहीं चलता। एक पैसा भी साथ नहीं जाता, सब यहीं

रह जाता है। इसी तरह एक आदमी सामायिक करता है, रात्रि-भोजन नहीं करने का नियम ले रखा है, शीलव्रत का खंध लिया है—ये नियम कब तक रहेंगे? ये नियम भी शरीर छूटने के साथ ही छूट जाते हैं। देह छूटने के साथ धन भी छूट गया और व्रत-नियम भी छूट गये। किन्तु एक फर्क है, वह यह कि धन छूटने के साथ ही धन का जो सुख था, आनंद था, वह सुख भी यहीं छूट गया, पर व्रत-नियम के पालन से जो पुण्य-लाभ संचित किया है, वह परलोक में भी साथ चलेगा। व्रत तो इसी जन्म तक रहे, लेकिन व्रत-पालन का लाभ, उससे उपार्जित किया हुआ पुण्य परलोक में भी उसके साथ चलेगा। व्रत-नियमों से उसकी आत्मा की जो शक्ति बढ़ी है, वह परलोक में भी साथ रहेगी।

- ज्ञान और दर्शन, ये इस जन्म की दो चीजें ऐसी हैं जो अगले जन्म में भी साथ चलती हैं। इस जन्म में ज्ञान की अच्छी आराधना की, उसमें मन को अच्छी तरह से रमाया, शास्त्रों के पठन-पाठन में मन रमा रहा और आयु पूर्ण कर देवगति में गया तो देवगति में भी उसके जीवन में वह ज्ञान प्रकाश करेगा। उसकी आत्मा की ज्योति अन्य देवों की अपेक्षा अधिक प्रदीप्त होगी। इसीलिए कहा है कि ज्ञान और दर्शन इस जन्म में भी रहते हैं और अगले जन्म में भी साथ रहते हैं।
- भगवान ने फरमाया कि ज्ञान-प्राप्ति के दो उपाय हैं। एक तो यह है कि शास्त्रों के जानकार ज्ञानी का सत्संग मिले, और दूसरा शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने का अवसर मिले और साथ ही साथ शास्त्रों की सुलभता हो, तभी ज्ञान प्राप्त होगा।
- एक आदमी व्याख्यान सुनने के बाद घर जाकर उस पर चिन्तन करता है तो धीरे-धीरे उस ज्ञान का अभ्यास होता है। दूसरे आदमी ने व्याख्यान से उठते ही पल्ला झटक दिया। सोचा, अपन ने तो महाराज का व्याख्यान सुन लिया, अब काम-धंधे पर लगना है, महाराज के ज्ञान से करना क्या है। ज्ञान को समझने की योग्यता होते हुए भी उसे ज्ञान में रुचि नहीं, इसलिए वह ज्ञान को न तो समझ सकता है और न ही सीख सकता है।
- ऐसा क्या जादू था, क्या कारण था, भगवान् नेमिनाथ और भगवान् महावीर ने ऐसी कौन-सी वाणी कही कि उसे एक बार सुन कर ही बड़े-बड़े राजघरानों के युवक, युवतियाँ, वृद्ध, वृद्धाएँ, बालक तथा बड़े-बड़े गाथापति, कोटिपति अनुपम ऐश्वर्य, अतुल धन-सम्पत्ति और विपुल भोग-सामग्री को ठुकरा कर कंटकाकीर्ण अति कठोर साधना-पथ पर अग्रसर हो गये ? जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, उनको (श्रोताओं को) सही ज्ञान हो गया। भगवान् की वाणी को सुन कर उन्हें विष और अमृत का सच्चा ज्ञान हो गया और इसी सही ज्ञान के फलस्वरूप उन्होंने भौतिक-सम्पदा, ऐश्वर्य एवं भोगोपभोग की सामग्री को विष समझ कर ठुकरा दिया और संयम को अमृत समझ कर अंगीकार कर लिया, आत्मसात् कर लिया।
- ज्ञान की भक्ति, विनय एवं आराधना करने से हमारी आत्मा पर अनन्त-अनन्त काल से जमा अज्ञान का अंधेरा दूर हो सकता है।
- ज्ञान का विरोध करना, ज्ञान को छिपाना या ज्ञानी के उपकार को नहीं मानना, ज्ञान में बाधा देना, ज्ञान और ज्ञानी की आसातना करना, ज्ञान के प्रति अनादर प्रकट करना, ज्ञान की मखौल उड़ाना—ये ज्ञान पर आवरण के प्रमुख कारण हैं। इन कारणों को जब कोई जान-बूझकर अथवा अनजान में काम लेगा तो अज्ञान का जोर बढ़ेगा और ज्ञान पर आवरण आ जायेगा।
- व्यावहारिक ज्ञान की दलाली के परिणाम कभी अच्छे और कभी बुरे भी हो सकते हैं। यह देखा गया है कि

व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्ति कभी-कभी अपने सहयोगियों की सत्ता को हिला देते और उखाड़ फेंकते हैं। उनमें व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ महत्त्वाकांक्षा भी जागृत हो जाती है। वे किसी के अनुशासन में, किसी की अधीनता में, किसी के हाथ के नीचे रहना बहुत कम पसन्द करते हैं। इसलिए यदि कोई बात उनके मन में अनुकूल नहीं हो तो चाहे उनकी सहायता करने वाला हो, चाहे प्रिन्सिपल हो, शिक्षा मंत्री, वाइस-चान्सलर हो अथवा कोई भी उनका बड़ा उपकारी सहायक हो, जिसने उन्हें शिक्षण में पूरा सहयोग दिया हो, छात्रवृत्ति दी हो, उन सबको वे उखाड़ कर अलग कर देते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान में दी हुई सहायता कभी-कभी सहायक के लिए अहितकर भी हो सकती है। परन्तु सम्यग्ज्ञान में कभी स्वयं के लिए अथवा दूसरे के लिए अहितकर मार्ग में बढ़ने जैसी स्थिति नहीं होती। इसीलिए उसे सम्यग्ज्ञान कहा है।

- यदि वीतराग की वाणी को सुनकर उसे कोई ग्रहण न करे तो उसकी आत्मा में बल नहीं आएगा, उसमें बुराइयों से जूझने की शक्ति नहीं होगी। ऐसी स्थिति में समझ लेना चाहिए कि श्रोता में कुछ मानसिक रोग अवशिष्ट हैं। सुनी हुई बात का मनन करने से आत्मिक बल बढ़ता है। मनन के बिना सुना हुआ ज्ञान स्थिर नहीं होता।
- जैसे अज्ञानावस्था में शिशु मल के मर्म को समझे बिना उसमें रमते हुए भी ग्लानि और दुःख का अनुभव नहीं करता और वही फिर होश होने पर मल से दूर भागता और नाक-भौं सिकोड़ता है, वैसे ही सद्ज्ञान प्राप्त नहीं होने तक आत्मा अबोध बालक की तरह कर्म-मल लिप्त बना रहता है, किन्तु ज्योंही सद्गुरु की कृपा से सद्ज्ञान की प्राप्ति हो गयी, फिर क्षण भर भी वह कर्म-मल को अपने पास नहीं रहने देता।
- संसार के सभी पदार्थ मनुष्य के लिए अनुकूल या प्रतिकूल निमित्त बनकर कार्य करते हैं। जो मनुष्य अज्ञान में सोये हों उनके लिए ये वस्तुएँ, अधःपतन का कारण बन जाती हैं। पर जिनके हृदय में ज्ञान-दीप का प्रकाश फैला हुआ है, उन्हें ये पदार्थ प्रभावित नहीं कर सकते। जागृत मनुष्य पतन के कारणों को प्रभावहीन कर देते हैं। द्रव्य, क्षेत्र और काल की तरह भाव भी मानव के भावों को जागृत करने में कारण बनते हैं, किन्तु 'पर' सम्बन्धी भाव में जैसा अपना अनुकूल प्रतिकूल भाव मिलेगा, उसी के अनुसार परिणति होगी।
- ज्ञानवृद्धि के लिए प्रवचन सुनने वाले श्रोताओं को लिखने की आदत रखनी चाहिए। इससे मनन का अवसर मिलेगा और कई बातें आसानी से याद रखी जा सकेंगी। आपको अनेक सत्पुरुषों के उपदेश श्रवण का अवसर मिलता है और उसमें कई बातें तो इतनी असरकारक होती हैं कि जिनके स्मरण से जीवन की दिशा बदली जा सकती है और आत्मा को ऊँचा उठाया जा सकता है, किन्तु लिपिबद्ध नहीं होने से वह थोड़े समय में ही मस्तिष्क से निकल जाता है।
- ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। आत्मा कितनी ही मलिन और निकृष्ट दशा को क्यों न प्राप्त हो जाए, उसका स्वभाव मूलतः कभी नष्ट नहीं होता। ज्ञानालोक की कतिपय किरणें, चाहे वे धूमिल ही हों, मगर सदैव आत्मा में विद्यमान रहती हैं। निगोद जैसी निकृष्ट स्थिति में भी जीव में चेतना का अंश जागृत रहता है। इस दृष्टि से प्रत्येक आत्मा ज्ञानवान ही कही जा सकती है, मगर जैसे अत्यल्प धनवान को धनी नहीं कहा जाता, विपुल धन का स्वामी ही धनी कहलाता है, इसी प्रकार प्रत्येक जीव को ज्ञानी नहीं कह सकते। जिस आत्मा में ज्ञान की विशिष्ट मात्रा जागृत एवं स्फूर्त रहती है, वही वास्तव में ज्ञानी कहलाता है।
- ज्ञान की विशिष्ट मात्रा का अर्थ है—विवेकयुक्त ज्ञान होना, स्व-पर का भेद समझने की योग्यता होना और निर्मल ज्ञान होना। जिस ज्ञान में कषायजनित मलिनता न हो वही वास्तव में विशिष्ट ज्ञान या विज्ञान कहलाता है।

साधारण जीव जब किसी वस्तु को देखता है तो अपने राग या द्वेष की भावना का रंग उस पर चढ़ा देता है और इस कारण उसे वस्तु का शुद्ध ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार जिस ज्ञान पर राग-द्वेष का रंग चढ़ा रहता है, जो ज्ञान कषाय की मलिनता के कारण मलिन बन जाता है, उसे समीचीन ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

- सम्यग्ज्ञान जिन्हें प्राप्त है , उनका दृष्टिकोण सामान्य जनों के दृष्टिकोण से कुछ विलक्षण होता है। साधारण जन जहाँ बाह्य दृष्टिकोण रखते हैं, ज्ञानियों की दृष्टि आंतरिक होती है। हानि-लाभ को आंकने और मापने के मापदंड भी उनके अलग होते हैं। साधारण लोग वस्तु का मूल्य स्वार्थ की कसौटी पर परखते हैं, ज्ञानी उसे अन्तरंग दृष्टि से अलिप्त भाव से देखते हैं, इसी कारण वे अपने आपको कर्म-बंध के स्थान पर भी कर्म-निर्जरा का अधिकारी बना लेते हैं। अज्ञानी के लिए जो आस्रव का निमित्त है, ज्ञानी के लिए वही निर्जरा का निमित्त बन जाता है। आचारांग में कहा है—

  'जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा।'

- संसारी प्राणी जहाँ हानि देखता है ज्ञानी वहाँ लाभ अनुभव करता है। इस प्रकार ज्ञान दृष्टि वाले और बाह्य दृष्टि वाले में बहुत अन्तर है। बाह्य दृष्टि वाला भौतिक वस्तुओं में आसक्ति धारण करके मलिनता प्राप्त करता है, जबकि ज्ञानी निखालिस भाव से वस्तुस्वरूप को जानता है, अतएव मलिनता उसे स्पर्श नहीं कर पाती। बहुत बार ज्ञानी और अज्ञानी की बाह्य चेष्टा एक-सी प्रतीत होती है, मगर उनके आंतरिक परिणामों में आकाश-पाताल जितना अंतर होता है। ज्ञानी जिस लोकोत्तर कला का अधिकारी है, वह अज्ञानी के भाग्य में कहाँ?
- ज्ञान के जलाशय में डुबकी लगाई जाये तो हमारा ताप मन्द पड़ेगा। क्रोध, मान, माया, लोभ की ज्वालाएँ उठ रही हैं, दिल-दिमाग को परेशान कर रही हैं उन्हें हम शान्त कर सकते हैं, यदि ज्ञान के जलाशय में गोता लगाया जाये। दूसरा लाभ इससे यह है कि हमारे मन का मैल दूर होगा, अज्ञान दूर होगा, ज्ञान की कुछ उपलब्धि होगी, जानकारी होगी। तीसरा लाभ है वीतराग वाणी ज्ञान का अंग है तो प्राणी का जो तृष्णा का तूफान है, वह तूफान भी जरा हलका होगा जिससे मन में जो अशान्ति है, बेचैनी है, आकुलता है वह दूर होगी। इसलिये हमारा प्राथमिक और जरूरी कर्तव्य है कि हम प्रातःकाल शारीरिक कर्मों से निवृत्त होकर जो लोकोत्तर कर्म है—वीतराग की भक्ति का, धर्म-चिन्तन का, गुरु सेवा का, उसकी भी आराधना करने में तत्पर रहें।
- विद्या का सार है वास्तव में सही निश्चय का हो जाना। दुनिया भर के पोथे पढ़ लेना,यह विद्या का सार नहीं है। अच्छा बोल लेना, अच्छा लिख लेना, यह विद्या का सार नहीं है। बोलना, लिखना, पढ़ना, समझना और समझाना यह तो एक प्रकार की कला है, अक्षर ज्ञान है। लेकिन वास्तविक ज्ञान वास्तविक विद्या और ही चीज है। वास्तविक विद्या तो वही है, जिसके द्वारा मानव अपने स्वरूप को समझता है,आत्मोन्मुख होता है और उसको निश्चय हो जाता है कि संसार में सार क्या है।
- जिसका ज्ञान ही ढक गया, जिसके ज्ञान पर पर्दा आ गया, जिसकी समझ समाप्त हो गई तो वह आदमी अपने किसी काम को सुन्दर ढंग से नहीं कर सकता है।
- अक्षर-ज्ञान में पण्डित बन जाने पर भी और पी.-एच.डी. की डिग्री हासिल कर लेने पर भी कोई ज्ञान पा गया है, यह नियम नहीं है। यदि वह अपनी आत्मा की शुद्धि करेगा, विषय-कषायों को हटाएगा, वीतराग-वाणी का चिन्तन करेगा तो ज्ञान पाएगा।

- जिस मनन से अपनी आत्मा, अपनी बुद्धि मोक्ष की ओर जावे, बन्धन काटने की ओर जावे, उसे बोलते हैं ज्ञान। ज्ञान क्या है और विज्ञान क्या है ? यह शिल्पकला, इंजीनियरिंग, डॉक्टरी, वकालात आदि जितने प्रकार के शिक्षण हैं यह सब विज्ञान हैं, ज्ञान नहीं। मोक्ष में धी का होना ज्ञान है। अपनी बुद्धि बन्धन काटने में लगे, मोक्ष की ओर लगे, वह ज्ञान है। संसार में ऐसे मानव बहुत कम होंगे जिनको क्रोध आवे ही नहीं। कषाय आयेगा, लेकिन जो ज्ञान वाले हैं उनमें और बिना ज्ञान वालों में फर्क इतना ही है कि ज्ञान वाले कषाय को रहने नहीं देंगे।

ज्ञान एवं वैराग्य

- ज्ञान एवं वैराग्य की शिक्षा से पापी भी सुधर सकते हैं। सुधर्मा के द्वितीय पट्टधर जम्बू एवं उनके शिष्य प्रभव का जीवन इसमें साक्षी है। तरुणाई में इन्द्रिय निग्रह अतिदुष्कर कहा गया है। जम्बू के वैराग्य एवं ज्ञान का असर चोरनायक प्रभव पर पड़ा। ५०० चोरों के साथ उसने भी व्रत लेना चाहा। जम्बू ने बड़ी प्रसन्नता से उसको साथ लिया और गुरु चरणों में पहुँच कर दीक्षित हो गये। ४४ वर्षों तक जम्बूस्वामी ने शासन दिपाया, फिर निर्वाण पधारे। इनके पद पर प्रभव विराजे, कहाँ चोरों का नेता और कहाँ श्रमणसंघ का नायक ! जीवन बदल गया। इसीलिए कहा है - 'घृणा पाप से हो, पापी से कभी नहीं लवलेश।'
- गगन से बरस कर मेघ जैसे भूमि की गर्मी शान्त करता और गलियों की गंदगी को धो देता है, वैसे ही हमें ज्ञानवर्षा से कषायों की जलन को शान्त करना और विकारों के मैल को धो डालना है।

ज्ञान-पिपासा

- प्रतीत होता है कि उस युग के मानव, चाहे वे अमीर हों अथवा गरीब, सभी अपना जीवन मात्र खाने-कमाने में ही व्यर्थ नहीं गंवाते थे, बल्कि वे धर्म का मूल्य भी समझते थे। अपने जीवन को कैसे सार्थक किया जाए, इस बात की जिज्ञासा भी उनके मन में रहती थी। यही कारण है कि सुबाहु कुमार प्राप्त भोग -सामग्री से उन्मुख होकर प्रभु सेवा में पहुँचा। यदि कोई अन्य व्यक्ति वहाँ जाता तो, संभव है आप सोचते कि भगवान् महावीर से कुछ पाने की आशा से जा रहा है। कोई व्यवसायी जिसे व्यवसाय में अभी कुछ मिला नहीं है, वह संतों के पास इसलिए भी जा सकता है कि संत यदि ठंडी नजर से उसकी ओर देख लें तो उसे लाभ हो सकता है। कोई व्यक्ति विदेश जा रहा है तो वह संतों के पास इस निमित्त भी आएगा कि महाराज का आशीर्वाद मिलने से उसकी यात्रा सफल हो सकती है। आप ऐसी कल्पना न करें कि सुबाहु भी ऐसा ही था। सुबाहु राजघराने में उत्पन्न एक राजकुमार था, उसे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं था। वह मात्र ज्ञान की पिपासा लेकर प्रभु की शरण में पहुँचा था।
- दुनिया में बड़े से बड़े लोग, चाहे धनी हों अथवा अधिकारी वर्ग या शासक वर्ग के, सभी विषय-वासना के पीछे दौड़ रहे हैं। लेकिन इसके विपरीत प्रभु महावीर इन्द्रिय भोग को छोड़ आये हैं, हजारों श्रमण अपने विषय-कषायों को छोड़कर इनके पीछे चल रहे हैं। देखें उनको इसमें क्या आनंद आ रहा है? उनकी जीवन चर्या क्या है? इस जिज्ञासा को लेकर सुबाहु पहुँचा भगवान् की चरण-सेवा में। यह जिज्ञासा मात्र सुबाहु की नहीं, सबकी हो सकती है।

- ज्ञान कहाँ से शुरु होना चाहिए? घर से रवाना हुए, यह सोच कर कि मंदिर जाना है, उपासरे जाना है या सत्संग में जाना है। तभी से आपके मन में, धर्म की, ज्ञान की बात पैदा होती है। वहीं से शान्त होकर चलना चाहिए। यदि रास्ते में व्यसन की चीज़ का इस्तेमाल किया तो मन और मस्तिष्क पर पवित्र वातावरण का असर नहीं पड़ेगा। लेकिन आज आपका ज्ञान इतना मंद हो चला है कि उससे वातावरण को पवित्र रखने की प्रेरणा ही नहीं मिलती। आज आवश्यकता इस बात की है कि सुनी हुई बात को विचार और चिंतन से दिमाग में रखने के लिए वातावरण पैदा किया जाए।

■ ज्ञान पंचमी

- ज्ञानपचंमी अपने पर्व श्रुतज्ञान के अभ्युदय और विकास की प्रेरणा देने के लिये है। आज के दिन श्रुत के अभ्यास, प्रचार और प्रसार का संकल्प करना चाहिए। द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से श्रुत की रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए। आज ज्ञान के प्रति जो आदर वृत्ति मन्द पड़ी हुई है, उसे जागृत करना चाहिए और द्रव्य से ज्ञान-दान करना चाहिए। ऐसा करने से इहलोक-परलोक में आत्मा को अपूर्व ज्योति प्राप्त होगी और शासन एवं समाज का अभ्युदय होगा।
- किसी ग्रन्थ, शास्त्र या पोथी की सवारी निकाल देना सामाजिक प्रदर्शन है, इससे केवल मानसिक संतोष प्राप्त किया जा सकता है। असली लाभ तो ज्ञान-प्रचार से होगा। ज्ञानपंचमी के दिन श्रुत की पूजा कर लेना, ज्ञान-मंदिरों के पट खोल कर पुस्तकों का प्रदर्शन कर देना और फिर वर्ष भर के लिए उन्हें ताले में बंद कर देना श्रुतभक्ति नहीं है। ज्ञानी महापुरुषों ने जिस महान् उद्देश्य को सामने रखकर श्रुत का निर्माण किया, उस उद्देश्य को स्मरण करके उसकी पूर्ति करना हमारा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है।

■ तप

- जिसके द्वारा संचित कर्म, अन्तर के विकार तपकर-जलकर आत्म-प्रदेशों से पृथक् हो, उस क्रिया का नाम तप है।
- तप की परीक्षा क्या? तन तो मुर्झाया-सा लगे, पर मन हर्षित हो उठे। शरीर से ऐसा लगे कि शरीर तप रहा है, पर मन हर्ष से प्रफुल्लित हो उठे।
- आत्मा को पूर्णतः विशुद्ध बनाने के लिये बाह्य तप के साथ-साथ अंतरंग तप भी आवश्यक है। बाहर का तप इसलिये किया जाता है कि जो हमारा अन्तर विषय-कषायों की उत्तेजनाओं से आन्दोलित है, उद्वेलित है, हमारे अन्दर मोह, ममता और मिथ्यात्व का प्राचुर्य है, प्राबल्य है, वह कम हो, उसकी उत्तेजना शान्त हो, उसका प्राबल्य, उसका प्राचुर्य घटे एवं इस तरह उसे घटाते हुए अन्ततोगत्वा आन्तरिक तप से उन विकारों को पूर्णतः समाप्त करना है, उन्हें पूर्णतः नष्ट कर आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को प्रकट करना है।
- मान लीजिये कि एक भाई ने तीन दिन के लिए खाना बन्द करके तेले की तपस्या कर ली, लेकिन उसने आस्रव को नहीं रोका। एक घड़ी के लिए सत्संग में आया, उसके बाद घर चला गया, बाजार या दुकान घूमता रहा। बाजार में झूठ बोलने का मौका आया, ऊँचा-नीचा देने का कारण बन गया, किसी के साथ झगड़ा हुआ। तेले के तप में भी उसका पाप कितना रुका यह विचार करना चाहिए।
- यदि किसी ने उपवास किया, बेला, तेला किया है, लेकिन उसका हिंसा का काम बन्द नहीं हुआ, झूठ बोलना

बन्द नहीं हुआ, अदत्तादान बन्द नहीं हुआ, किसी से मजाक कर ली तो कुशील का त्याग दूषित हो गया। इस प्रकार तप में भी दोष का त्याग न करना उचित नहीं।

- एक आदमी उपवास, पौषध नहीं कर रहा है, लेकिन उसने उपवास पौषध करने वालों की सेवा की। सबके आसन बिछाता है, स्थान पूँजता है, दया करने वालों की थाली साफ करता है, तो यह भी एक तरह का तप है।
- आठ मदों में तपस्या का मद भी एक मद माना गया है। जाति-मद, कुल-मद, बल-मद, रूप-मद, धन-मद, ज्ञान-मद, ऐश्वर्य-मद आदि मदों के साथ यह भी एक मद गिना गया है। कभी अगर ज्ञान का और तप का भी मद यानी अहंकार आ जावे तो वह भी कर्मों के बन्ध को तोड़ने के स्थान पर उनके बन्ध को और प्रगाढ़ बनाने का कारण बन जाता है।
- तप और ताप में भेद समझें। अज्ञान भाव में विकारी वृत्तियों के वश में होकर तन को और मन को तपाया जाता है, वह ताप है। इसमें व्यक्ति अपने शरीर से भी कष्ट सहता है एवं दूसरे लोगों को भी कष्ट देता है। उसके अन्तर में काम, क्रोध की वृत्तियाँ सुलग रही हैं। अपने किसी बाह्य दुश्मन को मारना है,अमुक व्यक्ति का काम बिगाड़ना है, अमुक से बदला लेना है, उसको नुकसान पहुँचाना है, इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर अगर किसी व्यक्ति ने तप किया, जप किया, उपवास, बेला या तेला आदि किया तो वह तप नहीं ताप है, क्योंकि उसके भीतर में भी ताप है, मन में भी ताप है और बाहर तन में भी ताप है।
- क्रोध के वश, लोभ के वश, मोह के वश और अपने स्वार्थ के वश जो शारीरिक कष्ट सहा जाता है, जो मन की वृत्तियों पर एक प्रकार का "मानापमाने समः" जैसा अवसर आता है, वह सारा शारीरिक कष्ट है। बिना ज्ञान के खुद कष्ट में पहुँचना और दूसरों को कष्ट देना, धर्म के नाम पर, तप के नाम पर ताप है। इसके विपरीत स्वार्थ को दूर कर, ज्ञानभाव को जगाकर, अपनी वृत्तियों को वश में करना एवं शारीरिक कष्ट सहते हुए भी मन में उल्लास के भाव रखना और क्रोध, मान, माया, विषय, कषाय की वृत्तियों को ढीली पटकना, इस प्रकार का जो काया-कष्ट (कायक्लेश) होता है, वह तप है। कष्ट सहने वाले तो अनन्त जीव हैं और ताप सहने वाले असंख्यात। परन्तु तप करने वाले केवल संख्यात हैं।
- कोई यह कहते हैं कि जैनियों की तपस्या में बेला-तेला-अठाई आदि तप से शरीर की हिंसा होती है, क्योंकि इनसे शरीर क्षीण होता है। किन्तु ऐसा सत्य नहीं है। यह हिंसा इसलिये नहीं हुई कि शरीर का जो स्वामी है, वह तपस्या से प्रसन्न है।
- तपस्या करने वाली माताएँ-बहनें सूत्र-श्रवण, स्वाध्याय और प्रभु-स्मरण में अपने को लगाती हुई तप के दिनों में बाह्य शृंगारों का वर्जन करें। विविध प्रकार के भड़कीले वस्त्रालंकार, मेंहदी, पार्टियों के आडम्बर तप के साथ जो लगा लिये हैं, उन्हें छोड़ें। ये सारी बातें तपस्या की शक्ति और इसकी शोभा को कम करने वाली हैं। ये बहनें तप करके अपनी तपस्या के समय को और उसकी शक्ति को मेंहदियाँ लगवाने में, बदन को सजाने में, अलंकारों से सज्जित करने में व्यर्थ ही गंवाती हैं। मेंहदी क्या रंग लाएगी तप के रंग के सामने? रंग तो ये तपस्याएँ ज्यादा लायेंगी। तपस्या के साथ अगर भजन किया, प्रभु-स्मरण किया, स्वाध्याय किया, चिंतन-मनन किया, तो यही रंग सबसे ऊँचा रंग है।
- हमारी तपस्या का रूप तो यह है कि तप में अगर किसी दूसरे के काम में बाधा पहुँचती दिखे तो जोर-जोर से बोलकर शास्त्रों एवं धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय करना भी निषिद्ध है। कहाँ तो यह विधि-विधान है और कहाँ तप

करके रात-रात भर जोर-जोर से गाने और संगीत किये जाते हैं। अड़ोस-पड़ोस के लोगों की इससे निद्रा भंग होती है। तो यह तपस्या का भूषण नहीं, दूषण हुआ।

- हमारे भजन, प्रभु-स्मरण आदि आत्मा की शांति के लिये किये जाते हैं, दूसरे की शांति अथवा विश्व की कल्याण-कामना के लिये किये जाते हैं। इसमें भी उच्च स्वर मना है-जाप में भी मना है। तपस्या के नाम पर तीन बजे उठ कर गीत गाया जावे तो यह गलत है। फिर इसमें भी आप प्रभु स्मरण या सीमन्धर प्रभु को याद नहीं करेंगी। बल्कि सारे कुटुम्ब के नामों की फहरिस्त पढ़ेंगी। दादा, परदादा, बेटे, पोते, भाई, भतीजों के नाम की माला जपेंगी। यह जप, यह नाम-उच्चारण कर्म-निर्जरा का साधन नहीं। यह तप में विकृति है, तप का विकार है।
- विकृतियों और विकारों से बचकर, शृंगार का वर्जन करके माताएँ-बहिनें तीन बातें —स्मरण, स्वाध्याय और स्मृति—को लेकर तप में आगे बढ़ेंगी तो यह तप उनकी आत्म-समाधि का कारण बनेगा, शान्ति और कल्याण का हेतु बनेगा, दूसरों की और विश्व की शान्ति एवं कल्याण का कारण बनेगा। इसे पर्व दिनों का ही नहीं, प्रतिदिन का अंग बनाएँ, क्योंकि सामायिक के कर्त्तव्य में यह भी एक कर्त्तव्य है।
- प्रत्येक जैन बन्धु अपने जीवन में यदि प्रारम्भ से ही रस-परित्याग अथवा द्रव्य-त्याग की तपस्या को अपना ले, तो वह स्वस्थ भी रहेगा और उसे इस तपश्चर्या का भी लाभ प्राप्त होगा। इस तरह रस-परित्याग तप सभी दृष्टियों से लाभप्रद है, अत: प्रत्येक भाई को चाहिये कि वह प्रतिदिन छह रसों में से कम से कम एक रस का भी त्याग करे तो यह भी एक तपस्या होगी।
- भगवान महावीर ने कहा कि तप करो, लेकिन इस लोक की कामना के वश होकर नहीं। परलोक में स्वर्ग का सिंहासन मिले इसलिए भी तपस्या नहीं करना। दुनिया में तारीफ हो इसलिए भी नहीं करना। हजारों लोग मुझे धन्यवाद देंगे और तपस्या की छवि अच्छी होगी, जलसा अच्छा होगा, इस भावना से कोई तपस्या करता है तो वह साधक अपनी तपस्या की कीमत घटा देता है।
- तपस्या और ध्यान में पहली बात यह है कि मन और मस्तिष्क हल्का होना चाहिए। कल मस्तिष्क भारी था और आज हल्का है तो समझना चाहिए कि आपको तप का लाभ मिला है। यह इस बात की परीक्षा है कि धर्म का आचरण हुआ या नहीं। यह थर्मामीटर की तरह एक मापक यंत्र के समान है। हमारे मस्तिष्क में हल्कापन आया, प्रसन्नता हुई है, प्रमोद आया है तो समझना चाहिए कि धर्म का स्वरूप आया है।

■ तप के भेद

- तप के दो प्रकार हैं। एक का असर शरीर पर पड़ता है और दूसरे का असर मन पर पड़ता है। जिसका असर शरीर पर पड़े उसको कहते हैं बाह्य तप और जिसका असर मन पर पड़े वह है आन्तरिक तप ।
- शारीरिक और आभ्यन्तर—ये दोनों प्रकार के तप साथ-साथ होने चाहिये। केवल एक की साधना से वांछित फल नहीं मिलने वाला है। उदाहरण के रूप में लीजिये - एक भाई ने उपवास किया, तो यह उस भाई का शारीरिक तप हो गया। इस शारीरिक तप के साथ-साथ उसे स्वाध्याय, ध्यान, प्रभुस्मरण और बारह भावनाओं के चिन्तन-मनन के रूप में आभ्यन्तर तप भी अनिवार्यरूपेण करना चाहिये। पर व्याख्यान समाप्त होने पर यह देख कर कि महाराज चले गये, वह भाई बिस्तर फैला कर सो जाय, तो उसे इस प्रकार के एकांगी शारीरिक तप से

वास्तविक लाभ नहीं होगा।

- शारीरिक तप से जिस प्रकार तन का रोग नष्ट होता है, उसी प्रकार आभ्यन्तर तप से आत्मा का कर्म-मैल या मन के विकार नष्ट होते हैं।

तप में प्रदर्शन

- तप की क्रिया आत्म-गुण को जगाने के लिए है। पर आत्म-गुण को जगाने के प्रसंग पर भी बढ़िया से बढ़िया वेश निकाले जा रहे हैं। आज बाईजी पचक्खाण करने जा रही हैं, तो नये-नये आभूषण, हीरे की चूड़ियाँ निकाली जा रही हैं।
- आज के समय में इसको धर्म-प्रभावना समझा जा रहा है। वस्तुतः इसे धर्म-प्रभावना समझना बिल्कुल गलत है। आज तो यदि मैं यह कहूँ कि यह प्रभावना नहीं, बल्कि अप्रभावना है तो भी अनुचित नहीं होगा।
- आज जिस समय हजारों-लाखों लोगों को भर पेट रोटी मुश्किल से मिले और इतनी कमरतोड़ महंगाई में लोगों का जीवन निर्वाह मुश्किल से हो, उस समय हमारी माताएँ, बहिनें धर्म-प्रभावना के लिए हजारों लोगों में प्रदर्शन करती हुई बाजार से निकलें तो लोगों की नजरों में शीतलता पैदा करेंगी या आग? लोगों के मन में प्यार पैदा करेंगी या खार? तपस्या की साधना के प्रसंग में इस तरह का प्रदर्शन करना, भेद-भाव को बढ़ाने वाला होगा या आत्म-भाव को जगाने वाला?
- नया बढिया बेस निकाला, गोखरू, दस्तबंद, भुजबंद, हथफूल, कर्णफूल, जड़ाऊ भारी हार और अन्यान्य प्रकार के अलंकार धारण कर पच्चक्खाण के लिये आडम्बर के साथ व्याख्यान में जावे, तो यह तपस्या में एक प्रकार का विकार है।
- आप जो प्रदर्शन में, दिखावें में खर्चा करते हैं, वही यदि कमजोर भाई-बहिनों की सहायतार्थ खर्च करें तो अधिक अच्छा रहेगा। जिनके खाने की व्यवस्था नहीं है, ऐसे लोगों की व्यथा दूर की जाए तो लाभ का कारण है। आपने तपस्या की है, इसलिए आपको भूख की व्यथा का कष्ट मालूम है। तपस्या वाले को अनुभव है कि दो दिन का भूखा किस तरह कष्ट में समय गुजारता है। यदि कोई भाई-बहिन उनके कष्ट निवारणार्थ इस तरह द्रव्य का वितरण कर दान करें तो विशेष प्रभावना का कारण हो सकता है।
- एक जमाना था जब वरघोड़ा या जुलूस आवश्यक समझे जाते थे, इससे प्रभावना होती थी, लेकिन आज उसका और रूप होना चाहिए। बाजे-गाजे के बदले संगीत मंडली या समाज के भाई-बहनों के साथ मंगल गीत गाते भी निकल सकते हैं। साधर्मियों की सेवा में थोड़ी भी शक्ति लग सके तो समझा जायेगा कि तपस्या करने वाली बाइयों ने सच्ची प्रभावना कर अपनी तपस्या सफल बना ली है।
- हजारों रुपये बैंड वगैरह में, जीमनवार में खर्च होते हैं। वे उधर से बचाकर समाज-सेवा में लगायें जाएं तो उस धन का अति सुन्दर सदुपयोग हो सकता है।
- हमारी तपस्या अमीर गरीब सब के लिए समान हो।

तृष्णा

- आज खाने को है कल न रहा तो..। आज स्वस्थ हैं कल बीमार पड़ गये तो...। इसी प्रकार हर बात के लिए 'तो'

का शंकास्पद प्रश्न मन में उठता रहता है और मनुष्य इसी शंका के चक्कर में पड़कर हर क्षण अशान्त एवं दुःखी बना रहता है।

- बड़े-बड़े महाजन लोभ के वशीभूत होकर सब कुछ बर्बाद कर लेते हैं और पीढ़ियों की कमाई हुई अतुल धनराशि लोभ की वेदी पर भेंट चढ़ा कर फकीर हो जाते हैं।

▪ त्याग

- मन से किया गया त्याग ही सच्चा त्याग है। मन तो चाहता है कि त्याग नहीं करूँ, लेकिन वस्तु उपलब्ध नहीं है, इसलिए त्याग कर रहा है तो सच्चा त्याग नहीं है – 'न से चाइं त्ति वुच्चई।' जो परतन्त्रता के कारण त्याग करता है तो उसको त्याग का पूरा लाभ नहीं मिलता। इच्छापूर्वक एक नवकारसी भी करे तो वह अपनी कर्म-स्थिति में लाख वर्ष की कमी करके दुःखों को टाल देता है।
- त्याग के साथ ज्ञान का बल ही साधक को ऊँचा उठा सकता है। जैसे सुक्षेत्र में पड़ा हुआ बीज, जल संयोग से अंकुरित होकर फलित होता है और बिना जल के सूख जाता है, वैसे ही त्याग और ज्ञान भी बिना मिले सफल नहीं होते। जिस साधक में पेय, अपेय, भक्ष्य, अभक्ष्य और जीव-अजीव का ज्ञान न हो वह साधक उत्तम साधक नहीं होता।
- सब कुछ भौतिक सुख वही छोड़ सकता है जिसने दृश्यमान भौतिक जगत् की नश्वरता को, क्षणभंगुरता को समझ कर एक न एक दिन, देर-सबेर में छूट जाने वाली वस्तुओं को स्वतः चलाकर छोड़ने के महत्त्व को, आनन्द को अच्छी तरह समझ लिया है।
- यह सदा याद रखिये कि संसार की जितनी भौतिक साधन-सामग्री है, वह सब विनश्वर है। इस वीतराग-वाणी को आप कभी न भूलें- "सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।"
- आत्म गुण के अतिरिक्त शेष सब भौतिक भोग-सामग्री, सब वस्तुएँ, सब पदार्थ आप से अलग हो जाने वाले हैं, क्योंकि वे आपके नहीं हैं। उनका आपसे अलग होना सुनिश्चित ही है,ऐसा समझकर आप उनके प्रति ममत्व भाव का त्याग करें।

▪ त्याग-तप

- जिसको आप नफा मानते हैं, वह कभी नुकसान का कारण भी बन सकता है। एक भाई मद्रास में अथवा दक्षिण में कहीं दुकान कर रहा है। उधर लोग बहुत ऊँची दर पर ब्याज लेते देते हैं। उस भाई ने इसके विपरीत अपनी ब्याज सीमा सीमित कर बहुत थोड़ी ब्याज की दर पर रकम देने का कुछ वर्षों पूर्व नियम ले लिया। इस प्रकार का नियम लेने से प्रारंभ में तो उसे बड़ी कठिनाई हुई। पाँच रुपया और छः रुपया तक का ब्याज उधर चलता है। (अब ऐसा नहीं है।) अब यदि कोई पाँच-छः रुपया प्रति सैकड़ा की दर के स्थान पर डेढ-दो रुपया प्रति सैकड़ा की दर से ब्याज लेना आरम्भ करे तो प्रारम्भ में तो उसे आर्थिक हानि दिखाई देगी ही।
- अभी कुछ दिनों पहले वह भाई आया और कहने लगा-"महाराज! आपसे जो नियम मैंने लिया,वह मेरे लिये बड़ा ही लाभकारी रहा। आज वह नियम नहीं होता तो ब्याज के पैसे तो चौगुने हो जाते पर परेशानी इतनी होती कि आराम से खाना हराम हो जाता। वास्तव में त्याग का नियम मेरे लिये व्यवहार में भी लाभदायक

रहा।"

- गुरु महाराज! ऐसा कोई तप बताओ, जिससे लड़का हो जाय। अगर लड़का हो जावे तो मैं एक अठाई कर लूंगी। यह तो हुई बाई की बात। भाई साहब किसी मामले में किसी मुकदमे मे फंसे हैं। मुकदमे में वर्ष गुजर गये। अब चाहते हैं, यह जल्दी निपट जावे उनके पक्ष में। इसके लिये वे तेला कर लेते हैं। अभी कुछ वर्ष पहले की बात है। एक ऐसा ही भक्त-भाई था। उसका कोर्ट में कई बरसों से कोई मामला चल रहा था। उसने तेला किया। अब मन में उसके क्या था, वही जान सकता है। हमें तो पता नहीं। पर बाद में तेले का पारणा करके मेरे पास आया। बोलने लगा-"महाराज! यह तो इस तेले का प्रभाव है कि मेरे मुकदमा जो बरसों से चल रहा था,आज मेरे हक में हो गया और तुरत-फुरत हो गया। मुझे तो पाँच मिनिट भी खड़ा नहीं रहना पड़ा वहाँ। जाते ही काम पूर्ण हो गया महाराज! महाराज, आपको भी धन्यवाद है। तपस्या से मेरी तो सिद्धि हो गई। मेरा बरसों का अटका हुआ काम सिद्ध हो गया।" लेकिन प्रभु महावीर ने कहा कि यह तप नहीं है। इस तरह का तप करना निषिद्ध है। यह तो ठीक है कि उस एक भाई का संयोग से अंतराय का टूटना था, कर्म अवशेष नहीं थे। इसलिये उसका काम हो गया। पर अगर तेला करने पर भी उसका काम नहीं बनता तो? तेले की तपस्या पर से उसकी श्रद्धा घटती कि बढ़ जाती? तेले की तपस्या की कद्र घटती कि बढ़ती? वैसे तपस्या के सामने ऐसे-वैसे लाभ मिलने असम्भव तो कतई नहीं हैं। प्रतिष्ठा के अर्थी को लौकिक प्रतिष्ठा मिल सकती है, अर्थ के अर्थी को अर्थ लाभ भी हो सकता है, स्वास्थ्य के अर्थी को स्वास्थ्य लाभ भी हो सकता है, इसमें कोई शंका नहीं। ये सब कुछ निश्चय ही मिलेंगे। पर अगर तुम इस तप को, इन सांसारिक पौद्गलिक जड़ पदार्थों की प्राप्ति हेतु दाँव पर लगा दोगे और कल को जरा कहीं आपके तप में कमी रही या अन्य कोई कारण हो गया और आपको उसमें सफलता नहीं मिली तो? फिर उस तप पर से आपकी आस्था हट जाएगी। कह दोगे,महाराज मैंने तो समझा था कि ऐसा करने से ऐसा हो जाएगा, पर कुछ भी नहीं हुआ। अतः प्रभु ने स्पष्टतः इस तरह की कामना को लेकर संकल्पपूर्वक तप करने के लिये निषेध कर दिया।
- प्रभु ने कहा है कि ए मानव! तप का महान् लाभ है। यह अनन्त सुख देने वाला है। ये भौतिक सांसारिक जड़ सुख इसके सामने कुछ भी नहीं हैं। इसलिये अपने उस तप के इतने महान् लाभ को बाजी पर मत लगाओ। दांव पर मत लगाओ। नीलामी पर मत चढ़ाओ। आप जानते हैं कि जिस वस्तु को नीलामी पर लगाया जाता है उस वस्तु के भाव, उसकी कीमत कम हो जाती है। कभी आपको पैसे की आवश्यकता पड़े, तब आप दुकान या किसी मकान को नीलामी पर चढ़ाओ तो क्या उसकी वास्तविक कीमत मिलेगी? नहीं मिलेगी। यह बात आप भी जानते हैं। इसलिये भगवान् ने पहली बात कही—इस लोक के लिये, यानी इस लोक के पौद्गलिक सुखों की चाह के लिये, जो अशाश्वत हैं, तप मत करो। और अगर करते हो तो उसे धर्म-तप मत समझो। इससे कम से कम तुम्हारी आस्था तो शुद्ध रहेगी।
- चक्रवर्ती अपनी राज्य सत्ता की साधना के लिये समय-समय पर तेरह तेले करते हैं। लेकिन तेरह तेले करते हुए भी वे तपस्वियों में, व्रतधारी श्रावकों में, सकाम निर्जरा करने वालों में स्थान नहीं पाते हैं। तेले के १३-१३ बार तप करने के उपरान्त भी चक्रवर्ती को अविरत-सम्यग्दृष्टि ही माना गया है, विरत नहीं माना गया है।
- कुछ समय पहले की बात है। हम एक जगह ठहरे हुए थे। वहाँ किसी बाई ने मासखमण किया। पारणे के दिन

बाई के मकान की छत पर पीले-पीले रंग की बूँदे पड़ीं। फिर तो क्या पूछिये आप। परिवार वालों ने और गाँव वालों तक ने मिलकर कहना शुरु किया कि अजी साहब ! इसकी तो तपस्या के पारणे में केसर की बरसात हो गई। लोग-बाग भागे-भागे हमारे पास भी आए। कहने लगे-"अजी महाराज ! उण रे तो घर में गरम पानी के थाल में पगलिया मंडियोड़ा है। आप पधारो, देखो।"

- इसे देखने को सारा गाँव उमड़ पड़ा। मैंने कहा-"भाई ! जरा समझ से काम लो। अगर सचमुच देवता को चमत्कार बताना ही था तो चमत्कार बताने की और बहुत-सी बड़ी-बड़ी बाते थीं। देवता तपस्वी की तपस्या पर प्रसन्न हुआ है और उसे चमत्कार ही बताना चाहता है तो क्या उसे ये छोटे-छोटे केसर के छींटे ही मिले? कीट,भंवरे या पतंगे बीट करे,ऐसी छोटी-छोटी टपकियाँ ही मिलीं,जो उसने वहाँ डाल दीं। इसके बजाय उसने मुट्ठी भर-भर कर केसर की भरपूर बरसात ही क्यों नहीं कर दी। केसर की ही बरसात करनी थी तो सूखी केसर की मुट्ठी भर-भर कर करता। अगर उसको सूखी न मिली,तो गीली की ही कर देता।
- तपस्वी को, आप को और हमको इतना सोचना है कि चमत्कारों के चक्कर में पड़कर तपस्या के फल को हमें लुटाना नहीं है, तपस्या की हंसी नहीं करानी है।
- तपस्या की अतुल शक्ति है, अचिन्त्य शक्ति है। वंह मानव के मन को बदल सकती है। पर तपस्या के पीछे मन में शान्ति हो, यह आवश्यक है।

■ दहेज-प्रथा

- दयालु जैन कुल में जन्म ग्रहण करने वाले भाई-बहन डोरे और बींटी के लिये, टीके और दहेज के लिये बोलते और आग्रह करते हुए शर्माते नहीं। इस दहेज प्रथा के कारण ही अनेक घरों में पच्चीस-पच्चीस वर्ष की कुंआरी कन्याएँ मिलेंगी। आप स्वयं ही सोचिए कि यह आपकी कैसी दया है ? हम कीड़े-मकौड़ों की तो दया पालने की बात करें और दूसरी ओर मनुष्य जैसे पंचेन्द्रिय प्राणी के प्राणों के साथ इस तरह की खिलवाड़ करें। यह कैसा अचम्भा है ? एक-एक शादी में लाखों लगाने वाले लोग, जिनके पास इस प्रकार की विपुल धन-राशि है, अपने बच्चों की कीमत लगाकर कहें कि मेरे बच्चे का उसी घर में सम्बन्ध हो सकेगा, जो मेरे बच्चे की धन-राशि से कद्र करेगा अथवा उसे धन-राशि से तोलेगा, तो यह मानवीय दृष्टिकोण से कहाँ तक उचित है?
- हमारे नवयुवक भाई सुधार की बड़ी बातें करते हैं। इस तरह की बातें करने वाले तो क्या नवयुवक और क्या अन्य बहुत मिलेंगे, पर इन बातों पर अमल करने वाले कितने हैं ? अधिकांश नवयुवक इन दहेज, टीके आदि की कुप्रथाओं को नष्ट करने का दृढ़ संकल्प कर लें तो सफलता असंभव नहीं।
- बाहर की हिंसा को रोकने के लिये भी आवाज उठाना नितान्त आवश्यक है। इसके लिये भी कार्य करना और आवाज उठाना चाहिये। अधिकारी लोग जिन्होंने समाज के नेतृत्व को संभाल रखा है, वे लोग अपने घर से उसका शुभारंभ करें। वे प्रतिज्ञा कर लें कि वे अपने बच्चे-बच्चियों के लिये बींटी, डोरा या दहेज आदि कुछ भी न तो लेंगे और न देंगे ही। इसके लिये बड़ों को कमर कसकर आगे आना होगा।
- दहेज समाज के लिए कलंक है। सुयोग्य एवं संस्कारित कन्याओं को धनाभाव में सुयोग्य वर नहीं मिल रहे हैं। धन यदि कम मिलता है तो वधुओं को कोसा जाता है। अत्यधिक पीड़ाएँ पहुँचाने पर कई पुत्र-वधुओं की जीवनलीलाएँ समाप्त होने की घटनाएँ सुनने में आती हैं, जिससे दिल दहल जाता है। अहिंसक समाज में ऐसे

घृणित परिणाम क्षोभजनक हैं। समाज को इस ओर ध्यान देने की जरूरत है।

- यदि समाज कुछ प्रतिज्ञाओं में आबद्ध होकर चले तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है, जैसे–

  १. दहेज की न कोई मांग करनी और न ही किसी से करवानी।

  २. दहेज का किसी भी प्रकार का कोई प्रदर्शन नहीं करना।

  ३. दहेज कम मिलने पर कोई आलोचना अथवा चर्चा नहीं करनी।

■ दया

- हम जैसे द्रव्य दया करते हैं वैसे ही भाव-दया करके किसी के जीवन को पवित्र बना सकते हैं।
- आप किसी पर दया करें तो ऐसी करें कि जिससे उसका राग-रोष मिट जावे और कर्मबंधन का कारण नहीं बने, यह भावना आवे तो उसके लिए मिशनरियों की तरह काम हाथ में लेना पड़ेगा।
- ज्ञानियों का कथन है कि दयादेवी के प्रसाद से ही शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। उसी की आराधना करो । उसकी आराधना किस प्रकार होती है ? किसी को त्रास न दो, किसी को सताओ मत, अपने नौकर के प्रति भी कठोर व्यवहार मत करो। पड़ौसियों से झगड़ा न करो और उनकी सुख-सुविधा का खयाल रखो। भूखे और असहाय जीवों को अभय दो। पर कल्याण की भावना रखो। हृदय में कुत्सित विचारों का प्रवेश न होने दो। इस विधि से दयादेवी की आराधना करोगे तो उससे तुम्हारी आत्मा का रक्षण होगा। तुम्हें इसी भव में शान्ति प्राप्त होगी और आगे सद्गति का लाभ होगा।

■ दान

- यह परिग्रह जाने वाला है, आज नहीं तो कल स्वतः सुनिश्चितरूपेण जाएगा। स्वयं जाय इससे पहले ही इसको छोड़ दें तो इसमें बलिहारी है। लेकिन आप कहोगे कि स्वयं जाय उसकी परवाह नहीं है, हम आगे होकर इसको कैसे छोड़ें? पर यह तो समझो कि आप जो अन्न खाते हो, क्या उसका विसर्जन नहीं करते? क्या इसके लिए आपसे किसी को कहने की जरूरत पड़ती है? यह सुनिश्चित है कि जिस प्रकार अन्न ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार समय पर शरीर के मल का विसर्जन भी होना चाहिए। यदि मल विसर्जन नहीं होगा तो हमारी तन्दुरुस्ती को खतरा है। यदि जमा रह गया तो डाक्टर को दवा देकर या एनिमा लगाकर निकालना होगा। इसी प्रकार जिस दिन ज्ञान हो जाए कि परिग्रह-पुद्गल छोड़ने योग्य हैं, जिस तरह से हम उनका संग्रह करते हैं, उसी प्रकार उनका निष्कासन या विसर्जन भी होना चाहिए। विसर्जन की नाड़ी भी साफ रहनी चाहिए। यदि विसर्जन की नाड़ी बिगड़ गयी तो स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। यह ज्ञान हो गया तो आप स्वयं विसर्जन के लिए तैयार हो जाओगे।
- धन पर ममता की पकड़, ममता की गांठ ढीली होगी, तभी दान की भावना जगेगी, दान दिया जा सकेगा।
- कई लोग "असतीजनपोषण" में थोड़ा-सा फेरफार करके "असंजतीजनपोषण" कर देते हैं और कहते हैं कि संयमी जनों अर्थात् साधुओं के अतिरिक्त किसी भी भूखे को रोटी देना पाप है। मगर यह व्याख्या प्रमाद या पक्षपात से प्रेरित है। यह साम्प्रदायिक आग्रह का परिणाम है। इस प्रकार की व्याख्या करने से दया, अनुकम्पा और

करुणा भी पाप हो जाएगी। यह अर्थ दया-दान प्रधान जैन-परम्परा से विपरीत है।

- भूखे कुत्ते को या अन्य पीड़ित जीवों को अन्न आदि देना अनुकम्पा की प्रेरणा है। क्षुधा, पिपासा, अशान्ति और आर्त्ति मिटाने में जो अनुकम्पा की भावना होती है, वह पुण्य है। उसे कर्मादान में सम्मिलित नहीं समझना चाहिए। कर्मादानों का सम्बन्ध विशिष्ट पापकर्मों के साथ है।
- आप हजारों रुपयों का दान करते हैं। गरीबों के पास कुछ ज्यादा चला गया तो क्या बुरा है, लेकिन आपको यह बात बर्दाश्त नहीं होती। आप चाहेंगे कि उसको आठ आने कम दिये जायें। यह भी एक तरह का पाप है और इसलिए लगता है कि आपमें परिग्रह बुद्धि है, पैसे पर ममता है।
- कई बार अवसर आता है कि एक भाई ५० हजार रुपयों तक का दान देने को तैयार है। उसका आग्रह होता है कि चाहे लाख रुपये का दान ले लो, लेकिन उस पर नाम उसका होना चाहिए। लेने वालों ने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकेगा। 'यदि ऐसा नहीं होगा तो फिर मेरे ५ हजार रुपये टीप में लिख लो।' यह है देने वालों की मानसिकता।
- यदि तुझे किसी को दान देना है तो जो दरिद्र है, तेरे से कमजोर है, गरीब है, साधनहीन है, उसको दे। जो पहले से ही साधन-सम्पन्न है, जिसके पैसे का हिसाब तैयार करने के लिये चार आदमी बैठते हैं उसको देने से क्या लाभ?
- दान की यह विशेषता है कि वह स्व और पर दोनों का कल्याण करता है। दान देने की प्रवृत्ति तभी जागृत होगी जब मानव के मन में अपने स्वत्व की, अपने अधिकार की वस्तु पर से ममता हटेगी। ममत्व हटने पर जब उसके अन्तर में सामने वाले के प्रति प्रमोद बढ़ेगा, प्रीति बढ़ेगी और उसे विश्वास होगा कि इस कार्य में मेरी सम्पदा का उपयोग करना लाभकारी है, कल्याणकारी है, तभी वह अपनी सम्पदा का दान कर सकेगा।
- दान की प्रवृत्ति में जो अपने द्रव्य का दान करता है, वह केवल इस भावना से ही दान नहीं करता कि उससे उसको अधिक लाभ होगा, बल्कि उसके साथ यह भावना भी है कि यह परिग्रह दुःखदायी है, इससे जितना अधिक स्नेह रखूँगा, मोह रखूँगा, यह उतना ही अधिक क्लेशवर्धक तथा आर्त्त एवं रौद्र-ध्यान का कारण बनेगा।
- गृहस्थ यदि शीलवान् नहीं है तो उसके जीवन की शोभा नहीं। जिस प्रकार शीलवान होना गृहस्थ जीवन का एक आवश्यक अंग है, उसी तरह अपनी संचित संपदा में से उचित क्षेत्र में दान देना, अपनी संपदा का विनिमय करना और परिग्रह का सत्पात्र में व्यय करना, यह भी गृहस्थ-जीवन का एक प्रमुख अंग, सुन्दर भूषण और मुख्य कर्त्तव्य है।
- अगर हर व्यक्ति तप-त्याग के साथ शुभ कार्यों में अपने द्रव्य का सही वितरण करता रहे तो " एक-एक कण करते-करते मण " इस उक्ति के अनुसार पर्याप्त धन-राशि बन जाती है।
- आपका अन्न दान, जल दान, वस्त्र दान, द्रव्य दान आदि सारे के सारे दान खूटने वाले हैं, लेकिन मुनियों का दान अखूट (अक्षय) होता है। मुनियों के लिए कहा है कि संसार से थोड़ा द्रव्य दान लो और भावदान दो।
- साधु ज्ञान दान देता है, चारित्र दान देता है। जो भाई व्यसन करने के आदी हैं, उनको उपदेश देकर व्यसनों का निवारण कराता है। शिक्षा देकर सदा-सदा के लिए दुर्व्यसन छुड़ाकर दुःख से मुक्त कराता है, क्लेश से मुक्त कराता है। घर में जहाँ विग्रह या कषाय होता है, भाइयों में, परिवार के बीच में झगड़ा होता है तो साधु उनको

उपदेश देकर भाई-भाई का खार मिटाकर प्यार कराता है। उसका यह दान कभी नहीं खूटेगा। ऐसा दान देना आप सीख जाओगे तो इस दान के आगे आपका द्रव्यदान हजारवाँ या करोड़वाँ भाग भी नहीं है।

- कहीं पैसा नहीं होने पर काम अटका हुआ है, कहीं पर प्रेरणा नहीं होने से काम अटका है, तो कहीं मतभेद होने से काम अटका है। लोगों में भावना हो और सोचें कि धर्म-रक्षा भी हमारा कर्तव्य है, तो समाज का रक्षण हो सकता है। क्षेत्रों को संभालने और उनमें प्रचार करने के लिये समय-दान और द्रव्य-दान दोनों आवश्यक हैं। विचार-दान से भी बहुत सा काम हल हो सकता है।
- एक आदमी धन कमाता तो है लेकिन विसर्जन नहीं करता, त्यागता नहीं है तो उसका आत्मिक जीवन स्वस्थ नहीं रहेगा। अत: गृहस्थ के लिये दान देना जरूरी है । जैसे हड्डी का भाग नख द्वारा बाहर निकलता है, केश आने बन्द हो जायें, आँखों में गीड़ आना बन्द हो जाय, नाक से मलवा निकलना बन्द हो जाय, कान में ठेठी नहीं आवे, मल और मूत्र आना बन्द हो जाय तो आप सुखी नहीं रह सकेंगे। इसी तरह यदि प्राप्त द्रव्य का त्याग नहीं करेंगे, किसी को पानी या रोटी नहीं देंगे, दान नहीं करेंगे और जो आवे सो तिजोरी में भरते जायेंगे तो इस रास्ते पर चलने वाले आदमी सुखी नहीं रहेंगे।
- हजार मिलाने वाला आदमी हजार के अनुपात से त्यागे, लाख मिलाने वाला आदमी लाख के अनुपात से त्यागे और करोड़ मिलाने वाला करोड़ के अनुपात से त्यागे। यदि इस तरह से द्रव्य का उचित मार्ग से त्याग होगा तो समाज में अहिंसा तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रचार-प्रसार के जो क्षेत्र हैं, साधु-साध्वियों के उपकार के क्षेत्र हैं, और भी कई नये क्षेत्र हैं, सब व्यवस्थित चलेंगे।
- पैसे वाले भाई सोचते हैं कि पैसे की जरूरत है तो हमारे पास माँगने के लिये आयेंगे, तब देंगे। हमारे पास आकर अर्ज करो, चार आदमियों के बीच में मांगों तो थोड़ा एहसान करते हुए देंगे। अरे भाई! देने का यह तरीका नहीं है।
- हर आदमी को मुक्त हाथ से, खुले दिल से शुभ खाते में, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, जीव-दया, साधर्मी-बन्धु आदि जो उत्तम क्षेत्र हैं, जहाँ दिया हुआ द्रव्य बहुत ही लाभ का कारण हो सकता है, दान देना चाहिए।
- समाज में किसी के पास कपड़ा पहनने के लिए नहीं है तो कपड़े की व्यवस्था कर दी, किसी के पास रहने के लिये मकान नहीं है तो उसके लिये मकान की व्यवस्था कर दी, किसी के लिए दवा की व्यवस्था कर दी, किसी के लिए पोथी की व्यवस्था कर दी, यह सारा का सारा द्रव्य दान है।

■ दीक्षा

- दीक्षा आत्मा को परमात्मा बनाने का साधन है। आत्मा ही परमात्मा है, यह जैनदर्शन की मान्यता है। आत्मा पर राग, द्वेष एवं मोह का आवरण आया हुआ है। इसी आवरण के कारण आत्मा का असली स्वरूप दिखाई नहीं देता, दीक्षा इस आवरण को हटाने का साधन है। ज्यों-ज्यों आत्मा को त्याग और तपस्या द्वारा तपाया जाता है, त्यों-त्यों राग, द्वेष, मोह आदि नष्ट होते जाते हैं। जिस प्रकार स्वर्ण पर लगा हुआ मैल स्वर्ण के असली रूप को ढक देता है और अग्नि पर तपाने से मैल नष्ट होकर शुद्ध सोना दिखने लगता है, उसी प्रकार कषाय रूपी मैल नष्ट होने पर परमात्मा का स्वरूप प्रकट होता है।

- दीक्षा के पूर्व शिक्षा होना जरूरी है। प्रथम शिक्षा, फिर परीक्षा, फिर दीक्षा और उसके बाद भिक्षा सफल होती है। अतः अपने सन्त-सतीवर्ग को सुशिक्षित बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहें। व्यावहारिक शिक्षा से जीवन अच्छे ढंग से चलाया तो जा सकता है, किन्तु बनाया नहीं जा सकता। साहित्य एवं कला भी जीवन निखार में वरदान माने गए हैं।
- दीक्षा, शासन-भक्ति के लिए किये जाने वाले कार्य की इति श्री नहीं है, वह तो वस्तुतः साधक के लिए चरम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। उसके द्वारा साधक आगे बढ़ने का परीक्षण करता है।

■ दुःख-मुक्ति

- दुःखमुक्ति की कुंजी के होते हुए भी उसको सही तरीके से घुमा नहीं पाते। यही कारण है कि संसार के लाखों, करोड़ों, अरबों मनुष्य दुःखी के दुःखी रह जाते हैं और दुःखमुक्त होना तो दूर रहा, अपने दुःख को और बढ़ा लेते हैं। अपने ही हाथ से अपना दुःख बढ़ाते हैं।
- हम सब बाहरी सामग्री का अंबार पाकर भी दुखी हैं तो इसका मतलब यह हो गया कि बाहर की साधन-सामग्री को प्राप्त करना सुख पाना नहीं, उसमें आसक्त होना आनन्द नहीं, उससे स्नेह करना शान्ति का कारण नहीं, अपितु दुःख एवं अशान्ति का ही कारण है। कदाचित् रहना पड़े तो इनके बीच में रहकर भी हम आसक्ति से, राग से, द्वेष से और स्नेह से किनारा करें, अपने जीवन को शान्ति के साधन में लगावें और शास्त्रों की आज्ञा का पालन करें। यह हमारे जीवन को आनन्द का मार्ग बताने वाला साधन है।

■ दृढ संकल्प

- जब बच्चे, बच्चियाँ, पत्नी या परिवार के अन्य सदस्य अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं होने पर अपना मूड बदल लेते हैं, तब उनके बीच में संघर्ष पैदा होता है। पर जिसने पहले से ही दृढ़ संकल्प लेकर जीवन चलाया है कि उसे अपनी इच्छा के अधीन नहीं चलना है, उसको कोई तकलीफ नहीं होती।
- जहाँ तक समझने की बात है, युवकों के मन में शंकाएँ होती हैं, एतराज होते हैं, लेकिन वे समय की उलझन का समाधान नहीं करेंगे तो बाद में कहेंगे कि इच्छा तो थी महाराज! पर समय नहीं मिला। इसलिए धर्म की आराधना नहीं कर सके। यदि इस तरह से ज्ञान के क्षेत्र में आपने संकल्प नहीं किया और खुले रह गये तो कुछ नहीं कर पायेंगे।

■ द्रव्य और पर्याय का अध्यात्म

- कोई मानव शोक तब करता है, जब द्रव्य को भुलाकर पर्याय में उलझता है। पर्याय की पहचान द्रव्य का बदलता हुआ स्वभाव है। हम चाहते हैं कि सदा एक तरह की सुखद स्थिति रहे। जैसी अवस्था आज है, वैसी ही सदा बनी रहे। जैसा शरीर आज है वैसा सदा रहे। लेकिन पर्याय कहता है कि जैसा इस क्षण में हूँ वैसा दूसरे क्षण में रहने वाला नहीं। पर्याय बदलने वाली दशा है, लेकिन आप टिकने वाली दशा चाहते हैं।
- यदि आपने रहवास का पुराना मकान बदल कर सुन्दर कोठी बना ली तो पुराने मकान को छोड़ने पर आपको दुःख नहीं होता। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि जिस प्रकार पुराने जेवर को तुड़वाने और उससे नया जेवर घड़वाने में सोना अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार एक प्राणी की मृत्यु के पश्चात् भी

अविनाशी आत्मा अपने वास्तविक रूप में विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति में यदि अपने सामने एक बच्चा, मित्र, साथी अथवा परिवार का कोई व्यक्ति शरीर छोड़कर दूसरे नये शरीर में, नयी कोठी में चला गया तो इसमें रंज किस बात का, दुःख किस बात का? परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि अपने प्रियजन के मरने पर लोग रंज करते हैं, दुःख करते हैं। सुबह-शाम, रात-दिन, हाय-हाय करते हैं रोते हैं बिलखते हैं, क्योंकि उन्होंने पर्याय को पकड़ रखा है। यह भूल गये कि द्रव्य मात्र नित्य है। आत्म द्रव्य भी नित्य है, लेकिन वह शरीर की दृष्टि से प्रतिपल बदल रहा है ।

- मंद गति से होने वाला निरन्तर का परिवर्तन दुःखद नहीं होता। धीरे-धीरे अवस्था चढ़ती है, फिर ढलती है, बूढ़े होते हैं और बुढ़ापे के बाद धीरे-धीरे एक दिन चले जाते हैं। पर एक ३० वर्ष के नौजवान के दाँत गिर जाएँ, आँखों से दिखना बंद हो जाए, बाल पक जाएँ तो दुःख होता है। किन्तु बदलती हुई पर्यायों को इन्द्र-महेन्द्र भी नहीं रोक सकता।
- अनेक प्रकार के दागीनों का रूप बदलने पर भी सोना, वर्तमान, भूत और भविष्यत् इन तीनों काल में सोना ही कहलाता है। पहले दागीनों के रूप में था। आज उसको तोड़कर पासा बना लिया। फिर उसको गलाकर नया दागीना हार, कड़ा, कंठी, अगूंठी बना ली। किसी भी रूप में ढाल दिया, तब भी सोना जैसा पहले था वैसा ही अब भी है। जैसे सोने के बदलते हुए रूप को देखकर मनुष्य अफसोस नहीं करता, उसी तरह ज्ञानी संसार में जीवन की नित्य परिवर्तित होती हुई दशा को देखकर रंज-शोक नहीं करता।
- द्रव्यों की बदलती दशा को देखकर मानव जैसे शोक नहीं करता वैसे ही वह अभिमान भी नहीं करता। ज्ञान के अभाव में वह अच्छी दशा में घमण्ड करने लगता है और उसके चेहरे का रूप बदल जाता है। बंगला, सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात बढ़ने पर उसे खुशी होती है। पुद्गलों का पर्याय बदलने वाला है, फिर भी चेतन खुशी मनाता है, अकड़ता है। मन में इन सबका आदर करता है, लेकिन आत्मा के निज रूप को नहीं पहचानता, यह दुःखजनक है।
- जब द्रव्य, गुण एवं पर्याय का सही ज्ञान होगा तो बदलते हुए पर्यायों में से कौनसा पर्याय शुभ है, कौनसा अशुभ है, कौनसा आत्मगुणों को अभिवृद्ध करने वाला है, कौनसा आत्मगुणों की हानि करने वाला है, किस तरह का जीवन मूल में कायम रहना चाहिए, इन सब बातों को परखने का विवेक उत्पन्न होगा। इस प्रकार के विवेक के उत्पन्न होने पर जिन पर्यायों से आत्मा के मूल गुण सुरक्षित रहते हैं, अभिवृद्ध होते हैं, उन पर्यायों को अपने दैनिक आचरण में ढालने का और जिन पर्यायों से आत्म गुणों की हानि होती है, उन पर्यायों से पूर्णतः बचने का प्रयास किया जाएगा तो परम सुन्दर भविष्य का, सुन्दर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण होगा। इस प्रकार अन्ततोगत्वा चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेगी।
- उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। संसार का हर द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रुवता युक्त है। मेरा तन, धन, अवस्था और व्यवस्था प्रतिक्षण बदलने वाली है। मातृकुक्षि से प्रगट होने के समय मेरा पिंड निर्बल और छोटा था। तरुण वय में वह निर्बल से सबल और तथा लघु से दीर्घ हो गया, कुमार से विवाहित हो गया, बाल से युवा हो गया। फिर स्थिति बदली, तरुणाई का अन्त और वार्धक्य का आरंभ हो गया। आंख, कान और बातों की शक्ति में फर्क पड़ गया, निश्चिंत दौड़ने और कूदने वाला तन अब संभल कर पैर रखने लगा। थोड़े ही दिनों में उसकी स्थिति में भी अंतर पड़ गया, तन में निर्बलता आ गई। दांत गिर गये, नेत्र की ज्योति कम हो गई। शरीर में

स्फूर्ति घटी, तप साधन और क्षुधा-पिपासा सहने की शक्ति घटी। फिर भी मैं वही हूँ जो पहले था, व आगे भी रहूँगा। मेरा कभी नाश होने वाला नहीं है, स्वभाव एवं गुण की अपेक्षा मैं ध्रुव हूँ, मेरे में ध्रुवता है। पर्याय क्षणिक है, बदलती रहती है । पर्याय में स्थायित्व नहीं, प्रतिपल परिवर्तन होता है। फिर राग और रोष किस बात का, निश्चित बिगड़ने वाली वस्तु के लिये खेद क्या ? यह तो उसका स्वभाव है।

■ धन और धर्म

- लोग गरीबी, बीमारी या संकटकाल में धर्म और भगवान का जितना आदर करते हैं, सुख-शान्ति के दिनों में वैसा नहीं करते।
- लोग कहते हैं—धन होगा तो धर्म आराम से (सोरा) करेंगे, किन्तु ऐसा नियत नहीं है। एक भक्त के हाथ में बाबाजी ने १ अंक लिख दिया। भक्त अनायास रुपया कमाने लगा। बाबाजी ने एक के बाद बिन्दी लगा दी तो १० और २ बिन्दी लगाने पर प्रतिदिन १०० रुपये की आय होने लगी। भक्त की त्रिकाल साधना ढीली हो गई। बाबाजी ने तीन बिन्दी और लगाकर एक पर पाँच बिन्दी कर दी। दैनिक आय एक लाख की हो गई। भक्तजी का आना बन्द हो गया। खाना एवं सोना भी मुश्किल हो गया। एक दिन बाबाजी पहुंचे और बोले "भक्त! मेरे पास आओ तो मैं तुम्हारी सारी परेशानी दूर कर दूँगा।" उन्होंने पीछे का अंक मिटा दिया। भक्त जहाँ थे वहीं आ गए।
- आप लोग धन की पूजा करते हैं, परन्तु धन सदा मानव के मन में एक प्रकार की चंचलता पैदा करता है। प्रायः धन से प्रभावित मानव त्याग, तप और वैराग्य की ओर नहीं बढ़ता। इसके विपरीत इनकी ओर से मन को खींचता है। जब तक आपके पास अल्प परिमाण में द्रव्य हैं, तब तक आप समझते होंगे कि अभी और धन का संग्रह करना चाहिए क्योंकि धन के बिना धर्म नहीं होता, पर आप अन्ततोगत्वा अनुभव करके देखेंगे कि परिग्रह में वस्तुतः दूसरी ही दशा होती है। मुश्किल से ही कोई ऐसा परिवार मिलेगा, जिसमें धन के प्रति आसक्ति नहीं हो। क्या भरत चक्रवर्ती जैसा अनासक्त परिवार आज कहीं एक भी मिल सकता है? भरत महाराज के परिवार में लगातार आठ पीढ़ी तक मोक्ष गये। छह खंडों का एकछत्र साम्राज्य पाकर भी भरत चक्रवर्ती के मन में आसक्ति नहीं आयी। उनकी सन्तान के मन में भी आसक्ति अथवा विपुल ऐश्वर्य-सम्पत्ति का घमण्ड नहीं आया, निरन्तर आठ पीढ़ी तक। क्या इस प्रकार का उदाहरण अन्य कुटुम्बों में मिल सकता है?
- लक्ष्मी के लिए लोग लालायित रहते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए उसकी पूजा करते हैं, किन्तु सन्तों ने कहा कि लक्ष्मी की, धन की पूजा करते हुए भी लक्ष्मी आपको छोड़ सकती है। ऐसे सेठ और जमींदार बहुत से हैं , जिन्होंने प्रतिवर्ष ब्राह्मणों को बुलाकर घंटों तक लक्ष्मी क़ी पूजा करवाई, फिर भी उन सेठों की सेठाई (सम्पत्ति) और जमींदारों की जमींदारी चली गई। दूसरी ओर अमेरिका, रूस और पश्चिमी देशों के निवासी तथा हिन्दुस्तान के भी हजारों-लाखों लोग ऐसे हैं, जो लक्ष्मी को पूजते नहीं, फिर भी उन लोगों के पास पैसा है। और लक्ष्मी पूजन करने वाले लक्ष्मी की पूजा करते-करते भी लक्ष्मी से वंचित हैं। ये दोनों प्रकार के प्रत्यक्ष दृष्टान्त बताते हैं कि वास्तव में आदमी की समझ की यह भ्रान्ति है कि इस प्रकार लक्ष्मी की पूजा करेंगे, तभी लक्ष्मी रहेगी।
- धन से भोग-उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ मिलाई जाती हैं और उनसे वस्तुओं के अभाव के कारण जो

छटपटाहट थी, वह शान्त होती है; परन्तु नित नयी बढ़ती लालसा को धन नहीं मिटाता।

- धर्म भोग में प्रीति घटाता और नवीन आकांक्षाएँ बन्द करता है। जब आकांक्षा का रोग ही नहीं होगा तो पूर्ति के लिये धन की आवश्यकता भी कम हो जायेगी।
- धन रोग को नहीं मिटाता, वह रोग के लिए दवा दिला सकता है। धर्म रोग के मूल को नष्ट करता और उदित रोग को सहने की क्षमता प्रदान करता है, जिससे मानव अभाव में भी मानसिक शान्ति बनाये रख सकता है।
- धन वर्गभेद कर मनुष्य को मनुष्य से टकराता है, वहां धर्म प्राणिमात्र में बंधुभाव जगाकर परस्पर मैत्री और निर्वैरभाव का संचार करता है।
- धन मन में चंचलता, भय, शोक के भाव उत्पन्न कर नई उपलब्धि के लिए प्रेरित करता और प्राप्त की रक्षा के लिये चिन्तित रखता है।
- परिग्रह अधिकारवाद है। पशु वनों में मुक्त मन से परस्पर मिलकर खाते-पीते हैं, अधिकार नहीं रखते, वैसे ही मानव बिना अधिकार-ममता के रहे तो कोई दुःख नहीं। महावीर ने मानव ही नहीं, प्राणिमात्र के साथ मैत्रीभाव की घोषणा की।
- महावीर का उपदेश सब जीवों को आत्मवत् देखना है। इसी को सम्यग् ज्ञान कहा है। आज महावीर के भक्तों को संसार की स्थिति देखते हुए सादा जीवन और आवश्यकता पर नियमन को अपनाना चाहिये। संयम उभयलोक हितकारी है।

धर्म

- धर्म हृदय की बाड़ी में उत्पन्न होता है। वह किसी खेत में पैदा नहीं होता, न किसी हाट दुकान पर ही मिलता है। राजा हो या रंक, जिसके मन में विवेक है, सरलता है, जड़ चेतन का भेद ज्ञान है, वहीं वास्तव में धर्म का अस्तित्व है।
- सत्य से धर्म की उत्पत्ति होती है। चोर, लम्पट और हत्यारा भी सत्यवादी हो तो सुधर सकता है। यदि सत्य नहीं तो अच्छे से अच्छा सदाचारी और साहूकार भी गिर जाता है, बिगड़ जाता है।
- धर्मरूप कल्पवृक्ष की वृद्धि दयादान से होती है। इसीलिये कहा है- "दयादानेन वर्धते।" बढ़ा हुआ धर्मवृक्ष क्षमा के बिना स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये कहा है "क्षमया च स्थाप्यते धर्मः।" सहिष्णुता-क्षमा से धर्म की रक्षा होती है, कामादि विकार सहिष्णु-साधक को पराभूत नहीं कर सकते।
- धर्म का नाश किससे होता है, इसके उत्तर में आचार्य ने कहा - "क्रोधलोभाद् विनश्यति" क्रोध और लोभ से धर्म का नाश होता है जहाँ प्रशान्त भाव के बदले क्रोध का प्रभुत्व है वहाँ ज्ञानादि सद्गुण सुरक्षित नहीं रहते, आत्मगुण नष्ट हो जाते हैं। लोभ भी सब सद्गुणों का घातक है। इसलिये इन दोनों को धर्म नाशक कहा गया है।
- आत्मिक गुणों को प्रकट करने की एवं राग, द्वेष और मोहादि घटाने की भावना जागृत करने की कसौटी पर जो सर्वथा सही उतरे, उसे ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानना चाहिए।
- जो मत विश्वमैत्री , अहिंसा, संयम, तप आदि उत्कृष्ट भावों को जागृत कराने वाला हो, जिसके सिद्धान्त में किसी का पीड़न और तिरस्कार न हो, जो मनुष्य जाति में भेद की दीवारें न खींचता हो, जो विश्व के जीवों में आत्मवत्

भाव रखता हो, जो धर्म या कर्म कहीं भी की जाने वाली हिंसा को हिंसा मानकर उसका बहिष्कार करता हो, वस्तुतः वही कल्याणकारी सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उपर्युक्त लक्षणों से परीक्षण के पश्चात् जैन धर्म सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा।

- हर धान्य में न्यूनाधिक भूख मिटाने की शक्ति होती है। वैसे ही सभी धर्मों का कुछ न कुछ अंश आत्म-कल्याण के लिए उपयुक्त और उपादेय है। परन्तु जो आत्मा को अधिकतम बल प्रदान करता है, वही मुक्तिकामी जनों के लिए सन्तोषपूर्वक ग्रहण करने योग्य है।

■ धर्म-नायक

- भगवान महावीर ने कहा कि उपदेश देना एक बात है और किसी को रास्ते पर लगाना दूसरी बात है और रास्ते पर चलाना अलग बात है। तीर्थंकर, आचार्य और धर्म-संघ के नायक किसी को धर्म में लगाकर ही अलग नहीं हो जाते हैं, बल्कि धर्म पर चलाने का काम भी करते हैं। धर्म पर चलाने वाले को धर्मनायक कहते हैं।
- आज यदि किसी को संघ का नायक बना दें या धर्म का नायक बना दें तो साधर्मियों को सम्भालना उसका काम है। धर्म-प्रवृत्ति में किसी को कोई भ्रान्ति हुई है, तो उसको दूर करने में उसको रस आना चाहिए। धर्मनायक बनने वाले में संघ की सहज वत्सलता होती है और सहज ही साधर्मी वत्सलता होती है। वह सोचता है कि तन क्या काम आयेगा? मेरी वाणी क्या काम आयेगी ? मुझे समय मिलता है, उसमें साधर्मी भाइयों का लाभ मिले तो लेऊँ, यश की आकांक्षा नहीं रखूँ।

■ धर्म-प्रचारक

- किसी भी समाज की उन्नति प्रचारकों पर निर्भर है। हमारे समाज में ऐसे प्रचारकों की अत्यंत आवश्यकता है जो सर्वत्र घूमकर समाज की सार-सम्भाल कर सकें। समाज में जहाँ जिस बात की आवश्यकता हो उसकी पूर्ति करना, धर्म विमुख लोगों को धर्म की ओर आकर्षित करना, जहाँ शिक्षा की समुचित व्यवस्था न हो वहाँ व्यवस्था करना, बालकों के अभिभावकों को समझा-बुझा कर धार्मिक संस्थाओं में भिजवाना या अनुकूलता हो तो शिक्षा-संस्था की स्थापना करना, ऐसे ज्ञान और सदाचार के प्रसार करने के अनेक कार्य हैं, जो योग्य और सेवाभावी प्रचारकों के अभाव में नहीं हो पा रहे हैं।
- यदि जिन शासन को उन्नत करना है, साधु समाज को ऊँचा रखना है तो साधुओं और श्रावकों के बीच एक मध्यमवर्ग की स्थापना करना परमावश्यक है।

■ धर्म-प्रेरणा

- दूसरे को उपदेश देकर पाप करने की प्रेरणा मत दो और जो पाप का काम करता है, आरम्भ करता है उसका अनुमोदन मत करो, लेकिन जो धर्म का काम करता है, उसके मन को बढ़ावा दो और धर्म करने वाले का दिल से अनुमोदन करके मन को प्रसन्न करो। इससे भी आपको पुण्य होगा। आपसे सामायिक की साधना एक टाइम से ज्यादा नहीं होती, लेकिन दूसरे करने वालों को आपने प्रेरित किया और उनके मन को इस सत्कार्य में लगाया, २४ घण्टों में १ घण्टे के लिये भी उसको आरम्भ-परिग्रह से छुड़ाया तो उसके मन, मस्तिष्क में शान्ति मिलेगी, पाप से बचेगा। इस प्रकार आपकी प्रेरणा से १० आदमी तैयार हो गए तो पुण्य का कैसा अनूठा कार्य होगा।

- आज हमारे वीतराग मार्ग को मानने वाले लाखों की संख्या में भक्त होते हुए भी एक-दूसरे को उपेक्षा भाव से देखते हैं। धर्ममार्ग की कोई साधना नहीं करता है, तो इसकी किसी को चिन्ता नहीं है। हल्की बात कर देंगे, लेकिन उसको प्रेम से रास्ते लगाने की बात नहीं कहेंगे।
- अड़ोस-पड़ोस में चोरी करने वाले, हिंसा करने वाले, शराब पीने वाले, धर्म की निंदा करने वाले हैं। तो उनसे घृणा करने के बजाय प्रेम करो और उनको पास में बैठाकर धर्म की प्रेरणा देना सीखो। यह उपदेश तुम्हारे लिए लाभकारी बनेगा। यदि संसार के प्राणी घृणा करने के बजाय धर्ममार्ग पर लगाने का कर्तव्य करना सीख जायें तो खुद के जीवन को भी पाप से हल्का रख सकते हैं और संसार का भी भला कर सकते हैं, लेकिन यह बात तब आयेगी जब भगवान महावीर के संदेश का सही स्वरूप समझेंगे।

धर्म में बाधकता

- आज मानव को पथ-भ्रष्ट करने वाले कई साधन उपलब्ध है। यदि आप एक दिन के लिए भी किसी वस्तु का त्याग कर दें तो आपके पारिवारिक जीवन में साथ रहने वाले लोग आपको डिगाने का प्रयत्न करेंगे। यदि दो-चार युवक सप्ताह या दस दिन के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करने का विचार करें तो उनको विचलित करने के अधिक निमित्त मिलेंगे। संसार के रिश्ते, नातेदार और मित्रजन आगे बढ़ने के निमित्त नहीं होंगे वरन् चढ़े हुए लोगों को नीचे गिराने के निमित्त होंगे। इसमें उनका विशेष दोष नहीं है। वे स्वयं राग से घिरे हुए हैं इसलिए वे अपने साथी को अलग से ऊँचा चढ़ने नहीं देंगे। यदि वह अलग से ऊँचा चढ़ जाता है तो उसके साथ निकटता मिट जाती है। उनका अपनापन मिट नहीं जाए, यही उनका दृष्टिकोण रहता है। वे यह भी सोचते हैं कि यदि कोई धर्म-साधना में लग गया तो उसके दूसरों से सम्बंध ढीले होते जाएंगे और वह उनसे दूर होता जाएगा। इसके विपरीत यदि आप अधर्म का काम करते हैं और उससे उनके स्वार्थ का पोषण होता है, तो वे आपका साथ देते रहेंगे।
- क्या किसी के घर में ऐसी धर्मपत्नी है, जो अपने पति से पूछे– "आपने दस हजार रुपये इस महीने में मिलाये हैं, वे कैसे मिलाये या कहाँ से आये? आप कृपा करके बता दें। दस हजार रुपयों का आपको मुनाफा हुआ है तो कहीं आपने अन्याय से, पाप के गलत मार्ग से तो नहीं लिया?" ऐसा पूछने वाली कोई देवी है क्या? एक ही महीने में दस हजार रुपये का मुनाफा भाई साहब ने व्यापार में किया है, यह बात देवी जी ने सुनी और कोई महंगा आभूषण उन्हें दे दिया तो वे प्रसन्न हो गयीं और उस कमाई में उनका भी सहयोग हो गया। अधिकांश लोग तो यही समझते हैं कि कमाना, खाना और परिवार के लोगों की आवश्यकता को पूरी करना ही हमारा कर्त्तव्य है। इन परिस्थितियों में मनुष्य के जीवन को उत्थान की ओर ले जाने के लिए यदि कोई अवलम्बन है तो वह धर्म-गुरु है, जो स्वयं मुक्ति मार्ग का पथिक है और दूसरों को भी उस पथ पर ले जाता है। जब खुद तिरेगा तभी तो वह दूसरों के लिए अवलम्बन होगा।

धर्म-रुचि

- जिस जीव का तन स्वस्थ नहीं है, उसको भोजन की रुचि नहीं होती। ठीक उसी प्रकार जिसका मन स्वस्थ नहीं है, उसको धर्म पर रुचि नहीं रहती। जैसे बुखार टूटते ही भोजन में रुचि होने लगती है, वैसे ही मन से विकार

हटने पर ज्ञान में रुचि हो जाती है, साधना में रुचि हो जाती है, धर्म में रुचि हो जाती है।

■ धर्म-साधना

- संसार में प्रायः दो प्रकार की साधना पायी जाती है—एक लोक-साधना और दूसरी धर्म-साधना। अधिकांश मनुष्य अर्थ और कामरूप लोक-साधना के उपार्जन में ही अपने बहुमूल्य जीवन का समस्त समय खो देते हैं और उन्हें धर्म-साधना के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता। ऐसे मनुष्य भौतिकता के भयंकर फेर में पड़कर न केवल अपना अहित करते हैं, वरन् समाज, देश और विश्व का भी अहित करते हैं।
- धर्म-साधना का लक्ष्य बिल्कुल विपरीत है। यह मनुष्य को मानवता से भी ऊँचा उठाकर देवत्व या अमरत्व की ओर अग्रसर करती है। वास्तव में धर्म-साधना के बिना मानव-जीवन निष्फल, अपूर्ण और निरर्थक प्रतीत होता है। आर्थिक दृष्टि से कोई व्यक्ति चाहे कितना ही सम्पन्न, इन्द्र या कुबेर के समान क्यों न हो, किन्तु उसका आंतरिक परिष्कार नहीं हुआ तो निश्चय ही जीवन अधूरा ही रहेगा और उसे वास्तविक लौकिक एवं पारलौकिक सुख प्राप्त नहीं होगा।
- साधनाहीन विलासी व्यक्ति जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं करता, वह अपनी शक्ति को यों ही गंवा बैठता है। जीवन चाहे लौकिक हो या आध्यात्मिक, सफलता के लिए पूर्ण अभ्यास की आवश्यकता रहती है। जीवन को उन्नत बनाने और उसमें रही हुई ज्ञान-क्रिया की ज्योति को जगाने के लिए साधना की आवश्यकता है। साधना के बल पर चंचल मन पर भी काबू पाया जा सकता है। जैसे गीताकार श्रीकृष्ण ने भी कहा है—"अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते "
- धर्माराधना के बिना जीवन में सच्ची शान्ति नहीं मिलती। संसार की समस्त कलाएँ , निपुणताएँ और विशेषताएँ जीवन को तब तक समुन्नत और सफल नहीं बना सकतीं, जब तक कि उनमें धर्म कला की प्रधानता नहीं होती।
- जो साधक मार्ग के कांटों, रोड़ों और आपत्तियों की परवाह नहीं करता, मंजिल उसके स्वागत के लिए पलक-पांवड़े बिछाये तैयार खड़ी रहती है। जो सांसारिक क्षण भंगुर प्रलोभनों के चक्कर में नहीं पड़ता और साहस से साधना के मार्ग में चलने के लिए जुट जाता है, उसका इहलोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं।
- साधना के मार्ग में पैर बढ़ाना आसान नहीं है। बड़ी-बड़ी विघ्न-बाधाएँ साधक को विचलित करने के लिए पथ पर रोड़े डालती रहती हैं, जिनमें मुख्य मोह और कामना है। इनमें इतनी फिसलन है कि साधक अगर सजग न रहा तो वह फिसले बिना नहीं रहता।
- स्वाध्यायी ज्ञान की साधना करता है, परन्तु ज्ञान के साथ क्रिया की साधना भी जरूरी है। स्वाध्यायी अच्छे वक्ता, लेखक एवं प्रवचन व भाषण कला में निपुण हो सकते हैं, पर उनमें आचरण भी उसी अनुरूप होना आवश्यक है।
- सभी साधकों को साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ना है। ध्यान एवं मौन की साधना के साथ यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करेंगे तो आत्मा का अवश्य कल्याण होगा।
- हिंसा छोड़ अहिंसा का पालन करना इतना कठिन नहीं है, जितना कि क्रोध, मोह, माया, ममता की ओर आकर्षित होने की जो एक प्रकार की वृत्ति है, आकर्षण है, उससे बचे रहना। अन्तरंग साधना से ही ऐसा संभव हो सकता

है।

- जो साधन आज जिस स्थिति में है, कल उस स्थिति में रहेंगे या नहीं, कह नहीं सकते। बुद्धिमानी इसी में है कि समय रहते प्राप्त साधनों का अच्छे निमित्त रूप में उपयोग कर कुछ लाभ प्राप्त कर लें तो स्थायी शान्ति मिल सकेगी।
- जो मुमुक्षु साधक अपने जीवन को क्षणभंगुर मान कर जीवन के स्वल्प काल में अपना अधिकाधिक आत्मकल्याण करने के लिए जीवट स्पर्धावाले घोड़े की तरह प्रतिक्षण जागरूक रहते हुए साधनापथ पर अविराम गति से अग्रसर होता रहता है जीवन को सुधार लेता है।
- जब तक बुढ़ापा नहीं आवे, रोग अथवा व्याधि नहीं बढे, और इन्द्रियाँ कमजोर नहीं हों, प्रभु कहते हैं कि हे मानव ! तभी तक धर्म-साधना करना चाहो, कर लो। यदि समय चला गया, व्यवधानों ने घेर लिया तो फिर आराधना नहीं कर सकोगे।
- कुछ भाई सोचते हैं कि महाराज ! पोते का विवाह कर लूँ, कारोबार बेटों-पोतों को संभला दूँ, फिर धर्म की आराधना करूँगा। लेकिन जब तक पोता समय पर खड़ा होगा, आप गोता खा गये तो आपकी धर्म-साधना की कामना धरी ही रह जाएगी। इसलिए प्रभु ने कहा कि समय की प्रतीक्षा मत करो। किन्तु समय का महत्त्व समझो। जब तक तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, जब तक इन्द्रियाँ बराबर काम कर रही हैं, जब तक शरीर नीरोग है तब तक यदि साधना करने का अवसर मिलता है तो उसको हाथ से मत निकलने दो और उचित लाभ देकर आत्म-कल्याण की साधना में जीवन की समस्त शक्ति को लगा दो।
- साधक का मूल लक्ष्य अपने गुणों को विकसित करना है। भौतिक इच्छाओं की पूर्ति का लक्ष्य साधना-क्षेत्र में नहीं होता। कामनाशील व्यक्ति अर्थ की साधना करता है, लेकिन मुमुक्षु व्यक्ति धर्म की साधना करता है।
- साधना की मस्ती आते ही साधक मस्त होकर सांसारिक बंधनों को बलपूर्वक तोड़ फेंकता है। समुद्र में जिस प्रकार अनंत नदियाँ समा जाती हैं और उनका कुछ पता नहीं चलता वैसे साधक में ज्ञान की अनन्त धाराएँ समाहित हो जाती हैं। साधक अपने पुरुषार्थ एवं साधना के बल से ऊपर उठकर अमर पद प्राप्त कर जीवन को धन्य बना लेता है।
- संसार की स्थिति को सुधारने के लिये धर्म-भावना व नैतिक-सुधार अत्यन्त आवश्यक है।
- जिस प्रकार जीवनार्थी को कभी अमृत-पान के लिये प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी प्रकार जिसने आत्मतत्त्व को भलीभांति समझ लिया है, जिसे आत्मविश्वास हो गया है, उस आत्मार्थी को भी वस्तुतः धर्मसाधन के लिये कभी किञ्चित्मात्र भी कहने की अथवा प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- जड़ से हम इतने परिचित हैं, उसके गुणग्राम के हम इतने रसिक हैं कि चेतन को उसके सामने भूल ही जाते हैं। इसीलिये धर्म-करणी, साधना, त्याग, वैराग्य और जीवन की पवित्रता की मञ्जिल तक पहुँचने में हमारा जड़ के साथ इतना अधिक घनिष्ठ परिचय वस्तुतः हमारे पथ में पग-पग पर बड़ी ही विकट रुकावटें डालता है।
- सांसारिक व्यवहार का आचरण उदयभाव है। आत्मा के पाँच भाव बताये गये हैं। उदयभाव, उपशम भाव, क्षयोपशम भाव, क्षायिक भाव और पारिणामिक भाव—ये पाँच भाव हैं। खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना, अपने बाल-बच्चों को प्यार करना, इज्जत-आबरू बढ़ाने के लिये दौड़-धूप करना-ये सभी उदयभाव हैं। कर्म के उदय से

जिस मार्ग में गति की जावे उसका नाम उदयभाव है। लेकिन धर्माचरण क्षयोपशम-भाव का काम है। जब कर्मों का बोझा हल्का होता है, उदय भाव मन्द होता है, तब धर्म-मार्ग में प्रवृत्ति होती है। उदयभाव सांसारिक कार्यों की ओर, भौतिक कार्यों की ओर, पुद्गलों की ओर प्रवृत्ति कराता है, बढ़ाता है और उपशमभाव, क्षायिक भाव—ये निजभाव, आत्मा के अपने स्वरूप की ओर, परमात्म स्वरूप की ओर बढ़ाते हैं।

- भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म परलोक के लिये तो कल्याणकारी है ही, पर उससे पहले वह इहलोक के लिये भी कल्याणकारी है। वह इस लोक में भी उस व्यक्ति के जीवन को सुखी, समृद्ध, सुमधुर और रमणीक बनाता है। जो धर्म इहलोक को सुखमय बनाने में सक्षम है, वह परलोक को भी रमणीक बनाने की क्षमता रखता है। इहलोक और परलोक दोनों को सुखपूर्ण बनाने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित इस धर्म के स्वरूप को अपने जीवन में ढाल कर अहिंसा की प्रतिष्ठा की जाय, विश्व में अहिंसा का साम्राज्य स्थापित किया जाय। संसार के सब प्राणियों में परस्पर भ्रातृभाव, बन्धुभाव, मैत्रीभाव और सौहार्द हो, कोई किसी की हिंसा न करे, कोई किसी को किंचित्मात्र भी संताप न पहुँचाए।
- छोटा-सा धब्बा कपड़े पर लग जाये तो उसे धोने का विचार करते हैं, लेकिन हमारे आचार-विचार पर धब्बा लग रहा है उसको धोने का विचार नहीं करते।
- संसार में दूसरे की अच्छाई, कीर्ति और भौतिक उन्नति देखकर ईर्ष्या करने वालों की कमी नहीं है। यह एक मानसिक दोष है और यदि इसका निराकरण करने के लिए मन पर नियंत्रण करें तो आत्मिक बल बढ़ सकता है। असद् विचारों को रोक कर कुशल मन की प्रवृत्ति करना यह मन का धर्म है। असत्य, कटु और अहितकारी वाणी न बोलना वाणी की साधना है। वाणी का दुरुपयोग रोक कर भगवद् भक्ति की जाए तो इससे भी आत्मिक लाभ होगा। मन और वाणी की साधना के समान तन की साधना भी महत्त्वपूर्ण है। तन को हिंसा, कुशील आदि दुर्व्यवहारों से हटाकर, सेवा, सत्संग और व्रत आदि में लगाना, कायिक साधना है। ये सभी साधनाएँ साधक को ऊपर उठाने में सहायक होती हैं। गरीब मनुष्य भी इस प्रकार मन, वचन और काया के तीन साधनों से धर्म कर सकता है।
- साधना की सामान्यतः तीन कोटियाँ हैं-

१. समझ को सुधारना—साधक का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह धर्म को अधर्म तथा सत्य को असत्य न माने, भगवान की भक्ति करे। देव-अदेव और संत-असंत को पहचानना भी साधकों के लिए आवश्यक है।

२. देशविरति या अपूर्ण त्याग—जो श्रमण-धर्म को ग्रहण कर पूर्ण त्याग का जीवन नहीं बिता सकते, वे देशविरति साधना को ग्रहण करते हैं। इसमें पापों की मर्यादा बांधी जाती है। सम्पूर्ण त्याग की असमर्थता में आंशिक त्याग कर जीवन को साधना के अभिमुख करना, देश विरति का लक्ष्य है।

३. सम्पूर्ण त्याग—पूर्ण त्याग का मार्ग महा कठिन साधना का मार्ग है। इस पर चलना असि पर चलने के समान दुष्कर है। इस साधना में पूर्ण पौरुष की अपेक्षा रहती है।

- कर्म-बंध से बचने का उपाय साधना है, जो दो प्रकार की है, एक साधु मार्ग की साधना और दूसरी गृहस्थ धर्म-साधना। दोनों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच व्रतों के पालने की व्यवस्था की गई है। साधु-मार्ग की साधना महा कठोर और पूर्ण त्याग की है, किन्तु गृहस्थ की धर्म-साधना सरल है।

• जिस व्यक्ति में विवेक का प्रकाश फैल जाता है, चाहे वह राजा हो या रंक अथवा किसी भी स्थिति का हो, श्रावक-धर्म का पालन कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति ने प्रपंच नहीं त्यागा, जीवन संयत नहीं बनाया, जीने की दिशा में कोई सीमा निर्धारित नहीं की, तो वह सर्व-विरति या देश-विरति श्रावक-धर्म का साधक नहीं बन सकता।

• बहुत से लोग सोचा करते हैं कि धर्म-स्थान में साधना करना वृद्धों का काम है, किन्तु ऐसा सोचना गलत है और इसी भ्रम के कारण, सर्वसाधारण का मन, इस ओर नहीं बढ़ पाता। इतिहास साक्षी है कि राजघराने के लोगों ने भरी जवानी में राजवैभव, सुख-विलास, आमोद-प्रमोद आदि को छोड़कर साधनाएँ प्रारम्भ कीं।

• संसार में वही आदमी प्रशंसा के योग्य है, जो किसी काम को पकड़ कर उसे उत्साह के साथ आगे बढ़ाता है। रोते-झींकते हुए काम करने वाले की तारीफ नहीं होती। आज आप धर्म का कार्य जिस उमंग से करना चाहिए। उस उमंग से नहीं करते और यह देखते हैं कि नहीं करूँगा तो महाराज नाराज होंगे। व्याख्यान में देरी से गया, सामायिक नहीं की, तो महाराज देखेंगे। यह सोचकर धर्म-क्रिया करना सही तरीका नहीं है। कोई भी काम करना है तो उसे हर्षित मन से करना चाहिए रोते-झींकते नहीं। जबरदस्ती, लोगों के दबाव से, महाराज के दबाव से व्रत किया है, तो उसकी कीमत या चमक कम हो जाती है। इसलिए बंधुओं ! जीवन में उल्लास और उमंग से धर्म की साधना करो। ऐसा करने से आत्मा का कल्याण निश्चित है।

■ धर्म-सेना

• जैसे वीर सैनिक देश की रक्षा के लिए तोप और टैंक के गोलों के सामने छाती खोलकर खड़े रहते हैं तभी वे सच्चे सैनिक कहलाते हैं। इसी तरह से धर्म की सेना में भर्ती होने वाले सैनिक अपने द्वारा लिए गए व्रतों की रक्षा के लिये छाती खोल कर खड़े रहते हैं और मोर्चे से एक इंच भी पीछे नहीं हटते। हम संत लोगों ने जिन व्रतों को जीवन भर के लिये लिया है, उनका पालन करने के लिये हम यदि इस मार्ग पर चलें तो इसमें ताज्जुब की बात नहीं है। यह तो कर्तव्य और नियम निभाने की बात है।

■ धर्मस्थान में अनुशासन

• दिमाग में प्रवचन की बात घुसे कैसे? घंटा, आधा घंटा सुनने के लिए आते हैं, तब भी ध्यान दूसरी तरफ रहता है तो संतों की वाणी का क्या असर हो सकता है? माताएँ व्याख्यान सुनते-सुनते जब देखती हैं कि पास बैठी औरत के लड़का है और अपनी लड़की है। संयोग बैठे जैसा है, तो वहीं पर बातचीत शुरु कर देती हैं। अपना सम्बंध बिठाने के लिए वे दूर की रिश्तेदारी निकाल लेंगी, कुशल पूछेंगी और व्याख्यान उठने से पहले ही बातचीत शुरु कर देंगी। अब भला बताइए आपके विषय-कषाय घटे तो कैसे और ज्ञान की ज्योति जलती रहे तो कैसे ? यदि आप चाहते हैं कि ज्ञान की ज्योति कुछ देर तक टिकी रहे तो वैसा वातावरण रखना पड़ेगा।

• आपने देखा होगा ईसाई लोगों को, वे जब-जब भी गिरजाघर में जायेंगे तो नजदीक पहुँचते ही गाड़ी से उतर जायेंगे और दूसरी सारी बातें छोड़ देंगे। उन्होंने नियम बना लिया है कि गाड़ी का हार्न चर्च की अमुक सीमा में ही बजायेंगे। प्रार्थना के बीच या प्रवचन के बीच कोई बात नहीं करेंगे। जब आप नहीं बोलेंगे तो दूसरे, पास वाले भी नहीं बोलेंगे। व्याख्यान हो रहा है, शास्त्र का वाचन चल रहा है तो बैठकर बातें करना उचित नहीं।

ध्यान/योग-साधना

- भिन्न-भिन्न कोटि के व्यक्तियों के धर्म-ध्यान और साधना के स्तर में बड़ा गहरा अन्तर रहता है। कषाय के तीव्र भाव क्रमशः जितने कम होते जायेंगे और ज्यों-ज्यों धर्म-ध्यान बढ़ता जाएगा, उतना ही वह उच्च से उच्चतर बनता जाएगा और अन्ततोगत्वा वही धर्म-ध्यान शुद्धतम बनकर शुक्ल-ध्यान के रूप में परिणत हो जायेगा। वस्तुतः इसी प्रकार का ध्यान आत्मा का अन्तर्लक्ष्यी ध्यान होता है।
- एकान्तवाद को मानने वाला मिथ्यात्वी भी ध्यान की साधना करता हुआ दिखाई देता है और दीर्घकाल तक बाहरी संतोष प्राप्त कर वह अपना समाधिस्थ रूप भी संसार के समक्ष प्रस्तुत करता है। धर्म-ध्यान के सम्बन्ध में जैन-दर्शन की मान्यता यह है कि जब तक किसी प्राणी के अन्तर के अज्ञान की, तीव्र मिथ्यात्व की उपशान्ति नहीं होती एवं सम्यक् ज्ञान की ज्योति नहीं जग पाती, तब तक उस प्राणी को धर्म-ध्यान का अधिकारी नहीं कहा जा सकता।
- आर्त्तध्यान आपके मोह कर्म के उदय भाव से होने वाला ध्यान है। जब तक हम आर्त्त-ध्यान के आश्रित होंगे तब तक रौद्र-कषायों के भाव आते रहेंगे, क्योंकि कषायों के प्राबल्य में किसी भी समय रौद्र-ध्यान उत्पन्न हो सकता है। मन में राग-द्वेष-क्रोधादि भावों का प्राबल्य होने पर धन, धरा, धामादि के प्रश्न को लेकर बात-बात पर मित्रों, सगे-सम्बन्धियों एवं अन्यान्य लोगों के साथ लड़ाई-झगड़ा करना, दूसरों के लिए बुरा सोचना, दूसरे लोगों के धन, जन एवं प्राणों को हानि पहुँचाने का विचार करना रौद्र-ध्यान है। आर्त्त-ध्यान रागाश्रित है और रौद्र-ध्यान द्वेष-प्रधान है।
- ध्यान का विशद विवेचन आगम और आगमेतर ग्रंथों में है। आज श्रमण समाज में ध्यान का अभ्यास प्रायः नहीं के समान है। इसके लिए विशेष रूप से शिक्षा देनी आवश्यक है। जैन व जैनेतर परम्पराओं से प्रस्तुत विषय पर अनुसंधान कर मौलिक तथ्य प्रकट करना चाहिए और सुनियोजित मार्ग-निर्माण करना चाहिए।
- हमारे तीर्थंकरों की मूर्तियाँ वीतराग मुद्रा में होती हैं। श्वेताम्बर दिगम्बर परम्परा में मुद्रा का जरा अन्तर है। दिगम्बर परम्परा वाले अर्ध निमीलित मुद्रा में ध्यानासन की प्रतिकृति प्रस्तुत करते हैं, तो श्वेताम्बर पूरे खुले नयन की मुद्रा में। जैन तीर्थंकरों का छद्मकाल अधिकांश ध्यान-साधना में ही बीतता है। उसमें प्राणायाम जैसी क्लेश क्रिया नहीं होती। उनकी साधना में मन, वाणी और काय योग की स्थिरता अखण्ड रहती है। जैन दीक्षा में इसी प्रकार के योग की शिक्षा और दीक्षा दी जाती है। जैन दीक्षा का सावद्ययोग प्रत्याख्यान इसी बात का द्योतक है।
- आज की चालू योग की साधना से इसमें यही अन्तर है कि जैन योग में वृत्तियों के मोड़ बदलने का लक्ष्य मुख्य है। अभ्यास के बल पर जैन साधक अशुभ योग पर विजय पा लेता है। वह शुभ से अशुभ को जीतता है। हमारी समझ में यही जैन योग की दीक्षा है। इस प्रकार की साधना के निरन्तर अभ्यास से अनुभव आने के पश्चात् - सविकल्प और निर्विकल्प समाधि रूप सुख की अनुभूति होती है। इसी को सिद्ध योग की दीक्षा कह सकते हैं। इसमें यम-नियम और आसन आदि स्वतः आ जाते हैं।
- आज भी दीक्षा तो वही दी जाती है, पर शिक्षा दान और उसका यथावत् ग्रहण, धारण एवं आराधन नहीं होने से आज उसका प्रभाव जैसा चाहिये वैसा दृष्टिगोचर नहीं होता। यह हम साधकों के प्रमाद का परिणाम है। हमें इस

ओर जागृत होने की आवश्यकता है।

■ नारी

- बहनें घर की एक तरह से दीपिका हैं, वह भी देहली-दीपिका। कमरे के दरवाजे को देहली कहते हैं। कमरे के अन्दर लाइट या बत्ती है तो वह कमरे में ही प्रकाश करती है और कमरे के दरवाजे पर बत्ती है तो कमरे के अन्दर और बाहर दोनों तरफ प्रकाश करती है।
- यह एक मानी हुई बात है कि पारिवारिक जीवन की सफलता बहुत अंशों में गृहिणी की क्षमता पर निर्भर है। दुर्दैव से यदि गृहिणी कर्कशा, कटुभाषिणी, कुशीला तथा अनुदार मिल जाती है तो व्यक्ति का न सिर्फ आत्म-सम्मान और गौरव घटता है, बल्कि घर की सारी इज्जत मिट्टी में मिल जाती है। ऐसी नारी को, गृहिणी के बजाय ग्रहणी कहना अधिक संगत लगता है।
- पुरुष और स्त्री गृहरूपी शकट के दो चक्र हैं। उनमें से एक की भी खराबी पारिवारिक जीवन रूपी यात्रा में बाधक सिद्ध होती है। योग्य स्त्री सारे घर को सुधार सकती है, नास्तिक पुरुष के मन में भी आस्तिकता का संचार कर देती है। स्त्री को गृहिणी इसीलिए कहा है कि घर की आन्तरिक व्यवस्था, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा तथा सुसंस्कार एवं समुचित लालन- पालन और आतिथ्य सत्कार आदि सभी का भार उस पर रहता है और अपनी जिम्मेदारी का ज्ञान न रखने वाली गृहिणी राह भूल कर गलत व्यवहारों में भटक जाती है। अतः उसका विवेकशील होना अत्यन्त आवश्यक है।
- यह बड़ी विडम्बना है कि आज की गृहिणियाँ अपने नहाने, धोने और शरीर सजाने में इतनी व्यस्त रहती हैं कि उनको घर संभालने और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा व संस्कार-दान के लिए कोई समय नहीं मिलता। वे चाहती हैं कि बच्चों को कोई दूसरा संभाल ले। आजकल बालमंदिरों पर जिस कार्य का भार डाला जा रहा है प्राचीन काल में वह कार्य गृह-महिलाओं द्वारा किया जाता था। बच्चों में जो संस्कार माताएँ डाल सकती हैं, भला वह बाल-मंदिरों में कैसे सम्भव हो सकता है?
- यों तो नर की अपेक्षा नारियाँ स्वभावतः विशाल हृदया, कोमल, दयामयी और प्रेम- परायणा होती हैं, किन्तु शिक्षा, सुविचार एवं सत्संगति के अभाव में वे भी संकुचित हृदयवाली बन कर आत्म-कल्याण से विमुख बन जाती हैं। जब तक उनमें समुचित ज्ञान का प्रकाश प्रवेश नहीं पाएगा, तब तक उनका जीवन जगमगा नहीं सकता। नारियों की संकीर्णता का प्रभाव पुरुषों पर भी अत्यधिक पड़ता है और इसी चक्कर में पड़कर वे साधना-विमुख बन जाते हैं।
- यदि पुत्र को सुसंस्कृत न बनाया जाए तो सिर्फ एक घर की हानि होगी, किन्तु यदि बालिका में सुसंस्कार नहीं दिए जाएँ तो पितृघर और श्वसुर गृह दोनों को धक्का लगेगा तथा भावी सन्तानों पर भी कुप्रभाव पड़ेगा। जो बालिका कुसंस्कार लेकर ससुराल जायेगी, वह वहाँ भी कुसंस्कार का रोग फैलायेगी। अतः लड़के की अपेक्षा लड़की की शिक्षा पर माता-पिता को अधिक ध्यान देना आवश्यक है।
- आज की माताएँ बालिका से काम तो बहुत लेती हैं किन्तु उसे सुसंस्कार सम्पन्न बनाने का यत्न नहीं करतीं। वे दहेज में पुत्री को बहुत सारा धन देंगी, मगर ऐसी वस्तु गांठ बांध कर नहीं देतीं जो जीवन भर काम आवे। जिस लड़की के साथ श्रद्धा, प्रेम, सुशीलता, सदाचार, प्रभु-भक्ति और मृदु-व्यवहार की गांठ बांधी जाती है, वह असली

सम्पत्ति लेकर पराये घर जाती है।

- अनेक नारियों के शरीर पर जो वस्त्र होते हैं, वे अंगों के आच्छादन के लिए नहीं प्रत्युत कुत्सित प्रदर्शन के लिए होते हैं। आज जनता की सरकार भी इस ओर कुछ ध्यान नहीं देती। पर अपने अधिकारों को जानने वाली आज की नारियाँ भी इस अपमान को सहन कर लेती हैं, यह विस्मय की बात है। अगर महिलाएँ इस ओर ध्यान दें और संगठित होकर प्रयास करें तो मातृ-जाति का इस प्रकार अपमान करने वालों को सही राह पर लाया जा सकता है।

नारी-शिक्षा

- युवकों की अपेक्षा हमारी बच्चियाँ अधिक शिक्षण ले रही हैं तो आपकी यह भी जिम्मेदारी है कि उनका जीवन सदाचारी रहे और व्यावहारिक शिक्षा के साथ उनको नैतिक और धार्मिक शिक्षा भी मिले। यदि ऐसा नहीं होगा तो आपका जीवन संतान की तरफ से यशस्वी नहीं रहेगा और आपको खतरा बना रहेगा। कभी कुछ हो गया तो कभी कुछ। रहन-सहन में खतरा रहेगा। ऐसे नमूने सांसारिक जीवन में आपको देखने को मिलते हैं।

परमात्मा

- राग, द्वेष और अज्ञान आदि दोषों से मुक्त, पूर्ण ज्ञानी, स्थित स्वरूप वीतराग आत्मा ही परमात्मा है। शब्द की दृष्टि से 'परमात्मा शब्द' में दो पद हैं—परम और आत्मा। आत्मा ही परमात्मा है। विशिष्ट शक्ति वाला सरागी जीव परमात्मा नहीं हो सकता। वह कोई देव हो सकता है। देव को जन्म-मरण होता है, किन्तु परमात्मा को जन्म-मरण नहीं करना पड़ता। वह वीतराग, सर्वज्ञ और अनन्त शक्तिमान् होता है। तीव्र क्रोध-मान-माया और लोभ में उन्मत्त रहने वाला प्राणी भी सर्वथा दोष-विजय की साधना से कर्म क्षय कर दोष रहित परमात्मा हो सकता है। क्योंकि अनन्त ज्ञान, निराबाध सुख और अनन्त शक्ति ये आत्मा के निज गुण हैं। कर्म क्षय कर निजगुण को प्राप्त करने का अधिकार सबको है। इसीलिये कहा गया है कि-

  सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय।
  कर्म मैल का आंतरा, बूझे विरला कोय॥

परिग्रह

- 'परिग्रह' से तात्पर्य केवल संग्रहवृत्ति नहीं, वरन् आंतरिक आसक्ति भी है। ग्रह का शाब्दिक अर्थ है पकड़ने वाला । आकाश के ग्रह दो प्रकार के होते हैं– एक सौम्य और दूसरा क्रूर। ये मानव जगत से दूर के ग्रह हैं। फिर भी इनमें से एक मन को आनंदित करता है और दूसरा आतंकित। हम इन दूरवासी ग्रहों की शान्ति के लिए विविध उपाय करते हैं, किन्तु हृदय रूपी गगन-मंडल में विराजमान परिग्रह रूपी बड़े ग्रह की शान्ति का कुछ भी उपाय नहीं करते। परिग्रह चारों ओर से पकड़ने वाला है। इसके द्वारा पकड़ा गया व्यक्ति न केवल तन से बल्कि मन और इन्द्रियों से भी बंधा रहता है। यह दिल-दिमाग और इन्द्रिय किसी को हिलने तक नहीं देता। यह 'परि समन्तात् गृह्यते इति परिग्रहः' रूप व्युत्पत्ति को सार्थक करता है।
- आज के मानव ने धन को साधन न मान कर साध्य बना लिया है। धन-संचय को धर्म-संचय से भी बढ़कर समझ लिया है। हर जगह उसे धन की याद सताती है और हर तरफ उसे धन का ही मनोरम चित्र दिखाई देता

है। अधिक क्या, आज संत-दर्शन और संत-समागम में भी धन-लाभ की कामना की जाती है।

- साधारण मानव यदि परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर सके, तो भी वह उसका संयमन कर सकता है। परिग्रह के मोह में फंसा हुआ व्यक्ति अफीमची के सदृश है और मोही प्राणियों के लिए धन अफीम के समान है। अफीम के सेवन से जैसे अफीमची में गर्मी, स्फूर्ति बनी रहती है, किन्तु अफीम शरीर की पुष्ट धातुओं को सोखकर उसे खोखला बना देती है, परिग्रह रूपी अफीम भी मनुष्य के आत्मिक विकास को न सिर्फ रोक देती है, बल्कि उसे भीतर से सत्त्वहीन कर देती है। अतः हर हालत में इसकी मर्यादा कर लेने में बुद्धिमानी है।
- परिग्रह का विस्तार ही आज संसार में विषमता और अशान्ति का कारण बना हुआ है। यदि मनुष्य आवश्यकता को सीमित कर अर्थ का परिमाण कर ले, तो संघर्ष या अशान्ति भी बहुत सीमा तक कम हो जाए। आज जो अति श्रीमत्ता को रोकने के लिए शासन को जनहित के नाम पर जन-जीवन में हस्तक्षेप करना पड़ रहा है, धार्मिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर यदि मानव अपने आप ही परिग्रह की सीमा बांध ले, तो बाह्य हस्तक्षेप की आवश्यकता ही नहीं रहेगी और मन की अशान्ति, हलचल और उद्विग्नता भी मिट जाएगी।
- परिग्रह का दूसरा नाम 'दौलत' है, जिसका अर्थ है—दो-लत अर्थात् दो बुरी आदतें। इन दो लतों में पहली लत है हित की बात न सुनना। दूसरी लत है— गुणी, माननीय, नेक सलाहकार और वन्दनीय व्यक्तियों को न देखना, न मानना।
- सारी दुनिया भुक्ति या भोग के पीछे छटपटा रही है क्योंकि परिग्रह की साधना में किये गए समस्त कार्य भुक्ति के अन्तर्गत आते हैं। मनुष्य यदि भुक्ति को ही जीवन का लक्ष्य बना ले, तो पशु और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रहता।
- सम्राट् सिकन्दर ने प्रबल शौर्य प्रदर्शित कर खूब धन संग्रह किया, किन्तु जब यहाँ से चला तो उसके दोनों हाथ खाली थे। बड़े-बड़े वैद्य और डाक्टर वैभव के बल से उसको बचा नहीं सके और न उसके सगे-सम्बंधी ही उसे चलते समय कुछ दे सके।
- आत्मा की मलिनता को दूर करने का सबसे बड़ा उपाय भोगों से मुक्त होना है और इसके लिए अनुकूल साधना अपेक्षित है। मनुष्य जब तक सांसारिक प्रपञ्च रूप परिग्रह से पिण्ड नहीं छुड़ाता तब तक उसके मन में चंचलता बनी रहती है, भौतिकता के आकर्षण से उसका मन हिलोरें खाते जल में प्रतिबिम्ब की तरह हिलता रहता है। लालसा के पाश में बंधा मानव संग्रह की उधेड़बुन में सब कुछ भूलकर आत्मिक शान्ति खो बैठता है। अतएव सच्ची शान्ति पाने के लिए उसे अपरिग्रही होना अत्यंत आवश्यक है।
- जिसके पास कुछ नहीं, पर इच्छा बढ़ी हुई है, तृष्णा असीम है, तो वह महापरिग्रही है और करोड़ों की सम्पदा पाकर भी जिसका इच्छा पर नियंत्रण है, चाह की दौड़ घटी हुई है, वह अल्पपरिग्रही है।
- अगर लोभ से सर्वथा पिण्ड छुड़ाना कठिन है तो उसकी दिशा बदली जा सकती है और उसे गुरुसेवा या जप-तप तथा सद्गुणों की ओर मोड़ा जा सकता है। ऐसा करने पर परिग्रह का बंधन भी सहज ढीला हो सकेगा।
- साधारणतः मानव मोह का पूर्णरूप से त्याग नहीं कर पाता, पूर्ण अपरिग्रही नहीं बन पाता तो क्या वह उस पर संयम भी नहीं कर सकता? ऊँची डालियों के फूल हम नहीं पा सकते तो क्या नीचे के कांटों से दामन भी नहीं छुड़ा सकते? अवश्य छुड़ा सकते हैं। जब शरीर के किसी अंग में अनावश्यक मांस वृद्धि हो जाती है तो उससे

शारीरिक कार्यों में बाधा पड़ती है। उस बाह्य वृद्धि को पट्टी बांधकर या अन्य उपचार के द्वारा रोकना पड़ता है, सीमित करना पड़ता है वैसे ही बढ़ा हुआ परिग्रह भी अच्छे कार्यों में, साधना में बाधक होता है। अतः उस पर नियमन की पट्टी लगानी आवश्यक होती है।

- आज कुछ लोग नौकर रखकर यह तर्क उपस्थित करते हैं कि हम मजदूर लोगों का पालन करते हैं। ऐसी दुहाई देने वाले कहाँ तक सच कहते हैं, यह उनका हृदय जानता है। आज के कारखाने स्वार्थ के लिए चलते हैं या लोकपालन के लिए? इसका जवाब तो स्वयं से पूछना चाहिए।
- वर्षाकाल में बच्चे मिट्टी का घर बनाने में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि खाना-पीना भी भूल जाते हैं और माँ-बाप के पुकारने पर भी ध्यान नहीं देते। यदि कोई राहगीर उनके घर को तोड़ दे, तो वे झगड़ बैठते हैं। वे मिट्टी के घरौंदे में राजमहल जैसे आनंद का अनुभव करते हैं। यद्यपि मिट्टी वाला घर कोई उपादेय नहीं है और सयाने लोग बच्चे के इस प्रयास पर हंसते हैं, फिर भी वह किसी की परवाह किये बिना कीचड़ में शरीर और वस्त्र खराब करते नहीं झिझकता। ठीक यही स्थिति मंदमति संसारी जीव की है। वह बच्चे के घरौंदे की तरह नाशवान कोठी, बंगला और भवन बनाने में जीवन को मलिन करता रहता है। घरौंदे के समान ये बड़े-बड़े बंगले भी तो बिखर जाने वाले हैं। क्या आज के ये खंडहर, कल के महलों के साक्षी नहीं हैं, जिनके निर्माण में मनुष्य ने अथक श्रम और अर्थ का विनियोग किया था।
- पक्षी के घोंसले के समान, सरलता से नष्ट होने वाले घर के पीछे मनुष्य रीति, प्रीति और नीति को भूलकर, काम-क्रोध, लोभ के वशीभूत होकर पाप करता है, बहुतों की हानि करता है और परिग्रह की लपेट में फंस जाता है।
- सर्वथा परिग्रह विरमण (त्याग) और परिग्रह परिमाण, ये इस व्रत के दो रूप हैं। परिग्रह परिमाण व्रत का दूसरा नाम इच्छा परिमाण है। कामना अधिक होगी तो प्राणातिपात और असत्य भी बढ़ेगा। सब अनर्थों का मूल कामना-लालसा है। कामना ही समस्त दुःखों को उत्पन्न करती है। भगवान ने कहा है कि 'कामे कमहि कमियं खु दुक्खं।' यह छोटा सा सूत्रवाक्य हमारे समक्ष दुःख के विनाश का अमोघ उपाय प्रस्तुत करता है। जो कामनाओं को त्याग देता है वह समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है।
- साधारण मनुष्य कामनापूर्ति में ही संलग्न रहता है और उसी में अपने जीवन को खपा देता है। विविध प्रकार की कामनाएँ मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होती हैं और वे उसे नाना प्रकार से नचाती हैं। इस सम्बंध में सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि कामना का कहीं ओर छोर नहीं दिखाई देता। प्रारम्भ में एक कामना उत्पन्न होती है। उसकी पूर्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है। वह पूरी भी नहीं होने पाती कि अन्य अनेक कामनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों कामनाओं को पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है त्यों-त्यों उनकी वृद्धि होती जाती है और तृप्ति कहीं हो ही नहीं पाती, आगम में कहा है—

'इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।'

जैसे आकाश का कहीं अन्त नहीं वैसे ही इच्छाओं का भी कहीं अन्त नहीं। जहाँ एक इच्छा की पूर्ति में से ही सहस्रों नवीन इच्छाओं का जन्म हो जाता हो वहाँ उनका अन्त किस प्रकार आ सकता है? अपनी परछाई को पकड़ने का प्रयास जैसे सफल नहीं हो सकता, उसी प्रकार कामनाओं की पूर्ति करना भी सम्भव नहीं हो सकता। उससे बढ़ कर अभागा और कौन है जो प्राप्त सुख-सामग्री का सन्तोष के साथ उपभोग न करके तृष्णा के

वशीभूत होकर हाय-हाय करता रहता है, आकुल-व्याकुल रहता है, धन के पीछे रात-दिन भटकता रहता है। जिसने धन के लिए अपना मूल्यवान मानव जीवन अर्पित कर दिया वह मनुष्य होकर भी मनुष्य जीवन का अधिकारी नहीं है।

- जो पदार्थ यथार्थ में आत्मा का नहीं है, आत्मा से भिन्न है उसे अपना स्वीकार करना परिग्रह है। परिग्रह के मुख्य दो भेद हैं—आभ्यन्तर और बाह्य। रुपया-पैसा, महल-मकान आदि बाह्य परिग्रह हैं और क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि विकार भाव आभ्यन्तर परिग्रह कहलाते हैं।
- जिस धन के लिए मनुष्य इस लोक में सुखों का परित्याग करता है और परलोक को बिगाड़ता है वह धन उसके क्या काम आता है? इष्टजन का वियोग क्या धन से टल जाता है ? जब विकराल मृत्यु अपना मुख फाड़ कर सामने आती है तो क्या धन दे कर उसे लौटाया जा सकता है ? सोने-चाँदी और हीरों से भरी तिजोरियाँ क्या मौत को टाल सकती हैं? आखिर संचित किया हुआ धन का अक्षय कोष किस बीमारी की दवा है ? चाहे गरीब हो या अमीर खाएगा तो खाद्य-पदार्थ ही, हीरा मोती तो खा नहीं सकता। फिर अनावश्यक धन-राशि एकत्र करने से क्या लाभ है? मानव-जीवन जैसी अनमोल निधि को धन के लिए विनष्ट कर देने वाले क्यों नहीं सोचते कि धन उपार्जन करते समय कष्ट होता है, उपार्जित हो जाने के पश्चात् उसके संरक्षण की प्रतिक्षण चिन्ता करनी पड़ती है और संरक्षण का प्रयत्न असफल होने पर जब वह चला जाता है, तब दुःख और शोक का पार नहीं रहता।
- मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं, किन्तु वह उन्हें स्वेच्छा से बढ़ा लेता है। आज तो मानव ही नहीं, देश भी आवश्यकताओं के शिकार हो गए हैं। विदेशों में क्या भेजें और कैसे विदेशी मुद्रा प्राप्त करें, यह देश के नेताओं की चिन्ता है। जब उन्हें अन्य पदार्थ भेजने योग्य नहीं दिखते, तो उनकी नजर पशु-धन की ओर जाती है। बढ़िया किस्म के वस्त्रों, खिलौनों और मशीनों की पूर्ति के लिए धन कहाँ से दिया जाए? इसका एक रास्ता पशु-धन है। एक समय भारतवासी सादा जीवन व्यतीत करते थे, पर विदेशों का ऋण नहीं था, मगर आज विचित्र स्थिति बन गई है। नन्हे-नन्हें बच्चों को दूध न मिले और गोमांस विदेशों में भेजा जाए, यह सब आवश्यकताओं को सीमित न रखने का फल है।
- परिग्रह आरम्भ को छोड़कर नहीं रहता। वह जन्मा भी आरम्भ से है और उसका समर्थन भी आरम्भ ही करता है। आरम्भ से ही परिग्रह बढ़ता है। परिग्रह अपने दोस्त आरम्भ को बढाने का ध्यान रखता है। आरम्भ और परिग्रह के प्रति मनुष्य का अतिप्रबल आकर्षण रहा है।
- परिग्रह का मतलब केवल पैसा बढ़ाना और तिजोरी भरना ही नहीं है, बल्कि कुटुम्ब, व्यापार, व्यवसाय आदि में उलझे रहना भी परिग्रह है। जैसे सोना, चांदी, हीरा, जवाहरात, भूमि, मकान ये सब परिग्रह में हैं, वैसे ही कुटुम्ब, परिवार और दास-दासी भी परिग्रह में सम्मिलित हैं। बाहरी परिग्रह तो ये दिखने वाली चीजें हो गईं और आन्तरिक परिग्रह मन में रहने वाली आसक्ति, मोह, ममता आदि हैं, जो बाह्य परिग्रह के मूलाधार हैं। इनमें उलझा हुआ प्राणी सत्संग का लाभ नहीं ले सकता।
- जिनके पास जरूरत से अधिक मकान हैं, वे उनकी ममता छोड़ें। बेचने में खतरा है इसलिए ममता छोड़कर दान दे दें। दान देने पर प्रतिबन्ध नहीं है। नाम का नाम रहे और काम का काम हो जाये। सरकार भी कहेगी कि सार्वजनिक क्षेत्र में ये कितना काम कर रहे हैं। कहा जाएगा जो काम सरकार नहीं कर सकी, वह सेठ जी ने कर

दिया। 'जनसेवी हैं' यह कह कर उनकी बुद्धिमत्ता को सभी सराहेंगे।

- जीवन में पहला नम्बर देव-भक्ति का, दूसरा नम्बर संत-सेवा का, तीसरा नम्बर परिवार के सदस्यों को संभालने का, चौथा नम्बर अपने स्वास्थ्य को संभालने का और पाँचवा नम्बर काम धंधे का। इस तरह से जीवन को चलाओगे तो गाड़ी अटकेगी नहीं, भटकेगी नहीं और समाज में नीचा देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।
- परिग्रह का बंधन तब तक नहीं कटेगा, जब तक मनुष्य यह न मान ले कि यह आत्मा के लिए दुःखदायी है और जीवन-निर्माण में बाधक है।
- आज मानव परिग्रह को उच्चता और सुख-सुविधा की निशानी समझता है। वह भूल गया है कि परिग्रह उच्चता की निशानी नहीं है। लोगों में सम्मान की निगाह कब होगी—परिग्रह-त्यागने पर, या रखने पर? इतनी सीधी-सादी चीज़ को भी मानव भूल जाता है, इससे बढ़कर अज्ञान क्या हो सकता है। इसलिए मुक्ति का रास्ता बनाना है तो अज्ञान को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश किया जायेगा तो मोक्ष और मोक्ष का मार्ग नजदीक हो जाएगा।
- २५ हजार देव जिसकी सेवा करते हैं, ऐसा चक्रवर्ती भी अरिहन्त तीर्थंकर की वाणी सुनकर अपने राज्य को छोड़ देता है और कहता है 'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' मुझे राज्य नहीं चाहिए, मुझे राज्यपद पर रहकर नरक में नहीं जाना है। इसमें लिप्त रहा, फंसा या उलझा रहा तो यह नरक में ले जाने वाला है।
- ये रजत, स्वर्ण, हीरे और जवाहरात के परिग्रह भार हैं। कुटुम्ब की आवश्यकता के लिए परिग्रह रखना जरूरी समझते हैं तो ऐसा करो कि उस पर तुम सवारी करो, लेकिन तुम्हारे पर वह सवार नहीं हो। यदि धन तुम पर सवार हो गया तो वह तुमको नीचे डुबा देगा।
- जितना जल्दी बिना श्रम के, बिना न्याय के, बिना नीति के पैसा मिलाया जाता है, उस पैसे से लखपति करोड़पति हो सकते हैं, लेकिन वह पैसा उस परिवार को शान्ति और समता देने वाला नहीं होता। पैसा पाया और घर में शान्ति नहीं तो पैसे का फायदा क्या?
- आप हजारों का व्यापार करते हो। हजारों लोग आपकी दुकान पर माल खरीदने के लिए आते होंगे। आप उनसे थोड़ा-थोड़ा मुनाफा लेकर जीवन चला सकते हो, बाल-बच्चों और परिवार का पोषण कर सकते हो और इससे आपकी अहिंसा भी बची रह सकती है। अधिक मुनाफा लेने के लिए किसी के सुख-दुःख की परवाह किये बिना चलोगे तो वहाँ हिंसा होगी, आपका जीवन परेशान रहेगा, आपको सुख-शान्ति नहीं रहेगी, परिवार में प्रसन्नता नहीं रहेगी।
- जो पैसा किसी नीति से नहीं मिलाया जाता है, दूसरे को तकलीफ दिये बिना नहीं मिलाया जाता है वह पैसा आपको शान्ति नहीं दे सकता। एक सद्गृहस्थ वही है जो राजी मन से, देने वाले से राजी मन से ले, उसको कष्ट नहीं दे। ऐसा पैसा आपके लिए दुःखकारी, अहितकारी और उसके लिए भी पीड़ाकारी नहीं होगा।

■ परिग्रह-परिमाण

- आवश्यक द्रव्य रखते हुए भी आप परिग्रह पर ममता की गाँठ को ढीली कर के अपरिग्रही बन सकते हैं।
- परिग्रह का बन्धन यदि प्रगाढ़ होगा तो उत्तरोत्तर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, लड़ाई-झगड़े, मिलावट, चोरबाजारी और मुकद्दमाबाजी होगी। इसके विपरीत आप परिग्रह पर ममता घटाकर अपने स्वयं के जीवन-निर्वाह के लिये, अपने

परिवार और बच्चों के लिये, समाज के हित के लिये, आवश्यकता पूर्ति योग्य अर्थोपार्जन न्याय-नीति से करेंगे तो सभी लोग आपके मित्र होंगे, आपको न राज्य का डर रहेगा और न समाज का ही।

- परिग्रह को सीमित करना, कम करना और परिग्रह के बन्धनों को ढीला करना चाहते हैं तो भोगोपभोग की सामग्री को सीमित करना होगा, अपनी भोगोपभोग की भावना पर अंकुश लगाना होगा, भोगोपभोग की भावना को घटाना होगा।
- इच्छा-परिमाण श्रावक के मूलव्रतों में परिगणित किया गया है। इच्छा का परिमाण नहीं किया जाएगा और कामना बढ़ती रहेगी तो प्राणातिपात और झूठ बढ़ेगा। अदत्त ग्रहण में भी प्रवृत्ति होगी। कुशील को बढ़ाने में भी परिग्रह कारणभूत होगा। इस प्रकार असीमित इच्छा सभी पापों और अनेक अनर्थों का कारण है।
- परिग्रह की एक सीमा कर, परिग्रह का परिमाण कर अपरिग्रही बनने के साथ-साथ भोगोपभोग की सामग्री को यथाशक्ति सीमित करते रहना, भोगोपभोग की इच्छा पर नियन्त्रण करना परमावश्यक है। भोगोपभोग की इच्छा जब तक शान्त नहीं होती, तब तक अपरिग्रहपन की आराधना करना गृहस्थ के लिये संभव नहीं है।
- परिग्रह का परिमाण कर यदि आप परिग्रह को कम करना चाहते हैं, तो अपरिग्रह की भावना के साथ उपभोग-परिभोग को, भोगोपभोग की सामग्री को घटाने की आवश्यकता है। उपभोग-परिभोग को घटाने के साथ ही परिग्रह की आवश्यकता स्वतः कम हो जायेगी और परिग्रह-संचय के लिये होने वाला पाप भी कम हो जायेगा।
- जिस प्रकार भोगोपभोग परिग्रह को बढ़ाने के साधन हैं, उसी प्रकार दिखावा या आडम्बर भी परिग्रह को बढ़ाने का साधन है ।
- प्रदेशी राजा का जिस दिन अज्ञान घटा उसी दिन उसने राजपाट का प्रबंध किये बिना केशी मुनि के चरणों में बैठकर बारह व्रत धारण कर लिये। बारह व्रत धारण करने के साथ ही साथ उसने परिग्रह परिमाण किया। उसका परिग्रह ज्यादा लम्बा-चौड़ा था या आपका ज्यादा लम्बा-चौड़ा है? आप में से यदि किसी को कहा जाये कि सेठजी परिग्रह की सीमा तो बांधो, तो कहोगे-'महाराज! अभी तो पता नहीं है कितना देना है, कितना लेना है, कितना माल है, दिवाली पर जब हिसाब करेंगे तब पता चलेगा।' वस्तुतः आपका इस प्रकार कहना परिग्रह परिमाण से बचने का बहाना मात्र ही माना जा सकता है। यदि वास्तव में आप परिग्रह का परिमाण करना चाहते हैं तो जितना आज आपके पास है, उतना खुला रखकर बाकी का तो त्याग कर दो। यह तो बिना आंकड़ों के भी आप कर सकते हैं। हिसाब पीछे करते रहना। जितने बंगले, मकान, दुकान इत्यादि हैं, उनसे अधिक नहीं बढ़ाओगे, यह तो प्रण कर लो। इस तरह का संकल्प यदि करना चाहो तो बिना विलम्ब के कर सकते हो।
- केवल बाहरी वस्तु का परिमाण करने से काम नहीं चलता। यह तो इच्छाओं को सीमित करने की एक साधना मात्र है। साधना क्षेत्र में बाह्य और आन्तरिक परिसीमन की नितान्त आवश्यकता है तथा दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बंध है।
- श्रावक के लिए पूर्ण अपरिग्रही होकर रहना शक्य नहीं है, अतएव वह मर्यादित परिग्रह रखने की छूट लेता है। किन्तु व्रतधारी श्रावक परिग्रह को गृह-व्यवहार चलाने का साधन मात्र मानता है। कमजोर आदमी लकड़ी का सहारा लेकर चलता है और उसे सहारा ही समझता है। कमजोरी दूर होने पर वह लकड़ी का प्रयोग नहीं करता। अगर वह लकड़ी को ही साध्य मान ले और अनावश्यक होने पर भी हाथ में थामे रहे तो अज्ञानी समझा

जाएगा।

- व्रती श्रावक धन-वैभव आदि परिग्रह को जीवन-यात्रा का सहारा समझता है, साध्य नहीं। धन अर्थात् परिग्रह को ही सर्वस्व समझ लेने से सम्यक्दृष्टि नहीं रहती। वह जो परिग्रह रखता है, अपनी आवश्यकताओं का विचार करके ही रखता है और जीवन इतना सादा होता है कि उसकी आवश्यकताएँ भी अत्यल्प होती हैं। इस कारण वह आवश्यक परिग्रह की छूट रखकर शेष का परित्याग कर देता है।
- परिग्रह का परिमाण करने वाला श्रावक यदि धन, सम्पत्ति, भूमि आदि परिमाण से अधिक रख लेता है तो अनाचार समझना चाहिए। वैसी स्थिति में उसका व्रत पूरी तरह खंडित हो जाता है। पचास एकड़ भूमि का परिमाण करने वाला यदि साठ एकड़ रख लेता है तो यह जानबूझ कर व्रत की मर्यादा को भंग करना है और यह अनाचार है।
- किसी ने व्रत ग्रहण करते समय एक या दो मकानों की मर्यादा की। बाद में ऋण के रुपयों के बदले उसे एक और मकान प्राप्त हो गया। अगर वह उसे रख लेता है तो यह अतिचार कहलाएगा। इसी प्रकार एक खेत बेच कर या मकान बेचकर दूसरा खेत या मकान खरीदना भी अतिचार है, यदि उसके पीछे अतिरिक्त अर्थलाभ का दृष्टिकोण हो। तात्पर्य यह है कि इस व्रत के परिमाण में दृष्टिकोण मुख्य रहता है और व्रतधारी को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसने तृष्णा, लोभ एवं असंतोष पर अकुंश लगाने के लिए व्रत ग्रहण किया है। अतएव ये दोष किसी बहाने से मन में प्रवेश न कर जाएं और ममत्व बढ़ने नहीं पाए।
- कई साधक इसके प्रभाव से अपने व्रत को दूषित कर लेते हैं। उदाहरणार्थ— किसी साधक ने चार खेत रखने की मर्यादा की। तत्पश्चात् उसके चित्त में लोभ जगा। उसने बगल का खेत खरीद लिया और पहले वाले खेत में मिला लिया। अब वह सोचता है कि मैंने चार खेत रखने की जो मर्यादा की थी, वह अखंडित है। मेरे पास पाँचवां खेत नहीं है। इस प्रकार आत्म-वंचना की प्रेरणा लोभ से होती है। इससे व्रत दूषित होता है और उसका असली उद्देश्य पूर्ण नहीं होता।
- भोगोपभोग की सामग्री परिग्रह है और उसकी वृद्धि परिग्रह की ही वृद्धि है। परिग्रह की वृद्धि से हिंसा की वृद्धि होती है और हिंसा की वृद्धि से पाप की वृद्धि होती है। साधारण स्थिति का आदमी भी दूसरों की देखा-देखी उत्तम वस्तुएँ रखना चाहता है। उसे सुन्दर और मूल्यवान फर्नीचर चाहिए, चाँदी के बर्तन चाहिए, कार-मोटर चाहिए और पड़ौसी के यहाँ जो कुछ अच्छा है सब चाहिए। जब सामान्य न्याय संगत प्रयास से वे नहीं प्राप्त होते तो उनके लिए अनीति और अधर्म का आश्रय लिया जाता है। अतएव मनुष्य के लिए यही उचित है कि वह अल्प-संतोषी हो अर्थात् सहजभाव से जो साधन उपलब्ध हो जाएँ, उनसे ही अपना निर्वाह कर ले और शान्ति के साथ जीवनयापन करे। ऐसा करने से वह अनेक पापों से बच जाएगा और उसका भविष्य उज्ज्वल बनेगा।

■ परिवार

- जिस घर का न्याय दूसरों को करने का मौका आ जाए तो समझना चाहिए कि घर की तेजस्विता समाप्त हो गई है। अपना विवाद खुद ही सुलझा लें तो किसी को कहने का अवसर नहीं आता। जब कभी पति-पत्नी के बीच तकरार होती है या पिता-पुत्र के बीच, भाई-भाई के बीच विचार-भेद या मन्तव्य-भेद जैसी उलझन हो जाए, ऐसे

प्रसंग जीवन में आते रहते हैं, तो इस प्रकार के प्रसंगों पर इसी में चतुराई है कि चाहे त्रुटि किसी की हो, अपनी समस्या को घर में ही, आपस में बैठकर निपटा लिया जाए और बाहर के लोगों को पता भी नहीं चले कि आपस में मनमुटाव था।

- जो मनुष्य घर के झगड़ों को, घर की उलझनों को घर में ही निपटाना जानता है, वही कुशल कहलाता है, उसके लिए दूसरों के निर्देश की आवश्यकता नहीं रहती।

■ पर्युषण

- पर्युषण का एक अर्थ है- अपने चारों ओर फैले बाहर के विषय-कषायों से मन को हटाकर निज घर में, आध्यात्मिक भावों में, आत्मा के स्वभाव में बस जाना।
- पर्युषण को 'पर्युपशमन' भी कहा जाता है। संस्कृत में 'पर्युपशमन' शब्द के दो विभाग किये जा सकते हैं-'परि' और 'उपशमन'। 'परि' का अर्थ है चहुँ ओर से, बाहर और भीतर से कषायों का उपशमन, विकारों का उपशमन हो। जिसमें बाहर से विकारों का उपशमन कर लिया जाय और भीतर से भी उपशमन कर लिया जाय, ऐसे पर्व का नाम है 'पर्युपशमन'। यह तो उपशमन की दृष्टि से पर्युषण शब्द का अर्थ है। इस शब्द का अन्य अर्थ है 'परिवसनम्'। आत्मा के निकट शुभ दशा में अन्तरंग और बहिरंग भाव से बसना, आत्मा के समीप बसना। जिन मनुष्यों की आदत इधर-उधर जाने-आने की है, घूमने-फिरने की है उनको पर्युषण के दिनों एक जगह स्थिर बसने का संकल्प कराने के लिए भी यह पर्व है।
- इसका तीसरा अर्थ 'परि' उपसर्ग पूर्वक "उष दाहे" धातु से निकलता है। संस्कृत व्याकरण की 'उष दाहे' धातु का मतलब होता है जलाना। चाहे गुस्से को जलाया जावे, विषय को जलाया जावे, कषायों को जलाया जावे, कर्मबन्धन को जलाया जावे। 'पर्युषण' यह कर्मों के कचरे को जलाने वाला है और आत्मा को आत्म-गुण के नजदीक लाने के लिये हमारे यहाँ पर्युषण शब्द का व्यवहार चलता है।
- प्रमाद भी आठ। कर्म भी आठ। मद भी आठ। आत्मगुण भी आठ। पर्युषण पर्व के दिन भी आठ। सब आठ हैं। पूर्वाचार्यों ने हमारे सामने बड़ा ही गम्भीर और सुन्दर पथ रखा है। अगर साधक पर्युषण पर्व के आठ दिनों में आत्मा पर लगे एक-एक दुर्गुण को, एक-एक कर्म-बन्धन को, एक-एक मद को और एक-एक प्रमाद को, एक-एक दिन में कम करता जाए तथा आत्मा के एक-एक गुण को चमकाता जाए तो इन आठ दिनों में अपनी आत्मा के सब गुणों को चमका सकता है।
- इन आठ दिनों में क्या जानना, क्या छोड़ना और क्या ग्रहण करना है, इस सम्बन्ध में शास्त्र कहता है कि मोह एवं ज्ञानावरणीय कर्मों को छोड़ना है। मोह के साथ जुड़े आठ मद, जो मानवता को पशुता की ओर ले जाने वाले हैं उन्हें भी छोड़ना चाहिए। मद आठ हैं:-

  १. **जातिमद**- मैं अमुक जाति का हूँ अथवा मेरी जाति ऊँची है, ऐसा मद या घमण्ड करना जाति मद है।

  २. **कुलमद**- मैं उच्च वंश का अर्थात् मंत्री,जागीरदार या राजघराने का हूँ, ऐसा गर्व करना कुलमद है।

  ३. **बलमद**- शरीर आदि के बल का घमण्ड कर दूसरों को दबाना बलमद है। यह भी त्यागने योग्य है।

  ४. **रूपमद**- शरीर की सुन्दरता को निहार कर उसका घमण्ड करना रूपमद है। सनत्कुमार चक्रवर्ती का रूपमद

से ही पतन हुआ। उसके सारे शरीर में कीड़े पड़ गए।

५. **लाभमद-** थोड़ा सा धन मिलने पर अकड़ जाना।

६. **सूत्रमद-** शास्त्रज्ञान का घमण्ड करना। तन से सेवा, धन से दान और ज्ञान से सद्बोध नहीं देकर उनका मद करना त्याज्य है। जैसे तन-धन का मद बुरा है वैसे ही आध्यात्मिक मद भी बुरा है। योग्य होने पर भी दूसरों को अपने जैसा शास्त्रज्ञ, ज्ञानी और तपस्वी आदि नहीं समझना भी त्याज्य है।

७. **तपमद-** अपनी की हुई तपस्या का ढोल पीटना और नहीं करने वालों पर धौंस जमाना तपमद है।

८. **ऐश्वर्यमद-** हुकूमत या सत्ता का घमण्ड करना ऐश्वर्य मद है।

- ये आठों मद छोड़ने योग्य हैं। इसी प्रकार आठ प्रमाद भी छोड़ने योग्य हैं। सारांश यह है कि आठ कर्म, आठ मद और आठ प्रमाद छोड़ना इस पर्व के प्रमुख उद्देश्य हैं ।
- पर्वाधिराज पर्युषण का लक्ष्य आत्मशुद्धि करना है। आत्मशुद्धि के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आचार्यों ने एक व्यवहार, एक आचार पद्धति और एक साधना-क्रम का रूप रखा।
- अगर हम हर घड़ी, हर समय अपनी आत्मा का शोधन नहीं कर सकते तो कम से कम आठ दिनों में तो अवश्य ही करें। आठ कर्मों के निवारण के लिए साधना के ये आठ दिन जैन-परम्परा में अनमोल और आदर्श बन गए हैं। आवश्यक-सूत्र की निर्युक्ति में तथा दूसरे आगमों में बताया गया है कि इन पवित्र दिनों को महत्त्व देने के लिए स्वर्ग के देव भी मनुष्य लोक में आते हैं।
- पर्युषण पर्व के अन्तिम दिन का नाम 'संवत्सरी' है। यह पर्युषण पर्व का महान् शिखर है। सात दिन तो उसकी भूमिका रूप हैं। जिन दिनों साधना में निरत साधक बाहरी वृत्तियों से मन को मोड़कर विषय-कषायों से मुक्त हो आत्मनिरत रहता है, उसी को पर्युषण पर्व कहते हैं ।
- जैसे बांस में पर्व-पोर या गांठ का होनां उसकी मजबूती का लक्षण है, वैसे ही जीवन रूपी बांस में भी यदि पर्व न होगा, तो जीवन पुष्ट नहीं होगा। जीवन-यष्टि की संधि में पर्व लाना, उसे गतिशील बनाना है। साधना का वर्ष भी पर्व से दृढ़ होता है। अन्य पर्वों से विशिष्ट होने के कारण इसे पर्वाधिराज माना गया है। यदि इसे सप्राण बनाना है या सही ढंग से पर्वाराधन करना है और सामाजिक एवं आध्यात्मिक बल बढ़ाना है, तो बच्चे और बूढ़े सभी में साधना की जान डालना, विषय-कषाय को घटाकर मन के दूषित भावों को दूर भगाना, इस पुनीत पर्व का संदेश है।
- पैसे, कीमती वस्त्र और आभूषणादि पर लोगों को प्रेम रहता है, परन्तु ये सब सांसारिक शोभा के उपकरण, उपासना के बाधक तत्त्व हैं। अतः इस महापर्व में जहाँ तक बन पड़े इनसे दूर रहना चाहिए।
- इस आध्यात्मिक दीपावली के पुनीत पर्व के अवसर पर हमने साधारणतः अपने इस सम्पूर्ण जीवन में और विशेषतः वर्ष भर में जो-जो त्रुटियाँ की हैं, जो अपराध किए हैं, दुष्कृत किए हैं, आध्यात्मिक एवं नैतिक पतन के कार्य किए हैं, उनके लिये हमें आन्तरिक दुःख प्रकट करते हुए पश्चात्तापपूर्वक प्रायश्चित्त लेने के साथ-साथ अपने शेष जीवन में उन दुष्कृतों को पुनः कभी अपने आचरण में न लाने का दृढ़ संकल्प करना है। आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिये, आत्मा पर लगी कर्म-कालिमा को धो डालने के लिये, आत्मा के सच्चिदानन्दमय निर्मल, निष्कलंक स्वरूप को प्रकट करने के लिये जितने यम, नियम, जप, तप, शम, दम आदि सुकृत आवश्यक हैं, उन्हें

अपने जीवन में अधिकाधिक ढालने का भी अटल निश्चय करना है।

- पर्युषण के प्रारम्भ संवत्सरी के दिन तक आठ दिन का कार्यक्रम हर भाई-बहिन को ध्यान में रखना है। अन्य प्रकार का व्रत, नियम, त्याग नहीं कर सके, उपवास, पौषध नहीं कर सकें तो इतना ध्यान रखें कि सुबह-शाम सामायिक-प्रतिक्रमण अवश्य करें, व्याख्यान श्रवण का लाभ लें। कुशील का त्याग करना है, रात्रिभोजन का त्याग रखना है। इन दिनों में सिनेमा, चलचित्र, उपन्यास आदि में समय बिताने के बजाय स्वाध्याय का कार्यक्रम रखें। ज्ञानगोष्ठी करके अपने तथा दूसरों के समय का सदुपयोग करें। आठ दिनों तक किसी की निन्दा नहीं करें, किसी को गालियाँ नहीं दें, किसी से लड़ाई नहीं करें, प्रमाद छोड़कर ज्ञान-ध्यान करें।
- जैन धर्म की यह मान्यता है, जैन संस्कृति का यह विधान है कि पर्युषण के दिनों में एक स्थान पर बैठकर ही धर्म-ध्यान करना चाहिए। जहाँ भी पहुँचना है वहाँ पर्युषण से पहले ही पहुँच जायें। यह नहीं कि आज इस स्थान पर गये तो कल दूसरे स्थान पर गये। आठ दिनों में इतने सन्तों या मुनिजनों के दर्शन कर लिये। यह रिवाज देखा-देखी में चल पड़ा है। लेकिन यह स्थानकवासी परम्परा के विरुद्ध है।
- पर्व के दिन पहला काम यह है कि हमारे दिल-दिमाग और व्रत में जो कचरा लगा है, उसको पहले बाहर निकालें। आज के जमाने में हमारा सामाजिक जीवन है, लेकिन व्यक्तिगत शुद्धि की उपेक्षा नहीं करनी है। समाज में रहते हुए सामाजिक जीवन में जो मिलावट, कड़वाहट, विकार आए हैं, उनकी शुद्धि करना भी पर्व के दिन का काम है। पर्व के दिनों में जो काम हो जाता है वह अन्य दिनों में नहीं होता।
- पर्युषण के इन महामंगलकारी पवित्र दिनों में तड़क-भड़क वाली पोशाकों और कीमती आभूषणों के स्थान पर सादी वेश-भूषा में धर्म-स्थान में आवें और अंग पर शील का आभूषण एवं मुख पर मौन का भूषण धारण किये रहें तो आपको पर्वाराधन का और भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

■ पुरुषार्थ

- प्राणिमात्र के हृदय में ज्ञान का भंडार भरा है। कहीं बाहर से कुछ लाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु निमित्त के बिना उसको पाना कठिन है। सुयोग से किसी विशिष्ट निमित्त के मिलते ही उसका उपयोग लिया जाए तो अनायास प्रकाश प्राप्त हो जाता है। जैसे दियासलाई में अग्नि सन्निहित है, केवल तूली के घर्षण की आवश्यकता है वैसे ही मानव की चेतना सद्गुरु से घर्षण पाते ही जल उठती है। आवश्यकता केवल शुभनिमित्त पाकर पुरुषार्थ करने की है।
- भगवान् महावीर ने कहा-'ओ मानव ! यह न समझ कि ईश्वर, दैवी-शक्ति या नियति तुझे दुःख से मुक्त करेगी।
नियति कोई प्राणियों की शास्ता भिन्न शक्ति नहीं, जो तुम्हारे दुःख-सुख का निर्माण करे। तुम्हारे दुःख-सुख का
कारण तुम्हारे भीतर है।' आपका प्रश्न होगा 'तो क्या करें?' उत्तर स्पष्ट है-'पुरुषार्थ करें।' आप कहेंगे 'पुरुषार्थ
तो हम निरन्तर करते आ रहे हैं। ऐसा कौनसा क्षण बीतता है जबकि हम पुरुषार्थ नहीं करते। कीड़े-मकोड़े से
लेकर इन्द्र, महेन्द्र तक कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो पुरुषार्थ नहीं करता हो। लेकिन पुरुषार्थ से कर्म-बंध भी
होता है और मोक्ष भी होता है। शास्त्रकारों ने पुरुषार्थ के दो भेद किये हैं। एक भव-वर्धक अर्थात् बंधन बढ़ाने
वाला पुरुषार्थ और दूसरा भव-छेदक अर्थात् बंधन काटने वाला पुरुषार्थ।
- अ, ब, स, जैसे अक्षरों को भी नहीं पहचानने वाला एक बालक जब स्कूल में जाकर पुरुषार्थ करता है तो चंद

दिनों में अपने आपको अच्छा लिखने लायक, पढ़ने लायक, बोलने लायक और समझने लायक बना लेता है। यदि वह परिश्रम नहीं करता तो उसके ज्ञान का विकास नहीं होता। अन्तर में शक्ति के विद्यमान रहते हुए भी यदि उसे जगाया नहीं गया तो विकास नहीं होगा।

- कामना की पूर्ति का साधन अर्थ है और मोक्ष की पूर्ति का साधन धर्म है। आपको धर्म-पुरुषार्थ करना है। वही बन्धन काटने वाला है।

■ पौषध

- पौषध का अर्थ है -- आत्मिक गुणों का पोषण करने वाली क्रिया। जिस-जिस क्रिया से आत्मा अपने स्वाभाविक गुणों का विकास करने में समर्थ बने, विभाव परिणति से दूर हो और आत्म-स्वरूप के सन्निकट आए वही पौषध है।
- पौषधव्रत अंगीकार करते समय निम्नोक्त चार बातों का त्याग आवश्यक है--

  १. आहार का त्याग।

  २. शरीर के सत्कार या संस्कार का त्याग--जैसे केशों का प्रसाधन, स्नान, चटकीले-भड़कीले वस्त्रों को पहिनना एवं अन्य प्रकार से शरीर को सुशोभित करना।

  ३. अब्रह्म का त्याग।

  ४. पापमय व्यापार का त्याग।
- मन को सर्वथा निर्व्यापार बना लेना संभव नहीं है। उसका कुछ न कुछ व्यापार होता ही रहता है। तन का व्यापार भी चलेगा और वचन के व्यापार का विसर्जन कर देना भी पौषध व्रत के पालन के लिये अनिवार्य नहीं है। ध्यान यह रखना चाहिये कि ये सब व्यापार व्रत के उद्देश्य में बाधक न बन जाएँ। विष भी शोधन कर लेने पर औषध बन जाता है। इसी प्रकार मन, वचन और काया के व्यापार में आध्यात्मिक गुणों का घात करने की जो शक्ति है उसे नष्ट कर दिया जाय तो वह भी अमृत बन सकता है। तेरहवें गुणस्थान में पहुँचे हुए सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहन्त भगवान् के भी तीनों योग विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे उनकी परमात्म दशा में बाधक नहीं होते। इसी प्रकार सामान्य साधक का यौगिक व्यापार यदि चालू रहे, किन्तु वह पापमय न हो तो व्रत की साधना में बाधक नहीं होता।
- पौषधव्रत की आराधना एक प्रकार का अभ्यास है जिसे साधक अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाने का प्रयत्न करता है। अतएव पौषध को शारीरिक विश्रान्ति का साधन नहीं समझना चाहिए। निष्क्रिय होकर प्रमाद में समय व्यतीत करना अथवा निरर्थक बातें करना, पौषध व्रत का सम्यक् पालन नहीं है। इस व्रत के समय तो प्रतिक्षण आत्मा के प्रति सजगता होनी चाहिए। दूसरा कोई देखने वाला हो अथवा न हो, फिर भी व्रत की आराधना आन्तरिक श्रद्धा और प्रीति के साथ करनी चाहिए। ऐसा किये बिना रसानुभूति नहीं होगी। साधना में आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए। जब आनन्द की अनुभूति होने लगती है तो मनुष्य साधना करने के लिए बार-बार उत्साहित और उत्कण्ठित होता है।

■ प्रचार-प्रसार

- जैन धर्म का प्रचार-प्रसार केवल जैन नाम धराने से नहीं होगा , इसके लिए दो बातें चाहिये–(१) शास्त्रानुसार वीतराग धर्म का प्रचार करना और (२) स्वयं जिनाज्ञा का पालन करना।
- धर्म क्षेत्र में प्रचार की अपेक्षा आचार की प्रधानता है। आचार पक्ष मजबूत होगा तो बिना प्रचार भी स्वत: प्रचार हो जाएगा। प्रचार के पीछे ज्ञान दर्शन-चारित्र को ठेस नहीं पहुँचे इस सीमा तक ही प्रचार उपादेय हो सकता है, पर जो प्रचार संयम-साधना और आचार धर्म को ठेस पहुंचाए वह कदापि उपादेय नहीं होता।
- आपको ज्ञान होना चाहिए कि उपाध्याय यशोविजय जी सारे संसार को जैन शासन में लाना चाहते थे–प्रेम भावना से बंधुत्व की भावना से। उन्होंने कहा था– 'सर्व जीव करूं शासन रसी'। कहाँ तो यह भावना और कहाँ आज छोटी-छोटी बातों के कारण एक दूसरे से नाराज होने वाली हमारी मनोवृत्ति? बाप बेटे से नाराज हो जाएगा, भाई-भाई से नाराज हो जाएगा, गुरु शिष्य से नाराज हो जाएगा। यदि किसी धर्म-गुरु ने एक शिष्य को बढ़ावा दिया तो दूसरा सोचेगा कि वह ज्यादा मुँह लग गया तो ठीक नहीं रहेगा। इसलिए वह उस पर रोक लगाने का प्रयत्न करेगा। आज हमारी बंधु भावना सकुचा गई है। एक दूसरे पर विश्वास नहीं करेंगे। इन बातों से कैसे उद्धार होगा?
- कई माताएँ, बहनें प्रचार करने में तगड़ी हैं। पुरुषों को अपने विचारों का प्रचार करना ढंग से नहीं आता। पुरुष जितनी धीमी गति से प्रचार करेंगे, उतनी ही तेज गति से प्रचार करना ये बहनें खूब जानती हैं। जो बहन कुछ भी नहीं करने वाली है, उसमें भी ये ऐसी फूंक मारेंगी कि उसका मन बदल जाएगा।
- एक मदिरा का ठेकेदार स्वयं मदिरा नहीं पीते हुए भी उसका व्यापार कर सकता है। उसी प्रकार सिगरेट, बीड़ी, नायलोन के वस्त्र का व्यापारी इन वस्तुओं का व्यवहार किए बिना भी इनका व्यापार व प्रचार कर सकता है। किन्तु धर्म का प्रचार शुद्ध सदाचारी बने बिना संभव नहीं है।
- जो सत्य, अहिंसा और तप का स्वयं तो आचरण नहीं करे और प्रचार मात्र करे, तो वह अधिक प्रभावशाली नहीं हो सकता। इसके विपरीत, आचरणशील व्यक्ति बिना बोले मौन-आत्म-बल से भी धर्म का बड़ा प्रचार कर सकता है।
- मूक साधकों का दूसरे के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आचार तथा त्याग बिना बोले भी हर व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालता है।
- पहले जैनमुनि सार्वजनिक खुले स्थान वन, उपवन, श्मशान, तरुतल आदि में निवास करते थे। उनकी भिक्षा भी खुली होती थी और जैन मुनियों के सत्संग, त्याग, तप से प्रभावित होकर लोग सेवा करते और उनको अपना गुरु समझ कर धर्म के प्रति निष्ठावान बने रहते थे। जैन श्रमणों की तपश्चर्या और त्याग देखकर उनका धार्मिक विश्वास अटूट बना रहता था, किन्तु आज श्रमणों का निवास, भिक्षा, धर्मोपदेश, वर्षावास आदि समस्त कार्य सामाजिक स्थानों में और एकमात्र जैन समाज की व्यवस्था के नीचे ही होते हैं। अत: जैनेतर जनता व सामान्य लोगों को समान रूप से उनसे धर्मलाभ का अवसर नहीं मिल पाता। जैन मन्दिर आदि धर्म-स्थानों में इतर लोगों का प्रवेश अनधिकृत माना जाता है। यह अधिकार व संकीर्णवृत्ति भी जैन धर्म के प्रसार में बाधक बन रही है।
- पहले जब जैनधर्म को राज्याश्रय प्राप्त था तब धार्मिक व्यक्तियों को व्यावहारिक जीवन में भी राज्य एवं समाज

से सहयोग व सम्मान मिलता रहता था। धार्मिक वात्सल्य के कारण उस समय लोगों को अभाव, खिन्नता और दीनता का शिकार नहीं होना पड़ता था, क्योंकि धर्म का सम्बन्ध सभी सम्बन्धों से श्रेष्ठ, उच्च व अधिक महत्त्व का माना जाता था। अतः लोगों में सहज ही धर्म के प्रति आकर्षण व प्रेरणा जागृत होती रहती थी।

- आज का जैन समाज विभिन्न वर्गों एवं जातियों में बंटकर पारस्परिक द्वेष और कलह का शिकार हो गया है। धर्म के नाम पर की जाने वाली आज की सेवा तथा वात्सल्य भाव संकीर्ण और सीमित बन गया है। लोगों को धार्मिक सम्बन्ध से जो वात्सल्य व सेवा पहले प्राप्त होती थी, वह आज नहीं मिल पाती है। वत्सलता व उदारता जो धर्म के प्रसार व विस्तार के मुख्य कारण में से है, उसकी कमी से आज चाहिए जैसा धर्म का विस्तार नहीं हो पा रहा है।
- साधु या श्रावक आज अजैनों को समझायें कि जैनधर्म मानव मात्र के कल्याण का मार्ग है। इसमें साधना की तीन श्रेणियां निर्धारित हैं। जो व्यक्ति आत्मबल की मंदता से व्रत-नियम को धारण नहीं कर सकते, वे भी सरल मन से तत्त्वातत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर पाप को पाप और धर्म को धर्म मानते हुए हृदय से सम्भलकर चलें। ऐसे व्यक्ति सम्यग्दर्शन की प्रथम भूमिका के अधिकारी हो सकते हैं। दूसरे में पाप को पाप समझ कर, उसकी मर्यादा करने वाला यथास्थिति पाप को घटाने वाला देशविरत हो सकता है। तीसरे में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि का सम्पूर्ण त्याग करना है। इसके अधिकारी साधु-सन्त एवं साध्वी वर्ग होते हैं।
- सम्यग्दर्शी पुरुष जो त्याग नहीं करते हुए भी दोष को दोष मानकर यह श्रद्धा रखता है कि पाप छोड़ने योग्य है, उसके त्याग से ही मेरा कल्याण है, आरम्भ-परिग्रह में रहते हुए भी वह सम्यग्दर्शी जैन कहला सकता है। इस प्रकार अजैन जनों के हृदय में जब हम जैनधर्म के मर्म को गहरे बैठायेंगे तथा अपनी उदारता, सरलता, सदाशयता का प्रभाव उन पर डालेंगे, तभी इस धर्म का अधिकाधिक प्रचार हो सकता है। श्रीमन्तों को चाहिए कि वे अपनी सम्पत्ति का अधिक से अधिक उपयोग धर्म के प्रचार व प्रसार में करें।
- त्यागियों को, चाहे कैसी भी विषम स्थिति क्यों न आ जाय, अपने त्याग का तेज एवं तप का ओज नहीं घटाना चाहिए। तत्त्व को सरल करके समझाना और जन साधारण में व्याप्त इस भ्रांति को कि जैनधर्म व्यक्ति विशेष के ही पालने योग्य है, दूर करना आवश्यक है। जन-साधारण को यह बता देना चाहिये कि पाप को पाप मानकर त्यागने की इच्छा वाला कोई भी दयालु गृहस्थ जैन बन सकता है। छत्रपति राजा से लेकर एक मजदूर भी जैनधर्मी हो सकता है। इस प्रकार भ्रांति दूर होने से सामान्य जन भी जैनधर्म की आराधना कर सकेंगे। दूसरी बात, उन्हें त्यागियों के निकट लाने के लिये जैन गृहस्थ अपनी सेवानिवृत्ति बढ़ायें और मिशनरी (धर्म प्रचारक) की तरह जन-साधारण से प्रेम बढ़ावें तो जैनधर्म का प्रचार व विस्तार हो सकता है।

■ प्रतिक्रमण

- प्रतिक्रमण का मतलब है पीछे हटना अर्थात् दोषों से हटकर आत्मा को मूल स्थिति में ले आना। 'प्रति' यानी 'पीछे' दोष की ओर जो कदम बढ़ा है, मर्यादा से बाहर आये हुए उन चरणों को पीछे हटाकर मूल स्थान पर स्थापित करना, इसका नाम 'प्रतिक्रमण' है।
- प्रतिक्रमण करने वाले भाई-बहन को चाहिए कि वे अपने जीवन में लगे दोषों का संशोधन करके आत्मा को उज्ज्वल करें। इसीलिए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान का विधान भगवान ने श्रावक और साधु सभी के लिए

किया है।

- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग से जो कचरा आया है, उसे चिन्तन द्वारा बाहर निकालना, पीछे हटाना इसका नाम है 'प्रतिक्रमण'।
- जो लोग कहते हैं कि सूत्रों का और प्रतिक्रमण का हिन्दी में अनुवाद कर देना चाहिए, उनको समझना चाहिए कि हिन्दी का अनुवाद करके मूल को हटा देंगे तो आपको उन सूत्रों की मूल प्राकृत भाषा का ज्ञान नहीं रहेगा, मूल सूत्र का वाचन बंद हो जाएगा। इसके अतिरिक्त भाषा में अनुवाद करते समय यह समस्या भी आयेगी कि किस भाषा में अनुवाद किया जाए? भारत में तो राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, सिन्धी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाएँ हैं। यदि कोई कहे कि सभी भाषाओं में अनुवाद कर दिया जाए तो भी दिक्कत आयेगी। कल्पना करिए, एक ही स्थानक में बैठे विभिन्न भाषा-भाषी लोग अपनी-अपनी भाषा में सामायिक के पाठ बोलेंगे तो कैसी हास्यास्पद स्थिति हो जाएगी। एकरसता भी नहीं रहेगी। और सब से बड़ी बात तो यह है कि मूल पाठों में जो उदात्त और गुरुगंभीर भाव भरे हैं वे अनुवाद में कभी नहीं आ सकते। इसलिए पाठों का मूल भाषा में रहना सर्वथा उचित और लाभकारी है। इसी से हमारी प्राचीन धार्मिक परम्परा और धर्मशास्त्रों की भाषा अविच्छिन्न रह सकती है। साथ ही आज जो सामायिक करते समय या शास्त्र पढ़ते समय हम इस गौरव का अनुभव करते हैं कि हम वीतराग प्रभु के मुख से निसृत वाणी का पाठ कर रहे हैं, वह भी अक्षुण्ण रह सकता है।
- आज के युग की यह विशेषता और विचित्र प्रवृत्ति है कि आदमी भूल करने पर भी अपनी उस भूल अथवा गलती को मानने को तैयार नहीं होता। बहुत से लोग तो दोष स्वीकार करना मानसिक दुर्बलता मानते हैं। शास्त्र कहते हैं कि जो जातिमान, कुलमान, ज्ञानवान् और विनयवान् होगा वही अपना दोष स्वीकार करेगा। आध्यात्मिक क्षेत्र में दोषी स्वयं अपने दोष को प्रकट कर पश्चात्ताप करता है। जीवन-शुद्धि के लिए यह आवश्यक है कि साधक सूक्ष्म दृष्टि से प्रतिदिन अपना-स्वयं का निरीक्षण करता रहे। नीतिकार ने कहा है कि-'प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।' कल्याणार्थी को प्रतिदिन अपने चरित्र का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करना चाहिए।
- प्रतिक्रमण केवल पाटियाँ बोलने से ही पूरा नहीं होता है। यह तो एक साधना है जिससे दोष सरलता से याद आ जावें। इसलिए आचार्यों ने, शास्त्रकारों ने प्रतिक्रमण की पाटियाँ आपके सामने रखी हैं। पाठ तोते की तरह बोले गये, मिच्छामि दुक्कड़ं, जहाँ आया, वहाँ मुँह से कह दिया, लेकिन किस बात का 'मिच्छामि दुक्कड़ं' इसका पता नहीं। दैनिक व्यवहार करते यदि झूठ बोला गया, माप-तोल में ऊँचा-नीचा हो गया, किसी से कोई बात मंजूर की, लेकिन बाद में वचन का पालन नहीं किया, कभी चोरी का माल ले लिया, चोरों की मदद दी या तस्करी करने में हाथ रहा हो तो उसके लिए अपनी आत्मा से पश्चात्ताप करने का खयाल होना चाहिए। प्रतिक्रमण करने वाले भाई-बहिन जीवन में दोष का संशोधन करके उसको उज्ज्वल करें।

■ प्रदर्शन

- एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय पर छींटा-कसी करते हैं, धब्बा या लांछन लगाने की कोशिश करते हैं, ऐसी स्थिति में उनका धर्म-स्थान पर बैठना लाभकारी नहीं होता। माला फेरते-फेरते, भजन

करते-करते चार आदमी बाहर से दूसरे आ गये तो मंदिर में बैठा हुआ भक्त जो धीमे-धीमे भजन कर रहा था, वह इनको देख कर जोर से करने लगता है और वे चार आदमी चले गये तो फिर पहले जैसा हो जाता है—इधर-उधर देखने लगता है। यह सब क्यों होता है? जब, तक ज्ञान पर पर्दा पड़ा है तब तक ऐसा होता है। हमको और आपको क्रिया करके अज्ञान का पर्दा दूर हटाना है और ज्ञान की ज्योति बढ़ानी है।

- धर्म-स्थान में आने वाले भाई-बहनों से कहना यह है कि सबसे पहले ध्यान यह रखा जाए कि अपरिग्रहियों के पास जाते हैं तो ज्यादा से ज्यादा अपरिग्रहियों का रूप धारण करके जाना चाहिए।

- आपके सन्त इतने अपरिग्रही और आप धर्मस्थान में आते समय सोचें कि बढ़िया सूट पहनकर चलें। बाई सोचती है कि सोने के गोखरू हाथों में पहन लें, सोने की लड़ गले में डाल लें, सोने की जंजीर कमर में बांध लें यहाँ तक कि माला के मनके भी लकड़ी चन्दन के क्यों हों, चाँदी के दानों की माला बनवा लें, तो यह सोच ठीक नहीं।

- एक बाई से यह पूछा कि आप व्याख्यान में क्यों नहीं आतीं? वह कहने लगी-"बापजी! जीव तो घणो ही टूटे है कि व्याख्यान में आऊँ, पण कांई करूं अकेली हूँ, पेरण ने जेवर नहीं है। दागीना बिना पहने जाऊँ तो घर की इज्जत जावे।" आपने इस तरह का वातावरण समाज में बना रखा है। इस वातावरण के कारण व्याख्यान में आने से वंचित रहना पड़ता है। यह गलत रूप है। सोने के आभूषणों से आत्मा की कीमत नहीं, आत्मा की कीमत है सदाचार से, प्रामाणिकता से और सद्गुणों से।

- भगवान् महावीर ने अन्न-जल की तरह अल्प वस्त्र धारण करने को भी तप कहा है। मनुष्य यदि अधिक संग्रही बनेगा, तो उससे दूसरों की आवश्यकता-पूर्ति में कमी आयेगी। फलस्वरूप आपस में वैर-विरोध तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होगी। संग्रही पुरुष को रक्षण की उपधि और ममता का बन्धन रहेगा, जिससे वह शान्तिपूर्ण गमनागमन नहीं कर सकेगा। अतः व्रती को सादे जीवन का अभ्यास रखना चाहिये। धार्मिक-स्थलों में खासकर बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों को दूर रखना चाहिये, क्योकि धर्म-स्थान में धन-वैभव का मूल्य नहीं, किन्तु साधना का महत्त्व है।

- आभरण खासकर प्रदर्शन की वस्तु है। लोग सुन्दर आभूषणों से दर्शकों को आकर्षित करते हैं। सर्वप्रथम तो आभूषण-धारण करने से दर्शकों के मन में ईर्ष्या और लालसा जागृत होती है; दूसरे में संग्रह और लोभवृत्ति का विकास होता है। वासना जगाने का भी आभूषण एक महान कारण माना जाता है। वस्त्राभूषणों से लदकर चलने वाली नारियाँ अपने पीछे आँखों का जाल बिछा लेती हैं और स्थिर प्रशान्त मन को भी अस्थिर एवं अशान्त कर देती हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि नारी का तन जितना रागोत्पादक नहीं होता, ये वस्त्राभूषण उससे अधिक राग-रंगवर्द्धक होते हैं।

- जहाँ देखो वहीं दिखावट है। शान-शौकत के लिए लोग आडम्बर करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपमें जो है, उससे अन्यथा ही अपने को प्रदर्शित करना चाहता है। अमीर अपनी अमीरी का ठसका दिखलाता है। गरीब उसकी नकल करते हैं और अपने सामर्थ्य से अधिक व्यय करके सिर पर ऋण का भार बढ़ाते हैं। इन अवास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के अनैतिक उपायों का अवलम्बन लेना पड़ता है। इस कारण व्यक्ति, व्यक्ति का जीवन दूषित हो गया है और जब व्यक्तियों का जीवन दूषित होता है तो सामाजिक जीवन निर्दोष कैसे हो सकता है?

- समाज में जो लोग ज्यादा पूँजी वाले हैं, वे सोचते हैं कि अपने घर में लड़की की शादी है, शादी ऐसी करनी चाहिये कि लोग देखते ही रह जायें। पहले के श्रावकों के तो परिग्रह का परिमाण होता था। इसके अतिरिक्त सामाजिक नियम भी होते थे। उन नियमों का समाज के सभी लोगों द्वारा पूरी तरह समान रूप से पालन किया जाता था। विवाह आदि के अवसर पर पंचों के परामर्श के अनुसार सब कार्य किया जाता था। चाहे करोड़पति के घर विवाह हो, चाहे लखपति के घर, पंचों की रजा लेनी पड़ती थी। पंच लापसी बनाने की राय देते तो पंचों की राय के मुताबिक लापसी ही बनाई जाती थी। आज तो कोई नया लखपति, करोड़पति बनता है और उसके यहाँ शादी-विवाह का प्रसंग आता है, तो वह कहता है - मैं तो पाँच प्रकार की मिठाई करूँगा। फिर कहता है - बादाम की कतली करूँगा। ऐसा कहते और करते समय वह यह नहीं सोचता कि उसके पीछे मध्यम वर्ग के भाई पिस जायेंगे। यह सब आडम्बर एवं दिखावे की वृत्ति का तथा परिग्रह के परिमाण के अभाव में परिग्रह-परिवर्द्धन और परिग्रह-प्रदर्शन की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का कुपरिणाम है।

■ प्रमाद

- जिससे जीव मस्त बने, भान भूले, वह प्रमाद है। प्रमाद का कारण होने से मद्य को भी प्रमाद कहा गया है। विषय और कषाय भाव प्रमाद हैं। क्रोध, लोभ या काम के वशीभूत मानव कितना बेसुध हो जाता है, किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। आचार्यों ने कहा है-

  'मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा पंचमी भणिया।
  ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे॥

- राग में मृग और नाग सुध-बुध भूल जाते और प्राण गँवाते हैं। जल में मस्त नाचने वाली मछली जाल में क्यों फंसती है? रसना का प्रमाद ही तो उसे बेसुध बनाता है। शास्त्र में पाँच कारण ज्ञान नहीं आने के बतलाए हैं - "थंभा, कोहा, पमाएणं रोगेणालस्सएण य"। उनमें प्रमाद प्रमुख है।
- प्रमाद साधक को पीछे हटाने वाला है। शास्त्रकार ने इसे आत्मधन हरण करने वाला लुटेरा कहा है। यह सर्वविरति को भी नीचे गिरा देता है। प्रमाद का जब उग्ररूप होता है तो दीर्घकाल का संयम-साधक भी विराधक बन जाता है। इसको बंध में तीसरा कारण बतलाया है। प्रमाद के मुख्य दो भेद हैं - १. द्रव्य प्रमाद और २. भाव प्रमाद। निद्रा, विकथा आदि बाह्य प्रमाद में इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। इसीलिए प्रमाद की व्याख्या करते हुए कहा है-'प्रकर्षेण माद्यति जीवं मोहयतीति प्रमादः।'
- संसार के प्रमादी प्राणी वीतराग की ज्ञानज्योति में भी अपने को भूले रहते हैं। मोह की प्रबलता और अज्ञान इसके प्रधान कारण हैं। आनन्द श्रावक ने प्रमाद पर नियंत्रण किया था। अनावश्यक प्रमाद उसके जीवन को छू ही नहीं सकता था। यही कारण है कि वह भगवान के उपदेश पर विचार कर सका और आचार में भी ला सका। आज का मानव इतना प्रमत्त बना हुआ है कि उसका अधिकांश समय विकथा, खेल, घूमना या शरीर मंडन में ही पूरा हो जाता है। कौटुम्बिक आवश्यकता के बढ़ने पर कदाचित् समय निकाल लेता है, मित्रों के साथ घूमने का भी समय मिल जाता है, पर स्वाध्याय के लिए समय नहीं, कारण क्या?
- केवल प्रमाद में खाली समय बिताने की अपेक्षा सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन या धर्मचर्चा की जाये। मानसिक जप भी खाली समय में किया जा सकता है।

- द्रव्य-निद्रा सहज उड़ाई जा सकती है, पर जो व्यक्ति मोह भावनिद्रा में हो उसको जगाना सहज नहीं है। इसीलिए कहा है-

  जो काल करे सो आज ही कर, जो आज करे वह अब कर ले।
  जब चिड़िया खेती चुग डारी, फिर पछताये क्या होवत है।।

- शास्त्र और सत्संग, साधना के लिए प्रेरणा देते हैं, किन्तु प्रमाद साधक को पीछे धकेल देता है, जिसे शास्त्रों ने प्रमुख लुटेरा कहा है। सर्वविरति मार्ग के साधक को भी प्रमाद नीचे गिरा देता है और जब इसका रूप उग्र हो जाता है, तब मानव आराधक के बदले विराधक बन जाता है।
- जिसमें या जिसके कारण जीव भान भूले, वह प्रमाद है। शब्द-शास्त्र में कहा है-"प्रकर्षेण माद्यति जीवो येन स प्रमादः।" प्रमाद में मनुष्य करणीय या अकरणीय का विवेक भूल जाता है, उन्मत्त हो जाता है। विषयों में भी प्राणी मत्त हो जाता है तब साधना नहीं कर पाता। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाय रूप प्रमाद हैं। ये जीवन-निर्माण के बाधक तत्त्व हैं, जो विरति भाव को जागृत नहीं होने देते। सच्चरित्र का पालन नहीं करने देते। ये आत्मा के भान को भुला देते हैं और जीवन को लक्ष्यहीन बना देते हैं।
- आचारांग-सूत्र में भगवान् महावीर ने सन्तों से कहा कि आज्ञा पालन में प्रमाद न करो और आज्ञा के बाहर उद्यम न करो, क्योंकि ये दोनों अवांछनीय हैं।
- मन के सूनेपन को हटाने के लिए इन्द्रियों को सत्कार्य में, मन को प्रभु-स्मरण, धर्म-ध्यान और शुभ-चिन्तन में तथा वाणी को स्वाध्याय में लगाया जाय, तो प्रमाद को स्थान नहीं मिलेगा।

■ प्राणि-रक्षा

- कांटे और फूल दोनों की अपने-अपने स्थान में उपयोगिता है, वैसे ही सांप, बिच्छु, कुत्ते और कौए आदि निरर्थक लगने वाले प्राणधारियों का भी उपयोग और महत्त्व है। जो लोग समझते हैं कि हिंसक जीवों को मारना धर्म है, वे भूल करते हैं। यदि इसी प्रकार पशु जगत् यह खयाल करे कि मानव बड़ा हत्यारा और खूंखार है उसे मार भगाना चाहिए तो इसे आप सब कभी अच्छा नहीं कहेंगे। इसी तरह अन्य जीवों की स्थिति पर भी विचार करना चाहिए। संसार में रहने का अन्य जीवों को भी उतना ही अधिकार है जितना कि मनुष्य को। सबके साथ मैत्री बना कर रहना चाहिए। अपनी गलती के बदले दूसरों को बड़ा दंड देना अच्छा नहीं। इस प्रकार की हिंसा से प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावना बढ़ती है, जो संसार के लिए अनिष्टकारी है।

■ प्रामाणिकता

- जिस व्यापारी की प्रामाणिकता (साख) एक बार नष्ट हो जाती है उसे लोग अप्रामाणिक समझ लेते हैं। उसको व्यापारिक क्षेत्र में भी हानि उठानी पड़ती है। आप भली-भांति जानते होंगे कि पैठ अर्थात् प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा व्यापारी की एक बड़ी पूंजी मानी जाती है। जिसकी पैठ नहीं वह व्यापारी दिवालिया कहा जाता है। अतएव व्यापार के क्षेत्र में भी वही सफलता प्राप्त करता है, जो नीति और धर्म के नियमों का ठीक तरह से निर्वाह करता है।
- श्रावक-धर्म में अप्रामाणिकता और अनैतिकता को कोई स्थान नहीं है। व्यापार केवल धन-संचय का ही उपाय नहीं है। अगर विवेक को तिलांजलि न दी जाय और व्यापार के उच्च आदर्शों का अनुसरण किया जाय तो वह

समाज की सेवा का निमित्त भी हो सकता है। प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति करना अर्थात् जहाँ जीवनोपयोगी वस्तुएँ सुलभ नहीं हैं, उन्हें सुलभ कर देना व्यापारी की समाज-सेवा है, किन्तु वह सेवा तभी सेवा कहलाती है जब व्यापारी अनैतिकता का आश्रय न ले, एकमात्र अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर अनुचित लाभ न उठावे।

■ प्रायश्चित्त

- राज्य-शासन में तो दोषी के दोष दूसरे कहते हैं, पर धर्म-शासन में दोषी स्वयं अपने दोष गुरु चरणों में निश्छल भाव से निवेदन कर प्रायश्चित्त से आत्म-शुद्धि करता है। धर्मशासन में प्रायश्चित्त को भार नहीं माना जाता। आत्मार्थी शिष्य प्रायश्चित्त के द्वारा आत्मशुद्धि करने वाले गुरु को उपकारी मानता है और सहर्ष प्रायश्चित्त का अनुपालन करता है।

■ प्रार्थना/स्तुति

- वीतराग भगवान् के भजन से भक्त को उसी प्रकार लाभ मिलता है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों के सेवन से और वायु के सेवन से रोगी को लाभ होता है। एक आदमी गन्दी गलियों की हवा का सेवन करता है, रात-दिन उसी में पड़ा रहता है और दूसरा प्रभात के समय उद्यान की शुद्ध वायु का सेवन करता है। शुद्ध वायु के सेवन से दिल और दिमाग में ताजगी का अनुभव होता है, शरीर में हल्कापन महसूस होता है। यही बात वीतराग के भजन पर भी लागू होती है। वीतराग के भजन से चित्त शुद्ध होता है।
- शारीरिक रोगों के समान संसारी जीव आध्यात्मिक रोगों से भी ग्रसित हैं। जब वे किसी रागी द्वेषी का स्मरण करते हैं तो उनकी आत्मा राग और द्वेष से अधिक ग्रस्त होती है, परन्तु जब वीतराग परमात्मा का स्मरण किया जाता है तो राग की आकुलता की और शोक के सन्ताप की उपशान्ति हो जाती है।
- यदि प्रार्थना का संबल लेकर चलोगे तो मन में ताकत आएगी। मगर वह ताकत उपाश्रय तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए। उसका उपयोग बाहरी जगत् में होना चाहिए। धर्म-स्थान पावर हाउस के समान है। पावर हाउस में उत्पन्न हुई पावर यदि अन्यत्र काम न आई तो उसकी सार्थकता ही क्या है?
- एक व्यक्ति बड़ा क्रोधी है, घमंडी है, लालची है, तमोगुणी है, परन्तु वह उज्ज्वल भाव से प्रार्थना करेगा तो चन्द दिनों में ही उसे आभास होने लगेगा कि मेरी क्रोध की प्रकृति में कुछ मन्दता आ गई है।
- आत्मा अपूर्ण और परमात्मा पूर्ण है। जहाँ अपूर्णता है वहाँ प्यास है, ख्वाइश है, प्रार्थना है। अपूर्ण को जहाँ पूर्णता दिखती है, वहीं वह जाता है और अपनी अपूर्णता को दूर करने का प्रयास करता है।
- मनुष्य जड़भाव में भटक रहा है, मगर जब उसे सम्यग्ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, तब वह दुनियां के पदार्थों को अपने लिए अनुपयुक्त और निस्सार समझकर उनसे विलग होने लगता है और परमात्मा के गुणों का मकरन्द ग्रहण करने के लिए लालायित हो उठता है। वह सोचता है—परमात्मा के अनन्त ज्ञान-दर्शन की जो लोकोत्तर ज्योति जगमगाती रहती है, वही मुझमें भी स्वभावतः विद्यमान है, मगर वह मुरझाई हुई है, आवृत्त हो रही हैं। मैं उस ज्योति का स्मरण करूँगा, ध्यान करूँगा, चिन्तन करूँगा, प्रार्थना करूँगा और उसकी महिमा का गान करूँगा तो मेरी अन्तरात्मा में भी वह प्रज्वलित हो उठेगी। तब मैं भी परमज्योति परमात्मा का पद प्राप्त कर लूँगा।

- जिस प्रकार सूर्य की किरणों को आत्मसात् कर लेने वाला दर्पण तेजोमय बन जाता है, उसी प्रकार आत्मा जब स्मरण-ध्यान के माध्यम से परमात्मा की परमज्योति अपने में प्रज्वलित करता है तब वह भी लोकोत्तर तेजोनिधान बन जाता है।
- प्रार्थना का अर्थ है परमात्मा के साथ रुख मिल जाना और दोनों के बीच कोई पर्दा नहीं रहना। तब परमात्मा के गुण आत्मा में स्वतः प्रकट होने लगते हैं।

  अन्तःकरण से प्रार्थना करने वाले प्रार्थी को प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण करते-करते इतना भावमय बन जाना चाहिए कि उसके रोंगटे खड़े हो जाएँ। अगर प्रभु की महिमा का गान करे तो पुलकित हो उठे और अपने दोषों का पिटारा खोले तो रुलाई आ जाए। समय और स्थान का ख्याल भूल जाए, सुधबुध न रहे। ऐसी तल्लीनता, तन्मयता और भावावेश की स्थिति जब होती है तभी सच्ची और सफल प्रार्थना होती है। ऐसी तन्मयता की स्थिति में मुख से निकला शब्द और मन का विचार वृथा नहीं जाता। जब शान्त, स्वच्छ और जितेन्द्रिय होकर प्रार्थी प्रार्थना करता है, तभी ऐसी अपूर्व स्थिति उत्पन्न होती है।
- प्रार्थना का प्राण भक्ति है। जब साधक के अन्तःकरण में भक्ति का तीव्र उद्रेक होता है, तब अनायास ही जिह्वा प्रार्थना की भाषा का उच्चारण करने लगती है, इस प्रकार अन्तःकरण से उद्भूत प्रार्थना ही सच्ची प्रार्थना है।
- वीतराग का स्मरण करेंगे तो अन्तःकरण में जो राग का कचरा भरा हुआ है, वह कचरा दूर होगा और वीतरागता प्रकट होगी। यह प्रत्यक्ष अनुभव भी है कि पानी में छोटी सी जड़ी-निर्मली डाल दी जाती है तो उसके संयोग से पानी निर्मल हो जाता है। निर्मली जड़ी रूपी जड़ पदार्थ की संगति जब पानी को साफ कर देती है तो अनन्त शक्तिशाली विशुद्ध चैतन्य वीतराग की संगति से आपके मन का पानी गन्दा नहीं रह सकता। अगर गंदा रहता है, तो समझें कि आपने इस दवा का पूरी तरह से प्रयोग नहीं किया है।
- जिन्हें सच्चे सुख की झांकी नहीं मिली है और इस कारण जो विषय-जन्य सुखाभास को ही सुख समझे हुए हैं, उनकी बात छोड़िये, परन्तु जिन्हें सम्यग्दृष्टि प्राप्त है और जो विषय-सुख को विष के समान समझते हैं और आत्मिक सुख को ही उपादेय मानते हैं जो वीतराग और कृत-कृत्य बनना चाहते हैं, निश्चय ही उन्हें कृत-कृत्य और वीतराग देव की और उनके चरण चिह्नों पर चलने वाले एवं उस पथ के कितने ही पड़ाव पार कर चुकने वाले साधकों-गुरुओं की ही प्रार्थना करनी चाहिये। देव का पहला लक्षण वीतरागता बतलाया गया है-**'अरिहन्तो मह देवो।' 'दसट्ठ दोसा न जस्स सो देवो।'**
- राग-द्वेष अज्ञान आदि १८ दोष जिनमें नहीं हैं वे देव हैं। जिनकी प्रार्थना करने से हम सदा के लिये आकुलता से मुक्त हो सकते हैं और जिनकी प्रार्थना हमें तत्काल शान्ति प्रदान करती है, वे ही हमारे लिये प्रार्थ्य हैं और वे अरिहन्त तथा सिद्ध ही हो सकते हैं। वहाँ प्रार्थना के असफल होने का कोई खतरा नहीं है, क्योंकि एक क्षण के लिये भी अगर हमारा चित्त वीतराग देव में तल्लीन हो जाता है, तो निश्चय ही उस तल्लीनता के अनुरूप फल की प्राप्ति होगी, किन्तु सरागी देव की सांसारिक पदार्थों के लिये की जाने वाली प्रार्थना में यह बात नहीं है।
- प्रार्थी को प्रार्थ्य के अनुरूप ही वेष और व्यवहार बनाना पड़ता है, उसके साथ अधिक से अधिक साम्य स्थापित करने का प्रयत्न करना होता है। किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न में यदि हार्दिकता न हुई और निखालिस दम्भ ही हुआ तो प्रायः अनुकूल प्रभाव पड़ने की कम और प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की अधिक संभावना रहती है। हार्दिकता पूरी है तो सफलता की आशा भी पूरी की जा सकती है।

- हमारी प्रार्थना के केन्द्र यदि वीतराग होंगे तो निश्चित रूप से हमारी मनोवृत्तियों में प्रशस्तता और उच्च स्थिति आएगी। उस समय सांसारिक मोह-माया का कितना भी सघन पर्दा आत्मा पर क्यों न पड़ा हो, किन्तु वीतराग-स्वरूप का चिन्तन करने वाले उसे धीरे-धीरे अवश्य हटा सकेंगे।
- जिसने वीतराग की प्रार्थना कर ली हो, जो वीतराग की प्रार्थना के सुधा-सागर में अवगाहन कर चुका हो, जिसका मन-मयूर वीतराग की प्रार्थना में मस्त बन चुका हो, उसका मन कभी भैरू की प्रार्थना से सन्तुष्ट होगा ? भवानी की प्रार्थना में आनन्दानुभव कर सकेगा? काली, महाकाली आदि सराग देवों की ओर आकर्षित होगा? कदापि नहीं।
- वीतराग की प्रार्थना में क्षीर समुद्र के मधुर अमृत से भी अनन्तगुणा अधिक माधुर्य एवं आत्मिक गुणों की मिठास है। उस मिठास में राग और द्वेष का खारापन नाम मात्र भी नहीं है।
- जब प्रार्थना आराध्य के प्रति हार्दिक प्रीति से उत्पन्न होती है, तब उसमें अनूठा ही मिठास होता है। जब प्रार्थना अन्तस्तल से उद्भूत होती है और जिह्वा उसका वाहन मात्र होती है तभी प्रार्थना हार्दिक कहलाती है और उसके माधुर्य की तुलना नहीं हो सकती।
- प्रार्थना के दो रूप हैं—भौतिक—लौकिक प्रार्थना और आध्यात्मिक—लोकोत्तर प्रार्थना । वीतराग देव को प्रार्थना का केन्द्र बनाने वाला यदि मन से जागृत है तो वह उनसे भौतिक प्रार्थना नहीं करेगा। कदाचित् कोई भूला भटका, दिग्भ्रान्त होकर भौतिक प्रार्थना करने लगे तो वीतरागता का स्मरण आते ही वह सन्मार्ग पर आ जायेगा। वीतरागता की प्रार्थना की यह एक बड़ी खूबी है।
- हमारे साहित्य में प्रार्थना के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। वर्गीकरण किया जाय तो तीन विभागों में उन सबका समावेश होता है - १. स्तुतिप्रधान प्रार्थना २. भावनाप्रधान प्रार्थना, ३. याचनाप्रधान प्रार्थना।
- स्तुतिप्रधान प्रार्थना में प्रार्थ्य के गुणों का उत्कीर्तन किया जाता है । उन गुणों के प्रति प्रार्थी अपना हार्दिक अनुराग व्यक्त करता है और प्रार्थ्य की विशेषताओं के साथ अपनी अभिन्नता स्थापित करने की चेष्टा करता है। स्तुतिप्रधान प्रार्थना में जब भावना की गहराई उत्पन्न हो जाती है तो प्रार्थी अपने प्रार्थ्य के विराट् स्वरूप में अपने व्यक्तित्व को विलीन करके एकाकार बन जाता है।
- स्तुतिप्रधान प्रार्थना सभी प्रार्थनाओं में उत्तम मानी गई है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रार्थ्य और प्रार्थी के बीच का पर्दा दूर किया जाता है। इसमें किसी भी प्रकार की कामना की अभिव्यक्ति नहीं होती।
- दूसरी श्रेणी की प्रार्थना होती है भावनाप्रधान। इस श्रेणी की प्रार्थना में भी स्तुति का अंश पाया जा सकता है, तथापि उसका प्रधान स्वर आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करना होता है। इस प्रार्थना में साधक या प्रार्थी अपने मन को सबल बनाने के लिए शुभ संकल्प करता है।
- तीसरे प्रकार की प्रार्थना होती है - याचना प्रधान। इस प्रार्थना में स्तुति और भावना भी विद्यमान रह सकती है, तथापि मुख्यता याचना की ही होती है।
- याचना प्रधान स्तुति के भी दो विभाग किये जा सकते हैं। एक प्रकार की स्तुति वह है जिसमें अपने आराध्य से आध्यात्मिक वैभव की याचना की जाती है और दूसरे प्रकार की स्तुति वह है जिसमें भौतिक वस्तुओं की याचना की जाती है।

- विषय-विकार को दूर करके जो भक्तजन स्तुतिप्रधान एवं भावना-प्रधान प्रार्थना करते हैं, उनके जीवन में निर्मलता आ जाती है। हाँ, अगर याचनाप्रधान स्तुति करनी हो तो भौतिक एवं सांसारिक पदार्थों की याचना न करते हुए आत्मिक वैभव की ही याचना करनी चाहिए, जैसे–'सुमति दो सुमतिनाथ भगवन् !'
- भगवद् भक्ति द्वारा साधक पुण्यार्जन भी करता है और पुण्य के योग से उसे भौतिक साधन अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं। कृषक धान्यप्राप्ति के लिए कृषि करता है, मगर भूसा भी उसे प्राप्त होता है। भूसे के उद्देश्य से कृषि करने वाला कृषक विवेकशील नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आत्मिक विकास के लिए ही भगवद्भक्ति अथवा प्रार्थना करना उचित है। इस प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ध्येय से भ्रष्ट होकर केवल लौकिक लाभ के उद्देश्य से भगवान् की भक्ति करना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं हैं। भौतिक साधन तनबल, धनबल, कुटुम्बबल, मानप्रतिष्ठाबल, आदि तो उसके आनुषंगिक फल हैं। इन्हें प्रधान ध्येय बनाने वाला साधक अपने आपको महान् फल से वंचित कर लेता है। अतएव आध्यात्मिक प्रार्थना में आंतरिक विकास की ओर ही दृष्टि रहनी चाहिए।
- आन्तरिक गुणों के विकास के प्रधान ध्येय को दृष्टि में रख कर ही यह विधान किया गया है कि प्रार्थनीय अरिहन्त हों, सिद्ध हों या साधना के पथ पर अग्रसर हुए निर्ग्रन्थ महात्मा हों। जब स्तुति के द्वारा अरिहन्त की प्रार्थना की जाएगी तो उनकी विशेषताएं—महिमाएं प्रार्थी के समक्ष आयेंगी, उनके प्रति अन्तःकरण में आकर्षण उत्पन्न होगा, वे उपादेय प्रतीत होने लगेंगी, उन विशेषताओं को अपने जीवन में प्रस्फुटित करने की प्रेरणा जागृत होगी और फलतः अरिहन्त के समान ही बनने की भावना एवं प्रवृत्ति का उदय होगा।
- संसार-व्यवहार में जब कोई किसी के समक्ष प्रार्थी बनकर जाता है, तब प्रार्थनीय प्रार्थी को कुछ ऐसी साधारण सी वस्तु देता है जिससे वह प्रार्थी के समान दर्जे पर न पहुँचे। प्रार्थी व्यापारी के पास जाता है और व्यापारी यदि प्रसन्न हो जाता है तो प्रार्थी को कुछ कमाई करवा देता है और सन्तुष्ट कर देता है। वह अपनी बराबरी के दर्जे पर उसे नहीं पहुंचाता। मगर वीतराग की प्रार्थना में विशेषता यह है कि प्रार्थी प्रार्थ्य के समान ही बन जाता है। इस प्रकार की उदारता सिर्फ वीतराग में ही है। आप पांच लाख के धनी हैं और आपके समक्ष कोई अभ्यर्थना लेकर आता है तो आप उसे पच्चीस-पचास या बहुत देंगे तो हजार दो हजार रुपये दे देंगे। अपनी सारी सम्पत्ति हर्गिज नहीं देंगे, बिल्कुल अपने समान नहीं बनायेंगे। प्रार्थी किसी अफसर के पास जाता है तो वह भी उसे अपनी समानता का दर्जा नहीं देता। कोई छोटी-मोटी नौकरी देकर ही अहसान लाद देता है। मगर वीतराग देव की बात निराली है। वे छोटे-मोटे या अपने से कम दर्जे की बात नहीं सोचते। जो प्रार्थी उनके चरणकमलों का आश्रय लेता है, वे उसे अपने ही समान वीतराग बना लेते हैं। उसमे कुछ भी कमी नहीं रहने देते। इसीलिए तो वीतराग देव ही प्रार्थनीय हैं।
- समस्त पापों, तापों और सन्तापों से मुक्ति पाने का मार्ग है—अनुभव दशा को जागृत करना, स्वानुभूति के सुधासरोवर में सराबोर हो जाना, निजानन्द में विलीन हो जाना, आत्मा का आत्मा में ही रमण करना । जीवन में जब यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो आत्मा देह में स्थित होकर भी देहाध्यास से मुक्त हो जाता है और फिर कोई भी सांसारिक संताप उसका स्पर्श नहीं कर सकता । जगत् की कोई भी वेदना उसे व्याकुल नहीं बना सकती।
- जब तक प्रार्थयिता को ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला है, तब तक अपने कर्तृत्व के विचार से अहं बुद्धि उत्पन्न न हो, विकारों से ग्रस्त न हो जाए और उसके सामने परमात्मा का जो महान् और उज्ज्वल आदर्श है, उसके प्रति

निरन्तर आकर्षण बना रहे, उससे प्रेरणा मिलती रहे और जब कभी जीवन में अशान्ति हो और संताप हो तो किसी के समक्ष वह पुकार कर सके, इसके लिये वह परमात्मा के समक्ष स्तुति करता है। परमात्मा की स्तुति करते-करते और निश्चयनय के आत्मकर्तृत्व को ध्यान में रखते-रखते जब साधक उच्च भूमिका को स्पर्श करेगा तो स्वतः समझ लेगा कि परमात्मा तो निमित्त मात्र है। असली कर्तृत्व तो मेरी ही आत्मा में है।

- यह असंदिग्ध है कि जो भक्त शान्त चित्त से वीतराग की प्रार्थना करते हैं, स्मरण करते हैं, उन्हें जीवन में अपूर्व लाभ की प्राप्ति होती हैं। वीतराग के विशुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन भक्त के अन्तःकरण में समाधि भाव उत्पन्न करता है और उस समाधि भाव से आत्मा को अलौकिक शान्ति की प्राप्ति होती है। भक्त के हृदय में बहता हुआ विशुद्ध भक्ति का निर्झर उसके कलुष को धो देता है और आत्मा निष्कलुष बन जाती है। निष्कलुषता के इस लाभ में भक्त का भक्तिभाव ही अन्तरंग कारण है, वीतराग भगवान् तो निमित्त मात्र हैं।
- जैसे मथनी घुमाने का उद्देश्य नवनीत प्राप्त करना है, उसी प्रकार प्रार्थना का उद्देश्य परमात्मभाव रूप मक्खन को प्राप्त करना है।
- प्रार्थना के द्वारा दो उद्देश्य सिद्ध किये जाते हैं – परमात्मस्वरूप की झांकी देखना और आत्मस्वरूप की झांकी करना । साधक पहले-पहल परमात्मस्वरूप की झांकी देखता है और फिर आत्म स्वरूप की भी झांकी उसे मिल जाती है।
- वीतरागं स्मरन् योगी, वीतरागत्वमाप्नुयात्। अर्थात् जो योगी-ध्यानी वीतराग का स्मरण करता है, चिन्तन करता है वह स्वयं वीतराग बन जाता है।

■ फैशन

- अधिकांश नवयुवक अपने आपको विशिष्ट स्थिति का अथवा बड़े घर का सदस्य सिद्ध करने की भावना से भोगोपभोग, प्रसाधन, फैशन आदि की सामग्री पर फिजूल-खर्ची करते हैं। उनकी देखा-देखी अथवा इस भावना से कि कहीं कोई उन्हें साधारण घर का, गरीब घर का न समझ ले, साधारण घरों के युवक भी फैशन पर अपनी हैसियत से अधिक व्यय करने लगते हैं, जो किसी भी प्रकार ठीक नहीं है।

■ बदलाव

- जो चिन्तनशील एवं क्रियाशील होगा, वह आगे बढ़ जायेगा। नितान्त नास्तिक प्रदेशी राजा किस प्रकार सुधर गया, खुद को क्षमावान क्यों और कैसे बना लिया ? अर्जुनमाली कितना भयानक हत्यारा ? और प्रभव चोर कितना बड़ा डाकू, कितना बड़ा लुटेरा ? इतने बड़े क्रूर हत्यारे और लुटेरे। इतने क्रूर हत्यारे लोगों ने अपनी आदतें बदल डालीं। फिर आपकी हमारी आदतें क्यों नहीं बदलेगी? आप कहने लगते हैं, महाराज ! उनका मनोबल दृढ़ था। हमसे तो बर्दाश्त नहीं होता, रहा नहीं जाता, सहा नहीं जाता। यों कह अपनी कमजोरी को जिन्दगी भर कायम रखकर चलना चाहते हैं। आप अपने विकारों को दूर क्यों नहीं करते? अपने जीवन को क्यों नहीं मांजते ? सादगी और सद्विचारों को जीवन में क्रियात्मक रूप में क्यों नहीं उतारते ? इस धरती पर अर्जुनमाली, प्रभव और प्रदेशी राजा सरीखे मानव आये और इस संसार की मोह-ममता के जाल से छूट कर चले गये। क्या हम कोरे के कोरे रह जाएंगे?

■ ब्रह्मचर्य

- जो सुवर्ण की कोटि दान देता है, उसको उतना पुण्य नहीं होता, जितना ब्रह्मचर्य धारण करने पर होता है।
- जनसंख्या की वृद्धि से चिन्तित राष्ट्रीयजन वैज्ञानिक तरीकों से संतति नियन्त्रण करना चाहते हैं। भले ही इन उपायों से संतति निरोध हो जाय और लोग अपना बोझा हल्का समझ लें, क्योंकि इन उपायों से संयम की आवश्यकता नहीं रहती और ये सुगम और सरल भी जंचते हैं, किन्तु इनसे उतने ही अधिक खतरे की सम्भावना भी प्रतीत होती है। भारतीय परम्परा के अनुसार यदि ब्रह्मचर्य के द्वारा सन्तति निरोध का मार्ग अपनाया जाए तो आपका शारीरिक व मानसिक बल बढ़ेगा और दीर्घायु के साथ आप अपने उज्ज्वल चरित्र का निर्माण कर सकेंगे।
- व्यवहार में स्त्री-पुरुष के समागम को कुशील माना गया है। यद्यपि संसार-वृक्ष का मूल होने से गृहस्थ इसका सम्पूर्ण त्याग नहीं कर सकता, फिर भी परस्त्री-विवर्जन और स्वस्त्री-समागम को सीमित रखना तो उसके लिए भी आवश्यक है।
- ब्रह्मचर्य व्रत उत्तेजना के समय मनुष्य को कुवासनाओं से विजय प्राप्त कराकर धर्म-विमुख होने से बचाता है। ब्रह्मचारी-सदाचारी गृहस्थ अपने जीवन में बुद्धि पूर्वक सीमा बांध कर, अपनी विवेक शक्ति को निरन्तर जागृत रखता है। वह भोग-विलास में कीड़े के सदृश तल्लीन नहीं रहता और न समाज में कुप्रवृत्तियों को ही फैलाता है। कामना का सीमित ढंग से शमन कर लेना ही उसका दृष्टिकोण रहता है।
- कुशील की मर्यादा के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से अनेक रूप हैं। अपने स्त्री या पुरुष का परिमाण द्रव्य मर्यादा है, क्षेत्र से दिदेश का त्याग करना, काल से दिन का त्याग और रात्रि की मर्यादा, भाव से एक करण एक योग आदि रूप से व्रत की मर्यादा होती है।
- यूनान के महा पण्डित एवं अनुभवी शिक्षक सुकरात ने अपने एक जिज्ञासु भक्त से कहा था कि मनुष्य को जीवन में एक बार ही स्त्री समागम करना चाहिए। यदि इतने से कोई काम नहीं चला सके तो वर्ष में एक बार और यदि इससे भी काम न चले तो मास में एक बार। जिज्ञासु ने पूछा - अगर इससे भी आदमी काबू नहीं पा सके तो क्या करें? उत्तर मिला-कफन की सामग्री जुटाकर रख ले, फिर चाहे जितना भी समागम करे।
- अल्पायु में मृत्यु का एक कारण अधिक मैथुन एवं आहार-विहार का असंयम भी है।
- कुशील सेवन करने वाले, वीर्य-हानि के साथ असंख्य कीटाणुओं के नाश रूप हिंसा के भी भागी बनते हैं। ब्रह्मचर्य की पालना न करने वालों को प्रकृति के घर से सजा होती है और इसी के कारण आज रोगियों की संख्या अधिक हो रही है।
- दुराचारी व्यक्ति आत्म-गुणों को ही नष्ट नहीं करता, वरन् भावी पीढ़ी को बिगाड़ कर समाज के सामने भी गलत उदाहरण प्रस्तुत करता है। अतएव कहा है - "शीलं परं भूषणम्" अर्थात् सोने-चाँदी आदि के आभूषण एवं वस्त्रादि बाह्य सजावट की वस्तुएँ वास्तविक आभूषण नहीं हैं, किन्तु शील ही मानव का परम आभूषण है।
- जिस मनुष्य के मस्तिष्क में काम-सम्बन्धी विचार ही चक्कर काटते रहते हैं, वह पवित्र और उत्कृष्ट विचारों से शून्य हो जाता है। उसका जीवन वासना की आग में ही झुलसता रहता है। व्रत, नियम, जप, तप, ध्यान, स्वाध्याय और संयम आदि शुभ क्रियाएँ उससे नहीं हो सकती। उसका दिमाग सदैव गन्दे विचारों में उलझा

रहता है। पतित भावनाओं के कारण दिव्य भावनाएँ पास भी नहीं फटकने पातीं। अतः जो पुरुष साधना के मार्ग पर चलने का अभिलाषी हो उसे अपनी कामवासना को जीतने का सर्वप्रथम प्रयास करना चाहिए।

- ब्रह्मचर्य के विषय में अनेक प्रकार के भ्रम फैले हुए हैं और फैलाये जा रहे हैं। एक भ्रम यह है कि कामवासना अजेय है, लाख प्रयत्न करने पर भी उसे जीता नहीं जा सकता। ऐसा कहने वाले लोगों को संयम-साधना का अनुभव नहीं है। जो विषय-भोग के कीड़े बने हुए हैं, वे ही इस प्रकार की बातें कहकर जनता को अधःपतन की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। 'स्वयं नष्टः परान्नाशयति'-जो स्वयं नष्ट है वह दूसरों को भी नष्ट करने की कोशिश करता है। ऐसे लोग स्थूलिभद्र जैसे महापुरुषों के आदर्श को नहीं जानते हैं, न जानना ही चाहते हैं। वे अपनी दुर्बलता को छिपाने का जघन्य प्रयास करते हैं। वास्तविकता यह है कि ब्रह्मचर्य आत्मा का स्वभाव है और मैथुन विभाव या पर-भाव है। स्वभाव में प्रवृत्ति करना न अस्वाभाविक है और न असंभव ही। भारतीय संस्कृति के अग्रदूतों ने, चाहे वे किसी धर्म व सम्प्रदाय के अनुयायी रहे हों, ब्रह्मचर्य को साधना का अनिवार्य अंग माना है।
- सम्पूर्ण त्यागी साधुओं के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का अनिवार्य विधान है और गृहस्थ के लिए स्थूल मैथुन त्याग का विधान किया गया है। सद्‌गृहस्थ वही कहलाता है जो पर-स्त्रियों के प्रति माता और भगिनी की भावना रखता है। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक नहीं पहुंच सकते, उन्हें भी देशतः ब्रह्मचर्य का तो पालन करना ही चाहिए। परस्त्रीगमन का त्याग करने के साथ-साथ जो स्वपत्नी के साथ भी मर्यादित रहता है, वह देशतः ब्रह्मचर्य का पालन करके भी संयम का पालन करता है।
- जहाँ स्त्री, नपुंसक और पशु निवास करते हों, वहाँ ब्रह्मचारी साधु को नहीं रहना चाहिए। ब्रह्मचारिणी स्त्री के लिए भी यही नियम जाति-परिवर्तन के साथ लागू होता है। इसी प्रकार मात्रा से अधिक भोजन करना, उत्तेजक भोजन करना, कामुकता वर्धक बातें करना, विभूषा-शृंगार करना और इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति धारण करना, इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनसे ब्रह्मचारी को सदैव बचते रहना चाहिए। जो इनसे बचता रहता है, उसके ब्रह्मचर्य व्रत को आंच नहीं आती। जिस कारण से भी वासना भड़कती हो, उससे दूर रहना ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक है।
- तारुण्य या प्रौढ़ावस्था में यदि सहशिक्षा हो तो वह ब्रह्मचर्य पालन में बाधक होती है। अच्छे संस्कारों वाले बालक-बालिकाएँ भले ही अपने को कायिक सम्बन्ध से बचा लें, किन्तु मानसिक अपवित्रता से बचना तो बहुत कठिन है। और जब मन में अपवित्रता उत्पन्न हो जाती है तो कायिक अधः पतन होते देर नहीं लगती। तरुण अवस्था में अनंगक्रीडा की स्थिति उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है। अतएव माता-पिता आदि का यह परम कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तति के जीवन-व्यवहार पर बारीक नजर रखें और कुसंगति से बचाने का यत्न करें। उनके लिए ऐसे पवित्र वातावरण का निर्माण करें कि वे गन्दे विचारों से बचे रहें और खराब आदतों से परिचित न हो पाएँ।
- काम-वासना की उत्तेजना के यों तो अनेक कारण हो सकते हैं और बुद्धिमान व्यक्ति को उन सबसे बचना चाहिए, परन्तु दो कारण उनमें प्रधान माने जा सकते हैं-(१) दुराचारी लोगों की कुसंगति (२) खानपान संबंधी असंयम। व्रती पुरुष भी कुसंगति में पड़कर गिर जाता है और अपने व्रत से भ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जो लोग आहार के सम्बन्ध में असंयमी होते हैं, उत्तेजक भोजन करते हैं, उनके चित्त में भी काम-भोग की अभिलाषा तीव्र रहती

है। वास्तव में आहार-विहार के साथ ब्रह्मचर्य का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले को इस विषय में सदा जागरूक रहना चाहिए। मांस, मदिरा, अंडा आदि का उपयोग करना ब्रह्मचर्य को नष्ट करने का कारण है। कामोत्तेजक दवा और तेज मसालों के सेवन से भी उत्तेजना पैदा होती है।

भक्ति (द्रष्टव्य-प्रार्थना / स्तुति)

- जिस भक्त को भगवान् के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा उत्पन्न हो जाएगी, उसे दुनियां के अन्य साधनों में, धन - दौलत में, वैभवविलास में सुखानुभूति नहीं होगी। भक्त का मन प्रभु के चरणों के सिवाय अन्यत्र कहीं शान्तिलाभ नहीं कर सकेगा। वह भले ही शब्दों का उच्चारण नहीं करेगा, जप नहीं करेगा, परन्तु उसका अन्तःकरण तो इसी भाव में डूबा रहेगा कि तू मेरे अन्तःकरण का स्वामी है, अगर मेरे हृदय का सम्राट् कोई है तो वह तूं ही है, अन्य नहीं। तेरे सिवाय कोई मेरा स्वामी नहीं, साथी नहीं, सहायक नहीं, सखा नहीं।

भगवान महावीर

- भगवान महावीर संसार के जीवों को अभयदान देने वाले हैं, ज्ञान की आँखें देने वाले हैं, स्वयं का मार्ग बताने के निमित्त बनने वाले हैं और शरण देने वाले हैं, रक्षक हैं, दुर्गति में गिरते हुए का बचाव करने वाले जीवन के दाता हैं। इसलिए वे नाथ हैं।
- महावीर के जीवन की एक विशेषता है । वे स्वयं जिन बने और इस ओर उन्होंने दूसरों का ध्यान आकर्षित किया - "मानव ! आ जाओ तुम भी मेरी तरह राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करके जिन बन जाओ। तुम भी सन्मार्ग पर चलोगे, पुरुषार्थ करोगे तो कर्म का आवरण टूटेगा और तुम भी जिन बन जाओगे।"
- महावीर कौन थे? वे मानव तो जरूर थे , लेकिन मानव से वे अपने आपको अति मानव बना चुके थे। साधारण मानव जो कि काम-क्रोध में उलझा रहता है, उन सब विकारों पर अरिहन्त महावीर ने पूर्ण विजय पा ली थी। जन्म काल से वे तीन ज्ञान लेकर आये, दीक्षित हुए तब एक ज्ञान और बढ़ गया। दीक्षित होने के बाद उन्होंने साधना करनी चालू की। महावीर ने साढ़े बारह वर्षों तक तपस्या की। लोक सम्पर्क को समाप्त किया, उससे किनारा किया। किसी से बात नहीं की। सवालों का जवाब भी नहीं दिया। जंगल में, सूने घरों में, देवलों में, नगर या गांव के बाहर छोटे मोटे अवस्थानों में खड़े रह गये और ध्यान किया। आने वालों में से कइयों ने उनका आदर किया, सत्कार किया, भक्ति की, तो कुछ लोग ऐसे भी मिले जिन्होंने उनकी ताड़ना की, तर्जना की, पत्थर फैंके, कानों में कीले ठोंक दी और उनके पाँवों पर खीर पकाने का कार्य किया। इतना होने पर भी महावीर ने अपने मन में शान्ति बनाये रखी, अविचल भाव बनाये रखा।
- राजघराने में पैदा होने वाले, भव्य भवनों में देवतुल्य वस्तुओं का उपभोग करने वाले महावीर ने ३० वर्ष की भरपूर जवानी में निकलकर जंगल में दूर-दूर भटकना मंजूर किया। इससे उनके मन में कोई परेशानी नहीं हुई, चिन्ता नहीं हुई। सुबह-शाम शरीर पर चन्दन का लेप लगाने वाले, फूलों की शय्या पर सोने वाले, कभी रात्रि में यक्ष के देवालय में ध्यान में खड़े रहे, तो कभी सूने मकान में ध्यान करके खड़े रहे। आने जाने वाले उनको सता रहे हैं, कभी-कभी कंकर-पत्थर उन पर फैंक रहे हैं, कभी चोर समझकर पकड़ रहे हैं, किसी ने उन पर चाबुक का प्रहार भी किया, डण्डों का प्रहार भी किया, लेकिन महावीर के मन में तिल-तुष मात्र भी व्यथा नहीं हुई, खेद नहीं

हुआ , रंज नहीं आया।

- महावीर स्वामी ने साढे बारह वर्ष पर्यन्त उग्र तपश्चर्या करके वीतराग दशा प्राप्त की और सामायिक का साक्षात्कार किया। उन्होंने संसार को यह संदेश दिया कि यदि शान्ति, स्थिरता और विमलता प्राप्त करनी है तो सामायिक की साधना करो।

■ मनोनियन्त्रण

- कोई व्यक्ति यदि ऐसा सोचता है कि मन स्थिर नहीं रहता, अतएव माला फेरना छोड़ देना चाहिए, तो यह सही दिशा नहीं है। मन स्थिर नहीं रहता तो स्थिर रखने का प्रयत्न करना चाहिए न कि माला को खूंटी पर टाँग देना चाहिए। साधना के समय मन इधर-उधर दौड़ता है तो उसे शनैः शनैः रोकने का प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु काया और वचन, जो वश में हैं उन्हें भी क्यों चपलता युक्त बनाते हो? उन्हें तो एकाग्र रखो, और मन को काबू में करने का प्रयत्न करो। यदि काया और वाणी सम्बंधी अकुंश भी छोड़ दिया गया तो घाटे का सौदा होगा।
- चंचलता तब दूर होती है जब संसार के पदार्थों को निस्सार समझ लिया जाता है। जब तक सांसारिक वैभव भी कुछ है और उसका भी कुछ महत्त्व है, यह वासना मन में बनी रहेगी, तब तक चंचलता भी मिटने वाली नहीं है, क्योंकि हम जिसका महत्त्व स्वीकार करते हैं, उसकी ओर चित्त का आकर्षण हुए बिना नहीं रहता। एक करोड़पति हीरे के बहुमूल्य आभूषण पहन कर सज-धज के साथ बगल में बैठा है और आप हीरे का महत्त्व मानते हैं, तो आपका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहेगा। परन्तु यदि आप सादा पोशाक पहन कर बैठे हैं तो उसका ध्यान आपकी ओर आकृष्ट नहीं होगा, क्योंकि उसकी दृष्टि में सादा पोशाक का कोई महत्त्व नहीं है।
- एक बाई कीमती आभूषण पहन कर अगर बाइयों के सामने आती है तो उनका ध्यान उसकी ओर चला जाता है और कोई साधारण वेश-भूषा वाली बाई आती है तो ध्यान नहीं जाता। इसका कारण यही है कि बाइयों का चित्त आभूषणों के महत्त्व को स्वीकार करता है और आभूषणों के प्रति उनके मन में व्यक्त या अव्यक्त अभिलाषा मौजूद है।
- इसी प्रकार जब तक आप बाहर के वैभव को सारवान् और महत्त्व की चीज समझते रहेंगे, आपका मन उसकी ओर आकर्षित होता रहेगा तो उसमें चंचलता भी रहेगी। इसके विपरीत जब साधक सांसारिक वैभव को निस्सार समझ लेता है और भगवान के चरणों में ही महत्ता का अनुभव करता है , तब उसके मन की चंचलता दूर हो जाती है और वह भगवत्स्वरूप में ही अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है। उसकी चित्तवृत्ति स्थिर हो जाती है और इधर उधर भटकना बंद कर देती है।
- मनोनिग्रह के उपाय संक्षिप्त में दो प्रकार के हैं —एक हठ योग, जिसमें कि बलात् मन को रोका जाता है और दूसरा ज्ञान-मार्ग, जिसके द्वारा मन की गति बदली जाती है। हठयोग में बहुत से लोग श्वास निरोध के द्वारा मन को रोकने का प्रयत्न करते हैं और कई दिनों तक समाधि लगाकर भी बैठते हैं , परन्तु उनके मन की दशा बंधे हुए घोड़े की तरह खुले होते ही वेगवती बन जाती है। प्राणनिरोध से तत्काल मानसिक स्थिरता हो सकती है , किन्तु उसके मूल स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता। अतएव मनोविजय में उसके स्वभाव-परिवर्तन के लिए ज्ञानमार्ग ही श्रेष्ठ है। ज्ञान से होने वाला मनोजय स्थायी भी है।

■ ममत्व-त्याग

- जब प्रदेशी को ज्ञान हो गया तो उसको खजाना भरे रहने की या खाली रहने की चिन्ता नहीं रही। यदि प्रजा भूखी है, उसके खाने-पीने, रहने की व्यवस्था नहीं है, शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था नहीं है, तो मेरे खजाने का महत्त्व क्या है? इसलिए उन्होंने अपनी आमदनी का चौथाई हिस्सा दान कर दिया। चाहे खर्च में पूरा हिस्सा लगता है या नहीं, उन्होंने ममता घटा डाली। मोक्ष उतना ही उनके नजदीक आ गया, जितनी कि उन्होंने ममता घटाई।
- एक वृद्ध मुसलमान सज्जन की बात है। उसका ४५० रुपये मासिक कमाने वाला पुत्र रोगग्रस्त होकर चल बसा, जो बूढे का एकमात्र सहारा था। मियांजी का गांव से भी अच्छा व्यवहार था। अतः उनको सान्त्वना देने को बहुत से लोग आए। एक जैन भाई भी आए। मियांजी ने कहा-" मैं आप लोगों का आभार मानता हूँ कि आप लोग मुझे पुत्र-वियोग में सान्त्वना देने आए हैं, परन्तु वह तो वास्तव में भगवान की धरोहर थी। आपके पास किसी की धरोहर हो,तो उसे राजी-खुशी या दुःख से भी लौटाना होता है। जमा रखने वाले ने अपनी वस्तु उठाली, तो उसमें बुरा क्यों मानना?" यह कितनी सुन्दर समझ की बात है। प्रिय-वियोग में लोग जमीन-आसमान एक कर देते हैं, पर उससे क्या फल मिलता है? आखिर शान्त तो होना ही पड़ता है।
- ज्ञानी कहते हैं कि मानव दूसरों को देने के एक मिनट बाद ही उस वस्तु को पराई समझता है। तो देने से पहले ही क्यों नहीं समझता कि यह वस्तु मेरी नहीं है। पहले ही समझ ले कि जो कपड़ा मेरे तन पर है वह मेरा नहीं है, जिस कोठी में मैं बैठा हूँ वह मेरी नहीं है। तन पर जो आभूषण लाद रखे हैं वे मेरे नहीं है, बाहरी चीजें मेरी नहीं हैं। यह अगर पहले ही समझले तो मन में जो चंचलता है, दौड़-धूप है, मन में जो संक्लेश है वह नहीं होगा।

■ माताएँ

- सन्ततियों से मोह सम्बन्ध न रखकर कर्तव्य पालन का विवेक रखो। 'मेरा लाल जीवन का आधार' इस दृष्टि से देखने की अपेक्षा सोचो—इसकी आत्मा मेरे समान है। मेरे द्वारा इसका कुछ निर्माण हो सके तो अच्छा। मुझे इसके साथ कर्त्तव्य-पालन का ध्यान रखना है।
- संस्कार हेतु माताओं को छोटी-छोटी कथाओं के सहारे बालकों को बोध देना चाहिए। सरलता के साथ वह हृदय ग्राही हो सकता है।
- हर माता-पिता अपने बालकों में दस-पन्द्रह मिनट नीति-अध्यात्म की प्रेरणा करे।
- बालक और विद्यार्थियों में धर्म-जागरण के शुद्ध बीज डाले जायें।
- माता सुशिक्षित होगी तो बालक को संस्कारवान् बनने में देर नहीं लगेगी।

■ मानव

- संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं? प्रथम प्रकार के नजर उठाकर देखने से समझ जाते हैं, दूसरे प्रकार के संकेत, हाथ आदि के इशारे से समझते हैं, तीसरी श्रेणी के कहने पर समझते हैं और चौथी श्रेणी के वे हैं , जो

कहने पर भी नहीं समझते। इनमें से नजर द्वारा समझने वाला देवपुरुष होता है। संकेत से समझने वाला पंडित और कहने से समझने वाला मनुष्य होता है। जो कहने से नहीं, डंडे से समझने की अपेक्षा रखे वह पशु होता है।

- मानव ! यदि तू अपने जीवन को अहिंसक बनाये रखना चाहता है तो यह ध्यान रख कि जिससे जीवन चलाने के लिये सहयोग ले, लाभ ले, या काम ले उसको कोई पीड़ा न हो।

■ मिथ्यात्व

- कुदेव, कुगुरु, कुधर्म पर श्रद्धा करना, नाशवान चीज़ को अनाशवान बताना, नित्य को अनित्य बताना, यह समझ मिथ्यात्व है। कुदेव को देव मानना, कुसाधु को साधु एवं गुरु मानना मिथ्यात्व है। अजीव को जीव समझे, जीव को अजीव समझे, धर्म को अधर्म समझे और अधर्म को धर्म समझे तो मिथ्यात्व है।
- पौषध करना धर्म है लेकिन किसी के यहाँ बन्दोरी का जुलूस निकल रहा है और उसमें वह आमंत्रित है इसलिए पौषध छोड़ना अच्छा समझे, यह ठीक नहीं। जुलूस निकालना धर्म का लाभ समझे तो यह मिथ्यात्व है।

■ मुमुक्षु

- आत्मा के अनादि-निधन अस्तित्व पर जिसका अविचल विश्वास है, जिसने आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को, किसी भी उपाय से हृदयंगम कर लिया है, जिसे यह प्रतीति हो चुकी है कि आत्मा अपने मूल रूप में अनन्त चेतना रूप ज्ञान-दर्शन का और असीम वीर्य का धनी है, निर्विकार एवं निरंजन है और साथ ही जो उसके वर्तमान विकारमय स्वरूप को भी देखता है, उस मुमुक्षु के अन्तःकरण में अपने असली शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि की अभिलाषा उत्पन्न होना स्वाभाविक है, आत्मोपलब्धि की तीव्र अभिलाषा आत्म-शोधन के लिये प्रेरणा जागृत करती है और तब मुमुक्षु यह सोचने के लिये विवश हो जाता है कि आत्म-शोधन का मार्ग क्या है ?
- आत्मशोधन के प्रधान रूप से दो साधन हैं—साधना की उच्चतर भूमि पर पहुंचे हुए महापुरुषों की जीवनियों का आन्तरिक निरीक्षण और उनके उपदेशों का विचार। साधना की जिस पद्धति का अनुसरण करके उन्होंने आत्मिक विशुद्धि प्राप्त की और फिर लोक-कल्याण हेतु अपने अनुभवों को भाषा के माध्यम से प्रकट किया, साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने वालों के लिए यही मार्ग उपयोगी हो सकता है।

■ मोक्ष-मार्ग

- मोक्ष, मात्र ज्ञान से नहीं होता, कोरे दर्शन से नहीं होता, कोरे चारित्र से नहीं होता और कोरे तप से भी नहीं होता है। किसी ने तप से शरीर को गला डाला, लेकिन उसमें ज्ञान, दर्शन व चारित्र नहीं, धर्म पर भरोसा नहीं, गुरु पर विश्वास नहीं, सद्गुरु और कुगुरु का भेद ज्ञान नहीं है, जो आ गया उसे ही गुरु मान लिया, यह कह दिया कि 'बाना पूज नफा ले भाई।' बहुतेरे लोग वेष के पुजारी होते हैं। बहुत से नाम या गादी या परम्परा के पुजारी होते हैं, लेकिन उन्हें वास्तव में सद्गुरु, गुरु और असद्गुरु का विचार नहीं है। यदि इस तरह से श्रद्धा रखी और तपस्या व मासखमण भी कर गये तो लाभ होने वाला नहीं है। आपने सुना है:—

मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घई सोलसीं।

कोई अज्ञानी मास-मास की घोर तपस्या करे और पारणे के समय कुश यानी डाभ की अणी पर ठहरे इतने अन्न से पारणा करे, तो भी उससे कुछ नहीं होता। अज्ञानपूर्वक किया गया इस प्रकार का घोर तप वस्तुतः चारित्र और श्रुत-धर्म के सोलहवें अंश की तुलना में भी कहीं नहीं ठहरता।

- मुमुक्षु साधक की ओर से, चिरकाल से इस प्रकार की जिज्ञासा रहती आयी है कि हे भगवन्! इस आत्मा को अनादिकाल से कर्मों के बंधनों में भव-भ्रमण करते हुए अनन्त काल बीत गया। एक-एक गति में, एक-एक योनि में अनन्त-अनन्त बार जन्म- मरण कर चुकने के उपरान्त भी आज तक आत्मा बंधनों से मुक्त नहीं हो पाया। तो आखिर इस बंधन से मुक्त होने का, इस जन्म-मरण की अनादि-अनन्त दुःख परम्परा से सदा के लिए मुक्त होने का रास्ता क्या है? मुमुक्षु आत्माओं की इस जिज्ञासा को जानकर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी करुणासिन्धु प्रभु महावीर ने उन पर दया की और बंधन से मुक्त होने का सही मार्ग बताया। उत्तराध्ययन सूत्र के अट्ठाइसवें अध्ययन की दूसरी गाथा में मोक्ष का मार्ग बताया गया है। अनन्त करुणाकर प्रभु महावीर ने कहा-'हे मानव! वह बंधन-मुक्ति का रास्ता तेरे स्वयं के हाथ में है, बंधनमुक्ति का वह उपाय तेरे अन्दर ही है। केवल आवश्यकता है, उस उपाय के अनुसार पुरुषार्थ करने की।' देखो मुक्ति का मार्ग क्या है—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।

- महावीर ने बंधन मुक्त होने की, मोक्ष प्राप्त करने की मार्ग-चतुष्टयी बताकर कहा-'ओ मुमुक्षु! अगर तुमने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप इन चार की सम्यक् आराधना कर ली तो निश्चित समझ कि तेरे हाथ में मोक्ष का मार्ग आ गया। ये चारों कोई अलग-अलग रास्ते नहीं, एक ही हैं-एक ही रास्ता है, इन चारों में परस्पर सम्बंध है, एक की दूसरे से कड़ी मिली हुई है।
- ज्ञान की आराधना से जीव समस्त पदार्थों को, समस्त भावों को जानता है, दर्शन से तत्त्वज्ञान में, सन्मार्ग में श्रद्धा करता है, चारित्र से कर्मों के आस्रवों का, नये कर्मों के बंध का अवरोध करता है और तप के द्वारा आत्मा पर जमे हुए पूर्व के कर्म-मैल को धोकर प्राणी विशुद्ध चैतन्य स्वरूप को प्राप्त करता है।
- मोक्षमार्ग के इन चार उपायों में से ज्ञान और दर्शन की आराधना द्वारा विशुद्ध ज्ञान और दर्शन की प्राप्ति होती है। जिसने ज्ञान और दर्शन पा लिया, उसके अज्ञान और मिथ्यात्व के बंधन कट जाते हैं। इन दोनों की आराधना से चारित्र-मोह के बंधन भी ढीले हो जाते हैं। मोक्ष के तीसरे उपाय चारित्र से मोहनीय कर्म और तप से अन्तराय कर्म के बंधन कटते हैं। जब मोहनीय और अन्तराय कर्म के बंधन ढीले हो जाते हैं तो फिर नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय इन चारों अघाती कर्मों के बंधनों को काटना कोई मुश्किल नहीं रहता। बंधन-मुक्ति के सम्मिलित रूप से ये चारों उपाय हुए—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। यदि इन चार में से बंध काटने वाले किसी एक उपाय की भी कमी रह जाएगी, तो बंधनों से हमारी पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं होगी।
- किसी ने ज्ञान के द्वारा आत्मशोधन की आवश्यकता प्रतिपादित की, किसी ने कर्मयोग की अनिवार्यता बतलाई, तो किसी ने भक्ति के सरल मार्ग के अवलम्बन की वकालत की। मगर जैनधर्म किसी भी क्षेत्र में एकान्तवाद को प्रश्रय नहीं देता। वह अपनी भाषा में ज्ञान और क्रिया के समन्वय द्वारा आत्मशुद्धि का होना प्रतिपादित करता है। जैनधर्म के अनुसार एक ही मार्ग है, पर उसके अनेक अंग हैं, अतः उसमें संकीर्णता नहीं, विशालता है और प्रत्येक साधक अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार उस पर चल सकता है।

युवक/ युवक-संघ

- समय के अनुसार समाज-निर्माण का काम करने में ज्यादा सक्षम तरुण व किशोर हैं, और इस कार्य का अधिक उत्तरदायित्व भी इन पर ही है। वृद्धों को कहूँ इसके बजाय आज अधिक दायित्व नौजवानों का है, क्योंकि वृद्धों की संख्या नौजवानों की अपेक्षा चौथाई भी नहीं है। आजकल के युग की माँग है कि बहुमत से कार्य करें और बहुमत है नौजवानों का। दूसरी बात यह है कि जब तक समान विचारवालों का संगठन नहीं बनता, तब तक काम नहीं होता। यह भी आवश्यक है कि काम करने के लिए चुनिंदा, सक्षम और कर्त्तव्यशील व्यक्ति होने चाहिए, जो यह सोचते हों कि हमें हमारे जीवन में कुछ काम करके अच्छा उदाहरण छोड़ जाना है।
- युवक संघ की सामूहिक आवाज होनी चाहिए कि हम धर्म ध्वज को कभी भी नीचा नहीं होने देंगे तथा नित स्वाध्याय करके ज्ञान की ज्योति जगाएंगे। ऐसा संकल्प लेने वाले अनेक साधक हो गये हैं जिनके श्रुत ज्ञान के बल से शासन को बल मिला। धन को ताले में बन्द करो या जमीन में गाड़ दो, फिर भी वह नष्ट होगा, अनेक बड़े बड़े बैंक फेल हो गए। जमीन में भी कभी-कभी फसल नहीं आती। ब्याज में लगा धन भी नष्ट हो जाता है। अतएव उसकी चिन्ता व्यर्थ है, क्योंकि वह नाशवान है, और लक्ष्मी चपला है। अतः श्रुत ज्ञान की चिन्ता करो, जो जीवन के लिए परम धन है।

रक्षाबंधन

- रक्षाबंधन पर्व के पीछे यही पवित्र पृष्ठभूमि, यही पुनीत उद्देश्य और यही पावन भावना है कि मानव यतना का सूत्र बांध अपनी आत्मा की तथा प्राणिमात्र की रक्षा कर अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो।
- जिन-शासन की मर्यादा में रहते हुए प्रत्येक जीव की रक्षा करना, अपनी आत्मा की तथा अपने आत्म-गुणों की रक्षा करना, स्वधर्मी बंधुओं की रक्षा करना और चतुर्विध संघ की रक्षा करना, यही पवित्र भावना, यही लोक कल्याणकारी, स्व-पर कल्याणकारी भावना इस रक्षाबंधन पर्व क़े पीछे निहित है।
- जैन धर्म के अनन्य उपासक कलिंगाधिपति महाराज महामेघवाहन-भिक्खुराय खारवेल ने पाटलिपुत्र पर प्रबल आक्रमण कर पुष्यमित्र को समुचित दण्ड दे चतुर्विध जैन-संघ की रक्षा की। अति प्राचीन काल (बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थकाल) में भी जैन श्रमण-संघ पर इस प्रकार का घोर संकट आया। उस समय लब्धिधारी महामुनि विष्णु कुमार ने अपने लब्धि-बल से श्रमण-संघ की रक्षा की। तभी से रक्षाबंधन का पर्व प्रचलित हुआ, ऐसा माना जाता है।

राजनीति-अर्थनीति-धर्मनीति

- राजनीति और धर्मनीति दोनों में त्याग का महत्त्व है। एक में यह त्याग केवल अपने स्वार्थ-साधन, मान-मर्यादा, पद और नामवरी आदि के लिए है, पार्टी या राजनीति को सबल बनाने के लिये भी त्याग किया जाता है, किन्तु धर्मनीति में त्याग परमार्थ के लिये किया जाता है।
- राजनीति में कहो कुछ और करो कुछ की नीति अपनायी जाती है। योजना कुछ बनायी जाती है एवं क्रियान्विति कुछ की जाती है। इस प्रकार राजनीति का स्वरूप अस्थिर, दोलायमान और चंचलतामूलक है, किन्तु धर्मनीति

स्थिर और सुदृढ़ है।

- अर्थनीति और राजनीति में अनेक दुर्गुण हैं। इनमें व्यक्ति अपने उत्कर्ष के लिये अन्य सबका सफाया करने पर उतारू हो जाता है। अतएव अर्थनीति और राजनीति कुटिल कही गयी है। राजनीति में कोई नेता हो गया तो उसके दुर्गुण भी प्रशंसनीय बन जाते हैं। क्या पद पा लेने से उसका बुरापन दूर हो गया यह विचारणीय विषय है। धर्मनीति में ऐसा नहीं होना चाहिये, परन्तु राजनीति का प्रभाव पड़ने से यहाँ पर भी दूषण आ जाता है। कल का ऊँचा आज का हीन बन जाता है। यह वाणी की चंचलता, मनुष्य की प्रामाणिकता के लिये खतरा है। जिसकी प्रशंसा की, ऊँचा माना, उसे शीघ्रता से बुरा न कहिये। हर एक का मूल्य आंकने से पहले विचार कीजिये।
- शासक के पद पर बैठने वालों का दिल और दिमाग शुद्ध है और उनके दिल में नैतिकता भरी है तो देश सुधर सकेगा। यदि उनका माथा ही बिगड़ा हुआ हो, पैसों को मिलाने का लक्ष्य हो और इस खयाल के हों कि संसार का भला तो होगा तब होगा, लेकिन पहले अपना भला कर लें, घर का भला कर लें तो समाज एवं देश का कल्याण नहीं हो सकेगा।

■ लेखा-जोखा

- आप में से जो भाई हजारपति हैं, वे ज्यादा धर्म करते हैं, सत्संग करते हैं, स्वधर्मियों से प्रेम करते हैं। लखपति, करोड़पति जो हैं उनको उनसे भी ज्यादा करना चाहिए, सवाया धर्म-कार्य करना चाहिए। त्याग-तप में, साधु-सेवा में, साधर्मी भाइयों की सेवा में आपका कदम आगे रहना चाहिए। यदि ज्यादा करते हैं तो समझना चाहिए वस्तुतः प्रगति की है, लेकिन इससे विपरीत हो गये तो रुपये बढ़े, काम बढ़ा, लेकिन तप घटा। तप घटा तो धर्म में रुचि और श्रद्धा घटी और अन्तरंग साधना में जो एकाग्रता पहले रहती थी, वह भी नहीं रही। पहले सामायिक में बैठते थे तब घड़ी भर मन लगता था, किन्तु अब लगता नहीं। तीन-चार पीढ़ियाँ चल रही हैं, लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति पायी है, लेकिन बहुत धोखे में रहे। साधना में एकाग्रता नहीं रही तो प्रगति की बात तो दूर, यह तो अधःपतन हो गया। यदि हिसाब देखते रहेंगे तो बराबर प्रगति करते रहेंगे।

■ वाणी का बल

- मनुष्य की वाणी में ऐसा बल है कि वह तलवार से भी अधिक गहरा प्रहार कर सकती है और चाहे तो पापी से पापी मनुष्य का हृदय भी बदल सकती है। सरलस्वभावी सहृदया कैकेयी रानी का मन-मस्तिष्क सहसा जिस मन्थरा दासी ने बदल दिया था, उसमें भी वाणी का ही प्रभाव था। युद्ध क्षेत्र में शौर्यगीत सुनाकर चारण एवं भाट योद्धाओं को इतना उत्तेजित कर देते थे कि उनकी भुजाएँ फड़कने लगती थीं तब वे अपने प्राणों का मोह छोड़कर शस्त्र-अस्त्र लेकर शत्रु सेना पर टूट पड़ते थे। यह जादू वचन एवं वाणी का ही तो था।
- भगवान की वाणी किसी एक के लिए नहीं है। ब्राह्मण के लिए या महाजन के लिए ही नहीं है। भगवान की वाणी सुनने का हक किसान, हरिजन आदि सबको प्राप्त है। यह अमृत भगवान ने सबके लिए वितरित किया है।
- आप चाहे अहिंसा और सत्य की बात चौराहे पर बैठकर कहने लगें, लेकिन यदि आपके व्यवहार में, आचरण में

एवं चिंतन में सत्य और अहिंसा घुले हुए नहीं हैं, तो आपकी वाणी में इतनी क्षमता और प्रभाव नहीं होगा कि सामने वाला उसे मान सके।

■ वात्सल्य

- धार्मिक वत्सलता में जो अनुराग का अणु रहता है, वह शुभ होने से आत्मा को दुःख सागर में डुबाने वाला नहीं होकर, धर्माभिमुख कराने वाला होता है। धार्मिक वात्सल्य की मनोभूमिका में आत्म-सुधार की भावना रहती है।
- साधक में साधना की ओर लगन हो और साथ ही समाज की उसके प्रति सद्भावना हो तो मानव सहज ही अपना उत्थान कर सकता है।
- ज्ञानी और माता के वात्सल्य में यदि अन्तर है तो यही कि माता का वात्सल्य अपनी सन्तति तक ही सीमित रहता है और उसमें ज्ञान अथवा अज्ञान रूप में स्वार्थ की भावना का सम्मिश्रण होता है, किन्तु ज्ञानी के हृदय में ये दोनों चीजें नहीं होती। उसका वात्सल्य विश्वव्यापी होता है। वह जगत् के प्रत्येक छोटे-बड़े, परिचित-अपरिचित, उपकारक-अपकारक, विकसित-अविकसित या अर्द्धविकसित प्राणी पर समान वात्सल्य रखता है। उसमें किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं होता।

■ विकथा

- आत्म-हित के विपरीत कथा को विकथा कहते हैं अथवा अध्यात्म से भौतिकता की ओर तथा त्याग से राग की ओर बढ़ाने वाली कथा विकथा कहलाती है। विकथा साधना के मार्ग में रोड़े अटकाने वाली और पतन की ओर ले जाने वाली है, अतः साधक को उससे संभल कर पांव रखना चाहिए।

■ विद्वान्

- आज देश में हिंसा, झूठ-फरेब और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। नैतिक मूल्यों का तेजी के साथ ह्रास हो रहा है। ऐसे समय में विद्वानों का दायित्व है कि वे अहिंसा, सत्य और सदाचार का स्वयं पालन करते हुए परिवार, समाज और राष्ट्र में इस त्रिवेणी को प्रवाहित करें।
- विद्वान अपने को किताबों तक सीमित नहीं रखें। वे धर्मक्रिया में भी अपना ओज दिखायें। "यस्तु क्रियावान् पुरुष सः विद्वान्" अर्थात् जो क्रियावान है वही पुरुष विद्वान् है। यदि एक विद्वान् सही अर्थ में धर्माराधन से जुड़ जाता है तो वह अनेक भाई- बहनों के लिए प्रेरणा स्तम्भ बन जाता है।
- जो विद्वान्, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के ज्ञाता हैं उन्हें इन भाषाओं में रचना करना चाहिए। अनुवाद के आधार पर शोध कार्य तो अन्य विद्वान भी कर लेंगे, किन्तु संस्कृत, प्राकृत में लिखने का कार्य इन भाषाओं के विशेषज्ञों द्वारा ही संभव है। इन भाषाओं की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों के सम्पादन का कार्य प्राथमिकता के तौर पर किया जाना चाहिए।
- अभ्यास करने वालों में प्रायः अधीरता देखी जाती है। वे चाहते हैं कि थोड़े ही दिनों में जैसे-तैसे ग्रन्थों को पढ़ लें और विद्वान् बन जाएँ। मगर उनकी अधीरता हानिजनक होती है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए समुचित समय और श्रम देना आवश्यक है। गुरु से जो सीखा जाता है, उसे सुनते जाना ही पर्याप्त नहीं है। किसी शास्त्र को आदि

से अन्त तक एक बार पढ़ लेना अलग बात है और उसे पचा लेना दूसरी बात है। शिक्षार्थी के लिए आवश्यक है कि वह शिक्षक से जो सीखे, उसे हृदय में बद्धमूल कर ले और इस प्रकार आत्मसात् करे कि उसकी धारणा बनी रहे। उस पर बार-बार विचार करे, चिन्तन करे। शब्दार्थ एवं भावार्थ को अच्छी तरह याद करे। ऐसी तैयारी करे कि समय आने पर दूसरों को सिखा भी सके। चिन्तन-मनन के साथ पढ़े गए अल्प ग्रन्थ भी बहुसंख्यक ग्रन्थों के पढ़ने का प्रयोजन पूरा कर देते हैं। इसके विपरीत, शिक्षक बोलता गया शिष्य सुनता गया और इस प्रकार बहुसंख्यक ग्रन्थ पढ़ लिए गए तो भी उनसे अभ्यास का प्रयोजन पूर्ण नहीं होता।

■ विनय/विवेक

- जिसका विनय किया जाता है वह व्यक्ति धर्मशास्त्र के अनुसार पिंड से पूजनीय नहीं होता, नाम से पूजनीय नहीं होता, लेकिन उसके पूजनीय होने का कारण यदि कोई है तो उसके सद्गुण हैं। इसलिये विनय का आधार बताते हुए कहा कि पहला ज्ञान विनय, दूसरा दर्शन विनय और तीसरा चारित्र विनय है। फिर मन विनय, वचन विनय, काया विनय और लोकोपचार विनय हैं।
- साधक में विद्या के साथ विनय और विवेक भी होना आवश्यक है। विद्या से विनय के बदले अविनय बढ़ता हो तो समझना चाहिए कि सद्विद्या नहीं है। तभी तो कहा है – "साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम्" । आनन्द श्रावक में विनय और विवेक दोनों थे। उन्होंने गुरु गौतम के चरणों में नमन करके विवेकपूर्वक प्रार्थना की–"भगवन् ! मैं असमर्थ हूँ, अत: आपकी इच्छा हो तो इधर पधारें, मैं चरणों में सिर नमा लूँ।" आज विद्या के साथ विनय और विवेक की कमी है। अहीर दम्पती की तरह घी के लिए लड़ने वाले माल भी गंवाते हैं और उपहास के पात्र भी बनते हैं। ढंक कुम्हार विवेकशील था। उसने करीब १५०० साधु- साध्वियों को सुधार दिया। विनय एवं विवेकशील शिष्य गुरु को भी सुधार सकता है।

■ वीतरागता

- वीतराग की वाणी निराली है। उन्हें अपने भक्तों की टोली जमा नहीं करनी है, अपने उपासकों को किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं देना है। वे भव्य जीवों को आत्म-कल्याण की कुंजी पकड़ा देना चाहते हैं, इसलिए कहते हैं–"गौतम ! मेरे प्रति तेरा जो राग है, उसे त्याग दे। उसे त्यागे बिना पूर्ण वीतरागता का भाव जागृत नहीं होगा।" इस प्रकार की निस्पृहता उसी में हो सकती है जिसने पूर्ण वीतरागता प्राप्त करली हो और जिसमें पूर्ण ज्ञान की ज्योति प्रकट हो गई हो। अतएव भगवान् का कथन ही उनकी सर्वज्ञता और महत्ता को सूचित करता है।

■ व्यवहार और निश्चय

- व्यवहार और निश्चय का सम्बन्ध शरीर और प्राण जैसा है। जीवन के लिए इन दोनों धाराओं की जरूरत होती है, क्योंकि शरीर नहीं तो प्राण कहाँ रहेंगे और प्राण न रहे तो शरीर की कीमत क्या ? अगर जीवन ढंग से जीना है तो उसमें शरीर भी स्वस्थ रहना चाहिए और प्राण भी अबाधित गति से, निरापद ढंग से संचालित होना चाहिये तभी जीवन को स्वस्थ समझा जायेगा और अगर दोनों में से एक भी गड़बड़ा गया तो काम नहीं चल सकेगा।

- जहाँ व्यवहार में कृत्रिमता है वहाँ निश्चय में भी कुछ गड़बड़ है।
- चाहे लौकिक प्रवृत्ति हो अथवा आध्यात्मिक, उसके दो रूप स्पष्ट हैं एक व्यवहार और दूसरा निश्चय। निश्चय के लिए कोई समाज-व्यवस्था नहीं बनानी पड़ती, लेकिन व्यवहार के लिए समाज-व्यवस्था बनानी पड़ती है। निश्चय में जब प्रकाश पैदा हो जाता है तब वह दूसरों के चलाए नहीं चलता है, स्वचालित यंत्र की तरह चलता है।
- जब तक समाज और समाज के सदस्य जीवन-निर्माण के मार्ग में आगे बढ़ने में गति कर रहे हैं, मन की मलिनताएँ और विकार खत्म नहीं हुए हैं तब तक व्यवहार को भी पकड़ कर चलना होता है। जब उनका व्यवहार शुद्ध होता है, समाज का भी व्यवहार शुद्ध होता है।
- आत्म शुद्धि हमारा निश्चय है । यह हमारा लक्ष्य है । जप, तप, सत्संग आदि धार्मिक प्रवृत्तियाँ जो हम करते हैं, इनका लक्ष्य जीवन में आत्मशुद्धि करना है। इन प्रवृत्तियों में चमक लाना निश्चय की भूमिका है और जब भूमिका यानी व्यवहार हमारा सुन्दर होगा, सुधरा हुआ होगा तो उससे शनैः शनैः गति करते-करते एक दिन हम निश्चय की ठीक स्थिति पर पहुँच जायेंगे। इसलिए साधकों के सामने यह विचार आया कि धर्म केवल सुनने की चीज नहीं है, आचरण की चीज है, अमली रूप में लाने की चीज है। व्यवहार करते समय यह जरूर देखना है कि व्यवहार निश्चय के अभिमुख हो, पराङ्मुख न हो।
- बाह्य क्रियाकाण्डों की अपेक्षा कषायों को जीतना अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसमें दो मत नहीं। किन्तु इससे बाह्य क्रियाओं की निरुपयोगिता सिद्ध करना ठीक नहीं। कषाय-विजय की इच्छा वाले साधक को तामसी भोजन के दुष्टसंग से और दिमाग को गलत विचारों से बचाने का अभ्यास करना आवश्यक होगा। सात्विक आहार, ज्ञानवान् सज्जनों की संगति और शुभ कार्यों में जुड़ा रहना कषाय-विजय के अपेक्षित साधन हैं।
- अर्जुनमाली जैसा तीव्र कषायी भगवान् महावीर की देशना का निमित्त पाकर, तप-त्याग की भावना से कषायों को जीत कर, वीतराग हो गया। सत्संग और बेले-बेले की तपस्या का व्यवहार उसे भी करना पड़ा।
- जिनशासन एकान्त व्यवहार या निश्चय का कथन नहीं करता। वह अपेक्षावादी-अनेकान्तवादी है। जिन-शासन में व्यवहार और निश्चय दोनों से कार्य की सिद्धि मानी गयी है। निश्चय से साध्य तक पहुँचने में व्यवहार साधन है। ज्ञान मिलाने को शिक्षक के पास जाना पड़ता है। समुद्र पार करने में नाव का आश्रय लेना होता है और रोग मिटाने की दवा खानी पड़ती है। दवा खाने से पूर्व रोग का परीक्षण भी किया जाता है, जो कि सब व्यवहार है। कार्य-सिद्धि में आवश्यक साधन मानकर इसे किया जाता है। वैसे ही कषाय-विजय के लिये, बाह्य क्रियाओं की भी आवश्यकता है।
- चलने में जैसे दोनों पैर हिलाये जाते और दही-मंथन में दोनों हाथ आगे-पीछे रख कर डोरी खींची जाती है। मंथन के समय एक हाथ ढीला और दूसरा कड़ा रखने पर ही मक्खन प्राप्त होता है। दोनों हाथ छोड़ने या खींचने से काम नहीं होता। वैसे ही कल्याणकांक्षी जन को भी व्यवहार और निश्चय दोनों की आवश्यकता होती है। व्यवहार के पीछे निश्चय की और निश्चय की आड़ में व्यवहार की उपेक्षा करना भयंकर भूल होगी।
- निश्चय के आग्रह में व्यवहार का तिरस्कार करना सत्य का अपलाप करना और अपने आप को धोखा देना है। कारण कि सामान्य साधक व्यवहार के द्वारा ही निश्चय की ओर बढ़ता है, जबकि केवली का व्यवहार निश्चयानुसार होता है। छद्मस्थ अपूर्ण ज्ञानी होने से निश्चय को बिना व्यवहार के नहीं समझ पाता और न

आचरण में ही ला पाता है। अत: साधन की स्थिति में व्यवहार को त्याज्य नहीं, किन्तु उपादेय मानना चाहिये। यही शास्त्र का मर्म है।

व्यसन

- अधिक से अधिक १०-१२ रोटियों से मनुष्य का पेट भर जाता है, मगर बीड़ी और सिगरेट पीते-पीते सन्तोष नहीं होता।
- जिस मनुष्य का शरीर तमाखू के विष से विषैला हो जाता है उसका प्रभाव उसकी सन्तति के शरीर पर भी अवश्य पड़ता है। अतएव तमाखू का सेवन करना अपने ही शरीर को नष्ट करना नहीं है, बल्कि अपनी सन्तान के शरीर में भी विष घोलना है। अतएव सन्तान का मंगल चाहने वालों का कर्त्तव्य है कि वे इस बुराई से बचें और अपने तथा अपनी सन्तान के जीवन के लिये अभिशाप रूप न बनें।
- व्यक्ति चोरी और व्यभिचार कब करता है और लड़के शराबी कबाबी कब बनते हैं? जब उनकी संगति खराब होती है। ब्राह्मणों और जैनों के घर में जन्म लेने वाले शराब और अभक्ष्य को कभी हाथ से छूते नहीं हैं, लेकिन खराब सौबत पड़ने से अच्छे घर के लोग अखाद्य पदार्थ खाने लगें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।
- चाय एक तरह का व्यसन है, यह खून को सुखाने वाली है, नींद को घटाने वाली है और भूख को भी कम करने वाली है।

व्रत

- धर्म का उपदेश अन्तःकरण में जमने पर व्रत स्वीकार करने में देर नहीं लगती।
- जब आप अहिंसा, सदाचार के मूलगुणों को अंगीकार करेंगे तो आपका जीवन भी निखरेगा और इन व्रतों के साथ तपस्या करेंगे तो ज्यादा चमकेंगे, ज्यादा तेजस्वी होंगे, ज्यादा ताकत या बल आएगा। भगवान महावीर ने यही शिक्षा दी है।
- मुनिधर्म में सम्पूर्ण विरति का विधान है और गृहस्थ-धर्म में देशविरति का। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि साधु और गृहस्थ के धर्म में कोई विरोध नहीं है, वस्तुत: एक ही प्रकार के धर्मों के पूर्ण और अपूर्ण दो स्तर हैं। साधु भी अहिंसा का पालन करता है और गृहस्थ भी। किन्तु गृह-व्यवहार से निवृत्त होने और भिक्षाजीवी होने के कारण साधु त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा से बच सकता है, किन्तु गृहस्थ के लिये यह संभव नहीं है। उसे युद्ध, कृषि, व्यापार आदि ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनमें हिंसा अनिवार्य है। अतएव स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग उसके लिये अनिवार्य नहीं रखा गया। त्रस जीवों की हिंसा में भी केवल निरपराध जीवों की संकल्पी हिंसा का ही त्याग आवश्यक बतलाया है। इससे अधिक त्याग करने वाला अधिक लाभ का भागी होता है, किन्तु देशविरति अंगीकार करने के लिये इतना त्याग तो आवश्यक है। इसी प्रकार अन्याय व्रतों में भी गृहस्थ को छूट दी गयी है।
- हमारे समाज में प्रायः कुछ व्रत और तप करने का रिवाज तो है, लेकिन ज्ञान, दर्शन और चारित्र की तरफ उतना लक्ष्य नहीं है जितना व्रत या तप की तरफ है। व्रत और तप भी उपयोगी हैं, लेकिन इनकी कीमत और ताकत पूरी तब प्राप्त होती है जब व्रत के पीछे संयम हो, चारित्र हो और ज्ञान-दर्शन हों।

- कुछ ऐसे बंधु मिलते हैं, जो कहते हैं महाराज ! प्रतिज्ञा करना, सौगन्ध लेना तो कमजोरी की बात है। हम सौगन्ध नहीं लेंगे, यों ही स्वतः नियम पालेंगे। पर वे भूल जाते हैं कि राजतंत्र में शासन का पदभार सम्हालने वाले ईमानदार से ईमानदार व्यक्ति को भी शपथ ग्रहण करवाई जाती है। शपथ ग्रहण करना केवल औपचारिकता मात्र नहीं है। सद्गुरु के समक्ष शपथ लेने से लेने वाले में आत्म-बल पैदा होता है, साथ ही यह विचार भी आता है कि गुरुदेव के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा का भंग किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए।
- इच्छा पर जितना ही साधक का नियंत्रण होगा उतना ही उसका व्रत दीप्तिमान होगा। इच्छा की लम्बी-चौड़ी बाढ़ पर यदि नियंत्रण नहीं किया गया तो उसके प्रसार में ज्ञान, विवेक आदि सद्गुण प्रवाह-पतित तिनके की तरह बह जायेंगे।
- व्रतों और नियमों को केवल दस्तूर के रूप में न लेकर आत्मा को कसने का उनसे काम लिया जाए, तो वास्तविक लाभ हो सकता है। खाने-पीने की वस्तुओं, सम्पदा, भूमि, वस्त्र और अलंकार आदि हर एक के परिमाण में यह लक्ष्य रखना है कि नियम दिखावे के लिए, दूसरे के कहने पर या नाम के लिए नहीं, वरन् आत्मा को ऊपर उठाने एवं जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए करना है।
- १. हिंसा घटाने के लिए २. अविरति रोकने के लिए ३. स्वाद जय तथा जितेन्द्रियता की साधना के लिए व्रत करना चाहिए।
- शारीरिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आदि अनेकविध आवश्यकताएँ होती हैं जो मानव के द्वारा घटाई बढ़ाई भी जा सकती हैं। जैसे शारीरिक आवश्यकता में तेल, साबुन, पान, सुपारी, बीड़ी आदि बाह्य आवश्यकता है। आवश्यकता पर नियंत्रण करने वाला अपने मन की आकुलता मिटा लेता है। जैसे पृथ्वी की गोलाई पर कोई कितना ही घूमता रहे, पर उसका अन्त नहीं पाता। इसी तरह इच्छाओं का चक्र भी कभी युग-युगान्तर में पूरा नहीं होता।
- पशु जीवनभर दो-चार वस्तुएँ ही ग्रहण कर लम्बी जिन्दगी काट लेते हैं। वन में रहने वाले ऋषि-मुनि दो-चार वस्तुओं से भी गुजारा कर दीर्घायु रहते थे। नागरिक जीवन की परिस्थिति भिन्न है, फिर भी वहाँ सीमा की जा सकती है। गृहस्थ जीवन में रहने वाले लोग भी सीमित वस्तुओं से अच्छा काम चला सकते हैं।
- व्रत ग्रहण करना यदि महत्त्वपूर्ण है तो उसका यथावत् पालन करना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उचित है कि मनुष्य अपने सामर्थ्य को तोल कर और परिस्थितियों का विचार करके व्रत को स्वीकार करें और फिर दृढ़ संकल्प के साथ उस पर दृढ़ रहें। व्रत ग्रहण करके उसका निर्वाह नहीं करने के भयंकर दुष्परिणाम या अनर्थ हो सकते हैं। किन्तु चूक के डर से व्रत ही नहीं करना बड़ी भूल है। जो कठिनाई आने पर भी व्रत का निर्वाह करता है और अपने संकल्प बल में कमी नहीं आने देता वह सभी कठिनाइयों को जीत कर उच्च बन जाता है और अन्त में पूर्ण निर्मल बन कर चरम सिद्धि का भागी होता है।
- साधु-जीवन का दर्जा बहुत ऊँचा है। इसका कारण यही है कि वे महाव्रतों का मनसा, वाचा, कर्मणा पालन करते हैं, और महाव्रतों के पालन के लिए उपयोगी जो नियम-उपनियम हैं, उनके पालन में भी जागरूक बने रहते हैं। यदि ऊँची मंजिल वाला फिसल गया तो वह चोट भी गहरी खाता है। अतः उसे बहुत ही सावधान होकर चलना पड़ता है। भव-भव के बंधनों को काटने में वही सफल होता है जो व्रतों का पूर्ण रूप से निर्वाह करता है।

- कभी-कभी ऐसा अवसर भी आ जाता है कि भ्रम, विपर्यास या मानसिक दुर्बलता के कारण मनुष्य व्रत की सीमा से बाहर चला जाता है। आंशिक व्रत भंग अतिचार की कोटि में गिना जाता है और जब व्रत से निरपेक्ष होकर जानबूझ कर व्रत को खंडित किया जाता है तो अनाचार कहलाता है।
- व्रती पुरुष कुटुम्ब, समाज तथा देश में भी शान्ति का आदर्श उपस्थित कर सकता है और स्वयं भी अपूर्व शान्ति का उपभोक्ता बन सकता है।
- व्रती का जीवन दूसरों को पीड़ा प्रदायक नहीं होता, किसी को उत्ताप नहीं देता। वह धर्म, न्याय, शान्ति, सहानुभूति, करुणा और संवेदना जैसी दिव्य भावनाओं का प्रतीक बन जाता है। अतएव जीवन में व्रत-विधान की अत्यंत आवश्यकता है।
- अवस्था ढल गई है, सफेदी आ गई है, फिर भी १२ व्रत ग्रहण नहीं करते, यह कितने आश्चर्य की बात है? पाँच अणुव्रत अंगीकार करना तो बड़ा ही आसान कार्य है। बड़ी हिंसा, बड़ा झूठ, बड़ी चोरी का त्याग करना, एक करण दो योग से कुशील का सेवन नहीं करना, अपनी पत्नी की मर्यादा रखना और परिमित परिग्रह रखना, इनमें से आपके लिये कौनसी बात कठिन है, जो आप व्रत ग्रहण करने में इतने कतराते हो?
- एक सप्ताह के लिये हिंसावृत्ति, परिग्रह, क्रोधादि को काबू में करने के लिए अभ्यास करें। सप्ताह-सप्ताह बढ़ाकर चार महीनों तक साधना में कामयाबी हासिल करली तो फिर आप में साल भर करने का हौंसला आ जायेगा और साल भर इसको निभा लें तो आगे अड़चन आने वाली नहीं है।
- त्यागी दो तरह के होते हैं—एक मूल गुण पच्चक्खाणी और दूसरा उत्तरगुण पच्चक्खाणी। मूल गुण पच्चक्खाणी उसको कहते हैं जो हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों का त्याग करता है। नवकारसी पालना, पोरसी करना, उपवास करना, आयंबिल करना, कुछ कपड़े रखकर कपड़ों की मर्यादा कर लेना, भोग और उपभोग की चीजों को छोड़ना, अमुक चीजों का सेवन छोड़ना—जैसे मिठाई, नमक, घी खाना छोड़ना, यह उत्तरगुण पच्चक्खाण है।
- मूल गुण की मदद करने के लिये और उसको सुरक्षित रखने के लिए उत्तर गुण को एक सहयोगी व्यवस्था के रूप में रखा है, जब उत्तर गुण और मूल गुणों का अच्छी तरह से संरक्षण नहीं होता तो व्रतों के टूटने का खतरा रहता है।
- व्रत करते-करते गलती हो गई तो उसको छिपाकर नहीं रखें। यह नहीं सोचें कि महाराज से कहूँगा तो मेरी हँसी करेंगे, और यह कहेंगे कि स्वयं ने नियम लिया और पालन नहीं कर सका। महाराज से छिपाकर रखना भी कायरता है। महाराज के पास जाकर गलती को मंजूर कर लिया, और वे जो प्रायश्चित्त दें तो उसे स्वीकार कर लिया और शुद्धि करके फिर से आत्मा को उजला बना दिया तो कायर कहलायेगा या शूर ?
- एक छोटा सा सूत्र है 'निःशल्यो व्रती' जिसके मन में शल्य नहीं हो, वह व्रती है। चाहे उपवास हो, आयम्बिल हो, त्याग हो, तप हो, या समाज में उच्च सेवा का काम हो, इन व्रतों को स्वीकार करते समय मन में शल्य नहीं होना चाहिए।
- व्रत लेने से आत्मा का नियमन होता है, कामना कसी जाती है और मन की दुर्बलता मिटती है।

शास्त्र-ज्ञान

- हर एक शास्त्र से परमार्थ प्राप्त नहीं होता, क्योंकि काम-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र और राजनीति-शास्त्र आदि अनेक शास्त्र हैं, परन्तु ये जीवन की दुर्वृत्तियों पर शासन करने के शास्त्र नहीं हैं। इनसे लोक-जीवन का काम चल सकता है, अध्यात्म-जीवन का नहीं।
- धर्म-शास्त्र किसी को भी चोट पहुँचाने का निषेध करता है। धर्मशास्त्र का अनुगामी स्वयं हानि उठा लेगा, परन्तु दूसरे को धोखा नहीं देगा और आघात नहीं पहुँचायेगा। कुमार्ग में जाते समय उसका पैर लड़खड़ायेगा, हाथ कम्पित होगा और मन घबरा उठेगा।
- एक अर्थवान मनुष्य दूसरे का धन छीनना चाहेगा, परन्तु धर्मशासन वाला व्यक्ति स्वप्न में भी दूसरे के धन पर आँख नहीं उठायेगा।
- धर्मशास्त्र में अज्ञान और मिथ्यात्व को मिटाने की शक्ति रहती है। यदि अपने आप में परमार्थ मिलाना है, तो परमार्थ के ज्ञाता लोगों की संगति करनी चाहिए और व्यर्थ की बात करने वाले प्रमादियों से सदा दूर रहना चाहिए।
- यदि ज्ञान की अपेक्षा से श्रमणों की नींव कच्ची रह गई है, तो वे संयम की निर्मल आराधना नहीं कर पायेंगे और अन्य संघ वालों के समक्ष उनकी ठीक वैसी ही दशा होगी, जैसी कि कीचड़ में फंसी एक दुर्बल गाय की दशा होती है।

शास्त्रधारी सेना

- देश की शस्त्रधारी सशक्त सेना भी देश की आंतरिक स्थिति को नहीं सुधार सकती। बाहरी शक्ति से, बाहरी शत्रु से देशवासियों के जान-माल को खतरा हो तो शस्त्रधारी सेना रक्षा कर सकती है, बाहरी शत्रुओं को नष्ट कर सकती है। वह भीतरी शत्रुओं को, आन्तरिक बुराइयों को नष्ट नहीं कर सकती। नैतिकता एवं आदर्श संस्कृति के विनाश की ओर बढ़ते चरण को रोककर संस्कृति को बचाना हमारी शास्त्रधारी सेना का काम है।
- शास्त्रधारी सेना तैयार करने के लक्ष्य से स्वाध्याय एवं शिक्षण की व्यवस्था आपके सामने है। स्वाध्याय को अपने जीवन, समाज और देश का निर्माण करने वाला समझकर आपको आगे बढ़ना है। अन्तःकरण के सब विकारों को दूर करते हुए आगे बढ़ना है।

शास्त्र-रक्षा

- जैन समाज के ग्रन्थागारों में, ज्ञान भण्डारों में लाखों ग्रन्थ भरे पड़े हैं। हमारे बुजुर्गों ने, सन्तों ने शास्त्रों की रक्षा के लिए बहुत प्रयत्न किये। पूर्व में जैनों का मुख्य मूल विचरण स्थल मगध था। पटना, राजगृह, चम्पा, वैशाली आदि क्षेत्रों में विचरण करने वाले जैन संघ का स्थान परिवर्तन हुआ। चतुर्विध संघ के समक्ष उस समय यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि इन शास्त्रों की, अनमोल जैन साहित्य की सुरक्षा कैसे की जाए? उन्होंने शास्त्रों को जैसलमेर जैसे स्थान में—देश के एक कोने में ले जाकर सुरक्षित रखा, जहाँ कि कोई विधर्मी, धर्मद्वेषी, क्रूरशासक सरलता से न पहुँच सके। अवन्ती-उज्जैन में न रखकर शास्त्रों को जैसलमेर में रखा। आज भी हजार-हजार वर्ष

पहले के लिखे हुए शास्त्र जैसलमेर और पाटन में विद्यमान हैं। उनमें से अनेक भोज पत्रों पर, ताड़ पत्रों पर, वस्त्र के बने पत्रों पर लिखे हुए हैं। हमारे पूर्वाचार्यों ने, संतों ने, पूर्वजों ने, हमारे धर्मशास्त्रों के संरक्षण में कितना परिश्रम किया। पर आज हमारे शिक्षित नवयुवकों को, भाई-बहनों को उन धर्मशास्त्रों-धर्मग्रन्थों को उठाकर देखने की भी फुर्सत नहीं है, धर्मशास्त्रों को पढ़ने की रुचि नहीं है। तो क्या यह आपकी ज्ञान-भक्ति कही जायेगी, ज्ञान का विनय कहा जायेगा?

■ शिक्षा

- विद्या जीवन चलाने के लिए नहीं, किन्तु जीवन निर्माण के लिए है। इसका कारण बताते हुए शास्त्रकारों ने कहा कि साक्षरता रहित ज्ञान वाले पशु-पक्षी भी जीवन चलाते देखे जाते हैं। खाना, पीना, घर बनाना आदि कलाओं का ज्ञान उनमें भी पाया जाता है। फिर शिक्षण शालाओं में शिक्षा ग्रहण कर अगर मानव भी इतना ही कर पाये तो अशिक्षित व शिक्षित में कुछ भी अन्तर नहीं रह जायेगा। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि शिक्षा जीवन चलाने के लिए नहीं, अपितु जीवन बनाने के लिए है।
- अगर विद्या पढ़कर भी मानव में अहिंसा, सत्य, बंधुत्व, क्रोधादि शमन के गुण न आये तो विद्या दुःखदायी हो जायेगी।
- असीमित आवश्यकता बढ़ाने वाले ज्ञान की शिक्षा तो शिक्षण शालाएँ भी दे रही हैं। उस ज्ञान से जीवन चलेगा, पर बनेगा नहीं।
- आज तथाकथित शिक्षणालयों में जो डाक्टर, वकील आदि पैदा हो रहे हैं वे यांत्रिक विद्या तो जानते हैं, पर आत्मविद्या नहीं। हमारे शिक्षणालयों का यह भी उद्देश्य होना चाहिए कि उनमें छात्र सदाचारी व ईमानदार बनें। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति आप नहीं कर पाये तो लाखों का व्यय और जीवन का श्रम सफल नहीं हो सकेगा।
- आज हजारों शिक्षण संस्थाएँ चाहती हैं, फिर भी बच्चों में नैतिकता क्यों नहीं आ पाती? इसके लिए पहले शिक्षकों का दिमाग साफ और शुद्ध होना चाहिए। उनमें राष्ट्रीयता की भावना होनी चाहिए। वे झूठे नहीं हों। शिक्षक स्वयं व्यसनी नहीं हों। वे अर्थ का संग्रह करने वाले और इधर-उधर बच्चों पर हाथ साफ करने वाले नहीं हो। किसी को परीक्षा में पास करने के लिए हेरा-फेरी करने वाले नहीं हों। ऐसे दोष यदि शिक्षकों में होंगे तो वे नैतिकता की बात बच्चों को नहीं सिखा सकेंगे।
- आज के अध्यापक का जितना ध्यान शरीर, कपड़े, नाखून, दांत आदि बाह्य स्वच्छता की ओर जाता है, उतना उनकी चारित्रिक उन्नति की ओर नहीं जाता। बाह्य स्वास्थ्य जितना आवश्यक समझा जा रहा है अन्तरंग भी उतना ही आवश्यक समझा जाना चाहिए। अन्तर में यदि सत्य-सदाचार और सुनीति का तेज नहीं है तो बाहरी चमक-दमक सब बेकार साबित होगी। सही दृष्टि से तो स्वस्थ मन और स्वस्थ तन एक दूसरे के पूरक व सहायक हैं।
- वास्तव में जिस विद्या के द्वारा मनुष्य, हित, अहित, उत्थान और पतन के मार्ग को समझ सके वही सच्ची विद्या है। जैसे—"वेत्ति हिताहितमनया सा विद्या"। दूसरे व्याख्याकार का मत है कि जो आत्मा का बंधन काट दे, वही सही विद्या है—"सा विद्या या विमुक्तये"।
- आज का मनुष्य विद्या को जीविका-संचालन का साधन मानता है, निर्वाह का संबल मानता है, यह नितान्त भ्रम

है। जीवन-निर्वाह के लिए वस्तु जुटाना, खाद्य पदार्थ जुटाना, संतति का पालन-पोषण करना, गर्मी-सर्दी से बचाव करना आदि बातें तो पशु भी कर लेते हैं। पक्षी बड़ी चतुराई से अपना घोंसला बना लेता है और वह भी ऐसे स्थानों में जहाँ अन्य प्राणियों का संचार न हो। पेट पालने का तरीका, हुनर या शिल्प-विद्या विज्ञान है तथा आत्मतत्त्व को जानने की विद्या ज्ञान है–"मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।"

■ शुक्लपक्षी

- मिथ्यात्वी जीव का जब देश ऊन अर्द्ध पुद्गल संसार-भ्रमण बाकी होता है, तब जीव शुक्लपक्षी होता है। शुक्लपक्षी होने पर कितने समय के पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त करे, इसका नियम नहीं है। प्राचीन संतों की धारणा है कि कोई लघुकर्मी जीव तत्काल भी प्राप्त कर सकता है और कोई दीर्घकाल के पश्चात् भी। शुक्लपक्षी यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो फिर मिथ्यात्वी नहीं होता। किन्तु क्षयोपशम सम्यक्त्वी हो तो समय पाकर मिथ्यात्व मोह के उदय से मिथ्यात्वी बन सकता है, किन्तु शुक्लपक्षी फिर कृष्णपक्षी नहीं हो सकता।

■ शोषण नहीं पोषण

- यदि किसी को नौकर रखना है तो नौकर रखने वाले चालाकी किया करते हैं। वे सोचते हैं कि बड़े आदमी को नौकर रखेंगे तो वह पैसा ज्यादा लेगा और काम थोड़ा करेगा और हुकूमत मानेगा नहीं, इसलिए छोटे बच्चे को नौकर रखा जाए जो कम पढ़ा-लिखा हो और छोटे कुल का हो। वह अपनी हुकूमत भी मानेगा और पगार भी थोड़ी लेगा। कभी ऐसा नौकर मिल जाता है जिसको यह कह दिया जाता है कि तुझे रोटी दूँगा, कपड़े दूँगा, रोटी-कपड़ा ले और काम हो सो कर। घर में दस आदमी आ गये तो उस नौकर से कहेंगे कि आज तुझे थाल भी रगड़ने पड़ेंगे। फिर कहेंगे कि आज झाड़ू भी लगा दे। तीसरे दिन कहा कि आज पानी भरने वाली नहीं आई है तू नल पर से पानी ले आ। वह पानी भी लायेगा। अत्यधिक कम वेतन पर या रोटी कपड़े पर रखा है, उससे कपड़े भी धुला लेंगे, बच्चे को रखने का काम भी उसे दे देंगे। बच्चा मल-मूत्र कर गया तो उसे भी वह साफ करेगा। इतना काम उससे लिया जाता है। जितना काम लिया है उतना ही ईमानदारी से देना भी चाहिए। उससे अधिक काम लिया है तो वेतन के अलावा अनुदान भी मिलना चाहिए।
- आपका मुनीम है अथवा आप से काम सीखने वाला है। क्या आप उसमें ऐसी क्षमता पैदा कर दोगे कि वह मुनीम ही नहीं रहे, सेठ बन जाय। ऐसे दिल वाले आप में से कितने हैं ? कदाचित् उसकी हैसियत और योग्यता बढ़ने पर नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र धन्धा करने की बात कहे तो यह सुनकर आपके मन में और चेहरे पर फर्क तो नहीं पड़ेगा ?

■ श्रमण-जीवन/ साधक-जीवन

- श्रमण के दो अर्थ मुख्य हैं। एक तो यह कि तप और संयम में जो अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है, तपस्वी है वह श्रमण है। दूसरा अर्थ है 'समण' अर्थात् त्रस, स्थावर सब प्रकार के प्राणियों की जिसके अन्तःकरण में हित-कामना है, वह श्रमण है।
- जो साधक त्रस-स्थावर जीवों पर समभाव रखने वाला होता है, उसके मन में आकुलता-व्याकुलता और विषम भाव नहीं होते, वही श्रमण कहलाने का अधिकारी है, उसको 'समन' कहते हैं।

- जिस प्रकार गृहस्थ वर्ग की सम्पदा धन-धान्य और वैभव है उसी प्रकार श्रमण-श्रमणी समाज की सम्पदा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र है।
- किसी के यहाँ जब कोई अतिथि आता है तो गृहपति अच्छे-अच्छे पदार्थों से उसका सत्कार करता है। संत भी अतिथि हैं, परन्तु भेंट, पूजा, पैसे लेने वाले नहीं हैं। उनका आतिथ्य व्रत-नियम से होता है। सत्संग से आप शिक्षा लेकर जीवन शुद्धि करें, इसी में सन्तों की प्रसन्नता है।
- शास्त्र और श्रमण संघ की मर्यादा है कि साधु-साध्वी फोटो नहीं खिचवाए और मूर्ति, पगल्ये आदि कोई स्थापन्न करे तो उपदेश देकर रोके। रुपये पैसे के लेन-देन में नहीं पड़े और न कोई टिकिट आदि अपने पास रखे। साधु-साध्वी स्त्री-पुरुषों को पत्र नहीं लिखे और न मर्यादा विरुद्ध स्त्रियों का सम्बन्ध ही रखे। तपोत्सव पर दर्शनार्थियों को बुलाने की प्रेरणा नहीं करे। महिमा, पूजा एवं उत्सव से बचे। धातु की वस्तु नहीं रखे, न अपने लिए क्रीत वस्तु का उपयोग करे।
- संत लोगों का काम तो उचितानुचित का ध्यान दिलाकर रोशनी पहुँचाना, सर्चलाइट दिखाना, मार्ग बताना है, लेकिन उस मार्ग पर चलना तो व्यक्ति के अधीन है।
- साधु सम्पूर्ण त्यागमय जीवन का संकल्प लेकर जन-मानस के सामने साधना का महान् आदर्श उपस्थित करता है। वह रोटी के लिए ही सन्त नहीं बनता। संत की साधना का लक्ष्य पेट नहीं ठेट है। वह मानता है कि रोटी शरीर पोषण का साधन है और शरीर उपासना एवं सेवा का मूल आधार।
- तप और त्याग के वातावरण में त्यागी पुरुषों के जीवन का मूक प्रभाव लोगों पर पड़ता ही रहता है और उनकी जीवनचर्या से भी प्रेरणा मिलती रहती है। जैसे पुष्पोद्यान का वातावरण मन को प्रफुल्लित करने में परम सहायक होता है, वैसे संत-संगति भी आत्मोत्थान में प्रेरणादात्री मानी गयी है।
- देश और समाज को घर में व्याप्त अनैतिकता आदि के दंश एवं समाजघाती कीटाणुओं के दुष्प्रभाव से मुक्त कराने में, दुष्प्रवृत्तियों की ओर से देशवासियों का मन मोड़ने में त्यागी सन्त-सतियों का आचारनिष्ठ चरित्र ही समर्थ है। शस्त्रधारी सैनिक डण्डा मार सकता है, मन को नहीं मोड़ सकता। मन मोड़े बिना इन बुराइयों को जड़ से दूर नहीं किया जा सकता।
- जो परोपकारी सन्त-सतीवृन्द त्यागी-विरागी तपस्वी सन्त-समाज सारे देश में, कोने-कोने में फैला हुआ है, उसके सत्संग में, उसके समागम में आने वाले कितने ही युवक, बाल, वृद्ध और दुर्व्यसनों में फँसे लोगों के जीवन में सुधार होता है। बहुतों का हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। प्रत्येक नगर में, ग्राम में ऐसे अनेक बालक हैं, धूम्रपान का व्यसन उनको लग गया है और अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों के भी शिकार हो गये हैं। क्या उनका सुधार शस्त्रधारी सैनिकों से हो पायेगा ? नहीं, उनके लिये शस्त्रधारी सैनिक उपयोगी नहीं, अपितु सन्त-सती जन ही उनके मन को मोड़ सकते हैं। वे ही लोगों में फैले दुर्व्यसनों को जड़ से मिटा सकते हैं और उनकी शक्ति की दिशा को देश के, समाज के अभ्युत्थान के कार्यों की तरफ मोड़ सकते हैं।
- साधना करने वाले साधकों को तीन रूपों में रखा जा सकता है:- (१) चेतनाशील और स्वस्थ (२) चेतनाशील किंतु अस्वस्थ (३) चेतनाशून्य—मात्र वेष को धारण करने वाले । प्रथम चेतनाशील साधक वे हैं जो बिना किसी पर की प्रेरणा के कर्तव्य-साधन में सदा जागृत रहते हैं। आचार या विचार में जरा भी स्खलना आई कि वे तत्काल संभल कर इष्ट मार्ग में प्रवृत्त होते हैं और अनिष्ट से निवृत्त होते हैं। विषय-कषाय पर विजय प्राप्त करने

में प्रतिपल आगे बढ़ना ही जिनकी साधना का रूप होता है। क्रोध, लोभ और भय-मोह के द्वन्द्व से वे कभी साधना च्युत नहीं होते। जैसे नदी के प्रवाह में गिर कर भी कुशल नाविक का जहाज गंतव्य मार्ग नहीं भूलता, किंतु प्रवाह को चीर कर बाहर निकल आता है, वैसे ही चेतनाशील स्वस्थ साधक की जीवन-नैया भी विकारों से पार हो जाती है। दूसरे दर्जे के साधक चेतनाशील होकर भी अस्वस्थ होते हैं। आहार-विहार व आचार-विचार में शुद्धि के कामी होते हुए भी वे प्रमादवश चक्कर खा जाते हैं और विविध प्रलोभनों में सहज लुब्ध और क्षुब्ध हो जाते हैं। उन्हें उस समय किसी योग्य गुरु द्वारा प्रेरणा की आवश्यकता रहती है । जब वे शारीरिक, मानसिक कष्ट में घबरा जाते हैं और दृश्य-श्रव्य-भव्य भोगों में लुभा जाते हैं, तब कर्तव्य की साधना धुंधली हो जाती है । यदि कोई प्रबुद्ध उस समय उन्हें नहीं संभाले तो वे साधना-मार्ग से च्युत हो जाते हैं। तीसरे चेतना शून्य साधक हैं जो व्रत-नियम की अपेक्षा छोड़ कर केवल वेष को वहन करते हैं। छिपे कुकर्माचरण करने पर भी जब कोई कहता है- "महाराज ! संयम नहीं पालने की दशा में वेष क्यों रखते हो ?" तब कहते हैं-"यह तो गुरु का दिया हुआ बाना है भला इसे कैसे छोड़ सकता हूँ !" इस प्रकार पारमार्थिक साधना को छोड़ कर आरंभ परिग्रह का सेवन करने वाले चेतना शून्य साधक हैं। फिर भी वे वेष व भिक्षावृत्ति को नहीं छोड़ते । वे बुझे हुए दीपक या पिंचर हुई साइकिल की तरह स्वपर के लिये भारभूत हैं। उन्होंने घर-द्वार का त्याग किया, निरारंभी-अपरिग्रही मुनिव्रत लिया, किन्तु संसार के मोहक माया-जाल में सब भूल गये । उनकी साधना में गति नहीं रही, अतः कल्याण-मार्ग में सहायक नहीं हो सकते ।

- दूसरी श्रेणी के जो साधक चेतनाशील होकर भी अस्वस्थ हैं, सुयोग्य गीतार्थ-गुरु द्वारा यदि उनके मंदाचरण के दीप में साहस का स्नेह न डाला जाय और सारणा-वारणा से विवेक की बाती को ऊपर न उठाया जावे तो संभव है अल्प समय में ही वह साधना की धीमी-धीमी जलती ज्योति बुझ जाय । मोह की आंधी में वह अविचल नहीं रह सकती। इसलिये उसे गुरु-गण और संघ-वास में मर्यादित होकर रहना पड़ता है। आचार्य व संघ का भय तथा लोकलज्जा ही उनकी साधना के प्रमुख आधार हैं। वे उस विद्यार्थी के समान हैं जो शिक्षक के सामने और परीक्षा के डर से ही अभ्यास करते हैं।
- आज श्रमण का जीवन निराला हो गया है। वह साधना के मार्ग से हटता जा रहा है। प्रातः व सायं प्रतिक्रमण, प्रवचन आदि आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त प्रायः उसका संपूर्ण समय जनरंजन, लोकचर्चा, संगीत व वार्तालाप आदि में व्यतीत हो जाता है। क्या यही श्रामण्य जीवन का ध्येय है ? क्या इसी के लिए श्रमण बना जाता है।
- जो वंदनीय हो गये हैं वे यदि न तो अध्ययन ही करते हैं और न सेवा, ध्यान आदि क्रियाएँ ही करते हैं; केवल उनके मन मस्तिष्क पर लोकैषणा की भावना ही यदि सवार रहती है तो शेर की तरह गर्जते हुए साधना के मार्ग पर कदम रखने वाले सन्तों में भी आगे जाकर तेज नहीं रहता है, जिससे उनकी प्रगति रुक जाती है।
- कुछ साधक आगम रहस्यों को जानने की जिज्ञासा को छोड़कर प्रायः साधना के उषाकाल से ही भाषा ज्ञान की तैयारी में संलग्न हो जाते हैं, जिससे उन्हें आगमज्ञान का अवसर ही नहीं मिल पाता। जब उच्च परीक्षोत्तीर्ण श्रमण-श्रमणी भी शास्त्रों के ज्ञाता व अध्येता नहीं हों तो अन्य से आशा करना, आकाश कुसुमवत् ही है।
- जिन साधकों की जिस प्रकार की योग्यता हो उन्हें उसी प्रकार का शिक्षण देना चाहिये। १ वेयावच्ची, २ तपस्वी, ३ लेखक-पण्डित, ४ प्रवचनकार और ५ ध्यानी साधकों को उनकी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ाना चाहिए।
- जिन साधकों में प्रतिभा की तेजस्विता न हो और जिनके अंतर्मानस में सेवा की महती भावना उद्बुद्ध हो रही हो,

उन्हें सेवा के महत्त्व को समझाते हुए सेवा की कला का ज्ञाता बनाना चाहिये और जो साधक तप की ओर बढना चाहते हों, अपना तपःपूत जीवन व्यतीत करना चाहते हों उन्हें तप में मनोबल बढ़ाने एवं बाह्य आडम्बर से अलग-थलग रहने को उत्प्रेरित करना चाहिये। उन्हें रत्नावली, कनकावली और वर्धमान तप की भांति, रस-त्याग आदि तपविधि का परिज्ञान कराया जाना चाहिए। लेखक और विज्ञों के लिए भाषा ज्ञान के साथ ही विविध आगम-शास्त्रों का तुलनात्मक ज्ञान कराना अपेक्षित है।

- प्रमुख प्रवर्ताओं को देश, विदेश की स्थिति का, स्वमत व अन्यमतों का तथा न्याय, दर्शन, साहित्य का अध्ययन कराया जाय और साथ ही उन्हें भाषण-कला प्रवीण भी बनाया जाय।
- सेवा, तपस्या, लेखन, भाषण और ध्यान की यह पंचसूत्री योजना कार्यान्वित हो जाय तो मैं समझता हूँ कि साधना में एक नया मोड़ आ जायेगा। आर्यावर्त के महामानव भगवान महावीर ने जीवन की सांध्य वेला में उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवें अध्ययन में समाचारी का जो रूप प्रस्तुत किया है वह निराला है। पच्चीस सौ वर्षों का दीर्घ काल व्यतीत हो जाने पर आज भी वह सर्चलाइट के रूप में चमक रहा है उसी को आधार मानकर हमें समाचारी का रूप निश्चित करना चाहिए।
- प्रथम प्रहर में प्रतिलेखन (मौन) स्थंडिल और स्वाध्यार्य करनी चाहिए। द्वितीय प्रहर में शिक्षा (प्रवचन और पठन) भिक्षा और पन्द्रह मिनिट ध्यान करना चाहिये। तृतीय प्रहर में नवीन वाचन, लेखन और प्रश्नोत्तर होने चाहिये। चतुर्थ प्रहर में प्रतिलेखन, समाज चर्चा, स्थंडिल और आहार आदि होने चाहिए।
- रात्रि के प्रथम प्रहर में प्रतिक्रमण के पश्चात् स्तुतिपाठ, आधे घंटे तक प्रश्नोत्तर, स्वाध्याय और एक घंटे तक ध्यान करना चाहिये। द्वितीय प्रहर में ध्यान के पश्चात् निद्रा और चतुर्थ प्रहर में ध्यान, स्वाध्याय और प्रतिक्रमण करना चाहिये। सहस्र रश्मि सूर्योदय के समय प्रभु-प्रार्थना करनी चाहिए।
- जीवन का मूल उद्देश्य साधना है। साधना-विहीन जीवन प्राण रहित कलेवर के समान है, जो चलता नहीं सड़ता है। साधना की सड़क पर मुस्तैदी से कदम बढावें, अपने जीवन को त्याग, वैराग्य और संयम के रंग में रंगें, तभी जीवन उज्ज्वल है एवं भविष्य प्रकाशमान है।
- साधु-साध्वियों के लिए संघट्टा जैसी चीज़ साधारण दिखने पर भी अपने में बड़ा महत्त्व रखती है। जाजम के एक किनारे पर बैठे हुए स्त्री पुरुष का संघट्टा साधारण दृष्टि से हानिकर नहीं दिखता, परन्तु यह मर्यादा का अतिरेक भी हमें संसर्ग दोष से बचने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है। ऐसे साधारण नियमों को समझकर अवहेलना नहीं करनी चाहिये। आत्म-शुद्धि के लिए जैसे कषायों के उपशम एवं क्षपण की आवश्यकता है, वैसे कषाय-विजय के साधन रूप से आहार शुद्धि आदि बाह्य मर्यादाओं की भी आवश्यकता है। उत्तराध्ययन सूत्र में मोक्ष का स्वरूप बतलाते हुए शास्त्रकार ने कहा है कि ज्ञान का सम्पूर्ण प्रकाश करने, अज्ञान व मोह का निवारण करने और राग-द्वेष का क्षय करने से एकान्त सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। वहाँ पर सम्पूर्ण राग-विजय का मार्ग बतलाते हुए गुरु-वृद्ध की सेवा और स्वाध्याय के साथ एकान्त सेवन एवं धैर्य धारण रूप मार्ग कहा है। वीतराग भाव की प्राप्ति हेतु वहाँ उपाय रूप से कुछ बाह्याचारों की ओर भी लक्ष्य रखने का संकेत किया है। ज्ञान, ध्यान, सद्भावना आदि अन्तरंग साधनों की तरह आहार-विहार, वेश-भूषा, साहित्य और संगति का भी मन पर बड़ा असर होता है।
- रसों का अत्यधिक सेवन करने से राग की वृद्धि होती है और रागी को कामनाएँ घेर लेती हैं। इसी प्रकार स्त्रियों

के रूप लावण्य, हास-विलास आदि को मन में रख कर कभी उन्हें देखने का प्रयत्न न करें।

- राग-रहित साधक सजी हुई देवियों से भी विचलित नहीं होता, फिर भी एकान्त हितार्थ मुनिजनों को स्त्री आदि विकारी वातावरण से रहित स्थान पर ही ठहरना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि त्यागीजनों को शरीर की शोभा का वर्जन करना चाहिए। तेल-साबुन आदि से शरीर को सजाना भोगीजनों का काम है । मोह उत्पन्न हो ऐसी हर प्रवृत्ति से बचना ही वीतराग भाव की प्राप्ति का उपाय है।
- चारित्राचार में पाँच समिति और तीन गुप्ति के सन्दर्भ में कई उपादेय परम्पराएँ हैं। ईर्या समिति में मार्ग चलते बोलना, कथा करना, हँसना और एषणा में अन्न-पानादिक की बराबर गवेषणा नहीं करना, मंगाये हुए पदार्थ लेना, एक ही घर में अमर्यादित जाना, दिन में तीन बार भिक्षा करना आदि उदयमान की शिथिल परम्पराएँ है। इनको ध्यान में रखकर उपाश्रय में ही आहार आदि लेने या किसी एक घर में ही खाने की परम्परा डालना उचित नहीं कहा जा सकता ।
- उदय भाव के कारण साधक त्याग, तप और व्रत-नियम की साधना करते हुए परीषहों से उद्वेलित हो अस्थिर हो उठता है। यह अनादि काल से कायर जन की परम्परा रही है। अरणक जैसे कुलीन सन्त भी चर्या परीषह में आतप सहन नहीं होने से खिन्न हो संयम से विचलित हो गये। माता साध्वी को पता चला तो बड़ा दुःख हुआ। उसने पुत्र की मनः शान्ति के लिए उपदेश दिया और प्रायश्चित्त द्वारा उसे शुद्धि करने की शिक्षा दी। वह चाहती तो पुत्र की सुकोमल स्थिति को देख अपवाद रूप में जूते धारण करने या लाई हुई प्रासुक भिक्षा लेने की छूट दे देती, पर उसने वैसा नहीं किया, क्योंकि उसे इसमें पुत्र का अहित दृष्टिगोचर हुआ। उसने पुत्र की कायरता दूर कर उसे तप्त शिला पर लेट कर प्रायश्चित्त करने की शिक्षा दी। विवेकशील को चाहिए कि कभी कष्ट से घबरा कर किसी साधक को असमाधि हो तो उपदेश द्वारा स्थिर करने का प्रयत्न करे, न कि "डूबते को दो बाँस" की तरह उसे गिराने की चेष्टा करे।
- विद्वान् यदि दुर्बल परम्पराओं को झकझोर कर सबल बनाने का प्रयास करें, त्याग तप की परम्परा को पुष्ट करें तो शासन सेवा के साथ स्व-पर कल्याण हो सकता है।
- श्रेणिक राजा के पुत्र मेघ कुमार रात्रि में मुनियों के पैरों की ठेस और रजोहरण आदि के स्पर्श से निद्रा न आने के कारण चंचल मन हो, संयम छोड़ने को तैयार हो गये। शैलक मुनि सुख शय्या में साधना को भूलकर शिथिल विहारी हो गये, पर उनको क्रमशः भगवान महावीर और पंथक मुनि ने युक्तिपूर्वक स्थिर किया। साधुओं ने शैलक का सहयोग छोड़ा और पंथक मुनि ने भी अवसर देखकर उन्हें कमजोरी का ध्यान दिलाया, परिणाम स्वरूप शैलक उग्र विहारी हो गया। यदि साधु लोग उसके स्थिरवास और शिथिल विहार में सहयोगी होते तो शैलक का साधक जीवन गिर जाता। वे सदा के लिये स्थिर-वासी हो जाते। सन्तों ने उनका असमाधि भाव ज्ञान से दूर किया। आर्यरक्षित ने अपने प्रिय पिता को छत्र, उपानह आदि की छूट देकर मार्ग में लगाया और फिर युक्ति-पूर्वक पूर्ण त्याग-मार्ग पर स्थिर किया। यह है सत्य, प्रेम और स्वपर की कल्याण कामना। आज के त्यागियों को इससे शिक्षा लेकर सत् परम्परा से कोई खिन्न भी हो तो उसे स्थिर कर अपने बुद्धि-बल का परिचय देना चाहिए। इसी में शासन की शोभा और स्वपर का कल्याण है।

श्रावक-कर्त्तव्य

- आचार-पालन का आशय यह नहीं कि प्रजाजनों को निर्वीर्य होकर, राजकीय शासन के प्रत्येक आदेश को नेत्र बन्द करके शिरोधार्य कर लेना चाहिए। राज्य शासन की ओर से टिड्डीमार, चूहेमार या मच्छरमार जैसे धर्म-विरुद्ध आन्दोलन या आदेश अगर प्रचलित किये जाएं अथवा कोई अनुचित कर-भार लादा जाय तो उसके विरुद्ध सत्याग्रह या असहयोग करना व्रत भंग का कारण नहीं है। इस प्रकार का राज्य विरुद्ध कृत्य अतिचार में सम्मिलित नहीं होगा, क्योंकि वह छुपा कर नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त उसमें चौर्य की भावना नहीं, वरन् प्रजा के उचित अधिकार के संरक्षण की भावना होगी। इसी प्रकार अगर कोई शासन हिंसा, शोषण, अत्याचार, अनीति या अधर्म को बढ़ावा देने वाला हो तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करना एक नागरिक के नाते उसका कर्त्तव्य है। इसमें कोई धर्म बाधक नहीं हो सकता। यह कार्यवाही विरुद्ध राज्यातिक्रम में सम्मिलित नहीं है।
- श्रावक-धर्म का अनुसरण करते हुए जो व्यापारी व्यापार करता है, वह समुचित द्रव्योपार्जन करते हुए भी देश और समाज की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है।
- प्रत्येक जैन कुल में अमुक नियम अनिवार्य होने चाहिए। एक बार दिन में व्याख्यान नहीं सुन सकें तो भी धर्म-स्थान पर आकर मौन भाव से १० मिनट के लिए ही सही, धर्म-ग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिए। ऐसा समाज धर्म हो सकता है।
- प्रतिदिन के कार्य की प्राथमिकता श्रावक की इस प्रकार होती है — १. देव-भक्ति, २. गुरु-सेवा, ३. परिवार एवं समाज-सेवा, ४. आरोग्य संरक्षण, ५. व्यवसाय। मेरे मत में ये पाँच खाने जीवन के बना लें और दिनचर्या के उसी प्रकार पाँच भाग करें। कितना भी आवश्यक कार्य क्यों न हो, नियमित दिनचर्या अवश्य निभावें।
- जिस प्रकार व्यवसाय को आप आवश्यक समझते हैं, उसी प्रकार नियत समय पर स्वाध्याय और समाज-सेवा भी करें। डायरी में व्यवसाय को पाँचवा स्थान मिला है, पर आज उलटा हो गया। पहला स्थान व्यवसाय को, दूसरा स्वास्थ्य को, तीसरा परिवार को, और उसके बाद गुरुसेवा और देवभक्ति को आप स्थान दे रहे हैं। जबकि पहला स्थान देवभक्ति, दूसरा गुरुसेवा, तीसरा समाज-सेवा और चौथा आरोग्य संरक्षण को दिया गया था। आरोग्य नहीं रहा और पैसा मिल गया तो वह किस काम का? गुरुजनों की सेवा नहीं कर सका, शास्त्रों का अध्ययन नहीं कर सका तो चौबीसों घंटों कमाया गया पैसा किस काम आया? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि पाँचों बातों को ध्यान में रखते हुए अपने जीवन का उद्धार करे।
- श्रावक-श्राविकाओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनका अनुराग किसी भी दशा में धर्मानुराग की सीमा का उल्लंघन न करने पाये। उन्हें साधुओं को भिक्षा देते समय सही स्थिति जता कर भिक्षा देनी चाहिए। चाहे महाराज ज्यादा लेवें अथवा न लेवें तो कोई बात नहीं। परन्तु उनको कभी अंधेरे में नहीं रखना चाहिए। कोई वस्तु अपने लिए बनाई या मुनि के लिए बनाई है, या सूझती (निर्दोष) है या नहीं, यह सब भिक्षार्थ आये हुए मुनि को स्पष्ट रूप से बता देना श्रावक का फर्ज है। विवेकशील श्रावक-श्राविकाओं को साधु-साध्वियों का चारित्र निर्मल रखने में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। श्रावक-श्राविकाओं में यदि विवेक नहीं होगा तो साधु-साध्वियों का संयम भी उच्च और निर्मल नहीं रह सकेगा। इसलिए श्रावक-श्राविकाओं में विवेक का होना तथा उनका अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहना परमावश्यक है।

- गन्दे वातावरण का निर्माण करने वाले भी आप हैं और प्रशस्त परम्पराओं की प्रतिष्ठा करने वाले भी आप ही हैं। आपके वातावरण का निर्माण कोई दूसरा नहीं करता। गंदा वातावरण बनाने में आप अग्रगामी बनते हैं तो दूसरों को भी प्रोत्साहन मिलता है। इसके बदले अगर आप कोई अच्छी परम्परा शुरु करें तो आपका भी भला हो और दूसरों का भी भला हो सकता है।

षट्कर्म

- शरीर रक्षण में षट्कर्म को आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार ज्ञानियों ने आत्म-रक्षण के लिए भी देवभक्ति, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानरूप षट्कर्म का विधान किया है। कहा भी है-

देवर्चा गुरुशुश्रूषा, स्वाध्याय: संयमस्तप:।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने-दिने॥

संघ

- सामान्य रूप से संघ का अर्थ है समूह । अनेक प्राणियों के मिले जुले समूह को संघ कहते हैं। सेवा, सुश्रूषा, संरक्षण, आदि की सुविधा के लिए मनुष्य अपना कोई समूह बनाकर रहता है। जिसको संघ, समाज आदि किसी विशेष नाम से कहा जाता है।
- हजार पाँच सौ ईंटों को व्यवस्थित जमा दिया जाय तो अच्छी सी दिवाल या चबूतरा हो सकता है, किन्तु उनमें स्थायित्व लाने के लिए चूना, सीमेन्ट या चिकनी मिट्टी जैसा श्लेष जोड़ना पड़ता है अन्यथा कभी भी धक्का खाकर ईंट गिर सकती है । ऐसे ही मनुष्य में भी, स्नेह, श्लेष और सरलता हो तो संगठन टिक सकता है। 'माया मित्ताणि नासेइ' जहाँ कपट है वहाँ प्रेम-मैत्री नहीं रह सकती।
- जैसे जड़ जगत में अनंत परमाणु मिलकर स्कंध कहलाता है और व्यवहार में उपयोगी होता है वैसे ही अनेक व्यक्ति मिलकर जब संगठित होते हैं तो उसे संघ कहते हैं। एक की शक्ति दूसरे से मिलकर वृद्धिगत हो और उसका व्यवहार में विशेष उपयोग हो सके, यही संघ-निर्माण का मुख्य लक्ष्य है।
- शक्ति एवं योग्यता हर व्यक्ति में है। जब एक से अनेक मिलते हैं तो उनकी शक्ति भी उसी प्रकार बहुगुणी हो जाती है जिस प्रकार एक से एक मिलने पर ग्यारह गुणे हो जाते हैं। परन्तु इतना ध्यान रहे कि विजातीय या विषम स्वभाव के अणुओं का मेल शक्ति को बढ़ाता नहीं, घटाता है। इसीलिये सुवर्णखान का पार्थिव पिंड बडा होकर भी उतना मूल्य नहीं देता जबकि शुद्ध होने पर सुवर्ण का पिंड लघु होते हुए भी बहुमूल्य हो जाता है। ऐसे ही मानव समाज में भी विषम शील और विरुद्ध आचार-विचार के लोगों का संगठन लाभकारी नहीं होता।
- गुणहीन संगठन घास की पूली या भारे के समान है और गुणवान संघ घास के रस्से के समान है। घास का भारा और पूली मोटी होकर भी निर्बल होती है और रस्सा पतला होकर भी शक्तिशाली ।
- मिथ्यात्वियों का करोड़ों का समूह ज्ञानादि गुणहीन होने से भवबंधन नहीं काट सकता, परन्तु सम्यग्ज्ञानी छोटी संख्या में भी ज्ञान आदि गुणों से सशक्त होकर स्व-पर का बंधन काट सकते हैं। यही सुसंगठन की महिमा है।
- भगवती सूत्र में संघ को तीर्थ कहा है 'तित्थं खलु चाउवण्णे समणसंघे' श्रमण प्रधान चतुर्वर्ण संघ ही तीर्थ है, तारने वाला है।

- जैसे साधारण गृहस्थ को आत्म-रक्षण एवं विकास के लिये नगर के सुप्रबंध की आवश्यकता है वैसे ही मोक्षमार्ग के साधक को प्रमाद और कषायादि के वश साधना से स्खलना या उपेक्षा करने पर योग्य प्रेरणा की आवश्यकता रहती है, जो संघ में मिल सकती है। संघ में आचार्य आदि के द्वारा सारणा, वारणा और धारणा का लाभ मिलता रहता है। संघ के आश्रित साधुओं की रोगादि की स्थिति में संभाल की जाती है, ज्ञानार्थियों के ज्ञान में सहयोग दिया जाता है, अशुद्धि का वारण किया जाता है और शास्त्र-विरुद्ध प्ररूपणा को टालकर सम्यग् मार्ग की धारणा करायी जाती है। शिथिल श्रद्धा वालों को बोध देना और शिथिल विहारी को समय-समय पर प्रेरणा करना, संघ का मुख्य कार्य है।
- संघ की यह अपेक्षा रहती है कि साधक में घोर तपोबल हो या न हो, विशिष्ट श्रुत के बदले भले ही सामान्य श्रुतधर ही हो, विशाल शिष्य समुदाय की अपेक्षा कदाचित् परिवार हीन हो, पर अखंड संयम व सुश्रद्धा की संपदा तो होनी ही चाहिये।
- संघ में सत्य, सदाचार एवं अपरिग्रह के मूलव्रत अखंड हों, यह अत्यावश्यक है।
- संघ की शरण इसीलिये ली जाती है कि मंदमति साधक उपदेश, आदेश व संदेश में शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्ति न करे, महिमा पूजा के चक्कर में अकल्प का आसेवन नहीं करे और साधना मार्ग में समय-समय पर प्रोत्साहन पाता रहे, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सरलता से वृद्धि कर सके।
- संघ शीतल घर की तरह है। संघ में योग्य साधक स्वयं अपने गुण-दोषों का निरीक्षण करता है और साधारण सा भी कहीं दोष दृष्टिगत हुआ कि अविलम्ब उसका शुद्धीकरण करता है।
- तप-नियम और संयम-श्रद्धा ही संघ-भवन का मुख्य आधार स्तम्भ है। अत: कल्याणार्थी के लिये सदा इस प्रकार के संघ की शरण श्रेयस्कर मानी गई है।
- राज्य शासन में जैसे ईमानदार सैनिक आवश्यक हैं ठीक ऐसे ही धर्म शासन में भी आचार्य, उपाध्याय आदि सुयोग्य शासकों के साथ ईमानदार श्रावक-श्राविकाओं का सैन्य दल भी चाहिये श्रावक-श्राविकाएँ साधु-साध्वी के व्यक्तिगत लपेटे में नही आएँ। वे संघ को मुख्य मानकर संयम के अनुरूप सेवा करें।
- संघ मुख्य है, व्यक्ति मुख्य नहीं। संघ सदा रहेगा, व्यक्ति सदा नहीं रहेगा। व्यक्ति चाहे साधु हो, साध्वी हो या श्रावक-श्राविका। व्यक्ति का रक्षण संघ द्वारा होता है। नन्दीसूत्र की स्थिरावली में तीर्थंकर भगवान की स्तुति रूप गाथा तो तीन बताई, पर संघ की महिमा आठ उपमाओं से पन्द्रह गाथाओं में बताई गई है संघ मेरु है, संघ नगर है आदि-आदि।
- श्रावक रक्षक होता है और रक्षक का कर्तव्य है कि वह साधु-साध्वी के आहार-विहार शिक्षा-दीक्षा और ज्ञान-ध्यान में निर्दोष मार्ग का सहयोगी रहे।
- हमें जो भी साधना करनी है जिनरंजन के लिए करनी है जनरंजन के लिए नहीं। साधना के लिए जिनरंजन चाहिये, जनरंजन नहीं। जनरंजन के व्यवहार में साधक-वर्ग में साधना का लक्ष्य गौण हो जाता है, भले ही उनको अनेक भक्त मिल जायें। खयाल रखो, जनरंजन से वाहवाही हो जायेगी, कीर्ति हो जायेगी, लेकिन आत्मोत्थान नहीं होगा। जिन-रंजन में आत्मा का कहीं पतन न हो जाए इसका चिन्तन रहता है।
- जिनरंजन की रुचि वाले श्रावक अपने आत्मोत्थान के साथ संत-समुदाय को भी वीतराग भगवान और संघ की

आज्ञा-पालन करवाने में सहयोगी होते हैं।

- सामान्य जनों में औरतों से अधिक बातें करने वाला या पैसा रखने वाला संत तो आपको अपराधी रूप में नजर आता है, पर आज्ञा का उल्लंघन करने वाला उस तरह से अपराधी के रूप में नजर नहीं आता। आज्ञा का विराधक कम दोषी है ऐसा नहीं है, आज्ञा सब व्रतों का मूलाधार है।
- हिंसा, चोरी, कुशील की तरह आज्ञा उल्लंघन या आज्ञा भंग करना भी बड़ा अपराध मानो गया है।
- संघ में कोई साधु गलती कर जाय तो संघाधिकारी आचार्य यथोचित प्रायश्चित्त देकर शुद्धि करता है। कभी किसी को अलग भी करना होता है तो यह आचार्य के अधिकार की बात है। श्रावकगण का कर्तव्य आदेश की यथोचित पालना की व्यवस्था करना मात्र है, पर दखल श्रावक के अधिकार की बात नहीं है।
- साधुओं का नियम है–ध्वनिवर्धक यंत्र का प्रयोग न करें, फ्लश का उपयोग न करें, फोटो नहीं खिंचावें। इसी प्रकार संतों के स्थान पर महिलाओं का और सतियों के स्थान पर पुरुषों का असमय में आना जाना या बैठना वर्जित है। इन नियमों का परिपालन तभी होगा, जब श्रावकों का ईमानदारी से सहयोग रहेगा।

■ संयम

- वाणी और शरीर के दोषों को काबू कर लेने पर मानसिक दोष धीरे-धीरे नियंत्रण में आ सकते हैं। मन आखिर वाणी और शरीर के माध्यम से ही तो दौड़ लगाता है। यदि काया को वश में कर लेंगे तो मानसिक पाप स्वयं कम हो जाएंगे। कभी किसी के मन में गलत इरादा आया, किन्तु व्यवहार में वाणी से झूठ नहीं बोलने का संकल्प होने के कारण उच्चारण नहीं किया, व्रत में पक्का रहा तो वह मानसिक तरंग धीरे-धीरे विलीन हो जाएगी। इसीलिए बाहर के आचारों का नियंत्रण पहले करने की आवश्यकता बतलाई है।
- भगवान महावीर ने साधक को सूचना दी है कि भोजन उतना ही करना चाहिये जिससे संयम की साधना में बाधा न पहुँचे ; आवश्यकता से अधिक भोजन किया जायेगा तो शरीर में गड़बड़ होगी, मन में अशान्ति होगी, प्रमाद आएगा और साधना यथावत् न हो सकेगी। स्वाध्याय और ध्यान के लिए चित्त को जिस एकाग्रता की आवश्यकता है, वह नहीं रह सकेगी। खाने में संयम रख कर कम खाओगे तो रोग से बचोगे। वचन पर, वाणी पर संयम रखोगे, कम बोलोगे तो राग, द्वेष एवं लड़ाई से बचोगे।
- भरपूर युवा वय हो, गृहस्थ जीवन हो, शरीर स्वस्थ हो, सुन्दर रूप हो, फिर भी आदमी अपने आपको वासना से बचा ले, यह तभी हो सकता है जबकि वातावरण पवित्र हो। पवित्र वातावरण में जो पला हो और सत्संग के संस्कारों में जिसने वृद्धि पाई हो, वही आगे बढ़ सकता है।
- संसार में हजारों संत जन हैं। वे अर्थ के पीछे नहीं दौड़ते, क्योंकि उन्होंने अपनी कामना को कम कर दिया। निर्वाह के लिये उनको दो समय थोड़ा भोजन चाहिये, पानी चाहिये। जहाँ कहीं जगह मिली, कपड़ा डाला और लेट गये। कामना अति ही स्वल्प है। दस घरों में घूमे, न तो आपके खाने में व्यवधान पड़ा और न हमारी जरूरत में कमी आई। आपके घर में मेहमान बन कर चले गये तो आप कहेंगे कि महाराज जरा ठहरो, भोजन बन रहा है। लेकिन संत जन एक घर से नहीं लेकर थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों से लेते हैं, इसलिये वे एक घर पर भार नहीं बनते।
- गृहस्थ के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि मूल अणुव्रत हैं, इनके लिये माया, क्रोध, मद, मोह का

मन्द होना परमावश्यक है। जिसका क्रोध मन्द नहीं हुआ, लोभ मन्द नहीं हुआ, वह अणुव्रतों और शिक्षाव्रतों का पूरी तरह पालन नहीं कर सकेगा। जिसके वाणी का संयम नहीं होगा, वह सत्य-व्रत का पूरी तरह पालन नहीं कर सकेगा। इसलिये अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन मूलव्रतों की रक्षा के लिये क्षमा,शम,दम की अनिवार्य रूप से परिपालना के लिये तन, मन और वाणी पर नियंत्रण होना नितान्त आवश्यक है।

- तपस्या के समय में लोभ-लालच की मन में लहर न आने दें। जरा स्वजन-सम्बन्धी और ज्ञाति-जनों को समाचार हो जायेंगे, ससुराल वालों को समाचार हो जायेंगे, मेरे दोस्त आ जायेंगे; बड़े नगर में पारणा करूँगा तो नगर वाले अच्छा बहुमान कर देंगे। यदि यह भावना है कि नगर में बड़े संघ के सामने पूर होगा तो अभिनन्दन होगा, कीर्ति होगी; इस भावना से कोई तप का पूर बड़ी जगह करता है तो वह संयम नहीं, असंयम होगा।

संत-सेवा/सत्संग

- गृहस्थ का त्यागी वर्ग के प्रति धर्म-राग, प्रेम या अनुराग जितना अधिक होगा, उतना ही आरम्भ परिग्रह से गृहस्थ को दूर हटा सकेगा और शान्ति के नजदीक रख सकेगा। किन्तु साधु का आपसे ज्यादा राग हो जाए, ज्यादा निकट बढ़ने लगे, तो उचित नहीं होगा।
- सन्त का श्रावक-श्राविका के साथ अनुराग सीमातीत होगा तो सन्त की संयम मर्यादा को वह गौण कर देगा। परन्तु श्रावक की सन्त के प्रति अनुराग की सीमा नहीं होनी चाहिए। वह असीम होना चाहिए।
- धर्माचार्य त्यागी होने से गृहस्थ की सेवाओं को स्वीकार नहीं करते। जिन वचनों को जीवन में उतारना और सद्विचारों का प्रसार करना ही उनकी सही सेवा है। शरीर से अयतना की प्रवृत्ति नहीं करना, वाणी से हित, मित और पथ्य बोलना एवं मन से शुभविचार रखना उनकी सेवा है।
- जीवन-निर्माण की दिशा में मात्र सत्पुरुषों के गुणगान से ही आत्मा लाभ प्राप्त नहीं कर पाता, इसके लिए करणी भी आवश्यक है और गुणीजनों को भी केवल अपनी प्रशंसा भर से वह प्रमोद प्राप्त नहीं होता, जो कि उनकी कथनी को करनी का रूप देने से होता है।
- महाराज श्रेणिक व्रत ग्रहण नहीं कर सका, फिर भी सत्संग से उसको सुदृष्टि प्राप्त हो गई।
- भक्त यह नहीं सोचते कि त्यागियों के पास, साधकों के पास, मुमुक्षुओं के पास धन-सम्पदा जैसी वस्तुएँ देने को कुछ नहीं है तो उनके नजदीक जाकर क्या करें। ऐसा खयाल उन व्यक्तियों को आयेगा जो त्याग और त्यागी की महिमा नहीं जानते।
- संत यद्यपि छद्मस्थ होते हैं; तीर्थंकरों की तरह पूर्ण नहीं होते, तथापि वे संसार को अखूट निधि देते हैं। लेकिन उनका देना मूकदान है।
- एक समझदार और विद्वान् पुरुष जब मूर्ख के साथ अपना दिमाग लगाता है तो उसकी विद्वत्ता मुरझाती है, विकसित नहीं होती और जब वह सत्संग में बैठ कर विद्वानों के साथ संवाद करता है तो उसकी विद्वत्ता का विकास होता है। उक्ति प्रसिद्ध है - वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः ।
- ज्ञानी पुरुषों के साथ तत्त्वविमर्श करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। उनके साथ किया हुआ विचार-विमर्श संवाद कहलाता है और जब मूर्खों के साथ माथा रगड़ा जाता है तो वह विवाद का रूप धारण कर लेता है और शक्ति का वृथा क्षय होता है। कलह, क्रोध और हिंसा की वृद्धि होती है। तकरार बढ़ती है और स्वयं की शान्ति भी

समाप्त हो जाती है।

संस्कार

- जिस प्रकार चतुर माली अपने बगीचे में सफाई करते हुए पेड़-पौधों को समय पर पानी पिलाता है तथा पशु-पक्षियों द्वारा उन्हें नष्ट किये जाने से बचाता है, उसी प्रकार माता-पिता को अपने बच्चों की देखभाल भली प्रकार से करनी चाहिए।
- शैशवकाल में बालक में समस्त मानवीय सद्गुणों के अंकुर विद्यमान रहते हैं। अगर उसकी सावधानी से देखभाल की जाए, तो उसमें उत्तम संस्कारों का वपन होगा और बड़ा होकर राष्ट्र का उपयोगी घटक सिद्ध होगा। यह तभी हो सकेगा कि जब अभिभावक स्वयं सुसंस्कारी हों।
- जीवन को सदाचार ही उन्नत बना सकता है। बुरे कार्यों का त्याग करना एवं जीवन में अच्छे कार्यों को ग्रहण करना ही सदाचार है। यह सदाचार भी हमारी अच्छी-बुरी संगति पर निर्भर है। जीवन में हम जैसी संगति करेंगे वैसा ही हमारा आचार-विचार होगा।
- जैसे पानी (स्वाति) की बूँद यदि गर्म तवे पर गिरे तो भस्म हो जाती है, लेकिन वही बूंद केले के पेड़ पर गिरे तो कपूर बन जाती है, सांप के मुँह में गिरे तो विष बन जाती है और वही बूँद सागर की सीप में गिरती है तो मुक्ता बन जाती है। उसी प्रकार हम जैसी संगति करेंगे वैसा ही हमारा आचार-विचार होगा एवं विनयादि गुणों की प्राप्ति होगी।
- जो माँ-बाप बच्चों के शरीर की चिन्ता करते हैं, किन्तु आत्मा की चिन्ता नहीं करते, उनके जीवन-सुधार की चिन्ता नहीं करते, वे सच्चे माँ-बाप कहलाने के हकदार नहीं हैं । वे पिंड की निर्मलता की ओर ध्यान देते हैं, पर उस पिण्ड में विराजित आत्मदेव की निर्मलता की ओर ध्यान नहीं देते। यदि माँ-बाप को अपना फर्ज अदा करना है तो उन्हें अपने बालक-बालिकाओं के चरित्र निर्माण की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। ।
- जब तक बालक अपरिपक्व दिमाग का है, तब तक उसे जैसा समझाओगे वैसे ही समझ जाएगा। लेकिन कई माँ-बाप तो लाड़ प्यार के कारण बच्चों को कुछ नहीं कहते, वे जैसा करना चाहें, वैसा करने देते हैं और जब-जब जितने रुपये चाहिए तुरन्त दे देते हैं। इससे बच्चे बिगड़ते हैं।
- हर माता-पिता यह देखें कि बच्चे-बच्चियों के जीवन में विकृति कहाँ से आ रही है। यह अच्छी तरह देखने के पश्चात् उनको समझाने का प्रयास किया जाए। समझाने-बुझाने के बाद उन्हें अपने विचार प्रकट करने का मौका दीजिए। जब उनकी समझ में यह बात आ जायेगी कि अमुक चीज़ से उनको नुकसान है और अमुक चीज से फायदा है तो वे स्वतः ही सीधी राह पर आ जायेंगे। यह चीज़ उनके दिमाग में जमा दीजिए कि जो कुछ वे कर रहे हैं, उससे धन, जीवन और समय की हानि हो रही है।
- आपके और हमारे जीवन में जो थोड़ी बहुत अच्छाई आयी है, वह भी बिना निमित्त के नहीं आई है। यदि आपके लिए कोई संतों का निमित्त नहीं बना होता या पूर्वजों का निमित्त नहीं होता, घर में अच्छा वातावरण नहीं होता, सत्संग नहीं मिलता तो जो थोड़ी बहुत अच्छाई आई है, वह आती क्या? आपने निमित्त का फायदा उठाया तो क्या आपके निमित्त का फायदा दूसरों को नहीं मिलना चाहिए? यदि आप निमित्त का फायदा दूसरों को नहीं देंगे तो मैं यह कहूँगा कि आप कर्जदार रह जाएंगे। इसलिए यदि अच्छा निमित्त बनें तो मर्जी आपकी,

वरना बुरा निमित्त तो कम से कम मत बनिये। हर माँ, बाप, स्त्री, भाई, भतीजे आदि का कुछ न कुछ निमित्त होता है। माता-पिता की कमजोरी से बच्चों में गलत परिणति आ जाती है। गलत निमित्त बनना अच्छा या शुभ निमित्त? शुभ निमित्त बनने के लिए जो अवसर मिले हैं, उनका पूरा उपयोग होना चाहिए।

- दुनियां भर के व्यवहार बच्चों के लिए किये जाते हैं। उनकी सुख-सुविधा बढ़ाने के लिए, शिक्षा के लिए, धंधे में लगाने के लिए हजारों तरह के प्रयास करते हैं, व्यवहार करते हैं। लेकिन उनके आत्म-सुधार के लिए क्या कभी आपने प्रयास किया है, या करते हैं?
- आप प्रातःकाल उठते ही अपने बच्चों के लिए यह तो चिन्ता करते हैं कि उन्होंने नाश्ता किया या नहीं। किन्तु उनसे यह नहीं पूछते कि उन्होंने नमस्कार मंत्र का स्मरण किया या नहीं, सामायिक की या नहीं। उनके जीवन में शुभ संस्कार बढ़ने चाहिए, इसके लिए आपने क्या किया? यदि यह खयाल नहीं है तो यही कहा जाएगा कि आपका बच्चों पर मोह है, अनुराग नहीं।
- बीज अकुंरित होकर बढ़ना जानता है, लेकिन किधर बढ़ना, डालियों को किधर फैलाना, इसमें माली की बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग लगता है, तभी पौधा सुघड़ और सुन्दर रूप धारण कर लेता है। बीज के लिए जिस तरह माली या कृषक की देखरेख रहती है, उसी तरह बालकों के विकास में माता-पिता की भूमिका होती है।
- हर क्षेत्र में सुन्दरता के साथ सत्यं और शिवं भी होना चाहिए। उचित तो यह है कि पहले सत्यं और शिवं हो, फिर सुन्दरं। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता मानी गयी है।
- जैसे पोषक शक्ति के अभाव में शरीर पीला और व्याधिग्रस्त होकर बेकाम बन जाता है, वैसे ही आध्यात्मिकता के अभाव में भारतीय संतति हतप्रभ और उत्साहविहीन होती जा रही है। इसका मूल कारण है साधना की कमी और माता-पिता से प्राप्त होने वाले सुसंस्कार का अभाव।
- घर में माता-पिता का जैसा व्यवहार होता है, प्रेम या विरोध का जो वातावरण दृष्टिगोचर होता है, सन्तान के मन में उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसीलिए बच्चे को जैसा बनाना चाहते हैं, दम्पती को स्वयं वैसा बनना होगा। यदि माता-पिता स्वयं विनयशील न होंगे तो बच्चे कैसे विनयशील होंगे? यदि पिता स्वयं की बुढ़िया माँ से ठीक व्यवहार नहीं करे तो उसके बच्चे बड़े होने पर माँ-बाप से विनय का व्यवहार कैसे रखेंगे?
- माता-पिता का यह पुनीत कर्तव्य है कि बच्चों की सद्विद्या का उसी प्रकार ध्यान रखें, जैसे उनके भरण-पोषण का ध्यान रखते हैं।
- यदि बालक को दृढ़ सुसंस्कार दिये गये तो वह विदेश जाकर भी ठगाएगा नहीं और यदि सुसंस्कार का बल नहीं रहा तो उसके भ्रष्ट हो जाने की अधिक संभावना रहती है।
- जब माताओं का समय भोजन, शृंगार आदि में चला जाए और पतियों का बाजार, आफिस-सिनेमा और क्लब आदि में, तो ऐसे घरों के बच्चों का भगवान ही मालिक है। वे सुधरें या बिगड़ें दूसरा कौन देखे? जिन बच्चों को बचपन में धर्म-शिक्षा की घूंटी नहीं मिलती, बड़े होने पर उनमें धर्मरुचि कहाँ से आएगी?
- वे माता-पिता अपराधी हैं जो बालक को सच्चे ज्ञान से वंचित रखते हैं और उसे आरम्भ से ही उन्नत जीवन का पाठ नहीं पढ़ाते। क्योंकि बालक का दायित्व पालक पर है, बच्चे तो अबोध और अज्ञानी होते हैं।
- जिस घर में धर्म के संस्कार होते हैं, सत्साहित्य का पठन-पाठन होता है और धर्म-शास्त्रों का स्वाध्याय किया

जाता है, जहाँ हंसी मजाक में भी गाली गलौच का या अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है और नैतिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करने का आग्रह होता है उस घर का वातावरण सात्त्विक रहता है और उस घर के बालक सुसंस्कारी बनते हैं। अतएव माता-पिता आदि बुजुर्गों का यह उत्तरदायित्व है कि बालकों के जीवन को उच्च, पवित्र और सात्त्विक बनाने के लिए इतना अवश्य करें और साथ ही यह सावधानी भी रखें कि बालक कुसंगति से बचा रहे।

- पिता बन जाना बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है अपने पितृत्व का सही ढंग से निर्वाह करना यह बात प्रत्येक पुरुष को पिता बनने से पहले ही सीख लेनी चाहिए। जो पिता बन कर भी पिता के कर्तव्य को नहीं समझते अथवा प्रमादवश उस कर्तव्य का पालन नहीं करते वे वस्तुतः अपनी सन्तान के घोर शत्रु हैं और समाज तथा देश के प्रति भी अन्याय करते हैं। सन्तान को सुशिक्षित और सुसंस्कारी बनाना पितृत्व के उत्तरदायित्व को निभाना है। सन्तान में नैतिकता का भाव हो, धर्म-प्रेम हो, गुणों के प्रति आदरभाव हो, कुल की मर्यादा का भान हो, तभी सन्तान सुसंस्कारी कहलायेगी। किन्तु केवल उपदेश देने से ही सन्तान में इन सद्‌गुणों का विकास नहीं हो सकता। पिता और माता को अपने व्यवहार के द्वारा इनकी शिक्षा देनी चाहिए। जो पिता अपनी सन्तान को नीति धर्म का उपदेश देता है, पर स्वयं अनीति और अधर्म का आचरण करता है, उसकी सन्तान दम्भी बनती है, नीति धर्म उसके जीवन में शायद ही आ पाता है।
- विवेकहीन श्रीमन्त अपनी सन्तति को आमोद-प्रमोद में इतना निरत बना देते हैं कि पठन- पाठन की ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। सत्समागम के अभाव में वे आवारा हो जाते हैं। आवारा लोग उन्हें घेर लेते हैं और कुपथ की ओर ले जाकर उनके जीवन को नष्ट करके अपना उल्लू सीधा करते हैं। आगे चलकर ऐसे लोग अपने कुल को कलंकित करें तो आश्चर्य की बात ही क्या?
- पटाखों के बदले बच्चों को यदि दूसरे खिलौने दे दिये जाएँ तो क्या उनका मनोरंजन नहीं होगा? पटाखों से बच्चों को कोई शिक्षा नहीं मिलती। जीवन-निर्माण में भी कोई सहायता नहीं मिलती। उनकी बुद्धि का विकास नहीं होता। उलटे उनके झुलस जाने या जल जाने का खतरा रहता है। समझदार माता-पिता अपने बालकों को संकट में डालने का कार्य नहीं करते। किस उम्र के बालक को कौनसा खिलौना देना चाहिए जिससे उसका बौद्धिक विकास हो सके, इस बात को भली-भांति समझ कर जो माता-पिता विवेक से काम लेते हैं, वे ही अपनी सन्तान के सच्चे हितैषी हैं।

■ संस्कृति-रक्षण

- आज हमारे वर्तमान जीवन में सामूहिकता, पारिवारिक सद्‌भावना, धर्मनिष्ठा और ज्ञान की आचरणशीलता टूट-टूट कर बिखर रही है और प्रत्येक क्षेत्र में स्वार्थमूलकता, वैयक्तिक लिप्सा तथा संग्रहशीलता घर करती जा रही है। पाश्चात्य सभ्यता और भौतिकता की अतिशयता के अन्धानुकरण ने व्यक्ति-व्यक्ति में खोखलापन, अलगाव, गैर जिम्मेदारी, फैशन-प्रियता और बाह्य आडम्बर की बलवती स्पृहा भर दी है। ऐसे समय में व्यक्ति को नैतिक, धार्मिक, संवेदनशील, सहिष्णु, कर्त्तव्यनिष्ठ और आत्मोन्मुखी बनने की दिशा में कारगर कदम उठाने चाहिए।

समाज-एकता

- समाज पक्ष में आपको कारीगर बनना है, मजदूर नहीं। कैंची नहीं बनकर सुई बनना है। कैंची एक बड़े कपड़े को काटकर अनेक टुकड़े कर डालती है, जबकि सुई अनेक बिखरे हुए टुकड़ों को सिलती हुई बढ़ती जाती है। ऐसे ही श्रावकों को अपने संघ में एकता लाने के लिए सुई की तरह व्यवहार करना चाहिए। इसके बिना जिनशासन का हित नहीं हो सकेगा।
- मानव जितना ही गुणग्राहक और सत्य का आदर करने वाला होगा, उतना ही ऐक्य निर्माण-कार्य सरल एवं स्थायी हो सकेगा। 'कारणाभावे कार्याभावः' इस उक्ति के अनुसार भेद के कारण मिटने पर भेद स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं।
- चिमटी बजाते हैं तो अंगुली के साथ अंगूठा मेल करता है तभी चिमटी बजती है। मेल नहीं करें तो नहीं बज सकती।
- भीतर में जो क्रोध का जहर है, उस जहर को निकालकर उसके स्थान पर अमृत बरसाना है। अमृत बरसायेंगे तो आपकी हृदय तंत्री से आवाज उठेगी—हम आग लगाना क्या जानें, हम आग बुझाने वाले हैं।
- अहिंसक समाज और स्वाध्याय संघ के सदस्यों का तो संकल्प होना चाहिए कि कभी भाई-भाई में आपस में टकराव हो भी जाये तो भीतर में ही निपट लेंगे। इस उदाहरण के अनुसार चलेंगे तो बहुत प्रमोद होगा और हम समझेंगे कि महावीर की वाणी ने आप पर असर किया है। ऐसी दृष्टि रखकर चलने से लाखों के जीवन में शान्ति उत्पन्न होगी। महावीर की वाणी का यही सार है।
- समाज के लोग साथ बैठे हैं, कभी सभा, सोसाइटी या मीटिंग में एक दूसरे का मत नहीं मिले, एक-दूसरे के साथ आपस में बोल-चाल का मौका आ जाय, क्रोध आ जाय, तेज बोल गए तो आपका कर्तव्य है कि आये हुए क्रोध को दबा दें, शान्त कर दें।

समाज-सुधार

- सामूहिक जीवन में परिवर्तन लाने के लिये विशिष्ट प्रयोगों की आवश्यकता होती है, वहाँ एक कोने में बैठे रहने से काम नहीं चलता। सार्वजनिक जीवन में सुधार करने की भावना वाला देखता है कि यह गंदगी इस तरकीब से दूर की जा सकती है। उदाहरणार्थ होली के अवसर पर लोग आमतौर से गंदी गालियां बकते हैं और गन्दे गीत गाते हैं। ऐसी स्थिति में सामूहिक चिन्तन वाला, सामूहिक शुभ चेतना देने वाला कोई तरुण या कोई संस्था उसका समुचित और सफल प्रतीकार सोचेगा। वह गन्दे गीतों की जगह नयी शैली के शुभ गीत जनता के समक्ष रखेगा। वह इस विचार के दस-बीस तरुणों को तैयार कर लेगा और जब दस-बीस हो जाएंगे तो अपनी टोली को और अधिक बढ़ा लेंगे। इस प्रकार एक दिन वे सामूहिक जीवन को नयी दिशा में मोड़ देने में समर्थ हो सकेंगे।
- हमारे स्थानवासी समाज में ऐसा कोई रूप नहीं है जिससे साधु-साध्वी देश-विदेश जाकर धर्म-प्रचार कर सकें, धर्म-ध्यान करा सकें। आज कई भाई कहते हैं कि साधुजी महाराज आप यहाँ क्यों बैठे हैं, विदेशों में जाओ और वहाँ धर्म का प्रचार करो। सभी काम हमसे करवाना चाहते हैं। समाज की सफाई का काम भी साधुओं से

करवाना चाहते हैं। एक बाई आई और कहने लगी-"महाराज'! मेरा पुत्र मेरा कहना नहीं मानता। आप उसे समझाओ" मैंने उससे पूछा-'बेटा किसका है?' तो वह बोली 'मेरा है'। जो अपने बेटे-बेटियों को नहीं सुधार सकते वे समाज को सुधारने की जिम्मेदारी कैसे ले सकते हैं?

- मैं समाज के भीतर की कमजोरियों को, बुराइयों को (अखाद्य-भक्षण, अपेय-पान, अगम्य-गमन आदि दुष्प्रवृत्तियों के द्वारा, दुर्वृत्तियों के द्वारा जो विकार समाज में प्रविष्ट हुए हैं उनको) नंगे रूप में बाहर प्रस्तुत करना, समाज की शक्ति में, समाज के मानस में दुर्बलता लाने का कारण समझता हूँ। इसके विपरीत मैं यह सोचता हूँ कि इन दुर्बलताओं को बाहर प्रकट करने के बजाय उनके उपचार प्रस्तुत कर इलाज किया जाए, जिससे कि समाज में ऐसे विकार प्रविष्ट ही न हों तथा जो विकार प्रविष्ट हो गये हैं वे बढ़े नहीं और पुराने विकारों को, पुरानी बुराइयों को जो समाज में व्याप्त हैं, उन्हें धीरे-धीरे प्रभावी और कारगर ढंग से निकाला जाए।
- मेरे चिन्तन ने मुझे एक मार्ग प्रस्तुत किया कि यदि कोई सामूहिक कार्यक्रम समाज के सामने प्रस्तुत हो और समाज उस कार्यक्रम को अपना ले तो समाज में व्याप्त बुराइयाँ दूर हो सकती हैं, समाज में प्रविष्ट हुए विकार दूर हो सकते हैं। भाषणों से ये बुराइयाँ दूर हो जाएं, ऐसी आशा नहीं है। व्यक्तिगत रूप से कुछ लोगों को पकड़ने से भी ये बुराइयाँ दूर नहीं हो सकती हैं। ये बुराइयाँ तो एक सबल सामूहिक कार्यक्रम को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने से ही दूर हो सकती हैं। इसी प्रेरणा से समाज के सामने एक भावना मैंने व्यक्त की कि जो भाई किसी नैतिक बंधन में बंधे हुए नहीं हैं, उनको सामायिक के सामूहिक कार्यक्रम द्वारा नैतिकता की सीमा में, नियमों में बांधकर सामायिक करने की शिक्षा दी जाए। इसी प्रेरणा से सामायिक संघ की स्थापना हुई। सामायिक संघ के नियम बनाये गये। एक घड़ी के लिए भाई और बहनें सामायिक लेकर बैठ जाएं और जो इन नियमों का पालन करें वे सामायिक संघ के सदस्य बन सकते हैं। इस प्रकार मैंने एक उपाय समाज के सामने प्रस्तुत किया। इस तरह किया जाये तो समाज में जो बुराइयाँ घर कर गई हैं, उनका निकन्दन हो सकता है।
- आपको तोड़-फोड़ की ओर नहीं, निर्माण की ओर बढ़ना है। हमारे समाज का, एक आदर्श समाज के रूप में निर्माण कैसे हो, इस ओर विशेष ध्यान देकर आपको बड़ी निष्ठा, तत्परता और लगन के साथ अनवरत अथक परिश्रम करना है।
- किसी को बड़ा काम मिल गया तो वह समझता है कि छोटा काम कैसे किया जाए। आस-पास की जमीन पर कचरा पड़ा है, और उसे यदि ओघे से पूंजता है तो लोग समझेंगे छोटा-मोटा महाराज है। यहाँ पर जाजम पर बैठने से पूर्व यदि आपसे कहा जाए कि झाडू लगाने वाला नहीं आया है, इस हॉल को साफ करना है, तो आपमें से कितने भाई इसके लिए तैयार होंगे?
- कोई लखपति-करोड़पति सेठ आ गया तो आप उसकी इज्जत करते हैं। यह आपने पैसे की इज्जत की। इसी तरह कोई शास्त्रों का ज्ञाता या विद्वान आवे और आप उसका हाथ थामकर आगे करते हैं तो यह ज्ञान का सम्मान होगा। इसी प्रकार कोई बारह व्रतधारी श्रावक आये और आप उसका आदर करेंगे तो वह व्रत का आदर होगा।
- जब तक व्यक्ति अपने स्वयं के जीवन का निर्माण नहीं कर लेता तब तक वह दूसरों के समक्ष खड़ा होकर सुधार की कोई बात कहेगा तो उसका स्वयं का मानसिक बल एवं आत्मबल अशक्त और निर्बल होने के कारण उसकी वाणी में ओज तथा तेज का अभाव होगा। उसके कथन का कोई प्रभावकारी परिणाम नहीं होगा। इस

प्रकार उसके हाथ में लिया गया समाज-सुधार, राष्ट्र-सुधार अथवा विश्व-सुधार का कार्य आगे नहीं बढ़ सकेगा। इसीलिए भगवान महावीर ने फरमाया है कि सुधार की दिशा में सबसे पहले स्वयं को सुधारो और तत्पश्चात् दूसरों के सुधार की बात करो।

- यदि पापी हमारे सद्प्रयत्नों से नहीं सुधर पाता तो भी उसके ऊपर क्रोध न कर माध्यस्थ भाव की शरण लेनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति दया का पात्र है, क्रोध का नहीं। किसी पाप कर्म के कारण किसी भी व्यक्ति को मारने की अपेक्षा उसे समझाने या सुधारने का प्रयत्न करना अच्छा है और यदि प्रयास के बाद भी वह नहीं सुधरे तो तटस्थ भाव को ग्रहण कर लेना चाहिए। क्योंकि समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम, मैत्रीभाव एवं दया ही मानवता का मूलोद्देश्य है।
- कोई व्यक्ति धर्म के लिए समाजसेवा या प्रचार में अपना समस्त जीवन लगा दे, फिर भी समाज यदि उसके प्रति आदर न करे तो ऐसे व्यक्ति की सत्प्रवृत्ति आगे कैसे बढ़ेगी? कोई सोना, चांदी, भूमि, भवन, पशुधन आदि परिग्रह की अपेक्षा यदि गुणों की ओर अधिक ध्यान लगावे तो ऐसे सद्गुणियों का समाज में आदर होना चाहिए।
- कोई शीलव्रत ग्रहण करे और उसकी खुशियाँ मनाए तो वह ठीक है पर बाल-बच्चे पैदा किये, विषयों का सेवन किया, इसकी खुशियाँ मनाएँ तो वह धन का उन्माद ही कहा जाएगा।
- समाज में जन्म, मरण एवं मृत्यु पर अनेक गलत रूढ़ियाँ चल रही हैं, चाहे वे हानिकारक ही हों, किन्तु साधारण मनुष्य इस पर विचार नहीं करते। महिलाएँ तो गलत रीति-रिवाजों में और भी अधिक डूबी रहती हैं। जलवा पूजना, चाक-पूजन, जात देना, ताबीज बांधना, देव और पितर की पूजा करना, मरे हुए के पीछे महीनों बैठक रखना और रोना- ये सब कुरीतियाँ समाज में दृढ़ता से घर बनाए हुए हैं। इनके निवारण हेतु दृढ संकल्प की जरूरत है।
- समुद्र में विशाल सम्पदा है, वह रत्न राशि को पेट में दाबे रहता है और सीपी घोंघों आदि को बाहर फेंकता है। इस पर किसी कवि ने उसको अविवेकी बतलाया है। वास्तव में यह ललकार उस समाज को है, जो गुणियों को भीतर दबाकर रखे और वाचालों को बाहर लावे। जो समाज गुणियों का आदर और वात्सल्य करना नहीं जानता, वह प्रशंसनीय नहीं कहलाता।
- आवेगपूर्ण बातों से कई बार मारपीट और समाज में विष तक प्रसारित हो जाता है। अतः व्रती को व्यर्थ की पटेलगिरि या गप्पबाजी में नहीं पड़ना चाहिए।
- पिछड़े एवं असंस्कृत जनों के सुधार के लिए कोरा कानून बना देने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। असली और मूलभूत बात है उनकी मनोभावनाओं में परिवर्तन कर देना। मनोभावना जब एक बार बदल जाएगी तो जीवन में आमूलचूल परिवर्तन स्वतः आ जाएगा फिर उनकी सन्तति-परम्परा भी सुधरती चली जाएगी।
- अगर आप अपने किसी एक पड़ौसी की भावना में परिवर्तन ला देते हैं और उसके जीवन को पवित्रता की ओर प्रेरित करते हैं तो समझ लीजिए कि आपने समाज के एक अंग को सुधार दिया है। प्रत्येक व्यक्ति यदि इसी प्रकार सुधार के कार्य में लग जाए तो समाज का कायापलट होते देर न लगे।
- जीवन के प्रत्येक कार्य में समाज का प्रत्येक सदस्य यदि इस बात का ध्यान रखे कि उसका कोई भी कार्य दूसरे के लिये किसी प्रकार की कठिनाई पैदा करने वाला एवं भारस्वरूप न हो, तो समाज में परिग्रह-प्रदर्शन तथा

परिग्रह बढ़ाने की होड़ समाप्त हो सकती है और येन-केन प्रकारेण अधिकाधिक परिग्रह उपार्जन के पाप से समाज काफी अंशों में बच सकता है।

- आज प्राय: यह देखा जाता है कि समाज में परिग्रह-प्रदर्शन, आडम्बर और दिखावे में धन का अपव्यय किया जाता है। परिग्रह-प्रदर्शन की सर्वत्र होड़ सी लगी हुई है, जो वस्तुत: साधारण स्थिति के स्वधर्मी बन्धुओं को परेशानी में डालने वाली, दु:खदायी और उन पर अनावश्यक भार डालने वाली है। यही होड़ यदि सामाजिक सुधार, धार्मिक अभ्युत्थान और धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में लगे, तो कितने सुखद परिणाम निकल सकते हैं? एक अति सुन्दर आदर्श समाज का निर्माण हो सकता है, जन-जन के मानस में धार्मिक चेतना की अमिट लहर उत्पन्न हो सकती है। समाज का धार्मिक और नैतिक स्तर उन्नत हो सकता है।
- साधक को स्तुति के अमृत की तरह विष के प्याले भी पीने पड़ते हैं। जरा-सा भी सामाजिक कार्य में चूका कि लोग उसकी अच्छाइयाँ भूलकर निन्दा करने लग जाते हैं, सामाजिक जीवन का यह दूषण है। साधारण कार्यकर्ता ऐसी स्थिति में आगे नहीं बढ़ता। अत: शास्त्र में कहा है – महिमा-पूजा और निन्दा-स्तुति की अपेक्षा छोड़कर साधना या कार्य करो।
- किसी राहगीर को कोई बच्चा भी कहे कि आगे काँटे या गड्ढा है, तो वह बुरा नहीं मानकर राजी होगा। आप भी आलोचक की बात में लेने जैसा हो तो ग्रहण कीजिए।
- समाज-व्यवस्था के लिये सबमें भाईचारा हो तो घर की बात घर में ही निपट जायेगी। बाहर किसी को खेल देखने का मौका न देवें।
- समाज में कितने ही ऐसे गलत रिवाज होंगे, जिनमें धनहानि, मानहानि, धर्महानि एवं ज्ञानहानि भोगकर भी लोग उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं होते। माता-पिता के जीते जी चुल्लू भर पानी नहीं देने वाले व्यक्ति मरने के बाद मृत्युभोज कर उनकी गति करना चाहते हैं। कैसी हँसी की बात है, घर में शोक-रुलाई और आपके मुँह में मिठाई, कितना लज्जास्पद दृश्य है। समाज में नीति धर्म के शिक्षण के लिए व्यवस्था नहीं, फिर भी मौसर में खर्च किया जायेगा। यह ऐसी ही स्थिति है, जैसे एक किसान के क्यारे तो सूख रहे हैं, पानी नहीं, पर नाली में भरपूर बहा रहा है।

■ समाज-सेवा/सेवा

- समाज-सेवा करना हर व्यक्ति का कर्तव्य है। धन वाले धन देकर सेवा करें, दिमाग वाले दिमाग से सेवा करें। जो बोलना और प्रचार करना जानते हों वे शुभ कार्य का प्रचार करें। ऐसी मिली-जुली ताकत से आप अपनी शक्ति का दान करेंगे तो समाज सुखी रहेगा। अहिंसक संस्कृति सही रूप में बढ़ेगी तो भगवान की सच्ची सेवा होगी, हमारे जैसे संत को भी प्रमोद होगा।
- आप लोग गद्दी पर बैठ कर काम चलाते हैं, लेकिन महाजनों की लड़कियाँ दूसरों के यहाँ पानी भरती हैं। दूसरों के यहाँ सिलाई का काम करती हैं, आटा पीसती हैं। कई ऐसी बहिनें हैं जो गाँवों में गोबर चुन कर लाती हैं और अपना गुजर चलाती हैं। पहले घर-घर दी जाने वाली हाँती से कमजोर स्थिति वालों की गुजर चलती थी। समाज में जब उसका वितरण होता था तब किसी बुढ़िया के घर पहुँचते ही लापसी के नीचे मुहर रख कर लापसी के बहाने मुहर उसके घर पर पहुँचा दी जाती थी।

- समाज में पचासों भाई-बहन ऐसे हैं जिनके खाने-पीने को भी सुबह शाम व्यवस्था बराबर नहीं होती है। कई भाई ठेला घुमाकर अपना पेट भरते हैं। महाजन की बेटी दूसरों के यहाँ रसोई करके पेट भरती है। जैसे बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ हैं वैसे ही कुछ कमजोर लोग भी हैं। लेकिन बूंद-बूंद से घड़ा भरता है, यह सोचकर उनका सहयोग करना चाहिए।
- समाज का कोई बच्चा गलत रास्ते पर चला गया है तो उससे घृणा नहीं करके उसे समझाने की कोशिश करें अच्छे मार्ग पर लगाने की कोशिश करें तो वह सुधर जायेगा।
- किसी समय यह कहा जाता था कि स्थानकवासियों में खर्चा कम होता है। लेकिन आज तो लाखों रूपये खर्च होते हैं। सन्तों की थोड़ी सी आवाज निकलेगी तो एक-एक व्यक्ति उनके इशारे पर अपनी भूमि, कोठी और लक्ष्मी छोड़ सकते हैं। उनके प्रति इतनी श्रद्धा है, असर है। फिर भी हम लोग आगे क्यों नहीं बढ़े? श्रद्धा के साथ ज्ञान और विवेक चाहिये। इनकी कमी के कारण पैसा गलत मार्ग में भी जाने लगता है। लाखों रुपये हर साल खाली स्थानकवासी समाज का खर्च हो जाता है। उस रुपये से कुछ वर्षों में समाज के लोगों के लिये, बच्चों की शिक्षा के लिये, उनकी व्यवस्था के लिये कितना बड़ा काम हो सकता है।
- हर जैन भाई-बन्धु जो ज्ञानी हैं, समाज के स्तम्भ कहलाने वाले हैं वे इतना भी संकल्प करें कि हम १२ व्रतधारी श्रावक नहीं बन सकते, ५ महाव्रतधारी साधु नहीं बन सकते तो जो व्रती बनने वाले हैं, ज्ञानी बनने वाले हैं, धर्म के लिये जीवन अर्पण करने वाले हैं उनकी रक्षा करेंगे। धन से , मन से, तन से और वाणी से रक्षा करेंगे। लेकिन ठोकर किसी को नहीं मारेंगे। तन से भी ठोकर नहीं मारेंगे, मन से भी ठोकर नहीं मारेंगे और धन्धा-बाड़ी से भी ठोकर नहीं मारेंगे, टकरायेंगे नहीं। यदि आप इतना सा भी संकल्प कर लें तो मै कहूंगा कि इससे समाज का बड़ा हित हो सकता है।
- हमारा समाज-सेवा का कार्य आगे नहीं बढ़ता। काम करने वाले कुछ सम्मान चाहते हैं और काम कराने वाले चाहते हैं कि सम्मान किस बात का दें? "ए तो घर का टाबर है, इणा रो भी फर्ज है, म्हारे ऊपर एहसान करे कंई। बाहर का आदमी होवे तो सम्मान भी देवां।" समाज के अगुआ उनको सम्मान देवें नहीं और काम करने वालों का नाम आवे नहीं। नतीजा यह होता है कि काम करने वाले, बांहरी समाज का काम करेंगे। आर. एस. एस. का काम करेंगे, कांग्रेस का काम करेंगे, लेकिन समाज का क्षेत्र खाली रह जायेगा।
- जो भाई-बहन उपवास करते हैं वे अपना समय खेलों में, प्रमाद में, पिक्चर देखने में नहीं लगावें। प्रतिक्रमण करें, आलोचना करें, सत्संग की आराधना करें। समाज-सेवा का मौका आवे तो उसे करें, लेकिन धर्म-क्रिया को नहीं छोड़ें। आप धर्मक्रिया करते हैं और दूसरा ऐसा नहीं करता है तो उसे नास्तिक कहकर उसका तिरस्कार नहीं करें, उसको भी प्रेम से गले लगावें।
- समाज में ऐसे कितने लोग हैं जो यह कहें कि मेरी बहनें और भाई जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं उन भाई-बहनों की मदद करना, वात्सल्य करना मेरा काम है, क्योंकि मेरे पास दो पैसे का साधन है और इनके पास नहीं है। इनकी मदद नहीं करूँगा तो मेरी हल्की होगी।
- किसी रोगी की सेवा करनी है, उसका मल साफ करना है, उसका शरीर और मल-मूत्र से खराब कपड़े साफ करने हैं। यह काम तभी किया जा सकेगा जबकि ग्लानि या सूग मिटेगी। जिसको यह खयाल होगा कि यह काम मेरे करने का थोड़े ही है तो वह स्वयं सेवा का आनन्द नहीं ले सकेगा।

- माँ-बाप बीमार हो जावें तो कुछ रुपये खर्च करके अस्पताल में उनके इलाज की व्यवस्था कर देते हैं, लेकिन घर में माँ-बाप की सेवा करना मुश्किल है। इसका मतलब यह नहीं कि उनकी सेवा करने वाला कोई नहीं है। सेवा करने वाला बेटा है, लेकिन उसकी आत्मा में घृणा भाव हैं, इस कारण वह माता-पिता की सेवा नहीं कर पाता। सेवा करने वाले को भूखा भी रहना पड़े। सर्दी में कपड़े पूरे न रहें तो सहन करना पड़े। यदि लड़का सेवाभावी है तो वह अपने माँ-बाप के कपड़े भी साफ कर रहा है, मल-मूत्र भी साफ कर रहा है। कोई उससे यह कहे कि यह काम तुम क्यों कर रहे हो, कोई नौकर नहीं है क्या? तो वह कहेगा कि नौकर तो है लेकिन मेरा अहोभाग्य है कि माँ-बाप जिन्होंने मुझे जन्म दिया है उनकी सेवा करने का मौका मिला है। उनकी सेवा नहीं करूँगा तो किसकी करूँगा?
- जो लोग अज्ञानतावश मच्छी बेचते, शिकार करते और पशु बेचकर आपको पैसा चुकाते हैं, आप लोग उनको सान्त्वना देते हुए पाप की बुराई समझावें और कुछ सहानुभूति रखें तो उनका जीवन सुधर सकता है हिंसा घट सकती है और थोड़े त्याग में अधिक लाभ हो सकता है। सम्पन्न लोगों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।
- धन से सेवा करने वाले के द्वारा की जाने वाली मदद कभी रुक सकती है। लेकिन तन वाला, मन वाला, वाणी बल वाला, दिमाग बल वाला जो है उसके द्वारा की जाने वाली सहायता का रास्ता कभी बंद होने वाला नहीं है।
- धर्म और शास्त्र की सेवा वही करेगा जिसके दिल में ओज, तेज, वीरता और कर्तव्यपरायणता हो। जिसमें वीरता, तेज और ओज नहीं है, जो जीवन का भोग देने को तैयार नहीं है, वह धर्म की सेवा नहीं कर सकेगा।

■ समाधि-मरण

- अपना शरीर छूटने का काल नजदीक प्रतीत हो, उस समय ज्ञानदृष्टि को जागृत रखकर सोचना है कि शरीर और आत्मा अलग हैं। शरीर क्षणभंगुर एवं नाशवान है तो आत्मा अविनाशी एवं ज्ञानमय है। रोग-शोक शरीर को होते हैं, आत्मा को नहीं।
- मरण से दुनिया डरती है, परन्तु ज्ञानी मरण को महोत्सव मानते हैं। जैसे मुसाफिर खाने को मुसाफिर मुद्दत पूरी होते ही खुशी से छोड़ देता है, ऐसे ही ज्ञानी स्थिति पूरी होते ही स्वेच्छा से शरीर का परित्याग करने हेतु तत्पर रहता है।
- ज्ञानी शरीर की वेदना से व्याकुल नहीं होता। वह उस समय अधिक से अधिक आत्मशुद्धि का ध्यान रखता है।
- उत्तम मरण के लिये इन्द्रियों के विषय और मन की कलुषित वृत्तियों का सर्वथा परित्याग करके संसार के समस्त प्राणिसमूह से क्षमायाचना कर निरंजन निराकार परमात्मा के शुद्ध स्वरूप में ध्यान रखना ही कल्याण का मार्ग है।
- जीवनकाल में लगे दोषों का भगवत् चरणों में निवेदन कर हार्दिक प्रायश्चित्त, समस्त पापों का मनसा, वचसा, कर्मणा परित्याग, जीवमात्र से क्षमायाचना कर मैत्रीभाव, पुत्र, मित्र, कलत्र और इस शरीर तक से ममता का परित्याग कर समाधिमरण का वरण करना चाहिए।
- दुर्गुणी मानव परिग्रह के पीछे हाय-हाय करते मरता है। किन्तु ज्ञानी भक्त मरते समय सद्गुणों का धन संभालता है। अतएव लड़की जैसे ससुराल से पिता के घर जाने में प्रसन्नचित्त होती है, वैसे वह भी परलोक की ओर

हँसते-हँसते जाता है और आनंदित होता है। हर मानव को ऐसी ही साधना करनी चाहिए और ऐसी तैयारी रखनी चाहिए, जिससे कि वह हँसते-हँसते इस संसार से प्रस्थान कर सके।

- **जीवन सुधार से मरण सुधार होता है।** जिसने अपने जीवन को दिव्य और भव्य रूप में व्यतीत किया है, जिसका जीवन निष्कलंक रहा है, और विरोधी लोग भी जिसके जीवन के विषय में अंगुलि नहीं उठा सकते, वास्तव में उसका जीवन प्रशस्त है। जिसने अपने को ही नहीं, अपने पड़ौसियों को, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को और समग्र विश्व को ऊँचा उठाने का निरन्तर प्रयत्न किया किसी को कष्ट नहीं दिया मगर कष्ट से उबारने का ही प्रयत्न किया, जिसने अपने सद्विचारों एवं सद्‌आचार से जगत के समक्ष स्पृहणीय आदर्श उपस्थित किया, उसने अपने जीवन को फलवान बनाया है। इस प्रकार जो अपने जीवन को सुधारता है वह अपनी मृत्यु को भी सुधारने में समर्थ बनता है, जिसका जीवन आदर्श होता है उसका मरण भी आदर्श होता है।
- कई लोग समझते हैं कि अन्तिम जीवन को संवार लेने से हमारा मरण संवर जाएगा, मगर स्मरण रखना चाहिए कि जीवन के संस्कार मरण के समय उभरकर कर आगे आते हैं। जिसका समग्र जीवन मलिन, पापमय और कलुषित रहा है, वह मृत्यु के ऐन मौके पर पवित्रता की चादर ओढ़ लेगा, यह संभव नहीं है। अतएव जो पवित्र जीवन यापन करेगा वही पवित्र मरण का वरण कर सकेगा और जो पवित्र मरण का वरण करेगा उसी का आगामी जीवन आनन्दपूर्ण बन सकेगा।

■ सहिष्णुता/सर्वधर्म सहिष्णुता

- संसार में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो कहते हैं-"जो हमारे धर्म के विरोधी हैं, जो हमारी आराधना को, हमारी साधना को, हमारी भक्ति को और हमारे मन्तव्यों को नहीं मानने वाले हैं, उन लोगों को अगर मार दिया जाय तो कोई पाप नहीं होगा।" ऐसी मान्यता मानने वाले लोग संसार में बहुत हैं। ईसा को इसीलिए सूली पर चढ़ना पड़ा। लाखों लोग धर्म के नाम पर मानव के खून के प्यासे हैं। विदेशों में रंगभेद को लेकर आज भी आए दिन मानव द्वारा मानव का खून बहाने की अप्रिय घटनाएँ घटित होती हैं। लेकिन धर्म के नाम पर यह सब अनुचित होता है।
- आज के सार्वजनिक मत-भेद और झगड़ों का प्रधान कारण असहिष्णुता ही है। आज से पहले भी जैन, वैष्णव, मुसलमान आदि अनेक मत और वल्लभ, शाक्त, शैव, रामानुज आदि विविध सम्प्रदायें थीं, परन्तु उनमें विचार भेद होने पर भी सहिष्णुता थी। इसी से उनका जीवन शान्ति व आराम से व्यतीत होता था।
- गांधीजी ने अपने अनेक व्रतों में एक 'सर्वधर्म-समभाव' व्रत भी माना है। उसकी जगह 'सर्वधर्म सहिष्णुता' मान लिया जाय तो उनके मत से हमारी एक वाक्यता हो सकती है।
- विभिन्न धर्मों के मानने वाले अनेक मनुष्य प्रत्येक धर्म पर एकसा आदर भाव कभी नहीं रख सकते। कहने के लिये भले ही, हम सब धर्म पर सम-भाव रखते हैं, यह कहकर अपना उदार भाव प्रगट करें, किन्तु जब तक आप में अज्ञानता, मोह और राग द्वेष हैं, समभावकी प्राप्ति कोसों दूर है और तब तक ऐसी प्रौढ़ उक्ति भी सच्ची नहीं हो सकती।
- आजकल लोग नेता ही बनना पसन्द करते हैं, चाहे नेतृत्व की शक्ति, गुण या क्षमता का लेश भी नहीं हो। सिपाही बनना कोई नहीं चाहता। बन्दूक धरने की अक्ल न रखते हुये भी सब जनरल ही बनना चाहते हैं।

किन्तु हरेक व्यक्ति अपने देश या समाज का मुखिया, नायक एवं नेता नहीं बन सकता।

- हृदय की संकीर्णता को उदारता में, हठ धर्मिता को सहिष्णुता में पलटने से जब विचारों में सार बुद्धि पैदा होकर विचार-सहिष्णुता आ जाती है तब मनुष्य दूसरों के विचार से अपने विचार को मिला कर आगे बढ़ता है और देश तथा समाज का कल्याण-विधाता या नव निर्माता बनता है। यह है धर्म नीति पर चलने का मंगलमय परिणाम।
- दश बीस ही नहीं, शत सहस्र सम्प्रदायें भी क्यों न हों, तुम घबराओ नहीं। हृदय को उदार बना एक दूसरे को समझने की कोशिश करो। भ्रातृत्वभाव बढाओ। प्रेम का वातावरण तैयार करो। क्षमा से हृदय को लबालब भर लो, फिर देखो सम्प्रदाय रह कर भी सम्प्रदायवाद का जहर दूर हो जायेगा। आज की सम्प्रदायों में जो भयंकर जुदाई का, परायेपन का असर प्रतिभासित होता है वह तीव्र वायु वेग में बादल की तरह उड़ जायेगा और परस्पर के स्नेह सम्बन्ध से एक दूसरे की अभिवृद्धि होगी तथा शोभा बढ़ेगी।

साधर्मि-सेवा

- हजारों बछड़ों के बीच एक गाय को छोड़ दीजिये। गाय अपने ही बछड़े के पास पहुँचेगी उसी तरह लाखों-करोड़ों आदमियों में भी साधर्मी भाई को न भूलें।
- आज लोग आडम्बर में, थोथे बाह्याडम्बरों में लाखों, करोड़ों की धनराशि खर्च कर देते हैं, जबकि दूसरी ओर समाज के लाखों भाई-बहन ऐसी कमजोर स्थिति वाले हैं, हजारों ऐसी विधवाएँ हैं, हजारों ही ऐसे होनहार बालक हैं, बालिकाएँ हैं, जो अभाव की स्थिति में बड़े ही कष्ट से अपना गुजर-बसर कर रहे हैं।
- कोई भाई लखपति था, लेकिन विवाह आदि में अधिक खर्च हो गया और कर्जा हो गया, यह बात आपको साधर्मी भाई होने के नाते मालूम है, किन्तु इस बात को बाहर प्रकट करने में उसका व्यावहारिक रूप गिरता है तो आप उसकी कमजोरी प्रकट नहीं करें। इसके अतिरिक्त कोई साधर्मी भाई उदार है, व्रतधारी है, गुणी है, हजारों के बीच में बैठा है, लेकिन लोग उसको जानते नहीं हैं तो उसके गुणों की बड़ाई लोगों के सामने करके उसको चमकाना, उसके गुणों का अनुमोदन करना अभीष्ट हो सकता है।
- जहाँ साधर्मी वात्सल्य है वहाँ किसी को देनदारी के कारण आत्महत्या करने का अवसर नहीं आयेगा, क्योंकि जागरूक समाज किसी व्यक्ति को दुःख के कारण मरने नहीं देगा, हर संभव उसकी सहायता करेगा। कोई भाई बीमार है तो उसके साथ सहानुभूति दिखाने से उसका आधा रोग चला जायेगा। तन से, धन से डिगने वाले को स्थिर करना आपका काम है। मन से, श्रद्धा से डिगने वालों को मजबूत करना हमारा काम है।
- जिस भक्ति-प्रदर्शन की रीति-नीति में स्वधर्मी भाइयों का कष्टनिवारण नहीं किया जाता, उनको वात्सल्य की दृष्टि से देखने का किञ्चित्मात्र भी प्रयास नहीं किया जाता और स्वधर्मी बन्धुओं के मुरझाये हुए मुख कमल प्रफुल्लित कर उन्हें धर्म-मार्ग में स्थिर नहीं किया जाता तो उस सारे बाह्याडम्बर को विडम्बना मात्र ही समझना चाहिये। संतों की प्राचीन वाणी ने ठीक कहा है-

> न कयं दीणुद्धरणं, न कयं साहम्मियाण वच्छल्लं।
> हिअयम्मि वीअराओ, न धारियो हारिओ जम्मो॥

अर्थात्-सामर्थ्य शक्ति पाकर भी यदि दीनों का उद्धार नहीं किया, सहधर्मी भाइयों से वात्सल्य-प्रेम नहीं किया,

उनके दुःख को अपना दुःख समझ कर मिटाने का प्रयत्न नहीं किया और हृदय में वीतराग प्रभु की आज्ञा को धारण नहीं किया तो सब कुछ करके भी उसने अपना जन्म व्यर्थ ही गंवा दिया।

- लोग भक्ति के सही स्वरूप को समझ कर स्वधर्मियों से वात्सल्य करें, अहिंसा के प्रचार में अपनी शक्ति लगावें और पीड़ितों को बन्धुभाव से देख कर उनके दुःख दूर करें तो धर्म की बड़ी प्रभावना हो सकती है। उसके बिना आडम्बरों में करोड़ों का व्यय करना कोई अर्थ नहीं रखता। ऐसा प्रतीत होता है कि पापानुबन्धी पुण्य से अर्जित सम्पदा ने आज लोगों की बुद्धि पर पर्दा डाल दिया है, बुद्धि को मलिन कर दिया है अथवा मति को हर लिया है। वह लोगों में सुमति आने नहीं देती। केवल भक्ति का दिखावा करने में ही मति चलती है, शेष सभी श्रेयस्कर कार्यों में सुमति कुण्ठित हो कर रह जाती है।
- एक ही चाबी को घुमाने से ताला बन्द होता है और उसी को घुमाने से ताला खुल जाता है। मन ही बुरे भावों से कर्म बंध करता है और अच्छे भावों से कर्म तोड़ता है। संसार में तन के प्रति, कुटुम्ब-कबीले के प्रति, भाई-भतीजों के प्रति राग की भावना से बंध होता है। लेकिन देव, गुरु व धर्म के प्रति, धर्मी-संसार के प्रति, धर्मी-संघ के प्रति यदि अनुराग है तो उससे कर्मों की निर्जरा होती है, शुभ कर्मों का बन्ध होता है, संसार में शान्ति मिलती है, परलोक में सुख मिलता है।
- आपको एक बात यह समझनी है कि जैन संघ को ऊँचा उठाना है, जैन समाज में शान्ति लानी है, प्रियजनों और गुरुजनों का मान रखना है तो जैन समाज को साधर्मी वत्सलता भी सीखनी पड़ेगी।
- जो देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा रखता है, जो अरिहन्त को देव मानता है, निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है और केवलियों के धर्म को धर्म मानता है, ऐसे भाई को दुःख में देखकर आपके हृदय में तड़फन आनी चाहिए। उसके रहने और खाने-पीने की व्यवस्था नहीं, धन्धा नहीं तो उसकी सहायता करनी चाहिए।
- बुजुर्गों में ऐसी कहावत है कि पाली वगैरह कुछ ऐसे स्थान थे जहाँ पर कोई नया जैन भाई बाहर से आकर बसता तो उसको एक-एक ईंट और एक-एक मुहर सोने की हर घर से दी जाती। धर्मी भाई सोचते कि हर घर से एक मुहर और एक ईंट दी जायेगी तो उस भाई की आर्थिक स्थिति ठीक हो जायेगी और वह अपना धंधा शुरू करके घर चला सकता है। लोग सोचते, बाहर से कोई भाई हमारे नगर में आया है, वह इधर-उधर हाथ पसार कर नहीं रहे, बराबरी का भाई बनकर रहे। ऐसा समझते थे, तब जैन समाज में सुख-शान्ति थी और समाज सब का प्रेम-पात्र था। आज भी जैन समाज को ऊँचा उठने का मौका मिलते रहना चाहिए।

■ सामायिक

- इस संसार में जितने भी दुःख, द्वन्द्व, क्लेश और कष्ट हैं, वे सभी चित्त के विषमभाव से उत्पन्न होते हैं । इन सबके विनाश का एकमात्र उपाय समभाव है । समभाव वह अमोघ कवच है जो प्राणी को समस्त आघातों से सुरक्षित कर देता है। जो भाग्यवान समभाव के सुरम्य सरोवर में सदा अवगाहन करता रहता है, उसे संसार का ताप पीड़ा नहीं पहुँचा सकता। समभाव वह लोकोत्तर रसायन है, जिसके सेवन से समस्त आंतरिक व्याधियाँ एवं वैभाविक परिणतियाँ नष्ट हो जाती हैं। आत्मा रूपी निर्मल गगन में जब समभाव का सूर्य अपनी समस्त प्रखरता के साथ उदित होता है तो राग, द्वेष, मोह आदि उलूक विलीन हो जाते हैं। आत्मा में अपूर्व ज्योति प्रकट हो जाती है और उसके सामने आलोक ही आलोक प्रसारित हो उठता है।

- सामायिक का अभ्यास वह अभ्यास है, जिससे आदमी अपने आपको चारित्र-मार्ग में ऊँचा उठा सकता है।
- पाँच प्रकार के चारित्र में पहला सामायिक चारित्र है। सामायिक में सम्पूर्ण पापों का त्याग होता है। स्वाध्याय कहने से श्रुत अर्थात् ज्ञान आ गया और सामायिक कहने से क्रिया आ गई। स्वाध्याय और सामायिक में मुक्ति का मार्ग पूरा का पूरा आ गया। शास्त्रों में 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' इन दो मार्गों से तथा 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इन तीन मार्गों से और तप का पृथक् उल्लेख कर 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप' इन चार मार्गों से भी मुक्ति बताई है, वह सब इन दो में -स्वाध्याय और सामायिक में आ जाता है।
- दुःख का वास्तविक कारण आर्थिक विषमता नहीं, मानसिक विषमता है। यह मानसिक विषमता सामायिक की साधना द्वारा समताभाव लाकर मिटाई जा सकती है।
- साधना की अपेक्षा से सामायिक सम्यक्त्व, श्रुत, आगार और अनगार के भेद से चार प्रकार की होकर भी मूल में एक ही है। गृहस्थ विषय-कषाय के प्रगाढ पंक में रहकर भी क्षणिक समभाव की उपलब्धि कर सके, राग-रोष के जोर को घटा सके, इसलिए आचार्यों ने उसे सामायिक की शिक्षा दी है। समय, उपकरण और विधि की अपेक्षा परम्परा भेद होने पर भी सामायिक के मूल रूप में कोई अंतर नहीं है। मौलिक रूप से आर्तध्यान, रौद्रध्यान तथा सावद्य कार्य का त्याग कर मुहूर्त्त भर समता में रहना सामायिक है। कहा भी है-

  'त्यक्तार्तरौद्रध्यानस्य, त्यक्तसावद्यकर्मणः।
  मुहूर्तं समतायास्तं विदुः सामायिकं व्रतम्॥

- सामायिक में कोई यह नहीं समझले कि इसमें कोरा अकर्मण्य होकर बैठना है। सामायिक-व्रत में सदोष प्रवृत्ति का त्याग और पठन-पाठन, प्रतिलेखन, प्रमार्जन, स्वाध्याय, ध्यान आदि निर्दोष कर्म का आसेवन भी होता है। सदोष कार्य से बचने के लिये निर्दोष में प्रवृत्तिशील रहना आवश्यक है।
- सामायिक-साधना करना अपने घर में रहना है। सामायिक से अलग रहना बेघरबार रहना है । सामायिक साधना करना आत्मा का घर में आना है। काम, क्रोध आदि विकारों से परिणत होना पराये घर में जाना है।
- सामायिक के दो रूप हैं—साधना और सिद्धि। श्रुत सामायिक से साधना का प्रारम्भ और उदय होता है। वह विकास पाकर ज्ञान और चारित्र के द्वारा आत्मा में स्थिरता उत्पन्न करती है। यह आत्म-स्थिरता ही सामायिक की पूर्णता समझनी चाहिए। इसे आगम की भाषा में अयोगी दशा की प्राप्ति कहते हैं।
- साधक की दृष्टि से सामायिक के अनेक प्रकार किये गये हैं। स्थानांग सूत्र में आगार सामायिक और अनगार सामायिक दो भेद हैं। आचार्यों ने तीन प्रकार भी बतलाये हैं—सम्यक्त्व सामायिक, श्रुत सामायिक और चारित्र सामायिक।
- सम्यक्त्व सामायिक में यथार्थ तत्त्व श्रद्धान होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर ही श्रुत के वास्तविक मर्म को समझा जा सकता है। श्रुत सामायिक में जड़-चेतन का परिज्ञान होता है। सूत्र, अर्थ और तदुभय रूप से श्रुत के तीन अथवा अनक्षरादि क्रम से अनेक भेद हैं। श्रुत से मन की विषमता गलती है, अतः श्रुताराधन को श्रुत सामायिक कहा है।
- चारित्र सामायिक के आगार और अनगार दो प्रकार किये हैं। गृहस्थ के लिए मुहूर्त आदि प्रमाण से किया गया सावद्य त्याग आगार सामायिक है। अनगार सामायिक में सम्पूर्ण सावद्य-त्याग रूप चारित्र जीवन भर के लिए होता है। आगार सामायिक में दो करण तीन योग से हिंसादि पापों का नियत काल के लिए त्याग होता है,

जबकि मुनि-जीवन में हिंसादि पापों का तीन करण तीन योग से आजीवन त्याग होता है।

- सावद्ययोगों के त्याग का नियम लेने से सामायिक एक व्रत है। इसे शिक्षा व्रत माना गया है । इसमें साधक पापवृत्ति न करने का संकल्प लेता है। फलस्वरूप उसका चित्त शान्त होता है। सम होने के साथ-साथ शान्ति बढ़ती जाती है। और शान्ति बढ़ने के साथ चित्त की साधना भी बढ़ती जाती है। चित्त की समता रूप अवस्था ही सामायिक चारित्र है।
- आप जब सामायिक करें, उस समय एक घण्टा पालथी आसन से बैठकर सामायिक का अभ्यास करना चाहिए। प्रतिदिन इस प्रकार का नियमित अभ्यास करते रहेंगे तो आगे चलकर इससे आपको अपनी इन्द्रियों पर काबू पाने में, चित्त को एकाग्र करने में बड़ी सहायता मिलेगी।
- सामायिक में सावद्ययोगों की द्रव्य निवृत्ति तो की, पर परिवार वालों की ओर आपका मन चला गया, घर वाले याद करते होंगे, अब तो जल्दी ही घर जाऊँगा, मकान की मरम्मत करवानी है। इसके साथ ही दूसरी विचारधारा चली कि बाजार से सब्जी लानी है, अमुक प्रकार की साग-भाजी बनवानी है, फल-फूल लेने हैं, रस निकालना है, कुएं से पानी निकालना है, आदि-आदि रूप से आपका चिन्तन चला तो आपकी वह सामायिक द्रव्य दृष्टि से ही सामायिक हुई, भाव दृष्टि से नहीं हुई। इसलिए सामायिक पर पूरा पहुँचने के लिए अभ्यास की आवश्यकता रहती है। यदि आप निरन्तर अभ्यास करते रहेंगे तो बाहर की द्रव्य विरति की तरह सावद्ययोगों की भाव से भी निवृत्ति कर सकेंगे।
- सामायिक संघ वाले और स्वाध्याय संघ वाले कहीं इस बात को भूल न बैठें, सदा इस बात को ध्यान में रखें कि सामायिक, बिना स्वाध्याय के शुद्ध नहीं हो सकती और स्वाध्याय बिना सामायिक के आगे नहीं बढ़ सकता। यदि सामायिक को आगे बढ़ाना है, विशुद्धिपूर्वक करना है, आध्यात्मिक प्रगति करना है, तो उसके लिए स्वाध्याय बहुत जरूरी है, यह एक अनुभूत तथ्य है। बहुत सोचने पर मुझे यह निष्कर्ष मिला है और यही निष्कर्ष मैंने आपके सामने रखा है।
- आप में से बहुत से भाई सामायिक करने के अभ्यासी हैं, पर सामायिक की साधना का कोई दायित्व नहीं समझा है। थोड़ी माला फेर ली, कुछ स्तवन बोल दिये और सामायिक का समय पूरा कर लेते हैं। वे भूल जाते हैं कि सामायिक साधना की क्या विधि है, क्या व्यवस्था, क्या-क्या नियम हैं? सामायिक-साधना कोई साधारण वस्तु नहीं। वस्तुतः सामायिक एक बहुत बड़ी योग-साधना है। पतञ्जलि ने पातञ्जल योग सूत्र में योग के आठ अंग बताये हैं। योग के जो आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रूप में बताये गये हैं, वे आठों सामायिक में पूर्ण होते हैं।
- हमारी माताएँ सामायिक ग्रहण करने में आपसे आगे हैं, पर सामायिक में प्रमाद-सेवन में, विकथा करने में भी वे आपसे आगे हैं। वे सामायिक में अपने घर की, पर घर की, खाने-पीने की सभी प्रकार की बातें कर लेंगी। यहाँ तक कि सामायिक में विवाह-सम्बंध की बात भी पक्की कर लेंगी। इसीलिए सामायिक की साधना जो एक बड़ी साधना मानी गई है, वह तेजहीन हो जाती है।
- सामायिक जैसे उच्च व्रत की साधना खिलवाड़ न बने, उपहास और आलोचना की बात न बने और उसकी विशुद्धता, शक्ति और तेजस्विता आगे बढ़े, इसके लिए स्वाध्याय परम औषधि है, बहुत बड़ा साधन है। शास्त्र ने जो 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' कहा है, उसी को-' स्वाध्याय-सामायिकाभ्यां मोक्षः' इन दूसरे शब्दों में कहा जा सकता

है। उधर ज्ञान और क्रिया, इधर सामायिक और स्वाध्याय।

- मन में गर्व, क्रोध, कामना, भय आदि को स्थान देकर यदि कोई सामायिक करता है तो ये सब मानसिक दोष इसे मलिन बना देते हैं। पति और पत्नी में या पिता और पुत्र में आपसी रंजिश पैदा हो जाए तब रुष्ट होकर काम न करके सामायिक में बैठ जाना भी दूषण है। अभिमान के वशीभूत होकर या पुत्र, धन, विद्या आदि के लाभ की कामना से प्रेरित होकर सामायिक की जाती है तो वह भी मानसिक दोष है। अप्रशस्त मानसिक विचारों के रहते सामायिक से आनन्द या लाभ के बदले उलटा कर्म बन्ध होता है।
- सामायिक के समय शारीरिक चेष्टाओं का गोपन करके स्थिर एक आसन से साधना की जाती है। चलासन और कुआसन, सामायिक के दोष माने गए हैं। अगर कोई पद्मासन या वज्रासन आदि से लम्बे काल तक न बैठ सके तो किसी भी सुखद एवं समाधिजनक आसन से बैठे, किन्तु स्थिर होकर बैठे। पालथी आसन या उत्कटुक आसन से भी बैठा जा सकता है, किन्तु बिना कारण बार-बार आसन न बदलते हुए स्थिर बैठना चाहिए।
- आप सामायिक में सीधे-सादे रूप में, सीधे-साधे वस्त्रों में बैठे हैं। इससे आपके पास बैठे दूसरे सामायिक कर रहे भाई का अपमान नहीं होगा। पर सामायिक में भी अगर आप अपने अंग-प्रत्यंग पर आभूषण लाद कर, चमकीले-भड़कीले वस्त्रालंकार पहन कर बैठेंगे तो इससे दूसरों का एक प्रकार से अपमान होगा।
- सामायिक करने वाले सैकड़ों हजारों भाई-बहिनों को जिस ध्यान से श्रवण करना चाहिए, जिस विधि से व्रत करना चाहिए, वे उस विधि से नहीं कर रहे हैं, इसीलिए जो आनन्द आना चाहिए वह नहीं आ रहा है। सामायिक करने वालों के सामने कोई करोड़पति सेठ आ जावे, कोई गवर्नर आ जावे या कोई सेल्स टैक्स का इन्सपेक्टर आ जावे तो भी उनका कलेजा हिलना नहीं चाहिए। लेकिन यहाँ तो कोई साधारण बाई या भाई भी पचक्खाण करने के लिए आ जावे, बाहर के चार-पाँच मित्र आ जावें तो उनकी गर्दन घूम जायेगी। गर्दन घूम गई तो आपकी सामायिक स्थिर नहीं होगी। यदि इस प्रकार की वृत्ति चलती रही तो आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
- जिस तरह घर से निकलकर धर्मस्थान में आते हैं और कपड़े बदलकर सामायिक साधना में बैठते हैं उसी तरह से कपड़ों के साथ-साथ आदत भी बदलनी चाहिए और बाहरी वातावरण और इधर-उधर की बातों के खयाल को भुला देना चाहिए। यदि इस तरह से सामायिक करेंगे तो बहनों और भाइयों को अवश्य लाभ होगा।
- आपने सामायिक का व्रत लिया। सामायिक व्रत में आपकी निवृत्ति किससे हो? 'सावज्जजोगं पच्चक्खामि'-भगवन् ! जो भी सावद्य—पाप सहित काम होगा, उसका मैं त्याग करता हूँ। त्याग कर दिया, लेकिन अंगीकार किया क्या, यह आपको याद नहीं है। आपने सावद्य योग का त्याग किया, उसके साथ निरवद्य योग को ग्रहण करके उसका अनुपालन और आचरण भी आवश्यक है।
- माताएँ-बहिनें सामायिक में बैठी-बैठी लम्बा चौड़ा प्लान बना डालती हैं और अधिकांश समय बताशा, नारियल और वेश की बातों में बिता देती हैं। सामायिक में इस तरह की बातें करने से संवर-निर्जरा नहीं होकर राग-द्वेष बढ़ता है।
- संसार में मानव चौबीसों घण्टे आरम्भ-परिग्रह एवं विषय-कषाय में तल्लीन रहता है। उसके कर्मबन्धन को हल्का करने के लिए सामायिक साधना बताई गई है।
- जैन धर्म में 'सामायिक' का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सभी साधनाओं की भूमि है। पौषधादि सभी व्रत

सामायिक से प्रारम्भ होते हैं। तीर्थंकर भगवान् भी जब साधना मार्ग में प्रवेश करते हैं तो सर्व प्रथम सामायिक चारित्र स्वीकार करते हैं। जैसे-आकाश संपूर्ण चराचर वस्तुओं का आधार है वैसे ही सामायिक चरणकरणादि गुणों का आधार है।

"सामायिकं गुणानामाधारः, खमिव सर्वभावानाम्।
न हि सामायिकहीनाश्चरणादिगुणान्विना येन॥

- बिना समत्व के संयम या तप के गुण टिक नहीं सकते। हिंसादि दोष सामायिक में सहज ही छोड़ दिये जाते हैं। अत: आत्म-स्वरूप को पाने की इसे मुख्य सीढ़ी कह सकते हैं। 'भगवती सूत्र' में स्पष्ट कहा है—

आया खलु सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे।'

अर्थात् आत्मा ही सामायिक है और आत्मा (आत्म स्वरूप की प्राप्ति) ही सामायिक का प्रयोजन है।

- सामायिक तन और मन की साधना है। इस व्रत की आराधना में तन की दृष्टि से इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है और मन की दृष्टि से उसके उद्वेग एवं चांचल्य का निरोध किया जाता है । मन में नाना प्रकार के जो संकल्प विकल्प होते रहते हैं, राग की, द्वेष की , मोह की या इसी प्रकार की जो परिस्थिति उत्पन्न होती रहती है , उसे रोक देना सामायिक व्रत का लक्ष्य है। समभाव की जागृति हो जाना शान्ति प्राप्ति का मूल मंत्र है।
- सामायिक द्वारा साधक अपनी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करके समभाव और संयम को प्राप्त करता है। अतएव प्रकारान्तर से सामायिक-साधना को मन का व्यायाम कहा जा सकता है।
- जीवन में सामायिक साधना का स्थान बहुत ही महत्त्व का है। सामायिक से अन्तःकरण में विषमता के स्थान पर समता की स्थापना होती है। उसका अन्य उद्देश्य मानव के अन्तस्तल में धधकती रहने वाली विषय-कषाय की भट्टी को शान्त करना है।
- जीवन में जो भी विषाद, वैषम्य, दैन्य, दारिद्र्य, दुःख और अभाव है, उस सब की अमोघ औषध सामायिक है। जिसके अन्तःकरण में समभाव के सुन्दर सुमन सुवासित होंगे, उसमें वासना की बदबू नहीं रह सकती। जिसका जीवन साम्यभाव के सौम्य आलोक से जगमगाता होगा, वह अज्ञान, आकुलता एवं चित्त विक्षेप के अन्धकार में नहीं भटकेगा।
- सामायिक की साधना के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों की शुद्धता आवश्यक है। जो हमारी सिद्धि के भावों का, वास्तविक गुणों का कारण होता है वह द्रव्य है। जिस तन से हम सामायिक करने जा रहे हैं वह उद्वेलित तो नहीं है, उत्तेजित तो नहीं है, राग द्वेष से ग्रस्त तो नहीं है और जिन उपकरणों की सहायता से (यथा-आसन, मुंहपत्ती, पूंजणी, स्वाध्याय योग्य ग्रन्थ, माला आदि) सामायिक की जा रही है वे साफ, स्वच्छ और शुद्ध होने चाहिए। भावों को बढ़ाने में वे उपकरण भी सहायक होते हैं। ये उपकरण शुद्ध, सरल और सादे हों। ऐसा न हो कि माला चांदी की हो, पूंजणी में घूघरे लगे हों और मुंहपत्ती रत्न जड़ित हो।
- द्रव्य की तरह क्षेत्र शुद्धि भी आवश्यक है। यदि आप चाहते हैं समता, और बैठते हैं विषमता में तो समता कैसे आयेगी? जहां बारूद के ढेर हों, वहां कोई रसोई करने की जगह मांगे तो क्या होगा ? वहां तो बीड़ी तक पीने की मनाई होती है। यदि उस निषिद्ध क्षेत्र में कोई बीड़ी पीता पकड़ा जाता है तो वह दंड का भागी होता है। जैसे कमाई के लिये दुकान है, पढ़ने के लिये स्कूल है, न्याय के लिए कोर्ट है, उसी प्रकार सामायिक के लिये भी नियत स्थान होना आवश्यक है। कई बार सर्दी के कारण लोग स्थानक में आकर सामायिक नहीं करते। वे

पलंग के पास या रसोई घर में बैठकर सामायिक करते हैं तो समता कैसे आयेगी? विषमता के क्षेत्र में रहकर समता की साधना नहीं की जा सकती।

- सामायिक साधक के लिए काल का भी अपना विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार भोजन करने का, दवा लेने का, शरीर की आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होने का निश्चित समय निर्धारित होने का लाभ है, उसी प्रकार नियमित रूप से नियत समय पर की जाने वाली सामायिक का अपना विशेष लाभ है।
- सामायिक समभाव की साधना है । सामायिक साधक को प्रतिदिन यह सोचते रहना चाहिये कि उसके विषम भाव कितने कम हुए हैं, और समता कितनी आयी है ? जिस प्रकार बुखार आने पर यदि दो तीन दिनों तक दवाई लेते रहने पर वह नहीं उतरता है तो दवा बदल दी जाती है। इसी प्रकार आपको सामायिक करते-करते वर्षों बीत गये और मन की वृत्तियों में कोई बदलाव नहीं आया तो इस सम्बन्ध में सोचना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिये कि क्रोध कैसे कम हो, झूठ कैसे न बोला जाय, घृणा कैसे दूर हो? जिस प्रकार दवा रोग मिटाने के लिए ली जाती है उसी प्रकार सामायिक समता लाने के लिये की जानी चाहिये। ऐसा न हो कि दवा तो रोग मिटाने के लिये खाओ और सामायिक केवल रूढ़ि पालन के लिए करो।
- जिस व्यापार से समभाव का विघात हो, वह सब व्यापार अप्रशस्त कहलाता है। साथ ही उस समय "मैं सामायिक व्रत की आराधना कर रहा हूँ" यह बात भूलना नहीं चाहिये। यह सामायिक का भूषण है क्योंकि जिसे निरन्तर यह ध्यान रहेगा कि मैं इस समय सामायिक में हूँ, वह इस व्रत के विपरीत कोई प्रवृत्ति नहीं करेगा। इसके विपरीत सामायिक का भान न रहना दूषण है।
- सामायिक का पहला अतिचार मनः दुष्प्रणिधान है, जिसका तात्पर्य है मन का अशुभ व्यापार। सामायिक के समय में साधक को ऐसे विचार नहीं होने चाहिये जो सदोष या पापयुक्त हों। सामायिक में मन आत्माभिमुख होकर एकाग्र बन जाना चाहिये। एकाग्रता को खण्डित करने वाले विचारों का मन में प्रवेश होना साधक की दुर्बलता है।
- सामायिक का दूसरा दोष है वचन का दुष्प्रणिधान अर्थात् वचन का अप्रशस्त व्यापार। सामायिक के समय आत्म-चिन्तन, भगवत् -मरण या स्वात्मरमण की ही प्रधानता होती है। अतएव सर्वोत्तम यही होगा कि मौन भाव से सामायिक का आराधन किया जाय। यदि आवश्यकता हो और बोलने का अवसर आए तो भी संसार-व्यवहार सम्बन्धी बातें नही करना चाहिये। हाट, हवेली या बाजार-सम्बन्धी बातें न करें, काम-कथा और युद्ध-कथा से सर्वथा बचते रहें। कुटुम्ब परिवार के हानि-लाभ की बातें करना भी सामायिक को दूषित करना है।
- सामायिक का तीसरा दूषण शरीर का दुष्प्रणिधान है। शरीर के अंग-प्रत्यंग की चेष्टा सामायिक में बाधक न हो, इसके लिये यह आवश्यक है कि इन्द्रियों एवं शरीर द्वारा अयतना का व्यवहार न हो। सामायिक की निर्दोष साधना के लिए यह अपेक्षित है। इधर-उधर घूमना, बिना देखे चलना, पैरों को धमधमाते हुए चलना, रात्रि में बिना पूंजे चलना, बिना देखे हाथ पैर फैलाना आदि काय दुष्प्रणिधान के अन्तर्गत आते हैं। मन, वचन और काय का दुष्प्रणिधान होने पर सामायिक का वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं होता।
- सामायिक काल में सामायिक की स्मृति न रहना भी सामायिक का दोष है।
- व्यवस्थित रूप से अर्थात् आगमोक्त पद्धति से सामायिक व्रत का अनुष्ठान न करने से दोष का भागी होना पड़ता है। यह पाँचवा दूषण है। सामायिक अंगीकार कर प्रमाद में समय व्यतीत कर देना, नियम के निर्वाह के

लिए जल्दी-जल्दी सामायिक करके समाप्त कर देना, चित्त में विषम भाव को स्थान देना आदि अनुचित हैं।

- श्वेताम्बर परम्परा में सामायिक के पूर्व वेश परिवर्तन आदि की बहुत सी बाह्य क्रियाएँ अपेक्षित मानी जाती हैं। दिगम्बर परम्परा में बाह्य क्रियाएँ अति न्यून हैं। श्वेताम्बर परम्परा का मन्तव्य है कि भरत, चिलाती पुत्र आदि को सामायिक बिना पाठ और बाह्य क्रिया के हुई। वे अपवाद रूप हैं। अन्तर की विशेष योग्यता वाले बिना बाह्य विधि के भी सामायिक कर सकते हैं, किन्तु साधारण साधक के लिये बाह्य विधि भी आवश्यक है।
- आज विविध परम्परा के लोग जब एक जगह पर धर्मक्रिया करने बैठते हैं, तब भिन्न-भिन्न प्रकार की नीति-रीति को देखकर टकरा जाते हैं, वाद-विवाद में पड़ जाते हैं, जबकि धार्मिक-मंच सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने का अग्रिम स्थान है। लोकसभा में विभिन्न प्रकार की वेशभूषा, साज-सज्जा, बोलचाल और नीतिरीति के व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं, तो फिर क्या लम्बी मुंहपत्ती और चौड़ी मुंहपत्ती वाले प्रेमपूर्वक एक साथ नहीं बैठ सकते ?
- वीतराग के शासन काल में किसी भी सत्यप्रेमी को जो खुले मुँह बोलने में दोष मानता हो, भले वह मुँह के हाथ लगाकर, कपड़ा लगाकर या मुँहपत्ती बांध कर यतना से बोलता हो तो एक साथ बैठ सकता है। जैसे-मुँहपत्ती बांधने वाले असावधानी से बचना चाहते हैं वैसे ही उसे हाथ में रखने वाले भी खुले मुँह नहीं बोलने का ध्यान रखें तो विरोध ही क्या है ? विरोध असहिष्णुता से , एक दूसरे के दोष बताने में है। मुँहपत्ती बांधने वाले को थूंक में जीवोत्पत्ति बताकर छुड़ाना और नहीं बांधने वाले को उसकी परम्परा के विरुद्ध बलात् बंधाना विरोध का कारण है । पसीने से गीले वस्त्र की तरह गीली मुँहपत्ती जब तक मुँह के आगे रहती है, भाप की गर्मी के कारण तब तक जीवोत्पति की संभावना नहीं रहती। इस प्रकार दोनों के मन में जीव रक्षा का भाव है। हिंसा, असत्य, अदत्त,कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य आदि पाप कर्म का परित्याग भी दोनों का एक ही है।
- सावद्य योग या पापकारी क्रिया चाहे मन की हो, चाहे वचन की हो, जिसमें पापकारी क्रिया है, वह दण्ड का रूप है। सामायिक में सबसे पहले सावद्य योग रूप दण्ड का त्याग होता है। शिष्य गुरु के चरणों में निवेदन करता है कि भगवन् ! मैं सावद्य योगों का त्याग करता हूँ। जिसमें पाप है, झूठ है, क्रोध है, मान है, माया है, राग है, द्वेष है, जो भी पापकारी प्रवृत्तियाँ हैं, दण्ड के लायक हैं, उनको मैं छोड़ता हूँ।
- सामायिक को पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। श्रेणिक राजा अपने नारकीय द्वार बन्द करने हेतु पूणिया श्रावक से सामायिक खरीदने चला गया, किन्तु क्या सामायिक का मूल्य आंका जा सकता है? श्रेणिक राजा को अपने वैभव पर गर्व था। वह पूणिया श्रावक से सामायिक का मनचाहा मूल्य मांगने हेतु कहने लगा। पूणिया श्रावक चुप रहा। फिर उसने श्रेणिक से कहा- सामायिक का मूल्य मुझे ज्ञात नहीं है । आप भगवान् महावीर से इसका मूल्य ज्ञात कर लीजिए। महावीर ने बताया कि करोड़ों सुमेरु पर्वत भी यदि दिये जाएँ तो वे सामायिक की दलाली भी नहीं कर सकते।
- वस्तुतः सामायिक का धन वैभव से कोई सम्बन्ध नहीं है। धन-वैभव का सम्बन्ध शारीरिक सुख-सुविधाओं से हो सकता है, किन्तु आत्मा से नहीं। धन-वैभव से समता आ ही नहीं सकती। समता आन्तरिक विषमता को दूर करने पर आती है तथा वही आत्मा का वैभव है।
- एक भाई सादे सफेद कपड़े के आसन पर सादे वस्त्र पहिने सामायिक में बैठा है और दूसरा भाई गलीचे का आसन लेकर बैठा है। गलीचे वाले को सामायिक का लाभ अधिक मिलेगा या उस सीधे -सादे वस्त्रों में सादे

आसन पर बैठने वाले भाई को ? एक भाई सफेद रंग की सादी सूत से बनी अथवा चन्दन की लकड़ी की माला लेकर बैठा है और दूसरा भाई चांदी के मणियों की माला लेकर बैठा है। सेठ साहब अपनी उस चांदी की माला को ऊपर उठाकर जोर-जोर से नमस्कार मंत्र जप रहे हैं। इस तरह से सेठ साहब सामायिक कर रहे हैं या सब लोगों के सामने अपनी साहिबी का प्रदर्शन कर रहे हैं ? अथवा अपने सब भाइयों को बेईमान समझने की भावना प्रदर्शित कर रहे हैं या अपने बड़प्पन का भोंडा प्रदर्शन कर रहे हैं ? सामायिक में बैठकर भी आपका यह खयाल हो गया कि मेरी मोटाई, सेठाई लोगों को कैसे बताऊँ तो फिर आप कहाँ भगवान के चरणों में पहुँचेगें ?

- यदि सामायिक के स्वरूप के संबंध में आप उपासकदशांग का थोड़ा सा चिन्तन-मनन करेंगे तो आपको भलीभांति ज्ञात हो जायेगा कि पूर्व काल में सामायिक की साधना करते समय पूर्णतः सादगी और निष्परिग्रहत्व को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। 'उपासकदशांग' में स्पष्ट उल्लेख है कि कुंडकोलिक श्रावक ने अशोक वाटिका में सामायिक के समय मूंदडी भी उतार कर अलग रख दी। चद्दर और मूंदडी उतार कर उसने सामायिक में ध्यान लगाया। वस्तुतः सामायिक में सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात के आभूषणों का त्याग होता है। परिग्रह का त्याग होता है। मुनिवृत्ति का रूप होता है। ऐसी सामायिक ही साधक को अभीष्ट होनी चाहिए।
- विषम भावों से समभावों में आना सामायिक का लक्ष्य है। जिस प्रकार कुश्ती, दंगल से शारीरिक बल बढ़ता है उसी प्रकार सामायिक से मानसिक बल में वृद्धि होती है। ज्ञान के साथ आचरण और आचरण के साथ ज्ञान होना आवश्यक है। सामायिक मुख्यतः आचार-प्रधान साधना है। पर यह आचार क्रियाकाण्ड बनकर न रह जाये, अतः इसके साथ ज्ञान अर्थात् स्वाध्याय का जुड़ना आवश्यक है। आप इस बात का ध्यान करें कि आपकी सामायिक दस्तूर की सामायिक न होकर साधना की सामायिक हो। सामायिक को तेजस्वी बनाने के लिये उसमें स्वाध्याय और ध्यान-साधना की आवश्यकता है और स्वाध्याय को जीवनस्पर्शी बनाने के लिये सामायिक का अभ्यास आवश्यक है।
- सामायिक करते समय तुम्हारा मन बाहर चला जाय तो यह समझो कि जिस चीज पर मन गया है वह भौतिक चीज मेरी नहीं है, उसमें ममता मत रखो।
- मन के बाहर जाने का सबसे बड़ा कारण राग है इसलिये उसको कम करो। राग कम करने का उपाय यह है कि बाहरी पदार्थों के साथ जो तुम्हारा अपनापन है, लगाव है, उसको अपना समझना छोड़ दो। यह समझ लो कि जो मेरा है वह मेरे पास है। जो दुनिया में है, बाहर है, वह मेरा नहीं है।
- दूसरा बाहरी उपाय यह बताया कि सुकुमारता-कोमलता का परित्याग करो, शरीर की आतापना बढ़ाओ ताकि दुःख सहन करने का अभ्यास कर सको। अभ्यास रहेगा तो आपत्तियों का तथा कठिनाइयों का कभी मुकाबला करना पड़े तो मन में खेद नहीं होगा।
- 'कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं।' प्रभु ने कहा कि ए साधक ! यदि मन को बाहर जाने से रोकना चाहता है तो अपनी कामना त्याग कर, कामना को वश में कर। जितनी-जितनी इच्छाएँ बढ़ेंगी उतना ही ज्यादा दुःख भोगना पड़ेगा। इच्छाएँ बढ़ाई, तो मन साधना से बाहर जायेगा। अतः प्रभु ने कहा कि दुःख दूर करने की कुञ्जी है - कामना दूर करना।
- सामायिक जैसी साधना को निर्मल और निर्दोष बनाकर आगे बढ़ाना है तो उसके लिये प्रभु ने कहा कि विकथा

का वर्जन करके चलो क्योंकि जो आध्यात्मिक मार्ग की ओर आगे बढ़ाने की बजाय आध्यात्मिक मार्ग से पीछे मोड़ती है उस कथा का नाम विकथा है। मानव निरन्तर ऐसी कथाएँ सुनता रहता है जो राग बढ़ाने वाली हैं, भोग बढ़ाने वाली हैं, क्रोध बढ़ाने वाली हैं। परिणाम स्वरूप उसके मन में राग-द्वेष की वृद्धि होती है। इसलिये प्रभु ने कहा कि जो आत्मभाव की ओर ले जाने वाली नहीं हैं, आत्मभाव से मोड़ने वाली हैं, ऐसी कथाओं से दूर रहो।

- आत्मा में जब तक शुद्ध दृष्टि उत्पन्न नहीं होती , शुद्ध आत्मकल्याण की कामना नहीं जागती और मन लौकिक एषणाओं से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक शुद्ध सामायिक की प्राप्ति नहीं होती। अतएव लौकिक कामना से प्रेरित होकर सामायिक का अनुष्ठान न किया जाय, वरन् कर्मबन्ध से बचने के लिए, संवर की प्राप्ति के लिए सामायिक का आराधन करना चाहिये। काम, राग और लोभ के झोंकों से साधना का दीप मन्द हो जाता है और कभी-कभी बुझ भी जाता है। अतएव आगमोक्त विधि से उत्कृष्ट प्रेम के साथ सामायिक करनी चाहिये।
- जो साधक पूर्ण संयम धारण कर तीन करण तीन योग से सामायिक नहीं कर पाता ऐसे गृहस्थ को आत्महितार्थ दो करण तीन योग से आगार सामायिक अवश्य करना चाहिए। क्योंकि वह भी विशिष्ट फल की साधक है, जैसा कि निर्युक्ति में कहा है -

  सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ,
  एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा।

  अर्थात् सामायिक करने पर श्रावक श्रमण-साधु की तरह होता है। वह अल्पकाल के लिये पापों का त्याग करके भी श्रमण जीवन के लिये लालायित रहता है। इसलिये गृहस्थ को समय-समय पर सामायिक साधना करना चाहिये।
- सामायिक करने का एक लाभ यह भी है कि गृहस्थ संसार के विविध प्रपंचों में विषय-कषाय और निद्रा-विकथा आदि में निरन्तर पाप संचय करता रहता है। अतः सामायिक के द्वारा घड़ी भर उनसे बचकर आत्म-शान्ति का अनुभव कर सकता है। क्योंकि सामायिक-साधना से आत्मा मध्यस्थ होती है। कहा भी है-

  जीवो पमायबहुलो, बहुसो उ वि य बहुविहेसु अत्थेसु।
  एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा॥
- सामायिक-साधना वह शक्ति है जो व्यक्ति में ही नहीं, समाज और देश में बिजली पैदा कर सकती है। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में यह साधना आनी चाहिए, जिससे उसका व्यापक प्रभाव अनुभव किया जा सके।
- अगर आप अपने किसी एक पड़ौसी की भावना में परिवर्तित ला देते हैं और उसके जीवन को पवित्रता की ओर प्रेरित करते हैं, तो समझ लीजिए कि आपने समाज के एक अंग को सुधार दिया है। प्रत्येक व्यक्ति यदि इसी प्रकार सुधार के कार्य में लग जाय तो समाज का कायापलट होते देर न लगे।

■ स्वाध्याय

- 'स्वाध्याय' शब्द का हम पद विभाग करेंगे तो इसमें दो शब्द पायेंगे। एक तो 'स्व' और दूसरा 'अध्याय'। इस पद विभाग का दो प्रकार से अर्थ किया जाता है। एक तो 'स्वस्य अध्ययनम्' और दूसरा 'स्वेन अध्ययनम्'। 'स्वस्य अध्ययनम्' का अर्थ है—अपने आपका अध्ययन करना, यह स्वाध्याय का एक अर्थ है। 'स्वेन अध्ययनम्' का अर्थ है, अपने द्वारा अध्ययन करना अर्थात् स्वयं द्वारा स्वयं का अध्ययन करना; अपने द्वारा अपने आपको

पढ़ना। यह स्वाध्याय का दूसरा अर्थ हुआ। स्वाध्याय का एक और तीसरा अर्थ मैं आपके समक्ष रखता हूँ। वह तीसरा अर्थ करते समय 'स्वाध्याय' पद का पद-विभाग इस प्रकार करना पड़ेगा—'सु', 'आङ्' और 'अध्याय'। 'सु' का मतलब है सुष्ठु अर्थात् अच्छे ज्ञान का, 'आङ्' का अर्थ है मर्यादापूर्वक और 'अध्याय' का अर्थ है, पढ़ना। तो इन तीन शब्दों से बने स्वाध्याय पद का अर्थ हुआ अच्छे ज्ञान का मर्यादापूर्वक ग्रहण करना, सु अर्थात् अच्छा ज्ञान इसलिए कहा है कि ज्ञान में दो भेद हैं, एक तो मिथ्याश्रुत अर्थात् मिथ्या ज्ञान और दूसरा सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञान में केवल रोटी-रोजी कमाने का शिक्षण ही नहीं, बल्कि जीवन को बनाने का भी यथार्थ शिक्षण होता है।

- यदि आप चाहते हैं कि समय-समय पर दिल में आने वाली तपन, काम-क्रोध, अहंकार की उत्तेजना आपको सता नहीं सके। यदि आप चाहते हैं कि हमारा परिवार संतुष्ट रहे, हम संतुष्ट रहें, सुखी रहें, यदि आप ऐसा संसार बनाना चाहते हैं जिसमें शान्ति, संतोष, सौहार्द, सहिष्णुता और सद्भाव का साम्राज्य हो, कलह, अशान्ति और अविश्वास का लेशमात्र न हो तो आपको अपने बच्चों को 'स्व' का अध्ययन कराना पड़ेगा, जिस 'स्व' को समझ लेने के पश्चात् सारी दुनिया फीकी प्रतीत होगी। इस 'स्व' तत्त्व को पा लेने के बाद आत्मा स्वस्थ, शान्त और निर्मल होगी।

- अगर ज्ञान प्राप्त करना है तो वह केवल शब्द से नहीं होगा। पोथी पढ़कर या शब्द रटकर कोई अपने को पर्याप्त मान ले तो वह सम्यग्ज्ञानी नहीं होगा। सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना है तो स्वाध्याय करो। स्वाध्याय से अपने आपको पढ़ो, अपने आप को सोचो। हमारे सामने हजारों समस्याएं हों, पर उन सबका समाधान मैंने स्वाध्याय और सामायिक में ही पाया। समाज सुधार की जितनी बातें हैं वे सब इन्हीं दो में निहित हैं । समाज में झगड़े क्यों होते हैं ? सम्प्रदाय में झगड़े क्यों होते हैं ? इनके पीछे भी मूल कारण यही है कि आज समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं है। इन महाराज के यहाँ जाना और दूसरों के नहीं जाना, इस झगड़े का मूल अविद्या या अज्ञान है। उसे भी स्वाध्याय से समाप्त किया जा सकता है।

- आज विज्ञान के युग में संसार में विद्या बढ़ी है। उसके साथ ही साथ धर्म का ज्ञान और क्षेत्र भी बढ़ना चाहिए। पढ़ने वाले लड़के-लड़कियों की संख्या बढ़ गई, लेकिन इसके साथ ही धर्म-ज्ञान या ज्ञान-साधना की पूर्ण व्यवस्था अपेक्षित है। हर युवक इस बात का संकल्प करे-'स्वाध्याय अवश्य करूँगा। चाहे घर में समय मिले, न मिले पर, जब तक स्वाध्याय नहीं करूँगा तब तक अन्न, जल नहीं लूँगा।' यदि स्वाध्याय को समाज धर्म बना लें तो काम सरलता से हो सकता है।

- आप में शक्ति नहीं हो, समझने का सामर्थ्य नहीं हो, ऐसी बात मैं नहीं मानता। आप में शक्ति है, सामर्थ्य है, हौंसला है, लेकिन आप अपनी शक्ति का उपयोग जैसा धंधे में करते हैं , वैसा धर्म-ध्यान या स्वाध्याय में नहीं करते। यदि दो-चार बार विलायत घूमना हो जाए तो विदेशी भाषा के शब्द ध्यान में रखोगे। जैसी उधर आपकी तवज्जह है, ऐसी यदि इधर हो जाए तो बेड़ा पार हो सकता है।

- जिस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान के लिए स्वयं अध्ययन करने की जरूरत है, वैसी ही जरूरत आध्यात्मिक ज्ञान के लिए भी है। सीधा सा उदाहरण है। व्याख्यान हो रहा है, तब तक तो आपने हमारी बात सुनी, लेकिन घर जाने के बाद अपने आप पढ़ने का रास्ता किसी ने नहीं बनाया तो ज्ञान के प्रकाश से वंचित रह जायेंगे। जब तक स्वयं पढ़ने का अभ्यास नहीं करेंगे, तब तक ज्ञान का प्रकाश कैसे आयेगा? इसका यह मतलब नहीं है कि

आपको या आपके बच्चों को पढ़ने का समय नहीं मिलता, समय मिलता है, लेकिन कमी इस बात की है कि समय का सदुपयोग नहीं करते। आदमी को खाने के लिए समय मिलता है, कमाई के लिए अथवा आराम के लिए समय मिलता है, व्यवहार के लिए समय मिलता है, तो फिर स्वाध्याय के लिए समय क्यों नहीं मिलता?

- जब तक श्रद्धा का युग था, भक्ति का युग था, विश्वास का युग था, तब तक तो आप नहीं पढ़ते तो भी कोई हर्ज नहीं था। लेकिन अब श्रद्धा का युग चला गया, भक्ति का युग नहीं रहा। अब बुद्धिवाद का युग, विज्ञान का युग आ गया। आपके पिताजी, दादाजी, माताजी में धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा थी और आज आप में कितनी श्रद्धा है? उनको देखकर आपके मन में भी आता होगा कि माताजी बड़ी धर्मात्मा हैं, रोज सामायिक करती हैं, धर्मध्यान करती हैं, उनकी तरह हमें भी करना चाहिए। इस चीज़ को आपका दिमाग क्या मंजूर कर लेता है? आज के दिमाग को ज्ञान चाहिए। यह बिना स्वाध्याय के नहीं मिल सकता। इसलिए यदि अपनी भावी पीढ़ी को और समाज को धर्म के रास्ते पर लाना है, तेजस्वी बनाना है तो स्वाध्याय का घर-घर में व्यापक प्रचार होना चाहिए।
- शृंगाररस से सम्बन्धित उपन्यास, जासूसी-उपन्यास, हास्यरस के उपन्यास नहीं पढ़ने चाहिए। इस तरह के निकम्मे उपन्यास पढ़ने से दिमाग पर उलटा असर पड़ता है। समय और शक्ति का भी अपव्यय होता है। उपन्यास पढ़कर किसी में श्रद्धा भाव आया हो या विनय भाव आया हो, ऐसा नमूना देखने को नहीं मिलता। उपन्यास के बारे में आप विचार करेंगे तो इसमें नफा कम है और टोटा ज्यादा है, यह मानकर चलना चाहिए। इसके बजाय यदि आप आध्यात्मिक साहित्य पढ़ेंगे, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ेंगे, सद्ग्रन्थ पढ़ेंगे, अथवा महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ेंगे तो उनसे केवल मुनाफा ही मुनाफा होगा और घाटा कुछ नहीं होगा।
- जर्मन विद्वान और अमेरिकन विद्वान जैन धर्म के ग्रन्थ पढ़ते हैं। नहीं समझ में आवे तो भी कोशिश करते हैं। वे जैन धर्म के आध्यात्मिक ग्रन्थों का अनुवाद करवा कर भी उनको पढ़ने में अपना समय देते हैं। इसलिए कि वे उनसे ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा रखते हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि आप घर की चीज़ की कीमत नहीं करते हैं, उसका मूल्य नहीं समझते हैं। बाहर के विद्वान तो लंदन में ऋषभ लाइब्रेरी खोल रहे हैं, क्योंकि वे जैन धर्म की कद्र करते हैं। हमारे पुराने ग्रन्थों का संग्रह कर रहे हैं। वे लोग यह समझते हैं कि भारत में जैन साहित्य और बौद्ध साहित्य का अमूल्य खजाना है, जो उनके वहाँ नहीं मिलता। उनके वहाँ ज्ञान का उदय हुआ है, जबकि भारत में ज्ञान का उदय और विकास दोनों हुए हैं। इस तरह से वे लोग हमारे साहित्य की उपयोगिता समझते हैं। लेकिन हम अपने घर में निधि होते हुए भी यदि उसकी उपयोगिता नहीं समझ पायेंगे तो ध्यान रखने की बात है कि विदेशियों के सम्मुख अपने को गर्दन नीची करनी पड़ेगी। मान लीजिए कि आप में से कोई व्यवसाय के कारण विलायत चले गये या घूमने के लिए अमेरिका अथवा जर्मनी चले गये। आप विदेशी से मिले, उनसे हाथ मिलाया तथा किसी तरह से उनको मालूम हो गया कि आप जैन हैं और वे आप से पूछ बैठे कि जैन धर्म में क्या खूबी है? साधना क्या है? तत्त्व क्या है? इन सबके बारे में वे आपसे १५ मिनट के लिए जानकारी चाहेंगे तो क्या आप उनको जानकारी दे सकेंगे? यदि आप स्वयं जानकारी नहीं रखते तो आपको गर्दन नीची करनी पड़ेगी।
- सत्संग और स्वाध्याय जीवन को ऊँचा उठाते हैं। आप जीवन के परम तत्त्व को समझ कर ज्ञान और स्वाध्याय का महत्त्व घर-घर में, मोहल्ले-मोहल्ले में, गाँव-गाँव में फैलाकर जन-मन को जागृत करेंगे तो अज्ञान का अंधकार

दूर होगा।

- अपने धार्मिक ज्ञान को, सैद्धान्तिक ज्ञान को समृद्ध बनाये रखने के लिए हमारे सम्यक्दृष्टि श्रावक-श्राविकाओं का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे नियमित स्वाध्याय द्वारा अपने आप में ज्ञान-बल जगावें। ज्ञान-बल निर्मल होगा तो दर्शन और चारित्र बल अधिक मजबूती के साथ बढ़ेगा।
- जब मन में लौ लग जाती है तो स्वयं जगने वाला भी अंधेरे में नहीं रहता और दूसरों को भी अंधेरे से उजाले में लाने का प्रयास करता है। दीपक दूसरों के लिए भी उजाला करता है और स्वयं को भी प्रकाशित करता है। एक दीपक को देखने के लिए दूसरा दीपक जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस प्रकार दीपक स्वयं के लिए और दूसरों के लिए प्रकाश करता है, उसी प्रकार आपका ज्ञान दीपक आपके भीतर जलेगा तो आपको उद्‌बुद्ध करता हुआ आपके अन्तर को भी प्रकाशित करेगा और अन्य जीवों को भी प्रकाशित करेगा।
- जीवन-निर्वाह की शिक्षा पाया हुआ आज का पढ़ा-लिखा युवक बिगड़े हुए नल को ठीक कर सकता है, बिजली में कहीं कोई खराबी हो गई हो तो उस बिगड़े हुए स्विच आदि को ठीक कर सकता है, मशीन में कोई पुर्जा बिगड़ गया हो तो उसको ठीक बैठा सकता है, पर अपना बिगड़ा दिमाग ठीक नहीं कर सकता। दो भाइयों के बीच में झगड़ा हो गया, उनका जो मधुर सम्बंध था वह सम्बंध बिगड़ गया, तो उस बिगड़े हुए सम्बंध को वह नहीं सुधार सकता। पिता और पुत्र के बीच किसी बात को लेकर नाराजगी हो गई, पिता से रुपया पैसा अथवा अपना हिस्सा मांगने पर मांग पूरी नहीं हुई तो उस समय मन को कैसे सम्हालना, दिमाग के बिगड़े हुए स्नायुओं को कैसे ठीक करना, यह वह नहीं जानता।
- अध्यापक और बालक इस बात को ध्यान में रखें कि केवल पाठ रटकर ही संतोष नहीं करना। इन बच्चों के मन में, मस्तिष्क में, हृदय में इन पाठों के भावों को भरना है।
- क्रोध, मान, माया, लोभ की ज्वालाएँ उठ रही हैं। वे दिल-दिमाग को उत्तप्त कर रही हैं। यदि ज्ञान के जलाशय में गोता लगाया जाए, तो इनको हम शान्त कर सकते हैं। दूसरा लाभ इससे यह है कि हमारे मन का अज्ञान दूर होगा, ज्ञान की कुछ उपलब्धि होगी, कुछ जानकारी होगी। तीसरा लाभ है प्राणी का जो तृष्णा का तूफान है, वह तूफान भी जरा हल्का होगा और तृष्णा का तूफान हल्का हुआ तो व्यक्ति में जो अशान्ति है, घट-बढ़ है, मन में बेचैनी है, आकुलता, व्याकुलता है वह दूर होगी।
- स्वाध्याय से हमारा ज्ञान और दर्शन निर्मल भी होता है और दृढ़ भी बनता है और जब हमारा ज्ञान एवं दर्शन शुद्ध होगा, निर्मल होगा तो चारित्र में भी आगे बढ़ना होता रहेगा और अन्ततोगत्वा हम कर्मों को काटकर मुक्ति के अधिकारी बन जायेंगे।
- स्थानांग सूत्र के पांचवें ठाणे (स्थान) सूत्र ४६८ में प्रभु ने फरमाया- "पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा" अर्थात् पाँच कारणों से सूत्र का वाचन करें। बहुत गहराई से चिन्तन सामने रखा-"तं जहा (१) संगहट्ठयाए (२) उवग्गहणट्ठयाए (३) णिज्जरणट्ठयाए (४) सुत्ते वा मे पज्जवयाए भविस्सइ (५) सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठाए।" अर्थात् पाँच कारणों से गुरु शिष्य को वाचना देते हैं- (१) संग्रह–सूत्र का ज्ञान कराने के लिए, (२) उपग्रह–उपकार करने के लिए (३) निर्जरा के लिए (४) सूत्रज्ञान को दृढ़ करने के लिए (५) सूत्र का विच्छेद न होने देने के लिए।
- इतिहास बतलाता है कि हमारा विशाल श्रुतज्ञान विच्छिन्न क्यों हुआ। शास्त्र का वाचन, पठन और परावर्तन होता रहता है तो श्रुतहानि नहीं होती। दीर्घकालीन दुष्काल के समय जब दुर्लभ भिक्षा की गवेषणा में श्रमणों का

श्रुत का वाचन तथा परावर्तन छूट गया तब श्रुतज्ञान की हानि हुई। आर्य भद्रबाहु के पश्चात् हमारा बहुत विशाल श्रुतज्ञान इतना क्षीण हो गया कि अन्तिम वाचना के समय तो ११ अंगसूत्र भी पूर्ण रूप में नहीं रह पाये। इसका कारण शास्त्र की वाचना और परावर्तन का अभाव ही तो रहा है। विपाकसूत्र ग्यारहवां अंग शास्त्र जो काफी बड़ा था, वह सबसे छोटा रह गया। इस श्रुतहानि का कारण शास्त्र की वाचना का अल्प होना ही है।

- स्वाध्याय पाँच प्रकार के हैं, जैसे- (१) वाचना, (२) प्रतिपृच्छा, (३) परिवर्तना, (४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा। सर्वप्रथम वाचना से ही स्वाध्याय का प्रारम्भ होता है। गुरुदेव से स्वयं शास्त्र का पाठ लेना, सुनना अथवा पढ़ना वाचना है। वाचना के पश्चात् शंकास्पद स्थल या भूले हुए पाठ को फिर पूछना प्रतिपृच्छा रूप स्वाध्याय है। तीसरा, पढ़े हुए पाठ का पुनरावर्तन करना परिवर्तना स्वाध्याय है। चौथा है अनुप्रेक्षा। इसमें श्रुत या पठित तत्त्व का चिन्तन करना–गहराई से विचार करना अनुप्रेक्षा है। चिन्तन के पश्चात् किसी दूसरे को उपदेश देना या समझाना धर्मकथा रूप स्वाध्याय है।
- दशवैकालिक सूत्र के नवम अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में स्वाध्याय से होने वाले चार प्रकार के लाभों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है–(१) शास्त्र पढ़ने से श्रुतज्ञान का अपूर्व लाभ होगा, इसलिए मुझे शास्त्र पढ़ना चाहिए। (२) चंचल चित्त एकाग्र होगा इसलिए पढ़ना चाहिए। (३) सूत्र का अध्ययन करते समय अपने मन को स्थिर कर सकूँगा इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए। (४) स्वयं ज्ञानभाव में स्थिर होकर दूसरे की अस्थिर आत्मा को स्थिर जमा सकूँगा, उसके संदिग्ध मन को धर्म में स्थिर कर सकूँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार श्रुत का पठन-पाठन, चिन्तन-मनन भी चित्त-समाधि का एक प्रमुख कारण है।
- स्थानांग सूत्र (५/४६८) का मूल पाठ इस प्रकार है:-पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खेज्जा, तं जहा-णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीत्ति कट्टु। अर्थात्-पाँच कारणों से शास्त्र का शिक्षण लेना चाहिए , यथा (१) ज्ञानवृद्धि के लिए (२) दर्शन शुद्धि के लिए (३) चारित्रशुद्धि के लिए (४) विग्रह मिटाने के लिए और (५) पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए।
- जीवन-निर्माण एवं आत्मोद्धार के लिए, समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण के लिए स्वाध्याय परमावश्यक है। वस्तुतः स्वाध्याय भौतिक एवं आध्यात्मिक दुःखों को समूल नष्ट करने का एक अमोघ अस्त्र है। अतः सब भाई-बहनों और स्वाध्यायियों को प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करना चाहिए। चित्त बड़ा चंचल है। 'चित्त चित्तौड़े, मन मालवे, हियो हाड़ोती जाय' इस लोकोक्ति के अनुसार चित्त की चंचलता घट-घट के अनुभव की बात है। यदि चित्त की चंचलता का निरोध करके साधना करनी है तो शास्त्रों का अध्ययन करें, स्वाध्याय करें।
- स्वाध्याय के बिना त्यागी-विरागी उच्चकोटि के साधु और श्रावक नहीं मिल सकते। स्वाध्याय से ही चतुर्विध संघ में ज्योति आ सकती है।
- स्वाध्याय करने से एक बड़ा फल तो यह होगा कि उससे बुद्धि निर्मल हो जाएगी। घर-घर में जो लड़ाई-झगड़े, कलह-क्लेश और वैर-विरोध चल रहे हैं, उनकी दवा स्वाध्याय से ही मिलने वाली है। बुद्धि निर्मल होने से पाप नष्ट होंगे, पुण्य का बंध होगा, दया-कोमलता का उद्गम होगा एवं निर्दोष दान देने की भावना जगेगी।
- स्वाध्याय केवल दूसरों के ही कल्याण हेतु, दूसरों के निर्माण हेतु या दूसरों को ही सुख प्रदान करने हेतु नहीं है, अपितु पहले वह स्व-अनुशासन, स्व- कल्याण और स्व-निर्माण की धारा लाकर फिर परहित में, समाजहित में, विश्वहित में साधन बनने वाली एक आंतरिक प्रबल शक्ति है। स्वाध्याय 'स्व' में निहित अमोघ शक्ति है।

- स्वाध्याय से ही आप आत्म-निर्माण और समाज-निर्माण के साथ जिनशासन को समुन्नत करने में समर्थ होंगे।
- जो स्वाध्याय ज्ञानावरणीय कर्म को खपाने वाला, नष्ट करने वाला है, जिस स्वाध्याय से स्वयं प्रभु महावीर तथा सभी तीर्थंकरों ने और अनन्तान्त साधकों ने ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म को मूलतः नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनाथी मुनि जैसे सम्राट् श्रेणिक के भी पूज्य बन गये, वह स्वाध्याय हम सबके लिए परम कल्याणकारी अमोघ शक्ति है।
- अगर आप अपने आभ्यन्तर में रही अमोघ शक्ति, जो प्रच्छन्न रूप में विद्यमान है, उसे पहचानना चाहते हैं, प्रकट करना चाहते हैं तो शुद्ध और एकाग्रमन से नित्यप्रति नियमित रूप से स्वाध्याय करिये। मन के कलुष को, क्लेश को मिटाने में, समाज में व्याप्त बुराइयों, बीमारियों को समाप्त करने में, मानसिक दुःखों को मूलतः विनष्ट करने में और आत्मा पर लगे कर्ममैल को पूर्णतः ध्वस्त कर आत्मा को सच्चिदानंद शुद्ध स्वरूप प्रदान करने में सक्षम अमोघ शक्ति स्वाध्याय ही है। अतः आप लोग स्व-पर कल्याणकारी स्वाध्याय का अलख जगाइये।
- स्वाध्याय के द्वारा प्रौढ़जन भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए एकाग्रता, तन्मयता और दृढ़ संकल्प के साथ अटूट लगन की भी आवश्यकता है। सत्प्रवृत्ति में अनुराग और दुष्प्रवृत्ति के त्याग के लिए ज्ञान का होना अत्यावश्यक है। राम की तरह आचरण करना या रावण की तरह, यह ज्ञान के बिना नहीं जाना जा सकता है।
- भगवान् महावीर ने उत्तम शास्त्रों का लक्षण यह बतलाया है कि **'जं सुच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं।'** जिस शास्त्र को पढ़कर या सुनकर मन को सुप्रेरणा मिले तथा क्षमा, तप, अहिंसा आदि की भावना बलवती हो वह उत्तम शास्त्र है। जैसे मुझ में लगे कांटे मेरे लिए दुःखदायक हैं वैसे ही दूसरों के लिए भी दुःखद होंगे, ऐसी भावना या उत्तम वृत्तियाँ जिसके अध्ययन से जगे, वही उत्तम शास्त्र है और ऐसे शास्त्रों के अध्ययन से ही मनुष्य में विमल ज्ञान चमकता है और वह जीवन को उच्चतम बनाता है।
- यदि सामूहिक स्वाध्याय का रिवाज होगा, तो मन की दुर्बलता दूर भगेगी और करने योग्य शुभ कर्मों में प्रवृत्ति एवं दृढ़ता जोर पकड़ती जाएगी।
- सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र से ही व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण कर सकता है। स्वाध्याय ही इन सबका मूल है। इसके साधन से ज्ञान, दर्शन और चारित्र निर्मल रखा जा सकता है।
- धर्मशास्त्र और अच्छे ग्रन्थ, जिनसे जीवन में तप, क्षमा और अहिंसा की ज्योति जगे और योग-जीवन उत्तरोत्तर आगे बढ़े तथा भोग-जीवन घटे, उन ग्रन्थों को मर्यादा और विधि के साथ पढ़ना व पढ़ाना यही स्वाध्याय है। हाँ, इन ग्रन्थों को पढ़ने के साथ-साथ पढ़ाना भी स्वाध्याय के अर्थ में सम्मिलित किया गया है।
- यदि प्रारम्भ में किसी शास्त्र का पठन-पाठन कर रहे हैं तो कुछ व्रत ग्रहण करके पठन-पाठन करना चाहिये। यदि पहले-पहल आचारांग, सूत्रकृतांग अथवा अन्य किसी आगम का पठन करना हो तो किसी मुनिराज अथवा शास्त्रों के विशेषज्ञ के चरणों में बैठ कर व्रतग्रहणपूर्वक पढ़ना प्रारम्भ करना चाहिये। यदि शास्त्र से भिन्न किसी धार्मिक पुस्तक का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं तो इतना आदर तो होना ही चाहिये कि अर्हत् भगवान् और गुरुदेव को नमस्कार कर, विशुद्ध स्थान में बैठ कर पढ़ना प्रारम्भ करें। यदि शरीर में बैठे रहने की शक्ति हो तो स्थिर आसन से बैठ कर ही धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना चाहिये। जिस प्रकार उपन्यासों, कथा-कहानियों की पुस्तकों को सोते, उठते-बैठते, विविध आसनों से लेटे अथवा बैठे रह कर पढ़ते हैं, उस प्रकार कभी नहीं पढ़ना चाहिये। कुछ व्यक्ति मर्यादा की इन बातों से घबरा कर अथवा वीतराग-वाणी का महत्त्व न समझ पाने के कारण शास्त्रों का

पठन ही नहीं करते, जो उचित नहीं।

- आप सामायिक में माला फेरिये, स्तवन पढ़िये, आपके मस्तिष्क में उतनी तल्लीनता नहीं आ पायेगी, जितनी कि स्वाध्याय में आती है। माला में बैठने वाला व्यक्ति झुक सकता है, उसको निद्रा का झोंका आ सकता है, माला जपते-जपते आर्तध्यान भी आ सकता है। दुकान के काम-काज में मन चला गया, किसी मुकदमे का विचार आ गया तो आपका मन उसकी ओर जा सकता है और जाप करते-करते उस विचार-प्रवाह में बह कर प्रभु से प्रार्थना करने लग सकते हैं कि हे प्रभो ! अब तो आपकी ही शरण है ! इस प्रकार माला जपते समय आपको चिन्ता भी हो सकती है, आपकी मनोवृत्तियाँ अन्यत्र भी जा सकती हैं। परन्तु स्वाध्याय में काययोग, वचनयोग और मनोयोग—इन तीनों प्रकार के योगों का उपयोग रहेगा। वस्तुतः स्वाध्याय करते समय मन-मस्तिष्क, जिह्वा और आँखों का उपयोग भी जोड़ना पड़ता है।
- स्वाध्याय करते समय आपकी आँखें पुस्तक पर होंगी। यदि थोड़ी सी भी आँख इधर-उधर घूम गई तो पुस्तक की पंक्ति छूट जायेगी और आपका स्वाध्याय का चलता हुआ क्रम टूट जायेगा। काययोग, वचनयोग और मनोयोग इन तीनों योगों के संयोजन से ही स्वाध्याय हो सकता है। इसीलिये ज्ञानियों ने कहा है कि स्वाध्याय करते समय आसन स्थिर, वाणी नियंत्रित तथा मन एकाग्र होता है। मन को एकाग्र करने के लिये स्थिर आसन से बैठना अनिवार्य हो जाता है। स्वाध्याय में मन, वचन और काय इन तीनों का योग सुसाध्य है।
- राग-द्वेष की जटिलगांठ जब तक उदय में है और जब तक वह नहीं टूटती तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा। उस रागद्वेष की गांठ के तोड़ने अथवा खोलने को ही ग्रन्थिभेद कहते हैं। विषय-कषायों के ग्रन्थिभेद के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः ग्रन्थिभेद का सबसे बड़ा साधन भी स्वाध्याय ही है।
- स्वाध्याय वह प्रक्रिया है, जो हमारी मनोभूमि के साथ शास्त्रीय वाणी के द्वारा अज्ञान का अन्धकार हटाने एवं ज्ञान की ज्योति जगाने के लिये घर्षण का काम करती है। वह एक साधन है, जिससे हम अपने मन पर आये हुए, आत्मा पर लगे हुए अज्ञान के परदे को दूर कर सकते हैं।
- देश एवं समाज के सामने दृढ़ता से खड़ा होना है, तो स्वाध्याय के संस्कार घर-घर में प्रारंभ कीजिए। अपने बच्चों में स्वाध्याय के संस्कार डालिये। स्वाध्याय में आप भी प्रवृत्त होइए। स्वाध्याय साधु एवं श्रावक का सामान्य धर्म है। सामायिक, उपवास, यम, नियम आदि विशेष धर्म हैं, पर स्वाध्याय सामान्य धर्म है। जैसे बिना छाना पानी नहीं पीना, जाप करना आदि समाज-धर्म है। अगर साधु-साध्वी विराजते हैं, तो गुरु-दर्शन प्रतिदिन करना समाज धर्म है। इन्हें जैसे आपने समाज-धर्म मान रखा है, उसी तरह स्वाध्याय को भी समाज-धर्म का रूप दें। बच्चे-बूढ़े, युवक-युवतियाँ,बालक-बालिकाएँ, सभी नित्य-नियभ के तौर पर इस स्वाध्याय को स्वीकार करें।

■ स्वाध्याय का लक्ष्य

- आप लोग स्वाध्याय के अन्तरंग और बहिरंग इन दोनों लक्ष्यों को लेकर चलें। अन्तरंग लक्ष्य स्वाध्याय का यह है कि जीवन को दूषित करने वाले मिथ्या तत्त्वों से, आत्मा को कलुषित करने वाले सभी प्रकार के कार्यों एवं विचारों से अपने आपको दूर रखना तथा अन्तर्मन को शुद्ध चिन्तन, शुभ एवं परम कल्याणकारी कार्यों में निरत रखना। इस आन्तरिक लक्ष्य में प्रतिपल सजग रहने की आवश्यकता है। स्वाध्याय का बहिरंग लक्ष्य है समाज-निर्माण, समाज-सेवा और शासन-सेवा का कार्य करना। इस प्रकार स्वाध्याय के दो लक्ष्य हुए—अन्तरंग

लक्ष्य और बहिरंग लक्ष्य। मोटे रूप में स्वाध्याय का तीसरा लक्ष्य बताया गया है कि समाज के हजारों बंधु पर्वाधिराज पर्युषण के दिनों में धर्माराधन से वंचित रहते हैं, उनके वहाँ पर्वाराधन के दिनों में स्वाध्यायी बंधुओं को भेजकर उन्हें धर्माराधन करवाना। स्वाध्याय संघ द्वारा प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर पर्वाराधन के दिनों में धर्माराधन करवाने के लिए स्वाध्यायी भेजे जाते हैं। तथापि स्वाध्यायियों की संख्या आवश्यकता की अपेक्षा अति स्वल्प होने के कारण अनेक स्थानों के हजारों भाई इस लाभ से वंचित रह जाते हैं। इस कमी को पूरा करना स्वाध्याय का तीसरा लक्ष्य है।

■ स्वाध्याय-संघ

- वर्तमान में हमारी साधु संख्या कम पड़ रही है। त्याग-तप की तेजस्विता मंद हो रही है। स्वाध्याय-संघ को खड़ा करने का उद्देश्य साधु-संघ को बल देना है। इसी दृष्टि से स्वाध्याय-संघ नामक इस संस्था का जन्म हुआ।
- हमारे गाँव तो हजारों हैं, समाज के सदस्यों की संख्या लाखों हैं, पर साधु-साध्वियों की संख्या इनी-गिनी रह गयी हैं। उन इने-गिनों में भी, जो समाज को अपनी ओर खींच सकें, ऐसे साधु-साध्वी अंगुलियों के पोर पर गिनने योग्य रह गये हैं। तो फिर भगवान महावीर के शासन के अस्तित्व को किस प्रकार सुदृढ़ और सशक्त रखना, यह आवश्यकता हो गई। इस आवश्यकता के बढ़ते रूप में मन को चिन्तन करने का अवसर आया कि यदि जल्दी ही इसका उपाय नहीं किया गया तो समाज का रक्षण नहीं हो सकेगा।
- आज स्वाध्याय संघ के सदस्यों की संख्या ६०० है। इससे और अधिक संख्या हो जाए तो मैं केवल संख्या के बढ़ने मात्र से ही प्रसन्नता प्रकट करने वाला नहीं हूँ। एक ही आवाज पर, एक इंगित पर शासन-सेवा में पिल पड़ने, जुट जाने और समर्पित होने की भावना जितनी अधिक मात्रा में होगी उतनी ही मात्रा में मैं स्वाध्यायी बंधुओं का शासन हित में अधिक योगदान मानूँगा। संख्या तो अधिकाधिक होती जाए और एक ही आवाज पर सुसंगठित एवं अनुशासित रूप में शासन हित के कार्य करने की भावना नहीं हो तो इसे इस संस्था की सफलता नहीं माना जा सकता। प्रत्येक स्वाध्यायी के मन में शासन हित व समाज सेवा के कार्यों में सदा तत्पर रहने की भावना और लगन होना परम आवश्यक है।

■ स्वाध्यायी

- प्रत्येक स्वाध्यायी कंधे से कंधा मिलाकर अग्रसर होता रहेगा तो वह अपने जीवन का, समाज का और राष्ट्र का नवनिर्माण करने में सफल होगा।
- मैं किसी भी स्वाध्यायी में कोई भी व्यसन देखना नहीं चाहूँगा। यदि किसी स्वाध्यायी में कोई व्यसन होगा तो वह उसके जीवन के साथ-साथ स्वाध्याय संघ जैसी पवित्र संस्था पर भी धब्बा होगा। प्रत्येक स्वाध्यायी का जीवन निर्व्यसनी होना चाहिए, कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने वाला होना चाहिए।
- प्रत्येक स्वाध्यायी पूर्ण निष्ठा के साथ समाज-सेवा के कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होता रहे। कर्त्तव्यपरायणता के साथ कार्य करता रहे। अपने कार्य के फल की इच्छा नहीं करे। महिमा-पूजा और मान-सम्मान को विषवत् समझे। कम से कम स्वाध्याय संघ के, समाज सेवा के, जिनशासन की सेवा के अर्थात् स्व-पर कल्याण के इस पुनीत कार्य को तो किसी लौकिक फलप्राप्ति की इच्छा रखे बिना करता रहे।

- प्रत्येक स्वाध्यायी यही सोचे कि शासन-सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है, मेरा अधिकार तो केवल निरन्तर कार्य करते रहने का ही है, न कि फल की कामना करने का। मेरा अभिनंदन नहीं किया गया, मैंने इतना कार्य किया, फिर भी मुझे कोई सम्मान या कोई पद आदि नहीं मिला। ऐसे किसी भी प्रकार के फल की इच्छा करना जहर है, अतः इससे बचते रहने का हर स्वाध्यायी ध्यान रखेगा।
- षडावश्यकों को अपने जीवन में ढालकर प्रत्येक स्वाध्यायी अपने आपको चमकाते हुए दृढ़ता से चलता रहा तो कल्याण मार्ग में आगे प्रगति कर सकेगा। उपर्युक्त बातों को चिन्तन के रूप में आप सोंचेगे, समझेंगे और कार्य रूप में परिणत करेंगे तो आपका, समाज का और विश्व का, सभी का कल्याण होगा।
- देश और देशवासियों की रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता होती है। यह शस्त्रधारी सेना बाह्य शत्रुओं से ही रक्षा कर सकती है, आन्तरिक शत्रुओं से नहीं। आन्तरिक शत्रु हैं- अनाचार, अनैतिकता, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, कलह आदि। इन आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा के लिए, इन्हें दूर करने के लिए आवश्यकता है-शास्त्रधारी (श्रुतज्ञानी) सेना की।
- शास्त्रधारी सैनिक सत् शास्त्रों का अध्ययन करके, ज्ञान और चारित्र पक्ष को हृदय में धारण करके, स्वयं अपने जीवन की अनैतिकताओं को निकाल बाहर फेंकते हैं, साथ ही आन्तरिक शत्रुओं से मुक्त होने में अन्य लोगों के भी सहायक बनते हैं। इसलिए आज संसार को अनाचार, अनैतिकता, ईर्ष्या-द्वेष, कलह आदि की समाप्ति के लिए शस्त्रधारी नहीं, शास्त्रधारी सैनिकों की आवश्यकता है।
- जो स्वाध्यायी पठन-पाठन में प्रवेश पा चुके हैं, वे यह न सोचें कि वे पूरे स्वाध्यायी बन गये हैं। जिस तरह पहली कक्षा में पढ़ने वाला भी विद्यार्थी कहलाता है और जब तक स्नातक नहीं हो जाता तब तक भी विद्यार्थी ही कहलाता है। स्नातक बन जाने के पश्चात् ही वह कहता है कि उसने पढ़ाई पूरी कर ली है। उसी प्रकार आप भी स्वाध्याय के निरन्तर अभ्यास द्वारा अज्ञान को मिटाते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहेंगे तभी पूरे स्वाध्यायी कहला सकते हैं। इसी लक्ष्य को लेकर आपको आगे बढ़ना है।
- यह प्रमोद का विषय है कि हमारे अनेक बंधु स्वाध्याय में, स्वाध्याय शिक्षण ग्रहण करने में प्रवृत्त हो गये हैं। जो नहीं हुए हैं जिनके मन में जिन शासन के प्रति प्रेम है, वीतरागवाणी के प्रति श्रद्धासिक्त स्नेह है, वे स्वाध्याय में प्रवृत हों।
- कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि स्थानक में झाडू स्वयं स्वाध्यायी भाइयों को लगाना पड़ता है और घर-घर पर जाकर भाइयों को बुलाना पड़ता है। यदि स्वाध्यायी भाई घबरा जायेंगे तो काम नहीं चलेगा, कहीं भोजन पकाने वाला नहीं मिलता, सार-संभाल करने वाला नहीं मिलता तो यह नहीं सोचे कि मैं यहाँ पर क्या रहूँ, ऐसा सोच लिया तो सेवा नहीं होगी। सेवा नहीं होगी तो सच्चे स्वाध्यायियों के नम्बर में पास नहीं होंगे।
- स्वाध्यायी को किसी के दोष नहीं देखना है, किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं जगानी है, किसी की टीका-टिप्पणी नहीं करनी है। अपने नियत कार्य में निरन्तर प्रगति करते हुए निष्ठा के साथ जिनशासन और समाज की सेवा को अपना कर्त्तव्य समझ कर उत्तरोत्तर आगे बढ़ना है। कोई भी स्वाध्यायी हो, वह स्वाध्यायी आपका सहधर्मी भाई है। किसी स्वाध्याय-संघ का स्वाध्यायी हो, वह आपका स्वाध्यायी बंधु है। प्रत्येक जैन आपका जैन भाई है। इसके अलावा जो दूसरे समाज के बंधु हैं, वे भी आपके भाई हैं। अतः किसी की आलोचना में, टीका-टिप्पणी में पड़कर आपको अपने समय का दुरुपयोग नहीं करना है।

■ हिंसा का विरोध

- अहिंसा के प्रेमी यदि यह सोचकर चुप रह जाएं कि सरकार कत्लखाना खोल रही है। उसके सामने हमारी क्या चलेगी? तो यह उचित नहीं है। प्रजातन्त्री सरकार प्रजा की इच्छा से चलती है और उसे चलना चाहिए । यदि प्रजा की आवाज में बल होगा तो सरकार को अपना निर्णय बदलना पड़ेगा। कतिपय अहिंसा प्रेमियों ने कत्लखाने के खिलाफ आवाज उठाई है और वे आवाज को बुलन्द करना चाहते हैं। केन्द्र में भी विरोध हुआ है और देश के दूसरे-दूसरे हिस्सों में भी। अहिंसा प्रेमियों का चाहे वे किसी भी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी हों, कर्त्तव्य हो जाता है कि वे संगठित होकर और डटकर हिंसा का विरोध करें। उस विरोध को सरकार के कानों तक पहुंचावें। सामूहिक मिलन के अवसर भी इसके लिए उपयुक्त हो सकते हैं। अगर आपकी यह आवाज कि आप देशवासी ऐसे हिंसाकृत्यों को देश के लिए अभिशाप समझते हैं, मानवता के लिए अभिशाप समझते हैं, बुलन्द होकर सरकार के कानों तक आवाज पहुँचायेंगे तो सरकार को विवश होकर सोचना पड़ेगा।
- कुछ लोग सरकार के इस प्रकार के कृत्यों का विरोध करना 'विरुद्धरज्जाइक्कमे' अर्थात् राज्य के विरुद्ध कार्य करना समझते हैं, किन्तु यह भ्रम मात्र है। प्रजाहित की दृष्टि से राज्य ने जो मर्यादायें बनाई हैं, उनका अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर अवैधानिक रूप से उल्लंघन करना दोष है। भारत-चीन संघर्ष में भारतीय हितों के विरुद्ध चीन का साथ देना और इस प्रकार देश द्रोह करना दोष है, मगर भारतीय संविधान के अनुसार जब आपको सरकार के किसी प्रस्ताव या कानून का विरोध करने का अधिकार प्राप्त है और आप अपने उस अधिकार का सदुपयोग करते हैं, देश, समाज और संस्कृति की रक्षा की पवित्र भावना से विरोध करते हैं तो आप 'विरुद्धरज्जाइकम्मे' दोष के भागी नहीं होते। यही नहीं, जिस विधान को आप देश हित के, धर्म के व संस्कृति के विरुद्ध समझते हैं और जिसका विरोध करने के आप अधिकारी हैं, उसका भी अगर आप विरोध नहीं करते और उसे चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं तो यह आपकी दुर्बलता है, आप के लिए कलंक की बात है।

तृतीय खण्ड

व्यक्तित्व खण्ड

प्रस्तुत खण्ड दो स्तबकों में विभक्त है– 1. संस्मरणों में झलकता व्यक्तित्व 2. काव्यांजलि में निलीन व्यक्तित्व। प्रथम स्तबक गद्य में है तथा द्वितीय स्तबक पद्य में है।

संस्मरण लेखक की चेतना से सीधे जुड़े रहते हैं, जिनका अवगाहन कर पाठक गुणसमुद्र आचार्यप्रवर की विशेषताओं का स्वयं आकलन कर सकता है। उच्चकोटि के चारित्रनिष्ठ साधक संत, गहनविचारक एवं युगमनीषी महापुरुष के निस्पृहता, अप्रमत्तता, उदारता, करुणाभाव, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव, वचन–सिद्धि, भावि–द्रष्टृत्व, चारित्र–पालन के प्रति सजगता, आत्मीयता, असीम आत्मशक्ति, विद्वत्ता, पात्रता की परख, दूरदर्शिता आदि अनेक गुणों का इन संस्मरणों से बोध होता है।

द्वितीय स्तबक में काव्यमय गुणगान है, जिसमें आचार्यप्रवर का साधनाशील एवं युगप्रभावक व्यक्तित्व उजागर हुआ है।

इन स्तबकों का अनुशीलन करने से यह स्वतः बोध होता है कि आचार्यप्रवर एक महान् असाधारण संत की विशेषताओं से ओत–प्रोत थे।

तृतीय-खण्ड

प्रथम स्तबक

संस्मरणों में झलकता व्यक्तित्त्व

(आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. पर सन्त-प्रवरों एवं श्रावकगण के प्रेरक संस्मरण)

अध्यात्मयोगी युगशास्ता गुरुदेव

• आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

गगन-मण्डल में उदीयमान सूर्य का परिचय नहीं दिया जाता। उसका प्रकाश और उसकी ऊष्मा ही उसके परिचायक हैं। फूल का परिचय उसका विकसित रूप और सुगंध है, जिस पर भ्रमर-दल स्वतः दौड़े हुए चले आते हैं। पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन्त का भी क्या परिचय दूँ, वे श्रमण संस्कृति के अमरगायक, जैन संस्कृति के उन्नायक, युग को सामायिक-स्वाध्याय का अमर संदेश देने वाले महान प्रतापी आचार्य, इतिहास के अन्वेषण के साथ इतिहास बनाने वाले आदर्श महापुरुष एवं यशस्वी सन्त थे।

आपके जीवन के कण-कण में प्रसिद्धि नहीं, सिद्धि का भाव समाया रहा। आपकी साधना का, प्रवचन-प्रभावना एवं वीतराग-वाणी के उपदेशों का लक्ष्य प्रभाव नहीं स्वभाव में लाने का रहा। आपके जीवन में विषमता नहीं समता का साम्राज्य रहा। आपकी अमर आत्म-साधना , सादगी, सरलता व सेवा का सम्मिलित संयोग रही। सम्प्रदाय में रहते भी असाम्प्रदायिक रहकर आप सबको धर्म-मार्ग में आगे बढ़ते रहने की सद्प्रेरणा करते रहे। क्रियानिष्ठ होकर भी आपमें अहंकार की नहीं, आत्म-साक्षात्कार की भावना रही।

वे महामानव धर्म और दर्शन के ज्ञायक, सभ्यता और संस्कृति के रक्षक, न्याय और नीति के पालक , आगम-आज्ञा के आराधक, सत्य और शिव के सजग साधक, धर्म की आन-बान और शान के चतुर चितेरे, देशकाल की परिस्थितियों के प्रबुद्ध विचारक रहे। मन के श्याम पक्ष को आराधना से उज्ज्वल बनाने वाले, सामायिक-साधना रूप मन्त्र के दाता एवं अज्ञानान्धकार को हटाने वाले स्वाध्याय दीप के प्रद्योतक रहे। आपके जीवन में स्वार्थ का कोई संकेत नहीं, परोक्ष-प्रत्यक्ष में कोई अन्तर नहीं, प्रदर्शन-आडम्बर नहीं , लोभ-लालच नहीं, मात्र आत्मा को परमात्मा बनाने की टीस, साधक से सिद्ध बनाने की अन्तःकामना, समाज को ऊपर उठाने की एवं सुधार का दिशा बोध देने की ही अन्तर गूँज रही।

इस युग-पुरुष ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपरूप मोक्ष-मार्ग के बल पर चतुर्विध संघ को आगे बढ़ने का संदेश दिया और निर्भीकता का , सच्चाई का , वीतरागता का, सिद्धान्त पर दृढ़ रहने का, मर्यादाओं एवं नियम-पालन का नूतन पाठ पढ़ाया। वे स्वयं सिद्धान्त पर अटल रहे। लाउडस्पीकर के निषेध, सामाचारी के पालन और संवत्सरी आदि के सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे। जीवन में कभी हिम्मत नहीं हारी। छोटे से संघ में भी मर्यादा तोड़ने वालों को निकालते कभी हिचकिचाये नहीं।

युगशास्ता गुरुदेव के उच्च साधक व्यक्तित्व व कृतित्व के समक्ष बिना किसी भेद के जैन जैनेतर सभी श्रद्धावनत रहे। आपने संघ में समता के मेरुदण्ड को पुष्ट किया व स्वाध्याय के घोष का शंखनाद किया। आपकी इन प्रेरणाओं को आत्मोत्थान व संघोन्नति का अनिवार्य साधन मानते हुए सभी ने स्वीकारा है और उसका मूर्तरूप अन्य परंपराओं द्वारा भी स्वाध्याय संघों की स्थापना के रूप में प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहा है। आपके रोम-रोम में प्रेम, एकता, अनुराग संचरित होता रहा तथा अंतस् में करुणा का अविरल स्रोत निरंतर प्रवाहमान रहा। भगवंत की वाणी में ओज, हृदय में पवित्रता, उदारता एवं साधना में उत्कर्षता रही। आपका बाह्य व्यक्तित्व जितना नयनाभिराम था, उससे भी कई गुणा अधिक भीतर का जीवन मनोभिराम रहा।

आपके जीवन में सागर सी गंभीरता, चन्द्र सी शीतलता, सूर्य सी तेजस्विता, पर्वत सी अडोलता का सामंजस्य एक साथ देखने को मिला। आपकी वाणी, विचार एवं व्यवहार में सरलता का गुण एक अद्भुत विशेषता रही। जीवन में कहीं छिपाव नहीं, दुराव नहीं। सरलता, मधुरता एवं निष्कपटता का अद्भुत संगम था आपका जीवन।

गुरुदेव ने साधक जीवन में अहंकार को काला नाग मानते हुए उत्कृष्ट साधना के स्वरूप को स्वीकारा, क्योंकि जिसको काले नाग ने डस लिया हो वह साधना की सुधा पी नहीं सकता। गुरुदेव दया के देवता रहे। दया साधना का मक्खन है, मन का माधुर्य है। दया की रस धारा हृदय को उर्वर बनाती है। जप-साधना आधि-व्याधि-उपाधि को समाप्त कर समाधि प्रदान करने वाली है, अत: आपने भोजन की अपेक्षा भजन को अधिक महत्त्व दिया। मौन-साधना आपकी साधना का प्रमुख एवं अभिन्न अंग रहा।

शिक्षा की अनिवार्यता को महत्त्व प्रदान करते हुए आपने फरमाया कि जीवन में शिक्षा के अभाव में साधना अपूर्ण मानी गई है। शिक्षा का वही महत्त्व है जो शरीर में प्राण , मन व आत्मा का है। जीवन में चमक-दमक , गति-प्रगति, व्यवहार-विचार सब शिक्षा से ही सुन्दर होते हैं। संसार की सब उपलब्धियों में शिक्षा सबसे बढ़कर है। दीक्षा के साथ भी शिक्षा अनिवार्य है। यही कारण है कि आप शिष्य-शिष्याओं एवं श्रावक-श्राविकाओं को स्वाध्याय-साधना रूप शिक्षा की अनमोल प्रेरणा देते रहे।

आचार्य भगवन्त का दृढ़ मंतव्य रहा कि जीवन निंदा से नहीं निर्माण से निखरता है। निंदक भी कभी कुछ दे जाता है। जैसा कि कवि का कथन है - "निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय। बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥" अत: आपने निंदक को भी अपना उपकारी बताया। स्तुति वालों से कहा —'तुम्हारा मेरे पर स्नेह है, अत: तुम राग से कहते हो।' तो विरोध वालों से कहा — 'विरोध मेरे लिए विनोद है।' अनुकूल - प्रतिकूल हर स्थिति में गुलाब की तरह मुस्कराते रहना, यही समता-साधना की सही कला है, और आप उसी समता-साधना के साधक शिरोमणि रहे ।

सं. २०४१ के जोधपुर चातुर्मास में क्षमापना के उपलक्ष्य में युवाचार्य महाप्रज्ञ रेनबो हाउस पधारे तब उन्होंने कहा था -"लोग कहते हैं आप अल्पभाषी हैं, कम बोलते हैं। पर कहाँ हैं आप अल्प भाषी ? आप बोलते हैं, बहुत बोलते हैं। आपका जीवन बोलता है, संयम बोलता है।"

अस्वस्थता की स्थिति देखकर सन्तों ने सहारा लेकर विराजने का निवेदन किया तो आचार्य भगवंत बोले- "धर्म का सहारा ले रखा है।" यही बात पाली में विदुषी महासती श्री मैना सुन्दरी जी के कहने पर भगवंत ने कही थी - "आपने मेरे गुरुदेव को नहीं देखा, नहीं तो ऐसा नहीं कहती। "

आप संघ में रहे तब भी एवं बाहर रहे तब भी सभी महापुरुषों का आपके प्रति समान आदर भाव रहा। आचार्य श्री आत्माराम जी म. आपके लिये 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' पद का प्रयोग करते थे। आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. समय-समय पर समस्या का समाधान मंगाते थे। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. स्वयं को साहित्य के क्षेत्र में लगाने में आपका उपकार मानते थे। प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म. आपको विचारक एवं सहायक मानते थे और प्रत्येक स्थिति में साथ रहे। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. ने आपको सिद्धांतवादी एवं परम्परावादी माना।

आप गुणप्रशंसक व गुणग्राहक रहे तथा परनिंदा से सदैव दूर रहे और जीवन पर्यन्त इसी की प्रेरणा की। आप प्रचार के पक्षधर थे, किन्तु आचार को गौण करके प्रचार के पक्ष में नहीं रहे। "जिनके मन में गुरु बसते हैं, वे शिष्य धन्य हैं, पर जो गुरु के मन में रहते हैं, जिनकी प्रशंसा शोभा गुरु करते हैं, वे उनसे भी धन्य धन्य हैं।" आप श्री पर

यह कथन आपके माहात्म्य को स्पष्ट करता है।

भगवंत शिथिलाचार रूप विकार की विशुद्धि कर सारणा, वारणा, धारणा के पोषक रहे। आपने संघ के संगठन, संचालन, संरक्षण, संवर्धन, अनुशासन एवं सर्वतोमुखी विकास व अभ्युत्थान हेतु जीवन समर्पित कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावन हार॥"

सद्‌गुरु पूज्य भगवंत के चरणों में भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। जिज्ञासु अपनी जिज्ञासाएँ लेकर आते और संतुष्टि प्राप्त कर चले जाते। आशावादी अपनी आशाएँ लेकर आते और प्रसन्नता से आप्लावित होकर जाते। श्रद्धालु अपनी श्रद्धा लेकर आते और व्रत-नियम के उपहार से उपकृत होकर जाते। भक्त अपनी भक्ति से आते और आत्मिक शक्ति लेकर चले जाते। भावुक अपने भावनायुक्त अरमान लेकर आते और भाव विभोर होकर लौट जाते। सभी समस्याओं का समाधान, आपश्री के चरणों में होता था।

संध्या-समय सूर्य जब अस्ताचल की ओर जाता है तो उसका प्रकाश भी मंद हो जाता है। किन्तु आचार्य भगवन्त सूर्य से भी अधिक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। जीवन की सांध्य-वेला में भी उनका ज्ञान सूर्य नई-नई किरणें फेंककर सबको सावधान कर रहा था, समाधि-साधना चमत्कृत कर रही थी। आप आंख बंद करके भी चौबीसों घंटे जागृत थे, आत्मस्थ थे, अपने आप में लीन थे, अप्रमत्त थे। आपने भोजन तो छोड़ दिया, पर भजन नहीं छोड़ा। चौबीसों घंटे माला आपके हाथ में सुशोभित थी। अंगुलियों पर ललाई आने पर, आपके हाथ से माला लेने पर भी पौर पर माला चलती रहती, परिणामस्वरूप माला फिर हाथ में देनी पड़ती। चरणों में बैठकर ऐसा महसूस होता था कि मानो ज्ञान-सिंधु के चरणों में बैठे हैं। नित्य नवीन अनुभव मिलते रहते थे।

आपकी विशेषताओं का और गुणों का कथन करना असंभव है। क्या कभी विराट् सागर को अंजलि में भरा जा सकता है ? मेरु को तराजू में तोला जा सकता है ? पृथ्वी को बाल चरण से नापा जा सकता है? कदाचित् ये सब संभव हो सकता है, परन्तु गुण-खान पूज्य गुरुभगवन्त के गुण-गान संभव नहीं।

जिनका जीवन कथनी का नहीं करणी का, राग का नहीं त्याग का सन्देश देता है , जन-जन के हृदय सम्राट् , साधकों के जीवन निर्माता, भक्तों के भगवान, साधु मर्यादा के उत्कृष्ट पालक एवं संरक्षक, असीम गुणों के अक्षय भंडार, संयम - जीवन प्रदाता, इस जीवन के कुशल शिल्पकार परम पूज्य आचार्य भगवन्त को मैंने अपने चर्म चक्षुओं से जिस रूप में देखा, वह महज अनुभूति का विषय है। इस जीवन में हर क्षण उन महनीय गुरुवर्य का अनन्त उपकार रहा है, संयम के हर कदम पर उनकी महती प्रेरणा रही है, उनका वरदहस्त सदा पाथेय बन सम्बल देता रहा है । साधक जीवन की अभिव्यक्ति वाले अनेक सूत्र भगवन्त के जीवन में साकार सिद्ध थे। उनके जीवन-सूत्र शिक्षा बन साधक-जीवन का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

संवत् २००९ के नागौर चातुर्मास में आचार्य भगवंत ने अपने जीवन में सधा हुआ एक सूत्र दिया -

"खण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो, गुणणो, सीखणो, रमणो ज्ञान आराम॥"

चौदह वर्ष की वय में इस बालक ने (मैंने) नागौर चातुर्मास में देखा कि समग्र संसार जिस समय गहन निद्रा में सोया रहता है, उस समय भी वह अप्रमत्त साधक स्मरण व ध्यान में लीन रहता । रात्रि १२ से ३ बजे के बीच जब भी भगवन्त जाग जाते, मैंने उन्हें सीढियों में एक पांव ध्यानस्थ खड़े होकर साधना करते पाया। भोगियों के

लिये जो निद्रा का समय है, उन आत्मयोगी महापुरुष के लिए वह निर्जरा का समय होता था। संसारी जन दिन में भी सुखपूर्वक विश्रान्ति के लिए ही तो यत्न शील रहते हैं, पर महापुरुष तो रात्रि में भी आत्मा के अनन्त प्रकाश के प्रकटीकरण के लिये यत्नशील रहते हैं। जागरमाणा उन महामनीषी के लिए रात्रि भी दिन के समान ही थी।

श्रमण भगवान का कथन "देवावि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो" भगवन्त के जीवन में साकार देखा। जिनके मन में धर्म रम गया है, उन दृढ संयमी श्रमण भगवन्त के चरणों में देवता भी झुकें तो आश्चर्य क्या? अनन्तपुरा आदि अनेक स्थानों पर उन पूज्यपाद के पावन पदार्पण व प्रभावक प्रेरणा से पशु बलि बन्द हो जाना जैसे अनेक उदाहरण उनके साधनानिष्ठ जीवन के प्रबल प्रभाव बताते हैं। अहिंसा , संयम एवं तप से भावित रत्नाधिक महापुरुषों के लिये न कोई भय है, न उनके जीवन में स्व पर का कोई भेद है और न ही कोई खेद। "अहिंसा प्रतिष्ठायां वैरत्यागः", जिनके रोम-रोम में दया का वास हो, प्रत्येक प्राणी के कल्याण की ही कामना हो, उन अभय के देवता से भला किसका वैर हो सकता है , नागराज एवं अरण्य के राजा सिंहराज भी नत-मस्तक हो जायें तो भला आश्चर्य क्या ? भव-भव से संचित कर्म शत्रु भी तो उनकी आत्मा के पुरुषार्थ या सिंहनाद के समक्ष कहाँ टिक पाते हैं। अलवर के विहार क्रम में मैं साथ था। रात्रि में शेर की दहाड सुनी, पर शेर जैसे आया, वैसे चल दिया।

षट्कायप्रतिपालक महापुरुष स्वयं तो निर्भय होते ही हैं, अपने संसर्ग , सान्निध्य में आने वालों के लिये भी अभयप्रदाता बन जाते हैं। सं. २०२२ में आचार्य भगवन्त का बालोतरा चातुर्मास था। मेरी दीक्षा का दूसरा वर्ष था। उस समय भारत-पाकिस्तान की लड़ाई का प्रसंग आया। भगवन्त उस समय श्रमण संघ में उपाध्याय थे। आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी ने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज के लिए लिखवाया कि ऐसी स्थिति में कभी स्थान बदलना पड़े तो आप स्थान बदल लें। उस लड़ाई में बाडमेर से वायुयान बालोतरा होकर जोधपुर जाते। वायुयानों की गड़गड़ाहट सुनी जाती, बम गिरते। कुछ बम जोधपुर से पहले भी गिरे, जोधपुर में सैकड़ों बम गिरे, लेकिन नुकसान नहीं हुआ। आचार्य सम्राट् के समाचार आने पर भी भगवन्त ने स्थान नहीं बदला, निर्भयता से वहीं चातुर्मास किया।

संयमनिष्ठ महापुरुष कभी चमत्कार नहीं दिखाते। ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ व चमत्कार तो उनके अनुचर होते हैं। उनका जीवन स्वयं चमत्कार बन जाता है। स्वयं भगवन्त से पीपाड़ में सुना - बारह वर्ष तक यदि कोई 'तच्चित्ते तम्मणे' होकर सत्य भाषण व सद् आचरण करे तो उसे वचन सिद्धि हो जाती है। निर्मल मतिश्रुत के धारक उन महामनीषी के अल्प संभाषण में भी भक्तों को भविष्य का सहज संकेत मिल जाता था। श्रद्धालु भक्त जन आने वाली विपत्तियों का आभास पा श्रद्धावनत हो जाते।

समत्व साधक भगवन्त जहाँ जहाँ पधारे, वैषम्य दूर होता गया। सिवाञ्ची का विवाद जो कई सन्त-महापुरुषों की प्रेरणा से न सुलझ पाया, धड़ेबन्दी भी इतनी मजबूत कि घर आया जामाता भोजन नहीं करे, राखी बांधने आई भगिनी भाई के घर का पानी भी नहीं पीये। परस्पर विभेद इतना कि विवाद का निपटारा करने बैठे पंच भी एक जाजम पर बैठने को तैयार नहीं, लूनी नदी से रेत मंगाकर उस पर बैठे। सामाजिकों के मन में कैसी गहरी खाई ? सामायिक के आराधक आचार्य भगवन्त का समत्व का सच्चा संदेश सिवांचीवासी भाइयों के गले उतरा और वहां जन-जन में स्नेह सरिता प्रवाहित हुई। समदड़ी, किशनगढ, बालेसर आदि अनेक स्थानों पर समाज में व्याप्त धड़ेबंदी व कलह के बादल आपके पावन पदार्पण व प्रेरणा से छंट गये।

एक बार मैंने भगवन्त से पूछा —"भगवन् ! आपके उद्‌बोधन से अनुमानतः कितने व्यक्तियों के जीवन को नई

दिशा मिली होगी ? प्रत्युत्तर में निस्पृहयोगी ने फरमाया – “भाई ! कर्त्तव्य करने के होते हैं, कहने के नहीं।”

जिनके स्वयं के मन में पक्षपोषण व साम्प्रदायिकता की भावना न हो, वह महापुरुष ही समाज को समत्व व एकत्व का संदेश दे सकता है। आपके जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग आये जब अन्य परम्परा के असन्तुष्ट संत गुरुचरणों से विमुख हो आपकी सेवा में आये, पर आपने कभी उन्हें प्रोत्साहित नहीं किया, वरन् समझा - बुझा कर सत्परामर्श देकर पुनः गुरु चरणानुयायी बनाया। मोहनीय के उदय से कभी किसी सम्प्रदाय का कोई संत कभी भटक गया तो हवा उड़ाने की बजाय पुनः श्रावकों का मार्गदर्शन कर उन्हें स्थिर ही किया व उन परम्पराओं का सम्मान व जिन शासन की गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखा। तभी तो सभी परम्पराओं के महापुरुषों का आपके प्रति अनन्य स्नेह व श्रद्धाभाव था। विपरीत परिस्थिति होने पर आपसे मार्गदर्शन, सहयोग व संरक्षण लेने में किसी को कोई संकोच नहीं हुआ।

आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म.सा. के एक शिष्य को रामपुरा चौकी से विहार करते समय सर्प ने डस लिया। आगे विहार करते आचार्य सम्राट् को जानकारी दी गई तो निःसंकोच उन्होंने फरमाया - घबराने की बात नहीं, पीछे पूज्य श्री पधार रहे हैं, वे संभाल लेंगे। परस्पर कितनी उदारता ? आपके साधनानिष्ठ व्यक्तित्व पर महापुरुषों का भी कितना गहरा विश्वास ! कहना न होगा भगवन्त पधारे और स्मरण व ध्यान साधक ने कुछ ही मिनटों में उन संत को विषमुक्त कर दिया।

सं. २०१२ में भगवन्त का चातुर्मास अजमेर में था। आचार्य सम्राट् पूज्य आनन्द ऋषिजी म. सा. के कुछ संत भी वहीं थे। दो संत अस्वस्थ हो गये। आचार्य सम्राट् ने संतों को पत्र लिखवाया - “मेरे में और पूज्य श्री में कोई भेद नहीं है , तुम उनकी सेवा में रहकर स्वास्थ्य - लाभ करके आओ।”

जप साधक गुरुदेव के जीवन की बुजुर्गों से सुनी हुई घटना है। जयपुर में एक सम्प्रदाय के विशिष्ट पद वाले महापुरुष का एक संत रात्रि में गायब हो गया। खोजबीन प्रारम्भ हुई। संत के संयम-जीवन व संघ की प्रतिष्ठा का सवाल था। श्रावकगण पूज्यपाद की सेवा में पहुँचे, निवेदन किया । ध्यान योगी आचार्य भगवन्त ने ध्यान के बाद कुन्दीघर भैरूजी के रास्ते में मिलने का संकेत फरमाया। श्रावकगण पहुँचे व पुनः उसे गुरु चरणों में संभलाया। ध्यान की कैसी एकाग्रता । सामान्य जन जैसे रील में देखते हैं, आचार्य भगवन्त को ध्यान में वैसे दृष्टिगोचर हो जाता था। ध्यान-साधना से जिनकी ग्रन्थियों का छेद हो जाता है , वह महासाधक ही साधना की ऐसी उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

महापुरुषों का दर्शन, वन्दन व समागम ही संकटनाशक बन जाता है। उन महापुरुष का व्यक्तित्व ही ऐसा महिमामय था, साधना ही ऐसी अत्युच्च कोटि की थी, उनके सान्निध्य के परमाणु पुद्‌गल ही इतने पवित्र थे, उनका आभा मंडल ही इतना दिव्य देदीप्यमान था कि मानव की तो बिसात ही क्या? सुर असुर कृत बाधाएँ भी टिक नहीं पाती थीं। संकटग्रस्त भक्तों का सहज समाधान हो जाता था। मैंने स्वयं साधक जीवन में उनके सान्निध्य में रहते हुए अनेक भक्तों को, जिन्होंने जीवन की, संकट मुक्ति की सभी आशाएँ छोड़ दी, सहज ही संकट मुक्त होते देखा है।

मैंने उन ज्ञान सागर साधना सुमेरु गुरु भगवन्त को चर्म चक्षुओं से जो देखा है, उसका अंश मात्र कह पा रहा हूँ। एक प्रवचन क्या, समग्र जीवन ही उन ज्ञान सागर के बारे में बोलता रहूँ तो भी बोलना शेष ही रहेगा। ज्ञान चक्षुओं से उन महापुरुष के अन्तर गुणों का अवलोकन अतिशय ज्ञानियों के सामर्थ्य का विषय है। ■

गुणरत्नाकर महापुरुष

• उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा.

हमारे यहां तीन प्रकार के आचार्य कहे गये हैं। एक कलाचार्य, एक शिल्पाचार्य और एक धर्माचार्य। आचार्य भगवन्त कलाचारी, शिल्पाचारी और धर्माचारी थे। व्यक्ति को आकर्षित करने की उनमें अद्भुत कला थी। उनके संसर्ग में जो भी आता, उसे वे आगे बढ़ाते। उनके पास जो कोई आया, लेकर ही गया। कहना चाहिये–वे चुम्बक थे, आकर्षित करने की उनकी कला अपने आप में अनूठी थी। आचार्य भगवन्त पारस थे–लोहे को सोना बनाना जानते थे। इधर-उधर भटकने वाले, दुर्व्यसनों के शिकारी और साधारण से साधारण जिस किसी व्यक्ति ने उस महापुरुष के दर्शन किए, उसके जीवन में सद्गुण आए ही।

गुरुदेव ने चातुर्मास के लिये मुझे दिल्ली भेजा। मैं नाम लेकर चला गया। दिल्ली में कई ऐसे श्रावक थे, जिन्होंने आचार्य श्री हस्तीमलजी म. के दर्शन नहीं किये। आचार्य भगवंत का तीस वर्ष पहले दिल्ली में चातुर्मास हुआ था, परन्तु पुराने-पुराने श्रावक तो चले गये और बच्चे जवान हो गये। दिल्ली-वासियों ने जब संतों का जीवन देखा तो उनके मन में आया–इनके गुरु कैसे होंगे? दिल्ली के श्रावक आचार्य भगवंत के दर्शनार्थ आये। आकर कहने लगे–'महाराज! हमने तो भगवन्त देख लिये।' गुरुदेव हर व्यक्ति के जीवन को ऊंचा उठाने वाले कलाचारी थे।

उस महापुरुष ने एक शिल्पाचार्य के रूप में भी कइयों का जीवन निर्माण किया। मेरी दीक्षा के बाद बड़ी दीक्षा महामंदिर में हुई। गुरुदेव मूथाजी के मंदिर पधारे और कहा–'मेरे को अप्रमत्त भाव में रहकर बतलाना।' हर समय उनकी यही शिक्षा रहती थी। वे हर समय शिक्षा देते ही रहते थे।

वे महापुरुष चाहे जहाँ रहते, हर समय शिक्षा देते ही रहते। जयपुर में रामनिवास बाग से गुजर रहे थे। उस समय शेर गरज रहा था। आचार्य भगवंत ने फरमाया–'क्या बोलता है?' आचार्य भगवंत से मैंने कहा–'बाबजी! शेर गरज रहा है।' गुरुदेव बोले–'मैं हूँ, मैं हूँ कह कर बता रहा है कि मैं पिंजरे में पड़ा हूँ। इसलिये मेरी शक्ति काम नहीं कर रही है। यह आत्मा भी शरीर रूपी पिंजरे में रही हुई है। आत्मा भी समय-समय पर हुंकारती है–मैं हूँ अर्थात् मैं अनन्त ज्ञान से सम्पन्न हूँ, मैं अनन्त दर्शन से सम्पन्न हूँ आदि आदि।'

एक बार भगवंत सुबोध कॉलेज में खड़े थे। पास में पत्थर गढ़ने वाले व्यक्ति पत्थर गढ़ रहे थे। पत्थर गढ़ते वह कारीगर पानी छांट रहा था। गुरुदेव ने पूछा–'यह क्या कर रहा है?' मैंने कहा–'काम कर रहा है।' आचार्य भगवन्त ने कहा –"पत्थर पर पानी डालकर नरम बना रहा है, पत्थर कोमल होगा तो गढा जाएगा।" आचार्य भगवंत ने आगे फरमाया कि 'शिष्य भी कोमल होगा तो गढ़ा जाएगा।' वे हर समय जीवन-निर्माण की बात बताया करते थे। उनकी छोटी-छोटी बातों में कितनी बड़ी शिक्षाएँ होती थीं। वे शिल्पाचार्य की तरह थे।

धर्माचार्य तो वे थे ही। वर्षों तक चतुर्विध संघ को कुशलतापूर्वक संभाला और उसी का परिणाम है कि आज यह फुलवारी अनेक रंगों में दिखाई दे रही है। आज चतुर्विध संघ का जो सुन्दर रूप दिखाई दे रहा है, वह उन्हीं महापुरुषों के पुण्य प्रताप से है।

आचार्य भगवंत का जीवन कैसा था, आपने देखा है, आप जानते भी हैं। उनमें थकावट का कभी काम नहीं। वे कितना पुरुषार्थ करते थे ! वे सामायिक-स्वाध्याय के लिये अधिक बल देते थे। दिल्ली वाले आचार्य भगवंत के श्री चरणों में चातुर्मास की विनती लेकर आये। उनसे कहा–'आप प्रति वर्ष विनती लेकर आते हैं तो क्यों नहीं आप सामायिक-स्वाध्याय का सिलसिला प्रारम्भ कर अपने पैरों पर खड़े होते हैं?'

आचार्य भगवंत सदा कुछ न कुछ देते ही रहते। जब तक स्वस्थ रहे स्थान-स्थान पर भ्रमण कर ज्ञान दान दिया और अन्त समय में भी कितनी उदारता, विशालता ! वे परम्परा के आचार्य होकर भी कभी बंधे नहीं रहे। वे फरमाते–'जिनको जहाँ श्रद्धा हो वहाँ जाओ पर कुछ न कुछ करो जरूर।'

आचार्य भगवंत की विशालता अनूठी थी। वे चाहे श्रमण संघ में रहे, तब भी वही बात, श्रमण संघ में नहीं रहे तब भी वही बात। श्रमण संघ से बाहर निकले उस समय श्रावकों ने कहा–किसके बलबूते पर अलग हो रहे हो? आचार्य भगवंत ने कहा–'मैं आत्मा के बलबूते पर अलग हो रहा हूँ। मैं अपनी आत्म-शांति और समाधि के लिये अलग हो रहा हूँ।' उस समय लोग सोचने लगे–'कौन पूछेगा', पर आपने देखा है–आचार्य भगवंत जहां भी पधारे, सब जगह श्रद्धालु भक्तों से स्थानक सदा भरे रहे। चाहे प्रवचन का समय हो, चाहे विहार का, श्रावक-श्राविकाओं का निरन्तर दर्शन-वंदन के लिये आवागमन बना ही रहा। स्थानक छोटे पड़ने लग गये। उनका जबरदस्त प्रभाव था कारण कि वे सबके थे, सब उनके थे।

वे महापुरुष गुण-कीर्तन पसन्द ही नहीं करते। वे स्वयं गुणानुवाद के लिए रोक लगा देते थे। मदनगंज में आचार्य पद दिवस था। उस समय संतों के बोल चुकने के बाद मेरा नम्बर था, लेकिन आचार्य भगवन्त ने उद्बोधन दे दिया। उसके बाद मुझसे कहा- तुम्हें भगवान ऋषभदेव के लिए बोलना है। मेरे बारे में बोलने की जरूरत नहीं। कैसे निस्पृही थे वे महापुरुष ! वे प्रशंसा चाहते ही नहीं थे।

प्रशंसा चाहने या कहने से नहीं मिलती। वह तो गुणों के कारण सहज मिलती है। आचार्य भगवन्त नहीं चाहते थे कि लोग इकट्ठे हों पर उनकी पुण्य प्रकृति के कारण लोगों का हर समय आना जाना बना ही रहता था। अजमेर दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर आचार्य श्री का मन नहीं था, पर श्रावकों की इच्छा थी इसलिये वहां दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव मनाया गया। वे महापुरुष स्वयं की इच्छा नहीं होते हुए भी किसी का मन भी नहीं तोड़ते थे। उन्होंने त्याग-प्रत्याख्यान की बात रख कर श्रावक समाज के सामने त्याग-तप की रूपरेखा रख दी। उनके पुण्य प्रताप से कई बारह व्रतधारी श्रावक बने और व्यसनों का उस समय त्याग काफी लोगों ने किया।

आचार्य भगवन्त ने बचपन से लेकर अन्तिम समय तक हर क्षेत्र में अपना कीर्तिमान स्थापित किया। दस वर्ष की अवस्था में दीक्षित हुए। बचपन की एक ऐसी अवस्था, जब एक बच्चा अपने कपड़ों को भी अच्छी तरह से नहीं सम्हाल पाता है, ऐसे समय में उन्होंने पाँच महाव्रतों को अंगीकार किया। अपने जीवन को गुरुओं के चरणों में समर्पित किया। १५ वर्ष की अवस्था में आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. ने उन्हें तीसरे पद के उत्तराधिकारी के रूप में मनोनीत किया। २० वर्ष की अवस्था में चतुर्विध संघ का भार संभालना, कोई साधारण बात नहीं थी। पूज्य महाराज इतने आदरणीय थे कि सारा चतुर्विध संघ उनके एक-एक आदेश का तत्परता के साथ पालन करने के लिये तैयार रहता था। वह मानता था कि पूज्य श्री ने कुछ कह दिया वह सही है। सबका यह मानना था कि उन्होंने किया, ठीक किया, सोच-विचार करके किया है।

ज्ञान एवं क्रिया के क्षेत्र में उनमें इतनी बड़ी विशेषता थी कि जिसके कारण एक परम्परा के आचार्य होते हुए भी उनकी ख्याति पूरे जैन समाज में जबरदस्त थी। यह भी एक कारण है कि उन्होंने नये-नये क्षेत्रों में सफल चातुर्मास किये। समय-समय पर अपने साधक-बन्धुओं के साथ समाज में आती हुई विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया।

श्रावक-संघ के प्रति भी उनके मन में दुःख-दर्द था। इसी बात को लेकर वर्षों तक मंथन के बाद उन्होंने मक्खन या सार निकालकर समझाया कि संसार में प्राणी दुःखी क्यों है, पीड़ित क्यों है, उसे खेद क्यों है? उसे दुःख दर्द को दूर करने के लिये सामायिक और स्वाध्याय का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य मोह और अज्ञान के कारण दुःखी है। मोह और ममता को मिटाने के लिये तथा समता को प्राप्त करने के लिये सामायिक आवश्यक है। अज्ञान को दूर करने एवं ज्ञान के प्रकाश को जगाने के लिये उन्होंने स्वाध्याय करना बहुत जरूरी बताया।

आचार्यप्रवर का यही उपदेश था कि साधक स्वाध्याय द्वारा आगमों का अध्ययन, चिंतन-मनन कर स्व के ज्ञान द्वारा अपने आपको समझे। उसके लिए आपने विश्व को सामायिक और स्वाध्याय का फरमान दिया। आज सभी कहते हैं - गुरु हस्ती के दो संदेश, सामायिक-स्वाध्याय विशेष।

पूज्यश्री का कितना बड़ा उपकार है समाज और व्यक्ति पर। सामायिक और स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार में जीवन समर्पित कर आपश्री ने ज्ञान और क्रिया दोनों ही क्षेत्रों में श्रावक-श्राविकाओं को अग्रसर किया। स्वाध्याय से ज्ञान और सामायिक से समताभाव की प्राप्ति होती है। ये दोनों ज्यों-ज्यों जीवन में अधिकाधिक स्थान पायेंगे, त्यों-त्यों वीतरागभाव में वृद्धि होगी। सामायिक और स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार में पूज्य आचार्यश्री इस तरह समर्पित रहे कि अपने अंतिम वर्षों में वे सामायिक और स्वाध्याय के पर्यायवाची बन गए।

आचार्य भगवन्त तो कहते थे—सामायिक-स्वाध्याय का प्रणेता मैं नहीं हूँ, भगवान् महावीर प्रणेता हैं। मैं तो उनके बतलाये हुए संदेश को जन-जन तक पहुंचाने की कोशिश करता हूँ। यह मेरे द्वारा प्रणीत किया हुआ है, ऐसा नहीं है। भगवन्त फरमा कर गये हैं, शास्त्र को जन-जन तक पहुँचाना है। कहने का आशय यह है कि स्वाध्याय एक ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर सन्मार्ग को प्राप्त किया जा सकता है।

पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म.सा. ने संत-सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों के लिए स्वाध्याय का बीजारोपण किया, पूज्य आचार्य गुरुदेव ने अंकुरित स्वाध्याय-पौध की विशेष देखभाल कर उसे विकसित किया। आपने स्वाध्यायी तैयार करने की प्रवृत्ति को प्राथमिकता प्रदान करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में स्वाध्याय-संघ स्थापित करने की महती प्रेरणा की।

आज आचार्य श्री के उन्हीं सत्प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारतभर में स्वाध्याय-संघों की विशाल संख्या है और प्रतिवर्ष नए स्वाध्यायी तैयार होते हैं। महापर्व के प्रसंग पर ये स्वाध्यायी-बंधु आठ दिन तक बाहर रहकर प्रार्थना, प्रवचन, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रतिक्रमण आदि की व्यवस्था करते हैं और इस तरह धर्म की प्रभावना कर चातुर्मास से रिक्त क्षेत्रों में धर्म की गंगा बहाते हैं।

गुरुदेव फरमाते थे कि धर्म-स्थान पर आकर शांति के साथ सामायिक करें, यह धर्मस्थान की शोभा है।

आचार्य भगवान् के गुण समूह को उनकी विशेषताओं के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— (१) चुम्बकीय गुण और (२) पारस पत्थर के सदृश गुण।

आचार्य भगवन्त के चुम्बकीय गुणों के कारण ही जो भी व्यक्ति एक बार उनके निकट आकर उनके दर्शन पा

जाता, उनके चरणारविन्द को स्पर्श कर लेता, वह सदा के लिये आपका श्रद्धालु भक्त बन जाता। आपके गुणसमूह की दूसरी विशेषता पारस पत्थर के तुल्य थी। पारस पत्थर जिस प्रकार लोहे को सोना बना देता है, उसी प्रकार आचार्य प्रवर के सम्पर्क में आने वाला भोगी व्यक्ति त्यागी और विराधक आराधक बन जाता था।

जो भी आचार्य श्री के सम्पर्क में आया, उनके उपदेशों का जिसने भी अमृत पान किया, उनकी बताई हुई शिक्षाओं, उनकी दी हुई प्रेरणाओं को हृदयंगम कर उनके बताए मार्ग पर आगे बढ़ा तो वह आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ता चला गया। आचार्य श्री भक्त में भगवान के दर्शन करते थे। उनका स्वयं का कथन था कि साधक को भक्त नहीं बनना है, भगवान बनना है। आराधक से आराध्य, उपासक से उपास्य, साधक से सिद्ध बन जाने का मार्ग प्रशस्त करना उनका लक्ष्य था।

गुरुदेव के अनेक गुणों में एक गुण था—उनका अप्रमत्त जीवन। प्रमाद उनके प्रायः नजदीक नहीं आ पाया। वे यदि रात को १० बजे सोये और ११ बजे उठ गये तो फिर पूरी रात नहीं सोते थे। माला, ध्यान आदि में ही समय व्यतीत करते थे।

वे अपने वचन के निर्वहन में भी पक्के थे। 'प्राण जाय पर वचन न जाय', कथन का वे निर्वाह करते थे। जीवन के अंतिम समय में बड़े-बड़े नगरों एवं डाक्टरों की सुविधाओं को त्याग कर निमाज जैसे छोटे ग्राम की ओर प्रयाण करना यही सिद्ध करता है।

एक अन्य प्रसंग है। आपने अहमदाबाद का चातुर्मासावास सानन्द सम्पन्न कर जयपुर की ओर विहार किया। उस समय इतिहास-लेखन का कार्य चल रहा था। आपश्री को कुछ ही दूर स्थित एक यति जी का पुरातन ग्रंथ-भंडार देखना था। आपने यति जी को कहलवा दिया था। संतों को भी अपने भाव बता दिये थे। सूचना मिली कि यतिजी कहीं बाहर गए हुए हैं। इधर जयपुर में एक दीक्षा-प्रसंग था। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया-"भगवन्! यतिजी तो हैं नहीं। अतः सीधे ही जयपुर की ओर विहार कर लें।" आपश्री ने फरमाया-"मैंने उनको वचन दे रखा है और मैं अपनी ओर से वचन तोडूँगा नहीं।"

आचार्यश्री करुणा-सागर थे, उनका हृदय कमल की तरह कोमल था। वे परदुःख कातर थे। 'संत हृदय नवनीत समाना' के अनुसार उनका हृदय मक्खन की तरह मुलायम था। पर-पीड़ा से तुरंत पिघल जाते थे। विशेषता यह कि कोई भी दुःखी, त्रस्त, सन्तप्त प्राणी उनके निकट आता, उनकी चरण-शरण ग्रहण करता तो आपश्री के आशीर्वाद से उसका समस्त दुःख, संताप, कष्ट दूर हो जाता था। यह आपश्री की प्रबल पुण्यवानी का ही प्रताप था। वे स्वयं किसी को कुछ कहते या बताते नहीं, पर जिसका उन पर, उनकी भक्ति पर, उनके वचनों पर अटल विश्वास होता था, उसका कष्ट, उसकी बाधाएं स्वतः दूर जाती थीं।

आचार्य गुरुदेव से विद्वान् प्रभावित थे, विचारक प्रभावित थे, आगमज्ञ प्रभावित थे, संत प्रभावित थे। कौन प्रभावित नहीं था उनसे? जब तक श्रमण संघ में रहे, वहां भी अपना वर्चस्व बनाए रखा। एक तेज था आपमें, संयम का तेज, ज्ञान का तेज, क्रिया का तेज, दृढ़ता का तेज। यही कारण था कि जब तक रहे, पूरे स्थानकवासी समाज पर ही नहीं, सम्पूर्ण जैन समाज पर आपका प्रभाव रहा।

आचार्य भगवान् आगरा पधारे। उपाध्याय कवि मुनि श्री अमरचंद जी म. के साथ आपका प्रवचन हुआ। मंत्रीजी ने पहले दिन कहा—"आज हमें ज्ञान और क्रिया का समन्वय देखने को मिल रहा है।" दूसरे दिन आचार्य श्री ने प्राचीन श्रमण-संस्कृति विषय पर इतना विद्वत्तापूर्ण एवं तथ्यगत व्याख्यान दिया कि मंत्रीजी कह उठे—"आचार्य श्री

हस्ती तो स्वयं ही ज्ञान एवं क्रिया के संगम हैं।"

इतना सब होते हुए भी गुरुदेव अत्यन्त सरल एवं विनम्रता की मूर्ति थे। आपके उपदेशों का श्रोताओं पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता था। कारण स्पष्ट था । वे पहले करते थे, जीवन में उतारते थे और फिर कहते थे।

गुरुदेव ने अपने संयम-काल में विषम से विषम परिस्थितियों को भी धैर्यपूर्वक सहा। कितने ही संत विदा हो गये। कितने ही संतों की समाधि में, उनके संथारे में आपने साज दिया। जिस समय मैंने दीक्षा ली थी, उस समय तक का सम्प्रदाय में कोई भी संत आज विद्यमान नहीं है। बाबाजी श्री सुजानमल जी म.सा., स्वामीजी श्री अमरचन्दजी म.सा. आदि अनेक संत गए, पर उस वक्त भी गुरुदेव विचलित नहीं हुए। बड़े आत्म-विश्वास से संयम-जगत् में रमण करते रहे। उनके जीवन का एक-एक गुण उनके भक्तों के जीवन में मूर्तिमंत हो, तभी उनका स्मरण सफल होगा।

ज्ञान और क्रिया में समन्वय जिस महापुरुष ने किया था वह महापुरुष संसार से विदा हो गया, परन्तु अन्तिम समय में भी समाधिमरण के साथ एक कीर्तिमान स्थापित किया। जन-जन को बता दिया कि मरण हो तो ऐसा हो महोत्सव की तरह। वैशाख शुक्ला अष्टमी के दिन रवि पुष्य नक्षत्र में नश्वर देह का परित्याग कर इस संसार से विदा हो गये, परन्तु बहुत बड़ी प्रेरणा दे गये कि आप लोग भी इस तरह का जीवन जीयें जिससे अन्तिम समय शान्तिपूर्वक पण्डित मरण के साथ यहाँ से विदा हो सकें। लंबे समय का वह अभ्यास ही उनको समाधिमरण की तरफ प्रेरित कर गया। सामायिक और स्वाध्याय का संदेश देने वाले वे स्वयं ही सामायिकमय हो गये, उनके भीतर सामायिक उतर गयी। एक तो वे हैं जो सामायिक करते हैं तथा एक वे हैं जिनके जीवन में सामायिक होती है। करने में और होने में बड़ा अन्तर है। करना तो क्रिया है, होना आत्म-साक्षात्कार है। अगर आत्मा के अन्दर सामायिक हो गयी तो फिर करना क्या बचा ? उन्होंने इस तरह से केवल सामायिक ही नहीं की, अपने जीवन के अन्दर सामायिक को उतार कर लोगों की धारणा को बदल दिया। लम्बे समय के बाद में किसी आचार्य को ऐसा समाधिमरण हुआ तो लोग कहने लगे कि आचार्य को समाधि मरण होता ही नहीं है, क्योंकि वे झंझटों में फंसे रहते हैं, चतुर्विध संघ की व्यवस्था के अन्दर इतने उलझे रहते हैं कि उनके मन में चिन्ता बनी रहती है, जिसके कारण वे अन्तिम समय समाधि-मरण को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। किन्तु व्यक्ति क्या नहीं कर सकता है? चाहना के अनुसार अगर आचरण है, जीवन व्यवहार है, आत्मा में इस तरह की सच्ची लगन है तो मनुष्य सब कर सकता है।

अपने ७१ वर्ष के संयम काल में आचार्य भगवन्त ने आचार्य, उपाध्याय तथा संत पदों का क्रियापूर्वक निर्वहन किया। ६१ वर्ष आचार्य रहते हुये भी अपने को सदा संघ-सेवक शोभा शिष्य हस्ती ही माना।

गुरुदेव द्वारा रचित स्तवन-भजन आत्मा को ऊपर उठाने वाले हैं। जब आचार्य भगवन्त ने निमाज में संथारा ग्रहण कर लिया था, तब उन्हें "मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं मुझे किसी की आस" तथा "मैं हूँ उस नगरी का भूप जहाँ नहीं होती छाया धूप"-जैसे भजन सुनाये गये। सुनाते-सुनाते ही संत भाव विभोर हो उठते थे।

वे केवल उपदेशक ही नहीं, उपदेशों को आत्मसात् करने वाले थे। हम भी कभी-कभी सोचते हैं कि हमने कभी किसी केवली को नहीं देखा। गणधरों को नहीं देखा,पर हमे संतोष है कि हमने आचार्य भगवन्त को देखा, हम भाग्यशाली हैं कि हमें उनका सान्निध्य मिला।

■

ज्योतिर्धर आचार्य

• उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा.*

सन् १९५२ में जब सादड़ी में सन्त-सम्मेलन का आयोजन हुआ, उस समय आप श्री का मंगलमय पदार्पण सम्मेलन में हुआ। सादड़ी के पवित्र प्रांगण में सर्वप्रथम मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रथम दर्शन में ही मैं उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ। उन्होंने अपनत्व की भाषा में जो मधुर शिक्षाएँ प्रदान कीं, वे जीवन की अनमोल थाती हैं। उनकी अपनत्व की भावना ने ही उनके प्रति अनन्त आस्था पैदा की।

सन् १९५३ में पुनः सोजत मन्त्री मण्डल की बैठक में आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला। जब भी मैं आपके कक्ष में दर्शनार्थ पहुँचता तब स्नेह-सुधा से स्निग्ध शब्दों में आप मुझे हित शिक्षाएँ देते कि तुम्हें राजस्थान की गरिमा को सदा अक्षुण्ण रखना है। आपने मुझे यह प्रेरणा दी कि तुम्हारे अन्तर्मानस में साहित्य के प्रति सहज रुचि है, किन्तु यह उपयोग रखना है कि जो लेख लिखें जायें, वे आगम व स्थानकवासी मान्यता के विरुद्ध न हों। महाराज श्री की प्रेरणा से मैंने यह कार्य सहर्ष किया भी।

सन् १९५७ में परमादरणीय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. तथा आप श्री के पास लगभग एक महीने तक रहने का अवसर मिला। उस समय मैंने बहुत ही सन्निकटता से आपको देखा। जप-साधना के प्रति आपकी निष्ठा को देखकर मेरा हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। सन् १९६० में विजयनगर में आठ-दस दिन साथ में रहने का अवसर मिला। 'अखण्ड रहे यह संघ हमारा' यह नारा बुलन्द किया। इस लेख में 'श्रमण संघ अखण्ड रहे' इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त हुए हैं, वे इतिहास की एक अपूर्व धरोहर हैं। उन विचारों को पढ़ने से लगता है कि श्रमण संघ के प्रति कितने निर्मल विचार आपके रहे हैं।

सन् १९९० का सादड़ी का यशस्वी वर्षावास सम्पन्न कर हम लोग पाली पहुँचे। मैं मध्याह्न में आपकी सेवा में पहुँचा। आपने प्रसन्न मुद्रा में वार्तालाप किया और कहा कि मेरा शरीर अब साथ नहीं दे रहा है। हमने अपने जीवन में स्थानकवासी समाज के उत्कर्ष हेतु सतत प्रयास किया है। आपको भी यही प्रयास करना है। विचारों की उत्क्रान्ति के साथ आचार की उपेक्षा न हो, यह सतत स्मरण रहे। इतिहास का जो कार्य अपूर्ण रह गया है उसे भी पूरा करने का लक्ष्य रहे।

पाली से आपका विहार सोजत होकर निमाज की ओर हुआ। स्वास्थ्य शिथिल होने पर क्षमापना पत्र भी प्राप्त हुआ जो आपके निर्मल हृदय का स्पष्ट द्योतक था।

संथारा जीवन की एक अपूर्व कला है। आध्यात्मिक साधना का सर्वोच्च शिखर है । यह व्रतराज है। जीवन की अन्तिम वेला में की जाने वाली उत्कृष्ट साधना है। यदि कोई साधक जीवन भर उत्कृष्ट तप की आराधना करतां रहे, पर अन्त समय में यदि वह राग-द्वेष के दल-दल में फंस जाता है तो उसकी साधना निष्फल हो जाती है। संथारा जीवन-मन्दिर का सुन्दर कलश है। संथारा आत्म-हत्या नहीं है। आत्महत्या में कषाय की प्रमुखता होती है। अन्तर्मानस में कई इच्छाएँ होती हैं पर सन्थारे में तो इच्छाएँ नहीं होती। हँसते हुए मृत्यु का वरण किया जाता है। जिन महान् आत्माओं ने भेदविज्ञान के द्वारा यह समझ लिया कि देह और आत्मा पृथक् है, वे ही इस साधना को

* *बाद में आचार्य पद से सुशोभित*

अपनाते हैं। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. ने संलेखना युक्त सन्थारा कर सहर्ष मृत्यु का वरण करने का जो संकल्प किया, वह उनके आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्ष का द्योतक है। तेले के तप पर उन्होंने दस दिन का संथारा कर जैन शासन की प्रबल प्रभावना की । आचार्य पद पर आसीन महापुरुषों को प्राय: सन्थारा कम आता है, पर आश्चर्य यह कि आपको इतना लम्बा सन्थारा आया। उस सन्थारे में आपकी जप-साधना भी चलती रही। आपके चेहरे पर अपूर्व उल्लास दमकता-चमकता रहा। अन्तिम क्षण तक अपूर्व समाधि बनी रही।

भारतीय साहित्य में हस्ती की अपनी महत्ता रही है। वह युद्ध के क्षेत्र में कभी भी पीछे नहीं हटता था। हाथियों की अनेक जातियाँ हैं। उनमें 'गंध हस्ती' को सर्वोत्तम माना गया है। 'ज्ञातृधर्मकथा' में राजा श्रेणिक के पास जो सेचनक हस्ती था, उसे ग्रन्थकारों ने 'गंध हस्ती' लिखा है। वासुदेव श्रीकृष्ण के पास जो 'विजय हस्ती' था वह भी गन्ध हस्ती कहलाता था। जिसके गण्डस्थल से इस प्रकार का मद चूता था जिससे दूसरे हस्ती उस हस्ती के सामने टिक नहीं पाते थे। 'उत्तराध्ययन की टीका' में धवल हाथी का उल्लेख आता है जो शंख के समान, चन्द्रमा के समान और कुन्द पुष्प के समान उज्ज्वल होता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भद्र नामक हाथी को सर्वोत्तम हाथी लिखा है। उसे जैन शास्त्रों में गंध हस्ती कहा गया। 'शक्रस्तव' में देवेन्द्र ने भी तीर्थंकर भगवान् को 'गंध हस्ती' की उपमा से अलंकृत किया है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. नाम से ही हस्ती नहीं थे, उन्होंने जिस संयम-पथ को अपनाया उस पथ में निरन्तर आगे बढ़ते रहे और जीवन की अन्तिम घड़ियों में सन्थारा वरण कर कर्म-शत्रुओं को परास्त करने का जो उपक्रम उन्होंने किया, वह हर साधक के लिए प्रेरणा-स्रोत है।

मैं अपनी तथा श्रमण संघ की ओर से श्रद्धार्चना समर्पित कर रहा हूँ। भले ही आज उनकी भौतिक देह हमारे बीच नहीं है, पर वे यश: शरीर से आज भी जीवित हैं और भविष्य में भी सदा जीवित रहेंगे। उनका मंगलमय जीवन सदा प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

(जिनवाणी, श्रद्धाञ्जलि अंक, सन् १९९१ से संकलित)

■

दूसरा कोई उदाहरण नहीं

• पं. रत्न श्री घेवरचन्दजी म.सा. 'वीर पुत्र'

(आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के चादर महोत्सव के समय २ जून १९९१ को व्यक्त विचार)

पूज्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. ने ६० वर्षों से कुछ अधिक समय तक संघ का संचालन किया। निरतिचार आचार्य पद का इतने लम्बे समय तक पालन करने वाले सन्त का मेरी दृष्टि में दूसरा उदाहरण नहीं है और पिछले २०० वर्षों के इतिहास में ऐसा उदाहरण पढ़ने में नहीं आया। उस महापुरुष ने तेले की तपस्या सहित तेरह दिन का संथारा किया। पिछले २०० वर्षों के इतिहास में आचार्य श्री जयमल्ल जी म.सा. के तीस दिन के संथारे का उल्लेख आता है, अन्यथा इस युग में इतना लम्बा संथारा किसी आचार्य को नहीं आया, यह भी एक कीर्तिमान है।

मुझे पूज्य आचार्य श्री की सेवा का अवसर मिला है। सादड़ी सम्मेलन में सब आचार्यों ने पद का त्याग किया तब एक नाम पूज्य हस्तीमल जी म.सा. ने पूज्य श्री गणेशीलाल जी का रखा। पूज्य गणेशीलाल जी म.सा. ने कहा - "आचार्य कौन हो? जो शास्त्रों का पारगामी हो, युवक हो और विचरण-विहार करके क्षेत्रों को सम्भालने वाला हो। ऐसा कोई आचार्य हो सकता है तो वे पूज्य श्री हस्तीमलजी हो सकते हैं।"

—जिनवाणी, अगस्त १९९१ से साभार

■

साधना के शिखर पुरुष

• महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्र मुनि जी महाराज

आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज जब तक जीए, आदर्श जीवन जीया। उनका जीवन आज भी श्रद्धा से स्मरण किया जा रहा है। भगवन्त में गौतम की तरह ज्ञानगरिमा, सुधर्मा की तरह संघव्यवस्था, अनाथी की तरह वैराग्य और स्थूलिभद्र की तरह ध्यान था।

आचार्य भगवन्त ने अपना जीवन आचरण के साथ ऐसा ढाला कि हम आज भी श्रद्धा से उस महापुरुष को यह कहकर याद करते हैं कि उनके जीवन में पर्वत सी ऊँचाई थी तो सागर सी गहराई थी। उस महापुरुष में अनेकानेक गुण थे। वे प्रवचन के माध्यम से ही नहीं, मौन साधना से भी प्रेरणा देने वाले महापुरुष थे। उनकी प्रेरणा से हजारों स्वाध्यायी बने और हजारों-हजार लोगों ने अपना जीवन संवारा।

आचार्य भगवन्त जयपुर विराज रहे थे। कृष्ण पक्ष की दशमी को वे अखण्ड मौन रखते और ध्यान करते थे। ध्यान-साधना में स्व-स्वभाव में आने का उनका चिन्तन चलता ही रहता। एक दिन कृष्ण पक्ष की दशमी को आचार्य भगवन्त ध्यानस्थ हो अपनी साधना कर रहे थे, संयोगवश उस दिन जैन धर्म के मूर्धन्य मनीषी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त शिक्षाविद् डॉ. दौलतसिंह जी कोठारी आचार्य भगवन्त के दर्शन-वन्दन और पर्युपासना के लक्ष्य से वहाँ पहुंचे। आचार्य भगवन्त के श्रद्धाशील श्रावक श्री नथमल जी हीरावत नीचे उतर रहे थे और डॉ. कोठारी साहब लाल भवन की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। हीरावत साहब ने कोठारी साहब से कहा - आचार्य भगवन्त तो आज मौन साधना में हैं, आपकी बात नहीं हो सकेगी। कोठारी साहब बोले-'कोई बात नहीं, मुझे दर्शन लाभ तो होगा।'

आचार्य भगवन्त ध्यान-साधना में विराजमान थे। डाक्टर साहब वन्दन नमन कर सामने बैठ गये। वे करीब घण्टे भर वहां बैठे रहे और उसके बाद नीचे उतरे। संयोग से हीरावत साहब उन्हें फिर मिल गये। कोठारी साहब बोले - मैंने आज जो पाया है वह वर्षों में कभी नहीं पा सका। आचार्य भगवन्त का जीवन बोलता है। आचार्य भगवन्त के उपदेश प्रभाव जमाने हेतु नहीं, स्वभाव में लाने वाले होते थे।

आचार्य भगवन्त के जीवन में करुणा थी वहीं वज्र सी कठोरता भी थी। महापुरुषों में ऐसे विरोधी गुण भी होते हैं। दीन-दुःखी और असहाय को देख वे द्रवित हुए बिना नहीं रहते और जहां कहीं आचरण में ढिलाई देखते उस समय उनमें वज्रसी कठोरता देखी जाती। उस महापुरुष ने ७१ वर्ष तक निरतिचार संयम का पालन किया और अप्रमत्त जीवन जीया। उनका जीवन लड्डू की तरह सब ओर से मधुर था। लड्डू को आप जिधर से खाएँ उसमें मिठास होती है। उसी प्रकार आचार्य भगवन्त का जीवन मधुरिमा से युक्त था।

आचार्य भगवन्त ने रोग-ग्रस्त होने पर दोष लगाना तो दूर कभी मन को कमजोर तक नहीं होने दिया। भगवन्त के मोतियाबिन्द का आपरेशन होना था। डॉक्टर आपरेशन के पूर्व इन्जेक्शन लगाने के लिए कह रहे थे, परन्तु भगवन्त ने दृढतापूर्वक कहा -इंजेक्शन की आवश्यकता नहीं है। भगवन्त ने बिना इंजेक्शन आपरेशन करवाया और आपरेशन के पूर्व संतों को सावधान किया कि आप ध्यान रखें, आपरेशन के दौरान कहीं कच्चे पानी का उपयोग न हो जाये।

आचार्य भगवन्त के जीवन में सरलता, सहिष्णुता और सौहार्द के भाव थे। आचार्य भगवन्त का सं. २०१५ में दिल्ली में चातुर्मास था। उस समय श्रमण संघ के प्रथमपट्टधर आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज लुधियाना चातुर्मासार्थ विराज रहे थे। श्रमण संघ के प्रथम आचार्य श्री आत्माराज जी महाराज ने पत्र में आचार्य भगवन्त के लिए 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' विशेषण लगाया। जो विशेषण अरिहंतों के लिए लगाया जाता है, श्रमण संघ के प्रथम पट्टधर ने उसका प्रयोग आचार्य भगवन्त के लिये किया। आचार्य भगवन्त के प्रति उनका विशेष प्रेम था। इसलिए लुधियाना से संदेश आया कि आप दिल्ली तक पधार गये हैं, दिल्ली से लुधियाना ज्यादा दूर नहीं है, आप लुधियाना पधारें। पर आचार्य भगवन्त पूज्य अमरचन्द जी म.सा. की रुग्णता में सेवा को प्रमुखता देने के कारण नहीं पधार सके, यह अलग बात है।

जैन जगत् के ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज जेठाणा विराज रहे थे। उस समय आचार्य भगवन्त का भी जेठाणा पधारना हुआ। आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज को विहार करना था, आचार्य भगवन्त पहुंचाने के लिए नीचे उतरे। जवाहराचार्य कहने लगे - आप मुझे मांगलिक सुनाओ। जवाहराचार्य दीक्षा पर्याय और वय में बड़े थे, फिर भी मांगलिक श्रवण करना चाहते थे। आचार्य भगवन्त लघुता प्रकट करते रहे, किन्तु जवाहराचार्य ने कहा कि मैं दक्षिण में जा रहा हूँ, आपकी मांगलिक श्रवण करके जाऊँगा। आदर-समादर का वह कितना सुन्दर उदाहरण है।

आचार्य भगवन्त आत्म-साधक थे। जब तक जीये हर व्यक्ति के वे आस्था के केन्द्र रहे। अन्तिम समय आया तो समाधिमरण से वे चिर स्मरणीय बन गये। जिनाज्ञा के अनुसार उनका आचरण था। इसलिए बड़े बड़े आचार्य भगवन्त और सन्त भगवन्त उनका परामर्श प्राप्त करते। बड़े छोटों में जब कुछ विलक्षणता देखते हैं, तभी उनकी प्रशंसा होती है।

श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज का राजस्थान में पदार्पण हुआ। आचार्य सम्राट् भोपालगढ़ पधारे, जहां आचार्य भगवन्त पहले से विराज रहे थे। दोनों में कैसा प्रेम था, वह आज भी हमें प्रेरणा देता है। आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी को जोधपुर पधारना था। दोनों महापुरुषों ने आगे पीछे विहार किया। संयोग ऐसा हुआ कि आचार्य सम्राट् के साथ वाले किसी संत को सर्प ने डस लिया। आचार्य सम्राट् भक्तों से बोले - तुम आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज को सूचना करो। पूज्य गुरुदेव को सर्प डसने की सूचना मिली, वे तुरन्त विहार कर वहां पहुंचे। देखा तो गांव वाले सभी चिंतित और परेशान हैं, संत जिसे सांप काट खाया, वह बेहाल है। आचार्य भगवन्त ने अपनी साधना-आराधना से कुछ सुनाया और सांप का जहर उतर गया। यह चमत्कार नहीं साधक की साधना के बल का नमूना है।

पूज्य गुरुदेव ने संयम-साधना में आगमवाणी को सदा आगे रखकर उसका प्रचार-प्रसार किया। उस महापुरुष के समाधिमरण की बात आपने सुनी होगी। तप-साधना में उस युगमनीषी ने पूर्ण सजगता में संथारे के प्रत्याख्यान अंगीकार किये और संथारा स्वीकार करने के बाद उस महापुरुष ने शरीर तक से ममत्व हटा लिया। हाथ हो या पैर, वह जिस अवस्था में है उसे हिलाया तक नहीं। संतों ने जिस करवट सुला दिया, उन्होंने स्वयं करवट नहीं बदली। प्रतिलेखना के लिए जब भी आसन से उठाया जाता तो भगवन्त करुणा की दृष्टि से देख लेते। संत महर नजर रखने का निवेदन करते, पर वे आत्मरमण - आत्म चिन्तन में लीन रहते। उनकी अंगुलियों पर माला थी और था स्मरण। आगमों में पादपोपगमन संथारे का वर्णन आता है , आचार्य भगवन्त का समाधिमरण ठीक वैसा ही लगता था। ऐसे महापुरुष के लिए जितना कहा जाय कम है। उस दिव्य द्रष्टा ने मेरे जैसे अनपढ़ को पामर से पावन बना दिया। ■

अध्यात्म-आलोक पूज्य गुरुदेव

• मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा.

संसारस्थ आत्माएँ अनादि अनन्त काल से कर्म आवरण से संयुक्त होकर जन्म , जरा और मरण के चक्रव्यूह में चक्कर लगा रही हैं। विरली आत्माएँ ही इस चक्रव्यूह का भेदन कर आत्म-स्वरूप का भानकर इसके प्रकटीकरण की ओर प्रयासरत हो पाती हैं। आत्मा के शुद्ध शाश्वत स्वरूप के प्रकटीकरण की ओर उन्मुख महापुरुष का जीवन स्व पर के लिये कल्याणकारी बन जाता है। ऐसे ही महापुरुष थे जीवन निर्माता संयमधनप्रदाता पूज्यपाद गुरुदेव परम पूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.।

मुझे उन श्री चरणों में समर्पित होने व उनका स्नेहिल सान्निध्य पाने का सौभाग्य मिला है, यह अनन्त जन्मों में संचित पुण्य का प्रसाद है । माँ रूपा के लाल, केवल के बाल, बोहरा कुल शृंगार, शोभा गुरु के शिष्य, रत्न वंश के देदीप्यमान रत्न, जिनशासनाकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र, लक्षाधिक भक्तों के आराध्य भगवन्त , संयमी साधकों के लिये भी आदर्श, सामायिक के पर्याय, स्वाध्याय गंगा के भगीरथ, अष्टप्रवचनमाता द्वारा संरक्षित, महाव्रतों द्वारा साधना के उच्च शिखर पर सुशोभित , शील सौरभ से सुरभित, मौनव्रत-अनुरागी, जप-तप व संयम के आराधक, उन महामना के जीवन उपवन में न जाने कितने गुण पुष्प खिले हुए थे, जिनकी सुरम्य छटा व दिव्य महक से समूचा जैन जगत आह्लादित था।

जिनेन्द्रप्रणीत निर्ग्रन्थ प्रवचन में जिनकी आस्था थी तो तदनुरूप संयम-पालन में जिनकी निष्ठा थी और ब्रह्मचर्य में जिनकी प्रतिष्ठा थी। जो भी श्री चरणों में उपस्थित हुआ, उसे अपना बना लेने में जिनकी सिद्धि थी, तो सामायिक-स्वाध्याय में जिनकी प्रसिद्धि थी। मन, वचन व कर्म में जिनके एकरूपता थी तो प्रेरणाओं में जिनके विविधता थी। संघशासन उनका काम था तो आत्मानुशासन में उनका नाम था। उनकी चर्या में आगम जीवन्त थे तो व्यवहार में शास्त्र मर्यादा का बोध था। जिनके चिन्तन में हर किसी के कल्याण की कामना थी, वाणी में सूत्र की वाचना थी तो क्रिया में शास्त्र की पालना थी। जिनके कदम जिधर भी बढ गये, हजारों कदमों के लिए वह राह बन गई, अल्प संभाषण में जो कुछ निकला, वही प्रेरणा बन गई।

जिधर भी उनके चरण पड़े, वह धरा पावन हो गई, जिस पर भी उनकी नजर पड़ी, वह धन्य हो गया, जिसे भी उन्होंने पुकारा, वह सदा के लिये उनका हो गया।

ज्ञानसूर्य हस्ती के सूत्र रूप में फरमाये गये प्रवचन अनेकों के लिये दिशा बोधक बन गये, प्रकाशपुञ्ज उस दिव्य योगी की महनीय स्नेहिल दृष्टि से भक्त कभी तृप्त ही नहीं हो पाते। अमृतकलश सदा प्रेरणा का पावन अमृत बांटता रहा, अध्यात्म आलोक अपने मंगलमय मार्गदर्शन व प्रखर साधनादीप्त जीवन से जिनशासन की जीवनपर्यन्त प्रभावना करता रहा। जागरण का वह क्रान्तिदूत इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम अध्याय के रूप में अंकित है। इतिहासवेत्ता अपने जीवन के अनेक कीर्तिमानों से इतिहास को समृद्ध बना गये। वे युग से नहीं, वरन् युग जिनसे प्रतिष्ठित है, जिनसे जुड़कर हर कोई व्यक्ति, क्षेत्र व समय महिमामंडित हो गया। क्या संयम, सरलता, निस्पृहता का वह विशिष्ट युगशास्ता युगनिर्माता ज्ञानसूर्य कभी अस्त हो सकता है? क्या वह प्रेरणा कभी मौन हो सकती है ? क्या लक्षाधिक भक्तों के हृदय में संस्थापित वह प्रज्ञापुरुष कभी निःशेष हो सकता है ? एक ही प्रत्युत्तर होगा,

नहीं ! नहीं ! कदापि नहीं।

अनेक भक्तों की कई पीढियों के प्रतिबोधक गुरु की आगामी पीढियाँ सहज विश्वास भले ही न कर पायें कि एक साथ गुण पुष्पों की इतनी विविधता वाला जीवन उपवन कभी यहाँ महका था, पर अपने पूर्वजों से सुन कर उनके महिमामंडित जीवन का अनुमान लगा कर वे गौरवान्वित हो सकेंगी। किसी शायर की ये पंक्तियां उन गुणरत्नाकर के जीवन पर कितनी सटीक हैं –

आने वाली नस्लें जिसके होने का अन्दाज करेंगी,
वो ऐसा था शख्स निराला, सदियां जिस पर नाज करेंगी।

यूं तो इस दुनिया में आना और जाना सदा लगा रहा है। अनादि काल से अनेक महापुरुषों ने अपनी जीवन ऊर्मियों से पतितों को पावन किया, भक्तों को भगवान बनाने की राह दिखाई। यह दुनिया चलती रही है, चलती रहेगी, स्वयं उन गुण सिन्धु ने अपने आपको एक बिन्दु मात्र ही माना, पर यह बात अटूट विश्वास से कही जा सकती है–

यूं तो दुनियां के समुद्र में कभी कमी होती नहीं,
लाख गौहर देख लो, इस आब का मोती नहीं॥

शास्त्रों का जिन्होंने बोध कराया, स्वाध्याय की जिन्होंने राह दिखाई, आगममनीषी उन गुरुदेव के जीवन में आगम गाथाएँ मानो जीवन्त प्रतीत होती हैं।

पूज्यपाद ने जीवन के उषाकाल में ही अपने आपको गुरु चरणों में समर्पित कर दिया, पूज्य स्वामीजी हरखचंदजी म.सा., पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्दजी म.सा. एवं सेवाभावी साधक श्री भोजराजजी म.सा. के अनुशासन व देखरेख में बाल्यकाल में उनका जीवन अनुशासन की अनूठी मिसाल बन गया, उन्होंने गुरु चरणों में यह पाठ पढ लिया कि 'छंदे निरोहेण उव्वेइ मोक्खं' यानी स्वच्छन्दता के त्याग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिन्हें मोक्ष की ओर अनुगमन करना होता है, वे शिष्य तो सर्वतोभावेन सदा के लिये गुरु चरणों में समर्पित हो उनके अन्तेवासी बन अपना जीवनधन उन्हें सौंप देते हैं। जहाँ श्रद्धा है वहाँ समर्पण होता है, शर्त नहीं । जहाँ समर्पण है, वहाँ स्वच्छन्दता, दुराव, लुकाव, छिपाव व मायाचारिता का भला अवकाश ही कहाँ !

गुरुचरणों में समर्पित शिष्य छन्द रहित हो अपने चित्त को निर्मल विमल बना आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर हो जाता है। शुद्ध हृदय में ही धर्म स्थिर रह सकता है। श्रमण भगवान महावीर ने अपनी अन्तिम धर्मदिशना में फरमाया है – "सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।"

जिनका अन्तर निर्मल बन जाता है , जिनके जीवन में छल, कपट व प्रपञ्च नहीं रहता, उनका अन्तर और बाह्य एक हो जाता है। आगम ऐसे साधकों को 'जहा अंतो तहा बाहिं' की उपमा से उपमित करता है। महनीय गुरुदेव ने पूज्यपाद गुरुदेव के सान्निध्य व शास्त्रों के अनुशीलन से जो ज्ञान पाया, वह उनके चिंतन व आचरण में ढल गया, क्योंकि "ज्ञानस्य सारो विरतिः"। पूज्यपाद ने जो पढ़ा, उसका चिन्तन-मनन कर ज्ञान का मक्खन अर्जित किया और उसी अनुरूप साधना कर अपनी करनी में उतारा। वे जैसा सोचते, वैसा ही करते, जैसा करते, वैसा ही बोलते। सोच, कथनी व करनी में ऐसा अद्‌भुत साम्य विरले महापुरुषों में ही देखने को मिल सकता है।

जिनके अन्तर व व्यवहार में एक रूपता होती है, वे महापुरुष समय को पहिचान लेते हैं। आत्मा को जान लेने

वाले महापुरुष कालजयी महापुरुष बन जाते हैं। वे 'क्षण' मात्र को भी व्यर्थ नहीं जाने देते। ऐसा अप्रमत्त साधक ही सच्चा पंडित होता है। आगमकारों ने फरमाया है - 'खणं जाणाहि पंडिए' हे पंडितों ! क्षण को जानो। आत्मा को जानने वाला ही पंडित होता है। पूज्यपाद के जीवन को देखने का जिन्हें सौभाग्य मिला है, वे प्रत्यक्ष साक्षी हैं कि उनका जीवन कितना अप्रमत्त था। रुग्णावस्था के अतिरिक्त उन्हें कभी किसी ने लेटे नहीं देखा, प्रतिपल सजग वह महापुरुष तो सदा 'ज्ञान आराम' में ही लीन रहता। उन्होंने कभी दीवार का टेका नहीं लिया, उन्हें तो 'आगम' का ही सहारा अभीष्ट था।

जीवन की क्षणभंगुरता का जिन्हें अहसास हो जाता है वे महापुरुष समझ लेते हैं - " असंखयं जीवियं मा पमायए" यह जीवन असंस्कृत है, न जाने आयुष्य की डोरी कब टूट जाये, टूटी डोर को कोई कदापि जोड़ नहीं सकता। इसलिये साधक तो पग पग पर सावधान होकर चलता है कि संयम जीवन में कोई दोष न लगे–

चरे पयाइं परिसंकमाणे, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिन्नाय मलावधंसी। (उत्तरा. ४.७)

पूज्यपाद गुरुदेव ने जीवन के उषाकाल से सन्ध्याकाल तक जिस निरतिचार संयम का पालन किया वह बेमिसाल है। वे सदा दोषों से बचते रहे। संयम में दृढ गुरुवर्य को आपवादिक परिस्थितियों में भी दोष इष्ट नहीं था। उनका निरतिचार संयम जीवन दूसरों के लिये प्रेरणाप्रदायी है। यत्किंचित्-जाने-अनजाने भी कोई दोष न लग जाय, यदि लग गया है तो उसकी भी आलोचना-शुद्धि की ओर कितनी सजगता ! जागृत अवस्था में सभी शिष्यों से क्षमा याचना कर यह भावना प्रकट करना कि मैं आज तक के लगे दोषों की आलोचना करता हूँ, पुनः महाव्रतों में आरोहण करता हूँ, उनकी सजगता, सरलता, उच्च साधना का जीवन्त प्रमाण है।

उन महापुरुष के लिये वस्तुतः कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी विमल संयम-साधना से संसार सीमित कर लिया। वे निकट भवी थे, क्योंकि स्वयं जिनप्रवचन इसका प्रमाण है–

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं करेंति जे भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी॥ (उत्तरा. ३६, २६०)

अर्थात् जो जिनवचनों में अनुरक्त होते हैं, जो भावपूर्वक जिनवचनानुसार आचरण करते हैं, उनकी आत्मा कर्ममल से रहित, संक्लेश रहित एवं परीत संसारी हो जाती है।

कुछ महापुरुष नजदीक से प्रभावित करते हैं, वे दूर से प्रभावित नहीं कर पाते। कुछ महापुरुष दूर से प्रभावित कर पाते हैं पर उनका सान्निध्य प्रभावित नहीं कर पाता। गुरुदेव ऐसे विरल महापुरुष थे जिनका चुम्बकीय व्यक्तित्व एवं साधनामय सान्निध्य, दोनों प्रभावित करते थे। उनकी प्रभावक वाणी, हृदय की निर्मलता एवं निस्पृहता भरा जीवन ऐसा था कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, वह सदा उनका बन कर रह जाता। उनकी अतिशय पुण्यशालिता इतनी थी कि उनकी यशःकीर्ति देश-देशान्तर में व्याप्त थी। सम्प्रदाय भेद से परे उनकी कीर्ति पताका समूचे जैन जगत में परचम फहरा रही थी। वे महापुरुष आकृति से भी रम्य थे। उनकी ब्रह्मतेज से दीप्त विहंसती हुई आंखों में मानो स्नेह व कल्याण कामना का अमृत रस लहराता रहता, उनके आनन की मुस्कान भक्त घंटों निहारते रहते, पर तृप्त नहीं हो पाते। बाल्यकाल में ही दीक्षित उस साधक की प्रकृति भी कितनी सरल सहज कि उन्हें किसी में दोष की कल्पना करना भी इष्ट नहीं लगता, देखने या सुनने में रुचि तो बहुत दूर की बात थी। प्रभावक व्यक्तित्व का कृतित्व युगों-युगों तक साधकों को प्रभावित करता रहेगा। 'सामायिक संघ' और 'स्वाध्याय संघ' उनके महान्

कृतित्व के स्वर्णिम अध्याय हैं।

ऐसे विराट् व्यक्तितत्व का बोध तो अनुभवगम्य ही हो सकता है, शब्दों में नहीं गूंथा जा सकता है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है --

तुम्हारे नाम में यश था, तुम्हारे वचन में रस था,
त्याग और संयम की प्रतिमूर्ति, सारा युग तेरे वस में था।

पंचाचार के आदर्श आराधक

• तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.

आचार्य की आठ सम्पदाओं में पहली आचार सम्पदा है। जो संघ आज तक अक्षुण्ण चल रहा है वह विशिष्ट आचार्यों के आचार बल के कारण चल रहा है। तीर्थेश महावीर की परम्परा के अव्याबाध रूप से चलने का प्रमुख कारण है — उनकी आचारनिष्ठ साधना। आचार पांच हैं — ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।

पूर्वसंचित पुण्य का उदय है कि श्रेष्ठ गुरुदेव आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी मसा. के सान्निध्य का हमें सुअवसर प्राप्त हुआ। वे पंचाचार के आदर्श आराधक थे। उषाकाल की लालिमा से सन्ध्याकाल के धुंधलके तक उनका सारा जीवन ज्ञानाचार के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित था।

गुरुदेव का ज्ञान अगाध था। आगम, थोकड़े, इतिहास, संस्कृत, प्राकृत, तन्त्र-मन्त्र चाहे जिस विषय पर उनसे चर्चा की जा सकती थी। सिद्धान्तकौमुदी नामक व्याकरण ग्रंथ उन्होंने लघुवय में पढ़ा था, किन्तु वृद्धावस्था में भी उन्हें उसका ऐसा पक्का ज्ञान था, कि मानो वे उसके अधिकारी वैयाकरण हों। ज्ञान ही नहीं उनका साधक जीवन बरबस आगन्तुक को आकर्षित कर लेता था। भगवन्त ने २३ साल की युवावय में केकड़ी में शास्त्रों में शुद्ध मान्यता क्या है, उसकी ध्वजा फहराई। अजमेर सम्मेलन में बड़े बड़े आचार्यों और सन्तप्रवरों द्वारा आचार्य भगवन्त की ज्ञान-गरिमा का आदर किया गया। सम्मेलन की अनेक समितियों में आपको रखते हुए प्रायश्चित्त समिति का संयोजक नियुक्त किया गया। स्वयं ज्ञानाराधन में तत्पर गुरुदेव अपने शिष्यों में भी इस प्रकार की प्रेरणा करते थे। पण्डित रत्न शुभेन्द्र मुनि जी के साथ हम सवाईमाधोपुर से सन् १९९१ के चातुर्मासोपरान्त पाली पहुँचे। गुरुदेव ने मुझे फरमाया-"महेन्द्र मुनि जी एक घण्टा सुनाते हैं, गौतम मुनि जी एक घण्टा सुनाते हैं, अब तू भी एक घण्टा बाँध ले। मैं अब पढ़ नहीं सकता इसलिए तुम मुझे निरन्तर सुनाते रहो। " बुढ़ापे में भी भगवन्त की स्वाध्याय एवं जिनवाणी के प्रति कैसी निष्ठा ! स्वयं वाचन न कर सकते तो सन्तों से सुनते। भगवन्त ने हम सन्तों को भी खूब पढाया। मुझे याद है , गुरुदेव ने हमको प्रतिदिन एक-डेढ घण्टे निरन्तर पढाया। स्वस्थ रहते हुए एक भी दिन अवकाश नहीं । एक दिसम्बर उन्नीस सौ बयासी को जलगांव से विहार यात्रा प्रारम्भ हुई। कभी हमको विलम्ब हो गया, तो उपालम्भ मिला, परन्तु भगवन्त ने कभी देरी नहीं की। दशवैकालिक सूत्र और संस्कृत का अभ्यास प्रारम्भ करवाया। ज्ञान के प्रति भगवन्त की कैसी ललक थी ! भगवन्त बचपन की उम्र से ज्ञानाराधन में समय का सदुपयोग करते थे। संस्कारदाता बाबाजी हरखचन्द जी म.सा. से प्राप्त समय का सदुपयोग करने के संस्कार भगवन्त में जीवनपर्यन्त रहे। उक्ति है -

क्षणशः कणशश्च विद्यां वित्तं च साधयेत्।
क्षणे नष्टे कुतो विद्या, कणे नष्टे कुतो धनम्॥

एक-एक क्षण से समय की और एक-एक कण से वित्त की रक्षा करनी चाहिए। साधक का जीवन एक-एक क्षण का सदुपयोग करने वाला होता है। भगवन्त इसके आदर्श उदाहरण रहे हैं। उन्होंने दीक्षा के पश्चात् एक वर्ष में पांच शास्त्र कण्ठस्थ किये। ज्ञान तभी टिकता है जब उसमें ही कोई रम जाए, अन्यथा ज्ञान टिकता नहीं। गौर से

किया गया अध्ययन टिकता है इग्नोर (उपेक्षापूर्वक) किया गया अध्ययन टिक नहीं पाता।

वीरपुत्र श्री घेवरचन्द जी म.सा. सन् १९८९ का चौमासा पूर्ण होने पर विहार करके आचार्य भगवन्त की स्वास्थ्य समाधि की पृच्छा करने कोसाणा पधारे। उन्होंने प्रसंगवश फरमाया—"भीनासर चातुर्मास में प्रतिदिन व्याख्यान सुनने जाता था तो भावविभोर होकर व्याख्यान सुनता था।" आचार्य श्री पद्मसागर जी म.सा. भोपालगढ-जोधपुर में प्रसंग सुनाने लगे तो नागौर में आचार्यप्रवर के चरणों में किये गये अध्ययन की स्मृति करके गद्गद् हो गये। अन्य-अन्य परम्परा के सन्त ज्ञान की प्यास शान्त करने के लिए भगवन्त के चरणों में प्रस्तुत रहते थे। ज्ञान के साथ अभिमान का न होना आचार्यप्रवर की मुख्य विशेषता थी। वह प्रसंग कितना प्रेरक है जब चातुर्मास हेतु जयपुर भेजने से पहले खवासपुरा में गुरुदेव ने फरमाया—"व्याख्यान के बाद श्रोताओं द्वारा की जाने वाली प्रशंसा में मुग्ध मत बन जाना। सूंठ के गाँठे से कोई पंसारी नहीं बन जाता। " साहित्य का विशाल ज्ञान है, जीवन में आगम एकमेक हो गया है, प्रायश्चित्त ग्रन्थों के विशारद हैं, जैन इतिहास के प्राचीन स्रोतों की खोज कर समाज के समक्ष उपस्थित किया है। वे महापुरुष कहते हैं कि सूंठ के गांठे से कोई पंसारी नहीं बन जाता। बस यही लघुता प्रभुता दिलाने वाली है।

आपने देश के कोने-कोने में स्वाध्याय का अलख जगाया। जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान और स्वाध्याय विद्यापीठ जैसी संस्थाओं की रूपरेखा समाज के समक्ष प्रस्तुत की। भगवन्त ने एक-एक व्यक्ति को श्रुतज्ञान से जोड़कर आत्म-साधना में बढ़ने की प्रेरणा की। ज्ञानाचार के शुद्ध आराधक थे पूज्य गुरुदेव।

ज्ञान का निर्मल पालन करने वाले साधक का दूसरा आचार दर्शनाचार है। सम्यक्दर्शन की आधारशिला है—सब प्राणियों को अपने समान देखना-समझना - सव्वभूयप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ ।

सम्यक्त्व की भूमिका में पर की निन्दा नहीं हो सकती। उसमें सबके प्रति अपनापन होता है। पूज्य गुरुदेव ने भजन में कहा भी है — "निन्दा विकथा नहीं पर घर की, जय जय हो रत्न मुनीश्वर की।" मैंने बचपन से सुना था कि यदि आपके द्वार की सीढ़ियाँ मैली हैं तो पड़ोसी की छत के कूड़े की आलोचना मत कीजिए। आचार्य भगवन्त का जीवन प्रेरणा प्रदान करता है कि हम पराये घर की चर्चा को प्रोत्साहन न दें। आचार्य श्री का सूत्र था गुणदर्शन, गुणवर्णन और गुणग्रहण। गुणग्रहण अपेक्षा से कह रहा हूँ, वरना गुण का प्रकटीकरण होता है । भगवन्त के रोम-रोम में वीतराग वाणी रमी हुई थी। दर्शनाचार के आठ अंगों का उन्होंने सम्यक् पालन किया।

गुरुदेव के चरणों में लोगों का मस्तक श्रद्धा से झुक जाता था। मेरी दीक्षा के पश्चात् ब्यावर में पुलिस का कोई उच्चाधिकारी एस. पी. या डी. एस. पी. रात्रि में गुरुदेव के दर्शनों हेतु आया। मैं भी वहीं चरणों में बैठा था। उस अधिकारी ने आचार्यदेव के चरणों में वन्दन किया और बहुत ही गूढ ध्यान सम्बन्धी प्रश्न पूछे । गुरुदेव ने उनका ऐसा समाधान किया कि वह अधिकारी गद्गद् हो गया। वह जैन नहीं था, किन्तु अपने प्रश्नों का समाधान पाकर उसने कहा कि ऐसा सुन्दर समाधान तो स्वयं साधना पथ पर चलने वाले साधक के पास ही हो सकता है।

चारित्राचार में पांच समिति एवं तीन गुप्ति की आराधना आती है। किसी जीव की हिंसा न हो, इसके लिए आठ वर्ष की उम्र से ही रात्रि भोजन का त्याग किया। भगवन्त के अन्त समय तक चारित्र में दृढता बनी रही। उत्तराध्ययन सूत्र के २४ वें अध्ययन में उल्लेख है - 'तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे' अर्थात् गमन क्रिया में तन्मय होकर एवं उसी को सम्मुख रखकर उपयोग पूर्वक चले। बातचीत न करे। उसी में उपयोग रहे। चलते समय साधक चार हाथ आगे की भूमि देखता हुआ चलता है। आचार्य भगवन्त का जीवन ईर्या समिति के सम्यक् पालन पर सदैव खरा

उतरा। भाषा समिति का पालन करते हुए एक-एक शब्द तोलकर बोलते थे। निष्प्रयोजन बोलना, अनावश्यक बोलना आपके स्वभाव में था ही नहीं। भगवन्त एषणा समिति के निर्दोष पालन का भी पूरा ध्यान रखते थे। दवा भी कभी दोष वाली आ जाए तो प्रायश्चित्त देकर उसका शुद्धीकरण करवाते थे। अन्तिम समय में गुरुदेव ने आलोचना - प्रतिक्रमण का कितना सुन्दर रूप रखा, आपने निमाज में देखा है, सुना है।

पानी में रोटी चूरकर खाने का जिन्हें अभ्यास हो , उनके लिए माण्डले के दोष की सम्भावना ही कहाँ ? स्वाद क्या होता है, इसे भगवन्त शायद जानते ही नहीं थे। या यूं कहें आत्मरस में निमग्न साधक को बाह्य रस आ ही नहीं सकता। वस्त्र-पात्र लेते-रखते समय आप पूरी यतना रखते थे। आज साधक भूल जाते हैं कि शरीर भी एक उपकरण है। वे दीवार का सहारा लेते हैं, परन्तु भगवन्त ने कभी टेका नहीं लिया। रात में विश्राम के पूर्व शरीर को पूंजकर सोते।

बूंदी में सन्तों द्वारा आग्रह किया जा रहा था, किन्तु भगवन्त की इतनी सजगता कि देखो, डॉक्टर कच्चे पानी से हाथ न धो ले। जयपुर से निवाई के मार्ग में कौथून ग्राम में रात भर पानी टपक रहा था। उस छोटे से स्थान से सामने कमरे में जा सकते थे, पर भगवन्त का चिन्तन कि पानी की बूंद मेरे जीव के समान है। ऐसा साधक कभी भी शरीर की सुविधा को प्रधानता नहीं दे सकता। हरिप्रसादजी एवं रामदयाल जी वहां मौजूद थे। ७८ साल की उम्र में सारी रात बैठे निकाल दी गई, यह है चौथी समिति।

जीव अजीव की ओर देखता है तो पाप होता है , आस्रव होता है, बंध होता है। जीव मुक्ति की ओर देखता है तब संवर होता है, निर्जरा होती है और मुक्ति की ओर चरण बढ़ते हैं। जिनका लक्ष्य आत्मा की शुद्ध दशा प्राप्त करना है वे साधक शरीर को क्लेश पहुँचाते हुए भी ग्लानि का अनुभव नहीं करते।

पांचवी समिति है परिष्ठापना। तीन किलोमीटर जाना है, सुबह-शाम जाना है, पर जाना है तो जाना ही है। क्यों, तो जीव-जन्तु रहित भूमि पर शरीर से निकलने वाले पदार्थ को परठना है । इससे आपने प्रेरणा ली कि शरीर को मल बर्दास्त नहीं तो आत्मा को कैसे मलिन होने दे।

संघनायक को अनुशासन के लिए कठोर भी बनना पड़ता है, पर उनके भीतर हित की भावना रहती है। वह शिष्य को डांटेगा तो भी हित की भावना से, यही मनोगुप्ति है। मन को ऐसा साधने पर देवता वन्दन करे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। भगवन्त की साधना के कई-कई पहलू हैं। वे काया को संकुचित करके बैठ जाते। जिस करवट सो गये, करवट बदलते ही उठ जाते। यह सब चारित्र की निर्मल आराधना से होता है। निमाज में संथारे के समय कोई प्रेरणा नहीं, किन्तु जैनेतर लोगों में अहिंसा की भावना प्रस्फुटित होना और जीवहिंसा का त्याग करना, आपके चारित्राचार का ही तो प्रभाव था। आपने निःसंग रहकर श्रमणसंघ को गुरुकुल बनाया। मोक्ष-मार्ग में चलकर जो समीप आया उसे शरण दी। अनासक्त रहकर आचरण में तत्परता रखी।

जोधपुर में खरतरगच्छ के सन्त श्री मणिप्रभसागर जी कहने लगे — "हम विद्वत्ता के लिए नहीं , सरलता के लिए इनके पास आते हैं।" पांच समिति-तीन गुप्ति का निर्मल पालन करने वाला बारहवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है और आचरण के अभाव में पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का ज्ञान होने पर भी गुणस्थान मिथ्यात्व ही रह जाता है।

हमारा हर चरण मुक्ति की ओर बढ़े। भगवन्त ने अन्त समय तक हमसे कहा - "मर्यादा का पालन करना, आचार्य श्री रतनचन्द्र जी महाराज के इक्कीस बोल की मर्यादा सुरक्षित रखना और मैं खाली हाथ न चला जाऊँ इसका ध्यान रखना।" भगवन्त को संथारे रूपी कलश की अत्यन्त उत्कण्ठा थी। अग्लान भाव से संघ की सेवा करने वाला आचार्य जघन्य इसी भव में, मध्यम दूसरे भव में और उत्कृष्ट तीन भव में निश्चित मोक्ष में जाता है।

भगवन्त प्रेरणा करते कभी थकते नहीं थे। वे सारणा-वारणा-धारणा करते हमें जागरूक रहने की शिक्षा देते। आचार्य दीप समान होते हैं 'दीवसमा आयरिया', जो स्वयं के जीवन को प्रकाशित करते हुए दूसरों के जीवन को प्रकाशित करते हैं। भगवन्त के जीवन से आज भी प्रेरणा मिलती है। प्रेरणा जिस किसी नाम से मिले वह चाहे सुदर्शन हो, कामदेव हो, अरणक या कुण्डकोलिक हो प्रेरणा आचार से मिलती है। भगवन्त बोलते या नहीं, उनका आचार बोलता था। आचार स्वयं प्रेरणा करता है। संथारे को छोड़कर तेले से बडी तपस्या नहीं की, लेकिन उणोदरी, रस-परित्याग आदि तप करते रहे। उस महापुरुष ने चालीस वर्षों तक दोपहर की भिक्षा ग्रहण नहीं की। तली हुई चीजें, खटाई, आचार पातरे में देखना पसन्द नहीं । कहा है – जिते रसे, जितं सर्वम् – जिसने स्वाद को जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया।

स्वाद पर नियन्त्रण है तो चारों इन्द्रियाँ काबू में रहेंगी। आचार्य भगवन्त ने स्वाद पर विजय मिलायी। उनका सधा हुआ जीवन था। वे घंटों एक आसन से बैठ सकते थे। उनका स्वयं का जीवन निर्दोष था, दूसरों को विनय-वैयावृत्त्य और सेवा के संस्कार देकर आप आगे बढ़ाते।

संघ के प्रति समर्पण और स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार के प्रति निरन्तर प्रयास आज भी हमें प्रेरणा देते हैं। वीरपुत्र घेवरचन्दजी महाराज कहते—हस्ती गुरु की क्या पहिचान-सामायिक स्वाध्याय महान्। स्वाध्याय के प्रति भगवन्त की भावना देखिए, अन्त समय तक भगवन्त निरन्तर स्वाध्याय का पान करते रहे।

आपकी ध्यानसाधना उत्कृष्ट थी। मेड़ता में एकान्त में ध्यान करने पधारे एवं कह गए कि इधर कोई नहीं आवे। एक भाई बिना जानकारी के कारण संयोग से उधर चला गया। उसने देखा कि भगवन्त एक पैर पर खड़े ध्यान कर रहे थे।

गुरुदेव ने जानकी नगर, इन्दौर में मुझे ध्यान सिखाना प्रारम्भ किया। कन्हैयालाल जी लोढा सिखा रहे थे। गुरुदेव पाट पर विराजे हुये थे । भगवन्त उनकी ध्यान पद्धति को जानने के लिए पाटे से उतर कर नीचे विराज गये। कैसी महानता ! कैसी सरलता !

सरलता साधुता की कसौटी है - से जहावि अणगारे उज्जुकडे, नियागपडिवन्ने, अमायं कुव्वमाणे ...। साधक में तीन विशेष बातें चाहिए– सरलता, लक्ष्योन्मुखता और पूर्ण पुरुषार्थ। वहां बेईमानी नहीं, लुकाव छिपाव नहीं। साधक सरल है, लक्ष्य के प्रति सदैव सजग है और माया नहीं है तो वह सच्चा वीर्याचार का पालक है। अपने वीर्य को छुपाना माया है। पुरुषार्थ का गोपन करना भी माया है। ज्योतिष शास्त्रानुसार तीसरा घर पुरुषार्थ का बताया जाता है। भगवन्त की कुण्डली देखकर कहा जा सकता है कि उनका तीसरा घर बलिष्ठ था। उस महापुरुष ने बचपन से पुरुषार्थ किया और अन्त समय तक पुरुषार्थ छोड़ा नहीं। संघ-सेवा में कितना पुरुषार्थ किया। लम्बे विहार का पुरुषार्थ और फिर ध्यान, मौन और स्वाध्याय में पुरुषार्थ।

भगवन्त ने बचपन से वृद्धावस्था तक कैसा वीर्य फोड़ा। उन्होंने किसी रूप में वीर्य को नहीं छुपाया। सुन्दर पदार्थ सुन्दर नजर आयेगा। मिश्री को कहीं से चखो, मिठास देगी। लड्डू का कहीं से कोर खाएं वह मीठा ही होगा। मति की स्मृति नहीं की जाती और मरण का स्मरण नहीं किया जाता। भगवन्त ने पंचाचार का सम्यक् पालन करके हमको आचार का पाठ पढ़ाया। उनका जीवन हमें युगों युगों तक प्रेरणा देगा। गुणवर्णन व गुणदर्शन के लिये हमारी तैयारी होगी तभी हम उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। (१३ मई २००३ के प्रवचन से संकलित)

■

आइच्चेसु अहियं पयासयरा

• शासनप्रभाविका श्री मैना सुन्दरजी म.सा.

जे सउ चन्द उगावहिं सूरज चढहिं हजार।
एवे चानण हों दिया, गुरु बिन घोर अन्धार।

आचार्य संघ का प्रहरी होता है। सघन अंधकार को जैसे सूर्य की चमचमाती रश्मियाँ नष्ट कर देती हैं वैसे ही श्रुत, शील और बुद्धि सम्पन्न आचार्य चतुर्विध संघ के अज्ञान अंधकार को नष्ट कर देते हैं।

आचार्य गुणों के पुंज होते हैं। आचार्य श्री हस्ती का जीवन सूर्य की तरह तेजस्वी, चन्द्र की तरह सौम्य और सिंह की भांति निर्भीक था।

आचार्य श्री के जीवन के क्षण -क्षण में और मन के अणु-अणु में मधुरता थी।

आचार्य श्री संस्कृति के सच्चे संरक्षक, जन-जन के पथ-प्रदर्शक और आलोक स्तम्भ थे।

आचार्य धर्म-संघ का पिता होता है। वे तीर्थंकर तो नहीं , पर तीर्थंकर के समान होते हैं। तीर्थंकर के अभाव में चतुर्विध संघ का संचालन व संवर्धन करते हैं। भूले-भटके राहियों को सही दिशा का सूचन करते हैं।

आचार्य श्री दीपक की तरह होते हैं। कहा है-"दीवसमा आयरिया।" वे स्वयं जलकर दूसरे दीपकों को भी जलाते हैं। आचार्य आचारनिष्ठ महापुरुष होते हैं। पंचाचार की सुदृढ़ नींव पर ही उनके जीवन-महल का निर्माण होता है। आचार्य श्री हस्ती ऐसे ही महापुरुष थे।

समुद्र के जलकणों की तथा हिमालय के परमाणु की तो गणना करना फिर भी सहज व सरल है, किन्तु आचार्यों के गुणों की गणना करना असंभव-सा प्रतीत होता है। आचार्य श्री कुशल चिकित्सक थे । वे भव-व्याधियों से ग्रस्त व त्रस्त मानव-समाज को सम्यक्त्व रूपी औषधि देकर भवरोग से मुक्त करते थे।

आचार्य श्री 'सागरवर गंभीरा' थे, 'चन्देसु निम्मलयरा' थे, 'आइच्चेसु अहियं पयासयरा' थे।

आचार्य श्री हस्ती चतुर्विध संघ की मुकुटमणि थे। जिनशासन की दिव्य दिनमणि थे और रत्नवंश की पवित्र चिन्तामणि थे। आचार्य हस्ती व्यक्ति नहीं, संस्था नहीं, आचार्य नहीं, किन्तु युगपुरुष थे। उन्होंने युग की विषम परिस्थितियों को देखा, समझा और पाटा।

आचार्य श्री की वाणी में ओज, हृदय में पवित्रता और साधना में उत्कर्ष था। आपका बाह्य व्यक्तित्व जितना नयनाभिराम था, उससे भी कई गुणा अधिक उनका अन्तः जीवन मनोभिराम था। लघु काया एवं मंझला कद, दीप्तिमान निर्मल श्यामवर्ण, प्रशस्त भाल, उन्नत शीर्ष, नुकीली ऊँची नाक, प्रेम पीयूष बरसाते उनके दिव्य नेत्र देखते ही दर्शकों को मंत्र मुग्ध बनाते थे।

आप स्वयं बहुत विशिष्ट दर्जे के साहित्यकार थे और अपने शिष्य-शिष्याओं में भी यही गुण देखना चाहते थे।

होगी कोई ४०-४५ वर्ष पुरानी बात। गुरु भगवंत ने मुझे पूछा "महासती मैना जी, दिन को आप जो पढ़ती हैं,

क्या रात्रि को सोते समय उसका स्मरण आपको होता है।" मैंने कहा- "हाँ भगवन् ! मुझे दिन की पठित बातें रात को बहुत याद आती हैं।"

गुरुदेव ने फरमाया - "उसे सुबह उठते ही, नित्यकर्म से निवृत्त होकर लिख लिया करना।" मेरी गुरुणी जी श्री मदन कंवर जी म.सा. ने भी मुझे पूरा सहयोग दिया और मैंने गुरु आज्ञा का अक्षरशः पालन किया।

सर्दियों के दिनों में बिछौने के लिए लाई हुयी कतरन में से कागज की लीरियाँ निकाल-निकाल कर मैंने लिखना प्रारम्भ किया।

आज मैं जो कुछ हूँ, चतुर्विध संघ के समक्ष हूँ। यह सब मेरी नहीं, उस घड़ने वाले महापुरुष की अनूठी कृपा-दृष्टि का फल है, जो आप देख रहे हैं।

आपने तो बचपन की घड़ियों में ही दृढ संकल्प कर लिया था कि मुझे तो कर्म-बंधनों से मुक्त होना है। साथ ही जो प्राणी गलत रूढ़ियों में बंधे हुए हैं, उनको भी व्यसन-फैशन के बन्धनों से मुक्त कराना है।

बंधन - मुक्ति के लिए उन्होंने शास्त्रों का स्वयं गहन अध्ययन किया और जो शास्त्र पढ़ने से भयभीत थे और पढ़ने से कतराते थे, जिनकी ऐसी धारणाएँ बन चुकी थीं कि - 'पढ़े सूत्र तो मेरे पुत्र' ऐसे लोगों को भयमुक्त कर सैकड़ों की संख्या में स्वाध्यायी बनाये।

वे स्वाध्यायी दूर-दूर देश और विदेशों में जाकर पर्युषण में जिन-धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

आज के इस भौतिक युग में जहाँ चारों तरफ हिंसा, व्यसन एवं स्वार्थ-वृत्ति का जहां देखो दौर चल रहा है, वहाँ आचार्य भगवन्त ने सत्य, अहिंसा, शाकाहार, व्यसन-मुक्ति और प्रामाणिकता का उपदेश देकर आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयत्न किया। कल तक जिन्हें देख-देख कर आप-हम खुशी से झूम उठते थे, वे संघ के छत्रपति, जैन-जगत के प्रखर सूर्य रूपा-केवल के अनुपम लाल और मां भारती के बाल, आज हमारे बीच में भौतिक पिंड से विद्यमान नहीं हैं, किन्तु उनके उपदेशों की सर्चलाइट आज भी हमें प्रकाशित कर रही है। कवि के शब्दों में -

धन्य जीवन है तुम्हारा, दीप बनकर तुम जले हो।
विश्व का तम-तोम हरने, ज्यों शमा की तुम ढले हो।
अम्बर का सितारा कहूँ, या धरती का रत्न प्यारा कहूँ।
त्याग का नजारा कहूँ, या डूबतों का सहारा कहूँ।
धीर-वीर निर्भीक सत्य के, अनुपम अटल बिहारी।
तुम मर कर भी अमर हो गए, जय हो हस्ती तुम्हारी।"

वे मानव मात्र के मसीहा, दया के देवता, भारतीय संस्कृति के देदीप्यमान रत्न, सन्तरूपी मणिमाला की दिव्यमणि, साधु समाज की ढाल, बात के धनी, सच्चे योगी और शासन सूर्य थे।

युगपुरुष के रूप में आचार्य श्री हस्ती का जीवन सदैव स्मरणीय रहेगा। वे मेरे जीवन के निर्माता, आगम के ज्ञाता, जन - जन के त्राता थे। उनको -

"श्रद्धा पीड़ा भरे नयन, मन करते हैं, अन्तिम नमन।"

अन्त में-"मात कहूँ कि तात कहूँ, सखा कहूँ जिनराज, जे कहूँ ते, ओछ्यो बध्यो, मैं मान्यो गुरुराज।" ■

असीम उपकारक आचार्य श्री

• पं. श्री जीवनमुनिजी म.सा.

भौतिक शरीर से भले ही वे नहीं रहे, पर उनकी अनुपम श्रुत व चारित्र रूपी यश ध्वजा आज भी लहरा रही है। वे दिन, वह समय, वे पल जो उनकी पावन सन्निधि में बीते थे, अकस्मात् तरोताजा हो उठे। मेरे जीवन के दृढाधार रूप में वे मेरे समक्ष उपस्थित हुए थे। वीतराग का पावन पथ उन्होंने ही तो मुझे प्रदान किया था। जिन-शासन के वीर सैनिक रूप में उन्होंने ही तो मुझे सन्निधि दी थी। वह दिन आज मेरे हृदय में कमनीयता से संजोया हुआ है, जब पूज्य प्रवर ने अपने शिष्यत्व रूप में मुझे स्वीकार करके खुशियों की बहार बरसायी थी मुझ पर। अहो ! कितनी दिव्यता थी, उनके मुखमण्डल पर। मैं तो प्रथम संदर्शन और संमिलन में ही उनके यशस्वी मुक्तिपथ पर गतिमान चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित हो गया था। क्या नहीं मिला उनसे, सब कुछ पाया। प्यार, दुलार, ममत्व, अपनापन सब ही तो दिया और सबसे महत्त्वपूर्ण जो उन्होंने दिया, वह था—जीवन का कल्याण और आनंदकारी मुक्ति का पथ। श्रुत और चारित्र की अनमोल निधि उन्होंने अति प्रेमलता से, भाव-विभोर होकर दी और मैंने ली। कैसे भूल सकता हूँ उनका वह दिव्यदान। वह तो मेरे जीवन में, हृदय में प्राणों में आज भी झंकृत हो रहा है।

पूज्यप्रवर का ज्ञानकोष आगम-ग्रन्थों के सम्पादन, जैन-धर्म का मौलिक इतिहास, प्रवचन-साहित्य आदि-आदि साहित्यिक गुलदस्तों से सजा हुआ है , जो उनकी गहन, गम्भीर दार्शनिकता, सूक्ष्म दृष्टिकोणता और तत्त्वज्ञान की गहरी पकड़ को प्रकाशित करता है। ज्ञान का फल लघुता एवं विनय बताया गया है। पूज्यप्रवर आचार्य पद की गरिमा-महिमा और महत्ता से संयुक्त होकर भी विनय की साकार प्रतिमूर्ति थे।

"आचार्य प्रवर संघ नायक होकर भी
विनय, विनम्रता की दिव्य मूर्ति थे।
ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय-तप-संयम की एक भव्य विभूति थे।
बीसवीं सदी के इस युग पुरुष की महिमा अपरम्पार है।
'गुरु' गुरुपद धारी होकर भी,
सचमुच लघुता की प्रतिमूर्ति थे॥"

पूज्य प्रवर एक परम्परा विशेष से आबद्ध होकर भी निराबद्ध थे। जहां-जहां भी, जिन-जिन क्षेत्रों में पूज्य श्री का परिभ्रमण हुआ वहां-वहां उन्होंने विषमता की , राग-द्वेष की जलती आग को बुझाने का प्रयास किया और समता के अपनत्व के सुनहरे सुरभित फूल ही बिछाये। इसके साथ ही अपने समस्त उपासकों को भी समताभाव का अमृत पिलाया। सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा के पीछे उनका यही आत्मीय भाव रहा था कि जिनशासन के उपासक वर्ग में समताभाव का संचार होना चाहिये। इसी शुभत्वभावेन पूज्य प्रवर श्री ने सामायिक-स्वाध्याय का प्रचार गांव-गांव और घर-घर किया।

कितनी गहन और महान् थी—उनकी साधना। हो भी क्यों नहीं ? जीवन के शैशव से ही वे जिन शासन के उपासक हो गये थे। बीस वर्ष की अत्यल्प, लघु उम्र में वे जिन-शासन के नायकत्व के उच्च धवल शिखर पर आरूढ़ हो गये थे। कितने ही अनुभवों से गुजर कर उनके दिव्य यशस्वी जीवन का निर्माण हुआ था। यौवन की

चंचल अल्हड़ देहरी पर खड़े होकर भी वे प्रौढ़त्व की गम्भीरता से संयुक्त हो गये थे। वहां तो अथाह, अतल, असीम सागर-सी गहनता, गम्भीरता, विशालता ही थी। ऐसे दिव्य व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी को 'गुरु' रूप में पाकर मुझे क्यों न गर्व होगा। यह तो भाग्य की, कर्मों की विचित्रता ही रही कि मुझे उनका पूर्ण सान्निध्य नहीं मिल पाया। फिर भी पूज्य प्रवर श्री के अनन्य उपकारों को मैं भूल नहीं पाया हूँ, न ही भुला सकता हूँ।

जिन शासन के महान् ज्योतिर्धर आचार्यों की जगमगाती दिव्य परम्परा में पूज्य प्रवर आचार्य श्री का जीवन और कृतित्व अपना एक सुयोग्य स्थान स्थापित किये हुए है और युग-युगों तक रहेगा भी।

पूज्य प्रवर आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. न केवल नाम से 'हस्ती' थे, अपितु कृतित्व में भी 'हस्ती' थे। यदि यूँ कहूँ तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'हत्थीसु एरावणमाहु' अर्थात् वे ऐरावत हस्ती के समान अतिशय पुण्यशाली महान् पुण्य प्रभावक थे। जैसे—हस्तियों में ऐरावत हस्ती सर्वश्रेष्ठ और महान् माना जाता है, वैसे ही जिनशासन की गौरवमयी परम्परा में पूज्य श्री भी श्रेष्ठता के धारक माने जाते हैं।

■

असीम श्रद्धा के केन्द्र मेरे गुरु भगवन्त

• श्री मोफतराज पी. मुणोत

मेरी असीम श्रद्धा के केन्द्र पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. का जब भी स्मरण करता हूँ, मन प्रमोद एवं उत्साह से भर जाता है। पूज्य गुरुदेव के रोम-रोम में सन्तपना था। उन्होंने उच्च से उच्चकोटि के सन्त का जीवन जीया। वे अप्रमत्तता, निर्लिप्तता और असाम्प्रदायिकता की प्रतिमूर्ति थे। गुरुदेव के जीवन में कथनी एवं करनी में मैंने एक प्रतिशत भी अन्तर नहीं पाया। वे ज्ञान एवं क्रिया के बेजोड़ संगम थे। उनकी साधना का मेरी दृष्टि में कोई सानी नहीं।

मेरे पिता श्री पुखराजजी मुणोत गुरुदेव के पक्के श्रावक थे । मैं भी बचपन में गुरुदेव के दर्शन करने जाया करता था, किन्तु अधिक निकटता सन् १९८२ के जलगाँव चातुर्मास से आयी। मैं गुरुदेव के ज्यों ज्यों निकट आया, त्यों त्यों श्रद्धा की अगाधता बढ़ती ही गयी। वे सद्गुणों के पुंज थे। मुझे लगा, मैं अपने जीवन को गुरुदेव के सम्पर्क से उन्नत बना सकता हूँ। मैं याद करता हूँ, तो अपने जीवन में सकारात्मक परिवर्तन का अनुभव कर हर्षित होता हूँ।

सन् १९८६ ई. के पीपाड़ चातुर्मास में मुझे गुरुदेव के सानिध्य में रहने का अवसर अधिक मिला। चातुर्मास में मेरी धर्मपत्नी शरद चन्द्रिका ने अठाई तप किया। मैं इस खुशी में भोज का आयोजन करना चाहता था। भगवन्त को इस बात का पता लगा तो फरमाया - "आप लोगों ने शादी-ब्याह महंगे कर दिए, जीवन-मरण महंगा कर दिया, तपस्या को तो महँगा मत करो।" गुरुदेव के संकेत को मैं समझ गया और अठाई तप के उपलक्ष्य में भोज का विचार छोड़ दिया। उन्होंने इस उपलक्ष्य में मुझे कुछ त्याग करने की बात कही। मैंने सिगरेट छोड़ दी। उसके बाद सिगरेट पीने की कभी इच्छा ही नहीं हुई।

पाली में अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्षीय दायित्व की चर्चा चली। तत्कालीन संघाध्यक्ष डॉ. सम्पतसिंहजी भाण्डावत, संघ-संरक्षक श्री नथमलजी हीरावत, संघ-कार्याध्यक्ष श्री रतनलालजी बाफना आदि सुश्रावकों ने मुझसे दायित्व स्वीकार करने को कहा। मैंने उनसे कहा मुझे यह प्रपंच लगता है। मैं बम्बई में रहता हूँ और संघ का कार्य-क्षेत्र राजस्थान में अधिक है। मैंने अपनी स्थिति संघ-सदस्यों के समक्ष स्पष्ट करते हुये कहा कि मैं न तो नियमित सामायिक ही करता हूँ और न मुझे धार्मिक-क्षेत्र की कोई विशेष जानकारी है। बम्बई जाकर तो मैं दुनिया भूल जाता हूँ। अतः मेरी बजाय संघ की रीति-नीति जानने - समझने वाले व्यक्ति का चयन करना चाहिए। संघ के सुज्ञ श्रावकों को मेरे उत्तर से सन्तोष हुआ या नहीं, वे मुझे आचार्य भगवन्त के पास ले गये। वहाँ भी चर्चा चल निकली। श्रावकों की विचार - चर्चा को सुनकर गुरुदेव ने मात्र इतना ही फरमाया -"संघ-सेवा भी कर्म-निर्जरा का बड़ा साधन है" अल्पभाषी गुरुदेव की बात मेरी समझ में तब नहीं आयी, किन्तु अब मुझे इस वचन पर पूरा विश्वास है। निःस्वार्थ संघ-सेवा अपने आत्म-विकास में निश्चित ही सहायक है। संघ के अध्यक्ष पद पर रहते हुए मेरे जीवन में कई परिवर्तन हुए। किसी भी कारण से संघ का पद लज्जित न हो, इसलिए चलने, बैठने, बात करने या अन्य प्रवृत्तियों में परिवर्तन का अनुभव हुआ। क्रोध और अहंकार के भावों पर भी नियन्त्रण हुआ। मुझे यह ध्यान रहने लगा कि कोई कार्य ऐसा नहीं करना, जिससे संघ की गरिमा कम हो। संघ के अधिकारी के रूप

में कोई भी बात कहने से पूर्व सोचना पड़ता है । इस प्रकार मेरे जीवन में पूर्वापेक्षया काफी सुधार हुआ। मैं युवक संघ के सदस्यों को कहूँ कि आप प्रामाणिक बनो, तो पहले मैं अपने में प्रामाणिकता ढूंढने लगा। इस तरह सहजरूप से परिवर्तन होने लगा।

संघ का दायित्व जब सम्हाला, तब गुरुदेव ने तीन श्लोक कहे थे, जो मुझे आज भी याद हैं-

पापान् निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

संस्कृत श्लोक का हार्द मेरी समझ के बाहर था, अतः मैंने निवेदन किया - "भगवन् ! इसका क्या अर्थ है?" आचार्य भगवन्त ने फरमाया - "तत्त्व के ज्ञाता पुरुषों ने सन्मित्र के लक्षण कहे हैं कि सन्मित्र अपने मित्र को पाप कार्यों से हटाता है और हित कार्यों में लगाता है। रहस्य की बातों को छुपाकर रखता है तथा उसके गुणों को उजागर करता है विपत्ति आने पर साथ नहीं छोड़ता, अपितु सहयोग करता है।" गुरुदेव ने फरमाया - "तुम संघ के मित्र हो, मित्र बने रहना।" गुरुदेव ने आगे फरमाया -

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

चलते हुए कहीं पर भी असावधानी या प्रमाद के कारण स्खलना होती ही है । दुर्जन उसे देखकर हँसते हैं तथा सज्जन सहारा देते हैं, उठाते हैं।

तीसरा पद्य था —

धन दे तन को राखिए, तन दे रखिए लाज।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म रे काज॥

गुरुदेव के वे वचन मुझे आज भी आनन्दानुभूति कराते हैं। संघ-हितैषी संघ के मित्र ही होते हैं। यदि आपसी मनमुटाव के कारण संघ को नुकसान होता है तो यह संघ-हितैषिता नहीं है।

मैं पहले थोड़ा थोड़ा आचार्य रजनीश के सम्पर्क में भी था, किन्तु गुरुदेव के सम्पर्क में आने के पश्चात् अन्यत्र कहीं जाने की इच्छा ही नहीं हुई। आचार्य भगवन्त की दृष्टि स्पष्ट थी। एक बार आचार्य रजनीश के लेख को लेकर विचार चल रहा था, तब गुरुदेव ने फरमाया - "जिसकी कथनी करनी में फर्क हो, उसका प्रचार-प्रसार उचित नहीं।" एक बार मैंने गुरुदेव से पूछा - "तपश्चर्या करने वाले क्या काया को कष्ट नहीं देते ?" गुरुदेव ने फरमाया - "तपस्या में कर्म-निर्जरा का लक्ष्य होता है, इसलिये तप करने वाला कष्ट का नहीं, आनन्द का अनुभव करता है। तप का आराधक तो यही अनुभव करता है कि मैं यह शरीर नहीं, वरन् इसमें स्थित आत्मा हूँ, यह मानव देह मोक्ष पाने का साधन है, तपाग्नि से पूर्व संचित कर्मों को जलाकर मैं अपना शुद्ध बुद्ध स्वरूप प्रगट कर सकूँ। इसी भावना से तप करने वाला साधक कभी कष्टानुभव नहीं करता।"

तप के उद्देश्य विषयक गुरुदेव के इस समाधान से मुझे भी तप के प्रति प्रतीति व तपाराधन की इच्छा हुई और भगवन्त की कृपा से मुझे प्रयोगात्मक रूप में यह आनन्द प्राप्त करने का अवसर भी मिला।

गुरुदेव विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। विषम परिस्थितियों में भी निर्णय लेने की गुरुदेव में अद्भुत क्षमता थी। शीतलमुनि जी के प्रकरण में उनका निर्णय संघ-अनुशासन एवं निश्छल साधना-जीवन का पक्षधर था।

शीतलमुनिजी के बूँदी चातुर्मास के समय गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन करने पर गुरुदेव ने फरमाया - "मुनिजी को मैंने मौन रहने की आज्ञा प्रदान की। मुनिजी को मेरी आज्ञा पालने में कष्ट हो रहा है, इसमें मुझे हिंसा का आभास होता है। अब मैं उनको आज्ञा नहीं दूंगा।" यह गुरुदेव की साधना-निष्ठ जीवन शैली का परिचायक था।

सम्प्रदाय के संबंध में एक बार विचार प्रकट करते हुए गुरुदेव ने फरमाया - "सम्प्रदाय एक पारिवारिक व्यवस्था है। अपने परिवार की उन्नति व प्रगति करना अपना फर्ज होता है। पर अपनी उन्नति किसी की अवनति पर नहीं होनी चाहिये । इसी प्रकार अपनी प्रशंसा किसी की निन्दा पर एवं अपना सुख किसी के दुःख पर आश्रित नहीं होना चाहिए।" कितने उच्च विचार थे उस महापुरुष के। गुरुदेव के मन में किसी भी सम्प्रदाय के प्रति विद्वेष एवं विरोध नहीं था, अपितु गुणि-सन्तों को देखकर उनके चेहरे पर सदैव प्रमोद भाव की मुस्कान झलकती थी।

गुरुदेव संकेत की भाषा में बात कहते थे। धीरे-धीरे उनके संकेतों को समझने लगा। उनके द्वारा कहे गये कथन का रहस्य समझ में आने पर मुझे प्रसन्नता का अनुभव होता था।

संथारा ग्रहण करने के पूर्व निमाज में पूज्य गुरुदेव ने जो भोलावण दी, वह मुझे प्रतिपल स्मरण रहती है। उन्होंने फरमाया था - "मैंने तो इस संघ का संचालन मात्र मामूली संकेतों से बगैर कोई टंटा लगाये कर लिया। मेरे श्रावक भी इतने श्रद्धालु थे कि मुझे कभी कहने का अवसर नहीं दिया। आगे भी श्रावक अपना धर्म खुद निभायेंगे और सन्तों को श्रावकों के कामों में नहीं डालेंगे तो ही संघ की गरिमा कायम रहेगी। " उनकी यह भोलावण मेरे जीवन का अंग बन गई, उनका यह उपदेश मेरे लिये बहुत बड़ा मन्त्र बन गया।

गुरुदेव के संथारे का दृश्य अद्भुत था। उनकी योजनाबद्ध साधना अनूठी थी। संथारा देखकर मुझे लगा कि मृत्यु का वरण कितनी सुन्दरता से किया जा सकता है। आचार्य भगवन्त का संथारा मृत्यु पर विजय का सफल प्रयोग था। मैं सचमुच भाग्यशाली हूँ जो गुरुदेव का आशीर्वाद पा सका। मैं उस महापुरुष का जब भी स्मरण करता हूँ तो मुझे अलौकिक शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है। ऐसे श्रद्धास्पद गुरुवर्य को कोटिशः वन्दन-नमन।

मार्च, १९९८

• मुणोतविला, वेस्ट कम्पाउण्ड लेन,
६३-के भूलाभाई देसाई रोड, मुम्बई ४०००२६

कृपालु करुणानिधान आचार्यश्री

• श्री रतनलाल बाफना

भगवान महावीर के शासन की विशुद्ध स्थानकवासी परम्परा में गौरवशाली रत्नवंश का अभूतपूर्व योगदान रहा है । इस परम्परा के ज्ञान-क्रियानिष्ठ आचार्यों ने अपनी उत्कृष्ट संयम-साधना के बल पर जन-जन के हृदय-पटल पर गहरी छाप अंकित की है। रत्नवंश के सप्तम पट्टधर सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक युगपुरुष आचार्य श्री हस्ती का नाम तो बीसवीं शताब्दी के इतिहास में अमर बन गया। ७१ वर्षों के दीर्घ संयमी-जीवन में उन्होंने गांव-गांव, घर-घर और व्यक्ति-व्यक्ति को धर्म से जोड़ने का महान् कार्य किया। उनका ज्ञान बहुत गहरा था, चारित्र निर्मल था, दया और करुणा तो उनके रोम-रोम से टपकती थी। ब्रह्मचर्य का तेज उनके मुख-मण्डल पर चमकता था। जो भी उनके श्री चरणों में आता; शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता से भर जाता था। मेरा अहोभाग्य रहा कि मैंने ऐसे परिवार में जन्म पाया जहां पीढियों से रत्नवंश का सम्बन्ध रहा। आचार्य भगवन्त की तो मुझ पर बाल्यकाल से ही असीम कृपादृष्टि रही। । आज मैं जो कुछ भी संघ-सेवा, समाज-सेवा और मानव-सेवा के कार्य कर पा रहा हूँ वह उस महापुरुष की ही प्रेरणा और आशीर्वाद का प्रतिफल है। आचार्य भगवन्त के जीवन को मुझे बहुत नजदीक से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका जीवन गुणों का सागर था।

'समयं गोयम मा पमायए' भगवान महावीर के इस आदेश को आचार्य भगवन्त ने जीवन में इस तरह पाला कि आप एक-एक क्षण का सदुपयोग करते थे। समय की क्या कीमत होती है, उन्होंने अच्छी तरह से जाना था। **'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं'** नववाड सहित अखंड रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर वे असीम आत्म-शक्ति के धारक बन गये थे। ब्रह्मचर्य और साधना की ताकत का मूर्त रूप उनमें देखा गया।

एक संप्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी पूरा जैन समाज उन्हें आदर-सम्मान की नज़र से देखता था। उनमें सांप्रदायिकता की बू बिल्कुल नहीं थी। उनके मुखारविंद से निकला हर शब्द मंत्र और हर कार्य चमत्कार था। असंभव से असंभव कार्य सहज में संभव हो जाते थे। वे मौन-साधना के प्रबल पक्षधर थे। उन्हें मौन-साधना के द्वारा वचन-सिद्धि प्राप्त थी । सीमित समय में हित, मित, प्रिय भाषा उनकी खास विशेषता थी।

आचार्य श्री ने अपने जीवन में दो कार्य किये—स्वकल्याण एवं परकल्याण । नवनीत के समान कोमल हृदय वाले आचार्यप्रवर साधना में व्रज के समान कठोर थे। आपने सुदीर्घ संत-जीवन में कभी भी किसी प्रकार की मर्यादा भंग नहीं होने दी। आप भगवान महावीर के वफादार एवं युगमनीषी संत थे। वे अपने जीवन के कुशल शिल्पकार थे। पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन को सार्थक करने की ऐसी सुन्दर योजना बनायी जिसे बिरले महापुरुष ही पूर्ण कर पाते होंगे। संघ-उत्कर्ष, साहित्य-सर्जन, वीतराग के प्रति वफादारी, पर-दुःख कातरता, अध्यात्म में निष्ठा आदि हर क्षेत्र में आप अद्वितीय साधक थे। सामायिक-स्वाध्याय का अभियान उनकी दूरदर्शिता का परिणाम है। मन की बात जानने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। आचार्यदेव तप, जप एवं संयम-साधना के शिखर पुरुष थे। लघुता में प्रभुता छिपी थी। उन्हें नाम की भूख बिल्कुल न थी। पूर्वाचार्यों व परंपरा के प्रति निष्ठावान थे। खुद कष्ट झेलकर पर-संकटमोचक थे।

गुरुदेव की मुझ पर असीम कृपा थी। युवावय में उत्तराध्ययन सूत्र के अनुवाद आदि के लेखन का सौभाग्य

प्राप्त हुआ। उन करुणानिधान की अब स्मृतियाँ ही शेष हैं। सन् १९७९ के जलगाँव चातुर्मास में, उसके पूर्व एवं पश्चात् आपकी सन्निधि में रहकर जो आनन्द मिला वह आज भी मन को प्रमुदित करता है। गुरुदेव ने मुझे परिग्रह-मर्यादा, संयम, तप एवं त्याग के लिये प्रेरित किया। आयम्बिल, उपवास, पहरसी आदि तप की प्रेरणा गुरुदेव से ही मिली। उन्हीं के सदुपदेशों से मैं मांसाहारियों को शाकाहारी बनाने के लिये प्रवृत्त हुआ। अहिंसा से जुड़े इस अभियान में मुझे बहुत आनन्द मिला। कई मांसाहारी होटल शाकाहारी होटलों में बदल गये। कोसाणा चातुर्मास में आपसे प्रतिमास प्रतिपूर्ण पौषध का नियम ग्रहण किया, जो उन्हीं के कृपाप्रसाद से आज भी चल रहा है। स्वाध्याय एवं सामायिक आपके जीवन के मिशन थे। मुझे भी करुणानिधान ने इन प्रवृत्तियों से जोड़कर मेरा जीवन बदला।

मैं तो उन्हें इस युग का भगवान समझता हूँ -

मैंने अपनी इन आँखों से सच ऐसे इंसान को देखा है।
जिसके बारे में सब कहते हैं, धरती पर भगवान को देखा है।

कृपानिधान पूज्य गुरुदेव के रोम-रोम से करुणा की वर्षा होती थी। शब्द-शब्द में जीवदया के भाव प्रतिध्वनित होते थे, जीवन के एक-एक क्षण का उन्होंने महत्त्व समझा। प्राणिमात्र के कल्याण के लिए चिन्तनशील आत्मसाधक एवं अध्यात्मयोगी ने मुझे अन्तिम सन्देश दिया - "संघ - सेवा, स्वाध्याय-साधना में कहीं कसर न पड़े, इसका खयाल रखना।" उनका यह संदेश आज भी मेरे हृदय में टकसाल में ढले सिक्के की तरह उट्टंकित है।

तत्कालीन संघाध्यक्ष श्री मोफतराजजी मुणोत के बाद संघाध्यक्ष किसे बनाया जाय ? संघ में यह बड़ा विकट प्रश्न था। संरक्षक-मण्डल के सभी सदस्यों की भावना थी कि इस कार्यभार को मैं सम्भाल लूँ। मेरी मनः स्थिति इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं थी। आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का चातुर्मास पीपाड़ सिटी में था। संघ की मीटिंग में बहुत प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिली। जयपुर से संघ के आधार स्तम्भ सुश्रावक श्री नथमलजी सा हीरावत को बुलाया गया। उन्होंने भी खूब समझाया, परन्तु मैं किसी भी परिस्थिति में यह पद लेने को तैयार नहीं था। जलगांव में मेरे परिवारजनों से भी स्वीकृति ले ली गई, फिर भी मेरी मानसिकता नहीं बनी। प्रातःकाल जब हम वापस रवाना होने के लिये आचार्य श्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए तो अचानक मुझे गुरुदेव के अन्तिम सन्देश का स्मरण हो आया कि संघ-सेवा का खयाल रखना। मेरे मन ने मोड़ लिया और सोचा कि मुझे गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त है, फिर मैं क्यों घबरा रहा हूँ। मैंने तत्काल संघ संरक्षकगण का आग्रह स्वीकार कर लिया। मोफतराजजी ने वहीं मुझे बाहों में भरकर उठा लिया। पूरे संघ में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। मैं इसमें अपनी योग्यता को नहीं, पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद एवं कृपाप्रसाद को ही कारण समझता हूँ कि मुझे संघ-सेवक बनने का अवसर मिला।

ऐसे महिमामंडित अध्यात्मयोगी इतिहास पुरुष के जितने गुणानुवाद किये जायें कम हैं। वह महान् आत्मा जहाँ भी हो, मुझे सत्कार्यों की ओर प्रेरित करती रहे, यही विनम्र भावना है।

इस युग का सौभाग्य रहा जो इस युग में गुरुवर जन्मे।
अपना यह सौभाग्य रहा, गुरुवर के युग में हम जनमे॥
कल युग में भी यह सत युग गुरुवर के नाम से जाना जायेगा।
कभी महावीर की श्रेणी में गुरुवर का नाम भी आयेगा॥

—नयनतारा, सुभाष चौक, जलगाँव

■

प्रेम एवं करुणा के सागर : गुरु महाराज

• श्री नथमल हीरावत

गुरु महाराज आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के रोम-रोम में से प्रेम एवं करुणा की अजस्र धारा बहती थी। उनके पास जो कोई भी जाता, वह उनकी प्रेम एवं करुणा की धारा से प्रक्षालित एवं प्रभावित हो ही जाता था। आवश्यक नहीं था कि वे बातचीत करें ही, फिर भी घण्टों उनके पास बैठने का मन करता था। उन लोगों के प्रति भी उनकी प्रेम भावना उतनी ही थी जिनसे वे कम बोलते थे।

मैं भी उन हजारों व्यक्तियों में से एक हूँ, जिन पर गुरुदेव का उपकार रहा। उन्होंने मुझे सही दिशा की ओर मुख करके खड़ा कर दिया, यह मेरा अहोभाग्य है । उन्होंने ही मुझे स्वाध्याय से जोड़ा। गुरु महाराज के सम्पर्क में मैं जीवन के प्रारम्भ से ही आ गया था। संवत् २०११ में जब २४-२५ साल का था, तब और अधिक जुड़ाव हो गया, जो निरन्तर बढ़ता रहा। गुरुदेव का इतना प्रेम रहा, जिसे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। शब्दों में प्रकट करना उसे सीमित बनाता है। मैं ही नहीं हर एक व्यक्ति यही कहेगा कि उनकी बहुत कृपा थी। जो कामना-पूर्ति की दृष्टि से गुरुदेव के पास पहुंचते थे, उनके मूल्यांकन में कृपादृष्टि कम-अधिक हो सकती है, अन्यथा आत्मिक-उन्नयन की दृष्टि से उनका उपदेश सबके लिए महत्वपूर्ण होता था। गुरुदेव के मौन होती, कोई बात नहीं करते तब भी उनके सान्निध्य में बैठकर आनन्द का अनुभव होता।

गुरु महाराज बहुत ही सरलहृदय थे। कभी कोई बात होती तो वे फरमाते - "नत्थू (नथमल) मुझसे कोई क्यों झूठ बोलेगा?" अत्यन्त सरलता थी। गुरु महाराज का अपने विरोधियों के प्रति भी करुणा भाव था । उनके मन में कभी अन्यथा भाव नहीं आता था। गुरुदेव ने मुझे आत्मीयता दी एवं संघ-सेवा से जोड़ा।

गुरुमहाराज का स्वाध्याय पर बड़ा बल था। उन्होंने स्वयं कितने ही व्यक्तियों को थोकड़े सिखाए, सद् ग्रन्थों का स्वाध्याय करना सिखाया। सन्तों का संग तो समय-समय पर ही सम्भव होता है, किन्तु सद्ग्रन्थ का साथ कभी भी हो सकता है। गुरुदेव ज्ञान एवं आचार को विशेष महत्त्व देते थे। आचरण सुधारने के लिए उनकी प्रेरणा अद्भुत होती थी। गुरु महाराज के योगदान को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है–१. निज की साधना के रूप में । २. जैन धर्मावलम्बियों के प्रति योगदान के रूप में। ३. प्राणिमात्र के कल्याण के रूप में। संगठन की प्रेरणा के पीछे गुरुदेव का दृष्टिकोण था कि सब एक दूसरे की प्रेरणा से अपने जीवन को आगे बढ़ाएँ।

गुरुमहाराज के दर्शन ही मंगल थे, उनके जीवन की तो क्या बात कहें । वे किसी से राग-द्वेष बढ़ाना नहीं चाहते थे। किसी के द्वारा आक्षेप लगाये जाने पर भी उनके मन में कभी द्वेष का भाव नहीं आया। गुणिजनों को देखकर एवं उनके गुणों के सम्बन्ध में सुनकर गुरु महाराज प्रमुदित होते थे।

आपमें अपने-पराये का भेदभाव नहीं था। सबको समान रूप से प्रेरणा करते थे। अपने भी यदि गलत कार्य करते तो वे विरोध करने या कहने में हिचकिचाते नहीं थे तथा किसी भी सम्प्रदाय का साधु यदि आचारनिष्ठ एवं गुण - सम्पन्न होता तो वे उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहते। उनका हृदय उदार था। गुरु महाराज गुणनिधान थे। उनके गुणों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।

वे आध्यात्मिक सन्त थे। यौवन काल में 'मेरे अन्तर भया प्रकाश', 'मैं हूँ उस नगरी का भूप' आदि आध्यात्मिक पदों की रचना उनकी आध्यात्मिक उन्नयन की अन्तः रुचि को प्रकट करती है। गुरुदेव समाज एवं व्यक्तियों को प्रेरणा देने के साथ आत्म-साधना के प्रति भी सदैव जागरूक रहे। उनसे सबको सहज प्रेरणा मिलती थी। गुरुदेव के प्रवचन भी बहुत प्रभावी एवं प्रेरणाप्रद होते थे। गुरुदेव के प्रति श्रद्धा से लोगों का आत्मबल बढ़ा एवं जीवन में आगे बढने को उद्यत हुए । गुरुदेव का स्मरण मेरे जीवन में नवीन - स्फुरणा एवं प्रेरणा प्रदान करता है।

२०७०, हीरावत भवन, बारह गणगौर का रास्ता, जयपुर

■

कृपालु आत्मार्थी गुरुदेव

• श्री इन्दरचन्द हीरावत

परम श्रद्धेय आचार्य गुरुदेव अनन्त कृपालु थे। उनकी मेरे पर बहुत कृपा थी। उनके सान्निध्य में बैठकर मैं अपने को धन्य मानता था। वे मेरे जीवन के निर्माता रहे। मैं क्या कहूँ, गुरुदेव के बारे में, उनकी जब भी याद आती है, तो आँखों में प्रमोद के आँसू छलक आते हैं।

एक बार मेरा मन हुआ कि दूसरे लोग अठाई और मासखमण तक तप कर लेते हैं और मैं तो एक उपवास में ही ढीला हो जाता हूँ। मैंने गुरुदेव से भी यह बात कही। उन्होंने कहा, 'तेरा मन है क्या अठाई करने का?' मैंने कहा, 'हाँ, गुरुदेव' गुरुदेव ने कहा कि तुम उपासरे में रहकर ही उपवास करो। मैंने गुरुदेव से उपवास व्रत लिया और वहाँ ही पौषध करके रात्रि विश्राम किया। पाँच उपवास होने तक तो मुझे पता ही नहीं चला कि मैंने उपवास किया है, सहज में ही अठाई तप भी हो गया।

गुरुदेव ने सचमुच में मेरे जीवन का निर्माण किया। मेरे में कई गलत शौक थे। वे सब गुरुदेव की संगति, समझाइश और उनके प्रति निष्ठा से छूटते चले गए। मैंने उनसे कई तरह के नियम लिए। आज भी मैं उनका पूरी दृढ़ता से पालन करता हूँ, उसमें कभी ढिलाई नहीं आने दी। यही मेरे जीवन निर्माण का सम्बल बना। सामायिक रोजाना करता हूँ। सामायिक और स्वाध्याय का गुरुदेव ने ऐसा शंखनाद किया है कि पहले जहाँ व्याख्यान के समय रुपये में चार आना लोग सामायिक में बैठते थे वहाँ अब बारह आना लोग सामायिक में बैठने लगे हैं।

मैंने बचपन से ही उन्हें देखा। दीक्षा के बाद वे अपना अधिकतर समय पढ़ाई में ही लगाते थे। इधर-उधर ध्यान नहीं देते थे। इससे उनकी योग्यता बढ़ती चली गई।

मैंने गुरुदेव में यह भी विशेषता देखी कि यदि किसी ने अन्य गुरु से आम्नाय ले रखी है तो वे उसे गुरु आम्नाय नहीं दिलाते थे। कोई उनसे गुरु आम्नाय दिलाने की बात कहता तो भी वे स्वयं उसे ना कर देते थे। उनका कहना था कि धर्म के मार्ग पर चलने के लिए किसी एक को गुरु मानना पर्याप्त है। मैंने बहुत साधुओं को देखा, किन्तु गुरुदेव में यह अनोखी विशेषता देखी।

मुझे दस बारह वर्षों तक जयपुर समाज का अध्यक्ष रहने का सौभाग्य मिला। किन्तु मैंने ऐसे आचार्य नहीं देखे जो स्वभाव से सरल और पक्के आत्मार्थी हो। गुरुदेव में मैंने यह पाया कि वे स्वभाव से सरल और इतने ऊँचे आत्मार्थी थे कि उसका अन्दाजा लगाना हमारे जैसों के लिए मुश्किल है। आचार्यश्री के बारे में लोग ऐसा मानते थे कि रात्रि में दो बजे से चार बजे के बीच कई बार चमका सा दिखाई देता था। हम पौषध करते थे, तब हमने भी वह चमका देखा। आचार्यश्री में दिव्यशक्ति थी।

एक बार मैं दर्शन करने गया तब गुरुदेव प्रतिदिन की भांति ध्यान में विराजमान थे। मैं संतों के दर्शन कर आचार्य गुरुदेव के समीप जाकर बैठ गया। ध्यान खुलने के पश्चात् उन्होंने सहज भाव से मुझे परिग्रह की मर्यादा करा दी। मैं उस समय कलकत्ता में काम करता था। मैंने परिग्रह की मर्यादा की, जो शीघ्र ही पूरी हो गई। मर्यादा

के अलावा जो भी पैसा आता उसे मैं ज्ञानखाते या दानखाते में डाल देता था। वह क्रम आज भी चलता है। बचे हुए पैसे का उपयोग मैंने मानवता और समाज की सेवा में करना श्रेयस्कर समझा। रत्न स्वाध्याय भवन, कुशल भूधर ट्रस्ट आदि का निर्माण इसलिए आसानी से हो सका। जो भी उनके सम्पर्क में आता वह उनका ही होकर रह जाता, कोई उनको भूलता नहीं था, न जाने क्या जादू था उनमें। बच्चों से उनको बहुत प्रेम था। बच्चे भी उनसे प्रभावित रहते थे।

गुरुदेव जलगाँव से दूसरा चातुर्मास पूर्ण करके इन्दौर की ओर आ रहे थे, तब मैं विहार में साथ रहा। विहार में बड़ा आनन्द रहा। उस समय एक बार आचार्यश्री की माला खो गई। वे खोजने भी गए, परन्तु मिली नहीं। मेरे पास माला थी। मैंने कहा, 'गुरुदेव, यह माला ले लीजिए।' उन्होंने पूछा, 'यह कितने रुपये की है?' मैंने सही-सही मूल्य बताते हुए कहा, 'अन्नदाता, केवल तीन सौ रुपये की है।' गुरुदेव ने फरमाया, 'इतनी महंगी माला संतों को शोभा नहीं देती।' उन्होंने वह माला नहीं ली।

आचार्यश्री देवता पुरुष थे। जलगाँव से इन्दौर होते हुए राजस्थान की ओर पधारे। मैं उनको तीनों समय वन्दना करता था। मैं सोता हूँ या जागता हूँ तब उन्हें आज भी वन्दना करता हूँ। मैंने सांप को बचाने की घटना भी देखी है। कुछ लोग लाठी से साँप को मार रहे थे। गुरुदेव बोले, 'क्यों मारते हो? इसे छोड़ दो।' वे लोग बोले, 'बचाना ही है तो ले जाओ इसे अपनी झोली में।' गुरुदेव उस सर्प को झोली में लेकर चल दिए। लगभग दो किलोमीटर आगे ले जाकर उसे छोड़ दिया। वे करुणाशील भी थे और निडर भी।

गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया। मुझे इस बात की खुशी है कि मैंने गुरुदेव का कहा हुआ टाला नहीं। यही बात मेरे जीवन-निर्माण में काम आई। अब तो गुरुदेव की यादें ही शेष रह गई हैं।

(उल्लेखनीय है कि संघ-संरक्षक सुश्रावक श्री इन्दरचन्द जी सा.हीरावत से मार्च ९८ में मुम्बई में उनके घर पर जो बातचीत हुई थी, उसी के अंश यहाँ प्रकाशित किए गए हैं। इसके पश्चात् सन् १९९९ में श्रीमान् हीरावत सा.का देहावसान हो गया। हीरावत सा. एक उदारमना समाजसेवी श्रावकरत्न थे। गुरुदेव के अनन्य भक्त हीरावत सा.की भी अब स्मृतियाँ शेष रह गई हैं।—सम्पादक)

–१३०१, पंचरत्ना बिल्डिंग, आपेरा हाउस, मुम्बई ४००००४

■

श्रद्धा के कल्पवृक्ष थे आचार्य श्री

• न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा

पूज्य आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब करीब चार दशक पहले घोड़ों के चौक, जोधपुर के स्थानक में विराज रहे थे। उस समय मुझे आदेश दिया कि तुमको पच्चीस बोल कंठस्थ कर सुनाना है। 'पच्चीस बोल का थोकड़ा' पुस्तक से मैं हर रोज एक-दो बोल याद कर सुनाने लगा तथा प्रश्नों का उत्तर भी देना शुरू हुआ। यह क्रम चलता रहा। आचार्य श्री का आदेश था, पालन करना ही था। पच्चीस बोल कंठस्थ किये। अब तो उनमें से थोड़े ही याद हैं। ऐसा याद पड़ता है कि आचार्य श्री ने उस समय जीव के दो भेद बताए—संसारी और सिद्ध। मुझे यह समझाया कि जो कर्म सहित हैं, वे संसारी जीव हैं और ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म रहित हैं, वे सिद्ध जीव हैं। पाप के अठारह भेद तो मुझे शीघ्र ही याद हो गये। संक्षेप में बताया कि जो प्राणी को मैला करे, उसे पाप कहते हैं। आश्रव, संवर, निर्जरा के भेद उदाहरणों द्वारा विस्तृत रूप से समझाए। श्रावक के बारह व्रतों को अंगीकार कर मर्यादा में चलने का आदेश दिया।

बहुत वर्षों पहले जोधपुर शहर में स्थित आहोर की हवेली में आचार्य श्री अपनी संत-मंडली के साथ विराज रहे थे। उस समय आचार्य श्री गहन अध्ययन में लगे हुए थे। मैं विद्यार्थी था। प्रातः प्रवचन सुनने जाता था। व्याख्यान मधुर शैली में होता था। शास्त्रों का प्रवचन होता था। मेरे मन में कई शंकाएँ जाग्रत हुईं। प्रश्न पूछना चाहता था, प्रश्नों का समाधान चाहता था। लेकिन फिर संकोचवश सोचता कि मेरे प्रश्नों से कहीं गुरुदेव नाराज तो नहीं हो जायेंगे। साहस कर मैंने पूछा कि आप केवल महामंत्र नवकार की आराधना का ही उपदेश क्यों देते हैं, अन्य मंत्र-तंत्र का उपदेश नहीं देते। आचार्य श्री ने फरमाया कि परमेष्ठी भगवन्तों का अधिष्ठान नवकार महामंत्र है। इसमें अरिहन्त के गुण, सिद्ध के गुण, आचार्य के गुण व साधु के गुणों का कथन है। योग्यता के कारण व्यक्ति का महत्त्व है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये पांचों गुणपुञ्ज हैं। जिस व्यक्ति में इनके गुण दिखाई दें, उसकी शरण में जाने से मुक्ति प्राप्त होती है। आचार्य श्री ने फरमाया कि देव, गुरु और धर्म के प्रति प्रकृष्ट निष्ठा प्रकट करने हेतु नवकार महामंत्र में विश्वास किया जाता है। आचार्य श्री के दर्शन हेतु जो भी आता था उसको महामंत्र नवकार का प्रतिदिन अधिक से अधिक जाप करने का फरमाते और महामंत्र की महत्ता पर प्रकाश डालते।

चमत्कारी मंगलपाठ का उल्लेख करना चन्द पंक्तियों में सम्भव नहीं है। ऐसे कई प्रसंग हैं कि आचार्य श्री के मंगल पाठ से मेरा हित हुआ, चिन्ताएं दूर हुईं और मानसिक शान्ति मिली।

आचार्य श्री के सान्निध्य के प्रत्येक क्षण मेरी स्मृति में सजीव हैं। आचार्य श्री की सरलता, गुणग्राही दृष्टि, व्यापक चिन्तन एवं गहन अध्ययन की अनूठी छाप आपके दर्शन तथा सम्पर्क से सहज ही मेरे पर पड़ी। मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर आप श्री ने ज्ञान का प्रकाश दिया।

मेरे स्वयं के जीवन की कई घटनाएं हैं, जिनका विस्तृत उल्लेख करना संभव नहीं है। प्रसंग तो कई ऐसे हैं कि आप श्री की आज्ञा व आदेशों की पालना से मेरा हित हुआ। मैं अपनी स्मृतियों के पिछले पृष्ठ खोल कर पढ़ने का प्रयास करता हूँ तो श्रद्धा का सागर उमड़ता है। मेरे जीवन की कुछ घटनाएं जो आचार्य श्री ने भविष्य द्रष्टा होने से संकेत की उनका विवरण दे रहा हूँ।

भविष्य द्रष्टा--करीब ३४ वर्ष पहले जब आचार्य श्री घोडों के चौक में विराज रहे थे, मैं बाहर भ्रमण हेतु जाने का कार्यक्रम बना कर धर्मपत्नी के साथ दर्शन करने व मांगलिक श्रवण करने पहुँचा। आचार्य श्री के मुख से सहज ही निकला-अभी संत यहां विराज रहे हैं, संघ का कार्य एवं धार्मिक अध्ययन करो। मैं असमंजस में पड़ गया। यात्रा का कार्यक्रम पूरा बन चुका था। पुनः निवेदन करने पर आचार्य श्री ने संघ-सेवा और धार्मिक अध्ययन करने की बात दोहराई। मैंने जोधपुर से बाहर जाना स्थगित कर दिया। घटनाक्रम इस प्रकार घटित हुआ कि मेरा द्वितीय पुत्र पढ़ाई में बहुत होशियार था। परीक्षा में ऊँचा स्थान प्राप्त करने वाला था, किन्तु वह इस बार प्रेक्टिकल के कारण असफल रहा। यह सूचना दूसरे दिन परीक्षा फल आने पर ज्ञात हुई। वह निराश हो गया, मानसिक संतुलन भी बिगड़ने लगा। ऐसे में मेरे अलावा उसको सान्त्वना देने व धैर्य बंधाने वाला परिवार का दूसरा कोई सदस्य नहीं था। उस समय अनर्थ होने की संभावना बन गई थी। आचार्य श्री की आज्ञा का पालन कर जोधपुर के बाहर जाने की यात्रा स्थगित करना उचित रहा। मुझे लगा, परिवार पर आसन्न संकट टल गया। वे दिव्य ज्ञानी थे और भावी के द्रष्टा थे।

श्रद्धा के कल्पवृक्ष --करीब २४ वर्ष पूर्व आचार्य श्री संतों के साथ पावटा में मेरे बंगले में विराज रहे थे। मेरी व मेरी धर्मपत्नी की आचार्य श्री के प्रति पूर्ण निष्ठा थी, फिर भी मेरी धर्मपत्नी मंगलवार को हनुमानजी का एवं शुक्रवार को संतोषी माता का एकाशन करती थी। एक दिन रामदेव जी का और पूर्णिमा को सत्यनारायण जी का व्रत करती थी। हम दोनों आचार्य श्री के दर्शन हेतु ऊपर के कमरे में गये। मेरे मुँह से निकल गया 'सद्धा परम दुल्लहा।' आचार्य श्री ने पूछा, क्या बात है? तो मैंने आचार्य श्री को अपनी धर्मपत्नी का अन्य देवी-देवताओं में विश्वास होने की बात कही। आचार्य श्री ने फरमाया-- "बाई तुम्हारे किस बात की कमी है? सब आनन्द है। दुनियाभर के असंख्य देवी देवता ही नहीं, वरन् देवेन्द्र भी जिनके चरणों में झुक कर अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं, उनके भक्त होकर भी सांसारिक देवी देवताओं की उपासना करने का क्या लक्ष्य ? एकाशन ही करना है तो जैनों का एकाशना करो। जिससे कर्म निर्जरा होने से सहज ही आनन्द और समाधान मिलेगा।" उसके पश्चात् मेरी धर्मपत्नी ने मंगलवार, शुक्रवार आदि के एकाशन बन्द कर दिये। कुछ ही समय पश्चात् हमारी चिन्ता अनुकूल समाधान भी पा गई।

वचन सिद्धि-राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद से मैं सेवानिवृत्त होने के पश्चात् अपनी धर्मपत्नी के साथ आचार्य श्री के दर्शन हेतु अजमेर गया। मैं विक्रम संवत् व मारवाड़ सम्वत् भिन्न भिन्न होने से ६२ की बजाय ६१ वर्ष की उम्र में सेवानिवृत्त हो गया था। आचार्य श्री को मैंने सेवानिवृत्त हो जाने का निवेदन किया। आचार्य श्री ने फरमाया--"अभी सेवानिवृत्त होने का समय नहीं आया है।" मैं तो सेवानिवृत्त हो चुका था, पर क्या कहता। किन्तु गुरुदेव के वचनों में सिद्धि थी। सेवानिवृत्तिके बाद मुझे एक बड़े विवाद को निपटाने के लिये पंच नियुक्त किया गया। आर्थिक दृष्टि से यह कार्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से भी अच्छा था। इसके पश्चात् मैंने राष्ट्रीय कानून के तहत गठित सलाहकार मण्डल के सदस्य का कार्य सात वर्ष तक किया। सन् १९८८ में पाँच साल के लिये मुझे अध्यक्ष, राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण राजस्थान नियुक्त किया गया। आचार्य श्री की वचनसिद्धि प्रत्यक्ष हुई और वाणी सत्य प्रतीत हुई।

• निर्भय एवं प्रभावी साधक

सूर्यनगरी जोधपुर शहर की पुरानी आबादी में सवाईसिंह जी की पोल (सिंहपोल) पोकरण के पूर्व जागीरदार श्री सवाईसिंह जी की थी, जिसको विक्रम संवत् १९७२ दिनांक १७.१०.१९१५ को पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा., पूज्य

श्री ज्ञानचन्दजी म.सा. एवं पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. के श्रावकों ने धर्माराधन हेतु खरीदा था। यहाँ पर श्रावकों के द्वारा सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, दयाव्रत आदि दैनिक धार्मिक कार्यक्रम शान्ति पूर्वक होते थे। समय-समय पर संत-मुनिवरों के चातुर्मास भी यहाँ पर बराबर होते रहे, क्योंकि धर्म-आराधना हेतु यह उचित व सुखदायक भवन था। मरुधर श्रावक-मण्डल एवं उक्त तीनों सम्प्रदायों के श्रावकों में कुछ मुद्दों को लेकर उक्त सिंहपोल के बारे में विवाद उत्पन्न हो गया। न्यायालय तक विवाद पहुँच गया। अन्ततः कुछ धर्मप्रेमी बन्धुओं ने दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने हेतु ओसवाल समाज के दो प्रतिष्ठित एवं निष्पक्ष सदस्य श्री मगरूप चन्द सा भण्डारी व श्री दानचन्द सा भण्डारी जो स्थानकवासी समाज के नहीं थे, नियुक्त किये गए। दोनों पंचों ने संबंधित पक्षों को सुनकर व पत्रावली आदि का अवलोकन कर इस भवन को पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. , पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी म.सा. एवं पूज्य श्री रत्न चन्द्र जी म.सा. के श्रावकों (अनुयायियों) की सम्पत्ति होने का पंच निर्णय दिया और इस संबंध में घोषणा भी की।

सन् १९४० के पंच फैसले के पश्चात् भवन का ताला न्यायालय के आदेश से खोल दिया गया। तत्पश्चात् यह भवन धार्मिक कार्यों हेतु उपयोग में आना प्रारंभ हुआ।

पूज्य आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. ने संवत् २००२ में मूलसिंह जी के नोहरे, मोतीचौक जोधपुर में चातुर्मास किया। श्रावक-श्राविकाओं की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रवचन आप आहोर की हवेली में फरमाते थे। कुछ श्रावकगण सिंहपोल में भी धर्माराधन करते थे। चातुर्मास के दौरान श्रावकों के निवेदन पर पूज्य आचार्यप्रवर ने पर्युषण के प्रथम दिन अपने वरिष्ठ सन्त श्री लक्ष्मीचन्दजी म.सा. एवं श्री माणकमुनिजी म.सा. को सिंहपोल में धर्माराधन कराने हेतु भेजा। कुछ महानुभाव पंच फैसले से असंतुष्ट थे, अतः वे पहले से ही नाराज थे। उक्त दोनों सन्तों के वहां पधारने से उनका विरोध उग्र हो गया। ऐसा याद पड़ता है कि सायंकाल प्रतिक्रमण के समय सिंहपोल के बाहर चन्द महानुभावों ने एकत्रित होकर व्यवधान पैदा करना शुरु किया और जोर-जोर से चिल्लाने लगे। विरोध प्रदर्शन करने के अनुचित तरीके भी अपनाये। उसी समय पूज्य आचार्यप्रवर के पास उन्होंने तार भी भिजवाये, जिसमें सन्तों को सिंहपोल से वापस बुलाने का आग्रह था। दोनों सन्त पर्युषण की समाप्ति पर वापस पूज्य आचार्यप्रवर के पास चले आए।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पूज्य आचार्यप्रवर विहार कर सिंहपोल पधारे। असंतुष्ट महानुभाव अपने रवैये पर डटे रहे और प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन के समय सिंहपोल के बाहर शिष्टाचार का उल्लंघन कर अशोभनीय नारे लगाते रहे और हो हल्ला करते रहे, जिसके फलस्वरूप प्रवचन सुनने में बाधा उत्पन्न हुई। पूज्य आचार्यप्रवर समभाव में दृढ प्रतिज्ञ थे। 'ओम शान्ति ओम शान्ति' की प्रार्थना बोलना आपको प्रिय था। ऐसा कई दिनों तक चलता रहा। पूज्य आचार्यप्रवर ने अपने श्रावकों को भी समता व शांति रखने के निर्देश दिये। सम्प्रदाय के प्रति निष्ठावान रत्नवंश के सुश्रावकों ने पूज्य आचार्यप्रवर के आदेश व निर्देशों की पालना कर उस समय पूर्णशांति रखी।

स्थंडिल व अन्य कार्यों हेतु पूज्य आचार्यप्रवर एवं सन्तों को कठिनाई का सामना करना पड़ता था। सिंहपोल के प्रवास के समय कई महानुभावों ने विरोध प्रकट करने व बदनाम करने के लिये कई गलत, झूठी व मनगढंत अफवाहें भी फैलाई, किन्तु पूज्य आचार्यप्रवर गंगाजल के समान पवित्र, परोपकारी , संयम के आदर्श प्रतीक, आत्म विश्वासी, भविष्य द्रष्टा, एकान्त व शान्तिप्रिय परमयोगी महान् सन्त थे। वे इन अफवाहों से कब घबराने वाले थे। उनके आध्यात्मिक तेज, त्याग, एकता और समतामय ज्ञान-ध्यान में कोई किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा

सकता था।

पूज्य आचार्यप्रवर ने कुछ समय पश्चात् सिंहपोल से विहार किया और सिरे बाजार होते हुए मुथा जी के मंदिर पधारे। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब पूज्य आचार्यप्रवर अपनी सन्त-मण्डली सहित लखारों के बास की ओर मुड़ने लगे। (क्योंकि नागौरी गेट जाने का यह सीधा रास्ता है।) उस समय श्रद्धालु सुश्रावकों ने पूज्य आचार्यप्रवर से निवेदन किया कि आप कपड़ा बाजार, कटला बाजार से होते हुए पधारें। श्रद्धालु सुश्रावकों को उत्पात की आशंका थी। पूज्य आचार्यप्रवर ने श्रावकों की विनति को ध्यान में रखकर कपड़ा बाजार होते हुए प्रस्थान किया। उस समय हमने देखा कि कतिपय प्रमुख विरोधी श्रावक बाजार में दुकानों पर बैठे हुए थे, परन्तु उन्होंने विहार में कोई अशोभनीय प्रदर्शन नही किया। भला कर भी कौन सकता था? पूज्य आचार्यप्रवर समता-साधना के धनी धीर, गंभीर और महान् संत थे।

आचार्यप्रवर की यह मान्यता थी कि उचित रीति से शासन करने वाले को बहुत सुनना और कम बोलना चाहिए। ऐसा करने में शास्ता को सफलताश्री स्वयं वरण करती है। आचार्य श्री सम्प्रदाय के संकुचित दायरे में विश्वास नहीं करते थे। जब कभी स्थानकवासी सम्प्रदायों में श्रमण समाचारी के संबंध में समस्याएँ उत्पन्न हुईं अथवा अलग धारणाएँ बनीं, उस समय उनको सुलझाया और समता का प्रयास किया तथा आपसी प्रेम को बनाए रखने का संदेश दिया।

धार्मिक क्षेत्र में नारी समाज को जागरूक किया। श्राविका समाज में ज्ञानपूर्वक क्रिया की आवश्यकता पर बल दिया। रूढिवाद एवं जड़तामयी भावनाओं में ज्ञान ही परिवर्तन करने में समर्थ है, ऐसा सदुपदेश दिया। गुरुदेव ने श्रावकों के पारस्परिक विवाद को कम किया तथा उन्हें उस मार्ग पर चलने का संदेश दिया जिससे समाज का उत्थान और संगठन मजबूत बने। आचार्य श्री के चिन्तन में विशालता या उदारता को स्थान था, संकीर्णता को नहीं।

मैंने अनन्त आस्था के केन्द्र आचार्य श्री के संबंध में थोड़ा लिखने का प्रयास किया है। आचार्य श्री के गुण अनन्त थे और मैं उन गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। आचार्य श्री संयम प्रदाता, प्रेरणा के पावन स्रोत, विवेक के शाश्वत सरोवर, साधना पथ के अमर साधक, ध्यान-मौन साधना के प्रबल पक्षधर, साम्प्रदायिक सौहार्द व समता के विश्वासी, श्रमण संस्कृति के महान् सन्त, विनय और विवेक के शाश्वत सरोवर, सरलता की साकारमूर्ति और जीवन पथ-प्रदर्शक युग पुरुष थे।

२६ जून १९९८

पूर्व न्यायाधिपति, राजस्थान उच्च न्यायालय एवं
पूर्व अध्यक्ष राज्य आयोग, उपभोक्ता संरक्षण, राजस्थान
चन्दन, पावटा बी-२ रोड, जोधपुर (राज.)

■

चुम्बकीय शक्ति के धनी : पूज्य गुरुदेव

• डॉ. सम्पतसिंह भाण्डावत

पूज्य गुरुदेव की मुझ पर व मेरे परिवार पर असीम कृपा थी। आज जो कुछ भी धार्मिक प्रवृत्तियाँ एवं विचार मेरे व मेरे परिवार वालों में हैं, यह सब उनकी महती कृपा का फल है।

पूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक गुरु थे। गुरु शब्द के अर्थ की गरिमा कितनी है, मैं नहीं जानता, किन्तु जैन परम्परा के अनुसार गुरु का गौरव अतुलनीय है। यदि गुरु प्राप्त ही न हो तो व्यक्ति का जन्म सच्चे अर्थों में व्यर्थ है।

स हि विद्यात: तं जनयति तदस्य श्रेष्ठं जन्म।
मातापितरौ तु शरीरमेव जनयत:॥

माता-पिता शरीर को अवश्य जन्म देते हैं, किन्तु वास्तविक जन्म गुरु से होता है, जिसे शास्त्रकारों ने श्रेष्ठ जन्म कहा है।

सच्चे मायने में पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. मेरे सद्गुरु थे। उन्होंने मेरे जीवन को इस तरह से ढाला कि मेरे पास शब्द नहीं हैं कि मैं उनका गुणगान कर सकूँ, किन्तु मेरे मन में ऐसी कुछ बातें हैं जिनका मैं अवश्य उल्लेख करना चाहता हूँ।

पूज्य गुरुदेव जब सवाईमाधोपुर विराज रहे थे, तब आगामी चातुर्मास रेनबो हाउस, जोधपुर में करने हेतु निवेदन किया। गुरुदेव मुस्कुराये और कहने लगे कि "अरे भोलिया ! थारो बंगलो तो किराये दियो हुओ है।" जब मैंने गुरुदेव से अनुरोध किया कि आपकी कृपा हो जाय तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप चातुर्मास रेनबो हाउस में करेंगे।

उसी वक्त मैं जोधपुर आया तो पता चला कि जो खनिज विभाग वाले किरायेदार थे, वे हफ्ता भर में खाली कर देंगे। मैं दौड़ा-दौड़ा पूज्य गुरुदेव की सेवा में पहुँचा और अर्ज किया कि गुरुदेव बंगला खाली हो गया है। आपको वहाँ चातुर्मास करना होगा , गुरुदेव की मौन स्वीकृति हो गई और सन् १९८४ का चातुर्मास रेनबो हाउस में हुआ। इस चातुर्मास से मेरे परिवार को एवं मुझे धर्मक्रिया में सक्रिय रूप से जुड़ने का अनोखा लाभ मिला। कोर्ट से लगभग पूरे चार माह अवकाश लेकर आपके सान्निध्य का लाभ लेते हुए जो आनन्द मिला उसे शब्दों में प्रस्तुत नहीं कर सकता। मैंने उस समय आपको निकट से देखा। आपके असाम्प्रदायिकता , गुणियों के प्रति प्रमोदभाव, साधना के प्रति सजगता, अल्पभाषिता, अप्रमत्तता आदि अनेक गुणों ने मुझे आकर्षित किया।

पूज्य गुरुदेव अनुशासनप्रिय थे। आप समय का पूरा अर्थात् एक-एक मिनट का सदुपयोग करते थे।

अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के १५ वर्षों तक कार्याध्यक्ष एवं अध्यक्ष पद का दायित्व वहन करते हुए मैंने देखा कि आप कितने निस्पृह, विवेकशील एवं साधना के सजग प्रहरी हैं। आपने संयम की निर्मल पालना को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। आप भक्तों के पीछे नहीं थे, भक्त आपके लिए लालायित रहे।

पूज्य गुरुदेव में चुम्बकीय शक्ति थी। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता वह उनकी ओर खिंचा चला आता था तथा अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता था। मानो वह साक्षात् भगवान के सामने बैठा है और वे साक्षात् भगवान ही थे।

उनका व्यक्तित्व इतना महान् था कि बड़े-बड़े सेठ-साहूकार बड़े-बड़े अधिकारी जो भी आपके सम्पर्क में आते अपनी सब बात भूल कर उनके चरणों में श्रद्धा से झुक जाते । मुझे याद है सन् १९८४ में मोहनसिंह जी मेहता, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति थे, आपके दर्शनार्थ आये। उन्होंने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली एवं गुरु-शिष्य परम्परा के सम्बन्ध में सार्थक चर्चा करते हुए आनन्द का अनुभव किया। केन्द्रीय राज्यमन्त्री रामनिवासजी मिर्धा भी आपके सान्निध्य में बैठकर उपकृत हुए।

गुरुदेव विद्या, विनय एवं विवेक के धनी थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में कभी भी किसी को ऐसे शब्द नहीं कहे जो उनकी आत्मा को चुभने वाले हों। बड़े सरल थे।

आप प्रचार में नहीं आचार में विश्वास रखते थे। आप जोधपुर के कोठारी भवन विराज रहे थे। बाहरी भूमिका से लौटते समय आपका आचार्य श्री तुलसीजी से मधुर मिलन हुआ। मैं उस समय गुरुदेव के साथ ही था। प्रसंगवश गुरुदेव ने जो फरमाया - उसका भाव था - आचार ही प्रचार का सबसे बड़ा माध्यम है।

मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ कि मैंने ऐसे चलते-फिरते भगवान के दर्शन किये, उनके बहुत निकट रहा। उनसे बहुत कुछ सीखा और आज मैं जो कुछ भी हूँ, उन्हीं की कृपा से हूँ।

-रेनबो हाउस, मण्डोर रोड, जोधपुर

■

उनके साधनामय जीवन ने प्रभावित किया

• प्रो.चाँदमल कर्णावट

पूज्य आचार्यश्री हस्ती उच्च कोटि के साधक थे। उनके अप्रमत्त साधनामय जीवन से कौन आकृष्ट नहीं होता। वे प्रायः अहर्निश ध्यान-मौन, जप-तप, स्वाध्याय आदि की साधना में लीन रहते। जब भी उनके दर्शन करते तो उन्हें किसी न किसी साधना में लीन पाते। उनके लिए यह कथन अक्षरशः चरितार्थ होता था:-

खण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो, गुणणो, सीखणो, रमणो ज्ञान आराम॥

आचार्यप्रवर कभी मौन तो कभी ध्यान में लीन होते, तो कभी जप, तो कभी स्वाध्याय, मनन, चिन्तन और लेखन में। लेखन और स्वाध्याय में भी इतनी लीनता होती थी कि जैसे वे उन्हीं में खो गए हों।

साधना में उनकी अप्रमत्तता, नियमितता एवं दृढ़ता अनुकरणीय होती थी। अप्रमत्तता को निरलसता के सामान्य अर्थ में लेने पर उनकी साधना तत्परतापूर्ण थी। चाहे विचरण-विहार हो, आहार-निहार या प्रवचन हो, हर प्रवृत्ति का एक निश्चित समय होता, और वह उसी समय पर सम्पन्न हो जाती थी। अहिंसादि पंच महाव्रतों में, समिति-गुप्ति की परिपालना में उनकी दृढ़ता, निरतिचार पालन की सजगता किस दर्शनार्थी को प्रभावित नहीं कर पाती ! उस महान साधक की साधना को देखकर हृदय हिलोरें लेने लगता और साधना के पथ पर दृढ़ता, सजगता और अप्रमत्तता की प्रबल प्रेरणाओं से भर जाता। मद्य, विषय, निद्रा, कषाय और विकथा के पाँचों प्रमादों से वे दूर दृष्टिगत होते थे। विषय और कषाय के बाधक तत्त्वों को जैसे उन्होंने जीत रखा था। क्रोध-मान उनसे कोसों दूर थे। माया को उनके सरल कोमल हृदय में कहाँ स्थान मिलता? निर्लोभता, निस्पृहता के वे एक आदर्श थे। प्रवचन-सभाओं में उनके गुणगान करने वालों को पूरा बोलने से पूर्व ही बैठ जाना पड़ता। संघ व श्रावकों द्वारा अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई, परन्तु कहीं भी उन्होंने अपना नाम जोड़ने ही नहीं दिया। निद्रा के लिए सुना गया कि वे साध्वाचार के अनुसार एक प्रहर भी नहीं सोते थे। जब भी संत उठते तो उन्हें बैठे हुए ही पाते। ध्यान-जप, मौन में लीन। विकथा कभी किसी तरह की, उनके मुँह से सुनी ही नहीं गई। राजकथा, देशकथा भी आध्यात्मिक, धार्मिक प्रसंग से ही, वह भी यदा-कदा।

पिछले एक दो वर्षों में अस्वस्थता के कारण उनकी लेखनी बन्द हुई तो जप ने उसका स्थान ले लिया था। प्रायः अहर्निश ही उनका जाप चलता ही रहता। जप के कारण उनकी अनामिका मुड़ी हालत में ही रह गई थी।

वास्तविकता यह है कि उनका सम्पूर्ण संयमी जीवन साधना की ही अथक कहानी था। उसमें उनकी लीनता, एकाग्रता, तादात्म्य आदि प्रत्येक दर्शनार्थी को अत्यंत आकृष्ट करते थे। उनकी यह साधना एक, दो, पांच, दस वर्ष पर्यंत नहीं, अपितु उनकी पूर्ण संयम-पर्याय में चलती रही। ११ वर्ष की बालवय से ६०-६५ वर्ष की अवस्था तक लेखक को उनकी यह साधना ही आकृष्ट करती रही।

उनके मुखमण्डल पर सदा सर्वदा प्रसन्नता की लहर दौड़ती रहती थी। उनकी यह प्रसन्नता मूक प्रेरणा दे जाती थी कि समता का साधक कैसा होना चाहिए। कैसी भी प्रतिकूल परिस्थितियां हों, उन्हें कभी गमगीन नहीं पाया गया। भले ही कोई उनका उपदेश नहीं सुन पाया हो, उनसे चर्चा का किसी को अवसर सुलभ नहीं हुआ हो,

परन्तु उनकी साधना को देखकर ही दर्शक सब कुछ पा लेता था।

लेखक को भी उनके अप्रमत्त साधनामय जीवन का खूब सान्निध्य मिला। उनकी साधना की पूजनीय एवं अनुकरणीय छवि ही हृदय में अंकित हुई, जो अमिट है। आचार्य देव की साधना को प्रत्यक्ष देखकर, उनके पावन प्रवचन सुनकर ही मैं हरबार उनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होता गया। उनकी साधनामय जीवन की गहरी छाप ही मेरे जीवन को यत्किंचित् धार्मिक आध्यात्मिक बनाने की बुनियाद रही। सच कहा जाय तो-

इस गाथा में, इस कथा में न कुछ मेरा है न तेरा है,
उस विभूति के गुणगान का बहाना मात्र है-यह सब कुछ।

• दृष्टिकोण में बदलाव

पूज्य आचार्य श्री हस्ती धार्मिक-आध्यात्मिक जगत् की एक महान् विभूति थे। वे एक महानतम साधक थे और थे साधना के उत्कृष्ट आदर्श। उनका सम्पूर्ण जीवन साधना की समुज्ज्वल स्वर्णिम रश्मियों से जगमगाता था। साधना के अप्रतिम प्रभाव से प्रभावित जैन समाज ही नहीं, सम्पूर्ण जन-समुदाय उनके चरणों में श्रद्धा से नतमस्तक था। उस अप्रमत्त साधक का सान्निध्य पाकर व्यक्ति के विचार और व्यवहार में परिवर्तन आना कोई आश्चर्यजनक नहीं, आश्चर्यजनक तो इस महान् आत्मा के सान्निध्य में रहकर भी परिवर्तन नहीं आने में होता।

यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे उस तपःपूत दिव्य आचार्य का सान्निध्य पाँच दशाब्दियों से अधिक काल तक प्राप्त हुआ। बालपन से प्रौढ़ावस्था पर्यन्त मिले इस सान्निध्य का प्रभाव अत्यंत ही अमूल्य और अमिट रहा। उस महापुरुष की कृपा से संसार के कार्य करते हुए भी मेरे मन में पापभीरुता बनी हुई है। पापमय कार्यों से विलग रहने का भरसक प्रयास और अन्तर्मुखीवृत्ति उस पावन सान्निध्य की अविस्मरणीय निधि है। उस आधार पर यह धारणा बनी है कि वृत्तियाँ ठीक रहें तो प्रवृत्तियां निश्चित रूप से ठीक होंगी ही।

भोपालगढ़ (जोधपुर, राजस्थान) की संत-चरणों से पावन बनी भूमि में जैनरत्न विद्यालय के छात्रावास में रहते हुए सन्त-सती वर्ग एवं पूज्य आचार्यप्रवर के सान्निध्य का अनेक बार स्वर्णिम अवसर मिला। आचार्यप्रवर के दर्शन, वंदन, प्रवचन, धर्मचर्चा, सामायिक, स्वाध्याय, पौषध आदि में पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य ने मुझ में एक सम्यक् दृष्टि जगा दी। फलस्वरूप जीवनयात्रा में अग्रसर होते हुए आध्यात्मिक, धार्मिक रुचि बढ़ती गई, दृढ़ होती गई। बचपन में अंकुरित अध्यात्म-बीज पल्लवित होते गये। आजीविका उपार्जन के साथ जीवन में धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता का सर्वोपरि स्थान रहता था। ज्ञान-क्रिया के प्रति रुझान रहता था।

उस महनीय व्यक्तित्व का ही अमिट प्रभाव मेरे जीवन पर अंकित है। उस महान् संयम- श्रेष्ठ संतरत्न की छाप मेरे मानस में बसी हुई है। आज भी मैं और मेरा परिवार शुद्धाचारी एवं क्रियावान सन्त-सती वर्ग की बिना किसी सम्प्रदाय का विचार किए सेवा करते हैं। शुद्धाचार को बल देते हुए असाम्प्रदायिकता की भावना मेरे विचार में जैन एकता की एक सबल कड़ी बन सकती है। यह तो दृष्टिकोण के बदलाव की बात हुई। जब दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली, इस कहावत के अनुसार मेरी दिनचर्या में भी पर्याप्त बदलाव आया।

आचार्य प्रवर का सान्निध्य बचपन से प्रौढावस्था तक मिलता ही रहा। उनके त्यागमय एवं तपःपूत जीवन से एवं उनके वैराग्यपूरित प्रवचनों से प्रेरित होकर जहां तक स्मरण है, विद्यार्थी काल से ही अध्ययन के साथ धर्म-साधना में तप-त्याग (छोटे-छोटे) की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई दिनचर्या में धर्म-साधना को अधिक-अधिक समय मिलता गया। सांसारिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए भी संवर-निर्जरा में, आध्यात्मिक

धार्मिक-कार्यों में समय लगाना अच्छा लगता था। स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण, मौन, ध्यान, एकाशन, आयम्बिल, संवर, दया, समाज-सेवा में अधिक से अधिक समय लगाता रहा। यही मुझे अभीष्ट था। क्रमशः सांसारिक कार्यों में दिनचर्या का समय कम होता गया और आध्यात्मिक धार्मिक प्रवृत्तियों में अधिक। सेवानिवृत्ति के बाद तो आजीविकोपार्जन के कार्य से प्रायः पूर्ण निवृत्ति लेने के बाद अब अधिकांश समय आत्म-साधना में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना में ही लग रहा है। यह सब उस महान आचार्य देव की कृपा का ही सुफल है।

• स्वाध्यायी को महत्त्व

मरुधरा का एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर है पाली। आचार्य श्री यहाँ विराज रहे थे। मैं भी एक स्वाध्यायी शिविर के प्रसंग में वहाँ उपस्थित था।

प्रातःकालीन प्रवचन आरम्भ हुआ ही था। मैं सामायिक व्रत ग्रहण कर आगे की पंक्तियों में बैठा था। अनिमेष दृष्टि से आचार्यप्रवर के दर्शन करता हुआ उनकी प्रवचनधारा का पान कर रहा था। आचार्यप्रवर का उद्‌बोधन-प्रवचन सुनकर गद्‌गद् हो रहा था।

इसी बीच आचार्यप्रवर के महान् भक्त एक श्रेष्ठी श्रावक का आगमन हुआ। वे अन्य लोगों, मुझे और अन्य स्वाध्यायियों को पीछे छोड़कर आगे आ रहे थे। आचार्यप्रवर को यह उचित नहीं लगा। अन्य स्वाध्यायियों और मेरी तरफ संकेत करते हुए उन्होंने कहा–"अब इन लोगों को आगे आने दो।" इस संकेत में आचार्यप्रवर की स्वाध्याय प्रवृत्ति और स्वाध्यायी वर्ग को समाज में अग्र स्थान देने की भावना निहित थी। वे स्वस्थ, सदाचारी एवं विवेकवान समाज के निर्माण में स्वाध्यायी वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देना चाहते थे। आचार्यप्रवर का मनोभाव और आशय समझ कर वे श्रीमन्त सज्जन मुड़ गए और पीछे जाकर उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया।

• असाम्प्रदायिकता

एक समुदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी पूज्यवर आचार्यश्री हस्ती के सुदीर्घ सान्निध्य से असाम्प्रदायिकता के दृष्टिकोण का विकास हुआ। यह एक विस्मयकारक तथ्य हो सकता है, परन्तु है यह बिल्कुल सत्य। इस महान् आचार्य के प्रति सम्पूर्ण जैन समाज की श्रद्धा का एक बड़ा कारण उनका असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण था।

मेरे बाल्यकाल से ६०-६५ वर्ष तक की आयु तक मुझे खूब याद है कि आचार्य श्री ने अपने जीवनकाल में कभी ऐसी बात नहीं की जिससे सम्प्रदायवाद को हवा मिले। उनके मुँह से कभी किसी की निन्दा विकथा नहीं सुनी गयी। उनके उपदेशों में शुद्ध वैराग्य एवं सैद्धान्तिक विवेचन भरा रहता था। ११ वर्ष की उम्र से ही छात्रावास में रहते हुये आचार्य श्री के दर्शन, प्रवचन एवं प्रतिक्रमण में हमे सम्मिलित होने का सुअवसर मिलता था। सायंकालीन प्रतिक्रमण (देवसिय प्रतिक्रमण) के पश्चात् हमें आचार्य श्री की सेवा में बैठाया जाता। वहाँ प्रश्नोत्तर, धर्म-चर्चा होती। कभी सम्प्रदायवाद का जिक्र नहीं आया। प्रश्नोत्तर एवं धर्म-चर्चा के माध्यम से पर्याप्त ज्ञान वृद्धि हुई, जो मेरी स्थायी निधि बनी हुई है।

जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ के प्रधानाध्यापक का पदभार, जिनवाणी पत्रिका का ६ वर्ष तक सम्पादन, स्वाध्यायी कार्यक्रमों में भाग, साधना-विभाग का संचालन जैसे कुछ विशेष दायित्व मुझे सौंपें गये थे। इन्हें संभालते हुये आचार्य श्री से अनेक बार सम्पर्क हुआ, चर्चा भी हुई। परन्तु आचार्यप्रवर के मुख से कभी साम्प्रदायिकता की

बात नहीं सुनी, न उन्होंनें सम्प्रदाय के विषय में ऐसा कुछ कहा, जिसे साम्प्रदायिकता समझा जाय। इतना ही नहीं उनकी ओर से अन्य आचार्यों, संतों से लाभ लेने की प्रेरणा ही मिली।

एक बार पाली नगर में विराजे थे आचार्य श्री। अपने छोटे पुत्र को गुरु आम्नाय के लिये हमने निवेदन किया। एक बार, दो बार, परन्तु आचार्यप्रवर ने मेरे छोटे लड़के को गुरु-आम्नाय की स्वीकृति प्रदान नहीं की। कितनी विराट्ता एवं उदारता थी उनकी दृष्टि में ।

• निस्पृह साधक

पूज्यवर इतने बड़े संघ के आचार्य होते हुए भी मूल रूप से निष्काम एवं निस्पृह साधक थे। उनके जीवन के एक नहीं कई प्रसंग इस तथ्य को उजागर करते हैं। ऐसा ही एक प्रसंग है आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व का। पूज्य आचार्यप्रवर अपने संत समुदाय के साथ मारवाड़ के प्रसिद्ध शहर नागौर में विराजमान थे। आचार्य प्रवर के सान्निध्य में प्रातः प्रार्थना से लेकर प्रतिक्रमण तक सभी कार्यक्रम नियमित और विधिवत् चलते थे।

आचार्यप्रवर जहाँ भी विराजते, दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। जंगल में भी मंगल हो जाता। मैं भी पूज्य आचार्य श्री के दर्शन एवं प्रवचन श्रवण की अभिलाषा से नागौर पहुँचा। वहाँ विराजित आचार्य देव एवं सन्तगण के दर्शन कर मेरा मन मुदित हो गया। प्रातःकालीन प्रार्थना में सम्मिलित हुआ। सामूहिक प्रार्थना में वीतराग परमात्मा के प्रति अपनी श्रद्धा एवं विनय अर्पित कर धन्य हुआ। प्रार्थना-समाप्ति के अन्त में धर्मस्थान जय - जयकार से गूंज उठा। परन्तु यह क्या? जय-जयकार के प्रकरण को लेकर वहाँ उपस्थित श्रावक वर्ग में विवाद छिड़ गया। वातावरण में गर्मी आ गई।

विवादपूर्ण 'जय-प्रकरण' की खबर आचार्य श्री के कानों तक भी पहुँची। जानते हैं उन्होंने श्रावक वर्ग के इस विवाद पर क्या निर्णय लिया? उन्होंने फरमाया, 'सबकी जय बोली जाए, पर आप लोग मेरी जय मत बोलिए।' वस्तुतः उन्हें समाज में शांति और सौहार्द प्रिय था। वे कभी अशांति का वातावरण नहीं देख सकते थे। उन्होंने श्रावक वर्ग में शांति और सद्भाव स्थापित न होने तक प्रवचन बन्द रखने की भी घोषणा कर दी। तदनन्तर सामाजिक स्थिति पूर्ववत् बनी। संघ में पुनः शांति व सामंजस्य स्थापित हुआ।

३५, अहिंसापुरी, उदयपुर

■

कृपासिन्धु गुरुदेव : मम कोटि प्रणाम

• श्री ज्ञानेन्द्र बाफना

मैं अपने आपको अत्यन्त सौभाग्यशाली समझता हूँ कि इस जन्म में पूज्यपाद आचार्य हस्ती जैसे महा मानव से संस्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। बचपन से ही उनके श्री चरणों में बैठने का, किशोर वय में ही उनके कृपा-प्रसाद से संघ से जुड़ने का व अध्ययन काल में ही संघ का कार्यकर्ता बनने का सौभाग्य मिला। उन कृपा-सिन्धु की स्नेहिल आँखों से बरसते अमिय सान्निध्य से सुलभ अनिर्वचनीय आनन्द, हृदय के कोने-कोने में बसी मंगल-कामना का कृपा प्रसाद सदा-सदा मिला, पर उनके पदार्पण के बाद ही अनुभव कर पाया कि उन चरणों में बैठना कितना सुखद था।

आज जब उन महामनीषी के चरणारविन्दों में बिताये क्षणों का , उन अकारण करुणाकर की कृपा-दृष्टि का स्मरण करता हूँ तो अनुभव होता है कि उन महापुरुष ने इस नादान, अबोध, अपात्र बालक पर भी जो अमिय वर्षा की, मैं उसके योग्य तो न था। उन कुशल कलाकार के स्नेहसिक्त हाथों का आशीर्वाद पाकर भी उनकी अपेक्षा के अनुरूप अपने जीवन को न ढाल पाया, उन महामानव की विराट्ता का बोध न पा सका, यह मेरी अपनी कमजोरी ही तो है। काश बाल्यकाल में ही मैं अपने आपको सर्वतोभावेन जीवन पर्यन्त के लिये उनके चरणों में समर्पित कर देता,तो प्रतिपल उनका सान्निध्य पाकर अपने आपको साधना मार्ग में आगे बढ़ा कर जीवन-लक्ष्य को सिद्ध कर पाता। बचपन से ही जब-जब पूज्य गुरुवर्य के भोपालगढ़ (मेरी जन्म-भूमि) पधारने का प्रसंग होता, मैं भी अपने पिताश्री के साथ सामने जाता, जब आपका विहार होता, अगले गांव तक विहार सेवा का लाभ भी लेता। तब से उन पूज्यपाद के सान्निध्य में जो-जो क्षण बीते, वे जीवन की अनमोल थाती हैं।

(१) सन् १९६८ में मैंने हायर सैकेण्डरी परीक्षा मध्यप्रदेश बोर्ड से दी थी, भ्रान्तिवश मुझे सूचना प्राप्त हुई कि मै अनुत्तीर्ण हूँ। हृदय को आघात लगा, सहज उदासी छा गई। जहाँ तक स्मरण में है, भगत की कोठी रेलवे स्टेशन के क्वार्टर्स में आप विराज रहे थे। मैं दर्शनार्थ पहुँचा। पूज्यपाद ने सहज पूछा - "फूल कुम्हलाया क्यों है ?" मैंने निवेदन किया—"भगवन् ! फूल कुम्लाया ही नहीं है, मुरझाने वाला है।" तत्काल आपने आश्वस्त करते हुए फरमाया - "घबराना नहीं, रात्रि के बाद दिन, यह प्रकृति का अटल नियम है।" कहना न होगा - तीन दिन बाद ही मुझे डाक द्वारा मेरी मार्क-शीट प्राप्त हुई, सभी विषयों में मेरे विशेष योग्यता के अंक थे।

(२) जोधपुर चातुर्मास में एकदा आपने मुझे प्रेरणा देते हुए फरमाया कि ईसाई मिशनरी में जिस सेवा-भावना से यीशू की सेवा में समर्पित होकर जीवनदानी कार्यकर्ता बनते हैं, उसी भावना से तुम ब्रह्मचर्य धारण कर शासन हितार्थ समर्पित हो जाओ, तो मुझे विश्वास है कि बस्तीमल (मेरे पिताश्री) कभी मना नहीं करेगा। मैंने प्रत्युत्तर में समाज की विषम स्थिति व कार्यकर्ताओं के मान-सम्मान की स्थिति अर्ज की, तो भगवन्त ने दूसरे दिन प्रवचन ही इस विषय पर देते हुए फरमाया कि मेरे भक्त ऐसा कहते हैं। आपने समाज को कार्यकर्ताओं के मान-सम्मान के बारे में जागृत करते हुए जीवनदानी समर्पित कार्यकर्ताओं को प्रेरित करने की प्रेरणा की।

(३) बचपन से ही हमने देखा कि गुरुदेव न तो कभी खाली विराजते न ही अपना समय पर-चर्चा में लगाते। यही नहीं सांसारिक विषयों बाबत भी कभी नहीं पूछते। वे तो सदा आगन्तुक भक्तों को ज्ञानार्जन हेतु ही प्रेरित

करते। बाल भक्त संस्कारवान बन कर ज्ञानाभ्यासी बनें, इस हेतु आप बच्चों को प्रेरणा प्रदान करते। मुझे भी उनके कृपा प्रसाद से चरणों में बैठने व ज्ञानाभ्यास करने का अवसर प्राप्त हुआ। संवत् २०२१ के भोपालगढ वर्षावास में एक दिन गुरुदेव ने हम बालकों (मुझे, भाई प्रसन्न चन्दजी, श्री नेमीचन्दजी कर्णावट व भाई श्री जम्बू कुमार) को प्रेरित करते हुए एक दिन में आचार्य अमितगति कृत "सत्त्वेषु मैत्रीं..."प्रभृति ग्यारह श्लोक कंठस्थ करने का लक्ष्य प्रदान किया। गुरुकृपा से हम चारों ने ही उसी दिन में ग्यारह श्लोक कंठस्थ कर लिये। यह थी गुरुदेव की ज्ञानदान की उत्कट भावना। इसी चातुर्मास में पूज्यवर्य ने महती कृपा कर हमें स्वयं कर्मप्रकृति का थोकड़ा व महावीराष्टक सिखाया।

जोधपुर चातुर्मास में कोठारी भवन में आपने अपनी कृपा का प्रसाद प्रदान करते हुये मुझे एवं भाई प्रसन्नचन्दजी को तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन कराया। कॉलेज में पढ़ते हुए हमारे मित्रगण ने गजेन्द्र स्वाध्याय मित्र मंडल का गठन किया एवं हम १५ मित्र प्रति रविवार मुथाजी का मंदिर, नागौरी गेट, जोधपुर में सामूहिक सामायिक करते हुए सामायिक के पाठ, अर्थ व भावार्थ का स्वाध्याय करते। श्रद्धेय श्री महेन्द्र मुनिजी म.सा. उस समय संसारावस्था में थे व हमारे मित्र-मण्डल में सम्मिलित थे। वहाँ हुई चर्चा के आधार पर जब मैंने सामायिक सूत्र पर एक पुस्तक लिखी तो कृपानिधान ने उसका पूर्ण अवलोकन कर इस बालभक्त को प्रोत्साहित किया।

(४) सन् १९७० में आपका चातुर्मास मेड़ता सिटी में था। मैं बी. काम. (अन्तिम वर्ष) का छात्र था। आपके दर्शनार्थ मेड़ता गया। रात्रि में श्री चरणों में बैठा था, आगे समर्पित कर्मठ समाजसेवी सुश्रावक श्री जंवरीमल जी ओस्तवाल प्रभृति मेड़ता के कार्यकर्ता बैठे थे। आपकी दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती बाबत चर्चा चलने पर आपने फरमाया–"आप हमें संत समझते हैं, तो त्याग प्रत्याख्यान व्रत की भेंट दें, यही संयम व संयमियों का सच्चा सम्मान है। अन्यथा संतों के साधक जीवन के प्रसंगों में मान-सम्मान, अभिनन्दन जैसे कार्यक्रमों को हम कतई उचित नहीं समझते हैं व ऐसे किसी आयोजन के प्रसंग पर उपस्थित रहने की हमारी कतई भावना नहीं है।" गुरुदेव के श्रीमुख से ही सुना एक श्लोक याद आ रहा है -

"ध्यान धूपं मनः पुष्पं पंचेन्द्रिय हुताशनं।
क्षमा जाप संतोष पूजा पूजो देव निरंजनं॥"

जंवरीमल सा. बोल पड़े–"बापजी आडी-टेढी बातां क्यूं करो, मना करनी हो, तो स्पष्ट मना कर देवो।" उन्होंने अन्य संतों के जीवन-प्रसंगों के आयोजन का हवाला भी दिया।

अकस्मात् मेरे मुख से निकल पड़ा -" आप ऐसा कैसे कहते हैं, महापुरुष के मुख से जो बात निकली है, वह तो होगी ही। देखना यह है कि यह श्रेय किसे मिलता है?" अपनी बात का प्रतीकार देख कर उन्होंनें पीछे मुड़कर देखा कि यहाँ मेरी बात काटने वाला कौन है ? पूज्य देव ने फरमाया - "यह जोगीदास जी का पोता है। "

कहना न होगा आपकी भावना के अनुरूप साधना कार्यक्रम हाथ में लिया गया व आपके साधनातिशय, पुण्य प्रताप व उत्साही कार्यकर्तागण श्री रामसिंह जी हूंडा हीरादेसर, श्री मदनराज सिंघवी, जोधपुर, श्री संपतराज सा बाफना व श्री पारसमल सा बाफना भोपालगढ़ आदि के उत्साहपूर्ण योगदान व भक्त समुदाय द्वारा अपने महनीय गुरुवर्य की भक्ति में व्रत भेंट करने की प्रबल भावना से लक्ष्य से कई गुना व्रत-प्रत्याख्यान हुए। मैं इस आयोजन में समारोह समिति के महामंत्री के नाते यत्किंचित् संघ-सेवा कर पाया, यह सब उन्हीं महामनीषी की कृपा का ही तो प्रसाद है।

(५) सन् १९७१ में बी. काम. उत्तीर्ण करने के बाद मैं भगवन्त के दर्शन करने जयपुर पहुँचा। मैं सी. ए. करने हेतु बम्बई जाने की सोच रहा था । आपने फरमाया कि जोधपुर रहने में सी. ए. भी हो जायेगी व संघ-सेवा भी हो जायेगी। इस एक वाक्य से ही मुझे आपका आशीर्वाद भी मिल गया था व मेरे जीवन का कार्यक्षेत्र व लक्ष्य भी निर्धारित हो गया, साथ ही संघ-सेवा का सुअवसर भी प्राप्त हो गया। बहुत कम पढ़ाई करते हुये भी मैं प्रथम प्रयास में ही सी. ए. बना, यह आपके कृपा-आशीर्वाद का ही तो परिणाम था।

(६) संगठन व जैन एकता के बारे में गुरुदेव अक्सर दो उदाहरण फरमाते - "देश में वायु-सेना, थल-सेना और जल-सेना अलग-अलग हैं, पर सब का एक ही लक्ष्य है। राष्ट्र की सुरक्षा व कभी भी देश खतरे में हो तो सब सेनाएँ एक होकर सुरक्षा के उपाय करेंगी। ऐसे ही विभिन्न सम्प्रदायों की अलग-अलग व्यवस्था होकर भी सब का एक ही लक्ष्य जिन-शासन की रक्षा हो तथा जब भी जैनत्व का सवाल हो तो सभी सम्प्रदाय जिन-शासन के झंडे तले एक होकर एक ही लक्ष्य से कार्य करें।"

नारंगी ऊपर से एक प्रतीत होती है, पर छिलका हटते ही अलग-अलग फांके बिखर जाती हैं। तरबूज पर ऊपर से धारियां नजर आती हैं, पर छिलके के भीतर तरबूज एक है। जैन एकता नारंगी की तरह न होकर, तरबूज की तरह हो। तरबूज की भांति ऊपरी व्यवस्थाएँ भिन्न-भिन्न भले हों, पर अन्तहर्दय से सबका एक ही लक्ष्य जिन-शासन की उन्नति व सुरक्षा हो।

(७) परम पूज्य गुरुवर्य का विहार सोजत की ओर होने की चर्चा थी, मैं पूज्यपाद के चरणों में बैठा था। सहज ही मैंने बालचेष्टा भरा प्रश्न कर लिया–"भगवन्! सोजत में तो अपने घर नहीं हैं । तत्काल उन महापुरुष का उत्तर था -

"जब तक मेरे ज्ञान, दर्शन, चारित्र निर्मल हैं तब तक सभी क्षेत्र , सभी घर हमारे अपने ही हैं और जिस दिन इस चदरिया में कोई भी दाग लग गया , तो तुम भी मेरे नहीं रहोगे।"

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की निर्मलता के प्रति कितनी सजगता, संयम-बल पर कैसा विश्वास व अंतर्हृदय में कैसी साम्प्रदायिक निरपेक्षता। आज भी उन महापुरुष के चरणों में बिताये गये क्षण हृदय को श्रद्धा, भक्ति व उदारता से सराबोर कर देते हैं।

(८) मैं संघ - महामंत्री का दायित्व निर्वहन कर रहा था। तब पूज्यपाद के नाम के पहले १००८ लगाया जाय या १०८, बड़ी ऊहापोह चल रही थी। भक्तगण अपने परम आस्था केन्द्र, अनुपम योगी, युग निर्माता गुरुवर्य के नाम के आगे १००८ से कम लगाने को कतई सहमत नहीं थे। भक्तों की ऊहापोह व प्रबल आग्रह को मैंने चरण सरोजों में निवेदन किया।

भगवन्त का फरमाना था– "हमारे बचपन में संतों के नाम के आगे ६ लगाया जाता था।" मैं कुछ समझ न पाया। कुछ पूछूँ, उसके पूर्व ही भगवन्त ने पूछा 'समझे ?' 'नहीं भगवन्।' भगवन्त का समाधान था - "६ का मतलब होता है षट्काय प्रतिपाल। संयम ग्रहण के साथ ही षट्काय के जीवों के रक्षक होने से संतों के साथ यह विशेषण जुड़ जाता है। क्या तुम इससे भी बड़ा कोई पद संतों को दे सकते हो?"

नतमस्तक था मेरा सिर, श्रद्धा से उत्फुल्ल था मेरा हृदय, कैसी निरभिमानता ! अतुल ज्ञान सम्पदा के धनी, निरतिचार संयम के पालक, जिन प्रवचन के प्रति प्रगाढ आस्था के धनी उन महापुरुष को मानो अभिमान, प्रशंसा की चाह, उपाधि आकर्षण आदि छू ही न पाये हों । जिन्हें नाम व प्रशंसा की चाह नहीं होती है, वे ही पंच परमेष्ठी

भगवंत सदा सदा के लिये वंदनीय, अभिवंदनीय व प्रतिपल स्मरणीय बन जाते हैं।

(९) जयपुर में अक्षय तृतीया का प्रसंग था, मैं भी दर्शनार्थ गया हुआ था। कुछ दिन पूर्व ही पूज्य श्रमण श्रेष्ठ पं. रत्न श्री समर्थमलजी म.सा. एवं उनके प्रमुख शिष्य श्री प्रकाश मुनि जी म.सा. (सम्प्रति श्रुतधर) भोपालगढ़ पधारे थे। मेरी जन्म भूमि थी, मैं भी कुछ दिन वहाँ रुका व उनकी सेवा का अवसर प्राप्त किया। सायंकाल कुछ प्रश्नचर्चा में भी भाग लेता।

जयपुर में पूज्यपाद ने श्रमण-श्रेष्ठ की सेवा का लाभ लेने के बारे में पृच्छा की तो हमारे मुँह से सहज ही निकला कि पं. रत्न श्री प्रकाश मुनि जी जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करते समय पूज्य श्रमण श्रेष्ठ के प्रति श्रद्धा, विनय व समर्पण युक्त समाधान देते हैं। इस प्रशंसात्मक बात को सुनकर मानो 'गुणिषु प्रमोदं' की उक्ति चरितार्थ हो उठी, पूज्यपाद का मुख कमल खिल गया और बिना एक क्षण का समय लिये उनके मुख से उद्गार व्यक्त हुए– "ऐसे सन्तों से ही जिन शासन की शोभा है।"

गुणिजनों के प्रति प्रमोदभाव गुरुदेव की प्रमुखतम विशेषता थी–अहह महतां नि:सीमानश्चरि विभूतय:। महान् पुरुषों के चरित्र की सीमा नहीं । जहां एक ओर पर प्रशंसा सुन लोग चुप्पी साध लेते हैं अथवा विचलित हो जाते हैं, वहां गुरुदेव की दृष्टि गुणों पर रहती थी आप सद्गुणों की स्वयं प्रशंसा करते थे, प्रमोद व्यक्त करते थे एवं अनुसरण की प्रेरणा करते थे।

उसी समय मैंने भी चरणों में पृच्छा की कि इस वर्ष जोधपुर में श्रद्धेय मरुधर केसरी जी म.सा. का चातुर्मास हो रहा है, चातुर्मास में आने जाने में हमारी क्या सोच होनी चाहिये ? तपाक से पूज्य गुरुदेव ने फरमाया - यह तो आपको स्वयं अपने विवेक से सोचना है, इसमें हमसे पूछने का प्रश्न ही कहाँ ?

अपने भक्त जनों पर कैसा अनूठा विश्वास कि उन्हें कभी भी साम्प्रदायिक अंधता की जन्म घूंटी नहीं पिलाई। उन्हें हमेशा स्वनिर्णय के लिये विवेक दृष्टि प्रदान की।

(१०) सन् १९९० में पूज्यपाद जोधपुर के विभिन्न उपनगरों को पावन करते हुये पावटा भांडावत सा. के बंगले में विराज रहे थे । एक दिन अपराह्न में मैं भी अपनी धर्म-पत्नी के साथ दर्शनार्थ पहुँचा । हम दोनों ने एक साथ वंदन किया। शादी के पश्चात् भावी में गुरुधारणा करने के बाद क्वचित् यह प्रथम अवसर था जब मैंने सपत्नीक वंदन किया। (संकोचवश हम दोनों नें कभी एक साथ खडे होकर वंदन नहीं किया।) हमारे खड़े होते ही कृपानाथ मेरी धर्मपत्नी को संबोधित करते हुए बोले "आप शादी करके भावी आये थे, तब मैंने एक बात कही थी, आज एक बात और कह रहा हूँ—।" मैं विस्मय विमुग्ध देखता रह गया। १७-१८ वर्ष पूर्व की घटना का कैसा अद्भुत स्मरण व उन महामना को छोटे से छोटे भक्त का भी कितना खयाल। हृदय सहज श्रद्धा से अभिभूत था तो मस्तक झुका हुआ।

(११) इसी क्रम में पतितपावन शास्त्रीनगर पधारे। ए सेक्टर स्थित स्थानक में विराजित थे। संत प्रवचन फरमा रहे थे, मैं भी प्रवचन में बैठा था। मैंने शास्त्रीनगर में मकान ले रखा था, मकान में रहवास प्रारंभ नहीं किया था। अकस्मात् भगवन्त ने स्मरण किया व श्रद्धेय गौतममुनिजी से पूछा - "ज्ञानेन्द्र आया है?" उन्होंने मुझे संकेत किया। मैं सेवा में पहुँचा। पूछा - "अपना मकान यहाँ से कितनी दूर है?" मैंने कहा - "भगवन् लगभग पौन किलोमीटर।" "मुझे कुछ न कहकर गौतम मुनि सा. को फरमाया - "संतों से कहो अपना कल का कार्यक्रम वहाँ।" दूसरे दिन महाभाग विहार कर पधारे। घर में प्रवेश द्वार में पाँव रखते ही मुझे फरमाया - "नियम ! ऐसा न हो कि लोग कहें

ज्ञानेन्द्र गुरु महाराज के निकट है, सो रियायत।" मैंने निवेदन किया - "भगवन् आप जो भी आदेश देंगे, वही स्वीकार्य।" रात्रि में भी श्री चरणों में सोया था। न जाने कैसे स्वतः मेरे मन में संकल्प उदित हुआ कि कल गुरुदेव से संकल्प लेना है कि भगवन् इस घर में रिश्वत का कोई हिस्सा भी न आवे। प्रातः आपने प्रस्थान पूर्व मुझे सपत्नीक अपनी इच्छानुसार नियम दिलाया। इसके पश्चात् मैंने संकल्प अर्ज किया। गुरुदेव को अतीव प्रसन्नता हुई, आपने कृपा बरसाते हुए तीन बार फरमाया - "आपने बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। इससे आपकी शोहरत खूब फैलेगी।" कहना न होगा उसके बाद समस्याओं का कभी नहीं सोचा, उस ढंग से समाधान हुआ। सुदामा की भांति कब-कैसे समाधान हुआ, वे ही जानें।

(१२) कृपा-सिन्धु पाली वर्षावास के बाद निमाज पधारने की भावना से सोजत पधारे। होली चातुर्मास वहीं था। संघ कार्यकर्ताओं की बैठक थी, मैं भी वहाँ गया। रात्रि में नव मनोनीत संघाध्यक्ष श्री मोफतराज सा. मुणोत के निर्देशानुसार मैं जोधपुर जाने हेतु मांगलिक लेने पहुंचा। आप पोढे हुए थे। श्रद्धेय श्री हीरामुनि जी (वर्तमान आचार्य प्रवर), मैं, श्री जगदीशमलजी कुम्भट व श्री नौरतन जी मेहता आपके श्री चरणों में बैठ गये। थोड़ी देर बाद आपके जागने पर हमने मांगलिक माँगी। सहसा गुरुदेव के मुख से निकला– "रुको तो मेरे हृदय की बात कहूँ।" पर न जाने मेरी बुद्धि ने क्यों जवाब दे दिया व मैंने आग्रहवश कहा कि भगवन्! संघ के काम से जा रहा हूँ, शीघ्र ही नौरतनजी व मैं दर्शनार्थ सेवा में आयेंगे, मांगलिक श्रवण कर जोधपुर आने का कार्यक्रम बना लिया। न जाने करुणानिधान क्या फरमाते, यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। मेरे जीवन की भयंकरतम भूलों में से यह एक है। जब आम्रमंजरियां पक जाती हैं, तो कौए के गले में रोग हो जाता है, मैं भी इसी माफिक उस स्वर्णिम अमिय वर्षा से वंचित रहा।

(१३) सन् १९९० में ही घोड़ों के चौक प्रवास के एक दिन अपराह्न आपने फरमाया (उस समय श्री नवरतनमल सा डोसी, श्री लखपत चन्द सा भंडारी व श्री गोपाल सा अब्बाणी साथ में थे।) "युवक संघ मेरी इच्छा है, मेरी महत्त्वांकाक्षा है।" फिर फरमाया - "तुम चारों में जितनी पारिवारिक घनिष्ठता बढ़ेगी, उतनी ही अधिक संघ-सेवा कर सकोगे।"

युवक कैसे संगठित होकर संस्कारवान बनें व संघ की सेवा करें, इस ओर उस समय आपका चिन्तन सतत चलता रहता। मेरी ओर से प्रयासों में वेग न आते देख एक बार उपालंभ भी मिला - वह गति नहीं आई (वह गति से पूज्यपाद का आशय साधना-समारोह की स्मृति दिलाने का था)। फिर सिंहपोल में श्रद्धेय गौतममुनिजी म.सा. की उपस्थिति में फरमाया– "मैं तुम्हें युवक संघ का फौज बख्शी मानता हूँ।" फिर फरमाया- "समझे?" मैंने कहा - "नहीं भगवन्।" तब फरमाया- "बादशाह के समय के खींवसी भंडारी फौजबख्शी थे व उसका मतलब होता है कमान्डर इन चीफ"। इस तरह भांति-भांति युवक संघ के संगठन हेतु मुझे प्रेरित किया। युवक संघ जो स्वरूप ले पाया व उसकी नींव में हम चारों बन्धु जो भी अर्घ्य दे पाये, वह सब उन्हीं कृपा-सिन्धु का ही प्रताप था, हम तो मात्र निमित्त थे, वे हमें श्रेय देना चाहते थे, जो मिल गया।

(१४) पूज्यपाद के संथारे के पश्चात् जोधपुर में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन था, घोड़ों के चौक सामायिक स्वाध्याय भवन में जैन समाज की सभी परम्पराओं के श्रावक-श्राविकागण उपस्थित थे। विभिन्न वक्ताओं ने अपने संस्मरण प्रस्तुत करते हुए उन महापुरुष के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित किये। समूचे जैन समाज में अपनी अलग पहचान रखने वाले त्यागमूर्ति विद्वान् साधक सुश्रावक भी जौहरी मल जी पारख (सी.ए) रावटी वालों ने श्रद्धा सुमन

समर्पित करते हुए जो विचार अभिव्यक्त किये वे शब्द आज भी मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हैं-

"मेरे पिताजी सिधारे, माँ भी गई, पर मुझे लग रहा है कि म्हारां मायत (माता-पिता) आज ही मर्या। मैं जन्मजात मन्दिर मार्गी हूँ, मैं कई परम्परा रा महापुरुषों रा दर्शन कर्‌या। साधु में तीन विशेषता हुवै - ज्ञान, क्रिया व पुण्यवानी। कोई में ज्ञान उच्च कोटि रौ, क्रिया कोनी, कोई क्रिया रा धणी तो ज्ञान री गहराई कोनी, कदाचित् दोनुं बाता हुवै तो पुण्यवानी कोनी, पर गुरु महाराज में मैं तीनूं ही बातां ज्ञान, क्रिया अर पुण्यवानी रो समन्वय देखियो।"

इतर परम्परा के अग्रगण्य सुज्ञ श्रावकों की भी आपके प्रति कैसी आस्था! आपके व्यक्तित्व-कृतित्व से कितने प्रभावित! वस्तुतः पूज्यपाद मात्र रत्नवंश परम्परा के ही आचार्य नहीं, वरन् इस युग में जिन शासन के युग प्रधान आचार्य थे, जिनके साधना सम्पूरित जीवन, निर्मल आचार व ज्ञान गरिमा से समूचा जैन समाज तो प्रभावित था ही, जैनेतर धार्मिक जन भी कम प्रभावित नहीं थे।

-सी-५५ शास्त्रीनगर जोधपुर

■

निरतिचार साध्वाचार के सजग प्रहरी

• श्री प्रसन्न चन्द बाफना

मुझे मेरे बाल्यकाल की ४० वर्ष पूर्व की घटनाओं का सहज स्मरण हो आता है। भोपालगढ़ में हम छोटे-छोटे बालकों का समूह लम्बी दूरी तक गुरुदेव के पधारने की खुशी में छलांगें लगाता हुआ सामने जाता था। सारे गांव में एक उत्सव-सा माहौल होता था , जो देखते ही बनता था। छोटे-छोटे बालकों से गुरुदेव का विशेष लगाव था। गुरुदेव का विश्वास था कि इन बालकों को अभी से धर्म से जोड़ा गया, तो कुछ कर-गुजर सकते हैं। अपना जीवन तो बनायेंगे ही साथ ही संघ व समाज की सेवा के संस्कार का भी इनमें बीजारोपण हो सकेगा। मेरा भी सौभाग्य रहा कि १२-१३ वर्ष की उम्र से ही गुरुदेव का स्नेह प्राप्त कर यत्किंचित् संस्कार प्राप्त कर सका ।

पाली के अन्तिम चातुर्मास में भादवा सुद का प्रसंग है। हमारे दादीसा का दो दिन पहले संथारा सहित स्वर्गगमन हो चुका था। इधर मेरे भतीजे नरेन्द्र के अठाई की तपस्या थी। उसकी गुरुदर्शन की भावना से हम पाली गये। दर्शन-वन्दन के पश्चात् मैंने गुरुदेव के समक्ष दादीसा के संथारा सहित स्वर्ग गमन के समाचार अर्ज किये। गुरुदेव ने तत्काल प्रतिप्रश्न करते हुए पूछा - "संथारा किसने कराया ? श्रद्धान किया अथवा नहीं ?" गुरुदेव यद्यपि उस दिन अस्वस्थ थे, फिर भी उनका चिंतन द्रव्य-क्रिया पर नहीं, भाव-क्रिया पर था। स्पष्ट भासित होता है कि वे औपचारिकताओं में नहीं, आचरण में विश्वास करते थे।

गुरुदेव पंचमी (जंगल) से लौटने पर पैर के अधोभाग पर अत्यल्प प्रासुकजल की बूंद-बूंद डालकर उसका प्रक्षालन करते थे। एक बार मैंने गुरुचरणो में निवेदन किया - अन्नदाता ! लोग इस संबंध में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं?" गुरुदेव ने फरमाया - "वे ठीक कहते हैं। किन्तु बाल्यकाल से ही जब मैं पढ़ने बैठता था तब से मेरी आदत-सी बन गयी है। मैंने अनुभव किया कि गुरुदेव सत्य के प्रति कितने सहज हैं। उनके रोम-रोम में सत्य का कितना आग्रह है।

इसी प्रसंग के संबंध में एक बार मैंने गुरुचरणों में निवेदन किया "अन्नदाता, आपके पैर-प्रक्षालन के पश्चात् तुच्छ जलराशि जो फर्श पर होती है उसको लेने के लिये लोग तरसते हैं। उससे उनको साता पहुंचती है, ऐसा उनका प्रबल विश्वास है। आप विसर्जित जलराशि को छितरा देते हैं तथा लेने वाले को मना करते हैं, इसका क्या हेतु है?" गुरुदेव ने प्रत्युत्तर में फरमाया, "यह तो अन्ध-विश्वास है। साता उपजने में इस जल का कोई कारण नहीं है। साता-असाता व्यक्ति को अपने कर्मों से मिलती है।" चमत्कारों के पीछे भागने वालों के लिये यह संदेश बोध देने के लिये पर्याप्त है। गुरुदेव के गुण उनके चिन्तन के पर्याय थे। वे चमत्कार पर नहीं, सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ आस्थावान थे।

१९८४ के जोधपुर (रेनबो हाउस) चातुर्मास के पश्चात् सरदारपुरा में विराजने के स्थान को लेकर श्रावक ऊहापोह में चल रहे थे। दूर से बात कहते हम श्रावकों की बात का गुरुदेव को अन्दाज लगते ही उन्होंने फरमाया - "हमें रोकने वाला है कौन ? और रोकने वाले से हम रुकने वाले नहीं हैं।" इस वाक्य में एक ओर गुरुदेव का दृढ़ चारित्र-बल एवं आत्म-विश्वास झलक रहा था और दूसरी तरफ यह समूचे समाज पर अधिकार (सब अपने हैं) की पुष्टि कर रहा था।

सन् १९७१ की बात है। गुरुदेव महामंदिर रेलवे-स्टेशन के सामने पंचमी के लिये पधार रहे थे। मैंने अंगुली से इशारा करते हुए बताया कि वो अपनी फैक्ट्री (दाल मिल) है। गुरुदेव ने सहज भाव से पूछा-"घर की है क्या?" उसके बाद बस दाता को देते नहीं देखा, झोली भरी अवश्य देखी।

सन् १९८५ के भोपालगढ़ चातुर्मास में एक दिन सांयकाल कुछ श्रावकों में बकराशाला (धर्मपुरा) एवं गोशाला के चन्दे को लेकर गहमा-गहमी हो रही थी। मैं गुरुदेव के पास बैठा था। गुरुदेव ने पूछा - "क्या बात है, लोग इतने जोर-जोर से क्यों बोल रहे हैं ?" मैंने गुरुदेव के समक्ष वस्तुस्थिति अर्ज की, तो गुरुदेव तपाक से बोले- गोशाला और बकराशाला क्या ? बात तो दोनों ही जीव दया की है न ? क्या कल कोई कुत्ता बीमार पड़ जाये, तो कुत्ताशाला और गधे के लिए गधाशाला अलग बनाओगे ?" मैं गुरुदेव के वचन सुनकर अवाक् रह गया। मैं आज तक निरन्तर सोचता हूँ कि गुरुदेव के हृदय में प्राणिमात्र के प्रति कितनी अनुकंपा , कितनी करुणा भरी हुई थी?

सन् १९८४ के जोधपुर चातुर्मास में सांवत्सरिक क्षमापना हेतु तेरापंथ संघ के तत्कालीन युवाचार्य महाप्रज्ञजी रेनबो हाउस पधारे और बातचीत के क्रम में आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव से कहा कि हम छद्मस्थ अवश्य हैं, किन्तु हमारी अवस्था छद्म नहीं है।" गुरुदेव ने तत्काल प्रत्युत्तर में फरमाया - "आप अपनी कह सकते हैं, मेरी नहीं।" मैं मन ही मन सोचता रहा कि गुरुदेव प्रशस्तियों से प्रसन्न नहीं होने वाले विरल महामानव हैं।

मेरे अग्रज श्री मूलचंदजी सा. बाफना एवं भाभीजी सुशीला देवी के सजोड़े मासखमण के पारणे के संबंध में निवेदन करते-करते हमारे आंसू छलक आये। गुरुदेव अपनी प्रतिकूलता के संबंध में स्नेहपूर्वक हमें समझा रहे थे पर आंसू छलकते ही बातचीत के क्रम को बंद कर फरमाया - "मोह के चक्कर मुझे पसंद नहीं हैं । मैं उस माता का पुत्र हूँ जिस माता ने दीक्षा लेने के बाद कभी मुझसे पांच मिनट बात तक नहीं की।" अभी तो अवसर नहीं है। कालान्तर में गुरुदेव सरदारपुरा, नेहरू पार्क पधारे। शाम के समय पंचमी से वापस आते समय रास्ते में मुझसे पूछा - "घर किधर है।" मैंने निवेदन किया - "अन्नदाता, अभी तो भाई साहब घर पर नहीं होंगे। " गुरुदेव ने तुरंत फरमाया - "भाईसाहब से क्या काम है ? घर फरसाना हो तो अभी मैं चलने को तैयार हूँ, और पधारे। मुझे जब-जब भी यह प्रसंग याद आता है तो गुरुदेव के अनेक गुणों का सहज ही स्मरण हो आता है। गुरुदेव कितने निस्पृह थे।

बनाड़ में एक जैन श्रावक के घर फरसने हेतु जाने पर आचार्य श्री द्वारा संतों से केवल ठंडी रोटी और दही लाने को कहते मैंने सुना था। गुरुदेव को शंका हो गई थी कि श्रावकजी ने आज संतों के निमित्त से ही चौका किया है। किन्तु श्रावकजी की बात सुनकर उनकी प्रबल भावना को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त बात कही। गुरुदेव के चातुर्य के ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो निर्दोष संयम-पालन को प्रतिबिम्बित करते हैं।

मैंने सी. ए करना छोड़, व्यापार करने का मानस बना लिया। परिवार वालों की इच्छा पढ़ाने की थी। आखिर निश्चय हुआ कि गुरुदेव की सेवा में आगोलाई चलेंगे और गुरुदेव जैसा संकेत करेंगे वैसे करना होगा। हम रागी वे विरागी, किन्तु हृदय में विश्वास जो ठहरा। गुरुदेव के समक्ष पिताजी ने सब बात निवेदन की। पर गुरुदेव से मेरे मनोभाव कहां छिपे थे, उन्होंने मुझसे कोई सफाई नहीं मांगी। गुरुदेव मनोभावों के कितने कुशल ज्ञाता थे!

सन् १९८४ में चातुर्मास के पश्चात् आचार्यदेव स्वास्थ्य-संबंधी कारणों से सरदारपुरा कोठारी-भवन में विराजमान थे। वैद्य संपतराजजी मेहता का उपचार चालू था। मेरे भी श्वास में बाधा का उपचार वैद्य संपतराजजी का ही चल रहा था। वैद्यराजजी से ही मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी और आचार्यश्री की दवाई की पुडिया समान ही हैं।

मैंने गुरुदेव से निवेदन किया अन्नदाता, कुछ पुडिया मेरी में से भी लिरावे। बार बार निवेदन करने पर एक दिन प्रमोद मुनि सा ने ५-६ पुडिया ली। कालान्तर में स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् आचार्यश्री विहार कर रहे थे और दवाई की कुछ पुडियाँ बच गई थीं। मैंने निवेदन किया-अन्नदाता, यह दवाई की पुड़िया मुझे दे दिरावें। आचार्य देव ने संतों से कहा कि इन पुडियों को वैद्य संपतराजजी को लौटा कर आवें। मुझे नहीं दी। यह थी उन महापुरुष की सजगता, अप्रमत्तता व निस्पृहता।

एक - एक प्रसंग अनेक तरह की प्रेरणाएँ प्रदान करने वाला है, तो दूसरी ओर विशुद्ध संयम और साधु समाचारी के प्रति निष्ठा को प्रकट करता है। इसमें कैसे भी भक्त के साथ कोई रियायत नहीं।

पुरुषार्थ के धनी महापुरुष पूज्य गुरुदेव ने जब हम किशोर अवस्था में थे, तो अपने अंग चिह्नों से बताया कि यह चिह्न पहले यहाँ था और अब यहाँ आ गया। गुरुदेव फरमाते - "तकदीर (भाग्य) नहीं तजबीज (पुरुषार्थ) होनी चाहिये।" छोटी-छोटी वार्ता में गुरुदेव जीवन में सफलता के रहस्य समझा देते थे।

सन् १९९१ में गुरुदेव ने महावीर भवन सरदारपुरा में विराजते समय प्रसंगवश फरमाया कि मैंने जीवन में कभी ढबका नहीं खाया। अर्थात् चारित्र पालन में कभी कोताही नहीं बरती। दृढ़ता एवं निष्ठा पूर्वक आचार धर्म का पालन किया।

सिंहपोल में विराजते प्रसंगवश एक दिन साधुओं के मर्यादा विपरीत आचरण के संबंध में घटना के विवरण के साथ फरमाया कि कोई जैन साधु भी भला ऐसा कर सकता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। उत्कट संयम पालक गुरुदेव की प्रत्येक साधक के लिये यही भावना रहती कि वह मर्यादा में स्थिर रहे। छल छद्म की तो कल्पना उनके जेहन में ही न आ पाती।

वयसंपन्न लोगों के संयम-धारण के विरोधी-स्वरों के प्रत्युत्तर में गुरुदेव फरमाते कि क्या बूढ़े लोगों को आत्मा के कल्याण का अधिकार नहीं हैं? यह थी "आत्मवत्सर्वभूतेषु" व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना।

सन् १९८४ में जोधपुर के रेनबो हाउस में पर्युषण के पश्चात् गुरुदेव का स्वास्थ्य काफी कमजोर हो गया था। एक दिन दीर्घशंका निवारण के पश्चात् गिर गये। गुरुदेव को संत ऊंचाकर लाये और रेनबो हाऊस के चौक में पट्टे पर सुलाया। सब चिन्तित थे, पर गुरुदेव कुछ ही समय में कुछ स्वस्थता अनुभव करते हुए पाट पर विराज गये और माला फेरने लगे। डाक्टर और सभी उपस्थितजन आश्चर्य चकित थे। डाक्टरों की पूर्ण विश्राम की सलाह थी। पर गुरुदेव भक्तों का मन बोझिल न हो, इस दृष्टि से उनसे ओझल नहीं रहना चाहते थे और न अपनी साधना में कमी आने देना चाहते थे। हमेशा फरमाते—मैं अस्वस्थ कहाँ हूँ और फरमाते— 'स्वस्मिन् स्थितः स्वस्थः ।'

–१, नेहरू पार्क, जोधपुर (राज.)

■

प्रज्ञापुरुष को प्रणाम

• डॉ. नरेन्द्र भानावत

आचार्य श्री हस्ती एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था नहीं, वरन सम्पूर्ण युग थे। आचार्य श्री की सबसे बड़ी विशेषता जो मुझे देखने को मिली, वह थी उनकी गहरी सूक्ष्म दृष्टि, व्यक्ति की पात्रता की पकड़ और उसकी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार कार्य करने की प्रदत्त प्रेरणा। जो भी उनके संपर्क में आता, वह ऐसा अनुभव करता कि जैसे आचार्य श्री उसके अपने हैं, उसकी क्षमता को पहचानते हैं। वे धर्म को किसी पर लादते नहीं थे, व्यक्ति की पात्रता के अनुसार उसे ऐसी प्रेरणा देते कि वह धर्म को जीवन में उतारने के लिए तत्पर हो जाता, उस पथ पर चल पड़ता । यही कारण है कि अनपढ़ से लेकर बड़े-बड़े विद्वान्-पण्डित, सामान्य जन से लेकर बड़े-बड़े श्रीमन्त उनके भक्त थे। उनकी प्रवचन-सभा में सभी जाति और वर्ण के लोग आते थे । वे सबको समान स्नेह और आशीर्वाद देते थे । आचार्य श्री के प्रेरणादायी प्रभावक व्यक्तित्व का ही परिणाम है कि धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सेवा-क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों के सैकड़ों कार्यकर्ता और समाजसेवी लगे हुए हैं। प्राचीन साहित्य के संरक्षण और संग्रह की प्रेरणा पाकर स्व. श्री सोहनमलजी कोठारी इस कार्य में जुट गये थे। वे अपनी धुन के पक्के थे। कई लोगों को उन्होंने विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार से जोड़ा । मुझे भी आचार्य श्री की प्रेरणा और श्री कोठारीजी के आग्रह से ज्ञान-भण्डार में संगृहीत हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीकरण के कार्य से जुड़ने का अवसर मिला। हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह के साथ-साथ भंडार में विभिन्न धर्मों के मूल ग्रंथ भी संकलित किये गये और इसे शोध प्रतिष्ठान के रूप में विकसित करने का प्रयत्न रहा।

भारतीय साहित्य के प्रणयन, संरक्षण एवं संवर्द्धन में जैन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्ययुगीन जनपदीय भाषाओं के विविध रूपों और काव्य-शैलियों की सुरक्षा में जैन साहित्यकारों की उल्लेखनीय सेवाएँ रही हैं। भारतीय जन-जीवन के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक इतिहास-लेखन में जैन स्रोत बड़े महत्त्वपूर्ण, विश्वस्त और प्रामाणिक हैं। जैन साहित्य विशेषकर स्थानकवासी परम्परा से सम्बंधित जैन सामग्री जीर्ण-शीर्ण अवस्था में, उपाश्रयों, स्थानकों और निजी आलमारियों में बन्द पड़ी थी । उसकी प्रायः उपेक्षा थी। आचार्य श्री की भारतीय साहित्य और संस्कृति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन यह थी कि उन्होंने इधर-उधर बिखरे पड़े हस्तलिखित ग्रंथों, कलात्मक चित्रों/नक्शों को ज्ञान भण्डारों मे संगृहीत करने की प्रेरणा दी और उनके अध्ययन और अनुसंधान के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। जयपुर आने के बाद मैं आचार्य श्री की प्रेरणा से ही सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल और 'जिनवाणी' के सम्पादन जैसी प्रवृत्तियों से जुड़ा।

आचार्य श्री परम्परा का निर्वाह करते हुए भी आधुनिक भाव-बोध से सम्पृक्त थे । वे समाज की नब्ज को पहचानने में दक्ष थे। उन्होंने देखा कि धर्म को लोग रूढ़ि रूप में पालते अवश्य हैं, पर इससे उनका जीवन बदलता नहीं। सच्चा धर्म तो वह है जो तुरन्त अपना असर दिखाये। उनका चिन्तन था कि ज्ञानरहित क्रिया भार है और क्रिया रहित ज्ञान शुष्क है। ज्ञान और क्रिया के संतुलित समन्वय से ही मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है और राष्ट्र का प्रगति-रथ आगे बढ़ता है। उसी से मानव जीवन सार्थक बनता है। अतः उन्होंने सामायिक के साथ स्वाध्याय को जोड़ा और स्वाध्याय के साथ सामायिक को । धर्माराधना के इन दोनों अंगों को नई शक्ति दी, नई रोशनी दी, नई

दृष्टि दी आचार्य श्री ने । सभी वर्ग के लोग इस दिशा में यथाशक्ति खिंचते चले आये और देखते-देखते देश के विभिन्न प्रान्तों में स्वाध्याय का शंखनाद गूंज उठा। स्वाध्याय केवल मस्तिष्क का व्यायाम बनकर न रहे, उसमें साधना का रस छलके, हृदय का मिठास घुले, वह वाचना, पृच्छना और परिवर्तना तक ही सीमित न रहे। अनुप्रेक्षा और धर्म कथा के तत्त्व स्वाध्याय के साथ जुड़ें, इसी विचार ने साधना संघ को मूर्त रूप दिया । स्वाध्याय साधना का अंग बनकर ही जीवन को रूपान्तरित कर सकता है, भीतरी परतों को भिगो सकता है। आचार्य श्री वस्तु को खण्ड-खण्ड देखकर भी जीवन की अखण्डता और सम्पूर्णता के पक्षधर थे। उनका विचार था कि जैन समाज सब प्रकार से सम्पन्न होकर भी अपना ओज और पुरुषार्थ प्रकट नहीं कर पा रहा है। समाज के श्रीमन्त, अपनी धन-सम्पदा में मस्त हैं तो समाज के विद्वान् अपने ज्ञान-लोक में एकाकी मग्न हैं। कार्यकर्ताओं की जैसी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, वह नहीं है और अधिकारियों का अपना अलग अहम् है। यदि समाज के ये चारों अंग मिल जाएँ तो आदर्श समाज का निर्माण सहज-सुलभ हो सकता है। इसी विचार के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद् अस्तित्व में आई।

आचार्य श्री के सन् १९७८ के इन्दौर चातुर्मास में वहाँ के प्रमुख समाजसेवी श्री फकीरचन्दजी मेहता ने जैन समाज के प्रमुख विद्वानों का एक सम्मेलन इन्दौर में आयोजित करने की बात मुझे लिखी । मैं इन्दौर गया। आचार्य श्री से विचार-विमर्श हुआ और इस योजना को मूर्तरूप मिला । विभिन्न क्षेत्रों के लगभग १०० विद्वान इससे जुड़े और फिर तो आचार्य श्री के प्रत्येक चातुर्मास में विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन होता रहा । विद्वत् परिषद् को संपुष्ट करने के लिए श्रीमन्तों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और प्रशासनिक अधिकारियों को भी इससे जोड़ा गया । आचार्य श्री का विद्वत् परिषद् को सदैव आशीर्वाद मिला। राजस्थान के अतिरिक्त देश के सुदूर क्षेत्रों मद्रास, रायचूर, जलगांव आदि में इसकी गोष्ठियां हुई। अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी आचार्य श्री संगोष्ठियों के अवसर पर विद्वानों को सम्यक् मार्गदर्शन देते। आचार्य श्री का बल बराबर इस बात पर रहता कि विद्वान् अपने को किताबों तक सीमित न रखें, वे धर्म-क्रिया में भी अपना ओज दिखायें। वे कहा करते थे–'यस्तु क्रियावान् पुरुष सः विद्वान्' अर्थात् जो क्रियावान् है, वही पुरुष विद्वान् है। आचार्य श्री की प्रेरणा रहती कि यदि एक विद्वान् सही अर्थ में धर्माराधना के साथ जुड़ जाता है तो वह अनेक भाई-बहिनों के लिए प्रेरणा स्तम्भ बन जाता है। आचार्य श्री के इस उद्बोधन से प्रभावित-प्रेरित होकर विद्वत् परिषद् के कई विद्वानों ने धर्म साधना-सम्बन्धी दैनन्दिन नियम, व्रतादि ग्रहण किये।

आचार्य श्री धर्म को आत्म-कल्याण का साधन मानने के साथ-साथ उसे लोक-शक्ति के जागरण का बहुत बड़ा माध्यम मानते थे। इसीलिए उन्होंने नारी शक्ति को संगठित होने की प्रेरणा दी। श्री महावीर जैन श्राविका संघ इसी प्रेरणा का प्रतिफल है। आचार्य श्री ने अपनी जन्मकालीन परिस्थितियों में नारी को कुरीतियों के बंधन में जकड़े हुए देखा था। उन कुरीतियों से नारी-शक्ति मुक्त हो, और वह अपना सर्वांगीण आध्यात्मिक विकास करे, इसके लिए वे सदैव प्रेरणा देते थे। कहना न होगा कि उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप ही सैंकड़ों-हजारों बहिनों का जीवन बदला है। वे स्वाश्रयी और स्वावलम्बी बनी हैं।

युवकों को भी आचार्य श्री संगठित होने की सदा प्रेरणा देते थे। जोश के साथ वे होश को न भूलें, अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगायें, मादक पदार्थों के सेवन व अन्य व्यसनों से वे दूर रहें, जीवन में सादगी और खान-पान में सात्त्विकता बरतें । इस दिशा में आचार्य श्री युवकों को बराबर सावचेत करते थे। आज 'अ.भा. जैन

रत्न युवक संघ के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में अनेक युवा समाज-सेवा में प्रवृत्त हैं।

आचार्य श्री ने अपने जन्म-काल में जो महामारी और दुर्भिक्ष देखा, उससे उनका दिल पसीज उठा और संयम पथ पर बढ़ने के बाद वे हमेशा रोग-मुक्ति के लिए उपदेश देते थे। वे अत्यन्त दयालु और करुणाशील थे। ज्ञान का फल प्रेम और वात्सल्य मानते थे। वे कहा करते थे यदि ज्ञानी किसी के आँसू न पोंछ सके तो उसके ज्ञान की क्या सार्थकता ? आचार्य श्री की इस वाणी ने विभिन्न क्षेत्रों में जीवदया, वात्सल्य फण्ड, बन्धु कल्याण कोष आदि के माध्यम से जनहितकारी प्रवृत्तियों को सक्रियता प्रदान की।

आचार्य श्री पारम्परिक रूप से एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी विचारों में उदार और व्यवहार में सहिष्णु थे। यही कारण है कि अलग अलग परम्पराओं के लोग आचार्य श्री की प्रेरणा से विभिन्न कार्यों से जुड़े रहते। सभी धर्मों के प्रति उनके मन में आदर का भाव था। 'जिनवाणी' का सम्पादन करते समय मुझे आचार्य श्री की उदार दृष्टि, तटस्थ चिन्तन और विशाल हृदयता का कई बार अहसास हुआ। 'जिनवाणी' के तप, श्रावक धर्म, जैन संस्कृति, साधना, कर्म-सिद्धान्त और अपरिग्रह जैसे विशेषांकों में देश-विदेश के विभिन्न धर्मों की संबद्ध अवधारणाओं और मान्यताओं को स्थान देने में उनकी स्वीकृति और प्रेरणा थी। वे कहा करते थे —"तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञान पकता है और चिन्तन में निखार आता है।" उनकी व्यापक दृष्टि, धार्मिक सहिष्णुता और उदार मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही 'जिनवाणी' के 'कर्म सिद्धान्त' विशेषांक में पूरा एक खण्ड "कर्म सिद्धान्त और सामाजिक चिन्तन" विषय पर जा सका, जबकि कतिपय लोगों ने इस पर आपत्ति भी की थी। आचार्य श्री स्मित मुस्कान के साथ सहज भाव से यही फरमाते कि "भानावत ने तो विषय से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टियों को विशेषांक के रूप में एक स्थान पर पाठकों को परोस दिया है। अब वे अपने अपने ढंग से इसका रसास्वादन करें और अपनी-अपनी टिप्पणियाँ दें ताकि वैचारिक मन्थन हो सके और चिंतन की परम्परा आगे बढ़ सके।"

आचार्य श्री वस्तुतः इतिहास-मनीषी और आगम-पुरुष थे। उनकी शोध दृष्टि बड़ी पैनी और प्रखर थी। नित्य नवीन ज्ञान-विज्ञान को जानने और समझने की उनकी जिज्ञासा बराबर बनी रहती थी। मैं उनसे चर्चा में प्रायः कहा करता था कि "आचार्य प्रवर ! भारतीय विश्वविद्यालयों में आज प्राच्य विद्याएँ उपेक्षित हैं, जबकि विदेशी विद्वान् इस ओर आकृष्ट हो रहे हैं।" आचार्य श्री इस पर कभी-कभी टिप्पणी करते कि ज्ञान के क्षेत्र में भी व्यावसायिकता आ गई है और पल्लवग्राही पांडित्य बाजी मार रहा है।

आचार्य श्री का यह दृढ़ अभिमत था कि किसी भी परम्परा को मूल रूप में समझे बिना उसको नकारना हितकर नहीं है। इसीलिए वे संस्कृत, प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन पर विशेष बल देते थे, क्योंकि इन भाषाओं के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को समझा ही नहीं जा सकता और न मौलिक चिन्तन का द्वार खुल पाता है। प्राचीनता और नवीनता के स्वस्थ समन्वय के पक्षधर थे। आचार्य श्री शिक्षा के क्षेत्र में भी इस समन्वय को चरितार्थ करना चाहते थे। इसी भावना से जयपुर में 'जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान' की स्थापना हुई, ताकि ऐसे ठोस विद्वान् तैयार किये जा सकें, जो प्राच्य विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित होकर भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और शोध-प्रक्रिया में निष्णात हों।

आचार्य श्री की मुझ पर एवं मेरे परिवार पर अहैतुकी कृपा थी। साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर मेरी आचार्य श्री से समय-समय पर बातचीत हुआ करती थी। मैंने उन्हें कभी किसी बात के प्रति आग्रही नहीं पाया। सदैव सहज-सरल, प्रज्ञाशील और सर्वग्राही दृष्टि सम्पन्न पाया। उनका इतिहास-बोध विभिन्न संदर्भों से जुड़ा

हुआ था। भारतीय इतिहास-लेखन में जैन स्रोत उपेक्षित न रहे, इसके लिए वे प्रेरणा देते थे । उन्हीं के सान्निध्य में सन् १९६५ के बालोतरा चातुर्मास में जैन धर्म के इतिहास लेखन की योजना बनी। उस समय जैन आगमज्ञ विद्वान् पं. दलसुख भाई मालवणिया विशेष रूप से बालोतरा पधारे थे। मैं भी उस अवसर पर उपस्थित था। जैन इतिहास लेखन की सामान्य रूपरेखा भी बनी और यह आवश्यक माना गया कि राजस्थान और गुजरात के ज्ञान-भण्डारों का सर्वेक्षण किया जाए और दक्षिण भारत की भाषाओं में जो जैन सामग्री विद्यमान है, उसका आकलन किया जाए । इतिहास की शोध सामग्री के आकलन की दृष्टि को प्रधान रखकर ही सम्भवत: आचार्य श्री ने बालोतरा के बाद अहमदाबाद चातुर्मास किया और सामग्री संकलित करने की प्रेरणा दी । इतिहास के द्वितीय और तृतीय भाग के लिए आचार्य श्री ने कर्नाटक और तमिलनाडु की यात्राएँ कीं और कई नये तथ्य उद्घाटित किये । स्थानकवासी परम्परा के इतिहास-लेखन की आधारभूत सामग्री 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' के रूप में संकलित की । इसका दूसरा भाग भी आचार्य श्री के निर्देशन में तैयार किया गया, जिसके प्रकाशन की प्रतीक्षा है।

आचार्य श्री संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं के अधिकृत विद्वान् थे। उन्होने 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन सूत्र', 'नन्दी सूत्र', 'अन्तगडदशांग', 'प्रश्न व्याकरण' आदि शास्त्रों की सटिप्पण व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं । आत्म जागृति मूलक कई पद लिखे, जो अत्यन्त प्रेरणादायी और जीवनस्पर्शी हैं। भगवान् महावीर से चली आ रही जैन शासन परम्परा को 'जैन आचार्य चरितावली' के रूप में पद्यबद्ध किया। आचार्य श्री का प्रवचन साहित्य हिन्दी के धार्मिक, दार्शनिक साहित्य की अमूल्य धरोहर है । ये प्रवचन सामान्य विचार नहीं हैं। इनमें तपोनिष्ठ साधक की अनुभूतियाँ और उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त की आचरणशीलता अभिव्यंजित हुई है। प्राकृत, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी आचार्य श्री के प्रवचन कभी भी उनके पाण्डित्य से बोझिल नहीं हुए। उनमें उनकी संयम-साधना का माधुर्य और ज्ञान महोदधि के गांभीर्य का अद्भुत संगम होता। छोटे-छोटे वाक्यों में लोक और शास्त्र के अनुभव को वे इस प्रकार बांटते थे कि श्रोता का हृदय-पात्र बोधामृत से लबालब भर जाता। उनकी प्रवचन-प्रभा से हजारों भक्तजनों का अज्ञानांधकार मिटा है, निराश मन में आशा का संचार हुआ है, थकान मुस्कान में बदली है और आग में अनुराग का नन्दन वन महक उठा है।

मेरा किसी न किसी रूप में आचार्य श्री से लगभग ४० वर्षों का सम्पर्क-सम्बन्ध रहा। आचार्य श्री के प्रेरक व्यक्तित्व और मंगल आशीर्वाद ने मेरे जीवन-निर्माण में और उसे आध्यात्मिक स्फुरण देने में आधारभूत कार्य किया है। उनके सत्संग का ही प्रभाव है कि मेरे लेखन और चिन्तन की दिशा बदली। यदि आचार्य श्री का सान्निध्य न मिलता तो मैं दिशाहीन भटकता रहता। जीवन-समुद्र की ऊपरी सतह पर ही लक्ष्यहीन लहरों की भांति उठता-गिरता और सांसारिक प्रंपचों के किनारों से टकराता रहता, झाग बटोरता रहता। आचार्य श्री ने ही मुझे जीवन-समुद्र की गहराई का, उसकी मर्यादा और प्रशान्तता का बोध कराया। मुझे ही क्या मेरे जैसे सैकड़ों-हजारों लोगों को जीवन का रहस्य बताया, सम्यक् जीवन जीने की कला सिखाई। आज समाज में ज्ञान के प्रति जो निष्ठा दिखाई देती है, उसके मूल में आचार्य श्री का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व समाहित है।

एम.ए.करने के बाद मेरी सर्वप्रथम नियुक्ति गवर्नमेन्ट कॉलेज, बून्दी में हिन्दी प्राध्यापक के पद पर हुई। मैं वहाँ १३ जुलाई, १९६२ तक रहा। संभवत १९६०-६१ की बात होगी। आचार्य श्री अपने शिष्यों के साथ पदविहार करते हुए कोटा से बून्दी पधारे। जब मुझे ज्ञात हुआ तो मैं उनके दर्शनार्थ सेवा में पहुँचा। आचार्य श्री मुझे वहाँ देखकर बड़े प्रमुदित हुए और कहा– "तुम्हें अपनी रुचि के अनुसार कार्य-क्षेत्र मिल गया है। लेखन सतत जारी रखो,

जैन शास्त्रों का अध्ययन भी करो। और सहज भाव से यह भी कहा–"यदि तुम्हारी नियुक्ति जयपुर हो जाए तो समाज को ज्यादा लाभ हो सकता है।" मैंने कहा–ऐसा संभव नहीं लगता। कुछ दिन रहकर आचार्य श्री वहाँ से विहार कर गये । इधर मेरा पी-एच.डी. का कार्य भी पूरा हो गया और संयोग से राज्य सरकार के निर्णयानुसार राजस्थान विश्वविद्यालय को नया रूप दिया जाना तय हुआ। विभिन्न कॉलेजों से विभिन्न विषयों के प्राध्यापकों से राजस्थान विश्वविद्यालय में आने के लिए विकल्प (**Option**) मांगे गये। मेरा अध्यापन अनुभव यद्यपि कम था, पर तत्कालीन प्रिंसिपल श्री एम. एल. गर्ग सा. के यह कहने पर कि तुम्हारा एकेडेमिक कैरियर बहुत अच्छा है, अत: तुम विकल्प दे दो और दैवयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के लिए शैक्षिणक योग्यता के आधार पर बिना साक्षात्कार ही मेरा चयन हो गया और मैं १४ जुलाई, १९६२ को जयपुर आ गया । आज सोचता हूँ तो लगता है कि आचार्य श्री कितने भविष्यद्रष्टा थे, वचनसिद्ध थे। मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि मैं इतने सहज रूप से जयपुर आ जाऊँगा।

आचार्य श्री के १९९० के पाली चातुर्मास में 'युवापीढ़ी और अहिंसा' विषयक संगोष्ठी जैन विद्वत् परिषद् के तत्त्वावधान में आयोजित की गई थी। आचार्य श्री ने विद्वानों को विशेष संदेश देते हुए कहा कि वे अपने ज्ञान को शस्त्र के साथ नहीं, शास्त्र के साथ जोड़ें, अपनी विद्वत्ता को कषाय-वृद्धि में नहीं, जीवन-शुद्धि में लगायें और ध्यान रखें कि संयम के बिना अहिंसा लंगड़ी है।

पाली चातुर्मास के बाद आचार्य श्री का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहा और पाली में कुछ समय उन्हें रुकना पड़ा। २६ दिसम्बर को मैंने पाली में आचार्य श्री के दर्शन किये तब लगभग डेढ़-दो घण्टे तक साहित्य और साधना विषयक विभिन्न बिन्दुओं पर बातचीत हुई। आचार्य श्री ने मुझे सचेत किया कि तुम भारत में बहुत घूम चुके, अब ज्यादा भागदौड़ न करो, स्थिर जमकर काम करो, ध्यान पद्धति को निश्चित रूप दो, प्राकृत-संस्कृत भाषा एवं साहित्य की जो अनमोल विरासत है, उसे संभालो और नई पीढ़ी को इस ओर प्रेरित करो, आकर्षित करो।

इसी प्रसंग में उन्होंने 'जिनवाणी' के प्रति प्रमोदभाव व्यक्त किया और संकेत दिया कि 'स्वाध्याय-शिक्षा' प्राकृत भाषा की मुखपत्रिका बने। प्राकृत-लेखन की ओर आज विद्वानों की रुचि नहीं है। इस पत्रिका के माध्यम से प्राकृत संस्कृत लेखन को बल मिले तो श्रेयस्कर होगा। विदेशों में श्रमण संस्कृति के शुद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए स्वाध्यायियों को विशेष रूप से तैयार करने की बात भी उन्होंने कही। यह भी संकेत दिया कि विदेशों में विभिन्न क्षेत्रों में हमारे समाज के लोग अच्छी स्थिति में हैं। यदि उनको संगठित कर कोई योजना बनाई जावे तो वहाँ श्रमण संस्कृति के प्रचार-प्रसार का अच्छा वातावरण बन सकता है। आर्थिक दृष्टि से तो वे लोग आशा से अधिक सम्पन्न हो गये हैं, पर धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विपन्न न रहें, इस ओर ध्यान देना विद्वत् परिषद् का कर्तव्य है। काश ! आचार्य श्री के इन विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए समाज कुछ कर सके।

आचार्य श्री जब निमाज पधारे, मैं सपत्नीक महावीर जयन्ती पर उनके दर्शनार्थ पहुँचा । तब आचार्य श्री मौन में थे। पर हमें लगभग पौन घण्टे तक आचार्य श्री के सान्निध्य में बैठने का, अपनी बात कहने का, मौन संकेतों द्वारा आचार्य श्री से उनका समाधान पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री गौतम मुनिजी ने इस वार्तालाप में हमें विशेष सहयोग दिया। जब हम चलने लगे, तब आचार्य श्री ने पाट से खड़े होकर मौन मांगलिक प्रदान की। यह एक प्रकार से आचार्य श्री से हमारी अन्तिम भेंटवार्ता थी।

उसके बाद १४ अप्रैल को हम दर्शनार्थ पहुँचे, तब आचार्य श्री ने संथारा ग्रहण कर लिया था। दर्शनार्थियों

की अपार भीड़ कतारबद्ध खड़ी थी अपने आराध्य के श्रीचरणों में। पर आचार्य श्री आत्मस्थ थे, जप-साधना में लीन थे। उन्हें न किसी के प्रति राग था, न द्वेष। शरीर का ममत्व वे छोड़ चुके थे। एक-एक कर दर्शनार्थी पंक्तिबद्ध उनके निकट आते, नतमस्तक हो वन्दन करते और मौन आशीर्वाद ले अपने को धन्य समझते। निमाज तीर्थधाम बन गया। धर्मनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ, उदारहृदय भण्डारी परिवार एवं सकल निमाज जैन श्रीसंघ ने अपने आराध्य गुरुदेव की भक्ति में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, आगन्तुक दर्शनार्थियों के आतिथ्य-सत्कार में पलक-पांवड़े बिछा दिये। निमाज का यह अंचल अपने लोकरंग में अन्तर्राष्ट्रीय हो उठा। देश-विदेश से भावुक भक्त बड़ी संख्या में खिंचे चले आये। २१ अप्रैल, रविवार को इस युग का दिव्य दिवाकर समाधिपूर्वक परमात्म-ज्योति में समा गया।

पार्थिव रूप में आचार्य श्री अब हमारे बीच नहीं हैं। पर उनका संदेश कण-कण में व्याप्त है। वे प्रेरणा बनकर युगयुगों तक हमें अनुप्राणित करते रहेंगे, स्फुरणा बनकर हमें जगाते रहेंगे, हम पर उनके अनन्त उपकार हैं, हम उनसे उऋण नहीं हो सकते । वे ऐसे महासागर थे, जिसे कोई तैराक पार नहीं कर सकता, वे ऐसे असीम आकाश थे, जिसे कोई पक्षी लांघ नहीं सकता । किसमें ताकत है जो उनके गुणों की थाह ले सके? उन प्रज्ञापुरुष को कोटि-कोटि प्रणाम। (जिनवाणी के श्रद्धांजलि अंक से साभार)

■

उच्चकोटि के संयमनिष्ठ निर्भीक योगी

• श्री टीकमचन्द हीरावत

मेरी समझ में नहीं आता कि उस उच्चकोटि के महान् अध्यात्मयोगी के जीवन को किस छोर से देखूँ। मिश्री जिस प्रकार चहुँ ओर से मधुर होती है उसी प्रकार पूज्य गुरुदेव का जीवन सम्पूर्ण रूप से करुणा, प्रमोद, आत्मीयता आदि दिव्य गुणों से परिपूर्ण था।

हमारा परिवार गुरुचरणों में सुदीर्घ काल से श्रद्धानत है। मुझे स्मरण है कि पिताजी एवं परिवार के अन्य सदस्य सन्त-समागम में सदैव तत्पर रहते थे। आचार्य श्री की प्रेरणा से पितृवर नियमित रूप से सामायिक करते थे।

मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे अपने जीवन में कुछ काल आचार्यप्रवर की सेवा में रहने का अवसर मिला। आज भी वह दिन मेरे स्मृति-पटल पर अंकित है, जब मैं अमेरिका से इन्दौर आचार्य भगवन्त के दर्शनों हेतु उपस्थित हुआ। रात्रि के ९ बजे का समय था। पूर्णिमा के ध्यान के अनन्तर जब आपने चक्षु उन्मीलन किया, मैं आपके सान्निध्य में वन्दन कर बैठ गया। आपने पूछा - "कहाँ से आ रहे हो ?" मैंने कहा - "भगवन् ! अमेरिका से आ रहा हूँ।" गुरुदेव ने फरमाया - "क्या तुम बताओगे कि तुम्हारे पास औरंगजेब, अकबर या अन्य राजा-महाराजाओं से अधिक पैसा हो जाएगा? यदि हो भी गया तो क्या फर्क पड़ेगा? क्या उनको आज कोई पूछने वाला है ? तुम सोचो, तुम्हारी क्या स्थिति होगी?" आपके शब्दों में न जाने क्या आकर्षण था, मैं तमाम व्यापार का कार्य बन्द कर भारत आ गया। गुरुदेव ने मुझे आध्यात्मिक-विकास, जीवन-निर्माण व त्याग की महती प्रेरणा दी, पर यह मेरी कमजोरी रही कि जीवन का जैसा विकास करना चाहिये था, वैसा नहीं कर सका।

दक्षिण-प्रवास में ही एक बार एक छोटे-से गांव में विचरण करते हुए आपने जर्जर वस्त्रों में लिपटी वृद्धा को देखा, तो द्रवित हो उठे। आगे चलकर मुझसे बोले - "उस वृद्धा को देखो।" आचार्यप्रवर के इस वाक्य में करुणा बरस रही थी। मितभाषी आचार्यप्रवर का इतना कहना ही मेरे लिए मार्गदर्शक बन गया।

विहारोपरान्त आप एक ग्राम के विद्यालय भवन में विराज रहे थे । यह सम्भावना जानकर कि आप दिनभर विराजेंगे मैंने दयाव्रत के प्रत्याख्यान ले लिये। किन्तु निर्मोही साधकों का कब विहार हो जाये, यह वे ही जानते हैं। आचार्य श्री ने अपराह्न ४ बजे वहाँ से विहार कर दिया। स्वाभाविक था मैं भी दयाव्रत में होने से उनके साथ नंगे पांव चला। ग्रीष्मातप के कारण धरती आग उगल रही थी। आदत नहीं होने से मेरे पैरों में मोटे मोटे छाले हो गए। गन्तव्य पर पहुँचने के पश्चात् गुरुदेव मुझसे छालों के बारे में दयार्द्र हो पूछने लगे तो आपकी करुणा को देखकर मुझे ऐसा लगा, कि मैं साक्षात् भगवान के सामने खड़ा हूँ।

एक बार किन्हीं श्रमणों ने आचार्य भगवन्त के प्रति अपनी गलतफहमी या अन्य कारण से कटु शब्दों का प्रयोग कर दिया। श्रावक वर्ग का नाराज होना स्वाभाविक था। किन्तु आपने श्रावकों से फरमाया कि आप लोग उनके पास जाकर मधुरता से उनकी नाराजगी दूर करो। ऐसा ही हुआ। भाई सा. नथमल जी हीरावत आदि कतिपय श्रावकों ने जाकर सन्तों को निवेदन किया तो उन्हें अपने किए पर पश्चात्ताप हुआ। इससे परस्पर की कटुता का वातावरण एवं गलतफहमी दोनों दूर हो गए।

पूज्यप्रवर के जीवन के अनेक संस्मरण याद आते हैं, किन्तु अन्तिम बात यही है कि वे साधना के प्रति सदैव जागरूक रहे। पात्र की क्षमता देखकर ही आप उसे नियम, प्रत्याख्यान दिला कर आगे बढ़ाते थे। आप आत्म-रमणता के साथ प्राणिहित के लिए भी तत्पर रहे।

आचारनिष्ठ होने के साथ आप उदार प्रवृत्ति में आस्था रखते थे। आप प्रचार को नहीं, आचार को महत्त्व देते थे। स्वाध्याय का मुझे शौक था। मैं कभी जैनेतर आध्यात्मिक साहित्य भी पढ़ता तो वे यही देखते कि इस स्वाध्याय से जीवन में विकास हो रहा है। आप उदार, निर्भीक एवं उच्च कोटि के साधक थे। आप शरीर से नहीं हैं, किन्तु आपकी वाणी समाज में विधान के रूप में सदैव आदर पाती रहेगी।

१३ए पेराडाइज अपार्टमेण्ट, ४४ नेपीयनसी रोड, मुम्बई

■

अद्भुत योगी और महामनस्वी

• श्री विमलचन्द डागा

(१) पुराने समय यातायात के साधन बहुत सीमित थे। जयपुर क्षेत्र पधारने हेतु संतों को बड़ा परीषह सहन करना पड़ता था। पुराने श्रावक कहते थे कि संतों को दूदू से तेला पचक्ख कर आना पड़ता था। आचार्य प्रवर पधारते तो जयपुर के प्रमुख श्रांवक भांकरोटा (जयपुर से १३ किमी) तक अमूमन विहार सेवा किया करते थे। आचार्य भगवन्त के भांकरोटा पधारने पर एक बार गुलाब चन्द जी डागा की दादी, श्री सरदारमलजी डागा की मां एवं श्री घेवरचन्दजी डागा की पत्नी, आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ भांकरोटा गईं। श्री घेवरचन्द जी डागा की पत्नी मीठा मां सा. के नाम से प्रसिद्ध थी , शरीर से बहुत स्थूल थी, पांवों में हाथों में जगह-जगह गांठे थीं, चलना फिरना बहुत मुश्किल से हो पाता था। श्रद्धा के वशीभूत दर्शन करने वे भी भांकरोटा गई। सहज ही आचार्य श्री ने पूछा - मीठा मां सा. धर्म करणी कैसी चल रही है ? तो मीठा मां. सा. बोले–" बाबजी ! शरीर साथ नहीं देता। जगह - जगह हाथ पाँव में गाँठें हो रही हैं, चला नहीं जाता।" तो आचार्य भगवन्त ने फरमाया –"इन गांठों को भांकरोटा के टीलों में ही क्यों नहीं छोड़ जाते हो?" (उस समय भांकरोटा में मिट्टी के टीले ही टीले थे)

श्रद्धाशील मीठा मांसा जिनको घेवरानी जी भी कहते थे, तत्काल ही बोले –"बाबजी, आपने कहा और मैंने ये गांठें टीले में ही छोड़ दीं।"

देखते-देखते ही मीठा मां सा पूर्ण स्वस्थ हो गईं एवं वर्षों धर्म-साधना में अनुरक्त रहीं।

यह थी भगवन्त की वाणी की महत्ता एवं पुरानी श्राविका की श्रद्धा का रूप।

यह प्रसंग मैंने अपने भुआसा (श्रीमती जतन कंवर जी धारीवाल) से सुना, जो वर्तमान में ९० वर्ष की अवस्था में हैं।

(२) इचरज कंवर जी लुणावत की १६५ दिवस की तपस्या के समय आचार्य श्री का जयपुर पधारना हुआ। उस तप-समारोह में केन्द्रीय मंत्री श्री जगजीवन राम जी भी उपस्थित थे।

आचार्य भगवन्त ने अपने प्रवचन में फरमाया कि आज शासक वर्ग को गांधी के सिद्धान्तों पर चलकर देश का वातावरण शुद्ध बनाना चाहिये। अभी आप लोग गांधी की कमाई खा रहे हो।

इस पर श्री जगजीवनरामजी नाराज होकर अपने वक्तव्य में बोले कि आप लोग भी महावीर की कमाई खाते हो। उन्होंने अच्छे शब्दों का प्रयोग नहीं किया तो हजारों की संख्या में उपस्थित जनसमूह में रोष व्याप्त हो गया। भीड़ श्री जगजीवनराम जी का कुछ भी कर सकती थी। ऐसी अवस्था को देखकर तथा ध्यान का समय भी नजदीक आया जानकर आचार्य श्री माहौल न बिगड़े, इसलिए तुरन्त वहां से पधार गये।

हम सभी युवाओं के मन में बडी अशान्ति थी। रात को दर्शन करने भगवन्त के चरणों में पहुंचे। उनसे निवेदन किया कि भगवन् ! आपके बारे में बहुत सुना कि देवता आपकी सेवा करते हैं। आपके पास अनेक लब्धियाँ हैं, आज आपने महादेव की भांति तीसरा नेत्र खोल क्यों नहीं दिया?

करुणा सिंधु , क्षमासागर भगवन्त बोले- "भोलिया ! बैठे बैठे ही क्यों पंचेन्द्रिय जीव की हत्या का पाप मोल

ले लिया ? मेरे लिये करना तो दूर की बात है, पर अगर यह विचार मात्र भी आ जाता तो जीवन भर की साधना ही निष्फल हो जाती। "

ऐसे थे वे समताधारी सजग साधनापुरुष आचार्य भगवन्त ।

(३) आचार्य श्री ने श्रमण संघ छोड़ने की जयपुर में घोषणा की। उस समय जैसे ही व्याख्यान समाप्त हुआ, जयपुर के एक वरिष्ठ श्रावक आदरणीय श्री स्वरूप चन्द जी चोरड़िया आचार्य श्री से बोले कि आपके श्रावकों का ऐसा कौन सा संगठन है जिसके बलबूते पर श्रमण संघ छोड़ दिया ? आचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज के साथ तो श्रावक श्राविकाओं का बहुत बड़ा समूह है।

तो आचार्यप्रवर ने फरमाया कि मैंने श्रावकों के पीछे संयम नहीं लिया। पेड़ के नीचे रहकर भी चौमासा पूरा कर सकता हूँ।

ऐसे थे दृढसंयमी आचार्यप्रवर जो कि वीतराग वाणी का पूर्णतः पालन करने हेतु पेड़ के नीचे भी चौमासा पूर्ण करने का साहस रखते थे।

(४) श्री निरंजन लाल जी आचार्य राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष थे। यशवन्तसिंह जी नाहर भीलवाड़ा से तत्कालीन विधायक एवं प्रसिद्ध अधिवक्ता थे। नाहर साहब उन्हें प्रेरणा देते चलने की, तो कहते-हाँ चलूँगा कई प्रश्न भी हैं, उनके समाधान प्राप्त करने हैं। एक दिन प्रवचन के समय पधारे। आचार्य श्री का व्याख्यान किसी अन्य प्रसंग पर चल रहा था, श्रोताओं ने देखा कि एकाएक आचार्य श्री ने विषय ही पलट दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर निरंजन नाथ जी आचार्य श्री के चरण पकड़ कर बोले कि आपको यह कैसे ज्ञात हो गया कि मेरे मन में क्या प्रश्न हैं। मेरे द्वारा किसी को न बताने पर भी आपको मेरे मन के प्रश्नों का कैसे ज्ञान हो गया? आचार्य श्री कुछ भी नहीं बोले। एक तरफ गम्भीर साधक आचार्यप्रवर थे, तो दूसरी ओर अभिभूत दर्शनार्थी । (यह बात गुमानमलजी सा चोरड़िया ने आचार्य श्री की जन्म-जयन्ती पर फरमाई थी।)

(५) बूंदी निवासी श्री सुजान मलजी भड़कत्या आचार्य श्री के परम भक्तों में रहे। उनके सुपुत्र पन्नालाल जी साहब की भी भक्ति रही। किन्तु संतों का विचरण उस क्षेत्र में न होने से परिवार का रुख मंदिर की तरफ हो गया। उनके पुत्र श्री मोतीलालजी सा. जयपुर तपागच्छ संप्रदाय के मंत्री-पद का निर्वहन जिम्मेदारी पूर्वक कर रहे हैं। उनसे निकट का सम्बन्ध रहा है। एक दिन आचार्य श्री का प्रसंग चला तो बोले—उस महापुरुष की बात छोड़ दो, कहीं पर भी जाता तो आचार्यश्री के दर्शन अवश्य करता था। अजमेर गया हुआ था। रात्रि अधिक हो गई, दर्शन की भावना से आचार्य श्री के चरणों में पहुँचा व पाटे के पास बैठ गया। पूर्ण अन्धकार था। आचार्य श्री ध्यानस्थ थे। एकाएक ऐसा जबरदस्त प्रकाश हुआ, ऐसा प्रकाश, जिसकी मैं जीवन में कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसे प्रकाश में जैसे ही आचार्य श्री की नज़र मेरी ओर गई तो मैं तो गद्‌गद् हो गया।

(६) आचार्यप्रवर आगरा पधारे। उपाध्याय कवि श्री अमरमुनिजी म.सा. व आचार्य प्रवर का मधुर मिलन हुआ। शब्दों से भावभीना स्वागत वहाँ के मेयर व संघ के लोगों ने किया तो मेयर कल्याणमल जी अग्रवाल ने कहा कि राजस्थान से क्रिया के शूरवीर आये हैं एवं ज्ञान की गंगा (कवि जी) यहां पर है तो ज्ञान व क्रिया का अद्‌भुत जोड़ है।

दूसरे दिन व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। पहले कविश्री अमरमुनि जी म.सा. ने प्रवचन फरमाया। फिर आचार्यप्रवर ने आगमवाणी का आधार लेते जो प्रवचन फरमाया उससे प्रभावित होकर मेयर अग्रवाल साहब ने कहा —"कल मैंने

बहुत बड़ी भूल की थी। एक को ज्ञान की गंगा एवं दूसरे को क्रिया की गंगा कहा था, परन्तु गजकेसरी आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. तो ज्ञान और क्रिया दोनों के संगम हैं।"

मेरे परदादा सा. श्री कन्हैयालालजी डागा आचार्य प्रवर श्री शोभाचन्द जी म.सा. के दर्शनार्थ जोधपुर पधारे तो सहज प्रश्न किया – "पूज्य सा. आपके पीछे परम्परा के बारे में सोचा ?" पास में बाल मुनि हस्तीमलजी महाराज विराज रहे थे। उनकी ओर संकेत करते हुए फरमाया –"इनके बारे में तुम क्या सोचते हो? विनम्रतापूर्वक परदादा सा. श्री कन्हैयालालजी बोले –"जब आपने सोच लिया, विचार कर लिया, तो हमारे सोचने की तो बात ही क्या ?"

१३७०, ताराचन्द नायब का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर (राज.)

■

उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष

• श्री गुमानमल चोरड़िया

परम पूज्य, चारित्र-चूड़ामणि, इतिहास मार्तण्ड सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, अप्रमत्त योगीराज, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी, जिन नहीं पर जिन सरीखे, आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. लघुवय में ही प्रव्रजित हो गये थे। आपमें विचक्षणता एवं होनहारिता सहज ही परिलक्षित होती थी, अत: २० वर्ष की अवस्था में ही आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया। ६१ वर्ष तक आप आचार्य पद पर विराजे। इतने लम्बे समय तक आचार्य पद से अलंकृत होने वाले आप ही एक आचार्य थे।

वृहद् अजमेर साधु सम्मेलन में आप श्री का एवं ज्योतिर्धर क्रान्तिकारी आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. का भी विशेष सम्पर्क रहा। आचार्य श्री ने आपकी प्रतिभा को परखा। सम्मेलन के ३ वर्ष पश्चात् आप दोनों आचार्य जेठाना विराज रहे थे, तब आचार्य श्री जवाहर गुजरात के लिए विहार कर रहे थे । आचार्य श्री जवाहर ने विहार करते वक्त फरमाया कि आप मुझे मांगलिक सुनाइये। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. हतप्रभ हो गये और कहा कि आप इतने बड़े आचार्य, मैं आपको क्या मांगलिक श्रवण कराऊँ? पर 'आचार्य को आचार्य मांगलिक नहीं सुनावेगा तो कौन सुनायेगा?' आचार्य श्री जवाहर के स्नेह एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार के आगे आपको मांगलिक श्रवण करवानी पड़ी।

आचार्य श्री में एक विशेष गुण अप्रमत्तता का था। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक आप एक क्षण भी प्रमाद नहीं करते थे। आप दैनन्दिनी चर्या के अलावा अपने लेखन के कार्य में या अध्ययन के कार्य में हमेशा व्यस्त रहते थे। कोई भी श्रावक-श्राविका दर्शन करने आते थे तब आप उनसे उनकी साधना के विषय में जानकारी कर, कुछ अधिक प्रेरणा दे कर वापिस अपने लेखन या स्वाध्याय के कार्य में व्यस्त हो जाते थे। व्यर्थ की सांसारिक बातों का आपके संयमी-जीवन में कतई स्थान नहीं था।

जैन आगमों के आप श्री प्रकाण्ड पंडित थे, गहन स्वाध्याय व चिन्तन आपके जीवन का मूल लक्ष्य रहा। आपके मन में एक भावना थी कि सन्त-सन्तियों को अध्ययन कराने के लिए योग्य विद्वानों की बहुत अल्पता है, अत: एक संस्था ऐसी होनी चाहिये कि जहाँ छात्र अपने व्यावहारिक शिक्षण को प्राप्त करते रहने के साथ-साथ धार्मिक विषयों में भी पारंगत हो सकें, अत: आपकी प्रेरणा से प्रेरित होकर एक सिद्धान्त शाला की स्थापना हुई एवं योग्य समर्पित गृहपति श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा की सेवाओं से प्राकृत एवं संस्कृत में अच्छे विद्वान् तैयार हो रहे हैं।

आप यह महसूस करते थे कि सन्त-सतियों की संख्या सीमित है, सब जगह चातुर्मास हो नहीं सकते, अत: कम से कम पर्युषण पर्वाधिराज में कुछ स्वाध्यायी बन्धु, जिन क्षेत्रों में चातुर्मास सन्त-सतियों के नहीं हों, वहाँ जाकर श्रावक-श्राविकाओं में ज्ञानाराधना, धर्माराधना करवाने में सहयोगी बनें। उस समय केवल स्वामी श्री पन्नालालजी म.सा. की प्रेरणा से विजयनगर में स्वाध्यायी बन्धुओं की एक संस्था थी जो देश में सब जगह स्वाध्यायियों को भेजने में सक्षम नहीं थी, अत: आपकी प्रेरणा से 'सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल' के अन्तर्गत 'स्वाध्याय संघ' की स्थापना की गई। इसके माध्यम से योग्य शिक्षण के लिए समय-समय पर जगह-जगह शिविर आयोजित होते रहते हैं। आपने स्वयं ने स्वाध्यायी बनने के लिये युवकों को प्रेरित किया, फलस्वरूप अच्छी संख्या में अच्छे स्तर के स्वाध्यायी सर्वत्र

सेवाएं प्रदान कर रहे हैं।

आप हमेशा मुमुक्षु जीवों को सामायिक और स्वाध्याय की प्रबल प्रेरणा दिया करते थे। तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, राजस्थान जो-जो क्षेत्र आपकी चरण-रज से उपकृत हुए, वहाँ सर्वत्र आपकी सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा से काफी भव्य जीव लाभान्वित हुये हैं। आपने अपने जीवन का काफी समय मौन-साधना में व्यतीत किया है। पूर्व में सोमवार को, बाद में गुरुवार को व्याख्यान के अलावा मौन एवं प्रतिमास कृष्णा पक्ष की दशमी को पूर्ण मौन एवं एकाशन की साधना करते थे।

सन् १९५२ में सादड़ी-सम्मेलन में जब श्रमण संघ का निर्माण हुआ और इसे संजोया गया तो इसमें आपका पूर्णतया मार्ग-दर्शन एवं सहयोग था। उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. ने जब श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा की तब आप उपाचार्य श्री को श्रमण संघ में उपाचार्य पद पर रहने के लिये विशेष आग्रह करने उदयपुर पधारे थे। उपाचार्य श्री ने आपकी बातों को विशेष महत्त्व देते हुये भी असमर्थता प्रकट की एवं आप से कहा कि "श्री हस्तीमलजी म.सा.! आपने मेरा साथ नहीं दिया, पर एक दिन आपको भी श्रमण संघ से पृथक् होना पड़ेगा, आप इसमें रह नहीं सकेंगे।" महापुरुषों के मुख से उच्चरित स्वर कभी मिथ्या नहीं हो सकते, एतद्स्वरूप कालान्तर में आप श्री ने भी जयपुर के उपनगर आदर्शनगर में पृथकत्व की घोषणा की।

आप श्री का एवं आचार्य श्री नानालालजी म.सा. का भोपालगढ़ में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हुआ, उस प्रसंग से वार्ता हेतु जब आपकी सेवा में श्रावक उपस्थित हुये तब आपने एक ही जिज्ञासा प्रकट की कि भाई! आचार्य श्री अन्तःकरण से चाहते हैं या नहीं ? जब आचार्य श्री नानालालजी म.सा. से पुछाकर आप से पुनः निवेदन किया कि आचार्य श्री की अन्तरमन की भावना है, तब आप प्रमुदित हुए एवं आगे का संभावित कार्यक्रम निश्चित होता गया तथा अत्यन्त प्रेम के वातावरण में मैत्री-संबंध स्थापित हुआ जो आज भी यथावत् है।

आप श्री, जब भी कोई श्रावक-श्राविका सेवा में उपस्थित होते तो उन्हें प्रेरणा देने के अलावा अन्य साधकों के लिये भी साधना के विषय में जानकारी कर प्रेरित करने के लिये फरमाया करते थे। मुमुक्षु जीवों के लिए सहज रूप में आपके मुखारविन्द से जो शब्द उच्चरित हो जाते, वे हमेशा सत्य साबित हुए हैं।

आप उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष एवं एक महान् सन्त थे। आगत व्यक्ति क्या जिज्ञासा लेकर आया है, आपको सहज ही भासित हो जाता था। आप शेषकाल में लाल भवन में विराज रहे थे। प्रतिदिन प्रवचन की पीयूषधारा प्रवाहित होती थी। विधान सभा के तत्कालीन स्पीकर श्री निरंजननाथजी आचार्य पधारे एवं व्याख्यान सुना, प्रभावित हुये, पुनः दूसरे दिन प्रवचन-सभा में पधारे। आचार्य जी अपने मन में जो जिज्ञासाएँ लेकर पधारे थे, उन सबका आपने प्रवचन में समाधान कर दिया। प्रवचन के पश्चात् आचार्यजी ने आचार्यश्री से अर्ज किया—जो-जो जिज्ञासाएँ मेरे मन में थीं, उन सबका बिना पूछे ही आपने समाधान कर दिया। निरंजननाथजी आचार्य श्री से अति प्रभावित हुए। जीवनकाल में आप श्री ने यद्यपि कोई लम्बी तपस्या नहीं की, पर जीवन के संध्याकाल में तेले की तपस्या कर, पारणे में संथारा ग्रहण कर, १० दिन तिविहारी संथारा कर अंतिम समय सवा चार घण्टे का पूर्ण चौविहारी संथारा कर, एक कीर्तिमान स्थापित किया।

–पूर्व अध्यक्ष, श्री अ.भा.साधुमार्गी जैन संघ,
चोरड़िया भवन, सोंथली वालों का रास्ता, जयपुर

■

गुरु-समागम से जीवन में परिवर्तन

• श्री ताराचन्द सिंघवी

मेरा जन्म हैदराबाद में हुआ। बचपन वहाँ ही बीता। आज भी मेरे बड़े भाई साहब श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हैदराबाद के अध्यक्ष हैं। लगभग १५ वर्ष की अवस्था में पाली आया। वैसे मूलतः हमारा परिवार पाली का ही था। धर्म पर मेरी आस्था बचपन से थी, परन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं था कि मेरे गुरु कौन हैं। संयोग से बाबाजी सुजानमल जी म.सा.का पाली पधारना हुआ। मैं पाली में अपनी बहिन के पास रहता था। उन्होंने मुझे बताया कि तेरे गुरुदेव आए हैं। बाबाजी म.सा. की वाणी का प्रभाव मेरे पर इस कदर पड़ा कि मैंने उनसे पूछा - "गुरुदेव ! आचार्य श्री के दर्शन कब होंगे ? आप ही मुझे गुरु आम्नाय करा दें।" बाबाजी म.सा. ने गुरु आम्नाय करवायी और कहा कि तुम्हारे देव 'अरिहंत ' गुरु 'निर्ग्रन्थ' और धर्म 'दयामय' है। आज से तेरे धर्म गुरु रत्नवंश के शासन प्रभावक आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. हैं। तब से मेरे मन में उनके दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो गयी। संयोग से कुछ समय व्यतीत होने पर श्रद्धेय आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. का चातुर्मास पाली में हुआ। उनके दर्शन कर मैं आनन्दित हो गया । मेरे मन में ऐसे भाव जगे कि मैं गुरुदेव के दर्शन करता ही रहूँ। मैंने चातुर्मास में सेवा भी खूब की। किन्तु मैं थोड़ा उग्र स्वभावी था। आचार्य भगवन्त के तेज का मुझ पर प्रभाव पड़ा। चातुर्मास में सात दिनों तक शान्ति जाप चला, तब रात्रि में जाप को सुचारु रूप से चलाने की जिम्मेदारी मुझ पर थी। उन दिनों लगभग रात भर जगना पड़ता था। उस समय मैंने देखा कि पूज्य गुरुदेव एक नींद ही लेते हैं, जब जाग जाते, तब ही ध्यान में एक आसन से बैठकर चार-पांच घंटों तक ध्यान मग्न रहते हैं। मैंने सोचा इस युवावस्था में भी गुरुदेव को नींद नहीं आती क्या ? मेरी जिज्ञासा बढ़ी, कई बार दयाव्रत का आराधन करते समय रात्रि में मैं स्थानक में सोया, तब मैंने फिर देखा कि गुरुदेव एक नींद से जब भी जगते तो ध्यान में आरूढ हो जाते। ऐसा संत मैंने कभी देखा नहीं, जिसमें तनिक भी आलस्य नहीं , इधर-उधर की पंचायती नहीं और दिनभर लेखन कार्य करता रहे। मैं सोचता, क्या गुरुदेव को थकावट नहीं आती है ?

जैसे-जैसे गुरुदेव के सम्बन्ध में मेरी जानकारी बढ़ती रही वैसे-वैसे मेरी धर्म-श्रद्धा सबल होती गई। गुरुदेव के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया। प्रतिवर्ष दर्शन करने जाता तो गुरुदेव पूछते, धर्मध्यान चल रहा है? आगे क्या बढ़ाना है? कहते - "लाला धर्म क्षेत्र में आगे बढ़ो। " मेरे भाग्य में धर्म-ध्यान तो विशेष नहीं बढ़ पाया, परन्तु गुरुदेव और धर्म पर श्रद्धा बढ़ती रही । समाज सेवा में मैंने अवश्य अधिक भाग लिया जो निरन्तर चलता रहा। सामाजिक क्षेत्र में मेरे जीवन में अनेक बार उतार-चढ़ाव आए, परन्तु मैंने पीछे हटने का कभी भी नहीं सोचा। गुरुदेव के आशीर्वाद से मैं समाज-सेवा और संघ-सेवा में निरन्तर लगा रहा। मेरे कई साथी, युवक और बच्चे मुझे 'गुरुजी ' के नाम से संबोधित करने लगे।

एक बार गुरुभगवन्त ने भी कहा - 'गुरुजी' मारे सूं थारे चेला घणा है' मैंने कहा - "भगवन्, जब मैं ही आपका चेला हूँ तो मेरे चेले किसके चेले हैं, आपके ही तो हैं। "

आचार्य भगवन्त के मद्रास चातुर्मास में हम दोनों दर्शन हेतु गए। गुरुदेव ने पूछा - "क्या नियम लेने आए हो ?" मैंने कहा--"भगवन् हम शीलव्रत अंगीकार करना चाहते हैं।" गुरुदेव ने पूछा - "पकावट है ?" मैंने कहा -

'हां भगवन्।' उस समय मेरी उम्र लगभग ४५ वर्ष की थी।

कुछ वर्षों पश्चात् गुरुदेव दक्षिण से जलगांव, इन्दौर होकर जयपुर की ओर बढ़े। तब मैंने सोचा कि भगवन्त का चातुर्मास पाली करवाना है। लगातार हमारी पाली की विनति चलती रही, परन्तु गुरुदेव ने मौन के अलावा किसी प्रकार का आश्वासन नहीं दिया। विनति का हमारा क्रम बराबर चलता रहा। कोसाणा के चातुर्मास के पश्चात् मेरी प्रबल भावना हुई कि अगला चातुर्मास पाली में येनकेन प्रकारेण करवाना है। आचार्य श्री के पीपाड़ पधारने पर कभी हमारा संघ, कभी युवक संघ, बालिका संघ, बालक संघ और कभी श्राविका संघ थोड़े-थोड़े अन्तराल से पीपाड़ जाते रहे। वहाँ पर सम्पन्न होली चातुर्मास पर हमें केवल इतनी ही सफलता मिली कि हमें क्षेत्र खाली नहीं रहने का आश्वासन मिल गया। पीपाड़ से विहार हुआ। मैं प्रतिदिन विहार में जाता और निवेदन करता 'भगवन् आप क्षेत्र पर कृपा रखें।' (बोल बोल म्हारा प्यारा गुरुवर, काई थाणीं मरजी रे, म्हां सू मुण्डे बोल)।

गुरुदेव महामन्दिर पधारे। हमें संकेत मिला कि गुरुदेव नव वर्ष की वेला में चैत्र शुक्ला एकम को चातुर्मास खोल सकते हैं। पाली संघ के प्रतिनिधि महामंदिर गये। वहाँ पर दोपहर को गुरुदेव ने हमारी विनति स्वीकार करते हुए कहा कि यदि चल सकने की स्थिति रही तो पाली में चातुर्मास हो सकेगा। आचार्य भगवन्त की चलने जैसी स्थिति थी ही नहीं। लगभग ८०-८५ दिन आप जोधपुर शहर एवं उसके उपनगरों में धर्म प्रभावना करते रहे।

यहाँ पर विहार १-२ किमी ही हो पाता था। गुरुदेव को कमजोरी भी महसूस होती थी। सभी यह सोचने लग गए कि अब चातुर्मास जोधपुर में ही होना है। मेरे साथी भी इस विचार से सहमत होने लगे थे। परन्तु मैंने हर बार यही कहा कि आचार्य भगवन्त ने जिस दृढ़ता के साथ चातुर्मास खोला है, उसके अनुसार अगला चातुर्मास पाली में ही होगा।

यहाँ एक चमत्कार घटित हुआ। आचार्य भगवन्त का प्रथम विहार जोधपुर की मधुवन कालोनी से कुड़ी गाँव की ओर हुआ। विहार के समय पाली और जोधपुर के अनेक श्रावक उपस्थित थे। जोधपुर निवासी कहने लगे कि आज इतना लम्बा विहार कर कुड़ी पधारना संभव नहीं है। गुरुदेव रास्ते में विश्राम कर पधारेंगे। मैंने कहा - "आज आप आचार्य भगवन्त का चमत्कार और पाली की पुण्यशालिता का अहसास करेंगे।" जय - जयकारों की आवाज गूंज उठी। विहार कर आचार्यप्रवर कुड़ी पधार गए। किसी प्रकार की थकावट नहीं लग रही थी। उनके चेहरे की तेजस्विता से ऐसा आभास हो रहा था जैसे आचार्य भगवन्त स्वस्थ हो गए हैं। दूसरे दिन का विहार मोगड़ा की तरफ होना था। पाली संघ और जोधपुर संघ साथ में था। गर्मी का मौसम था और विहार लम्बा था। परन्तु प्रातःकाल आकाश में मेघ प्रकट हुए, रिमझिम वर्षा हुई और मौसम सुहावना हो गया। आचार्य श्री ने विहार करते समय फरमाया कि आज तो कश्मीर जैसा मौसम है। इस तरह गांवों में विचरण करते हुए आचार्य श्री रोहट पधारे, जहां धर्मध्यान का अनुपम ठाट लगा। वहाँ से विहार करते हुए दो जगह रात्रि विश्राम कर आचार्य श्री केरला स्टेशन पधारे । प्रमुख संत श्री हीरामुनि जी (वर्तमान आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा.) ने फरमाया, "सिंघवी साहब, आज क्या लक्ष्य है? पाली की गुमटी तो बहुत दूर है। इतना विहार सम्भव नहीं लगता।" मैंने कहा, "भगवन् ! रास्ते में खारड़ो की ढाणी आती है, सड़क से एक किलोमीटर अन्दर चलना होगा। वहाँ पर स्कूल है। ठहरने में परेशानी नहीं आयेगी।" किन्तु जब आचार्य भगवन्त खारड़ों की ढाणी की ओर मुड़ने वाले रास्ते के निकट पहुंचे तो उनसे निवेदन किया गया, "भगवन्! इधर पधारें। पाली की गुमटी तो बहुत दूर है" तो गुरुदेव ने कहा , "सीधे ही चलते हैं" और गुरुदेव बिना किसी अड़चन के पाली की गुमटी पधार गये। पाली संघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। गुरुदेव अपार

जन-समूह के साथ शिष्य मण्डली सहित चातुर्मास हेतु सुराना भवन पधारे। दूसरे दिन पाली में पर्याप्त वर्षा हुई। सन् १९९० का पाली का यह ऐतिहासिक चातुर्मास स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाये तो भी कम है। भले ही सम्प्रदाय के घरों की संख्या कम थी, परन्तु उत्साह देखते ही बनता था। दक्षिण भारत से लौटने के पश्चात् यह पहला अवसर था कि आचार्य भगवन्त प्रतिदिन सुराना भवन के बाहर स्थित प्रवचन हाल में पधारते थे। कभी स्वयं प्रवचन फरमाते और कभी सतियों को प्रवचन देने का कहते। किन्तु प्रतिदिन आधा-पौन घण्टे अवश्य विराजते।

वकील हुक्मीचन्द जी आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ पधारे। वे जब मंगलपाठ लेने के लिये गए तो आचार्य भगवन्त ने कहा कि अभी अवसर नहीं है, मैं भी वहीं पर था। मुझ से कहा - "लाला ! ध्यान रखना, यह स्थान साताकारी है, बिना आरम्भ - समारम्भ का है। " सुराणा मार्केट में स्थित यह भवन आज सामायिक स्वाध्याय सदन के रूप में धर्माराधना का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

मेरे जीवन की क्या-क्या बातें लिखूँ, मैं उग्र स्वभावी था। फिल्म देखने की भी मेरी आदत थी, मैं कोई फिल्म देखे बिना नहीं रहता था। इस प्रकार मुझ में कई अवगुण थे, किन्तु आचार्य भगवन्त के प्रति मैं पूर्णतः समर्पित था। संवत् २०४७ में सोचा कि भगवन्त का चातुर्मास आ रहा है, यह पिक्चर देखने का कार्यक्रम कैसे पूर्ण होगा, क्यों न इसे पहले ही छोड़ दिया जाये। उस समय मैं जर्दे का पान भी खाता था। मैंने सोचा चातुर्मास में तो इसे छोड़ना ही पड़ेगा। अतः पहले ही क्यों न छोड़ दिया जाए। किन्तु आचार्य भगवन्त के प्रति श्रद्धा का यह प्रभाव रहा कि विगत ९ वर्षों में मैंने शायद ही एक या दो फिल्म देखी होगी, पान भी सम्भवतया पांच-सात बार खाने का प्रसङ्ग बना होगा। इस प्रकार मेरी कई बुरी आदतें छूट गई।

आज मुझे किसी प्रकार का शौक नहीं रहा, न गोठ-घूघरी, न सिनेमा और न टी.वी. का। ९ वर्षों में एक ही लगन में लगा हुआ हूँ। आत्म सुधार और संघ-सेवा ही मेरा लक्ष्य बन गया है। आचार्य भगवन्त फरमाया करते थे - 'घर सुधरा सब सुधरा'। इसी बात को पकड़कर मैंने समाज-सेवा और संघ-सेवा का बीड़ा उठाया है, जो निरन्तर सफलता की ओर बढ़ रहा है।

पाली चातुर्मास के पूर्व आचार्य भगवन्त ने मुझसे कहा - "चातुर्मास कराने का मानस तूने पक्का बना लिया है, किन्तु छुट्टी कितनी ली?" मैंने कहा - "भगवन् फिलहाल १ वर्ष।" मैंने परिवार से १ वर्ष के लिये स्वीकृति ले भी ली। आचार्य भगवन्त के पावन चरणों में सेवा का प्रसङ्ग बना रहा, यह मेरा सौभाग्य था। पाली का यह चातुर्मास होने के पूर्व पाली के कई श्रावक मेरी मजाक उड़ाते कि केवल २०-२५ घर हैं, इतना बड़ा प्रवचन हॉल बनाया, उसमें किसे बिठायेंगे, मासखमण आदि तपस्या करने वाले भी रत्नवंश में नही हैं, खर्चे की पानड़ी करने में भी पसीना आयेगा। परन्तु सब कुछ सहज ही हो गया। पाण्डाल चारों माह भरा रहा। पर्युषण में लोग खड़े रहे। मासखमण आदि तपस्याओं की झड़ी लगी। पानड़ी में उम्मीद से अधिक राशि एकत्रित हुई। इस चातुर्मास में श्री लाभचन्द्र जी ने ४० x ६० के १८ प्लाट देने की भावना व्यक्त करते हुये कहा, इन पर बाउण्डरी खिंचाओं तो संघ को दे दूँ। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि आप आज दो तो कल बाउण्डरी खिंचादूं। यह कार्य सम्पन्न भी हुआ और आज उस स्थान पर श्री जैन रत्न छात्रावास बनकर तैयार हो गया। इसमें अब छात्र भी रह रहे हैं।

आचार्य भगवन्त का जब भी स्मरण करता हूँ, मन प्रमुदित हो उठता है , जीवन में आत्म-विश्वास का अनुभव होता है तथा संघ-सेवा में सतत लगे रहने की अन्तःप्रेरणा मिलती है।

७, गाँधी कटला, पाली मारवाड़ (राज.)

आराध्यदेव की स्मृति आज भी मेरे हृदय पटल पर अंकित है

• श्री गणेशमल भण्डारी

अदभुत योगी, असीम आत्म-शक्ति के धारी, हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह के त्याग की कसौटी पर खरे उतरने वाले, ज्ञान के साथ शुद्ध क्रिया-पालन करने वाले मेरे आराध्य देव, आचार्य भगवन्त जिनके नाम का श्रवण सम्भवतः माँ के गर्भ से करके आया था, के सबसे पहले दर्शन कहाँ किये, यह मुझे ध्यान में नहीं आता, पर मेड़ता का चातुर्मास एवं सादड़ी सम्मेलन का चित्र मेरी स्मृति में है।

मैं अपने पिताश्री के साथ मेड़ता चातुर्मास में गया था। बचपन में मैं अपने फूफाजी (भूरोसा) की दुकान से बिना पूछे जेब में खाने की कुछ गोलियाँ ले आया। सायंकाल प्रतिक्रमण के समय गोलियाँ पाजामे से गिर गई। मेरे पिताश्री ने एक चाँटा मारा। प्रतिक्रमण के बाद आचार्य भगवन्त ने मेरे पिताश्री को उपालम्भ दिया—"जीवन बनाने की कला सिखाओ।" दूसरी रात पिताश्री स्थानक में ही सोए हुए थे। अचानक रात में आचार्य भगवन्त के कमरे में प्रकाश हुआ। सफेद कपड़े में एक बूढ़े व्यक्ति को देखकर सब घबरा गए , आचार्य भगवन्त की एक आवाज सुनते ही निश्चिन्त हो गए। पिताश्री आराध्य देव की साधना के अनेक प्रसंग व चमत्कार सुनाया करते थे। आचार्यश्री की सम्मेलन में बड़ी धाक थी, वे जितने दयालु व कृपालु थे, उतने ही व्रत-नियम में चट्टान की तरह अडिग थे। आपने सिद्धान्तों का सौदा समन्वय के लिए कभी नहीं किया। आपका प्रभाव अनूठा था। निमाज में देवराजजी खींवसरा भूत-प्रेत की बाधा से ग्रस्त थे। आपकी मांगलिक से बाधा दूर हो गई, जीवन के अन्तिम समय तक बाधा नहीं आई।

मेरे जीवन पर गुरुदेव का बड़ा उपकार रहा। मैं १९७१ में जयपुर के लाल हाथी वालों के मकान से चरणों में समर्पित हो गया, भक्ति की ओर बढ़ता रहा, चरणों में समर्पित होता रहा। मेरी अनन्त प्रबल पुण्यवानी के कारण आचार्य भगवन्त का दक्षिण में पधारना हुआ, मुझे चरणों में लुटने का अवसर मिलने पर भी, जितना लुटना था, नहीं लुट पाया। सोलापुर में आचार्य भगवन्त विराज रहे थे, वहाँ मैंने स्थानक में प्रेतबाधा से युक्त एक मुस्लिम भाई को देखा। वह ऊपर की मंजिल तक पहुँच गया। आचार्य भगवन्त की सेवा में श्री नथमलजी हीरावत एवं श्री श्रीचन्दजी गोलेछा ज्ञान-चर्चा कर रहे थे। मुस्लिम भाई को वज्रासन में विराजे आचार्यश्री ने जैसे ही निहारा, वह शान्त हो गया। अपने कर्मों को दोष देते हुए उसमें से भूत-प्रेत की बाधा निकल गई।

विहार में लम्बे समय तक चरणों में साथ रहने से अनेक संस्मरण याद आते हैं। बागलकोट के पूर्व सुराणाजी के बंगले पर पूज्यश्री कृष्णा दशमी को मौन साधना में विराज रहे थे। प्रतिक्रमण के बाद ध्यान-साधना हेतु एक वृक्ष के नीचे विराजे। हम भी खिड़की से बार-बार देखने की कोशिश कर रहे थे, रात्रि के करीब १ बजे का समय होगा, आचार्य भगवन्त एक पाँव पर खड़े थे एवं प्रकाशमय शरीर था, यह मैंने आँखों से देखा।

रास्ते के विहार में कोर्ती गाँव के पास एक पटेल का बैल आचार्य भगवन्त की कृपा-दृष्टि का पात्र बना, वह बैल नहीं, एक श्वेत अश्व जैसा लग रहा था, आचार्य भगवन्त ने उसकी ओर कृपा भरी दृष्टि से देखा। उसने पूर्व

पुण्यवानी से बैल के भव में आचार्य भगवन्त जैसे महापुरुष के दर्शन किए।

दक्षिण पधारने पर इस भक्त की भक्ति पर भी थोड़ा सा विश्वास हुआ। संकेत के रूप में फरमाया - "तू माटी का गणेश नहीं, गजानन्द है, संघ को तेरी जरूरत पड़ेगी, ध्यान रख लाला।"

पिताश्री के देहान्त के समय निमाज में संसार का काम निपटाकर पूरे परिवार एवं गाँव के सदस्यों के साथ कोसाणा चातुर्मास में गुरुदेव के दर्शन करने हेतु गया। गुरुदेव बड़ी कृपा कर व्याख्यान में पधारे तथा हमें पिताश्री सुगनमल जी के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उसी समय हमने चातुर्मास की विनति की। आचार्यदेव के पीपाड़ पहुँचने पर संघ-हित को सोचकर चातुर्मास हेतु पाली को स्वीकृति प्रदान की गई। मध्याह्न के समय मैं आराध्यदेव के चरणों में रो पड़ा। पं. रत्न श्री शुभेन्द्रमुनि जी म.सा. पास ही विराजमान थे। बोले-"भक्त ने कुछ फरमावो जल जलो वै रयो है" आचार्य भगवन्त ने फरमाया-"पाली के बाद पहले निमाज का ध्यान रखूँगा, तू मारे सुगन जी रे जगह है मने ध्यान राखणो है।"

संयोग से पाली से विहार निमाज की ओर हुआ। मैं बगड़ी ग्राम में गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुआ। दिनांक १०.३.१९९१ को आचार्य भगवन्त ने निमाज में प्रवेश किया। चौके की व्यवस्था मेरे जिम्मे होने से मैं मात्र दर्शन ही कर पाता, अधिक समय नहीं निकाल पाता था। महावीर जयन्ती के पहले दोपहर में दर्शन करने लगा तब आराध्य देव ने रुककर कहा-"लाला दूर दूर क्यों रहता है, तेरी भक्ति में फरक है? हम तो यह देहलीला यहीं छोड़ने वाले हैं।"

संथारा के पच्चक्खाण के साथ मुझे लगा अब महापुरुष नहीं रहेंगे। अन्तिम श्वासोच्छवास के समय बाहर ही खड़ा देखता रह गया। तेरह दिन के संथारे के साथ आचार्य भगवन्त अपने लक्ष्य की ओर महाप्रयाण कर गए, पर आराध्य देव मेरे हृदय पटल पर आज भी विराजमान हैं।

१३, छठा क्रास, त्रिवेणी रोड़
यशवन्तपुर, बैंगलोर, ५६००२२

■

महिमाशाली गुरु महाराज

• श्री भंवरलाल बाफना

आजकल चमत्कारों को एनलार्ज (बढा-चढ़ाकर) करके श्रद्धा बटोरी जाती है, जो क्षणिक व अस्थायी होती है। गुरु महाराज के चमत्कारों को, जिनका मैं प्रत्यक्ष साक्षी हूँ, लिखकर मैं न तो श्रद्धा बटोरना चाहता हूँ, न ऐसी प्रेरणा ही देना चाहता हूँ। उनका स्वयं का अप्रमादी दैनन्दिन जीवन व शरीर का अणु-अणु एवं रोम-रोम श्रद्धा वाला था। मुझे इंदौर व भोपालगढ के दो चातुर्मासों में पांच-पांच मास तक निकट सान्निध्य एवं सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस अवधि में मैंने स्वयं कई अद्भुत व अविस्मरणीय प्रसंग देखे, पर मैं उनका वर्णन नहीं करके उस महामानव की कुछ अद्भुत विशेषताएँ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

उनकी गुणगाथा कहाँ से शुरू करूँ और कहां उसका अंत करूँ (अंत तो है ही नहीं) समझ नहीं पाता। फिर भी जैसे-जैसे स्मृति में आ रहा है, लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

इंदौर चातुर्मास के स्वीकृत होने से शुरू करूँगा । सन् १९७७ में पालासणी में गुरु महाराज ने फरमाया था कि अगला चातुर्मास मारवाड़ में नहीं करने का ध्यान है। मेरे दादाजी उस समय आगरा विराजते थे। उनको जब यह बात ज्ञात हुई तो उनका फोन आगरा से मेरे पास इंदौर आया कि भंवरलाल! अगर तेरी दृढ़ श्रद्धा हो और आत्म-विश्वास हो तो चातुर्मास का लाभ तुझे मिल सकता है। इंदौर चातुर्मास कराना सहज नहीं था जिसका मुख्य कारण लाउडस्पीकर व भोजन का टिकट मुख्य अड़चनें थी। गुरुदेव के भक्त बादलचंदजी मेहता एवं मेरे सहयोगी बस्तीमलजी चोरड़िया से बातचीत की। हम तीनों उस समय के इंदौर संघ के अध्यक्ष श्री सुगनमलजी सा. भंडारी व मानद् मंत्री श्री फकीरचंदजी मेहता से चातुर्मास की चर्चा के लिये गये। मैं आभारी हूँ उन दोनों का कि इन्दौर में लाउडस्पीकर एवं भोजन टिकट की उलझन के बावजूद हमारी भावना समझकर बैठक बुलाने की व्यवस्था की। बैठक में काफी विरोध था, परन्तु एक तो भंडारी सा. का व्यक्तित्व और गुरु महाराज के दर्शन व प्रवचन-श्रवण-लालसा ने उनको सोचने पर मजबूर कर दिया और सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके एक विनति पत्र लिखा गया। उसमें गुरु महाराज की समाचारी के अनुसार ही चातुर्मास की विनति की गयी। संघ अध्यक्ष, मंत्री महोदय व अन्य लोगों के हस्ताक्षरों सहित यह विनति पत्र लिखा गया।

गुरु महाराज उस समय मेड़तासिटी विराज रहे थे। हम लोग फकीरचंद जी मेहता व सागरमल जी बेताला को लेकर विनति के लिये मेड़तासिटी गये। वंदन करके बैठे और चातुर्मास की बात चलाई। इतने में श्री हीरामुनजी (वर्तमान आचार्य श्री) ने फरमाया कि विनति तो लेकर आये हैं, पर हमारी समाचारी के विषय में तैयार हैं या नहीं। हमने तुरन्त विनति पत्र जिसमें संघ अध्यक्ष व मंत्री के हस्ताक्षर थे, सेवा में प्रस्तुत किया। फकीरचंदजी से काफी विचारविमर्श के बाद गुरु महाराज ने ध्यान में रखने का आश्वासन सा दिया।

इससे मुझे संतुष्टि नहीं थी, इसलिए मैं बारबार विनति के लिये गया। गुरु महाराज ने मेरी कितनी कड़ी परीक्षा ली, यह लिखने का विषय नहीं है। अन्त में एक दिन मैं और गुरु महाराज अकेले बैठे थे तो मैंने अश्रुपूरित हृदय से विनति की कि दादा लोगों को भोपालगढ व आगरा में चातुर्मास के व दीक्षा के लाभ दिये तो क्या पोता बिना लाभ के रहेगा। करुणा के सागर ऐसा तो आप कर नहीं सकते। अब निर्णय आपके हाथ में है।

इसके पहले मैं यह बता देना चाहता हूँ कि कुछ सालों से मेरे विचार नास्तिकता की तरफ झुक गये थे और साहित्य भी मैं उसी तरह का पढ़ता था। पर गुरु महाराज के प्रति असीम आकर्षण के वश साल में एक बार दर्शन करने जरूर जाता था। वंदन करने के बाद तुरन्त मांगलिक फरमा देते थे, क्योंकि वे जानते थे कि यह खाली दर्शन करने ही आता है। न माला फेरने, न सामायिक या स्वाध्याय के लिए और न ही कोई व्रत लेने के लिये मेरे से कहा। वे तो अन्तर्ज्ञाता थे कि यह अभी इस तरह की मानसिक स्थिति में नहीं है।

युद्धकाल में बालोतरा चातुर्मास था। हीरा मुनि सा. नीचे विराज रहे थे, गुरु महाराज के दर्शन करके ऊपर से नीचे आया तो उन्होंने मुझे बुलाया और उलाहना देने लगे कि जोगीदासजी का पोता होकर माला भी नहीं फेरते हो। चूंकि मेरी उस समय नास्तिक विचार-धारा थी। मैं माला फेरने व व्रत के विरोध में बहस करने लगा। बहस जोर की होने से ऊपर गुरुदेव ने सुन लिया। नीचे झाँककर हीरा मुनिजी से फरमाया कि इसे जाने दो, रोको मत, समय पर मैं ही उसे समझाऊँगा। कितना धैर्य, अपने आप पर कितना विश्वास? आज भी मुझे ताज्जुब होता है कि मैं उनसे दूर था, पर वे मुझे अपने कितना निकट समझते थे। सच ही कहा है शिष्य गुरु को नहीं ढूँढता, गुरु शिष्य को ढूँढ लेता है। व्यक्ति को पहचानने की उनमें कितनी बड़ी सामर्थ्य थी। मेरे जैसे हजारों व्यक्तियों को उन्होंने पहिचाना, ढूँढा, और धर्म की तरफ मोड़ा।

काफी भागदौड़ और निरन्तर विनति से द्रवित होकर उन्होंने मुझ पर करुणा की वर्षा की। आगार सहित इन्दौर चातुर्मास की स्वीकृति फरमाई। उज्जैन वालों की भी उस समय जोरदार विनति थी।

नागदा जो इंदौर से ७० किलोमीटर करीब है, वहाँ से एक रास्ता उज्जैन भी जाता है, मैं, मेरी पत्नी और बस्तीमलजी नागदा गये। वंदन करने के पश्चात् यकायक गुरु महाराज ने फरमाया कि भंवरलाल! अब मेरा कर्जा उतार दे। मैं भी असमंजस में पड़ गया कि कौन से कर्ज की बात हो रही है। गुरु का कर्जा तो कभी उतरता नहीं। मैं उस समय इंदौर चातुर्मास की खुशी में था। आगार में उज्जैन भी खुला था, इसलिए और भी शंका थी। मैंने भी उस समय फिर से वंदना करके हाथ जोड़कर कहा कि कर्जा ब्याज समेत ले लीजिये। गुरु महाराज ने फरमाया कि ब्याजसमेत की बात कर रहा है तो पति-पत्नी दोनों नित्य एक सामायिक करने का व्रत ले लो। कितने लम्बे समय तक धैर्य, अपने आसामी पर कितना विश्वास- आम पक गया है, उसे तोड़ लेने की कितनी अपार शक्ति। हम दोनों ने तुरन्त हाथ जोड़कर व्रत ले लिया। जो आज भी बदस्तूर जारी है। तीन चार बार पर्युषण-सेवा में उनकी आज्ञा से बाहर भी गया हूँ। उनका फरमाना था कि तुम्हारे सरीखे स्वाध्यायी बनकर बाहर जाकर सेवा दें तो दूसरों पर भी असर पड़ता है।

इंदौर चातुर्मास की उपलब्धियाँ गिनाना सहज नहीं है। उस समय तक इंदौर जैसे बड़े शहर में कुछ ही लोगों को प्रतिक्रमण आता था। निरन्तर प्रेरणा से वहाँ कई लोगों ने प्रतिक्रमण सीखा। स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई। कई स्वाध्यायी बाहर क्षेत्रों में जाकर सेवा देने लगे। वह क्रम आज भी जारी है। इसमें अशोक मण्डलिक व विमल तातेड़ ने सक्रिय सहयोग किया।

समाज में विद्वानों की कमी गुरु महाराज को निरन्तर खटकती रहती थी। आज भी स्थिति कुछ ठीक नहीं है। एक प्रयास के रूप में उस समय इंदौर में पहली विद्वत् परिषद आयोजित की गयी और बहुत से विद्वानों का सम्मेलन हुआ जो आज भी कम ज्यादा रूप से चालू है। विद्वानों को आदर सत्कार देने एवं आर्थिक रूप से उनको समृद्ध बनाने में आज भी हमारा समाज उदासीन है। गुरु महाराज की अगर सचमुच में हमें बात माननी है तो समाज को

इस काम में तन-मन-धन से आगे आना चाहिये।

पर्युषण में उपस्थिति ज्यादा होगी, इसलिये गुरु महाराज को लाउडस्पीकर का उपयोग करना चाहिए, ऐसी सुगबुगाहट इंदौर में होने लगी। वे अपनी समाचारी के पक्के थे, इसलिए लाउडस्पीकर पर बोलने का तो सवाल ही नहीं उठता। एक दिन पर्युषण के पूर्व महावीर भवन राजवाडा से गुरु महाराज दो संतों के साथ जानकी नगर पधारे। मैं उस समय महावीर भवन में था ।

शहरवालों को आशंका हुई कि हमारे लाउडस्पीकर की सुगबुगाहट से आचार्य श्री कहीं जानकीनगर तो न विराज जायें। जानकी नगर की उस समय स्थिति ऐसी थी कि संतों को ठहराने या सामायिक करने का कोई स्थान नहीं था। टीन के शेड में भयंकर गर्मी में उस दिन वहाँ विराजे। शहर के भी बहुत से लोग आ गये थे। आज तो जानकी नगर में जैन भवन है, बड़ा जैन स्थानक है। आज इंदौर में जानकी नगर पोश कालोनी मानी जाती है और शहर वाले उस कालोनी को मिनी मारवाड़ के नाम से कहते हैं।

मेरे छोटे भाई अनूपकुमार की पत्नी ने उस चातुर्मास में मासखमण की तपश्चर्या की। प्रत्याख्यान के दिन महावीर भवन में सचित्त नारियल सबको प्रभावना में बांटे। गुरु महाराज को तत्काल मालूम हो गया। मेरे को बुलाया और फरमाया कि तुमसे मुझे यह उम्मीद नहीं थी कि तुम ही मेरे नियमों को भंग करोगे। मेरी, पूरे परिवार की व पारणा करने वाली की हार्दिक इच्छा थी कि पारणा के दिन गुरु महाराज घर पधारें व आहार-पानी का लाभ दिरावें। मिश्री से कोमल हृदय वाले , किन्तु नियम, समाचारी के कठोर रक्षक मेरे घर नहीं पधारे, क्योंकि सचित्त नारियल बांट कर उनको ठेस पहुंचाई थी। उसी दिन हस्तीमलजी झेलावत की पत्नी के पारणा था, वहाँ पधार गये। नियम के लिए नजदीक दूर का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं था।

छह माह तक कोई साधक, साधु, श्रावक झूठ न बोले और सम्यक् आचरण करे तो वचनसिद्धि हो जाती है, ऐसा एक दिन गुरु महाराज ने फरमाया । उनके खुद तो झूठ बोलने का सवाल ही नहीं था। उनकी वचनसिद्धि के कई उदाहरण मेरे पास हैं, पर मैं उनका वर्णन करके चमत्कारों की शृंखला नहीं बनाना चाहता।

इन्दौर में एक दिन गुरु महाराज मेरे मकान पधारे। पूछा, सारा घर तो मेरी देखने की इच्छा कतई नहीं है- पर तेरे इतने बड़े मकान में सामायिक-स्वाध्याय का कमरा कहाँ है- यह बता । मैं सकते में आ गया। मकान तो हम बड़े से बड़ा बना लेते हैं, पर सामायिक-स्वाध्याय के लिए छोटी सी जगह भी नहीं रखते। हमारा धर्म के प्रति कैसा अनुराग है। उस प्रेरणा से मैं सामायिक-स्वाध्याय के लिये नियत जगह रखता हूँ और किताबें तो सैकडों की तादाद में रखता हूँ।

बहुत समय पहले की बात है - बाबाजी सुजानमल जी म.सा. गुरु महाराज के साथ भोपालगढ में विराज रहे थे। मेरी उम्र उस समय करीब दस वर्ष की थी। रोज बाबाजी से मांगलिक सुनने एक दफे जाता था। दो दिन गया नहीं । तीसरे दिन गया तो बाबाजी म.सा. ने फरमाया कि दो दिन क्यों नहीं आया? इसलिए आज मांगलिक नहीं सुनाऊँगा। मैं बिना मांगलिक सुने ही जाने लगा। उस समय इतनी बुद्धि तो थी नहीं, गुरु महाराज ने देख लिया, मुझे रोका और बाबाजी म.सा. से निवेदन किया कि अगर आप मांगलिक नहीं फरमायेंगे तो यह आना ही बंद कर देगा। और मुझे तो अपरोक्ष रूप से फरमा ही दिया कि आना बंद मत कर देना।

इन्दौर से विहार करके जलगांव की तरफ पधार रहे थे। शाम को बडवाह रुकना था। बडवाह ३ किलोमीटर रह गया था। सूर्यास्त होने में थोड़ी ही देर थी। पास में गेस्ट हाउस था। मैंने गेस्ट हाउस के चौकीदार से बात करके

ठहरने की स्वीकृति ले ली। गुरु महाराज से गेस्ट हाउस में पधारने की विनति की। गुरु महाराज ने फरमाया - मैं गलत परम्परा नहीं डालूँगा, न सुविधा भोगी बनूँगा।

थोडी ही दूर पर एक विशाल बड़ का पेड़ था और चबूतरा सा बना हुआ था। गुरु महाराज व सब संतों ने वहीं आसन बिछाया, प्रतिक्रमण किया, ज्ञान साधना की और रात्रि में वहीं विश्राम किया। समाचारी और नियमों के अटूट होने से घने जंगल में पेड़ के नीचे बिना हिचक और डर के विश्राम करने को रुक गये। मैंने ऐसा अनूठा उदाहरण पहली बार ही देखा।

विहार के समय गुरु महाराज के पांव में छाले पड़ जाते थे। कभी-कभी पैरों में कपड़ा बांधकर विहार करते थे। खिलाड़ी खेलते समय घुटनों पर सलेटी रंग का मोटे कपड़े का पेड़ लगाते हैं। सुगनचंदजी बोकडिया व बादलचंदजी घुटने दुःखने से वैसा पेड लगाते थे। मैंने गुरु महाराज से अर्ज की कि ये पेड आप पैरों में लगा लीजिये ताकि छाले में दर्द नहीं होगा और विहार आसानी से होगा। गुरु महाराज ने फरमाया कि अगर मैं जरा भी समाचारी में ढीला पड़ गया और ये पेड लगाने लगा तो भविष्य में संत-सती पेड तो एक तरफ मोम, प्लास्टिक और न जाने क्या क्या उपयोग करने लगेंगे, इसलिए मैं संघहित में छालों की परवाह नहीं करता। कितनी दूरदृष्टि !

एक रात भोपालगढ में ब्रह्मचर्य के विषय की चर्चा चल रही थी। गुरु महाराज ने फरमाया कि ६० वर्ष की उम्र होने पर जाट माली भी घर के बाहर सोते हैं, या अलग अकेले सोते हैं। जैनों को कम से कम एक शिक्षा तो उनसे अवश्य लेनी चाहिये कि ६० की उम्र के बाद चौथे व्रत का नियम ले लें। जाट, माली, विश्नोई अक्सर गुरु महाराज के पास आते रहते थे। उनकी बात का भी गुरु महाराज कितना खयाल रखते थे।

जलगांव में नवजीवन मंगल कार्यालय, जहाँ चातुर्मास में गुरु महाराज विराजते थे, मेरा मकान चार किलोमीटर दूर पडता है। श्री गौतम मुनिजी जो दो साल पूर्व ही दीक्षित हुए थे, एक दिन गोचरी हेतु घर पधारे। मैंने कुछ कपड़े खद्दर के बहरा दिये। गौतम मुनिजी ने इन्कार कर दिया। मेरे जोर देने पर कि अगर गुरु महाराज मना करें तो वापिस कर दीजियेगा। स्थानक में गौतम मुनिजी से गुरु महाराज ने पृच्छा की कि ये खद्दर के कपडे कहां से लाए? उन्होंने मेरा नाम बताया। गुरु महाराज ने फरमाया कि भंवरलाल तो खद्दर पहनता नहीं , खरीद कर लाया होगा। मैंने भी तत्काल उसके बाद से खद्दर के कपड़े ही पहनने का व्रत लिया और प्रायश्चित्त भी। मैं प्रिय श्रावक, पर बिना लिहाज और बगैर लाग लपेट लिहाज के खरी खरी बात कही। गुरु का उपालम्भ देना एक तरह से बैल की लगाम खींचना ही है ताकि शिष्य दुबारा भूल न करें व नियमानुसार चलें।

मेरे पिताजी की कन्या पाठशाला संचालन में विशेष अभिरुचि थी। मैंने व मेरे भाइयों ने उनकी स्मृति में कन्या पाठशाला बनाकर समाज के अन्तर्गत संचालित करने की भावना से स्थानक के पास ही जहाँ बच्चियां आराम से आ जा सकें, जमीन क्रय कर पाठशाला भवन बनाया, पर एक साल तक समाज की ओर से संचालन करने की तत्परता न दिखने पर मन ही मन, इसे सरकार को सुपुर्द करने का मानस बनाया। मन में यही विचार लिए संवाई माधोपुर में विहार में शामिल होने गया। वंदन करके बैठा तो फरमाया कि समाज हमेशा बडा होता है। क्या श्रद्धा में फर्क आ गया है जो समाज के निमित्त बनी चीज सरकार को देने का खयाल आया है? मैं तो हक्का बक्का रह गया कि मेरे अंतरंग विचार उनको कैसे मालूम पड़ गये, जबकि मैंने हमेशा साथ रहने वाले रिखबराजजी बाफणा को भी नहीं कहा था। थोडी देर मैं एकदम गुमशुम हो गया। आज गुरु कृपा से भोपालगढ का समाज पाठशाला को सुचारु रूप से चला रहा है। सरकारी मान्यता भी मिल गयी है। अभी करीब २०० बालिकाएँ विद्याध्ययन कर रही

हैं।

गुरु महाराज नित्यकर्म के लिए बाहर पधारते थे तो पीछे मैं अपने आपको उनकी नित्यलिखित डायरी पढ़ने से रोक नहीं पाता था। एक दिन अचानक ही गुरु महाराज तुरन्त पधार गये, मेरे हाथ में डायरी थी और मैं पढ़ रहा था सो उन्होंने देख लिया। फरमाया - चोरी करनी कब से सीख ली ? मैंने कहा - मैं तो खाली डायरी पढ़ रहा था, उसमें से कुछ पन्ने वगैरह तो नहीं निकाले फिर चोरी कैसे हुई ? फरमाया -- बिना इजाजत के किसी की डायरी, लिफाफा, पत्र, कार्ड पढ़ना चोरी है। इसमें तीसरे व्रत का दोष लगता है, यह हमेशा ध्यान में रखना। मैं तो डर रहा था कि आज गुरु महाराज कितने नाराज होंगे , एक तरह से कांप ही रहा था। चोरी करने वाले के पांव कच्चे। पर उन्होंने इतने धीरज से समझाया कि आज मैं कभी ऐसी चेष्टा भी नहीं करता। यहाँ तक कि किसी की किताब पड़ी हो तो उसे पूछकर लेता हूँ।

—जे.जे. एग्रो इण्डस्ट्रीज, एम.आई.डी.सी.
जलगांव (महा.)

श्रद्धा क्यों न हो उन पर

• श्री पारसमल चोरडिया

पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। अनेक संस्मरण आज भी याद हैं। कुछ संस्मरण मैंने अपने पूज्य पिता श्री लखमीचन्दजी चोरडिया एवं बुजुर्ग श्रावक श्री हरकचंदजी मूथा से सुने हैं तथा कुछ का मैंने स्वयं अनुभव किया है। विक्रम संवत् २००० में पूज्य आचार्य भगवन्त का उज्जैन चातुर्मास कई कारणों से स्मरणीय रहा–

(१) इस चातुर्मास में मूर्तिपूजक सन्त श्री धर्मसागरजी महाराज का भी चातुर्मास था। एक दिन जब आचार्यश्री जंगल से लौट रहे थे तब आपसे धर्मसागरजी महाराज का साक्षात्कार हो गया। उन्होंने आचार्यश्री को सम्बोधित कर कहा कि यह अच्छा अवसर मिल गया है जब मन्दिर और मूर्ति के विषय में थोड़ी चर्चा कर लें ।

आचार्यश्री ने कहा - मुनिजी चर्चाएँ तो आपके और हमारे पूर्वजों ने बीसियों बार की हैं, किन्तु उनका कोई निर्णायक नतीजा आज तक नहीं निकला। इसके उपरान्त भी यदि आप चाहें तो आपके संघ की ओर से इस प्रकार की मांग प्रस्तुत होने पर समुद्यत हो सकूँगा। आप कदाचित् मेरी बात से सहमत भी हो जायें तो जरूरी नहीं कि आपका संघ भी हमसे सहमत हो।

आचार्य श्री ने स्थानक में आकर समाज के सम्मुख धर्मसागरजी महाराज की बात रखी। इससे मूर्तिपूजक समाज और स्थानकवासी समाज दोनों में हलचल मच गई। मूर्तिपूजक समाज ने पारस्परिक विचारविमर्श के पश्चात् कहलवाया कि हमारे यहाँ दोनों समाजों में पारस्परिक सौमनस्य और प्रेम का वातावरण है । हम चर्चा कुछ नहीं करना चाहते। परिणामतः विवाद का जो बुदबुदा उठा था वह उसी क्षण शान्त हो गया।

(२) स्थानकवासी धर्म को मानने वाले परिवार अनेक जातियों में थे और आज भी हैं। उस वक्त मोड़ जाति के श्रावक श्राविका भी स्थानकवासी धर्म का आचरण करते थे। उनके साथ बैठकर भोजन करने की परम्परा नहीं थी, कारण कि उनको हल्की जाति का मानते थे। जब यह बात पूज्य आचार्य भगवन्त को ज्ञात हुई, तब उन्होंने स्थानकवासी श्रावक संघ के प्रमुख व्यक्तियों से कहा कि आपके मोड़ जाति के भाई हैं और आपके साथ-साथ धर्म आराधना करते हैं। स्वधर्मी बन्धुओं के साथ भेदभाव उचित नहीं। इस पर स्थानीय प्रमुख श्रावकों ने संवत्सरी के उपवास के पारणे सामूहिक करने का निर्णय लिया और सामूहिक पारणे एक ही स्थान पर हुए। मोड़ जाति के सभी श्रावक भी सम्मिलित हुए। प्रेम का वह दृश्य अद्भुत था।

(३) संवत् २००० में ही पर्युषण महापर्व पर स्थानीय स्थानक छोटा पड़ने के कारण प्रवचनों की व्यवस्था बच्छराज भण्डारी की धर्मशाला में की गयी थी। उस वर्ष पर्युषण पर्व के दिनों वर्षा खूब होती थी। पर जिस समय पूज्य आचार्य भगवन्त एवं सन्तमण्डल को प्रवचन के लिये धर्मशाला में जाना होता तब वर्षा बन्द हो जाती। वहां पर पहुंचने के पश्चात् फिर वर्षा प्रारम्भ हो जाती तथा प्रवचन पूर्ण होने के पश्चात् वर्षा बन्द हो जाती और पूज्य आचार्य भगवन्त एवं सन्त-मण्डल स्थानक में आसानी से आ जाते। एक भी दिन पूज्य आचार्य भगवन्त एवं स्थानीय संघ को प्रवचन में जाने आने की अन्तराय नहीं लगी। यह एक ऐसा चमत्कार था कि हर व्यक्ति पूज्य आचार्य भगवन्त के गुण- गान करता थकता नहीं था। प्रकृति भी पूज्य आचार्य भगवन्त पर मेहरबान थी।

अब कतिपय वे संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिनका मुझे स्वयं अनुभव हुआ –

(१) पूज्य आचार्य श्री का सैलाना चातुर्मास हुआ। उस समय पूज्य पिता श्रीलखमी चन्द जी कमर की हड्डी क्रेक हो जाने के कारण पूज्य आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ सैलाना जाने में असमर्थ थे। उन्होंने मिठाई एवं अन्य १-२ वस्तुओं का त्याग कर दिया था कि जब तक पूज्य आचार्य भगवन्त के दर्शन नहीं कर लूँ तब तक इनका सेवन नहीं करुंगा। यह बात पूज्य आचार्य भगवन्त को सैलाना में मालूम हुई तब चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् यद्यपि पूज्य आचार्य भगवन्त को सैलाना से वापस राजस्थान की ओर जाना आवश्यक था, किन्तु करुणा के सागर पूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य पिता श्री की भक्ति के कारण उज्जैन पधारे। पूज्य पिता श्री ने उनके दर्शन कर अपने को धन्य माना।

(२) यद्यपि मेरा पूरा परिवार धार्मिक था और है , किन्तु मैं उस समय धर्म के रास्ते पर बिल्कुल नहीं था। और तो ठीक है, किन्तु २-४ माह में भी नवकार मंत्र का स्मरण नहीं करता था। इतनी मेरी दयनीय स्थिति थी। साथ ही आर्थिक स्थिति भी बहुत ही दयनीय थी। पूज्य आचार्य भगवन्त उज्जैन पधारे, हमारा घर रत्नवंश का भक्त होने के कारण मैं पूज्य आचार्य भगवन्त के दर्शनों का एवं प्रवचन आदि का लाभ लेने के लिये जाने लगा।

१२ दिन पश्चात् पूज्य आचार्य भगवन्त स्थानक से विहार कर फ्रीगंज पधारे। मैं भी दोपहर में पूज्य आचार्य भगवन्त के साथ साथ फ्रीगंज गया। वहाँ पर मुझसे आचार्य भगवन्त ने पूछा कि धार्मिक कार्यक्रम क्या करते हो? उस दिन प्रथम बार पूज्य आचार्य भगवन्त से बात करने का स्वर्णिम अवसर मिला। उसके पूर्व पूज्य आचार्य भगवन्त से बात करने के विचार ही मेरे मन में नहीं आये।

मैंने उत्तर दिया कोई भी धार्मिक कार्यक्रम नहीं करता हूँ। इस पर उन्होंने मुझे प्रेरणा दी कि आपको नवकार मन्त्र की एक माला नियमित गिनना है और मैंने सहर्ष नवकार मन्त्र की माला नियमित गिनने का संकल्प पूज्य आचार्य भगवन्त के मुखारविन्द से लिया। तबसे मैंने जीवन में प्रथम बार नवकार मन्त्र की माला गिनना प्रारम्भ किया, जिससे आत्मा में अद्भुत शान्ति एवं सुख की लहर प्राप्त हुई ।

उसके पश्चात् पूज्य आचार्य भगवन्त के अहमदाबाद चातुर्मास में मैं दर्शनों के लिये गया। वहाँ पर फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि धार्मिक क्रिया करते हो? तब मैंने निवेदन किया कि पूज्य गुरुदेव आपकी प्रेरणा के अनुसार नवकार मंत्र की माला गिन रहा हूँ। तब उन्होंने कहा अरे भोलिया, अभी तक तूने सामायिक शुरू नहीं की। आज ज्ञान पंचमी का दिन है और आज से आपको नित्य सामायिक करना है। मैंने निवेदन किया कि सामायिक के कोई भी उपकरण मेरे पास नही हैं। अत: कैसे प्रारम्भ करूँ।

उपस्थित श्रावक द्वारा सामायिक के उपकरण की व्यवस्था करने पर मुझे सामायिक का नियम करवाया और नित्य सामायिक करने की प्रेरणा देते हुये पच्चक्खाण करवाये। तबसे आत्मा में शान्ति एवं सुख की वृद्धि के साथ आर्थिक स्थिति भी उत्तरोत्तर सुधरती गई। यह तो प्रथम उपकार मेरे जैसे पापी के ऊपर पूज्य आचार्य भगवन्त का हुआ।

घर में पूरा वातावरण धार्मिक होता चला गया और पूज्य आचार्य भगवन्त एवं सन्त-सती मण्डल पर दृढ श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

(३) इन्दौर चातुर्मास के १०-१२ वर्ष पूर्व मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला बाई चोरड़िया ने रात्रि ४-५ बजे स्वप्न देखा कि पूज्य आचार्य भगवन्त एवं सन्त घर पर पधारे और हमने पूज्य आचार्य भगवन्त को पातरे में चावल बहराये और आचार्य भगवन्त मुस्कराते हुए चावल लेकर वापस पधार गये। धर्मपत्नी ने प्रात: मुझे स्वप्न का वृत्तान्त सुनाया,

अपार प्रसन्नता हो रही थी। तभी मेरे मन में विचार आया कि जब तक पूज्य आचार्य भगवन्त के चरण अपने घर पर नहीं पड़ते, तब तक जीवन पर्यन्त चावल का त्याग कर दिया जाय। धर्मपत्नी सहर्ष सहमत हो गई और हम दोनों ने चावल का उपयोग करना बन्द कर दिया। इन्दौर चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री के उज्जैन पधारने पर हमारा स्वप्न साकार हुआ।

(४) पूज्य आचार्य भगवन्त का विहार भीलवाडा से मालवा की तरफ प्रारम्भ हुआ। चित्तौड़गढ, नीमच होते हुये मन्दसौर पधारे। मन्दसौर में श्री महावीर प्रसाद जी की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई और पू. गुरुदेव ने उनका नाम नन्दीषेण मुनि रखा। वहाँ से विहार कर जावरा होते हुये रतलाम पधारे। रतलाम में सम्प्रदायवाद अधिक है, किन्तु पूज्य आचार्य भगवन्त के प्रवचनों में तीनों सम्प्रदायों के श्रावक-श्राविका हजारों की संख्या में उपस्थित हुए, ऐसा दृश्य तीनों सम्प्रदायों के श्रावकों की उपस्थिति का न पूर्व में कभी देखा और न उसके पश्चात् आज तक देखने को मिला।

(५) पूज्य आचार्य भगवन्त इन्दौर जानकी नगर स्थित जैन भवन में विराजमान थे। उन दिनों मैंने स्वप्न देखा कि पूज्य आचार्य भगवन्त विराजमान हैं। मैंने पूज्य आचार्य भगवन्त से निवेदन किया कि बड़े भाई सा श्री बाबूलाल जी चौरड़िया को चौथे व्रत के आजीवन त्याग करा दीजिये। इस पर पूज्य आचार्य भगवन्त ने कहा कि चौथे एवं पाँचवे व्रत के त्याग करा दो। उस वक्त बडे भाई सा की तबीयत खराब चल रही थी। अशक्तता ज्यादा थी। प्रातः काल मैंने बड़े भाई साहब से कहा कि पूज्य आचार्य भगवन्त ने आपको चौथे व पाँचवें व्रत के त्याग कराये हैं , ऐसा मैंने स्वप्न देखा है। अतः आपका मन हो तो त्याग कर दीजिये।

इस पर बडे भाई सा ने स्वीकृति दे दी, मैं तुरन्त उज्जैन विराजित तपस्वी लालचन्दजी म. श्री कान मुनिजी म.सा. एवं श्री गुलाब मुनि जी म.सा. के पास गया और कहा कि भाई सा को चौथे व पाँचवे व्रत के त्याग करना है अतः आप घर पर पधारें और उन्हें त्याग करा देवें। श्री गुलाब मुनिजी म.सा. घर पधारे और स्वप्न अनुसार उन्हें चौथे एवं पाचवें व्रत के पच्चखाण कराये।

दोपहर में मैं पूज्य आचार्य भगवन्त के दर्शनों के लिये इन्दौर गया और निवेदन किया कि भगवन्त आपने जो मुझे निर्देश दिया उसका मैंने पालन कर दिया है। पूज्य आचार्य भगवन्त एक मिनिट सोचने लगे फिर कहा कि कैसा निर्देश ? मैंने कहा कि आपने मुझे स्वप्न में बडे भाई सा को चौथे एवं पाँचवे व्रत के पच्चक्खाण कराने के लिये कहा था। भाई सा की तबीयत खराब होने के कारण इन्दौर नहीं ला सकते थे। अतः श्री गुलाब मुनि जी म.सा. से उन्हें पच्चक्खाण करवा दिये हैं।

उस समय श्री कन्हैयालालजी लोढा (जयपुर) वहाँ पर सामायिक में बैठे थे। पूज्य आचार्य भगवन्त ने उनको संबोधन करते हुये कहा कि "सुनो श्रावक जी ! थांने रूबरू केवां तो भी थे कहणो नीं मानो ? इनके स्वप्न में भी कह देवां तो ये केणो कर लेवे।"

–द्दी. पारस भय्या,

पुराना कैलाश टाकीज के सामने, उज्जैन (म.प्र.) ४५६००६

नामैव ते वसतु शं हृदयेऽस्मदीये

• प्रो. कल्याण मल लोढ़ा

कुछ मनीषी ऐसे विराट् मेधा, प्रज्ञा व दिव्य व्यक्तित्व की तेजस्विता से पूर्ण होते हैं, जिन्हें शब्दों में रूपायित करना असंभव है, वे शब्दातीत होते हैं- अथाह सागर की भांति जिसकी गहराई को नहीं मापा जा सकता। पूज्य हस्तीमलजी महाराज साहब ऐसे ही प्रज्ञावान, दिव्य व अलौकिक सद्गुरु थे। जब कभी उन पर सोचता हूँ, जब कभी जीवन के किसी एकाकी क्षण में भावनाएं अतीत में लौटती हैं, तब मन, प्राण और तन भाव-विभोर होकर उन्हें अपनी अशेष श्रद्धा और प्रणति देते हैं। अंग्रेजी के महान् आलोचक मेथ्यू आर्ननाल्ड की एक कविता सहज स्मृति में आती है–

प्रश्नों से सब बंधे, मुक्त तो केवल तुम हो।
हम प्रश्नों पर प्रश्न करें, तुम मौन विहंसते।
परे ज्ञान से तुम उस गिरि सम सहज उभरते
जिसका गौरव गान लगा नक्षत्रों को।
अपने अडिग पदों की गुरुता से लहरों को
करते हो तुम विवश, श्रेष्ठतम स्वर्ग बनाते
किन्तु भटकती मानवता को धीर बंधाते
समतल पर ला भाव-भूमि की सीमाओं को **(अनुवादक–भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज')**

वे यही हैं - दर्शन, ज्ञान और चारित्र की उच्चतम पावनता के सर्वोच्च शिखर पर देदीप्यमान हैं- जिनके लिये भगवान् महावीर की यह गाथा ही सटीक ठहरती है–

सवीरिए परायिणइ अवीरिए पराइज्जइ।

जो वीर्यवान है, जिसमें अशेष उत्साह है - साहस, ओज, पराक्रम और पुरुषार्थ का अक्षय स्रोत है - जिसके अन्तःकरण में शिव-संकल्प सदैव विद्यमान रहते हैं, वही संसार के दुष्कर पथ को पार कर विश्व में आलोक स्तम्भ बन जाता है। आचार्य हस्ती ऐसे ही आलोक स्तंभ थे। दर्शन, ज्ञान और चारित्र की सर्वोत्कृष्टता के श्रमण। 'षट्त्रिंशद्गुणसम्पन्नः परमो गुरुः।' सम्भवतः द्वादशानुप्रेक्षा (कुन्दकुन्द) में धर्म के दस लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं-

उत्तम खम - मद्दवज्जव - सच्चं-सउच्चं संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं बम्हं इदि दसविहं होदि॥

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य - ये ही धर्म के दस लक्षण हैं। आचार्यप्रवर इन सभी उत्तम लक्षणों के मूर्त रूप थे।

गुरु व आचार्य की दृष्टि ही शिष्य के सारे संशयों विकल्पों का और संदेहों का निवारण करती है। भारतीय संस्कृति में इसी से गुरु और गोविन्द की तुलना में गुरु को ही श्रेष्ठ गिना है, क्योंकि गुरु ही आत्म-संधान का मार्ग प्रशस्त करता है - वही ज्ञानांजन शलाका से अज्ञान की तमिस्रा दूर कर ज्योति विकीर्ण करता है। आद्य शंकराचार्य ने 'विवेक चूडामणि' में गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते हुये कहा है कि गुरु का व्यक्तित्व सुप्त चेतना को ऊर्ध्वमुखी

कर परा विद्या की प्राप्ति कराता है। मुझे श्री गुरु गीता का यह श्लोक अत्यन्त प्रिय है—

ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तमानन्दमानन्दकरं प्रसन्नम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥११८॥

पूज्य आचार्य ऐसे ही ज्ञान स्वरूप, निज आत्म-बोध से संपन्न, आनन्द की पीयूष धारा में अवगाहन करने वाले योगीन्द्र - पूजनीय और भव रोग की संजीवनी देने वाले वैद्य थे। गुरु शब्द का व्युत्पत्तिपरक तत्त्वार्थ समझाते हुए पं. केशव देव शर्मा ने लिखा है कि 'ग' शब्दे क्र्यादि और 'गृ' निगरणे तुदादि गण की धातु को 'कुग्रारुच्च' इस उणादि सूत्र से कु प्रत्यय और उकारान्तादेश होने पर 'उरण् रपरः' सूत्र से वह रपरक हुआ। फिर प्रातिपदिक संज्ञा के अनन्तर 'सु' विभक्ति से 'गुरु' बनता है। गुरु में गकार सिद्धिदाता, रेफ पापनाशक और उ कार का अर्थ शम्भु है। (कल्याण योगांक) । ज्योतिष शास्त्र में बृहस्पति को गुरु कहा गया है। एक अन्य मत के अनुसार 'गु' अंधकार का द्योतक है और 'रु' प्रकाश का। गुरु अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है - 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'। 'गिरत्यज्ञानमिति गुरुः'। 'यद्वा गीयते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः' एवं 'गृणाति उपदिशति धर्ममिति गुरुः।' तात्पर्य यह है कि गुरु धर्म के उपदेश से अज्ञानान्धकार को नष्ट कर ज्ञान की ज्योति प्रदान करता है। गुरु ही देव गन्धर्व आदि से वन्द्य होता है। आद्य शंकराचार्य के अनुसार जिसने अविद्या रूपी ग्रंथि का छेदन कर दिया है, वही गुरु है। जैन ग्रंथों में गुरु के लिये धर्माचार्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। भगवती आराधना में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों का जो स्वयं निरतिचार पालन करता है - तथा दूसरों को प्रवृत्त करता है वही गुरु है - आचार्य है। भगवती सूत्र में सद्गुरु के लक्षणों का विवेचन मिलता है। गुरु वही है जो सूत्र और अर्थ दोनों का परम ज्ञान रखता हो, संघ के लिए रीढ़ के सदृश हो और धर्म संघ को संतापों से मुक्त करने की क्षमता रखता हो एवं आगमों के गूढ़ार्थ बताता हो - वही आचार्य है - गुरु है। गुरु अंतरंग व बहिरंग परिग्रह से रहित होता है। आचार्य भद्रबाहु ने संघ के आचार्य को 'सीयघरो आयरियो' की संज्ञा दी है अर्थात् आचार्य शीत गृह के समान होता है - शान्त और शीतल, समस्त कषायों से मुक्त। आज तो विज्ञान के अनुसंधान ने भी यह प्रमाणित कर दिया है कि आंतरिक व बाह्य शीतलता (सौम्य और सरलता) ऊष्मा से अधिक मनुष्य को अधिक शक्ति सम्पन्न बनाती है। इस वैज्ञानिक मान्यता को 'क्रियोजेनिक्स साइन्स' कहा गया है। इस आंतरिक व बाह्य शीतलता का ही संदेश आचार्यप्रवर स्वाध्याय व सामायिक, चिन्तन व ध्यान से दिया करते थे। स्वाध्याय एवं सामायिक के पश्चात् वे चिन्तन व ध्यान की ओर अभिप्रेरित करते थे ।

सिंह के समान निर्भय हो, आकाश की भांति निर्लेप और संघ के अनुग्रह में कुशल हो, सूत्रार्थ में विशारद और सर्वत्र कीर्ति सम्पन्न हो वही आचार्य श्रेष्ठ है। (भगवती सूत्र, अभयदेव वृत्ति) आदिपुराण में भी गुरु के लक्षण बताए हैं। 'गुरु-तत्त्व-विनिश्चय' में गुरु की अनेक विशेषताओं व गुणों का निरूपण किया गया है। गुरु मनुष्य को अन्तर्मुखी बनाकर आत्मानुसंधान की ओर अग्रसर व प्रेरित करता है। आचार्यप्रवर का यही संदेश था कि मनुष्य को कर्म बंध व कर्म विपाक से मुक्त होने के लिए षडावश्यक हैं। पातंजल योग सूत्र (२-४) में कहा गया है 'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। अर्थात् स्वाध्याय से इष्ट देवता (आत्मा) का बोध होकर साधक को अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त होती है। अभीष्ट की सिद्धि से तात्पर्य है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और चारित्र की सिद्धि। इसे ही योग-साधना में भिन्न प्रकार से "तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा" कहा गया है। यह निर्विवाद है कि शीतलता अथवा शान्ति बाहर से नहीं आती। उसका मूल स्रोत भीतर आत्मा के निकट है - मन जितना आत्मा से दूर होगा - उतना ही कर्मजन्य क्लेश और अशान्ति होगी। आचार्य प्रवर की यही शिक्षा थी कि तुम्हारा ज्ञान आनन्त्य तक और

सर्वभूतों के प्रति प्रेम, दया व सौहार्द भी उसी प्रकार आनन्त्य तक प्रसारित हो - यही दर्शन है - यही चारित्र्य है - यही अहिंसा है । यही "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" है। परस्पर एक दूसरे के लिए निमित्त बनना ही जीव का उपकार है। जीव का आत्मभूत लक्षण 'उपयोग' है। 'जीवो उवओगलक्खणो' यह लक्षण त्रिकाल में बाधित नहीं होता है और पूर्ण निर्दोष है।

आचार्यप्रवर ने पंच महाव्रतों को स्वीकार कर कठोर मुनि-जीवन की साधना की। आत्म-संयम, अप्रमाद, अकषाय और समत्व की साधना ही उनकी जीवन प्रविधि थी।इस साधना पथ में आने वाले सारे उपसर्गों और परिग्रहों को समभाव से स्वीकार कर वे सदैव अडिग,अचल और अकंपित भाव से उच्चतर चेतना की प्रज्ञा भूमि पर विचरण करते रहे। वे वीतरागी थे। आंतरिक शुद्धि के यही मूल तत्त्व हैं - केवल बाह्य शुद्धि से ही यह नहीं होता। पुनः प्रभु महावीर का कथन याद आता है "जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति। मनुष्य का अन्तर्मन जितना विराट् होगा - उतना ही वह क्रियावादी व आत्मवादी बन सकेगा । धर्म यदि धारण करने योग्य, आचरण करने योग्य, विवेकपूर्ण बनकर कर्तव्यनिष्ठ बनाता है और मानवीय जीवन को सचराचर जगत के साथ समभाव की ओर अभिप्रेरित करता है - तो वही मानुष धर्म है, जिसके लिए महर्षि व्यास ने कहा था "गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्" - मनुष्य ही इस गुह्य तत्त्व की उपलब्धि का सर्वोत्तम साधन है। जैन धर्म की यही वास्तविकता भी है। लौकिक मार्ग यहीं अलौकिक बनकर ऋजु पथ का संधान करता है - जहाँ विधेय है - समापत्ति है और है सत्य की साधना पद्धति। भारतीय मनीषियों ने इसी से विचार-आचार-संस्कार व्यवहार और संचार (दार्शनिक अर्थ में) की व्याख्या की है।

जीवन में अनेक प्रसंग हैं, जब मैं आचार्य श्री की शीतल छांह में बैठकर अयस्कान्त मणि की भांति आकृष्ट होता था। ऐसे अनेक संस्मरण है, जहाँ उनकी कृपा दृष्टि मानसिक स्वास्थ्य का संवर्धन कर कुछ होने का कुछ बनने का, कुछ पाने का उपक्रम बनती थी। उनका जोधपुर में चातुर्मास था - मैं भी वहां अपने अनुज के यहाँ ठहरा था। मन आया कि आचार्य श्री आएँ और भिक्षा ग्रहण करें तो कैसा सुयोग और सौभाग्य मिलेगा । परिजनों ने हताश कर दिया कि आचार्य श्री अब नहीं जाते हैं - पर दृढ़ भावना से जब मैंने निवेदन किया तो उनकी सहमति पाकर कृतकृत्य हो गया। लिये केवल लौंग, पर वह परम सौभाग्य का क्षण बन गया। इसी प्रकार दो और प्रसंग भी पूर्व काल में हुए थे - जब गुरुदेव दो बार चातुर्मास में इसी प्रकार आकर भाव विभोर कर गए। वे मेरे जयपुर गृह में कृपा पूर्वक दो बार ठहरे थे - सारा वातावरण जैसे शांति और साधना का, स्वाध्याय और सामायिक से परिपूर्ण हो गया - आचार्य श्री तलकक्ष में मेरा ग्रंथागार देखने पधारे- उनकी दृष्टि धर्म, दर्शन अध्यात्म के ग्रंथों पर और विशेषतः जैन धर्म से संबंधित ग्रंथों पर पड़ी। उनका प्रमोद भाव स्पष्ट था। आचार्य श्री का जयपुर में अंतिम विहार मेरे आवास पर ही हुआ। वर्षों के अनन्तर आज भी वह स्मृति जीवन की अक्षय धरोहर है। जीवन में अनेक साधु-संतों के, धर्मगुरुओं और महात्माओं के, आचार्यों एवं मुनियों के दर्शन किए हैं। विभिन्न धार्मिक आयोजनों, संगोष्ठियों और धर्म सभाओं में भाग लिया है - पर जैसा प्रतिबोध और जागरूकता आचार्य श्री से मिलती थी वह विरल थी। "जिन खोजां तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ" गहरे पानी में पैठना तो दुष्कर था - पर किनारे बैठकर भी बहुत कुछ प्राप्त होता रहा। मेरी पारिवारिक परम्परा संघ के प्रति समर्पित थी , पूज्य पिता श्री व पूज्य मातृ श्री आचार्य श्री के परम भक्त व अनुयायी थे। शैशव में जब मुझे गुरु मंत्र मिला तो इतना ज्ञान नहीं था कि गुरु मंत्र की महिमा समझ सकूँ। जीवन की विकास यात्रा में यह बोध हुआ कि मंत्र केवल शब्द ही नहीं होते - मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्रः, अर्थात् जिसके द्वारा आत्मदेश पर विचार किया जाए, वही मन्त्र है। अथवा 'मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे

स्थिता - आत्मानः वा यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्रः' जिसके द्वारा परम पद में स्थित उच्च आत्माओं का अथवा यक्षादि शासन देवों का सत्कार किया जाय - वही मंत्र है। दिव्य ज्योतिर्मय आत्म तत्त्व का मन्त्र है और वह मनसात्मक 'मन्' एवं पालनात्मक 'त्र' के संयोग से घटित होता है - इसी से 'मननात् त्रायते इति मन्त्रं' कहा गया है। यही मनन, चिन्तन व ध्यान के शक्ति-स्रोत को प्रवाहित कर आत्म - चैतन्य की ओर ले जाता है। गुरु के श्रीमुख से प्राप्त मंत्र की बीज शक्ति शनैः शनैः वृक्ष में पुष्पित, पल्लवित व पूर्ण होती है। मेरी दृढ़ धारणा है कि गुरु अपने मंत्र से शिष्य के जीवन को उसके अन्तर्बाह्य को सर्वथा, सर्वदा और सर्वभावेन प्रभावित कर जीवन पथ का संधान करते हैं। मैं आज उस गुह्य रहस्य को समझ पाया हूँ - यही समझ पाया हूँ कि ऐसा मंत्र ही शक्तिसंपन्न होकर स्व-पथ-सुपथ पर ले जाता है और मंत्र-चैतन्य आत्म-चैतन्य का मार्ग प्रशस्त करता है। जानता हूँ अपनी लघुता व सीमा और अकिंचनता, मैं वह चैतन्य नहीं पा सका - न अपना मार्ग ही प्रशस्त कर सका- पर कभी कभी ज्योति दर्शन करने की साध अवश्य घनीभूत हो जाती है - "माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं" मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, धर्म-श्रद्धा और संयम - ये चार तत्त्व प्राप्त नहीं होते, जब तक सम्यक् श्रुत श्रवण का सुअवसर उपलब्ध नहीं होता। गुरु से उपलब्ध मंत्र ही इस उपलब्धि का श्रेयस् है। मैं अपनी लघुता में उनकी महानता नहीं रख पाया और यही पराभूत स्थिति है। एक घटना याद आ गयी। महात्मा गाँधी को सियारामशरण गुप्त अपनी कविता सुना रहे थे - "तेरे तीर्थ सलिल से प्रभु यह मेरी गगरी भरी-भरी"। पार्श्व में बैठे महादेव भाई हँसे। पूछने पर उन्होंने कहा कि तीर्थ सलिल से गगरी भरी तो सही, पर वह सलिल कहीं गगरी के ज्ञात-अज्ञात छिद्र से निरन्तर बाहर तो नहीं जा रहा। आचार्य श्री के तीर्थ सलिल से मेरी —बहुतों की गगरी भरी गयी, पर हम उस पवित्र सलिल को जीवन में कितना रख पाये ? कहीं जीवन गगरी के छिद्रों से वह पुनः बाहर निकलता रहा और हम वैसे ही जड़वत् ही रहे? मैं तो अपनी जड़ता से अनभिज्ञ नहीं हूँ - औरों की नहीं जानता।

आज मानवीय संस्कृति - संसृति का ह्रास हो रहा है - भौतिकवादी भोगवादी प्रवृत्तियों ने चारों ओर मूल्यहीनता, अनैतिकता को निरस्त कर विचित्र विसंगति - व्याघात उपस्थित कर दिया है। समाजशास्त्रियों ने उद्भ्रान्त व्यक्ति को A lonely crowd with completely enstranged की संज्ञा दी है। स्पर्धा है सत्ता, सम्पत्ति और स्वार्थ की। युधिष्ठिर ने कहा था -

यत्राधर्मो धर्मरूपाणि विभद्र कृत्स्नो धर्मो दृश्यतेऽधर्मरूपः।
तथा धर्मो धारयत्यधर्मरूपं विहासंस्त सम्पश्यन्ति॥

आज यही स्थिति है - धर्म अधर्म के रूप में और अधर्म धर्म के रूप में दिखाई पड़ रहा है। इस अपसंस्कृति से मुक्ति पाने का एक ही उपाय है - अपनी महान् परंपरा और संस्कृति के आदर्शों का अनुसरण करना। राग, द्वेष, काम, क्रोध मनुष्य का नाश करते हैं- उसका ज्ञान अपहृत होता है और चारित्र भ्रष्ट एवं तत्त्वों में रुचि का अभाव दृग्गोचर होता है। "तच्चरुई सम्मत्तं, तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं, चारित्तपरिहारो पयंपियं जिणवरिंदेहिं"- और यह तत्त्वबोध और कर्म बंध करने वाली क्रियाओं का परित्याग, ज्ञानी, विद्वान् व चारित्र्य के तपःपूत आदर्श के शासन में रहने से ही संभव है । जो उनके उपदेश पर नहीं चलता, वह अपना ही शत्रु होता है। आचार्य श्री कहा करते थे कि मनुष्य की जिजीविषा बहुत बडी है - पर वह विजिगीषा में न बदल जाये - यही आवश्यक है। उसका उपयोग होना चाहिए। आज भी सभी चिन्तक यही स्वीकार करते हैं कि मानवीय प्रकृति का उदारीकरण अनिवार्य है। आज मनुष्य की विच्छत्ति, विच्युति और उसका अजनबी पन (आउट साइडेडनेस) प्रेम के अभाव के कारण हैं - उसकी मानसिक रुग्णता और हताशा भविष्य की आस्था और उज्ज्वलता के प्रति निराशा का परिणाम और अनास्था

समाज में प्रतिष्ठित व्यक्तियों के भोगपरायण होने का फल है। इसी से आज पुनः संस्कृति के महान मूल्यों की अवधारणाओं में ही मंगल अभीष्ट है। इसके लिये पुनः आचार्य श्री के अनुसार स्थिरता, दृढ़ता, निरन्तरता और सात्विक बुद्धि-प्रज्ञा आवश्यक है। आचार्यप्रवर "पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः" के उद्घोषक थे। हमारी चेतना का उत्कृष्ट रूपान्तरण आंतरिक क्रियाशीलता की स्थिति से ही संभव है। मुझे अब भी स्मरण है, जब उन्होंने दशवैकालिक सूत्र में चार आवेगों की प्रतिपक्ष भावनाओं का निदर्शन किया था - क्रोध का उपशम से, मान का मृदुता से, माया का ऋजुता से और लोभ का संतोष से प्रतिपक्ष पुष्ट करने का उपदेश दिया था। मैं उनका यह सूत्र कभी नहीं भूल सकता "नैक सुप्तेषु जागृयात्" सुषुप्त व्यक्ति को जगाने के लिये स्वयं का जाग्रत रहना आवश्यक है।

समय अपनी चाल चल रहा है। वर्तमान का हर क्षण अतीत में लुप्त होता है और भविष्य का सतत प्रवाह हर क्षण वर्तमान में रूपायित । काल की इस अखंडता में प्रत्येक क्षण का उपयोग हमें शिव संकल्प से युक्त होकर जीवन का कल्मष नष्ट करने में करना है। इसका सर्वार्थ साधन संतों की शीतल छाया है। आचार्य श्री इसी शीतल छाया के वट वृक्ष थे, जिसका विस्तार और जिसकी व्याप्ति चतुर्दिक् में विद्यमान थी। यही कारण है कि जैन और जैनेतर समाज उनके सान्निध्य में सत्त्वस्थ होकर नीति का श्रेय प्राप्त करते थे। उनकी मरण-समाधि पर सहस्र श्रद्धालुओं ने, श्रावकों ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें देवलोक की पावन यात्रा के लिये विदा दी। जन समुदाय की अगणित संख्या इसका परिणाम व प्रमाण थी कि उनकी मंगल वाणी और सदुपदेश ने न जाने कितने विपथगामी व्यक्तियों को सद्वृत्त की ओर प्रेरित किया। ऐसे महान प्रतापी गुरु को मैं श्री गजसिंहजी राठौड के 'गुरु-गजेन्द्र-गणिगुणाष्टकम्' की इस वंदना से ही अपनी अशेष प्रणति देता हूँ।

स्वाध्याय-संघ सह धर्मि-समाज-सेवा
सिद्धान्त-शिक्षणविधौ विविधोपदेशः।
अध्यात्मबोधनपरास्तव शंखनादाः
गुञ्जन्ति देव ! निखिले महीमण्डलेऽस्मिन्।
प्रातर्जपामि मनसा तव नाम मन्त्रं
मध्येऽहनि ते स्मरणमस्तु सदा गजेन्द्र।
सायं च ते स्मरणमस्तु शिवाय नित्यं
नामैव ते वसतु शं हृदयेऽस्मदीये॥

-२ ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट) , कोलकाता ७०००२९

■

फक्कड़ सन्त : महक अनन्त

• श्री देवेन्द्रराज मेहता

परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. की मेरे एवं मेरे परिवार पर असीम कृपा थी। मेरे बचपन से लेकर उनके समाधिमरण तक यह कृपा बनी रही जो मेरा परम सौभाग्य था। जब मुझे दिल्ली में यह सूचना मिली कि आचार्य श्री का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है तो मैं २३ मार्च १९९१ को उनके दर्शनार्थ निमाज पहुँचा। मुझे वहाँ यह बताया गया कि ४ दिन से आचार्य श्री मौनरत हैं अत: उनके दर्शन तो हो सकते हैं, पर चर्चा-वार्ता नहीं। पर जब मैं उनके सान्निध्य में पहुँचा तो उन्होंने स्वत: ही मुझे एवं मेरे परिवार को आशीर्वाद दिया। रत्नवंशीय साधु-परिवार एवं मेरे स्वयं के परिवार के सात से अधिक पीढ़ियों के संबंधों का प्रमोद भाव से उल्लेख किया और काफी अस्वस्थ होने के उपरान्त लगभग ३० मिनिट तक बातचीत की, व अन्त में सदा की भांति नैतिक एवं प्रामाणिक जीवन जीने के बिन्दु पर बल दिया। अहिंसा एवं सेवा के क्षेत्र में और अधिक रुचि लेने तथा कार्य बढ़ाने की विशेष प्रेरणा दी। आचार्य श्री के इस आशीर्वाद और आत्मीयतापूर्ण अंतिम निर्देश को पाकर मैं आत्म-विभोर व भाव-विह्वल हो उठा। मुझे बाद में बताया गया कि इसके बाद आचार्य श्री समाधिमरण तक पूर्ण मौन में रहे और अन्य किसी से वार्ता नहीं की, यह उनकी अन्तिम वार्त्ता थी।

मेरे एवं मेरे परिवार का यह सौभाग्य है कि रत्नवंशीय चतुर्विध संघ-परम्परा के साथ पीढ़ियों से हमारा श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमपूर्ण संबंध रहा है जिसका उल्लेख आचार्य श्री स्वयं यदा-कदा करते रहते थे। मुझे वह प्रसंग स्मरण हो आया जब आचार्य श्री आलनपुर सवाईमाधोपुर चातुर्मास में विराज रहे थे। मैं जयपुर से रात्रि के समय वहाँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ पहुँचा- अन्धेरा था। अत: वहाँ उपस्थित श्रावकों ने पूछा - आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? मैंने अपना नाम आदि बताया। आचार्य श्री ने इस पर सहज भाव से कहा- सरकार में ये क्या कार्य करते हैं, यह तो मुझे पता नहीं, पर कम से कम सात पीढ़ियों से - हमारे साधु संघ व इनके परिवार से सम्बन्ध रहे हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य श्री ने एक घटना सुनाई जो उनके स्वयं के जीवन एवं वंश-परम्परा में व्याप्त फक्कड़पन तथा अनासक्त भाव को उजागर करती है।

आचार्य श्री ने कहा कि महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म. (जिनके नाम पर रत्नवंश परम्परा चल रही है) जब कभी जोधपुर पधारते तो श्री जसरूपजी सा. मेहता (मेरे पूर्वज) उन्हें अपने घर लाडनूं की हवेली में अवश्य आते-जाते ठहराते थे। श्री जसरूपजी सा. अपने समय के प्रमुख श्रावक थे और जोधपुर राजघराने में उनका अत्यधिक प्रभाव था। उनके प्रभाव का एक दृष्टान्त यह है कि उन्होंने अपने कामदार श्री कालूराम पंचोली को राज्य का दीवान बना दिया। उस समय जोधपुर के नरेश महाराजा मानसिंह थे जिनका व्यक्तित्व विचित्र और विरोधाभासी था। एक ओर वे गहन आध्यात्मिक एवं ज्ञानी थे तो दूसरी ओर प्रशासन में कूटनीतिज्ञ तथा कठोर थे।

जसरूपजी सा. ने जोधपुर नरेश से निवेदन किया कि रत्नचन्दजी म.सा. उनकी हवेली में ठहरे हुए हैं। उनके दर्शन करने वे पधारें। उनसे यह सुनकर कि रत्नचन्दजी म.सा. एक पहुँचे हुए सन्त हैं तो नरेश ने दूसरे दिन उनकी हवेली पर आने की स्वीकृति दे दी। यह घटना प्रधान चर्चा का विषय हो गयी, क्योंकि उन दिनों में नरेश का किसी

के घर जाना भगवान का घर आना माना जाता था। किले से जब रात को जसरूपजी सा. वापस आये तो सर्वप्रथम रत्नचन्दजी म.सा. को जोधपुर नरेश की स्वीकृति की सूचना यह समझ कर दी कि इससे म. सा. अत्यधिक प्रसन्न होंगे। उनकी मनोभावना शायद यह भी रही हो कि महाराज सा. समझेंगे कि उनका श्रावक कितना बड़ा व्यक्ति हो गया है कि जो नरेश को भी अपने घर ला सकता है। पर आचार्य रत्नचन्दजी म.सा. ने इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कि और अन्धेरा होने के कारण उनके भाव भी चेहरे से नही पढ़े जा सके।

दूसरे दिन सवेरा होते ही महाराज सा. ने विहार कर दिया। नौकर ऊपर भागा और जसरूपजी सा. को इसकी सूचना दी। जसरूपजी सा. सकते में आ गये और घोड़े पर बैठकर महाराज सा. के पीछे पहुँचे। उन्होंने आचार्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. से पुनः अपनी हवेली पर आने का निवेदन किया तथा यह भी बताया कि जोधपुर नरेश जिन्होंने उनके (आचार्य श्री के) प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी, वे इसे अपनी घोर अवमानना समझेंगे।

इस पर आचार्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. ने निसंग और निर्भीक होकर कहा - हमने तो संसार छोड़ दिया। कौन राजा? किसका राजा ? सांसारिक प्रपंचों में हमें मत फंसाओ। हमारे पास तो ये काष्ठ पात्र हैं और राजा के पास छत्र है। पात्र-पति व छत्र-पति का क्या संग?

आचार्य श्री का यह उत्तर सुनकर श्री जसरूपजी महाराज मानसिंहजी के पास गये और आचार्य श्री व अपने बीच हुआ पूरा वार्तालाप उन्हें सुनाकर क्षमायाचना की। महाराज मानसिंह बहुत प्रभावित हुए और यह कहा कि तुम्हारे गुरु तो पक्के फक्कड़ हैं।

आचार्य श्री रतनचन्दजी म.सा. का यह फक्कड़पन, अनासक्त भाव और निःसंगपना मैंने आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के जीवन में भी सदैव देखा। राजनीतिज्ञों, श्रीमन्तों और सत्ताधारियों से वे कभी प्रभावित नहीं हुए। मान-सम्मान की उन्हें कभी परवाह नहीं रही। उनकी दृष्टि में राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, वर्ण-जाति का कोई भेदभाव नहीं था। जयपुर में महान् तपस्विनी श्रीमती इचरजदेवी लूणावत की १६५ दिन की सुदीर्घ तपस्या के महोत्सव पर भारत सरकार के खाद्य मंत्री श्री जगजीवनराम आये थे। आचार्य श्री को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने इसके लिये कोई प्रमोद व्यक्त नहीं किया और अपने प्रवचन में एक निर्भीक, तेजस्वी, फक्कड़ सन्त की तरह देश की परिस्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि राजनीतिज्ञ सिर्फ गांधी की कमाई ही नहीं खावें, बल्कि देश में बढ़ते भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण किया जाये। यह अलग बात है कि अनेक लोगों को उनकी यह बात रास न आई हो।

पीपाड़ चातुर्मास में राजस्थान के राज्यपाल बसन्त दादा पाटिल के आने पर भी आचार्य श्री अपने धर्माराधन में ही लगे रहे और जब महामहिम राज्यपाल स्वयं ने उनके दर्शन कर आशीर्वाद मांगा तो केवल शराब बन्दी की बात कही। आचार्य श्री के सान्निध्य में सबके लिये समान अवसर और समदर्शिता का भाव था। मैंने कई बार देखा है कि संघ के वरिष्ठ पदाधिकारी भी धर्मसभा में जैसे आते हैं, वैसे बैठते जाते हैं। उनके लिए कोई स्थान निश्चित नहीं रहता।

आचार्य श्री धर्म को जन्म से नहीं, सद्कर्म से जोड़ते थे। जो सत्कर्म करता है, जो सद्गुणी है, वही उनकी दृष्टि में ऊँचा माना जाता था, फिर चाहे वह किसी जाति व वर्ण का क्यों न हो। मेरे एक सहयोगी मित्र ने जो प्रशासन में हैं और जन्म से मीणा जाति के हैं, एक बार कहा - कि आपके धर्म गुरु आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. इस युग के महान् आध्यात्मिक सन्त हैं। वे समता की प्रतिमूर्ति हैं। हमारी जाति के एक युवक को उन्होंने जैन दीक्षा प्रदान की

है और उन्हें अपने संघ में , आचार-व्यवहार में बराबर का दर्जा दिया है। बड़े बड़े विद्वान् और श्रीमन्त उस युवक मुनि के चरण-स्पर्श करते हैं। जातिवाद के विरुद्ध महावीर ने जो परम्परा कायम की, उसी के अनुरूप यह कार्य हुआ।

आचार्य श्री नैतिक व प्रामाणिक जीवन जीने पर विशेष बल देते थे। उनकी बराबर यह प्रेरणा रहती थी कि धर्म जीवन में उतरे, व्यवहार में प्रगट हो। धर्म दस्तूर रूप में न होकर आचरण रूप में हो। आचार्य श्री क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं मानते थे। ईमानदारी, सादगी और नैतिकता के रूप में धर्म प्रतिफलित हो, ऐसी उनकी प्रेरणा रहती थी। यदि ये गुण किसी व्यक्ति में हैं, उनकी दृष्टि में वह व्यक्ति धार्मिक और नैतिक था। मेरे चाचा श्री जसवन्तराजजी मेहता ऐसे ही व्यक्ति थे। आचार्य श्री उन्हें इसी भाव से देखते थे। वे जीवन पर्यन्त ईमानदार, नैतिक, प्रामाणिक और सादगी प्रिय रहे।

आचार्य श्री पात्र की योग्यता और सामर्थ्य देखकर धर्माराधन के क्षेत्र में उनके अनुरूप बढ़ने की प्रेरणा देते थे। यही कारण है कि उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों में जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग है। क्या धनी, क्या उद्योगपति, क्या वकील, क्या न्यायाधीश, क्या डाक्टर, क्या इंजीनियर , क्या अध्यापक, क्या अधिकारी।

आचार्य श्री अत्यन्त करुणाशील और दयालु थे। अहिंसा और प्रेम उनके रग-रग में व्याप्त था। प्राणी मात्र के प्रति उनके मन में दया का भाव था। उनके मुख-मण्डल पर सदैव प्रसन्नता का भाव, करुणा का भाव, सौम्य भाव व्याप्त रहता था। जो भी उनके सम्पर्क में आता, सान्निध्य पाता, भीतर से भीग उठता, सहृदय बन जाता। उसकी पराकाष्ठा समाधिमरण के समय पहुँची। उनके विशिष्ट त्याग व करुणाभाव से वातावरण ऐसा विशुद्ध हुआ कि ईद की नमाज पढ़कर सैकड़ों मुसलमान आचार्य श्री के दर्शन को आये तथा यह प्रण लिया कि आचार्य श्री के समाधिमरण तक किसी पशु का वध नहीं होगा। इस प्रण को उन्होंने पूर्ण रूप से निभाया। एक तरफ आज साम्प्रदायिकता की बात होती है, दूसरी तरफ इतर सम्प्रदाय के लोग भी प्रभावित होते हैं। यहाँ यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि आचार्य श्री की अन्तिम यात्रा में श्मशान तक पहुंचाने में हजारों मुसलमान थे। इस यात्रा में करीब एक लाख लोग शामिल थे जिसमें आधे से अधिक जैनेतर थे। इसी करुणा की बात को आगे बढ़ाते हुए निमाज की ही सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख आवश्यक है।

जब कसाइयों के प्रण की बात मैंने सुनी तो दूसरे दिन निमाज पहुँचने पर मैं सात कसाइयों के घर गया। उनसे काफी चर्चा हुई। वे स्वयं यह मानते हैं कि उनका काम अच्छा नहीं है, पर पेट भरने व परम्परा के कारण ऐसा करते हैं। एक ने यह कहा कि उसने हजारों जानवर कटवा दिए, पर उसके घर पर कोई बरकत नहीं हुई, वे वहीं के वहीं है। एक-दूसरे व्यक्ति ने बताया कि २१ अप्रेल को ३२५ बकरे गाँवों से निमाज में एकत्र किये जायेंगे और उन्हें कटने के लिये बम्बई भेजा जायेगा। संघ के कई लोगों के मन में विचार आया कि ऐसे महान् मृत्युंजयी संत के आसपास का कोई प्राणी कैसे वधित हो सकता है? अत: तत्काल निर्णय हुआ कि सारे बकरे संघ द्वारा खरीद लिये जायें। इसके लिये कुछ व्यक्ति सारी राशि देने को तैयार थे। दूसरे दिन व्याख्यान में जब इसकी चर्चा हुई तो सैकड़ों व्यक्तियों ने सारी राशि दे दी। ऐसा लगा मानो एक घंटे तक रुपये - पैसों की वर्षा होती रही। शाम साढ़े छह बचे तक सारे बकरे संघ द्वारा मुक्त करा दिये गये। आचार्य श्री के महाप्रयाण के दो घंटे पूर्व सभी प्राणियों को अभयदान दे दिया गया था।

आचार्य श्री का बराबर इस बात पर बल रहा कि समाज में हिंसा का व्यावसायीकरण न हो, बढ़ती हुई हिंसा

को रोकने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया जाये। कई बार ऐसा लगता है कि हमने अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया है और उसका सकारात्मक पक्ष उपेक्षित रहा है । मेरे मन में इस सम्बन्ध में प्राय: शंका उठा करती थी। एक दिन जोधपुर में मैं दर्शन करने गया तब आचार्य श्री एक माली परिवार में ठहरे हुए थे। वहाँ कोई संवाददाता आचार्य श्री से बातचीत कर रहा था। बातचीत के बाद जब मैं आचार्य श्री के पास गया तो आचार्य श्री ने मुझसे कहा कि आज तो एक अखबार वाले ने मुझे निरुत्तर कर दिया। मैंने पूछा - कैसे ? आचार्य श्री ने कहा कि अखबार वाला पूछ रहा था कि आपकी अहिंसा कहां तक जाती है। मैंने कहा - प्राणी मात्र तक। इस पर वह बोला - यदि किसी माँ द्वारा त्याज्य शिशु सड़क पर मिल जाये तो आप क्या करेंगे?

तब मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि हम श्रावकों का तो कर्तव्य बनता है न ? क्यों न ऐसे बच्चों के रक्षण, लालन-पालन और जीवन-निर्वाह के लिये अनाथालय बनाये जाएँ।

आचार्य श्री ने केवल इतना कहा - सोचो । और तब मुझे लगा कि मेरी शंका का समाधान हो गया। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सेवा, दया और करुणा में है और इस क्षेत्र में समाज को आगे बढ़ना चाहिए। आचार्य श्री की प्रेरणा से ही 'बाल शोभा' नाम से एक अनाथालय बन गया, जहाँ वर्तमान में करीब ३२ बच्चे रह रहे हैं और ७० तक बच्चे रखने की अब योजना है। समाज की ओर से ऐसे १० अनाथालय खोलने की योजना भी है।

विकलांगों का जीवन भी स्वावलम्बी और सुखी बने, इस दिशा में भी आचार्य श्री की प्रेरणा बनी रही। आचार्य श्री के जलगाँव चातुर्मास में विकलांगों का एक शिविर आयोजित किया गया। आचार्य श्री जंगल जाकर आ रहे थे। मैंने आचार्य श्री से शिविर स्थल की ओर पधारने का निवेदन किया। आचार्य श्री पधारे और अपनी मांगलिक दी। आचार्य श्री की मांगलिक सुनकर कार्य शुरू कर दिया गया। आज महावीर विकलांग सहायता समिति का कार्य देश विदेश में तेजी से बढ़ता जा रहा है। आचार्य श्री का इस कार्य में हमेशा आशीर्वाद रहा।

विधवाओं, परित्यक्ताओं, प्रताड़ित - पीड़ित महिलाओं की सहायता के लिये भी एक व्यापक योजना जोधपुर में क्रियान्वित की गई है। अन्य स्थानों पर भी यह योजना चालू हो, इसके लिए प्रयत्न अपेक्षित है।

पीपाड़ चातुर्मास में आचार्य श्री का संकेत था कि स्वाध्यायियों से सेवा के बारे में बात की जाये। स्वाध्यायियों की बड़ी शक्ति हमारे पास है। सन्त-सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण के दिनों में जाकर वे धर्माराधना में महत्त्वपूर्ण सहयोग और प्रेरणा देते हैं।उनका उपयोग सेवा के कार्य में हो, यह आचार्य श्री की भावना थी। सेवा निष्काम भाव से हो, इसके लिये संगठन और सम्पत्ति मुख्य नहीं हैं। मुख्य है सेवा की भावना और सहृदयता । पीपाड़ में एक स्वाध्यायी अध्यापक मुझे ऐसे मिले, जो अपने नेत्रहीन चपरासी को, जो प्रति दिन ३० मील दूर अपने कार्य पर जाता था, उसे बस स्टैण्ड से स्कूल और स्कूल से बस स्टेण्ड तक छोड़ा करते थे। जब ऐसी करुणा की भावना का हृदय में उद्रेक होता है, तब कहीं सेवा कार्य हो पाता है। आचार्य श्री ने साधु-मर्यादा में रहते हुए इन सब कार्यों के लिए प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप समाज में सेवा कार्यों से जुड़ने वाले भाई-बहिनों की संख्या बहुत अधिक है। कुछ उल्लेखनीय नाम हैं-श्रीमती इचरजदेवी लूणावत, श्रीमती इन्दरबाई सा., सज्जनबाई सा., सुशीला बोहरा, श्री एवं श्रीमती एम. सी. भण्डारी, दलीचन्दजी जैन, रतनलालजी बाफना, पूनमचन्दजी हरिश्चन्दजी बडेर, इन्दरचन्दजी हीरावत, उम्मेदमल जी जैन, सी. एल. ललवाणी, सुमतिचन्द जी कोठारी, पारसमलजी कुचेरिया आदि।

आचार्य श्री के संयमी जीवन और साधनानिष्ठ व्यक्तित्व का ही यह प्रभाव था कि शिक्षा, चिकित्सा,

विद्यालय, छात्रालय, पुस्तकालय , ज्ञान भण्डार आदि विविध जनहितकारी प्रवृत्तियाँ सक्रिय बनीं और प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी संख्या में भाई बहिन इनसे जुड़े। अ.भा. जैन विद्वत् परिषद् के रूप में विद्वानों का एक संगठन भी आचार्य श्री की प्रेरणा से बना, जिसके साथ श्रीमन्त और सामाजिक कार्यकर्ता भी जुड़े, ताकि समाज की ज्वलन्त समस्याओं पर सभी दृष्टियों से विचार हो सके और उनके समाधान का रास्ता खोजा जा सके। पीपाड़ में आयोजित विद्वत् संगोष्ठी के अवसर पर यह विचार-चर्चा चली कि धर्म जीवन में कैसे उतरे ? अहिंसा के विधायक पक्ष पर बल दिया गया। उस समय राजस्थान में विशेषकर मारवाड़ में भयंकर अकाल था। मूक प्राणियों की रक्षा के लिए मारवाड़ अकाल सहायता कोष की स्थापना हुई जिसके माध्यम से पांच लाख पशुओं को बचाया गया।

आज आचार्य श्री पार्थिव रूप से हमारे बीच नहीं हैं, पर समाज में अहिंसा, सेवा, ज्ञान और क्रिया की जो ज्योति उन्होंने प्रज्वलित की, उसमें उनकी प्रेरणा, उनका प्रकाश और आशीर्वाद अक्षुण्ण बना रहेगा। मुझे उन्होंने जो अन्तिम निर्देश दिया, वही मेरे जीवन की सबसे बड़ी निधि है। मुझे उस ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहे, यही अभ्यर्थना है। उस फक्कड़ सन्त, जिसकी महक अनन्त, के चरणों में कोटिशः वन्दन।

(जिनवाणी के श्रद्धाञ्जलि विशेषाङ्क से साभार)

-सेवानिवृत्त अध्यक्ष, सेबी, बी-५, महावीर उद्यान पथ,
बजाज नगर, जयपुर ३०२०१५

■

संस्मरणों का वातायन

• न्यायाधिपति श्री जसराज चौपड़ा

बचपन में पूज्यपाद आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के दर्शन सर्वप्रथम कहाँ किये, याद नहीं। पचपदरा और बालोतरा में ही संभवत: प्रथम दर्शन हुए। हम पाँच भाई हैं। अत: जब-जब भी हम दर्शन करने जाते तो आचार्य श्री कहते 'आओ पंच भैया'। जोधपुर के सिंहपोल में श्रमण संघ के मन्त्रिमण्डल एवं प्रमुख संतों का चातुर्मास था, तब मैंने जो दर्शन किए उसकी स्मृति आज भी तरोताजा है। इस चातुर्मास में आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी महाराज साहब प्रज्ञाचक्षु होने से नहीं पधार पाये थे। उपाचार्य पूज्य गणेशीलाल जी म.सा. के नेतृत्व में यह चातुर्मास सम्पन्न हुआ।सारा साधु मंत्रिमंडल जब पाट पर विराजता था तब दृश्य देखने लायक होता था। सिंहपोल के मैदान के बीच लम्बे पाट लगते थे जिन पर सभी संत मुनिवर विराजते थे। पूज्य गणेशीलाल जी म.सा. के अतिरिक्त पूज्य मदनलाल जी म.सा., पूज्य हस्तीमल जी म.सा., पूज्य कवि अमर मुनि जी म.सा., पूज्य समर्थमल जी म.सा., पूरण बाबाजी, कड़क मिश्री मल जी महाराज, मधुकर मिश्रीमल जी म.सा. आदि बड़े-बड़े संत इस चातुर्मास में सम्मिलित थे। श्रमण संघ की एक संवत्सरी एवं कतिपय विवादास्पद विषयों पर विचार-विमर्श करके सर्वानुमति पर पहुँचना था। पूज्य समर्थमल जी म.सा. एवं पूरण बाबाजी श्रमण संघ में सम्मिलित नहीं हुए थे, परन्तु व्याख्यान में साथ बैठते थे। वार्तालाप इस बाबत भी चालू था। व्याख्यान आदि में सिंहपोल ठसाठस भरा रहता था। एक साथ इतने प्रमुख संतों का एक स्थान पर चातुर्मासिक ठहराव उसके पश्चात् देखने को नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेव के चमकते नेत्र, शांत गम्भीर मुद्रा और समस्याओं का आगमसम्मत समाधान आकर्षक होता था। वे तब भी सभी संतों के द्वारा पूरी तरह आदरास्पद और क्रिया की वारणा-सारणा में निष्णात संत माने जाते थे। यह सन् १९५३ की बात है। उसके पश्चात् पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के दर्शन एक दो बार जोधपुर में ही हो पाए। फिर मैं १९५६ में राजकीय सेवा में संलग्न होने के कारण जोधपुर से बाहर रहा।

सन् १९६९-७० में अजमेर में पूज्य गुरुदेव का पदार्पण हुआ, तब मैं वहां सीनियर सिविल व सहायक सेशन जज था। लाखनकोटडी दर्शन व व्याख्यान हेतु जाता था। पूज्य गुरुदेव का विहार किशनगढ की तरफ होना था, मैं तब सी-४ मीरशाह अली कॉलोनी में रहता था। विहार के समय मैंने निवेदन किया कि मेरा निवास स्थल रास्ते में ही है, आप वहाँ विराजकर मुझे कृतार्थ करें। गुरुदेव ने स्मितवदन होकर कहा - "क्या भेंट चढाओगे?" मेरे मुख से निकला "जो आप आदेश दें।" गुरुदेव परम कृपा कर बंगले पधारे। मैं तब केवल माला फेरता था, कभी कभी सामायिक कर लेता था। आचार्य श्री ने मेरी धार्मिक क्रिया का लेखा-जोखा लिया। दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व गुरुदेव ने पृच्छा की, हमारी भेंट का क्या हुआ? मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया - अन्नदाता! जो आपका आदेश। पूज्य गुरुदेव ने फरमाया हम जो कहेंगे वह मान लोगे? मैंने कहा - अन्नदाता का हुक्म सिर आँखों पर होगा। गुरुदेव ने फरमाया– ब्रह्मचर्य की मर्यादा और प्रतिदिन एक सामायिक कर सकोगे? आप नियम दिला दें एवं निभाने योग्य चरित्र बने ऐसा आशीर्वाद दें। हम दोनों पति-पत्नी ने नियम अंगीकार कर लिया। उन्हीं के द्वारा प्रदत्त नियम का प्रताप है कि मैं इतना स्वाध्याय कर पाया। गुरुदेव ने फरमाया था कि सामायिक में आधा घण्टा स्वाध्याय अवश्य करना। अत: सामायिक ४८ मिनिट की न होकर १ घंटे की हो जाती थी। किन्तु इस नियम के

कारण सारे आगमों के अध्ययन का अवसर मिल गया। मुझे जो भी प्राप्त हुआ इसी सामायिक के नियम से प्राप्त हुआ। कभी कोई कष्ट आया तो सामायिक से प्राप्त ज्ञान उसे समभाव से सहने में इतना सहायक हुआ कि उसका बयान शब्दों में नहीं किया जा सकता। जो सुख-दुःख प्राप्त हैं मेरे अपने कर्मों का फल है। दूसरा कोई इसके लिए जिम्मेदार नहीं है, अत: किसी के प्रति द्वेष का भाव, उपालम्भ का भाव कभी आता ही नहीं। मन इतना शांत-प्रशांत रहता है कि क्या बताएँ। यह सब उस महापुरुष की देन है जिसने समभाव की साधना को जीवन में अवतीर्ण किया व उसकी साधना हेतु प्रेरित किया।

अजमेर के बाद लम्बे समय तक गुरुदेव के दर्शन नहीं कर पाया। जब आचार्य श्री का रायचूर चातुर्मास था, तब पुन: दर्शन किए। तीन दिन सेवा का यह लाभ हुआ कि मैं पूज्य गुरुदेव से पूरी तरह जुड़ गया।

१९७४ का चातुर्मास गुरुदेव का सवाईमाधोपुर हुआ। मैं तब भरतपुर सेशन जज था। सवाई माधोपुर तब भरतपुर जजशिप का भाग था। तब वहाँ मात्र दो मुंसिफ थे। सी. जे. एम. कोर्ट व बाद में एडी.आई. केम्प कोर्ट में हर १५ दिन व तीन हफ्ते में एक बार सवाई माधोपुर जाकर पूज्य गुरुदेव के सपत्नीक दर्शन करता, प्रवचन का लाभ लेता व कोई मौका होता तो स्वयं भी व्याख्यान में भाषण दे देता। खूब लाभ मिला वहाँ सेवा करने का। पोरवाल क्षेत्र का भाग्योदय था। खूब धर्मध्यान हुआ। खूब नये लोग रत्नवंश से जुड़े । बड़ा सरल सादा क्षेत्र है। भौतिक समृद्धि इतनी नहीं थी , पर आध्यात्मिकता व सादगी की भावना से ओत-प्रोत क्षेत्र था। गुरुदेव ने इस क्षेत्र का पूरे तनमन से पोषण किया व आज भी क्षेत्र उनका उपकृत है। वहाँ गुरुदेव ने ऐसा अलख जगाया कि अनेकों स्वाध्यायी निर्मित कर दिए, जो आज भी भारत के कोने-कोने में अपनी स्वाध्याय सेवाएँ प्रदान कर विभिन्न क्षेत्रों में धर्म-जागृति लाकर समाज-सेवा का लाभ उठा रहे हैं।

सवाईमाधोपुर के बाद जयपुर, अजमेर, किशनगढ, जोधपुर आदि में सेवा का लाभ मिलता रहा। सन् १९८२ में गुरुदेव दक्षिण से पधार रहे थे। होली चातुर्मास 'आवर' में था। एक छोटा सा गाँव जहाँ नहाना व निपटना सब नदी पर ही होता था, बहुत शुद्ध सात्त्विक वातावरण था। तीन दिन आवर में सेवा की। उसके बाद करीब-करीब प्रतिदिन रास्ते की सेवा का लाभ लिया। गुरुदेव कोटा पधारे। कोटा में गुरुदेव को मेरे बंगले पर विराजने के भाव थे। कोटा में आई. एस. कावडिया कमिश्नर थे, तब उन्होंने फरमाया कि मेरी इच्छा है कि गुरुदेव मुझे ठहरने का लाभ दें। आप मेरी सिफारिश करें। मैं क्या कहता एक बड़ा अफसर नया जुड़ रहा था। गुरुदेव के करीब आना चाहता था। उत्साह भी था तो मैंने सब कुछ सोचकर गुरुदेव से अर्ज किया - गुरुदेव कमिश्नर साहब की बड़ी उत्कट इच्छा है कि आप उनके यहाँ ठहरें। मैं तो लाभ से वंचित रहूँगा , परन्तु उचित रहेगा कि उनकी भावनाएँ आहत न हों। हम तो आपके हैं ही, वे भी जुड़ें तो कितना अच्छा हो। गुरुदेव मुस्कराए, फिर बोले - जैसी तेरी इच्छा। मैंने फिर कावड़िया साहब से कहा– "आप पधारकर रास्ते में ठहरने हेतु विधिवत् निवेदन करें।" वे मेरे साथ चले व स्वीकृति प्राप्त की। दो या तीन दिन गुरुदेव का विराजना हुआ। बड़े अच्छे कार्यक्रम हुए। सभी अफसर धर्म सभाओं में शरीक हुए। कइयों ने नियम लिये। जयपुर वाले श्रावकों ने तब सेवा का बड़ा लाभ लिया। महावीर जयन्ती का कार्यक्रम कोटा में ही हुआ।

मुझे जैसा याद पड़ता है सुशीला कंवर जी म.सा. आदि सतियाँ तब बून्दी विराज रही थीं। गुरुदेव ने उन्हें दर्शन के लिए फरमाया। मुझसे कहा - सतियों को ठहराने का लाभ तुझे मिल जायेगा। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रतन चौपड़ा तब जोधपुर थी। वह कतिपय घरेलू कारणों से कोटा नहीं आ पा रही थी। मैं अकेला था। जयपुर के प्रसिद्ध

श्रावक श्रीचन्द जी गोलेच्छा मेरे यहाँ सपरिवार अपने दामाद नवलखा जी के साथ ठहरे हुये थे। महासतियां जी ३३ कि. मी. विहार कर कोटा पधारीं। गुरुदेव के दर्शन किए। मेरे निवेदन पर बंगले में रहने की स्वीकृति मिली। महासती जी लम्बा विहार कर पधारी थीं। पैर में फफोले हो गए थे, घर पर पानी लेने के लिए पधारीं तब रसोई में थोड़ा अंधेरा था। अज्ञानवश मेरे पहाड़ी रसोईदार ने बिजली जला दी, सतियां जी ने तुरन्त कहा - चौपड़ा साहब घर असूझता हो गया। मेरे बार-बार निवेदन करने पर भी और ऊपर की मंजिल में ठहरने का निवेदन करने पर भी महासती जी तो शहर की ओर विहार कर गयी। मेरे अन्तराय कर्म का बन्धन अधिक होने से कोई लाभ न ले सका। महासती जी को शारीरिक कष्ट होते हुए भी शहर की ओर पधारना पड़ा। कितना कठिन है जैन साधुचर्या का पालन एवं उसकी पालना में संत-सतियों की चारित्रिक दृढता। उसका प्रत्यक्ष अनुभव उसी दिन हुआ।

जयपुर चातुर्मास में भी सेवा का लाभ मिला । तब मैं विधि सचिव था। प्रमोद मुनि जी की दीक्षा जयपुर में हुई। मैं उनके अभिनन्दन समारोह का मुख्य अतिथि था, मेरा नाम तब उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु राजस्थान से दिल्ली जा चुका था। गुरुदेव को पता नहीं स्वतः आभास हुआ, मुझसे पूछा—क्या साधना करते हो? मैं जो करता था वह मैंने निवेदन किया। गुरुदेव ने फरमाया--"धर्म बहुत बड़ा सम्बल है।" आचार्य श्री जैसे महापुरुष बिना किसी सूचना के भक्त की कठिनाई को भांपकर उसका उपचार करने में सक्षम आध्यात्मिक वैद्य थे। यह उन्हीं के पुण्य प्रताप और कृपा का प्रसाद है कि समस्त बाधाओं को पार कर मैं जज बना।

निमाज की अंतिम भोलावण में संघ-सेवा के अतिरिक्त गुरुदेव ने यह भी फरमाया था कि जैन एकता समय की महती आवश्यकता है। यह तुम्हारा प्रिय विषय भी है एवं तुम आधिकारिक रूप से इस पर बोल भी सकते हो। तुम्हारा कोई बुरा नहीं मानेगा, अतः जहाँ भी जाओ इसके बारे में अवश्य ही बात कहना। इससे यह ज्ञात होता है कि वे महापुरुष श्रावकों में सामञ्जस्य एवं जैन एकता के प्रबल पक्षधर थे।

उनका जीवन करुणा व प्रेम से ओतप्रोत था। बोलते कम थे, पर श्रद्धालु को देखते ही उसकी स्थिति को भांपने की विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। श्रावक को समाधि व शांति प्राप्त हो इस ओर भी पूरी तरह सजग रहते थे। 'शांति पमाडे तेने संत कहिए, व तेना दासानुदास थई ने रहिए।" इस उक्ति को चरितार्थ करते थे। वे ऐसे संत थे जिनका सान्निध्य भी शांति प्रदान करता था।

अजमेर, जोधपुर व पाली आदि क्षेत्रों में मुझे पूज्य श्री की सेवा का खूब लाभ मिला। पूज्य गुरुदेव ने पाली व निमाज में फरमाया था कि अब धर्म व शासन प्रभावना की तरफ ध्यान दो। पाली चातुर्मास के दौरान गुरुदेव का स्वास्थ्य बहुत ज्यादा ठीक नहीं था, पर ऐसा भी नहीं था कि हम उनके पावन सान्निध्य से वंचित हो जायेंगे।

पूज्य गुरुदेव के संथारा पच्चक्ख लेने के बाद करीब-करीब प्रतिदिन निमाज जाता था। कई लोग भीतर बैठे रहते थे, उनका सान्निध्य हासिल करने को लालायित थे। मैंने कभी अपने आपको आयोजकों पर थोपा नहीं। पंक्ति में खड़े होकर अपनी बारी आने पर दर्शन किए तथा पास के कमरे और मैदान में सामायिक लेकर बैठ जाता था। संथारे के समय श्री मिट्ठालाल जी मेहता मुख्य सचिव राजस्थान सरकार, श्री इन्द्रसिंह जी कावडिया, आई. ए. एस. श्री ज्ञानचन्दजी सिंघवी महानिदेशक पुलिस (सपरिवार) दर्शन करने पधारे। संथारे के दौरान लाखों लोगों ने पूज्य गुरुदेव के दर्शन किए। पूज्य जयमल जी महाराज के पश्चात् सजगतापूर्वक संथारा कराने की मांग कर किसी आचार्य का यह इतना लम्बा संथारा सदियों पश्चात् हुआ। तेले की तपस्या सहित १३ दिनों तक यह संथारा चला। जैन व जैनेतर सभी सम्प्रदाय के लोगों ने ही नहीं मुसलमान भाइयों ने भी इस फक्कड़ फकीर के दर्शन किए और उन्होंने

यह प्रतिज्ञा ली कि ऐसे विलक्षण संत का संथारा जब तक न सीझे वे पशुवध और मांस-भक्षण नहीं करेंगे। ऐसा समभाव का प्रभावशाली संथारा मैंने अपनी उम्र में नहीं देखा। आचार्य श्री के चेहरे पर अंतिम समय तक वही चिरस्थायी शांति व समभाव कायम रहा।

दाह संस्कार के पश्चात् शाम को निमाज उद्यान में श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गयी। समाज ने मुझे यह सौभाग्य दिया कि पूज्य गुरुदेव का अंतिम लिखित पत्र मैं सभा में पढ़कर सुनाऊँ। जिसमें परमपूज्य हीराचन्द जी म.सा. को आचार्य और परम पूज्य मानमुनिजी महाराज को उपाध्याय घोषित करने के निर्देश थे।

हमें इस बात की गौरवानुभूति है कि दोनों महापुरुषों के नेतृत्व एवं संरक्षण में हमारा संघ गतिमान एवं वर्धमान है। यह संघ सदा जयवन्त रहे व हम सब भी अपने कर्तव्य का पालन करें तो स्वत: संघ उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होगा, यह मुझे पूरा विश्वास है।

२२ जनवरी, १९९८

-पूर्व न्यायाधिपति, राजस्थान
उच्च न्यायालय एवं
अध्यक्ष, उपभोक्ता संरक्षण आयोग, राजस्थान
-महावीरनगर, रेजीडेंसी रोड, जोधपुर

■

पंचाचार में अप्रमत्त एवं शास्त्रार्थ में बेजोड़

• श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

आचार्य की विशेषता होती है कि वह स्वयं तो पंचाचार का उत्कृष्ट, शुद्ध एवं निरतिचार पालन करता ही है, साथ ही जिस गच्छ, संप्रदाय, संघ का वह आचार्य है उसके साधकों को समुचित आचार पालन कराना भी उसका दायित्व होता है । पूज्य आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब ने इस दायित्व का निवर्हन पूर्ण निष्ठा के साथ किया। साथ ही पंचाचार को समृद्ध व दृढ बनाने में महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय योगदान भी किया। इस दृष्टि से आप सामान्य आचार्य से बढ़कर महान् आचार्य थे। पंचाचार हैं - (१) ज्ञानाचार (२) दर्शनाचार (३) चारित्राचार (४) तपाचार और (५) वीर्याचार।

• ज्ञानाचार के आराधक

आचार्य श्री ज्ञानाचार के उत्कृष्ट आराधक थे। आपका आगमज्ञान अगाध था। आप प्रतिदिन नियमित रूप से आगम का स्वाध्याय करते थे। आपने अनेक आगमों का अनुवाद व टीकाएं की। ज्ञानाचार के सजग प्रहरी होने क साथ आपमें सत्यान्वेषण की भी प्रवृत्ति थी। एक बार आपने तात्त्विक चर्चा के दौरान मुझसे कहा - "तत्त्वार्थसूत्र में सम्यक्त्व मोहनीय, हास्य, रति एवं पुरुषवेद को पुण्य प्रकृति कहा गया है। किन्तु मोहनीय कर्म की प्रकृति तो पुण्य होती नहीं । ये चारों तो मोहकर्म से सम्बद्ध हैं। दिगम्बर तत्त्वार्थ सूत्र में इन चारों का उल्लेख नहीं है। अतः यह शोध की जानी चाहिए कि श्वेताम्बर मत द्वारा मान्य तत्त्वार्थसूत्र में इन चारों प्रकृतियों का समावेश पुण्य प्रकृति के रूप में कैसे हो गया?" यह थी आपकी तत्त्वज्ञान के प्रति सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति।

आचार्य श्री कुशल प्रवचनकार एवं श्रेष्ठ लेखक थे। आपने प्रारम्भिक वर्षों में धर्म, आगम, दर्शन, नीति, कर्म सिद्धान्त, तत्त्व ज्ञान आदि सभी विषयों पर लेखनी चलाई। आपके लेख हृदयस्पर्शी, मार्मिक तथा प्रेरणाप्रद हैं। मुझे लेख लिखने की प्रेरणा आपसे ही प्राप्त हुई । वस्तुतः मुझे लिखना सिखाया।

अल्पवय में ही आपकी विद्वत्ता का प्रभाव देश के दूरस्थ भागों में फैलने लगा था। आपकी सूझबूझ एवं शास्त्रज्ञान की कीर्ति का एक उदाहरण केकड़ी का शास्त्रार्थ है । इस शास्त्रार्थ की घटना यहाँ दी जा रही है।

• केकड़ी में शास्त्रार्थ का परचम

अजमेर सम्मेलन के पूर्व संवत् १९९० में आचार्य श्री शाहपुरा के सब सेशन जज श्री सरदारमलजी छाजेड़ के निवेदन पर बनेड़ा से विहार कर शाहपुरा पधारे। वहाँ से अन्य क्षेत्रों को फरसते हुए केकड़ी पधारे। उन दिनों केकड़ी व इसके चारों ओर के क्षेत्र में बड़ा विषाक्त साम्प्रदायिक वातावरण था। उस समय उस क्षेत्र में जो स्थानकवासी सन्त-सती आते उन्हें दिगम्बर एवं मूर्ति पूजक समाज की ओर से ठहराने, आहार-पानी देने का निषेध कर रखा था। उनके साथ अभद्र व्यवहार किया जाता तथा अपमानित व परेशान किया जाता था। दिगम्बर समाज की ओर से श्वेताम्बर समाज के आगमों पर यह आरोप लगाया गया एवं प्रसारित किया गया कि इनमें भगवान महावीर ने मांस खाया, ऐसा लिखा है, अतः ये आगम अमान्य हैं। इस आरोप का केकड़ी के स्थानकवासी समाज ने 'रेवतीदान

समालोचना' पुस्तक प्रकाशित कर समुचित खण्डन किया।

उन दिनों केकड़ी भारतवर्ष में शास्त्रार्थ का प्रमुख स्थान था। यहाँ आर्य समाज, दिगम्बर, श्वेताम्बर, मूर्ति पूजक एवं स्थानकवासी समाज में परस्पर अखिल भारतीय स्तर पर विधिवत् शास्त्रार्थ होते रहते थे। केकड़ी उस समय वस्तुत: दिगम्बर पंडितों व शास्त्रियों का गढ था। पंडित श्री मूलचन्दजी श्री श्रीमाल प्रमुख विद्वान थे। इनकी शास्त्रार्थ में विशेष रुचि थी। वे दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज को स्थानकवासी समाज के साधुओं से शास्त्रार्थ करने के लिय प्रोत्साहित करते रहते थे। उस समय जो भी स्थानकवासी साधु- साध्वी केकड़ी आते, उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारा जाता था। अत: स्थानकवासी साधु केकड़ी में आते हिचकिचाते थे।

संयोग से जब आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. का केकड़ी पधारना हुआ तो केकड़ी के स्थानकवासी समाज की ओर से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज को आचार्य श्री से अपने प्रश्नों का समाधान करने के लिये लिखा गया। इस पर मूर्त्तिपूजक समाज ने अपने प्रश्न शास्त्रार्थ के रूप में भेजे। दिनांक १६ फरवरी सन् १९३३ से एक सप्ताह तक शास्त्रार्थ चला। पंडित श्री मूलचन्द जी शास्त्री को दोनों पक्षों की ओर से निर्णायक चुना गया। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने श्वेताम्बर समाज की ओर से पूछे गए गूढ से गूढ प्रश्नों के उत्तर प्रांजल संस्कृत भाषा में दिए। आचार्य श्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य पूर्ण समुचित समाधानों से निर्णायक पंडित जी सहमत ही नहीं, अत्यन्त प्रभावित भी हुए। उन्होंने निर्णय दिया कि आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के उत्तर जैनधर्म की दृष्टि से बहुत सटीक एवं समुचित हैं। शास्त्रार्थ के पश्चात् केकड़ी के दिगम्बर एवं मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का जोश ठंडा पड़ गया और स्थानकवासी सन्त-सतियों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारना बंद हो गया। इस शास्त्रार्थ में केकड़ी स्थानकवासी समाज के मन्त्री सुश्रावक श्री धनराजजी नाहटा ने प्रमुख भूमिका निभायी।

आचार्य श्री की उम्र उस समय बाईस-तेईस वर्ष की ही थी। इतनी छोटी वय में दिग्गज पण्डितों से शास्त्रार्थ करना और विजय प्राप्त करना आचार्यप्रवर के विशिष्ट ज्ञान का सूचक रहा।

• दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार के उत्कृष्ट आराधक

आचार्य श्री सम्यग्दर्शन और संवेदनशीलता रूप दर्शन इन दोनों ही दर्शनों के उच्च स्तरीय आराधक थे। आपके हृदय में दया, करुणा, अनुकंपा उमड़ती थी, जो सर्व हितकारी भाव के रूप में प्रकट होती थी। जो भी आपके सम्पर्क में व दर्शनार्थ आता, उसके दु:ख से द्रवित हो उसे दोषों के त्यागने का कोई न कोई नियम दिलाने का आपको ध्यान रहता था। आप दया के सागर एवं करुणा के भण्डार थे।

समस्त दु:खों की जड़ हैं – राग, द्वेष, मोह, विषय, कषाय आदि दोष। आचार्य श्री इन दोषों से बचने के लिये स्वयं तो सतत जागरूक रहते ही थे, साथ ही अन्य व्यक्ति भी इन दोषों व समस्त दुखों से मुक्ति पायें, इसके लिये सदा प्रेरणा देते रहते थे।

चारित्राचार के आप उत्कृष्ट आराधक थे। आप इन्द्रियजयी एवं कषाय-विजयी थे। प्रतिकूल प्रसंग आने पर भी आप क्रुद्ध नहीं होते थे, क्षमा के सागर थे। यदि कोई दोषी व्यक्ति अपने दोष को आप से निवेदन करता तो आप उसे बिना बुरा भला कहे अत्यन्त करुणा व प्रेम से उसके दोष-निवारण का मार्ग बतलाते थे। अनेक अपराधी मनोवृत्ति के व्यक्तियों ने आपकी शरण में आकर जीवन को अपराध मुक्त व उन्नत बनाया। आपका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि प्राय: कोई भी व्यक्ति आपके समक्ष अभद्र, अशिष्ट व्यवहार तथा अनादर करने का साहस

नहीं कर पाता था।

आचार्य श्री बड़े सरलहृदय थे और दूसरों को भी वे वैसा ही सरल समझते थे। कोई मायाचार या कपट कर सकता है, झूठ बोल सकता है, उन्हें प्राय: ऐसा नहीं लगता था। आचार्य श्री निर्लोभता की प्रतिमूर्ति थे । अनेक बहुमूल्य चित्र व अमूल्य हस्तलिखित ग्रंथ जिनका आप चाहते तो संग्रह कर सकते थे, परन्तु आपने उन्हें शास्त्र भण्डारों को सम्भलाने की प्रेरणा प्रदान कर उन्हें समाजोपयोगी बनाया। आप क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों ही कषायों से अपने को बचाने में सदैव सजग रहते थे। कषाय-विजय के लिए सतत पराक्रम करते रहते थे।

आचार्यप्रवर तीन गुप्तियों के पालन में सदैव जागरूक रहे। आप काया का गोपन कर व्यर्थ की प्रवृत्तियों से बचते थे। वचनगुप्ति के प्रति भी पूर्ण सावधान थे। विकथाओं से तो सदा बचते ही थे, आगन्तुक दर्शनार्थी को भी सामायिक-स्वाध्याय, व्रत-प्रत्याख्यान के नियम दिलाकर अपने कार्य में लग जाते थे। व्यर्थ की बात बिल्कुल नहीं करते थे।

आप स्वयं उत्कृष्ट चारित्र का पालन करते थे, साथ ही सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी किसी न किसी प्रकार की साधना की प्रेरणा देते रहते थे। आपके अपने शासन काल में इकतीस सन्तों एवं चौवन सतियों की दीक्षा हुई। आपकी प्रेरणा से सामायिक-संघ व साधना-संघ की स्थापना हुई। आपका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली होने पर भी आप मान से कोसों दूर रहते थे। संथारे के कुछ दिन पहले आपकी रुग्णावस्था में साधना विषयक चर्चा में आपने फरमाया कि सागर में एक बुदबुदा रहे तो क्या और न रहे तो क्या, अर्थात् सागर में बुदबुदे का कोई महत्त्व या मूल्य नहीं है उसी प्रकार इस संसार में हमारे रहने न रहने का, जीने मरने का कोई महत्त्व नहीं है । आचार्य श्री के इस कथन से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आप कितने निरभिमानी थे। आपकी प्रेरणा से सैकड़ों साधकों ने अपने जीवन को उन्नत बनाया।

आप तपाचार के भी उत्कृष्ट आराधक थे। आचार्यप्रवर के पांचों इंद्रियों के आहार (के भोग) का त्याग रूप अनशन तप तो सदैव चलता ही रहता था, साथ ही शरीर और इन्द्रियों की क्रिया के लिये जो आहार लेना पड़ता था वह भी कम से कम लेते थे अर्थात् उणोदरी तप बराबर चलता था। जो आहार लेते थे उसमें निजी संकल्प नहीं होता था, अपने शिष्यों की प्रसन्नता के लिए एवं संयम-साधना के लिए लेते थे । इस प्रकार वृत्तिप्रत्याख्यान या भिक्षाचर्या तप के भी सच्चे आराधक था। आहार में रस का भोग न करने से आप रस-परित्यागी थे। दिन भर बैठे-बैठे कार्य करने पर तथा चलने से थकान होने पर भी आप दिन में लेटते नहीं थे। रोग आने पर समता से सहन करते थे। इस प्रकार आपका काय-क्लेश तप चलता रहता था। आप इन्द्रियों के साथ मन को भी बहिर्मुखी वृत्ति से हटाकर अपने को ज्ञानोपयोग में संलीन करने में तत्पर रहते थे। अर्थात् प्रतिसंलीनता तप भी आपका उत्कृष्ट श्रेणी का था। संयम की उत्कृष्ट पालना के लिए प्रायश्चित का आप सदा ध्यान रखते थे। आप अहंभाव से परे थे इसलिए विनय तप सहज क्रियान्वित हो जाता था। । आपका सबके प्रति विनम्रता का व्यवहार था। वैय्यावृत्त्य या सेवाभाव तो आपका सहज गुण था। आपकी विद्वत्ता, योग्यता, सामर्थ्य आदि सभी संसार की सेवा में अर्पित थे। आप करुणार्द्र हो सभी को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने रूप सेवा में तत्पर रहते थे।

स्वाध्याय तप के तो आप मूर्तिमान रूप थे। प्रात:काल से रात्रि तक स्वाध्याय में रत रहते थे। अंधेरा हटते ही लिखने पढ़ने का कार्य चालू कर देते थे। अपना समय व्यर्थ न जावे, इसके प्रति पूर्ण सावधान रहते थे। आपके सम्पर्क में जो भी पढा लिखा व्यक्ति आता ; आप उसे नियमित स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते एवं नियम दिलाते

थे। आपकी प्रेरणा से ही स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य गांव-गांव में, प्रत्येक व्यक्ति में स्वाध्याय का प्रचार प्रसार करना है। पोरवाल - पल्लीवाल आदि क्षेत्रों में स्वाध्याय से ही जागृति आई है । इन क्षेत्रों में पहले जहाँ दो चार भी वक्ता नहीं थे, वहाँ आज शताधिक वक्ता तैयार हो गये हैं।

ध्यान तप तो आपके जीवन का अंग ही था। प्रातःकाल सूर्योदय के समय, मध्याह्न में १२ से १ बजे तक तथा रात्रि में शयन के समय आपकी ध्यान-साधना नियमित चलती थी। चतुर्विध संघ में स्वाध्याय व सामायिक की तरह ही ध्यान साधना चालू हो, इसके लिये मुझे आपसे बराबर प्रेरणा मिलती रही। आप फरमाते - "स्वयं भी ध्यान-साधना करो तथा दूसरों को भी ध्यान-सिखाओ।" अतः आपके सान्निध्य में अनेक ध्यान शिविर लगाये गये।

व्युत्सर्ग तप ध्यान-साधना का अगला चरण व आभ्यंतर तप का अंतिम चरण है। ध्यान-साधना कर्त्ता-भोक्ता भाव से छूटने व ज्ञाता द्रष्टा बनने की साधना है। व्युत्सर्ग तप देहातीत-लोकातीत होने की साधना है। इस साधना में साधक इन्द्रिय एवं लोक के प्रभाव से मुक्त हो, असंग हो, इनसे परे हो जाता है। फिर बुद्धि सम हो अपने में ही लीन हो जाती है तथा चिंतन-मनन संकल्प-विकल्प की आवश्यकता नहीं रहती। व्युत्सर्ग-साधना का उत्कृष्ट रूप है संलेखना संथारा। आचार्यप्रवर ने जबसे संथारा लिया तबसे पूर्ण होश में होते हुए भी आप तन-मन-वचन से निश्चेष्ट रहे। अपनी ओर से करवट भी न ली, न किसी से बात की और न कोई संकेत ही किया। बाह्यतप से आभ्यंतर तप अधिक महत्त्वशाली है और आभ्यंतर तप में व्युत्सर्ग तप सर्वोत्कृष्ट तप है। यह मुक्ति में साक्षात् कारण है। आचार्य श्री ने बाह्य-आभ्यन्तर सभी तपों का अनुपालन किया। आप महान् तपस्वी थे।

वीर्याचार अथवा पुरुषार्थ-पराक्रम के आप धनी थे। 'समयं गोयम ! मा पमायए' यह सूत्र आपके जीवन में चरितार्थ था। आचार्य श्री का प्रातः से सायंकाल तक सारा क्रिया-कलाप मुक्ति की प्राप्ति हो, इसी के लिए होता थी।

• महत्त्व गुण पूजा का है , व्यक्ति पूजा का नहीं

सवाईमाधोपुर में आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज साहब की जयन्ती मनाई गयी थी। प्रातःकाल की धार्मिक सभा में वक्ता आचार्य श्री के गुणों से प्रेरणा लेने पर जोर देते रहे। सायंकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् आचार्यप्रवर से मैंने निवेदन किया कि मेरे दादा श्री भूरालालजी लोढा कहा करते थे कि जीवित (छद्मस्थ) व्यक्ति की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। क्या उनका यह फरमाना उचित है?

आचार्य श्री ने फरमाया कि पहले सब संत भी यह ही कहते थे और यह उचित ही है। मुझे आचार्य श्री के मुख से यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, कारण कि मुझे डर था कि कहीं आचार्य श्री इस कथन का यह अर्थ नहीं ले लेवें कि आज जो मेरे गुणगान किए गए, वे इसे पसंद नहीं हैं। आचार्य श्री के उक्त कथन को सुनकर मुझे लगा कि आचार्य श्री प्रशंसा के भूखे नहीं हैं, प्रत्युत प्रशंसा सुनना पसंद भी नहीं करते। प्रातः काल की धार्मिक-सभा में भी आपकी प्रशंसा करने वाले वक्ताओं को आप बार-बार टोक रहे थे। मुझे लगा कि मेरे मन का डर एक भ्रम था जो आचार्य श्री के उक्त कथन को सुनकर दूर हो गया।

पंचाचार के उत्कृष्ट आराधक होने के साथ आप चतुर्विध संघ के हित के लिए सदैव तत्पर रहते थे। आचार्य श्री के गुणों की थाह नहीं। महान् आचारवान् आचार्यप्रवर को शतशः सहस्रशः नमन।

-अधिष्ठाता, श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान
साधना भवन, बजाज नगर, जयपुर

अप्रमत्त साधक की दिनचर्या

• डॉ. धर्मचन्द जैन

'समयं गोयम ! मा पमायए', एवं 'काले कालं समायरे' आगम-वाक्यों के आराधक आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ऐसे अध्यात्मयोगी एवं युगमनीषी साधक सन्त थे जो निन्दा-विकथा एवं सांसारिक प्रपंचों से मनसा, वचसा एवं कर्मणा दूर रहकर समय के एक-एक पल का सदुपयोग करते थे। रात्रि में आप नियत समय पर पोढ़ते , किन्तु जब भी नींद से जाग जाते, तो रात के दो बजे हों या तीन, आप उठकर जप, माला, ध्यान या चिन्तन में लीन हो जाते। रात्रि के अन्धकार में भी कभी-कभी चित्त में उपजे विचारों या काव्य-पंक्तियों को लिपिबद्ध कर लेते। आप खाली कागज एवं पेंसिल साथ में रखकर पोढ़ते। रात्रिक प्रतिक्रमण का समय होने पर प्रतिक्रमण करते, सन्तों को प्रत्याख्यान कराते एवं सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन करके स्थण्डिल के लिए पधार जाते। वापस आकर अल्पाहार-मुख्यत: पेय ग्रहण करते और स्वाध्याय तथा लेखन में संलग्न हो जाते।

प्रातःकाल प्रवचन एवं अपराह्न में शास्त्र वाचन का क्रम नियमित चलता। जब कभी प्रवचन में नहीं पधारते तो स्वाध्याय एवं लेखन का कार्य जारी रखते। मध्याह्न में १२ बजे ध्यान के लिए विराजते। ध्यान का ऐसा क्रम था कि कभी विहारकाल में विलम्ब हो जाता तो पेड़ के नीचे या जो भी उचित स्थान मिलता, वहाँ ही एक बजे तक ध्यानस्थ हो जाते। मौन का समय २ बजे तक रहता था। फिर शास्त्र-वाचन करते , सन्त-सतियों की जिज्ञासाओं का समाधान करते, उनके शास्त्रज्ञान को पाठ देकर या प्रेरणा कर आगे बढ़ाते। समय मिलते ही वज्रासन, पद्मासन आदि आसनों से विराजकर लेखन में जुट जाते। आवश्यक होने पर सांयकाल ४ बजे बाद सामयिक विषयों पर चर्चा करते। सायंकाल स्थण्डिल भूमि से लौटकर दैनन्दिनी लिखते एवं थोड़ा सा आहार लेते। मध्याह्न में प्राय: आहार ग्रहण नहीं करते थे। कभी करते तो हल्का सा लेते। मिर्च-मसाले युक्त एवं गरिष्ठ आहार का वर्जन ही रखते। । आहार का सेवन संयम-जीवन के लिए था, स्वादपूर्ति एवं शरीर-पोषण के लिए नहीं।

सायंकाल का प्रतिक्रमण भी समय पर करते। प्रतिक्रमण के पश्चात् सन्तों तथा आगन्तुक श्रावकों से ज्ञान-चर्चा करते। श्रावकों को भी जिज्ञासा-समाधान का यह समय उपयुक्त लगता, क्योंकि रात्रि में पूज्यप्रवर लेखन आदि कार्यों में व्यापृत नहीं मिलते थे। यह समय आचार्यदेव प्राय: जिज्ञासु श्रावकों के लिए नियत रखते थे, किन्तु दिन में भी ध्यान, मौन, प्रवचन, शास्त्रवाचन आदि के अतिरिक्त जब भी योग बनता आप आगन्तुकों को सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा एवं व्रत-प्रत्याख्यान कराने हेतु सजग रहते थे। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र कि अन्धेरे में भी आवाज मात्र से श्रावकों को पहचान लेते थे। आगन्तुकों से आप आर्थिक एवं पारिवारिक विषय पर कभी भी बातचीत नहीं करते थे। आसन इस प्रकार लगाते कि श्रावकों को चरण स्पर्श का प्राय: अवसर नहीं मिलता था। ज्ञानचर्चा के अनन्तर नियमित रूप से कल्याणमन्दिर स्तोत्र एवं नन्दीसूत्र का स्वाध्याय करके आप काष्ठपट्ट पर या नीचे ही शरीर एवं मस्तिष्क के विश्रामार्थ पोढ़ जाते थे। दिन में कभी पोढ़ने या लेटने का काम नहीं। मनोबल इतना दृढ कि ज्वरग्रस्त होने पर भी बैठे रहकर ही स्वाध्याय-लेखन में प्रवृत्त रहते। आपकी दिनचर्या को जिसने अपने नयनों से देखा है, वह आसानी से समझा सकता है वे महापुरुष कितने अप्रमत्त थे। (उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. से बातचीत के आधार पर)

-3K २४-२५ कुडी भगतासनी, जोधपुर

मेरे जीवन-निर्माता

डॉ. मंजुला बम्ब

पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. परिस्थितियों को पहचानने में पारंगत थे। अतल तल में पहुंचने की शक्ति आप में विद्यमान थी। व्यक्ति का चेहरा देखकर उसके मनोगत भावों को जानने में निपुण थे । गुरुदेव देख लेते थे कि इस व्यक्ति के जीवन को सुदृढ बनाने के लिए किस प्रकार के उपचार की आवश्यकता है। मेरे जीवन का निर्माण करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

सन् १९७५ में मेरे जीवन में यकायक परिवर्तन आया। अचानक मेरे पति श्री हेमचन्द जी बम्ब १४ अगस्त १९७५ की रात्रि ११.३० बजे इस संसार से मुझको तीन बच्चों के साथ छोड़कर चले गए। इस वीरान जिन्दगी के बारे में हमेशा सोचती रहती थी। अनेक प्रश्न उठते रहते थे। मैं १७ सितम्बर सन् १९७५ को पूज्य गुरुदेव के दर्शनों के लिए परिवारजनों के साथ ब्यावर गयी। तब गुरुदेव ने मुझको रोते हुए देखकर समझाते हुए कहा था "यदि व्यक्ति अपने गुणों का विकास करेगा तो उसकी जीवन- यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होगी। गुणों की वृद्धि का कहीं अहंभाव जाग्रत नहीं हो जावे, इसके लिए व्यक्ति को महापुरुषों के चरणों में स्वयं को अर्पित करना चाहिए।"

यही वाक्य हमेशा मेरे कानों में गूंजते रहते थे। उस समय स्वाध्याय की प्रवृत्ति मुझमें नहीं होने से मैं धार्मिक अनुष्ठानों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। अज्ञानता के कारण कई प्रश्न मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न करते थे और मैं हमेशा उन प्रश्नों को लिखकर रख लेती थी। मैं जब भी गुरुदेव के दर्शनों के लिए जाती, वे प्रश्न अपने साथ लेकर जाती कि अनुकूल अवसर मिलने पर गुरुदेव से पूछूँगी। मगर मेरे सभी प्रश्नों का समाधान व्याख्यान में ही हो जाता था। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता था कि हर समय ही मेरे प्रश्नों का समाधान मेरे बिना पूछे कैसे हो जाता है।

दोपहर की मौन-साधना के बाद जब मैं आचार्यप्रवर की सेवा में बैठती तब मुझसे गुरुदेव पूछते कि 'मन में जो कोई प्रश्न है वह पूछ। मैं चुप रहती, फिर "पूछ बाई पूछ। मंजू पूछ।' मैं शर्म से और डर से बोलती ही नहीं थी। मैं सहमी-सहमी सी कह देती, नहीं बाबजी नहीं, कोई प्रश्न नहीं है। ऐसा मेरे जीवन में करीब आठ-दस बार हुआ। इसी तरह मेरे मन में शंकाएँ उठती रहतीं और पूज्य भगवन्त के दर्शनार्थ जाती तभी प्रवचन में ही सभी शंकाओं का समाधान मिल जाता। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता कि गुरुदेव को मेरे मन की बातें एक्सरे मशीन की भांति कैसे पता चलती हैं?

वाणी में ओज, प्रवचन में प्रखरता, उत्कृष्ट संयम-साधना के साथ सरलता आदि अनेक गुण आप में थे, जो चुम्बकीय शक्ति का कार्य करते थे। जो भी एक बार गुरुदेव के समीप बैठ जाता उसकी वहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती थी। ऐसा लगता था कि आपका सौम्य चेहरा अपलक निहारते रहें। इससे नयन तो पवित्र होते ही थे, मन भी पुलकित रहता था। गुरुदेव से आत्मिक-शक्ति मिलती थी। दर्शन करके वापिस जयपुर लौटती तो बहुत ही रोना आता था। आप श्री के वात्सल्य और चुम्बकीय-शक्ति से मैं बहुत प्रभावित हुई। मेरे नीरस, वीरान जीवन में उन्होंने मुझे कभी भी व्रत-नियम के लिए नहीं कहा। मुझे हमेशा जीवन-लक्ष्य की प्रेरणा प्रदान करते।

आपश्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन स्व-पर कल्याण में ही समर्पित किया। इसी कारण आपश्री के सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति खाली नहीं लौटता था। सामायिक, स्वाध्याय, ध्यान, मौन, नैतिक उत्थान, कुव्यसन-त्याग

इत्यादि जीवन जीने की कला आप से प्राप्त होती थी। गुरुदेव, परोपकारी सन्त थे। हमेशा दूसरों के हित में सोचा करते थे। ममतामयी जन्मदात्री रूपा की गोद को छोड़कर आप अष्ट प्रवचन माता की गोद में बैठकर संघ को, समाज को ही नहीं, अपितु पूरे विश्व को वात्सल्य रूपी अमृत पिलाकर इस पंचम काल के महान् सन्त बने।

आचार्यप्रवर करुणा के सागर थे। उन्होंने मुझे रोगी की सेवा करने की प्रेरणा की। तब से मानव कुष्ठ आश्रम की समुचित व्यवस्था मैंने देखना शुरु किया था। नेत्रहीन बालकों के आश्रम में सप्ताह में एक बार उनको स्नान कराने का कार्य भी किया। सवाई मानसिंह अस्पताल के नेत्ररोगियों का एक वार्ड मैंने गोद लिया। उसमें जाने पर उनकी बेबसी पर अपार दुःख होता था। किसी के पास दवा लाकर देने वाला नहीं होता था तो किसी के पास दूध लाकर देने वाला नहीं होता था, तो किसी के पास दूध गर्म करने वाला नहीं था। यह सभी कार्य मैं स्वयं ही करके आती थी और मुझे बहुत अच्छा लगता था। आप कहा करते थे कि अपने जैसा ही दूसरों को समझो। यदि आपको किसी को प्रेरणा देनी है तो स्वयं वैसा ही आचरण करो। आचरण को देखकर दूसरे स्वयं शिक्षा लेंगे।

जिस प्रकार शरीर पुष्टि के लिए व्यायाम और भोजन आवश्यक है उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए स्वाध्याय आवश्यक है। गुरुदेव की इस प्रेरणा से मैं नित्य स्वाध्याय व थोकड़े आदि सीखने लगी।

आपकी प्रेरणाओं ने ही मेरे एकाकी, बेबस, खोखले, पराश्रित सुप्त जीवन को जगाया। श्रेष्ठ मूल्यों का नवनीत प्रदान किया। भौतिकता के जाल में फंसी हुई मुझे आध्यात्मिकता का अमृत पिलाया। अतीत को भूलकर वर्तमान में जीने की कला बताई। आज मैं जो भी हूँ जैसी भी हूँ आपकी दीर्घ दृष्टि से हूँ। आपने मुझे आनेवाली आपदाओं से सचेत कर उन आपत्तियों के प्रतिकार या प्रतिरोध का समय-समय पर उपाय भी बताया। साथ ही विकास के दीर्घ परिणामी सूत्र भी दिये।

मुझे अक्सर कई बहिनें पूछती हैं कि आप दिन भर क्या करती होंगी? कैसे समय व्यतीत करती होंगी? बड़े सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में पूछती हैं। मैं उनसे कहती हूँ मेरे आराध्यदेव मेरे गुरुदेव ने मुझे प्रातः काल से रात्रि सोने तक की दिनचर्या में जीवन जीने की ऐसी कला सिखाई है कि एक पूरा दिन भी छोटा पड़ जाता है। मेरे पास एकाकीपन को पास फटकने की गुंजाइश नहीं है। यह उत्तर सुनकर बहिनें आश्चर्य चकित हो जाती हैं। मेरे जीवन के खिवैया, जीवन संवारने वाले वाणी के जादूगर को श्रद्धा सुमन देते हुए—

'धरती कागज करूं, लेखन करूं वनराय।
सात समुद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा नहीं जाये।'

स्वयं को सुनने वाले, स्वयं को देखने वाले, स्वयं को जानने वाले अन्तर्मुखी जड़ और चैतन्य के विज्ञाता, मेरे जीवन के निर्माता, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति, रत्नवंश के शिरोमणि आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, युग-द्रष्टा, इतिहास मार्तण्ड, सामायिक-स्वाध्याय के प्रणेता ऐसे अद्भुत एवं विरल योगी के चरणों में मेरा कोटिशः वन्दन, अभिनंदन।

• श्रद्धा का कल्पवृक्ष

यह घटना सन् १९६९ की है। आचार्यप्रवर का विक्रम सम्वत्२०२६ का चातुर्मास नागौर में था। यह घटना बम्ब परिवार की है। श्री अनूपचंदजी साहब बम्ब के छोटे भाई श्री सिरहमल जी साहब बम्ब आचार्य प्रवर के अनन्य भक्त थे। उसी समय महासती जी श्री सायरकंवरजी म.सा. एवं महासतीश्री मैनासुन्दरीजी म.सा. आदि ठाणा का वि. संवत् २०२६का चातुर्मास भोपालगढ (बड़लू) में था। बम्ब साहब अपनी बहिन तपस्विनी श्रीमती लाड़देवी बोथरा, धर्मपत्नी श्रीमती सम्पत देवी बम्ब, पुत्र श्री पदम बाबू और श्री कमल बाबू को साथ लेकर कार से मारवाड़ की ओर

भोपालगढ महासती जी के दर्शनार्थ गये। वहाँ दिनभर सेवा करने के बाद रात को आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ रवाना हो रहे थे, तभी महासतियाँ जी ने मना किया कि रात को यहीं पर आराम करो और सुबह नागौर दया पाल लेना। मगर दर्शनों की उत्कंठा ने रात को ही रवाना कर दिया। सभी लोग रात को ही कार द्वारा भोपालगढ़ से नागौर के लिये रवाना हुए। अचानक ध्यान आया कि रास्ता भटक गए हैं और कार बजाय सड़क के चलने के घास और मिट्टी पर चल रही है। चारों ओर देखने पर कहीं पर भी सड़क दिखाई नहीं दे रही थी। उस भयानक काली रात में जंगल में औरतों व बच्चों के साथ बम्ब साहब को भी चिन्ता होना स्वाभाविक था। उन्होंने गुरु हस्ती का चिन्तन किया। कार के चलते हुये सामने आगे साइकिल पर लाल साफा बांधे एक व्यक्ति दिखाई दिया। साइकिल सवार के पास गाडी धीरे कर बम्ब साहब ने रास्ता पूछा। साइकिल रोक कर उसने कहा कि भाई ! आप गलत चल रहे हैं। रास्ता भटक गए हैं। यह रास्ता इधर नहीं है। हाथ से इशारा करते हुये उसने कहा कि रास्ता उधर है और वह व्यक्ति वहाँ से रवाना हो गया। गाड़ी तेज कर उस व्यक्ति को इधर-उधर देखा। पर वह व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। फिर कार को वापस घुमाया कि सड़क दिखाई दी। सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और सबके मुख पर एक अजीब खुशी छा गयी। उस कहने वाले व्यक्ति को ढूंढते रह गए, मगर वह कहीं पर भी दिखाई नहीं दिया। रात को नागौर पहुँच गये।

-३, मेरु पैलेस होटल के पास,
सवाई रामसिंह रोड, जयपुर (राज.)

■

नमन

• डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज साहब को मैंने अपने बचपन से देखा , जाना और उनके आशीर्वचन की मंगलमय शीतल छाया में शैशव, कैशौर्य, यौवन और प्रौढ़ावस्था के हर चरण में उनसे मुझे उद्बोधन मिला, प्रेरणा मिली। मेरे पूज्य दादाजी के समय से मैंने उनके पास जाना शुरु किया। नवकार मंत्र का प्रतिदिन अपने नित्य नैमित्तिक कार्यक्रम में नियमित रूप से जप करने का व्रत उन्होंने ही मुझे दिया। मैंने संस्कृत का अध्ययन बचपन में ही शुरु किया था। वे मुझसे सुभाषित सुनते और प्रोत्साहन देते। परिवार के सब सदस्यों को धर्म ध्यान फरमाते। संस्कृत के साथ प्राकृत का अभ्यास करने का सुझाव देते। मैंने एक बार कहा कि मुझे वैष्णव परम्परा में भी गहरी रुचि है, तो उन्होंने अनेकान्त के संदर्भ में एक परिमार्जित दृष्टि दी।

उन्होंने मुझे बताया कि श्रमण-परम्परा आर्य संस्कृति की दो शाखाओं में से एक है और वैदिक संस्कृति के समानान्तर अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। वे ज्ञान के ज्योतिपुंज थे, साधना और तपस्या के कीर्तिमान थे, प्रेरणा के स्रोत थे। वे एक शिक्षक, गुरु और मार्गदर्शक थे, अहिंसापरक एवं अनेकान्तवादी क्षमाशील श्रमण-परम्परा के प्रामाणिक एवं मानक युगपुरुष थे। उनकी पुण्य-स्मृति को, उनके कृतित्व को, उनके जीवन-दृष्टान्त को मेरा शत-शत नमन।

१६ मार्च, १९९८

४-एफ, व्हाइट हाउस, १०-भगवानदास रोड, नई दिल्ली ११०००१

■

आलोक पुंज गुरुदेव

• श्री आसूलाल संचेती

गुरुदेव परम पूजनीय श्री गजेन्द्राचार्य एक आलोक पुंज के समान थे। ऐसा आलोक पुंज जो बाह्य आलोक के साथ-साथ आभ्यंतर आलोक भी प्रसारित करता है। इसीलिए वे अनुपम थे, अप्रतिम थे। गुरुदेव की उपस्थिति के फलस्वरूप जहाँ वातावरण में करुणा, शान्ति, अहिंसा व मैत्री का प्रकाश प्रसारित होता, वहाँ आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति की भी प्रगति होती थी। इस प्रकार अनेकानेक प्राणियों या व्यक्तियों को आत्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने का सहारा या सम्बल मिलता था। जो मैंने स्वयं देखा और अनुभव किया उस पर आधारित कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा। विज्ञ पाठक विस्तारभय के कारण संक्षिप्त विवरण को ही यथेष्ट समझें।

• सामिष भोजन नहीं बना

गुरुदेव का सन् १९५८ में दिल्ली में चातुर्मास था और मेरा भी उत्तर रेलवे के मकान में निवास था। गुरुदेव का कृपा कर वहाँ पधारना हुआ। कुछ संतों की चिकित्सा के लिये मैंने उस गृह में विराजने का निवेदन किया। वहाँ पर एक प्रतिकूलता थी। आस पास के बंगलों में जैनेतर सामिषभोजी परिवार रहते थे, इसके चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर थे। सत्य भी था कि वे ऐसे सामिष भोजी थे कि निरामिष व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकता। वर्णन तो दूर, किन्तु जब उन सामिष बन्धुओं को ज्ञात हुआ कि गुरुदेव व जैन संत ऐसे स्थान पर निवास की विचारणा भी नहीं कर सकते तो उन्होंने स्वयं आश्वासन दिया कि जब तक संत मुनिमण्डल वहाँ विराजेगा, वहाँ सामिष भोजन नहीं बनेगा और यही हुआ। वहाँ निरामिष आहार ही बना और जब तक सन्त वहाँ विराजे, उन जैनेतर लोगों ने भी सन्त-सेवा का लाभ लिया। इस प्रकार वहाँ कुछ दिन ही सही, महती जीव हिंसा रुकी और शान्ति व करुणा का संचरण हुआ।

• भक्त कृपालु

सन् १९६८-१९७१ तक मेरी नियुक्ति पश्चिम रेलवे क्षेत्र में अजमेर में थी, क्योंकि रेलवे का मकान शहर के बाहर मुख्य मार्ग के समीप था, गुरुदेव ने उसको एक से अधिक बार विराज कर पवित्र किया। इसमें प्रकटत: कारण मेरी दिवंगत धर्मपत्नी पर गुरुदेव की कृपा दृष्टि और उसका भी विशेष आग्रह था, किन्तु मुझे स्पष्ट अनुभव हुआ कि गुरुदेव मुझे आध्यात्मिक मार्ग पर लाना चाहते थे, अग्रसर कर रहे थे। न जाने गुरुदेव ने कैसे मुझे अपनी कृपा दृष्टि के लिए चुना था (यह अनुभव मेरे अनेक मित्रों को हुआ, जिनका जीवन-निर्माण गुरुदेव द्वारा हुआ)

"आंख तादर की नशेमन पर रही परवाज में"

जिस प्रकार पक्षी दूर गगन में ऊँचे उड़ते हुए भी अपने नीड पर एवं शिशुओं पर दृष्टि रखता है, गुरुदेव भी अपने भक्तों का सतत ध्यान रखते थे, उनका मार्गदर्शन करते रहते थे। अस्तु अजमेर प्रवास के कुछ बिन्दु सामाजिक एवं व्यक्तिगत दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहे।

• जीवन निर्माता

एक दिन गुरुदेव ने मुझे प्रश्नवाचक मुद्रा में पूछा - 'आसूलाल ! उत्कोच ? प्रथमत: मैं समझ नहीं सका, किन्तु बाद में समझने पर मैंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो गुरुदेव ने कहा त्याग करो, जीवन पर्यंत किसी प्रकार की रिश्वत नहीं लेना। बस यही व्रत सेवाकाल में मेरा सम्बल बना और मैं मानो काजल की कोठरी से साफ निष्कलंक निकल गया। यद्यपि कई प्रकार के प्रलोभनों , धमकियों, उपालम्भों से दो चार करता रहा - साथ ही ज्यों-ज्यों मेरे इस व्रत के बारे में जानकारी फैली तो मेरी और मेरी लेखनी की विश्वसनीयता भी बढ़ी सो अलग–

मैं मैकदे की राह से होकर गुजर गया।
वरना सफर हयात का कितना तवील था।

साथ - साथ ही गुरुदेव अपने गुरुमंत्र का जादू मुझ पर भी डालते रहे और सामायिक स्वाध्याय की प्रेरणा देते रहे। पहले पाँच सामायिक मासिक से प्रारम्भ कर के धीरे धीरे नौकरी में तरक्की के साथ इस तरफ भी तरक्की करने का उद्बोधन दिया। फिर जैन आगम के स्वाध्याय का प्रोत्साहन दिया। क्योंकि रेलवे में अंग्रेजी भाषा का प्रचलन था। आगमों के अंग्रेजी अनुवादों के अध्ययन का मार्गदर्शन दिया और मैंने सर्वप्रथम हरमैन जैकोबी द्वारा अनूदित आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन आदि का परिचय प्राप्त किया। साथ ही मेरे पुत्रों को भी इस अध्ययन में आकर्षण एवं आनन्द का अनुभव हुआ। इस अनन्त उपकार से मुझे आगे जाकर जो उपलब्धियाँ हुई उनका जिक्र इस लेख के अंत में द्रष्टव्य है।

अजमेर में रेलवे के दफ्तरों में करीब १००० व्यक्ति कार्यरत थे। अधिकांश अजैन थे जो जैन मुनियों के क्रियाकलाप से अपरिचित थे , किन्तु गुरुदेव के सामीप्य से वे कर्मचारी जैन मार्ग से परिचित ही नहीं लाभान्वित भी हुए। क्योंकि गुरुदेव ने अपनी धीर गंभीर प्रसन्न शैली में उनका इस प्रकार का शंका-समाधान किया कि उनके हृदय में श्रद्धा का बीजारोपण हो गया। फलस्वरूप रेलवे के कैंटीन हाल में गुरुदेव के प्रवचन का आयोजन हुआ। दिन में ३ बजे ग्रीष्म ऋतु अपने उत्कर्ष पर और हाल ठसाठस भरा हुआ था। पंखों के नीचे तो लोग गर्मी से त्रस्त थे। फिर गुरुदेव के पदार्पण के साथ पंखे बंद और कुछ क्षणों की खलबली, किन्तु ज्यों ही गुरुदेव ने अमृत वाणी की वर्षा की तो एकदम अपार शांति। संक्षेप में वह प्रवचन सभा चिरस्मरणीय बन गई और आचार्यप्रवर पूज्य हीराचंद जी महाराज साहब जो वहाँ उपस्थित थे, अभी तक उसका स्मरण करते हैं।

• सबको जाना है

इस प्रकार की अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ हैं, किन्तु नाविक के तीर की भांति प्रभावपूर्ण हैं। १९८१ में मेरी माताश्री के देहान्त ने मेरे पिताश्री को अत्यंत विचलित-विक्षिप्त सा कर दिया। ऐसे में गुरुदेव के दर्शन और उनकी शरण में जाना ही उचित प्रतीत हुआ। पिता श्री का मानसिक सन्तुलन बिगड़ सा गया था। उन्हें बार-बार मेरी माता की याद सताती थी। वे गुरुदेव के पास गए। दु:ख का कारण गुरुदेव को पता था। गुरुदेव ने पिताश्री को ऐसा मन्त्र दिया, जिसे प्राप्त कर पिता श्री का जीवन बदल गया। जब मेरे पिता श्री दर्शन कर लौटे तो वे एक भिन्न व्यक्ति थे। न वे दु:खी थे न चिन्तित। सर्वथा सामान्य। कारण उन्हीं के शब्दों में गुरुदेव के श्री मुख से उच्चरित मंत्र-"सबको जाना है बालकों को, युवाओं को, सबको एक दिन जाना है। यह कोई अनहोनी नहीं न चिन्ता की बात।" उनके जीवन का एक सूत्र बन गया। फिर तो जब भी उनको चिन्ता सताती तो उनकी जबान पर यही मंत्र

होता - "सबको जाना है , सबको जाना है।" ऐसा लगता मानो यह सत्य उनके हृदयपटल पर अंकित हो गया हो। यह भी लिख दूं कि ऐसी ही परिस्थिति में यही मंत्र मेरा भी सहारा बना। विज्ञजन यह कहें कि इसमें नवीनता क्या है, यह तो चिरंतन सत्य है, किन्तु ये ही चिरंतन सत्य जब महापुरुषों के मुखारविंद से प्रकट होते हैं तो वे प्रभावी बन जाते हैं, असर करते हैं। क्योंकि उनके पीछे त्याग, तप और साधना होती है-

दिल से जो बात निकलती है असर रखती है,
पर न सही ताकते परवाज़ मगर रखती है॥

- स्वाध्याय की प्रेरणा

एक बार गुरुदेव के सामने मेरे मित्रों ने ही मेरे खिलाफ शिकायत कर दी - "आसूलाल सामाजिक कार्यों में भाग नही लेता, सदा पीछे रहता है।" आरोप सत्य भी था। मैं सामाजिक कार्यों में अधिक दिलचस्पी न लेकर एकांत में पुस्तकों में अधिक समय लगाता रहा हूँ। मित्रबन्धु मुझे सामाजिक कार्यों से जोड़ने के असफल प्रयास भी करते रहते थे और उनका अन्तिम प्रयास था गुरुदेव के समक्ष मेरे प्रति शिकायत । किन्तु गुरुदेव ने समाधान कर दिया--"यह तो स्वाध्याय करता है, इसे स्वाध्याय में लगे रहने दो ।" इस प्रकार मेरे लिए लक्ष्य निश्चित हो गया--स्वाध्याय और मार्ग भी प्रशस्त हो गया। इस प्रकार गुरुदेव अपने भक्तों की पात्रता को जानते थे, पहचानते थे और यथायोग्य मार्ग निर्धारित करते थे-

किसी की बेकितज्जली हम पर न नूर पर।
देते हैं वदा जर्फे कदाख्वार देखकर॥

और फिर गुरुदेव यद्यपि दूरस्थ प्रदेशों में विराजते-जैसे दक्षिण भारत में, फिर भी उनके संदेश प्रेरणा प्रसाद के रूप में प्राप्त होते रहते और मेरी स्वाध्याय के क्षेत्र में प्रगति के बारे में प्रश्न मिलते रहते।

जो दूर है उनको उपहार देना याद करना बड़ी बात है।
वरना प्रत्येक वृक्ष अपने पैरों पर तो फलों को खुद गिराता ही है।

इसी संदर्भ में जोधपुर चातुर्मास में गुरुदेव ने सूत्रकृतांग का अंग्रेजी अनुवाद करने की प्रेरणा दी। आदेश था श्रावकवर पारख जौहरी मल जी साहब हिन्दी में अन्वय-अनुवाद करें और मै अंग्रेजी में। कार्य दुस्तर था, क्योंकि मैं संस्कृत-प्राकृत से एकदम अनभिज्ञ और आगम की भाषा उसमें सूत्रकृतांग की - बुज्झिज्ज तिउट्टेजा बंधणं परिजाणिया - २५०० वर्ष पूर्व की अत्यन्त प्राचीन, सारगर्भित एवं दुरूह। किन्तु गुरुदेव ने एक-एक गाथा का शाब्दिक अर्थ ही नहीं बताया, बल्कि उसका भाव व तात्पर्य भी और जिस प्रकार कोई बालक को अंगुलि पकड़कर चला देता है, वैसे ही कई गाथाओं का अंग्रेजी अनुवाद हुआ जो कुछ समय पूर्व जिनवाणी में सम्पादक डॉ. धर्मचन्द जी के विवेचन के साथ क्रमबद्ध प्रकाशित हुआ हैं।

इसी शृंखला में गुरुकृपा से मैं सरल अंग्रेजी में जैनधर्म का परिचय देने वाली दो पुस्तकें लिख सका। फर्स्ट स्टेप्स ऑफ जैनिज्म के प्रथम भाग में जैनधर्म के तात्त्विक सूत्र का परिचय देने का प्रयास है। इसके अन्तर्गत छः द्रव्य, सात या नौ तत्त्व, तीन रत्न, तीन लक्षण और पंच परमेष्ठी का संक्षिप्त विवरण है। गुरुदेव ने जोधपुर आते हुए बनाड में इसका विवरण भी सुना और मुझे धन्य किया कई अंग्रेजी जानने वाले श्रावकों को पुस्तक अपने कर कमलों से देकर। यह गुरुकृपा का ही फल है कि पुस्तक देश-विदेश में स्वीकार हुई है। बाद में पुस्तक का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ जिसमें कर्मवाद, अनेकांतवाद, गुणस्थान, समवाय आदि का प्रथम परिचय है। पाँच समवाय के बारे में विशेष निवेदन है कि इस विषयांतर्गत काल, स्वभाव, नियति, पुराकृत कर्म और पुरुषार्थ पर गुरुदेव ने स्वयं

विस्तार से प्रकाश डाला।

कहाँ तक लिखें, गुरुदेव की अनुकंपा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। आज भी उसी आलोक पुंज के प्रकाश में जीवन का शेष भाग स्वाध्याय के सहारे सुख-दुःख-समभाव में व्यतीत हो, ऐसी प्रार्थना के साथ विरमता हूँ।

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो।
न जाने जिन्दगी की किस, गली में शाम हो जाए॥

मार्च, १९९८

• डी-१२१, शास्त्रीनगर, जोधपुर

■

सच्चे निस्पृही एवं उदारहृदय आचार्य श्री

• श्री सम्पत राज डोसी

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. की आत्मीयता एवं कृपा से मैं आज भी अभिभूत हूँ। आपकी प्रेरणा से सन् १९७० में स्वाध्याय संघ से जुड़ा। इस कार्य में मुझे स्वाध्यायियों से सम्पर्क का अवसर मिला तथा अनेक नये अनुभव हुए। स्वाध्याय-संघ के संयोजक के रूप में कार्य करते हुए आचार्यप्रवर के निकट सान्निध्य से मैंने यह अनुभव किया कि स्वाध्याय आचार्यप्रवर की प्रेरणा का मुख्य विषय होने पर भी उन्होंने स्वाध्याय-संघ की गतिविधियों के संचालन में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। चाहे क्षेत्रों की मांगों का विषय हो, चाहे स्वाध्यायियों से सम्पर्क करना हो, स्वाध्यायियों के लिए आवश्यक साहित्य का प्रकाशन कराना हो अथवा स्वाध्यायी-शिविरों का आयोजन करना हो, आचार्यप्रवर ने कभी किसी प्रकार की प्रेरणा नहीं की। आचार्य प्रवर की इस प्रपंचविहीनता के कारण स्वाध्याय-संघ का कार्य साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर संचालित हो सका। स्वाध्याय संघ की प्रवृत्ति की आवश्यकता और उपयोगिता का अनुभव करते हुए सारे जैन समाज ने इस प्रवृत्ति को अपनाया और एक - एक करके अनेक स्वाध्याय-संघ खुलते गए तथा स्वाध्याय-संघों की गूंज सारे भारत में फैल गई। नये स्वाध्याय-संघों में स्वाध्याय-संघ गुलाबपुरा और स्वाध्याय संघ जोधपुर के अनुभवी स्वाध्यायियों को अपनी ओर खींचने की प्रवृत्ति बढ़ी। स्वाध्याय-संघ जोधपुर के अनेक अनुभवी स्वाध्यायी नये - नये स्वाध्याय-संघों में जाने लगे, परन्तु आचार्यप्रवर ने कभी मुझसे यह नहीं कहा कि डोसी यह क्या हो रहा है? इसके विपरीत पीपाड़ के चातुर्मास में एक बार स्वाध्यायी शिविर में आचार्य श्री ने मुझे तथा सभी स्वाध्यायियों को यह नियम दिलाया कि किसी भी अन्य स्वाध्याय-संघ के स्वाध्यायी को इधर खींचने का प्रयास नहीं करें। हो सके उतनी पूर्ति नये स्वाध्यायी बनाकर ही करें। यह उस महापुरुष की निस्पृहता और उदारता का एक आदर्श क्रियात्मक रूप था।

श्रावण अथवा भाद्रपद माह दो होने पर कई क्षेत्रों में द्वितीय श्रावण तथा कई क्षेत्रों में भाद्रपद में पर्युषण मनाने का प्रसंग आया। तब स्वाध्याय-संघ द्वारा दोनों पर्युषणों में स्वाध्यायी भेजे गए। इसी प्रकार कभी संवत्सरी को चतुर्थी अथवा पंचमी का भेद हो जाता तो बिना किसी आग्रह के क्षेत्र विशेष के श्रावक संघ की भावना के अनुरूप चतुर्थी या पंचमी को स्वाध्यायियों द्वारा संवत्सरी मनायी गयी। इस प्रकार के विवादास्पद विषयों में नीति-निर्देश हम उसी महापुरुष की उदारता से लेने में समर्थ हुए। स्वाध्यायियों के प्रति आचार्यप्रवर का सहज स्नेह था। वे उन्हें स्वाध्याय की प्रवृत्ति को अपनाने के साथ जीवन में साधना को भी स्थान देने की प्रेरणा करते थे। स्वाध्याय की प्रवृति को असाम्प्रदायिक रीति से प्रमुखता देने के कारण आचार्य श्री स्वाध्याय के पर्यायवाची समझे जाने लगे। जब भी स्वाध्याय शब्द का उच्चारण सुना जाता, आचार्य श्री की छवि मस्तिष्क पर अंकित हो जाती। सच्ची निस्पृहता एवं उदारता के धनी उन आचार्यप्रवर को मेरा शत शत वन्दन।

–संगीता साड़ीज, डागा बाजार, जोधपुर

■

आश्चर्यों का आश्चर्य

• श्री कस्तूरचंद सी. बाफणा

जन्म से लेकर स्वर्गवास तक आचार्य हस्ती के जीवन पर दृष्टिपात करें तो लगता है आचार्यश्री का जीवन आश्चर्यों का आश्चर्य है। उनके मुखारविन्द से निकला हर शब्द, मंत्र व उनके द्वारा किया गया हर काम चमत्कार है। दस साल की लघु वय्र में पंच महाव्रत धारण करना कम आश्चर्य की बात नहीं। संयम लेते ही शास्त्रीय ज्ञान हृदयंगम कर तदनुसार अपने जीवन को ढालना 'समयं गोयम मा पमायए' 'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं' ये पंक्तियां न केवल पढ़ी, सोची, समझी, बल्कि आजीवन इनका निरतिचार रूप से पालन किया। किसी भी अवस्था, यहां तक कि बीमारी अवस्था में भी प्रमाद को पास में नहीं आने दिया। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक बहुत ही व्यस्त व नियमित कार्यक्रम रहता था। कोई कितना ही बड़ा आदमी आता, तो भी अपने कार्यक्रम में हेरफेर या ढिलाई कभी नहीं की। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने डिग्रियाँ नहीं ली, पर डिग्रियाँ प्राप्त करने के इच्छुक इनके पास आते थे ज्ञान-प्राप्ति के लिए। एक बार शेखेकाल भोपालगढ में विराजते हुए व्याख्यान का विषय 'विनय' लिया, जिसका विवेचन निरंतर पन्द्रह दिनों तक ऐसा किया कि विद्यालय के शिक्षक आश्चर्यचकित हो गए।

हिन्दी, संस्कृत व प्राकृत भाषा के प्रकांड विद्वान थे गुरुवर। पन्द्रह वर्ष की लघु अवस्था में गुरु द्वारा आचार्य मनोनीत होना व बीस वर्ष की अल्पायु में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होना विश्व कीर्तिमान था। इकसठ साल तक जिस कुशलता से संघ का संचालन किया अपने आप में एक रेकार्ड है। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में संयम की मस्ती को बरकरार रखा। अपनी संयम साधना की तेजस्विता दिन-प्रतिदिन बढ़ाई। अनेकों के जीवन को बनाकर उन्हें रज से रजत, कंकर से शंकर व पतित से पावन बनाया। कइयों के जीवन को बचाया।

वे परम्परा के प्रति बहुत निष्ठावान थे। पूर्वाचार्यों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। मौन-साधना के प्रबल पक्षधर थे। फलस्वरूप उन्हें वचनसिद्धि प्राप्त थी। जीवन भर अल्पभोजी व अल्पभाषी रहे। कद छोटा, पर पद मोटा था। लघुता में प्रभुता छिपी थी। अपने नाम का प्रदर्शन कभी नहीं किया उन्होंने। हर भक्त गुणगान करता, पर अभिमान छू तक नहीं पाया। नर रत्नों के पारखी थे। किसमें कितनी व क्या योग्यता है, समझने में देर नहीं लगती थी उन्हें।

उपकारी गुरुदेव – सन् १९८३-८४ की बात अकस्मात् मेरे पूरे परिवार पर भारी देवी प्रकोप । कपड़े फटना, दागीने व रुपये गायब हो जाना, भाइयों में अनबन, घर में पूरी अशांति का वातावरण। पुत्रवधू जो भी साड़ी पहनती, पहनते ही फट जाती। परिवार में शांति व चैन का नाम नहीं। पागल सा हो गया था मैं। शरीर में जान होते हुए भी बेजान। सोचने समझने की शक्ति नहीं रही। मेरा पोता नया बच्चा, पहले दिन घर आते ही उसके गले में से सोने की चैन गायब। उसके शरीर को काटा जा रहा है, बच्चा बे हिसाब रो रहा है। ऐसी स्थिति में मुझ पर क्या बीती, मैं ही जानता हूँ।

सन् १९८५ का भोपालगढ में चातुर्मास । घर में चल रही अशांति से मैं व्यथित था। एक दिन मुनि श्री हीराचन्द्रजी 'वर्तमान आचार्य श्री' को अपनी कथा सुनायी। उन्होंने कहा संकट मोचक के रहते क्यों भुगत रहे हो, आचार्य श्री से बात कर लो। दूसरे दिन सुबह आचार्य श्री एक कमरे में स्वाध्याय कर रहे थे। हिम्मत नहीं हो रही थी उनके पास जाने की। कैसे जाऊँ ? क्या कहूँ? परोक्ष शक्ति आगे बढ़ने नहीं दे रही थी मुझे। बहुत साहस

जुटाकर कमरे का दरवाजा खोला। आचार्यश्री स्वाध्याय में मग्न थे। वंदना अर्ज कर अत्यन्त दर्द के साथ बोला - गुरुदेव ! मैं बहुत कष्ट में हूँ आप मेरा कष्ट निवारण करें। कुछ नहीं बोलते हुए सिर्फ मेरे सामने देखा। मैं कमरे से बाहर निकल आया। मेरी अतरंग व्यथा व कष्ट को जान गए थे। उसी दिन मेरे कष्ट निवारण की बात मन में ठानी। उन्होंने क्या किया, मुझे कुछ नहीं मालूम, पर कष्ट निवारण कर दिया। वह देवी प्रकोप जिससे मैं दो साल से ज्यादा समय तक पीड़ित रहा, नानाविध उपायों से भी कुछ नहीं हो सका। ऐसा भयंकर देवी प्रकोप साधनाशील व्यक्तित्व के प्रताप से ही शांत हो सकता है। उन्होंने मुझे और मेरे परिवार को जीवनदान दिया। सचमुच इस जग का गरल पीने वाले महादेव थे वे। जन्म-जन्मों तक मैं उनके उपकार के प्रति ऋणी रहूँगा।

अन्तर्मन के ज्ञाता – अंतर्मन के भावों को जानने की अद्भुत क्षमता थी उनमें। आचार्यश्री भोपालगढ पधारे। करीब सप्ताह भर ठहरने के बाद एक दिन मुझे कहा कि कोसाना वालों को संदेश दे देना। मैंने सोचा कि कोसाना वालों को संदेश दे दिया तो वे लोग विनति कर आचार्यश्री को कोसाना जरूर लेकर जायेंगे। अतः संदेश न दूँगा तो वे लोग विनति हेतु नहीं आयेंगे और आचार्यश्री भोपालगढ़ ज्यादा रुक सकेंगे। यह बात मैंने किसी को नहीं बतलायी। दूसरे दिन सुबह दर्शन हेतु गया तो जाते ही आचार्यश्री ने कहा—भावनावश कोसानावालों को सन्देश नहीं दिया। घर का अफसर होता है तो ऊपर की फाइल नीचे और नीचे की फाइल ऊपर कर देता है। मुझे आश्चर्य लगा कि मेरे मन की भावना उन्होंने कैसे जानी?

कृपादृष्टि – विद्यालय के पदाधिकारियों के चुनाव की मीटिंग में मुझे कोषाध्यक्ष मनोनीत किया गया। मैंने सोचा, मुझे बिल्कुल अनुभव नहीं है। मैं यह काम कैसे संभाल पाऊंगा? जिम्मेदारी मिलने पर विपरीत परिस्थितियों में भी कोषाध्यक्ष व मंत्री के रूप में पन्द्रह साल तक जो कार्य सेवा मुझसे हुई , मैं आचार्यश्री की कृपा ही मानता हूँ। विद्यालय पर गुरुदेव की परभ कृपा थी। आचार्यश्री फरमाते थे कि विद्यालय आदमी बनाने की मशीन है, उन्हीं की कृपा के कारण अनेक उतार चढ़ाव आने के बावजूद यह विद्यालय सुदीर्घकाल से गतिमान है। गुरुदेव के जहाँ भी चरण पड़ जाते, वह स्थान धन्य हो जाता। जंगल में भी मंगल हो जाता। टूटे दिल जुड़ जाते।

छोटी सी लेखनी की क्या ताकत कि असीम आत्मशक्ति के धारी गुरुदेव के गुणों को लेखनी बद्ध कर सके, जितना लिखा जाय थोड़ा है। क्योंकि उनका हर शब्द मंत्र व हर कार्य चमत्कार था।

–नयन तारा, सुभाष चौक, जलगाँव

■

तत्त्वज्ञाता महान् योगी : आचार्य श्री

• श्री ऋषभराज बाफणा

मनुष्याणां, सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वत:

हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य प्रभु-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है । उन हजार-हजारों यत्न करने वाले योगियों में से कोई ही तत्त्व प्राप्त करने में सफल होता है।

इस श्लोक को पढ़कर मुझे एकदम पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन्त की याद आ गई। वे लाखों में अपनी तरह के एक ही महापुरुष थे, जिन्होंने अपने मूल लक्ष्य को कभी भी विस्मृत नहीं किया।

मेरे पूज्य पिताजी श्री जालमचंदजी सा. को आचार्य भगवन्त के सान्निध्य के कई अवसर मिले। वे जैन रत्न विद्यालय के करीब २५ साल तक मंत्री रहे। गांव के प्रतिकूल वातावरण के संबंध में कभी आचार्य भगवन्त की सेवा में अर्ज करते तो फरमाते कि अपनी सेवा नि:स्वार्थ होनी चाहिए, फिर कोई अगर गाली भी निकाले, हमें सहजता से सहेज लेना चाहिये। तभी हमें उस कार्य में सफलता मिलती है।

पंडितजी श्री दु:खमोचन जी झा चातुर्मास के दौरान भोपालगढ़ विराजते। वे आचार्य श्री को पढ़ाया करते। शाम को प्राय: बड़े पिताजी सा. श्री जोगीदासजी, पिताजी सा. श्री जालमचंदजी पंडितजी के पास अक्सर जाया करते। उस समय पंडितजी सा. फरमाते कि आचार्य श्री उनका (पंडितजी का) आदरभाव रखते हैं तथा साथ में यह भी कहते कि आचार्य श्री बहुत ही विलक्षण प्रतिभावान हैं।

अध्ययन में आचार्य भगवन्त की अनन्य रुचि थी। सोते समय अगल-बगल में छोटे-छोटे कंकर रख कर सोते, करवट बदलते ही कंकरों की चुभन से नींद खुल जाती और उठकर बैठ जाते व दिनभर में जो पढ़ा उसको पुन:-पुन: याद करते। ऐसा पिताजी सा. ने मुझे बताया।

भोपालगढ़ रत्नवंश का एकछत्र क्षेत्र रहा है। उस समय भोपालगढ़ में अन्यान्य सम्प्रदायों के मुनिराजों के चातुर्मास होते रहते। आचार्य भगवन्त ने कभी-भी सम्प्रदायवाद का पोषण नहीं किया। सम्प्रदाय को वे आत्मोत्थान का एक साधन मानते। स्वयं हमेशा गुणीजनों का आदर करते तथा हमें भी यही करने के लिये प्रोत्साहित करते। हमेशा यही फरमाते कि गुण के ग्राहक बनो, त्यागियों का हमेशा हृदय से आदर करो।

अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी आत्म-साधना के धनी, उस नगरी के भूप जहाँ छाया-धूप नहीं होती, जिसने भेद विज्ञान से भवभव के बन्धन काट दिये, उस सत्पुरुष के लिये किसी के मन की बात जान लेना, किसी विशेष घटना की पूर्व सूचना मिल जाना, किसी के संकट का पूर्वाभास हो जाना मामूली बात थी।

पाली से विहार करके गुरुदेव थोड़े समय के लिये सोजत में विराजे। एक रात फरमाया—"किसी ने कहा है कि समुद्र में एक बूँद रहे तो क्या, नहीं रहे तो क्या ! दूसरे दिन फिर फरमाया कि ऐसा रामकृष्ण परमहंस ने कहा था। मेरे मन में उस समय यही विचार कौंधा कि आचार्य भगवन्त 'मैं' को 'है' में विलीन करने का निश्चय कर रहे हैं। आगे जाकर यही विचार संथारे के रूप में सार्थक हुआ।

संथारे के समय करीब एक महीना निमाज में गुरुदेव के सान्निध्य में बीता। संथारे के समय उनकी समाधि के बारे में आचार्य देवनन्दी (छठी शताब्दी) द्वारा रचित श्लोक लिखता हुआ उस महान् आत्मा को आत्मभाव के शत-शत प्रणाम करता हुआ विराम लेता हूँ।

किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥

ध्यान में लगा हुआ योगी यह क्या है ? कैसा है ? किसका है ? क्यो हैं? कहाँ है ? इत्यादि विकल्पों को न करते हुए अपने शरीर को भी नहीं जानता।

क्या कैसा किसका, किसमें, कहां, यह आतम राम ।
तज विकल्प निज देह न जाने, योगी निज विश्राम ।।

–c/o सुदर्शन पल्सेज
H2MTDC, जलगांव

कैसे भूलूँ ?

• श्री जतनराज मेहता

युग मनीषी, तपः पूत, अप्रमत्त, योगविभूति आप्तपुरुष, संघनायक, कुशल संचालक पूज्य गुरुदेव १००८ आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. एक युग पुरुष थे। आपश्री के प्रथम दर्शन से ही मेरा मन आपके प्रति समर्पित हो गया। अन्तर का तार एकाकार हो गया, झंकृत हो गया। आपके आप्त वचनों से मेरी सूक्ष्म शक्तियाँ जागृत हो उठीं।

वि.सं. २००८ से २०४८ तक मैं गुरुदेव की सेवा में आता-जाता रहा । इस चालीस वर्ष की लम्बी जीवन-यात्रा में आचार्य श्री के सान्निध्य में बहुत सी विशेष घटनाएँ घटीं। उनमें से कुछ घटनाओं को संस्मरण के झरोखे से लिखने का प्रयास किया है।

आचार्य श्री के जीवन का प्रत्येक क्षण ही संस्मरण था, फिर भी सिन्धु को बिन्दु में दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। कहीं कुछ गलती हो तो सुज्ञ पाठक क्षमा करें।

• प्रभु-भक्ति में तल्लीनता

प्रभु को प्राप्त करने की पगडंडी जो गुरुदेव के पास थी, वैसी शक्ति विरल विभूतियों के पास होती है। आपका ब्रह्मवाद अद्‌भुत था। प्रभु के प्रति उन्मनी शक्ति आपकी प्रमुख विशेषता थी। पूज्य गुरुदेव के रोम-रोम में ब्रह्म का भाव छाया रहता था। अतः मन्द स्वर स्वरलहरी लेकर निकलता था। आप एक अद्‌भुत योगी थे। अनेक बार पूज्य गुरुदेव को (प्रभुभक्ति के) भावावेग का ज्वर चढ़ जाता। वह समय पूज्य गुरुदेव के प्रभु के सामीप्य का होता, और ऐसा आप श्री के जीवन में अनेक बार हुआ। उस समय वे तन्द्रावत् हो जाते और किसी तरह का भान नहीं रहता। प्रभु में खोए-खोए से पूज्य गुरुदेव मन ही मन हृदय में प्रभु का अमृतपान करते रहते और यह स्थिति उनकी सहज ही हो जाती। नन्दी सूत्र गुणते-गुणते पूज्य गुरुदेव की स्थिति योगमय हो जाती और उस समय पूज्य गुरुदेव प्रभु के साथ एकमेक हो जाते।

प्रभु के साथ आत्मा की ऊर्जस्विता और अन्तश्चेतना के स्वरों के साथ तदाकार हो जाना, पूज्य गुरुदेव के दैनिक जीवन में प्रायः होता रहता था। जब कभी एकान्त में प्रभु का ध्यान करते तब उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्मय हो उठती। पूज्य गुरुदेव को एकान्त बहुत प्रिय था। अतः पूज्य गुरुदेव कृष्णा १० का मौन अखण्ड करते एवं नगर के बाहर किसी एकान्त स्थान में पधार जाते। मेड़ता में अनेक बार पूज्य गुरुदेव एकान्त स्थल में पधारे।

प्रायः सुबह साढे आठ बजे तक मौन सदैव रहता। सुबह साढ़े चार बजे उठकर साढ़े आठ बजे तक पूज्य गुरुदेव की अन्तःप्रभु-भक्ति चलती और उनकी वाणी व्याख्यान में गहन गूढ और अध्यात्ममयी हो उठती। वाणी का प्रत्येक शब्द रस से सराबोर होता और श्रोता के अन्तर्हृदय में चोट करता।

उनके विराट् वैभव, उनके अन्तर्हृदय की प्रभु-भक्ति के सौन्दर्य को देखकर एक मुस्लिम मेड़ता में प्रभु-भक्ति से ओतप्रोत वाणी को सुनकर भाव विभोर हो उठा और निज का भान ही भूल बैठा। प्रभु के प्रति पूज्य गुरुदेव की भक्ति इतनी गहरी थी कि वे निर्गुणमार्गी होते हुए भी कभी-कभी भावविह्वल होकर सगुण भक्त की तरह परिलक्षित होते।

चमत्कार तो आपके जीवन का नगण्य रूप था। यह तो साधक के जीवन में स्वतः घटित होता है। आपके अन्तर्हृदय में प्रभु-भक्ति के तेज का एक ऐसा अद्‌भुत परिमण्डल बन चुका था, जिससे प्रत्येक व्यक्ति पूज्य गुरुदेव से, उनके मुखमण्डल से, उनकी वाणी से प्रभावित हो उठता था।

ब्यावर में एक बार पूज्य गुरुदेव जब शंकरलालजी मुणोत की बगीची में विराज रहे थे तब आप श्री के भीतर प्रभु-भक्ति का ऐसा भावावेग उमड़ा कि वह शरीर की समस्त रोमराजि से फूट-फूट कर निकलना चाह रहा था। साधक की जब ऐसी स्थिति होती है तब वह साधक के शरीर की सीमाओं को लांघ जाती है। क्वचित् कदाचित् जिसकी प्रतिक्रिया में शरीर का भी तापमान बढ़ जाता है और ऐसा ही वहाँ हुआ।

पूज्य गुरुदेव को मैंने बाल्यकाल से देखा तब से ही साधना की उत्कृष्ट स्थिति में पाया। प्रथम बार जब गुरुदेव के दर्शन हुए तब गुरुदेव योग का आसन लगाये हुये प्रभु में तल्लीन थे। मेरे भावुक मन पर प्रथम दृष्ट्या जो प्रभाव पड़ा वह आज भी चिर स्थायी है। फिर तो मजीठ के रंग की तरह पूज्य गुरुदेव का स्नेह, प्रेम, वात्सल्य इतनी प्रचुर मात्रा में मिला कि मेरा जीवन धन्य हो उठा। पूज्य गुरुदेव की प्रभु-भक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे पास भाव हैं, पर भाषा नहीं।

पूज्य गुरुदेव अतुलित शक्ति के भण्डार थे। अनन्त वैभव के प्रतीक थे। वे आखिरी अवस्था में अनन्त के साथ लौ लगाकर अन्तर्ध्यान हो गये।

पूज्य गुरुदेव की अनन्त शक्ति युक्त आत्मा को मेरे अनन्त वन्दन।

• भय भंजनहारी गुरुवर

मेड़ता शहर में श्रीमालों के मौहल्ले में एक प्राचीन उपाश्रय है। इस उपाश्रय की अनोखी विशेषता यह है कि यहाँ पर अधिष्ठायक देव मणिभद्रजी की चमत्कारिक प्रतिमा विराजमान है। वि.सं. २००८ में पूज्यप्रवर हस्तीमल जी म.सा. का चातुर्मास इसी उपाश्रय में हुआ। इस चातुर्मास से मेड़ता के समग्र जैन समाज में एक नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

इस चातुर्मास की एक घटना मेरे ही नहीं अपितु मेड़ता के सभी वरिष्ठ श्रावकों के मस्तिष्क पटल पर आज तक जीवंत है। संवत्सरी का दिन था, गुरुदेव की मंगलमयी प्रेरणा से लगभग ३०० श्रावकों ने पौषध व्रत किये। रात्रि में जब सारे श्रावक सो चुके थे, तब मैं और श्रीउदयराज सा. सुराणा ज्ञानचर्चारत थे। रात्रि के ठीक बारह बजे मणिभद्र जी का उपद्रव हुआ। अचानक उपासरे की जमीन हिलने लगी। एक साथ सभी लोगों के मुख से चीत्कार निकली, हड़कम्प मच गया, लोग इधर-उधर भागने लगे। कुछ लोग नीचे चौक में एकत्रित हो गये। इस समय आचार्यप्रवर ध्यान-मग्न थे। हो हल्ला सुनकर गुरुदेव नीचे पधारे और भयभीत लोगों को शान्त किया। मांगलिक श्रवण करते ही शान्ति हो गई। श्रावकों की भय-बाधा दूर हो गई सभी को लगा कि विघ्न टल गया है।

• वचनसिद्धि

महापुरुषों के मुख से सहजता में उच्चरित बातें भी भविष्य में अक्षरशः सत्य होती हैं। महापुरुषों के इस गुण को वचनसिद्धि कहते हैं। ऐसे कई प्रसंगों का दर्शन लाभ मुझे मिला जो गुरुदेव की वचनसिद्धता के पुष्ट प्रमाण हैं। एक प्रसंग का उल्लेख कर रहा हूँ।

श्री उम्मेदनाथ जी भंडारी, मेड़ता नगरपालिका के चुनाव में विजयी हुए और अध्यक्ष पद के लिए प्रयास करने लगे। उस समय दो महिला प्रत्याशियों का मनोनयन सरकार की ओर से होता था, अतः श्री भंडारी जी अपने पक्ष की दो महिला प्रत्याशियों के नाम लाने के लिए मेड़ता से जयपुर रवाना हुए। बस में उनकी मुलाकात जोधपुर के एक सज्जन से हुई जो किशनगढ़ गुरुदेव के दर्शनार्थ जा रहे थे। उन्होंने श्री भंडारी जी से आग्रह किया कि आप भी गुरुदेव के दर्शन करके जयपुर निकल जाना, श्री भंडारी जी ने उनका आग्रह स्वीकार किया और किशनगढ़ उतर गये।

गुरुदेव को वंदना करने के पश्चात् उक्त सज्जन ने भंडारी जी का परिचय करवाकर उनके जयपुर जाने का प्रयोजन भी बतलाया। तब गुरुदेव के श्री मुख से सहज में उच्चरित हुआ—"तेरा काम तो हो गया।"

श्री भंडारी जी को जयपुर पहुंचने पर बहुत ही आश्चर्य हुआ, क्योंकि जिन दो महिलाओं के नाम वे पार्षद के लिये लाने जा रहे थे उनका मनोनयन तो श्री भंडारीजी के पक्ष में पहले से ही हो चुका था।

श्री भंडारी जी हमेशा के लिये गुरुदेव के भक्त बन गये।

• नवो जुनो मत करीजै

श्री पारसमल जी सा. सुराणा नागौर वाले गुरुदेव के दर्शनार्थ जोधपुर पधारे हुए थे। अचानक घर से तार आया कि माँ बीमार है, जल्दी आओ। तार पढ़कर सुराणा सा बैचेन हो गये व आचार्य श्री की सेवा में मांगलिक लेने उपस्थित हुए और सारा वृत्तांत गुरुदेव को बताया। गुरुदेव श्री ने सारी बात सुनकर मुस्कराते हुए मांगलिक फरमा दी और जाते जाते कहा कि कोई नवो जुनो मत करीजै।

रास्ते भर पारसमल जी इसी उधेड़बुन में लगे रहे कि "कोई नवो जुनो मत करीजै" का क्या तात्पर्य हो सकता है? कुछ समझ में नहीं आया। घर आकर देखा तो माँ तो स्वस्थ , किन्तु पत्नी अस्वस्थ थी। स्मरण रहे कि पुराने समय में पत्नी के बीमार होने पर बेटे को बुलाना होता तो पत्नी की बीमारी नहीं लिखकर मां की बीमारी लिखी जाती थी।

श्री पारसमलजी ने पत्नी की सार संभाल की और दो चार दिन बाद ही पत्नी का देहांत हो गया। शोक बैठक का आयोजन किया गया। आठवें नवें दिन ही बीकानेर से कोई सज्जन अपनी लड़की का रिश्ता लेकर आया तब उन्हें आचार्यश्री द्वारा कही बात का गूढार्थ समझ में आया।

उन्होंने मन ही मन आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का निर्णय ले लिया।

• रूहानी बोल

जाति ना पूछिये संत की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

किसी कवि का यह दोहा एकदम सत्य है । वि.संवत् २०२७ के मेड़ता चातुर्मास में प्रतिदिन गुरुदेव के श्रीमुख से प्रवचनों की अमृत वृष्टि हो रही थी। श्रोताओं से सभागार खचाखच भर जाता था। मुस्लिम बंधु नसीर भाई और कारी साहब प्रवचन में आने से एक दिन भी नहीं चूकते।

एक दिन कारी साहब गुरुदेव की अलौकिक वाणी से इतने भाव विभोर हो गये कि गश खाकर (बेहोश

होकर) गिर पड़े। फिर तुरंत ही संभले और आचार्य श्री के चरणों में मस्तक झुकाकर बोले, "ऐसी अद्भुत वाणी, ये रूहानी बोल तो मैंने जीवन में कभी नहीं सुने।"

सच ही तो है महापुरुष किसी एक सम्प्रदाय एवं धर्म से प्रतिबंधित नहीं होते हैं। सम्पूर्ण विश्व के प्राणी ही नहीं, अपितु प्रकृति भी उनकी पुजारी होती है। आप्त पुरुषों की वाणी विश्व के प्राणिमात्र के उत्थान के लिए होती है।

• मीणा लोगों की भक्ति

सवाईमाधोपुर क्षेत्र में विचरण करते हुए आचार्यप्रवर अलीनगर नामक गांव में पहुंचे, जहां २५ घर मीणा जाति के थे और वे सभी जैन धर्मावलम्बी थे। दोपहर मे रंग बिरंगे परिधानों में गांव की महिलाएं हाथों में रेत की घडियाँ लेकर सामायिक करने आयीं। आचार्य श्री ने उन्हें पानी कैसे छानना चाहिये, परिवार में कैसे रहना चाहिये आदि बातें बतायी व धारणा के लिये पच्चक्खाण करवाये। गुरुदेव के सदुपदेशों से मीणा जाति के लोगों में इतना परिवर्तन आ चुका था कि हमें लगा कि ये लोग सचमुच जैन ही हैं।

यहां से विहार कर दूसरे दिन आचार्य श्री उखलाना पहुंचे। उखलाना ब्रजमोहन का गांव था, अत: ब्रजमोहन ने आचार्य श्री के साथ चलने वाले संघ की बहुत ही आवभगत की। लगभग २००-३०० आदमियों का भोजन सत्कार किया। मीणा जाति का गुरुदेव के प्रति आदर-सत्कार देखते ही बनता था।

• जिनवाणी बन्द नहीं हुई

जिनवाणी मासिक पत्रिका की वार्षिक बैठक जयपुर में हुई। जिनवाणी में इस समय कोई फण्ड नहीं था व खर्च बहुत ही ज्यादा था। खर्चे की पूर्ति की व्यवस्था जब मीटिंग में नहीं हो सकी तो पत्रिका को बन्द करने का प्रस्ताव रखा गया।

हम आचार्य श्री की सेवा में पहुंचे और सारी बातें उनके समक्ष रखी। गुरुदेव ने मुझे नथमल जी हीरावत से मिलने का संकेत किया।

मैं हीरावत सा. के पास गया तो उन्होंने जिनवाणी का कार्य सम्हालना स्वीकार किया।

उस दिन से आदरणीय श्री हीरावत जी हमेशा के लिये जिनवाणी एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल आदि संस्थाओं से जुड़ गये। यह था गुरुदेव का अलौकिक प्रभाव।

• वह अविस्मरणीय रात्रि

महाराष्ट्र में विचरण करते समय विहार में गुरुदेव के साथ था। एक गांव में जहां एक भी जैन घर नहीं था, गुरुदेव एक माहेश्वरी सज्जन के घर में विराजे । वहां काफी दर्शनार्थी आये, उनकी भोजन-व्यवस्था भी उन्हीं सज्जन ने बड़ी ही आत्मीयता के साथ की। शाम को गुरुदेव ने उस गांव से विहार कर दिया। पांच सात किलोमीटर चलने पर जब दिन थोडा ही रह गया था तब गुरुदेव सभी संतों के साथ एक वट वृक्ष के नीचे विराज गये। सभी संतों ने अपनी अपनी शय्याएं बिछाली।

मैंने भी अपना बिस्तर लगा लिया। प्रतिक्रमण के बाद का समय ज्ञान-चर्चा में गुजरा। यह मेरा पहला अवसर था जब सन्तों को मैंने वट वृक्ष के नीचे रात्रि शयन करते देखा और स्वयं ने भी रात्रि शयन वट वृक्ष के नीचे

किया।

आज भी जब स्मृतियों के धवल पृष्ठों को पलटता हूँ तो असीम आनंद की अनुभूति होती है।

• मुनि श्री कांतिसागर जी से साक्षात्कार

अहमदाबाद चातुर्मास में जैन धर्म के मौलिक इतिहास के लेखन का कार्य गुरुदेव कर रहे थे। उन्हीं दिनों इतिहास से संबंधित सामग्री लाने हेतु पं. शशिकांत जी झा के साथ मैं मुनि श्री कान्तिसागर जी के पास उदयपुर गया। मुनि श्री कान्तिसागर जी का गौरवर्ण, भव्य ललाट, धवल केश राशि, विशाल वक्ष-स्थल, देदीप्यमान व्यक्तित्व, किसी भी व्यक्ति को एकाएक आकर्षित कर लेता था, मुनि श्री की धाराप्रवाह संस्कृत एवं उनके पाण्डित्य से ऐसा लगता था, मानो उनकी जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती विराजमान हो।

गुरुदेव का संदेश सुनकर मुनि श्री कांतिसागर जी भाव विभोर हो गये । सम्प्रदायवाद से परे हटकर गुरुदेव के ज्ञान और क्रिया के प्रति अपने उच्चतम भाव प्रकट किये।

यह तीन दिनों का प्रवास बहुत ही सार्थक रहा। हमारे लौटने के कुछ दिनों बाद मुनि श्री ने लगभग १००० पृष्ठों की सामग्री आचार्य श्री की सेवा में भेजी।

आचार्य श्री ने सारी सामग्री के अवलोकन के पश्चात् मैं पुनः मुनि श्री की सेवा में गया। उस समय मुनि श्री उदयपुर महाराणा के निवेदन पर एकलिंगजी में विराज रहे थे। एकलिंगजी में उनके साथ में तीन दिनों तक रहा। इन तीन दिनों मे मुनि श्री ने मुझ पर असीम स्नेह उंडेला । आचार्य श्री के ज्ञान एवं क्रिया पक्ष की बार बार प्रशंसा करते थे। ये तीन दिन मेरे जीवन के स्वर्णिम दिनों में थे।

• भक्त का समर्पण

पुरातत्त्व की वस्तुओं का व्यापार करने वाला एक सज्जन गुरुदेव की सेवा में बोरियां भरकर प्राचीन ग्रंथ लाया और गुरुदेव से निवेदन किया कि जो ग्रन्थ आपको पसंद हो रख लिरावें।

गुरुदेव ने ढेर सारे ग्रंथों में से उपयोगी ग्रंथ छाँटने का कार्य मुझे सौंपा। गुरुदेव के संकेत के अनुसार मैंने बहुत से उपयोगी ग्रंथ अलग निकाले। उस व्यक्ति ने सारे ग्रंथ बिना मूल्य लिये भेंट करने की इच्छा प्रकट की। इन ग्रंथों को जोधपुर के सिंहपोल में स्थित श्री जैनरत्न पुस्तकालय में भिजवा दिया गया।

उस अजैन व्यक्ति की गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा-भक्ति देखकर मैं आश्चर्य चकित रह गया।

• दाढ़ी वाला बाबा

२०२७ के मेड़ता चातुर्मास में गुरुदेव के साथ तीन वैरागी बालक थे। उनमें अशोक नाम का वैरागी बालक बहुत ही मेधावी था। अशोक के माता-पिता झगड़े की नीयत से मेड़ता आये हुये थे। श्रावक वर्ग को इस बात की भनक लगी तो सतर्क हो गए।

श्री चम्पालाल जी कोठारी ने गुरुदेव से निवेदन किया कि मैं आपके कमरे के बाहर सोना चाहता हूँ। गुरुदेव ने सहज स्वीकृति दे दी । रात को दो बजे के आसपास गुरुदेव के कमरे में तेज प्रकाश हुआ जिसे देखकर चम्पालालजी घबरा गए और उत्सुकता वश कमरे के अन्दर झाँका तो पाया कि एक दाढ़ी वाला बाबा गुरुदेव के

चरण दबा रहा था और फिर वह बाबा यकायक अदृश्य भी हो गया । कोठारी जी बुरी तरह भयभीत हो गए। उन्होंने हड़बड़ाते हुए गुरुदेव से पूछा , यह सब क्या था ? गुरुदेव ने प्रतिप्रश्न करते हुए पूछा, 'तूं डरा तो नहीं ?'

चम्पालाल जी आज भी उस घटना को याद करते हैं तो समझ नहीं पाते हैं कि वह सब क्या था।

महापुरुषों की अलौकिकता की थाह कोई नहीं ले सकता है।

• प्रेरणा का कमाल

मैं गुरुदेव के दर्शनार्थ मेड़ता से अहमदाबाद जा रहा था । जोधपुर रेलवे स्टेशन पर एक सज्जन ब्रिटिश कोट व साफा पहने हुए दिखे। यही सज्जन पुन: मारवाड़ जंक्शन में भी दिखाई दिये।

जब मैं अहमदाबाद पहुंचा तो मेरे से पहले ही वे सज्जन गुरुदेव के समक्ष करबद्ध खड़े दिखाई दिये। बाद में मालूम हुआ कि ये सज्जन जोधपुर रियासत की प्रसिद्ध हस्ती श्री भोपालचंद सा लोढ़ा हैं।

गुरुदेव ने आपको वृद्धावस्था में भी सामायिक सीखने की प्रेरणा दी। आपने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए चार दिन अहमदाबाद में ही रुककर सामायिक कंठस्थ की। इतनी वृद्धावस्था में भी आपके सामायिक सीख लेने पर मुझे आश्चर्य हुआ।

वास्तव में यह प्रेरणा का कमाल था।

• दाराशिकोह का फरमान

आचार्य श्री मेड़ता विराज रहे थे। एक दिन कोई सज्जन शाहजादा दाराशिकोह का हस्ताक्षरित फरमान लेकर आया, जिसमें लोकागच्छ के साधुओं की सुरक्षा एवं उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ न दिये जाने का आदेश था। यह प्राचीन फरमान इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण था ही , धर्म-सहिष्णुता का भी परिचायक था।

पीपाड़ से पधारे कोठारी परिवार ने उस व्यक्ति से मुँह मांगी कीमत देकर यह फरमान खरीद लिया। यह फरमान आज भी विनयचंद जैन ज्ञान भंडार में सुरक्षित है जिसकी फोटोप्रति मेरे पास विद्यमान है।

• श्रुतिलेखन

आचार्यप्रवर मेड़ता विराज रहे थे। रात्रि में लगभग १० बजे सभी श्रावकों के चले जाने के बाद आचार्य प्रवर ने फरमाया "स्फुरणा आ रही है तू अंधेरे में लिख सकेगा क्या ? मैं तुरंत हामी भरते हुए कागज कलम लेकर लिखने बैठ गया।

उस निविड़ अंधकार में लिखने से कोई अक्षर ऊपर जाता तो कोई नीचे, पंक्तियां टेढ़ी मेढ़ी हो जाती। इसी तरह लगभग कई पृष्ठ गुरुदेव ने लिखवाए। यह क्रम ४-५ दिन चलता रहा। रात्रि में पृष्ठ लिखना, सुबह तैयार करके गुरुदेव के चरणों में प्रस्तुत करना होता था।

यह गुरुदेव की ही कृपा दृष्टि थी, जिससे मेरे अन्तर्मन में एक दिव्य चेतना का प्रस्फुटन हुआ और यह कार्य सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। आज भी वे पृष्ठ मेरे पास सुरक्षित हैं। जब कभी उन्हें देखता हूँ तो आनंद की अनुभूति होती है।

• नहीं तो लोढ़ा जी विदेश चले जाते

आचार्यप्रवर श्रेष्ठ विद्वानों पण्डितों को समाज से जोड़ने में उत्सुक रहते थे। श्री कन्हैयालाल जी लोढ़ा एक ऐसे ही विद्वान हैं जिन्होंने जैन सिद्धान्त शाला जयपुर को संचालित कर जैन समाज को डॉ. धर्मचन्द जैन जैसे कई रत्न प्रदान किये।

मैं श्री कन्हैयालाल जी लोढ़ा से मिलने केकड़ी गया। जब मैंने गुरुदेव की भावना से उनको अवगत कराया तो वे तुरंत ही अपनी सेवाएँ देने के लिए तैयार हो गए।

उल्लेखनीय है कि लोढ़ा जी को इस समय यदि नहीं बुलाया जाता तो वे सुशील मुनि जी के साथ विदेश चले गए होते । आचार्य भगवंत की सूझबूझ थी कि उन्होंने ऐसे तत्त्वचिंतक विद्वान् को संघ से जोड़ा। यह तो एक उदाहरण हैं। उन्होने इस तरह अनेक योग्य लोगों को जोड़ा।

• संत-सेवा का परिणाम

स्व. श्री पारसमल जी कोठारी २००८ के मेड़ता चातुर्मास में संघ-मंत्री थे। एक दिन दोपहर में कोठारी सा. भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। गुरुदेव ने आपको फरमाया कि भाई पारसमल पत्र लिखने हैं। यद्यपि कोठारी सा. को दुकान जाना था, फिर भी आप गुरुदेव का आदेश सुनकर पत्र लिखने बैठ गये। पत्र लिखते-लिखते शाम के चार बज गये। पत्र डाक में डालकर जब वे बाजार में पहुंचे तो बाजार में लगभग सन्नाटा छा चुका था । ग्राहकों की कोई चहल पहल नहीं थी। संकल्प विकल्प करते हुए कोठारी सा. दुकान पर पहुंचे ही थे कि कुछ ही देर में एक ग्राहक आया और लगभग १५००-२००० रुपयों का सामान खरीद कर ले गया। उस समय यह राशि बहुत बड़ी हुआ करती थी। उस दिन से पारसमल जी की यह धारणा बन गई कि भाग्य में लिखा हुआ कहीं जाता नहीं, फिर क्यों सन्त-सेवा से वंचित रहा जाय। कोठारी सा ने अपना जीवन संघ और समाज के लिये अर्पित कर दिया।

• सरकारी पत्र नहीं आएगा

एक बार कोर्ट कचहरी और सरकारी पत्रों के चक्कर में दीर्घावधि तक गुरुदेव के दर्शन नहीं किये।

समय मिलने पर गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुंचा तो गुरुदेव ने सहजता से पूछा "जतनजी क्या बात है, इस बार तो बहुत दिनों बाद दया पाली।" मैंने अपनी व्यस्तता का कारण पूज्य गुरुदेव के समक्ष जाहिर किया। गुरुदेव के श्रीमुख से प्रस्फुटित हुआ "अब कोई सरकारी पत्र नहीं आएगा"

गुरुदेव का वचन सिद्ध हुआ और इसके बाद मुझे कोई सरकारी पत्र प्राप्त नहीं हुआ। मेरे कोर्ट कचहरी के चक्कर भी बंद हो गए।

• आगे लारे ई जावांला

मेरे पिताजी श्री प्रेमराज जी मेहता की आचार्य श्री के प्रति अगाध श्रद्धा और अटूट भक्ति थी। एक बार पिताजी अत्यधिक अस्वस्थ हो गए तब गुरुदेव मेड़ता ही विराजमान थे। मैंने गुरुदेव को घर पधारकर मांगलिक श्रवण करवाने का निवेदन किया तो गुरुदेव ने मेरी भावभीनी विनती को स्वीकार किया और घर पधारे।

करुणा के सागर, भक्तों के भगवान को अपने समक्ष समुपस्थित पाकर पिताजी ने लेटे हुए ही गुरुदेव को वंदना की और अश्रु भरी आंखों से निहारते हुए निवेदन किया "गुरुदेव ! अब अंत समय निकट जान पड़ता है, आप मुझे संथारा करवा दीजिये।"

यह सुनकर गुरुदेव के मुखाग्र से जो शब्द प्रस्फुटित हुए वे हम सबके लिए आनंदकारी और आश्चर्यजनक थे।

गुरुदेव ने फरमाया "भोलिया जीव तूं क्युं परवाह करे, आपां तो आगे लारे ई जावांला"। इन शब्दों ने दिव्य औषधि का कार्य किया। पिताजी शनैः शनैः स्वस्थ हो गए। यह बात पिताजी के स्वर्गवास के लगभग १५ वर्ष पूर्व की थी।

काल-चक्र चलता रहा, आखिर २१ अप्रेल १९९१ को परमपूज्य गुरुदेव देवलोक पधारे, दूसरे ही दिन पिताजी ने अपनी क्षीण देह त्याग दी।

विधि की विचित्रता देखिए कि दोनों की अंतिम यात्रा एक ही दिन निकली।

• गुरुदेव का अतिशय

आचार्य श्री एक बार मेड़ता विराज रहे थे। तत्कालीन उप जिलाधीश श्री महावीर प्रसादजी शर्मा मेरे मित्र थे। मैंने उन्हें निवेदन किया कि आचार्य श्री भारत की एक विभूति हैं व मेडता पधारे हुए हैं, आप उनके दर्शन करें। उन्होने तुरंत स्वीकृति दी और कहा-"कब चलना है ?" मैंने उन्हें ४ बजे का समय दिया।

ठीक समय पर हम आचार्य श्री की सेवा में पहुंचे। मैंने उप जिलाधीश महोदय का परिचय कराया। आचार्य श्री ने उन्हें उपदेश दिया -"अधिकार पाया है तो सबकी भलाई करो, परोपकार करो, घट में दया रखो हिंसा का परित्याग करो।" यह उपदेश देते हुए आचार्य श्री ने फरमाया-"यही बात मैंने दामोदर को कही है"- (स्मरणीय है उस समय आचार्य दामोदरजी हमारे नागौर जिले के विधायक थे।) यह सब बात हो ही रही थी कि इतने में विधायक दामोदर जी की कार स्थानक के सामने रुकी और दामोदरजी को आते देख कर उप जिलाधीश महोदय अवाक् रह गये। उपस्थित सभी लोग यह देखकर आश्चर्य चकित रह गये। यह था गुरुदेव का अतिशय।

-मेड़ता सिटी, राजस्थान

■

आध्यात्मिक चुम्बकीय शक्ति के स्रोत

• श्री भंवरलाल बोथरा

आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य मुझे तब मिला जब आचार्य श्री संवत् २००१ के चातुर्मासार्थ जयपुर आ रहे थे। मैं उस समय अजमेर रोड़ पर भांकरोटा (जयपुर से १२ किमी) तक सामने गया था। उस दिन गुरुदेव आचार्य श्री की चरणरज अपने शीष क्या चढ़ाई, मानो जादू सा हो गया। चौबीसों घण्टे गुरुदेव के सान्निध्य में रहने का मन करने लगा। आचार्य श्री की मेरे पर बहुत कृपा थी। जयपुर के इस चातुर्मास में मैं प्रायः स्थानक में ही रहता था। मात्र दोनों समय भोजन के लिए घर जाता था। प्रातः एवं सायंकाल गुरुदेव के साथ ही जंगल (फतहटीबा) जाता था। दोपहर में गुरुदेव के द्वारा बताया गया लेखन कार्य करता था। ५६ वर्ष बीत जाने के बाद भी वह चातुर्मास मेरी आँखों के सामने चित्रित हो जाता है।

इसके पश्चात् मैं जहाँ कहीं भी गुरुदेव के दर्शनों हेतु गया, प्रायः उनकी सेवा में ही अधिकांश समय व्यतीत करता था। गुरुदेव के प्रति जो श्रद्धाभाव पैदा हुआ वह एकदम सहज था। इसमें पूर्व संस्कार कारण थे, या यह कोई जादू था, अथवा उनमें कोई अदृश्य शक्ति थी जो अपनी ओर खींचती थी।

आचार्य भगवन्त का विक्रम संवत् २०३० का वर्षावास जयपुर में था। श्री खरतर गच्छ के संत श्री अस्थिर मुनि जी म.सा. का चातुर्मास भी जयपुर में ही था। उनके श्रावकों ने ३०० सामूहिक तेले का तप किया। तेले की तपस्या के दिन प्रत्याख्यान करने हेतु सभी भाई-बहन श्री अस्थिर मुनि जी म.सा.की अगुवाई में आचार्य श्री के पास लालभवन में आए। सभी तपस्वी श्रावक-श्राविकाओं को आचार्य श्री ने तेले की तपस्या का प्रत्याख्यान कराया। उस समय श्री अस्थिर मुनि जी आचार्य श्री के पाट के नीचे चरणों में बिराजे। श्रावकों ने पाट पर बैठने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा–"मेरी तो जगह यहाँ ही है।" दो सम्प्रदायों का पारस्परिक सौहार्द एवं मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के द्वारा आचार्यश्री के प्रति आदरभावना का दृश्य देखने योग्य था। उस वर्षावास में मासखमण व अठाई आदि तपस्याएँ बड़ी मात्रा में हुई।

विक्रम संवत् २०३८ में जयपुर नगर में श्री प्रेममुनि जी म.सा. (आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. की परम्परा के संत) ठाणा ३ का चातुर्मास था। उन्होंने व्याख्यान में एक दिन फरमाया –"मैंने आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के जब दर्शन किए तो उन्होंने मुझे देखकर कहा था तुम जल्दी ही श्रमण दीक्षा लोगे और मुझे आश्चर्य है कि मेरी दीक्षा जल्दी ही हो गई।"

जयपुर से कुछ लोग टोंक जिला के मालपुरा स्थित दादाबाड़ी में दादागुरु के दर्शनार्थ गए हुए थे। वहां पर विराजित संतों ने आगन्तुकों से पूछा कि आप लोग कहाँ से आए हैं? जवाब दिया-जयपुर से। जयपुर का नाम लेते ही वे संत कहने लगे 'चिंतामणि रत्न हाथ में होते हुए भी इधर-उधर भटक रहे हो।' संतों का संकेत आचार्य श्री की ओर था। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. का वर्षावास उस समय जयपुर में ही था। आचार्य श्री के चरणों में पद्म का चिह्न अंकित था। इसकी उन संतों को जानकारी थी। उन्होंने कहा-जाकर आचार्य श्री के पैर में शीश झुकाओ और अपने भाग्य को सराहो।

अजमेर के अंतिम वर्षावास के पश्चात् गुरुदेव जब जयपुर पधारे तब मोतीडूंगरी रोड पर ललवानी जी के

बंगले पर विराज रहे थे। उस समय मेरी दोहित्री बहुत बीमार थी। ३-४ दिन बच्चों के अस्पताल में रहने के बाद भी स्वस्थ नहीं हो पाई तो हम घर ले आए। श्री दिग्विजय जी कोठारी ने कहा कि 'आप इसे गुरुदेव की मांगलिक क्यों नहीं सुनवा देते।' दूसरे दिन प्रातः काल गुरुदेव की सेवा में ले गये। गुरुदेव ने ज्योंही मांगलिक सुनाई वैसे ही उसकी तबीयत ठीक होती चली गई। मांगलिक में जैसे कोई प्राणदायी शक्ति हो। डाक्टर की दवाओं ने जो काम नहीं किया वह मात्र एक मांगलिक से हो गया।

इसी प्रकार की एक घटना और है। आचार्य श्री जयपुर में ही श्री हीराचन्द जी हीरावत के आवास-स्थल पर विराज रहे थे। मेरे पौत्र पारसमल (सौरभ) की तबीयत अचानक खराब हो गई। गुरुदेव की सेवा में पारसमल को लेकर आए। गुरुदेव ने मांगलिक फरमाई। तुरन्त ही आराम हो गया। उसके बाद आज दिन तक उसकी तबीयत खराब नहीं हुई।

प्राचीन पत्रों का सूचीकरण करने के अलावा मेरे पास एक और कार्य रहा करता था। गुरुदेव के सान्निध्य में जहां कहीं भी दीक्षा का प्रसंग होता वहाँ पर ओघा एवं पूंजनी बांधने का काम मेरे जिम्मे होता था। गुरुदेव ने मुझे जो भी कार्य सौंपा उसे सम्पन्न करने में मुझे बहुत आनन्द आता था। गुरुदेव की कृपा से जिनवाणी पत्रिका के संचालन का कार्य भी संभाला था। मेरे प्रति गुरुदेव का विश्वास देखकर मुझमें आत्मबल का संचार होता था। गुरुदेव का स्मरण ही अब मेरा मार्गदर्शक है। उनका स्मरण कर प्रमोद का अनुभव होता है। (उल्लेखनीय ही परम भक्त श्रावक श्री बोथरा सा. अब हमारे बीच नहीं रहे, उनकी भावनाएँ ही हमारी मार्गदर्शक हैं। –सम्पादक)

२४ जनवरी, १९९८

गली पुरन्दर जी, रामलालजी का रास्ता,
जयपुर (राज.)

■

आचार्य श्री व नारी जागरण

• श्रीमती सुशीला बोहरा

इस युग के महान् मनीषी, भक्तों के भगवान, ज्ञान के आराधक, क्षमा के धारक, शुद्ध चारित्र धर्म के अनन्य पुजारी, सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, शुद्ध, सात्त्विक विचारों के धनी, सरल हृदय आचार्यप्रवर आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन जो भी उनके सम्पर्क में आया वह भूल नहीं पाया। वे शिशु के समान निष्कपट, निश्छल एवं सरल थे, लेकिन दृढ़ता हिमालय की तरह थी। एक बार जो निर्णय ले लेते उस पर अडिग रहते थे, उसके निर्वहन हेतु उन्हें कई कठिन परीषहों का सामना भी करना पड़ा, लेकिन चट्टान की तरह अकम्प एवं अडोल रहे। यह व्यवहार उनके जीवन की अमूल्य निधि एवं धर्म की अक्षुण्ण थाती बन गया।

महिलाओं के उत्थान हेतु वे विशेष जागृत थे। वे कहा करते थे कि महिला माँ बनकर बच्चों का पालन पोषण करती है और गुरु बनकर उनका मार्गदर्शन भी कर सकती है। गांधीजी ने भी कहा था कि माँ की गोद में ५ वर्ष की आयु में बालक जो कुछ सीख लेता है उसे १०० अध्यापक मिलकर जिन्दगी भर नहीं सिखा सकते।

आचार्यप्रवर बहिनों को रूढ़ियों से ऊपर उठकर शुद्ध सात्त्विक जीवन-निर्माण की प्रेरणा देते थे। तपस्या में उनके द्वारा किये जाने वाले आडम्बरों एवं दिखावे का हमेशा विरोध करते थे। वे कहा करते थे कि तपश्चर्या करने वाली बहिनों को शास्त्र-श्रवण, स्वाध्याय, ध्यान, जप आदि के द्वारा तप को सजाना चाहिये न कि पीहर के गहनों-कपड़ों की इच्छा या कामना से। इससे तपश्चर्या की शक्ति क्षीण होती है। महिमा, पूजा, सत्कार, कीर्ति, नामवरी अथवा प्रशंसा पाने के लिये तपने वाला जीव अज्ञानी है। उन्हीं के शब्दों में -

ढोल ढमाके क्या रंग लायेंगे,
तप के रंग के सामने॥

तप के साथ भजन-कीर्तन, प्रभुस्मरण, स्वाध्याय आदि तो सबसे ऊँचा किरमिची रंग है। ऐसा तप ही आत्मसमाधि का कारण, मानसिक शांति एवं कल्याण का हेतुभूत होता है।

आप जहां परम्परावादी महान् संतों की शृंखला में शीर्षस्थ थे, वहीं उच्चकोटि के विचारक भी रहे। आपने सदियों से जीवन निर्माण क्षेत्र में पिछडी हुई मातृशक्ति को कार्य क्षेत्र में उतरने का आह्वान किया।

सेवा एवं धार्मिक कार्यों में आगे आने की प्रेरणा मुझे भी गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. से मिली। ३५ वर्ष पूर्व एम. ए. पास बहिनें बहुत कम थीं। जब मैंने एम. ए. किया तो उनका यही आशीर्वाद रहा कि तुम पढ़ी लिखी हो, तुम्हें आगे आकर अन्य बहिनों के लिये मार्ग प्रशस्त करना है। मुझ जैसी संकोची लड़की के लिये यह बात अनहोनी थी, लेकिन गुरुदेव की कृपा से सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र में जो भी कार्य प्रारम्भ किया वह स्वतः ही उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर होता गया। अन्तिम समय में निमाज में भी उनका यही आशीर्वाद रहा। गुरुदेव जब अस्वस्थ चल रहे थे तब मैं शारीरिक कारणों से दो माह गुरुदेव की सेवा में नहीं जा सकी। मेरे पास समाचार आये कि गुरुदेव ने आपके बारे में पृच्छा की है। मेरे धन्य भाग थे, मैं शारीरिक अस्वस्थता की स्थिति में भी एक दिन पहुँच गई। आचार्य श्री की बैठने की स्थिति नहीं थी अतएव लेटे हुए थे। जब मैं पहुँची तो वर्तमान आचार्य श्री हीराचन्द्रजी महाराज सा. एवं शुभ मुनिजी पास में विराज रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने गुरुदेव से कहा आप सुशीला

जी के बारे में पृच्छा कर रहे थे, वे आई हैं। दो तीन संतों का सहारा लेकर वे उठे आशीर्वाद के लिये उनके हाथ ऊपर उठे और तीन दिन से मौन गुरुवर की वाणी मुखरित हुई। अच्छा तुम आ गई। उन्होंने मेरे निमाज पहुंचने पर फरमाया - तुम जो सेवा का कार्य कर रही हो, उसे निरन्तर करते रहना, लेकिन संघ-सेवा भी बराबर करती रहना। मुझे आशीर्वाद स्वरूप मंगल पाठ प्रदान किया। मैं भाव विभोर हो गयी। मेरी आंखों में आंसू छलकने लगे। मैंने सोचा, ज्ञान की यह ज्योति अनन्त में विलीन होते समय भी अन्तिम हितोपदेश से हमारा मार्ग दर्शन कर रही है। कितना अपनापन उनकी वाणी और व्यवहार में था। मुझ जैसे अकिंचन पर भी उनकी महती कृपा थी।

वे नारी स्वतंत्रता के पक्षधर थे, स्वच्छन्दता के नहीं। नारी स्वतंत्रता की ओट में फैशनपरस्ती की दौड़ को नकारते हुए उन्होंने कहा –

बहुत समय तक देह सजाया, घर-धंधा में समय बिताया,
निन्दा विकथा छोड़ करो, सत्कर्म को जी।
धारो धारो री सौभागिन शील की चून्दडी जी ॥

वे यदा-कदा फरमाया करते थे कि साधना के मार्ग में स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं है। स्त्रियों की संख्या धर्म क्षेत्र में सदैव पुरुषों से अधिक रही है। सभी कालों में साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की एवं श्रावकों की अपेक्षा श्राविकाओं की संख्या अधिक रही है। मोक्ष का द्वार खोलने वाली माता मरुदेवी भी स्त्री ही थी। इन्हीं माताओं की गोद में महान् पुरुषों का लालन-पालन होता है। लेकिन माता को पूज्या बनने हेतु विवेक का दीपक, ज्ञान का तेल, श्रद्धा की बाती और स्वाध्याय के घर्षण को उद्दीप्त करना होगा। इसलिये उन्होंने सामायिक के साथ स्वाध्याय को महत्त्व दिया। उनका कहना था -

स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना है, सद्ज्ञान बिना ।
घर-घर गुरुवाणी गान करो , स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो ॥

अत एव आचार्य भगवन्त ने ज्ञान-पथ की पथिक, दर्शन की धारक, सामायिक की साधक, तप की आराधक शील की चून्दडी ओढ़ने वाली, संयममयी एवं दया व दान की जड़त वाली जिस श्राविका रत्न की कल्पना की है वह युग-युगों तक हम बहनों के जीवन का आदर्श बनकर हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

जी-२१, शास्त्रीनगर, जोधपुर

■

सामायिक के महान् प्रेरक-आचार्यश्री

● श्री चुन्नीलाल ललवाणी

संवत् २०१६ में आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमल जी म.सा. का जब शिष्य मण्डली के साथ जयपुर में प्रवेश हुआ तो आचार्य श्री ने सामायिक संदेश के रूप में एक भजन दिया, जो सारे देश में गूंज उठा है, जिसमें जीवन को ऊँचा उठाने की प्रेरणा मिलती है--

जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन कर लो।
आकुलता से बचना चाहो तो, सामायिक साधन कर लो॥

मुझे यह भजन बहुत ही पसंद आया। जहाँ भी मैं जाता, इस भजन को हर जगह गाता रहता, बड़ा ही आनन्द आता। पहले 'ॐ शान्ति प्रभु जय शान्ति प्रभु' प्रार्थना बोलता, उसके बाद इस भजन को गाता। इसी में मैं भाव विभोर हो जाता।

कार्तिक शुक्ला पंचमी (ज्ञान पंचमी) को मैंने आचार्य श्री से मांगलिक मांगी तो आचार्यश्री ने फरमाया कि क्या मांगलिक कोई ऐसे ही मिलती है? नथमल जी हीरावत को नियम लेते देखकर मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि मुझे भी ज्ञान पंचमी का उपवास करा दीजिए। उस दिन गुरुदेव ने उपवास के साथ नियमित सामायिक करने तथा दयाव्रत का भी नियम करा दिया। ज्ञानपंचमी का उपवास करते हुए लम्बा समय बीत गया है, इससे मुझे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सब प्रकार की शान्ति प्राप्त हुई है।

कार्तिक शुक्ला पंचमी से पूनम तक संवत् २०१६ के जयपुर चातुर्मास में ५००० सामायिक का लक्ष्य रखा गया, जो सफलतापूर्वक पूर्ण हुआ। इससे मेरे मन में सामायिक-संघ की स्थापना करने की भावना उत्पन्न हुई। चातुर्मास पूर्ण होने पर विहार के समय ११ व्यक्तियों ने ५ वर्ष तक स्थानक में नियमित सामायिक करने का नियम लिया। इस तरह सामायिक संघ का प्रारम्भ हुआ। सामायिक संघ के सदस्यों के लिए कुछ नियम बनाए गये - सप्त-कुव्यसनों से दूर रहें, कूड़ा तौल माप न करें, वस्तु में मिलावट न करें, स्थानक में नियमित सामायिक करें, उसमें कम से कम २० मिनिट स्वाध्याय करें, हिंसा-झूठ-चोरी आदि से दूर रहें। सैलाना चातुर्मास में आचार्य श्री ने अखिल भारतीय जैन सामायिक संघ की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा वहीं पर प्रथम सामायिक सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसके पश्चात् जहाँ भी आचार्य श्री पधारे बालोतरा, बाड़मेर, भोपालगढ़, पीपाड़ आदि सर्वत्र सामायिक संघ का गठन हुआ। आचार्यप्रवर की कृपा से मैं स्वाध्याय संघ से भी जुड़ा तथा पर्युषण में जैतारण, बेतुल, मद्रास, सवाईमाधोपुर आदि स्थानों पर धर्माराधन हेतु गया। वहाँ दिनभर सामायिक साधना करने में तथा सैंकड़ों श्रावक-श्राविकाओं को सामायिक कराने में मुझे आत्मानन्द का अनुभव हुआ। सामायिक-स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार के लिए प्रेरणा करते हुए गुरुदेव ने मुझसे कहा - "तू भारतीय बीमा निगम का दलाल है, इसलिए तू धर्म की दलाली भी अच्छी तरह से कर सकता है।" इससे मुझे सामायिक संघों की स्थापना करने की धुन लग गयी। मैंने लघु सर्वतोभद्र तप का आराधन भी किया।

यह तपस्या मैंने १ वर्ष आयम्बिल से तथा ६ वर्ष एकाशन तप से की और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक १०० सामायिक संघ नहीं बनेंगे तब तक मैं यह व्रत करता रहूँगा। मेरी भावना के अनुसार भीलवाड़ा, जैतारण, डबोक,

सैलाना, बेतुल, मद्रास, अहमदनगर, पाथर्डी, लातूर, लासल-गाँव, चालीस-गाँव, धूलिया, कोपर गाँव, औरंगाबाद, शाजापुर, भोपाल, नागपुर, नागौर, लुधियाना, कुचेरा, गोगेलाव, किशनगढ़, मदनगंज, अजमेर, कपासन, गंगापुर, चित्तौड़, भादसोड़ा, नाथद्वारा, मालपुरा, केकड़ी, गुलाबपुरा, हुरड़ा, विजयनगर, मेड़तासिटी, उज्जैन, थांदला, दुर्ग, भिलाई, जबलपुर, सोलापुर, सवाईमाधोपुर, आलनपुर, श्यामपुरा, गंगापुर, हिण्डौन, अलवर आदि अनेक स्थानों पर सामायिक संघ स्थापित हुए।

गाँव-गाँव में सामायिक संघ की स्थापना आचार्य श्री की भावना थी। मेरे विचार में यह तब ही संभव है जब प्रचारकों का एक दल साहित्य तथा सामायिक के उपकरण साथ लेकर गाँव-गाँव में जाये तथा सामायिक-साधना करके सामायिक-संघों को स्थिर करने की प्रेरणा करे।

भवानी सिंह मार्ग, क्रय-विक्रय संघ के सामने, जयपुर

कार्तिक सुदी पंचमी, संवत् २०४०

■

भविष्यद्रष्टा व वचन-सिद्धि के योगी

• श्री पी. एम. चोरड़िया

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. अल्पभाषी थे। वे गूढ़ से गूढ़ विषय का सार कुछ ही नपे तुले शब्दों में प्रकट कर देते थे। भाषा समिति एवं वाणी विवेक के प्रति विशेष जागरूक संत थे। उनकी वाणी ब्रह्मवाक्य हुआ करती थी। अपने विशिष्ट ज्ञान एवं साधना के बल से उन्हें भविष्य की घटनाओं का ज्ञान हो जाता था। भविष्य के घटना-चित्र का उल्लेख वे अपनी प्रेरणाओं और उपदेश से भक्तों के समक्ष इस प्रकार करते, जिसका उन्हें अहसास भी नहीं होता था। मेरे जीवन में भी ऐसे कई प्रसंग आए, जब उन्होंने प्रेरणा एवं सम्यक् मार्गदर्शन देकर मुझे जागरूक बनाया। आपका आशीर्वाद पाकर मैं धन्य हो गया । आज भी जब उन सबका चिन्तन करता हूँ, तो उस ज्योतिपुरुष एवं अध्यात्मयोगी के प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाता है। यहाँ पर कुछ संस्मरण प्रस्तुत हैं–

(१) सन् १९७९ में आचार्य श्री का अजमेर में चातुर्मास था। आप लाखन कोटड़ी स्थानक में विराज रहे थे। इसी चातुर्मास में मद्रास में स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार हेतु एक स्वाध्याय समिति के गठन की चर्चा चली। उसके विधान का प्रारूप भी तैयार किया गया। कुछ समय पश्चात् मुझे आचार्यप्रवर के दर्शन करने हेतु अजमेर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य भगवन्त के समक्ष चर्चा करने पर उनके मुख से अनायास निकल पड़ा - वर्ष भर में यह कार्य हो जायेगा। मैंने कहा , गुरुदेव । इसे एक महीने में ही पूरा करने का प्रयास किया जाएगा। मद्रास आकर पूरा प्रयास किया, लेकिन कोई न कोई बाधा या अड़चन उपस्थित हो जाती। साल भर पूरा होने पर ही समिति का पंजीकरण सम्भव हो सका।

(२) आचार्य श्री के मद्रास चातुर्मास का प्रसंग था। मेरी धर्मपत्नी की तपस्या चल रही थी। प्रतिदिन आचार्य भगवन्त के मुखारविंद से ही पच्चक्खान लिये जाते थे। जिस दिन २० की तपस्या थी, उस दिन हमेशा की भांति सायंकाल मैं आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुआ। मुझे देखकर आचार्य श्री ने सहज ही पूछा - "बहन की तपस्या कैसी चल रही है?" उस दिन पित्त एवं उल्टी की शिकायत ज्यादा थी, अत: मैंने स्थिति बताई तथा अर्ज किया कि २१ उपवास कर पारणा के भाव हैं। आचार्य श्री कुछ समय तो मौन रहे, फिर बोले - "धैर्य रखो। गर्म पानी के उपयोग से पित्त की प्रकृति शांत हो सकती है।" आचार्य श्री की कुछ समय की चुप्पी तथा प्रेरणापूर्वक सन्देश से मुझे ऐसा अहसास हुआ कि आचार्य श्री का हमारे चोरड़िया परिवार को आशीर्वाद प्राप्त है। जब मैंने श्रीमती जी को यह वार्तालाप सुनाया, तो उनका मनोबल जाग उठा और मासखमण की तपस्या करने का संकल्प कर लिया। वास्तव में यह ३० दिन की तपस्या सुखसाता पूर्वक सम्पन्न हुई। यह सब आचार्य देव की कृपा का ही फल था।

–89, Audiappa Naicken Street,
Ist Floor CHENNAI - 600 079

■

दूरदर्शी थे आचार्य भगवन्त

• श्री अनराज बोथरा

आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. मे अनेक गुण थे। उनकी दूरदर्शिता के तीन संस्मरण स्मृति-पटल पर आ रहे हैं।

(१) आचार्यप्रवर पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने अपने आज्ञानुवर्ती श्री प्रेम मुनि जी, श्री जितेश मुनि जी महाराज का वर्ष १९९० का चातुर्मास कोठारी भवन, सरदारपुरा, जोधपुर के लिए स्वीकृत किया था। आज्ञानुसार मुनिद्वय चातुर्मासार्थ सरदारपुरा पधारे। सरदारपुरा में उन्हें आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के न्यू पावर हाऊस के आसपास विराजने की जानकारी मिली तो मुनिद्वय दर्शन-वन्दन की भावना से न्यू पावर हाऊस रोड स्थित सुश्रावक श्री सम्पतराज जी बाफना की दाल मिल पधारे। विद्वद्वर्य श्री प्रेममुनि जी म.सा. ने दर्शन-वन्दन कर कहा कि गुरुदेव आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. ने हमारा चातुर्मास कोठारी भवन, सरदारपुरा फरमाया है। आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने मुनि श्री की बात सुनकर सहज कहा - "ठीक है, आप पावटा क्षेत्र खुला रखना।" मुनिद्वय कुछ समय सेवा का लाभ प्राप्त कर मांगलिक सुनकर विहार कर पुनः कोठारी भवन लौटना चाह रहे थे, तब पुनः आचार्य भगवन्त ने प्रेममुनि जी से कहा—"पावटा क्षेत्र का ध्यान रखना।"

मुनिद्वय मांगलिक लेकर अपने स्थान लौट आए। जोधपुर उनके लिए नया क्षेत्र था। उन्होंने पावटा किधर है, श्रावकों से पूछा और मन ही मन चिन्तन करने लगे कि आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने पावटा क्षेत्र खुला रखने की बात क्यों फरमाई है?

रात में एकाएक तेज वर्षा से कोठारी भवन के प्रायः सभी कमरों में पानी भर गया। सवेरा हुआ। देखा हर कमरे में पानी है। इस स्थान पर रहकर चातुर्मास सम्भव नहीं लगा। अभी चातुर्मासिक पक्खी में समय है, विचार कर मुनिद्वय श्री उगमराज जी मेहता के साथ पावटा क्षेत्र देखने आये। पावटा में धर्मनारायण जी के हत्थे में वर्द्धमान भवन खाली है, श्रावकों के आग्रह पर मुनिद्वय ने स्थान की उपयोगिता समझकर कोठारी भवन, सरदारपुरा के बजाय वर्द्धमान भवन, पावटा में चातुर्मास किया।

श्रद्धेय श्री प्रेममुनि जी म.सा. ने पावटा में प्रवचन सभा में आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज की दूरदर्शिता बताते हुए कहा कि उस दिव्य-दिवाकर ने हमें समय पूर्व सावधान कर संयम-साधना के निर्वहन में सम्बल दिया है, वह सदा स्मृति-पटल पर रहेगा।

(२) श्रद्धेय श्री प्रेममुनि जी म.सा. ने दीक्षा पूर्व के प्रसंग को लेकर फरमाया कि आचार्य भगवन्त भोपाल पधारे तब पांच छः भक्त उनके विहार में जा रहे थे, मैं भी उन लोगों के साथ हो गया। सभी श्रावकों ने आचार्य भगवन्त को वन्दन-नमन किया, मुझे देखकर आचार्य भगवन्त के मुखारविन्द से सहसा निकला कि तूं यदि दीक्षा ले तो जिनशासन की अच्छी प्रभावना होगी। उस समय मैंने दीक्षा का कभी सोचा भी न था, परन्तु उसके कुछ वर्षों बाद मेरी भावना बनी और मैं आचार्य श्री नानेश के चरणों में दीक्षित हुआ। आचार्य भगवन्त कितने दूरदर्शी साधक थे, जिन्होंने न तो मेरी कुण्डली देखी, न हाथ; लेकिन अपनी अनुभूति से जो फरमाया, आज वह सार्थक लग रहा है।

(३) सेठ मोतीलाल जी लोढ़ा मालेगांव (महाराष्ट्र) से जोधपुर आए हुए थे। आचार्य भगवन्त उस समय अजमेर विराजमान थे। दर्शन-वन्दन एवं मांगलिक-श्रवण की भावना से वे जोधपुर से नई कार लेकर अजमेर पहुँचे। उनका विचार अजमेर से कार द्वारा महाराष्ट्र जाने का था, अतः अपने कार्यों से निवृत्त हो वे मांगलिक श्रवण करने पूज्य आचार्य भगवन्त की सेवा में उपस्थित हुए। वन्दन-नमन एवं सुख-शांति पृच्छा कर लोढ़ा जी ने गुरुदेव से मांगलिक देने का निवेदन किया।

आचार्य भगवन्त ने पूछा- "अभी कौनसी गाड़ी है?" श्री मोतीलाल जी लोढ़ा ने कहा-"बाबजी! हम कार से जा रहे हैं।" "इतनी दूर और कार से?"

ज्ञानी गुरु के मनोभाव भक्त जल्दी समझता है। मन ही मन सोचा, यह ठीक नहीं है, इसलिये आचार्य भगवन्त के मुंह से निकला 'इतनी दूर और कार से'। लोढ़ा जी ने अपना और अपने परिवार के सदस्यों का कार से जाना स्थगित कर ड्राइवर से कहा- "तुम कार लेकर जाओ, हम रेल से पहुंच रहे हैं।"

मालिक की आज्ञानुसार ड्राइवर अजमेर से रवाना हुआ। कोई पन्द्रह किलोमीटर गाड़ी चली होगी कि अकस्मात् कार के इंजन में आग लग गई। नई गाड़ी का इंजन जल-बल गया। कुछ समय बाद सेठजी को सूचना मिली कि कार में अकस्मात् आग लग जाने से कार को नुकसान हुआ है और कार आगे बढ़ने की स्थिति में नही हैं। एक क्षण में उन्हें गुरुदेव के वे वचन ध्यान में आए 'इतनी दूर और कार से'।

पूज्य आचार्य भगवन्त कितने दूरदर्शी थे, जिन्होंने संकेत मात्र से सावधान भी कर दिया और कहने में कहीं दोष भी नहीं लगाया। धन्य है पूज्य गुरुदेव की दूरदर्शिता को।

–दीवानों की हवेली, घासमण्डी, जोधपुर।

■

जिनके पावन दर्शन से पापों के पर्वत हिलते थे

• श्री ब्रजमोहन जैन (भोणा)

महान् श्रुतधर आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने गुर्जर नरेश कुमारपाल को शासन में जोड़ कर जिनधर्म का उद्योत किया। महान् तपस्वी श्री हीर विजय सूरि ने भारत सम्राट् अकबर का हृदय परिवर्तन कर उन्हें अहिंसक बनाया। महान् आचार्य शिव मुनि विष्णु कुमार आदि तपः पूत तपस्वियों ने दुष्ट राजाओं की यातनाओं से संघ को मुक्त कराया, जिसका इतिहास साक्षी है। स्वर्णभूमि के महान् प्रभावक आचार्य कालक ने महाराज गर्दभिल्ल द्वारा अचानक किए अनाचार का विरोध कर गर्दभिल्ल को युद्ध में परास्त कर साध्वी सरस्वती को उनसे मुक्त कराया एवं जैन शासन की यशोगाथाएँ दिग् दिगन्त में फैलाई।

उसी श्रुत परम्परा के तपःपूत हमारे आराध्य आचार्य देव ने शासनसेवा में जो किया, उसके आद्योपान्त वर्णन में बुद्धि की अल्पता ही बाधक है। जिन शासन के प्रबल हितैषी ज्योतिर्धर आचार्यश्री की गुण गाथा को एक कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

धन्य जीवन है तुम्हारा, दीप बनकर तुम जले हो।
विश्व का तम तोम हरने, ज्यों शमा की तुम ढले हो॥
अम्बर का सितारा कहूँ या धरती का रतन प्यारा कहूँ।
त्याग का नजारा कहूँ या डूबतों का सहारा कहूँ॥

गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. श्रेष्ठ श्रमण थे और उभय लोक हितकारी श्रमण -जीवन के साथ उत्कृष्ट तप एवं ध्यान योग के उपासक, साधक एवं मौनाभ्यासी थे।

आपने आचार्य -काल में जैन संघ की उन्नति का शंखनाद किया। सर्वप्रथम आपने धर्मप्रिय श्रावकों में ज्ञान का अभाव देखा और उपाय सोचा । फलस्वरूप स्वामीजी श्री पन्नालालजी म.सा. के सहयोग से स्वाध्याय संघ की स्थापना की नींव रखी गई। फिर पर्वाधिराज पर्युषण में धर्माराधना से वे क्षेत्र भी लाभान्वित होने लगे जहाँ संत-सती नहीं पहुँच पाते हैं। समाज में ज्ञान का सम्बल मिलता रहे, एतदर्थ चिन्तन दिया। इस प्रकार 'जिनवाणी' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

विद्वानों को एक मंच पर लाने के लिये विद्वत् परिषद् की स्थापना एवं नये विद्वान तैयार करने के लिये जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान का शुभारंभ भी आपके सच्चिन्तन के फल रहे हैं।

आपको जैन इतिहास की कमी सदैव खटकती थी। अनेक ज्ञान भंडारों का अवलोकन कर विपुल ऐतिहासिक साहित्य सामग्री का सर्जन किया एवं जैन धर्म का मौलिक इतिहास जो चार भागों में विभक्त है, की रचना की। इतिहास के ये भाग समाज की अमूल्य निधि हैं।

सरस्वती पुत्र, क्रियोद्धार परम्परा के रत्न, ज्ञान शिखर, धीर वीर गंभीर, परोपकारी सन्त, साधना के सुमेरु, कठोर साधना योगी, जैन जगत के देदीप्यमान नक्षत्र, तात्त्विक व सात्त्विक , निर्भीक और निस्पृही, पर-दुःख में नवनीत सी कोमलता, परन्तु व्रत-पालन में चट्टान सम कठोरता, सौम्य और गंभीर श्रमण संस्कृति के गौरव, परम शान्त आत्मा, दूरदर्शी , भक्त वत्सल, स्वप्न द्रष्टा आचार्य श्री की यशोगाथाओं को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। आप को

उपमित करने के लिये शब्दों की कमी है। आप अध्यात्म सूर्य थे। आप हर हालत में प्रसन्नचित्त रहते थे।

आप अपनी साधु-मर्यादाओं के प्रति सदैव सचेत थे। मर्यादा का उल्लंघन आपको पसन्द नहीं था।

मुझे सन् १९६९ के अन्त में आपकी सेवा में पहुँचने का सौभाग्य श्री जतनराज जी सा मेहता, मेड़ता सिटी वालों के माध्यम से प्राप्त हुआ। जब मैं आपकी सेवा में पहुँचा तो वहाँ उपस्थित श्रावकों ने मेरी कृषि वेश भूषा देखकर व्यंग किया। यह किसान लड़का क्या गुरुदेव की सेवा करेगा। पर भाई मेहता सा. का निश्चय ही कहिए कि मैंने गुरुदेव की सेवा में लगभग २० वर्ष के लम्बे काल का लाभ उठा पाया।

आचार्यश्री समाज को निर्व्यसनी एवं प्रामाणिक देखना चाहते थे। पूज्य श्री शोभा चंद जी म.सा. शताब्दी साधना समारोह अजमेर एवं भगवान महावीर निर्वाण शताब्दी समारोह जोधपुर में लक्ष्य से अधिक व्रत-प्रत्याख्यान करवा कर आपने जैन संघ को समुज्ज्वल बनाया। आप प्रबल पुरुषार्थी थे। प्रातः से सायं तक आपकी लेखनी सदैव चला करती थी। प्रमाद को आप अपने पास आने का अवकाश ही नहीं देते थे। मुझे एक कवि के वाक्य स्मरण आ रहे हैं–

जिसने पहचानी न कोई, कद्र अपने वक्त की।
कामयाबी उसको हासिल हो सकती नहीं कभी॥

आपने समय के मूल्य को पहचान लिया था और हर क्षेत्र में कामयाबी हासिल की थी।

नारी उत्थान में आपका विशेष योगदान रहा । अपने संघ में महिलाओं के बराबर की भागीदारी प्रदान की और अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका संघ का श्री गणेश हुआ। इससे नारी जाति के लिये धर्म क्षेत्र में आगे बढने का नया आयाम खुला। नवयुवकों एवं बालकों को भी आपने प्रेरित किया।

आप दीन-दुःखी मानव को दुःखी हालत में देखकर द्रवित हो जाया करते थे। आपकी इस दीनोद्धार भावना के अनुरूप श्री भूधर कुशल साधर्मी कल्याण कोष की स्थापना हुई, जहाँ से प्रतिमाह सैंकडों असहाय भाई-बहिनों को सहयोग प्रदान किया जा रहा है।

आपका ज्ञान-बल बड़ा विशिष्ट था इस सन्दर्भ में मुझे एक घटना याद आ रही है । पूज्य श्री ने पश्चिमी राजस्थान के आगोलाई से ढांढणिया ग्राम की ओर विहार किया। ३ जनवरी १९६२ माघ कृष्णा ३ सं. २०२८ सोमवार को लगभग ५ बजे सायंकाल आगोलाई के श्रावक श्री चंदनमल जी गोगड का पाँच वर्षीय बालक अचानक घर से गुम हो गया। समूचे आगोलाई ग्राम व्यक्तियों ने रात्रि में हाथों में लालटेनें लेकर आस-पास का सारा जंगल ढूंढ लिया, पर इस अबोध शिशु का कहीं पता नही लगा। पूरा गांव उदासीन हो गया। क्योंकि गोगड परिवार गाँव वालों की हमदर्दी में सदैव अग्रणी रहता आया था। जब बच्चे का कहीं पता नहीं लगा तो कतिपय ग्रामीण ४ जनवरी को प्रातः ९ बजे के लगभग आचार्य श्री की सेवा में पहुंचे और रात से प्रातः तक की सारी घटना सम्मुख निवेदन की। प्रत्युत्तर में आचार्य श्री ने फरमाया - "चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं है, पुण्य व धर्म के प्रताप से बच्चा सकुशल मिल जायेगा।"

स्थानीय स्कूल के प्रधानाध्यापकजी एवं बच्चों का समूह सहकारी फार्म के आगे जंगल में निकल गया। वहाँ देखते हैं कि एक चट्टान पर बच्चा सो रहा है। उसे देखा तो वे पुलकित हो उठे एवं गाँव में ले आए। पूरे गांव में हर्ष की लहर दौड़ गई। गुरुदेव की वाणी सत्य सिद्ध हुई।

आप से देवता भी डरते थे। जिसमें निम्न गुण होते हैं, उनसे देवता भी भय खाते हैं।

उद्यमः साहसं धैर्यं, बलं बुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यत्र विद्यन्ते, तस्माद् देवोऽपि शङ्कते॥

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये ६ गुण जिनके पास होते हैं, उनसे देवता भी डरते हैं। गुरुदेव में ये सभी गुण थे।

सिंवांची पट्टी का ऐतिहासिक झगड़ा आपके साहस एवं बुद्धि की सूझ से ही निपट पाया था।

आपने अनेक स्थानों पर पशुबलि का निषेध करवाया। राजस्थान में मूण्डिया एवं मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर अभी भी आपके पराक्रम की यशोगाथाएँ सुनने को मिलती हैं।

आप आयुर्वेद पर विशेष विश्वास रखते थे । मंत्र, तंत्र, यंत्र, काल-ज्ञान, स्वर विज्ञान, शकुन-शास्त्र, स्वप्न शास्त्र सामुद्रिक शास्त्र एवं हस्तरेखा विज्ञान के साथ ज्योतिष एवं खगोल के भी वेत्ता थे। साथ ही फक्कड सन्त थे। जैन आगमों के गहन अन्वेषक एवं जैनेतर साहित्य के पारगामी विद्वान् थे।

जयपुर के महाराजा श्री मानसिंह जी ने जैन सन्तों के सम्बन्ध में कहा है–

काहू की न आस राखे, काहू से न दीन भाखे।
करत प्रणाम जाको राजा राणा जेवड़ा॥
सीधी सी आरोगे रोठी, बैठा बात करे मोटी।
ओढन को देखो जाके, धोळा सा पछेवड़ा॥
खमा खमा करे लोग, कदीयन राखे शोक।
बाजे न मृदंग चंग, जग मांहि जेवडा॥
कहे राजा 'मानसिंह' दिल में विचार देखो।
दुःखी तो सकल जन, सुखी जैन सेवड़ा॥

उक्त कथन आपके जीवन में अक्षरशः चरितार्थ होता था।

आपकी सेवा में राष्ट्र नायक, उच्च राज्याधिकारी, श्रीमंत, विद्वान्, न्यायाधिपति, उद्योगपति, व्यापारी, राज कर्मचारी, कृषक, व्यवसायी, साधर्मी एवं अन्य धर्मी गरीब-अमीर याचक-भाजक सभी समानरूपेण पहुँचते थे। अनेकों की आकांक्षाओं की पूर्ति भी सहज रूप से होती थी।

पूर्वी राजस्थान के सवाईमाधोपुर एवं भरतपुर जिलों में बसने वाले पोरवाल व पल्लीवाल जैनों में अविद्या एवं आर्थिक विपन्नता की स्थिति से आपका हृदय द्रवित हो गया। आपने इस क्षेत्र में शिक्षा का सूत्रपात कर नया दिशाबोध दिया। फलस्वरूप क्षेत्र में धार्मिक चेतना का संचार हुआ। सम्पन्नता के साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई है।

आचार्य श्री के जीवन में अतिशय था। आचार्य श्री की सेवा में चौथ का बरवाड़ा से श्रावक गोविन्द राम जी जैन अलीगढ-रामपुरा पधारे और कहा, 'अन्नदाता ! बीनणी की आँखों की ज्योति अचानक चली गई।' गुरुदेव ने अलीगढ-रामपुरा स्थानक से मांगलिक प्रदान किया और दूरस्थ बीनणी की आँखों में नव ज्योति का संचार हुआ।

एक बार मैं गुरुदेव के साथ बर - मारवाड़ के स्थानक में गुरु सेवा में रत था। सांयकाल एक बडे से बिच्छु ने मेरे पाँव में डंक मार दिया। मेरे पैर में वेदना शुरु हुई। गुरु महाराज प्रतिक्रमण में थे। मैंने कहा गुरुदेव बिच्छु ने डंक मार दिया, पाँव फट रहा है। उन्होंने मांगलिक सुनाया। थोड़ी देर में पैरों में झनझनाहट सी हुई और नींद आ

गई। वेदना समाप्त हो गई।

तपःपूत आचार्य श्री उत्कट साहसी एवं अदम्य उत्साह के धनी थे। अलवर एवं सतारा के क्षेत्रों में गाँव वालों द्वारा सता जा रहे काले सांपों को उनसे छुड़ाकर अपनी झोली में डालकर दूर जंगल में जाकर छोडा उन्हें अभय प्रदान किया।

आपकी ध्यान के प्रति विशेष लगन थी । जब कभी भी ध्यान के विषय को लेकर चर्चा चलती तो आप विशेष आह्लादित नजर आते थे। ध्यान शिविर लगा कर ध्यान साधकों की आपने अच्छी टीम तैयार की।

आप समूचे देश तथा विदेश में रहे भक्तों द्वारा सदैव पूजे जाते रहे।

नमस्कार मन्त्र के तीन पदों पर आप अधिष्ठित रहे। आचार्य, उपाध्याय एवं साधु के परमेष्ठि पदों की अपने शोभा बढ़ायी । परमेष्ठि के १०८ गुणों में से ८८ गुण आपमें एक साथ मिला करते थे। आपको की गई वंदना पूरे गुरु पद की वंदना होती थी, फिर भला भक्तों के दुःख दूर क्यों न होंगे। पंच परमेष्ठी में से आप तीन पदों के धारक थे। जैन जगत के समूचे इतिहास का अवलोकन करने पर भी शायद ही कोई ऐसा आचार्य दृष्टि गोचर होगा, जिसमें एक साथ आचार्य, उपाध्याय एवं साधु पद विद्यमान रहा हो, अतः आप जैन इतिहास के निराले ही श्रुतधर थे। आप ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे।

आपके सान्निध्य में अनेक भव्यात्माओं ने संसार की नश्वरता का बोध पाकर प्रवज्या ग्रहण की और आत्मोद्धार किया। कई आत्मार्थी सन्त महासतियों ने अपना भव-सुधार किया। आपकी संगति से अनेक संसारी प्राणी पारस के स्पर्श से सोना बनने की भाँति दुर्जन से सज्जन और कुव्यसनी से सुव्यसनी बने। अनेक ने आत्म-विकार नष्ट किये। इतने बडे महान् गुरु का सान्निध्य मिलने के बाद भी कतिपय आत्माओं ने लिया हुआ संयम भी छोड़ दिया। उस पर मुझे एक कवि की पंक्तियाँ प्रस्तुत करने का अवसर मिल रहा है-

परसी पारस भेंटिया, मिटग्या लोह विकार।
तीन बात तो ना मिटी, बांक धार अरू भार॥

आप जैसे पारस के स्पर्श के पश्चात् भी वे अपनी वांक, धार और भार के कारण संसाराभिमुख हुए। यह उनके कर्मों की ही विडम्बना है।

लेना संजम सहज है, पालन अति दुश्वार।
खुले पाँव से जोर दे, चलना असि के धार॥

आप अपने उद्बोधनों में अनीति का खुलकर विरोध करते थे। अनीति आपको अप्रिय थी।

आपके पावन चरणों से क्षेत्र-स्पर्शन की भावना निर्धन-अमीर सभी किया करते थे। कहा भी है कि शीलवान को सभी चाहते हैं-

शीलवंत निर्मल दशा, पा परिहं चहु खूँट।
कहे कबीर ता दास की, आस करे बैकुंठ॥

काल ज्ञान के अधिकारी पूज्य श्री को अपनी आयुष्य की समाप्ति का आभास हो आया था। उन्होंने अपना अंतिम समय नजदीक जानकर मारणान्तिक तपाराधन के लिये उपयुक्त स्थान निमाज को चुना जिसके बारे में सन् १९८४ के वर्षावास में रेनबो हाउस जोधपुर में अस्वस्थता की स्थिति में श्री हीरा मुनि जी म.सा. द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में आपने फरमाया था कि मुख्य राज मार्ग पर बसी नगरी हो, देवालय हो, हरा भरा वन हो, पास में ज्ञान शाला हो एवं जलस्रोत (कुँआ) हो ये पाँच बातें जहाँ मिलती होंगी वहाँ जानना कि मेरा संथारा - समाधि मरण तप

होगा। इन पांच बोलों का योग निमाज में मिला।

आपकी यादें - स्मृतियाँ ज्यों की त्यों हैं, पर गुरुदेव अब देह से हमारे बीच नहीं है।

अध्यात्म-लोक की इस दिव्य विभूति की सदियों तक सुगन्ध व्याप्त रहेगी-

तू नहीं तेरी उल्फत हर किसी के दिल में है।
शमा तो बुझ चुकी रोशनी महफिल में है॥

उखलाना, पो. अलीगढ, जिला टोक (राज.)

■

अगणित वन्दन सद् गुरुराज को

• श्री नेमीचन्द जैन

• संयम धर्म पर अनूठी दृढ़ता

श्रमण सूर्य पूज्य प्रवर्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म.सा. का संवत् २०४० का अंतिम चातुर्मास मेड़ता सिटी में था। एक रात हम श्री मरुधर केसरी जी म.सा. की सेवा में बैठे थे। धर्म के प्रति दृढ़ता का विषय चला। पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के जीवन का एक प्रसंग भी आ गया। महाराज श्री ने बड़े ही भाव भरे शब्दों में फरमाया कि जब सतारा (पूना) के पास कुछ नासमझ लोग एक भयंकर विषधर नाग को बड़े बेरहमी से मार रहे थे, उस समय आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. उन लोगों के बीच पहुंच गये। प्रेम से समझाते हुए पूर्ण निर्भयता के साथ कपड़ा डालकर क्षुब्ध नाग को हाथ में ले लिया। बिना क़िसी संकोच के बाहर जंगल में जाकर छोड़ आये।

श्री मरुधर केसरी जी म.सा. ने फरमाया कि ऐसी होनी चाहिए संयमधर्म के प्रति दृढ़ आस्था।

जब मरूधर केसरी जी म.सा. जैसे महापुरुष ने भी इस प्रसंग का उल्लेख किया तब इस घटना की महत्ता व विश्वसनीयता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

आचार्यप्रवर जीवों पर करुणा के क्षेत्र में फूल से भी कोमल तथा छह काय के जीवों की रक्षा के क्षेत्र में वज्र से भी कठोर थे।

उपर्युक्त घटना क्रोध के ऊपर क्षमा की तथा विष के ऊपर अमृत की विजय थी।

• हृदय में बसा संथारा

पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. का संथारा निमाज में चल रहा था। तप संथारे का तेरहवां दिन। मेरे रिश्तेदार गोटण निवासी श्री जोगीलाल जी कांकरिया आचार्य श्री के दर्शनार्थ निमाज आये और सहज भाव से मुझे सुझाव दिया–"आप पूज्य श्री को १०८ बार वंदन करने का महान् लाभ प्राप्त कर लें। क्योंकि यह धर्म सूर्य शीघ्र ही अस्त होने वाला है।" उनका कथन मेरे लिए संकल्प में बदल गया।

उसी रात को संतों की अनुमति लेकर आचार्य श्री के सान्निध्य (सन्निकट) में पहुंच गया।

वंदन करना प्रारम्भ किया। १०८ बार वंदन करने का संकल्प साकार हुआ। मन में अत्यन्त प्रसन्नता, प्रमोद तथा उत्साह था। किन्तु मैं स्तब्ध भी रह गया यह जानकर कि आचार्य श्री पूर्ण जागृत अवस्था में हैं। शारीरिक वेदना भी असाधारण है। ग्रीष्म ऋतु की भीषण तपन है। प्राणी आकुल व्याकुल हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में भी यह प्रतीत नहीं हो रहा था कि आचार्य श्री इस कक्ष में लेटे हुए हैं। उनके अंगों के हलन-चलन की भनक तक नहीं।

शारीरिक वेदना का लेश मात्र भी इजहार नहीं। आत्म-चिन्तन में लीन। मन, वचन व काया का उत्कृष्ट गोपन। समत्व भावों में अद्भुत रमण। पूर्णतया मौनस्थ। मृत्यु का भय नहीं, जीने की आकांक्षा नहीं।

ऐसे उत्कृष्ट योगी को अगणित वंदन करता हुआ मैं संथारे (संलेखणा) के कक्ष से बाहर आया, लेकिन पूज्य गुरुदेव का संथारा हृदय में सदा सदा के लिए बस गया।

• कौन था वह ?

निमाज में आचार्य श्री का संथारा चल रहा था। मन में एक उत्सुकता थी कि आचार्य श्री के संथारे को नजदीक से देखा जाए। संथारे का शारीरिक अंगों तथा मन के भावों पर कैसा तथा किस रूप में प्रभाव पड़ता है, यह जिज्ञासा बलवती हुई। अतः बोर्ड की परीक्षा में प्रतिनियुक्त होते हुए भी एक-दो दिन छोड़कर दूसरे, तीसरे दिन निमाज पहुंचता था।

एक रात बिलाड़ा बस स्टेण्ड पर बस की इंतजार में ९.०० बज गये। आखिर एक ट्रक में बैठा। ट्रक ड्राइवर ने निमाज राजमार्ग पर एक किलोमीटर पहले उतरने की मुझे सलाह दी। मैं उतर गया। पास की गली से प्रस्थान किया। एक कि.मी. चला। उजाड़ जंगल। भूत की तरह झाड़ खड़े थे। आगे रास्ता नहीं। विचार हुआ, गलत रास्ता पकड़ लिया है। चढती रात है। यहां से लौटना चाहिये। आचार्य श्री के नाम का स्मरण करता हुआ वापस रवाना हुआ और राजमार्ग पर आ गया। वहां से प्रस्थान किया ही था कि एक साइकिल सवार आ पहुंचा। मैनें उससे निमाज के अन्दर जाने का रास्ता पूछा तो उसने सहज भाव से मुझे कहा-"आप मेरी साइकिल पर बैठिये। आप जहां चाहते हैं वहां आपको छोड़ दूँगा।" मैंने स्पष्ट मना कर दिया। लेकिन वह माना नहीं। उसके और मेरे बीच खींचताण हो गई। आखिर उसने मुझे साइकिल पर बैठने के लिए राजी कर लिया। मुझे साइकिल पर बिठाकर आचार्य श्री के संथारा स्थल पर लाकर छोड़ दिया। साइकिल से उतरने के पश्चात् वापस देखा तो वहाँ न साइकिल थी और न ही साइकिल सवार।•

वह साइकिल सवार कौन व्यक्ति था? वह किसलिये वहां आया? ये प्रश्न अभी भी अनुत्तरित ही हैं।

-प्रधानाचार्य, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
अरटिया कलां (जोधपुर)

■

विशिष्ट ध्यान-साधक आचार्य हस्ती

• श्री प्रकाश चन्द जैन

जिनके जीवन में ज्ञान की अतुल गहराई थी, चारित्र की अद्वितीय ऊँचाई थी, संयम का अनूठा तेज था, ब्रह्मचर्य का देदीप्यमान ओज था, दया-करुणा तथा ममता का स्रोत था, उन आचार्य श्री हस्ती का जीवन जन-जन के आकर्षण का केन्द्र था। चन्द्रमा के समान सौम्य एवं सूर्य के समान तेजस्वी, गुलाब के समान मुस्कराते हुए उनके चेहरे को देखकर भक्त हृदय आनन्द के सागर में डूब जाता था। उन्होंने अपने ७१ वर्ष के साधना-काल में सामायिक-स्वाध्याय व ध्यान-साधना पर विशेष बल दिया। प्रतिदिन दोपहर १२ से १ का समय ध्यान के लिए नियत था।

ध्यान से चित्त की शुद्धता बढ़ती जाती है और परिणामस्वरूप अनेक अज्ञात बातें ज्ञात हो जाती हैं। आचार्य श्री के ध्यान सम्बन्धी दो संस्मरण स्मृति-पटल पर अंकित हैं, वे इस प्रकार हैं–

(१) वर्धमान नगर, नागपुर के जैन स्थानक में सुश्रावक श्रीप्रेमजी भाई नागसी आदि बन्धु सेवा में उपस्थित होकर ध्यान संबंधी चर्चा करने लगे। चक्रों की अनुभूति की बात चली। उस समय आचार्य श्री ने यह भाव फरमाये - "मैं करीब ४० वर्षों से निरन्तर नियमित समय पर ध्यान करता हूँ, मुझे तो अभी तक चक्रों की अनुभूति नहीं हुई है। लेकिन ध्यान-साधना से चित्त की शुद्धता इतनी बढ़ जाती है कि अनेक बातें ध्यान के समय प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती हैं। अजमेर सम्मेलन के समय आचार्य सम्राट् श्री आत्मारामजी म.सा. का एक शिष्य कहीं चला गया था। आचार्य श्री को बहुत चिन्ता हुई मुझे भी वह समाचार ज्ञात हुये। १२ बजे के समय जब मैं ध्यान में बैठा तो वह साधु मुझे एक मकान के कमरे के कोने में बैठा हुआ दिखाई दिया। मैंने एक भक्त श्रावक को ध्यान समाप्ति पर बुलाकर उस स्थान पर जाने का संकेत किया। उन्होंने वहाँ जाकर देखा तो वह साधु उस स्थान पर बैठा हुआ था। आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. को समाचार देकर उस साधु को वापस लाया गया । यह कोई चमत्कार नहीं था। चित्त की शुद्धि से यह सम्भव हो जाता है।"

(२) बोरवड़ (महाराष्ट्र) के जैन स्थानक में आचार्य श्री अपनी शिष्यमण्डली सहित विराजमान थे। मैं सामायिक करके तिलक विद्यापीठ पूना की संस्कृत-परीक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर रहा था। आचार्य श्री ने मुझसे कहा - "भाई ! इस पुस्तक के कुछ श्लोक कंठस्थ करलो।" मैंने कहा - "गुरुदेव । परीक्षा में श्लोक नहीं पूछे जाते, केवल अर्थ व प्रश्नोत्तर ही पूछते हैं। गुरुदेव मुस्कराते हुये बोले - "भैय्या ! याद करने में क्या नुकसान है। अभी ५ श्लोक याद कर मुझे सुनाना। मैंने आचार्य श्री के आदेश को शिरोधार्य करके ८-१० श्लोक कंठस्थ कर लिये। परीक्षा के प्रश्नपत्र में एक प्रश्न आया, कोई भी २ श्लोक लिखिए। मैंने तत्काल गुरुकृपा से याद किये गये श्लोकों में से २ श्लोक शीघ्र लिख दिये। आचार्य श्री की उस बात को याद कर मैं मन ही मन उन्हें वन्दना कर रहा था। ऐसे महान् आत्मसाधक, ध्यान योगी, जिनशासन के महान् नक्षत्र आचार्य देव के चरणों में शत शत वन्दना।

प्राचार्य, श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ, जलगाँव

■

साधना के धनी

• श्री प्रेमचन्द कोठारी

भारत भूमि पर अनेक सन्त-महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपनी साधना एवं आत्म-कल्याण के साथ - साथ विश्व को भी मार्गदर्शन दिया है। उन महापुरुषों में श्रद्धेय आचार्य श्री हस्ती का भी अपना विशिष्ट स्थान रहा है। आचार्य श्री का समग्र जीवन अनेक प्रेरक प्रसंगों से भरा हुआ था। यों लिख दिया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वह महापुरुष प्रेरणा का चलता-फिरता बोलता कोष था। साधक को साधना में लगाने की उनमें आकर्षक शैली थी।

एक बार मैंने आचार्य श्री के दर्शन किये। अक्सर जब भी कोई उनके निकट आता तो उनका लक्ष्य उसको आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करने का रहता था। मैं उस समय नित्य सिर्फ एक सामायिक करता था। आचार्य श्री ने पूछा, 'सामायिक करते हो ?' निवेदन किया, 'करता हूँ।' फिर पूछा, 'कितनी करते हो ?' निवेदन किया, 'एक करता हूँ।' शिक्षा दी, 'भाई आगे बढ़ो।' उत्तर था,'अवकाश की कमी है।' आचार्य श्री ने फरमाया, "भाई दो सामायिक नहीं कर सकते हो तो भी सामायिक का काल बढ़ा कर सवा सामायिक कर लो अर्थात् जीवन का एक घंटा संवर-सामायिक में लगाओ व उस बढ़ाये हुए समय में नियमित व व्यवस्थित स्वाध्याय करो।" बात सरलता से गले उतर गई, व जीवन में स्थान दे दिया। बाद में जब भी दर्शन का प्रसंग आता, पूछते रहते, 'साधना चल रही है और आगे बढ़ो, आज क्या नियम लोगे ?' इस तरह के व्यवहार से प्रत्येक निकट आने वाले व्यक्ति को ऐसा लगता था "गुरुदेव की मेरे ऊपर असीम कृपा है, मेरी गतिविधि का ध्यान रखते हैं", जबकि सभी के साथ उनका ऐसा ही आकर्षक कुशल व्यवहार रहता था। इसी प्रकार निकट आने वाले की पात्रता देखकर उसे वे किसी न किसी संवर-क्रिया से जोड़ने में कुशल थे।

स्वयं की साधना के साथ-साथ संघ-सेवा का भी पूरा लक्ष्य था। आचार्य श्री अन्तिम बार जब बून्दी पधारे थे, उस समय मैंने व्यापार से निवृत्ति ले थी, मेरी भावना थी कि मैं सदा के लिए मौन रख कर एक तरफ बैठ कर मात्र धर्मध्यान में ही जीवन बिताऊं। मैंने सोचा कि आचार्य श्री की संघ सेवा की तीव्र पैनी अनुभवी दृष्टि है, अतः इस विषय में आपसे मार्ग-दर्शन या प्रेरणा प्राप्त करूं। आचार्य श्री ने पहले तो फरमाया कि मेरा निर्णय उचित है, लेकिन बाद में फरमाया-"भाई मैं तो अभी ८० वर्ष की अवस्था में भी गाँव-गाँव विहार कर जिनशासन की प्रभावना की भावना रखता हूँ और तुम एक तरफ बैठना चाहते हो। अपनी साधना भी करो व संघ-सेवा भी। जिस संघ की छत्र छाया के कारण तुम्हें परम्परागत संस्कार मिले हैं, तुम्हारा विकास हुआ है उस संघ को तुम्हारी योग्यता, शक्ति एवं समय का लाभ मिलना चाहिए। जिनशासन की प्रभावना के लिए भी पुरुषार्थ करना चाहिए।" उसी प्रेरणा के कारण आज मैं संघ-सेवा से जुड़ा हुआ हूँ, संघ-सेवा में रुचि बनी हुई है।

मुझे ऐसी जानकारी मिली थी कि आप अन्तिम समय जब निमाज विराज रहे थे, उस समय अन्य सम्प्रदाय से निकले दो सन्त आपके दर्शन करने व साता पूछने पधारे। सन्तों ने आपसे शिक्षा फरमाने हेतु निवेदन किया। आचार्य श्री ने फरमाया "मेरा तो यही कहना है कि आप जहाँ से आये हो, वहीं वापस जावें, अपने ठिकाने पर ही अपनी प्रतिष्ठा व शोभा है।" कितना निष्पक्ष एवं उचित मार्गदर्शन था। अन्य सम्प्रदाय के होने पर भी उस सम्प्रदाय के प्रति उनके मन में हीन भाव पैदा होने वाली बात नहीं कही।

एक बार आचार्यश्री के सुशिष्य आत्मलक्ष्यी तत्त्वचिन्तक पूज्य श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. के पास आचार्य श्री की हस्तलिखित दैनन्दिनी देखने का प्रसंग आया। आपकी दैनन्दिनी में गुणग्राहकता व गुणानुवाद की विशेषता को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ। उस डायरी में झालावाड (राज.) जिले के रायपुर निवासी श्री पूनमचन्दजी धूपिया एवं मन्दसौर जिले के रामपुरा निवासी आगमज्ञ श्रावक श्री केसरीमल जी की विशेषताओं का वर्णन अंकित था।

सन्त का जीवन सूपड़े (छाजले) की तरह होता है। जैसे सूपडा अनाज में से कंकर-कचरा आदि विजातीय द्रव्य निकालकर अनाज को छाँटकर रख लेता है, उसी प्रकार सन्त अनुकूल, प्रतिकूल प्रसंग, व्यवहार, वचन आदि में अपने हित की बात ध्यान में ले लेते हैं शेष को माध्यस्थ भावना रखते हुए छोड देते हैं, पकड़ नहीं करते हैं ऐसा मैंने उनके जीवन में अनेक बार देखा। वास्तव में उस महापुरुष को जिसने भी निकट से देखा, वह अनुभव करता है कि उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में मौन, ध्यान, विचक्षणता, सजगता आदि गुण झलकते थे। साथ में सीख भी मिलती थी। वास्तव में महापुरुषों की जिह्वा नहीं, जीवन शैली बोलती है। वह सबके लिए हितकर होती है।

–पूर्व महामंत्री , अ.भा. श्री सुधर्म जैन श्रावक संघ,
चौगान गेट, बूँदी

■

मेरे प्रेरणा स्रोत आचार्य श्री

• श्री रणजीतसिंह कूमट

बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन में हमारी मूरत को कई लोग घड़ते हैं और जगह-जगह पर छैनी हथौड़े से एक शक्ल सूरत प्रदान करते हैं। बहुत छोटी अवस्था में माता-पिता यह कार्य करते हैं। जब बड़े होते हैं तो स्कूल में अध्यापक और धर्माचार्य हमारे जीवन की मूरत को घड़ते हैं। ऐसे ही थे आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज जिनकी प्रेरणा से मेरी मूरत घड़ी गई।

आचार्यप्रवर के कई प्रेरणाप्रद प्रसंग हैं और उन सबको लिपिबद्ध करना एक लेख में सम्भव नहीं, लेकिन कुछ बातें ऐसी रहीं जिन्होंने मुझ में लेखन शैली का एवं लिखने की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव किया। जब मैं दिल्ली में अध्ययन कर रहा था उस वक्त आचार्य श्री का चातुर्मास दिल्ली में हुआ और सप्ताह में एक या दो बार जाने का प्रसंग बन जाता था। जब भी मैं जाता आचार्य श्री पूछते, 'कुछ पढ़ता है, कुछ लिखता है' मैं कहता, 'पढ़ता तो हूँ, लेकिन लिखना नहीं आता।' मृदु रूप से हँसते और कहते, 'प्रयास करो। स्वाध्याय धर्म का मूल अंग है और स्वाध्याय में पढ़ने के साथ लिखना भी आवश्यक है।' दो-तीन बार पूछने पर भी कुछ नहीं लिख पाया और असमर्थता जाहिर की तो उन्होंने कहा कि तुम अंग्रेजी में कोई अच्छा लेख पढ़ते हो तो उसका ही हिन्दी रूपान्तर कर दो। 'धर्मयुग' या अन्य अखबार में लेख लिखे जाते हैं उनको भी संक्षेप कर लेख लिख सकते हो। बार-बार उनकी प्रेरणा और पृच्छना से प्रेरित हो पहला लेख 'जिनवाणी' में छपने भेज दिया। लेख छप गया। आनन्द विभोर हुआ और लिखने की प्रेरणा बनती रही और कुछ न कुछ लिखता रहा। जब भी आचार्य श्री मिलते, यही पूछते—क्या लिखा? क्या पढ़ा? एक बार मैंने कहा कि समय नहीं मिलता, तो कहा कि सामायिक में भी यह कार्य कर सकते हो और रविवार को एक अतिरिक्त सामायिक कर पढ़ने और लिखने का कार्य कर सकते हो। लिखते-लिखते ३०/४० लेख एकत्रित हो गये तो उन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'मुझे मोक्ष नहीं चाहिए।' यह शीर्षक बड़ा अजीब लगा, लेकिन पढ़ने वालों ने मेरे इस मत से सहमति व्यक्त की कि जीवन वर्तमान के लिए है न कि भविष्य के लिए। यदि वर्तमान ही नहीं सुधरा तो भविष्य कैसे सुधरेगा।

१९७८ में विपश्यना ध्यान में बैठा। उसके बारे में आचार्यश्री ने बहुत बातें पूछी। उनको नई नहीं लगी, क्योंकि लगता था कि वे स्वयं इसको प्राप्त कर चुके थे। आचारांग सूत्र की कुछ गाथाओं के बारे में मुझे कुछ शंका हुई और पूछने गया तो उन्होंने निःसंकोच कहा, 'जो कुछ विपश्यना में सीखा-पढ़ा है वही उन गाथाओं का अर्थ है।'

स्वाध्याय, ध्यान और लेखन पर हमेशा उन्होंने जोर दिया। जब भी मैं दर्शनार्थ गया तो स्वयं भी किसी पुस्तक को लिखने में लगे रहते थे। जैन धर्म के इतिहास के चार बड़े ग्रन्थ उनके स्वयं के शोध के आधार पर लिखे गये हैं। अपने लिखने और चिन्तन के कार्य में वे इतने तन्मय रहते थे कि दर्शनार्थी बार-बार मांगलिक सुनाने के लिए कहते तो उन्हें एकाग्रता में व्यवधान महसूस होता था। आचार्यश्री के गुणगान के लिए सभी शब्द कम पड़ जाते हैं। उन्होंने मेरे जीवन पर जो उपकार किया है उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। जीवन में सामायिक, समता, स्वाध्याय आदि के गुण उन्हीं की प्रेरणा के सुफल हैं और उन्हीं से जीवन में शान्ति अनुभव होती है।

A-201, दशरथ मार्ग, हनुमान नगर, जयपुर

२९ अप्रेल, १९९८

अध्यात्म-योगी तपोमूर्ति

• श्री जवाहरलाल बाघमार

जैन जगत नित कर रहा, अविरल जिन पर नाज।
त्याग तपस्या के धनी, श्री हस्तीमलजी महाराज॥
चर्चा जिनकी देश में, गांव गली घर आज।
जन-जन के अन्तर बसे, श्री हस्तीमलजी महाराज॥
सबके बन करके रहे, माने सकल समाज।
हे ! धन्य धन्य तप मूर्ति, श्री हस्तीमलजी महाराज॥
जग को नित ऐसे लगे, तारण तिरण जहाज।
सबके मन को भा गये, श्री हस्तीमलजी महाराज॥
अल्प आयु में आपने, सुन मन की आवाज।
महावीर पथ पर चले, श्री हस्तीमलजी महाराज॥
मोहित सबको कर गये, जीवन के अन्दाज।
स्मृति जिनकी शेष, ऐसे हस्तीमलजी महाराज॥

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन रत्नवंश के सप्तम पट्टधर, सामायिक स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, इतिहास मार्तण्ड, अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी , चारित्र चूड़ामणि , अध्यात्म योगी, परम पूज्य आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. के चरण कमलों में रहने का असीम सौभाग्य मुझे लघु वय से ही प्राप्त हुआ। वैसे, मैं उनकी जन्मस्थली पीपाड़ के पास कोसाना (राजस्थान) का निवासी हूँ। जीवन के लिये, आत्म-अभ्युदय के लिये, ज्ञानार्जन के लिये स्वाध्याय परम आवश्यक है - इस सत्य को मैंने उन्हीं के सान्निध्य में रहकर समझा। उनकी दूरदर्शिता और वाणी की सत्यता के प्रति वैसे तो हजारों लाखों व्यक्ति नतमस्तक हैं, मैंने स्वयं भी अपने जीवन में उनकी वाणी की सत्यता और भविष्य द्रष्टा होने की विशेषता के अनेक बार प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं।

संवत् २०४६ में हमारे ग्राम कोसाना में ही आचार्य प्रवर का चातुर्मास था। हमेशा की तरह सपरिवार मैं भी वहीं था। नित्य-नियम के अनुसार प्रातः प्रार्थना में सम्मिलित होता, फिर दर्शन-प्रवचन का लाभ लेता। एक दिन प्रातः आचार्यप्रवर ने मुझे अपने पास बुलाकर पूछा –“तुम्हारे मन की क्या अभिलाषा है?” मैं कुछ असमंजस में पड़ गया, यकायक कुछ प्रत्युत्तर नहीं दे सका। यह बात मैनें मेरे ससुर महोदय श्रीमान् अमरचन्द जी सा छाजेड़, राजस्थान में मेवड़ा (जि. अजमेर) निवासी को जो उन दिनों कोसाना आये हुये थे, बतायी। उन्होंने कहा, आचार्य प्रवर ने कुछ विशेष प्रयोजन से ही आपसे यह प्रश्न किया होगा। मैंने इस बात पर गौर किया और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे मुझे तपश्चर्या के मार्ग पर बढ़ने के लिये प्रेरित कर रहे हों। अतएव दूसरे दिन प्रार्थना के बाद मैंने उपवास के पच्चक्खाण ले लिये। बड़ी शान्ति से वह दिन बीता। दूसरे दिन मैंने बेला पच्चक्ख लिया। फिर तीसरे दिन मैंने बड़े उत्साह से तेला भी पच्चक्ख लिया। उस वक्त आचार्य प्रवर ने मुझे गौर से देखा और मंद मंद मुस्कुराते हुये पूछा - “आगे भी भाव हैं क्या?” मेरे मुँह से अनायास ही निकला - “गुरुदेव आपका आशीर्वाद होगा तो अठाई भी पूरी कर लूँगा।” हालांकि उन दिनों तक मैंने उपवास या बेले से आगे की तपस्या कभी की ही नहीं थी।

यह समाचार जब मेरी धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिकंवर तक पहुँचे कि मैं अठाई करने की ठान चुका हूँ तो वे भी आचार्य श्री के दर्शनार्थ पहुँची और बड़ी अनुनय विनति के साथ पाँच उपवास पच्चक्खाने की प्रार्थना करने लगी,

पर गुरुदेव ने यह फरमाया कि यह तुम्हारे बस की बात नहीं है। परन्तु मेरी श्रीमती अडिग रहीं और बडी निश्चिन्तता से पाँच उपवास पच्चक्खाने की विनती करती रही। उनकी जिद और हार्दिक इच्छा देखकर पच्चक्खाण करवा दिये गये। इस जिद का नतीजा भी शीघ्र ही सामने आ गया। पाँच की यह तपस्या पूर्ण करने में उन्हें कितने कष्ट और शारीरिक वेदनाओं से जूझना पड़ा, यह मैं, मेरी श्रीमतीजी और मेरा परिवार ही जानता है। आचार्य भगवन्त तो सर्वदर्शी थे, पहले ही जानते थे कि यह तपस्या उनके बस की बात नहीं है, साथ ही गुरुदेव की सत्प्रेरणा के फलस्वरूप मेरी अठाई की तपस्या बड़ी शान्तिपूर्वक और निर्विघ्न सम्पन्न हुई। उस दिन से हमने यह समझा कि महापुरुषों के एक-एक शब्द में कितना यथार्थ, कितना पूर्वाभास छिपा रहता है। आचार्यप्रवर की दूरदर्शिता, भविष्य-दृष्टि और सत्य-वाणी के प्रति हम श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

आचार की दृढता और विचार की उदारता आपके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। आप प्राय: कहा करते थे कि आचार में मेरु पर्वत की तरह अडोल बने रहो और विचार में गंगा की पवित्रता लिये बहते चलो। आप सम्प्रदाय को एक परिवार मानते थे और कहा करते थे कि अपने परिवार के विकास के लिये सतत क्रियाशील रहो, पर किसी के लिये बाधक न बनो। दूसरे को गिराकर उठने का प्रयत्न न करो, सबको साथ लेकर चलो। इसी भावभूमि पर अन्य सम्प्रदायों के प्रति आपका सदा सहिष्णुता का भाव रहा। यही कारण है कि सभी सम्प्रदायों के लोगों की आप में पूर्ण आस्था एवं अगाध श्रद्धा-भक्ति रही।

समाज को धार्मिक, शैक्षिक व अन्य सर्वजन हितकारी प्रवृत्तियों की सतत प्रेरणा देते हुए भी आप सदैव आत्म-चिन्तन और धर्म-ध्यान में लीन रहते थे। एक क्षण भी आप प्रमाद में नहीं बिताते थे। चिन्तन मनन, जप-तप, स्वाध्याय में लीन रहते हुए भी आप सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक भाई-बहिन, बाल, युवा, वृद्ध को उसकी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक प्रवृत्ति बनाने की प्रेरणा और नियम सिखाते थे। पात्र में रही हुई योग्यता देखकर, उसे उसी ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते, जिससे आपके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति आपके दर्शन कर आंतरिक प्रसन्नता और विशिष्ट शांति का अनुभव करता था। आपकी दी हुई प्रेरणा और कहे हुए वचन हृदय की गहराई तक स्पर्श करते थे और आपकी कोई भी बात भारभूत नहीं लगती थी। यही कारण है कि आपके सम्पर्क में आने वाले भाई-बहिनों के जीवन में रूपान्तरण आया है और वे सच्चे मानव और आदर्श नागरिक बनने की ओर अग्रसर हुए हैं।

आप जैसे ज्योतिर्धर आचार्य का मार्ग-दर्शन पाकर हमारा संघ ही नहीं, पूरा समाज, राष्ट्र और विश्व कृतकृत्य हो उठा। आज पार्थिव रूप से आप हमारे बीच नहीं हैं, पर स्वाध्याय के रूप में दिया गया आपका सन्देश हमें सदा प्रेरणा देता रहेगा।

४ अक्टूबर १९९९

–6, Chandrappa Mudali Street, Sowcar pet, Chennai

■

स्वाध्याय - सेवा के प्रेरणास्रोत

• श्री फूलचन्द मेहता

आचार्य श्री के पावन सान्निध्य एवं प्रेरणा से मेरे जीवन में परिवर्तन आया। मेरी दैनिक चर्या व दृष्टिकोण में बदलाव आया। उसका विवरण :-

मेरी माता एवं बहन सन् १९४७ में दीक्षित हुए। मेरे पिता शास्त्रों के ज्ञाता थे। वे प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे तथा जब संत-सतियों का वल्लभ नगर में पधारना नहीं होता तो वे ही समय-समय पर व्याख्यान करते थे।

संसारी जीवन में नौकरी करते हुए अधिकतर न्यायनीतिमय जीवन जीते हुए संत-समागम में सामायिक, दया, आयंबिल , उपवास, एकाशन कभी-कभी किया करता था। हमने उस समय डूंगला में जैन विद्यालय संचालन समिति स्थापित की। मेवाड़ क्षेत्र में उदयपुर, चित्तौड़, भीलवाड़ा तथा कुछ मध्यप्रदेश क्षेत्रों में इसके अन्तर्गत जैन पाठशालाएं खोली। इनके निरीक्षण एवं शिविरों का आयोजन और उनमें पढ़ाने- लिखाने का जिम्मा मेरा था। प्रत्येक राजकीय छुट्टी इन्हीं पाठशालाओं के निरीक्षण में बीतती थी।

शिविरों में अध्यापन एवं संचालन मैं ही किया करता । फिर मालूम हुआ तो सन् १९७० में जोधपुर स्वाध्याय संघ से अध्यापन हेतु शिक्षक बुलाये गए, जिसमें श्रीमान् सम्पतराज सा डोसी एवं श्रीमती सुशीला जी बोहरा पधारे। उनसे सम्पर्क हुआ। उन्हें हमारा कार्यक्रम अच्छा लगा। उन्होंने मुझे सलाह दी एवं प्रेरणा की कि इन पाठशालाओं के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को स्वाध्याय संघ के सदस्य बनायें। मैंने प्रेरणा देकर कई सदस्य बनाए। जोधपुर स्वाध्याय संघ के शिविरों में मुझे बुलाया गया।

स्वाध्याय संघ के शिविरों के माध्यम से ही मैं आचार्यप्रवर के सम्पर्क में आया। वैसे मैं पूर्व में भी दर्शन कर चुका था, किन्तु स्वाध्याय संघ से जुड़ने के बाद उनके जीवन को विवेकपूर्वक देखा तो वे शान्त, सौम्य एवं अन्दर बाहर समान दिखे। माला में, ध्यान-चिन्तन में, मौन-साधना में रहते तथा किसी से बात करने में एकमात्र व्रत-नियम, सामायिक-स्वाध्याय के लिए ही प्रेरणा करते थे। अन्य कोई आडम्बर, क्रिया-काण्ड, प्रदर्शन नहीं देखकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। जब-जब भी मैं जाता तो एक मात्र मुझे स्वाध्याय की प्रवृत्ति, स्वाध्यायियों की गति - प्रगति, उनके जीवन में त्याग-वैराग्य, स्वाध्यायमय जीवन में निखार एवं अधिक से अधिक स्वाध्यायी बनें, उनका जीवन उन्नत बने वे पर्युषण में सेवाएँ दें, शिविरों में भाग लें इस प्रकार की ही प्रेरणा करते थे। यह कभी नहीं कहा कि इन स्वाध्यायियों को अपना भक्त बनायें। उनकी उदारता, विचक्षणता, निष्पक्ष दृष्टिकोण, असाम्प्रदायिकता की छाप मुझ पर पड़ी।

इसी कारण मैं अपना अन्तर निरीक्षण करता एवं अपने को मैंने असाम्प्रदायिक बनाये रखा। गुणदृष्टि, परमार्थ दृष्टि, निष्पक्ष दृष्टि के कारण सूत्रों का, ग्रन्थों का और धार्मिक साहित्य का अधिकाधिक स्वाध्याय करने पर मजबूर हुआ। शिविरों में जाने से पहले मैं खूब अध्ययन कर नोट्स बनाता। जो विषय मुझे दिये जाते और नहीं भी दिये जाते तो भी सभी का स्वाध्याय कर पठन-मनन कर नोट्स लिखता और शिविरों में पढ़ाता।

मुझे आचार्य श्री के आशीर्वाद की, कृपा की बहुत अपेक्षा थी। आचार्य श्री के जीवन में ज्ञान व क्रिया का

सामंजस्य था। उस पर मैं बहुत अंशों में अपनी शक्ति एवं योग्यता के अनुसार सोचता और पालन करता। मुझे भी जिनवाणी पर दृढ श्रद्धा उन्हीं के प्रताप से हुई। जितनी बार जाता, आचार्य श्री मेरी गतिविधि की पूरी जानकारी लेते। मेरी गलतियों पर भी मुझे आगाह करते। मेरे व स्वाध्याय संघ के हित के लिये ही वे फरमाते। मैं संकल्प किया करता था कि जो काम हाथ में लिया अथवा जो काम करना है उसमें श्री जिनाज्ञा मुख्य हो, स्वपर कल्याण मुख्य हो। अच्छे से अच्छे स्वाध्यायी बनें, उनकी प्रगति हो। वे प्रामाणिक जीवन जीते हुये स्वाध्याय-ध्यान में आगे बढ़ें। मेवाड़ क्षेत्र में स्वाध्यायियों के जीवन से आचार्य श्री अधिक प्रभावित थे। उनका ज्ञान - वैराग्य एवं लगन देखकर मुझ पर भी आचार्य श्री की महान् कृपा थी। मेरे पर उनका वरद हस्त था।

पाली चातुर्मास के बाद बाहर कॉलोनी में मैं दर्शन करने गया। मेरे सिर पर दोनों हाथ रखे। मुझे बहुत भोलावण दी– स्वाध्याय-संघ-शिविरों के लिए एवं स्वाध्यायियों की प्रगति के लिये। इसे मैं नहीं भूल सकता। इच्छा शक्ति, दृढ संकल्प शक्ति, काम करने की लगन उनकी प्रेरणा से मुझमें बलवती बनती गयी। इसका स्रोत वे ही महान् विभूति थे।

उसके बाद मैं दर्शन करने गया निमाज में। उनकी मूकदृष्टि, निस्पृहता, समभाव की साधना, मोहरहितता देखकर मुझे लगा कि अब कौन मुझे प्रेरणा एवं सुझाव देगा।

मैंने मौन ही मौन रूप से संकल्प किया कि आचार्य श्री की उस महती प्रेरणा से निरंतर इसी स्वाध्याय - प्रवृत्ति में लगा रहूँ। अन्य झंझटों से प्रपंचों से बचता रहूँ। अपने जीवन को अधिकाधिक त्याग-वैराग्ययुक्त स्वाध्याय-ध्यान में लगाता रहूँ, प्रमाद से बचता रहूँ और अधिक सेवा स्वाध्याय की करता रहूँ। मुझमें सदा सद्बुद्धि, सद् विचार, सत्पुरुषार्थ बढ़े, यही ज्ञानीजनों से प्रार्थना है।

२५ फरवरी, १९९८

-३८२, अशोक नगर, उदयपुर (राज.)

■

विश्व के देदीप्यमान सूर्य : गुरु हस्ती

• श्री चंचलमल चोरड़िया

• बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी

बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी, मेरे जीवन को संस्कारित बनाने वाले युग द्रष्टा, युग निर्माता, युग पुरुष, ज्ञानी, ध्यानी, मौनी, साहसी, धीर, वीर, गंभीर, वचन सिद्ध, विरल विचक्षण, सामायिक स्वाध्याय के प्रेरक, परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब के जीवन की इतनी विशेषताएं थी कि किन-किन का स्मरण करूँ।

आचार्य श्री का जीवन आत्म-कल्याण के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण हेतु समर्पित था। आचार में दृढ़ता, विचारों में उदारता, ज्ञान एवं क्रिया का बेजोड़ समन्वय, गुणियों के प्रति प्रमोद भाव तथा कथनी करनी में एकरूपता थी। नियमित मौन साधना, स्वाध्याय, ध्यान, अप्रमत्त जीवन के आप प्रतीक थे। कब, क्या, कितना और कैसे बोलना इस कला में वे बहुत निपुण थे। निन्दा विकथा से वे सदैव दूर रहते थे। उनका मानना था कि जीवन निंदा से नहीं निर्माण से निखरता है। जहां आपका हृदय नवनीत सा कोमल था, वहीं संयम-पथ पर आप चट्टान की भांति अडोल थे। सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी असाम्प्रदायिक मनोवृत्तियुक्त एवं व्यवहारकुशल थे ।

सभी वर्ग, सम्प्रदाय, धर्म एवं जाति के लोग बिना भेदभाव आपके मार्ग-दर्शन एवं प्रेरणा से अपने जीवन का विकास करते थे। आपने कभी भी अन्य सम्प्रदायों के भक्तों को तोड़कर अपने श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। वे धर्म को कभी किसी पर नहीं थोपते, परन्तु सरल ढंग से धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते। वे नियमबद्ध जीवन के बड़े हामी थे। अत: जो भी उनके सम्पर्क में आता, उसे नि:संकोच सेवा, सामायिक, स्वाध्याय, व्यसन-मुक्ति आदि के साथ व्यक्ति की योग्यता, सामर्थ्य के अनुसार धार्मिक , सामाजिक, आध्यात्मिक क्षेत्र में नैतिकता को बढ़ावा देने की प्रेरणा देते और जनसाधारण के जीवन-निर्माण हेतु आप सतत प्रयत्नशील रहते और नियम दिलाते । पात्र में रही योग्यता को पहचानने में आप बड़े सिद्धहस्त थे। जैसी पात्रता देखते उस व्यक्ति को उसी क्षेत्र में अध्यात्म के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देते, जिससे सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक श्रद्धालु अत्यधिक प्रसन्नता और शांति का अनुभव करता। आपकी प्रेरणा इतनी हृदयस्पर्शी होती, जिससे आपके द्वारा कराया गया व्रत, नियम व्यक्ति को भारभूत नहीं लगता। कब, क्या, क्यों, कितना और कैसे बोलना, इस कला में वे बहुत निपुण थे। छोटी छोटी बातों में जीवन की समस्याओं का समाधान कर देते थे।

• निर्भयता की मूर्ति

अज्ञान ही सभी दु:खों का मूल कारण है एवं जितना-जितना साधक सम्यग्ज्ञान के समीप पहुँचता है उसे भेद-विज्ञान होने लगता है। वह निर्भय बन जाता है एवं प्राणों का मोह छूट जाता है। आचार्य श्री के जीवन-काल में सर्प का जीवन बचाने के दो प्रसंग आये। सर्प को तो सभी अहिंसक विचारधारा वाले बचाना चाहते हैं, परन्तु जब तक स्वयं के प्राणों का मोह नहीं छूटता, सर्प को गले नहीं लगाया जा सकता। आचार्य ने सर्प को अपनी झोली में डाल लिया। इतने निर्भय थे हमारे श्रद्धास्पद आचार्य श्री।

• गुणग्राहकता के पुजारी

आचार्य श्री बड़े गुणग्राही थे। जब कोई विद्वान् , विशेषज्ञ, साधक, तपस्वी अथवा सेवाभावी उनके सम्पर्क में आते तो बड़ी एकाग्रता से उनके अनुभवों को सुनते तथा उनकी योग्यता का लाभ जन-जन तक पहुंचे इस हेतु बड़े प्रमोदभाव से आप प्रेरणा देते।

आचार्य श्री का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के सद्‌गुणों की तरफ ही जाता था। पदाधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं की कमजोरियों को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया। प्रत्येक प्रभावशाली व्यक्ति को संघ एवं शासन-सेवा में जोड़ने हेतु आप सदैव प्रयत्नशील रहते थे।

सन् १९८९ की महावीर जयन्ती को जैन जगत के प्रख्यात चिन्तक, विद्वान, अहिंसा प्रेमी, शाकाहार क्रान्ति एवं तीर्थंकर के सम्पादक स्वर्गीय डॉ. नेमीचंद जैन (इंदौर वाले) आचार्य श्री के दर्शनार्थ मेरे साथ जोधपुर में पावटा स्थित स्थानक में पधारे। आपसी चर्चा के बाद आचार्य श्री ने डॉ. जैन को कहा–"आप विद्वान हैं। जैन धर्म की नींव आप जैसे विद्वानों के हाथ में है।" इतने बड़े आचार्य का विद्वानों के प्रति ऐसा आदरभाव सुन मैं गद्‌गद् हो गया।

ब्युटी विदाउट क्रूयल्टी (बिना क्रूरता सौन्दर्यता) पूना की अध्यक्षा श्रीमती डायना रत्ना के जोधपुर प्रवास के समय, मैं उनको आचार्यश्री के दर्शन कराने पीपाड़सिटी ले गया। सौन्दर्य प्रसाधन के नाम से होने वाली हिंसा की विस्तृत जानकारी दी एवं बतलाया कि अज्ञानवश किस प्रकार हिंसा और क्रूरता का प्रत्यक्ष-परोक्ष में अपने आपको अहिंसक मानने वाले भी अनुमोदन कर रहे हैं । दैनिक जीवन में जनसाधारण द्वारा उपयोग में लिये जाने वाले ऐसे चंद हिंसक पदार्थों की सूची बतलाई एवं उनके विकल्पों की भी चर्चा की। उन्होंने चांदी के वरक एवं अन्य हिंसक पदार्थों के निर्माण में होने वाली प्रत्यक्ष-परोक्ष हिंसा का आचार्य श्री के समक्ष चित्रण किया। उन्होंने बताया कि वे स्वयं तो ऐसे पदार्थों का उपयोग नहीं करती और जन साधारण में सजगता पैदा करने हेतु प्रयत्नशील हैं। एक अजैन महिला की अहिंसा के प्रति ऐसी निष्ठा देख आचार्य श्री को अत्यधिक प्रमोद हुआ एवं डायना रत्ना को अधिक उत्साह और निष्ठा से कार्य करने हेतु प्रेरणा मिली।

• अहिंसात्मक - चिकित्सा पद्धति के प्रति आकर्षण

मेरा अहिंसक चिकित्साओं के प्रति विशेष आकर्षण था। १९८६ के बाद जोधपुर में ऐसी चिकित्साओं के प्रशिक्षण हेतु देश के विख्यात प्रशिक्षकों को महावीर इण्टरनेशनल संस्था द्वारा नियमित रूप से आमंत्रित किया जाता था। जब मैं आचार्य श्री को उन चिकित्साओं की विशेषताओं की जानकारी देता तो वे मेरी बात को बहुत ही ध्यान से सुनते। उनका अहिंसक चिकित्साओं में पूर्ण विश्वास था।

आचार्य श्री जब कोसाणा का चातुर्मास समाप्त कर पीपाड़ से विहार कर जोधपुर पधारे तब उनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था। तब रक्षा प्रयोगशाला के निदेशक डॉ. रामगोपालजी, सुश्री आशाजी बिड़ला, श्री रंगरूपमलजी डागा एवं मैंने एक्यूप्रेशर चिकित्सा-पद्धति द्वारा उपचार कराने का अनुरोध किया तो आपने सहज ही स्वीकृति दे दी। आप विकटतम परिस्थितियों में भी ऐसी दवाइयां लेना पसन्द नहीं करते थे, जिनमें प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा होती हो। आपकी प्रबल भावना थी कि साधु एवं साध्वी समुदाय आवश्यकता पड़ने पर एक्यूप्रेशर जैसी, सहज, सरल, अहिंसात्मक, निरवद्य पद्धति से अपना उपचार करें। इसी कारण जब बड़ोदा से एक्यूप्रेशर एवं चुम्बकीय चिकित्सा के विशेषज्ञ डॉ. जितेनजी भट्ट पधारे तब उन्होंने अपनी शिष्य मण्डली को इस पद्धति की जानकारी प्राप्त

करने हेतु प्रेरित किया। जून १९९० में आचार्य श्री महावीर भवन सरदारपुरा, जोधपुर में विराज रहे थे, तब एक्यूप्रेशर प्रशिक्षण शिविर हेतु बम्बई से जय भगवान एक्यूप्रेशर अन्तर्राष्ट्रीय के प्रमुख आचार्य श्री विपिन भाई शाह भी जोधपुर पधारे हुये थे। मैं श्री शाह को एक्यूप्रेशर के सम्बन्ध में विशेष जानकारी सन्तों को देने के लिये ले गया, तब आचार्य श्री स्वयं इस पद्धति को समझने हेतु पास में विराज गये। इतने सरल एवं सहज व जिज्ञासु थे पूज्य गुरुदेव।

आचार्य श्री के सान्निध्य में सोजत सिटी में फरवरी १९९१ के अंतिम सप्ताह में जाना हुआ। उस समय मैंने आचार्य श्री को जोधपुर में डॉ. देवेन्द्र वोरा द्वारा आयोजित प्रशिक्षण शिविर में कैंसर जैसे असाध्य रोगों के निदान और उपचार के बारे में एक्यूप्रेशर जैसी अहिंसक पद्धति के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की। आचार्य श्री ने अपनी सारी शिष्य-मंडली के समक्ष सारी बात सुनी एवं मुझे संत-सतियों को इस विधि से परिचित करा उनके साधनामय जीवन में सहयोग देने की प्रेरणा दी। उन्हीं के आशीर्वाद से आज स्वावलंबी अहिंसात्मक चिकित्सा के क्षेत्र में मैं कुछ कार्य कर पा रहा हूँ।

वास्तव में आचार्य श्री का जीवन अपने आपमें विराट् था। जिस उत्साह एवं सजगता से साधना के पथ पर आप आगे बढ़े, उसी उत्साह से जीवन के अन्तिम समय में मृत्यु को महोत्सव में बदल दिया। संथारे की अवस्था में अत्यधिक शारीरिक दुर्बलता के बावजूद तनिक भी प्रतिक्रिया नहीं कर समाज तथा शिष्य समुदाय से पूर्णरूपेण निस्पृही बन गये, जैसे किसी से कोई सम्बन्ध अथवा परिचय था ही नहीं।

आप अन्तिम समय देह में रहते हुये देहातीत हो गये। आचार्य श्री के सम्पूर्ण जीवन में शुभ भावनाओं के निम्नाङ्कित शब्द गुंजित होते थे–

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

ऐसे परम श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. को शत शत वन्दन।

–चोरडिया भवन, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर (राज.)

■

मेरे परम आराध्य

• श्री अमरचंद कांसवा

आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. का स्मरण आते ही मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता है और हो भी क्यों नहीं, उन्होंने मेरे जैसे पामर प्राणी को सन्मार्ग पर लगाया। ज्ञानीजन फरमाते हैं कि उपदेश के बजाय आचरण का प्रभाव अन्य व्यक्ति पर स्थायी व जीवन में परिवर्तन लाने वाला होता है। ऐसा ही प्रभाव आचार्यप्रवर का मेरे जीवन पर पड़ा।

बात संवत् २०१७ के अजमेर चातुर्मास की है। पिताजी श्री मोतीलालजी कॉंसवा के स्वर्गवास के पश्चात् इसी चातुर्मास में स्वतंत्र रूप से प्रथम परिचय हुआ। पूछा 'कांई नाम है'? मैंने अर्ज किया 'अमरचंद कांसवा'। 'किणरो लड़को है ?' उत्तर दिया मोतीलालजी कांसवा को । पुनः पूछा 'धर्म ध्यान कांई होवे?' मैंने अर्ज किया 'एकाध माला वगैरह हो जावे।' 'आश्चर्य मिश्रित भाषा में 'कठे मोतीलालजी, कठे तूं उणारो पाट लियो है। ' मैंने अर्ज किया गुरुदेव फरमावो, कोई आज्ञा ? प्रतिदिन सामायिक स्वाध्याय होना चाहिये।

आज करीब ३७ वर्ष हो गये, अजमेर में रहते हुए कभी स्वाध्याय सामायिक से वंचित नहीं हूँ। आश्चर्य होता है उस महान् योगी के वचनों पर कि कितना ओज वाणी में, शायद मैंने सोचा भी नहीं होगा कि मेरे जीवन में सामायिक-स्वाध्याय की ज्योति प्रज्वलित होगी।

संवत् २०४२ माह सुदी २ , १० फरवरी १९८६ को आचार्य प्रवर का दीक्षा दिवस अजमेर में मनाने का निश्चय हुआ। समय पर लाखन कोटड़ी पंडाल पधारना हुआ। माह सुदी १ को रात को मैंने वहीं संवर किया। प्रातः ३ बजे निद्रा त्यागी। विचार हुआ कि गुरुदेव जिनका मेरे ऊपर इतना उपकार है क्या श्रद्धा सुमन चढाऊँ? त्यागी जीवन से त्याग की ही प्रेरणा मिलती है। चिंतन चला कि सब आनन्द है, क्यों न शील व्रत ग्रहण किया जाय। प्रातः संवर पालकर घर पहुँचा। धर्मपत्नी से सलाह की। सहज स्वीकृति मिली। व्याख्यान में दोनों खड़े हो गये। हमारे साथ श्री मोतीलालजी कटारिया व श्री चांदमलजी गोखरु भी थे। गुरुदेव ने तीनों को नियम करवाया। त्यागी महान आत्मा के श्रीमुख से दिलाये गये नियम का सहजता से पालन हो रहा है।

संवत् २०४३ के पीपाड़ शहर के चातुर्मास में आयोजित शिविर में आचार्य प्रवर ने फरमाया अमरचंद अब आगे कांई ?" मैंने अर्ज किया गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य। अतः फरमाया 'जमीकंद का कतई त्याग।' तबसे बराबर नियम का पालन सहजता से हो रहा है।

यों कह दूँ कि वे मेरे जीवन निर्माता थे, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसे महान् उपकारी गुरुदेव के चरणों में भाव श्रद्धा युक्त शत-शत वन्दन।

बात संवत् २०३४ की है। अजमेर में चातुर्मास था आचार्यप्रवर का। भोजन-व्यवस्था का संयोजक मैं था। इस वर्ष संवत्सरी २ मनाई गई।

मैं सन् १९६३ से स्वाध्यायी के नाते पर्युषण में सेवा देने जाता था, लेकिन भोजन-व्यवस्था की जिम्मेदारी के कारण जाना नहीं हुआ।

इसी वर्ष मेरे चौथे पुत्र चि. विमल ने बी.काम. (ऑनर्स) पास किया था। वह सी. ए. करना चाहता था। लेकिन अजमेर में श्री राधेश्यामजी डाणी के आर्टिकल की जगह खाली नहीं थी। उसने एस. के . बिगावत के जाना प्रारम्भ किया, लेकिन सन्तुष्ट नहीं था। मैं भी चिंतित था कि वह पढ़ना चाहता है और मैं व्यवस्था नहीं कर पा रहा हूँ।

एक दिन रात्रि को आचार्यप्रवर के पास बैठा था। सहज बात चली, मैंने अपनी बात अर्ज कर दी। लेकिन कोई प्रत्युत्तर नहीं। देखिये , श्रद्धा आचार्यप्रवर के प्रति कैसे न हो। कुछ दिन ही पश्चात् श्रीमान् संपतराजसा डोसी संयोजक स्वाध्याय संघ अजमेर दर्शनार्थ पधारे। आचार्यप्रवर की सेवा में खड़े थे। मैं भी अचानक पहुंच गया। संयोजक महोदय मुझे देखकर बोले - अमरचंद सा इस बार आप पर्युषण में सेवा देने नहीं पधारे। '

मैंने निवेदन किया कि भोजन-व्यवस्था की जिम्मेदारी के कारण नहीं जा सका। संयोजक महोदय ने फरमाया कि इस वर्ष त्रिचनापल्ली में वर्षों से अदालती कार्यवाही में स्थानक का कब्जा प्राप्त हुआ है। अत: वहाँ दोनों संवत्सरी मनाने का निर्णय हुआ है।" इस बार पीपाड़ निवासी श्री जबरचंदजी कोठारी को भेजा। अब आपको जाना है। मैंने अर्ज किया मुझे पहले भी इनकारी नहीं थी, अब, भी नहीं, लेकिन भोजन-व्यवस्था की जिम्मेदारी के कारण असमर्थ हूँ।

यह वार्ता आचार्यप्रवर के समक्ष चल रही थी। बीच में हस्तक्षेप करते हुए आचार्यप्रवर ने फरमाया "ऐ तो काम होता रहसी।" फौरन मैंने मेरे साथी श्री सरदारमलजी बोहरा को बुलाया और १५ दिन के लिये भोजन-व्यवस्था सम्हला दी। कार्यक्रमानुसार त्रिचनापल्ली गया। बहुत आनन्द रहा। कन्या कुमारी तक यात्रा की । वापस लौटते समय इन्दौर ठहरा।

श्री छीतरमलजी कोठारी अजमेर वाले उस समय इन्दौर रहते थे। चर्चा वार्ता में विमल के सी.ए. की बात चली। कोठारी जी ने कहा कि एम. एम. मेहता एण्ड कम्पनी से बात करो। मेहता जी की बात सफल रही। योग अपने आप बन गया। अजमेर आया। विमल से बात हुई। शीघ्र ही रवाना होकर इन्दौर गया एवं सी. ए. किया।

सोचता हूँ कि न तो आचार्य श्री त्रिचनापल्ली जाने के लिये संकेत करते, न जाता, न ही विमल सी. ए. करता।

बात संवत् २०४४ के चातुर्मास की है। मेड़तासिटी में चातुर्मास की विनति हेतु अजमेर संघ पहुंचा। मंत्री श्री जीतमलजी ने विनति सेवा में अर्ज की। आचार्यप्रवर ने फरमाया—" मैं लाखन कोटड़ी से बंधा हुआ नहीं हूँ।" बाहर आकर मैंने जीतमलजी से चर्चा की एवं बताया कि अन्य संतों की तरह आप इनके विचारों में परिवर्तन नहीं करा सकोगे। लाखन कोटडी नहीं विराजे तो फिर क्या फायदा? जीतमलजी ने कहा तुम देखे जाओ मैं लाखन कोटड़ी ले आऊंगा। चातुर्मास स्वीकृत हुआ। आचार्यप्रवर महावीर कॉलोनी पुष्कर रोड़ ही विराजे।

ऐसे महान् योगी को शत-शत वन्दन।

–३१०/४, महावीर भवन के पास, लाखन कोटड़ी
अजमेर (राज.) ३०५००१

■

रत्न-चतुष्टय से सुशोभित युगप्रधान आचार्य

• श्री जशकरण डागा

रत्न चतुष्टय से जो मण्डित, जिनशासन उजियारे थे।
गंगा यमुना जैसा संगम, ज्ञान क्रिया को धारे थे॥
दृढ आचारी पंचाचारी, अप्रमत्त रहते क्षण-क्षण।
धन्य-धन्य हो दिव्य तपस्वी, स्वीकारो श्रद्धा के सुमन॥

जन-जन के श्रद्धा-केन्द्र युगपुरुष आचार्य श्री हस्ती का जीवन रत्नचतुष्टय–सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप का अपूर्व संगम था। यही कारण था कि जो भी उनके सम्पर्क में एक बार भी आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। उस महायोगी का ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप कैसा था ? इसी का कुछ उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

(१) ज्ञानज्योतिर्धर आगमवेत्ता - आचार्य श्री आगमों के गहन ज्ञाता, मर्मज्ञ तथा निर्मल ज्ञान व उत्तम मेधा के धारक थे। गहन तात्त्विक प्रश्नों का समाधान भी आप सटीक संदर्भ सहित कर, प्रश्नकर्ता को संतुष्ट करने में पूर्ण समर्थ थे। उदाहरणार्थ एक घटना उल्लिखित की जाती है। एक बार आचार्य श्री टोंक से विहार कर जयपुर पधार रहे थे। मार्ग में लेखक ने निवाई पहुंच कर स्वाध्यायी होने के नाते कुछ तात्त्विक प्रश्न सेवा में रखे। आचार्य श्री अस्वस्थ थे। अत: उन्होंने कुछ प्रश्नों का समाधान दे शेष के लिये उनकी सेवा में रह रहे आगमज्ञ पं. रत्न श्री हीराचन्द जी म.सा. (वर्तमान आचार्य श्री) को संकेत कर दिया। वे प्रश्नों का समाधान देने लगे, किन्तु एक प्रश्न का और स्पष्ट समाधान देना आवश्यक लगा तो आप अस्वस्थ दशा में विश्राम करते हुये भी उठ बैठे। आपने मेरे प्रश्न को ध्यान से सुना। मेरा प्रश्न था कि 'जिनमें मात्र संज्वलन की कषाय रह गयी है, छः काया के रक्षक हैं, दया और करुणा के अनन्य स्रोत हैं, ऐसे अणगार भगवंतों में भी, कृष्ण लेश्या होना आगम में बताया है, सो कैसे ?' आचार्य श्री ने इसका जो समाधान दिया उसका भाव इस प्रकार था - 'देव-गुरु-धर्म पर विशेष संकट या उपसर्ग आदि आने की दशा में , प्रमत्तता के चलते मुनियों में भी अशुभ योग आ जाते हैं। तब संक्लिष्ट परिणामोदय से मुनि भी कुछ समय के लिए अशुभ लेश्याओं में आ जाते हैं। फिर कृष्ण लेश्या के भी भाव अपेक्षा से अनेक प्रकार के होते हैं। जिनमें कृष्ण लेश्या के जघन्य प्रकार को मुनि स्पर्श कर सकते हैं। उदाहरण के लिए भगवती सूत्र शतक १५ में, गोशालक का जीव तीसरे भव में, विमल वाहन राजा बनकर श्रमणों को सताता था। उसने आतापना लेते, सुमंगला अणगार को तीन बार रथ की टक्कर मार, नीचे गिरा दिया। इस पर सुमंगला अणगार ने तेजो लेश्या से उसे भस्म कर दिया था, जो सातवीं नरक में जाकर पैदा हुआ था। इस प्रकार संज्वलन कषाय व प्रमत्तता भी कभी-कभी कृष्ण लेश्या को स्पर्श करने हेतु मुनि के लिये कारण बन जाते हैं। आचार्य देव के श्री मुख से ऐसा सटीक उत्तर श्रवण कर, सभी उपस्थितजन प्रमुदित हो उठे थे।

(२) निर्मल दर्शन-साधना के सुमेरु– आपकी दर्शनविशुद्धि की एक विशेषता थी कि सदैव आप ध्यान रखते कि किसी भी धर्म व उनके अनुयायियों के प्रति किसी प्रकार का गलत या उनको अखरने वाला व्यवहार न हो। इसका एक उदाहरण है। आचार्यप्रवर एक बार दूणी से टोंक पधार रहे थे। मार्ग में छाण ग्राम में विश्राम करना था। विहार में साथ होने से, मैंने छाण ग्राम में आकर, साताकारी एक वैष्णव मन्दिर के तिबारे में ठहराने का निश्चय किया। आचार्यप्रवर वहाँ पधारे और देवालय परिसर का अवलोकन कर, मुझे बुला उपालम्भ दिया। कहा– 'आप

एक वरिष्ठ स्वाध्यायी हैं, यह स्थान कैसे चयन किया? मेरी स्थिति पुनः पुनः सीढियाँ चढ़ने उतरने की नहीं है, जब कि लघुनीत आदि देवालय की मर्यादानुसार यहाँ के परिसर में भी नहीं किया जा सकता।' तदनन्तर आचार्यप्रवर ने उस साताकारी स्थान पर न ठहर कर एक सामान्य बाड़े में जो बस्ती से भी दूर था, जाकर रात्रि विश्राम किया।

(३) चारित्र-साधना के चूडामणि - आप अहर्निश, अप्रमत्त भाव से, सदा ज्ञान-ध्यान, जप-तप, मौन-लेखन आदि में ही साधना रत रहते थे। जो भी आपके सम्पर्क में एक बार भी आता, आपके तेजस्वी व्यक्तित्व एवं चारित्र से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। आचार्यप्रवर का अधिकांश रात्रि काल भी, ज्ञानध्यान, सूत्र-स्वाध्याय, माला, जप आदि में ही व्यतीत होता था और बहुत अल्प समय आड़ा आसन करते थे। आपकी इस अप्रमत्त साधक -चर्या से प्रभावित हो, अन्य सम्प्रदायों के व अजैन गण भी आपके श्रद्धानिष्ठ भक्त हो गये थे। उदाहरण के लिए टोंक के ही मन्दिरमार्गी समाज के एक प्रमुख श्रावक श्री बहादुर मलजी दासोत (जो जयपुर रहने लगे थे), आपके ज्ञान, ध्यान व चारित्र की प्रशंसा सुन, लाल भवन , जयपुर में दर्शनार्थ आने लगे थे। वे कार्य व्यस्तता से कभी रात्रि के ग्यारह बजे, तो कभी प्रातः चार बजे भी (जब समय मिल जाता) दर्शनार्थ लाल भवन पहुँचते तो सदा आचार्य श्री को पाट पर विराजे, साधनरत पाते थे। इससे वे बड़े प्रभावित हुए और आपके निष्ठावान भक्त बन गए थे।

(४) दिव्य तपोमूर्ति - आपकी तप साधना अपने आपमें बेजोड़ थी। यद्यपि आप बाह्य तप उपवास आदि विशेष नहीं करते थे, तथापि आपका समग्र जीवन प्रतिसंलीनता व आभ्यन्तर तप स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, जप व मौन साधना आदि से परिपूर्ण एक आदर्श तपोमूर्ति रूप था। परिणामतः आपके जीवन में अनेक लब्धियाँ अप्रगट रूप से विकसित हो गयी थीं। जहाँ, जब जिस पर भी आपकी तनिक महर नजर होती, तो उसकी मनोकामना स्वतः ही शीघ्र पूर्ण हो जाती थी। आप पर यह उक्ति सर्वथा घटित होती थी - "फकीरों की निगाहों में, अजब तासीर होती है। निगाहे महर कर देखे, तो खाक अक्सीर होती है।"

आपकी तप-साधना की विशेष लब्धियों की अनेक घटनाएँ जग जाहिर हैं। जैसे आप सुदूर विराजित होते हुए भी निश्चित समय पर, आपका मांगलिक सैंकड़ों किलोमीटर दूर रहते भी श्रद्धापूर्वक मनोभाव से परोक्ष श्रवण करने पर भक्तों के विविध दुःख व असाधारण रोग भी चिकित्सा कराए बिना दूर हो जाते थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। यहाँ लब्धि विशेष की प्रतीक कुछ घटनाएँ प्रस्तुत हैं-

(क) टोंक में पशु बलि को रुकवाना – एक बार आप टोंक से निवाई होते, जयपुर पधार रहे थे। निवाई के निकट, आपने मूँडिया ग्राम में विश्राम किया। वहाँ के निवासियों से आपको मालूम हुआ कि वहाँ पर प्रतिवर्ष रामनवमी को बणजारी देवी के मंदिर में पाडे की बलि चढाई जाती है। आपका नवनीत सम संत हृदय, यह कब बरदाश्त कर सकता था। आपने तत्काल सभी ग्राम वासियों को एकत्रित कर, उक्त पशु बलि न करने का एक तेजस्वी उद्बोधन दिया। आचार्यप्रवर के तपो तेजोमयी उद्बोधन से प्रभावित हो, वहाँ आए अधिकांश ग्रामीणों ने बलि न करने का संकल्प ले लिया। किन्तु कुछ असामाजिक तत्त्व, इसके लिये सहमत नहीं हुए। तब आचार्य देव ने मुझे (जो विहार में साथ था) संकेत दिया। मैं, टोंक आकर जिला कलेक्टर व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों से मिला। जीव दया ट्रस्ट की तरफ से उन्हें ग्राम मूंडिया में नियम विरुद्ध होने वाली पशु बलि को रोकने का ज्ञापन दिया। आचार्य देव के आशीर्वाद से तत्काल इस बलि को रुकवाने के आदेश जारी कराने में सफलता मिल गयी। पिछले लगभग १२-१३ वर्षों से यह पशु बलि प्रतिवर्ष राज्यादेश जारी कराकर रोकी जा रही है।

(ख) हृदय रोग से मुक्ति–लगभग तीस वर्ष पूर्व की घटना है। मेरी धर्म सहायिका श्रीमती सुशीला देवी

डागा के अधिक अस्वस्थ हो जाने पर जयपुर ले जाकर संतोक बा दुर्लभजी अस्पताल में डा. अशोक जैन (हृदय रोग विशेषज्ञ) को दिखाया। उन्होंने यांत्रिक मशीनों से हृदय का निरीक्षण परीक्षण कर हृदय के दो वाल्व अवरुद्ध होना बताया, जिसकी पुष्टि मेरे भतीजे डा. चन्द्रशेखर डागा ने भी, यांत्रिक मशीनों से देख कर की। उपचार हेतु आपरेशन की सलाह दी गयी। उस समय जयपुर में, त्रिमूर्ति चौराहे पर पूज्य आचार्यप्रवर बिराज रहे थे। हम दोनों प्रथम उन्हीं के दर्शन करने गये। मेरा चेहरा देख आचार्य देव बोले- "आप सुस्त क्यों हो? क्या बात है?" मैंने धर्म सहायिका के हृदय के ऑपरेशन होने की बात कही। उन्होंने सारी बात ध्यान से सुनी और वे कुछ समय के लिये ध्यानस्थ हो गये। तदनन्तर बोले, चिन्ता की कोई बात नहीं है। मेरी धर्म सहायिका को कहा "फिक्र नहीं करना। सब ठीक होसी।" हम दोनों को निकट बुला, मंगल पाठ सुनाया और पुनः कहा चिंता नहीं करना सब ठीक होगा। हम आपरेशन की तैयारी करते हुए टोंक लौट आये। टोंक आकर मुख्य चिकित्साधिकारी टोंक के परामर्श से एक सामान्य गोली (एलट्रोक्सिन) भी देना प्रारम्भ किया। पन्द्रह दिन में स्वास्थ्य काफी ठीक हो गया, ऑपरेशन का विचार स्थगित कर दिया। कुछ ही दिनों में हृदय रोग जाता रहा। आज करीब तीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी पूर्ण स्वस्थ है, और घर के सारे कार्य सानन्द करती है। जीवन में एक चमत्कार हो गया। यह सब हम पूज्य गुरुदेव की महती कृपा का फल ही समझते हैं।

मेरी तुच्छ बुद्धि, गुणों के सागर, इस युग की महान् हस्ती, आचार्य हस्ती के गुणों को व्यक्त करने में एक अणु जितनी भी सक्षम प्रतीत नहीं होती है। फिर भी उस महापुरुष के महा उपकारों से उपकृत होने से इस अकिंचन की लेखनी, उनके गुण स्मरण हेतु प्रवृत्त हुई है।

डागा सदन, संघपुरा, टोंक (राज.)

■

आत्म-बल का चमत्कार

• श्री सूरजमल मेहता

२४ फरवरी १९५८ मिति फाल्गुन शुक्ला ६ सं. २०१४ को पं. रत्न उपाध्याय पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. अपने शिष्यों सहित अलवर से विहार कर ७ मील दूर स्थित बहाला ग्राम पधारे हुए थे। वहां पर दोपहर बाद करीब डेढ़ बजे की घटना है, जब कि महाराज श्री कोठरी के बाहर चबूतरे पर ध्यान को विराजे थे। ध्यान समाप्त होते ही महाराज सा. की दृष्टि सामने गई और देखा कि मकान के बाहर २-३ आदमी लाठियाँ लेकर खड़े हैं और भीतर से घबराई हुई सी आवाज आ रही है। बाहर खड़े आदमी छप्पर की ओर देख रहे थे और भीतर से कोई छप्पर का घास हटा रहा था। कुछ अनुमान कर महाराज श्री उठे, साथ ही वैरागी राजेन्द्र आगे घर की ओर बढ़ कर बोले कि मारो मत । इतने में दीवाल पर सर्प दिखाई पड़ा जो भीतर से लाठी द्वारा बाहर फेंका जा रहा था। महाराज ने ओघा झोपड़ी के नीचे किया और एक गज भर लंबा सर्प उस पर लिपट गया। महाराज श्री ग्राम के बाहर छोड़ने को ले चले। साथ में अलवर के और भी २-३ भाई (जो कि दर्शनार्थ आए थे) ग्राम के ५-१० लोग जो वहां खड़े थे ,चल पड़े। रास्ते में म.सा. ने उसको हाथ से सहलाया। थोड़े आगे जाने पर वह उतरने लगा। म.सा. ने पीठ दबाये थोड़ी दूर संभाला और ग्राम के बाहर जाकर भूमि पर टिकाया तो मुंह फाड कर वह कुछ उगलने लगा और देखते ही देखते एक बड़ा (करीब ९-१० इंच लंबा) चूहा उगल दिया। देखने वालों को बडा ताज्जुब हुआ। शायद सर्प को भी संतों के हाथ लगने पर हिंसा से घृणा हो गई हो। अस्तु ! सर्प फिर ग्राम की ओर बढने लगा। महाराज ने २-३ बार रजोहरण से उसका मुंह दूसरी तरफ किया, किन्तु उसकी इच्छा तो ग्राम की ओर ही जान को थी, अत: महाराज ने उसे फिर ओघे पर उठाया और आगे छोड़ने को चले। रास्ते में एक बार वह नीचे गिर पड़ा और पास ही घास में छिप गया। रास्ते के पास होने से लोग भी निर्भय नहीं थे, उन्हें खतरा था, अत: उसे हाथ से उठाकर ओघे की डंडी पर रखा और आगे ले चले। आस पास में कोई बिल न होने से महाराज उसे दूर ले गये ओर छोड़ दिया। वह वापिस ग्राम की ओर आने लगा तब ग्राम वालों ने भय वश दूर छोड़ने को कहा। म.सा. ने जब मना किया तो उसने २-३ बार फुफकार भी मारी और उछला कूदा। अंत में उसकी इच्छानुसार जाने को छोडकर म. श्री देखते खड़े रहे और कहते रहे कि इधर नहीं उधर जाओ। वह भी समझ गया और कुछ दूर जाने पर एक खेत की तरफ चला गया। सुरक्षित स्थान में चले जाने पर म.सा. भी पधार गये। इस घटना से ग्राम वाले भाइयों की पूज्य प्रवर, जैन धर्म एवं अहिंसा पर बड़ी श्रद्धा हुई और वे पूज्य श्री के आत्मबल एवं आत्म विश्वास की बड़ी सराहना करने लगे। यह है प्राणिमात्र पर समभाव एवं आत्म बल की एक आँखों देखी घटना । (जिनवाणी अप्रेल १९५८ से साभार)

चार्टर्ड एकाउन्टेट , अलवर

■

उच्च साधक एवं दयालु सन्त

• श्री बस्तीमल चोरड़िया

(१) ज्ञान-दर्शन रूप स्वाध्याय और चारित्र रूप सामायिक-साधना के प्रबल प्रेरक आगम ज्ञाता इतिहास मार्तण्ड ध्यानयोगी परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा. कृष्ण पक्ष की हर दशमी को अखंड मौनव्रत की साधना करते थे। इसी प्रसंग में मुझे संवत् २०२१ आसोज कृष्णा दशमी की भोपालगढ़ चातुर्मास की एक अविस्मरणीय घटना याद आ रही है।

आचार्य श्री स्थानीय तालाब पर स्थित दादाबाड़ी में रात्रिवास व ध्यान-साधना के लिए पधारे। आचार्य श्री जब ध्यानरत थे, तब रात्रि के लगभग ८ बजे एक भक्त वहां पर आया। उसके हाथ में टार्च भी थी। वह उच्च स्वर में बोलते हुए आचार्यश्री जहां ध्यानरत थे, वहां पहुँचा और कर्कश स्वर में अनर्गल प्रलाप करने लगा। जाते-जाते यह चेतावनी भी दे गया कि कल से मुझे यहां नहीं मिलने चाहिए। आचार्यश्री अपने ध्यान में इतने तल्लीन थे कि उन पर इस कटु वातावरण का कोई असर नहीं हुआ, निर्विघ्न रूप से रात्रि-ध्यान करते रहे।

आचार्य श्री के इस धैर्य व सागर के समान गंभीरता से वह कटु वातावरण भी मधुरिम ही रहा। गांव वालों को दूसरे दिन जब इस घटना का पता चला तो आचार्यश्री से इस बारे में जानना चाहा, पर आचार्यश्री के चेहरे पर कोई विपरीत भाव नजर नहीं आया। इस अविनीत भक्त के परिवार वालों ने आचार्यश्री से इस दुर्व्यवहार के लिए क्षमा भी मांगी पर आचार्यश्री तो सागरवर गंभीरा थे।

(२) आचार्य भगवन्त बीजापुर से विहार कर बागलकोट पधार रहे थे। कोरनी ग्राम में नदी के बाहर सहज बनी एक साल में विराजमान थे। वहाँ देखा कि गांव में रूढ़िवादी लोगों की मान्यता थी कि नदी पर बकरे की बलि से गांव में शान्ति रहती है। इस मनगढन्त मान्यता के कारण गांव की शान्ति के लिए बकरा उस दिन बलि चढ़ाया जाना था, जोरों से तैयारियां चल रही थी। आचार्य भगवन्त ने जब एक भक्त से सुना तो सहज भाव से उस भक्त द्वारा गांव वालों को बुलवाया व अहिंसा का उपदेश दिया। लोगों को धर्म का मर्म समझाया। लोगों ने अहिंसा व धर्म के मर्म को समझा व उस दिन होने वाली बकरे की बलि हमेशा के लिए रुक गई।

(३) परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर का भीलवाड़ा में इन्दौर चातुर्मास खुलने के बाद आचार्यश्री का विहार इन्दौर की तरफ होने लगा। आचार्यश्री के दर्शनार्थ व विहार में साथ रहने के कारण इन्दौर से मन्दसौर होकर कई बार आने-जाने का क्रम रहा। आचार्य श्री मन्दसौर करीब सुबह दस बजे पधारे। उस दिन एक श्रावक के परिवार का एक नन्हा बालक दूसरी मंजिल से करीब ८ बजे गिर पड़ा। बेहोशी की हालत में था तथा वहां के डाक्टरों ने इलाज के लिए मना कर दिया। बाहर बड़े हॉस्पिटल में भर्ती कराना पड़ेगा, इसी तरह का विचार चल रहा था, तब एक अन्य श्रद्धालु भक्त ने कहा–"मौनी, ध्यानी, संयम-साधना के पथिक आचार्य भगवन्त से मांगलिक तो सुनवा दो, जिनकी मांगलिक सम्मेलन में सभी बड़े संतों व आचार्यों ने अपनी अपनी दिशा में विहार करने के पहले सुनी थी।"

उस भक्त ने नन्हें बालक को आचार्य भगवन्त से मांगलिक सुनवाया। कुछ ही क्षणों में बालक ने आंखें खोली व होश में आने लगा, धीरे-धीरे यथावत् होने लगा। आचार्य भगवन्त १५ दिन विराजे। नंदीषेणजी म.सा. की दीक्षा का प्रसंग भी यहीं बना। उसी भक्त ने सारा संचालन किया।

–१८३, मसूरिया, सेक्शन, ७ पत्रकार कॉलोनी, जोधपुर

व्यक्ति में छुपी प्रतिभा के ज्ञायक और उन्नायक

• श्री नौरतन मेहता

प्रतिपल स्मरणीय परमाराध्य महामहिम आचार्य भगवन्त पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. अप्रमत्त तप:पूत साधक महापुरुष थे। उस दिव्य-दिवाकर में समाज हित -चिन्तन की शुभभावना थी। उनके सान्निध्य में आने वाला व्यक्ति गुरुकृपा से कैसे निहाल होता, इसका उसे पता तक नहीं चलता और वह अपनी प्रतिभा को सहज विकसित करता जाता।

वि.सं. २०२० में आचार्य भगवन्त का पीपाड़ सिटी चातुर्मास था। मैं उस समय राजकीय सेवा में शिक्षक पद पर रहकर कार्य करता था। मेरी माता श्री नित्य-प्रति प्रवचन श्रवण करने एवं सत्संग सेवा में जाया करती थी। करीब आठ नौ दिन तक मुझे गुरु चरण-सेवा में न जाते देख मातृ हृदय से निकला—"इत्ता मोटा महाराज अठे बिराज रहिया है, तूं चल मेरे साथ।"

माँ की ममतामयी बात टालने की मेरी भावना नहीं थी, अत: मैं मध्याह्न में उनके साथ गुरु चरण-सेवा में पहुँचा। वन्दन-नमन कर पूज्य गुरुदेव के समीप बैठते ही , करुणाकर ने एक बार माताश्री की ओर देखा, फिर मेरी ओर देखकर पूछा - "तूं क्या करता है ?"

मेरा उत्तर था - "बाबजी ! मैं पड़ौस के गांव में मास्टर हूँ।"

"अच्छा , तो तुम शिक्षक हो ?"

पूज्य गुरुदेव का दूसरा प्रश्न था - "तुम्हारे अक्षर कैसे हैं ?"

मैंने उत्तर में कहा - "जैसे दूसरों के अक्षर हैं वैसे मेरे। "

पूज्य गुरुदेव ने आत्मीय भाव से फरमाया - "जरा लिखकर बताओ तो !" मैंने वहीं से कागज-पेन लेकर कुछ पंक्तियाँ लिखी और गुरुदेव के सम्मुख कागज रख दिया।

पूज्य गुरुदेव को शायद मेरे अक्षर ठीक लगे, अत: बड़े प्रेम से कहा - "नौरतन ! तुम दिन में एक-डेढ़ बजे तक स्कूल से आ जाते हो, फिर थोड़ा समय निकालो तो तुम्हारा कुछ उपयोग हो सके।"

पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में बात का वह मेरा प्रथम अवसर था। मैं आचार्य भगवन्त की आत्मीयता से इतना आकर्षित हुआ कि स्कूल से लौटने के बाद भोजन करके सीधा राता उपाश्रय पहुँचता। वन्दन-नमन करने के साथ पूज्य गुरुवर्य लेखन का कोई काम सौंपते और मैं वहीं बैठकर उसे करता रहता।

मैं उस समय संकेत लिपि के मात्र अक्षर जानता था। रविवार को पूज्य गुरुदेव का प्रवचन सुना और मैंने श्रीचरणों में अपनी बात रखते निवेदन किया - "भगवन् ! मेरी यदि स्पीड होती तो मैं आपका प्रवचन लिखता। "

मेरी रुचि व भावना को बढ़ावा मिले इस विचार से गुरुवर्य ने फरमाया - "तूं मेहनत करे तो लिख सकता है।" पूज्यश्री के वचनों में न जाने क्या जादू था कि मैं दूसरे दिन शार्टहैण्ड की कॉपी - पेंसिल लेकर प्रवचन सभा में बैठ गया। कुछ लिखने में आया, कुछ छूट गया। संकेतों को हिन्दी रूपान्तर करने बैठा तो कर नहीं सका।

दूसरे दिन अपनी कमजोरी बताते मैंने आचार्य भगवन्त के चरणों में निवेदन किया - "गुरुदेव ! संकेत लिपि

में लिखना मेरे लिए संभव नहीं है।" पूज्य गुरुदेव ने फरमाया - "मेहनत से क्या नहीं होता ? तूं हिम्मत मत हार।"

पूज्य गुरुदेव के वचनों से मेरा साहस बना और मैं पुनः लिखने लगा। चार दिन के बाद मेरे लेखन में कुछ सुधार आया।

चार - पांच दिन बाद मेरी गति बढ़ी, आत्मविश्वास जगा और गुरु कृपा से हाथ में शक्ति का संचार हुआ, जिससे मैं प्रवचन को नोट कर सका। पीपाड़ चातुर्मास के करीब सौ प्रवचन मैंने लिखे। पीपाड़ के पश्चात् भोपालगढ़, बालोतरा और अहमदाबाद चातुर्मास में मैंने प्रवचन-लेखन के साथ पत्राचार का काम किया।

आचार्य भगवन्त के कृपा प्रसाद से मुझमें आत्म-विश्वास जगा और मैं प्रवचन आलेखन-सम्पादन के साथ पत्राचार में यत् किंचित् सफलता अर्जित कर सका, उसमें पूज्य गुरुदेव का उपकार जीवन पर्यन्त भूल नही सकूँगा। आचार्य भगवन्त व्यक्ति-व्यक्ति में छुपी प्रतिभा विकसित करने वाले युगपुरुष रहे, जिन्हें आने वाली पीढ़ी श्रद्धा से स्मरण करेगी।

–अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ कार्यालय,
घोड़ों का चौक, जोधपुर

■

सवाईमाधोपुर क्षेत्र में कायाकल्प

• श्री चांदमल बोथरा

विक्रम संवत् २०३१ का प्रसंग है। परम पूज्य आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज साहब चातुर्मास काल के प्रारंभ होने से पूर्व अपने विद्वान मुनि-मण्डल के साथ कोटा विराज रहे थे। धर्म-ध्यान,तपस्या आदि के ठाठ लग रहे थे। बाहर से अनेक श्रावक-संघ चातुर्मास की विनति हेतु पधार रहे थे। कोटा श्री संघ ने भी उस वर्ष का चातुर्मास कोटा को प्रदान करने की अत्यन्त आग्रहपूर्ण विनति की थी। प्रतिदिन व्याख्यान समाप्ति पर यह क्रम चलता था। किन्तु हम कोटा के श्रावकगण अपनी विनति भी प्रतिदिन दोहराते रहते थे और हमें पूर्ण आशा थी स्वीकृति की। तभी सवाईमाधोपुर श्री संघ भी चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ और आचार्यप्रवर की सेवा में अत्यन्त भावपूर्ण विनति की। तब तक वहां स्थानक आदि की भी पर्याप्त सुविधा नहीं थी। उस समय तक प्रमुख जैन संतों का विहार भी उधर कम ही हुआ था, परन्तु सवाईमाधोपुर श्री संघ के पधारने के पश्चात् आचार्य श्री के मुखारविन्द से इस वर्ष का चातुर्मास सवाईमाधोपुर को प्रदान करने की स्वीकृति सुनकर कोटा श्री संघ स्तब्ध रह गया। किन्तु यह भी एक सिद्ध तथ्य है कि आचार्यप्रवर का सं. २०३१ का यह चातुर्मास इस संपूर्ण क्षेत्र के लिए वरदान सदृश सफल रहा। इस चातुर्मास ने इस पूरे क्षेत्र का कायाकल्प कर दिया। इस चातुर्मास में जहाँ शहर के बस स्टेण्ड पर स्थित बंसल भवन में सन्त-मण्डल ठहरा था तथा भवन के बाहर पाटों पर त्रिपाल के नीचे व्याख्यान की व्यवस्था थी। आज वही क्षेत्र भारत भर के अग्रणी धार्मिक क्षेत्रों में अपना स्थान बना चुका है। वहाँ के अनेक स्वनाम धन्य स्वाध्यायी बन्धु प्रतिवर्ष दूरस्थ क्षेत्रों में पधार कर धर्मोद्योत कर रहे हैं। वहां एक सर्व सुविधापूर्ण सुन्दर स्थानक भवन का निर्माण हो चुका है और वहाँ के श्रावकगण अपने क्रिया कलापों द्वारा हम सबके आदरणीय बन चुके हैं।

यह घटना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि हमारे आचार्यप्रवर एक भविष्य द्रष्टा थे और उन्हीं के पावन सानिध्य का यह प्रतिफल है कि सवाईमाधोपुर के सम्पूर्ण क्षेत्र में एक सफल धार्मिक क्रान्ति का प्रकाश फैल गया है।

ऐसे भविष्य-द्रष्टा को शत शत नमन।

–कोटा साडी केन्द्र, ढड्ढा मार्केट, जयपुर

पोरवाल क्षेत्र पर असीम कृपा

• श्री रामदयाल जैन सर्राफ

आचार्य भगवंत पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. का पोरवाल क्षेत्र पर असीम उपकार है। आचार्य भगवंत का पदार्पण दो बार इन क्षेत्रों में हुआ। इस क्षेत्र की दयनीय स्थिति थी। आहार की अनुकूलता नहीं थी, प्रतिक्रमण के जानकार बहुत ही कम थे। अध्यापकों की संख्या अधिक थी । दीर्घद्रष्टा आचार्यप्रवर ने अध्यापकों का उपयोग स्वाध्याय क्षेत्र में हो, ऐसा चिंतन कर सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा की। अनेक स्वाध्यायी तैयार हुए। पौष शुक्ला १४ सन् १९६८ को श्यामपुरा (धर्मपुरी) में आचार्य भगवन्त के सान्निध्य में श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्याय संघ जोधपुर की शाखा सवाईमाधोपुर का शुभारंभ श्री चौथमलजी जैन (अध्यापक) के संयोजकत्व में हुआ। तब से अनेक स्वाध्यायी पर्युषण सेवा में जाने लगे। आचार्य भगवन्त ने अनेक परीषहों को सहन करते हुए सामायिक-स्वाध्याय का शंखनाद गुंजाया।

आचार्य भगवन्त के चरण कमल पल्लीवाल क्षेत्र को पावन कर रहे थे, उस समय गंगापुर सिटी में होली चातुर्मासिक पर्व पर श्री संघ, सवाई माधोपुर ने १९७४ के वर्षावास की भावभीनी विनति प्रस्तुत की। आचार्य भगवंत ने दूरदर्शिता से विचार कर १०१ स्वाध्यायी तैयार करने की शर्त के साथ चातुर्मास की स्वीकृति के भाव फरमाये। संघ ने आचार्य भगवन्त की प्रेरणाओं को सहर्ष स्वीकार किया, अन्ततः चातुर्मास का सुयोग सवाईमाधोपुर को मिल गया। वह चातुर्मास अभूतपूर्व था जिसमें १०१ से भी अधिक प्रतिक्रमण वाले तैयार हुए एवं अनेक स्वाध्यायी पर्युषण में सेवा देने गए। इस चातुर्मास से सवाईमाधोपुर पोरवाल क्षेत्र की ख्याति बढ़ी। स्थान-स्थान पर सामायिक, स्वाध्याय होने लगे। खुशहाली भी बढ़ने लगी। वर्षीतप के अधिकतम पारणे सवाईमाधोपुर क्षेत्र में हुए।

आचार्य भगवन्त की इस क्षेत्र पर महती कृपा रही। सन् १९८८ में चातुर्मास के लिए राजधानी जयपुर के महावीर नगर के लिए पुरजोर विनती थी, क्योंकि भगवन्त का स्वास्थ्य निर्बल था, विहार करने में बड़ी कठिनाई थी। स्थिरवास के लिए भी संघ ने निवेदन किया। किन्तु आचार्य भगवन्त ने इस क्षेत्र पर महान् कृपा कर सवाई माधोपुर शहर की विनति को सम्मान देकर १९८८ का चातुर्मास स्वीकार किया। चिकित्सकों ने विहार के लिये पूरी तरह से मना कर दिया था, किन्तु आचार्य भगवन्त की कृपा इस क्षेत्र पर पूरी-पूरी थी। दो संतों के हाथ के सहारे भगवन्त ने जयपुर से सवाईमाधोपुर की ओर भीषण गर्मी में विहार किया। वह दृश्य देखने का सौभाग्य मुझे भी मिला। अनेकानेक परीषहों को सहन करते हुए आचार्य भगवन्त का सवाईमाधोपुर का १९८८ का द्वितीय चातुर्मास धर्मध्यान एवं अनेकानेक उपलब्धियों के साथ सम्पन्न हुआ।

यह हमारा तथा हमारे क्षेत्र का परम सौभाग्य रहा जो हमें ऐसे महान् परोपकारी दीर्घद्रष्टा आचार्य भगवन्त का गुरु रूप में सान्निध्य प्राप्त हुआ। आचार्य भगवन्त जिनका मेरे जीवन पर अनंत-अनंत उपकार है, पुनः गुण स्मरण करता हूँ।

-सर्राफा बाजार, सवाई माधोपुर

■

स्वाध्यायी बनने की प्रेरणा

• श्रीमती मोहनी देवी जैन

आचार्यप्रवर का सवाई माधोपुर के महावीर भवन में चातुर्मास चल रहा था। तप-त्याग में सभी भाई-बहिन उत्साह पूर्वक भाग ले रहे थे। मेरा भी तपस्या करने का मन हुआ। उन दिनों पर्युषण प्रारम्भ होने वाले थे। मैं बेले का प्रत्याख्यान करने के लिये आचार्य श्री की सेवा में पहुँची। तो गुरुदेव ने फरमाया -"बाई, पर्युषण पर्व में धर्माराधन कराने के लिये खिजूरी ग्राम में आवश्यकता है।" मैं गुरुदेव की भावना को समझ गयी। मैं इससे पूर्व कभी किसी अन्य क्षेत्र में पर्युषण पर्व पर सेवा देने हेतु नहीं गई थी, अत: मैं घबरा सी गई। मैं जैसे ही मना करने की हिम्मत जुटा रही थी कि आचार्यप्रवर ने प्रेरणा दी कि बहिन हिम्मत से जिन शासन की सेवा का कार्य करो। उन्होंने अपने दोनों हाथों के संकेत से जो हिम्मत बँधाई, उसके कारण मैं साहस करके एक अन्य बहन रेखा जैन (अब रक्षिता श्री जी म.सा.) के साथ खिजूरी ग्राम में पहुंची। वहाँ पर जो स्वाध्यायी पहले नियुक्त थे, वे किसी कारण से नहीं पहुंच सके थे। हमने वहाँ प्रार्थना, सूत्र-वाचन, प्रतिक्रमण आदि के अलावा लीलावती चरित्र एवं अन्य पुस्तकों का वाचन-विवेचन किया। जिससे सभी श्रावक-श्राविकाएं बहुत प्रसन्न हुए। हमें भी आत्म-विश्वास का अनुभव हुआ और पर्युषण पर्व में हुए धर्म आराधन को देखकर आनन्द का अनुभव हुआ। मैंने यह समझ लिया कि मेरे उस बेले के तप की अपेक्षा धर्म-आराधन का यह कार्य उत्कृष्ट है। सवाई माधोपुर लौटकर मैंने आचार्य भगवन्त की सेवा में पर्वाराधन का सारा विवरण प्रस्तुत किया। गुरुदेव प्रसन्न हुए और मुझे प्रतिवर्ष पर्युषण में सेवा देने के लिये प्रेरित किया। गुरुदेव की इस प्रेरणा के फलस्वरूप मुझमें आत्म विश्वास सुदृढ हुआ। अत: मैं तब से प्रतिवर्ष पोरवाल क्षेत्र और महाराष्ट्र क्षेत्र में बिना हिचकिचाहट के पर्वाराधन हेतु स्वाध्यायी के रूप में सेवा दे रही हूँ।

-रघुनाथजी के मन्दिर के पास,
आलनपुर, सवाई माधोपुर (राज.)

■

गुरुवर की महती अनुकम्पा

• श्री पारसचन्द जैन

परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. की हमारे पोरवाल क्षेत्र पर विशेष अनुकम्पा रही है।

भगवन्त प्रथम बार १९६८ में शेषकाल में यहाँ पधारे थे। इसी वर्ष यहाँ श्रमण संघ के आचार्य राष्ट्र संत श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. तथा समता विभूति आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म.सा. का शुभागमन भी हुआ। मैं उस समय बहुत छोटा था, पर मुझे अभी भी स्मरण आता है कि आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. ने प्रवचन सभा में एक प्रश्न किया था- संज्ञा कितने प्रकार की होती है ? मैंने उत्तर देने के लिये हाथ खड़ा किया , तो मुझसे जवाब के लिये कहा गया, मैंने तीन प्रकार की (स्कूली ज्ञान वाली) संज्ञा बता दी, हालांकि गुरुदेव (आहार संज्ञा, भय संज्ञा आदि चार संज्ञाओं) के बारे में पूछ रहे थे। उस प्रवचन सभा में यहाँ के जैन समाज के श्रावकों की धार्मिक भावना देखकर ही गुरुदेव ने संभवतः इस क्षेत्र में चातुर्मास करने का मानस बना लिया जिसकी परिणति १९७४ में हो पायी।

गुरुदेव के प्रथम चातुर्मास के पूर्व हमारे पोरवाल समाज के बंधु अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में रहते थे, वहीं परचून, कपड़े आदि की दुकान तथा खेती के सहारे अपनी जीविका चलाते थे। धार्मिक संस्कार तो क्षेत्र में पहले से ही थे, परन्तु साधु-साध्वियों के दर्शनार्थ जाने का बहुत कम प्रचलन था, क्योंकि इस तरह की प्रभावना भी कम होती थी तथा आय के साधन भी सीमित थे, परन्तु १९७४ के चातुर्मास के बाद आचार्य भगवन्त की ऐसी कृपा बनी कि छोटे से छोटा तथा बड़े से बड़ा श्रद्धालु खर्च की परवाह नहीं करता हुआ सन्त-सतियों के दर्शनार्थ जाने लगा, आचार्य भगवन्त का चातुर्मास चाहे बालोतरा हुआ हो, जलगांव हुआ हो या मद्रास, जहाँ-जहाँ भी भगवन्त पधारे, हमारे इस क्षेत्र के श्रद्धालु भी गुरुदेव के दर्शनार्थ जाते रहे।

मेरा तो ऐसा मानना है कि गुरुदेव के यहाँ चरण पड़ने के बाद मानो हमारे पोरवाल बंधुओं ने चहुँमुखी उन्नति की है।

• भगवान से साक्षात्कार

सन् १९८८ के आचार्य भगवन्त के सवाईमाधोपुर चातुर्मास में प्रख्यात चिन्तक डॉ. महेश चन्द्र शर्मा (राज्य सभा सदस्य तथा सचिव दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली) दर्शनार्थ महावीर भवन में पधारे थे। पूर्व परिचय था, इसलिये मैं भी उनके साथ ही था। मैंने गुरुदेव को उनका परिचय कराया तथा यह भी बताया कि आप कॉलेज की नौकरी छोड़कर राष्ट्र सेवार्थ निकले हैं। पूज्य प्रमोद मुनि जी म.सा. का भी विद्यार्थी जीवन में उनसे घनिष्ठ सम्पर्क था।

आचार्य भगवन्त डा. महेशजी को प्रेरणा दे रहे थे। मैं दूर खड़ा था, परन्तु मुझे भी गुरुदेव के श्रीमुख से यह सुनाई दिया कि समाज के उपेक्षित लोगों की सेवा भी करते हो या नहीं, मैंने बीच में यह कहने का प्रयास किया कि बाबजी यह तो जीवनदानी व्यक्ति हैं जिनका लक्ष्य ही उपेक्षितों की रक्षा करना है, परन्तु मुझे डा. महेशजी भाई सा. ने रोक दिया और चुप रहने का इशारा किया। खैर आचार्य भगवन्त से आशीर्वचन लेने के पश्चात् रास्ते में मैंने डा.

महेशजी से पूछा, आपने मुझे पूरी बात स्पष्ट क्यों नहीं करने दी। इस पर वे बोले, पारस, तुझे पता नहीं है, मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं भगवान् से साक्षात्कार कर रहा हूँ, धन्य हैं ऐसे महापुरुष !

–पार्षद नगर पालिका, जे. एम. बी, सवाई माधोपुर(राज.)

■

निस्पृह एवं निर्भय योगी

• श्री ज्ञान मुनि

• गुरु आम्नाय के प्रति निस्पृह

स्थानकवासी समाज में गुरुधारणा (गुरु आम्नाय) की परम्परा रही है। इन वर्षों में यह परम्परा भी कभी-कभी विवाद एवं विद्वेष का कारण बन रही है। एक परम्परा के श्रावक को दूसरी परम्परा के संत जब गुरु धारणा करवाते हैं तो विद्वेष, विवाद एवं क्षोभ का वातावरण बनता देखा जाता है। आचार्य भगवन्त इस विषय में बहुत सतर्कता एवं निस्पृहता रखते थे। गुरु धारणा करवाने से मेरे भक्त बढ़ जायेंगे, प्रायः धारणा है, पर वे अपने भक्तों को बढ़ाने की इस परम्परा से परे ही रहते थे। दो प्रसंग मुझे ध्यान में हैं-

(i) अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध व्यवसायी श्री बस्तीमलजी मेहता अपनी बहिन (स्व. भोपालचन्द जी सा.लोढ़ा के पुत्र स्व.डा.लक्ष्मी चन्द जी सा.की धर्मपत्नी) के कारण प्रायः जोधपुर आते रहते थे तथा बाद में संवत् २०२३ में आचार्य श्री के अहमदाबाद चातुर्मास में आचार्य श्री के अत्यन्त निकट सम्पर्क में आये। आचार्य भगवन्त के महान जीवन से प्रभावित होकर वे पुनः पुनः गुरु धारणा करवाने की विनति करने लगे। किन्तु उनकी पूर्व परम्परा से आचार्य श्री परिचित थे, अतः वे उनकी विनति को टालते रहे। गुरु धारणा नहीं करवाई। २०३४ में श्री बस्तीमल जी मेहता जोधपुर आये। पुनः गुरुधारणा के लिये हठाग्रह करने लगे, पर आचार्य श्री ने हंसते हुए कहा कि यह तो हठीला भक्त है। श्री बस्तीमल जी ने मुझे वार्तालाप में कहा –"दूसरे संत होते तो कब की गुरुधारणा करवा देते। कोई-कोई तो हाथ धोकर के गुरुधारणा के लिये पीछे ही पड़ जाते हैं, पर गुरुदेव हैं कि बार-बार कहते हुए भी हमारी सुनवाई नहीं करते, पर गुरुधारणा गुरुदेव भले न भी करावें, मेरी आस्था पहले से अधिक दृढ़ ही हुई है।"

(ii) डेह निवासी श्रीपालचन्द जी बेताला भी आचार्य भगवन्त के २०२६ के नागौर वर्षावास में सम्पर्क में आये तब से ही वे गुरुधारणा देने के लिये पुनः पुनः प्रार्थना करते रहे। वे कहते रहे, गुरुदेव टालते रहे। संवत् २०४० में आचार्य श्री का वर्षावास जयपुर में था। तब तक श्रीपालचन्द जी भी सपरिवार जयपुर में बस गये थे। श्री सिरेहमल जी नवलखा के बंगले पर (जहाँ आचार्य भगवन्त विराज रहे थे) एक दिन श्रीपाल चन्द जी अड़ गये। मुझे गुरुधारणा करवायेंगे तभी यहाँ से जाऊँगा नहीं तो बैठा रहूँगा। मैं उनकी बात सुन रहा था। मैंने सहज भावुकतावश आचार्य भगवन्त से अर्ज की–"भगवन् उन्हें गुरु धारणा करवा दें।" आचार्य श्री ने स्मित हास्य बिखेरते हुए फरमाया–"आप इनके बगैर मुआवजे के वकील बने हैं।" पर इतना कहकर फिर टाल गये। हठीला भक्त भी मानने वाला नहीं था। आखिर आचार्य श्री ने बेताला जी को फरमाया कि आपके पिताजी श्री मानमल जी बेताला स्वीकृति देंगे तब गुरुधारणा दी जा सकती है। आखिर डेह से श्री मानमल जी बेताला के आने पर, उनके अर्ज करने पर भक्त का मन भगवन्त को रखना पड़ा। आज की परिस्थिति में ऐसे उदाहरण विरले ही मिलते हैं।

(iii) आचार्य भगवन्त का २००२ में मेड़तासिटी में चातुर्मास था। चातुर्मासोपरान्त आचार्य श्री विचरण करते हुए बड़ी रींया पधारे। बड़ी रींया आचार्य श्री सायंकाल अचानक पधारे तथा सर्दी के दिन थे, सूर्य अस्त होने में थोड़ा ही समय था। उस समय बड़ी रींया में स्थानक नहीं था। अतः मकान की गवेषणा कर ही रहे थे, तब एक

अनजान भाई ने एक सूना मकान बताया। वह मकान वर्षों से बंद रहता था । कोई भी गृहस्थ उसमें प्रवेश करते भी डरता था। रात्रि में तथा कभी-कभी दिन में भी उस मकान से डरावनी आवाजें आती रहती थी। लाल हवेली के नाम से प्रसिद्ध भूतहा हवेली अन्दर से डरावनी ही थी। पर आचार्य श्री तो आज्ञा लेकर उसमें ठहर गये। थोड़ी ही देर में जब श्रावकों को ज्ञात हुआ तो वे दौड़े दौड़े आये तथा वहाँ ठहरने के लिये मना करने लगे। पर आचार्य श्री ने कहा कि आप कोई मत घबराओ। मेरा तथा किसी का कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। दूसरे दिन प्रातः भक्तों ने आचार्य श्री के तथा सब संतों के सकुशलता में दर्शन किये तथा रात्रि में क्या हुआ, पूछने लगे। आचार्य श्री ने मंद-मंद मुस्कान बिखेरते हुए फरमाया कि सब आनन्द है तथा यहाँ रहने वाले को घबराने की जरूरत नहीं है। तब से लेकर आज तक भी उस हवेली में रहने वाले निर्भय रहते हैं, किसी प्रकार का कोई विक्षेप अब वहाँ सदा के लिये मिट गया है। यह बात बड़ी रींया के जैन ही नहीं अनेक पुराने इतर समाज के लोग भी कहते हैं।

(iv) सिद्ध योगी –आचार्य भगवन्त की पावन सन्निधि में संवत् २०४० में जयपुर वर्षावास के बाद किशनगढ़ की ओर विहार हुआ। मैं वर्तमान आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के साथ था। जयपुर से चलकर बीच में दूदू से १२ किमी दूर पालुखुर्द पहुंचे तो रात्रि में मुझे अचानक पेट में तीव्र दर्द हुआ। दर्द बढ़ता ही जा रहा था किसी तरह से दूदू पहुंचे। वहाँ सामान्य उपचार किया, किन्तु लाभ नहीं हुआ। इलाज चलता रहा। करीब सप्ताह भर बाद सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ डा.एस.आर.मेहता आये तथा फौरन उन्होंने निदान किया कि एपेंडिक्स का आपरेशन करवाना पड़ेगा, अतः या तो जयपुर लौटें अथवा अजमेर में आपरेशन संभव होगा। आपरेशन के नाम से ही मुझे घबराहट हुई। २-४ दिनों में ही आचार्य भगवन्त भी दूदू पधार गये। मैंने अर्ज की –"भगवन्त आप ही मेरा उपचार करावें। दर्द की स्थिति में मैं कब तो अजमेर पहुंचूँगा या कब जयपुर लौटूँगा।" ऐसी स्थिति में एक दिन मैं गुरुदेव के समक्ष रो पड़ा। भगवन्त ने प्यार से मुझे पास सुलाया (दिन में प्रातः ९ बजे) तथा मन ही मन कुछ स्तवन जैसा गुनगुनाते हुए मेरे दर्द वाले स्थान पर धीरे-धीरे सहलाते रहे। करीब आधा घंटा बाद ही मैंने अनुभव किया कि दर्द काफूर हो चुका है तथा मैं अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगा। उसके बाद न आपरेशन हुआ न ही उस प्रकार की पीड़ा ही हुई। ऐसा था भगवन्त का करुणापूर्ण हृदय तथा ऐसी थी उनकी प्रकृष्ट साधना।

(v) उदारता - श्रमण संघ से पृथक् होने के बाद आचार्य भगवन्त का २०२८ में पहली बार जोधपुर में वर्षावास हो रहा था। उस वक्त कुछ लोगों ने जोधपुर में ही सिंहपोल स्थानक में अन्य संतों का वर्षावास करवाया। हालांकि बाद में वे भी श्रमणसंघ में नहीं रह पाये। वातावरण कुछ कुछ तनाव एवं असमंजस जैसा था। निश्चित समय पर आचार्य श्री जोधपुर पधार गये। दूसरे संत भी वर्षावास हेतु पधार गये। आचार्य भगवन्त ने जोधपुर में प्रवेश के पहले ही प्रवचन में फरमाया कि जिस-जिस भाई के जो स्थान समीप हो, वह वहीं जाकर धर्म ध्यान, सामायिक एवं व्याख्यान श्रवण कर लाभ लेवे। आचार्यश्री के वर्षावास स्थल घोड़ों के चौक से नवचौकिया, पचेटिया, गूंदी का मौहल्ला पर्याप्त दूर था तथा सिंहपोल से ये स्थान अपेक्षाकृत समीप थे। आचार्य श्री का आशय था कि लंबी दूरी से यहाँ आकर एक सामायिक कर पाओ तथा आधा अधूरा व्याख्यान सुन पाओ इसकी अपेक्षा समीप के स्थान पर अधिक सामायिक एवं व्याख्यान का पूरा लाभ लेवे। दरअसल में आचार्य भगवन्त अत्यन्त उदार एवं सुलझे दृष्टिकोण के धनी थे। वे चाहते तो अपने भक्तों को एक इशारे में ही दूसरे स्थान की वर्जना कर देते, पर महापुरुषों के विराट् मन की बात ही निराली होती है।

(vi) कलह निवारण - आचार्य भगवन्त का संवत् २०२३ में अहमदाबाद में वर्षावास था। वहाँ से चातुर्मास के पश्चात् २०२४ में जयपुर में वर्षावास था। इस बीच विहारक्रम में आचार्य भगवन्त फतेहगढ़ पधारे।

फतेहगढ़ स्थानकवासी जैन संघ में २०-२५ वर्षों से मनमुटाव चल रहा था तथा समाज व्यवस्था दो भागों में विभक्त थी। इस कारण कई तरह से विद्वेष-विवाद एवं तनाव की स्थिति रहती थी। आचार्य भगवन्त ने वहाँ के माहौल को देखकर पारस्परिक प्रेम-संवर्धन की प्रबल प्रेरणा दी। आचार्य भगवन्त की वाणी के प्रभाव से संघ का वर्षों पुराना विवाद शान्त हो गया तथा समाज में प्रेम की सरिता फिर बहने लगी। वह प्रेम की सरिता आज तक अबाध रूप से बह रही है।

सरवाड़, २१ फरवरी १९९८

प्रेषक – नारायणसिंह लोढ़ा,
वर्द्धमान वस्त्र भण्डार, सरवाड़ (राज.)

■

प्रभावक योगी

• श्री एस. एस. जैन

प्रेरणा का फल– (i) सन् १९६२ की बात है जब जोधपुर में आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज का चातुर्मास चल रहा था। मैं जोधपुर में आफीसर्स ट्रेनिंग स्कूल में राजस्थान लेखा सेवा की ट्रेनिंग ले रहा था। उस समय सप्ताह में एक दो बार आचार्य श्री के दर्शन करने हेतु सिंहपोल स्थानक पर जाया करता था। एक बार मेरे साथ मेरे एक साथी श्री बी. पी. मामगेन भी साथ हो लिये।

आचार्य श्री ने श्री मामगेन से जिज्ञासा की कि आपके जीवन में किसी प्रकार का व्यसन तो नहीं है। श्री मामगेन ने बताया कि वे सिर्फ सिगरेट पीने के आदी हैं और दिन में लगभग एक पैकेट सिगरेट पी लेते हैं। आचार्य श्री ने सिगरेट के दुर्गुणों के बारे में अवगत कराया। श्री मामगेन ने आश्वासन दिया कि वे प्रातः एवं सायं खाना खाने के पश्चात् एक-एक सिगरेट लिया करेंगे एवं शनैः शनैः कम करने का प्रयास करेंगे। आचार्य की प्रेरणा का फल था कि श्री मामगेन ने २-३ माह में बिल्कुल सिगरेट पीना बन्द कर दिया। आचार्य श्री की प्रेरणा शैली एवं साधक व्यक्तित्व ही ऐसा था कि उनकी प्रेरणा किसी को भी भारस्वरूप नहीं लगती व व्यक्ति व्यसनमुक्त हो अपना जीवन-निर्माण कर लेता।

(ii) इसी प्रकार १९८४ में जब मैं राजस्थान कोपरेटिव डेयरी फेडरेशन में था, तब आचार्य श्री शेषकाल में जयपुर से विहार करके किशनगढ़ की तरफ पधार रहे थे। मार्ग में जयपुर से लगभग २५ कि.मी. दूरी पर श्री तालेडा जी की फैक्ट्री पर बिराज रहे थे। मैं वहाँ दर्शन करने गया था। मेरे साथ एक ड्राइवर श्री कानसिंह भी साथ गया था। जब मैं आचार्य श्री के दर्शन करके वापिस रवाना होने वाला था तब श्री कानसिंह ने भी आचार्य श्री के दर्शन करने के बारे में जिज्ञासा की कि क्या मैं भी आचार्य श्री के दर्शन कर सकता हूँ? मैं उसे सहर्ष आचार्य श्री के पास ले गया। शाम का समय था। आचार्य श्री ने उससे भी किसी व्यसन के बारे में जानकारी की। चूंकि वह राजपूत परिवार से था, अतः मांसाहार भी करता था एवं बीड़ी सिगरेट भी पिया करता था। आचार्य श्री ने उसे समझाया एवं श्री कानसिंह ने उसी समय मांसाहार एवं बीड़ी सिगरेट का त्याग कर दिया।

सिद्ध योगी–वर्ष १९८०-८१ की बात है कि जयपुर से संघ ट्रेन द्वारा आचार्य श्री के दर्शन करने रायचूर गया था। उसमें मेरे पिताश्री, माताश्री एवं छोटा पुत्र श्री चितरंजन भी भीलवाडा से संघ के साथ गये थे। उस वक्त मेरे पिताश्री श्री मनोहरसिंह जी चौधरी गोलेछा ग्रुप में उदयपुर मिनरल सिंडिकेट प्राइवेट लि. में प्रशासक थे एवं भीलवाडा में पदस्थापित थे। मुझे ऐसी जानकारी मिली कि मेरे पिताश्री को अचानक बड़ी जबरदस्त उल्टी हुई और उल्टी में खून भी निकला, जो लगभग दो बाल्टी था। आचार्य श्री को जब ऐसी सूचना मिली तो वे जहाँ संघ ठहरा हुआ था, पधारे और मेरे पिताश्री को मांगलिक प्रदान किया। उसी मांगलिक की देन थी कि मेरे पिताश्री इतनी जबरदस्त उल्टी होने के पश्चात् भी ठीक होकर संघ के साथ ही सहर्ष जयपुर लौटे एवं आज भी सकुशल हैं।

९ फरवरी, १९९८

–सी ५५, प्रियदर्शी मार्ग, तिलकनगर, जयपुर

■

संयम-साधना का सुमेरु

• श्री मिट्ठा लाल मुरड़िया, 'साहित्यरत्न'

सन्ध्या का समय था, सूर्य अस्ताचल की ओर भाग रहा था, गगन स्वच्छ था, तारों की चमक के साथ निशानाथ शीतलता विकीर्ण करने वाले थे, सतरंगी इन्द्र धनुष तना था, रिमझिम-रिमझिम मोती के कण धरा पर बिखर रहे थे। चम्पा, चमेली और गुलाब खिलखिला रहे थे, उनकी सौरभ से सारा वायुमण्डल महक रहा था, देव दुन्दुभियाँ बज रही थी, सितार के तार झन झना रहे थे, वीणा गूंज रही थी, देव मन्दिरों में आरती के साथ पूजा सम्पन्न हो रही थी । उस समय आकाश से एक ध्वनि गूंज उठी - 'सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे' यह ध्वनि महाप्रतापी आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के अन्तरतम में समा गयी। दया-करुणा-सेवा और समता से भरा हुआ यह आचार्य संयम-साधना के शिखर पर पहुँच गया था। भीमकाय पाषाण-खण्ड पर बैठकर यह संत सत्-चित्-आनन्द लुटा रहा था।

सादड़ी साधु-सम्मेलन के प्रथम दर्शन से ही मैं उनके महान् व्यक्तित्व से आकर्षित होकर नत मस्तक हो गया था। जिनवाणी में प्रकाशित - 'मैं भी काला हूँ'- निबन्ध पर मेरा नाम भी जिनवाणी के सम्पादक-मण्डल में जुड़ गया। व्यक्ति को पहचानने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। उनके व्यक्तित्व में एक चमक और अनूठापन था। उनकी आकृति पर एक आभा व्याप्त थी। जैसा सुना था, इस संत को वैसा ही पाया। मेरे मानस में उनके प्रति असीम श्रद्धा उमड़ पड़ी। उनके प्रभाव से मेरा जीवन बदल गया।

ज्ञान-दर्शन और चारित्र से यह आचार्य जगमगा रहा था। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की मरकत मणियों से यह आलोकित हो रहा था। यह मनमौजी स्वभाव का जागरूक धर्म-प्रहरी था, यह सोते हुए भी जागृत था। इस आचार्य का न किसी से लेना था न किसी का देना था, न किसी की निन्दा के चक्कर में पड़ा, न किसी की प्रशंसा में बहा। न कोई प्रपंच, न कोई छल-छद्म, न कोई समस्या, न कोई आडम्बर।

यह आचार्य स्वच्छ, निर्मल और मंगलमय था। यह आचार्य धर्म में डूबा हुआ और प्रेम में पगा था। एकता इसका सम्बल था। सामायिक - स्वाध्याय इसका नारा था। इस आचार्य में एक तेज था। यह जो कहता था, वही हो जाता था। यह चमत्कारी पुरुष था। जो एक बार इससे दृष्टि मिला लेता, वह निहाल हो जाता था। सन्त समुदाय पर इसका जबरदस्त प्रभाव था। यह साधना का सरताज था, स्वाध्याय का बादशाह था, धर्म के अनन्त उपादानों से यह तृप्त था, संयम - साधना की अपनी साहसिक विचार सरणियों से यह गौरवान्वित हुआ था।

इसके सम्मुख कितने आये और कितने गये, कितने उठे और कितने गिरे। कितने बने और कितने बिगड़े। कितने शिखर पर पहुँचे और कितने भू-लुण्ठित हुए। मगर यह व्यक्तित्व अपनी आन-बान और श्रमणत्व की शान के साथ उसी विचार-पद्धति पर अडिग रहा, दृढ़ता इसका साथ देती गई।

लोक जीवन को जगाया–इस दूरदर्शी संत को समाज का भविष्य दीख रहा था। इसका मानना था कि अभी वाली पीढ़ी पर सामायिक और स्वाध्याय करने के संस्कार नहीं पड़े तो भावी पीढ़ी की क्या दशा होगी ? वह दिशाहीन होकर भटकती रहेगी। इसीलिए इस संत ने लोक-जीवन को जगाया और उसमें धर्मनिष्ठा पैदा की। यह संत विलक्षण प्रतिभा का धनी था। इसका व्यक्तित्व वीरवाणी से अलंकृत था। जो व्यक्ति एक बार इसके सम्पर्क

में आ जाता तो वह आचार्य श्री का हो जाता था। इस व्यक्तित्व के प्रभाव ने मेरा जीवन झकझोर दिया था। मैं इसके नाम स्मरण से हर संकट से बचता रहा। यह सन्त जीवनादर्शों और जीवन जीने की कला में बड़ा निपुण था।

यह धर्म की भावभूमि पर साधना का शंखनाद करता रहा। इस आचार्य के व्यक्तित्व का निर्माण तीर्थंकरों, गणधरों और आचार्यों की धर्मनिष्ठा और अनेकान्त के परमाणुओं से हुआ था। सचमुच यह कर्मयोगी पुरुष था। इस कर्मयोग में इसका आचार्यत्व झांकता था, वीरवाणी का यह मंगल कलश था। उत्तराध्ययन, गीता, रामायण और बाइबल का यह नवनीत था। इसने विकारों की सभी गांठें तोड़ दी थी। यह सन्त चाहता था कि समाज का बच्चा-बच्चा स्वाध्यायी और समतावान बने, न्याय-नीति पर चले, धैर्य और विवेक से काम ले, हर सदस्य के साथ सौजन्य बढ़ावे। प्रार्थना के साथ सामायिक करे। अगर बच्चों में जैनत्व उतरा और सम्यक्त्व जमा तो आगे की पीढ़ी की चिन्ता कम होगी। इस आचार्य के अन्तर में कितना दर्द था यह इनके भावों से जाना जा सकता है।

यह सन्त ज्ञानी और समता-शक्ति सम्पन्न था, इतिहासज्ञ था, विद्वान्, समालोचक, कवि, कथाकार, साहित्यकार और चतुर चितेरा था। सैंकडों मील की पैदल यात्रा में यह संत कभी नहीं घबराया , भयावनी और दुर्गम घाटियों के दुरूह पथ को पार करते हुए कभी हतोत्साहित नहीं हुआ। इस सन्त की कीर्ति कथा और गौरव गाथा दिग्-दिगन्त में गूंज रही है। इसकी कीर्ति पताका फहराने को इसका साहित्य ही पर्याप्त है।

यह आचार्य था । इसके आचार्यत्व में श्रमणत्व चमकता था। संयम-साधना इस संत की बेजोड़ थी, बुराइयों को दूर करने के लिये यह संत जीवनभर शेर की तरह गरजता रहा, पाखण्ड पर इसकी बगावत थी, अंध- श्रद्धा पर इसका प्रहार था, आडम्बरों के खिलाफ यह सदा ललकारता रहा।

-श्री ह.मु. जैन छात्रावास
नं. 20, प्रीमरोज रोड, बैंगलोर, 25

■

मेरे जीवन के कलाकार

• श्री रामदयाल जैन

दरअसल आचार्य श्री के बारे में लिखने में मैं समर्थ नहीं। न मेरे में बुद्धि ही है। आचार्य श्री की बहुत बड़ी देन है। यदि उन्हें मेरे जीवन के कलाकार भी कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आचार्य श्री का जो उपकार है, उसे शब्दों में अंकित नहीं किया जा सकता। वह मात्र अनुभव का विषय है। जिस प्रकार गूंगा गुड़ के स्वाद का अनुभव ही कर सकता है, कहने में समर्थ नहीं होता, वही स्थिति मेरी भी है।

सन् १९७३ की बात है कि आचार्य श्री गंगापुर सिटी की नसियां कालोनी में पधारे। मैंने आचार्य श्री के प्रथम दर्शन यहाँ ही किये। आचार्य श्री ने सेठ ऋद्धिचन्द जी व उनके सुपुत्र गुलाबचन्द जी को बारह व्रत अंगीकार करने की प्रेरणा की। दोनों पिता व पुत्र ने मेरी तरफ संकेत करते हुये कहा कि ये बारह व्रत मास्टर साहब को दिला दें। मैंने पूज्य श्री से निवेदन किया कि मैं धर्म के विषय में जानता तो कुछ नहीं हूँ, फिर भी यदि ये लेना नहीं चाहते हैं और मेरी ओर संकेत करते हैं और आप उचित समझते हैं तो ये बारह व्रत मुझे अवश्य देवें । मैंने आचार्य श्री के सामने झोली कर दी। पूज्य श्री ने मुझे बारह व्रत के विवरण का पन्ना देते हुए पूर्णरूपेण समझा कर प्रत्याख्यान कराये।

उस समय न तो मैं सामायिक ही जानता था, न धर्म के सम्बन्ध में और कुछ ही जानता था। हाँ, दिगम्बर सम्प्रदाय का आलोचना पाठ व मेरी भावना का पाठ नित्य प्रति किया करता था।

आचार्य श्री की प्रेरणा से मैं सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल आदि सीख गया। पर्युषण पर्व में बाहर सेवा देने भी जाने लगा। जब जब आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनकी सेवा में पहुंचता, कुछ न कुछ नया प्रसाद मिल ही जाता था। एक सामायिक से पाँच सामायिक तथा अन्य जो भी नियम दिलाये, सबका नियमित रूप से पालन हो रहा है।

पूज्य श्री की कृपा से मैंने बहुत कुछ पाया। आचार्य श्री ने सामायिक व स्वाध्याय का ऐसा बिगुल बजाया कि मैं ही नहीं जो भी उनके सान्निध्य में आये उनके जीवन में अवश्य ही परिवर्तन हुआ होगा।

(१) मेरा जीवन सरकारी नौकरी में लगभग चालीस वर्ष का निकला। मेरी आदत थी कि जो कामचोर अथवा रिश्वत खोर होते चाहे वे अधिकारी हों या अधीनस्थ, मुझे उनसे चिढ़ होती थी, किन्तु आचार्य श्री की प्रेरणा से स्वाध्याय के माध्यम से मैंने समझा कि ऐसे व्यक्तियों के प्रति माध्यस्थ भाव अपनाना ही उपयोगी है-

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवे कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

मैंने माध्यस्थ भाव को अपनाया और जाना कि जो भी गलत काम करते हैं, वह उनकी अज्ञानता है। उनके प्रति आवेश या क्रोध करना उचित नहीं है।

(२) कभी किसी के द्वारा आलोचना या निन्दा सुनकर पहले बहुत रोष आता था, किन्तु आचार्य श्री की देन है कि-

करड़ी, चुभती वात मन नीं आवे जद रोष।
तो जानो श्री मनरङ्ग में, मनरङ्ग पणारो रोष॥

(३) आचार्य श्री की देन से मैंने यतना को समझा, जैसा कि भगवान महावीर स्वामी ने गौतम गणधर के पूछने पर कहा -

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सए।
जयं भुंजंतो, भासंतो, पावकम्मं न बंधइ॥

अर्थात् यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खड़ा रहे यतनापूर्वक बैठे तथा यतनापूर्वक ही सोए। यतना पूर्वक खाता हुआ और बोलता हुआ व्यक्ति पाप कर्म का बंध नहीं करता है।

(४) आचार्य श्री की देन से मैंने निम्नङ्कित सूत्र समझा -

जं इच्छसि अप्पणत्तो, जं च ण इच्छसि अप्पणत्तो।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तिअं जिणसासणं॥

अर्थात जो अपने लिए चाहते हो, वह दूसरों के लिए भी चाहना चाहिए और जो अपने लिए नहीं चाहते हो वह दूसरों के लिए भी नहीं चाहना चाहिए। बस इतना मात्र जिनशासन है।

(५) अपने पराये को जाना, जैसा कि कहा भी है -

जा तन में नित जिय बसे, सो न अपना होय।
तो प्रत्यक्ष पर द्रव्य, कैसे अपना होय॥

और भी कहा है :-

जो जावे वह मेरा नहीं जो नहीं जाय वह मेरा है।

आत्मा के अतिरिक्त सब जाने वाले हैं इसलिए आत्मा ही मेरा है।

उपर्युक्त निवेदन करने का मेरा तात्पर्य यह है कि मुझसे गलतियाँ तो होती रहती हैं, परन्तु या तो मैं उसी वक्त संभल जाता हूँ और कभी उस वक्त नहीं संभल पाता तो स्वाध्याय एक ऐसा माध्यम है कि जब स्वाध्याय करने बैठता हूँ तब गलती का अहसास होता है और अपने प्रति ग्लानि होती है। गलतियों का चिन्तन चलते-फिरते उठते-बैठते भी हो जाया करता है।

-सेवा निवृत्त तहसीलदार, गंगापुर सिटी (राज.)

आचार्य श्री : एक मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शक

• श्री लक्ष्मीचन्द जैन

समय-समय पर संसार में ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया है, जिनकी आध्यात्मिक ऊँचाई मानवता की सामान्य सतह से बहुत ऊंची रही है। आचार्यप्रवर के जीवनदर्शन को समझना हर किसी के लिए संभव नहीं है। उन्होंने इस समूचे विश्व के समक्ष आधुनिक युग में इतना महान् जीवन जीकर दिखा दिया कि उसका विश्लेषण करना मनीषियों के लिए भी एक अबूझ पहेली के समान है।

उनके सम्पर्क में जैन-अजैन सभी प्रकार के व्यक्ति आते थे। वे अपनी दिव्य मेधा से प्रत्येक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को पढ़ लेते थे। उसकी कमियों को तुरन्त जानकर उन्हें दूर करने के प्रयास में लग जाते थे। वे जानते थे कि कोई भी व्यक्ति एकदम अध्यात्म की ओर आकर्षित नहीं होता, व्यक्ति को धीरे-धीरे अध्यात्म के आनन्द का अनुभव आता है, इसके लिये स्वाध्याय ही ज्ञानार्जन का एक ऐसा माध्यम है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक ऊँचाइयों को अर्जित कर सकता है।

वे स्वाध्याय के अन्तर्गत धर्मग्रन्थों को पढने के लिये प्रेरित करते थे। उनका इस संबंध में गहन अनुभव था कि यदि व्यक्ति में प्रतिदिन कुछ अध्ययन करने की आदत विकसित हो गई तो शनैः शनैः वह सन्मार्ग की ओर आकृष्ट हो जायेगा और उसकी अधिकतर विपदाएँ स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

जब व्यक्ति १०-१५ मिनट के लिये भी पढ़ने बैठता है तो घंटा आधा घंटा बीत जाना मामूली बात है। स्वाध्याय का चस्का जब व्यक्ति को लग जाता है तथा उसी बीच यदि सौभाग्य से गुरुदेव के दर्शन का और लाभ प्राप्त हो जाता है तो वे सबसे पहले यही पूछते कि भाई आपका स्वाध्याय कैसा चल रहा है? जब साधक बताता कि भगवन् आपने तो मुझे १०-१५ मिनट स्वाध्याय का कहा था, परन्तु मैं पढ़ने बैठता हूँ तो एक घंटा कब बीत जाता है, पता ही नहीं लगता।

तब आचार्य प्रवर फरमाते थे कि भाई जब तुम एक घंटे तक पढते रहते हो तो एक घंटे से भी कम समय ४८ मिनट में एक सामायिक हो जाती है, फिर सामायिक पूर्वक स्वाध्याय क्यों नहीं करते ?

उनकी यह बात श्रावक या श्राविका के गले उतर जाती थी। इस प्रकार वे अपने भक्तों को सामायिक के मार्ग की ओर आकर्षित कर लेते थे।

अब चारित्र चूडामणि संतप्रवर को अपने भक्त के लिये कुछ करना शेष नहीं रहता था। वह अपने आप आचार्य श्री की ओर खिंचा हुआ चला आता था।

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़ी गढ़ी काढ़त खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर मार चोट॥

वे पंच महाव्रतधारी थे । अनुयायी को अणुव्रत के पालन हेतु तैयार करने में वे दक्ष थे। श्रावक को अध्यात्म के पथ पर कैसे आगे बढ़ाना, इसमें गुरुदेव सिद्धहस्त थे। आचार्य श्री को उनकी इसी मनोवैज्ञानिक शैली ने विश्व के महान् संत के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

वे पढ़े-लिखे नौकरी पेशा व्यक्तियों की अच्छी पकड़ जानते थे । उनकी इस ज्ञान-शक्ति को वे

समाजोपयोगी बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहते थे। वे कहते थे –

हीरा मुख से कब कहे, लाख हमारो मोल।

इस प्रकार के व्यक्तियों से एक ऐसा स्वाध्याय संघ बन गया जिसके माध्यम से दूर-दूर के स्थानों पर भी धर्म आराधना का मार्ग खुल गया। उनकी यह शैली इतनी अधिक कारगर सिद्ध हुई कि वे स्वाध्याय और सामायिक के प्रेरक के नाम से अमर हो गये।

सभी संघों के लिये स्वाध्याय एवं सामायिक के लिये वे मार्गदर्शक के रूप में सिद्ध हुए। आज उनके आध्यात्मिक विचार कार्यरूप में परिणत होते हुए सफल लक्षित होते हैं।

त्रिकालशरणं भवभवशरणं सद्गुरुशरणम्।

–पूर्व प्रधानाचार्य, छोटी कसरावद
जिला-खरगोन (म.प्र.) ४५१२२८

■

दो महान् दिव्यात्माओं का अद्भुत मिलन

• श्रीमती रूपकुंवर मेहता

बीसवीं सदी में मरुधरा में दो महान् दिव्य विभूतियाँ अवतरित हुईं व उन्होंने चहुँ ओर अपना आलोक फैलाया। उनमें से एक थे जैनाचार्य पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी म.सा. व दूसरी विभूति थी बाळागांव की निराहार योगिनी सती माँ रूप कुँवर जी।

मुझे दोनों संतों के अत्यन्त समीप रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दोनों ही महा मानव थे। दोनों ने ही अपने जीवन काल में त्याग व तपस्या का अनुपम इतिहास रचा । दोनों ही अहिंसा के विलक्षण पुजारी थे। गुरु हस्ती के आशीर्वाद से ही मैंने २३ वर्षीतप तीन मासखमण सहित सहर्ष पूरे किये और मेरे सब कठिन अभिग्रह भी फलीभूत हुए।

बाळा सती जब गुरु हस्ती के पहली बार दर्शनार्थ आईं, दूर से ही दंडवत् करती आई । यह दृश्य अद्भुत था। इसके पश्चात् सती माँ कई बार गुरु हस्ती के दर्शन करने उनके चातुर्मास में गईं। कई यात्राओं में मैं भी उनके साथ थी।

एक समय मैं गुरु हस्ती के पीपाड़ चातुर्मास में उनके दर्शनार्थ गई। गुरुवर ने फरमाया कि सती माँ को अपनी मृत्यु का बहुत पहले ही पूर्वाभास हो गया था। सती जी ने मुझे अपनी मृत्यु के पूर्व दर्शन देकर मार्गदर्शन करने को कहा और भावना प्रकट की कि अन्त समय में मैं वहाँ मौजूद रहूँ। गुरु हस्ती ने फरमाया कि जिस प्रबल भावना से रूपकुंवर जी ने उनसे वादा लिया था वह मना नहीं कर सके।

बाला सती ने कार्तिक शुक्ला १४ सन् १९८६ को यह नश्वर शरीर त्याग दिया। पूनम को उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित हुआ। चातुर्मास कल्प के अनुसार जैन श्रमण विहार नहीं कर सकते, अतः आचार्यश्री प्रत्यक्षतः बालासतीजी को दर्शन व पाथेय देने हेतु शरीर से नहीं पधार सके। तथापि बाला सतीजी को शरीर छोड़ने के पूर्व आचार्य श्री ने मांगलिक प्रदान किया। सहज श्रद्धाभिभूत रूपकुंवरजी ने कर युगल जोड़कर महाप्रयाण के लिये विदा मांगी।

'रूप श्री' ४६, अजीत कालोनी, जोधपुर

■

परम कृपालु गुरुदेव

मेरे पर परम गुरुदेव श्रद्धेय आचार्य श्री की असीम कृपा रही। सन् १९४२ में अगस्त क्रान्ति के दौरान मैं वैरागी के रूप में कतिपय वर्षों के लिए आचार्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहा।

गुरुदेव का विद्यानुराग इतना प्रबल था कि वे स्वयं मुझे प्राकृत का अध्ययन करवाते थे और पंडित दुःखमोचन जी झा के पास अन्य सन्तों के साथ मुझे भी संस्कृत के अध्ययन का अवसर मिला था। धार नगरी के कुछ श्रावकों की माँग पर मुझे स्वाध्यायी के रूप में पर्युषण करवाने धार नगरी भेजा गया। धार का वह पर्युषण बहुत ही सफल रहा और मेरे खयाल से उसी समय से पर्युषण में स्वाध्यायी भेजने का कार्यक्रम प्रतिवर्ष चलने लगा।

उज्जैन चातुर्मास समाप्त होने पर मैं गुरुदेव के सार्थ-साथ ही पैदल विहार करने लगा। महान् संतों की संगति का प्रभाव उनके आचरण को देख कर पड़ता है। उनके सान्निध्य में कुछ ऐसे सात्त्विक परमाणुओं का आदान-प्रदान होता है कि उनके संग रहने वाला व्यक्ति भी बिना कहे ही वैसा बनने लगता है। लोंच तो मैं नहीं कर सकता था, पर मैंने दाढ़ी और बाल बनवाने बंद कर दिये। पाँव में जूते पहनने बंद कर दिये। मात्र धोती, कुर्ता और २ चद्दर से सर्दी-गर्मी के सब दिन गुरु कृपा से आनंद पूर्वक बीत गये। गुरुदेव विहार में बहुत तेज चलते थे, मैं भी उनके साथ-साथ उसी चाल से चलने का प्रयत्न करता था।

उज्जैन से इंदौर, रतलाम, मन्दसौर, जावरा आदि अनेक ग्राम नगरों से होते हुए गुरुदेव का विहार उदयपुर की ओर हो रहा था। बीस-बीस मील का उग्र विहार और फिर किसी गाँव में प्रासुक जल का अभाव तो कहीं प्रासुक गोचरी का अभाव। कहीं ठहरने के स्थान का अभाव। कड़कड़ाती सर्दी में तालाब के किनारे एक कच्चे टूटे-फूटे फर्श वाले तिबारे में दो चद्दर से रात बिताना ! किंतु गुरुदेव का ऐसा प्रभाव कि सब संत आनंद पूर्वक सहन कर लेते । किसी को कोई शिकायत नहीं। मेरा जीवन भी गुरुदेव की संगति से उस समय कितना परिवर्तित हो गया था ! कितना सादा और सरल था वह जीवन ! मेरा जीवन भी उस समय संत-जीवन जैसा ही हो गया था।

उदयपुर चातुर्मास में गुरुदेव ने अध्ययन के साथ-साथ मुझे गुजराती पढ़ना भी सिखाया और गुजराती से हिंदी में अनुवाद करने की प्रेरणा दी। मैंने गुजराती कर्मसिद्धांत पुस्तक से कई लेख हिंदी में अनूदित कर भोपालगढ भेजे जो उस समय की जिनवाणी में कपूरचंद जैन के नाम से प्रकाशित हुए। उदयपुर चातुर्मास के बाद गुरुदेव का विहार मारवाड़ की तरफ होने की संभावना जान कर मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि 'मैं तो अभी मारवाड़ नहीं जा सकूँगा, तब मेरा अध्ययन क्या अधूरा ही रह जायेगा?' गुरुदेव ने हँसते हुए कहा कि सब व्यवस्था हो जायेगी।" उदयपुर से चारभुजा तक मैंने गुरुदेव के साथ-साथ विहार किया। उसके बाद मुझे इंदौर में पंडित पूर्णचंद्रजी दक के पास आगे के अध्ययन के लिये जाने की आज्ञा हुई। मैं भारी मन से गुरुदेव का साथ छोड़ कर इंदौर के लिये चल पड़ा, किंतु गुरुदेव के सान्निध्य के मेरे वे दो वर्ष अभी भी मुझे रोमांचित कर देते हैं। मेरे जीवन के वे दिन स्वर्णिम दिन थे, जिन्हें स्मरण कर आज वृद्धावस्था में भी मेरा रोम-रोम गद्गद् हो जाता है।

ऐसे महान विद्यानुरागी थे आचार्य प्रवर ! मुझे ही नहीं उन्होंने अन्य भी कई लोगों को जैन धर्म के अध्ययन

के लिये प्रेरित किया था। इंदौर में पंडित पूर्णचंद्र जी के पास रहकर मैंने कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय की विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की और हितेच्छु श्रावक संघ रतलाम की सिद्धांत विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की। यह गुरुदेव की ही कृपा और प्रेरणा का प्रसाद है कि मैं सिद्धर्षिगणि के उपमिति भव प्रपंच कथा जैसे महान् ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद कर सका और लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृतिविद्यामन्दिर, अहमदाबाद में रहकर प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में लोंकाशाह सम्बन्धी उल्लेखों का अन्वेषण आदि कार्य कर सका। उन्हीं की कृपा से मैं मध्यप्रदेश जैन स्वाध्याय संघ की स्थापना एवं श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ जलगाँव के संचालन में सहयोगी बन सका।

आचार्य श्री हस्ती की दिनचर्या को मैंने निकट से देखा है. प्रातःकाल या संध्या के समय उनके समक्ष बैठकर भक्तामर या कल्याणमंदिर स्तोत्र की अथवा नन्दीसूत्र की सज्झाय को श्रवण करने में जो अलौकिक आनंद प्राप्त होता था, उसका वर्णन करने की शक्ति लेखनी में नहीं है। मैंने कभी उनको एक क्षण के लिये भी खाली बैठे नहीं देखा। प्रातःकाल से सूर्यास्त तक उनका अध्ययन और लेखन कार्य निरंतर चलता ही रहता था। ऐसे महान् अध्यवसायी विद्यानुरागी वे स्वयं थे और ऐसा ही विद्यानुराग वे उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के मन में भर देते थे। मैं तो आज जो कुछ भी हूँ वह गुरुदेव की कृपा का ही प्रसाद है। यदि गुरुदेव ने मुझे शरण न दी होती, तो मेरे भूमिगत जीवन का सदुपयोग कैसे हो पाता और उनकी सहायता के बिना मैं जैन दर्शन , प्राकृत, संस्कृत, गुजराती का अध्ययन कैसे कर पाता? ऐसे महान् गुरुदेव को शत शत प्रणाम !

-१०/५९५ नन्दनवन, जोधपुर

■

सर्प बचाने की आँखों देखी घटना

• भंडारी श्री सरदारचन्द जैन

विक्रम संवत् २०१५ अर्थात् ईस्वी सन् १९५८ का वर्षावास परम पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा., वयोवृद्ध स्वामीजी श्री अमरचंदजी म.सा., ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ शिष्य सेवाभावी श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म.सा., श्री माणकचंदजी म.सा., बाबाजी श्री जयंतीलालजी (जालमचंदजी) म.सा., नवदीक्षित मुनि श्री सुगनचंदजी म.सा. एवं श्रमण संघ के संत श्री हगामीलालजी म.सा., श्री रोशनलालजी म.सा., श्री प्रेमचंदजी म.सा. आदि ठाणा नौ का भारत की राजधानी महानगरी दिल्ली के सब्जीमंडी स्थानक में था। चातुर्मास सुसम्पन्न होने के पश्चात् जब मैंने सुना कि पूज्य गुरुदेव श्री का विहार दिल्ली से राजस्थान की ओर होने वाला है, मैं सेवा में दिल्ली पहुँचा और पूज्य गुरुदेवश्री के दिल्ली से अलवर तक विहार में, मैं पैदल साथ रहा और जब मेहरोली, गुड़गांव, बादशाहपुर आदि ग्राम-नगरों से विचरण करते हुए आगे बढ़ रहे थे, तब रास्ते में सुबह के समय एक गांव के लोग इकट्ठे होकर (गांव का नाम स्मरण में नहीं रहा), हाथों में बड़ी बड़ी लाठियाँ लेकर, एक मकान के कच्चे छप्पर से, एक बहुत बड़े कालिन्दर सर्प (नागराज) को गिराकर मारने लगे। उसी समय उस रास्ते से पूज्य गुरुदेव श्री और हम साथ ही आ रहे थे तो एकदम गुरुदेवश्री ने वहीं रुककर उन लोगों से कहा कि आप सांप को मारो नहीं, तब वे लोग कहने लगे कि मारे नहीं तो क्या करें, यह विषैला सांप हमको काट जायेगा-खा जायेगा, हम मर जायेंगे।

उसी वक्त गुरुदेवश्री ने फरमाया कि आप सब लोग दूर हो जावें, हम इसको पकड़कर सुरक्षित स्थान में दूर छोड़ देंगे। आप लोग निश्चिन्त हो जावें, घबरायें नहीं, चिन्ता न करें, डरें नहीं।

उस सांप को आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेवश्री ने ओघे पर लेकर, बहुत दूर एकान्त निर्जन स्थान में ले जाकर सुरक्षित छोड़ दिया। तब गांव के सभी लोग गुरुदेव भगवन्त की इस 'असीम शक्ति' 'आत्मबल' की बहुत बहुत प्रशंसा करने लगे।

इसके पूर्व तो कई लोगों से सिर्फ सुनने में ही आया था कि सातारा नगर महाराष्ट्र प्रांत में भी गुरुदेव भगवंत ने एक नागराज को जीवन दान दिया, पर इस गांव में तो हमने प्रत्यक्ष आँखों से देखा, और हमारा अन्तर-मन गुनगुनाने लगाः—

"फूल तो बहुत होते हैं, पर गुलाब जैसे नहीं।
संत तो बहुत होते हैं, पर 'हस्ती' गुरुदेव जैसे नहीं॥"

-त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर-342002

■

आचार्य श्री : जैसा मैंने देखा और पाया

• श्री मोतीलाल सुराना

मैं अपनी जन्मभूमि रामपुरा (जिला मंदसौर) हाइस्कूल में पढ़ता था। आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब का वहीं चातुर्मास था। मेरे पिताजी हेमराज जी से मुझे आचार्य श्री के बारे में ज्यादा बातें मालूम होती थीं, क्योंकि एक तो मैं छोटा था, अतः आचार्य श्री के पास बार-बार जाने में शुरू शुरू में झिझक आती थी तथा दूसरा यह भी विचार आता था कि उनके ज्ञानाभ्यास में क्यों व्यवधान पैदा करूं, क्योंकि पिताजी ने बतलाया था कि उनका चातुर्मास यहां केवल इसीलिए हुआ है कि यहां शांति है। शहरों जैसी आवागमन की स्थिति न होने से भक्तों की ओर से भी कुछ समय की बचत होगी, तथा शास्त्रीय ज्ञानोपार्जन अधिक हो सकेगा। मुझे यह भी समझाया गया था कि ये सबसे कम उम्र के आचार्य हैं, संतों के समूह पर एक एक आचार्य होता है। सन्तों को चाहे वे उम्र में (या दीक्षा में) बड़े हों पर सभी बात आचार्य से पूछ कर करनी पड़ती है।

वैसे तो छोटी उम्र की कई बातें मैं भूल गया हूँ, पर रामपुरा का आचार्य श्री का वह चातुर्मास तो मुझे अच्छी तरह याद है। पंडित दुःखमोचन जी झा से आप ज्ञानाभ्यास सीखते थे। सतारा वाले सेठ साहब भी उस चातुर्मास में दर्शनार्थ पधारे थे। यह सब मुझे याद है। क्यों याद है, इसका एक ही जवाब है कि उसी समय से आचार्य श्री की गहरी छाप मेरे हृदय पर पड़ी थी। घर में धार्मिक वातावरण होने से साधु-संतों के पास तो पहले भी जाता था, पर आचार्य श्री की वय, ज्ञानाभ्यास, छोटी उम्र में इस संसार को असार समझकर छोड़ना, इन सब बातों ने मुझ पर तथा मेरे साथी छात्रों पर बहुत असर किया था।

आचार्य श्री उस समय संस्कृत का अभ्यास करते थे। पं. दुःखमोचन जी झा को उस समय हम जब संस्कृत में किसी अन्य विद्वान से बात करते सुनते तो हमें आश्चर्य होता था कि क्या संस्कृत में भी बातचीत की जा सकती है। मुझे याद है कि उस समय आचार्य श्री ने कुछ अंग्रेजी का अभ्यास भी शुरू किया था, क्योंकि जब भी हम दर्शनार्थ जाते हमारे हाथ में भाषान्तर पाठमाला या ऐसी कोई पुस्तक होती तो वे उसे देखते तथा कभी कभी उसमें से कुछ नोट भी कर लेते थे।

इस चातुर्मास के बाद तो मुझे शाजापुर, सैलाना, भीलवाड़ा तथा अन्य कई स्थानों पर आचार्य श्री के दर्शनों का तथा प्रवचन सुनने का सुअवसर मिला। उन सभी क्षणों को मैंने अपना अहो भाग्य ही माना कि ऐसे ज्ञानवान क्रियावान-आत्मबली संत आज हमारे साधु-समाज में विद्यमान हैं।

आचार्य श्री जैसी प्रवचन शैली, शास्त्रीय ज्ञान, एक एक शब्द तोलकर बोलने की आदत तथा स्मरण शक्ति बहुत कम संतो में मिलेगी।

इन सब बातों पर जब मैं विचार करता हूँ तो ऐसा मालूम पड़ता है कि बाल वय में जो संस्कार भरे जा सकते हैं, वैसे सुसंस्कार शायद बड़ी उम्र वालों में इतनी आसानी से नहीं भरे जा सकते हैं।

साधु नियमों को बारीकी से पालने की आदत आपकी संप्रदाय में भी वर्षों से रही है। जब आप छोटे थे तब मुझे पिताजी ने बतलाया था कि आपके भोजन पर भी ध्यान रखा जाता था। भक्तजन तो श्रद्धावश अच्छा (पौष्टिक)

भोजन बहराने का आग्रह करते थे, पर संतगण ऐसी चीजें लाते थे जो आपके स्वास्थ्य तथा भविष्य के लिए उचित हो। आपके साथी साधुगण भी वैसा ही आहार करते थे। वे भी अन्य पदार्थ का उपयोग नहीं के बराबर करते थे। ऐसा नहीं कि वे कुछ और पदार्थ खावें तथा आचार्य श्री को कुछ और देवें। नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य पालन के लिए जिस वातावरण का ध्यान रखना आवश्यक था, उसकी ओर जागरूक रहकर बालवय में आपका लालन-पालन अन्य संत करते थे।

कभी-कभी दीक्षा सम्बन्धी जो बातें चलती हैं उसमें बाल-दीक्षा की बात को लेकर लोग अपना अपना अलग मत रखते हैं पर यह बात निर्विवाद है कि यदि योग्य बालक कम उम्र में भी दीक्षा के लिए आग्रह करे तो पूरी पूरी सावधानी से उसके भावों की जांच करके उसे दीक्षा दी जाय तथा बाद में ऊपर वाले संत सभी बातों का उसके ज्ञानाभ्यास का खान-पान का, अन्य वातावरण का पूरा पूरा ध्यान रखें तो फिर किसी शक की गुंजाइश नहीं कि वह दीक्षा कैसी होगी। हमारे सामने तो आचार्य श्री के सद्गुणों का तथा बालवय का यह एक पक्का उदाहरण है ही।

आचार्य श्री की विद्वत्ता तथा वक्तृत्व-कला के विषय में जो भी लिखा जाय वह थोड़ा ही होगा। उनके प्रवचनों में, उपदेशों में, साहित्य में क्या बालक, क्या जवान, क्या वृद्ध सभी को एक सरीखी आध्यात्मिक खुराक मिलती है जिसे ग्रहण करने के पश्चात् छोड़ने को दिल नहीं करता।

स्वाध्याय-सामायिक जैसे महत्त्व के विषय को आपने जन-जन तक पहुँचाने का जो सफल कार्य किया है वह निश्चित ही अद्वितीय है। इन सब सफलताओं में एक रहस्य रहा हुआ है, वह है आचार्य श्री का सतत अध्यात्म चिंतन और कथनी-करनी में अद्भुत साम्य । आचार्य श्री की कायोत्सर्ग (काउस्सग) की स्थिति भी देखने लायक होती है। शरीर का कोई सा भी छोटे से छोटा भाग भी क्या मजाल की हिल जाय।

एक बात और लिखकर लेख समाप्त करता हूँ। पूज्य श्री जवाहर लाल जी म.सा. के विहार के समय आपके द्वारा मांगलिक सुनाने के प्रसंग स्वयं आपकी बुलन्दी के परिचायक हैं, जिन शासन के ऐसे प्रभावी आचार्य महाराज की सराहना जितनी की जावे, वह कम है। अपनी पूर्ण श्रद्धा के साथ शत-शत वंदना।

(जिनवाणी के 'साधना अंक' सन् १९७३ से संकलित)

–इन्दौर (म.प्र.)

संयम और विवेक के आदर्श प्रतीक

श्री [illegible]

बात महाराजा उम्मेदसिंह जी के शासन के समय की है। दिखने में तो वह साधारण है, पर उसके पीछे एक महान् उद्देश्य जिनाज्ञा के अपवाद रहित वृत्ति-विजय का पालन है। विषय-विकार, कषाय, प्रमाद, प्रलोभन, परीषह, उपसर्ग आदि कर्म रिपु विविध रूप से प्रत्येक के सामने आते ही हैं। पूज्य श्री एक सफल साधक होने से उन्हें परास्त कर समता, संतोष, धैर्य, अभयता, शान्ति का साम्राज्य विस्तृत कर अन्य को भी आत्मोन्नति के फल प्रदान करते हैं।

जोधपुर नगर से पूज्य गुरुदेव के विहार का प्रसंग है। कुछ भावुक श्रावकों ने बनाड़ स्टेशन की ओर विहार हो जाने के बाद जोधपुर से बनाड़ के स्टेशन पर फोन द्वारा सूचना कर दी कि अभी आपकी ओर गुरुदेव का विहार हो चुका है। बनाड़ स्टेशन पर मालगाड़ी आने पर उसके इन्जन में से पानी की प्याऊ वाले ने दो पीपे गरम जल से भर कर अलग रख दिये। पूज्य श्री यथासमय बनाड़ पधारे। जब साथ विहार में आने वाले भाई, जिसको संभवतः इस पानी के प्रबन्ध की जानकारी हो गई होगी, उसने संतों को दूर आये हुए ग्राम में, पानी के लिये न जाते हुए इधर ही प्रासुक पानी की जोगवाई होने का निवेदन किया। पूज्य श्री स्वयं ही जल ग्रहण करने पधारे और पूरी गवेषणा शुरु की। अन्त में यह पूछा कि इस पीपे में, यह इन्जन का गरम जल भरा, उसके पूर्व कैसा जल था? पीपा पहले गीला तो नहीं था? प्याऊ वाले ने जो सही बात थी वह कह दी। अंदर के सचित्त पानी से दोष युक्त हुआ गरम जल लेने से पूज्य श्री ने मना कर दिया और साथ के सन्त को गांव में जाकर पानी लाने की आज्ञा दी। लगभग एक बजने आया होगा जब दो सन्त गांव से जल और आहार लेकर स्टेशन के समीप पधारे।

(२)

मध्य प्रदेश में सैलाना के चातुर्मास के पश्चात् आपका विहार कोटा की ओर हो रहा था। किन्तु नलखेड़ा गांव पहुंचने के बाद, जिस दीक्षा के प्रसंग के कारण उधर विहार हो रहा था, वह प्रसंग स्थगित होने से, शुजालपुर होते हुए भोपाल पधारने की विनती स्वीकृत हुई। सुरसलार गांव से मकर-संक्रान्ति के दिन मेघाच्छादित नभ के कारण ९ बजे आकोदिया मंडी की ओर विहार प्रारम्भ हुआ। साढ़े तीन मील चलने पर आकोदिया के श्रावक शुजालपुर से आये हुए चौधरी जी आदि पांच व्यक्ति के साथ, विहार में साथ हो गये। बातचीत करते हुए हम पूज्य श्री के पीछे-पीछे चल रहे थे; सात मील का विहार हो चुका था। अब गांव एक ही मील दूर था। अन्य भाई-बहिन भी उस समय सामने से आते दिखाई दे रहे थे; एकाएक वर्षा शुरु हुई और पूज्य गुरुदेव वहां पर नजदीक की श्मशानशाला, जो कि उन्हीं दिनों तैयार हुई थी, में पधारे। मध्याह्न का माला जाप का समय हो जाने पर पूज्य श्री ने अपना ध्यान शुरु किया।

इस प्रसंग पर उल्लेख कर देना उचित होगा कि अनेक वर्षों से पूज्य श्री के त्रिकाल ध्यान व स्वाध्याय का समय प्रायः नियत रहा। छोटे गांव में, विहार में, जोधपुर या जयपुर जैसे विशाल नगरों में जहाँ ज्ञान-गोष्ठी चल रही हो, पूज्य श्री को स्वयं को दिन भर शास्त्रों की प्रतियों का अवगाहन कार्य करना हो, कितने ही दूर-दूर से आये हुए

श्रावक बातचीत करने को उत्सुक हों, या अन्य कोई भी व्यस्त कार्यक्रम हो तो भी प्रातः समय का ध्यान दोपहर (मध्याह्न) का घंटे-पौन घंटे का ध्यान और रात्रि शयन काल पूर्व कल्याण मंदिर आदि स्तोत्रों व नन्दी सूत्रादि का स्वाध्याय होकर ही रहेगा। एक-एक क्षण का उपयोग और प्रति समय के लिए पूर्व आयोजित निश्चित कार्य अप्रमत्त रूप से होना पूज्य श्री के लिये स्वाभाविक हो गया।

आकोदिया गांव की श्मशान शाला में बैठकर ध्यान हुआ ही। ध्यान का कार्य पूरा होने पर आगन्तुक श्रावक-श्राविकाओं ने निवेदन किया कि गुरुदेव अब एक भी बज चुका है, आप दूर से पधारे हो, आहार पानी भी ग्रहण नहीं किया है और वर्षा भी रुकी हुई है। कृपया आगे पधारें और हमारा गाँव पावन करें। गुरुदेव ने फरमाया, आपको अपने उत्साह में कभी-कभी गिरते छींटे न दिखते हों, मुझे तो अपने चश्मों के भीतर से भी वे दिख पड़ते हैं। जब तक वर्षा की एक भी बूंद दिखी, तब तक सभी बैठे रहे। पूर्णतः छींटे रुकने पर विहार हुआ तब अढाई बज चुके थे। गांव के निकट आने पर पुनः वही वर्षा। रास्ते कीचड़ से भरे पड़े थे। एकाध खाली जगह पर सभी को खड़ा रहना पड़ा। सांय साढ़े चार बजे आकोदिया मंडी के जैन मंदिर में, जहां कि संतों को विराजना था, वहां प्रवेश हुआ।

सर्दी अधिक थी, संतों के ओढने के सभी वस्त्र गीले थे। सूर्य प्रातः काल से दिन भर दिखा ही नहीं था। उस वायुमंडल में बिना पानी निचोड़े, वैसे ही सुखाए हुए उपकरण व चद्दरादि कब सूखने वाले थे। इस असाधारण हवामान में किसी भी प्रकार का दोष न लगे, उसकी पूरी सावचेती से संत परिस्थिति का सामना कर रहे थे। इधर संतों के साथ दिन भर रहने पर भी अपने यहां के दानान्तराय के कारण भक्तजन विह्वल बने हुए संतों की ओर टकटकी लगाये हुए थे।

(३)

मारवाड़ में बालोतरा का चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य श्री ने भीनमाल, डीसा, पालनपुर के रास्ते से मुख्यतया प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के निरीक्षणार्थ व स्था. परम्परा के आचार्यों के हाथ से लिखी हुई प्रतियाँ यदि उपलब्ध हों तो उनके उचित संग्रह व संरक्षण की व्यवस्था देखने हेतु प्रवेश किया। बहुत परिश्रम से हजारों की संख्या में संगृहीत व व्यवस्थित ढंग से रखी बहुत प्राचीन काल की अनेक प्रतियाँ पूज्य श्री को पालनपुर, पाटण, अहमदाबाद, खंभात, छाणी, वडोदरा आदि के ज्ञान भंडारों में अवलोकनार्थ मिलीं। आगम प्रभावक मुनि श्री पुण्य विजय जी का मंतव्य था कि "पाटण के ताडपत्रीय संग्रह के शानी का कोई भी संग्रह भारत में या समस्त संसार में नहीं है।" उन्हीं के सहयोग व सद्भावना से उपर्युक्त भंडारों की अमूल्य निधि का भी निरीक्षण हो सका।

इन प्राचीन दुर्लभ अलभ्य हस्तलिखित प्रतियों की खोज करते हुए पूज्य श्री जब अहमदाबाद पधारे तब उन्होनें शास्त्र भंडारों के निरीक्षण के पूर्व, सरसपुर अहमदाबाद के एक हिस्से में विराजमान पूज्य श्री घासीलाल जी म. के दर्शन व सेवा का लाभ लेने की प्रबल भावना व्यक्त की। तदनुसार स्था. जैन सोसायटी के उपाश्रय से पूज्य श्री अपने संतों के साथ चैत्र शुक्ला ८ संवत् २०२२ को प्रातः आठ बजे विहार कर, सरसपुर के निकट पधारे तब तपस्वी श्री मदनलाल जी म. आदि संत और कुछ दूर तक पूज्य श्री घासीलाल जी म. श्री स्वयं सामने पधारे और संतों का मधुर मिलन हुआ जो कि स्मरणीय बना रहेगा। उपाश्रय में पधारने पर वंदना सुख साता पृच्छादि हुए। मंगल मिलन के पश्चात्, जो वहां उपस्थित श्रावकादि थे, उन्हें अन्योन्य प्रेम, अनुराग, श्रद्धा से युक्त वातावरण, में आज भी कान में गूंजते हुए हार्दिक स्नेह की भावना के शब्द सुनने को मिले। दोनों पूज्य वर सामने रखे हुए पाट पर विराजे तब प्रथम

श्री हस्तीमल जी म. श्री को कुछ सुनाने का आदेश श्री घासीलाल जी म. श्री की ओर से होने पर उन्होंने कहा—हमें बड़ी प्रसन्नता है कि जिनके दर्शन वर्षों से करने की भावना अंतर में थी उनके निकट आज मैं पहुंच गया हूँ। उनका महान् कार्य आप सभी के सामने है। बीसेक वर्ष से अधिक समय से जब से पूज्य घासीलाल जी म. श्री सौराष्ट्र में पधारे तब से आज तक आगमों का संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और मूल प्राकृत भाषा में प्रकाशन अ. भा. श्वे. स्था. जैन शास्त्रोद्धार समिति द्वारा हो रहा है। यह सब प्रताप इन स्थविर, शास्त्रज्ञ, श्रुतप्रेमी मुनिश्री का है। अस्सी वर्ष की आयु में होते हुए भी, जिस उत्साह, उल्लास, लगन, परिश्रम और प्रेम से एक आसन पर विराज कर छः सात घंटे बिना विश्राम, लगातार, स्थविर मुनि श्री भावी पीढी की और आज की जनता की हित दृष्टि से शास्त्र उद्धार का कार्य कर रहे हैं, वह एक युवक को भी शर्मिंदा करे, वैसा है। आप सभी इससे अपनी शास्त्र रुचि बढ़ावें और जितना लाभ उठा सकें उतना उठावें तब ही आप श्री का किया हुआ पुरुषार्थ सफल होगा। चार भाषाओं में से किसी एक भाषा का ज्ञाता भी उन आगमों का स्वाध्याय कर सूत्रबोध पा सकता है। आप सभी के पुण्य का उदय है कि ऐसे धर्म के ज्ञाता मुनिवर का यहां इस स्थान पर विराज कर नौ वर्षों से यह टीकादि रचना कार्य हो रहा है, जिससे आपको उनके प्रतिदिन दर्शन व मंगलवाणी श्रवण का लाभ हो रहा है।

पूज्य श्री घासीलाल जी म. श्री ने अपनी मधुर वाणी में बोलते हुए, उनसे लघु संत श्री हस्तीमल जी म. के कहे हुए शब्दों को आशीर्वाद रूप बतलाया। यह करना उनका गुरुपने का प्रतीक है। महान व्यक्ति ही ऐसे वचन बोल सकते हैं। आगे उन्होनें फरमाया कि "समाज में मैंने तीन रत्न पाये श्री आत्माराम जी म., श्री समरथमलजी म., और मेरे पास बैठे हुए हस्तीमल जी म.। मारवाड़ की दो हस्तियाँ शास्त्रज्ञ व आचार में समर्थता की रूप हैं। पुरुषों में गन्ध हस्ती ही ग्राह्य है जिनके प्रताप से दूसरे भाग जाते हैं, सामना करने की और खड़े रहने की भी उनकी ताकत नहीं। इन हस्तीमल जी को मैंने आज ही देखा, पहिले सुना करता था कि मारवाड़ में ऐसा तेजस्वी साधु है। उन्हें मैं, क्या कहूँ जोधपुर का राजा कहूँ या नव कोटि मारवाड़ का सरताज?" यह कहते हुए उन्होंने संस्कृत में रचित अपनी एक प्रशस्ति गाना प्रारम्भ किया। यह अष्टक उन्होंने अतिथि मुनि श्री हस्तीमलजी, को बाद में अर्पण भी किया। पुनः उन्होंनें एक-एक श्लोक लेकर उसका हिन्दी में भाव बतलाते हुए अन्त में प्रसन्नता प्रगट की कि ऐसे शांत, शास्त्र-मर्यादा में विचरने वाले उपकारी संत से मेरा मिलना हुआ और इस आनन्द में मैंने इस प्रशस्ति में उनके गुण गान किये हैं।

पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा., स्थविर मुनि श्री घासीलालजी के पास सरसपुर में चार दिन विराजे। जिस प्रेमयुक्त वातावरण में एक-एक विषय पर वार्तालाप होता था वह पूरा अल्पमति दर्शक के लिये ग्राह्य न भी हो रहा हो तो भी वह संतों की गोष्ठी की मधुरता का आस्वादन दैवीय प्रतीत हो रहा था। शनिवार के प्रातः आठ बजे पूज्य हस्तीमलजी म. सा. ने अपने संतों के साथ अति स्नेह पूर्ण भाव के वातावरण में विहार किया।

तथागत आचार्य श्री

• श्री चम्पालाल कर्नावट

उन दिनों की बात है, जब मैं जिनवाणी का संपादक था। बीकानेर राज्य की असेम्बली में सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया ने बालदीक्षा प्रतिबंधक बिल कानून बनाने के लिये रखा। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं ने बिल के समर्थन में बहुत कुछ लिखा। मैंने भी कुछ लिखा। संयोग से छपने के पहले मैंने वह लिखा हुआ संपादकीय पूज्य श्री को उनकी राय लेने के लिये बताया। उन्होंने अपनी स्पष्ट राय दी व कई पहलुओं पर प्रकाश डाला, जिससे मेरी राय पूर्णतः बदल गई तथा अभी तक मेरी यही मान्यता है कि धार्मिक मामलों में कानूनन सरकारी हस्तक्षेप उचित नहीं। चतुर्विध संघ को ही देश काल के अनुसार परिवर्तन संशोधन करना चाहिये।

सेठ श्री चम्पालालजी बांठिया श्री जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ के वार्षिक उत्सव में अध्यक्ष बनकर पधारे थे। संयोग की बात है कि पूज्य श्री उन दिनों वहीं विराजते थे। उस दिन व्याख्यान में स्वावलंबन पर बोलते हुए श्री बांठिया जी को संबोधित करते हुए गुरुदेव ने कहा – यहीं से कुछ मील जाने पर कार की मशीनरी में कुछ गड़बड़ हो जाय व चलने से रुक जाय तो क्या आप गंतव्य स्थान पर पैदल ही पहुँच सकते हैं? दैवयोग से जब बांठिया जी भोपालगढ़ से जोधपुर के लिये कार द्वारा रवाना हुये थे तो मार्ग में कार खराब हो गयी और फिर किसी अन्य साधन से जोधपुर पहुँचना पड़ा।

इस तरह की घटनाओं के बारे में मैंने एक दिन गुरुदेव से पूछ ही लिया कि क्या इन वारदातों की जानकारी आपको पहले से हो जाती है। गुरुदेव ने सहज स्मित भाव से यही बताया कि वे तो सामान्यतः व्यावहारिक नीति के हिसाब से ही ऐसा कह दिया करते हैं। इन घटनाओं को चामत्कारिक रूप नहीं देना चाहिये।

■

जीवन - निर्माण के कुशल शिल्पी

• श्री अशोक कुमार जैन

पूज्यपाद आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज के दर्शनों हेतु मैं १९८८ के सवाई माधोपुर चातुर्मास में उपस्थित हुआ, तो पूछा - कहाँ काम करते हो ? मैंने कहा - लेबर इँस्पेक्टर हूँ। फैक्टरी आदि में मजदूरों से वास्ता रहता है। आचार्य प्रवर ने फरमाया - "वहाँ पर निर्व्यसनता की प्रेरणा किया करो।" मानव जाति के प्रति उनका यह करुणाभाव मुझे छू गया।

आचार्य प्रवर का प्रभाव अद्‌भुत है। मैंने आलनपुर में एक बैरवा जाति के सज्जन से बात की तो ज्ञात हुआ कि वह प्रतिदिन आचार्य श्री की माला फेरता है। एक बैरवा जाति का भाई कुस्तला के पास चुनाई का काम करता था। मैंने उससे बात की तो वह बोला - अगले जन्म की क्या तैयारी है? उसके इस प्रकार के संस्कारों के पीछे आचार्य श्री की प्रेरणा रही है। मुझे जानकर आश्चर्य मिश्रित प्रमोद हुआ कि उसकी पुत्री को इच्छाकारेणं का पाठ याद है।

मैं जब श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर में पढता था, तब संस्थान के सभी छात्र प्रतिवर्ष आपके दर्शनों हेतु जाया करते थे। सन् १९७८ की बात है। निमाज से जैतारण विहार करते समय रुककर आचार्यप्रवर ने संस्थान के छात्रों को दो-तीन श्लोक याद कराये थे, उनमें एक श्लोक था -

संसारदावानल-दाहनीरं, सम्मोहधूलिहरणे समीरम्।
मायारसादारणसारसीरं, नमामि वीरं गिरिसारधीरम्॥

मुझे वे क्षण भी याद हैं जब आचार्य श्री को यह ज्ञात हुआ कि पोरवाल समाज में बच्चों का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है, तो उन्होंने हम सभी छात्रों (डॉ. धर्मचन्द, गौतमचन्द, धर्मेन्द्र कुमार आदि) को तीन-चार वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम कराया था।

-श्रम निरीक्षक
आलनपुर, सवाई माधोपुर (राज.)

■

भक्तों पर प्रभाव : संकलन

मौन से क्रोध पर नियन्त्रण

• श्री उगमराज भण्डारी

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. से मेरा प्रत्यक्ष संपर्क जैतारण (राज.) में १९५३ में हुआ, जबकि मैं, वहाँ मुंसिफ नियुक्त था।

द्वेष, माया, मोह, राग से छुटकारा पाना इतना कठिन नहीं लगता था, परन्तु क्रोध पर काबू नहीं हो रहा था। मैंने अपनी समस्या आचार्य श्री के समक्ष रखी, उन्होंने इसका निदान मौन बताया। मैं प्रातः ९ बजे तक मौन रखने लगा, जो १९६१ तक चला (केवल दुर्घटनावश मुझे १६ माह अस्पताल में रहना पड़ा तब मौन का नियम नहीं रह सका।) इस नियम से मैंने बहुत कुछ पाया।

जैतारण में गुरुदेव के दर्शन मेरे जीवन की अविस्मरणीय घटना रही, जिससे मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन हुआ।

एडवोकेट, १९/४४०
छावनी, सेटेलाइट रोड, अहमदाबाद

धूम्रपान छूटा

• श्री कुन्दन सुराणा,

एक बार पाली से बस द्वारा, ताराचन्दजी सिंघवी के साथ, पीपाड़ के पास रीयां (सेठों की) जाने का अवसर मिला। वहाँ सभी के साथ मैंने भी क्रम से आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के दर्शन किये। मैं धूम्रपान करके गया था, आचार्य श्री ने मेरे मुख की दुर्गन्ध से मुझे तुरंत धूम्रपान न करने का त्याग करा दिया, मै दंग रह गया। पर कारण वश व मन की कमजोरी के कारण मैं वह नियम न निभा सका। कुछ माह बाद आचार्य श्री के दर्शन का मौका आने वाला था। मैंने सोचा कि आचार्य श्री मुझे व्रत के बारे में पूछ न लें या साथी लोग शिकायत न कर दें, मैंने धूम्रपान छोड़ दिया। तब से आज तक मेरा यह व्रत निभता आ रहा है। नियमित स्वाध्याय भी उसी महापुरुष की देन है। ऐसे महान् साधक को पल-पल वन्दन।

सत्यनारायण मार्ग, पाली

माँस-मदिरा का त्याग

• श्री तनसुखराज जैन

पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. का दूसरा जलगाँव-चातुर्मास था, मैं जलगाँव स्थानक के द्वार पर खड़ा था कि एक व्यक्ति गाँधी टोपी पहने रिक्शा में आया, और मुझसे आचार्य श्री के लिये पूछा। मैंने कहा कि आचार्य श्री बाहर ठेले मातरे (शौच) के लिए पधारे हुए हैं। उसने कहा –'कब आयेंगे।' मैंने कहा –"आधा घंटे से आयेंगे।" तब वह व्यक्ति चला गया।

ठीक आधा घंटे बाद वह व्यक्ति पुनः रिक्शा में स्थानक आया और मुझे पूछा कि आचार्य श्री कहाँ हैं? मैंने कहा—गोचरी (भोजन) कर रहे हैं। तब मेरे पास बैठ कर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने लगा—

"महात्मा जी (आचार्य श्री) सेंधवा (म.प्र.) से विहार कर शिरपुर (महाराष्ट्र) के पास हमारे गांव में पधारे, हमारे मकान के एक कमरे में रात्रि विश्राम किया और सवेरे जाने से पहले मुझे कहा कि मांस-मदिरा का सौगंध ले लो। तब मैंने कहा कि हम राजपूत समाज के हैं अतएव मांस मदिरा का सौगन्ध लेना हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आप में चमत्कार हो तो हमारा मांस-मदिरा छुड़वा दो। इस पर आचार्य श्री मौन रहे और मांगलिक देकर विहार कर गये। मुझ में अहंकार था, अतः उसके बाद मैंने मांस मदिरा का सेवन किया। मेरे शरीर पर फोड़ा, फुन्सी हो गये, जिससे मैं इलाज कराकर ठीक हुआ। दूसरी बार मांस-मदिरा का सेवन किया तो पुनः फोडा, फुन्सी हो गये।

फिर मेरे दिमाग में आया कि शायद मैंने महात्मा जी को चैलेंज किया था, उसी का परिणाम है कि शरीर पर फोडा-फुन्सी हो गये। तब मैंने मांस-मदिरा का सेवन करना छोड़ दिया।"

कुछ समय पश्चात् कार्यवश उसका जलगाँव आना हुआ। उसने बस स्टेण्ड पर आचार्य श्री के विराजने की सूचना देखी और महात्माजी के दर्शन के लिये वह स्थानक पर चला आया।

जब आचार्य श्री (महात्माजी) गोचरी से निवृत्त हुए, तब उस व्यक्ति ने आचार्य श्री के दर्शन किये और मांगलिक लिया। पास में खड़े श्री चंपक मुनि ने भी उस घटना का समर्थन किया। इससे मेरी आस्था को बल मिला।

बोरीदास मेवाड़ा, गुजराती कटला, पाली (राज.)

भविष्य द्रष्टा

• **श्री दुलीचन्द बोहरा**

सन् १९७९ की बात है जब आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमल जी म.सा. अजमेर में विराज रहे थे। मैं आचार्य भगवन्त के दर्शन हेतु मद्रास से लाडनूँ होकर अजमेर गया। वहाँ आचार्य भगवन्त के दर्शन किये। मुझे मेड़ता सिटी एक जरूरी काम से जल्दी ही जाना था। मैंने आचार्यप्रवर से मांगलिक देने की प्रार्थना की तो आचार्य भगवन्त ने फरमाया कि अभी और नवकार मंत्र की माला फेरो। मैं कुछ भी नहीं बोला और माला फेरने बैठ गया। करीब १ घंटा समय बीतने के बाद आचार्य भगवन्त ने मुझे बुलाया और मांगलिक दे दिया। मैं अजमेर बस स्टैण्ड पर गया तो वहां वह बस निकल गयी और उसके बाद मुझे मेड़ता सिटी जाने के लिये २ घंटे बाद बस मिली।

मैं मेडता सिटी बस स्टेण्ड से उतर कर सीधा अपने रिश्तेदार के पास गया जहाँ मुझे उनसे काम था। उन्होंने बोला कि आप कौनसी बस से आये अजमेर से। मैंने कहा कि पहली बस तो मेरी निकल गयी २ घंटे बाद बस मिली, उसी से मैं आ रहा हूँ। मैंने पूछा, क्या बात है ? आपने ऐसा कैसे पूछा ? तो वे बोले कि आप जिस बस से आये उसके पहले की बस तो गड्ढे में गिर गयी और २ आदमी की वहीं मृत्यु हो गयी। मैंने अपने मन में सोचा कि आचार्यप्रवर कितने दिव्य दृष्टि वाले हैं; सम्भवतः इसीलिये मुझको मांगलिक समय न देकर माला फेरने को बोला। उस दिन से तो मेरी आचार्यप्रवर के प्रति इतनी आस्था एवं श्रद्धा हो गयी कि उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता।

-'Man Mandir No. 7, Audippan Street,
Purasawakkam, Chennai 600007

देवी बलिदान नहीं माँगती

• **श्री गिरधारीलाल जैन**

परम पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. जब दक्षिण भारत से पुन: राजस्थान की भूमि की ओर पधारे तब मुझे भी भगवन्त के साथ विहार का लाभ मिला। एक दिन भगवन्त का रात्रि प्रवास सड़क के एक किनारे छोटे गाँव में हुआ, जहाँ जैन घर एक भी नहीं था। सभी बस्ती अजैन घरों की थी। कच्चे मकान थे। एक ही मकान पक्का वहाँ के सरपंच का था। जिसके चारों तरफ दीवार का परकोटा बना हुआ था। उसके समीप ही एक हरिजनों की देवी का कच्चा चबूतरा बना हुआ था। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. सरपंच के मकान में ठहरे हुए थे। उसी दिन एक हरिजन परिवार ने देवी के बलि चढाने हेतु बकरा बांध रखा था। जब आचार्य भगवन्त को बकरे की बलि चढ़ाने की बात ज्ञात हुई तो गाँव के सरपंच एवं मुखिया लोगों को बुलाकर भगवन्त ने कहा कि आप लोग इस हरिजन परिवार को समझा देवें कि जीव को मार कर खाने से कोई फायदा नहीं है। गाँव वालों ने काफी समझाया, लेकिन हरिजन परिवार नहीं समझा और कहने लगा कि मेरी देवी रूठ जायेगी। इसने मेरी मनोकामना पूरी की है। लेकिन देवी जिसके शरीर में आती थी वह पुजारी बाहर गाँव का रहने वाला था। वह रात्रि को ७ बजे आया, लोगों की भीड़ लगी हुई थी। साधु व श्रावक सभी प्रतिक्रमण कर रहे थे। देवी के पुजारी को किसी भी माहौल का पता नहीं था। वह आते ही चबूतरे पर चढ़ा और देवी आ गई। कहने लगी "अरे दुष्टों! मेरा नाम बदनाम करते हो। जो महापुरुष यहाँ बैठा हुआ है, देवताओं का राजा इन्द्र भी जिसकी वाणी को नहीं ठुकराता है, उसके सामने तुमने मुझे बदनाम कर दिया है कि देवी बकरे माँगती है। मैंने कब बकरे मांगे हैं। तुम तुम्हारे खाने वास्ते बकरे मेरे नाम पर बलि करते हो। तुम्हारे कार्य का फल तुम भोगोगे।" इतना कह कर देवी शरीर से निकल गई। जबकि उस पुजारी को यह भी मालूम नहीं था कि यहां संत विराज रहे हैं। दूसरे दिन प्रात: सभी ग्रामवासी व हरिजन परिवार गुरुदेव के जय जयकार के नारे बोलते हुए एक किलोमीटर तक विहार में साथ चले। ऐसे थे महा उपकारी आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा., जिनकी महिमा सुर-नर सब गाते हैं।

प्रचारक, श्री स्था. जैन स्वाध्याय संघ
शाखा, बजरिया, सवामाधोपुर

बालक ठीक हुआ

• **श्री पारसमल सुरेश कुमार कोठारी**

मैं सपरिवार अहमदाबाद में पूज्य गुरुदेव की सेवा में पहुँचा । उस समय हमारा करीब दो मास का लड़का भी साथ में ही था। इस बच्चे का स्वास्थ्य बहुत कमजोर चलता था। जब मैं मेरे गाँव रणसीगाँव से रवाना हुआ, उस समय पूरे परिवार ने बोला कि सिर्फ दो मास का छोटा बच्चा है, दूध भी पीता नहीं। बच्चे का स्वास्थ्य अहमदाबाद पहुँचने जैसा नहीं है। कहीं रास्ते में ही तकलीफ न हो जाय। वाकई में बच्चे की तबीयत बहुत ही कमजोर चल रही थी।मैं हिम्मत कर सपत्नीक रवाना होकर पूज्य गुरुदेव के चरणों में अहमदाबाद पहुँचा।

मैं और मेरी पत्नी गुरुदेव के श्री चरणों में वन्दना कर बैठ गये। धीरे-धीरे भीड़ कम देख कर गुरुदेव के श्री चरणों में कमजोर बच्चे को चरणस्पर्श कराकर सुला दिया।

थोड़ी देर में गुरुदेव के प्रताप से बच्चे के पेट से लम्बा जानवर (छोटा सर्प जैसा) निकला। जानवर के

निकलते ही बच्चे की आँख खुली और माँ ने उसे दूध पिलाया। बच्चा एकदम स्वस्थ होगया, आज वह युवा है।

२७, चन्द्रप्पन स्ट्रीट, साहुकार पेट, चेन्नई

हकलाहट दूर हुई

• श्री प्रकाश नागोरी

१९८८ में पूज्य आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म.सा. के कोटा में दर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ आदरणीय श्री फूलचंदजी मेहता, उदयपुर ने आचार्य श्री से मेरा परिचय कराते हुये कहा कि मैं लगभग दस वर्षों से स्वाध्याय संघ का सदस्य हूँ, सामान्यत: जानकारी (तत्त्वों की) अच्छी है, लेकिन पर्युषण में सेवाएं नहीं देता हूँ। तब आचार्य श्री ने मुझे पर्युषण में सेवाएँ नहीं देने का कारण पूछा। मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि दुकान पर कार्य करने वाला मैं अकेला हूँ तथा बोलने में मैं हकलाता हूँ। तब आचार्य श्री ने फरमाया यह बहाना नहीं चलेगा, तुम्हें कम से कम तीन वर्ष लगातार सेवाएँ देनी हैं।

मुझमें आचार्य श्री के आदेश को नकारने का साहस नहीं हो पाया, मैंने आचार्य श्री के समक्ष तीन वर्षों तक पर्युषण में सेवाएँ देने का संकल्प व्यक्त किया।

यह चमत्कार ही हुआ कि पर्युषण में प्रवचन देते समय मेरी हकलाहट समाप्त हो गई।

पो. सिंगोली, जिला - मन्दसौर (म.प्र.)

आराधना का प्रभाव

• श्री भोपालचन्द पगारिया

आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब का वर्षावास इन्दौर था। मेरी तथा मेरे परिवार की तीव्र इच्छा थी कि आचार्य श्री के दर्शन करने हैं। इन्दौर फोन करने पर ज्ञात हुआ कि इन्दौर के पास जो नदी है उसका पानी करीब ९ फीट ऊंचा चल रहा है। जो इन्दौर पहुंचना मुश्किल है पर हमारी इच्छा तो दर्शन करने की थी। यह प्रबल विश्वास था कि गुरुदेव की कृपा से यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। हम कार द्वारा रवाना हुए, नदी के पास पहुंचने पर पानी बराबर हो गया। हम नदी पार कर इन्दौर पहुंच गये तथा बाद में फिर पानी का चढ़ाव शुरू हो गया। ऐसा था आचार्य श्री की आराधना का प्रभाव।

No. 51, B.V.K. Iyengar Road, Bangalore 560025

व्रत-नियम की प्रेरणा

• श्री किशनलाल कोठारी

हमारे ग्राम जामनेर के धर्मप्रेमी श्रावक श्री फतेहराज जी चोरड़िया के साथ मैं भी इन्दौर में आचार्य श्री के दर्शनार्थ गया। गुरुदेव ने व्रतों का महत्त्व समझाकर १२ व्रतों के नियम कराए। इससे मेरा जीवन संयमी हो गया। मैं उन व्रतों का पालन आज भी पूरी तत्परता से कर रहा हूँ। आचार्य श्री के दो चातुर्मास जलगाँव में हुए। उस समय विहार काल में ९-१० दिन जामनेर में विराजे। उस समय मैंने प्रतिक्रमण पूरा सीखा, गुरुदेव की प्रेरणा से मैं नियमित रूप से दोनों समय प्रतिक्रमण और प्रतिदिन ५ सामायिक करता हूँ। जलगाँव के दूसरे चातुर्मास के समय गुरुदेव ने हमें आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया। गुरुदेव की वाणी से मैंने जमीकन्द का सेवन नहीं करने का नियम

लिया। गुरुदेव की निर्मलता और वाणी का मुझ पर बहुत असर पड़ा।

–संघपति, जामनेर ओसवाल श्री संघ
जामनेर, (महाराष्ट्र)

भविष्य ज्ञाता

• **श्री मोतीलाल गांधी, अध्यक्ष**

परम पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी मा. साहब हीराचन्द्रजी महाराज सा. आदि सन्तों के साथ प्रचार करते नागपुर से जलगाँव चातुर्मास हेतु विहार करते हुए वर्धा पधारे। हमारा संघ वर्धा में विनति करने गया। संघ की आग्रहभरी विनति स्वीकार कर चक्कर पड़ते हुए भी हमारे ग्राम रालेगांव पधारने की कृपा की। ग्राम के नवयुवक दर्शन हेतु स्थानक में आये। मैंने परिचय दिया। मेरे पुत्र मोहन गांधी का भी परिचय दिया। आचार्य श्री ने नजर उठाकर देखते ही यह टिप्पणी की "आपके नयनों की चंचलता देखते आप खेतीबाडी में सीमित नहीं रहोगे।" वकील होने पर भी वकालात करने की भावना नहीं थी। दूसरा व्यवसाय कहाँ पर कौनसा करना फिकर रहती थी। थोडे दिनों बाद में ही सभी संयोग बनकर आये। यवतमाल शहर में मकान, दुकान तथा व्यवसाय बहुत अच्छे से चलने लगा। हमें बडा आश्चर्य हुआ। जिसको जन्म से देखते आये जान न सके , आचार्य प्रवर ने देखते ही क्षण मात्र में टिप्पणी की, जो सही निकली। यह प्रत्यक्ष में मेरी नजरों के सामने घटित घटना है। ऐसे महान् आचार्य को कोटिशः वंदन।

श्री.वर्ध. स्थानकवासी जैन श्रावक संघ,
रालेगांव जि. यवतमाल (महाराष्ट्र राज्य)

■

प्रभावी व्यक्तित्व के कतिपय प्रसंग

- अजमेर सम्मेलन के लगभग ३ वर्ष पश्चात् जेठाना ग्राम में आपका पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के साथ पुन: कुछ समय विराजना हुआ। पूज्य जवाहराचार्य आपसे उम्र, दीक्षा, अनुभव आदि सभी दृष्टियों से बहुत वरिष्ठ थे। किन्तु आपकी विद्वत्ता और क्रियापालना से बड़े प्रभावित थे और सदैव आपको मान देते थे। 'जेठाना' गाँव से श्री जवाहराचार्य जी गुजरात की ओर विहार करने का मानस बना चुके थे। जब दोनों आचार्य अलग होने लगे और विहार का समय आया तो पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. से मांगलिक सुनाने को कहा। आचार्य श्री हस्ती चौंक गए। इतने बड़े, इतने अनुभवी आचार्य मुझसे मांगलिक सुनाने को कह रहे हैं। जब श्री जवाहराचार्य ने उनके संकोच का अनुभव किया तो कहा कि 'यदि आचार्य ही आचार्य को मांगलिक नहीं सुनाएगा तो कौन सुनाएगा?" अत: आप तो मुझे मांगलिक सुनाएं। अन्त में आपसे मांगलिक सुनकर ही उन्होंने विहार किया।
- संवत् २०२३ के चातुर्मास में आचार्य श्री अहमदाबाद के बुधा भाई आश्रम में विराजित थे। उसी दौरान एक बार आपका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। अस्वस्थता के बावजूद आप दिन भर अपनी दिनचर्या में लगे रहते। चिकित्सकों ने आपको पूर्ण विश्राम की अर्थात् दिन भर लेटे रहने की सलाह दी। मगर आपने तो समग्र जीवन में कभी क्षण भर भी व्यर्थ नहीं खोया था। विश्राम समय के सदुपयोग का भी उपाय आपने खोज ही निकाला। कहने लगे कि कोई संत मेरे पास बैठ कर शास्त्रों का वाचन करे तो मुझे चिकित्सकों की राय के अनुसार कोई श्रम भी न होगा और साथ ही साथ स्वाध्याय भी होता रहेगा।
- ३० दिसम्बर १९९० को आपकी जन्मजयंती का अवसर आया। आप उस समय पाली में विराजमान थे। इस प्रसंग को भक्तों द्वारा दिल्ली में भी समारोहपूर्वक मनाया गया, जिसमें भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर, कई केन्द्रीय मंत्रियों व अनेक गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति रही। भावुक भक्तों ने बड़े-बड़े पोस्टर भी छपवाए। जब आचार्य श्री की निगाहों में ये पोस्टर आए तो उन्हें देखकर स्पष्ट शब्दों में तुरन्त अपनी नाराजगी प्रकट करते हुए बोले, "यह क्या आडम्बर है? इन मेले-ठेले में मुझे विश्वास नहीं और इन सब में सामायिक-स्वाध्याय का उल्लेख तक नहीं, खुशी तो मुझे तब होती जब मेरे नाम के बजाय सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा में आपका पुरुषार्थ होता।
- अपने समग्र जीवनकाल में आपने एक भी संस्था अपने नाम से नहीं खुलने दी। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जैन रत्न विद्यालय, भूधर-कुशल कल्याण कोष, अमर जैन रिलीफ सोसायटी जैसी अनेकानेक संस्थाएँ प्रमाण हैं उनकी निस्पृहता की कि अपने ही जीवन काल में खुलने वाली ऐसी पचासों संस्थाओं में से एक का नाम भी उन्होंने खुद के नाम से नहीं जुड़ने दिया। हालांकि भक्तों ने कई बार ऐसी चेष्टाएं की।
- अपने जीवन की समस्त सफलताओं, उपलब्धियों का श्रेय स्वयं न लेकर 'गुरुकृपा' को देते रहे। जीवनकाल में अपना जीवनचरित्र न छपने देने के पीछे भी उनकी यह निष्काम वृत्ति रही। श्रद्धालुओं द्वारा जब आपकी जय जयकार की जाती तब कई बार आप उसे रोककर अन्य महापुरुषों या तीर्थंकरों की जय करने की ही बात करते।
- स्मरण आता है संवत् २०२० का अजमेर में सम्पन्न अधिकारी मुनि सम्मेलन। श्रमण-वर्ग ने जब पं. रत्न श्री

आनन्द ऋषि जी म.सा को श्रमण-संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया तो युवाचार्य - पद के लिये पूज्यश्री हस्ती का नाम प्रस्तावित किया गया।

- अनेक श्रमण-दिग्गजों ने आपश्री के अगाध आगम-ज्ञान, आपकी दिव्य-भव्य-साधना, आपके जन-कल्याणी स्वभाव की ओर संकेत करते हुए आपको सिद्धान्तप्रिय, अनुशासनप्रिय एवं आचारनिष्ठ बताते हुए युवाचार्य पद के लिए प्रस्तावित आपश्री के नाम को समर्थन दिया और आपकी सहमति मांगी। चरितनायक ने तब बहुत ही विनीत स्वर में इसके लिए इन्कार कर दिया। इस पर अनेक अधिकारी संतों ने आपसे आग्रहपूर्वक कहा कि जब आप सर्वथा सक्षम हैं तो इन्कार क्यों ? उन्होंने रत्नवंशीय वरिष्ठ संत श्री लक्ष्मीचंद जी म.सा. को भी कहा कि वे चरितनायक को युवाचार्य पद के लिये तैयार करें। पूज्यवर के प्रमुख भक्त राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री इन्द्रनाथ जी मोदी से भी कहा गया कि वे भी चरितनायक से युवाचार्य पद के लिये निवेदन करें। किन्तु आपने विनम्रता एवं दृढतापूर्वक उस गौरवपूर्ण पद को अस्वीकार कर दिया। सम्भवत: उन्हें भविष्य दिखाई दे रहा था।
- गेहुंआ वर्ण व छोटे कद के बावजूद आचार्यप्रवर के मुख-मण्डल पर उनकी उत्कृष्ट-साधना की ऐसी दिव्य आभा चमकती थी कि दर्शनार्थी भाई - बहनों के नेत्र उन्हें घंटों निहारने पर भी अतृप्त से ही रह जाते थे। शान्त सौम्य मुखाकृति पर अपूर्व आनन्द एवं संतोष की कांति ! इच्छा होती थी कि वक्त वहीं ठहर जाये और आकृति नेत्रों से कभी ओझल न हो।
- कई बार जब आगन्तुकों की भीड़ अधिक होने पर उन्हें शीघ्र दर्शन कर आगे बढ़ जाने को कहना पड़ता तो भी गुरु भगवन्त के चेहरे पर चमकते तेज में वे इस तरह खो जाते कि आदेश को अनसुना करके वहीं खड़े रहते। एक मात्र यही कामना लिये कि कुछ घड़ी और इस अपूर्व आनन्द की प्राप्ति कर लें। इसी संदर्भ में गुरुदेव के अनन्य भक्त जयपुर के सुप्रसिद्ध जौहरी सुश्रावक श्रीमान् पूनमचंद जी बडेर की अभिव्यक्ति साधारण शब्दों में, किन्तु गहन भावों के कारण हृदय को छू जाती है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में "आचार्य प्रवर की सौम्य मूर्ति नै तो बार - बार देख ने भी जीव कोनी धापे। अठा तक कि मैं तो कई बार सामायिक लेणों भी भूल जाऊँ।"
- गुरुदेव के जीवन में एक नहीं, अनेक ऐसे प्रसंग दृष्टिगत होते हैं जब आपने अन्य संतों की रुग्णावस्था या अन्तिम समय में अपनी सेवा-भावना का उत्कृष्ट व अनुकरणीय परिचय दिया। उनमें से कुछ प्रसंगों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है –

(१) स्वामी श्री भोजराज जी म.सा. एक उत्तम सेवाभावी एवं ख्यातिप्राप्त रत्नवंशीय सन्त थे। अपने अंतिम समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. को स्वामी श्री अमरचन्द जी म.सा. के सम्बन्ध में भोलावण देते हुए यह वचन लिया कि गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. श्री अमरचन्द जी म.सा. की पूरी तरह सार संभाल करते रहेंगे। गुरुदेव तो वचन के पक्के धनी थे। बस आपने स्वामी श्री अमरचन्द जी म.सा. की सेवा सुश्रूषा का पूरा दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अपने अन्तिम दिनों में दिल्ली प्रवास के दौरान स्वामीजी कैंसर जैसी भयंकर व्याधि से ग्रस्त हो गये तो गुरुदेव स्वयं उनकी सेवा में तत्पर हो गये। उन्हें साथ लेकर शनै:शनै: पुन: जयपुर की ओर विहार करने का लक्ष्य बनाया।

ठीक इसी समय श्रमणसंघीय तत्कालीन आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. पंजाब के लुधियाना क्षेत्र में विराजित थे। जहाँ आपकी विद्वत्ता व आगमज्ञान से गुरुदेव स्वयं प्रभावित थे, वहीं आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. आपके

व्यक्तित्व एवं गुणों से इतने प्रभावित थे कि पत्राचार के दौरान आपको 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' से सम्बोधित करते थे। उन्हीं आचार्य श्री ने उस समय गुरुदेव को आत्मीयतावश सहज मिलन एवं पंजाब क्षेत्र में धर्मप्रचार की दृष्टि से उधर आने हेतु आग्रह किया। अब इधर तो गुरुदेव पर स्वामी श्री अमरचन्द जी म.सा. की सेवा का दायित्व था तो उधर एक ज्ञानी सन्त से मिलन और पंजाब का क्षेत्र फरसने का प्रबल आकर्षण। किन्तु गुरुदेव तो थे वचन के धनी, दृढ़ सेवाव्रती। बस, आपने उस अवसर और आकर्षण को गौण कर सेवा को ही प्राथमिकता दी और स्वामी जी को धीरे-धीरे जयपुर तक ले आए। फिर पूरे एक वर्ष तक (उनके देहावसान तक) आपने उनकी पूर्ण सेवा-सुश्रूषा की। इस प्रकार आपने अपने आज्ञानुवर्ती सन्त की सेवा का उत्कृष्ट आदर्श भी प्रस्तुत किया।

(२) पूज्य श्री जयमल जी म.सा. की परम्परा के वयोवृद्ध स्वामी श्री चौथमल जी म.सा. संवत् २००९ में जोधपुर शहर में विराजित थे। आचार्य श्री भी जोधपुर में ही थे। आपका चातुर्मास नागौर में होना तय हुआ था। अतः आपने वहाँ पहुँचने हेतु आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में जोधपुर से प्रस्थान कर महामन्दिर पधार गये थे। उसी समय श्री चौथमल जी म.सा. ने संथारे के प्रत्याख्यान कर लिए और संथारा पूर्ण होने तक चरितनायक पूज्यश्री के सान्निध्य की इच्छा प्रकट की।

चातुर्मास प्रारम्भ का समय नजदीक होने के बावजूद भी पुरातन मधुर संबंधों की अक्षुण्णता और मुनि श्री के प्रति सेवाभाव के लक्ष्य से नागौर विहार स्थगित कर, आप पुनः जोधपुर शहर में पधारे। यहाँ आपने वैराग्य एवं समभाव को पुष्ट करने वाले स्तोत्र, भजन, पद आदि सुनाकर श्री चौथमलजी म.सा. के मनोबल एवं आत्मबल को सुदृढ किया। इसी समय चरितनायक ने 'मैं हूँ उस नगरी का भूप' आदि वैराग्यप्रद पदों की रचना की। १३ दिनों में संथारा पूर्ण होने के पश्चात् आपने आषाढ शुक्ला ४ को नागौर की ओर उग्र विहार किया एवं आषाढ शुक्ला १३ को भीषण तपती हुई दुपहरी में ३ बजे नागौर में प्रवेश किया।

(३) रत्नवंश के वरिष्ठ एवं वयोवृद्ध बाबाजी श्री सुजानमल जी म.सा. एवं आचार्य श्री के मध्य मात्र प्रगाढ स्नेह ही नहीं वरन् विनय की पारस्परिक आदर्श भावना भी थी। दीक्षाकाल एवं पद के आधार पर दोनों ही एक दूसरे के प्रति विनयवृत्ति रखते थे। बाबाजी म.सा. जब अपने जोधपुर स्थिरवास के समय अत्यन्त अस्वस्थ हो गये तो आपने आचार्य श्री के सामीप्य की आकांक्षा प्रकट की और सेवाव्रती आचार्य देव ने भी उनकी इच्छा को पूर्ण सम्मान देते हुये उनके देवलोक होने तक उनके निकट रहकर उनकी पूर्ण सेवा की।

(४) आचार्यप्रवर चातुर्मासार्थ मेड़ता नगरी में विराजित थे। उसी दौरान आपको यह समाचार मिले कि कुचेरा में स्वामी जी श्री रावतमल जी म.सा. के संत श्री भेरूमल जी म.सा. का देहावसान हो गया। उस समय कुचेरा में दो ही संत थे और उनमें से भी एक के दिवंगत हो जाने से वयोवृद्ध स्थविर श्री रावतमलजी म.सा. एकाकी रह गये थे। ऐसे समय में स्वामी श्री रावतमल जी म.सा. की वृद्धावस्था एवं एकाकीपन को दृष्टिगत रखते हुए अपने संतों को शीघ्र ही उनकी सेवार्थ विहार करा दिया। (यह बात और है कि बाद में जब यह समाचार मिले कि जयगच्छीय अन्य संत उनकी सेवार्थ पधार रहे हैं तो फिर अपने सन्तों की वहाँ आवश्यकता न देखते हुये आपने उन्हें पुनः अपने पास बुला लिया।) अपने संतों को भेजने का निर्णय निश्चय ही आपकी उत्कृष्ट सेवाभावना, सरलता व स्नेहभाव का अनुकरणीय उदाहरण है।

- पूज्य गुरूदेव की कभी यह अभिलाषा नहीं रही कि उनके गुणगान में कुछ लिखा जाए। वे तो गुणगान की अपेक्षा व्यक्ति के आध्यात्मिक - उन्नयन को ही महत्त्व देते थे। यह तथ्य श्रद्धेय श्री गौतम मुनिजी म.सा. के

अग्राङ्कित संस्मरण से स्पष्ट है–

"गुरुदेव के सौभाग्यशाली सान्निध्य को प्राप्त करते हुए उस दिन मैं उनके पाट के पास नीचे बैठा उनके जीवन अध्याय के प्रमुख प्रेरक प्रसंगों व संस्मरणों को विविध पुस्तकों व लेखों में से चुन कर संगृहीत कर रहा था। मैं अपने कार्य को बड़ी तत्परता से अंजाम दे रहा था कि अनायास ही गुरुदेव ने स्नेह संबोधन के साथ सहज प्रश्न किया- 'बच्चू (गौतम), क्या कर रहे हो?' मैंने तुरन्त उत्साह के साथ प्रत्युत्तर दिया, "अन्नदाता! आपके जीवन से संबंधित संस्मरणों का संकलन कर रहा हूँ।" मेरा यह वाक्य सुनते ही गुरुदेव ने अत्यन्त आत्मीय भावना से जो प्रेरक वचन कहे उनका प्रभाव आज तक मेरे हृदय-स्थल पर अमिट रूप से अंकित है। उन्होंने कहा, "अरे भाई ! जितना समय तू इसमें लगाता है, इतना ही यदि आगम पाठों व जैन शास्त्रों में लगायेगा तो अच्छा पंडित बन जायेगा।" मैं दंग रह गया, मेरे हाथ थम गये। इस युग में ऐसा निर्मोही! इतनी निस्पृहता! न आत्म-महिमा की चाह, न स्वयं के प्रति कोई आकांक्षा, अपितु दूसरे के आत्म-उत्थान एवं जीवन-निर्माण की इतनी उत्कृष्ट अभिलाषा देखकर ये दो नेत्र धन्य हो गये। "

- इन्दौर के उपनगर जानकी नगर में पूज्य आचार्यप्रवर अपने कुछ शिष्य संतों के साथ विराज रहे थे। मौसम संबंधी बदलाव से आचार्य देव के स्वास्थ्य में कुछ शिथिलता आ गयी। चिंतित शिष्यगण ने संकेत द्वारा चिकित्सक को बुलवाया। चिकित्सक ने सन्निकट जाकर आचार्यश्री से सामान्य परीक्षण की अनुमति माँगी। आचार्य श्री ठहरे निस्पृही, अपने शरीर के लिये औषधिसेवन व परीक्षणों से यथासंभव विरक्त रहने वाले। मगर मुस्कराये और न जाने क्या सोच कर सहज भाव से अपना परीक्षण करवा लिया। किसे क्या पता कि उस मुस्कान के पीछे छुपा रहस्य क्या है? चिकित्सक लौटने को उद्यत हुए कि विनोद मुद्रा में आसीन आचार्य श्री की ओर से निश्छल मुस्कान के साथ मांग आयी 'अरे भाई मेरी फीस तो देते जाओ।'

  नियमों के सर्वथा विपरीत बात। चिकित्सकों ने उनका परीक्षण किया और चिकित्सकों से ही फीस मांगी जा रही थी। यह क्या बात हुई भला?उस महामनीषी का तो संपूर्ण जीवन ही असाधारण था और जानते हैं उस दिव्य साधक ने वह अलौकिक फीस क्या ली? चिकित्सकों से १५ मिनट स्वाध्याय रोज करने के नियम के साथ यह वचन कि भविष्य में दीन, दुःखी, साधनहीन व्यक्ति की चिकित्सा हेतु वे सहज सेवा के भाव से जाने को सदैव तत्पर रहें तथा व्यसन-मुक्त समाज के निर्माण में सक्रिय सहयोग दें। कितनी अद्भुत शैली थी उस महामानव की धर्म और सेवा की प्रेरणा देने की।

- 'कोसाना' ग्राम में एक व्यक्ति प्रतिदिन दो तोला अफीम सेवन का आदी हो चुका था। अनेकानेक प्रयत्नों के बावजूद भी वह इस व्यसन से मुक्ति नहीं पा सका। अन्ततः निर्व्यसनता के क्षेत्र में आपकी उपलब्धियाँ श्रवण कर वह आशा के साथ आचार्य देव के श्री चरणों में उपस्थित हुआ। आचार्यप्रवर ने मात्र ७ दिन उसे अफीम सेवन न करने को कहा तथा यह भी कहा कि यदि वह ७ दिन नियंत्रण कर ले तो जीवन पर्यन्त इस व्यसन से मुक्ति पा सकेगा। आपकी प्रेरणा से उसमें नयी इच्छा शक्ति का संचार हुआ और धर्म का प्रताप देखिये एक भी दिन अफीम के अभाव में न रह सकने वाले व्यक्ति ने उस दिन के पश्चात् अफीम को पुनः छुआ तक नहीं। आज उसका शांत, सुखी, निर्व्यसनी जीवन यकीनन आचार्य भगवन्त की देन है। आचार्य श्री की इस प्रकार की देन एक व्यक्ति, एक परिवार तक सीमित नहीं रही, वरन् पूरे समाज, पूरे राष्ट्र में आप श्री की प्रेरणा से हजारों लोग व्यसनमुक्त होकर उन्मुक्त स्वस्थ जीवन जी रहे हैं।

- किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् उसमें तन्मयतापूर्वक जुट जाना और उस कार्य को पूर्ण करना आपका स्वभाव था। आपने जैन इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में लिया, और इस कार्य में जुट गये। कार्य की सम्पन्नता हेतु गुजरात के भंडारों के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का अवलोकन आवश्यक था। अतः राजस्थान से लंबा विहार कर, मार्ग में अनेक परीषहों को सहन करते हुए आप गुजरात पधारे। वहाँ अहमदाबाद, खंभात, पाटण आदि के भंडारों का अवलोकन करते हुए आपका आणंद में पदार्पण हुआ। बड़ौदा में यतिजी के भण्डार में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल संग्रह था। उसके अवलोकन हेतु आपने आणंद से बड़ौदा की ओर विहार किया। मार्ग रेल की पटरी के सहारे था, रेतीला था। ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी पड़ रही थी। प्रचंड धूप की गर्मी से रेत इतनी तप्त हो रही थी कि उसके कुछ कण उछलकर पैरों पर पड़ते थे, वे भी असहनीय लगते थे। पशु-पक्षी भी उस तप्त वातावरण से संतप्त थे। सिर पर धूप और पैरों नीचे धूल का तापमान निरंतर बढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में आपका नंगे पैर चलना वास्तव में कष्टदायक रहा होगा। मार्ग में प्रासुक-जल की उपलब्धि भी दुर्लभ थी। इस प्रकार असह्य ताप व तृषा की वेदना सहन करते आपका अगले नगर में पधारना हुआ। दोपहर का समय हो चुका था। अतः मुनिमंडल को इतना प्रासुक जल न मिल सका कि जिससे तृषा शांत होती। फिर भी आचार्य श्री व मुनिमंडल के चेहरों पर किञ्चित् भी उदासीनता नहीं थी। जल के अभाव में भी मुखारविंद प्रफुल्लित थे। आचार्य श्री नित्य के समान उस दिन भी इतिहास-लेखन के कार्य में व्यस्त हो गये।
- उन दिनों आचार्यप्रवर शेषकाल में जयपुर विराज रहे थे। प्रतिदिन आपका बड़ा सुन्दर, प्रभावशाली वाणी में प्रवचन होता और अनेक धर्मप्रेमी बन्धु प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाते। उसी दौरान एक दिन विधानसभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री निरंजननाथ जी आचार्य भी प्रवचन में आए। प्रवचन श्रवण किया और बड़े प्रभावित होकर लौटे।

  अगले दिन जब प्रवचन में आए, हृदय में कुछ जिज्ञासाएँ थी। सोचा, प्रवचन के पश्चात् गुरुदेव के समक्ष अपनी शंकाएँ रखकर उनके समाधान हेतु उनसे निवेदन करूँगा। यही सोचकर प्रवचन सुनने बैठ गए। मगर जब प्रवचन सुनने लगे, सुनते-सुनते चकित रह गए। सहसा विश्वास नहीं हुआ अपने कानों पर कि मन में जो-जो जिज्ञासाएँ लेकर वे आए थे, प्रवचन में उन्हीं सबका समाधान प्राप्त हो रहा था। उन्हें लगा कि आचार्य श्री बिना कहे ही दिल की बात जान गए हैं।

  आचार्य निरंजननाथ जी तो अभिभूत हो उठे। जैसे ही प्रवचन समाप्त हुआ, तुरन्त आचार्य श्री के समीप पहुँचे और निवेदन किया, "भगवन् मेरी जो भी शंकाएँ थीं, आपने मेरे बिना कहे ही उनका स्वतः समाधान कर दिया। मैं तो हैरत में हूँ, आपकी यह दिव्य दृष्टि देख कर। धन्य धन्य हैं गुरुदेव आप"।
- ज्ञान गच्छाधिपति बहुश्रुत पण्डित श्री समर्थमल जी म.सा. और आचार्य श्री हस्ती के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। संवत् २०१० के जोधपुर में ६ महान् सन्तों के संयुक्त चातुर्मास में भी आपका स्नेह दूसरों के लिए आदर्श बन गया था। बाद में भी आपके सम्बन्धों में सदैव मधुरता रही।

  बहुश्रुत पण्डित रत्न श्री समर्थमल जी म.सा. अपने बालोतरा प्रवास के दौरान अस्वस्थ हो गए। आचार्यप्रवर ने भी उनकी अस्वस्थता के समाचार सुने। न जाने कैसे आपको ऐसा पूर्वाभास हो गया कि अब बहुश्रुत पण्डित जी म.सा. का अन्तिम समय नजदीक ही है। उन्हीं दिनों में एक दिन आप बाला ग्राम से कापरड़ा की ओर विहार कर रहे थे कि चलते-चलते यकायक अपने साथ चल रहे श्रावकों से बोल उठे कि 'जिन शासन रूपी मानसरोवर का हंसा

आज उड़ गया है।' आप विस्मय करेंगे यह जानकर कि कुछ समय पश्चात् जोधपुर से आए श्रावक श्री पारसमलजी रेड ने बताया कि बहुश्रुत पंडितरत्न श्री समर्थमल जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है।

- आचार्यप्रवर सन् १९७१ का जोधपुर वर्षावास सम्पूर्ण कर आगोलाई, बालेसर आदि गांवों में धर्मगंगा बहाते हुए विचरण कर रहे थे। इसी दौरान एक दिन आगोलाई गाँव में सोनराज नाम का एक छोटा बालक गुम हो गया। जैसा कि स्वाभाविक था, बालक के परिजन व अन्य ग्रामवासी बहुत चिन्तित हो उठे। सभी ने मिलकर आस-पास, सभी संभावित स्थलों पर बहुत खोज की, किन्तु व्यर्थ। अन्ततः निराश होकर वे लोग आचार्यप्रवर के समक्ष उपस्थित हुए। सारी घटना की सविस्तार जानकारी दी। आचार्य श्री ने ध्यानपूर्वक ब्यौरा सुना, कुछ क्षण चिन्तन किया जैसे कोई दिव्य स्वप्न देख रहे हों और फिर पूर्ण निश्चिन्तता और आत्मविश्वास के साथ बोले–'चिन्ता मत करो, कल सुबह तक इन्तजार करो.....।'

हालांकि सहसा विश्वास तो नहीं कर पाए बालक के परिजन, फिर भी 'गुरु तो अन्तर्यामी हैं, इनकी बात कभी व्यर्थ नहीं जा सकती' सोच कर काफी राहत महसूस की। इसी तरह विचारों में डूबते-उतरते रात बीती। सुबह हुई। एक-एक पल युग की तरह कट रहा था। इसी ऊहापोह में एक बार पुनः खोजने निकले तो देखा बच्चा नजदीक ही एक पहाड़ी पर सोया हुआ था। परिजनों की प्रसन्नता का पारावार न रहा और अन्य ग्रामवासी भी गुरुदेव के कथन की यथार्थता देख चकित रह गए।

इधर दरअसल हुआ यह कि बच्चा घूमते-घूमते पहाड़ी पर चला आया। चलते-चलते थक तो गया ही था, वहीं सो गया। ठंडी हवा चल रही थी, थकान तो थी ही, बस गहरी निद्रा आ गई और वह अद्भुत स्वप्नों में खो गया और रात भर वहीं सोता रह गया।

- गुरुदेव के अन्तर्यामी व्यक्तित्व की झलक देता यह अगला प्रसंग वर्तमान उपाध्यायप्रवर के दिल्ली चातुर्मास से सम्बद्ध है, जिसका जिक्र कई बार आपके प्रवचनों में सुनने को मिला है। उनके अपने ही भावों में यह प्रसंग–

"दिल्ली चातुर्मास का प्रसंग था। विद्यानुरागी श्री गौतम मुनि जी व तपस्वी श्री प्रकाश मुनि जी मेरे साथ थे। उन्हीं दिनों गुरुदेव के समाचार मिले कि "दिल्ली में श्रावक योग्य और अच्छे हैं किन्तु महानगर होने से क्षेत्र भी बड़ा है। आप सन्त कम हैं। हो सकता है कोई अड़चन भी आए, लेकिन काम रुकने वाला नहीं है।"

धीरे-धीरे चातुर्मास काल बीतने लगा। तप, त्याग, संवर, दया, पौषध आदि की धार्मिक लहर वृहद् स्तर पर जन-जन के मन में, जीवन में हिलोरें लेने लगी। यह धर्म-जागृति की लहरें पर्युषण-पर्व आते-आते विशाल सागर का रूप धारण कर चुकी थी। अगले दिन से पर्युषण पर्वाधिराज प्रारम्भ होने वाले थे कि यकायक प्रतिक्रमण के पश्चात् श्री गौतममुनिजी की तबीयत बिगड़ गई और इतनी बिगड़ी कि वे घायल कबूतर की तरह तड़फने लगे।

दूसरी ओर मेरा भी स्वास्थ्य खराब। वमन पर वमन हो रहे और उदरशूल इतना भयानक कि असहनीय सा हो गया। सारे प्रमुख श्रावकगण एकत्र हो गए। सभी चिंतातुर। हम भी विचार में पड़ गए कि कल से पर्युषण प्रारम्भ होने को हैं और सभी के हृदय धर्म के प्रति उत्साह उमंग से भरे हैं। ऐसे में पर्वाधिराज की महत्ता और आवश्यकता के अनुरूप प्रवचन, शास्त्रवचन आदि हम किस प्रकार करेंगे?

कोई चारा न देख व समय की जरूरत को देखते हुए श्रावक निवेदन करने लगे कि म.सा.डाक्टर ले आवें क्या?" मगर मैंने कह दिया कि "दवा लेना तो दूर, इस वेला में डाक्टर को दिखाना भी वर्जित है।" इधर श्री गौतम मुनि जी भी दृढ़ थे। हमारी इस दृढ़ता के समक्ष सभी श्रद्धानत थे, किन्तु मानस में चिन्ता तो बनी हुई थी ही। ऐसे में

याद आया गुरुदेव का संदेश कि "हो सकता है कोई अड़चन आवे, पर काम रुकने वाला नहीं है" और उनके वचनों की सार्थकता गजब की रही। अर्द्धरात्रि के पश्चात् धीरे-धीरे स्वास्थ्य में सुधार होने लगा, नींद भी आ गई, और जब सुबह उठे तो पूरी ऊर्जा, पूरे उत्साह के साथ। पर्युषण पर्वाधिराज निर्विघ्न रूप से, अपूर्व धर्म - प्रभावना के साथ सम्पन्न हुए।

इस प्रकार अड़चन आई और काम रोके बिना चली भी गई, किन्तु साथ ही यह झलक भी छोड़ गई कि गुरुदेव को कैसे, कई बार, होनी की घटनाओं का पूर्वाभास सहज में हो जाया करता था।"

- पूज्य आचार्यदेव में अद्भुत दिव्यदृष्टि थी। उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म.सा. ने प्रवचन में एक प्रसंग सुनाते हुए कहा – "किशनगढ़ प्रवास था। आचार्य भगवन्त माला में मग्न थे। मैं (वर्तमान उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा.) और पं.र. श्री लक्ष्मीचंद जी म.सा. आचार्य श्री के निकट ही बैठे स्वाध्याय में लीन थे। मोदी घराने का एक व्यक्ति आता है और निवेदन करता है कि महाराज! श्री बादरमल सा मोदी अस्वस्थ हैं एवं गुरुदर्शन के इच्छुक हैं।

मैंने सुना। विचार किया, कल ही तो पंडित जी म. के साथ उनके घर गया था। स्वस्थ थे, प्रसन्न चित्त थे, वन्दना की थी, बहराया भी था। और यह भी कहा था–"कांई करूँ महाराज! लारला छोरा-टाबर धरम में जीव राखेईज कोनी। घणोई केऊं पण ए तो म्हारी बात रो ध्यान ईज नहीं देवे।" पंडित जी म. ने उन्हें धैर्य बंधाया था।

आचार्य श्री ने संकेत किया पंडित जी म. को। पंडित जी म.सा. गए उस व्यक्ति के साथ, मोदी जी के घर। मोदी जी ने खड़े होकर वन्दन किया और कहा मुझे लग रहा है कि समय आ गया है। आप मुझे संथारा करा दो।

लगता नहीं था कि मृत्यु उनका अभी वरण करने वाली है, पर वे मृत्यु का स्वागत करने को तैयार थे। पंडित जी म.सा. ने जब तक आचार्य श्री पधारे तब तक के लिए उन्हें सागारी संथारा करा दिया। पूज्य गुरुदेव श्री की माला पूर्ण हुई। वे उठे और चल पड़े मोदी जी के घर।

आचार्य श्री के पधारने पर उनके चेहरे से हर्ष के भाव प्रस्फुटित हो उठे। उन्होंने आगे आकर वंदना की और संथारा दिलाने की प्रार्थना की।

आचार्य श्री ने उनको निहारा, उनके चेहरे पर कुछ देर के लिए आचार्य श्री की दृष्टि जैसे एकदम स्थिर हो गई। तब आप श्री ने श्री बादरमल जी को यावज्जीवन संथारे के प्रत्याख्यान करा दिए।

सायंकाल का समय। प्रतिक्रमण हो चुका था। वन्दना हो रही थी कि ध्यान आया मुझे श्री मोदी जी का। क्या हुआ उनके संथारे का? एक भाई से पूछा तो वह बोला-"अरे महाराज, मोदी जी रो संथारो तो तीन घंटा बाद ही सीझ गयो। व्हांने गाजा-बाजा सूं श्मशान पहुंचार पछे मैं लोग परकूणा (प्रतिक्रमण) में आया हाँ।"

मैंने यह सुनकर आश्चर्य किया। मोदी जी के तो अन्तर्मन में घबराहट या अन्य कारण हुआ होगा, पर आचार्य श्री की अन्तर्दृष्टि कैसी कि जैसे सचमुच जान लिया हो मोदी जी के समय के बारे में। आज सोचता हूँ कि गुरुदेव अवश्य ही उस दिव्यदृष्टि के धारक थे, जो भविष्य को दर्शा देती है।"

- सन् १९७८। आचार्य भगवन्त का चातुर्मास जलगाँव में था। यदा-कदा बरसात भी होती रहती थी, किन्तु एक बार ऐसा हुआ कि बूंदा-बांदी ने निरंतरता का रूप ले लिया। एक श्रमण के लिए ऐसे में भिक्षाचरी के लिए बाहर जाना निषिद्ध है और बरसात थी कि बूंद-बूंद करके बरसती ही जा रही थी तो गोचरी लेने जा पाने का तो कोई

प्रश्न ही नहीं था। सभी संतों ने तपस्या का अवसर जानकर उपवास कर लिया। अगले दिन भी वर्षा की झड़ी जारी थी। गोचरी ला सकने की संभावना दिखायी नहीं देती थी। सभी स्थानीय वरिष्ठ श्रावक अत्यन्त चिंतित हो उठे। वृद्धावस्था में भी आचार्य श्री के उपवास हो चुका था और आज भी गोचरी ला पाने के आसार प्रतिकूल ही थे। अन्ततः प्रमुख श्रावक रागवश एक उपाय लेकर आचार्य श्री के समीप उपस्थित हुए। उन्होंने निवेदन किया, "भगवन् मंगल कार्यालय में नीचे ही एक तरफ दर्शनार्थियों के लिये चौका चलता है। अतः वहाँ से आहार पानी लेने की कृपा कराएँ और फिर परिस्थितिवश तो यह मर्यादा के प्रतिकूल भी नहीं है।"

किन्तु उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। मात्र इसलिये कि वे यह जानते थे कि आज उनकी यह परिस्थितिजन्य आवश्यकता भविष्य में दूसरों के लिए अनुकरण का मार्ग बन सकती है। इससे धार्मिक शिथिलता का जन्म होगा और किंचित् मात्र भी शिथिलता निस्संदेह हानिकारक ही होती है।

- समाचारी में नियम है कि यथासंभव साधु-संत, सतियों से सेवा नहीं लेते। एक बार आप जोधपुर के किसी उपनगर में विराजमान थे। अस्वस्थता के कारण किसी औषधि की आवश्यकता हुई। शहर में विराजित आपकी सम्प्रदाय की सतियाँ नित्य प्रति आपके दर्शनार्थ आती थीं। आखिर वे भी क्यों अवसर छोड़ती उस दिव्यात्मा की सेवा का। संत औषधि लाते, उससे पूर्व ही सहज उत्सुक भाव से महासतियाँजी ले आये, किन्तु जैसे ही आचार्य श्री को इसकी जानकारी मिली, उन्होंने औषधि ग्रहण करने से इंकार कर दिया। मात्र इसीलिये कि कहीं यह परम्परा न बन जाये।

इसी भांति कोसाना चातुर्मास से संबंधित घटना भी है। वहाँ आप अत्यन्त अस्वस्थ हो गये। कुछ स्वास्थ्य सुधार होने पर चातुर्मास के पश्चात् पीपाड़ की ओर विहार किया। विहार क्रम में ही पीपाड़ से लगभग ४ कि.मी.पूर्व श्री पारसमल जी के फार्म पर आप विराजे। उन्हीं दिनों पीपाड़ में शासन-प्रभाविका महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा.विराजित थीं। वहाँ से कुछ सतियाँ जब दर्शनार्थ फार्म पर आयीं तो आचार्यश्री की अस्वस्थता को लक्ष्यगत रखकर अपने साथ पेय पदार्थ भी लेकर आ गई। किन्तु क्रिया के पक्के पक्षधर उस महामानव ने उसे लेने से भी इंकार कर दिया।

- पूज्य हस्तीमल जी म.सा. एक ऐसी दिव्य-विभूति थे जिन्होंने जीवन में जो सोचा, जिसे अच्छा समझा, उसे अपने जीवन में उतारा भी। इसलिए वे अपने समग्र जीवन में प्रमाद से कोसों दूर रहे। घंटों तक एक ही आसन में बैठे रहते। कभी थक कर विचलित नहीं होते। दिन में कभी स्वाध्याय-लेखन इत्यादि करते तो भी कभी शारीरिक आराम की दृष्टि से पैर फैलाकर या दीवार का सहारा लेकर बैठना मानों आपकी जीवन शैली में ही नहीं था। लम्बे समय तक निकट सम्पर्क में रहने वालों ने भी शायद ही उन्हें कभी दिन के समय सोते देखा हो।

उनकी यह विशेषता रुग्णावस्था/वृद्धावस्था में भी यथाशक्य कायम रही। कई बार शारीरिक अवस्था को देखते हुए सन्तगण निवेदन भी कर देते कि गुरुदेव आप काफी देर से एक आसन में विराजमान हैं, कृपया थोड़ा सहारा ले लिरावें तो शरीर को भी कुछ आराम मिलेगा। मगर वे अप्रमत्त योगी, शांत सहज रूप में यही कहते कि "भाई, सच्चा सहारा तो मुझे अपने गुरु का ही है, फिर यह कृत्रिम सहारा किसलिए? मैंने तो अपने गुरु को देखा है, उनकी अप्रमत्तता को जाना है और उनके आदर्श जीवन से यही शिक्षा ली है कि जीवन का पल भर भी प्रमाद में नष्ट न करो। फिर भला उनका शिष्य होकर मैं कैसे उनका उपकार, उनकी शिक्षाएँ विस्मृत करूँ।"

कहने की जरूरत नहीं कि ऐसी सच्ची गुरुनिष्ठा देख कर सहवासी सन्त ही नहीं वरन् वहाँ उपस्थित सभी दर्शनार्थी

बन्धु गद्गद् हो जाते, नतमस्तक हो जाते।

- पूज्यवर श्री हस्ती गुरुदेव के जीवन के लगभग ७० वर्ष संयमावस्था में गुजरे। इसी सुदीर्घ अन्तराल में अनेकानेक ऐसे दृष्टान्त भी देखने-सुनने में आए जब उनके दर्शन एवं मांगलिक प्रभाव से या उनकी किसी बात, किसी घटना में ऐसा कुछ हुआ जिसे आम भाषा में हम चमत्कार का नाम देते हैं। यद्यपि ऐसे चमत्कारों से कई गुना बढ़कर उनका जीवन साधना के, प्रेरणा के छोटे बड़े असंख्य प्रसंगों से भरा पड़ा है, किन्तु जैसी कि दुनिया की रीति होती है, ऐसी बातों को सब महसूस कर पाएं या नहीं, जान पाएं या नहीं, किन्तु चमत्कार का सा आभास देने वाली हर सूक्ष्म बात भी बेतार के तार की तरह अल्पसमय में चारों ओर प्रसृत हो जाती है। यही कारण रहा है कि कई बार भक्तगण भावुकता में उन्हें 'चमत्कारी सन्त' कह उठते। किन्तु हकीकत में उनके व्यक्तित्व का यह परिचय महत्त्वपूर्ण नहीं। सच तो यह है कि उनके जीवन के, उनकी साधना के उद्देश्य चमत्कार की भावना से बहुत ऊपर उठे हुए थे। उन्होंने चमत्कार को कभी भी साधना का लक्ष्य नहीं समझा। किन्तु उनके अतिशय व तेज से कई बार सहज में ऐसा कुछ हो जाता जिसे भक्तगण चमत्कार कह बैठते थे।

  एक बार ऐसे ही किसी श्रद्धालु भक्त ने कहा कि आपकी मांगलिक में वह दिव्य चमत्कार है कि अस्वस्थ भी स्वस्थ बन जाता है, कष्ट और बाधाएँ दूर हो जाती हैं और कठिनाइयाँ सरल बन जाती हैं। गुरुदेव ने शान्त भाव से सुना। सुनकर भी चेहरे पर कोई दर्प, कोई हर्ष नहीं। प्रत्युत्तर में उसी सहजता उसी निस्पृहता से कहने लगे "भाई, एक साधक की साधना और दीक्षा का लक्ष्य ये थोथे चमत्कार नहीं होते। यों कई बार सहज ही ऐसे प्रसंग बन जाते हैं। जैसे कि एक किसान बीज तो बोता है, किन्तु चारे भूसे की कामना से वह इतना परिश्रम नहीं करता। उसका लक्ष्य होता है अनाज के दानों की प्राप्ति। हाँ, उन हजारों दानों के साथ सहज रूप से उसे चारा-भूसा भी मिल जाता है। इसी भांति एक साधक तो सदैव अपनी आत्मा के उत्थान के उद्देश्य से निष्काम भाव से साधना में लीन रहता है। उसमें कभी कुछ चमत्कारिक प्रभाव नजर आ जाता है तो वह सुनियोजित नहीं वरन् सहज घटित होता है इसीलिए उसकी साधना की ऊँचाई को चमत्कारों से तोलना कदापि उचित नहीं।"

  कहने की बात नहीं उनके ये विचार सरल रूप से हमें यह अहसास करा जाते हैं कि साधना और संयम चमत्कारों से बहुत ऊपर उठे हुए होते हैं।

- साधारण जन से लेकर बड़े-बड़े सम्पन्न व्यक्ति भी गुरुदेव के भक्त थे। कई बार लोग कोई बड़ी धनराशि किसी धार्मिक या परोपकारी कार्य में लगाने की इच्छा से गुरुदेव के पास आ पहुँचते। पूछते, सलाह मांगते कि भगवन्! ये रुपये किस कार्य में लगाऊँ। मगर सांसारिक कृत्यों और बातों से सर्वथा विरक्त रहने वाले उस महामानव का सभी को यही जवाब होता कि भाई, ऐसे कार्यों में तो आप संसारी लोग ज्यादा चतुर हैं। भला रुपयों के मामले में हम क्या बोलें? हमें ऐसी बातों से क्या करना?

- समय का सदुपयोग और अप्रमाद! गुरुदेव के जीवन की एक अहम् विशेषता! समय का पल-पल सार्थक हो, ऐसी चेष्टाएँ सदैव उनकी रहतीं। कई बार रात्रि समय में काव्यमय मानस बन जाता...या फिर कुछ लेखन योग्य अच्छे विचार आने लगते....बस तुरन्त कागज और पैंसिल लेकर अन्धेरे में ही उन्हें अनौपचारिक रूप से नोट कर लेते और अगले दिन उन्हें व्यवस्थित रूप दे देते। समय के सदुपयोग की यह आदत यदि उनमें नहीं होती, तो शायद उनकी कई सुन्दर कविताओं और भजनों से हम वंचित रह जाते।

- यश, ख्याति और प्रतिष्ठा के प्रदर्शन की लालसा से जनसमूह में अधिकाधिक घिरा रहने की होड़ में गुरुदेव

जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ भी अपवाद निकले। कहते 'अधिक भीड़भाड़ से साधक की साधना में, एकाग्रता में बाधा पड़ती है।' और इसीलिए एकान्त बड़ा प्रिय था उन्हें। अध्यात्म चर्चा के अतिरिक्त अन्य निरुद्देश्य बातें करने की या भीड़-भाड़ से घिरे रहने की बजाय अधिकतर ध्यान, मौन, जप, साधना आदि में लीन रहते।

- बड़ा कठिन और दुरूह होता है संयम का मार्ग। पग पग पर कठिनाइयाँ प्रतिकूलताएँ—कब कैसी परिस्थितियों से साक्षात्कार हो जाए कुछ पता नहीं चलता। मगर एक सच्चा साधक हर हाल में मस्त, संतुष्ट रहता है। गुरुवर भी ऐसे ही आदर्श के पर्याय थे। कई बार भीषण गर्मी में भी लम्बा, उग्र विहार करना पड़ता। मार्ग दुरूह, ऊपर से आहारादि की सुलभता भी कम। ऐसे में कभी-कभी कोई सन्त या कोई भक्त कह बैठते कि भगवन्, आज तो हर दृष्टि से प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता रही। मगर गुरुदेव सहमति व्यक्त करने की बजाय कहते 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' । अरे भाई, यही तो साधक-जीवन है, इसी में तो फकीरों को आनन्द आता है । यदि सभी कुछ अनुकूल हो जावे तो जीवन ही क्या?' सुनने वाले देखते रह जाते। इतने परीषह सहकर भी ऐसा संतोष! यह था उनका भेद ज्ञान, जहाँ वे शरीर को नहीं आत्मधर्म को प्रमुखता देते थे।
- कभी-कभी तो आपकी आत्मरमणता देखकर देखने वाले दंग रह जाते। ऐसी ही एक घटना है आप श्री के संवत् २०३१ के सवाईमाधोपुर चातुर्मास की। चातुर्मास के दौरान एक दिन आपको भयंकर ज्वर ने ग्रसित कर लिया। ज्वर की तीव्रता इतनी अधिक बढ़ गई कि आप अचेत हो गए। मगर उस अवस्था में भी हैरत की बात यह कि आपके हाथ की माला निरन्तर, निराबाध रूप से चल रही थी। शारीरिक बल की सुप्तावस्था में मानो आध्यात्मिक बल के प्रभाव से वे माला के मोती स्वतः गति कर रहे थे। आस - पास खड़े सन्तगणों व श्रावकगणों के नेत्र यह देखकर गद्गद् हो उठे। आत्मा की यह कैसी सजगता, कैसी अद्भुत साधना!
- आचार्य श्री ने शिष्य समुदाय सहित जयपुर से अलवर की ओर विहार किया। मार्ग में शाहपुरा से आगे पधारे और वन में स्थित एक मकान में विराजे। मकान छोटा सा व सर्वथा असुरक्षित स्थिति वाला था। सूर्यास्त होने में कुछ समय शेष था। उसी क्षेत्र में एक नर भक्षी सिंह रहता था। आचार्य श्री के पधारने के एक दो दिन पूर्व ही वह एक मनुष्य को खा चुका था। अतः उस क्षेत्र में सर्वत्र उसका आतंक छाया हुआ था।

यह सर्वविदित है कि शेर के मुँह पर एक बार मनुष्य का खून लग जाने पर उसे मनुष्य-भक्षण का चस्का लग जाता है। फिर वह मानव-तन की ही ताक में लगा रहता है। अतः ऐसे नरभक्षी शेर के भ्रमण का क्षेत्र बड़ा ही जोखिम भरा व खतरनाक होता है। आचार्यप्रवर जहाँ विराज रहे थे, वह स्थान ऐसे ही क्षेत्र में था। वहाँ उपस्थित सभी श्रावकों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि, 'अभी सूर्यास्त होने में समय शेष है अतः यहाँ से लगभग दो एक मील दूर स्थित ग्राम में पधार जाने की कृपा करें।' किन्तु आप में तो अनुपम आध्यात्मिक बल था। आप उपसर्गों-परीषहों से कब डरने वाले थे। आपने निर्भयतापूर्वक फरमाया, "श्रावक जी निश्चिंत रहिए। मुझे कोई खतरा नहीं है। यदि है भी तो साधु खतरों से डरा नहीं करते हैं, साधु जीवन तो खतरों का घर ही होता है। अतः मुझे इस स्थान को छोड़कर अन्य कहीं नहीं जाना है, आज की रात यहीं रहना है। हाँ आप यहाँ से अवश्य चले जाइये। श्रावकों में से कोई भी यहाँ न रहे तथा हमारी सुरक्षा हेतु किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं करनी है।"

श्रावकों के आग्रहपूर्वक बहुत निवेदन करने पर भी आचार्य श्री ने वह स्थान नहीं छोड़ा। श्रावक गण वहाँ से रवाना हो गए। संतगण सहित आचार्य श्री रात्रि को वहीं विराजे। श्रावक नगर में तो आ गए, किन्तु हृदय में अनेक

आशंकाएँ उथल-पुथल मचा रही थीं। श्रावकों की वह एक रात्रि एक मास तुल्य निकली। प्रातःकाल हुआ और श्रावक संशकित हृदय लिए दर्शनार्थ गुरुदेव के पास पहुँचे। गुरुदेव को सकुशल देख श्रावकगण पुलकित हो गए और साथ ही साथ गुरुदेव की निर्भयता पर नतमस्तक भी। वहाँ उपस्थित समुदाय में यह चर्चा जोरों पर थी रात भर शेर की दहाड़ सुनाई देती रही, पर गुरुदेव के अतिशय प्रभाव से सभी आशंकाएं निर्मूल साबित हुई।

- जीवन की सांध्यवेला के ही दिनों में गुरुदेव कुछ अस्वस्थ थे। एक दिन पाट पर बैठे थे। पहले से ही पाट पर काफी आगे की ओर सरक कर बैठे थे तथा और आगे की ओर सरक रहे थे। 'कहीं संतुलन बिगड़ जाने से कुछ अनहोनी न हो जाए, इस आशंका से, समीपवर्ती, वर्तमान उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. इत्यादि संत गणों ने सहज निवेदन किया 'भगवन्, जरा पीछे सरकें'। "भाई, मैं तो आगे बढ़ना ही जानता हूँ " मृदु हास्य के साथ उच्चरित वचन निस्संदेह बेजोड़ थे।

- मद्रास (चेन्नई) में संवत् २०३७ का चातुर्मास चल रहा था। एक दिन नित्य की भांति आप शौचादि से निवृत्त होने हेतु स्थानक से निकले। बरसात के दिन होने की वजह से मार्ग में जगह-जगह कीचड़ भरा पड़ा था। फलतः आचार्यप्रवर सावधानीपूर्वक कीचड़ से बचकर नीचे देखते हुए चल रहे थे। यकायक आपका सन्तुलन बिगड़ गया और आप फिसल कर मुँह के बल गिर पड़े। गिरने से आपकी दाई आँख के ऊपर गहरी चोट आई और खून बहने लगा। जैसे ही आपकी सेवा में साथ चल रहे श्री गौतम मुनि जी म.सा. एवं कतिपय अन्य श्रावकों ने यह देखा तो घबरा गए और आपको पुनः स्थानक लौट चलने का निवेदन करने लगे ताकि यथाशीघ्र आवश्यक उपचार आदि करवाया जा सके। किन्तु आप ठहरे समता के, सहिष्णुता के विशाल सागर। उनकी बात अनसुनी करके चोटग्रस्त स्थान पर खुद ही कपड़ा दबा कर नित्यकर्म निवृत्ति हेतु आगे बढ़ गए।

  इसी बीच घटना की खबर पाकर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. (वर्तमानाचार्य) इत्यादि सन्त गण भी आपकी सेवा में पहुँच गए और स्थण्डिल भूमि से निवृत्त हो आपको स्थानक लेकर आए। श्रावकगण भी शीघ्र ही चिकित्सक को ले आए। उन्होंने निरीक्षण करके कहा कि घाव के शीघ्र उपचार के लिए टांके और इंजेक्शन लगाना जरूरी है। लेकिन आपने तुरन्त यह कह कर मना कर दिया कि 'गुरुकृपा से मेरे ठीक है, इन सब की कोई आवश्यकता नहीं, मात्र पट्टी ही काफी है।' अकारण चिकित्सा के ऐसे साधनों का प्रयोग आप नहीं करना चाहते थे और साथ ही अपनी सहनशीलता, अपने आत्मबल पर आपको पूर्ण विश्वास था। जहाँ हम तुच्छ जन छोटी बातों, छोटे-छोटे दर्द के लिए बड़े से बड़ा उपचार लेने से नहीं झिझकते, बस यही सोचते हैं कि किसी तरह जल्दी से जल्दी व्याधि से, दर्द से राहत मिले, वहीं दूसरी ओर आचार्यप्रवर जैसे सहनशीलता के धारक अधिकाधिक साधनों, सुविधाओं का प्रयोग कर शीघ्र स्वस्थ होने की बजाय न्यूनतम, मात्र आवश्यक साधनों का प्रयोग करते हुए, स्वयं कष्ट सहने को अधिक उचित मानते हैं और उसको यथार्थ में भी स्वीकारते हैं। सचमुच धन्य है। सहिष्णुता की ऐसी प्रतिमूर्ति और धन्य है उनका ऐसा आदर्श।

- एकदा एक भाई आप श्री की सेवा में आये। किसी प्रसंगवश वे किसी व्यक्ति विशेष की आलोचना आचार्य श्री के समक्ष करने लगे। आचार्य श्री को यह अरुचिकर व अनुचित लगा। उन्होंने इस चर्चा को समाप्त करने हेतु बात का रुख मोड़ दिया। उन भाई से सामायिक और स्वाध्याय से संबंधित प्रश्न करने शुरू कर दिये। उनके इस क्रिया-कलाप से आगंतुक दर्शनार्थी लज्जित हो गया। प्रत्यक्षतः कुछ न कह कर भी अपने वाक्-चातुर्य व मनोवृत्ति से आचार्य श्री ने यह स्पष्ट संकेतित कर दिया था कि उनकी रुचि निन्दा-विकथा में नहीं है।

- आचार्यदेव जयपुर स्थित लाल-भवन में विराजित थे। गुरुवार का मौन थामौन के साथ अनवरत स्वाध्याय व साधना जारी थी। संयोगवश उसी दिन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा.दौलतसिंह जी कोठारी आचार्य श्री के दर्शनार्थ वहाँ आये। जीने में ही उत्कृष्ट चिन्तक, विचारक व वरिष्ठ श्रावक श्री नथमल सा. हीरावत मिल गये। सूचना दी कि गुरुदेव के आज मौन है किन्तु कोठारी सा. ऐसा कहकर कि मात्र दर्शन करने हैं, वार्तालाप नहीं, उन्हें भी अपने साथ ऊपर ले गये।

  ऊपर आए तो शान्त, मुदित, मनोहारी मुखमुद्रा के दर्शन कर अंग-अंग पुलकित हो उठा। दृष्टि निर्निमेष हो गई। आधा घंटे पश्चात् नीचे लौटे। हीरावत सा. ने प्रश्न किया, 'आपको कैसा अनुभव हुआ।' डा. कोठारी ने उत्तर दिया, "मैंने आज यह नया अनुभव प्राप्त किया कि मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रभावी शक्ति होती है। इतना सामीप्य और आनन्द मुझे आज से पहले कभी दर्शन करके महसूस नहीं हुआ। ऐसा लग रहा था मानो वाणी के बंधन तोड़ कर भावनाएँ बात कर रही थीं। यह निश्चय ही मेरे लिए एक अभूतपूर्व, अकथनीय अनुभूति है जो सदैव स्मरणीय रहेगी।"

  अपूर्व आनन्दमिश्रित संतोष की आशा से उनका चेहरा दमक रहा था और नेत्रों में भी कृतज्ञता का भाव था। डॉ. कोठारी की भांति उनके दर्शन-वंदन कर और आदर्शमय जीवन को देख कर बिना वार्ता के ही प्रत्येक व्यक्ति परितृप्ति का अनुभव करता था।

- श्रद्धेय श्री माणकमुनि जी म.सा. के संथारे के समय आप श्री अपने सुशिष्यों सहित घोड़ों का चौक, जोधपुर में विराजित थे। पं. रत्न श्री हीराचन्द्र जी म.सा. (वर्तमानाचार्य) भी आप के साथ थे। एक दिन की बात। श्री हीराचन्द्रजी म.सा. प्रातःकाल शौचादि से निवृत्ति हेतु गोशाला के मैदान पधारे। निवृत्त होने के पश्चात् आप पुनः स्थानक लौट रहे थे कि मार्ग में कालटेक्स पेट्रोल पम्प के पास से गुजरते समय यकायक पीछे से आकर एक स्कूटर सवार आपसे टकरा गया। दुर्घटना में आप नीचे गिर पड़े तथा बेहोश हो गए।

  संयोग ऐसा कि पीछे-पीछे ही स्वयं गुरुदेव भी शौचादि के पश्चात् पुनः स्थानक की ओर पधार रहे थे। जैसे ही आपने देखा कि श्री हीरा मुनि जी म.सा. बेहोशी की अवस्था में नीचे गिरे हुए हैं, आप समीप आए। अपने हाथों में उन्हें उठाया और हाथ का सहारा देकर स्थानक की ओर ले जाने लगे। अचरज की बात यह कि जो हीरा मुनि जी म.सा. बेहोशी की हालत में थे, अचेत थे, वे उस हालत में भी पता नहीं कैसे आपके हाथ का सम्बल पाकर चलने लगे और सकुशल घोड़ों के चौक तक पहुँच भी गए। स्थानक पहुँच कर वे पुनः बेहोश हो गए। थोड़े समय उपरान्त जब उन्हें पुनः होश आया तो उन्होंने बताया कि उन्हें तो कुछ याद नहीं कि वे किस तरह स्थानक तक पहुँचे।

- गुरुदेव संवत् २०२० का अपना पीपाड़ चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर यत्र-तत्र विचरण कर रहे थे। इसी क्रम में वे पहले जोधपुर फिर लूनी, रोहट, पाली, सोजत, चण्डावल, कुशालपुरा आदि गांवों से गुजरते हुए निमाज पधारे। उन्हीं दिनों निमाज के एक सुश्रावक, गुरुभक्त श्री मिश्रीमल जी खिवसरा के सुपुत्र श्री देवराज जी खिंवसरा किसी दैवीय प्रकोप से ग्रस्त होकर असामान्य व्यवहार करने लग गए थे। यंत्र, तंत्र मंत्र, अनुष्ठान इत्यादि अनेक उपाय किये गये, लेकिन कोई फायदा नहीं था। ऐसे में जब आचार्यप्रवर के निमाज पदार्पण की सूचना आपको मिली तो हृदय में फिर से आशा बंधी। उसी आशा के साथ रविवार, दिनांक १४ दिसम्बर १९६३ के दिन आप आचार्यप्रवर की सेवा में पुत्र सहित उपस्थित हुए और आचार्य भगवन्त के समक्ष सारी स्थिति रख दी। धैर्य पूर्वक

उनकी बात सुनकर भगवन्त ने कुछ क्षण गहन चिन्तन किया और फिर श्री मुख से मांगलिक श्रवण कराया।

- आपकी मंगलवाणी में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति, ऐसा अलौकिक प्रभाव और परहित की ऐसी प्रबल भावना अवश्य थी कि लड़के की देवी-विपदा तत्काल दूर हो गई और वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके पश्चात् उस पर देवी प्रकोप का कभी प्रभाव नहीं पड़ा।
- संवत् २००० के आपके चातुर्मास के पूर्व उज्जैन के नजदीक ही खाचरोद में श्री माणक मुनि जी म.सा. की दीक्षा सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् आषाढ शुक्ला तीज को वहाँ से उज्जैन की ओर विहार किया। २४ कि.मी. का उग्र विहार कर आप उज्जैन नगर के काफी करीब आ पहुँचे। एक तरह से नगर का ही बाहरी क्षेत्र था। वहाँ रात्रि व्यतीत करने की दृष्टि से एक मकान में रुके। वह मकान सर्पोंवाला मकान के नाम से लोगों में जाना जाता था, क्योंकि सभी का यह विश्वास था कि वहाँ सर्पों का निवास है, और इसीलिए रात में कोई मनुष्य वहाँ नहीं ठहर सकता। वहाँ सर्पों के उत्पात में कुछ न कुछ अनिष्ट होना अवश्यम्भावी है, इसी भय से कोई भी उस मकान में कभी जाने का साहस नहीं कर पाता था और वह मकान वर्षों से बन्द पड़ा था। किन्तु आचार्य श्री तो निर्भयता और आत्मबल के धनी थे। वे रात भर उसी मकान में विराजे और शायद उनका आध्यात्मिक अतिशय ही रहा कि पूरी रात में सर्पों के द्वारा कोई बाधा, कोई कष्ट उपस्थित नहीं किया गया। पूर्ण शान्ति बनी रही।
- सवाईमाधोपुर में किसी मुसलमान के पुत्र को एक बार एक सर्प ने काट खाया। वह उसे उपचार हेतु चिकित्सक के पास ले जा रहा था कि मार्ग में उसे कोई अन्य मुस्लिम बन्धु मिल गया। वह बन्धु प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी उसी शहर में विराजित आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. का व्याख्यान सुनकर आ रहा था और उनसे बहुत प्रभावित भी था। उसने पूछा क्या बात है? कहाँ जा रहे हो? चिन्तित मुसलमान बोला–मेरे पुत्र को विषैले सर्प ने काट लिया है, उसी को उपचार के लिए चिकित्सक के पास ले जा रहा हूँ। इस पर वह भक्त मुसलमान बोला– "अरे भाई, मेरा कहा मानो, अमुक बाबा (आचार्य प्रवर) यहाँ आए हुए हैं उनके पास ले जाओ। वे बडे सिद्ध पुरुष हैं जरूर कुछ उपाय करेंगे।" ठीक है, यदि तुम्हें विश्वास है तो चलो, कहकर वह अपने पुत्र को लेकर उसके साथ आचार्य श्री के चरणों में उपस्थित हो गया और उन्हें बताया कि इस बालक को सांप ने काट खाया है। आचार्य भगवन्त ने सब सुनकर वहीं बैठे-बैठे उसे मांगलिक सुनाया और हैरत यह कि मात्र मांगलिक के प्रभाव से उसका जहर उतर गया। फलतः उस दिन से वह मुस्लिम व्यक्ति भी आचार्यप्रवर के चरणों में सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ जीवनभर के लिए समर्पित हो गया।
- समय सन् १९८४ । अप्रेल-मई के दिनों में गर्मी अपने यौवन पर थी। जोधपुर निवासी सुश्रावक हस्तीमल जी बुरड़ मानसिक रूप से अत्यन्त व्यथित थे। गर्मी की लंबी दुपहरी की भाँति ही उनकी निराशा भी अंतहीन हो गयी थी। कारण था उनकी सुपुत्री कविता का विचित्र मानसिक व्याधि (संभावित किसी भूत प्रेत की बाधा वश) से ग्रस्त हो जाना। वह नाना प्रकार के उपद्रव करती। काले कपड़े पहनती और विचित्र हरकतें करती। अंग्रेजी का अल्प ज्ञान रखने के बावजूद धारा प्रवाह अंग्रेजी बोलती थी। सभी हैरान परेशान थे। उसे काबू में करने के सभी संभव प्रयत्न किये जा चुके थे। मगर चिकित्सक भी व्याधि के मूल तक नहीं पहुँच सके। चहुँ ओर से निराशा का गहन तिमिर उन्हें घेर चुका था। जिससे पार निकलने की आशा तक धूमिल हो चुकी थी।

मगर तभी ऐसा चमत्कार हुआ कि जिसने एक सनातन कहावत को यथार्थ का ठोस धरातल प्रदान कर दिया कि जब कोई मार्ग शेष नहीं रह जाता तब धर्म ही आडे आता है । श्री बुरड़ को ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री हस्तीमल

जी म.सा. होली चातुर्मास के मांगलिक अवसर पर सरदारपुरा स्थित कोठारी भवन में विराजे हैं। आशा की किरण नेत्रों में झिलमिलाने लगी। कहते हैं डूबते को तिनके का सहारा पर्याप्त होता है। मगर यहाँ तो समूचा किनारा उन्हें उदात्त भाव से आमंत्रित कर रहा था। वे तुरन्त पुत्री सहित आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ पहुंचे एवं अपनी दुःखद स्थिति प्रकट की।

आचार्य श्री तो समाज के उद्धारक एवं दुखियों के तारणहार थे। उन्होंने ३ दिन तक उसे निरन्तर मंगलपाठ श्रवण कराया। धर्म का प्रताप व आचार्य भगवन्त का अतिशय देखिये, चौथे दिन ही वह पूर्ण शांत व स्वस्थ हो गयी। अनहोनी होनी बन गयी और कविता के जीवन में नये प्रभात का उदय हुआ। कविता अब पूर्ण स्वस्थ शांत है एवं अपने नवजीवन का सूत्रधार आचार्य श्री को ही मानती है, जिनके लिये उसके व उसके परिजनों के हृदय में असीम श्रद्धा, आभार व कृतज्ञता है।

- घटना कुछ वर्ष पूर्व की है। आचार्य श्री मध्यप्रदेश में इन्दौर के समीपस्थ गांवों में विचरण कर रहे थे। उसी समय इन्दौर में हीरामणि नामक एक लड़की मस्तिष्क ज्वर से ग्रसित हो गयी। व्याधि चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। परिजन यथा संभव सभी प्रयत्न करके हार चुके थे। यहाँ तक कि शहर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री नन्दलालजी बोरदिया ने भी लड़की को अस्पताल से छुट्टी देकर उसके जीवन की संभावना से स्पष्ट इंकार कर दिया था।
- लड़की की माता आचार्य श्री के प्रति बहुत श्रद्धा रखती थी। आचार्य श्री उस समय इन्दौर से २५ कि. मी. दूर सांवेर गांव में विराजमान थे। अत: अपनी पुत्री को कार में लेकर सांवेर तक आई और स्थानक में लाकर आचार्य श्री के श्री चरणों में बैठा दिया। अन्तर्यामी आचार्यप्रवर निश्छल वाणी में चिरपरिचित शैली में बोले, भोली, यह क्या कर रही है? अत्यन्त दुःख के साथ माता ने उत्तर दिया-- गुरुदेव, सभी चिकित्सक इंकार कर चुके हैं। अब आप इसे मांगलिक श्रवण करा दें तो मैं इसे शांति से घर ले जा सकूँगी।

  आचार्य श्री ने हीरामणि को मांगलिक श्रवण करा दिया। श्रद्धा और धर्म का प्रभाव देखिए, वह लड़की उसी क्षण स्वस्थ हो गयी और उठकर खड़ी हो गयी। आज वह खुशहाल जीवन व्यतीत कर रही है और अपने जीवन को गुरुदेव के आशीर्वाद का परिणाम मानकर उनके प्रति उपकृत है।
- पता नहीं महापुरुषों के जीवन में ऐसी क्या अद्‌भुत, अलौकिक विशेषताएँ होती हैं कि मनुष्य तो मनुष्य, मूक पशु-पक्षी और सबसे बढकर कई बार प्रकृति तक उनके प्रति समर्पित हो जाती है। गुरुदेव के जीवन में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब आश्चर्यजनक ढंग से प्रकृति भी उनके प्रति उदार बन जाती थी, समर्पित हो जाती थी। निमाज में गुरुदेव के संथारा लेने के पश्चात् बिना मौसम बादल बरसा कर वरुणदेव का उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित करना इसे सिद्ध करता है। गुरुदेव के जीवन काल में भी कई मौके ऐसे आए। मसलन गुरुदेव अक्सर गर्मियों में प्रात: काल या सांयकाल में ही विहार करते। दिन में विहार प्राय: सर्दियों में ही होता किन्तु कभी-कभार जब गर्मी में भी दिन को विहार करना आवश्यक हो जाता तो अनेकों बार साथ चल रहे सन्तगणों व भक्तगणों को यह देखकर आश्चर्य होता कि यकायक मौसम ठंडा हो जाता, आकाश में बादल छा जाते, धूप विलुप्त हो जाती और आपका विहार सरल हो जाता। ऐसा लगता मानो बादल छत्री बनकर आपके विहार में सहयोग दे रहे हों।
- दक्षिण प्रवास से आचार्य श्री मद्रास चातुर्मास पूर्ण कर राजस्थान की ओर पधार रहे थे। इसी विहार क्रम के दौरान आप के. जी. एफ. के पास बागलकोट पधारे। २० जनवरी १९८१ का वह दिन था। आपने सांयकाल

शौच निवृत्ति के पश्चात् खजूर के एक पेड़ के नीचे विराज कर हाथ धोए। हाथ साफ करके जैसे ही आप उठे और कुछ कदम ही आगे बढे होंगे की पीछे यकायक पेड़ की एक भारी भरकम शाखा उसी स्थान पर टूट कर गिर पड़ी जहाँ आप कुछ क्षण पूर्व विराजित थे।

आचार्यप्रवर की सेवा में साथ चल रहे श्री गौतम मुनिजी ने तुरन्त आचार्य भगवन्त के समक्ष आशंका प्रकट की कि भगवन्, यदि चंद क्षणों पहले यह हादसा हो जाता तो कितना बडा अनिष्ट हो सकता था। इस पर आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से सहसा निकल पड़ा– धर्मो रक्षति रक्षितः और चेहरे पर कोई भय, कोई आशंका नहीं। वहाँ तो थी पूर्ण शांति और निश्चिन्तता।

- प्रगति की राह में सबसे बड़ी बाधक बनती हैं हमारी रूढ़ परम्पराएँ। एक साधारण मानव में इतना आत्मबल नहीं होता कि वह इन्हें बदलने का प्रयास कर पाए। मगर आचार्यप्रवर अपार आत्मबल के धनी थे। इसलिए कई रूढ़ियों को तोड़ पाए। सवाईमाधोपुर का आपका प्रथम चातुर्मास (सन् १९७४) इसी की एक कड़ी था। वहाँ पर पर्युषण के दौरान भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को रोट पर्व मनाने की प्रथा थी। इस कारण से पर्युषण पर्वाराधन हेतु स्वाध्यायी बाहर दूसरे क्षेत्रों में जाने से हिचकिचा रहे थे। उन्हें प्रथा के भंग होने से अनिष्ट की आशंका भी थी। आचार्य श्री ने अपार आत्मबल का परिचय देते हुए अपनी जिम्मेदारी पर उन्हें रोट के दिवस की तिथि बदलकर पर्युषण में सेवा देने की प्रेरणा की। रोट के दिवस का प्रतिस्थापन दशमी को किया गया और पर्युषण में वहाँ से स्वाध्यायी जगह जगह पर धर्मध्यान की प्रभावना हेतु गये। किसी का कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। निजी आत्मबल के दम पर ऐसे परिवर्तन का खतरा गुरुवर जैसे साहसी और धर्म में सच्ची श्रद्धा रखने वाले ही उठा सकते हैं।

- एक दिन एक व्यक्ति गुरुदेव श्री के दर्शनार्थ आया। भक्त था, श्रद्धालु था। गुरुदेव को वन्दना की, चरण स्पर्श किए। सुखसाता पृच्छा की। गुरुवर तो थे ही आत्मीयता के अनमोल सागर। व्यक्ति से धर्म-ध्यान आदि का पूछा। वार्ता के मध्य व्यक्ति ने अपना बेग खोला, एक पत्रिका निकाली, गुरुभगवंत के सम्मुख रखते हुए बोला- "गुरुदेव! बड़ा अनर्गल प्रलाप किया गया है इसमें। आपके उचित निर्णयों और सत्य विचारों पर दुराग्रह वश बड़ी तीखी कलम चलाई गई है। यह तो बहुत ही शर्मनाक बात है। हम इसका ऐसा प्रत्युत्तर देना चाहते हैं कि-"
- "गुरुदेव ने उस भक्त की बात को यहीं रोकते हुए बहुत ही शांत स्थिर स्वर में कहा - "भाई! यदि हम अपने आप में सत्य हैं, यदि ज्ञान-दर्शन-चारित्र में हमारी सजगता निरन्तर बनी हुई है तो फिर कोई भी कुछ भी कहे या लिखे, हमें भला क्या चिन्ता। अब यदि आप कुछ लिखते हैं जवाब में, तो वे फिर कुछ लिखेंगे, आप फिर लिखेंगे, इसका तो कोई अन्त नहीं है। अच्छा तो यही है कि ऐसी पत्र-पत्रिकाओं और उनमें छपे ऐसे तथ्यहीन प्रकरणों को आप महत्त्व ही न दें।" कैसी समता! कैसी शान्ति! कैसा धैर्य! धन्य है श्रमणाचार्य रूप में भी अरिहन्त सम वीतरागता के उज्ज्वल भावों के धारक पूज्य श्री हस्ती को।

('झलकियां जो इतिहास बन गईं' पुस्तक से संकलित)

■

ज्योतिर्विद्या की दृष्टि में आचार्यप्रवर

• डॉ. भगवतीलाल व्यास

• आचार्य श्री की जन्म-कुण्डली

विक्रम संवत् १९६७ शाके १८३२ रवौ उत्तरायणे हेमन्त ऋतौ पौष मासे शुक्ले पक्षे १३ त्रयोदश्याम् ६/१२ परं १४ तदनुसार दिनाङ्क १३ जनवरी १९११ इष्ट १५/३० सूर्य ८/२९ लग्न ०/२६ आर्द्रा १चरण राशि मिथुन।

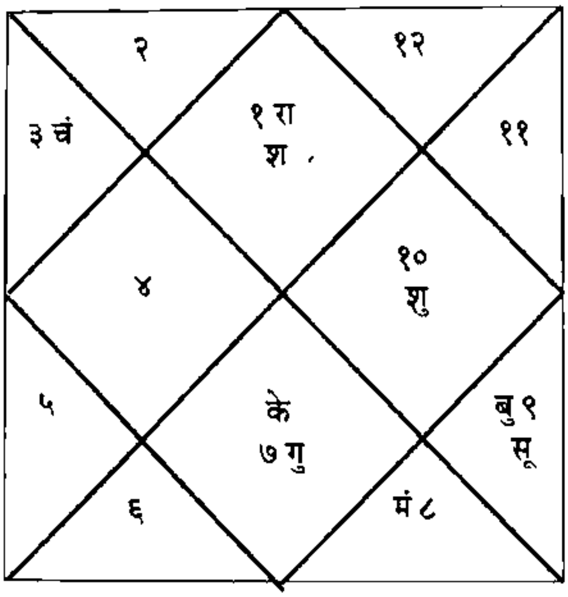

महापुरुषों का जन्म विशिष्ट ग्रह नक्षत्रों के योगायोग में ही सम्पन्न होता है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि मानव के समस्त क्रियाकलाप ग्रहों के द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव चराचर जगत पर पड़ता है। कहा भी गया है। "प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चंद्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।"

इस प्रकार सूर्य-चंद्र तो प्रत्यक्ष हैं ही, नक्षत्र तथा तिथ्यादि भी प्रत्यक्ष हैं। विज्ञान द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि इन ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव मानव जीवन पर अवश्य पड़ता है। इसलिए ज्योतिष शास्त्र सूर्य को आत्मा और चंद्र को मन मानता है। जीवन के सारे क्रिया-कलाप सूर्य और चंद्र द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इन दोनों ग्रहों का सामंजस्य ही जीवन को संचालित करके व्यवस्थित करता है। सूर्य आत्मा का कारक है अर्थात् अध्यात्म का अधिष्ठाता है। आध्यात्मिक जीवन में प्रवृत्ति सूर्य के कारण ही संभव है। जन्मकाल में सूर्य की स्थिति महत्त्वपूर्ण मानी गई है। यही नहीं उत्तरायण और दक्षिणायन का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। महापुरुषों का आविर्भाव और महाप्रयाण दोनों उत्तरायण में ही श्रेष्ठ माने गये हैं। कहा भी गया– है "सौम्यायने कर्म शुभं विधेयम्"। पूज्य आचार्य श्री का जन्म भी उत्तरायण में हुआ और उन्होंने तपःपूत होकर महान् कार्यों से ज़ीवन्मुक्त की अवस्था प्राप्त की। आचार्य श्री के जीवन के समस्त कार्य उत्तरायण सूर्य में ही सम्पन्न हुए। जैसे उनका जन्म सं. १९६७ पौष शुक्ला १४, दीक्षा माघ शुक्ला २ सं.१९७७, आचार्य पद की प्राप्ति अक्षय तृतीया सं. १९८७ तथा महाप्रयाण भी

वैशाख शुक्ला अष्टमी संवत् २०४८ को हुआ। उपर्युक्त समस्त घटनाएँ उत्तरायण में ही हुईं। साथ ही उपर्युक्त चारों घटनाएँ शुक्ल पक्ष में ही हुईं। शुक्ल पक्ष का ज्योतिष शास्त्र में बहुत महत्त्व है।* इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि इसमें चंद्र बली रहता है। बली चंद्र का बल ही मानव के मनोबल को बढ़ाता है तथा जीवन का विकास करता है। अतः मुहूर्त चिंतामणि में कहा गया है-

नंदा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथयोऽशुभमध्यशस्ताः।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः॥

चलित

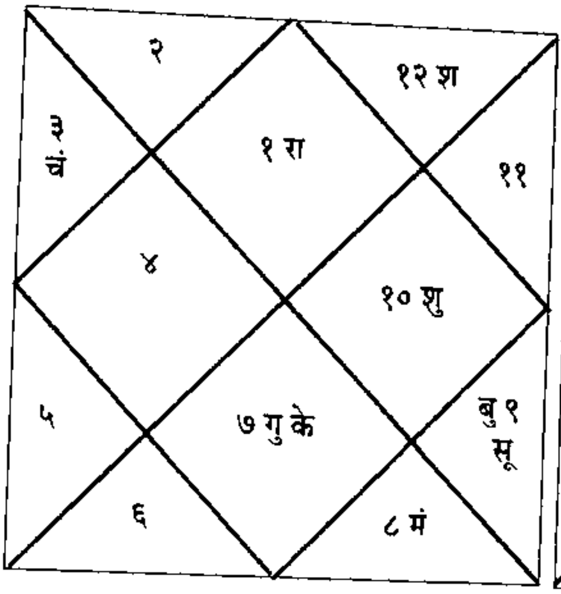

नवांश

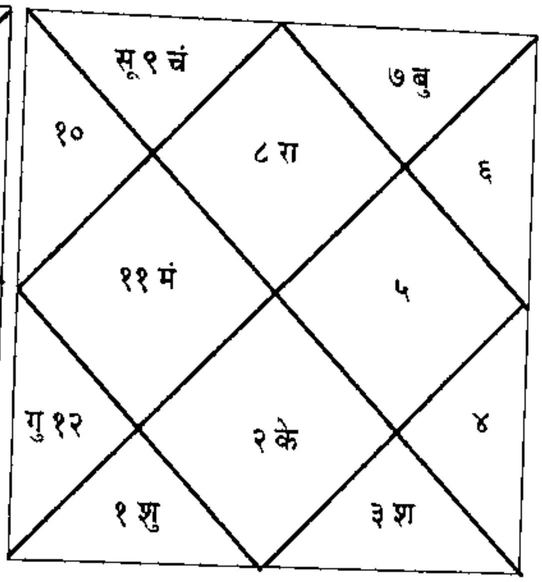

आचार्य श्री की जन्म-कुण्डली में नवमभाव में सूर्य बुध के साथ अवस्थित है। बुध के साथ होने से बुधादित्य योग है, साथ ही यह गुरु की राशि का है और मित्र राशि का होने से भाग्य स्थान की वृद्धि करता है। चलित में भी वही स्थिति रही। विशेषता तो यह है कि नवमांश में भी सूर्य वर्गोत्तमी बन गया और चन्द्र के साथ युति हो गई। अन्य सद्गुणों एवं योग्यता के साथ सूर्य के बलवान होने के कारण ही गुरुदेव आचार्य पद पर आसीन हुए और उनका वर्चस्व अहर्निश वृद्धि को प्राप्त होता रहा। इसी कारण ही आध्यात्मिक क्षेत्र में कुशल नेतृत्व किया और साथ ही देदीप्यमान नक्षत्र के समान ज्ञान से संसार को आलोकित करते रहे।

अब चन्द्र की स्थिति का निरूपण किया जाय तो चंद्र तृतीय स्थान में स्थित है। यह स्थान पराक्रम का है। इसका स्वामी बुध है, जो सूर्य के साथ बैठकर इस घर को देख रहा है। सूर्य बुध की दृष्टि तृतीय भाव पराक्रम को मजबूत कर रही है। इस घर की विशेषता है। इस घर पर पाँच-पाँच ग्रहों की दृष्टियाँ हैं। सूर्य व बुध के साथ-साथ शनि और गुरु भी पराक्रम को देखते हैं। गुरु की दृष्टि सकारात्मक मानी गई है और शनि की दृष्टि नकारात्मक मानी गई है। शनि की चन्द्र पर दृष्टि निवृत्तिमार्ग की द्योतक है। वह त्याग, तपस्या और वैराग्य प्रधान बनाती है तो दूसरी

---

* जैन धर्म में पुरुषार्थ-पराक्रम की प्रधानता है, जो आचार्यप्रवर में थी ; तथापि पंच समवाय में काल के अन्तर्गत ज्योतिर्विद्या का भी अपना एक पक्ष है जिसकी चर्चा इस लेख में की गई है।

ओर बृहस्पति की सकारात्मक दृष्टि अलौकिक ज्ञान सम्पन्न, प्रतिभाशाली, तेजस्वी-वर्चस्वी, परोपकारी के साथ-साथ 'सर्वभूतहितेरतः' लोक कल्याण करने वाला महापुरुष बनाती है। अब मंगल पर दृष्टिपात किया जाय तो मंगल लग्नेश होकर अष्टम में स्वगृही है और वह भी विशेष दृष्टि से तृतीय स्थान पराक्रम को देखता है। चन्द्र पर मंगल की दृष्टि अत्यन्त शुभ मानी गई है। यह विपरीत राजयोग की भी संज्ञक है। यह व्यक्ति को कर्मठ, अनुशासन प्रिय, संगठनकर्ता, कुशल नेतृत्व से सम्पन्न राष्ट्रीय संत और कुशल प्रशासक बनाती है। ग्रहों की इतनी सारी दृष्टियाँ आचार्य श्री के व्यक्तित्व को बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न बताती हैं तथा समाज को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाला पथ-प्रदर्शक बताती हैं ।

वस्तुतः चन्द्र की स्थिति केमुद्रम योग वाली है, परन्तु बृहस्पति की दृष्टि ने उसे ज्ञान संपन्न कर दिया। लौकिक रिक्तता को अलौकिक ज्ञान से परिपूर्ण कर दिया। बृहस्पति के कारण ही जैनागमों के मर्मज्ञ और तत्त्ववेत्ता बने और वाणी ओजस्वी शक्ति से युक्त हो गई। मंगल के कारण बीस वर्ष की आयु में ही आचार्य पद की प्राप्ति हुई और ६१ वर्ष तक कुशल नेतृत्व किया तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र को साकार किया।

केन्द्र में गुरु और शुक्र की स्थिति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। गुरु आत्मोत्थान का परिचायक है तो शुक्र समाजोत्थान के कार्य करवाता है। एक ही ग्रह इनमें से केन्द्र स्थित शुभ माना गया है तो दो-दो ग्रह मिलकर अत्यंत प्रभावशाली बनाते हैं। कहा भी गया है–

शुक्रो यस्य बुधो यस्य, यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः।
दशमोऽङ्गारको यस्य स जातः कुल दीपकः ॥

यहाँ कुल दीपक योग स्थित है। इस कारण ही आचार्य श्री ने अपने कुल का नाम रोशन किया और संसार में आपका मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा और ख्याति दिग्-दिगंत में सुगन्ध के समान फैल गई। अकेला बृहस्पति ही सिंह के समान पराक्रमी बताया गया है। अकेला शेर जिस प्रकार हाथियों के झुण्ड को परास्त कर देता है, ठीक वैसे ही अकेला केन्द्रस्थ गुरु ही पर्याप्त होता है। शास्त्रकारों ने कहा भी है-

किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः।

अस्तु। अब शनि की स्थिति पर विचार किया जाय तो शनि नीच राशि का है। शुक्र दशम भाव में स्थित है और शनि दशम भाव में स्थित शुक्र को देखता है। यह शनि की अपनी राशि है। चलित में द्वादश भाव में शनि प्रव्रज्या योग कारक होता है। यह एक तरफ त्याग-वैराग्य करवाता है तो दूसरी ओर लोक-कल्याण के कार्य कराता है। एक ओर स्वयं को त्यागी वैरागी बनाता है तो दूसरी ओर समाज में धार्मिक कार्यों और आध्यात्मिक चेतना में प्रवृत्ति करवाता है। यहाँ पर शनि की जो नकारात्मक दृष्टि है वह दशम भाव कर्म के लिए सकारात्मक दृष्टि बन गई है। अन्ततोगत्वा यह निष्कर्ष निकलता है कि इन योगायोगों ने आचार्य श्री को एक महान् राष्ट्रीय संत के रूप में देदीप्यमान नक्षत्र कर प्रतिष्ठित किया।

• दीक्षा कुण्डली

दीक्षा कुंडली का भी अपना अलग महत्त्व होता है जिस प्रकार जन्म कुंडली महत्त्वपूर्ण होती है ठीक उसी प्रकार से संत के जीवन को दीक्षा कुंडली प्रभावित करती है। संपूर्ण आध्यात्मिक जीवन दीक्षा कुंडली से ही संचालित होता है, क्योंकि एक संत का जीवन-चक्र तो दीक्षा के बाद ही प्रवर्तित होता है।

संवत् १९७७ शाके १८४२ माघ शुक्ला द्वितीय द्वितीया २१ फरवरी १९२१ गुरुवार मध्याह्न अभिजित में दीक्षा संपन्न हुई। उस समय की दीक्षा कुंडली निम्नलिखित है—

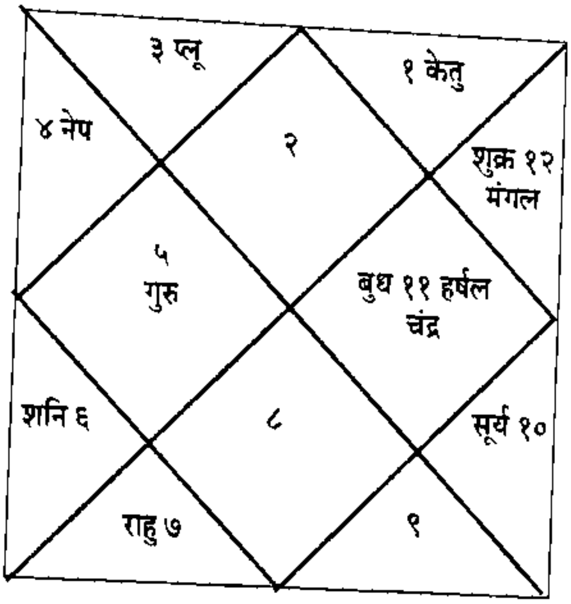

उपर्युक्त दीक्षा कुंडली में वृष लग्न है। वृष लग्न का ज्योतिष में अधिक महत्त्व है। यह स्थिर लग्न है। स्थिर लग्न में संपन्न कार्य स्थिर होता है। अत: इस लग्न को सिंह लग्न की तरह माना गया है।

लग्नेश शुक्र एकादश भाव में स्थित है। यह ग्रह ग्यारहवें में शुभ माना गया है। अत: दीर्घ जीवन का रहस्य है। लग्नेश शुक्र की मंगल के साथ युति भी शुक्र को बल देने वाली है। यह व्यक्तित्व को कठोर तपस्या से युक्त बनाती है। साथ ही शुक्र व मंगल पर शनि की दृष्टि त्याग-वैराग्य पूर्ण जीवन को सफल बनाती है।

शनि की स्थिति भी त्रिकोण में महत्त्वपूर्ण है। यहाँ शनि-बुध की परस्पर स्थिति अत्यंत श्रेष्ठ है। पंचमेश बुध दशमभाव (कर्म) में चंद्र के साथ स्थित है। साथ ही दशम एवं एकादश का स्वामी शनि पंचम में स्थित है। विद्या और कर्म के स्वामियों का परस्पर स्थित होना अर्थात् दोनों का परस्पर परिवर्तन होना अत्यन्त शुभ है। यह शास्त्रज्ञान में पारंगत एवं कर्म में भी दक्ष बनाता है। यहां 'क्रियाशीलो' हि पण्डित: वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

कुण्डली में गुरु की स्थिति भी केन्द्र में शुभ है। बुध और गुरु दोनों केन्द्र स्थान में शुभ फलदायी हैं। कहा भी गया है - "शुक्रो यस्य, बुधो यस्य, यस्य केन्द्रे बृहस्पति:।" गुरु की दृष्टि भी जोरदार है। गुरु अष्टम भाव को देखता है, जो धनुराशि का अधिपति है। यह स्थिति दीर्घ आयुष्य प्रदान करती है। साथ ही द्वादश पर दृष्टि प्रव्रज्या-योग को पुष्ट करती है।

कुण्डली में सूर्य की स्थिति भी बलवती है। केन्द्र का अधिपति सूर्य नवम भाव त्रिकोण में स्थित है। यह सूर्य अत्यन्त वर्चस्वी व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

कुण्डली में राहु और केतु की स्थिति भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। राहु छठे स्थान में शुभ फलदायी होता है। यह रोगनाशक है, बीमारी को समाप्त करता है। शरीर नीरोग रहता है। कहा भी गया है — 'त्रिषटे एकादशे राहु:।'

तीसरे, छठे और ग्यारहवें भाव में राहु शुभ फलदायी माना गया है। इसी प्रकार से द्वादश में केतु भी आध्यात्मिक जीवन को पुष्ट करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त योगायोगों के द्वारा इस समय में सम्पन्न दीक्षा के द्वारा उन्हें अल्पायु में ही आचार्य पद की प्राप्ति हुई और दीर्घकाल तक आचार्य पद पर आसीन रहे , साथ ही राजयोग के ग्रहों के द्वारा लोक कल्याण करते रहे।

- महाप्रयाण कुण्डली

महाप्रयाण वि. सं. २०४८ वैशाख शुक्ला ८ दिनाङ्क २१ अप्रेल १९९१ रविवार रात्रि ८ बजकर २१ मिनट।

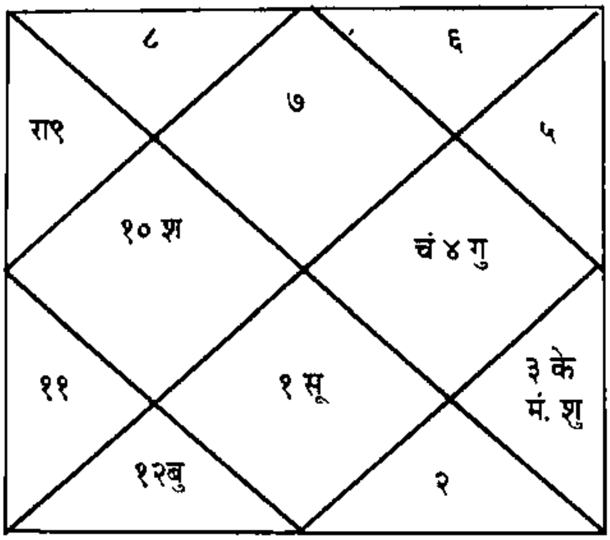

आचार्य श्री गुरुदेव का महाप्रयाण दिवस भी अत्यन्त श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण रहा है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि गुरुदेव के जन्म, दीक्षा आचार्यपद और महाप्रयाण सभी कार्य उत्तरायण सूर्य में हुए हैं। उत्तरायण सूर्य में देह-त्याग होने से मोक्ष (स्वर्ग) की प्राप्ति होती है , ऐसी शास्त्र मान्यता है। आचार्य श्री के महाप्रयाण के समय उच्च का सूर्य आध्यात्मिक ज्योति को निर्वाणपद देने के लिए तत्पर रहा है।

अब चन्द्र की स्थिति पर विचार किया जाय तो शुक्ल पक्ष है, अतः चन्द्रमा पूर्ण बली है। वह अष्टमी का दिन होने से अपनी पूर्ण प्रभा के साथ आलोकित है। साथ ही कर्क राशि पर स्थित है जो स्वगृही है और गुरु के साथ है। जैसा कि दीक्षा मुहूर्त के समय गुरु चंद्र की युति हुई थी, वही स्थिति महाप्रयाण (निर्वाण) काल में हुई है, जो अत्यन्त दुर्लभ स्थिति है। गुरु और चंद्र की दृष्टि शनि पर है, जो कल्याण की सूचक है।

नक्षत्र की दृष्टि से देखा जाय तो उस दिन पुष्य नक्षत्र था, जो अपनी चरम सीमा पर था। रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र होना अत्यन्त शुभ माना गया है।

इस नक्षत्रराज की प्रशंसा में कहा गया है -

"सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां, तथैव पुष्यो बलवान् उडूनाम्।
चन्द्रे विरुद्धेऽप्यथ गोचरे वा, सिध्यन्ति कार्याणि कृतानि पुष्ये ॥

अर्थात् जिस प्रकार सारे पशुओं में सिंह बलवान होता है, ठीक वैसे ही सारे नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र बलवान होता है। यदि अन्य ग्रह निर्बल हों तो भी पुष्य में किया गया कार्य फलीभूत होता है। इस दृष्टि से रवि पुष्य के दिन महाप्रयाण होना शुभ्र संकेत का प्रतीक है। इति शम्

ज्योतिषाचार्य,
सेवानिवृत्त वरिष्ठ स. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग),
६ 'देवीकृपा' रोड़ नं. ८ शक्तिनगर, जोधपुर (राज.) दूरभाष 2544445

■

काव्याञ्जलि में निलीन व्यक्तित्व

(१)

वन्दे गुरुं हस्तिनम्

(छन्द - शार्दूल विक्रीडितम्)

हस्तिर्मे (हस्ती मे) भवभीति-भेदन-परो, वन्दे गुरुं हस्तिनम्।
(हस्तिर्नः सुगुरुर्गजेन्द्रगणिराट्, वन्दे गुरुं हस्तिनम्।)
तीर्णं येन च हस्तिना जगदिदं, तस्मै नमो हस्तिने॥
दुष्प्राप्यं नहि हस्तिनः यदि दया, स्याद् हस्तिमल्लस्य वै।
भक्तिर्वर्धतु हस्तिनि दृढतरा, मे हस्तिमल्ल प्रभो॥
(भक्तिर्वर्धतु हस्तिनि दृढतरा, हस्तिन् गुरो पाहि नः॥)

मेरे गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमल्लजी महाराज भव-भय-भंजन में सदा तत्पर रहते हैं, मैं उन हस्तीमल्लजी महाराज को नमस्कार करता हूँ। जिन गुरुदेव श्री हस्तीमल्लजी महाराज ने इस संसार को पार कर लिया है उन पूज्य श्री हस्तीमल्लजी महाराज को नमस्कार है। यदि पूज्य श्री हस्तीमल्लजी महाराज की मुझ पर दया हो तो उनसे कोई भी वस्तु मेरे लिए अप्राप्य नहीं है। मेरी श्रद्धा गुरुदेव श्री हस्तीमल्लजी महाराज के प्रति निरन्तर बढ़ती रहे, हे पूज्य प्रभो हस्तिमल्ल जी ! आपसे मेरी यही प्रार्थना है।

टिप्पण - उपर्युक्त स्तुति का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें 'हस्तिन्' शब्द की सभी विभक्तियों का प्रयोग हुआ है।

(२)

बाल्येऽपि संयमरुचिं

(पं. मुनि श्री घेवरचन्दजी म.)

बाल्येऽपि संयमरुचिं चतुरं सुविज्ञम्,
कान्तं च सौम्यवदनं सदनं गुणानाम्।
मौनेन ध्यानसहितेन जपेन युक्तम्,
पूज्यं नमामि गुणिनं गणिहस्तिमल्लम्॥
[भक्त्या नमामि दमिनं गणिहस्तिमल्लम्॥]

(३)

आचार्य श्री हस्तीमल्ल-गुणाष्टकम्

(पूज्य घासीलालजी म.सा. द्वारा रचित)

असारं संसारं वदति सकलो बोधयति नो,
बुधे बोद्धा बुद्ध्या सकलजनताबोधनपरः।
यदीये सद्वाक्ये स्फुरति महिमा कोऽप्यनुपमो,-
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥१॥

संसार को मिथ्या कहें, सब किन्तु समझाते कहाँ,
बुद्ध मध्य बोद्धा बुद्धि से, गणिवर्य समझाते यहाँ।
जिनके मनोहर वाक्य में, बहुतेज अनुपम भासते,
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल, गणि को देखि कलिमल भागते ॥१॥

इस संसार को सब मनुष्य असार अर्थात् मिथ्या कहते हैं, किन्तु इसके सच्चे तात्पर्य को नहीं समझते हैं। बुद्धिमान् मनुष्यों में ज्ञानी मनुष्य ही इसके सत्य स्वरूप को समझते हैं, जिनकी मनोहर वाणी में अनुपम महिमा प्रकट होती है। ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं। (अथवा आपको देखकर कलियुग के मल्ल शान्त हो जाते हैं।)

शरच्चन्द्राभासं प्रवचनममूल्यं वदति यः
ददत्तीव्रं बोधं सकलमलशोधं निजगिरा।
सदा पापं तापं हरति भविनां हृत्तलगतम्,
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥१॥

उपदेश जिनका शरद् शशि सम अति अमूल्य महान है।
देते सकल कलिमल हरण जो, मोह नाशक ज्ञान हैं।
जिनके वचन भविजन हृदयगत-पाप ताप निवारते-
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देख कलिमल भागते ॥२॥

जिनका उपदेश शरदृतु के निर्मल चन्द्रमा के समान अमूल्य एवं महान् है, जो सब पापों का नाश करने वाला एवं मोह को नष्ट करने वाला उपदेश देते हैं, जिनके वचन भव्य जनों के हृदय में रहे हुये पाप एवं संताप को नष्ट करने वाले हैं, ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं दूर हो जाते हैं--

विहारं यः कुर्वन्नवनितलजन्तूनुपदिशन्-
भृशं तापं शापं जिनवचनशक्त्या परिहरन्।
अमन्दं सानन्दं ध्वजमुपरि जैनं परिधुवन्।
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥३॥

जहँ तहँ विहरते भव्य के उपदेश तै संताप को,
जिन वचन शक्ति विचार से हरते सदा जो पाप को,
जाते जहाँ सर्वत्र ही जैन ध्वजा फहरावते।
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल भागते ॥३॥

आचार्य श्री जहाँ जहाँ विचरते हैं वहाँ भव्य मनुष्यों के पापों का जिनेश्वर प्रतिपादित वाणी के उपदेश से नाश करते हैं और जहाँ जाते हैं वहाँ जैन ध्वजा को फहराते हैं। ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं।

चकोराणां वृन्दं सुखमुपनयेद् यद्यपि शशी,
दिवा रात्रौ नैव प्रभुरयमलं सर्वसमये।
गुहाध्वान्तं सूर्यो हरति नहि हृद्ध्वान्तमपि यो,
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥४॥

रात में ही चन्द्र देता, सुख चकोर समूह को-
दिन रात मुनिवरजी हमारे, दे रहे सुख भव्य को।
रवि कन्दरा तम भी नहीं, गणिवर हृदय तम नाशते-
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल भागते ॥४॥

यद्यपि चन्द्रमा रात्रि में ही चकोरों के समूह को आनन्द प्रदान करता है, किन्तु मुनिवर (आचार्य श्री) हमें रात्रि-दिन उपदेश रूप उत्तम सुख प्रदान करते हैं। सूर्य तो गुफाओं में रहे हुए अंधकार को ही नष्ट करता है, किन्तु आचार्य श्री हृदय में रहे हुये अज्ञानान्धकार को नष्ट करने में समर्थ हैं, ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य हस्तीमल्ल जी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं।

यथा वै जन्मान्धो विमलनयनं प्राप्य सुनिधिं,
दरिद्रो दैवेनाप्रतिममतिसौख्यं प्रलभते।
तथा भव्या हर्षं दधति किल यद्दर्शनवशाद्-
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥५॥

जन्मान्ध जैसे विमल लोचन प्राप्त कर होता सुखी-
निर्धन सुनिधि पा दैववश जैसे सदा अतिशय सुखी।
मुनिवर्य दर्शन से तुरत भविजन मुदित मय हर्षते-
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल भागते ॥५॥

जैसे जन्मान्ध मनुष्य नेत्र ज्योति प्राप्त कर सुखी होता है और निर्धन मनुष्य भाग्य से अमूल्य निधि को प्राप्त कर सुखी होता है वैसे ही मुनिवर आचार्य श्री के दर्शन से भव्य मनुष्य अत्यन्त हर्षित होते हैं। ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल जी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं।

विदग्धो व्याख्याने मधुरतरभाषी मुनिवरः
प्रदीप्तिं कुर्वन् यो जिनवचनमत्यन्तममलम्।
मुदा धर्मारामे चरति संततं शुद्धमनसा,
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्ल : शुभमतिः ॥६ ॥

वाणी मधुरता युत चतुरता है सरल व्याख्यान में,
गणिराज जिनवर वचन को दीपित किया निज ज्ञान में,
आप केवल विमल मन जीवादि तत्त्व विचारते -
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल भागते ॥६ ॥

जिनके व्याख्यान में वाणी की अतीव मधुरता है और जो अपने निर्मल ज्ञान से जिनेश्वर वचनों को देदीप्यमान करते हैं, शुद्ध मन से और प्रसन्नता से धर्म रूपी बगीचे में विचरण करते हैं, ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं।

सुगच्छे स्वच्छेऽच्छः स्फटिकमणिशोभां वितनुते-
प्रशस्तैराचारैः शुभतरविचारैर्गणिवरः।
सदा भव्यैः सेव्यो गुणगणगरिष्ठः किल बुधै–
र्गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥७ ॥

अति स्वच्छ सुन्दर गच्छ में जो स्फटिक मणि सम भासते।
अतिशय सुदृढ आचार से शुभतर विचार विराजते।
जिनको हमेशा भव्य जन श्रद्धा सहित हैं सेवते,
शुभबुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल भागते ॥७ ॥

जो अतीव स्वच्छ गच्छ में स्फटिक मणि के समान स्वच्छ हैं। शुद्ध आचार-पालन में तथा शुभ विचारों से सदैव सुशोभित रहते हैं। मोक्ष मार्ग चाहने वाले प्राणी श्रद्धा से जिनकी सेवा करते हैं, ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात दूर हो जाते हैं।

न चाऽस्मिन् संसारे जिनवचनतो रम्यमपरं-
वचस्तद् वक्ता यः प्रथम इह तस्याऽस्य गणिनः।
मुनिर्घासीलाल शुभमकृत गण्यष्टकमिदं।
गणी हस्तीमल्लः शमितकलिमल्लः शुभमतिः ॥८ ॥

संसार में जिन वचन से कुछ अन्य रम्य न दीखता।
इसका प्रवक्ता आज जो उससे भविक जन सीखता।
मुनि घासीलाल प्रणीत हस्तीमल्ल अष्टक शोभते।
शुभ बुद्धि हस्तीमल्ल गणि को देखि कलिमल्ल भागते ॥८ ॥

इस संसार में जिनवाणी से बढ़कर कोई सुन्दर दृष्टि गोचर नहीं होता। उस जिनवाणी का उपदेश फरमाने वालों में आचार्य श्री प्रसिद्ध हैं। मुनि श्री घासीलाल जी द्वारा रचित यह अष्टक श्री हस्तीमल्लजी म. सा. के गुण वर्णन स्वरूप रचा गया है। ऐसे शुद्ध बुद्धि के धारक आचार्य श्री हस्तीमल्लजी को देखकर पाप स्वयं पलायमान हो जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं।

(४)

गजेन्द्र गुणाष्टकम्

(श्री वल्लभ मुनिजी)

श्रामण्यदीक्षां, जिनधर्मशिक्षाम्,
तत्त्वसमीक्षां, भवतो मुमुक्षाम्।
बाल्यात्प्रभृत्येव तु यः सिषेवे
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥१॥

लेकर श्रमण योग की दीक्षा, जैन धर्म का शिक्षा सार,
तत्त्व समीक्षा में पटुता हित, छोड़ दिया जिनने संसार।
बाल्यकाल से किया जिन्होंने सेवन व्रत रत बनअनगार
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की हो जगती में जय जयकार ॥१॥

यस्यास्य चन्द्रोऽमितमोदकर्ता,
अमन्दजाड्यान्धतमिस्रहर्ता।
ज्ञानामृतं भव्यमनःसुभर्ता,
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥२॥

जिनका शशि मुख जनगण मन को देता है, प्रिय हर्ष अपार,
और दर्शकों का करता है जड़ता रूपी तम परिहार।
जो सांसारिक जन मानस में भरते निश दिन ज्ञान विचार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की, हो जगती में जय जयकार ॥२॥

जीवानुकम्पाप्लुतचित्तवृत्तिः,
सत्यान्विताऽनिष्ठुरवाक्प्रयोक्ता।
परोपकारी मितपथ्यभोजी,
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥३॥

जिनके मन में जीवों के प्रति करुणा का है पारावार,
तथा सत्य युत् नम्र वचन मय, जिनका होता है उद्गार।

पर हित निरत अल्प मात्रा में, जो लेते हैं पथ्याहार।
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की, हो जगती में जय जयकार ॥३॥

ज्ञानानुरक्तो यमिनां वरेण्यः,
भवाब्धिमज्जनताशरण्यः।
जैनैरुपाध्यायपदेऽभिषिक्त;
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥४॥

ज्ञानार्जन में रत रहते जो, यतियों में हैं श्रेष्ठ अपार,
भवसागर में डूब रहे जन के हित जो हैं शरणाधार।
उपाध्याय बन कर मानस में करते सदा धर्म संचार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की हो जगती में जय जयकार ॥४॥

यस्योपदेशो भविनां हिताय,
सदा सदाचारविचारचारु।
सन्मार्गदर्शी सुतरां प्रसिद्धः,
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥५॥

जिनका प्रवचन भवप्राणी का करता है बहुविध उपकार,
और सर्वदा जो करते हैं, सदाचार का शुद्ध विचार।
सहज प्रसिद्ध सुपथ के दर्शक, ज्ञानी जिन पथ के अनगार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की हो जगती में जय जयकार ॥५॥

यः सर्वसाधुष्वनुशासनस्य,
वृत्तिं तथा सच्चरितस्य वृद्धिं।
द्रष्टु सदा कांक्षति मानसेन
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥६॥

बढ़े समस्त श्रमण वर्गों में, अनुशासन का प्रिय व्यवहार,
जिनका मन है चाह रहा जग, सत् चरित्र का सदा प्रसार।
जो तन मन से रहते निशदिन, परम कारुणिक और उदार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की, हो जगती में, जय जयकार ॥६॥

सद् भारतेऽस्मिन् सुचिरं विहृत्य,
यः श्रावकेषु प्रयतः करोति।
स्वाध्यायसामायिकयोः प्रचारं,
विद्वद्वरोऽयं जयताद गजेन्द्रः ॥७॥

दीर्घकाल में भारत भू पर, धर्म हेतु कर रहे विहार।
सामायिक स्वाध्याय धर्म का अनुपल करते भव्य प्रचार।
शुद्ध अहिंसा मय जीवन, जिनके जीवन का मूलाधार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की, हो जगती में जय जयकार ॥७॥

प्राचीनहस्ताङ्कितशास्त्रपत्र-
प्रशस्तिसंशोधनदत्तचित्तः।
यश्चेतिहासोल्लिखने सयत्नः
विद्वद्वरोऽयं जयताद् गजेन्द्रः ॥८॥

हस्त लिखित प्राचीन शास्त्र के, पत्रों को करके संस्कार,
जो निशिवासर करते रहते, हैं प्रशस्ति का उचित सुधार।
लिखते हैं इतिहास जैन का, कर प्रयत्न जो विविध प्रकार,
ऐसे बुधवर मुनि गजेन्द्र की हो जगती में जय जयकार ॥८॥

श्रीमद् प्राज्ञगुरोः शिष्यः विद्यार्थी वल्लभो मुनिः।
लिलेख श्रद्धया शीघ्रमुपाध्यायगुणाष्टकम् ॥

(५)

हा हन्त! हस्तिगणिराज ! दिवं प्रयातः

(पं. रत्न श्री घेवरचन्दजी म. 'वीर-पुत्र' द्वारा रचित अष्टक)

पीपाड़ - नाम - नगरे शुभलब्धजन्मा,
पूज्यः पिता विमल - 'केवलचन्द्र' नामा।
'रूपा' सती गुणवती जननी सुधन्या,
भक्त्या भजन्तु भविनो !गणि- हस्तिमल्लम् ॥१॥

बाल्येऽपि संयमरुचिं रुचिरं सुविज्ञं,
कान्तं च सौम्यवदनं सदनं गुणानाम्।
मौनेन ध्यानसहितेन जपेन युक्तं,
भक्त्या भजन्तु भविनो !गणि- हस्तिमल्लम् ॥२॥

औदार्य-धैर्य-सहितं सुविचक्षणं च,
स्वाध्याय-संघ-रचने प्रथमं प्रसिद्धम्।
सामायिके प्रबल- प्रेरकमीशमिद्धं,
पूज्यं जपन्तु जपिनं गणिहस्तिमल्लम् ॥३॥

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधासमूहो,
यस्यार्द्र - शुद्धहृदयात् करुणा-प्रपूरः।
यस्यानने वहति सौम्य-सरित्-प्रवाहः,
हा हन्त ! हस्ति गणिराज ! दिवं प्रयातः ॥४॥

येनैकदापि तव वाक् श्रवणीकृता वा,
दृष्टं सकृद् तव सुभव्यंमुखारविन्दम्।
आजीवनं मनसि भाति छविस्त्वदीया,
हा हन्त ! हस्ति-गणिराज ! दिवं प्रयातः ॥५॥

लब्धा त्वया धवलकीर्तिरतिविशाला,
प्राप्तं यशश्च विमलं विशदं विशुद्धम्।
कल्पान्तकालमविनाशमखण्डलं च,
हा हन्त ! हस्तिगणिराज ! दिवं प्रयातः ॥६॥

सोढा त्वया समतया परमा हि पीडा,
नोच्चारितं निज-मुखेन कदापि किञ्चित्।
शान्ता सदा स्मितयुक्ता तववक्त्रमुद्रा,
हा हन्त ! हस्ति-गणिराज दिवं प्रयातः ॥७॥

श्रीमद्वियोग इह साधु-समाजनिष्ठान्,
दुःखीकरोति सुतरां सुजनान्सुभक्तान्।
शिष्यांस्तथैव सकलान् तव पादलीनान्,
हा हन्त ! हस्ति-गणिराज दिवं प्रयातः ॥८॥

श्रद्धांजलिं समर्प्येमां, वीरपुत्रः समिच्छति।
आत्मा ते परमां शान्तिं, शीघ्रं प्राप्नोतु शाश्वतीम् ॥९॥

(आचार्यप्रवर के समाधिमरण के अनन्तर श्रद्धाञ्जलि रूप में १२ मई १९९१ को जोधपुर में समर्पित)

(६)

गुरु-गजेन्द्र-गणि-गुणाष्टकम्

श्री गजसिंह राठौड़

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

(१)

हे तात ! हे दयित ! हे भुवनैकबन्धो !
शोभानिधे ! सरल ! हे करुणैकसिन्धो !
त्वामाश्रितो गुरु - गजेन्द्र जगच्छरण्य !
मां तारयाशु भवधेस्तु भवाब्धिपोत !

हे प्राणाधिक वल्लभ तात ! हे त्रिभुवन के एकमात्र बन्धो ! हे शोभा के सागर ! हे नितान्त सरल ! करुणा के अथाह सिन्धु ! संसार के सचराचर प्राणिवर्ग को शरण प्रदान करने वाले गुरुवर गजेन्द्र ! (श्री हस्तिमलजी महाराज साहब) मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे भवसागर से पार उतारने वाले महान् जहाज ! मुझे शीघ्र ही संसार-सागर से पार उतारिये।

(२)

स्वाध्यायसंघ - सहधर्मिसमाज - सेवा,
सिद्धान्त - शिक्षणविधौ विविधोपदेशः।
अध्यात्मबोधनपरास्तव शंखनादाः
गुञ्जन्ति देव ! निखिले महीमण्डलेऽस्मिन् ॥

हे गुरुदेव ! स्वाध्याय संघ, सहधर्मि-वात्सल्य, समाज-सेवा एवं शास्त्रों के शिक्षण के सम्बन्ध में आपके विविध विषयों के उपदेश और अध्यात्म-भाव को प्रबुद्ध कर देने वाले आपके शंखनाद इस सम्पूर्ण महीमण्डल में गूंज रहे हैं।

(३)

क्षोण्या सदा तिलकभूतमरोर्धरायाम्,
राठोडवंशक्षितिपैः परिपालितायाम्।
रूपा-सती-तनय ! केवलचन्द्रसूनो !
जन्माभवत् तव कलेः मदभञ्जनाय ॥

हे रूपासती के लाल-श्री केवलचन्द्रजी के आत्मज ! आपका जन्म कलिकाल के प्रभाव को निरस्त करने के लिये राठोड़ वंश के राजाओं द्वारा सुशासित-सुरक्षित सदा सकल महीमण्डल की तिलक स्वरूपा मरुभूमि में हुआ।

(४)

तिर्यक् - नृ - नारक-निगोद- सुरासुराणां,
बंभ्रम्य योनिनिवहेषु चिरौघकालम्।
पूर्वार्जितैः शुभतरैर्गणिवर्यपुण्यैः,
लब्धास्ति ते चरणरेणु - पुनीत- सेवा ॥

हे आचार्यप्रवर ! मुझे नरक, निगोद, तिर्यञ्च, मानव, देव, असुर आदि चौरासी लाख जीव योनियों में अनन्त काल तक भटकने के पश्चात् पूर्व जन्मों में उपार्जित अतीव शुभ पुण्यों के फलस्वरूप आपके चरणारविन्दों की पवित्र रज की सेवा प्राप्त हुई है।

(५)

रत्नत्रयं दुरित- दुर्गक्षयैकवज्रं,
प्राप्तोऽस्मि पूज्य ! तव भूरिदयाप्रसादात्।
मिथ्यात्व-मोह-ममता-मद - लुम्पकाः मां,
किं हा तथापि न हि देव ! परित्यजन्ति॥

हे पूज्यवर ! आपकी असीम दया के प्रसाद से, मुझे पापों के गढ़ को नष्ट करने में पूर्णतः सक्षम, वज्रतुल्य रत्नत्रय प्राप्त हुआ है। तथापि हे आराध्यदेव ! यह दुःख की बात है कि ये मिथ्यात्व, मोह, ममत्व और मद रूपी लुटेरे मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ रहे हैं ?

(६)

लब्धोऽसि हे कुशलवंश- धुराधुरीण !
संसार - तारणविधौ पटुकर्णधारः।
चित्तं कषाय - निखिलार्ति-हरौषधं त्वां,
कल्पद्रुमाभमपि प्राप्तसुपीडितोऽस्मि॥

हे कुशल-वंश-श्रमण-परम्परा के कुशल धुराग्रणी नायक ! भव्यों को संसार- सागर से पार लगाने वाले आप जैसे समर्थ कर्णधार मुझे मिल गये हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि विषय-कषायों तथा सब प्रकार के दुःख-द्वन्द्व को नष्ट कर देने में समर्थ दिव्य औषधि तुल्य एवं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष के समान आपको पाकर भी मैं (भव-रोग से) पीड़ित हूँ।

(७)

नाम्नापि ते गुरु गजेन्द्र ! लयं व्रजन्ति,
विघ्नोपसर्ग - दुरितौघभव - प्रपञ्चाः।
साक्षात् शिवौघ ! तव दर्शन - वन्दनेन,
कर्मारयो यदि लयन्ति किमत्र चित्रम्॥

हे गुरुदेव गजेन्द्राचार्य ! आपका नाम लेते ही सभी प्रकार के विघ्न, उपसर्ग, पापपुंज और संसार के प्रपञ्च तिरोहित हो जाते हैं, तो हे मूर्तिमान् कल्याणकुंज ! आपके दर्शन और वन्दन से यदि कर्मशत्रु नष्ट होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

(८)

प्रातर्जपामि मनसा तव नाममन्त्रं
मध्येऽह्नि ते स्मरणमस्तु सदा गजेन्द्र।

सायं च ते स्मरणमस्तु शिवाय नित्यं,
नामैव ते वसतु शं हृदयेऽस्मदीये ॥

हे गजेन्द्राचार्य ! मैं प्रातःकाल आपके नाममन्त्र का अन्तर्मन से जप करता हूँ। मध्याह्न में भी आपके मंगलकारी नाममंत्र का स्मरण रहे। नित्य ही सायंकाल के समय में भी कल्याण के लिए आपका स्मरण रहे। हे देव ! हमारे हृदय में केवल आपका कल्याणकारी नाम ही बसा रहे।

(७)

वन्दे सुकीर्तिधवलीकृतभूमिभागम्

(श्री अर्हद्दासमुनिः)

चारित्र्यचारुकवचावृत्तदिव्यदेहं
विद्वत्सभागतजनार्चितपादपद्मम्।
जैनेतिहासकुलशारदशुभ्रसोमं
वन्दे सुकीर्तिधवलीकृतभूमिभागम् ॥१॥

वैदुष्यपुण्यगुणसागरमद्वितीयं
कारुण्यसोमरसपूरितहेमपात्रम्।
शुद्धं विशुद्धहृदयं सदयं सुपूज्यं
भक्त्या स्मरामि गणिनं हृदयाम्बुजस्थम् ॥२॥

स्नेहोपचारसुधयोपकृतोऽयमद्य
कैस्ते भणामि वचनैः करुणां दयालो !
भक्तिप्रभावविवशो यदुदाहरामि
चापल्यमेव तदिदं नितरां गिरां मे ॥३॥

रूपासतीतनुज ! केवलचन्द्रसूनो !
माधुर्ययुक्तवचनामृतपूर्णसिन्धो !
त्वत्सद्गुणौघगणनाकुशल स एव
वर्षाम्बुबिन्दुगणनाकुशलो जनो यः ॥४॥

मोहादिकर्मकलुषावृतदेहभाजः
त्वद्दर्शनेन सहसा विमला भवन्ति।
स्पर्शैर्मणेर्भजति चेल्लघुलौहखण्डम्
चामीकरत्वममलं किमु तत्र चित्रम् ॥५॥

तेजोनिधे ! विमलपूर्णशशांकमत्या
मिथ्यैव मूर्खमदनस्त्वयि बद्धलक्ष्यः ।
दृष्ट्वा प्रचण्डतपसो ज्वलनं त्वदीयं
देहप्रदाहभयतो निकषैति नैषः ॥६ ॥

हा हन्त हन्त विधिनाऽकरुणेन नूनं
त्वां सद्गुणौघनिलयं विबुधं वरेण्यम् ।
मूढेन हा ! हतवता सहसा धरिण्यः
ओजोबलं ननु हतं सकलं बुधानाम् ॥७ ॥

विद्यापते त्वयि गते सुमनः प्रसादे
रिक्तं बभूव निखिलं खलु जैनविश्वम् ।
अस्तंगतेऽम्बरमणौ जगतः प्रकाशे
पश्चात्तमोऽस्ति गगने घनमेव शेषम् ॥८ ॥

(८)

अतस्त्वां सततं वन्दे

हन्ति यः स्वोपदेशेन, पापानि सकलानि च,
ज्योतिर्विन्दं च सन्मूर्तिं, हस्तिमल्लं नमाम्यहम् ॥१ ॥

स्तिमिते लोचने यस्य, अर्हद्ध्यानसमन्विते,
नित्यं शास्त्रप्रवक्त्रे च, हस्तिमल्लाय वै नमः ॥२ ॥

मनुवृत्ति सदा शीलं, नानाविधमान्वितम्
सदा सन्मार्गद्रष्टारं, हस्तिमल्लं नतोस्म्यहम् ॥३ ॥

लङ्घिता नैव मर्यादा, आपत्कालेपि येन वै,
तस्मात्तं शतशो वन्दे, हस्तिमल्लं च सूरिणम् ॥४ ॥

यादृशी श्रूयते शोभा, तादृगेव प्रतीयते,
अतस्त्वां सततं वन्दे, हस्तिमल्लं च दैवतम् ॥५ ।

(९)

श्री हस्तिमल्लःसुधीः

चातुर्यं चतुराननस्य निभृतं गाम्भीर्यमम्भोनिधे-
रौदार्य्यं विबुधद्रुमस्य मधुरां वाचं च वाचस्पतेः ।

धैर्यं धर्मसुतस्य शर्म सकलं देवाधिपस्याहरत्
धीमान् ख्यातनयः सदा सविनयः श्री हस्तिमल्लः सुधीः।

—पं. जगन्नाथ ज्योतिर्विद् - कुंडेरा २५/१/१९६८

श्री हस्तिमल जी महाराज ब्रह्मा के जैसे चातुर्य को धारण करने वाले, समुद्र के समान गम्भीरता वाले, कल्पवृक्ष के समान उदारता वाले, बृहस्पति के समान मधुर वाणी से युक्त, धर्मपुत्र के समान धैर्यवान तथा देवताओं के अधिपति इन्द्र के सम्पूर्ण सुखों का हरण करने वाले, बुद्धिमान, प्रसिद्धि को प्राप्त, सदा विनयशील एवं विद्वान् आचार्य हैं।

(१०)

खिद्यते मे हृदयम्

व्याप्तः सर्वत्र भूमौ शशधरधवलः शम्भुहासापहासी,
कीर्तिस्तोमो यदीयो जनयति परितः क्षीरपाथोधिशङ्काम्।
यस्मिन् सम्मानकाया अमरपतिगजो दिग्गजाश्चन्द्रतारा,
जाताः सर्वाङ्गशुभ्रा मुनिजनमहितः सोऽपि यातो दिवं हा॥१॥

आसीद् यः प्रतिभाप्रभुर्गुणनिधि विश्वम्भराविश्रुतः,
आचार्यो मुनिपुङ्गवोऽमलमनाः श्री हस्तिमल्लाभिधः।
कालेनापहृतस्तदद्य नितरां शोकाकुला मेदिनी,
साधूनामपि मानसं व्यथयति प्रारब्धशोकस्वरैः॥२॥

दृष्टो यः प्रथमं मया निकटतो नागौरमध्ये ततः,
पाल्यां सूर्यसमप्रभः स मुनिराट् श्री हस्तिमल्लः प्रभुः।
तस्मिन्नस्तमितेऽद्य गाढतिमिरं व्याप्तं समन्तात् ततः,
सन्मार्गानवलोकनात् प्रतिपदं भ्रश्यन्ति सर्वे जनाः॥३॥

लोकाभ्यर्चितपादपद्मयुगलानाचार्यवर्यानपि,
हत्वा काल न लज्जसे कथमहो किं वच्म्यतस्त्वां प्रति।
त्वं भूयाः सदयः सदेति मनसा वाञ्छत्यसौ केवलम्,
श्रीमत्पुष्करपादपद्मनिलयः शिष्यो रमेशो मुनिः॥४॥

हस्तिमलोऽमलचेताः श्री जिनधर्म प्रसारकाचार्यः
स्वस्थस्मृत्या सुखयतु, पुष्कर - शिष्यं रमेशमुनिम्॥५॥

श्री रमेशमुनि शास्त्री : गढ़सिवाना २२/४/९१

(११)

हस्तिमल्लं नमाम्यहं

श्री ल.वा. माण्डवगणे, जलगांव

अप्रमत्तं सदा शान्तं कार्ये मग्नं दिवानिशम्।
स्वाध्यायस्य प्रवक्तारं हस्तिमल्लं नमाम्यहम् ॥१॥

दोषान् परित्यज्य गुणान् जिघृक्षुः
प्राख्यापयत्स्वस्य जने बुधत्वम्।
रात्रिन्दिवं ज्ञानरतो गजेन्द्रः।
शास्त्रेषु सर्वेष्वेव भवत्प्रवीणः ॥२॥

आचारनिष्ठो गुरुहस्तिमल्लः
सिद्धान्तवित्त्वाद् ऋजुमार्गदृश्वा।
स्वाध्यायमार्गं जनभद्रहेतोः
प्राकाशयद्वै शिवतत्त्वप्राप्त्यै ॥३॥

(१२)

जयस्तस्य भवेल्लोके

(डॉ. धर्मचन्द जैन)

सप्ततिवर्षपर्यन्तं धर्मगंगां प्रवाहयन्।
दिवङ्गतो मुनिर्हस्ती, संस्तारकसमाधिना ॥१॥
शोकमोहौ विनिर्जित्य, समभावमसाधयत्।
जीवनस्यांतिमे भागे, मृत्युं वीरतयाऽजयत् ॥२॥
प्रसन्नवदनाः सर्वे जीवास्तद्धितचिन्तकाः।
जाताः खिन्नमनस्काश्च, भक्ता मोहपरायणाः ॥३॥
बिभ्यति मादृशो मृत्योस्तादृशस्तं जयन्ति च।
सम्यक्तया हि जानन्ति, जातो ध्रुवं मरिष्यति ॥४॥

अन्तिम-विहारः

उपकृत्यांतिमे वर्षे, पालीनगरवासिनः।
आचार्यप्रवरश्चक्रे, विहारं सोजतं प्रति ॥५॥
अध्युष्य होलिकां यावत्, प्रतस्थे सोजतात् पुनः।
निमाजमुपकर्तुं स, शिष्यान् प्रस्थातुमादिशत् ॥६॥
वहन्तः शिविकां शिष्या गुरुभक्तिमदर्शयन्।

पूरयितुं गुरोरिच्छां, सर्वे निमाजमागताः ॥७॥

आत्म-साधना समाधिग्रहणञ्च

जायते निर्बलं स्वास्थ्यं, वृद्धत्वे तु समागते।
क्षीणा तस्य वपुःशक्तिरात्मशक्तिरवर्धत ॥८॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः सोऽन्नमौषधमत्यजत्।
वाचा मौनं गृहीत्वा च, कर्ममलशोधयत् ॥९॥
मृत्युं सन्निकटं ज्ञात्वा, त्यक्त्वाऽऽहारं चतुर्विधम्।
अष्टभक्तं तपस्तप्त्वा, शुक्लध्यानं समादधात् ॥१०॥
पारणं तपसोऽकृत्वा, त्यक्त्वशिष्यनिवेदनम्।
शुद्धेन मनसा साधुः, संस्तारकं गृहीतवान् ॥११॥

आत्महत्या-समाधिमरणयोः भेदः

आत्महत्यां प्रकल्पन्ते, समाधिमरणं जनाः।
अज्ञानिनो न बुध्यन्ति, यदेतदात्मसाधना ॥१२॥
आत्महत्या तु सावेशा, रागरोषविमिश्रिता।
समाधिमरणं तावत्, समभावेन तज्जयः ॥१३॥

दर्शनार्थिनामागमनम्

श्रुत्वा समाधिवृत्तान्तं, भक्ताः दूरत आगताः।
पंक्तौ बद्धा नरा नार्यो, दर्शनाय समुत्सुकाः ॥१४।
सहस्रदशकं नित्यं, भक्तानां वा ततोऽधिकं।
धन्यममन्यताऽऽत्मानं, संप्राप्य गुरुदर्शनम् ॥१५॥

देहात्मनोर्भेद-ज्ञानम्

इहामुत्रैषणात्यागी, तर्तुं मृत्युमहोदधिं।
न ह्यमुह्यत भक्तेषु सर्वान् क्षमामयाचत ॥१६॥
देहेऽनित्ये वसन्नात्मा, नानुभवति शाश्वतं।
किन्तु देहे वसन्नेव, पृथगात्मानमन्वभूत् ॥१७॥

समाधिमरणं श्रद्धाञ्जलिसमर्पणञ्च

दशमेऽहनि समाधेर्हि, देहं त्यक्त्वाऽमरोऽभवत्।
वृत्तान्तो प्रसृतो मृत्योराशु सुलभसाधनैः ॥१८॥

सार्द्धलक्षाधिका:प्राप्ता मानवास्तत्र सर्वत:।
अंतिमं दर्शनं कृत्वा श्रद्धांजलिं समार्पयन् ॥१९॥
समाधिमरणं तादृक्, द्रष्टुं प्राय: सुदुर्लभम्।
अतोऽपि राजनेतार:, श्रद्धार्पणार्थमागता: ॥२०॥
प्रज्वालित:शवस्तस्य, श्रावकैश्चन्दनार्चिभि:।
जयघोषैर्नभोऽगुञ्जत्, ख्यातिं निमाजमाप्तवत् ॥२१॥

नूतनाचार्योपाध्याययो: घोषणा

श्रद्धाञ्जलिसभामध्ये, हस्तिलेखो सुवाचित:।
आचार्यो रत्नवंशस्य, हीराचन्द्रो भविष्यति ॥२२॥
उपाध्यायपदे भूत्वा, संघसंचालने सदा।
मानचन्द्रो मुनिस्तस्य, सहयोगं करिष्यति ॥२३॥

आचार्यहस्ती विजयताम्

सम्यग्ज्ञाननिधिर्हस्ती, सम्यक्श्रद्धासमन्वित:।
मुक्तिपथे समारूढ:, सम्यक्चारित्रपालक: ॥२४॥
साधकानां कृते पन्था:, प्रशस्तो तेन साधुना।
जयस्तस्य भवेल्लोके, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२५॥

(१३)

आचार्य श्री गजेन्द्र गुणगान

(रचयिता-श्री हीरामुनि)

(तर्ज - जो भगवती त्रिशला तनय)

जो महासती रूपा तनय, केवल सुकुल के भान हैं।
दीक्षित हुए अजमेर में, प्रिय नाम 'गज' गुणवान हैं ॥१॥
करुणार्द्र मन नवनीत सा (कोमल सरल), व्रत नियम में चट्टान हैं।
वाणी मधुर लाती लहर, उपदेश पटु श्रुतवान हैं ॥२॥
शतदल प्रफुल्लित सा वदन, जीते मदन मतिमान हैं।
ज्ञानी प्रबल करणी अतुल, धर्मी जगत की शान हैं ॥३॥
आबाल ब्रह्मव्रती गुणी, संयम नियम के धाम हैं।
उन पूज्य हस्ती मुनीश को, मम कोटि- कोटि प्रणाम हैं ॥४॥
[इन पूज्य हस्ती मुनीश को, मेरे अनेक प्रणाम हैं ॥]

(१४)

गुणग्राम

श्री गुरु चरण सरोज मधुप हैं मुनिवर निर्मम,
हस्ती सम प्रतिवादि मान मर्दन हित हरिसम।
तीव्र जिन्हों का त्याग राग पै है संयम पर,
मननशील मन मुदित होत जिनके दर्शन कर।
लब्ध प्रतिष्ठित निज इष्ट के सेवक सच्चे पेलखो,
जीवन सु-धन्य शुभ नाम यह आद्याक्षर में देख लो ॥१ ॥

(१५)

वर्ष गांठ पर स्तुति

(श्री पुष्करमुनिजी म.)

आगम के ज्ञाता अरु विश्व में विख्याता मुनि,
प्रवचन दाता तेरे जनता का ठाट है।
संयम की साधना में जप की आराधना में,
लीन रहे आठों याम समता सम्राट् हैं।
जैन धर्म ज्योतिर्धर पण्डित मण्डित वर,
पूज्य शोभाचन्द जी का दिपा रहा पाट है।
शासन की सेव कर चिरायु हो 'गजमुनि',
आचार्यवर तेरी आज 'वर्षगांठ' है।

(१६ जनवरी १९६५ पौषशुक्ला १४ संवत् २०२१ को जन्मतिथि पर प्रस्तुत)

(१६)

भव्य भावना

(मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.)

पेखो समुज्ज्वल साधना सर्वोच्च जिसकी श्रेष्ठतर।
आराधना त्रय-रत्न की पुनि देखलो है प्रबलतर ॥
है शान्तिमय मुस्कान जिसके, राजती मुख पै सदा।
मौन-व्रती रहते निरर्थी झंझटों से सर्वदा ॥१ ॥
जो इच्छते उन्नति अहा! आचार और विचार की।
पुनि हैं बताते भावुकों की क्षीण-गति संसार की ॥

जो मार का मद मार के बे - मार करते चार को।
लाचार कर दुर्भावना अपना रहे पुनि चार को ॥२ ॥
जिसकी अडिग आस्था अहा ! मन सज्जनों के भा रही।
जो पिशुनता के प्रेमियों को त्रास देती है सही ॥
निन्दादि विकथा, वञ्चना , शोधी मिले न अहा ! जहां।
कारण यही उर ठानलो नहीं दम्भ तो फटके वहाँ ॥३ ॥
अलमस्त है इतिहास-लेखन कार्य में दिन-रात जो।
बिखरी हुई सामग्रियाँ संग्रह करें निज हाथ जो।
पुनि पूर्वजों का प्रेम-निधि हिय में हिलोरें ले रहा।
वृत्तान्त गौरवता भरा जिसको सदैव सुहा रहा ॥४ ॥
अध्यात्म - ज्ञानामृत भरी वानी सुहानी है घनी।
मन-मुदित भावुक भ्रमर होते पेखलो जिसको सुनी ॥
हो, क्यों न कैसी भी परिस्थिति, ध्येय पै नहिं ढावना।
होवे चिरायु गजेन्द्र-मुनि-वर, मिश्रि की यह भावना ॥५ ॥

(आचार्य श्री की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर प्रस्तुत)

(१७)

पूज्य - पञ्चक

कृषकषाय मृदुता भरी, ध्याता ध्यान धुरीन्द्र।
साम्य भाव भावित सदा, गजगणि रूप सूरीन्द्र ॥१ ॥
मद मच्छर मिथ्या परे, अतिशयवन्त यतीन्द्र।
शिव-दिव-लइल हरित रहै, गजगणि रूप सुरीन्द्र ॥२ ॥
भव्य बोध बोधित सदा, कृदामोह खवीन्द्र।
मुदामान मर्दित यदा, ददा ज्ञान गणीन्द्र ॥३ ॥
आतम तत्त्व अवलोकता, चित्तसमाधि पूर।
गणनायक सायक निबल, सबला संयम शूर ॥४ ॥
अशुभाचार निवारणे, साध्यभाव भवीन्द्र।
रूप स्वरूप साधक गणि, हस्तीमल मुनीन्द्र ॥५ ॥

(श्री रूपमुनि 'रजत', १२.८.१९८९)

(१८)

सवैया

(तर्ज - सवैया नमूं श्री अरिहंत)

नमूँ सिरि गजइन्द्र हँस मुख सौम्य चन्द्र,
केवल रूपांरा नन्द सूरत मोहन गारी है।
पंच महाव्रताचार इन्द्रिय पाँच दमन हार,
समिति गुप्ति धार किरिया उद्धारी है ॥१ ॥
क्रोध की मिटाई झाल, मान माया दीनी टाल,
लोभ आड़ी बांधी पाल, बाल ब्रह्मचारी हैं।
ज्ञानी ध्यानी श्रद्धा (इष्ट) वान छत्तीस गुणां री खान,
आपरो जो धरे ध्यान, पीड़ा जावे सारी है ॥२ ॥

(१९)

गुरु गुण महिमा

जय बोलो गजेन्द्र गुरुवर की, संघ संचालक पदवीधर की ॥टेर ॥
सती रूपा मां के नन्दन हैं, केवलचन्दजी कुल चन्दन हैं।
लघुवय में दीक्षित मुनिवर की ॥१ ॥जय. ॥
शोभाचन्द्र जैसे गुरु पाये, शीतलता चन्दन सी लाये।
प्राण रक्षा की थी फणिधर की ॥२ ॥जय. ॥
जो शासन के उजियारे हैं, श्रमणों में संत निराले हैं।
महातपो धनी योगीश्वर की ॥३ ॥जय. ॥
स्वाध्याय का नाद गुंजाया है, समभाव में धर्म बताया है।
बरसे है धार सुधारस की ॥४ ॥जय. ॥
गुणियों की महिमा गावे जो, तीर्थंकर पद पावे वो।
मुक्ति पथ के उजियागर की ॥५ ॥जय. ॥
गुरु पंच महाव्रत धारी हैं, कई भव्य आत्मा तारी हैं।
आचारनिष्ठ संकट हर की ॥६ ॥जय. ॥
सूरज सम निर्मल ज्योति ये, चन्दा सम निर्मल मोती ये।
कहे 'हीरा' धर्म दिवाकर की ॥७ ॥जय. ॥

(२०)

वन्दे मुनिवरम्

(५९ वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में)

(तर्ज - आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं....)

आओ भय्या तुम्हें कराएँ, झांकी गुरु भगवान की,
इन चरणों में नमन करो, यहाँ बहती गंगा ज्ञान की।
वन्दे मुनिवरम् वन्दे गुरुवरम् ॥टेर॥

पंच महाव्रत पालन करते पंचाचार विहारी हैं।
निग्रह कीना पंचइन्द्रिय का, समिति गुप्ति के धारी हैं।
नौ बाड़ों से ब्रह्म पालते, कैसी ममता मारी है।
क्षमा नम्रता सहज सरलता, उपशम गुण के धारी हैं।
गुण छत्तीस से शोभित होते, तेजस्वी गुणवान की ॥१॥इन.॥
वन्दे मुनिवरम्__

आठ सम्पदा के स्वामी हैं, सुनलो आज सुनाता हूँ।
स्वयं पालते और पलवाते, प्रथमाचार बताता हूँ।
सूत्र अर्थ के ज्ञाता हैं जो, ओजस्वी तन पाता हूँ।
वाक् चतुरता भाषण शैली, सुनकर मोद मनाता हूँ।
प्यासी रहती जनता इनके, उपदेशामृत पान की ॥२॥इन.॥
वन्दे मुनिवरम्__

शास्त्र वाचना निधि पांचवीं, भिन्न भिन्न समझाते हैं।
तीक्ष्ण मति ही तुच्छ वस्तु से, सार ग्रहण कर पाते हैं।
परवादी मत भंजन करते, वाद जीत कर आते हैं।
साधक को जिससे साता हो, ऐसे काम कराते हैं।
नहीं लालसा, होती इनको, मान और अपमान की ॥३॥इन.॥
वन्दे मुनिवरम्__

सामायिक स्वाध्याय करो यह, सब दुःख भंजन हारा है।
भवसागर में डूबे जन को, दिक् सूचक ध्रुव तारा है।
हर प्राणी को सभी समय में, इसका एक सहारा है।
इतनी सी शिक्षा जो धारें, बेड़ा पार हमारा है।

संकट में भी पालें आज्ञा, वीर प्रभु भगवान की ॥४ ॥
वन्दे मुनिवरम्.....
छोड़ दिया घर बार जिन्होंने , सब जग को घर माना है।
कहाँ रहेंगे कोई न जाने, इनका ठौर ठिकाना है।
दीपक की टिम टिम ज्योति क्या, सूरज को दिखलाना है।
इनका जीवन निरख निरख कर, अपना तेज बढ़ाना है।
गुरु कृपा से महिमा गाई, 'हीरा' ने भगवान की ॥५ ॥इन. ।
वन्दे मुनिवरम्.....

(२१)
धर्मचक्र के धारी

परम प्रतापी पूज्यराज ये धर्मचक्र के धारी हैं।
जैन जगत सिरताज गुरुवर शुद्ध बाल ब्रह्मचारी हैं ॥टेर ॥
त्रिभुवन में छाया सुयश, अहा शुभ कर ललाम
जगतोद्धारक आप हैं, नाम काम अभिराम।
अल्प अवस्था में भी जो आचार्य सुपद को पाते हैं
जो चरण कमल को आते हैं, वे ज्ञानसुधा पी जाते हैं ॥१ ॥
ऐसी हस्ती आप हैं, और न कहीं दिखलाय
दर्शन से इक बार ही परमभक्त बन जाय।
पाप विनाशक सत्य उपासक, सर्व गुणों के धारी हैं
नर श्रेष्ठ हुए जिस पुण्य गोद से धन्य धन्य महतारी हैं ॥२ ॥
तीर्थराज गुरुराज हैं ज्ञान गंग कर स्नान
सबको मिलता है नहीं ऐसा भाग्य महान।
इसी खुशी में आओ हिलमिल दिल के ताले खोल दो
नभ गूंज उठे गुरुराज की एक बार जय जय बोल दो ॥३ ॥

(२२)
कहाँ चले गए गुरुवर प्यारे

(तर्ज - उठ जाग मुसाफिर...)

स्वाध्याय की बीन बजा कर के, कहाँ चले गए गुरुवर प्यारे,
भक्तों के मन को मोहित कर, कहाँ चले गये.. ॥टेर ॥

जब जन्म-जन्म का पुण्य फला, श्री चरणों का सान्निध्य मिला,
सत्पथ पर थोड़े कदम चला, कहाँ चले गए...
शंकाएँ हों, परीषह आते, सन्मार्ग से मन को मचलाते,
तब समाधान हम थे पाते, कहाँ चले गए...
नित सामायिक स्वाध्याय करो, जीवन में मंगल मोद भरो,
यह धर्म का मर्म बताकर के, कहाँ चले गए...
नरनारी दौड़े आते थे, मानों कोई नवनिधि पाते थे,
अनुपम गुरु मंत्र सुना करके, कहाँ चले गए...
संथारा तेला सहित लिया फिर पंडित मरण का वरण किया,
एक नया बना इतिहास यहाँ, कहाँ चले गए...
हम मोक्ष को लक्ष्य बना पावें, सुदृढ कदमों से बढ़ते जावें,
है यही भावना 'गौतम' की, कहाँ चले गए...

(२३)

गुरु की दिव्य-साधना

(तर्ज - बड़ी देर भई नन्दलाला....)

गुरु 'हस्ती' दीन दयाला, जीवन था भव्य निराला
दिव्य साधना से जिनके अन्तर में भया उजाला रे ॥टेर ॥
कभी न उलझे मोह-माया में, भौतिकता से दूर रहे
लघुवय में ही सन्त बने और तप संयम में शूर रहे।
बीस वर्ष की अल्पायु में , पद आचार्य संभाला रे ॥गुरु ॥
कोई न खाली हाथ लौटता द्वार आपके जो आता
सामायिक स्वाध्याय नियम के कुछ मोती वह पा जाता।
कई दुःखी व्यसनी थे उनको व्यसन मुक्त कर डाला रे ॥गुरु ॥
कहीं मिटाई फूट कहीं पर जीवों के बलिदान रुके,
कहीं किया निर्भय लोगों को, कहीं विरोधी आन झुके।
कहीं जुड़ी विद्वत् परिषद् तो कहीं धार्मिक शाला रे ॥गुरु ॥
जिन शासन की रक्षा के हित, स्वाध्यायी तैयार किए
फिर से जागी नई चेतना, कई ऐसे उपकार हुए।
पल-पल याद करेगी जनता, कैसा जादू डाला रे ॥गुरु ॥

अन्त समय निमाज में जाकर, अपना वचन निभाया था
तेला कर संथारे का इक, नव इतिहास बनाया था।
जैन धर्म की शान बढ़ी मुनि 'गौतम' जपता माला रे ॥गुरु ॥

(२४)

दुनिया में नाम था

(तर्ज - सौ साल पहले....)

गुरुवर हस्ती का, दुनिया में नाम था, दुनिया में नाम था।
आज भी है और कल भी रहेगा।
क्या क्या सुनायें, वो जन-जन का राम था, जन-जन का राम था।
आज भी है और कल भी रहेगा ॥टेर ॥
वो आए थे सच्चे मसीहा महावीर के बनकर के
अनमोल दिये मोती हमें आंगन से चुनकर के
स्वाध्याय सामायिक उनका पैगाम था, उनका पैगाम था ॥१ ॥आज भी ॥
हमें शब्द नहीं मिलते जिनसे गुणगान करें उनका,
चमका जो दिवाकर सा तो क्या सम्मान करें उनका
गुणगान उनका घर-घर सुबह और शाम था, सुबह और शाम था ॥२ ॥आज भी ॥
कई वर्षों में ऐसा , कभी कोई सन्त रत्न होता है
उपकार याद जिसके करे तो युवा बाल वृद्ध रोता है,
विचरे जहाँ-जहाँ धन्य वह मुकाम था, धन्य वह मुकाम था ॥३ ॥आज भी ॥
गुरु दर्शन पाने को भक्त दौड़ के आते थे
तीरथ मेला रहता जहाँ कहीं आप चले जाते थे
'गौतम' की आस्था का वही एक धाम था, वही एक धाम था ॥४ ॥आज भी ॥

(२५)

प्रतिदिन करो

(तर्ज - सिद्ध अरिहन्त में मन रमाते चलो...)

हस्ती गुरुवर के उपदेश दिल में धरो।
सामायिक और स्वाध्याय प्रतिदिन करो ॥टेर ॥

विपुल वैभव न परिवार संग जायेगा
मनुज स्वाध्याय से ही सुपथ पायेगा

सामायिक से हृदय की विषमता हरो ॥सामा. ॥१ ॥
जगत-जंजाल में जिन्दगी जा रही
विकट अंतिम घड़ी नित निकट आ रही
भटक अज्ञान में बाल ज्यों मत मरो ॥सामा. ॥२ ॥
नेत्र हैं धन्य जो संत दर्शन करे
जीभ है धन्य वाणी से अमृत झरे
कान से शास्त्र सुन, ज्ञान का घट भरो ॥सामा. ॥३ ॥
'ज्ञान आत्म का गुण है' उन्होंने कहा
श्रद्धा का रंग बिन ज्ञान के कब रहा
करके स्वाध्याय श्रद्धा बहुत दृढ करो ॥सामा. ॥४ ॥
आचरण के बिना ज्ञान सूना है ज्यों
आचरण भी अधूरा है बिन ज्ञान त्यों
शुद्ध कर आचरण ज्ञान, भव जल तरो ॥सामा. ॥५ ॥
कैसा अनमोल 'मोती' ये नर तन मिला
अब तो आत्मा को 'गौतम' परम पद दिला
त्याग दो दुर्व्यसन कर्म-रिपु से डरो ॥सामा. ॥६ ॥

(२६)

गुरु हस्ती ने अलख जगाया

(तर्ज - बड़ी देर भई नन्दलाला....)

गुरु हस्ती ने समझाया, स्वाध्याय करो फरमाया
गांव-गांव घर-घर सामायिक, ऐसा अलख जगाया रे ॥टेर ॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र तप यही मोक्ष का मार्ग कहा,कही
है स्वाध्याय ज्ञान-दर्शन तो, सामायिक तप चरित महा, सामा.
गहरा मन्थन कर आगम का, सार तत्त्व बतलाया रे ॥१ ॥
चाहें अगर समाज राष्ट्र गुण गरिमा से सम्पन्न बने, गरिमा
चाहे यदि संकट के बादल, छाएं नहीं चहुं ओर घने, छाएँ
सबसे सरल मार्ग सामायिक, अरु स्वाध्याय सुझाया रे ॥२ ॥
कभी न भूलेंगे 'गौतम' इन गुरुवर के उपकारों को, गुरु
अन्तर्मन में झांक हटावें मन में भरे विकारों को, मन में
जिनशासन मोती चमकाने 'हीरा' पाट बिठाया रे ॥३ ॥

(२७)

तू भी गुरु सम बन जासी

(तर्जः- हरि भज हरि भज प्राणीड़ा)

गुरु भज, गुरु भज, गुरु भज, मनवा, गुरु भज्यां गुरु धन पासी।
गुरु ने ध्याकर गुरु ने पाकर, तू भी गुरु सम बन जासी ॥टेर॥

सिद्ध प्रभु हैं सिद्ध शिला पर, कुण देख्या देखण जासी ।
गुरु चरणन की शरण लेय तो, सिद्ध शिला दौड़ी आसी ॥१॥
महाविदेह अरिहन्त विराजे, इण भव तो नहीं मिल पासी ।
गुरुदेव की कृपा हुई तो, तू खुद अरिहन्त बन जासी ॥२॥
प्रभु के रुठ्या गुरु शरण है, झट सुमार्ग बतलासी ।
गुरु रुठ्या नहीं ठौर जगत में, गुरु तूष्यां प्रभु मिल जासी ॥३॥
गुरु तात गुरु भ्रात गुरु ही देव, ओम गुरु जो ध्यासी ।
इण भव रिद्धि सिद्धि पग पग पासी, पर भव शिव सुख बरतासी ॥४॥
गुरु हस्ती मिलिया पुण्य योग, यो अवसर फिर कद आसी ।
'जीत' पकड़ले चरण गुरु का बिन तारियां नहीं तिर पासी ॥५॥

(२८)

परम दयालु गुरु महिमा

(तर्ज : - चुप-चुप खड़े हो)

तारण तिरण सद्गुण के निधान हैं,
परम दयालु पूज्य गुरु गुणखान हैं ॥टेर॥
सती रूपां माता देखो धन्य धन्य हो गई।
रतनों की राशि हमें खुशी खुशी दे गई॥
ओस वंश केवलचन्द जी तात बुद्धिमान हैं ॥१॥परम॥
नाम है गजेन्द्र प्यारा, चित्त को लुभावना,
लघुवय दीक्षा फिर, पूज्य पद पावना
शोभाचन्द्र गुरु मिले ज्ञान के निधान हैं ॥२॥परम॥
बाल ब्रह्मचारी तेरी शान ही निराली है,
प्रवचन शैली, अद्भुत रस वाली है
संघ के प्रणेता, जिन शासन की शान हैं ॥३॥परम॥

श्री पूज्य राज आप जहाँ कहीं जाते हैं,
जंगल में मंगल का दरश दिखाते हैं
जहाँ कहीं सुनो आज कीर्ति महान है ॥४ ॥परम ॥
चारों संघ मिल आज विनति सुना रहा
ज्ञान के प्रकाश हेतु दिल तड़फा रहा
आशीर्वाद मिले स्वामी होवे कल्याण है ॥५ ॥परम ॥

(२९)

श्रद्धा के सुमन

(तर्ज -महावीर तुम्हारे चरणों में)

आचार्य पूज्य के चरणों में श्रद्धा के कुसुम चढ़ायें हम ।
आदर्श आपके अनुपम से, अब जीवन सफल बनायें हम ॥टेर ॥

गुरु पंच महाव्रत धारी हैं, अरु पंचाचार विहारी हैं ।
पंच समिति त्रिगुप्ति धारी हैं, वंदन विधिवत् कर पायें हम ॥१ ॥
धन्य बाल ब्रह्मचारी ज्ञानी, तप मौन साधना महाध्यानी ।
जिन धर्म के रसिया अगवानी, नहीं वर्णन गुण कर पायें हम ॥२ ॥
'केवल' के नन्द दुलारे हो, शिव पथ के आप सितारे हो ।
सती रूप कंवर के लाल हस्ती, जय विजय आपकी गायें हम ॥३ ॥
ओ रत्न वंश शासक नायक, ओ धर्म धुरन्धर निर्यामक ।
आतम गुण में अहनिश रमते, यह भाव वंदना करते हम ॥४ ॥
उपदेशामृत जो धारेंगे, भवसागर से तिर जायेंगे ।
नरकादि दुःख नहीं पायेंगे, शिव साधक समकित पायें हम ॥५ ॥
स्वाध्याय करो गुरुराज सदा, कहते भव बन्धन कट जायें ।
कहे 'राज मल्ल' इस जीवन में, शासन सेवा कर पायें हम ॥६ ॥

(३०)

जैन जगत के तारे

(तर्ज - रिमझिम बरसे बादरवा....)

चम चम चमके भारत में, जैन जगत के तारे।
गुरु हस्तीमल्ल जी प्यारे, गुरु हस्तीमल्ल जी प्यारे ॥टेर ॥

सभी दिशा में सुयश जिन्हों का छाया है२
अपरंपार जिन्हों की देखो माया है२
ज्ञान प्रकाश दिखाकर के, मोह अंधियारा टारे ॥गुरु_
जन्म शहर पीपाड़ नगर में पाया है२
धन्य २ सती रूपकंवर ने जाया है२
माँ की कूख दीपाई रे , जग में प्रकटे सितारे ॥गुरु_
संयम ले दश वर्ष में ज्ञान बढ़ाया है२
शोभाचार्य के शिष्य मेरे मन भाया है२
आतम गुण विकसाया रे, महिमा पूजा से न्यारे ॥गुरु_
दक्षिण देश सतारा नगरी पावनी२
नाग की जीवन रक्षा की मन भावनी२
दुःख सह शिक्षा देवे रे, कोई न किसी को मारे ॥गुरु_
नित्य नये उपदेश सुनाया करते हैं२
वचनों में अमृत के झरने झरते हैं२
पी लो प्याला भर भर के ज्ञान का अमृत झारे ॥गुरु_
दो हजार तेरह में मन की आश फली२
'मैना सुन्दर' आज निकाली मन रली२
निशदिन तुमको ध्याऊँ मैं, पूरो मनोरथ सारे ॥गुरु_

(३१)

गुरुदेव-वन्दना

(तर्ज - जय बोलो महावीर स्वामी की....)

वन्दन करते हम पूज्यवर को, संघ नायक धर्म दिवाकर को ॥टेर॥

हस्ती की शक्ति निराली है, मुख पर सूरज सी लाली है ।
चमकीले ज्ञान प्रभाकर को ॥१॥
कलयुग में सतयुग लाते हैं, कांटों में फूल बिछाते हैं ।
सुशीतल शान्ति सुधाकर को ॥२॥
गुरुवर की महिमा भारी है, ये अखण्ड बाल ब्रह्मचारी हैं ।
ज्योतिर्मय गुण रत्नाकर को ॥३॥
अमृत सी मीठी वाणी है, जन-जन की जो कल्याणी है ।

धन्य धन्य है कल्प तरुवर को ॥४॥

सामायिक पाठ पढाते हैं, स्वाध्याय संदेश सुनाते हैं ।
महती करुणा के सागर को ॥५॥

श्री लक्ष्मी माणक ज्ञानी हैं, अनमोल हीरा व्याख्यानी हैं ।
सब पूज्य संत अरु सतीवर को ॥६॥

हम ग्राम नगर से आये हैं, दर्शन कर सुख पाये हैं ।
पावन कर दो हमारे पुर को ॥७॥

(३२)

पूज्य हस्ती मुनि गुण गाओ

(५५ वीं जन्म - जयन्ती पर श्री हीरामुनिजी द्वारा रचित)

(तर्ज - यह पर्व पर्युषण आया....)

पूज्य हस्ती मुनि गुण गाओ, यह जन्म जयन्ति मनाओ जी ॥टेर॥

लघु वय में कारज सारया , अजमेर बण्या अणगारा।
रूपा नन्द ने नित्य ध्याओ जी ॥१॥

जोधाणे पूज्य पद पायो, संघ चारों के मन भायो।
गणिवर बन धर्म दीपायो जी ॥२॥

है जप तप मांही शूरा, आचार निष्ठ गम्भीरा।
वन्दन कर कर्म खपाओ जी ॥३॥

शुद्ध मन से पूज्य गुण गाओ, दिन उगत ध्यान लगाओ।
शान्ति अरु समता पाओ जी ॥४॥

जो चरण शरण में आवे, दुःख शोक रोग मिट जावे।
पगरज भी गर पाओ जी ॥५॥

स्वाध्याय सामायिक कीजे, मुक्ति का मार्ग ग्रहीजे।
जीवन में धर्म कमाओ जी ॥६॥

सेवक ने महिमा गाई, तप- त्याग करो भाई बाई।
कर्मों का फंद छुड़ाओ जी ॥७॥

(३३)

चारित्रवान गुरुदेव की महिमा

(तर्ज-देखो रे आदेश्वर बाबा.....)

देखो देखो गुरु गजेन्द्र को, कैसा संयम धारा है ॥टेर ॥
केवलचन्दजी के पुत्र कहाये, रूपा मां के दुलारा है।
धन वैभव और कुटुम्ब कबीला, लागा विष सम खारा है ॥१ ॥
हो इतिहास के तुम निर्माता, तप गुण तुमको प्यारा है।
ज्ञान ध्यान में रमण करत हो, क्रोध मान को मारा है ॥२ ॥
मुख मण्डल की छटा निराली, हंसमुख सौम्य अपारा है।
पीड़ा जावे दर्शन करके, हर्षित भविजन सारा है ॥३ ॥
भक्त जनों की भीड़ लगी है मस्तक चरणों में डारा है।
वाणी सुनते व्रत आचरते, करते सफल जमारा है ॥४ ॥
जीवो और जीने दो सबको, मंत्र ही तारण हारा है।
अभयदान सम धर्म जगत में, नहीं अन्य श्रेयकारा है ॥५ ॥
समयं गोयम मा पमायए, ये आदर्श तिहारा है।
प्रतिपल कीमती वृथा न खोओ, तो उतरो भव पारा है ॥६ ॥
वैशाखी पूनम है आई, गाये गुण सुखकारा है।
चरण कमल रज, हीरा शुभ के, मन में हर्ष अपारा है ॥७ ॥

(३४)

गणि गजेन्द्र गुणगान

(तर्ज - तुमको लाखों प्रणाम....)

जग तारक गुरुदेव तुमको लाखों प्रणाम ॥टेर ॥
वन्दन है नित्यमेव- तुमको...

मन है स्वच्छ गंग की धारा, जीत लिया है आलम सारा,
काटे कर्म नित्यमेव -तुमको...

हस्ती पूज्य है दिव्य सितारे, यथा नामवत् गुण के धारे,
अप्रमाद की टेव -तुमको...

नरतन मुनिपन और है नेता, परम विचक्षण अद्भुत वेत्ता,
अति दुर्लभ है देव -तुमको...

मन अडोल है मेरु जैसा, देखा जग में त्यागी ऐसा,
सेवे सुर नर देव- तुमको...
वीर वाणी घर घर में फैले, प्रभु भक्ति के नित हो मैले,
शिक्षा है अहरेव -तुमको...
पल पल क्षण व्यर्थ न खोओ, बीज धर्म के घर-घर बोओ,
करो ज्ञान स्वयमेव - तुमको ...
नगर भरतपुर विचरत आया, दो हजार बीस में गाया,
जुग जुग जीवो गुरुदेव -तुमको...

(३५)

गुरु गुण महिमा

(तर्ज - चांदनी ढल जायेगी...)

गुरु हस्ती गुणवान हैं जैन जगत की शान हैं,
बाल ब्रह्मचारी रे, वन्दना हमारी रे ॥टेर॥
केवलजी के बाल हैं, रूपां सती के लाल हैं,
धन्य महतारी रे, वन्दना हमारी रे ॥१॥गुरु॥
देश मारवाड़ में, शहर पीपाड़ में,
हुए गुण धारी रे, वन्दना हमारी रे ॥२॥गुरु॥
बाला पन आया है, शोभा गुरुवर पाया है।
महाव्रतधारी रे, वन्दना हमारी रे ॥३॥गुरु॥
गुरुदेव ज्ञानी हैं, अमृत सी वाणी है,
सुनो नर नारी रे, वन्दना हमारी रे ॥५॥गुरु॥
सामायिक व्रत पाल लो, स्वाध्याय का लाभ लो,
गिरा ये उच्चारी रे, वन्दना हमारी रे ॥६॥गुरु॥
'गोविन्द' को तारोगे, पार भी उतारोगे,
आशा यही भारी रे, वन्दना हमारी रे ॥७॥गुरु॥

(३६)

गुणरत्नाकर की गौरवगाथा

(तर्ज - जय बोलो महावीरस्वामी की....)

जय बोलो हस्ती गुरुवर की,

जिन शासन दिव्य दिवाकर की ॥टेर॥
पीपाड़ नगर में जन्म लिया
रूपा - केवल को धन्य किया
बोहरा परिवार प्रभाकर की ॥जय॥
लघु वय में ही जग छोड़ दिया
मन को संयम से जोड़ लिया
'शोभा' के गुण रत्नाकर की ॥जय॥
आगम का गहरा ज्ञान किया
विद्वानों को बहुमान दिया
शीतलता थी सुर तरुवर की ॥जय॥
सामायिक लो स्वाध्याय करो
जीवन में दिव्य प्रकाश भरो
जन-जन में प्रेरणा पूज्यवर की ॥जय॥
घर-घर में गुणगाथा होती
अर्पित हैं श्रद्धा के मोती
मुनि "गौतम" करुणा सागर की ॥जय॥

(३७)

तेरी वन्दना करें

(दिनांक २१.४.९१ को आचार्य भगवन्त के शरीर को वैकुण्ठी (मांडी) में बरन्डे में रखते समय गाया गया गीत)

माँ रूपा के लाल तेरी वन्दना करें
केवल कुल की शान तेरी वंदना करें ॥टेर॥

दुःख का मारा आया कोई सुख उसे मिला,
लाया झोली खाली जो भी भरके वह चला,
ध्यान मग्न ज्ञान बाँटा, साधना करें ॥१ ॥वन्दना करें॥
प्रभुजी अधीन आपके, पावन दयालु दीन,
हुए ज्योत में मिला के ज्योत संथारा में लीन,
मोक्ष में ठण्डी नजर भक्तों पर धरें ॥२ ॥वन्दना करें॥
पुण्य भाग्यशाली वह नगरी निमाज थी,

प्रभु में बसे स्वयं प्रभु यहाँ तीर्थ लहर थी,
रहे करोड़ों वर्ष नाम, कामना करें ॥३ ॥वन्दना करें ॥
हम अन्त में झुकाते सिर बिछाके दो नयन,
खुद आये करने नाग, इन्द्रदेव भी नयन,
नित दर्श देना कमल मधुर चाहना करे ॥४ ॥वन्दना करें ॥

(३८)

हस्ती नटवर नागरियो

(तर्ज - चाँदी की दीवार न तोड़ी......)

माँ रूपा री कोख सराई केवल कुल रो टाबरियो।
नर सूं नारायण बण कर चाल्यो हस्ती नटवर नागरियो ॥टेर ॥
जन्मे शहर पीपाड़ में देवी - देव नहलायो हुलरायो,
घर-घर गीत बधाई सुणकर मां रो मनड़ो हुलसायो,
देख नक्षत्र पंडित मुस्कायो बालक बण सी सांवरियो ॥१ ॥
बाल उम्र वय दस में बणियो शोभा गुरु रो बावरियो,
गुरु सेवा कर विनय भाव सूं बणियो ज्ञान रो सागरियो,
पायो आचार्य पद बीसवें वर्ष बणियो संघ रो ठाकरियो ॥२ ॥
दीर्घकाल में भारत भू पर ग्राम नगर विचरण करियो,
नगर बैराठ संथारा मांही नाग प्रभु ने नमन करियो,
आगम रहस्य रो ज्ञाता बणियो, जीव सुशिव म्हारो सांवरियो ॥३ ॥
पाली अन्तिम जन्म दिवस कर आया, नीमाज गुरु मन जंचियो,
उत्कृष्ट भाव संथारो लीनो तब आकर प्रभु में प्रभु बसियो,
धन्य भाग्य निमाज शहर रा, कर गयो म्हारो सांवरियो ॥४ ॥
'हीरो' परख आचार्य बणाकर, उपाध्याय पद 'मान' धरियो,
तब 'नाग' देव और 'इन्द्र' देव आ, चरणों में प्रभु नमन करियो,
'मधुर' थारे चरणों रो चाकर, पार कीजो भव सागरियो ॥५ ॥

(३९)

जय बोलो हस्ती पूज्यवर की

(तर्ज - जयबोलो महावीर स्वामी की)

जय बोलो हस्ती पूज्यवर की,
पूज्य शोभाचन्दजी के पट्टधर की ॥टेर ॥

माता रूपा के नन्दन हैं,
केवलचन्द जी कुल चन्दन हैं।
ब्रह्मचारी बाल यतीश्वर की, जय बोलो ॥१॥
बहु सूत्री सूत्र विचारक हैं,
समभाव के शुद्ध प्रचारक हैं,
इस परम शांत योगीश्वर की, जय बोलो ॥२॥
शिष्य सब ही आज्ञाकारी हैं,
विद्वान तेज तप धारी है,
महिमामय जगत हितेश्वर की, जय बोलो ॥३॥
स्वाध्याय संघ के सर्जक हो,
जन जन में ज्ञान गुण वर्धक हो,
जिन शासन धर्म दिवाकर की, जय बोलो ॥४॥
'गोविन्द' अरज गुरुवर करता,
श्रद्धा के सुमन अर्पण करता,
विश्वास है आस फले मन की, जय बोलो ॥५॥

ज्ञान के निधान हैं

उदीयमान सूर्य तुल्य सौम्य तेज पुंज को ।
महान तीन रत्न से खिले हुये निकुंज को ॥
विशाल भाल से सदैव जो प्रकाशमान हैं ।
नमो गणी गजेन्द्र जो कि ज्ञान के निधान हैं ॥१॥
पवित्र भू पीपाड के प्रदीप्त पूर्ण चन्द्र हैं ।
गजेन्द्र भव्य प्राणियों के प्राण औ मुनीन्द्र हैं ॥
टपक् टपक् टपक् रही , सुधा भरी गिरा सदा ।
सुमंत्र मुग्ध हो रहे, गणीन्द्र से सभी मुदा ॥२॥
मुखारविन्द ओजपुंज इंदु सा चकासता ।
सहस्र भानु तुल्य दिव्य तेज है प्रभासता ॥
दयार्द्रभाव मात्र से विनष्ट कष्ट हो रहे ।

गजेन्द्र के सुदर्श से ही, पाप नष्ट हो रहे ॥३॥
सुमेरु सी अडोलता, समुद्र सी अगाधता ।
सुपाद पद्मरेख ही बता रही महानता ॥
अनंत हैं असीम हैं, गुणानुवाद आपके ।
गजेन्द्र नाम जप से ढहें पहाड़ पाप के ॥४॥
जिनेश धर्मसंघ के धुराग्रणी महारथी ।
सुभाग्य से हो संघ को मिले महान सारथी ॥
बढा रहे सुसंघ को मुक्ति पथ पै सदा ।
प्रणाम है गजेन्द्र देव कोटि कोटिशः मुदा ॥५॥
विभाव से स्वभाव में रमा रहे विचार को ।
सुब्रह्म की हुताश से जला रहे विकार को ॥
सुज्ञान ध्यान में समस्त, काल को लगा रहे ।
सुज्ञान के प्रकाश से तमान्ध को भगा रहे ॥६॥
प्रभो तवैव नाम से, कठोर कर्म चूर हों ।
पढें तथा स्मरें सदा, समस्त दुःख दूर हों ॥
कृपा कटाक्ष से वरें विमुक्ति की वधू वरा ।
गजेन्द्र नाम जाप से सुरालया बने छटा ॥७॥
सुशंख नाद पूर पूर शान्तियुक्त क्रान्ति के ।
जगा दिया समग्र राष्ट्र और मसीह शांति के ॥
धरा धरेन्द्र मेरु से महोच्च पूज्य हस्ति भो ।
प्रगाढ नौ प्रकार की सभक्ति से प्रशस्ति हो ॥८॥
'धनंजय' गजाग्रसिंह पी रहे यशोसुधा ।
गजेन्द्रवर्य हस्ति की सुभक्ति से भावतः मुदा ॥
जिनेन्द्र औ गजेन्द्र के प्रति पुनीत आसता ।
मिले हमें हठात् मिटे दुरन्त कर्म दासता ॥९॥

■

चतुर्थ खण्ड

कृतित्व खण्ड

प्रस्तुत खण्ड के प्रथम अध्याय 'आचार्यप्रवर की साहित्य–साधना' के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आप उत्तम कोटि के तत्त्वान्वेषी शोधक, प्रज्ञाशील, मनीषी, हृदयस्पर्शी प्रवचनकार, मर्मप्रकाशक आगम व्याख्याकार, मौलिक चिन्तक और जैन इतिहास के महान् प्रस्तोता थे।

द्वितीय अध्याय 'काव्य–साधना' में संकलित पदों, भजनों एवं प्रार्थनाओं के रस में निमग्न होने पर यह सहज ही बोध होता है कि आचार्यप्रवर का काव्यपक्ष कितना भावपूर्ण, सुग्राह्य, सरस एवं प्रभावी था। आपने अध्यात्म, सामायिक, स्वाध्याय, देहात्म–भेद, समाज–एकता, कुव्यसन–त्याग, गुरु–भक्ति, सेवा, महिला शिक्षा, षट् कर्माराधन आदि विविध विषयों पर भावभरे पदों एवं भजनों की रचना कर जन–जन को जागृत करने का प्रयास किया है।

युवावय में 'मेरे अन्तर भया प्रकाश', 'मैं हूँ उस नगरी का भूप', समझो चेतन जी अपना रूप', 'सतगुरु ने यह बोध बताया' आदि पद आपको उच्चकोटि के अध्यात्मयोगी की श्रेणी में प्रतिष्ठित करते हैं।

आचार्यप्रवर की साहित्य-साधना

(आचार्यप्रवर की कृतियों का परिचय)

आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. आगमनिष्ठ चिन्तक एवं उच्च कोटि के साधक सन्त थे। आपके साधनानिष्ठ जीवन में ज्ञान एवं क्रिया का अद्भुत समन्वय था। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' के इस अद्भुत साधक ने समाज में श्रुतज्ञान के प्रति विशेष जागृति उत्पन्न की। आपका चिन्तन था कि ज्ञान का सार क्रिया है एवं क्रिया को जब ज्ञान की आंख मिलती है तभी वह तेजस्वी बनती है। श्रुतज्ञान के प्रसार के लिये आपने एक ओर स्वाध्याय संघ की संगठना एवं ज्ञान-भण्डारों की स्थापना की प्रेरणा कर ज्ञान के प्रति जन-जागरण की अलख जगाई, तो दूसरी ओर आगम-व्याख्या, आध्यात्मिक व शिक्षा-संस्कारप्रदायी भजनों एवं अपने जीवन निर्माणकारी प्रेरक प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से माँ भारती के भण्डार को समृद्ध करने में विशिष्ट योगदान किया।

आप स्थानकवासी परम्परा की जिस रत्नसम्प्रदाय के तेजस्वी आचार्य थे, उसमें रचनाधर्मिता की सुदीर्घ परम्परा रही है। पूज्य श्री कुशलो जी म.सा. के परमाराध्य गुरुवर्य तपोधनी आचार्य श्री भूधरजी म.सा. उच्च कोटि के भक्त कवि थे। 'वे गुरु मेरे उर बसो' प्रभृति उनकी रचनाएँ गागर में सागर सम भावप्रवण हैं। पूज्य श्री कुशलो जी म.सा. के गुरु भ्राता पूज्य श्री जयमलजी म.सा. उच्च कोटि के साधक रचनाकार थे। यह परम्परा जिन महाविभूति के नाम से प्रसिद्ध है, वे पूज्यपाद आचार्य श्री रत्नचन्दजी म.सा. अत्युच्च कोटि के फक्कड़ कवि थे। उनके द्वारा रचित 'आचार छत्तीसी' आदि अनेक रचनाएँ साधकों का पथ प्रशस्त कर उन्हें संयम के सच्चे स्वरूप व मानव देह धारण के लक्ष्य का भान कराती हैं। उनकी रचनाएँ 'रतनचन्द्र पद मुक्तावली' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं तो उनके चाचा गुरु पूज्य श्री दुर्गादास जी महाराज की रचनाएँ 'दुर्गादास पदावली' के रूप में प्रकाशित हुई हैं। पूज्य आचार्य श्री रतनचन्दजी महाराज के पट्टधर आचार्य श्री हम्मीरमलजी महाराज के उपदेश व साधनामय व्यक्तित्व से प्रेरित हो प्रज्ञाचक्षु भक्त कविश्रेष्ठ श्री विनयचन्द जी कुम्भट ने 'विनयचन्द चौबीसी' जैसी महास्तुति की रचना की है। पूज्य आचार्य श्री रतनचन्दजी महाराज के सुशिष्य श्री हिम्मतरामजी महाराज, उनकी सुशिष्या महासती श्री जड़ावजी महाराज आदि उच्च कोटि के काव्य रचनाकार हुए हैं। आगे चलकर वादीमर्दन कनीराम जी महाराज ने 'सिद्धान्तसार' जैसे उच्च कोटि के सैद्धान्तिक ग्रन्थ के माध्यम से वैचारिक द्वन्द्व में फंसे कई सन्तों को भी स्थानकवासी परम्परा के मूल सिद्धान्तों में दृढ किया। श्री सुजानमलजी महाराज की रचनाएँ 'सुजान पद वाटिका' के रूप में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त भी परम्परा में अनेक सन्त कवि एवं साध्वी कवयित्रियां हुई हैं, जिनकी रचनाएँ भक्त-हृदयों को छू लेती हैं।

युगमनीषी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. ने उत्कृष्ट संयम-साधना के साथ-साथ श्रुत साधना का गौरव उपस्थित किया। पूज्यप्रवर के लिये साहित्य-रचना प्रचार का नहीं, वरन् आचार मार्ग को परिपुष्ट करने, ज्ञानातिचार से बचने व भव-दुःख से संतप्त जन-जन तक वीरवाणी को पहुँचाने का माध्यम थी। आपकी रचनाओं में जीवन-निर्माण, संस्कारवपन एवं आचार निष्ठा का ही बोध है। आपका लक्ष्य अपने आपको अत्युच्च कोटि के साहित्यसर्जक के रूप

में प्रतिष्ठित करने का अथवा लोकैषणा का नहीं, वरन् जिनवाणी के पावन प्रवाह को आर्यधरा के कोने-कोने में पहुंचाने का था। पर जब उन्हें प्रतीत हुआ कि आज का साधक आत्मोत्थान का अपना मूल लक्ष्य भूल कर मात्र साहित्य रचना एवं अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठापित करने की ओर अग्रसर हो रहा है तो उन्होंने इससे विराम लेने में भी कोई संकोच नहीं किया। साधना के पुरोधा इस महापुरुष ने जो कुछ अपनी मितवाणी द्वारा उच्चरित किया, जो कुछ अपनी कलम से आबद्ध किया, वही उच्च कोटि का साहित्य बन गया। ध्यान, साधना एवं आत्मिक स्वरूप के चिन्तन से जो नवनीत प्राप्त हुआ, वह आपकी काव्य रचना के माध्यम से प्रकट हुआ। प्राच्य संस्कृति के प्रति गौरव एवं श्रद्धा के धनी आचार्यप्रवर ने इतिहास का आलोड़न कर इतिहास की अनेक विस्मृत कड़ियों को ढूंढा, अनेक विसंगतियों का समाधान कर इतिहास का मौलिक स्वरूप प्रस्तुत कर संघ को अतीत के गौरव का भान कराते हुए अभिनव भविष्य की संरचना का आह्वान किया। बहुमुखी प्रतिभापुञ्ज आचार्यदेव की रचनाएँ मुख्यत: पाँच रूपों में विभक्त की जा सकती हैं – १. आगमिक व्याख्या साहित्य २. प्रवचन साहित्य ३. इतिहास ४. काव्य-कथा ५. अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध रचनाएँ।

(अ) आगमिक व्याख्या-साहित्य

आगम-मनीषी आचार्यप्रवर का आत्म-जीवन तो आगम-दीप से आलोकित था ही, किन्तु वे उसका प्रकाश जन-जन तक पहुँचाने हेतु भी सन्नद्ध रहे। आचार्य श्री की दृष्टि आगम-ज्ञान को शुद्ध एवं सुगम रूप में सम्प्रेषित करने की रही। यही कारण है कि आचार्यप्रवर ने पूर्ण तन्मयता से आगमों की प्रतियों का संशोधन भी किया। उन्हें संस्कृत छाया, हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयपूर्वक शब्दार्थ एवं भावार्थ से समन्वित किया। पद्यानुवाद का प्रयोग आचार्यप्रवर की मौलिक दृष्टि का परिचायक है।

सूत्र के प्रकाशन कार्य को साध्वाचार की दृष्टि से सदोष मानकर भी आचार्यप्रवर ने तीन उद्देश्यों से इस कार्य में सहभागिता स्वीकार की। नन्दीसूत्र की प्रस्तावना में स्वयं आचार्य श्री ने इस संबध में लिखा है - "पुस्तक मुद्रण के कार्य में स्थानान्तर से ग्रन्थ-संग्रह , सम्मत्यर्थ पत्र-प्रेषण, प्रूफ-संशोधन व सम्मति प्रदान करना आदि कार्य करने या कराने पड़ते हैं। इस बात को जानते हुए भी मैंने जो आगम-सेवा के लिये इस अंशत: सदोष कार्य को अपवाद रूप से किया, इसका उद्देश्य निम्न प्रकार है–

१. साधुमार्गीय समाज में विशिष्टतर साहित्य का निर्माण हो।

२. मूल आगमों के अन्वेषणपूर्ण शुद्ध संस्करण की पूर्ति हो और समाज को अन्य विद्वान् मुनिवर भी इस दिशा में आगे लावें।

३. सूत्रार्थ का पाठ पढ़कर जनता ज्ञानातिचार से बचे।

इन तीनों में से यदि एक भी उद्देश्य पूर्ण हुआ तो मैं अपने दोषों का प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ समझूँगा।"

आचार्यप्रवर कृत यह उल्लेख उनकी आगम-निष्ठा को उजागर करता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १९८० के दशक में आचार्य श्री ने लेखन-प्रकाशन के कार्य से विराम ले लिया था। आचार्यप्रवर द्वारा की गयी आगमिक व्याख्याएँ निम्नाङ्कित हैं-

(१) दशवैकालिक सूत्र (अवचूरि एवं भाषा टीका सहित)

श्रमणाचार की दृष्टि से आर्य शय्यम्भव द्वारा रचित दशवैकालिक सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आगम है। आचार्य श्री का जब संवत् १९९६ (सन् १९३९ ई.) में सातारा (महाराष्ट्र) में चातुर्मास था तब 'दशवैकालिक सूत्र' का प्रकाशन संशोधित मूलपाठ, संस्कृत छाया, अवचूरि एवं आचार्य श्री द्वारा लिखित 'सौभाग्य चन्द्रिका' नामक हिन्दी भाषा टीका के साथ हुआ। कार्य अतीव कठिन एवं श्रमापेक्षित था। सूत्र का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन स्व. श्रेष्ठिचन्दन जैनागम ग्रन्थमाला के अन्तर्गत मोतीलाल जी मुथा के द्वारा शास्त्रोद्धार योजना में कराया गया। ग्रन्थ-प्रकाशन के समय आचार्य श्री मात्र २९ वर्ष के थे और आगम-व्याख्या के क्षेत्र में उनका यह प्रथम कार्य था। भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट पूना में उपलब्ध अवचूरि सहित प्रति (संवत् १५१५) को आधार बनाकर अवचूरि की अन्य तीन प्रतियों से मिलान कर पाठ संशोधन का कार्य श्रमसाध्य था। मूल प्राकृत पाठ की संस्कृत छाया एवं हिन्दी अनुवाद (सौभाग्य चन्द्रिका भाषा टीका) कर आचार्यप्रवर ने आगम-साहित्य के क्षेत्र में मूल्यवान योगदान किया। उस समय इस प्रकार के प्रयत्न की बहुत माँग थी। तत्कालीन प्रमुख सन्तों एवं विद्वानों की सम्मतियाँ और सुझाव भी मंगाये गए जो सूत्र के प्रारम्भ में प्रकाशित हैं। ग्रन्थ का प्रकाशन पत्राकार शैली में हुआ है, जिसे जिल्द बन्ध भी कराया गया है।

आचार्यप्रवर ने इसकी भाषाटीका अपने पूज्य गुरुदेव श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के नाम पर लिखते हुए गुरु की कृपा को महत्त्व देकर विनम्रता का परिचय दिया है। जैसा कि भाषा टीका के अन्त में आचार्यप्रवर का कथन है--

है जानना सूत्रार्थ का गुरु की कृपा पर टिक रहा ।
हठ से स्वयं जो पढ़ लिया, वह तत्त्व से वञ्चित रहा ॥
यह बात सच्ची मानकर, गुरुनाम से टीका रची ।
गुरु ने सिखाई थी तथा जो बात मति से भी जची ॥१॥
इस बात को गाथानुगत, न्यूनाधिकों को छोड़कर ।
मैंने लिखा है गुरु कथित, निज संस्मरण से जोड़कर ॥
स्मृति ही हुई हो क्षीण या विपरीत तो चाहूँ यही ।
विद्वान् मुनिवर सोचकर, समझें वही जो हो सही ॥२॥

जो कुछ पाया वह गुरु कृपा का ही प्रसाद है आपकी यह अन्तर्हृदय की भावना उपर्युक्त कथन से प्रकट होती है।

ग्रन्थ के अन्त में प्रत्येक अध्ययन से चुने हुए अर्धमागधी शब्दों की संस्कृत छाया, लिङ्ग एवं उनका हिन्दी अर्थ दिया गया है, जिससे इसका महत्त्व बढ गया है। अन्त में शुद्धिपत्र भी जोड़ा गया है।

दशवैकालिक के इस संस्करण पर तत्कालीन उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज सा एवं उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज सा ने लुधियाना (पंजाब) से २३ मई १९४० को इस प्रकार भाव प्रेषित किये थे --

"दशवैकालिक सूत्र का इतना अधिक सुन्दर एवं सफल संस्करण जैन संसार को देने के उपलक्ष्य में आचार्य श्री हस्तीमलजी को हार्दिक धन्यवाद। आधुनिक सम्पादन पद्धति के सभी समुचित साधनों का उपयोग करके वास्तव में स्थानकवासी जैन समाज में प्रकाशन की एक नई दिशा स्थापित की गयी है। सौभाग्य चन्द्रिका टीका की भी अपनी एक खास विशेषता है। सरस, सरल और सुबोध भाषा के द्वारा संक्षेप में मूल का वास्तविक आशय प्रकट कर देना ही विशिष्ट लेखन कला है और इसमें आचार्य श्री की सफलता प्रशंसनीय है।"

दशवैकालिक सूत्र का यह संस्करण आज भी विद्वानों के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ का कार्य करता है। दशवैकालिक सूत्र महाराष्ट्र के विश्वविद्यालयों में अर्धमागधी के पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत था, अतः इसका महाराष्ट्री अनुवाद ग्रन्थ के सम्पादक श्री अमोलक चन्दजी सुरपुरिया के द्वारा किया गया।

(२) नन्दीसूत्र

नन्दीसूत्र की गणना मूल सूत्रों में होती है। इसमें पंचविध ज्ञानों का सुन्दर निरूपण हुआ है। आचार्यप्रवर को यह सूत्र अत्यन्त प्रिय था। वे प्रतिदिन रात्रि-शयन से पूर्व इसका पाठ करते थे।

'श्रीमन्नन्दीसूत्रम्' नाम से इस कृति का प्रकाशन सातारा से विक्रम संवत् १९९८ (सन् १९४२ ई.) में तब हुआ जब आचार्यप्रवर मात्र ३१ वर्ष के थे । नन्दीसूत्र की टीका से आचार्यप्रवर को तत्कालीन आचार्यों एवं विद्वानों में महती प्रतिष्ठा मिली। प्रकाशक थे राय बहादुर श्री मोतीलाल जी मूथा। नन्दीसूत्र का यह संस्करण विविध दृष्टियों से अद्वितीय है। इसमें प्राकृत मूल के साथ संस्कृत छाया एवं शब्दानुलक्ष्यी हिन्दी अनुवाद दिया गया है। जहाँ विवेचन की आवश्यकता है वहाँ विस्तृत एवं विशद विवेचन भी किया गया है। अनुवाद-लेखन में आचार्य मलयगिरि एवं हरिभद्रसूरि की वृत्तियों को आधार बनाया गया है, साथ ही अनेक उपलब्ध संस्करणों का सूक्ष्म अनुशीलन किया गया है। आवश्यक होने पर विद्वान् मुनियों से शंका-समाधान भी किया गया है। आचार्यप्रवर ने जब नन्दी सूत्र का अनुवाद लिखा तब नन्दीसूत्र के कतिपय प्रकाशन उपलब्ध थे, परन्तु उनमें मूलपाठ के संशोधन का पर्याप्त प्रयत्न नहीं हुआ था। आचार्यप्रवर ने यह कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया।

नन्दीसूत्र के इस संस्करण की विद्वत्तापूर्ण भूमिका का लेखन उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज ने किया। आचार्य श्री ने नन्दीसूत्र की व्यापक तुलनात्मक प्रस्तावना लिखी। सूत्र के प्रकाशन का प्रबन्धन पं. दुःखमोचन जी झा ने किया जो आचार्यप्रवर के शिक्षा-गुरु थे और आचार्यप्रवर की विद्वत्ता, प्रतिभा एवं तेजस्विता से अभिभूत थे।

नन्दीसूत्र का यह संस्करण विद्वानों द्वारा बहुत समादृत हुआ। इसके पाँच परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट पारिभाषिक एवं विशिष्ट शब्दों की व्याख्या पर है। द्वितीय परिशिष्ट में समवायांग सूत्र में वर्णित द्वादशांगों का परिचय है। तृतीय परिशिष्ट में नन्दीसूत्र के साथ अन्य शास्त्रों के पाठान्तरों की सूची है। चतुर्थ परिशिष्ट श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों की दृष्टि से ज्ञान का निरूपण करता है तथा अन्तिम परिशिष्ट में नन्दीसूत्र में प्रयुक्त शब्दों का कोश दिया गया है।

(३) प्रश्नव्याकरण सूत्र

नन्दीसूत्र के प्रकाशन के आठ वर्ष पश्चात् दिसम्बर १९५० ई में. प्रश्नव्याकरण सूत्र संस्कृत छाया, अन्वयार्थ, भाषा टीका (भावार्थ) एवं टिप्पणियों के साथ पाली (मारवाड़) से प्रकाशित हुआ । इसका प्रकाशन सुश्रावक श्री हस्तीमलजी सुराणा पाली ने कराया।

प्रश्नव्याकरण सूत्र का यह संस्करण दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में पाँच आस्रवों का वर्णन है तो द्वितीय खण्ड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच संवरों का निरूपण है। परिशिष्ट में शब्द कोष, विशिष्ट स्थलों के टिप्पण, पाठान्तर सूची और कथा भाग दिया गया है। यह सूत्र-ग्रंथ आचार्यप्रवर के विद्वत्तापूर्ण १७ पृष्ठों के प्राक्कथन से अलंकृत है।

पाठान्तरों या पाठ-भेदों की समस्या प्रश्नव्याकरण में नन्दीसूत्र से भी अधिक है। इसका अनुभव स्वयं आचार्य श्री ने किया है। उन्होंने पाठ-भेद की समस्या पर प्राक्कथन में उल्लेख करते हुए लिखा है-"आगम मंदिर (पालीताणा) जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्रपत्र पर अंकित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है।" आचार्यप्रवर ने पाठ-संशोधन हेतु अनेक प्रतियों का तुलनात्मक उपयोग किया है, जिनमें प्रमुख थी - अभयदेव सूरि कृत टीका, हस्तलिखित टब्बा , ज्ञान विमलसूरि कृत टीका एवं आगम मंदिर पालीताणा से प्रकाशित मूल पाठ। संशोधित-पाठ देने के बाद आचार्यप्रवर ने पाठान्तर सूची भी दी है, जिसमें अन्य प्रतियों में उपलब्ध पाठ-भेद का उल्लेख किया है।

प्रश्नव्याकरण के जो पाठ-भेद अधिक विचारणीय थे , ऐसे १७ पाठों की एक तालिका बनाकर समाधान हेतु विशिष्ट विद्वानों या संस्थाओं को भेजी गई, जिनमें प्रमुख हैं-१. व्यवस्थापक आगम मंदिर, पालीताणा २. पुण्यविजय जी , जैसलमेर ३. भैरोंदान जी सेठिया, बीकानेर, ४. जिनागम प्रकाशन समिति, ब्यावर एवं ५. उपाध्याय श्री अमर मुनि जी, ब्यावर। तालिका की एक प्रति 'सम्यग्दर्शन' में प्रकाशनार्थ सैलाना भेजी गई, किन्तु इनमें से तीन की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं मिला। सम्यग्दर्शन पत्रिका के प्रथम वर्ष के ग्यारहवें अंक में यह तालिका प्रकाशित हुई , किन्तु किसी की ओर से कोई टिप्पणी नहीं आई।

इस प्रकार साधन-हीन एवं सहयोग रहित अवस्था में भी आचार्यप्रवर ने अथक श्रम एवं निष्ठा के साथ श्रुतसेवा की भावना से प्रश्न-व्याकरण सूत्र का विशिष्ट संशोधित संस्करण प्रस्तुत कर आगम-जिज्ञासुओं का मार्ग प्रशस्त किया।

(४) बृहत्कल्पसूत्र

श्री बृहत्कल्पसूत्र पर आचार्यप्रवर ने एक अज्ञात संस्कृत टीका का संशोधन एवं सम्पादन किया है। प्राक्कथन एवं बृहत्कल्प परिचय के साथ यह पाँच परिशिष्टों से अलंकृत है। इस सूत्र का प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के पुरातन कार्यालय त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर द्वारा कब कराया गया , इसका ग्रंथ पर कहीं निर्देश नहीं है, किन्तु आन्तरिक विवरण से यह सुनिश्चित है कि इस सूत्र का प्रकाशन प्रश्नव्याकरण की व्याख्या के पूर्व अर्थात् सन् १९५० ई. के पूर्व हो चुका था।

आचार्यप्रवर हस्ती की बृहत्कल्प की यह संस्कृत-टीका अजमेर के सुश्रावक श्री सौभाग्यमलजी ढड्ढा के ज्ञान-भण्डार से प्राप्त हुई जो संरक्षण के अभाव में बड़ी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थी। आचार्यप्रवर के दक्षिण प्रवास के दौरान इसके संशोधन व सम्पादन का कार्य सम्पन्न हुआ। बृहत्कल्प के ये संस्कृत टीकाकार कौन थे, यह ज्ञात नहीं , किन्तु यह संकेत अवश्य मिलता है कि श्री सौभाग्यसागरसूरि ने इस सुबोधा टीका को बृहट्टीका से उद्धृत किया था। उसी सुबोधा टीका का संपादन आचार्य श्री ने किया।

बृहत्कल्प सूत्र छेद सूत्र है, जिसमें साधु-साध्वी की समाचारी के कल्प का वर्णन है। आचार्यप्रवर ने सम्पूर्ण कल्पसूत्र की विषय-वस्तु को हिन्दी पाठकों के लिए संक्षेप में 'बृहत्कल्प परिचय' शीर्षक से दिया है जो बहुत उपयोगी एवं सारगर्भित है। अंत में पाँच परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि के क्रम से सूत्र के शब्दों का ३४ पृष्ठों में हिन्दी अर्थ दिया गया है। द्वितीय परिशिष्ट में पाठ-भेद का निर्देश है। तृतीय परिशिष्ट बृहत्कल्पसूत्र की विभिन्न प्रतियों के परिचय से सम्बद्ध है । चतुर्थ परिशिष्ट में वृत्ति में आए विशेष नामों का उल्लेख है , जो

शोधार्थियों के लिए उपादेय हैं। पंचम परिशिष्ट में कुछ विशेष शब्दों पर संस्कृत भाषा में विस्तृत टिप्पण दिया गया है।

यह संस्कृत टीका अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसकी भाषा सरल, सुबोध एवं प्रसाद गुण से समन्वित है, इसमें सूत्रोद्दिष्ट, तथ्यों का विशद विवेचन है। संस्कृत अध्येताओं के लिये यह टीका आज भी महत्त्वपूर्ण है। आचार्यप्रवर द्वारा संपादित यह संस्कृत टीका शुद्धता, विशदता एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व रखती है। इसका संपादन आचार्यप्रवर के संस्कृत ज्ञान एवं शास्त्रज्ञान की क्षमता को पुष्ट करता है।

(५) उत्तराध्ययन सूत्र

उत्तराध्ययन सूत्र जैन आगम-साहित्य का प्रतिनिधि सूत्र है। यह भगवान महावीर की अंतिम देशना के रूप में प्रख्यात है। इसकी गणना चार मूल सूत्रों में होती है। छत्तीस अध्ययनों में विभक्त यह आगम द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग एवं धर्मकथानुयोग से समन्वित होने के कारण अत्यन्त समृद्ध एवं सुग्राह्य है। वीतराग वाणी का रसास्वादन करने के लिये यह उत्तम आगम है। आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. द्वारा उत्तराध्ययन सूत्र का यह ऐसा संस्करण उपलब्ध कराया गया, जिसमें मूल गाथाओं के साथ संस्कृत छाया, अन्वयार्थ भावार्थ, एवं हिन्दी पद्यानुवाद भी प्राप्त है। सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र तीन भागों में विभक्त है, जो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से प्रकाशित हैं।

प्रथम भाग– इसमें एक से दस अध्ययनों का संकलन है। इस भाग में जीवन-निर्माण के प्रचुर सूत्र उपलब्ध हैं। विनयशील बनने, परीषहों पर विजय प्राप्त करने, धर्म श्रवण कर उसे आचरण में लाने, अप्रमत्त बनने, समाधिमरण अपनाने, क्षणिक विषय-सुखों में अनासक्त रहने और समय का सदुपयोग करने आदि के सूत्र सहज उपलब्ध हैं। इस भाग में प्रत्येक अध्ययन से संबंधित कथाएँ भी दी गयी हैं। संस्कृत छाया, हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ-भावार्थ आदि इस ग्रंथ को समझने और उसके मर्म तक पहुँचने में सहायक हैं। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में उस अध्ययन का सार दिया गया है, जिससे पाठक पाठ्य विषय के प्रति पहले से ही जिज्ञासु एवं जागरूक हो जाता है।

द्वितीय भाग –ग्यारह से बाईस अध्ययनों का विवेचन इस भाग में हुआ है। इसमें बहुश्रुत की विशेषताएँ बताते हुये शिक्षा-प्राप्ति के बाधक एवं साधक कारणों की चर्चा की गई है। हरिकेशीय अध्ययन में चांडाल जाति में उत्पन्न होने वाले हरिकेशबल मुनि के साधक-जीवन का प्रेरक वर्णन हुआ है। चित्त सम्भूतीय अध्ययन में चित्त एवं सम्भूत नामक भ्राताओं के पूर्व जन्मों का वर्णन करते हुये भोग की अपेक्षा त्याग का महत्त्व स्थापित किया गया है। इषुकार अध्ययन में भृगु पुरोहित और उनके पुत्रों का वैराग्यपरक मार्मिक संवाद है।

पन्द्रहवें अध्ययन में सद्भिक्षु का, सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य समाधि स्थान का, सतरहवें अध्ययन में पाप श्रमण का, अठारहवें अध्ययन में अच्छे श्रमण का, उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र के वैराग्य का, बीसवें अध्ययन में अनाथी मुनि एवं राजा श्रेणिक के रोचक एवं प्रेरक संवाद का, इक्कीसवें अध्ययन में समुद्रपाल के गृह-त्याग और श्रमण जीवन का तथा बाईसवें अध्ययन में रथनेमि की साधना का वर्णन किया गया है। आचार्यप्रवर के सान्निध्य में तैयार हुए इस संस्करण से उत्तराध्ययन की विषयवस्तु एकदम स्पष्ट हो जाती है।

तृतीय भाग –प्रथम एवं द्वितीय भाग की शैली के अनुसार ही तृतीय भाग में मूल गाथा की संस्कृत छाया, हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ, भावार्थ एवं विवेचन दिया गया है। इसमें तेबीसवें केशीगौतमीय अध्ययन से लेकर

अंतिम छत्तीसवें अध्ययन जीवाजीव विभक्ति तक बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है। चौबीसवें अध्ययन में पांच समिति व तीन गुप्ति नामक अष्टप्रवचनमाता का, पच्चीसवें अध्ययन में जय घोष और विजय घोष का संवाद, छब्बीसवें अध्ययन में साधु-समाचारी का, सत्ताईसवें अध्ययन में दुर्विनीत शिष्य का, अट्ठाईसवें अध्ययन में मोक्षमार्ग का तथा उनतीसवें अध्ययन में अध्यात्म विषयक ७३ प्रश्नोत्तरों का वर्णन हुआ है, जो इस सूत्र के महत्त्व एवं उपयोग को प्रतिपादित करता है। तीसवें अध्ययन में आभ्यन्तर एवं बाह्य तपों का, इकतीसवें अध्ययन में चारित्र का और बत्तीसवें अध्ययन में प्रमाद और अप्रमाद का अथवा वीतरागता का प्रतिपादन हुआ है। तैंतीसवें अध्ययन में अष्टविध कर्मों का, चौंतीसवें अध्ययन में षड्विध लेश्याओं का और पैंतीसवें अध्ययन में अणगार मार्ग का तथा छत्तीसवें अध्ययन में जीवों और अजीवों का निरूपण हुआ है।

उत्तराध्ययन सूत्र के इस तृतीय भाग का प्रथम संस्करण १९८९ ई. में प्रकाशित हुआ था।

(६) उत्तराध्ययन सूत्र - पद्यानुवाद

आचार्य श्री की यह भावना रही कि उत्तराध्ययन सूत्र का हार्द प्रत्येक व्यक्ति सरलतापूर्वक ग्रहण कर सके। इसीलिये उन्होंने अपने सान्निध्य में उत्तराध्ययन सूत्र का हिन्दी में पद्यानुवाद तैयार कराया। इस कार्य में पं. शशिकांतजी झा का विशेष सहयोग मिला। पद्यानुवाद सरल, सरस एवं सुबोध है। कोई भी साधारण हिन्दी का ज्ञाता इस पद्यानुवाद के माध्यम से समस्त उत्तराध्ययन सूत्र की विषयवस्तु को अल्प समय में ही जान सकता है। इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण सन् १९९६ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से प्रकाशित हुआ है।

(७) दशवैकालिक सूत्र (पद्यानुवाद सहित)

आधुनिक युग में श्रावकों एवं श्रमणों को दशवैकालिक सूत्र का हार्द शीघ्र एवं सरलता से ज्ञात हो सके, एतदर्थ आचार्य प्रवर ने इसके मूल पाठ को हिन्दी पद्यानुवाद , प्रत्येक शब्द के अन्वयपूर्वक अर्थ एवं भावार्थ के साथ तैयार कराया। प्रत्येक अध्ययन के अन्त में आवश्यक अंशों या शब्दों पर विस्तृत टिप्पणियाँ भी दी गई। इस प्रकार यह संस्करण सामान्य एवं विशिष्ट सभी पाठकों के लिये उपयोगी बन गया है। हिन्दी पद्यानुवाद का एक प्रयोजन आम लोगों में आगम के प्रति रुचि उत्पन्न करना भी रहा है। दूसरी बात यह है कि इससे आगम का भाव सुगम हो जाता है। हिन्दी पद्यानुवाद आचार्यप्रवर के मार्गदर्शन में पं. शशिकान्त जी झा द्वारा किया गया है। दशवैकालिक सूत्र के इस प्रथम संस्करण का प्रकाशन मई १९८३ ई. में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर द्वारा किया गया। दशवैकालिक सूत्र का यह संस्करण बहुत लोकप्रिय हुआ, जिसकी निरन्तर माँग रहती है एवं आवृत्तियाँ निकलती रहती हैं। उत्तराध्ययन सूत्र की भांति दशवैकालिक सूत्र भी एक महत्त्वपूर्ण आगम है, जो लगभग सभी साधु-साध्वियों के द्वारा कंठस्थ किया जाता है तथा श्रमण-जीवन के लिए इसका अध्ययन आवश्यक माना जाता है। दशवैकालिक सूत्र की गणना चार मूल सूत्रों में होती है। दस अध्ययनों में विभक्त यह आगम साध्वाचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी रचना आचार्य शय्यम्भव के द्वारा उनके अल्पवय पुत्र मनक को संक्षेप में श्रमणाचार से परिचित कराने के लिए की गयी थी। इसमें षट्कायिक जीवों की रक्षा, पंचमहाव्रतों के निरतिचार पालन, आहार-गवेषणा, विनय-समाधि, तप-समाधि आदि का विस्तृत प्रतिपादन हुआ है।

(८) अंतगडदसासुत्तं

अन्तगडदसा सूत्र का वाचन पर्युषण पर्व के अवसर पर प्रतिदिन किया जाता है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल के माध्यम से अंतगडदसाओ के दो संस्करण निकल चुके हैं। प्रथम संस्करण सन् १९६५ ई. में तथा दूसरा संस्करण सन् १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ। प्रथम संस्करण में प्राकृत मूल एवं हिन्दी अर्थ दिया गया था तथा अन्त में एक परिशिष्ट था, जिसमें विशिष्ट शब्दों का सरल हिन्दी अर्थ दिया गया था। द्वितीय संस्करण अधिक श्रम एवं विशेषताओं के साथ प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में कालम पद्धति अपना कर पहले प्राकृत मूल, फिर उसकी संस्कृत छाया तथा उसके सामने के पृष्ठ पर शब्दानुलक्षी हिन्दी अर्थ (छाया)तथा अंतिम कालम में हिंदी भावार्थ दिया गया है। इन चारों को एक साथ पाकर नितान्त मंद बुद्धि प्राणी को भी आगम ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह द्वितीय संस्करण विशेषतः पर्युषण में वाचन की सुविधा हेतु उपयोगी है। इसके द्वारा संस्कृत का यत् किञ्चित् ज्ञान रखने वाला पाठक भी मूल आगम का हार्द सहज रूप से समझ सकता है। अन्त में प्रमुख शब्दों का विवेचनयुक्त परिशिष्ट भी इस ग्रन्थ की शोभा है।

आकार में वृहत् होने के कारण पर्युषण पर्व की दृष्टि से फिर एक नया संस्करण तैयार हुआ जिसमें बांये पृष्ठ पर प्राकृत पाठ एवं दाहिने पृष्ठ पर हिन्दी अर्थ दिया गया है। इसका तीन बार प्रकाशन हो चुका है। संपादन डॉ. धर्मचन्द जैन ने किया है।

(आ) प्रवचन-साहित्य

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा. 'गजेन्द्राचार्य' के नाम से विख्यात थे। इसलिए उनके द्वारा फरमाए गए अधिकांश प्रवचन 'गजेन्द्र मुक्तावली' एवं 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' की शृंखला में प्रकाशित हुए। कुछ प्रवचन 'आध्यात्मिक-साधना', 'आध्यात्मिक-आलोक', 'प्रार्थना-प्रवचन', 'पर्युषण-साधना' आदि पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित हैं।

उल्लेखनीय है कि आचार्यप्रवर के कतिपय व्याख्यान ही पुस्तक का रूप ग्रहण कर सके हैं। बहुत से प्रवचन अभी भी अप्रकाशित हैं तथा अधिकांश प्रवचनों का आशुलेखन भी नहीं हो सका था। वे प्रवचन तत्कालीन श्रोताओं को ही कर्णगोचर हो सके थे।

आचार्य प्रवर के प्रवचन आगमाधारित होते हुए भी सहज एवं हृदयस्पर्शी हैं।

(१) गजेन्द्र मुक्तावली मुक्ता - भाग -१

आचार्य श्री के प्रवचनों की सम्भवतः यह प्रथम पुस्तक है। इसका प्रकाशन सन् १९५० में श्री इन्दरचन्द जी जबरचन्द जी हीरावत के द्वारा किया गया था। इसमें कुल ९ प्रवचन संकलित हैं—(१) सर्व - धर्म सहिष्णुता (२) दिल की दिवाली (३) सत्य महाव्रत (४) देश की दुर्दशा और उससे मुक्ति (५) धर्म और उसकी उपयोगिता (६) मनोजय के सरल उपाय (७) आत्मतत्त्व मीमांसा (८) कारण विचार (९) जैन साधु की आधार शिला। आचार्य श्री के ये प्रवचन सारगर्भित रूप में विषय का विवेचन करने के साथ पाठक को आध्यात्मिक जीवन-निर्माण हेतु प्रेरित करते हैं। गम्भीर चिन्तन-मनन-निदिध्यासन एवं आचरण की कसौटी पर कसे हुए तथा लोक-हित के भावों से भरे हुए ये प्रवचन हृदय में अदम्य उत्साह और स्फूर्ति का संचार करते हैं। आचार्य श्री सर्वधर्म-समभाव की अपेक्षा सर्वधर्म

सहिष्णुता को उपयुक्त मानते हैं। आचार्य श्री फरमाते हैं–"आज सार्वजनिक मतभेद और झगड़ों का कारण असहिष्णुता है। विचार भेद एवं मतभेद होना एक बात है, पर उसके लिए द्वेष करना दूसरी बात है। आज से पहले भी जैन, वैष्णव, मुसलमान आदि अनेक मत तथा वल्लभ, शाक्त , शैव, रामानुज आदि विविध सम्प्रदायें थीं, परन्तु उनमें विचार भेद होने पर भी सहिष्णुता थी। इसी से उनका जीवन शान्ति और आराम से व्यतीत होता था। गांधी जी ने अपने अनेक व्रतों में एक सर्वधर्म समभाव व्रत भी माना है। उसकी जगह सर्वधर्म सहिष्णुता को मान लिया जाए तो उनके मत से हमारी एकवाक्यता हो सकती है।" सत्य महाव्रत नामक प्रवचन में आचार्य श्री फरमाते हैं कि सत्यवादियों की देव भी सहायता करते हैं। इसलिए सत्य दूसरा भगवान है। सत्यव्रत के पालन में भले ही कठिन साधना करनी पड़े और तत्काल कठोर दण्ड भी सहन करना पड़े फिर भी असत्य के रास्ते नहीं लगना चाहिए। आचार्य श्री ने स्थानांग में वर्णित १० प्रकार के सत्यों का विवेचन करने के साथ इस प्रवचन में १० प्रकार के वर्जनीय सत्य भी बताए हैं तथा सत्यव्रत के ५ दोषों का निवारण करने पर भी बल दिया है। उस समय भारतवर्ष में अकाल का बोलबाला था। अतः आचार्य श्री ने देश की दुर्दशा के सम्बन्ध में प्रवचन करते हुए कर्त्तव्य पालन और पारस्परिक सहयोग की प्रेरणा की है। समाज में व्याप्त विषमता पर भी आचार्य श्री ने ध्यान केन्द्रित किया है। आचार्य श्री फरमाते हैं कि अपने चारों ओर किसी भी प्राणी को दुःखी नहीं होने देना, उनकी देखभाल करना और कोई संकट में हो तो तत्काल उसकी सहायता करना यही सामान्य धर्म या पूजा है। धर्म के सम्बन्ध में आचार्य श्री का मन्तव्य है कि शुद्ध आत्मस्वरूप की तरफ ले जाने वाले पवित्र चिन्तन, मनन और आचरण ही वास्तविक धर्म हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निर्लोभता आदि उसके प्रमुख अङ्ग हैं। 'मनोजय के सरल उपाय' नामक प्रवचन में आचार्य श्री ने विरक्ति भाव को मुख्यता दी है। आपका फरमाना है कि जितना विरक्ति का अभ्यास बढ़ता जायेगा उतना ही मन का क्षेत्र संकुचित होता जायेगा और अन्त में दृश्य जगत के भौतिक पदार्थ मात्र से विरक्त होकर यह जीव आत्म-रमण में लीन हो जायेगा, यही पूर्ण मनोजय है। भेदज्ञान से बाह्य पदार्थों को नश्वर और पर समझकर उनसे विरक्त रहना चाहिए, क्योंकि आत्म-स्वरूप ही अनुराग करने योग्य है। 'आत्म तत्त्वमीमांसा' प्रवचन में प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है। इसमें प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा ही कर्म का कर्त्ता और भोक्ता है। यदि इस सिद्धान्त को नहीं माना जाए तो सर्वत्र अव्यवस्था हो जायेगी। आत्मा नित्य द्रव्य भी है, किन्तु वह नया शरीर धारण करने और जीर्ण शरीर को छोड़ने रूप पर्याय बदलता रहता है। आत्मा ज्ञान, क्षमा, सरलता, आदि अनन्त गुणों का पुञ्ज है। 'कारण विचार' नामक प्रवचन में विविध कारणों की चर्चा की गई है तथा उपादान और निमित्त दोनों प्रकार के कारणों का महत्त्व स्थापित किया गया है। 'जैन साधु की आधार शिला' नामक प्रवचन में आचार्यप्रवर ने साधु-साध्वियों की वन्दनीयता के लिए आधारभूत पाँच नियमों को आवश्यक बताया है– (१) निन्दा त्याग (२) विकथा प्रपञ्चत्याग (३) विभूषा और स्त्री संसर्ग-त्याग (४) उपशम भाव (५) असंग्रह वृत्ति।

इस प्रकार आचार्य श्री गजेन्द्र के प्रवचनों की यह अद्भुत पुस्तक है जिसमें एक ही स्थान पर विविध विषयों का निरूपण करते हुए पाठक का सम्यक् मार्गदर्शन किया गया है। प्रवचनों का सम्पादन पं. शशिकान्त जी झा के द्वारा किया गया है।

(२) गजेन्द्र मुक्तावली भाग-२

आचार्य श्री के प्रवचनों की यह दूसरी पुस्तक 'सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल' द्वारा गुप्त द्रव्य सहायकों के सहयोग से प्रकाशित हुई है। इसमें कुल ७ प्रवचन उपलब्ध हैं। (१) भौतिकवाद और धर्म (२) दुःख का मूल लोभ

(३) स्वभाववाद एवं पुरुषार्थ (४) समय का महत्त्व (५) परम्परा और सुधारवाद (६) आत्मा ही अपना तारक है (७) अहिंसा पर तात्त्विक विचार। भौतिकवाद और धर्म के संबंध में विवेचन करते हुए आचार्य श्री भौतिकवाद को जन संघर्ष, वैर और द्वेष की भावना का कारण बताते हैं तो धर्म को आपसी स्नेह और शान्ति का साधन बताते हैं। आचार्य श्री कहते हैं कि धर्म की विलक्षण शक्ति के आगे भौतिक बल सदा से हार खाता आया है। आज धर्म के मुकाबले में भौतिक तत्त्व को ऊंचा बताया जा रहा है, लेकिन याद रखना चाहिए कि धर्म को भूलने पर मानवता की नींव डांवाडोल हो उठेगी तथा स्वार्थलिप्सा सीमा का अतिक्रमण कर जाएगी। दुःख का मूल लोभ को बताते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि लोभ का उदय होने पर शान्ति, दया, करुणा और स्नेह बादल में चाँद की तरह छिप जाते हैं। संसार की सारी सम्पदा और विपुल वैभव प्राप्त करके भी लोभी को संतोष नहीं होता। संसार में आज तक जितने लोमहर्षक युद्ध या संहार हुए हैं उसका प्रमुख कारण लोभ ही है। लोभ से हृदय अशांत, मन चंचल, व्यवहार व व्यापार कृष्ण, भावना अशुभ, उद्देश्य मलिन, दृष्टि विषम, विचार कुत्सित और लक्ष्य अशुद्ध बन जाते हैं। लोभी मनुष्य बन्धु, मित्र और प्रिय कुटुम्ब की रत्ती भर भी परवाह नहीं रखता और जैसे-तैसे अर्थसंग्रह में प्रवृत्त होता है। लोभ के कारण ही आज की अदालतों में भीड़ जमी रहती है। 'स्वभाववाद एवं पुरुषार्थ' प्रवचन दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पंच समवाय में काल, स्वभाव, नियति, कर्म और पुरुषार्थ की गणना होती है। स्वभाववादियों की मान्यता है कि संसार में सुकृत और दुष्कृत दिखाई देते हैं, वे स्वभाव से ही होते हैं इनमें किसी के श्रम या पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती । सिंह का हिंसक स्वभाव जन्म से ही है। मयूरादि पक्षियों के पंख स्वभाव से ही रंग बिरंगे हैं। यह स्वभाववाद एकान्त रूप से सही नहीं है। स्वभाव को ही कर्ता-धर्ता नहीं माना जा सकता। आत्मा का पुरुषार्थ इसमें मुख्य कारण है। इसी प्रकार काल, नियति और कर्म को भी कार्य का एकान्त कारण मानना सत्य से दूर है। पुरुषार्थ एवं अन्य कारणों के सहयोग से ही कार्य सम्पन्न हुआ करते हैं। 'समय का महत्त्व' नामक प्रवचन में अप्रमत्त होकर समय का उपयोग करने की प्रेरणा की गई है। आचार्य श्री फरमाते हैं - "अधिकतर लोगों का इस बात पर ध्यान नहीं जाता कि जीवन संग्राम में समय का क्या महत्त्व है। यह जानते हुए भी कि मृत्यु अटल और निश्चित है, लोग इस ओर से बेखबर और बेफ्रिक बने रहते हैं। आवश्यक से आवश्यक काम को भी कल पर टालने की आदत सी बन गई है और यही प्रमाद मानव को उन्नत और गौरवशील बनने से रोकता ही नहीं, बल्कि भयंकर पतन के गर्त में गिराकर सर्वनाश कर देता है।" 'परम्परा और सुधारवाद' विषयक प्रवचन में आचार्य श्री इस बात की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं कि परम्परावादी व्यक्ति अपनी रूढ़ि से चिपका रहना चाहता है और सुधारवादी प्राचीनता के नाम से ही चौंकता है। जबकि सत्य, शान्ति और लोक कल्याण के लिए दोनों का उचित समन्वय होना आवश्यक है। पुरानी होने से हर बात आँख मूंद कर मानने लायक नहीं होती और न नवीन होने से सब बातें बुरी होती हैं। सज्जनों को चाहिए कि उन दोनों में परीक्षा कर एक को ग्रहण करें तथा दूसरे का परित्याग करें।

आत्मा ही स्वयं अपना तारक है, इस संबंध में आचार्य श्री ने जैन धर्म की मान्यता को आगमिक उद्धरणों और कथानकों के माध्यम से समझाते हुए कहा है कि हमारी दुःख-मुक्ति दूसरों के हाथ में नहीं है। सामान्य देव की कौन कहे, असंख्य देवी-देवों का स्वामी इन्द्र भी हमें दुःख मुक्त नहीं कर सकता। हमारे भीतर ही वह शक्ति है जिससे हमारी मुक्ति हो सकती है। अहिंसा पर तात्त्विक विचार करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया है कि अहिंसा केवल परहित का ही नहीं स्वहित और आत्म-सन्तोष का भी प्रमुख कारण है। विधि और निषेध रूप से अहिंसा के दो पहलू हैं - जैसे ऐसा कोई काम मत करो जिससे जीवों की हिंसा हो - यह अहिंसा का निषेध रूप है और यतना

से उठो, बैठो, चलो, खाओ, पीओ, यह अहिंसा का विधि रूप है। पाँच समिति और तीन गुप्ति इसी विधि-निषेध को समझाने वाले शास्त्रीय संकेत हैं। आचार्य श्री ने अहिंसा के सम्बन्ध में उठने वाली शंकाओं और अहिंसा के गलत तरीकों का भी संकेत किया है। अहिंसा की साधना में प्रवेश हेतु आचार्य श्री ने संयम, समता और तपस्या को प्रवेश द्वार बताया है। अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्होंने बौद्धों द्वारा मान्य अहिंसा से जैन अहिंसा का अन्तर बताते हुए कहा कि भगवान महावीर जहाँ षट्काय के जीव मात्र की हिंसा का निषेध करते हैं वहाँ बुद्ध केवल गतिशील, जंगम प्राणियों की हिंसा का ही निषेध करते हैं। दूसरी बात यह है कि जैन धर्म में कृत, कारित और अनुमोदित रूप तीनों क्रियाओं का अहिंसा में निषेध किया गया है, किन्तु बौद्धपरम्परा में केवल अपने हाथ से नहीं मारना ही अहिंसा मान लिया गया है।

गजेन्द्र मुक्तावली के इस भाग का सम्पादन भी शशिकान्त जी झा के द्वारा किया गया है तथा प्राप्ति स्थान जिनवाणी कार्यालय, त्रिपोलिया , जोधपुर रहा है। पुस्तक पर प्रकाशनवर्ष का उल्लेख नहीं है।

(३) आध्यात्मिक साधना

अध्यात्मयोगी आचार्य श्री के प्रवचन आगमाधारित, अत्यन्त सहज, प्रेरणाप्रद, रोचक एवं प्रभावशाली होते हैं। उनके प्रवचनों की एक पुस्तक 'आध्यात्मिक साधना' के नाम से प्रकाशित हुई थी।

नवम्बर एवं दिसम्बर १९६२ में आचार्यप्रवर के द्वारा उज्जैन एवं रतलाम में दिए गए प्रेरणाप्रद प्रवचनों में से २० का संकलन इस पुस्तक में हुआ है। १० प्रवचन उज्जैन के एवं १० ही रतलाम प्रवास के हैं। आचार्य श्री के ये प्रवचन साधक, चिन्तक, स्वाध्यायी और सामान्य पाठक सभी के लिए मार्गदर्शक हैं। आचार्य श्री की प्रवचन शैली रोचक एवं प्रभावशाली है। वे किसी शास्त्रीय विषय को प्रसिद्ध कथानक या प्रसङ्ग से इस प्रकार आगे बढाते हैं कि उससे मूल आगमिक भाव तो स्पष्ट होता ही है, किन्तु वर्तमान जीवन की समस्याओं एवं उलझनों का भी समाधान प्राप्त होता है। उज्जैन में दिए गए प्रवचनों में साधना और श्रावक, भगवान पार्श्वनाथ, अहिंसा, कला एवं ज्ञान, श्रावक की साधना, आहार-शुद्धि, जिनवाणी-ज्ञानगंगा, आत्म-साधना आदि विषयों का सुन्दर विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त निमित्त एवं उपादान जैसे दार्शनिक विषय भी विवेचित हुए हैं। रतलाम के प्रवचनों में स्वाध्याय को जीवन-निर्माण की शक्ति बताते हुए सच्चा ज्ञानानन्दी बनने की प्रेरणा की गई है। ज्ञान को आचार्य श्री ने मुक्ति का सोपान बताते हुए उसके आचरण पर भी बल दिया है। प्रवचनों के अन्य विषय इस प्रकार हैं - श्रावक और व्रत-साधना, समवसरण के नियम, साहित्य और ऐक्य भावना, द्रव्य मीमांसा, सच्ची उपासना और पुण्य का सदुपयोग। आचार्य श्री ने इन प्रवचनों में आनन्द और शिवानन्दा के प्रसङ्गों की चर्चा करते हुये श्रोताओं के लिये तात्त्विक बोध को सरल बना दिया है।

आचार्य श्री 'जीवन निर्माण की शक्ति : स्वाध्याय' नामक प्रवचन में फरमाते हैं- "जैन धर्म चैतन्य का आदर करने वाला है, भौतिक तत्त्व को वह केवल साधन रूप ही मानता है, आदरणीय तत्त्व तो चैतन्य को ही समझना चाहिए। पर चैतन्य मूर्ति विद्वान् मुनिराजों के सत्संग का सहारा समाज को क्वचित् और अल्पकाल का ही मिल सकता है। अतः मुनिराजों के पीछे भी आप सबको अपनी साधना का स्वरूप ढीला नहीं पड़े ऐसा सोचना चाहिए। आनन्द यदि भगवान महावीर के चले जाने के बाद अपनी साधना का स्वरूप ढीला कर देता, तो क्या वह अवधिज्ञान पा सकता था? समाज के जिन लोगों ने ऊंची-ऊंची डिग्रियाँ प्राप्त की हैं वे भी अगर स्वाध्याय का

सहारा नहीं लेंगे तो क्या जीवन का निर्माण कर पाएंगे? गहराई से विचारने पर यह अच्छी तरह मालूम होगा कि स्वाध्याय के सिवाय कोई अन्य सहारा नहीं है, जिससे जीवन को ऊंचा उठाया जा सके। क्या गृहस्थ और क्या साधु, स्वाध्याय सबके लिए आवश्यक है।"

आचार्य श्री ने फरमाया है कि जैन धर्म को पाकर भी यदि रागद्वेष को शान्त नहीं कर सके तो कहाँ और कौनसी योनि में करोगे? एक प्रवचन 'कला और ज्ञान' में आचार्य श्री फरमाते हैं - "खेद है कि आजकल हमारे भाई और बहिन १२ व्रतों के स्वरूप तो दूर की बात, उनका नाम तक भी नहीं जानते, क्योंकि हमारे समाज में धर्मशिक्षा का प्राय: अभाव है। जब व्रतों के नाम और स्वरूप का ज्ञान ही नहीं हो तो फिर भला उनका धारण करना और पालन करना तो कल्पना की वस्तु हो जाती है।" "आहार-शुद्धि विचार-शुद्धि का मूल है, विचार-शुद्धि होने पर ही आचार शुद्धि सम्भव है। विचार शुद्धि के बिना आचार-शुद्धि बनावटी है, जो टिकाऊ नहीं होती। यदि आप लोक-लाज से या राजा के भय से या गुरुजनों की फटकार के भय से आचार शुद्ध रखते हैं, उसमें आपके मनोयोग का समर्थन नहीं है तो ऐसी आचार शुद्धि बालू के ढेर पर बने महल के समान है, जो न जाने कब ढह जाए।"

'निमित्त और उपादान' नामक प्रवचन में आपने फरमाया है- "शरीर और सद्गुरु बाह्य साधन हैं, धृति, श्रद्धा आदि अन्तर के साधन हैं, बाह्य-आभ्यन्तर निमित्तों के साथ आत्मा के उपादान की अनुकूलता से सिद्धि प्राप्त होती है। केवल निमित्त और केवल उपादान से कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।"

आचार्य श्री के इन प्रवचनों का सम्पादन पण्डित शशिकान्त जी झा के द्वारा किया गया है तथा प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर के द्वारा सन् १९६५ में किया गया था।

(४) आध्यात्मिक आलोक

अध्यात्मयोगी आचार्य श्री का प्रवचन-साहित्य जीवन-निर्माण हेतु अनमोल निधि है। 'आध्यात्मिक आलोक' में मुख्यत: आचार्यप्रवर द्वारा सन् १९६२ में सैलाना चातुर्मास में फरमाये गए प्रवचनों का संकलन है। प्रारम्भ में ये प्रवचन चार खण्डों में प्रकाशित हुए थे, किन्तु अब ये सब एक ही पुस्तक के अन्तर्गत दो खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम खण्ड में ४५ प्रवचन हैं तथा द्वितीय खण्ड में ३९ प्रवचन हैं, दोनों खण्डों के कुल मिलाकर ८४ प्रवचन हैं। सभी प्रवचन आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हैं तथा पाठक को सत् तत्त्व का बोध कराते हुए उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। भाषा एवं शैली भी बहुत सधी हुई है। प्रत्येक प्रवचन नया संदेश लेकर उपस्थित होता है। साधना, दु:ख-मुक्ति, अहिंसा, सदाचार, परिग्रह-परिमाण, विचार, ज्ञान का प्रकाश, भोगोपभोग नियन्त्रण, प्रमादजय, साधना के बाधक कारण, श्रद्धा के दोष, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अममत्व, शुभ-अशुभ, विकार-विजय, कर्मादान, संघ-महिमा, सामायिक, पौषधव्रत, निमित्त-उपादान, मानसिक सन्तुलन, स्वाध्याय आदि विभिन्न विषयों पर आचार्य श्री के प्रवचनों में उनके साधनाशील चिन्तन का नवनीत उपलब्ध है। प्रवचन का एक अंश उद्धृत है-

"परिग्रह का दूसरा नाम 'दौलत' है, जिसका अर्थ है -'दो-लत' अर्थात् दो बुरी आदत। इन दो लतों में पहली लत है --हित की बात न सुनना, दूसरी लत है- गुणी माननीय नेक सलाहकार और वन्दनीय व्यक्तियों को न देखना, न मानना। समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि परिग्रह ज्ञानचक्षु पर पर्दा डाल देता है। जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य अपना सही मार्ग निर्धारित नहीं कर पाता ।"-पृष्ठ १७

"जीवन में शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों साधनाओं का सामंजस्य आवश्यक है। जैसे पक्षी अपने दोनों

पंखों के कुशल रहते ही ऊपर उड़ सकता एवं स्वैर विहार कर सकता है, वैसे ही मानव जीवन के लिए उपर्युक्त दोनों प्रकार की साधना अपेक्षित है। फिर भी जीवन को ऊंचा उठाने के लिए आध्यात्मिक साधना को प्रधान एवं शारीरिक साधना को गौण रूप देना सुसंगत है।"

'आध्यात्मिक आलोक' में आनन्द श्रावक को माध्यम बनाकर श्रावक जीवन के लिए उपयोगी एवं प्रेरक सन्देश दिया गया है। प्रसंगतः अनेक प्रेरक कथानकों का समावेश प्रवचनों की सरलता, रोचकता एवं सुगमता में सहायक सिद्ध हुआ है।

(५) प्रार्थना प्रवचन

जैन दर्शन में यह माना जाता है कि सभी जीव अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करते हैं तथा अरिहंत, सिद्ध आदि देव भी किसी के कर्मों में परिवर्तन नहीं कर सकते। अतएव प्रश्न उठता है कि तीर्थंकरों की प्रार्थना क्यों की जाए ? आचार्य श्री ने इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान बहुत ही सुन्दर रीति से 'प्रार्थना प्रवचन' पुस्तक में प्रस्तुत किया है। आचार्य श्री ने फरमाया है - "वीतराग भगवान के भजन से भक्त को उसी प्रकार लाभ मिलता है जिस प्रकार सूर्य की किरणों के सेवन से और वायु के सेवन से रोगी को लाभ होता है।" "वीतराग होने के कारण वे इस कामना को लेकर नहीं चलते कि अमुक प्रार्थी मेरी प्रार्थना कर रहा है, अतएव उस पर दया दृष्टि की जाए और उसे कोई बख्शीस दी जाए और जो प्रार्थना नहीं करता उसे दण्ड दिया जाए। ऐसा होने पर भी यह असंदिग्ध है कि जो भक्त शान्तचित्त से वीतराग की प्रार्थना करते हैं, स्मरण करते हैं उन्हें जीवन में अपूर्व लाभ की प्राप्ति होती है। वीतराग के विशुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तन भक्त के अन्तःकरण में समाधिभाव उत्पन्न करता है और उस समाधि भाव से आत्मा को अलौकिक शान्ति की प्राप्ति होती है। भक्त के हृदय में बहता हुआ विशुद्ध भक्ति का निर्झर उसके कलुष को धो देता है और आत्मा निष्कलुष बन जाती है।"

प्रार्थना वीतराग परमात्मा की ही क्यों की जाती है? इसका मुख्य हेतु वीतरागता प्राप्त करना ही है। आत्मा के लिए परमात्मा सजातीय और जड़ पदार्थ विजातीय हैं। सजातीय द्रव्य के साथ रगड़ होने पर ज्योति प्रकट होती है और विजातीय के साथ रगड़ होने से ज्योति घटती है। चेतन का चेतन के साथ सम्बन्ध होना सजातीय रगड़ है और जड़ के साथ सम्बन्ध होना विजातीय रगड़ है। सजातीय में भी अपनी चेतना की अपेक्षा अधिक विकसित चेतना के साथ रगड़ होगी तो विकास होगा और यदि कम विकसित या मुर्झायी हुई चेतना के साथ रगड़ होगी तो हमारा आत्मिक विकास नहीं होगा। अतएव हमारी प्रार्थना का ध्येय वे हैं जिन्होंने अज्ञान का आवरण छिन्न भिन्न कर दिया है, मोह के तमस को हटा दिया है और जो वीतरागता व सर्वज्ञता की स्थिति तक पहुँच चुके हैं।

आचार्य श्री प्रार्थना का फल संक्षेप में इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं -'जैसे मथनी घुमाने का उद्देश्य नवनीत प्राप्त करना है उसी प्रकार प्रार्थना का उद्देश्य परमात्म-भाव रूप मक्खन को प्राप्त करना है।'

सम्पूर्ण पुस्तक प्रार्थना के विवेचन पर ही केन्द्रित है । इसमें कुल १६ प्रवचन हैं जिनमें 'प्रार्थना केन्द्र, प्रार्थना वर्गीकरण, तारतम्य , प्रार्थना कैसी हो, प्रार्थना का लक्ष्य, एकनिष्ठा, प्रभुप्रीति, प्रार्थना-प्रभाव, प्रार्थनीय कौन, निर्बल के बल राम, अन्तःकरण के आईने को मांजो, गुण-प्रार्थना, प्रार्थना का अद्भुत आकर्षण, आदर्श माता की आराधना, मन मेरु की अचलता, परदा दूर करो, जीवन का मोड़ इधर से उधर' आदि सम्मिलित हैं।

आचार्य श्री ने ये प्रवचन श्री अमरचन्द जी म.सा. की सेवा में रहते हुए जयपुर में प्रार्थना के समय फरमाए

थे।

(6) Concept of Prayer

प्रार्थना प्रवचन नामक पुस्तक का यह अंग्रेजी अनुवाद है। अनुवाद का कार्य आर. सी. भण्डारी और हिम्मत सिंह सरूपरिया द्वारा किया गया है। पुस्तक का प्राक्-कथन प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. डी. एस. कोठारी ने लिखा है एवं प्रकाशन सन् १९७४ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर द्वारा किया गया है।

(७) गजेन्द्र व्याख्यानमाला - पहला भाग

गजेन्द्र व्याख्यानमाला के अब तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से सात भाग प्रकाशित हुए हैं। प्रथम भाग में सन् १९७५ के ब्यावर-चातुर्मास के समय पर्युषण-पर्वाधिराज के अवसर पर आचार्य प्रवर द्वारा फरमाये गये आठ दिनों के व्याख्यान संकलित हैं। प्रवचन सभी रोचक एवं तात्त्विक बोध कराने वाले होने के साथ सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, भक्ति, स्वाध्याय, दान और अहिंसा विषयों का सरल ढंग से विवेचन हुआ है। तप का विवेचन करते हुए आपने फरमाया -

"तप की परीक्षा क्या ? तन तो मुर्झाया सा लगे, पर मन हर्षित हो उठे। शरीर से ऐसा लगे कि शरीर तप रहा है, पर मन हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा है। यह कब होगा ? जब कि साधक चाहेगा कि मुझे भूख प्यास सहनी है, सर्दी गर्मी सहनी है, अमुक वस्तु का त्याग करना है, क्योंकि मुझे इस तरह के अभ्यास के द्वारा अपनी आत्मा की अनंत शक्ति को यथाशक्ति चमकाना है।"

हिंसा का विवेचन करते हुये फरमाया - "वस्तुत: किसी प्राणी की हिंसा करने वाला व्यक्ति न केवल दूसरे प्राणी की ही हिंसा करता है, अपितु वह उस हिंसापूर्ण कृत्य द्वारा पहले अपनी स्वयं की, अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि आत्म गुणों की हिंसा करता है।"

स्वाध्याय को समाज धर्म बनाने पर बल देते हुये आचार्यप्रवर ने कहा - "आज जो घर-घर में लड़ाई-झगड़े, मन मुटाव आदि विकृतियों के विविध रूप देखने को मिलते हैं, इन सारी विकृतियों का एक ही इलाज है—स्वाध्याय।"

(८) गजेन्द्र व्याख्यान माला - दूसरा भाग

सन् १९७३ के जयपुर चातुर्मास में फरमाये गये प्रवचनों में प्रारम्भिक तेरह दिनों के प्रवचन इसमें प्रकाशित हैं। प्रवचनों के विषय हैं- आत्मपरिष्कार, सन्त शरण, महान सन्त आचार्य श्री शोभा चन्द्र जी म.सा., मोक्ष-मार्ग, सम्यक् ज्ञान, अध्यात्म-विज्ञान, साधना के ज्ञातव्य सूत्र, सिद्धि के सोपान, काल की लीला और रक्षणीय की रक्षा (रक्षा-बन्धन)। मोक्ष मार्ग पर दो और सम्यग्ज्ञान पर तीन प्रवचन संकलित हैं।

सभी प्रवचन जीवों को सम्यग्दिशा प्रदान करते हैं तथा स्वयं सोचने के लिए तत्पर कर पाठक का पथ प्रदर्शन करते हैं। 'आत्म परिष्कार' शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये प्रवचन का कुछ अंश यहाँ उद्धृत है - "यदि अपनी आत्मशक्ति को विकसित करना है तो उस पर पड़ा हुआ जो मलबा है उसे साफ करना होगा। इस मलबे को हटाने का कार्य भी हमें स्वयं को ही करना होगा। सहारे के रूप में, मार्गदर्शक के रूप में, शास्त्रों और सद्गुरुओं का सहयोग लिया जाता है। सद्गुरु और शास्त्र हमें मलबा कैसे दूर किया जाय, इसका उपाय बता सकते हैं। लेकिन वह

कचरा तो हमें स्वयं को ही हटाना पड़ेगा।"

स्वाध्याय के लिये प्रेरणा करते हुए कहा - "सबसे पहले विचारों में ज्ञान बल प्रवाहित होना चाहिये। ज्ञान बल प्राप्त होता है सत्संग से और स्वाध्याय से। आदमी को खाने के लिये समय मिलता है, कमाई के लिये अथवा आराम के लिये समय मिलता है, व्यवहार के लिये समय मिलता है, फिर स्वाध्याय के लिये समय क्यों नहीं मिलता। आज के दिमाग को ज्ञान चाहिये लेकिन तर्क के साथ, योग्यता के साथ मिलाया हुआ ज्ञान चाहिए। यह बिना स्वाध्याय के नहीं मिल सकता।"

व्रत के सम्बन्ध में आचार्यप्रवर ने फरमाया - "व्रत में समय की कीमत नहीं, उसमें कीमत है चित्त की। चित्त का मतलब है मन। मन कितना ऊँचा है, कितना विवेकशील है और कितना निर्मल है, मन की निर्मलता और मनोवृत्तियों की उच्चता के अनुपात के अनुसार ही क्रिया का महत्त्व बढ़ता है।"

(९) गजेन्द्र व्याख्यान माला - तीसरा भाग

यह भाग बालोतरा में सन् १९७६ में हुए चातुर्मास में पर्युषण के अवसर पर प्रदत्त सात प्रवचनों का संकलन है। संवत्सरी से सम्बद्ध व्याख्यान को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया, क्योंकि इस विषय पर सभी प्रमुख तथ्यों के साथ एक प्रवचन गजेन्द्र व्याख्यान माला के प्रथम भाग में उपलब्ध है। अध्यात्म-साधना से परिपूत एवं आत्मानुभूति से उद्भूत पतित पावनी पीयूष वाक् आचार्य श्री के प्रवचनों की विशेषता है । निराश एवं निष्कर्मण्य बने मानव की धमनियों में सम्यक् पुरुषार्थ का वेग उत्पन्न करने में आचार्यप्रवर की वाणी सक्षम दिखाई देती है। गजेन्द्र व्याख्यान माला के इस तीसरे भाग में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, सम्यक् तप और दान का हृदयग्राही सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। व्याख्यानों में सहजता भी है और पैनापन भी।

अपने एक प्रवचन में आचार्य श्री ने फरमाया है कि सच्चा जैन लक्ष्मी का दास नहीं, अपितु लक्ष्मी का पति होता है। धन कदापि तारने वाला नहीं, केवल धर्म ही तारने वाला है।

अपने अन्य व्याख्यान में आचार्य श्री कहते हैं कि अमीर व्यक्ति दान आसानी से दे सकता है, किन्तु संयम करना उसके लिए कठिन होता है। इसलिए दान तो ऊंचा है गरीब का और त्याग, तप, संयम करना ऊंचा है अमीर का। "तपस्या की सफलता में जिस प्रकार संयम सबल सहायक है उसी प्रकार प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य और स्वाध्याय ये चार चौकीदार जिस साधक के पास होते हैं उसकी तपस्या की सफलता असंदिग्ध है।"

सम्पादन गजसिंहजी राठौड़ और प्रेमराजजी बोगावत ने किया है तथा प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर से किया गया है। इसका तीसरा संस्करण सद्यः प्रकाशित हुआ है।

(१०) गजेन्द्र व्याख्यान माला - चतुर्थ भाग

सन् १९७७ के अजमेर चातुर्मास में आचार्यप्रवर द्वारा फरमायी गयी अमृत-वाणी रूपी प्रवचन इस भाग में संकलित हैं। संपादन पंडित शशिकान्त जी झा ने किया है। प्रवचनों में धर्म-साधना, साधना से सिद्धि, त्याग का महत्त्व, समय कम और मंजिल दूर, आचार का महत्त्व, धर्म से उभय लोक कल्याण, आत्मोथान, वीतराग वचन का प्रभाव, वाणी की शक्ति, विश्वभूति समता के पथ पर, प्रगति का शत्रु प्रमाद, अशांति का मूल क्रोध और लोभ, आत्मरोग और ज्ञान गुटिका, कर्म : दुःख का मूल, कषाय-विजय ही आत्म-विजय, असमाधि के मूल कारण से बचें,

कर्म प्रबल है' आदि शीर्षक उपलब्ध हैं।

'त्याग का महत्त्व' शीर्षक से प्रकाशित प्रवचन में आपने फरमाया - "आनन्द भौतिक वस्तुओं के राग में नहीं, त्याग में है, यह बात जब घट में उतर जायेगी, मन में समा जायेगी तब क्या कभी आपस में किसी से झगड़ोगे ? तब क्या कभी बाप-बेटे में लड़ाई होगी ? पड़ौसी-पड़ौसी से कलह होंगे ? यदि यह राग का विष दिल और दिमाग से उतर गया तो दुनिया भर के सारे झगड़े कलह, अशांति और द्वेष न जाने कहाँ विलीन हो जायेंगे। जड़ मूल से कट जायेंगे।"

धर्म के सम्बन्ध में आचार्यप्रवर ने फरमाया - "धर्म के दो पाये हैं– एक आर्जव भाव और दूसरा मार्दव भाव, जिन्हें विनय और सरलता कहा गया है। विनय और सरलता जहाँ है उस कुटुम्ब में, गांव में, नगर में, राष्ट्र और जाति में धर्म टिक सकता है और जहाँ इनका अभाव है वहाँ धर्म नहीं रह सकता।"

'समय कम और मंजिल दूर' नामक प्रवचन में आचार्य प्रवर ने फरमाया - "मन, वाणी और काया के साधन जो प्राणी को मिले हैं उनकी प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है, परन्तु इनकी प्रवृत्ति से कर्म काटने के बजाय कर्म बांधे जा रहे हैं। प्रश्न होता है कि इससे बचा क्यों नही जाता? तो इसका समाधान है कि अन्तर में कर्म काटने का या मंजिल पाने का सही दर्द नहीं जागा। जब तक प्रबल विरतिभाव जागृत नहीं हो तब तक कुछ नहीं होगा, क्योंकि दर्द के बिना क्रिया होकर भी प्रमाद और कषाय के कारण असावधानी से बन्ध काटने के बदले बन्ध बढ़ाने वाली होगी।"

आचार्य प्रवर के समस्त प्रवचन जीवन को उन्नत बनाने वाले हैं।

(११) गजेन्द्र व्याख्यान माला -पाँचवाँ भाग

इसका प्रथम प्रकाशन 'गजेन्द्र व्याख्यान मुक्ता' के नाम से इन्दौर के सेठ श्री सुगनमल जी भण्डारी के द्वारा अपने सुपुत्र स्व. श्री गजेन्द्र सिंह जी भण्डारी की पावन स्मृति में जून १९८० में कराया गया था। गजेन्द्र व्याख्यान माला के इस भाग में सन् १९७८ में हुए इन्दौर चातुर्मास के २१ प्रवचनों का संकलन है। प्रवचनों के विषय स्वाध्याय, ज्ञान और भक्ति, आत्म जागरण, सद्आचार और सद्विचार, संयम, तप, बन्धन का मूल, आहार शुद्धि एवं आचार-शुद्धि, दोष-परिमार्जन, संत-समागम, विवेकपूर्ण-प्रवृत्ति, परिग्रह-निवृत्ति, वास्तविक त्याग, आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक शिक्षण, शास्त्रधारी सैनिक आदि हैं। आचार्य श्री ने प्रवचनों में इस बात को उभारा है कि आज लोगों का जीवन बाहर से टीप टाप दिखाई देता है, किन्तु भीतर से उनका जीवन सूखा-सूना है जिसे आध्यात्मिक रस और स्वाध्याय जैसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है। आचार्य श्री ने इस बात को स्पष्ट किया है कि जीवन निर्वाह की शिक्षा पाया हुआ युवक मशीन के पुर्जे तो ठीक कर सकता है, किन्तु जीवननिर्माणकारी आध्यात्मिक शिक्षण के बिना वह अपना बिगाड़ा हुआ दिमाग ठीक नहीं कर सकता।

समाज-सुधार के लिए एवं व्यक्ति-सुधार के लिए आध्यात्मिक ज्ञान एक अमोघ साधन है। एक प्रवचन में आचार्य श्री कहते हैं कि अब ज्यादा भाषण देने का युग नहीं है, समय काम करने का है, युग बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है। कम बोलने और ज्यादा करने से ही समाज आगे बढ़ सकता है। समाज को जागृत कर आगे बढ़ाने की ओर आचार्य श्री ने संकेत करते हुए कहा है कि आज अलख जगाने वालों की आवश्यकता है। आत्मशक्ति के संबंध में आचार्य श्री बताते हैं कि आत्मा की शक्ति मन की शक्ति से कई गुनी अधिक होती है और मन की

शक्ति विद्युत् की शक्ति से लाखों करोड़ों गुणा अधिक है । सभी व्याख्यान अत्यन्त प्रेरणास्पद एवं सच्चे जीवन के मार्गदर्शक हैं।

(१२) गजेन्द्र व्याख्यानमाला - छठा भाग

सन् १९७९ में आचार्य श्री के द्वारा जलगाँव चातुर्मास में प्रदत्त प्रवचनों में से इसमें २६ प्रवचन उपलब्ध हैं। इन प्रवचनों में संस्कार निर्माण, आचार-शुद्धि और स्वाध्यायशीलता पर विशेष बल दिया गया है। कतिपय प्रवचन दशवैकालिक सूत्र, जम्बू स्वामी की त्याग-गाथा जैसे विषयों पर केन्द्रित हैं तो अधिकांश प्रवचनों में दोष-परिमार्जन, ज्ञान और क्रिया , परिग्रह-निवारण, स्वाध्याय, धर्म-साधना, त्याग, धर्मशिक्षा, ममत्व विजय, बन्ध-मुक्ति की साधना जैसे विषयों की चर्चा है। कुछ प्रवचन गजेन्द्र व्याख्यान माला के पाँचवें भाग और इस भाग में समान भी हैं। प्रवचनों का सम्पादन डॉ. हरिराम जी आचार्य, जयपुर ने किया है। सभी प्रवचन प्रवाहमय एवं अन्तस् की गहराई से उद्भूत और स्वाभाविक हैं। संत का अनुभव भी इन प्रवचनों में प्रकट हुआ है तो व्यक्ति और समाज की स्थिति के प्रति पीड़ा भी अभिव्यक्त हुई है। आचार्य श्री ने सत्संग और स्वाध्याय को जीवन का दीपक बताया है तथा बालक, युवा, महिला, पुरुष आदि सभी के योग्य चिन्तन प्रदान किया है। 'जहाँ ममत्व नहीं, वहाँ दुःख नहीं', नामक प्रवचन में स्पष्ट कहा है कि ममता के विसर्जन से ही दुःख मिट सकता है। वे कहते हैं जहाँ ममत्व है वहाँ दुःख है। यदि ममत्व नहीं है तो हमें उस वस्तु का विनाश होने पर दुःख भी नहीं होता है। साधना के लिए सुकोमलता का त्याग आवश्यक है। महा-आरम्भ से पैदा होने वाले चमकीले और कोमल वस्त्र पहनना तथा आरामतलबी बनना नहीं छोड़ेंगे तो आरम्भ और परिग्रह कम नहीं हो सकेंगे।

आचार्य श्री ने आहार-शुद्धि पर बल देते हुए कहा है कि आज ताजा खाने की एवं घर में खाने की रीति बन्द हो रही है, आज के लोग बाहर की चाट और भोजन में अधिक रुचि लेने लगे हैं। यह आहार बिगड़ने का एक रूप है। आहार अशुद्ध होने पर विचार और आचार शुद्ध रहना कैसे सम्भव है। प्राचीन काल में "ऊना खाओ, ऊन्दा सोओ, पाव कोस मैदान में जाओ" कहावत प्रचलित थी। एक अन्य प्रवचन में ममत्व-विजय का उपाय बताते हुए आचार्य श्री ने कहा है –"ज्ञानी कहते हैं कि मानव दूसरों को देने के एक मिनट बाद ही उस वस्तु को परायी समझता है, तो देने से पहले ही क्यों नहीं समझता कि यह वस्तु मेरी नहीं है।" सभी प्रवचन अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं।

(१३) गजेन्द्र व्याख्यान माला - सातवाँ भाग

पर्युषण, ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान, चारित्र, तप, संयम, दान, दया, सामायिक, साधर्मी वात्सल्य, दुःखमुक्ति आदि अनेक विषयों पर इस भाग में २७ प्रवचन उपलब्ध हैं। विक्रम संवत् २०३७ सन् १९८० में आचार्य श्री का चातुर्मास मद्रास नगर में हुआ था। वहाँ फरमाए गए प्रवचनों की उपयोगिता को देखकर यह भाग प्रकाशित हुआ है। इसका प्रथम प्रकाशन चेन्नई के सेठ श्री मोहनमल जी दुगड की स्मृति में दुगड प्रतिष्ठान के आर्थिक सहयोग से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के द्वारा किया गया था।

इसमें कुल २७ प्रवचन हैं। कतिपय प्रवचनों के शीर्षक इस प्रकार हैं –(१) ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान (२) चारित्र की महत्ता (३) संयम : भव-भ्रमण नाशक (४) सुख का साधन : दान (५) सामायिक : समत्व की साधना (६) जीवन की सार्थकता : धर्मकरणी (७) शान्ति का मार्ग: आचार शुद्धि एवं विचार शुद्धि (८) मन का माधुर्य : साधर्मि -

वात्सल्य (९) आन्तरिक रमणीकता (१०) दुःखमुक्ति के छः आयतन।

आचार्य श्री फरमाते हैं –"अशुभ मन, वचन और काया दण्ड के कारण हैं, दण्ड से अदण्ड में लाने वाली प्रवृत्ति का नाम सामायिक है। कर्म के कचरे को धोने और आत्मा को हल्का करने में सामायिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है।" एक प्रवचन में आचार्य श्री ने फरमाया कि जैन धर्म जैसा ऊँचा धर्म पाकर आप हम पिछड़े रह गए तो इससे ज्यादा कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।

अन्य प्रवचन में फरमाया–"दया के दो रूप हैं –१. द्रव्य दया २. भाव दया। द्रव्य दया के साथ यदि भावदया जुड़ जाए तो उसका फल कर्म का क्षय है। द्रव्य दया से शरीर का रक्षण तो होता है, किन्तु इससे जीवन पवित्र बनने, जीवन में निर्मलता का निखार आने का निश्चय नहीं है, किन्तु भाव दया करके उससे जीवन को पवित्र बनाया जा सकता हैं।" 'धन का सदुपयोग : संवितरण' में आचार्य श्री ने फरमाया है –"आपके पास दुःख से मुक्त होने की कुंजी तो है, लेकिन उसको घुमाना नहीं आता, यही कारण है कि संसार के लाखों, करोड़ों, अरबों मनुष्य दुःखी के दुःखी रह जाते हैं। "

आचार्य श्री के प्रत्येक प्रवचन में जीवन के उत्थान हेतु विचार उपलब्ध हैं। इनका जितना मनन किया जाएगा, उन पर चिन्तन-मनन कर आचरण में उतारा जाएगा, उतना ही जीवन सुखी एवं समुन्नत होगा।

(१४) पर्युषण साधना

आचार्यप्रवर के सन् १९७० के पूर्व के कुछ प्रवचन इस लघु पुस्तिका में संगृहीत हैं। प्रवचन सहज स्वाभाविक एवं प्रेरणाप्रद हैं। इसमें दर्शन, ज्ञान, सामायिक, तप, दान, संयम, शुद्धि और अहिंसा-साधना का विवेचन हुआ है। दर्शन-साधना विषयक प्रवचन का एक अंश यहाँ उद्धृत है-

"आप लोग जैन धर्म पाये हुए हैं, अतः सबके लिए सम्यक्त्व की पृथक् शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, किन्तु आज का मोहभरा व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन ऐसा विकृत हो गया है कि उसमें पद-पद पर मिथ्यात्व के आचार-विचार घर किए बैठे हैं। इसके प्रमुख कारण चार हैं-१. अज्ञानता २. भौतिक आकांक्षा ३. दैवी भय और ४. पड़ौसी समाज का असर।" सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा 'पर्युषण साधना' की तृतीयावृत्ति प्रकाशित की गई है।

(१५) आत्म-परिष्कार

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. के प्रवचन आत्म-परिष्कार की दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनके विशाल प्रवचन-साहित्य में से कतिपय प्रवचन या उनके अंश इस ५६ पृष्ठीय लघु पुस्तिका में समाहित हैं, जो हृदय को छूते हैं, चिन्तन-मनन की प्रेरणा देते हैं तथा जीवन में अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्रवचनों के शीर्षक हैं–आत्म-परिष्कार, सन्त-शरण, महान् सन्त आचार्य श्री शोभाचन्दजी महाराज, मोक्षमार्ग आदि। प्रवचन का एक अंश-"परिग्रह का मतलब केवल पैसा बढ़ाना और तिजोरी में भरना ही नहीं है, बल्कि कुटुम्ब, परिवार, व्यापार, व्यवसाय आदि में उलझे रहना भी परिग्रह है।"

पुस्तक का प्रकाशन - सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर ने किया है।

(इ) इतिहास-साहित्य

(१) पट्टावली प्रबन्ध संग्रह

जैन इतिहास पर आचार्य श्री की यह प्रथम पुस्तक है। जैन इतिहास में विशेषत: लोंकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा को जानने की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. इतिहास मार्तण्ड की उपाधि से अलंकृत रहे हैं। उनके द्वारा इतिहास सामग्री के संकलन और लेखन का उच्च स्तरीय कार्य किया गया है। पट्टावली प्रबन्ध संग्रह में लोंकागच्छ की सात पट्टावलियाँ एवं स्थानकवासी परम्परा की दस पट्टावलियाँ संगृहीत हैं। ये पट्टावलियाँ जैन इतिहास पर विशेष प्रकाश डालती हैं। इनका निर्माण श्वेताम्बर जैन मुनियों ने किया है। पट्टावलियों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है - शास्त्रीय पट्टावली और विशिष्ट पट्टावली। कल्पसूत्र और नन्दीसूत्र में सुधर्मा स्वामी से देवर्धिगणि तक जो पट्टावली प्राप्त होती है वह शास्त्रीय पट्टावली है। गच्छभेद के पश्चाद्वर्ती पट्टावलियाँ विशिष्ट पट्टावलियों के नाम से कही जा सकती हैं। इन पट्टावलियों की अपनी अलग विशेषता होती है। इतिहास लेखन में जिस प्रकार शिलालेख, प्रशस्तियाँ आदि उपयोगी हैं उसी प्रकार पट्टावलियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिलालेख एवं प्रशस्तियों से केवल इतना ही बोध होता है कि किस काल में किस मुनि ने क्या कार्य किया। अधिक हुआ तो उस समय के राज्य शासन एवं गुरु-शिष्यपरम्परा का भी परिचय मिल सकता है, किन्तु रास, गीत और पट्टावली उनके स्मरणीय गुणों, तप, संयम एवं आचार का भी ज्ञान कराते हैं। पट्टावली में अपनी परम्परा से सम्बन्धित पट्टपरम्परा का पूर्ण परिचय दिया जाता है। पट्टावलियों का निर्माण किंवदन्तियों और अनुश्रुतियों से नहीं हुआ है, इनके निर्माण में तत्कालीन रास, गीत, सज्झाय और प्रशस्तियों का भी उपयोग होता है। श्रुति परम्परा के भेद से इनमें कदाचित् नाम एवं घटना चक्र में भिन्नता भी प्राप्त होती है। पट्टावली के द्वारा ही आचार्य परम्परा का क्रमबद्ध पूर्ण इतिहास प्राप्त होता है, जो इतिहास लेखन में सहायक है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ओर से इस पट्टावली के प्रकाशन से पूर्व दो-तीन संकलन प्रकाशित हुए थे, परन्तु उनमें लोंकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा की पट्टावलियों का व्यवस्थित संकलन नहीं हो पाया था। अत: उस कमी की पूर्ति इस पट्टावली प्रबन्ध संग्रह द्वारा की गई है।

यह संकलन आचार्य श्री के द्वारा राजस्थान के विभिन्न ज्ञान-भण्डारों और गुजरात में पाटन, खम्भात, बड़ौदा, अहमदाबाद आदि नगरों के ज्ञानभण्डारों का निरीक्षण करने का परिणाम है। इससे आचार्य श्री की इतिहास विषयक गवेषणात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। आचार्य श्री के इस अभियान का प्रारम्भ संवत् २०२२ में बालोतरा चातुर्मास से हुआ। लोंकाशाह के बाद की परम्परा के मुख्य स्रोत इस कृति के माध्यम से एक स्थान पर उपलब्ध हो सके हैं।

पुस्तक में हस्तलिखित प्रतियों का मूल पाठ सुरक्षित रखा गया है। लोंकागच्छ परम्परा के अन्तर्गत निम्नांकित सात पट्टावलियाँ संकलित हैं-

१. पट्टावली प्रबन्ध २. गणि तेजसीकृत पद्य पट्टावली ३. संक्षिप्त पट्टावली, ४. बालापुर पट्टावली ५. बड़ौदा पट्टावली ६. मोटा पक्ष की पट्टावली ७. लोंकागच्छीय पट्टावली।

स्थानकवासी परम्परा के अन्तर्गत ये दस पट्टावलियाँ संकलित हैं- १. विनयचन्द्र जी कृत पट्टावली २. प्राचीन पट्टावली ३. पूज्य जीवराजजी की पट्टावली ४. खंभात पट्टावली ५. गुजरात पट्टावली ६. भूधरजी की पट्टावली ७.

मरुधर पट्टावली ८. मेवाड़ पट्टावली ९. दरियापुरी सम्प्रदाय पट्टावली १०. कोटा परम्परा की पट्टावली।

ग्रन्थ को अधिकाधिक उपयोगी और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से प्रत्येक पट्टावली के पूर्व संक्षेप में उसका सारतत्त्व दे दिया गया है। लोंकागच्छ परम्परा की प्रतिनिधि रचना 'संस्कृत पट्टावली प्रबन्ध' का हिन्दी अनुवाद पण्डित शशिकान्तजी झा ने तथा स्थानकवासी परम्परा की प्रतिनिधि रचना विनयचन्द्र जी कृत पट्टावली का सरलार्थ पण्डित मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज ने किया है। ये दोनों पट्टावलियाँ ही आकार में बड़ी हैं, शेष पट्टावलियाँ लघुकाय हैं।

इतिहास के विद्वानों और शोधार्थियों के लिए 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह', पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुछ पट्टावलियाँ संस्कृत में हैं तो कुछ राजस्थानी या स्थानीय भाषाओं में । कुछ पद्य में हैं तो कुछ गद्य में । पुस्तक का सम्पादन डा. नरेन्द्र जी भानावत ने किया है। प्रस्तावना श्री देवेन्द्र मुनि जी के द्वारा एवं भूमिका प्रसिद्ध विद्वान् श्री अगरचन्द जी नाहटा के द्वारा लिखी गई है। प्राक्कथन में संकलित पट्टावलियों का सारगर्भित अन्तरंग परिचय देते हुए पट्टावलियों का महत्त्व उद्घाटित किया गया है।

प्रकाशन 'जैन इतिहास निर्माण समिति' जयपुर के द्वारा किया गया है।

(२) जैन आचार्य चरितावली

इस पुस्तक में भगवान् महावीर से लेकर आधुनिक युग के प्रमुख जैनाचार्यों की परम्परा और उनकी विशेषताओं को पद्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतिहास बोध की दृष्टि से यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। इतिहास का विषय प्रायः नीरस होता है, किन्तु आचार्यप्रवर ने पद्यबद्ध रूप में जैनाचार्यों के चरित्र को गूंथकर जन सामान्य के लिए सुग्राह्य एवं रुचिकर बना दिया है। इसमें संक्षेप में जैन परम्परा, संस्कृति एवं धर्माचार्यों सम्बन्धी आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पद्यबद्ध होने से रुचिशील भक्त श्रावक इसे कण्ठस्थ भी कर सकते हैं। विषय और भाव की स्पष्टता के लिए प्रत्येक पद्य का अर्थ भी साथ में दिया गया है। इतिहास-जिज्ञासु इस ग्रन्थ का लाभ उठा सकें, इस दृष्टि से अन्त के परिशिष्टों में लोंकागच्छ की परम्परा और धर्मोद्धारक श्री जीवराज जी म.सा., श्री धर्मसिंह जी म., श्री लव जी ऋषि, श्री हरजी ऋषि, श्री धर्मदास जी महाराज आदि से सम्बन्धित विभिन्न शाखाओं का विवरण भी दिया गया है। विद्वानों और शोधार्थियों की सुविधा के लिए शब्दानुक्रमणिका दी गई है जिसके द्वारा आचार्य, मुनि, राजा, श्रावक, ग्राम, नगर, प्रान्त, गण-गच्छ, शाखा, वंश, सूत्र, ग्रन्थ आदि के सम्बन्ध में सुगमता व शीघ्रता से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ग्रन्थ के लेखन में धर्मसागरीय तपागच्छ पट्टावली, हस्तलिखित स्थानकवासी पट्टावली, प्रभुवीर पट्टावली और पट्टावली-समुच्चय आदि ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। प्राचीन हस्तलिखित पत्रों एवं आचार्य श्री की अपनी धारणा का भी इसमें सदुपयोग हुआ है। चरितावली का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९७१ में जैन इतिहास समिति जयपुर के द्वारा श्री गजसिंह जी राठौड़ के सम्पादन में किया गया था। द्वितीय संस्करण सन् १९९८ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर द्वारा प्रकाशित किया गया है। द्वितीय संस्करण में आचार्यों की परम्परा के परिशिष्ट में अधुनायावत् हुए आचार्यों के नाम भी जोड़ दिए गए हैं।

(३) जैन धर्म का मौलिक इतिहास

आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने जैन धर्म के इतिहास को प्रस्तुत करने का महान् कार्य किया है। जैन धर्म यूँ तो अनादिकालीन माना जाता है, किन्तु अवसर्पिणी काल के तीसरे आरक में हुए आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से

लेकर लोंकाशाह पर्यन्त का जैन इतिहास आचार्यप्रवर के द्वारा 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' नामक ग्रंथ के चार भागों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रत्येक भाग का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

प्रथम भाग- प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख इस भाग में हुआ है। इस भाग को 'तीर्थंकर खण्ड' नाम दिया गया है। इस भाग में सभी तीर्थंकरों के पूर्वभव, उनकी देवगति की आयु, च्यवनकाल, जन्म, जन्मकाल, राज्याभिषेक, विवाह, वर्षीदान, प्रव्रज्या, तप, केवलज्ञान, तीर्थ स्थापना, गणधर, प्रमुख आर्या, साधु-साध्वी की संख्या एवं तीर्थंकरों द्वारा किए गये विशेष उपकार का वर्णन हुआ है। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपनी बात के अन्तर्गत यह उल्लेख किया है कि यह ग्रन्थ प्रथमानुयोग की प्राचीन आगमीय-परम्परा के अनुसार लिखा गया है। इसमें आचारांग सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायांग, आवश्यक सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, प्रवचनसारोद्धार, सत्तरिसय द्वार और दिगम्बर परम्परा के महापुराण, उत्तरपुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि प्राचीन ग्रन्थों का आधार रहा है। हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, आचार्य शीलांक द्वारा रचित महापुरिसचरियं, जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित विशेषावश्यक भाष्य आदि ग्रन्थ भी इतिहास लेखन में सहायक रहे हैं। मतभेद के स्थलों पर शास्त्रसम्मत विचार को ही प्रमुखता दी गई है।

जैन समाज में, विशेषत: श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज में प्रामाणिक इतिहास की कमी चिरकाल से खटक रही थी । उसे आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ का लेखन कर दूर किया एवं जैन समाज और भारतीय इतिहास को महत्त्वपूर्ण अवदान किया।

इस खण्ड में भगवान ऋषभदेव, भ. अरिष्टनेमि, भ. पार्श्वनाथ और भ.महावीर के जीवन चरित्र और घटनाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है। शेष २० तीर्थंकरों के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होती है।

चौबीस तीर्थंकरों में अन्तिम तीन तीर्थंकर ऐतिहासिक युग के तीर्थंकर माने जाते हैं जबकि प्रारम्भ के २१ तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल में गिने जाते हैं। तीर्थंकरों के साथ ही भरत एवं ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। श्री कृष्ण के सम्बन्ध में जैन दृष्टि से चिंतन किया गया है। वैदिक और जैन ग्रन्थों के आधार पर भ. अरिष्टनेमि का वंश परिचय दिया गया है। इस प्रकार ग्रन्थ में जैन साहित्य के अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध साहित्य से भी गवेषणा की गई है। ग्रन्थ संपादन के कार्य में गजसिंह जी राठौड़ के अतिरिक्त श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री, पं. रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचंद जी म., पं. शशिकान्त जी झा और डा. नरेन्द्र जी भानावत का भी सहयोग रहा है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९७१ में प्रकाशित हुआ था। उसके अनन्तर इसके दो संस्करण और निकल चुके हैं। ग्रन्थ का सर्वत्र स्वागत किया गया है।

आचार्य श्री द्वारा निर्मित इस इतिहास ग्रन्थरत्न की अनेक मूर्धन्य विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कतिपय विद्वानों के अभिमत संक्षेप में निम्न प्रकार हैं-

१. जैन धर्म का यह तटस्थ और प्रामाणिक इतिहास है। **-पं. दलसुख भाई मालवणिया, अहमदाबाद**

२. जैन धर्म के इतिहास सम्बन्धी आधार-सामग्री का जो संकलन इसमें हुआ है, वह भारतीय इतिहास के लिए उपयोगी है।**-डॉ. रघुवीर सिंह सीतामऊ**

३. दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा के प्रसिद्ध पुरुषों के चरित्रों का इसमें दोहन कर लिया गया है।**- पं. हीरालाल शास्त्री, ब्यावर**

४. इतिहास के अनेक नये तथ्य इसमें सामने आये हैं।- **श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर**

५. चौबीस तीर्थङ्करों के चरित को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।- **डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ**

६. इस इतिहास से अनेक महत्त्वपूर्ण नई बातों की जानकारी होती है।- **डॉ. के सी जैन, उज्जैन**

७. जैन तीर्थङ्कर परम्परा के इतिहास को तुलनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से मूल्यांकित किया गया है।

-डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर

८. ऐतिहासिक तथ्यों की गवेषणा के लिए ब्राह्मण और बौद्ध साहित्य का भी उपयोग किया गया है।

-श्रमण, वाराणसी

९. फुटनोट्स के मूल ग्रन्थों के सन्दर्भ से यह कृति पूर्ण प्रामाणिक बन गई है।

१०. इस ग्रन्थ में शास्त्र के विपरीत न जाने का विशेष ध्यान विद्वान् लेखक ने रखा है।

- डॉ. भागचन्द जैन भास्कर, नागपुर

द्वितीय भाग – यह खण्ड केवली व पूर्वधर खण्ड़ के नाम से जाना जाता है। इस खण्ड में भ. महावीर के निर्वाण के पश्चात् के १००० वर्षों का प्रामाणिक इतिहास निबद्ध हुआ है। इन्द्रभूति गौतम, आर्य सुधर्मा, आर्य जम्बू इन तीनों केवलियों के जीवन और उनके कृतित्व का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन करने के पश्चात् श्रुत केवली आचार्यों, दस पूर्वधर आचार्यों और सामान्य पूर्वधर आचार्यों का ऐतिहासिक आधार पर वर्णन किया गया है। श्रुत केवली काल के आचार्य प्रभव स्वामी, आचार्य शय्यंभव, आचार्य यशोभद्र स्वामी, सम्भूतविजय, आचार्य भद्रबाहु का परिचय दिया गया है। उनके अनन्तर आठवें पट्टधर के रूप में आचार्य स्थूलभद्र तथा उनके अनन्तर पट्टधरों के रूप में आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ती, वाचनाचार्य बलिस्सह, गुणसुन्दर, वाचनाचार्य स्वाति, श्यामाचार्य, षांडिल्ल समुद्र, मंगू, नन्दिल और नाग हस्ती का वर्णन करते हुए इनके काल की विभिन्न घटनाओं और तत्कालीन अन्य आचार्यों यथा सुस्थित, आर्य इन्द्रदिन्न, कालकाचार्य, रेवती मित्र, सिंहगिरि, धनगिरि, अर्हद्दत्त, भद्रगुप्त, पादलिप्त, वृद्धवादी और सिद्धसेन, आर्य वज्रस्वामी, नागहस्ती का भी परिचय यथा प्रसंग दिया गया है। यथाकाल चाणक्य, चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, सम्राट् अशोक, कलिंगपति खारवेल, पुष्यमित्र शुंग आदि राजाओं या राजनैतिक पुरुषों का भी निरूपण किया गया है। सामान्य पूर्वधर काल के अन्तर्गत वाचनाचार्य रेवती को भगवान् महावीर का १९ वां पट्टधर बताया गया है। उनके अनन्तर ब्रह्मद्वीपक सिंह, स्कन्दिल, हिमवन्त, क्षमाश्रमण, नागार्जुन, भूतदिन्न, दोहित्य, दूष्यगणि और देवर्धि क्षमाश्रमण का परिचय देते हुये तत्कालीन राजवंश, धार्मिक स्थिति एवं अन्य आचार्यों और उनके कार्यों का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार जैन धर्म के मौलिक इतिहास का यह द्वितीय खण्ड गौतम गणधर से लेकर देवर्धिगणि क्षमाश्रमण तक की प्रमुख धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं का तथ्यपरक विवेचन करता है। आचार्य श्री ने भ. महावीर के २७ पट्टधरों का इसमें क्रमिक इतिहास संजोया है। द्वादशांगी के ह्रास एवं विभिन्न वाचनाओं के संबंध में शोध पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। सम सामयिक धर्माचार्यों और राजवंशों के इतिवृत्तों को भी प्रस्तुत किया गया है। जैन इतिहास की जटिल गुत्थियों का प्रामाणिक हल देते हुए भारतीय इतिहास विषयक कतिपय अंधकार पूर्ण प्रकरणों पर नूतन प्रकाश डाला गया है। जैन परम्परा में श्रमणी और श्राविकाओं के योगदान को भी रेखांकित किया गया है। इतिहास जैसे गूढ एवं नीरस विषय का सरस, सुबोध एवं प्रवाह पूर्ण शैली में आलेखन किया गया है। मतभेद के प्रसंगों को उजागर करते हुए उनका समुचित समाधान गवेषणापूर्ण दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया

गया है। मौलिक इतिहास के प्रथम भाग की अपेक्षा द्वितीय भाग का लेखन अधिक श्रमसाध्य रहा होगा, इसमें संदेह नहीं। इस भाग का प्रथम संस्करण सन् १९७४ में वीर निर्वाण के २५०० वें वर्ष में जैन इतिहास समिति जयपुर से निकला था तथा अब तृतीय संस्करण प्रकाशित हो चुका है।

तृतीय भाग -वीर निर्वाण संवत् १००१ से १५०० तक के धर्माचार्यों और विभिन्न परम्पराओं का इस भाग में विस्तृत वर्णन हुआ है। प्रारम्भ में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के उत्तरवर्ती इतिहास से सम्बन्धित कतिपय अज्ञात तथ्यों का ऐतिहासिक दृष्टि से परिचय कराया गया है। इसके अनन्तर वीर निर्वाण से देवर्द्धि काल तक धर्म और श्रमणाचार की चर्चा की गई है और उसी क्रम में चैत्यवासी परम्परा, भट्टारक परम्परा और यापनीय परम्परा की विस्तार से चर्चा करते हुए इनके कार्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। इन परम्पराओं के प्रचार-प्रसार एवं उत्कर्ष में सहयोगी गंग वंश, कदम्ब वंश, राष्ट्रकूट वंश आदि वंशों की भी चर्चा की गई है। आगम के अनुसार जैन श्रमण एवं श्रमणी के वेश तथा धर्म शास्त्र और आचार-विचार का भी निरूपण किया गया है। चैत्यवासी परम्परा का प्रारम्भ वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी में और भट्टारक परम्परा का प्रारम्भ वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी में बताया गया है। भट्टारकों की परम्परा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में चली। भट्टारकों ने ग्रामानुग्राम विहार की परम्परा को त्याग कर चैत्यों, चैत्यालयों अथवा ग्राम नगर के बाहर स्थित घरों में रहना प्रारम्भ कर दिया। श्वेताम्बर भट्टारकों को श्री पूज्यजी और इनके आवासों को आश्रम, मन्दिर जी आदि नामों से और दिगम्बर परम्परा के सिंहासन पीठों को मठ, नसियां आदि नामों से जाना गया। प्रारम्भ में यहाँ शिक्षण का कार्य होता था, किन्तु धीरे-धीरे इनके पास बड़ी धनराशि, आवास भूमि, कृषि भूमि आदि में वृद्धि होने लगी। अनेक शिक्षण संस्थान चैत्यवासी परम्परा, श्वेताम्बर भट्टारक परम्परा, दिगम्बर भट्टारक परम्परा और यापनीय परम्परा के लिए एक ओर वरदान सिद्ध हुए तो दूसरी ओर चारित्रिक अधःपतन के कारण भी बने। इन शिक्षण संस्थानों से न्याय, व्याकरण, साहित्य, जैन दर्शन , संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि के ज्ञाता विद्वान् तैयार हुए तो दूसरी ओर कर्मकाण्ड, अनुष्ठान, पूजा विधान आदि भी प्रचलित हुए। ग्रन्थ में इन परम्पराओं का गवेषणापूर्ण रोचक एवं प्रेरक वर्णन हुआ है।

भगवान् महावीर के २८ वें पट्टधर आचार्य श्री वीरभद्र से लेकर ४७ वें पट्टधर आचार्य श्री कलशप्रभस्वामी तथा उनके युग की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं को इस ग्रन्थ में क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही शुद्ध श्रमणाचार के क्रमिक ह्रास एवं विकृति जन्य परम्पराओं, सम सामयिक धर्माचार्यों एवं राजवंशों का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ भाग – इस भाग में ४८ वें पट्टधर आचार्य उमणऋषि से लेकर ६३ वें पट्टधर आचार्य श्री रूपजी
स्वामी एवं उनके काल के धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक इतिवृत्त का विवरण प्राप्त होता है। यह भाग मौलिक
इतिहास के तृतीय भाग का पूरक ग्रंथ है। इसमें लोंकाशाह की क्रांति एवं उनकी परम्परा का परिचय दिया गया है।
अन्य भागों की तरह इतिहास का यह भाग भी गहन गवेषणा एवं शोध के अनन्तर प्रकाशित हुआ है। पूर्व पीठिका
के रूप में ८० पृष्ठों में भूले बिसरे ऐतिहासिक तथ्यों, धार्मिक क्रांतियों और भारत पर मुस्लिम राज्य जैसे विषयों पर
ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है। कुमारपाल, अजय देव, खरतरगच्छ, उपकेश गच्छ, अंचलगच्छ, तपागच्छ,
बड़गच्छ आदि गच्छों का वर्णन किया गया है। आचार्य फल्गुमित्र, उद्योतनसूरि, जिनेश्वरसूरि अभयदेवसूरि (नवांगी
वृत्तिकार) जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्रसूरि आदि आचार्यों का परिचय भी इस ग्रंथ में उपलब्ध है।
लोंकागच्छ की चर्चा करते हुए लोंकाशाह के ३४ बोल, ५८ बोल आदि का भी निरूपण हुआ है। एक पातरिया

(पोतियाबंद) गच्छ की पट्टावली भी दी गई है। ८६८ पृष्ठों का यह भाग सर्वप्रथम १९८७ ई. में प्रकाशित हुआ था।

जैनधर्म का मौलिक इतिहास के अन्तिम दो भागों का आलेखन एवं संपादन श्री गजसिंह जी राठौड़ ने किया है।

विशालकाय जैन धर्म के मौलिक इतिहास के चारों भागों का प्रकाशन जैन इतिहास समिति लाल भवन चौड़ा रास्ता, जयपुर से हुआ है। अब पुनः प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर द्वारा किया जा रहा है।

(४) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर

इसमें अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और भ. महावीर नामक अन्तिम तीन तीर्थंकरों का जीवन चरित्र और उनके काल की घटनाओं का ऐतिहासिक आधार पर वर्णन हुआ है। यह पुस्तक 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के प्रथम भाग का ही एक अंश है। इसका प्रकाशन भी जैन इतिहास समिति जयपुर द्वारा ही किया गया है।

(ई) काव्य, कथा एवं अन्य साहित्य

(१) गजेन्द्र-पद-मुक्तावली

आचार्य श्री का काव्य-रचना पक्ष भी भावों की पारदर्शिता के कारण अत्यन्त समृद्ध एवं लोकप्रिय है। आचार्य श्री के द्वारा जो काव्य रचना की गई है वह सम्पूर्ण रूप में तो उपलब्ध नहीं है, किन्तु जो रचनाएँ उपलब्ध हो सकी हैं, उनमें से ७० पद्य रचनाएँ गजेन्द्र पद मुक्तावली के रूप में प्रकाशित हैं। इनमें कुछ प्रार्थनाएँ हैं, कुछ आध्यात्मिक चेतना को स्फुरित करने वाले भजन और पद हैं तो कुछ काव्य सामायिक, स्वाध्याय, सेवा, गुरुगुण-गान और समाज चेतना से सम्बन्धित हैं। कतिपय रचनाएँ पर्युषण, रक्षाबन्धन, वर्षा ऋतु आदि पर्वों से भी सम्बद्ध हैं। 'जगत कर्त्ता नहीं ईश्वर' जैसी कुछ पद्य रचनाएँ दार्शनिक हैं तो "प्रतिदिन जप लेना" जैसी कतिपय रचनाएँ इतिहास और परम्परा बोध को समेटे हुए हैं। आचार्य श्री के काव्य को डॉ. नरेन्द्र जी भानावत ने चार भागों में विभक्त किया है–१. स्तुति काव्य २. उपदेश काव्य ३. चरित काव्य ४. पद्यानुवाद। स्तुति में भक्त अपने आराध्य के प्रति निश्छल भाव से अपने को समर्पित करता है। आचार्य श्री के आराध्य वीतराग प्रभु हैं, जो रागद्वेष के विजेता हैं। भगवान् ऋषभदेव, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए आचार्य श्री ने उनके गुणों के प्रति अपने आपको समर्पित किया है। वर्धमान महावीर की स्तुति करते हुए आचार्य श्री कहते हैं-

श्री वर्धमान जिन, ऐसा हमको बल दो
घट घट में सबके, आत्मभाव प्रगटा दो। टेर।
प्रभु वैर-विरोध का भाव न रहने पावे।
विमल प्रेम सबके घट में सरसावे।
अज्ञान मोह को, घट से दूर भगा दो॥घट॥१॥

आचार्य श्री को गुरु के समान और कोई उपकारी नजर नहीं आता, इसलिए गुरु-वन्दना करते हुए आचार्य श्री कहते हैं-

उपकारी सद्गुरु दूजा, नहीं कोई संसार।
मोह भंवर में पड़े हुए को, यही बड़ा आधार॥

उपदेशकाव्य के रूप में 'गजेन्द्र पद मुक्तावली' में अनेक रचनाएँ संगृहीत हैं यथा- "समझो चेतन जी अपना

रूप," "मेरे अन्तर भया प्रकाश", "मैं हूँ उस नगरी का भूप", "सतगुरु ने बोध बताया", "जीवन उन्नत करना चाहो", "घणो सुख पावेला", "शिक्षा दे रहा जी हमको", "सेवा धर्म बड़ा गम्भीर" आदि। इनमें अधिकांश रचनाएँ आत्मबोध का उपदेश देती हैं, कुछ रचनाएँ आत्मबोध और समाजबोध दोनों से जुड़ी हुई हैं। "हे उत्तमजन आचार", "सांचा श्रावक तेने कहिए", "प्यारी बहनों समझो", "समझो समझो री माता", 'जिनराज भजो सब दोष तजो' आदि इसी प्रकार के भजन या पद हैं। आत्मबोध की दृष्टि से आचार्य श्री की अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक की शब्दावली यहाँ प्रस्तुत है-

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश।।टेर।।
तन धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश।
पुद्गल को अपना कर मैंने, किया स्वत्व का नाश।।१।।
रोग शोक नहिं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास
सदा शान्तिमय मैं हूँ मेरा, अचल रूप है खास।।२।।

स्वाध्याय और सामायिक आचार्य श्री के प्रमुख दो उपदेश रहे हैं। स्वाध्याय को वे जन-जन के लिए आवश्यक मानते हैं-

स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना है सद्ज्ञान बिना।
घर घर गुरुवाणी गान करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो।

आत्म-ज्योति प्रकट करने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है तथा स्वाध्याय से ही ज्ञान सम्भव है, अतः वे कहते हैं-

बिन स्वाध्याय ज्ञान नहीं होगा, ज्योति जगाने को
राग द्वेष की गांठ गले नहीं, बोधि मिलाने को।।

जीवन का निर्माण करने के लिए जिस प्रकार स्वाध्याय उपयोगी है, उसी प्रकार सामायिक भी आवश्यक है-

अगर जीवन बनाना है, तो सामायिक तू करता जा।
हटाकर विषमता मन की, साम्यरस पान करता जा।।
मिले धन सम्पदा अथवा, कभी विपदा भी आ जावे।
हर्ष और शोक से बचकर, सदा एक रंग रहता जा।।

सामायिक जीवन उन्नति का साधन है। जिस प्रकार तन की पुष्टि के लिए व्यायाम आवश्यक है उसी प्रकार मन के पोषण और आध्यात्मिक बल के लिए सामायिक आवश्यक है—

जीवन उन्नत करना चाहो, तो सामायिक साधना कर लो।
आकुलता से बचना चाहो, तो.... सा. ।।टेर।।
तन पुष्टि-हित व्यायाम-चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला
आध्यात्मिक बल पाना चाहो, तो.... ।।सा.।।

महिलाओं को शिक्षित करने की दृष्टि से भी आचार्य श्री ने अनेक भजनों का निर्माण किया। कभी बहनों के रूप में तो कभी माताओं के रूप में, संबोधित करते हुए उन्हें हितशिक्षा प्रदान की है-

थारो थारो री सोभागिन शील की चून्दडी जी ॥टेर ॥

झूठे भूषण में मत राचो, शील धर्म को भूषण सांचो।

राखो तन-मन से थे प्रेम, एक सत धर्म से जी ॥

कुछ भजन पर्वो से सम्बद्ध हैं, रक्षाबन्धन पर्व पर जीव की यतना करने का संदेश देते हुए आचार्य श्री फरमाते हैं-

जीव दया ही रक्षा भारी, मन में बांधी जे।

इह भव पर भव पामे साता, अविचल पद लीजे ॥

दीपावली पर दीपक की तरह साधना रत रहने की प्रेरणा देते हुए आचार्य श्री फरमाते हैं-

दीपक ज्यों जीवन जलता है, मूल्यवान भाया रे जगत् में।

सत्पुरुषों का जीवन परहित, जलता शोभाया रे जगत् में।

वर्षाऋतु में धर्म की करणी करने के लिए प्रेरणा देते हुए आचार्य श्री फरमाते हैं-

जीव की जतना कर लीजे रे।

आयो वर्षावास धर्म की करणी कर लीजे रे।

दया धर्म को मूल समझ कर, समता रस पीजे रे॥

आचार्य श्री ने अपनी काव्य-रचना में मूलत: आध्यात्मिक पक्ष को ही प्रस्तुत किया है। सामाजिक अनुष्ठानों, पर्वों और उत्सवों को भी आपने काव्य में आध्यात्मिक रंग दिया है। आचार्यप्रवर ने जीवन की विषमता को हटाकर समता रस का पान कराने के साथ आदर्श समाज के निर्माण का भी मार्ग प्रशस्त किया है।

अप्रकाशित पद्य-आचार्य श्री के अनेक पद्य अप्रकाशित हैं और वे इस समय अनुपलब्ध बने हुए हैं।

(२) स्वाध्याय - माला (प्रथम भाग)

पूज्य आचार्यप्रवर का स्वाध्याय पर विशेष बल था। आप स्वयं भी स्वाध्याय करते थे तथा आगन्तुकों को भी स्वाध्याय के लिए प्रेरित करते थे।

सन् १९४७ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल का कार्यालय जोधपुर में था। उस समय जैन कन्या बोधिनी के प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन के पश्चात् तृतीय पुष्प के रूप में स्वाध्याय-माला (प्रथम भाग) का प्रकाशन हुआ था। 'स्वाध्याय-माला' पुस्तक के इस भाग में 'वीर जिनस्तव' (अभयदेवसूरि रचित) एवं 'गौतम कुलक' नामक प्राकृत भाषा की कृतियों का शब्दार्थ, भावार्थ के साथ विवेचन उपलब्ध है। प्रत्येक गाथा का हिन्दी में छायानुवाद भी दिया गया है। वीर जिनस्तव एवं गौतमकुलक इस कृति के पूर्व अप्रकाशित थे। उन्हें पाण्डुलिपि से पूज्य आचार्यप्रवर ने विवेचन सहित तैयार किया था। पुस्तक के परिशिष्ट में गौतम कुलक से सम्बद्ध १५ कथानक संक्षेप में सरस भाषा में दिए गए हैं। कथानकों के शीर्षक हैं — १. सागरदत्त सेठ २. जम्बू स्वामी ३. धन्ना सेठ ४. कुण्डरीक ५. शालिभद्रजी ६. महात्मा गजसुकुमाल ७. महाराजा उदायी ८. अरणक श्रावक ९. बाहुबली १०. मरीचि ११. भगवान मल्लिनाथ १२. कपिल ब्राह्मण १३. चित्त मुनि १४. सेठ सुदर्शन १५. अर्जुन माली।

पुस्तक में दोनों प्राचीन कृतियों का बहुत ही सुन्दर विवेचन हुआ है। तात्त्विक व्याख्या के उदाहरणों एवं सूक्तिपरक उद्धरणों का भी प्रयोग हुआ है। बाद में आत्मा के सम्बन्ध में शब्दार्थ सहित १४ गाथाएँ, बारह भावनाओं का विवेचन एवं आध्यात्मिक प्रार्थनाएँ दी गई हैं। सामायिक में स्वाध्याय करने की अच्छी सामग्री से सुसज्जित यह पुस्तक निश्चय ही उस समय पाठकों के लिए पूर्णतः उपयोगी एवं प्रेरक सिद्ध हुई होगी। आज भी पुस्तक की उपयोगिता असंदिग्ध है। इसके पुनः प्रकाशन की आवश्यकता है। पुस्तक का सम्पादन श्री रत्नकुमार जी जैन 'रत्नेश' ने किया है।

(३) अमरता का पुजारी

इस पुस्तक में रत्नवंश के षष्ठ पट्टधर एवं आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के गुरुवर्य पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज साहब का जीवन-चरित्र है। पुस्तक का लेखन युगमनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के तत्त्वावधान में विद्वान् पण्डित श्री दुःखमोचन जी झा के द्वारा किया गया है तथा सम्पादन उनके सुपुत्र पण्डित शशिकान्त जी झा ने किया है। पुस्तक का प्रकाशन संवत् २०११ में हुआ। लगभग २०० पृष्ठों में ५७ प्रकरणों के माध्यम से लेखक ने आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के जीवन का साहित्यिक रूप से सहज एवं प्रभावी रेखांकन किया है। इस पुस्तक पर उपाध्याय कवि अमरमुनि जी म.सा. की टिप्पणी इस प्रकार है-

"श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आदरणीय सहमंत्री स्वनाम धन्य पं. मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज शत-सहस्रशः धन्यवादार्ह हैं कि जिनके विचार प्रधान निर्देशन के फलस्वरूप जीवन चरित्र रूप यह सुन्दर कृति जनता के समक्ष आ सकी। सहमन्त्री जी की ओर से अपने महामहिम गुरुदेव के चरणों में अर्पण की गई यह सुवासित श्रद्धाञ्जलि जैन इतिहास की सुदीर्घ परम्परा में चिर स्मरणीय रहेगी।"

"श्रद्धेय जैनाचार्य पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के सुख्यात जीवन की पुनीत गाथा के कुछ अंश सुन गया, बड़े चाव से, बड़े भाव से। सुन कर हृदय हर्ष से पुलकित हो उठा। कुछ विशिष्ट प्रसंगों पर तो अन्तर्मन भावना की वेगवती लहरों में डूब-डूब सा गया।

विद्वान् लेखक की भाषा प्रांजल है, पुष्ट है और है मन को गुदगुदा देने वाली। भावांकन स्पष्ट है, प्रभावक है और जीवन लक्ष्य को ज्योतिर्मय बना देने वाला है। भाषा और भाव दोनों ही इतने सजीव एवं सप्राण हैं कि पाठक की अन्तरात्मा सहसा उच्चतर आदर्शों की स्वर्ण शिखाओं को स्पर्श करने लगती हैं।"

उपाध्याय कवि अमरमुनिजी की टिप्पणी का उपर्युक्त अंश इस पुस्तक के प्रारम्भ में उनके द्वारा लिखित 'अभिनन्दन' से उद्धृत है। आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. का जन्म कार्तिक शुक्ला पंचमी विक्रम संवत् १९१४ को जोधपुर में हुआ था, दीक्षा माघ शुक्ला पंचमी विक्रम संवत् १९२७ को जयपुर में हुई थी, आचार्यपद फाल्गुन कृष्णा ८ वि. संवत् १९७२ को अजमेर में दिया गया था तथा ५६ वर्ष संयम पालने के पश्चात् स्वर्गवास जोधपुर में श्रावण कृष्ण अमावस को वि.सं. १९८३ में हुआ था।

आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म. अनेक गुणगणों से विभूषित थे। परमत-सहिष्णुता, वत्सलता, गम्भीरता, सरलता, सेवाभाविता, विनयशीलता, मर्मज्ञता, आगमज्ञता और नीतिमत्ता ये आचार्य श्री के प्रमुख गुण थे। उनके संबंध में निम्नांकित वचन सत्य था-

गुरु कारीगर सारिखा, टांकी वचन रसाल।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार॥

(४) सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी

पुस्तक के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसमें सिद्धान्तगत प्रश्नों के उत्तर निहित हैं। वस्तुतः यह पुस्तक पर्युषण पर्वाराधन हेतु बाहर जाने वाले स्वाध्यायियों के आवश्यक ज्ञानवर्धन की दृष्टि से रचित है। प्रश्न सभी महत्त्वपूर्ण एवं स्वाध्यायियों के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करते हैं। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का सम्पादन श्री पारसमल जी प्रसून के द्वारा किया गया था। द्वितीय एवं तृतीय संस्करण का सम्पादन श्री कन्हैयालाल जी लोढा ने किया है। वर्तमान उपलब्ध पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में तात्त्विक, दार्शनिक एवं वर्तमान युग से सम्बन्धित ३१ प्रश्नों के उत्तर हैं। द्वितीय खण्ड में अन्तगड सूत्र का वाचन करते समय उठने वाले प्रश्न एवं उनके समाधान हैं। सभी प्रश्नों का समाधान तर्कसम्मत एवं युक्तियुक्त है। आधुनिक नवीन प्रश्नोत्तरों, को जोड़ देने से द्वितीय संस्करण की उपयोगिता बढ़ गई है। पुस्तक में संसार, ईश्वर, जीव, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, पुरुषार्थ, क्रियाकाण्ड, अस्वाध्याय, अचित्त-जल, पौषध आदि के सम्बन्ध में तथा दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मतभेद की भी विशद तात्त्विक चर्चा हुई है। अन्तगडदसा सूत्र के संबंध में अनेक प्रश्न पाठक के मन-मस्तिष्क में उठते रहते हैं, उनमें से कुछ का तार्किक समाधान इस पुस्तक में उपलब्ध होता है। जैसे-एक प्रश्न यह है कि अर्जुनमाली द्वारा की गई ११४१ मानव -हत्याओं का पाप अर्जुन को लगा या यक्ष को या अन्य किसी को। इसी प्रकार एक अन्य सैद्धान्तिक प्रश्न है - सम्यग्दृष्टि श्रावक के लिए धार्मिक दृष्टि से देवाराधना एवं तदर्थ तपाराधना उचित है क्या ? इस प्रकार के अन्तगडसूत्र के तात्त्विक प्रश्नों का सम्यक् समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया गया है।

आचार्यप्रवर के मार्गदर्शन में तैयार हुई यह पुस्तक न केवल स्वाध्यायियों के लिए, अपितु प्रत्येक जिज्ञासु के लिए ज्ञानवर्धक एवं चिन्तन को नई दिशा देने वाली है। पुस्तक का द्वितीय संस्करण संवत् २०२९ में एवं तृतीय संस्करण सं. २०३७ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा प्रकाशित कराया गया है।

(५) जैन स्वाध्याय सुभाषित माला

सुभाषितों का जीवन-उन्नयन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. द्वारा इसी दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा के सुभाषित संकलित किए गए थे, जिनका प्रथम प्रकाशन सन् १९६८ में हुआ था। अब द्वितीय संस्करण सन् १९९८ में प्रकाशित हुआ है, जिसके अन्तर्गत ३३ विभिन्न विषयों पर सुभाषित संकलित हैं। सुभाषितों के विषय हैं - साधु महिमा, सज्जन स्वभाव, लोभ, सन्तोष, दान, क्रोध, सत्य, दया, सत्संग, परिग्रह, सन्मित्र, दुर्जन, तप, विद्या, वैराग्य, क्षमा, अहिंसा आदि।

(६) कुलक संग्रह

दान, शील , तप और भाव को मोक्ष के साधन रूप में निरूपित किया जाता है। इन साधनों में प्रत्येक पर कुलक के रूप में प्राकृत गाथाओं का संकलन प्राप्त होता है। ये कुलक किसी एक आचार्य द्वारा रचित हैं या संग्रह, स्पष्ट रूप से इस संबंध में कहना कठिन है, क्योंकि इन कुलकों के अन्त में रचनाकार या समय का निर्देश नहीं है। भाषा शैली की दृष्टि से यह मध्यकालीन रचना प्रतीत होती है। आचार्यप्रवर श्री हस्ती ने दान, शील, तप और भाव

पर प्राप्त इन गाथाओं के महत्त्व का आकलन कर इनका हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन करने के साथ सम्बद्ध कथाओं का भी लेखन किया है। कथाओं के लेखन में अभिधान राजेन्द्र कोष, बोल संग्रह, सोलह सती और टीका ग्रन्थों का आलम्बन लिया गया है। दान कुलक में १८ गाथाएँ, शील कुलक में २० गाथाएँ, तप कुलक में २० गाथाएँ तथा भाव कुलक में १८ गाथाएँ हैं। प्रत्येक गाथा की हिन्दी में छाया पद्य के रूप में दी गई है, फिर उसके पश्चात् शब्दार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ दिए गए हैं। इसमें आचार्य श्री के प्राकृत बोध और विवेचन वैशिष्ट्य का दिग्दर्शन होता है। पुस्तक में कुल ४७ कथाएँ हैं, जिनमें दान कुलक की ८, शील कुलक की १६, तप कुलक की १३ और भाव कुलक की १० कथाएँ हैं। कथाओं का लेखन संक्षेप में विषय को स्पष्ट करते हुए किया गया है। दान प्रकरण की कथाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं—१. श्रेयांस कुमार २. चन्दनबाला ३. रेवती ४. कयवन्ना ५. शालिभद्र ६. धन सेठ, ७. बाहुबली ८. मूलदेव। शील से सम्बन्धित कथाएँ इस प्रकार हैं- १. राजमती २. सुभद्रा ३. नर्मदा सुन्दरी ४. कलावती ५. शीलवती ६. सुलसा ७. स्थूलभद्र ८. वज्रस्वामी ९. सुदर्शन सेठ, १०. सुन्दरी ११. सुनन्दा १२. चेलना १३. मनोरमा १४. अंजना १५. मृगावती १६. अच्चंकारिय भट्टा। तप प्रकरण की कथाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं —१. बाहुबली २. गौतम गणधर ३. सनत्कुमार ४. दृढप्रहारी चोर ५. नन्दीसेन ६. हरिकेशी ७. ढंढण कुमार ८. अर्जुनमाली ९. धन्ना मुनि १०. महासती सुन्दरी ११. शिवकुमार १२. बलभद्र मुनि १३. विष्णु कुमार। भाव प्रकरण में इन कथाओं को शामिल किया गया है- १. राजर्षि प्रसन्नचन्द्र २. मृगावती ३. इलापुत्र ४. कपिल मुनि ५. करगड मुनि ६. मरुदेवी ७. पुष्पचूला ८. स्कन्दक शिष्य ९. दर्दुर १०. चण्डरुद्र।

कुलक संग्रह पुस्तक की उपयोगिता असंदिग्ध है। इसके पूर्व 'स्वाध्याय पाठमाला' प्रथम भाग में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के द्वारा 'गौतम कुलक ' का प्रकाशन किया गया था। प्रस्तुत पुस्तक मण्डल के द्वारा सन् १९६५ ईस्वी में प्रकाशित की गई थी।

(७) पर्युषण पर्व पदावली

इस पुस्तक की रचना स्वाध्यायियों के द्वारा पर्युषण पर्वाराधन के अवसर पर धर्मोपदेश करने के लक्ष्य से की गई प्रतीत होती है। पुस्तक के दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में अंतगड सूत्र के कथाभाग के क्रम से उसके भावों को प्रभावशाली रीति से प्रस्तुत करने वाले पद्यों का संकलन है। इसके अतिरिक्त इस खण्ड में पर्युषण, क्षमा, संयम, धर्म, षट् कर्माराधन, स्वाध्याय, सामायिक, क्रोध-निषेध आदि की प्रेरणा देने वाले भजन या गीत भी संकलित हैं। इस प्रकार प्रथम खण्ड उपदेशपरक पद्यों से सुशोभित है। द्वितीय खण्ड में कतिपय चरित्रात्माओं को प्रस्तुत करने वाले पद्यबद्ध चरित हैं। 'आदर्श चरित्रावली' नामक इस खण्ड में द्रौपदी, इन्द्र और नमिराज संवाद, भृगु पुरोहित धर्मकथा, कान्हड कठियार कथा, मृगापुत्र और माता आदि के प्रेरणाप्रद जीवन-चरित्र हिन्दी भाषा में संकलित हैं। पर्युषण के दिनों में इनका चौपई के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

पुस्तक के प्रारम्भ में पर्युषण के आठ दिनों और संवत्सरी की ऐतिहासिकता पर आचार्य श्री के द्वारा प्रामाणिक प्रकाश डाला गया है।

(उ) अप्रकाशित / अनुपलब्ध साहित्य

आचार्य प्रवर के प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य का ही ऊपर परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित साहित्य भी जानकारी में आया है, यथा —

(१) तत्त्वार्थ सूत्र (पद्यबद्ध)

वाचक उमास्वाति द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में मान्य ग्रन्थ है, जिसमें जैन दर्शन का सार आ गया है । आचार्यप्रवर ने तत्त्वार्थसूत्र को संस्कृत-पद्यों में ढालने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आपने इन पद्यों में तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रार्थ को ही ग्रहण नहीं किया, वरन् विवक्षित विषय को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। तत्त्वार्थसूत्र में दश अध्याय हैं, आपने ६७३ पद्यों में इन अध्यायों की विषयवस्तु को गूंथा है। यह ग्रन्थ प्रकाशन की अपेक्षा रखता है। इसकी पाण्डुलिपि प्राप्त है।

(२) ध्यान सम्बन्धी पुस्तक

आचार्यप्रवर के निर्देशन में ध्यानविषयक पुस्तक तैयार हुई थी, किन्तु न तो यह प्रकाशित हुई और न ही इसकी पाण्डुलिपि का अता-पता है।

(३) स्याद्वादमंजरी

आपने स्याद्वादमंजरी का हिन्दी विवेचन तैयार कराया था, किन्तु इस पुस्तक की भी पाण्डुलिपि कहीं खो गई है।

(४) मुक्ति सोपान

आपने जैनधर्म-दर्शन की जानकारी हेतु मुक्ति सोपान एक पुस्तक तैयार की थी, किन्तु यह अपूर्ण एवं अप्रकाशित है।

(५) षड्दर्शनसमुच्चय

श्री राजशेखरसूरि विरचित षड्दर्शनसमुच्चय का आपने विवेचन तैयार कराया था। इसकी पाण्डुलिपि उपलब्ध है एवं प्रकाशनाधीन है।

इनके अतिरिक्त आपकी दैनन्दिनियाँ भी साहित्य का ही रूप हैं। उनमें जो सारभूत वाक्य उपलब्ध हैं, वे जीवन के मार्गदर्शक हैं। उनमें ग्राम, नगर, श्रावक, विशेष घटना आदि की जानकारी भी उपलब्ध होती है। उपर्युक्त विवरण के अलावा भी आपका साहित्य सम्भव है, जो जानकारी में न आ सका हो। यदि किसी को जानकारी हो तो सूचित करे।

■

काव्य - साधना

(आचार्य श्री की प्रमुख चयनित रचनाएँ)

(१)

श्री शान्तिनाथ भगवान की प्रार्थना

(तर्ज- शिव सुख पाना हो तो प्यारे त्यागी बनो)

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति, सब मिल शान्ति कहो ॥टेर॥
विश्वसेन अचिरा के नंदन, सुमिरन है सब दुःख निकंदन ।
अहो रात्रि वंदन हो, सब मिल शान्ति कहो ॥१॥ॐ॥
भीतर शान्ति बाहिर शान्ति, तुझमें शान्ति मुझमें शान्ति ।
सबमें शान्ति बसाओ, सब मिल शान्ति कहो ॥२॥ॐ॥
विषय-कषाय को दूर निवारो, काम-क्रोध से करो किनारो ।
शान्ति साधना यों हो, सब मिल शान्ति कहो ॥३॥ॐ॥
शान्ति नाम जो जपते भाई, मन विशुद्ध हिय धीरज लाई ।
अतुल शान्ति उन्हें हो, सब मिल शान्ति कहो ॥४॥ॐ॥
प्रातः समय जो धर्मस्थान में, शान्ति पाठ करते मृदु स्वर में ।
उनको दुःख नहीं हो, सब मिल शान्ति कहो ॥५॥ॐ॥
शान्ति प्रभु-सम समदर्शी हो, करे विश्व हित जो शक्ति हो ।
'गजमुनि' सदा विजय हो, सब मिल शान्ति कहो ॥६॥ॐ॥

(२)

सब जग एक शिरोमणि तुम हो

(तर्ज- बालो पांखा बाहिर आयो माता बेन सुनावे यूँ)

सतगुरु ने यह बोध बताया, नहिं काया नहिं माया तुम हो ॥
सोच समझ चहुँ ओर निहारो, कौन तुम्हारा अरु को तुम हो ॥१॥
हाथ-पैर नहीं, शिर भी न तुम हो, गर्दन, भुजा, उदर नहीं तुम हो ।
नेत्रादिक इन्द्रिय नहीं तुम हो, पर सबके संचालक तुम हो ॥२॥
अस्थि, मांस, मज्जा नहीं तुम हो, रक्त, वीर्य, भेजा नहीं तुम हो ।

श्वास न प्राण रूप भी तुम हो, सबमें जीवनदायक तुम हो ॥३ ॥
पृथ्वी, जल, अग्नि नहीं तुम हो, गगन अनिल भी नहिं तुम हो ।
मन, वाणी, बुद्धि नहीं तुम हो, पर सबके संयोजक तुम हो ॥४ ॥
मात, तात, भाई नहीं तुम हो, वृद्ध नारी-नर भी नहीं तुम हो ।
सदा एक अरु पूर्ण निराले, पर्यायों के धारक तुम हो ॥५ ॥
जीव, ब्रह्म, आतम अरु हंसा 'चेतन' पुरुष रूह तुम ही हो ।
नाम रूपधारी नहिं तुम हो, नाम वाच्य फिर भी तो तुम हो ॥६ ॥
कृष्ण, गौर वर्ण नहीं तुम हो, कर्कश, कोमल भाव न तुम हो ।
रूप, रंग धारक नहिं तुम हो, पर सब ही के ज्ञायक तुम हो ॥७ ॥
भूप, कुरूप, सुरूप न तुम हो, सन्त, महन्त, गणी नहिं तुम हो ।
'गजमुनि' अपना रूप पिछानो, सब जग एक शिरोमणि तुम हो ॥८ ॥

(३)

आत्म-बोध

(तर्ज-गुरुदेव हमारा कर दो...)

समझो चेतनजी अपना रूप, यो अवसर मत हारो ॥टेर ॥
ज्ञान दरस-मय, रूप तिहारो, अस्थि-मांस मय, देह न थारो ॥
दूर करो अज्ञान, होवे घट उजियारो ॥१ ॥समझो ॥
पोपट ज्यूं पिंजर बंधायो, मोह कर्म वश स्वांग बनायो ।
रूप धरे हैं अनपार, अब तो करो किनारो ॥२ ॥समझो ॥
तन-धन के नहीं, तुम हो स्वामी, ये सब पुद्गल पिंड हैं नामी ।
सत् चित् गुण भण्डार, तू जब देखन हारो ॥३ ॥समझो ॥
भटकत-भटकत नर तन पायो, पुण्य उदय सब योग सवायो ।
ज्ञान की ज्योति जगाय, भरम तम दूर निवारो ॥४ ॥समझो ॥
पुण्य-पाप का तू है कर्त्ता, सुख-दुःख फल का भी तूँ भोक्ता ।
तूं ही छेदनहार, ज्ञान से तत्त्व विचारो ॥५ ॥समझो ॥
कर्म काट कर मुक्ति मिलावे, चेतन निज पद को तब पावे ।
मुक्ति के मार्ग चार, जानकर दिल में धारो ॥६ ॥समझो ॥
सागर में जलधार समावे, त्यूं शिवपद में ज्योति मिलावे ।
होवे 'गज' उद्धार, अचल है निज अधिकारो ॥७ ॥समझो ॥

(४)
जागृति-सन्देश
(तर्ज- जाओ जाओ रे मेरे साधु)

जागो जागो हे आत्मबंधु मम, अब जल्दी जागो ॥टेर॥
अनन्त-ज्ञान श्रद्धा-बल के हो, तुम पूरे भंडार ।
बने आज अल्पज्ञ मिथ्यात्वी, खोया सद् आचार ॥१॥जागो॥
कामदेव और भक्त सुदर्शन, ने दी निद्रा त्याग ।
नत मस्तक देवों ने माना, उनका सच्चा त्याग ॥२॥जागो॥
अजात-शत्रु भूपति ने रक्खा, प्रभु भक्ति से प्यार ।
प्रतिदिन जिनचर्या सुन लेता, फिर करता व्यवहार ॥३॥जागो॥
जग प्रसिद्ध भामाशाह हो गए, लोक चन्द्र इस बार ।
देश धर्म अरु आत्म धर्म के, हुए कई आधार ॥४॥जागो॥
तुम भी हो उनके ही वंशज, कैसे भूले भान ।
कहाँ गया वह शौर्य तुम्हारा, रक्खो अपनी शान ॥५॥जागो॥
तन-धन-जीवन लगा मोर्चे, अब ना रहो अचेत ।
देखो जग में सभी पंथ के, हो गये लोग सचेत ॥६॥जागो॥
तन-धन-लज्जा-त्याग-धर्म का, कर लो अब सम्मान ।
'गजमुनि' विमल कीर्ति अरु जग का, हो जावे उत्थान ॥७॥जागो॥

(५)
अन्तर भया प्रकाश
(तर्ज- दोरो जैन धर्म को मारग...)

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आस ॥टेर॥
काल अनंत झूला भव वन में, बंधा मोह की पाश ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, भाव से बना जगत का दास ॥१॥मेरे॥
तन-धन-परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश ।
पुद्गल को अपना कर मैंने, किया स्वत्व का नाश ॥२॥मेरे॥
रोग-शोक नहिं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास ।
सदा शान्तिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास ॥३॥मेरे॥
इस जग की ममता ने मुझको डाला गर्भावास ।

अस्थि-मांस मय अशुचि देह में, मेरा हुआ निवास ॥४॥मेरे॥
ममता से संताप उठाया, आज हुआ विश्वास ।
भेद ज्ञान की पैनी धार से, काट दिया वह पाश ॥५॥मेरे॥
मोह मिथ्यात्व की गांठ गले तब, होवे ज्ञान प्रकाश ।
'गजमुनि' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आस ॥६॥मेरे॥

(६)

आत्म-स्वरूप

(तर्ज- दोरो जैन धर्म को मारग...)

मैं हूँ उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया धूप ॥टेर॥
तारामंडल की न गति है, जहाँ न पहुंचे सूर ।
जगमग ज्योति सदा जगती है, दीसे यह जग कूप ॥१॥मैं॥
मैं नहीं श्याम-गौर तन भी हूँ, मैं न सुरूप-कुरूप ।
नहिं लम्बा, बौना भी मैं हूँ, मेरा अविचल रूप ॥२॥मैं॥
अस्थि-मांस मज्जा नहीं मेरे, मैं नहिं धातु रूप ।
हाथ, पैर, सिर आदि अंग में, मेरा नहीं स्वरूप ॥३॥मैं॥
दृश्य जगत पुद्गल की माया, मेरा चेतन रूप ।
पूरण गलन स्वभाव धरे तन, मेरा अव्यय रूप ॥४॥मैं॥
श्रद्धा नगरी वास हमारा, चिन्मय कोष अनूप ।
निराबाध सुख में भूलूँ मैं, सद्चित् आनन्द रूप ॥५॥मैं॥
शक्ति का भंडार भरा है, अमल अचल ममरूप ।
मेरी शक्ति के सन्मुख नहीं, देख सके अरि भूप ॥६॥मैं॥
मैं न किसी से दबने वाला, रोग न मेरा रूप ।
'गजेन्द्र' निज पद को पहचाने, सो भूपों का भूप ॥७॥मैं॥

(७)

स्वाध्याय-सन्देश

तर्ज- (नवीन रसिया)

करलो श्रुतवाणी का पाठ, भविकजन मन मल हरने को ॥टेर॥
बिन स्वाध्याय ज्ञान नहीं होगा, ज्योति जगाने को ।
राग-रोष की गांठ गले नहीं, बोधि मिलाने को ॥१॥कर लो॥

जीवादिक स्वाध्याय से जानो, करणी करने को ।
बंध मोक्ष का ज्ञान करो, भव भ्रमण मिटाने को ॥२॥कर लो॥
तुंगियापुर में स्थविर पधारे, ज्ञान सुनाने को ।
सुज्ञ उपासक मिलकर पूछे, सुरपद पाने को ॥३॥कर लो॥
स्थविरों के उत्तर थे, सब जन मन हर्षाने को ।
गौतम पूछे स्थविर समर्थ है, उत्तर देने को ॥४॥कर लो॥
जिनवाणी का सदा सहारा, श्रद्धा रखने को ।
बिन स्वाध्याय न संगत होगी, भव दुःख हरने को ॥५॥कर लो॥
सुबुद्धि ने भूप सुधारा, भव जल तिरने को ।
पुद्गल परिणति को समझाकर धर्म दीपाने को ॥६॥कर लो॥
नित स्वाध्याय करो मन लाकर, शक्ति बढ़ाने को ।
'गजमुनि' चमत्कार कर देखो, निज बल पाने को ॥७॥कर लो॥

(८)

स्वाध्याय करो

(तर्ज- उठ भोर भई टुक जाग सही...)

जिनराज भजो, सब दोष तजो, अब सूत्रों का स्वाध्याय करो।
मन के अज्ञान को दूर करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥टेर॥
जिनराज की निर्दूषण वाणी, सब सन्तों ने उत्तम जानी ।
तत्त्वार्थ श्रवण कर ज्ञान करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥१॥
स्वाध्याय सुगुरु की वाणी है, स्वाध्याय ही आत्म कहानी है ।
स्वाध्याय से दूर प्रमाद करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥२॥
स्वाध्याय प्रभु के चरणों में, पहुंचाने का साधन जानो ।
स्वाध्याय मित्र, स्वाध्याय गुरु, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥३॥
मत खेल-कूद निद्रा, विकथा, में जीवन धन बर्बाद करो ।
सद्ग्रन्थ पढ़ो, सत्संग करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥४॥
मन-रंजन नाविल पढ़ते हो, यात्रा विवरण भी सुनते हो ।
पर निज-स्वरूप ओलखने को, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥५॥
स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना हैं सद्ज्ञान बिना ।
घर-घर गुरुवाणी गान करो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥६॥

जिन शासन की रक्षा करना, स्वाध्याय प्रेम जन मन भरना ।
'गजमुनि' ने अनुभव कर देखा, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो ॥७॥

(९)

स्वाध्याय-महिमा

(तर्ज- ऐ वीरों उठो वीर के तत्त्वों को अपनावो)

हम करके नित स्वाध्याय, ज्ञान की ज्योति जगायेंगे ।
अज्ञान हृदय को धो करके, उज्ज्वल हो जायेंगे ॥१॥
श्री वीर प्रभु के शासन को, जग में चमकायेंगे ।
सत्य, अहिंसा के बल को, जन-जन समझायेंगे ॥२॥
घर-घर में ज्ञान फैलायेंगे, जीवादिक समझेंगे ।
कर पुण्य-पाप का ज्ञान, सुगति पथ को अपनायेंगे ॥३॥
श्रेणिक ने शासन सेवा की, जिन पद को पाएंगे ।
हम भी शासन की सेवा में, जीवन दे जायेंगे ॥४॥
श्री लोंकाशाह सम शास्त्र वांच कर, ज्ञान बढ़ायेंगे ।
शासन सेवी श्री धर्मदास मुनि, के गुण गायेंगे ॥५॥
देकर प्राणों को शासन की, हम शान बढ़ायेंगे ।
सब प्रान्तों में स्वाध्यायी जन, अब फिर दिखलायेंगे ॥६॥

(१०)

जिनवाणी का माहात्म्य

(तर्ज- जावो - जावो ऐ मेरे साधु, रहो गुरु के संग)

कर लो कर लो, अय प्यारे सजनों, जिनवाणी का ज्ञान ॥टेर॥
जिसके पढ़ने से मति निर्मल, जगे त्याग तप भाव ।
क्षमा दया मृदु भाव विश्व में, फैल करे कल्याण ॥१॥
मिथ्या-रीति अनीति घटे जग, पावे सच्चा भान ।
देव-गुरु के भक्त बने सब, हट जावे अज्ञान। ॥२॥
पाप-पुण्य का भेद समझकर, विधियुत देवो दान ।
कर्मबंध का मार्ग घटाकर, कर लेओ उत्थान ॥३॥
गुरुवाणी में रमने वाला, पावे निज गुण भान ।
राय प्रदेशी क्षमाशील बन, पाया देव विमान ॥४॥

घर-घर में स्वाध्याय बढ़ाओ, तज कर आरत ध्यान ।
जन-जन की आचार शुद्धि हो, बना रहे शुभ ध्यान ॥५॥
मातृ-दिवस में जोड़ बनाई (या) धर आदीश्वर ध्यान ।
दो हजार अष्टादश के दिन 'गजमुनि' करता गान ॥६॥

(११)

आह्वान

(तर्ज- विजयी विश्व तिरंगा प्यारा)

ऐ वीरों ! निद्रा दूर करो, तन-धन दे जीवन सफल करो ।
अज्ञान अंधेरा दूर करो, जग में स्वाध्याय प्रकाश करो ॥टेर॥
घर-घर में अलख जगा देना, स्वाध्याय मशाल जला देना ।
अब जीवन में संकल्प करो, तन-धन दे जीवन सफल करो ॥१॥
चम्पा का पालित स्वाध्यायी, दरिया तट का था व्यवसायी ।
है मूल सूत्र में विस्तारो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥२॥
स्वाध्याय से मन-मल धुलता है, हिंसा झूठ न मन घुलताहै ।
सुविचार से शुभ आचार करो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥३॥
अज्ञान से दुःख दूना होता, अज्ञानी धीरज खो देता ।
सद्ज्ञान से दुःख को दूर करो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥४॥
ज्ञानी को दुःख नहीं होता है, ज्ञानी धीरज नहीं खोता है ।
स्वाध्याय से ज्ञान भण्डार भरो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥५॥
है सती जयन्ती सुखदायी, जिनराज ने महिमा बतलाई ।
भगवती सूत्र में विस्तारो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥६॥
वीरों का एक ही नारा हो, जन-जन स्वाध्याय प्रसारा हो ।
सब जन में यही विचार भरो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥७॥
श्रमणों ! अब महिमा बतलाओ, बिन ज्ञान, क्रिया सूनी गाओ ।
'गजमुनि' सद्ज्ञान का प्रेम भरो, तन धन दे जीवन सफल करो ॥८॥

(१२)

जीवन उत्थान गीत

(तर्ज- करने भारत का कल्याण-पधारे वीर...)

करने जीवन का उत्थान, करो नित समता रस का पान ॥टेर॥

सामायिक की महिमा भारी, यह है सबको साताकारी ।
इसमें पापों का पचखान, करो नहीं आत्म गुणों की हान ॥१॥
नित प्रति हिंसादिक जो करते, त्याग को मान कठिन जो डरते ।
घड़ी दो कर अभ्यास महान, बनाते जीवन को बलवान ॥२॥
चोर केशरिया ने ली धार, हटाये मन के सकल विकार ।
मिलाया उसने केवलज्ञान, किया भूपति ने भी सम्मान ॥३॥
मन की सकल व्यथा मिट जाती, स्वानुभव सुख सरिता बह जाती ।
होता उदय ज्ञान का भान, मिलाते सहज शान्ति असमान ॥४॥
जो भी गये मोक्ष में जीव, सबों ने दी समता की नींव ।
उन्हीं का होता है निर्वाण, यही है भगवत् का फरमान ॥५॥
कहता 'गजमुनि' बारम्बार, कर लो प्रामाणिक व्यवहार ।
हटाओ मोह और अज्ञान, मिले फिर अमित सुखों की खान ॥६॥

(१३)

सामायिक का स्वरूप

(तर्ज-अगर जिनराज के चरणों में)

अगर जीवन बनाना है, तो सामायिक तू करता जा ।
हटाकर विषमता मन की, साम्यरस पान करता जा ॥ध्रुव पद॥
मिले धन-सम्पदा अथवा, कभी विपदा भी आ जावे ।
हर्ष और शोक से बचकर, सदा एक रंग रखता जा ॥१॥
विजय करने विकारों को, मनोबल को बढ़ाता जा ।
हर्ष से चित्त का साधन, निरन्तर तूं बनाता जा ॥२॥
अठारह पाप का त्यागन, ज्ञान में मन रमाता जा ।
अचल आसन व मित भाषण, शान्त भावों में रमता जा ॥३॥
पड़े अज्ञान के बन्धन, सदा मन को घुमाता है ।
ज्ञान की ज्योति में आकर, अमित आनन्द बढ़ाता जा ॥४॥
पड़ा है कर्म का बंधन, पराक्रम तूं बढ़ाता जा ।
हटा आलस्य विकथा को, अमित आनंद पाता जा ॥५॥
कहे 'गजमुनि' भरोसा कर, परम रस को मिलाता जा ।
भटक मत अन्य के दर पर, स्वयं में शान्ति लेता जा ॥६॥

(१४)

सामायिक-गीत

(तर्ज-नवीन रसिया)

कर लो सामायिक रो साधन, जीवन उज्ज्वल होवेला ॥टेर॥
तन का मैल हटाने खातिर, नित प्रति न्हावेला ।
मन पर मल चहुं ओर जमा है, कैसे धोवेला ॥१॥कर लो॥
बाल्यकाल में जीवन देखो, दोष न पावेला ।
मोह-माया का संग कियां से, दाग लगावेला ॥२॥कर लो॥
ज्ञान गंग ने क्रिया धुलाई, जो कोई धोवेला ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, दाग को दूर हटावेला ॥३॥कर लो॥
सत्संगत और शान्त स्थान में, दोष बचावेला ।
फिर सामायिक साधन करने, शुद्धि मिलावेला ॥४॥कर लो॥
दोय घड़ी निज-रूप रमण कर, जग बिसरावेला ।
धर्म-ध्यान में लीन होय, चेतन सुख पावेला ॥५॥कर लो॥
सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला ।
निज सुधार से देश, जाति, सुधरी हो जावेला ॥६॥कर लो॥
गिरत-गिरत प्रतिदिन रस्सी भी, शिला घिसावेला ।
करत-करत अभ्यास मोह को, जोर मिटावेला ॥७॥कर लो॥

(१५)

सामायिक-सन्देश

(तर्ज-तेरा रूप अनुपम गिरधारी, दर्शन की छटा निराली है)

जीवन उन्नत करना चाहो, तो सामायिक साधन कर लो ।
आकुलता से बचना चाहो, तो...सामायिक साधन कर लो ॥टेर॥
तन-धन परिजन सब सुपने है, नश्वर जग में नहीं अपने हैं ।
अविनाशी सद्गुण पाना हो, तो...सामायिक साधन कर लो ॥१॥
चेतन निज घर को भूल रहा, पर घर माया में झूल रहा ।
सद्चिद् आनंद को पाना हो, तो....सामायिक साधन कर लो ॥२॥
विषयों में निज गुण मत भूलो, अब काम क्रोध में मत झूलो ।
समता के सर में नहाना हो, तो...सामायिक साधन कर लो ॥३॥

तन पुष्टि-हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला ।
आध्यात्मिक बल पाना चाहो, तो_सामायिक साधन कर लो ॥४ ॥
सब जग जीवों में बंधु भाव, अपनालो तज के वैर भाव ।
सब जन के हित में सुख मानो, तो_सामायिक साधन कर लो ॥५ ॥
निर्व्यसनी हो, प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो ।
संसार में पूजा पाना हो, तो_सामायिक साधन कर लो ॥६ ॥
साधक सामायिक-संघ बने, सब जन सुनीति के भक्त बने ।
नर लोक में स्वर्ग बसाना हो, तो_सामायिक साधन करलो ॥७ ॥

(१६)

गुरु-भक्ति

(तर्ज-साता बरतेजी)

घणो सुख पावेला, जो गुरु वचनों पर प्रीति बढ़ावेला ॥टेर ॥
विनयशील की कैसी महिमा, मूल सूत्र बतलावेला ।
वचन प्रमाण करे सो जन, सुख सम्पत्ति पावेला ॥१ ॥घणो ॥
गुरु सेवा और आज्ञाधारी, सिद्धि खूब मिलावेला ।
जल पाये तरुवर सम वे, जग में सरसावेला ॥२ ॥घणो ॥
वचन प्रमाणे जो नर चाले, चिंता दूर भगावेला ।
आप मति आरति भोगे नित, धोखा खावेला ॥३ ॥घणो ॥
एकलव्य लखि चकित पांडुसुत, मन में सोचकरावेला ।
कहा गुरु से हाल भील भी, भक्ति बतलावेला ॥४ ॥घणो ॥
देश भक्ति उस भील युवा की, वनदेवी खुश होवेला ।
बिना अंगूठे बाण चले यों, बर दे जावेला ॥५ ॥घणो ॥
गुरु कारीगर के सम जग में, वचन जो खावेला ।
पत्थर से प्रतिमा जिम वो नर, महिमा पावेला ॥६ ॥घणो ॥
कृपा दृष्टि गुरुदेव की मुझ पर, ज्ञान शान्ति बरसावेला ।
'गजेन्द्र' गुरु महिमा का नहिं कोई, पार मिलावेला ॥७ ॥घणो ॥

(१७)

देह से शिक्षा

(तर्ज- शिक्षा दे रही जी हमको रामायण अति प्यारी)

शिक्षा दे रहा जी हमको, देह पिंड सुखदाई ॥टेर ॥
दश इन्द्रिय अरु बीसों अंग में, देखो एक सगाई ।
सबमें एक, एक में सबकी, शक्ति रही समाई ॥१ ॥शिक्षा ॥
आँख चूक से लगता कांटा, पैरों में दुखदाई ।
फिर भी पैर आँख से चाहता, देवे मार्ग बताई ॥२ ॥शिक्षा ॥
सबके पोषण हित करता है, संग्रह पेट सदाई ।
रस कस ले सबको पहुँचाता, पाता मान बड़ाई ॥३ ॥शिक्षा ॥
दिल सबके सुख-दुःख में धड़के, मस्तक कहे भलाई ।
इसी हेतु सब तन में इनकी, बनी आज प्रभुताई ॥४ ॥शिक्षा ॥
अपना काम करें सब निश्छल, परिहर स्वार्थ मिताई ।
कुशल देह के लक्षण से ही, स्वस्थ समाज रचाई ॥५ ॥शिक्षा ॥
विभिन्न व्यक्ति अंग समझलो, तन समाज सुखदाई ।
'गजमुनि' सबके हित सब दौड़े, दुःख दरिद्र नश जाई ॥६ ॥शिक्षा ॥

(१८)

सुख का मार्ग : विनय

(तर्ज-रिषभजी मुंडे बोल)

सदा सुख पावेला २ जो अहंकार तज, विनय बढ़ावेला ॥सदा ॥
अहंकार में अकड़ा जो जन, अपने को नहीं मानेला ।
ज्ञान-ध्यान-शिक्षा- सेवा, को लाभ न पावेला ॥१ ॥
विनयशील नित हंसते रहता, रूठे मित्र मनावेला ॥
निज-पर के मन को हर्षित कर, प्रीत बढ़ावेला ॥२ ॥
विनय-प्रेम से नरपुर में भी, सुरपुर - सा रंग लावेला ।
उदासीन मुख की सूरत नहीं, नजर निहारेला ॥३ ॥
विनय धर्म का मूल कहा है, इज्जत खूब मिलावेला ।
योग्य समझ स्वामी, गुरु पालक मान दिलावेला ॥४ ॥
पुत्र-पिता से कुंजी पावे, शिष्य गुरु मन भावेला ।

विनयशील शासक जन को भी, खूब रिझावेला ॥५॥
यत् किंचित् कर विनय गुरु का, 'गजमुनि' मन हर्षावेला ।
अनुभव कर देखो, जीवन-गौरव बढ़ जावेला ॥६॥

(१९)
वीर-वन्दना

(तर्ज- मन प्यारे- प्यारे नित रटना)

मन प्यारे नित प्रति (प्रतिदिन) रट लेना, वीर जिनेश्वर को ।
जगमग जग में ज्योतिर्धर, वीर जिनेश्वर को ॥टेर॥
धन्य त्रिशलाजी के नंदा, नृप सिद्धारथ कुल चन्दा ।
सुर नरपति वन्दन करते हैं ॥१॥वीर॥
शुभ चैत्र त्रयोदशी के दिन, अवतरे जगत हित श्रीजिन ।
त्रिभुवन के प्राणी गुण गाते ॥२॥वीर॥
प्रभु अधम उधारण आये, दीनों के प्राण बचाये ।
सब शीश झुकाते प्रमुदित हो ॥३॥वीर॥
श्रेणिक चेटक अरु कोणिक, थे भक्त कई जन पालक ।
भोजन भी करे वन्दन कर ॥४॥वीर॥
थे कामदेव अरु अरणक, कई अन्य भी निर्भय श्रावक ।
सुर वर को लज्जित कर गाते ॥५॥वीर॥
जो बंधन मुक्ति चाहो, सुख-शान्ति की इच्छा हो ।
नित्य भाव सहित तुम भज लेना ॥६॥वीर॥
उत्साह में गजमुनि (युवको) आओ, अपना गौरव प्रगटाओ ।
वह भूत समय फिर दिखलाना ॥७॥वीर॥
जिनराज चरण का चेरा, मांगू मैं सुमति बसेरा ।
हो 'हस्ती' नित वंदन करना ॥८॥वीर॥

(२०)
विदाई-सन्देश

(तर्ज- सिद्ध अरिहन्त में मन रमा जायेंगे)

जीवन धर्म के हित में लगा जायेंगे,
महावीर का तत्त्व सिखा जायेंगे ॥टेर॥

चाहे कहो कोई बुरा अथवा भला कहो,
पर हम कर्त्तव्य अपना बजा जायेंगे ॥१ ॥महावीर ॥
चाहे सुने कोई प्रेम से अथवा घृणा करे,
पर हम धर्म का तत्त्व बता जायेंगे ॥२ ॥महावीर ॥
चाहे करो धन में श्रद्धा या धार्मिक कार्य में,
पर हम शान्ति का मार्ग जचा जाएंगे ॥३ ॥महावीर ॥
अहमदनगर के श्रोताओं कुछ करके दिखलाना,
हम भी प्रेम से मान बढ़ा जाएंगे ॥४ ॥महावीर ॥

(२१)
वीर-सन्देश

(तर्ज- लाखों पापी तिर गये, सत्संग के परताप से)

वीर के सन्देश को, दिल में जमाना सीखलो ।
विश्व से हिंसा हटाकर, सुख से रहना सीख लो ॥टेर ॥
छोड़ दो हिंसा की वृत्ति, दुःख की जड़ है यही ।
शत्रुता अरु द्रोह की, जननी इसे समझो सही ॥१ ॥
प्रेम मूर्ति है, अहिंसा दिव्य शक्ति मान लो ।
वैर नाशक प्रीति वर्द्धक, भावना मन धारलो ॥२ ॥
क्रोध और हिंसा अनल से, जलते जग को देख लो ।
नित नये संहार साधन, का बना है लेख लो ॥३ ॥
परिणाम हिंसा का समझ लो, दुःखदाई है सही ।
मरना अरु जग को मिटाना, पाठ इसका देख लो ॥४ ॥

(२२)
हित-शिक्षा

(तर्ज-आज रंग बरसे रे)

घणो पछतावेला, जो धर्म-ध्यान में मन न लगावेला ॥टेर ॥
रम्मत गम्मत काम कुतूहल, में जो चित्त लुभावेला ।
सत्संगत बिन मूरख निष्फल, जन्म गमावेला ॥१ ॥घणो ॥
वीतराग की हितमन वाणी, सुणतां नींद घुलावेला ।
रंग-राग-नाटक में सारी, रात बितावेला ॥२ ॥घणो ॥

मात पिता गुरुजन की आज्ञा, हिय में नहीं जमावेला ।
इच्छाचारी बनकर हित की, सीख भुलावेला ॥३ ॥घणो ॥
यो तन पायो चिंतामणि सम, गयां हाथ नहीं आवेला ।
दया-दान-सद्गुण संचय कर, सद्गति पावेला ॥४ ॥घणो ॥
निज आतम ने वश कर पर की, आतम ने पहचानेला ।
परमातम भजने से चेतन, शिवपुर जावेला ॥५ ॥घणो ॥
महापुरुषों की सीख यही है, 'गजमुनि' आज सुनावेला ।
गोगोलाव में माह बदि को, जोड़ सुनावेला ॥६ ॥घणो ॥

(२३)
सेवा-धर्म की महिमा

(तर्ज- सेवो सिद्ध सदा जयकार)

सेवा-धर्म बड़ा गंभीर, पार कोई विरले पाते हैं ।
विरले पाते हैं, बंधुता भाव बढ़ाते हैं ॥(जगत का खार मिटाते हैं)
तन-धन-औषध-वस्त्रादिक से, सेवा करते हैं ।
स्वार्थ-मोह-भय-कीर्ति हेतु, कई कष्ट उठाते हैं ॥१ ॥
सेवा से हिंसक प्राणी भी, वश में आते हैं ।
सेवा के चलते सेवक, अधिकार मिलाते हैं ॥२ ॥
नंदिषेण मुनि ने सेवा की, देव परखते हैं ।
क्रोध-खेद से बचकर, मन अहंकार न लाते हैं ॥३ ॥
धर्मराज की देखो सेवा, कृष्ण बताते हैं ।
क्रोड़ों व्यय कर अहंभाव से, अफल बनाते हैं ॥४ ॥
द्रव्य-भाव दो सेवा होती, मुनि जन गाते हैं ।
रोग और दुर्व्यसन छुड़ाया, जग सुख पाते हैं ॥५ ॥
जीव-जीव का उपयोगी हो, दुःख न देते हैं ।
जगहित में उपयोगी होना, विरला चाहते हैं। ('गजमुनि' चाहते हैं) ॥६ ॥

(२४)
उद्बोधन

(तर्ज- तेरा रूप मनोहर...)

ऐ वीर भूमि के धर्मवीर, जीवन निर्माण करो अब तो ॥टेर ॥

गामा* ने तन निर्माण किया, चहुं ओर नाम मशहूर किया ।
आखिर तन जल के खाक हुआ, निर्माण करो अब तो ॥१॥
धनकोटि बनाया मुम्मण ने, रत्नों का बैल बना डाला ।
विध-विध कष्टों को सहकर भी, जब मरा चला नहीं धन तब तो ॥२॥
मुहम्मद ने गजनी में देखो, धन लूट-लूट भंडार भरा ।
अंतिम दम भू पर सिसक पड़ा, जीवन धन-कोष भरो अब तो ॥३॥
रावण ने देश अधीन किया, प्रभुता के मद में भूल गया ।
सुवरण की लंका छोड़ गया, निजगुण साधन कर लो अब तो ॥४॥
हिटलर ने धाक जमाई थी, संसार विजय की ठानी थी ।
कर विश्वयुद्ध में सर्व होम, जब चला समझ आई अब तो ॥५॥
शाली ने सब कुछ छोड़ दिया, धन्ना ने तन को गलादिया ।
जीवन निर्माण किया अपना, देखो सब अमर हुए वे तो ॥६॥
भौतिक निर्माण करो कुछ भी, सुखदायक भी दुख देंगे कभी ।
जब नाश की घड़ी बतायेंगे, कुछ कर न सकोगे तुम तब तो ॥७॥
बर्लिन पेरिस की सज्जा हो, सुरगण को भी जहां लज्जा हो ।
पल में लय वह भी हो जाता 'गजमुनि' क्यों भूल करो अब तो ॥८॥

(२५)

सप्त व्यसन-निषेध

(तर्ज- होवे धर्म प्रचार....)

है उत्तम जन आचार, सुनलो नरनारी
तूं धार सके तो धार, शिक्षा हितकारी ॥टेर॥

१. जुआ-

जुआ खेलन बुरा व्यसन है, धन छीजे दुःख भोगे तन है ।
हारे राजकोष सब धन है, पांडव हारी नार ॥१॥शिक्षा॥
नल भूपति राज गंवाया, दमयंती संग अति दुःख पाया ।
बड़े बड़ों का मान विलाया, जाने सब संसार ॥२॥शिक्षा॥

२. चोरी-

चोर दंड पाते नित देखो, राज समाज में निंदा देखो ।
रहता नहीं भरोसा देखो, करे न कोई इतबार ॥३॥शिक्षा॥

*एक पहलवान

३. वेश्यागमन-

वेश्या और परस्त्री त्यागो, रावणकुल में हुओ अभागो ।
सीता को लेकर वह भागो, हुआ सकल संहार ॥४॥शिक्षा॥

४. परस्त्रीगमन-

लंपट तन-धन का बल खोवे, सुख की नींद कभी नहीं सोवे ।
फल भुगतान की बेला रोवे, त्याग करो नरनार ॥५॥शिक्षा॥

५. मांस-

मद्य-मांस नहीं खाणो पीणो, दुर्व्यसनों से दूर हीरहणो ।
नशो भूलकर भी नहीं करणो, बुद्धि बिगाड़णहार ॥६॥शिक्षा॥

६. मद्य-

प्याली पी कई जन्म बिगाड़े, गली, नली में पड़त निहाले ।
कुत्ते भी आकर मुंह मारे, हंसे बाल- गोपाल ॥७॥शिक्षा॥

७. तम्बाकू-

बीड़ी और तम्बाकू छोड़ो, कैंसर से मत नाता जोड़ो ।
धन-जन का है नाश करोड़ों, मन से दो दुत्कार ॥८॥शिक्षा॥
सब धर्मों का सार यही है, दुर्व्यसनों से लाभ नहीं है ।
व्यसन बिगाड़े जन्म सही है, होते जन बेकार ॥९॥शिक्षा॥

(२६)

सच्चा श्रावक

(तर्ज- प्रभाती)

सांचा श्रावक तेने कहिये, ज्ञान क्रिया जो धारे रे ॥टेर॥
हिंसा-झूठ-कुशील निवारे, चोरी कर्म ने टाले रे ।
संग्रह बुद्धि, तृष्णा त्यागे, संतोषामृत पावे रे ॥१॥
द्रोह नहीं कोई प्राणी संग, आतम सम सब लेखे रे ।
पर दुःख में दुःखिया बन जावे, सब सुख में सुख देखे रे ॥२॥
परम देव पर श्रद्धा राखे, निर्ग्रन्थ गुरु ने सेवे रे ।
धर्म दया जिनदेव प्ररूपित, सार तीन को मन सेवे रे ॥३॥
श्रद्धा और विवेक विचारां, विमल क्रिया भव तारे रे ।
तीन बसे गुण जिन में जानों, श्रावक सांचा तेहने रे ॥४॥

(२७)
ईश्वर और सृष्टि विचार

(तर्ज- अगर जिनदेव के चरणों में तेरा ध्यान हो जाता)

जगत-कर्त्ता नहीं ईश्वर, न्याय से शोध कर देखो ॥ध्रु.॥
न रागी है न द्वेषी है, चिदानंद वीतरागी है ।
प्रपंची वह न हो सकता ॥१॥न्या.॥
दयालु पूर्ण ज्ञाता है, अमित शक्ति का धर्त्ता है ।
जगत का खेल नहीं (क्यों) करता ॥२॥न्या.॥
रूप अरु नाम नहीं जिसमें, नहीं इच्छा है कुछ बाकी ।
उसे क्या (नहीं कुछ) प्राप्त करना है ॥३॥न्या.॥
ज्ञान आनंद का सागर, विमल गुण का जो है आगर ।
जादूगर हो नहीं सकता ॥४॥न्या.॥
विषम दुनिया की हालत का, शुभाशुभ कर्म कारण है ।
यह जड़ चैतन्य का मेला ॥५॥न्या.॥
सुजन, दुर्जन, सबल, निर्बल, दुःख अरु सौख्य की छाया ।
कर्म की दृष्ट सब माया ॥६॥न्या.॥
नाम, रूपादि की सृष्टि भरी है विविध दोषों से ।
पूर्ण निर्दोष है ईश्वर ॥७॥न्या.॥

(२८)
सुशिक्षा

(तर्ज- होवे धर्म प्रचार...)

तुम सुनो सभी नर - नार शिक्षा सुखदाई ।
यह करती जन्म सुधार, शिक्षा सुखदाई ॥टेर॥
तत्त्वात्त्व पिछाणे जासे, पुण्य-पाप को जाने जासे ।
सबको अपना जाने जासे, सुखी बने संसार ॥१॥शिक्षा॥
पढ़कर झूठ वचन जो छोड़े गाली से मन को नहीं जोड़े ।
भांग तमाखू मद तन तोड़े, तजे विज्ञ नर-नार ॥२॥शिक्षा॥
दुर्व्यसनों के पास न जावे,तन-धन-इज्जत खूब बचावे ।
पर धन पर नहीं चित्त लुभावे, ज्ञान पढ़े का सार ॥३॥शिक्षा॥

चोरी कभी न करना चाहे, धोखा दे नहीं नम्बर पावे ।
सादा जीवन मन को भावे, हरे ज्ञान कुविचार ॥४॥शिक्षा॥
आप्त जनों का आदर करना, सबमें मैत्री भाव बढ़ाना ।
शिक्षा से सुविचार फैलाना, यही ज्ञान सुखकार ॥५॥शिक्षा॥
धर्म जाति का (द्वेष)गर्व न करना, बंधु भाव से वैर मिटाना ।
तोड़-फोड़-हिंसा नहीं करना, ज्ञान बढ़ावे प्यार ॥६॥शिक्षा॥
ब्रह्म भाव से छात्र रहे सब,चोरी, हिंसा, व्यसन तजे सब ।
झूठी फैशन दूर करे सब, सच्चा हो व्यवहार ॥७॥शिक्षा॥
ऐसी शिक्षा जो धारेंगे, छात्र देश को पार करेंगे ।
विद्यालय भी नाम वरेंगे, संकट होगा पार ॥८॥शिक्षा॥
देव-गुरु के भक्त बनेंगे, वृद्ध जनों का मान करेंगे ।
छोटों से भी प्यार करेंगे, कहते संत पुकार ॥९॥शिक्षा॥

(२९)
जिनवाणी की महिमा

(तर्ज- मांड-मरुधर म्हारो देश)

श्री वीर प्रभु की, वाणी म्हाने प्यारी लागे जी ॥टेर॥
पंचास्ति मय लोक दिखायो, ज्ञान नयन दिये खोल ।
गुण पर्याय से चेतन खेले,पुद्गल(माया) के झक झोल हो ॥१॥श्री॥
वाणी जाने ज्ञान की खानी, सद्गुरु का वरदान ।
भ्रम अज्ञान की ग्रन्थि गाले, टाले कुमति कुवान हो ॥२॥श्री॥
अनेकान्त का मार्ग बताकर, मिथ्यात्व दिया ठेल ।
धर्म-कलह का अन्त कराके, दे निज सुख की सेल हो ॥३॥श्री॥
त्रिपदी से जग खेल बतायो, गौतम को दियो बोध ।
दान-दया दम को आराधो, यही शास्त्र की शोध हो ॥४॥श्री॥
'गजमुनि' वीर चरण चित्त लाओ, पाओ शान्तिअपार ।
भव बंधन से चेतन छूटे, करणी का यह सार हो ॥५॥श्री॥

(३०)

गुरु-महिमा

(तर्ज- कुंथु जिनराज तूं ऐसा)

अगर संसार में तारक, गुरुवर हो तो ऐसे हों ॥टेर॥
क्रोध ओ लोभ के त्यागी, विषय रस के न जो रागी ।
सूरत निज धर्म से लागी, मुनीश्वर हों तो ऐसे हों ॥१॥अगर॥
न धरते जगत से नाता, सदा शुभ ध्यान मन भाता ।
वचन अघ मेल के हरता, सुज्ञानी हों तो ऐसे हों ॥२॥अगर॥
क्षमा रस में जो सरसाये, सरल भावों से शोभाये ।
प्रपंचों से विलग स्वामिन्, पूज्यवर हों तो ऐसे हों ॥३॥अगर॥
विनयचन्द पूज्य की सेवा चकित हो देखकर देवा ।
गुरु भाई की सेवा के, करैय्या हों तो ऐसे हों ॥४॥अगर॥
विनय और भक्ति से शक्ति, मिलाई ज्ञान की तुमने ।
बने आचार्य जनता के, गुण सुभागी हों तो ऐसे हों ॥५॥अगर॥

(३१)

गुरु-विनय

(तर्ज- धन धर्मनाथ धर्मावतार सुन मेरी)

श्री गुरुदेव महाराज हमें यह वर दो२ ।
रग-रग में मेरे एक शान्ति रस भर दो ॥टेर॥
मैं हूँ अनाथ भव दुःख से पूरा दुखिया२ ।
प्रभु करुणा सागर तूं तारक का मुखिया ।
कर महर नजर अब दीन नाथ तव कर दो२ ॥१॥रग॥
ये काम - क्रोध- मद-मोह शत्रु हैं घेरे२,
लूटत ज्ञानादिक संपद को मुझ डेरे ।
अब तुम बिन पालक कौन हमें बल दो२ ॥२॥रग॥
मैं करूं विजय इन पर आतम बल पाकर,२
जग को बतला दूँ धर्म सत्य हर्षाकर ।
हर घर सुनीति विस्तार करूँ, वह जर दो२ ॥३॥रग॥
देखी है अद्भुत शक्ति तुम्हारी जग में२

अधमाधम को भी लिये तुम्हीं निज मग में ।
मैं भी मांगू अय नाथ हाथ शिर धर दो२ ॥४॥रग॥
क्यों संघ तुम्हारा धनी मानी भी भीरु२,
सच्चे मारग में भी न त्याग गंभीरू ।
सबमें निज शक्ति भरी प्रभो ! भय हर दो२ ॥५॥रग॥
सविनय अरजी गुरुराज चरण कमलनमें२,
कीजे पूरी निज विरुद जानि दीनन में ।
आनंद पूर्ण करी सबको सुखद वचन दो२ ॥६॥रग॥
गाई यह गाथा अविचल मोद करण में२,
सौभाग्य गुरु की पर्व तिथि के दिन में ।
सफली हो आशा यही कामना पूरण कर दो२ ॥७॥रग॥

(३२)

बाल-प्रार्थना

विनय से करता हूँ नाथ पुकार, संभारो नैया की पतवार ।
आज बनी है दशा हमारी, चिन्ता जनक अपार ॥१॥
पालक कभी संघ में थे, करते कीट उद्धार ।
आज वहाँ मानव धर्मी की, भी नहीं होती संभार ॥२॥
पर हित करते दान हजारों, भाई के रखवार ।
आज कराते कमाई, होता नहीं उपकार ॥३॥
कलह शूर होकर करते हैं, नष्ट पुण्य बलसार ।
सुख शांति अरु कीर्ति गमाकर, होते हैं बेकार ॥४॥
ज्ञान दया के आकर हो तुम, विमल शांति भंडार ।
बाल जीव हम सबके भी, मन करो शक्ति संचार ॥५॥

(३३)

भगवत् चरणों में

(तर्ज - तू धार सके तो धार संयम सुखकारी)

होवे शुभ आचार प्यारे भारत में, सब करें धर्म प्रचार,
प्यारे भारत में ॥टेर॥

धर्म प्राण यह देश हमारा, सत्पुरुषों का बड़ा दुलारा,
धर्मनीति आधार प्यारे ॥१॥
सादा जीवन जीएं सभी जन, पश्चिम की नहीं चाल चलें जन,
सदाचार से प्यारे ॥२॥
न्याय नीति मय धंधा चावें, प्रामाणिकता को अपनावें,
सब धर्मों का सार ॥३॥
मैत्री हो सब जग जीवों में, निर्भयता हो सब जीवों में,
भारत के संस्कार ॥४॥
हिंसा, झूठ न मन को भावे, सब सबको आदर से चावें,
होवे न मन में खार ॥५॥

(३४)

शुभ कामना

(तर्ज- यही है महावीर संदेश)

दयामय होवे मंगलाचार, दयामय होवे बेड़ा पार ॥
करें विनय हिलमिल कर सब ही, हो जीवन उद्धार ॥१॥दयामय॥
देव निरंजन ग्रन्थ -हीन गुरु, धर्म दयामय धार ।
तीन तत्त्व आराधन में मन, पावे शान्ति अपार ॥२॥दयामय॥
नर भव सफल करन हित हम सब, करें शुद्ध आचार ।
पावें पूर्ण सफलता इसमें, ऐसा हो उपकार ॥३॥दयामय॥
तन-धन-अर्पण करें हर्ष से, नहीं हो शिथिल विचार ।
ज्ञान धर्म में रमें (लगे) रहें हम, उज्ज्वल हो व्यवहार ॥४॥दयामय॥
दिन-दिन बढ़े भावना सब की, घटे अविद्या भार ।
यही कामना 'गजमुनि' (हम सब) की हो,तुम्हीं एक आधार ॥५॥दयामय॥

(३५)

दर्शनाचार

दर्शनाचार को शुद्ध रीति से पालो,
आत्म-शुद्धि हित दूषण पंचक टालो ॥टेर॥
निश्शंकित आचार प्रथम मन भाना २,
जिन वचनों में शंका शील न रहना ।

संशयालु जन कार्य सिद्धि नहीं पाता २,
शंकित मन नहीं इष्ट लाभ करवाता ।
निज दर्शन में शंका दूषण टालो ॥१॥
कांक्षा दूषण दर्शन का पहचानो २,
निष्कांक्षित होना ही सुखकर जानो ।
कांक्षा से कूणिक ने जन्म गंवाया २,
भक्ति पतित हो दुर्गति साज सजाया ।
सद्दर्शन शोधन हित कांक्षा टारो ॥२॥
मिथ्यादर्शन या ऋद्धि मन भावे २,
कांक्षा मोह के उदय अमित दुःख पावे ।
शास्त्र वचन पै शंका कंख निवारे २,
निष्कांक्षित आचार दोष को टारे ।
जिनवाणी आराध शान्ति सुख पा लो ॥३॥
कामदेव ने कांक्षा दूर निवारी २,
वीर प्रभु ने करी प्रशंसा भारी ।
तन, धन, जन का नाश सामने देखा २,
पर नहीं किंचित् भी मन में आलेखा ।
सब मिलकर ऐसी गुण गाथा गा लो ॥४॥
विचिकित्सा दर्शन गुण का दूषण है २,
गुण प्रमोद सद्दर्शन का भूषण है ।
कर्म करत फल में शंका नहिं आना २,
निर्वितिगिच्छा अंग तीसरा माना ।
निस्संशय व्रत करो धैर्य मत डालो ॥५॥
आडम्बर में बने मुग्ध जो मानव २,
चमत्कार में बन जाता वह दानव ।
वीतराग को छोड़ भजे वह रागी २,
मूढ़ दृष्टि भव वन भटके वो अभागी ।
अमूढ़ दृष्टि हो निज स्वरूप संभालो ॥६॥
उपबृंहण आचार पांचवा जानो२,
व्यक्ति का व्यक्तित्व गुणों से मानो ।

यथायोग्य गुण को दिपाना भाई २,
प्रोत्साहित जन गण होता सुखदाई ।
गुण ग्रहण की सभी प्रेरणा धर लो ॥७॥
अस्थिर मन से धर्म कभी नहीं होता २,
यथाशक्ति स्थिर भाव करो तुम भ्राता ।
द्रव्यभाव से स्थिरीकरण होता है२,
मुनि श्रावक का भिन्न रूप होता है ।
ज्ञान जगाकर भ्रान्त चित्त संभालो ॥८॥
राग मोह अरति से अस्थिर होवे २,
सेवा बोध संवेदन से दुःख खोवे ।
धर्म प्रेम से दर्शन पुष्टि आवे२,
पंथक से सेलक मुनि भान मिलावे ।
सेवा से धर्मी की अरति टालो ॥९॥
वत्सलता दर्शन में सप्तम जानो २,
प्रीति भाव से त्याग करे नर छानो ।
धर्म समाज में अस्थिरता है छाई२,
परिवर्तन का चक्र रहा मंडराई ।
ज्ञान व्यवस्था से अब वृत्ति सुधारो २ ॥१०॥
दंसण-नाण-चरित्र से धर्म दीपाना,
त्याग-तपस्या से शोभे व्रत नाना ।
प्रभावना के अंग श्रेष्ठ पहचानो२
जनमानस में बढ़े धर्म मति ठानो ।
दर्शन गुण को इह विधि भवि चमकालो ॥११॥
दर्शन की भित्ति पर व्रत शोभावे२,
कामदेव अरणक के सब गुण गावे ।
सुलसा की दृढ़ता जिनवर वीर सरावे २,
जयपुर में 'गजमुनि' यो भाव सुनावे ।
करो पुष्ट सद्दर्शन शिव पद पालो ॥१२॥

(३६)
स्त्री शिक्षा

(तर्ज- भज मन भक्तियुक्त भगवान)

प्यारी बहनों समझो धर्म मर्म को जग फैलाना है ॥टेर॥
भावि कुल अरु देश की तुमको, धात्री बनना है ।
भावी (सकल) जगत में शान्ति और सौजन्य बढ़ाना है ॥१॥प्यारी_
सादा वेष सभी को सुखकर, पाप घटाना है ।
आरम्भ होवे अल्प, ममत्व का रोग घटाना है ॥२॥प्यारी_
राजकुमारी चन्दनबाला, सीता बनना है ।
कर जीवन आदर्श, विश्व में महिमा पाना है ॥३॥प्यारी_
चोर, जार छलियों से, अपना शील बचाना है ।
छोड़ो जग देखाव, इसी से, जग सुख पाना है ॥४॥प्यारी_
आजादी की चले हवा, स्वच्छंद न बनना है ।
विमल बुद्धि से स्वयं सत्य का मार्ग मिलाना है ॥५॥प्यारी_
राजतंत्र और जातितंत्र से, अब नहिं चलना है ।
होकर खुद निर्भीक, सत्य पथ डटकर रहना है ॥६॥प्यारी_
लालच-मद- अरु काम वासना से अब लड़ना है ।
'गजमुनि' बनकर वीर, धर्म की शान बढ़ाना है ॥७॥प्यारी_

(३७)
माता को शिक्षा

(तर्ज- नवीन रसिया)

समझो समझो री माताओं, पूजनीय पद तुम पाई हो ॥टेर॥
ऋषभदेव और महावीर से, नर वर जाये हो ।
राम-कृष्ण तेरे ही सुत हैं, महिमा छाई हो ॥१॥
जग तन वंदत सब ही तुम पर, आश धरावे हो ।
युग-युग से तुम ही माता बन पूजा पाई हो ॥२॥
शील और संयम की महिमा, तुम तन शोभे हो ।
सोना-चांदी-हीरक से, नहीं खान पूजाई हो ॥३॥
स्वेच्छाचारी बन मत, भद्रा नाम धराओ हो ।

भूलोचन कर चालो, चतुर होई बड़ाई हो ॥४॥
एकाकी पुरुषों के झुण्ड में, मत ना जाओ री ।
मधुर मंद वचनों से पाओ, जगत बड़ाई हो ॥५॥
पद्मावती चन्दनबाला अरु, सीता हो गई हो ।
आन कान को भूल, आज मत करो हँसाई हो ॥६॥
कसो वस्त्र से निज तन को तुम, ज्ञान से मनसमझावो ।
'गजमुनि' कहे उच्च जीवन से, हो भलाई हो ॥७॥

(मेड़ता संवत् २००८)

(३८)

स्त्री-शिक्षा

(तर्ज - सीता माता की गोदी में....)

पालो पालो री सोभागिन, बहनों धर्म को जी ॥टेर॥
बहुत समय तक देह सजाया, घर-धंधा में समय बिताया ।
निन्दा-विकथा ने छोड़, करो सत्कर्म को जी ॥१॥पालो...
सदाचार-सादापन धारो, ज्ञान ध्यान से तप सिणगारो ।
पर उपकार ही भूषण खास, समझो मर्म को जी ॥२॥पालो...
ये जर जेवर भार सरूपा, लुटेरा चोर जाति भय भूपा ।
दान-जप-तप में भय न किसी का, नियम शुभ कर्म को जी ॥३॥पालो...
देवी अब यह भूषण धारो, घर संतति को शीघ्र सुधारो ।
सर्वस्व देय मिटावो, आज जग के भरम को जी ॥४॥पालो...
धारिणी सीता-सी बन जाओ, प्रतापी वीर वंश प्रगटाओ ।
'हस्ती' उन्नत कर दो, देश धर्म अरु संघ को जी ॥५॥पालो...

(३९)

स्त्री-शिक्षा

(तर्ज – सीता माता की गोदी में....)

धारो धारो री सोभागिन शील की चून्दड़ी जी २ ॥टेर॥
झूठे भूषण में मत राचो, शील धर्म को भूषण सांचो
राखो तन मन से थे प्रेम, एक सत धर्म से जी ॥१॥धारो॥
मस्तक देव गुरु ने नमजो, यही मुकुट शिर सच्चा समझो ॥

करने जिनवाणी का श्रवण, रत्नमय कुंडलो जी ॥२॥धारो॥
जीव, दया और सतगुरु दर्शन, सफल करो इसमें निज लोचन ।
नथवर अटल नियम सूं, धर्म प्रेम है नाक रो जी ॥३॥धारो॥
मुख से सत्य वचन प्रिय बोलो, जिन गुरु गुण में शक्ति लगालो ।
भगिनी यही चूंप है, अविनाशी सुखदायिनी जी ॥४॥धारो॥
सज्जन या दुर्बल जन सेवा, दीन की टहल घणी सुख देवा ।
भुजबल वर्धक रत्न-जटित, भुजबन्ध लो जी ॥५॥धारो॥

(४०)

महावीर-जन्मोत्सव

(तर्ज - अगर जिन देव के चरणों में तेरा ध्यान हो जाता)

श्री महावीर स्वामी का, जन्म हमको मुबारक हो
जन्म महावीर का हमको, मुबारक हो २,
पावनी भरत भूमि को, मुबारक हो २ ॥टेर॥
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की, रात्रि वह मंगला अब भी ।
जगादे वीर से नर को ॥१॥मुबारक॥
जगत में सब तरफ हिंसा का, नंगा नाच होता था ।
जन्मना आपका तब यह ॥२॥मुबारक॥
धर्म के नाम पर क्रोड़ो, मूक प्राणी बलि चढ़ते ।
बचाया आपने उनको ॥३॥मुबारक॥
सूक्ष्म जीवों की भी हिंसा, धर्म के नाम से करना ।
अज्ञानी पन कहा तुमने (प्रभु कहते) ॥४॥मुबारक॥
श्रवण कर वीर वाणी को, सकल प्राणी दया करना ।
भक्ति यह मुक्तिदा जानो ॥५॥मुबारक॥
सकल जग जीव सुखदायी, धर्म फरमायो जिनराई ।
उसी सद् धर्म को पाना ॥६॥मुबारक॥
सताना दीन जीवों को, परस्पर कलह फैलाना ।
धर्म के नाम धब्बों को मिटाना ही ॥७॥मुबारक॥
धन्य सिद्धार्थ महाराजा, मात त्रिशला है गुण खानि,
रतन तारक हुआ जिनसे ॥८॥मुबारक॥

धन्य वह आज की घड़ियां, धन्य वह वसुमती वसुधा ।
बचाया धर्म 'हस्ती' को ॥९ ॥मुबारक ॥

(४१)

वर्षाकाल में जतना

(तर्ज- धर्म का मारग है बांका....)

जीव की जतना कर लीजे रे२,
आयो वर्षाकाल धर्म की करणी कर लीजे ॥टेर ॥
दया धर्म को मूल समझ कर, समता रस पीजे रे, समझकर२ ॥आयो ॥
नित वर्षे जल बिन्दु गगन से, जीव चले असराल ।
लीलण फूलण पांच रंग की, चालो उनको टाल ॥१ ॥जीव ॥
खाने पीने की वस्तु का संग्रह नहीं कीजे ।
मिर्च, मसाले और दाल, बिन देखां मत लीजे ॥२ ॥जीव ॥
रात्रि-भोजन आदि अंधाधुंध सज्जन तज दीजे ।
चौमासा के पुण्य दिनों में, हिंसा टालीजे ॥३ ॥जीव ॥
मुनिवर तज संचार काल, वर्षा में स्थिर रहते ।
उत्तम श्रावक धर्मी भी नहिं, बिन मतलब भमते ॥४ ॥जीव ॥
(रामचन्द्र वनवास समय भी, पंचवटी रहते) ॥४ ॥जीव ॥
असंख्य जीव मल-मूत्र स्थान में, ज्ञानी बतलाते ।
गली-नली को छोड़ दया हित, सूखे में जाते ॥५ ॥जीव ॥
बिन छाने मति पीओ पानी, जीव-पिंड लो जान बंधुवरजी ।
दिन प्रति दोनों समय निहाले, पाणी को मतिमान ॥६ ॥जीव ॥
जीव असंख्य हुए भूमि पर, भटकत मर जावे ।
ताने ज्ञानी जीव दया हित, पौषध व्रत ठावे ॥७ ॥जीव ॥
पर्व समय का लाभ कमावन, आरम्भ तज देना रे ।
आज्ञापूर्वक निज गुण साधो, पाओ सुख चैना रे ॥८ ॥जीव ॥
दान, शील, तप, भाव आराधो, विमल भाव धरके रे, आराधो ।
'गजमुनि' सत्य समझकर सेवो, प्राणी सब जगके ॥९ ॥जीव ॥

(४२)
आचार्य-परम्परा

(तर्ज- सुज्ञानी जीवा)

प्रतिदिन जप लेना, त्यागी गुरुओं को भविजन भाव से ॥टेर ॥

महावीर के शासन भूषण, धर्मदास मुनिराय ।
परम प्रतापी धर्म प्रचारक, थे आचार्य महान हो ॥१ ॥प्रति ॥

शिष्य निन्नाणु हुए आपके, ज्ञान क्रिया में शूर ।
धन्नाजी ने मरुभूमि से, किया कुमत को दूर ॥२ ॥प्रति ॥

पट्टधर भूधर पूज्य प्रतापी, शिष्य जिन्हों के चार ।
रघुपत, जयमल, जेतसिंह अरु कुशलचन्द्र लो धार हो ॥३ ॥प्रति ॥

रघुपत, जयमल, कुशलाजी के, हुआ शिष्य समुदाय ।
कुशल वंश के पूज्यों का मैं, ध्यान करू-चितलाय हो ॥४ ॥प्रति ॥

गुमानचन्द्र और रत्नचन्द्र जी, शासन के शृंगार ।
चाचा गुरु थे रत्नचन्द्र के, दुर्गादास अनगार हो ॥५ ॥प्रति ॥

चार बीस संवत्सर लग, रखने को सम्मान ।
रत्नचन्द्र गणिपद नहीं लीना, पूज्य दुर्ग को मान हो ॥६ ॥प्रति ॥

दुर्गादास के बाद रत्नमुनि, को दीना गण भार ।
गुरु गुमान की मर्यादा में, गणपति थे सुखकार हो ॥७ ॥प्रति ॥

कुशल वंश के पूज्य तीसरे, हमीरमल्ल मुनिराय ।
परम प्रतापी पूज्य कजोड़ी, महिमा कही न जाए ॥८ ॥प्रति ॥

पंचम पूज्य बहुश्रुतधारी, विनय चन्द्र मुनिराज ।
शोभाचन्द्र जी पूज्य हुए छट्ठ, दमियों के सिरताज ॥९ ॥प्रति ॥

वादीमर्दन कनीरामजी, बालचन्द्र तपधार ।
चन्दन मुनिवर शीतल चन्दन, मुनित्रय थे सुखकार ॥१० ॥प्रति ॥

'गजेन्द्र' सब पूज्यों का अनुचर, करता उनका ध्यान ।
भाव सहित जो पढ़े भविक जन, पावे सौख्य निधान हो ॥११ ॥प्रति ॥

(४३)

पार्श्व-महिमा

तर्ज- (शिवपुर जाने वाले तुमको....)

पार्श्व जिनेश्वर प्यारा, तुमको कोटि प्रणाम २ ॥टेर॥
अश्वसेन कुल कमल दिवाकर, वामादे मन कुमुद निशाकर ।
भक्त हृदय उजियारा ॥१ ॥तुमको ॥
जड़ जग में बेभान बना नर, आत्म तत्त्व नहीं समझे पामर ।
उनका करो सुधारा ॥२ ॥तुमको ॥
तुम सम दूजा देव न भय हर, वीतराग निकलंक ज्ञान धर ।
ध्यान से होवे अमरा ॥३ ॥तुमको ॥
सकल चराचर सम्पत्ति अस्थिर, आत्म रमणता सदानंद कर,
यही बोध है सुखकर ॥४ ॥तुमको ॥
देव तुम्हारी सेवा मन भर, करें बने वह अजर-अमर नर ।
सदा लक्ष्य हो सब घर ॥५ ॥तुमको ॥
(हो यह भावना सब घर)
भूल न तू धन में ललचाकर, परिजन तन अरु धन भी नश्वर ।
पार्श्व चरण ही दिलधर ॥६ ॥तुमको ॥
दुनिया में मन नहीं लुभाकर, पार्श्व वचन का तो पालन कर ।
'गजमुनि' (हस्ती) विषय हटाकर ॥७ ॥तुमको ॥

(४४)

पर्व पर्युषण आया

यह पर्व पर्युषण आया, सब जग में आनंद छाया रे ॥टेर॥
यह विषय कषाय घटाने, यह आतम गुण विकसाने ।
जिनवाणी का बल लाया रे, यह___
यह जीव रुले चहुं गति में, ये पाप करण की रति में ।
निज गुण सम्पद को खोया रे, यह___
तुम छोड़ प्रमाद मनाओ, नित धर्म ध्यान रम जाओ ।
लो भव-भव दुःख मिटाओ रे, यह___
तप-जप से कर्म खपाओ, दे दान द्रव्य फल पाओ ।

ममता त्यागो सुख पाओ रे, यह___

मूरख नर जन्म गमावे, निन्दा विकथा मन भावे ।

इनसे ही गोता खाया रे, यह___

जो दानशील आराधें, तप द्वादश भेदे साधें ।

शुद्ध मन जीवन सरसाया रे, यह___

बेला, तेला और अठायां, संवर- पौषध करे मन भाया ।

शुद्ध पालो शील सवाया रे, यह___

तुम विषय-कषाय घटाओ, मन मलिन भाव मत लाओ ।

निन्दा विकथा तज माया रे, यह___

कोई आलस में दिन खोवे, सतरंज तास रमे या सोवे ।

पिक्चर में समय गमाया रे, यह___

संयम की शिक्षा लेना, जीवों की जयणां करना ।

जो जैन धर्म तुम पाया रे, यह___

जन-जन का मन हरषाया, बालक गण भी हुलसाया ।

आत्म शुद्धि हित आया रे, यह___

समता से मन को जोड़ो, ममता का बंधन तोड़ो ।

है सार ज्ञान का पाया रे, यह___

सुरपति भी स्वर्ग से आवें, हर्षित हो जिन गुण गावें ।

जन-जन को अभय दिलाया रे, - यह___

'गजमुनि' निज मन समझावे, यह सोई शक्ति जगावे ।

अनुभव रस पान कराया रे, यह___

(४५)

सामायिक : शान्ति का द्वार

(तर्ज - जिया बेकरार है, हृदय की पुकार है)

सामायिक में सार है, टारे विषय विकार है ।

करलो भैया सामायिक तो निश्चय बेड़ा पार है ॥टेर॥

भरत भूप ने काच महल में, समता को अपनाया हो

विषय-विकार को दूर हटाकर, वीतराग पद पाया हो ।

मन को लीना मार है, पाया केवल सार है ॥करलो॥

मेतारज मुनि सामायिक कर, तन का मोह हटाया हो
प्रबल वेदना सहकर मुनि ने, केवल ज्ञान मिलाया हो ।
दिल में करुणा धार है, निज दुःख दिया विसार है ॥करलो ॥
पुणिया ने नित सामायिक कर, काम क्रोध को मारा हो
न्याय नीति से द्रव्य मिलाकर, अपना किया गुजारा हो ।
वीर प्रभु दरबार है, धन्य हुआ अवतार है ॥करलो ॥
इन्द्रिय वशकर शांत स्थान में, मौन सहित अभ्यास करो
ज्ञान ध्यान में चित्त रमाकर, राग द्वेष का नाश करो ।
करना सबसे प्यार है, यही धर्म का सार है ॥करलो ॥
अंश मात्र भी जो सामायिक अपनाते नर नार हैं
वैर विरोध रहे नहीं जग में, घर घर मंगलाचार है ।
'गजमुनि' का आधार है, सुख शांति का द्वार है ॥करलो ॥

(४६)

संकल्प

गुरुदेव चरण वन्दन करके, मैं नूतन वर्ष प्रवेश करूँ ।
शम- संयम का साधन करके, स्थिर चित्त समाधि प्राप्त करूँ ॥१ ॥
तन, मन, इन्द्रिय के शुभ साधन, पग-पग इच्छित उपलब्ध करूँ ।
एकत्व भाव में स्थिर होकर, रागादिक दोष को दूर करूँ ॥२ ॥
हो चित्त समाधि तन-मन से, परिवार समाधि से विचरूँ ।
अवशेष क्षणों को शासनहित, अर्पण कर जीवन सफल करूँ ॥३ ॥
निन्दा, विकथा से दूर रहूँ, निज गुण में सहजे रमण करूँ ।
गुरुवर वह शक्ति प्रदान करो, भवजल से नैया पार करूँ ॥४ ॥
शमदम संयम से प्रीति करूँ, जिन आज्ञा में अनुरक्ति करूँ ।
परगुण से प्रीति दूर करूँ, 'गजमुनि' यों आंतर भाव धरूँ ॥५ ॥

(अपने ७३ वें जन्मदिवस पर के.जी.एफ. में रचित)

(४७)

प्रभु प्रार्थना

(तर्ज - धन धर्मनाथ धर्मावतार सुन मेरी)

श्री वर्धमान जिन, ऐसा हमको बल दो ।

घट-घट में सबके, आत्म भाव प्रगटा दो ॥टेर॥
प्रभु वैर - विरोध का भाव न रहने पावे,
विमल प्रेम सबके घट में सरसावे ।
अज्ञान मोह को , घट से दूर भगा दो ॥१॥घट॥
ज्ञान और सुविवेक बढ़े हर जन में,
शासन सेवा नित रहे सभी के मन में ।
तन मन सेवा में त्यागें, पाठ पढ़ा दो ॥२॥घट॥
हम शुद्ध हृदय से करें तुम्हारी भक्ति,
संयुक्त प्रेम से बढ़े संघ की शक्ति ।
निःस्वार्थ बंधुता सविनय हमें सिखा दो ॥३॥घट॥
चिरकाल संघ सहवास में लाभ कमावें,
नहीं भेद भाव कोई दिल में लावें ।
एक सूत्र में हम, सबको दिखला दो ॥४॥घट॥
चर स्थावर साधन भरपूर मिलावें,
साधना मार्ग में नहीं चित्त अकुलावे ।
'गज' वर्धमान पद के, अधिकारी कर दो ॥५॥घट॥

(४८)

गुरुदेव तुम्हारे चरणों में

जीवन धन आज समर्पित है, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥टेर॥
यद्यपि मैं बंधन तोड़ रहा, पर मन की गति नहीं पकड़ रहा ।
तुम ही लगाम थामे रखना, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥१॥
मन - मन्दिर में तुम को बिठा, मैं जड़ बंधन को तोड़ रहा ।
शिव मंदिर में पहुँचा देना, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥२॥
मैं बालक हूँ नादान अभी, एक तेरा भरोसा भारी है ।
अब चरण-शरण में ही रखना, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥३॥
अंतिम बस एक विनय मेरी, मानोगे आशा है पूरी ।
काया छायावत् साथ रहे, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥४॥

(४९)

संघ की शुभ कामना

(तर्ज : लाखों पापी तिर गये)

श्री संघ में आनन्द हो, कहते ही वन्दे जिनवरम् ॥टेर॥

मिथ्यात्व निशिचर का दमन, कहते ही वन्दे जिनवरम्,
सम्यक्त्व के दिन का उदय, कहते... ॥१॥

दिल खोल अरु मल दूर कर, अभिमान पहले गाल दो,
कल्याण हो सच्चे हृदय, कहते... ॥२॥

दानी दमी ज्ञानी बनें, धर्माभिमानी हम सभी,
बिन भेद प्रेमी धर्म के, कहते... ॥३॥

सत्य, समता, शील अरु संतोष मानस चित्त हो,
त्यागानुरत मम चित्त हो, कहते... ॥४॥

शुभ धर्म सेवी से नहीं, परहेज अणुभर भी हमें,
सर्वस्व देवें संघ हित, कहते... ॥५॥

जिनवर हमें वर दो यही, सहधर्मी वत्सलता करें,
अनभिज्ञ को 'करी' बोध दें, कहलावे वन्दे जिनवरम् ॥६॥
(श्री संघ में आनन्द हो, कहते ही वन्दे जिनवरम् ॥)

(५०)

पर्युषण - महिमा

(तर्ज - झण्डा ऊँचा रहे हमारा)

पर्युषण है पर्व हमारा, देह मुक्ति का है यह द्वारा ॥टेर॥
अनंतजीव का मुक्ति-विधाता, शान्ति सुधा सब जग बरसाता।
आत्म शुद्धि का पाठ पढ़ाता, तभी बना जग का यह प्यारा ॥१॥
सुरपति इसमें पुण्य कमाते, मृत्युलोक भी पर्व मनाते।
मुनिजन के मन सुन हर्षाते, संयमियों का परम आधारा ॥२॥
पाप ताप संताप मिटाता, मुद मंगल सन्मति का दाता।
जीव मात्र के हो तुम भ्राता, निर्मल कर दो चित्त हमारा ॥३॥
युग-युग में जो इसे मनावें, राग-द्वेष को दूर भगावें।
दिव्य भाव की संपद पावें, आनन्द भोगेगा अब सारा ॥४॥

(५१)
भगवान तुम्हारी शिक्षा

जीवन को शुद्ध बना लेऊँ, भगवान् तुम्हारी शिक्षा से
सम्यग् दर्शन को प्राप्त करूँ, जड चेतन का परिज्ञान करूँ।
जिनवाणी पर विश्वास करूँ, भगवान तुम्हारी शिक्षा से ॥१॥
अरिहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु, जिन मार्ग धर्म को नहीं बिसरूँ ।
अपने बल पर विश्वास करूँ, भगवान तुम्हारी शिक्षा से ॥२॥
हिंसा असत्य चोरी त्यागूँ, विषयों को सीमित कर डालूँ ।
जीवन धन को नहीं नष्ट करूँ, भगवान् तुम्हारी शिक्षा से ॥३॥

(५२)
सच्ची सीख

(तर्ज - वीर प्रभु के गुण नित्य गाये जा)

जिन्दगी है संघ की, सेवा में लगाए जा ।
वीर के चरणों में प्यारे दिल को रमाएजा ॥टेर॥
गुरु मात गुरु तात, गुरु सच्चे जानो भ्रात ।
आत्म शांति पाने हेतु ध्यान तूँ लगाए जा ॥१॥
धन दारा के त्यागी हैं,जो,विश्व में विरागी हैं जो ।
सत्य के अनुरागी उनका मान बढ़ाये जा ॥२॥
काम क्रोध मोह लोभ, विश्व में बढ़ाते क्षोभ ।
गुरु का प्रताप पाय, दोषों को हटाए जा ॥३॥
देव हैं परोक्ष आज, गुरु उनका करते काज ।
प्रत्यक्ष परमेश गुरुदेव ही मनाए जा ॥४॥
पूज्य शोभाचंद से , विश्व में हुए मुनिंद ।
'गजमुनि' गुरुजी को शीष नमाए जा ॥५॥

(५३)
कौमी हमदर्दी

(तर्ज -लाखों पापी तिर गये सत्संग के प्रताप से)

(भाइयों) जैनिओं ! कौमी हमीयत आप अब तो सीख लो।
रसभरी प्याली मुहब्बत की, पिलाना सीख लो ॥टेर॥

जातियां करती तरक्की, देश में सब देख लो ।
धर्म बन्धु से मुहब्बत, का सबक अब सीख लो ॥१॥
आपका कोई भी भाई हो नहीं भूखा कहीं ।
मूर्खता को भी निशां जग से मिटाना सीख लो ॥२॥
है इसी में आपकी इज्जत व इसमें शान है ।
कौमी खिदमत के बहादुर अब तो होना सीख लो ॥३॥
देव गुरु और धर्म की सेवा में तन अर्पण करो ।
है भला इसमें ही अब दिल को जमाना सीख लो ॥४॥
खर्चते धन रंग से उत्सव दिखाने के लिये ।
पर दुख भंजन के लिए कुछ भी तो देना सीख लो ॥५॥
भूख से पीड़ित हजारों बंधु छोड़े धर्म को ।
धर्म में भी शर्म आती दुःख छुड़ाना सीख लो ॥६॥
दर्द होता देख के 'गजमुनि' पराये हाल को ।
पर न जो उफ भी करें उनको जगाना सीख लो ॥७॥

(५४)

षट् कर्म की साधना

(तर्ज - धनधर्मनाथ धर्मावतार सुन मेरी...)

कहे मुनीश्वर सुनो बाई अरु भाई
षट् कर्माराधन की करो कमाई ॥टेर॥
अमूल्य नर भव पुण्य योग से पाया २,
सफल करो, मत फंसो जगत की माया ।
नश्वर है सब ठाठ एक दिन जाना २
ऐसा कर लो कार्य न हो पछताना ॥
शास्त्र वचन को धार, तजो प्रभुताई- ॥१॥षट्-
देव गुरु अरु धर्म-तत्त्व त्रय जानो२,
सब शास्त्रों का सार यही पहिचानो ।
शक्ति सहित तीनों को जो आराधे२,
श्रेणिक नृप सम तीर्थंकर पद साधे ॥
प्रथम कर्म (कर्तव्य)देव भक्ति मन भाई ॥२॥षट्-

देव वही जो राग रोष से हीना२,
कनक कामिनी विजय करन प्रवीना ।
गुण वर्धन की उज्ज्वल भक्ति जानो २,
वीतरागता मय प्रभु है यह मानो ॥
निरवद्य भक्ति ही सबको सुखदाई_ ॥३ ॥षट्_
अर्जुन माली ने की जिनवर की भक्ति २
सेठ सुदर्शन ने बतलाई शक्ति ।
उसी जन्म में कर्म काट शिव पाया२,
सच्ची पूजा का फल यों शास्त्र सुनाया ॥
प्रभु भक्ति बिन देते जन्म गंवाई_ ॥४ ॥षट्_
कर्म दूसरा गुरु सेवा दिल धरलो२,
महाव्रती ज्ञानी मुनि वंदन करलो ।
असंग्रही सात्त्विक जीवन के धारी २,
शान्त जितेन्द्रिय बिना स्वार्थ उपकारी ॥
ऐसे गुरु ही भव जल देत तिराई_ ॥५ ॥षट्_
प्रात: समय में मुनि दर्शन नित करना२,
चवदे भेदे प्रतिलाभी दु:ख हरना ।
संयम में उपकारक सेवा करिये२,
भूल कभी उन्मार्ग साख नहीं भरिये ॥
सद्गुरु ही भव जल से देत तिराई_ ॥६ ॥षट्_
बलभद्र मुनि की मृग ने की थी सेवा २,
शुभ योग कल्प पंचम का बन गया देवा ।
राय प्रदेशी को केशी ने तारा २,
नास्तिक था भरपूर बड़ा हत्यारा ॥
गुरु वचनों से उसने सुर गति पाई_ ॥७ ॥षट्_

(५५)

गुरु वन्दना

(तर्ज - जाओ जाओ अय मेरे साधु...)

आओ आओ अय प्यारे मित्रों ! गुरु दर्शन को आओ ॥

प्रात: उठ मंगलमय प्रभु का, निर्मल ध्यान लगाओ ।
भवभव के उपकारी सद्गुरु, उनको सीस नमाओ ॥१॥
कनक कामिनी के जो त्यागी, इन्द्रिय विषय विरागी ।
कर्म बंध छेदन के हेतु, उनकी सेवा बजाओ ॥२॥
गुरु मुख देखे दुःख टाले सब, होवे मंगलाचार ।
सुर तरु सम सेवो नितभविजन, सुख शांति दातार ॥३॥
उपकारी सद्गुरु सम दूजा, नहीं कोई संसार ।
मोह भंवर में पड़े हुए को, यही बड़ा आधार ॥४॥
क्रोध लोभ से दूर हटाकर, देते हमें बचाय ।
इसीलिए कहता है 'गजमुनि', गुरु शरणा लो जाय ॥५॥

(५६)

सच्ची सीख

(तर्ज - जावो जावो ऐ मेरे साधु....)

गाओ गाओ अय प्यारे गायक, जिनवर के गुण गाओ ॥टेर॥
मनुज जन्म पाकर नहीं कर से, दिया पात्र में दान।
मौज शौक अरु प्रभुता खातिर, लाखों दिया बिगाड़ ॥१॥
बिना दान के निष्फल कर हैं, शास्त्र श्रवण बिन कान।
व्यर्थ नेत्र मुनि दर्शन के बिन, तके पराया गात ॥२॥
धर्म स्थान में पहुँचि सके ना, व्यर्थ मिले वे पांव।
इनके सकल करण जग में, है सत्संगति का दांव ॥३॥
खाकर सरस पदार्थ बिगाड़े, बोल बिगाड़े बात।
वृथा मिली वह रसना, जिसने गाई न जिन गुण गात ॥४॥
सिर का भूषण गुरु वन्दन है, धन का भूषण दान।
क्षमा वीर का भूषण, सबका भूषण है आचार ॥५॥
काम मोह अरु पुद्गल के हैं, गायें गान हजार।
'गजमुनि' आत्म रूप को गाओ, हो जावे भव पार ॥६॥

(५७)

रक्षा-बन्धन

(तर्ज – जीव की जतना कर.....)

जीव की रक्षा कर लीजे रे२
रक्षा बन्धन पर्व भाव से सच्चा पा लीजे ॥टेर॥
जीव दया ही रक्षा भारी, मन में बांधीजे ।
इह भव पर भव पामे साता, अविचल पद लीजे ॥१॥जीव॥
रक्षा बांधे बहन भाई के, पुरजन के भूदेव ।
ज्ञान-सूत्र से बांधे गुरुजन, जन्म मरण छीजे ॥२॥जीव॥
शील सूत्र सतवंती बांधे, ज्यूं सुभद्रा नार ।
सुर, नर, दानव रक्षा बल से, चरण नमे रीझे ॥३॥जीव॥

(५८)

चातुर्मास काल

(तर्ज - सुनलो भव प्राणी...)

वर्षा ऋतु आई मुनिवर कीधा है बंद विहार जी ।
आतम शान्ति का, करलो विचार जी ॥टेर॥
भूमि पर हरियाली छाई, जल थल हो गये एक ।
जिनवाणी बरसे है हृदय पर, धर्म बीज धर नेक ॥१॥वर्षा॥
विषय कषाय घटाय प्रेम से, नियम करो मन धार ।
धर्म क्रिया में आलस अरू मत लाओ बेदरकार ॥२॥वर्षा॥
श्रावक की आदर्श जीवनी, शिक्षा दे हितकार ।
धन दारा से ममत्व घटाकर, सद् व्यय करना सारजी ॥३॥वर्षा॥
सामायिक पौषध निशि भोजन, त्याग अरू यत्न विशेष ।
खान-पान आरंभ कार्य में, है यह कर्तव्य लेश जी ॥४॥वर्षा॥
जीवन के मलिनाचारों की मन से करना शुद्धि ।
योग्य क्षेत्र में ही सम्पति को, बोने की हो बुद्धि ॥५॥वर्षा॥
पुण्योदय या इतर हेतु से, सन्धि मिली नवीन ।
सदुपयोग कर लाभ उठावें, तो है पुरुष प्रवीण जी ॥६॥वर्षा॥

सतारा के (धार्मिक) सात्त्विक बंधु, करो धर्म उद्योत ।
फिर से चमको हिन्द सितारे, बढ़े जैन धर्म की ज्योतजी ॥७ ॥वर्षा ॥
रत्नवंश सौभाग्य गुरुपद - कज सेवी गज इंद ।
हार्दिक भाव सुनाये तुमको (लेके)शरण वीर जिनन्दजी ॥८ ॥वर्षा ॥

(सतारा चातुर्मास संवत् १९९६ के अवसर पर)

(५९)

महावीर स्तुति

(तर्ज - सेवो सिद्ध सदा जयकार)

ध्याओ शासनपति महावीर, इससे होवे मंगलाचार ॥टेर ॥
क्षत्रियकुल में जन्म लिया प्रभु, धन धन वृद्धि अपार ।
राज्य विभव सब त्यागे आपने, योग लिया स्वीकार ॥१ ॥ध्याओ ॥
काम, क्रोध, मद षड् रिपुओं का, किया विजय सुखकार ।
सकल चराचर के ज्ञायक बन,बोध दिया हितकार ॥२ ॥ध्याओ ॥
विजया अपराजिता देवी मिल, सेव करे त्रिकाल ।
वर्द्धमान का ध्यान धरे नित,जो घर हर्ष अपार ॥३ ॥ध्याओ ॥

(६०)

पार्श्वनाथ स्तुति

(तर्ज - तुमको लाखों प्रणाम)

वामाजी के नन्दन, तुम हो मेरे आधार ॥ध्रुव ॥
काशी देश जन्म प्रभु लीना, अश्वसेन कुल उन्नत कीना ।
मम मन मंदिर रहना, तुम हो... ॥१ ॥
जग में अन्य पदार्थ नाना, उनमें नहीं आनन्द पिछाना ।
जीवन हित धर लीना, तुम हो... ॥२ ॥
साधन से शासन हित करना, इसी कामना में हो मरना ।
तन मन अर्पण करना, तुम हो... ॥३ ॥
सफल बनूं निज हित साधन में, यही आशा तुमसे है मन में ।
लीन हूं तेरी लगन में, तुम हो ... ॥४ ॥
चैत्र कृष्ण तिथि तव सुमिरण में, संघोन्नति ही बसी धुनन में ।
'हस्ती' मगन मनन में, तुम हो... ॥५ ॥

(६१)
माता- पद

(तर्ज - महावीर भगवान तुमको लाखों प्रणाम)

मरुदेवीजी माता जग में अमर हुई ॥टेर ॥

ऋषभदेव सा सुत देकर के, सच्चा सुख सबको दिखला के ।
बनी मुक्ति अधिकारी ॥१ ॥जग ॥

चैत्र बदी अष्टमी तिथि जाए, ऋषभदेव सा सुत मन भाए ।
जग जननी पद पाई ॥२ ॥जग ॥

भरत बाहुबली पौत्र हुए सौ, सूर्य वंश का मूल हुआ सो ।
मां की महिमा छाई ॥३ ॥जग ॥

सहस्र पीढ़ियां देखी जिसने, रोग शोक नहीं पाया उसने ।
पूर्ण दया अवतारी ॥४ ॥जग ॥

तन, धन सम्पत्ति सब सुख पाया, अन्त समय में केवल पाया ।
चढ़े भाव की श्रेणी ॥५ ॥जग ॥

मरुदेवी सी बनलो बहना, पाओगी तुम भी सुख चैना ।
तज मिथ्या जंजाल ॥६ ॥जग ॥

माता का दिन खूब मनाती, अपना जननी पद विसराती ।
आज भटकती नारी ॥७ ॥जग ॥

■

पंचम खण्ड

परिशिष्ट

प्रथम चार खण्डों में अविभक्त सामग्री का समावेश इस खण्ड में किया गया है। इसमें चार परिशिष्ट हैं– 1. चरितनायक की साधना में सहयोगी प्रमुख साधक महापुरुष 2. चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित सन्त–सती 3. कल्याणकारी संस्थाएँ और 4. आचार्यप्रवर के 70 चातुर्मास : एक विवरण।

प्रथम परिशिष्ट में पूज्य चरितनायक के गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्र जी म.सा., शिक्षा गुरु स्वामीजी श्री हरखचन्द जी म.सा., संघ–व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी म.सा., शासन सहयोगी श्री भोजराजजी म.सा. एवं पं. रत्न श्री लक्ष्मीचन्द जी म.सा. के योगदान का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। द्वितीय परिशिष्ट में चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित होकर साधना में निरतिचार रूप से संलग्न रहने वाले प्रमुख सन्त–सतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तृतीय परिशिष्ट में उन कल्याणकारी संस्थाओं का परिचय है जो चरितनायक के शासनकाल में सुज्ञ, विवेकशील एवं जागरूक श्रावकों द्वारा उपकार की भावना से स्थापित की गई हैं। अन्तिम परिशिष्ट में चरितनायक पूज्य गुरुदेव के 70 चातुर्मासों की सारिणी है, जिसमें शासनकाल की प्रमुख घटनाओं एवं गच्छ के संतों के चातुर्मासों की भी सूचना संकलित है।

चरितनायक की साधना में प्रमुख सहयोगी साधक महापुरुष

चरितनायक पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के व्यक्तित्व-निर्माण एवं साधना में जिन महापुरुषों का सहयोग रहा है, उनकी कुछ चर्चा ग्रन्थ के आमुख में की गई है। यहाँ पर चरितनायक के गुरुदेव पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. प्रमुख सहयोगी सन्तों, माता महासती रूपकँवर जी एवं उनकी गुरुणी महासती बड़े धनकंवरजी म.सा. का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

• पूज्य आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्रजी म.सा.

"गुरु कारीगर सारखा, टांकी वचन रसाल।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार॥"

जीवन के कुशल शिल्पी जिन महासाधक ने अपनी गुरु-गंभीर शिक्षा-दीक्षा से बालक हस्ती के जीवन को घड़ कर उन्हें जन-जन का आराध्य गुरु, रत्नसंघ का देदीप्यमान रत्न व जिनशासन का दिव्य दिवाकर बनाने का महनीय कार्य किया, उनका नाम है पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा.।

आपका जन्म जोधपुर निवासी श्रेष्ठिवर्य श्री भगवानदास जी चामड़ की धर्मशीला धर्मपत्नी पार्वती देवी की रत्नकुक्षि से वि.सं. १९१४ कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुआ। सौभाग्य पंचमी को जन्म होने से आपका नाम शोभाचन्द्र (सौभाग्यचन्द्र) रखा गया।

बालक शोभा को अध्ययन हेतु पाठशाला भेजा गया, पर आपमें बाल्य सुलभ चंचलता से अधिक गंभीरता थी। आप बचपन से ही एकान्त प्रिय थे। अध्ययन में मन लगता न देख कर पिता ने आपको व्यापार में जोड़ दिया, पर जिन्हें रत्नत्रय की आमदनी इष्ट हो, वे भला सांसारिक द्रव्यार्जन में कहाँ अटकते !

शुभ संयोगवश एवं आपके असीम पुण्योदय से पूज्यपाद आचार्य कजोड़ीमल जी म.सा. का पदार्पण हुआ। आपके धीर-वीर-गम्भीर व्यक्तित्व, साधनानिष्ठ जीवन व पीयूषपावन वाणी ने बालक शोभा को सदा-सदा के लिये अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। आचार्य श्री के सान्निध्य से शोभा के वैराग्य संस्कार सुदृढ होते गये। माता-पिता ने बहुत समझाया, संयम के परीषहों का भान कराया, पर सच्चे विरागी को कौन बांधे रख सकता है। अंततः वि.सं. १९२७ माघ शुक्ला पंचमी का सुप्रभात आया, जब बालक शोभा ने संयम-जीवन स्वीकार कर अपने आपको सदा-सदा के लिये पूज्य कजोडीमलजी म.सा. को समर्पित कर दिया। अब आपके दो ही लक्ष्य थे —गुरु-सेवा व ज्ञानाभ्यास। गुरु-सेवा करते हुए आपने शास्त्रों का अच्छा ज्ञान कर लिया, साथ ही संस्कृत व व्याकरण का भी पूरा अभ्यास कर लिया।

वि.सं. १९३६ में पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य पूज्य श्री कजोड़ीमल जी म.सा. के स्वर्गारोहण के पश्चात् आपने अपने आपको गुरुभ्राता पूज्य श्री विनयचन्दजी म. सा की सेवा में समर्पित कर दिया। आपका पूज्य आचार्य श्री विनयचंदजी म.सा. के प्रति सहज समर्पण, अनुपम श्रद्धा-भक्ति देख कर हर कोई आगन्तुक आश्चर्य चकित रह

जाता।

सेवा व समर्पण की आप प्रतिमूर्ति थे। नयन-ज्योति मंद होने से पूज्य आचार्य श्री विनयचंदजी म.सा. को १४ वर्षों तक जयपुर स्थिरवास विराजना पड़ा, तब उनकी अहर्निश जो सेवा आपने की वह जिनशासन के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। रात्रि में पूज्य श्री अगर करवट भी बदलते तो आहट मात्र से ही आप जाग जाते। निद्रा के क्षणों में अप्रमत्त भाव से सेवा हेतु सजगता का आपने अनुपम आदर्श उपस्थित किया।

वि.स. १९७२ में पूज्य आचार्य श्री विनयचंद जी म.सा. के महाप्रयाण के बाद चतुर्विध संघ द्वारा अजमेर में फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को आपको इस गौरवशाली परम्परा के आचार्य पद पर अधिष्ठित किया गया। आचार्य के रूप में आपने अपनी अमिट छाप छोड़ी व सहस्रों व्यक्तियों को धर्म से जोड़ कर उन्हें संस्कार प्रदान किये। एक सम्प्रदाय के आचार्य होकर भी असाम्प्रदायिकता , सभी के साथ स्नेह आपकी अनूठी विशेषता थी। उस समय के मारवाड़ी भक्त समुदाय में एक मात्र कोट्यधिपति सेठ सोहनमलजी सा. चोरड़िया (मालिक अगरचन्द मानमल, मद्रास) के नौ वर्षीय दत्तक पुत्र श्री मोहनमलजी व उनके माता-पिता द्वारा निवेदन करने एवं स्वयं मांगे जाने पर भी आपने पूर्व गुरु आम्नाय पलटाने से स्पष्ट इनकार कर दिया। यह आपकी निस्पृहता का अनुपम उदाहरण है।

यही नहीं भक्तों में कौन आया, नहीं आया, इससे भी आप सर्वथा निरपेक्ष थे। सदा स्वाध्याय व साधना में लीन अप्रमत्त जीवन के आप साकार स्वरूप थे। स्वयं चरितनायक ने अनेकों बार आपका स्मरण करते हुए फरमाया "मेरे गुरुदेव ने कभी टेका नहीं लिया। उनके जीवन का मूलमंत्र था - सरलता और अप्रमत्तता।

अपने शिष्यों को किस प्रकार गढ़ना, इसमें आप निष्णात थे। कुशल शिल्पी की भांति आपने अपने शिष्यों की विशेषताओं को किस प्रकार विकसित किया, इसका साक्षात् उदाहरण हम बालक मुनि हस्ती के जीवन से देख सकते हैं। आप अपने शिष्यों से आगम अध्ययन के साथ ही संस्कृत, प्राकृत व व्याकरण में निष्णात बनाने हेतु सदा यत्नशील रहते। आप फरमाया करते-

"घाल गले में गूदड़ी, निश्चय मांडे मरण।
गो ची पु लि नित करे, तब आवे व्याकरण॥"

आचार्य श्री स्वाध्याय, साधना व क्षण-क्षण के उपयोग के प्रति सजग थे। आप नित्य प्रति उत्तराध्ययन सूत्र का पूर्ण स्वाध्याय किया करते। उत्तराध्ययन सूत्र आपको निजनामवत् कंठस्थ था , यहाँ तक कि पीछे के क्रम से भी पूरा उत्तराध्ययन सूत्र फरमा देते। अठाई जैसा तप होने पर भी आप प्रवचन फरमाते व आवश्यक होने पर स्वयं गोचरी भी पधार जाते। सहजता, सरलता, अल्हड फक्कड़पन, सेवा, साधना व स्वाध्यायरतता जैसी अनेक विशेषताएँ आपकी जीवन-शैली का मानो अंगभूत हो गई।

आपने जिन महापुरुषों को दीक्षा प्रदान की, वे हैं —साधना की प्रतिमूर्ति श्री सागरमलजी म.सा., श्री लालचंदजी म.सा., चरितनायक श्री हस्तीमलजी म.सा., श्री चौथमलजी म.सा. एवं श्री बडे लक्ष्मीचन्दजी म.सा.। आपके शासनकाल में १६ महासतियों की दीक्षा हुई - (१) महासती श्री केवलकुंवरजी (२) महासती श्री झमकू जी (३) महासती श्री किशनकंवरजी (४) महासती श्री रूपकंवरजी (५) महासती श्री अमृतकंवरजी (६) महासती श्री केवलकंवरजी (७) महासती श्री धूलाजी (८) महासती श्री सज्जनकंवरजी (९) महासती श्री सुगनकंवरजी (१०) महासती श्री छोगाजी (महामन्दिर वाले) (११) महासती श्री विसनकंवरजी (१२) महासती श्री रतनकंवरजी (१३) महासती श्री चैनकंवरजी (१४) महासती श्री हुलासकंवरजी (१५) महासती श्री सुवाजी (१६) महासती श्री धूलाजी।

जीवन के कुशल शिल्पकार आचार्य भगवन्त शिष्यों में छिपी प्रतिभा को पहिचानने में कितने निष्णात थे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप द्वारा बालक मुनि हस्ती को अपना उत्तराधिकारी आचार्य मनोनीत किये जाने से मिलता है। आप जैसा महापुरुष ही मात्र ५ वर्ष के संयम-पर्याय वाले व १५ वर्ष की वय वाले शिष्य में रही विराट् आत्मा का अनुभव कर इस गुरुतर दायित्व के लिये यह साहसिक मनोनयन कर सकता था।

अनेक ग्राम-नगरों को जीवनपर्यन्त अपने विचरण-विहार व साधना से पवित्र पावन करने वाले महापुरुष को स्वास्थ्य की कमजोरी से वि.सं. १९७९ माघ शुक्ला पूर्णिमा से जोधपुर में अपना स्थिरवास स्वीकार करना पड़ा। आपके स्थिरवास विराजने से जोधपुर नगर मानो तीर्थधाम ही बन गया। अपने संयम सौरभ से ५६ वर्षों तक संघ को सुरभित कर अमरता का पुजारी यह महापुरुष वि.सं. १९८३ श्रावण कृष्णा अमावस्या को संथारा-समाधिपूर्वक अमरलोक के लिये महाप्रयाण कर गया।

- **स्वामीजी श्री हरखचन्दजी म.सा.**

जिन महापुरुष ने बालक हस्ती में निहित प्रतिभा को पहिचाना कि यह बालक दीक्षा लेकर भविष्य में शासन का आधार बन सकता है। ऐसी सूझ-बूझ के धनी, शासन हित-चिन्तन में सदा निरत रहने वाले महापुरुष का नाम है स्वामी जी श्री हरखचन्दजी म.सा. (श्री हर्षचन्दजी म.सा.)।

आप पूज्य आचार्य श्री विनयचंदजी म.सा. के आचार्य काल में दीक्षा लेने वाले प्रथम महापुरुष थे। संयमधनी इन महापुरुष ने गुरु भगवंतों की सेवा करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में लगा दिया। जिनशासन सदा जयवन्त रहे, रत्नसंघ परम्परा का गौरव सदा वर्धमान हो व यह परम्परा महापुरुषों की संयम-साधना की सौरभ से सदा सुवासित रहे, इस ओर आप सदा सचेष्ट रहे।

छः सात वर्षीय अबोध बालक हस्ती के अंतर में रहे हुए वैराग्य बीज को विकसित करना, अपने हृदय का असीम स्नेह उंडेल कर उन्हें ज्ञानाराधना हेतु प्रेरित करना आप जैसे महापुरुषों का ही उपकार था। आपने बालक हस्ती के साथ ऐसा आत्मीय संबंध स्थापित किया कि बालक हस्ती सदा आपकी सेवा में ही ज्ञान सीखने में लगा रहता। जैसे एक गोवत्स सदा अपनी माँ से लगा रहता है, कुछ वैसा ही स्नेह आकर्षण इन वयोवृद्ध महापुरुष में बालक हस्ती को नज़र आया।

वैराग्य अवस्था में ही बालक हस्ती को (मात्र नौ-दस वर्ष की वय में ही आपने कितना सुयोग्य बना दिया, इसके लिये पूज्य आचार्य श्री शोभाचंदजी म.सा. के जीवन चरित्र 'अमरता का पुजारी' में वैरागी हस्ती का परिचय देते हुए लिखा गया है - "होनहार बीरवान के होत चीकने पात"। अतएव शीघ्र ही आप मुनि श्री हर्षचन्दजी म. के उपदेश, वचनों और संयम के अनुकूल शिक्षाओं से साधु-जीवन के सर्वथा योग्य बन गये। मुनि श्री हर्षचन्दजी म. ने अजमेर में रहते हुए आपको पच्चीस बोल, नवतत्त्व, लघुदंडक, समिति-गुप्ति, व्यवहार सम्यक्त्व, श्वासोच्छ्वास, ९८ बोल और भगवती एवं पन्नवणा के मिला कर २५-३० थोकड़े, वीर-स्तुति, नमिप्रवज्या और दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन का अभ्यास करा दिया था। संस्कृत में शब्द रूपावली भी पूरी कंठस्थ करा दी गई। "

वैरागी हस्ती के अध्ययन क्रम के उल्लेख से स्वामीजी की अनेक विशेषताएँ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती हैं कि आप थोकड़ों के गहन ज्ञाता, आगम प्रेमी, एक कुशल शिक्षा-गुरु एवं बालक हस्ती के सच्चे संरक्षक थे, जिन्होंने एक कुशल माली की भांति बालक हस्ती के जीवन-उपवन में शिक्षा व संस्कारों का बीज वपन किया।

बाबाजी श्री हरखचन्दजी महाराज संयम के प्रति जागरूक होने के साथ आत्म-नियन्त्रण एवं अप्रमत्तता के सजग साधक थे । वे ओढ़ने के लिये मात्र अपने पास ढाई हाथ लम्बी एक चद्दर रखते, जिसमें पूरे पैर फैलाये नहीं जा सकते थे। उनका नियम था कि पैर फैलाकर नहीं सोना, पैर फैलाने से दुगुनी नींद आएगी। इस प्रकार से साधनाशील स्वामीजी द्वारा रत्नवंश परम्परा पर किये गए उपकार से हम सब उपकृत एवं श्रद्धावनत हैं। वि.सं. १९७९ के अजमेर वर्षावास में संथारा-समाधिपूर्वक इस महापुरुष ने समाधिमरण प्राप्त कर परलोक गमन कर दिया।

- **शासन सहयोगी श्री सुजानमल जी म.सा.**

जिन महापुरुष ने लघुवय मनोनीत आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के वयस्क होने तक अन्तरिम काल में उनके प्रतिनिधि रूप में महिमाशाली रत्नवंश-परम्परा का कुशल नेतृत्व किया, वे थे—स्वनामधन्य स्वामी जी श्री सुजानमलजी म.सा.।

आपका जन्म रत्ननगरी जयपुर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठिवर्य सुश्रावक श्री मालीरामजी पटनी की धर्मशीला धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती दाखीबाई की कुक्षि से वि.सं. १९३८ आसोज कृष्णा नवमी को हुआ। बचपन से ही निसर्ग से प्राप्त व संत समागम से विकसित वैराग्यसंस्कार पुष्ट होते गये व वि.सं. १९५१ चैत्र शुक्ला दशमी को १३ वर्ष की अल्पायु में आपने नागौर में तपस्वी श्री बालचन्दजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती श्रमण दीक्षा अंगीकार की।

नवदीक्षित मुनिश्री ने पं. रत्न श्री चन्दनमलजी म.सा. की सन्निधि में रहकर श्रुतज्ञान का अभ्यास किया, साथ ही अनेकों थोकड़े भी कंठस्थ किये। संगीत की ओर आपकी विशेष अभिरुचि थी। महीने में आप कम से कम चार उपवास संयम-जीवन के प्रारम्भ से ही किया करते। प्रवचन कला में आप कुशल थे।

आपने जोधपुर, पीपाड़, जयपुर, पाली, ब्यावर, भोपालगढ़, नागौर, अजमेर, रींया, किशनगढ़, रतलाम, उदयपुर, अहमदनगर, सतारा, गुलेदगढ़, लासलगांव, उज्जैन आदि विभिन्न ग्राम-नगरों में वर्षावास कर जिनवाणी की पावन सरिता प्रवाहित की। आपने अपने जीवन में सम्प्रदाय के तीन आचार्यों बहुश्रुत आचार्य श्री विनयचन्दजी म.सा., परम पूज्य आचार्य श्री शोभाचंदजी म.सा. एवं चरितनायक आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. और तपस्वी शिरोमणि श्री बालचंदजी म.सा., चन्दन सम शीतल श्री चन्दनमल जी म.सा. प्रभृति महापुरुषों की सेवा की।

परम पूज्य आचार्य श्री शोभाचंद जी म.सा. के देवलोक गमन के समय चतुर्विध संघ ने आप जैसे वय व दीक्षा स्थविर महामुनि के नेतृत्व में ही यह निर्णय लिया कि पूर्वाचार्य शोभाचंदजी म.सा. के आदेशानुसार मुनिश्री हस्तीमलजी म.सा. हमारे संघ के भावी आचार्य होंगे। पर मुनि हस्ती की उम्र अभी साढे १५ वर्ष की थी, वे स्वयं भी अध्ययन के लिए पर्याप्त समय चाहते थे और अभी दायित्व संभालने के अनिच्छुक थे, अतः शासन संभालने के लिये स्वाभाविक तौर पर सबकी दृष्टि आपकी ओर ही थी। लगभग चार वर्ष तक आपने कुशलतापूर्वक सम्प्रदाय की सारणा, वारणा, धारणा एवं संरक्षण का दायित्व संभाला। मनोनीत आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज को शासन संभालने में सर्वथा सक्षम पाकर आपने अपना अभिप्राय सहवर्ती संतों एवं चतुर्विध संघ के समक्ष रखा। तदनुसार वि.सं. १९८७ वैशाख शुक्ला तृतीया को जोधपुर में आचार्य पद महोत्सव नियत हुआ।

नियत दिन अक्षय तृतीया के दिवस पर चतुर्विध संघ की साक्षी व हजारों की जनमेदिनी की उपस्थिति में आपने व श्री भोजराज जी म. ने स्वर्गीय आचार्य श्री शोभाचंद जी म.सा. की पूज्य पछेवडी किशोरवय मुनि श्री हस्तीमलजी म. को ओढाई तो सभी मानो मंत्रमुग्ध अपलक दृष्टि से यह नयनाभिराम प्रसंग देखते रह गये। उस

समय आपने फरमाया जिसका कुछ अंश इस प्रकार था—"यशस्विनी रत्नसंघीय - परम्परा के षष्ठ पट्टधर स्वनामधन्य प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज को स्वर्गस्थ हुए आज ३ वर्ष ९ मास और ३ दिन पूरे होने जा रहे हैं। मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज ने अध्ययन का समय मांगा था। चतुर्विध संघ ने मुनि श्री की दूरदर्शिता और श्लाघनीय विवेकपूर्ण इच्छा को बहुमान देकर इन्हें अध्ययन का अवसर दिया और संघ-संचालन की व्यवस्था का दायित्व मुझे सौंपा। मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज अपना अध्ययन सम्पन्न कर सुयोग्य विद्वान् बन गये हैं। इनके सर्वविदित विनय, विवेक, वाग्वैभव, प्रत्युत्पन्नमतित्व, विलक्षण प्रतिभा, कुशाग्रबुद्धि, क्रियापात्रता, अथक श्रमशीलता, कर्तव्यनिष्ठा, मार्दव, आर्जव, निरभिमानता आदि गुणों पर हम सबको गर्व है। ये सुयोग्य आचार्य के सभी गुणों से सम्पन्न हैं। हम सब इन्हें आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की सम्प्रदाय के सातवें पट्टधर के रूप में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करते हैं। ये वय से भले छोटे हैं, किन्तु गुणों एवं पद से बहुत बड़े हैं। मुझे भी आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना है और आप सब सन्त-सतियों तथा श्रावक-श्राविकाओं को भी ऐसा ही करना है।"

आपके उद्बोधन से आपकी लघुता, उदारता, सरलता के साथ ही संघनायक के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण व समादर की भावना परिलक्षित होती है।

स्वामीजी महाराज सरलता के भंडार थे। उनका कण-कण सरलता के मधुर रस से व्याप्त था। मन, वाणी और काय की त्रिवेणी में सरलता सदा प्रवाहित होती रहती थी। वे कृत्रिमता से कोसों दूर थे। उनके हृदय में जो कुछ भी होता, रसना से वही प्रकट हो जाता। दोनों में अनुपम अद्वैत था। उनका अन्तर सर्वथा स्वच्छ, निर्मल व निर्विकार था। पुराण पुरुष होते हुए भी उनके विचारों में सहज उदारता व अद्भुत सजीवता थी। वे जपी, तपी और स्पष्टवादी संत थे। आप जैसा सोचते, वही बोलते व करते। मन, वचन व कर्म में अद्भुत साम्य था। आपके जीवन की यही विशेषता व हृदय की सरलता आपके तीखे स्पष्ट वचनों को भी मृदु बना देती। आपका व्याख्यान जोशीला व प्रेरणाप्रद होता। आपकी वाणी में ओज, गांभीर्य व परिणाम की मधुरिमा थी। ७० वर्ष से ऊपर की वय में भी आपमें तरुणों सा उत्साह व संयम में अद्भुत पराक्रम परिलक्षित होता था। भक्तजन आपको आदर से 'बाबाजी महाराज' के संबोधन से संबोधित करते थे।

आपका अन्तिम समय जोधपुर व विशेषतः कांकरिया बिल्डिंग में व्यतीत हुआ। आपकी इच्छा थी कि अन्तिम समय में पूज्य श्री (हस्तीमल जी म.सा.) का सान्निध्य-लाभ मिले। आपको अपनी भावनानुसार पूज्य आचार्यदेव का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

वि.सं. २०१० माघ कृष्णा चतुर्दशी को पिछली रात्रि में संथारापूर्वक इस महायोगी ने समाधिमरण प्राप्त किया।

• सेवाव्रती साधक श्री भोजराज जी म.सा.

दीक्षा, वय और अनुभव में वृद्ध होकर भी जिन महापुरुष ने अपने लघुवय आचार्य की पूर्ण श्रद्धा व समर्पण भाव से सेवा की तथा अध्ययन काल में संरक्षकवत् मातृतुल्य सेवा की, वे महापुरुष थे—सेवाव्रती साधक श्री भोजराज जी महाराज साहब।

आपका जन्म वि.सं. १९४४ में आसोप-खिंवसर के मध्य स्थित ललाव गांव के जाट परिवार में हुआ। शुभ संयोगवश आप नौकरी हेतु भोपालगढ़ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री मोतीचन्द जी चोरड़िया के परिवार में आये। जहाँ सहज ही आपको संत-समागम का स्वर्णिम सुअवसर प्राप्त हुआ। महापुरुषों का समागम भव-भव के बन्धन काटने

का मार्ग प्रशस्त कर देता है। आपके भी वैराग्यसंस्कार विकसित हुए। वि.सं. १९५७ में महासती जी श्री सिद्धू जी ने जोधपुर में संथारा ग्रहण किया। महासती जी के दीर्घकालीन संथारे के समय दर्शनार्थ भोपालगढ़ के भाई-बहिनों के साथ आप भी जोधपुर गए। वहीं आपको पंडित मुनि श्री चन्दनमलजी म.सा. के दर्शन व उपदेश श्रवण का सुअवसर मिला। सेठानी जी श्रीमती सोनी बाई जी की अनुमति से आप पंडितमुनि श्री के सान्निध्य में रहे, जहाँ आपने साक्षरता व प्रारंभिक धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया। पंडित मुनि श्री की सेवा में शिक्षा व संस्कार पाकर आपका वैराग्य दृढ़ से दृढतर बनता गया। मात्र १४ वर्ष की वय में वि.सं. १९५८ आषाढ कृष्णा पंचमी को सेठों की रींया में आपने स्वामीजी श्री चन्दनमल जी म.सा. का शिष्यत्व स्वीकार कर भागवती श्रमण दीक्षा अंगीकार कर ली।

दीक्षा लेकर आपने संयम-साधना के साथ गुरु भगवंतों व शासन की सेवा को अपना लक्ष्य बना लिया। आप उन विरल साधकों में से एक हैं जिन्होंने तीन-तीन आचार्यों (आचार्य श्री विनयचंदजी महाराज, आचार्य श्री शोभाचंद जी महाराज एवं चरितनायक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज) की सेवा की।

३७ वर्ष का आपका संयम-पर्याय सेवा का पर्याय समझा जा सकता है। लघुवय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज जब स्थंडिल पधारते तो आप सम्मानार्थ साथ पधारते व आग्रहपूर्वक स्थंडिल की पातरी भी हाथ में लेने में संकोच नहीं करते। अध्ययनरत लघुवय आचार्य श्री जब कमरे में अध्ययन करते तो आप मानो प्रहरी बन बाहर विराजते व भक्त समुदाय को बाहर से ही मौन दर्शन करने का संकेत करते। आप भिक्षाचरी के विशेषज्ञ संत थे। किनके लिए क्या आवश्यक व उपयोगी है, इसका सदा सतर्कता से ध्यान रखते। लघुवय आचार्य श्री व अन्य अध्ययनरत संतों के लिये बौद्धिक रूप से क्या उपयोगी, साथ ही विकार भाव जागृत ही न हो, ऐसे हित मित पथ्यकारी आहार की गवेषणा करने का सदा खयाल रखते। वस्तुतः एक कुंभकार जैसे मिट्टी के बर्तनों को घड़ने में अंदर हाथ रख कर चोट करता है, माता जैसे स्नेह, ममत्व व हित भाव से शिशु को बड़ा करती है कुछ वैसा ही योगदान आचार्य हस्ती के जीवन-निर्माण में आपका रहा। आपको अगर आचार्य हस्ती की धाय मां की उपमा दे दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इन्द्रियों पर आपका बड़ा नियन्त्रण था। गिनती की कुछ चीजों के सिवाय लगभग सभी मिष्ठान्नों के त्यागी थे। जो अच्छी से अच्छी वस्तु भिक्षा में मिलती, उसे वे साथी सन्तों को दे देते। आपने समस्त हरी सब्जी का भी त्याग कर दिया था। महीने में पांच दिन के सिवाय आपको चार विगय का त्याग था।

आचार्य श्री के दक्षिण प्रवास की ओर विहार में भी आप उनके साथ थे। रतलाम में वि.सं. १९९४ फाल्गुन शुक्ला एकादशी को आपने संलेखना संथारा स्वीकार कर द्वादशी को प्रातः ५ बजे ब्रह्मवेला में अपना अन्तिम मनोरथ पूर्ण कर महाप्रयाण कर दिया। बहुत कम ऐसे महापुरुष होते हैं जो दूसरों के निर्माण में अपने अस्तित्व को भी समर्पित कर देते हैं। ऐसे ही महापुरुष थे स्वामी जी भोजराजजी महाराज।

- पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा.

रत्नसंघ रूपी हार की बहुमूल्य मणि, मर्मज्ञ शास्त्रवेत्ता, आगम रसिक, शोधप्रिय इतिहासज्ञ एवं विशुद्ध श्रमणाचार के पालक और प्रबल समर्थक थे पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा.। संवत् १९६५ में मारवाड़ के हरसोलाव ग्राम में श्री बच्छराजजी बागमार की धर्मपत्नी श्रीमती हीराबाई की कुक्षि से जन्मे लूणकरण जी अल्पायु में पिताश्री का वियोग होने पर विक्रम संवत् १९७९ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को १४ वर्ष की वय में मुथाजी के मंदिर, जोधपुर में पूज्य आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में भागवती दीक्षा अंगीकार कर 'मुनि लक्ष्मीचन्दजी'

बन गए। आपको प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं का विशेष ज्ञान था। आप सत्य बात कहने में स्पष्ट रहते थे। भीतर और बाहर से आप एक थे। सरल एवं भद्रिक प्रकृति के सन्त थे। लम्बे कद एवं सुडौल देह के धनी पण्डितरत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा. ने लगभग ५६ वर्षों की सुदीर्घ अवधि तक अनन्य निष्ठा के साथ श्रमण धर्म का पालन करते हुए अनेक हस्तलिखित एवं प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन कर स्थानकवासी परम्परा के विशिष्ट कवियों, तपस्वियों, साध्वियों आदि के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला। श्री रतनचन्द्र पद मुक्तावली, सुजानपद सुमन वाटिका, तपस्वी मुनि बालचन्द्रजी , सन्त-जीवन की झांकी आदि अनेक कृतियां आपके परिश्रम से प्रकाश में आ सकीं। परम्परा के सन्त-सतियों का जीवन चरित्र, जो सहज उपलब्ध नहीं था, उसे श्रमपूर्वक खोजकर आपने समाज के सामने रखा। 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' के लेखन में भी आपका सहयोग सराहनीय रहा।

सन्त-सतियों के विद्याभ्यास में आपकी गहन रुचि थी और समय-समय पर आप उनको पढ़ाया भी करते थे। आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के सतीर्थ्य होते हुए भी आपने जिस निष्ठा एवं समर्पण से उनकी आज्ञा में अपना सर्वस्व अर्पित किया, वह साधकों के लिए प्रेरणापुंज के रूप में स्मरणीय रहेगा। आप एक प्रकार से आचार्यदेव के दक्षिण हस्त थे।

लगभग २ वर्ष जोधपुर में स्थिरवास विराजित रहने पर आपके सुशिष्य श्री मानचन्द्र जी म.सा. (वर्तमान उपाध्याय प्रवर) ने आपकी तन, मन से सेवा कर अनूठा आदर्श उपस्थित किया। काल धर्म को प्राप्त होने के १० दिन पूर्व पाट से गिर जाने के कारण आपकी गर्दन की हड्डी टूट गई थी , जिसके अनन्तर आपने देह की विनश्वरता को जानकर आचार्यप्रवर की स्वीकृति मिलने पर आलोचना प्रायश्चित्तपूर्वक चित्त को समाधि में लगा लिया और पौष शुक्ला १० संवत् २०३५ दिनांक ७ जनवरी १९७९ को प्रातः ५.३० बजे आप जोधपुर में देवलोक गमन कर गए। व्याख्यान स्थगित रखकर आचार्यप्रवर एवं सन्त-मण्डल ने इन्दौर में आपको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

• महासाधिका महासती श्री बड़े धनकंवर जी म.सा.

जिनशासन उन्नयन में संत भगवंतों के साथ ही महासतीवृन्द का महिमाशाली योगदान रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि याकिनी महत्तरा ने हरिभद्रसूरि को प्रेरित कर जिन-धर्मानुयायी ही नहीं, मोक्ष-मार्गानुयायी बनाया जो आगे चलकर जिनशासन के युगप्रधान प्रभावक आचार्य बने। अनेकों महासतियों के उपकार के प्रसंग जैन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित हैं। रत्नवंश परम्परा को भी समय-समय पर संयम की उत्कट आराधिका महासतियों ने अपनी जीवन-ज्योति, संयम-साधना व ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना से समृद्ध किया है। ऐसी ही एक महासाधिका का नाम है महासतीश्री बड़े धनकंवर जी म.सा.।

महासतीश्री बडे धनकंवर जी म.सा. में ज्ञान-क्रिया का मणिकांचन संयोग था। महाव्रतों के निरतिचार पालन व संयम के प्रति आप सजग रहते। संयम-जीवन में सहज समझे जाने वाले दोष भी न लग पायें, इस ओर आप सदा सचेष्ट रहते।

क्रिया के साथ-साथ ही महासतीजी सदा ज्ञान-साधना में रत रहते। स्वयं ज्ञान-ध्यान में रत रहना व दूसरों को प्रेरित करना, उन्हें ज्ञानदान देना, आपके जीवन का लक्ष्य था। रूपकंवर बाई व उनके एकाकी पुत्र हस्ती के हृदय में वैराग्य बीज का पोषण कर उन्हें संयम-ग्रहण हेतु प्रेरित करने का प्राथमिक श्रेय आपको ही है। बालक हस्ती व उनकी मां को संयम की ओर प्रेरित कर आपने जिनशासन एवं रत्नसंघ की महती सेवा की। महासती जी श्री

रूपकंवर जी ने आपकी नेश्राय में ही दीक्षा अंगीकार कर अपने जीवन को सार्थक किया।

आपका जन्म सुरपुरा (देशनोक जिला बीकानेर) के श्रेष्ठिवर्य श्री जसरूपमलजी गोलेछा की धर्मशीला धर्मपत्नी श्रीमती नानी बाई की कुक्षि से हुआ। वय प्राप्त होने पर आपका विवाह देशनोक निवासी श्री हजारीमलजी भूरा के साथ सम्पन्न हुआ।

जीवन सांसारिक सुखोपभोग और ऐश्वर्य के साथ व्यतीत हो रहा था, पर 'गहना कर्मणो गति:' यौवनावस्था में ही आपका यह सुख सुहाग काल के क्रूर पंजों से न बच सका।

महापुरुषों के जीवन में आई विपत्तियाँ भी कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। आपके पुण्योदय से आपको ज्ञान-क्रिया की धनी महासतीजी मल्लाजी म.सा. का सान्निध्य मिला। महासतीजी के दर्शन, उपदेश सान्निध्य से आपको संसार की असारता व विनश्वरता का बोध हुआ और आपने नागौर में महासतीजी का शिष्यत्व स्वीकार कर भागवती श्रमणी-दीक्षा अंगीकार कर अपने आपको सदा के लिये समर्पित कर दिया। गुरुणी जी म. सा. की सेवा में रहकर आपने शास्त्रों व थोकड़ों का अच्छा अभ्यास किया।

वृद्धावस्था में आपका स्थिरवास भोपालगढ़ में हुआ। दीर्घकाल तक आपके वहाँ विराजने से अनेक बहिनों ने सामायिक, प्रतिक्रमण व थोकड़ों का अभ्यास किया। भोपालगढ़ की बहिनों को धर्म-संस्कार देने व उन्हें ज्ञान-ध्यान सिखाने में आपका महनीय उपकार रहा है। वि.सं. २००८ के फाल्गुन मास में भोपालगढ़ में ही आपका महाप्रयाण हो गया।

• महासती श्री रूपकंवर जी म.सा.

'स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।'

इस विश्व में लाखों माताएँ पुत्र को जन्म देकर अपने आपको सौभाग्यशाली समझती हैं, पर ऐसी माताएँ विरल होती हैं, जो लाखों भक्तों की असीम आस्था के केन्द्र जिनशासन के देदीप्यमान रत्न संत-शिरोमणि आचार्य हस्ती जैसे पुत्र रत्न को जन्म देती हों। शासन प्रभावक आचार्यों को जन्म देने वाली माताओं में भी आप जैसी माताएँ विरल होती हैं, जो स्वयं अपने पुत्र की कल्याण-कामना एवं उसके आत्म-हितार्थ उसे संयम-ग्रहण हेतु प्रेरित करे, और स्वयं भी दीक्षा लेकर सच्चा आदर्श प्रस्तुत करे।

रूपकुंवर का जन्म पीपाड़ निवासी राजमान्य श्रेष्ठिवर्य श्री गिरधारीलालजी मुणोत की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती चन्द्राबाई की रत्नकुक्षि से हुआ। भरे-पूरे परिवार में आपका लालन-पालन हुआ। यौवन में प्रवेश होते ही आपका विवाह पीपाड़ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री दानमलजी बोहरा के सुयोग्य सुपुत्र श्री केवलचंदजी बोहरा के साथ सम्पन्न हुआ। सासूमाँ नौज्यांबाई की छत्रछाया में पति के संग आपका वैवाहिक जीवन सांसारिक सुखों से व्यतीत हो रहा था। किन्तु प्रकृति को यह मंजूर नहीं था, उसे तो आपको शासन आधार को पुष्ट करने का निमित्त बनाना था। पुण्यात्मा आपके गर्भ में आई , परिवार में हर्षोल्लास छा गया, भावी जीवन की मधुर कल्पनाएँ परिजनों व आप दम्पती के मन में अंगडाइयां लेने लगीं, पर अल्पकाल में ही पतिवर्य का दु:खद निधन हो गया। इससे आपको संसार से विरक्ति हो गई। परन्तु गर्भ में आशा का प्रसून पलने से और बाद में बालक के लालन-पालन के कारण दीक्षा का योग नहीं बन पाया। कतिपय वर्षों पश्चात् प्लेग की महामारी से भरे पूरे पैतृक परिवार के सदस्यों के असामयिक निधन ने आपके जीवन को झकझोर दिया तथा संसार की अनित्यता एवं अशरणता का साक्षात् अनुभव

हुआ। इससे आपका वैराग्य भाव अधिक सुदृढ हो गया। बालक हस्ती भी नाना के परिवार पर महाकाल के साये को देखकर संसार की नश्वरता व असारता का नैसर्गिक बोध पा गए। प्रयत्न करने पर भी जो सत्य समझ में नहीं आता, चरितनायक के हृदय में सहजता से अंकित हो गया। उनके वैराग्य का पोषण करने में माता रूपकंवरजी का भी योगदान रहा।

महासती मदालसा ने तो अपने पुत्रों को झूला झुलाने के साथ संस्कार दिये, पर माँ रूपा ने तो अपने संस्कार अपने शिशु को गर्भावस्था से ही देने प्रारंभ कर दिये। ब्रह्मचर्य एवं संसार के स्वरूप का भान जैसे संस्कार आपसे गर्भ में ही पाकर बालक हस्ती मुनि हस्ती बन कर, अखंड ब्रह्मचारी व भेद-विज्ञान का सच्चा ज्ञाता बना। बालक हस्ती को जन्म देकर माँ निहाल हो गई। आपने बालक के लालन पालन के साथ ही सुसंस्कारों की सीख भी दी व छह वर्ष की उम्र में ही उनके समक्ष संयम की भावना व्यक्त करते हुए उन्हें भी इस ओर आकृष्ट व प्रेरित किया। धन्य है माँ रूपा ! जिन्होंने अपने पुत्र को मोह-ममता की शिक्षा देने की बजाय उसके आत्म-कल्याण का चिन्तन किया।

महासती श्री बड़े धनकंवर जी म.सा. का सान्निध्य पाकर रूपकंवर का वैराग्य और अपने पुत्र को जिनशासन को समर्पित करने का निश्चय दृढ़ दृढ़तर होते गए। परिजनों की आज्ञा में अवरोध होने पर उन्होंने अपनी सूझबूझ का परिचय देते हुए स्पष्ट कह दिया—"मैं हस्ती की माँ हूँ, मैं उसे दीक्षा की अनुमति प्रदान करती हूँ।" इससे बालक हस्ती की दीक्षा का मार्ग प्रशस्त हो गया। परिजनों के पास भी रोकने का कोई कारण नहीं बचा। विलम्ब का हेतु नहीं रहने से परिजनों ने अन्ततः रूपकंवर को भी दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

वि. सं. १९७७ माघ शुक्ला द्वितीय द्वितीया को आपने अजमेर में रत्नवंश के आचार्य पूज्य श्री शोभाचंद जी म.सा. के मुखारविन्द से अपने पुत्र बालक हस्ती के साथ दीक्षा अंगीकार कर महासती श्री धनकंवर जी म.सा. का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। दीक्षा के उपरान्त आपने अपने आपको पूर्णतः गुरुणी माता की सेवा में व रत्नत्रय की साधना में समर्पित कर दिया। आपकी सरलता के कई उदारहण पूज्या महासती वृन्द सुनाते-सुनाते गद्गद् हो जाती हैं।

आपकी सर्वोपरि विशेषता मोह पर प्रबल विजय है। २२ वर्षों के संयम-पर्याय में आपने अपने पुत्र आचार्य हस्ती से कभी विशेष बात नहीं की। आचार्य श्री स्वयं फरमाते थे कि मैं तो उस माता का पुत्र हूँ, जिसने दीक्षा लेने के पश्चात् कभी पाँच मिनट भी मुझसे बात नहीं की। इससे महासती रूपकंवर के संयम-जीवन में निष्ठा एवं निर्मोह भावना का बोध होता है। वे मोक्षमार्ग की सच्ची पथिक बनकर आत्म-भावों में स्थिर होने में ही अपना कल्याण मानती थी। पुत्र के आचार्य बनने का उन्हें कोई गर्व नहीं था। निरभिमानता, निःस्पृहता एवं सरलता से उन्होंने अपनी संयम-साधना को निरन्तर आगे बढ़ाया। संयम-जीवन का पालन करते हुए साध्वी रूपकंवर चरितनायक के मोहविजय में निमित्त बनीं।

गुरुणी जी म.सा. के भोपालगढ़ स्थिरवास विराजने पर आपका भी लम्बे समय तक भोपालगढ़ विराजना हुआ और भोपालगढ़ में ही आपने बाईस वर्ष की संयम-पर्याय के साथ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ संवत् १९९५ को देवलोक के लिये प्रयाण कर दिया।

धन्य है माँ रूपा को जिन्होंने बालक हस्ती को जिनशासन को समर्पित किया। धन्य है महासती रूपा को जिन्होंने अनासक्त रह कर संयम-साधना का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया। जब-जब भी आचार्य हस्ती का स्मरण किया जायेगा, माँ रूपकवंर का नाम समादर व श्रद्धा के साथ याद किया जाता रहेगा। ■

चरितनायक के शासनकाल में दीक्षित सन्त-सती

युगमनीषी अध्यात्मयोगी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के शासनकाल में ३४ सन्तों एवं ५१ सतियों ने दीक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त किया। यहाँ पर प्रमुख सन्तों एवं सतियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(अ) प्रमुख सन्तवृन्द का परिचय

• श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा.

सेवाभावी श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. का जन्म वि.सं. १९६२ की माघ कृष्णा सप्तमी को मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के अन्तर्गत 'महागढ' नामक ग्राम में श्री पन्नालालजी की संस्कारशीला धर्मपत्नी श्रीमती अचरजकंवरजी की कुक्षि से हुआ। पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. जब वि.सं. १९८८ के आषाढ माह में महागढ पधारे तो दर्शन-प्रवचन एवं सत्संग-सेवा से प्रभावित होकर लक्ष्मीचन्दजी के मन में वैराग्यभाव जाग उठा। इसी वर्ष आचार्यप्रवर के रामपुरा चातुर्मास में उन्होंने श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किए और श्रद्धा-भक्ति के कारण गुरुदेव की सेवा में रहने का क्रम निरन्तर बढ़ता गया। आपकी प्रबल भावना से एवं सुश्रावक श्री रतनलालजी नाहर, बरेली के समझाने से आपके चाचा श्री इन्द्रमलजी चौहान आदि स्वजनों ने अनुमति प्रदान कर दी और वि.सं. १९८९ की आषाढ कृष्णा पंचमी के शुभ मुहूर्त में मुमुक्षु लक्ष्मीचन्दजी ने आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से उज्जैन में भागवती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षोत्सव के समय चतुर्विध संघ की विशाल उपस्थिति थी। दीक्षा में उज्जैन के गुरुभक्त सुश्रावक श्री लक्ष्मीचन्दजी चोरड़िया का सराहनीय योगदान रहा। दीक्षा के अनन्तर आपने तपश्चरण और शास्त्राध्ययन के साथ समर्पण, विनय एवं वैयावृत्त्य को जीवन का अंग बनाया। आप अपने पूज्य गुरुदेव की शारीरिक चेष्टा मात्र से ही समझ लेते कि गुरुदेव को क्या अभीष्ट है, एवं वैयावृत्त्य में जुट जाते। आपको थोकड़ों का गहन ज्ञान था तथा आगन्तुक भक्तों को थोकड़ों का ज्ञान कराने में आपकी विशेष अभिरुचि थी। आप गोचरी के विशेषज्ञ सन्त थे। आचार्यप्रवर के आप प्रथम शिष्य थे। अपनी सहज हित-भावना एवं अगाध सेवा-भक्ति के कारण आप सन्तों के मध्य 'धाय माँ' के रूप में आदृत हुए।

आपके अधिकांश चातुर्मास आचार्यप्रवर के सान्निध्य में ही हुए। भोपालगढ़ (संवत् २०२८), आलनपुर (संवत् २०३१), जोधपुर (संवत् २०३२), महागढ (संवत् २०३५) एवं बल्लारी (संवत् २०३८) के चातुर्मास ही आपके स्वतंत्र चातुर्मास थे, जो ज्ञानवर्धन की दृष्टि से सर्वथा सफल रहे।

मधुरभाषी एवं आचारनिष्ठ सन्त का दक्षिण भारत की पदयात्रा के समय वि.सं. २०३८ की पौष शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार ९जनवरी १९८२ को रात्रि में ३ बजकर २०मिनट पर बीजापुर (कर्नाटक) में आकस्मिक हृदयाघात होने से स्वर्गवास हो गया। आपने लगभग पचास वर्ष संयम-पर्याय का पालन किया।

• श्री माणकचन्द जी म.सा.

भजनानन्दी श्री माणकमुनिजी म.सा. का जन्म वि.सं. १९६७ फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को मध्यप्रदेश के धार जिलान्तर्गत नालछा ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री हजारीमलजी कांकरेचा तथा माता श्रीमती धनकंवरजी थीं।

माता-पिता के धार्मिक संस्कार आपको विरासत में मिले। दीक्षा के पूर्व आपका नाम 'मांगीलाल' था। आपने आचार्यप्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से वि.सं. २००० आषाढ शुक्ला द्वितीया को खाचरोद (म.प्र.) में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आपकी दीक्षा में श्री हीरालालजी नांदेचा-खाचरोद का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा। बड़ी दीक्षा के पश्चात् आपका नाम 'मुनि माणकचन्दजी' रखा गया।

आप वैराग्योत्पादक एवं सारगर्भित भजनों को तन्मय होकर गाते व सुनते थे, इसीलिये आपको 'भजनानन्दी' के नाम से भी जाना गया।

अधिकांश चातुर्मासों में आप आचार्यप्रवर की सन्निधि में रहे। उदयपुर (संवत् २००१), जोधपुर (संवत् २००६), पीपाड़ (संवत् २००७), मेड़ता (संवत् २००८) एवं जोधपुर (संवत् २००९) के चातुर्मास आपने स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. के सान्निध्य में , विजयनगर (संवत् २०१२) का चातुर्मास बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के सान्निध्य में, जोधपुर (संवत् २०३२) का चातुर्मास श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के सान्निध्य में तथा शेरसिंह जी की रीयां (संवत् २०२७) और जयपुर (संवत् २०३१) का चातुर्मास स्वतन्त्र रूप से किया।

आपका अन्तिम चातुर्मास विक्रम संवत् २०३२ में घोड़ों का चौक जोधपुर में श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। यहाँ आपने जीवन का अन्तिम समय निकट जानकर संलेखनापूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया। यह संथारा बहुत ही उत्कृष्ट रहा। ३५ दिनों तक संथारा चला। संथारे की अवधि में आपके चेहरे पर प्रसन्नता, समता एवं शान्ति देखते ही बनती थी। अनेक परम्पराओं एवं धर्मों के लोगों ने आकर आपके दर्शन-वन्दन कर अपने आपको धन्य-धन्य माना। आत्म-विजय की यह अनुपम साधना थी। आचार्यप्रवर गुरुदेव ने भी बाड़मेर से उग्रविहार करते हुए जोधपुर पधारकर साधना में साज दिया। विक्रम संवत् २०३२ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी ९ मार्च १९७६ मंगलवार को सायंकाल समाधिपूर्वक नश्वर देह का त्याग कर आप स्वर्गगमन कर गए।

आपके ३५ दिनों के संथारे की स्मृति में जोधपुर के श्रद्धालु भक्तों ने घोड़ों के चौक में 'श्री वर्धमान जैन रिलीफ सोसायटी' नामक संस्था प्रारम्भ की, जो वर्धमान हास्पिटल के माध्यम से आज भी निरन्तर सभी प्रकार के रोगियों का उपचार करने में सक्रिय है।

• श्री जयन्तलालजी म.सा.

बाबाजी श्री जयन्तलालजी म.सा. का जन्म वि.सं. १९५३ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को पीपाड़ शहर में हुआ। पिता श्री दानमलजी चौधरी तथा माता श्रीमती गुलाबकंवरजी से आपको धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए।

आपने ५६ वर्ष की वय में वि.सं. २००९ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पाली-मारवाड़ में पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् आपका नाम जालमचन्दजी से 'जयन्तमुनि जी' कर दिया गया। बाबाजी म.सा. के नाम से विश्रुत श्री जयन्तमुनि जी म.सा. का संयम-जीवन साधना, सेवा और वैयावृत्त्य हेतु समर्पित था। संयम में आपका प्रबल पुरुषार्थ प्रेरणादायी था। आप सरल, संयमनिष्ठ और सहनशील व्यक्तित्व के धनी थे। आपके अधिकतर चातुर्मास आचार्य भगवन्त के सान्निध्य में हुए। टोंक (संवत् २०१७), मेड़ता (संवत् २०२१), भोपालगढ़ (संवत् २०२५), जोधपुर (संवत् २०२६), थांवला (संवत् २०२७) के चातुर्मास पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा. के सान्निध्य में हुए। संवत् २०३२ से आपने जोधपुर में स्थिरवास विराजकर अपनी साधना को आगे बढाया।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी वि.सं. २०३९ को ३०वर्ष की निरतिचार संयम-पर्याय का पालन करते हुए आपने इस नश्वर देह का त्याग कर समाधिमरण का वरण किया।

- **श्री सुगनचन्दजी म.सा.**

सरलात्मा श्री सुगनचन्दजी म.सा. का जन्म लाडपुरा में वि.सं. १९६९ भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को हुआ। आपके पिता श्री चुन्नीलालजी खटोड़ तथा माता श्रीमती अलोलबाईजी थीं। आपने वि.सं. २०१० ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को लाडपुरा में आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. से भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप थोकड़ों के ज्ञाता एवं सरल मनस्वी सन्त रत्न थे। संयम में प्रतिपल जागरूकता आपके जीवन में झलकती थी। थोकड़े सीखने-सिखाने में आपकी विशेष रुचि थी।

वि.सं. २०२० ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को जाजीवाल (जोधपुर) में भीषण गर्मी एवं लू के कारण आपका असामयिक देहावसान हो गया। मारणान्तिक उपसर्ग आने पर भी आप विचलित नहीं हुए।

- **श्री श्रीचन्दजी म.सा.**

तपस्वी श्री श्रीचन्दजी म.सा. का जन्म दक्षिण भारत के कावेरीपट्टम में वि.सं.१९९३ में हुआ। आपके पिता श्रीबंकट स्वामीजी नायडू तथा माता श्रीमती राजम्मादेवीजी थीं। आप भोपालगढ़ नरेश के यहाँ रसोइया के रूप में कार्यरत थे। तदनन्तर जैनरत्न छात्रालय में आ गए। वहाँ पर आचार्य श्री के दर्शन कर आप अत्यन्त प्रभावित हुए एवं दीक्षा लेने का भाव जागृत हो गया। राजपूत कुल के होते हुए भी आपने अपना खानपान एवं आचार-विचार साध्वाचार के अनुरूप ढाला । नवकार मन्त्र से आपने ज्ञानाराधन प्रारम्भ किया। अपने अटल संकल्प से आपने परिजनों से आज्ञा प्राप्त कर वि.सं. २०१६ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को जयपुर में आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से श्रमण दीक्षा अंगीकार कर अपने जीवन की दिशा ही बदल ली।

तमिलभाषी होने से आपको हिन्दी , संस्कृत एवं प्राकृत सीखने में कठिनाई हुई। परन्तु आपने अथक परिश्रम कर बहुत से शास्त्रों का ज्ञान कर लिया। आपके ओजस्वी प्रवचन एवं बुलन्द आवाज से युक्त स्तवन श्रोताओं को बहुत प्रभावित करते थे। आपने 'निर्ग्रन्थ भजनावली' के रूप में भजनों, स्तोत्रों एवं प्रार्थनाओं का संकलन भी किया। आपने १८ वर्षों तक आडा आसन नहीं किया। पूर्व संचित कर्मरज को हलका करने की भावना से आपने तप का मार्ग चुना एवं पचोले-पचोले की तपस्या कर कर्म-निर्जरा की। इसी कारण आप 'तपस्वी' के नाम से जाने गए। राजस्थान के पोरवाल एवं पल्लीवाल क्षेत्रों में आचार्यप्रवर के स्वाध्याय एवं सामायिक के सन्देश को ग्राम-ग्राम पहुँचाकर विशेष शासन प्रभावना की।

आचार्यप्रवर की सन्निधि के अतिरिक्त जोधपुर (संवत् २०२६), शेरसिंह जी की रींया (संवत् २०२७), भोपालगढ (संवत् २०२९), जयपुर (संवत् २०३१), जोधपुर (संवत् २०३२), अजीत (संवत् २०३३) के चातुर्मास विभिन्न वरिष्ठ सन्तों के सान्निध्य में हुए। आलनपुर (संवत् २०३४) , गंगापुर सिटी (संवत् २०३५), भरतपुर (संवत् २०३६) एवं सिन्धनूर (संवत् २०३८) में आपके स्वतन्त्र चातुर्मास हुए, जो अतीव प्रभावशाली रहे। २३ वर्षों तक निर्मल रूप से संयम का पालन करने के अनन्तर वि.सं. २०३९ पौष शुक्ला तृतीया को इन्दौर में संथारापूर्वक आपने समाधिमरण का वरण किया।

• श्री मगनमुनिजी म.सा.

सेवाभावी श्री मगनमुनिजी म.सा. का जन्म वि.सं.१९६२ माघ शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ। आपके पिता श्री सोनराजजी मुणोत तथा माता श्रीमती अमरकंवरजी मुणोत थीं।

आपने ५८ वर्ष की उम्र में भरे पूरे परिवार को छोड़कर वि.सं.२०२० वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को जोधपुर में मानचन्द्र जी म.सा. के साथ जैन श्रमण दीक्षा अंगीकार की। आप शान्त, दान्त, सेवाभावी एवं तपस्वी सन्त थे। थोकड़े सीखने-सिखाने में आपकी विशेष रुचि थी। लगभग ९ वर्ष के संयम-जीवन में सभी ८ चातुर्मास पूज्य आचार्यप्रवर के पावन सान्निध्य में किए। जोधपुर में अचानक आपका स्वास्थ्य नरम हो गया। सन्तों ने बड़ी लगन से सेवा की। आचार्यप्रवर ने मंगलपाठ सुनाया, पच्चक्खाण कराये। किन्तु श्वास की गति एकदम रुक जाने से फाल्गुन कृष्णा द्वादशी शुक्रवार संवत् २०२८ को आप संसार से विदा हो गए।

• उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा.

पद, परिचय एवं प्रतिष्ठा की अभिलाषा जिनको छू ही न पाई ; सेवा, स्वाध्याय एवं समर्पण ही जिनके जीवनादर्श हैं, ऐसे सरल, विरल संतरत्न तथा भक्तों के सहज आकर्षण के केन्द्र का नाम है श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा.। आपका जन्म वि.स. १९९१ माघकृष्णा चतुर्थी के दिन सूर्यनगरी, जोधपुर में श्रद्धानिष्ठ समर्पित सुश्रावक श्री अचलचन्दजी सेठिया की धर्मशीला धर्मपत्नी श्रीमती छोटाबाई जी सेठिया की कुक्षि से हुआ।

बाल्यकाल से ही सन्त-समागम व प्रवचन-श्रवण का सुखद संयोग पाकर आपके पूर्वसंस्कार वर्धमान हुए तथा आपके हृदय में असार संसार से विरक्ति के अंकुर प्रस्फुटित हो गए। परम पूज्य आचार्य भगवंत पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. एवं पण्डित रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्द जी म.सा. के पावन सान्निध्य से आपके वैराग्य संस्कार पल्लवित-पुष्पित हुए एवं आपका संयममार्ग पर बढ़ने का निश्चय दृढ़तर होता गया। श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ में शिक्षण कार्य आपके इस निश्चय में और अधिक सहायक बना। छह भाइयों और तीन बहिनों के भरे पूरे परिवार के मोह-बंधन को तोड़कर वि.सं. २०२० वैशाखशुक्ला त्रयोदशी को जोधपुर में आपने परमपूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती श्रमण-दीक्षा अंगीकार कर मोक्षमार्ग में अपने कदम बढ़ाये।

सांसारिक सुखों के प्रलोभन व परिजनों के स्नेह बंधन को भेद कर विरले महापुरुष ही मोक्षमार्ग में अग्रसर हो पाते हैं। इस दुर्लभ संयमधन, 'ज्ञानदर्शनचारित्र' के साकार स्वरूप गुरु भगवन्तों का सान्निध्य पा आपने अपना समग्र जीवन ही ज्ञानार्जन, गुरुचरणों में समर्पण एवं निरतिचार संयमपालन हेतु समर्पित कर दिया। आगमों के तलस्पर्शी ज्ञान के साथ ही थोकड़ों के गहन ज्ञान से आप शीघ्र ही जिज्ञासुओं की श्रद्धा के केन्द्र बन गये। निर्मल संयम-साधना, उत्कृष्ट वैय्यावृत्य, सहज सरलता व निरभिमानता से आप श्रमणवरेण्यों के भी स्नेह पात्र बन गये। विरले ज्ञानी महापुरुष ही अग्लान सेवा का आदर्श उपस्थित कर पाते हैं। आपके जीवन में यह दुर्लभ मणिकांचन संयोग सहज दृष्टिगोचर होता है। सुदूर क्षेत्रों के विचरण, प्रवास में व्यक्तित्व के सहज निखार व प्रसिद्धि कोई भी आकर्षण आपको बांध न सका। जब भी वृद्ध स्थविर संतों की सेवा करने व उन्हें सम्हालने का अवसर आया, आप सदा तत्पर रहे। पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचन्द जी म.सा. एवं बाबाजी श्री जयन्तमुनि जी म.सा. की जिस अतिशय उत्साह, समर्पण व श्रद्धा भाव से आपने सेवा की, वह रत्नवंश के स्वर्णिम इतिहास का गौरवशाली अध्याय है। श्री

जयन्तमुनि जी म.सा. को खड़े-खड़े जब अशुचि आ जाती , तो उसे भी आपने अग्लान भाव से हाथों से उठाकर साफ किया।

आपकी ज्ञान गरिमा, संयमनिष्ठा व तपःपूत व्यक्तित्व ने श्रद्धेय गुरु भगवन्तों को भी आकर्षित किया। परमपूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने भावी शासनव्यवस्था हेतु परमपूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का आचार्य पद पर मनोनयन करने के साथ आपको उपाध्याय मनोनीत किया। निमाज में वि.स. २०४८ वैशाख शुक्ला नवमी सोमवार दिनांक २२ अप्रेल १९९१ को आप संघ द्वारा विधिवत् 'उपाध्याय' पद पर प्रतिष्ठित किये गये। रत्नवंश की इस यशस्विनी परम्परा में आप प्रथम उपाध्याय हैं।

आपके जीवन की सरलता, निरभिमानता, संयम की दृढ़ता, आनन पर सहज स्मितता एवं मधुर व सुगम प्रवचन शैली सहज ही भक्तजनों को श्रद्धावनत कर देती है। आप सदैव स्वाध्याय, ध्यान एवं चिन्तन-मनन में लीन रहते हैं, आपके चिन्तनपरक, आगमिक, सारगर्भित एवं प्रभावक प्रवचनों से श्रोतागण सहज ही त्याग प्रत्याख्यान की ओर प्रेरित होते हैं। आपके चुम्बकीय व्यक्तित्व में भक्तजन 'चौथे आरे की बानगी' का अनुभव करते हैं। आपके प्रतिदिन दोपहर में १२ से २ बजे तक तथा कृष्णपक्ष की दशमी को पूर्ण मौन रहता है।

पूज्य चरितनायक ने आपकी योग्यता एवं प्रतिभा को देखकर अहमदाबाद और दिल्ली जैसे वृहत् क्षेत्रों में स्वतन्त्र चातुर्मास प्रदान किए, जिनमें ज्ञानक्रिया का सुन्दर रूप देखकर वहां के श्रावक अत्यन्त प्रभावित हुए। दिल्ली के श्रावक तो कहने लगे--जब मानचन्द्र जी म.सा. ज्ञान-क्रिया में इतने ऊंचे हैं तो इनके गुरुदेव कैसे होंगे। दिल्ली का शिष्टमण्डल सवाईमाधोपुर में पूज्य गुरुदेव के दर्शन कर इतना प्रमुदित हुआ मानो भगवान के दर्शन किए हों। उपाध्याय पद पर आरोहण के पश्चात् आपके जोधपुर, (संवत् २०४८) मदनगंज (संवत् २०५५), जलगांव (संवत् २०५७) तथा धुलिया (संवत् २०५८) में श्रद्धेय आचार्यप्रवर के साथ चातुर्मास रत्नवंश की यशस्विनी परम्परा की गौरव गरिमा को आगे बढ़ाने वाले रहे तथा भीलवाड़ा (संवत् २०४९), कोटा (संवत् २०५०), कंवलियास (संवत् २०५१), पाली (संवत् २०५२), कोसाना (संवत् २०५३), जयपुर (संवत् २०५४), सवाईमाधोपुर (संवत् २०५६), तथा होलानांथा (संवत् २०५९) के स्वयं के चातुर्मास आपके साधनातिशय, निर्मल निरतिचार संयम निष्ठा, निरभिमानता प्रभृति आत्म-गुणों की छाप जन-मानस पर अंकित करने में सफल रहे। उपाध्यायप्रवर प्रशान्तात्मा, पंडितप्रवर एवं सरलमना सन्त हैं।

• आचार्यप्रवर आगमज्ञ पं. रत्न श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

व्यक्तित्व में 'हीरे' सी चमक व दमक और संयम में 'हीरे' सी दृढ़ता, श्रमणों में कोहिनूर 'हीरे' के समान देदीप्यमान, श्रमणवरेण्य का नाम है पं. रत्न श्री हीराचन्द जी म.सा.।

आपका जन्म वि.सं. १९९५ चैत्र कृष्णा अष्टमी 'आदिनाथ जयन्ती' के पावन दिन १३ मार्च, १९३९ को मरुधरा के धर्मप्रधान क्षेत्र पीपाड़ शहर में अनन्य धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री मोतीलाल जी गांधी की धर्मशीला सहधर्मिणी श्रीमती मोहिनीबाई जी गांधी की रत्नकुक्षि से हुआ। धर्मनिष्ठ माता-पिता व धर्म-गुरुओं से आपको सत्संस्कार विरासत में ही प्राप्त हुए। आपका बचपन नागौर में बीता। बचपन में ही छोटी बहिन के आकस्मिक देहावसान से आपको संसार की विनश्वरता का बोध हुआ तथा आपके बाल मन में वैराग्य अंकुर का वपन हुआ, जो पूज्य गुरु भगवंतों के पावन समागम से पल्लवित होता रहा। परम पूज्य आचार्य हस्ती के संवत् २०१३ के बीकानेर चातुर्मास में उनके दिशा निर्देशन में आपका व्यवस्थित अध्ययन प्रारम्भ हुआ। गुरुदेव के पावन सान्निध्य व

अध्ययन से आपका दीर्घकालिक वैराग्य परिपुष्ट होता गया तथा आपने संयम ग्रहण का दृढ निश्चय पूज्य माता-पिता व परिजनों के समक्ष व्यक्त किया। स्नेह-बंधन को तोड़कर अपने युवा पुत्र को सदा के लिए संयममार्ग पर बढ़ने हेतु समर्पित कर देना आसान नहीं है, पर संस्कारशीला माता व धर्मनिष्ठ पिता श्री ने आपके दृढ़ निश्चय व परिपुष्ट वैराग्य को देखकर दीक्षा हेतु अनुमति प्रदान की। परम पूज्य भगवन्त के संवत् २०२० के पीपाड़ वर्षावास में कार्तिक शुक्ला षष्ठी को श्रमण दीक्षा अंगीकार कर आपने अपने आपको गुरु चरणों में समर्पित कर दिया।

परम पूज्य आचार्य हस्ती के सान्निध्य की शीतल छांव में आपका श्रमण जीवन ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना व विविध गुणों के अर्जन से निरन्तर निखरता गया। पूज्यपाद की सेवा में आपने आगमों व थोकड़ों के तलस्पर्शी ज्ञान के साथ ही संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी व गुजराती भाषाओं एवं ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया। प्रकाण्ड पांडित्य, गहन आगमिक अध्ययन, धाराप्रवाह ओजस्वी प्रवचन शैली एवं गुरु चरणों में सर्वतोभावेन समर्पण से आपका व्यक्तित्व प्रभावी बनता गया। वि.सं. २०२० में दीक्षित होकर वि.सं. २०४७ तक पूज्यपाद के महाप्रयाण तक वि.स. २०४४ के नागौर चातुर्मास अतिरिक्त आपने सभी चातुर्मास उन महामनीषी के चरणों में ही कर शासन की महती प्रभावना की।

संयमनिष्ठा, संघ ऐक्य भावना, गहन आगम-चिन्तन, सेवा व समर्पण भावना आदि विविध गुणों तथा आपकी शासन-संचालन प्रतिभा को दृष्टिगत रख कर पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्ती ने अपने लिखित संकेत में आपको अपना उत्तराधिकारी भावी आचार्य मनोनीत कर संघ पर महान् उपकार किया। सूर्यनगरी जोधपुर में वि.सं. २०४८ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी रविवार दिनांक २ जून १९९१ को चतुर्विध संघ द्वारा विधिवत् चादर अर्पण कर आपको महनीय रत्नवंश परम्परा के अष्टम पट्टधर के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया। आज आप अपनी यशस्विनी परम्परा के गौरव को वृद्धिगत करते हुए चतुर्विध संघ का कुशलतापूर्वक संचालन कर रहे हैं।

परमपूज्य आचार्य श्री आकर्षक व्यक्तित्व एवं विराट् कृतित्व के धनी प्रज्ञापुञ्ज मनीषी साधक हैं। आचार्य पद की आठों सम्पदाओं से सम्पन्न आचार्यप्रवर पंचाचार को पालने व पलवाने में 'हीरे' की भांति दृढ़ हैं, तो आगम रहस्यों के तलस्पर्शी ज्ञाता हैं। गौरवर्ण, दीर्घनेत्र, प्रशस्त भाल, सौम्यकान्ति व मनमोहक आकृति के आचार्यप्रवर का व्यक्तित्व भक्तों व दर्शकों को बरबस अपने चुम्बकीय आकर्षण में बांध लेता है। आपकी ओजस्वी वाणी में की गई आगमिक व्याख्या श्रोताओं पर अनूठा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। प्रत्युत्पन्नमति आचार्यप्रवर ने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के 'सामायिक स्वाध्याय' के संदेश के प्रचार-प्रसार के साथ ही समाज व राष्ट्र को व्यसनमुक्ति का अभिनव संदेश दिया है। उनके प्रभावक प्रवचनों व सुबोध शैली में की गई आपकी पावन प्रेरणा से हजारों लोगों ने व्यसन त्याग कर अपना जीवन पवित्र व निर्मल बनाया है। रात्रि-भोजन त्याग, संस्कार सम्पन्न परिवार, व्रतग्रहण एवं ब्रह्मचर्य-पालन आपकी प्रभावी प्रेरणाएँ हैं।

आचार्यपद ग्रहण के पश्चात् आपने राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के सैकडों क्षेत्रों में हजारों किलोमीटर का पाद विहार कर जिनशासन की महती प्रभावना की है। जोधपुर (सं. २०४८), बालोतरा (संवत् २०४९), जयपुर (सं. २०५०), जोधपुर (स. २०५१), विजयनगर (सं. २०५२), अजमेर (सं. २०५३), पीपाड़शहर (सं. २०५४), मदनगंज (सं. २०५५) नागौर (सं. २०५६), जलगांव (सं. २०५७) , धुलिया (सं. २०५८), मुम्बई (सं. २०५९) आदि क्षेत्रों में किये गये सफल चातुर्मासों से अभिनव धर्मक्रान्ति का संदेश देश के कोने-कोने में फैले भक्त समुदाय को प्रभावित करने में सक्षम रहा है। आपके शासनकाल में ६ सन्तों व ३२ महासतियों की दीक्षाएँ सम्पन्न हो चुकी

हैं। ज्ञान क्रिया के अनुपम संगम, प्रवचन प्रभाकर, आगम-रत्नाकर आचार्यप्रवर साम्प्रदायिकता व निन्दा विकथा से कोसों दूर हैं।

• श्री शुभेन्द्रमुनि जी म.सा.

पं. रत्न श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. का जन्म जोधपुर जिले के काकेलाव ग्राम में वि.सं. २०१२ पौष शुक्ला द्वितीया को श्री रामबगस जी पुरोहित की भाग्यशालिनी धर्मपत्नी श्रीमती तीजाबाई की कुक्षि से हुआ।

आपने जयपुर शहर में वि.सं.२०२८ वैशाख शुक्ला अष्टमी रविवार दिनाङ्क २ मई १९७१ को भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होकर आपने पूर्ण मनोयोग से आगमों तथा थोकड़ों का अध्ययन किया। निरन्तर अभ्यास से आपके प्रवचन ओजपूर्ण एवं प्रभावशाली बन गये थे। आपके मुखमंडल पर संयम का तेज चमकता था। आप स्पष्ट एवं निर्भीक वक्ता थे। गुरु एवं संघ के प्रति समर्पण आपमें जबरदस्त था।

लगभग २५ वर्ष के संयमी जीवन में आप श्री ने मण्डावर (सन् १९८४), नागौर (सन् १९८५), कोटा (१९८६), हिण्डौन (१९८८) सवाई माधोपुर (१९९०), मेड़ता (१९९१) में स्वतन्त्र चातुर्मास कर जिनशासन की विशिष्ट छाप छोड़ी। नागौर चातुर्मास में एक साथ १०८ तप-साधकों ने अठाई तप अंगीकार किया, जिनमें स्थानकवासी, तेरापंथी एवं मन्दिरमार्गी सब सम्मिलित थे। पल्लीवाल क्षेत्र में आप माधवमुनिजी के रूप में जाने गए। आपके संयमी एवं ओजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अनेक जैनेतर बन्धु भी आपके भक्त बन गए।

आपने प्रथम और अन्तिम दोनों चातुर्मास भोपालगढ़ में किए। अन्तिम चातुर्मास के पूर्व ब्रेन ट्यूमर हो जाने से आपके शरीर में बहुत अधिक वेदना रहती थी। उपचार से कुछ समय राहत महसूस हुई, परन्तु वि.सं.२०५२ के भोपालगढ़ चातुर्मास में फिर वेदना बढ़ गयी। वेदना के समय आपने पूर्ण समाधिभाव बनाये रखने की जागरूकता रखी। अन्त में सेवारत तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. ने कार्तिक शुक्ला अष्टमी मंगलवार को सागारी संथारा तथा कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी रविवार दिनांक ५ नवम्बर १९९५ को प्रातः १०.१५ बजे यावज्जीवन संथारा संघ की साक्षी से करा दिया। आपने दोनों हाथ जोड़कर संथारे के प्रत्याख्यान स्वीकार किये। मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी बुधवार १५ नवम्बर १९९५ को १६ दिवसीय तप संथारे के साथ ही आपने सायं ४ बजकर ५५ मिनट पर नश्वर देह का त्याग कर दिया।

• श्री महेन्द्र मुनिजी म.सा.

महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. का जन्म वि.सं. २०११ श्रावण शुक्ला नवमी को महामंदिर जोधपुर में हुआ। आपको धर्मनिष्ठ पिता सुश्रावक श्रीमान् पारसमलजी सा. लोढा तथा माता तपस्विनी सुश्राविका श्रीमती सोहनकंवरजी लोढा से धर्मभावना के सुसंस्कार जन्म से अधिगत हुए। आपने स्नातक (B.Com.) तक का व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त किया। आपका घरेलू नाम श्री तखतराजजी लोढा था।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से आपने वि.सं. २०३२ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी २४ मई १९७५ को स्टेडियम मैदान, जोधपुर में श्रमण धर्म की पावन प्रव्रज्या अंगीकार की। दीक्षित होने पर आपका नाम 'महेन्द्रमुनिजी' रखा गया। दीक्षित होकर गुरु-सेवा में रहते हुए आपने थोकड़ों व आगमों का गहन अभ्यास प्रारम्भ किया, फलतः कुछ ही वर्षों में आपने दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, सुखविपाक, आचारांग, उत्तराध्ययन आदि अनेक आगम तथा थोकड़े कण्ठस्थ कर लिये।

आपमें सेवा का गुण कूट-कूट कर भरा है। आपने पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. की खूब सेवा की। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की सेवा में समर्पित हैं। सेवा तो मानो आपके साधक जीवन का लक्ष्य है । इंगित मात्र से सबकी सेवा में जुट जाना आपके साधक-जीवन की विशेषता है। आपके चातुर्मास प्रायः आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. एवं आचार्यप्रवर श्री हीराचन्दजी म.सा. के साथ हुए हैं। संवत् २०४१ का चातुर्मास आपने पंडितरत्न मानचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में अहमदाबाद किया।

सेवा के साथ तपस्या करने में भी आप आगे रहते हैं। प्रवचन एवं चर्चा के मध्य विषयवस्तु के प्रतिपादन में भी निपुण हैं। शान्त एवं सौम्य चेहरा, आपकी सेवा-भावना तथा संयम की सजगता को प्रतिबिम्बित करता है।

• श्री गौतममुनिजी म.सा.

मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. का जन्म जोधपुर जिले के पालासनी ग्राम में वि.सं.२०१९ पौष शुक्ला षष्ठी को धर्मपरायण सुश्रावक श्री जावंतराजजी आबड़ की धर्मनिष्ठ धर्मसहायिका श्रीमती शान्तादेवीजी आबड़ की कुक्षि से हुआ।

आपने लगभग ३ वर्ष के वैराग्य के अनन्तर आचार्यप्रवर श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से पालासनी में ही वि.सं. २०३४ माघ शुक्ला दशमी १७ फरवरी १९७८ शुक्रवार को श्रमणधर्म अंगीकार किया। दीक्षा के समय आपकी आयु मात्र १५ वर्ष थी। आपने दीक्षा ग्रहण कर अपने पिताश्री की भावना को भी साकार किया। आपके पिताश्री की भावना थी कि एक पुत्र दीक्षा अंगीकार करे तो वे सहर्ष आज्ञा प्रदान कर देंगे।

दीक्षा लेकर आपने हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं के ज्ञान के साथ थोकड़ों एवं शास्त्रों का अभ्यास किया। प्रार्थना एवं भजनों की रचना करने में आप सिद्धहस्त कवि हैं। गायनकला में आपकी विशेष दक्षता है। आपकी मधुर कण्ठकला सहज ही लोगों को प्रभावित करती है। आपकी प्रवचन शैली बहुत सरल, सरस एवं हृदयस्पर्शी है। स्वतन्त्र चातुर्मास एवं विचरण के दौरान आपने अपने सारगर्भित, प्रवाहपूर्ण, आगमपोषित एवं रोचक प्रवचनों से जन-मानस पर अमिट प्रभाव छोड़ा है । आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. एवं उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म.सा. के महाराष्ट्र प्रवास के दौरान आपने मारवाड़ में सराहनीय भूमिका अदा की है। आपमें सेवा की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। आपने पीपाड़ में वयोवृद्ध श्री राममुनिजी म.सा. की जो दत्तचित्त होकर सेवा की वह सदैव स्मरणीय रहेगी।

ईस्वी सन् २००० के पाली, सन् २००१ के पीपाड़ और सन् २००३ के पालासनी चातुर्मास में आपने वृद्ध सन्तों की सेवा के साथ प्रवचन-प्रार्थना आदि सभी दायित्वों का अत्यन्त कुशलतापूर्वक निर्वहन किया एवं मारवाड़ में अपनी प्रतिभा से बड़े सन्तों की कमी नहीं खलने दी।

• श्री नन्दीषेणमुनिजी म.सा.

सेवाभावी एवं थोकड़ों के ज्ञाता श्री नन्दीषेणजी म.सा. का दीक्षापूर्व नाम महावीर प्रसाद था। आपका जन्म सवाईमाधोपुर में धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री रामनिवासजी जैन की धर्मपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती गुलाबदेवीजी जैन की कुक्षि से वि.सं. २०१६ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया ८ जून १९५९ को हुआ। आपकी दीक्षा ग्रहण करने की उत्कट भावना थी। आप गुरुचरणों में कतिपय वर्ष वैरागी रहे। परिजनों से आज्ञा प्राप्त करने एवं दीक्षा नियत करने में सैलाना के धर्मनिष्ठ उदारमना भक्त श्रावक श्री प्यारचन्द जी रांका की निर्णायक भूमिका रही। मन्दसौर में पूज्य

गुरुदेव के श्रीमुख से ज्येष्ठ शुक्ला १० संवत् २०३५ दिनांक १६ जून १९७८ को आपने भागवती दीक्षा अंगीकार कर साधना-मार्ग में चरण बढाए।

आपने दीक्षा लेकर थोकड़ों का गहन अभ्यास किया। आप भाई-बहिनों को सामायिक-प्रतिक्रमण के साथ थोकड़े सिखाने में विशेष रुचि रखते हैं। आपने वर्णमाला पर आधारित प्रश्नों, दोहों आदि का अनूठा संकलन एवं निर्माण किया है। आप सेवाभावी एवं तपस्वी सन्त हैं। आप पोरवाल क्षेत्र के गौरव व संघ के प्रति समर्पित आत्मार्थी सन्त हैं।

- श्री प्रकाशमुनिजी म.सा.

तपस्वी सन्त श्री प्रकाशमुनि जी म.सा. का जन्म सूर्यनगरी-जोधपुर में वि.सं. १९९१ माघ शुक्ला द्वादशी १५ फरवरी १९३५ शुक्रवार को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्रीमान् पारसमलजी भण्डारी तथा माता श्रीमती मानकँवरजी भण्डारी से आपको धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए।

आपने अपनी धर्मपत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई-बहिन आदि परिजनों को छोड़कर वि.सं.२०३७ माघ शुक्ला पंचमी (बसन्त पंचमी) दिनाङ्क ९ फरवरी १९८१ को बैंगलौर में आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा ग्रहण की।

समर्पित भाव से संयम जीवन का निरतिचार पालन करने में संलग्न मुनिश्री ने तप को साधना का प्रमुख अंग बनाया। वि.सं. २०४१ के अहमदाबाद चातुर्मास में आपने मासखमण तप किया। आप सेवा एवं तपस्या में आगे रहते हैं तथा नियमित स्वाध्याय करते हैं।

- श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.

तत्त्वचिन्तक एवं जैन सिद्धान्त मर्मज्ञ श्री प्रमोद मुनि जी म.सा. का जन्म वि.सं.२०१७ आषाढ कृष्णा द्वितीया शनिवार दिनांक ११ जून १९६० को अपने नाना श्री उमरावमलजी सेठ के यहाँ जयपुर में हुआ। अलवर निवासी आपके पिता धर्मनिष्ठ श्रद्धानिष्ठ सुश्रावक श्री सूरजमलजी मेहता एवं माता सुश्राविका श्रीमती प्रेमकुमारीजी आपको जन्म देकर धन्य हुए। सबसे छोटे पुत्र होने के कारण आपका लालन-पालन बहुत लाड़प्यार से हुआ।

आप प्रारम्भ से ही प्रतिभासम्पन्न छात्र रहे। आपको नैतिक एवं धार्मिक संस्कार विरासत में मिले। परिणामस्वरूप आपने व्यावहारिक शिक्षण में जहाँ B.Com,L.L.B. एवं C.A. इन्टर किया, वहीं धार्मिक क्षेत्र में सामायिक, प्रतिक्रमण, २५ बोल आदि भी कण्ठस्थ कर लिये। आप विद्यार्थी जीवन में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता रहे तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में आपकी सक्रिय भूमिका रही। आपने प्रमुख स्वाध्यायी के रूप में पर्युषण पर्व पर अनेक ग्राम-नगरों को लाभान्वित किया। उस समय आपकी व्याख्यान शैली, साधना एवं योग्यता से प्रभावित होकर आपको कई संघों ने अभिनन्दन-पत्र भेंट किए।

आपने २३ वर्ष की युवावस्था में आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से जयपुर शहर में मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी वि.सं. २०४० दिनांक १५ दिसम्बर १९८३ को भागवती दीक्षा अंगीकार कर आपने जीवन को उच्च लक्ष्य की ओर अग्रसर कर दिया।

दीक्षित होकर आपने थोकड़े, आगम, इतिहास, संस्कृत, प्राकृत आदि का गहन अध्ययन प्रारंभ किया। आज

आप रत्नसंघ के देदीप्यमान सन्त रत्न हैं। वि.सं.२०५२ के चातुर्मास में भोपालगढ़ में आपने पं.रत्न श्री शुभेन्द्रमुनिजी म.सा. की अग्लान भाव से प्रमुदित होकर अनूठी सेवा की एवं उनके संलेखना-संथारा पूर्वक समाधिमरण में जो अनुपम योगदान किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। वि.सं. २०५४ के जयपुर चातुर्मास में अपनी संसारपक्षीय माताश्री के संथारापूर्वक समाधिमरण में भी आपने निर्मोह भाव से अनूठा सहयोग प्रदान किया। आप ज्ञान-ध्यान सीखने-सिखाने में विशेष तत्परता रखते हैं। आपके आगमाधारित तत्त्वज्ञान से गर्भित, सरस एवं ओजस्वी प्रवचन विशेष प्रभावोत्पादक होते हैं। आपकी सन्निधि में जो भी बैठता है, उसे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त होती है। आगम, कर्मग्रन्थ एवं तत्त्वज्ञान के आप मर्मज्ञ सन्त हैं तथा निरन्तर तथ्यान्वेषण करते रहते हैं। प्रतिभा, वैराग्य एवं साधना के आप संगम हैं तथा अप्रमत्त पुरुषार्थी सन्त हैं।

• श्री दयामुनिजी म.सा.

थोकड़ों के ज्ञाता श्री दयामुनिजी का जन्म सूर्यनगरी जोधपुर में वि.सं.१९७६ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री माणकराजजी सिंघवी तथा माता सुश्राविका श्रीमती मानकंवरजी थीं।

आपका सांसारिक नाम दुलेहराज जी सिंघवी था। राजस्थान सरकार के देवस्थान विभाग में जैसलमेर, पाली आदि स्थानों पर कार्यरत रहे। सेवानिवृत्ति के पश्चात् आचार्यप्रवर की प्रेरणा से आप तत्त्वज्ञान सीखने लगे। गहन रुचि के कारण आपको कई थोकड़ों का अभ्यास हो गया। आपने गृहस्थ में रहकर श्रावक के व्रतों का पालन किया। अनेक वर्ष तक पर्युषण पर्व में बाहर क्षेत्रों में जाकर स्वाध्यायी के रूप में सेवाएँ भी दीं।

आपने ६५ वर्ष की अवस्था में अपनी धर्मपत्नी की आज्ञा लेकर वि.सं.२०४१ माघ शुक्ला दशमी ३१ जनवरी १९८५ को जोधपुर के रेनबो हाउस में आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा ग्रहण की। आप थोकड़ों के विशेष ज्ञाता थे। आप सरल स्वभावी एवं गुणग्राही सन्त थे। अनवरत स्वाध्याय में रत रहते थे। आपको स्तोक, भजन आदि में गहन रुचि थी।

१० वर्ष का संयम पालकर वि.सं. २०५१ मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को भोपालगढ़ में आपने संथारापूर्वक समाधि-मरण का वरण किया।

• श्री राममुनिजी म.सा.

सरलस्वभावी श्री राममुनिजी म.सा. का जन्म वि.सं.१९७६ द्वितीय श्रावण शुक्ला सप्तमी को राजस्थान के पल्लीवाल क्षेत्र में हुआ। आपके पिताश्री रामकुमारजी जैन तथा माता श्रीमती झत्थीबाई थीं। गृहस्थ में रहकर व्रतों का एवं श्रावक की प्रतिमाओं का पालन करने के कारण आप 'त्यागी जी' के नाम से जाने जाते थे।

आपने ६७ वर्ष की उम्र में वि.सं.२०४३ माघ शुक्ला दशमी ८ फरवरी १९८७ को अपनी धर्मपत्नी के विद्यमान होने पर भी उनकी आज्ञा से पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. से जोधपुर में भागवती दीक्षा ग्रहण कर दुष्कर संयम-साधना में पुरुषार्थ किया। वयोवृद्ध श्री राममुनिजी म.सा. ने 'पाछल खेती नीपजे, तो भी दारिद्र्य दूर' कहावत को चरितार्थ किया। आप सरल, सौम्य एवं अल्पभाषी थे तथा स्वाध्याय में निरत रहते थे।

पीपाड़ के अन्तिम चातुर्मास में मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. ने आपकी खूब सेवा-सुश्रूषा की। वि.सं. २०५४ वैशाख शुक्ला दशमी १७ मई १९९७ को आपने संथारे के साथ समाधिमरण का वरण किया।

• श्री कैलाशमुनिजी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. २०१८ श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री शुभलालजी सा. सिंघवी तथा माता सुश्राविका श्रीमती उच्छबकंवरजी सिंघवी ने बाल्यावस्था से ही आपको सत्संस्कार प्रदान किए।

अपनी दादीजी के संथारापूर्वक समाधिमरण को देखकर आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आपने वि.सं.२०४३ माघ शुक्ला दशमी रविवार ८ फरवरी १९८७ को २५ वर्ष की युवावस्था में आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से जोधपुर में भागवती दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षित होकर आपने संयम का सजगता से पालन किया। अनेक छोटी-बड़ी तपस्याएँ भी कीं। युवावर्ग को धर्म में जोड़ने में आपकी अहंभूमिका रही।

गर्मी के कारण लू के प्रकोप से अचानक स्वास्थ्य बिगड़ जाने से वि.सं.२०४८ ज्येष्ठ कृष्णा नवमी शुक्रवार दिनांक ७ जून १९९१ को जोधपुर में आपका असामयिक देहावसान हो गया।

(ब) प्रमुख साध्वीवृन्द का परिचय

• साध्वीप्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दर कंवर जी म.सा.

जिनका नाम, व्यक्तित्व एवं साधनामय जीवन तीनों ही सुन्दर, ऐसी महासती श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. का जन्म वि.सं. १९६७ में श्री भुजबल जी राजपूत की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबाई की कुक्षि से हुआ। आपके पिताजी रतलाम नरेश की सेवा में कार्यरत थे।

बचपन से ही आप श्रेष्ठिवर्य श्री चांदमलजी मुणोत रियांवालों की धर्मपत्नी की सेवा में थे। सेवा, सरलता, विनय एवं आपके सुन्दर सलोने व्यक्तित्व ने सेठानी सा को आकर्षित कर लिया व उन्होंने मातृवत् आपका संरक्षण कर आपको धर्म संस्कार प्रदान किये। सेठानी सा. उन्हें बराबर संत-सतियों के दर्शन व समागम हेतु साथ ले जातीं। महापुरुषों के पावन दर्शन व संत समागम से आपके मन में प्रसुप्त वैराग्य संस्कार जागृत हुए और आपने महासती छोगाजी म.सा. के चरणों में अपने आपको समर्पित करने का दृढ निश्चय किया। पूज्या महासती जी से ज्ञान-ध्यान सीख कर आपने अपने धर्मपिता श्रेष्ठिवर्य श्री चाँदमलजी व उनकी धर्मशीला सहधर्मिणी की आज्ञा प्राप्त कर वि.सं. १९८३ कार्तिक शुक्ला १५ को १६ वर्ष की वय में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार कर संयम-मार्ग में अपने कदम बढाए।

श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर आपने पूज्या गुरुणी मैया की अहर्निश सेवा करते हुए उनसे शास्त्रों व थोकड़ों का अच्छा अभ्यास किया। आपने गुरु-भगिनी महासती जी श्री केवलकंवर जी म.सा. की भी अनुपम सेवा की। पूज्या गुरुणी जी व गुरु भगिनी जी म.सा. की सेवा में आपका लम्बे समय तक अजमेर विराजना रहा। इसके अनन्तर आपका विचरण विहार मुख्यतः मारवाड़ व मेरवाड़ में रहा। आपके विचरण विहार से मुख्यतः जयपुर, जोधपुर, ब्यावर, अजमेर, पाली, मदनगंज, भोपालगढ़, थांवला, अहमदाबाद, मसूदा आदि क्षेत्र लाभान्वित रहे।

आपका स्वभाव मधुर, हृदय सरल, व्यक्तित्व विनम्र तथा वाणी प्रभावी थी। जैन जैनेतर जो भी इस दिव्यमूर्ति महासाध्वी के दर्शन करता, प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इन बाल ब्रह्मचारिणी महासती जी के जीवन के पोर पोर में धर्म व संयम रमा था। बड़ों की ही नहीं वरन् छोटी महासतियों की सेवा या वैय्यावृत्य करने में भी आप सदा

आगे रहतीं। आपके इन आत्मिक गुणों से समूचा चतुर्विध संघ आपसे प्रभावित था। वि.सं. २०३१ के सवाई माधोपुर चातुर्मास में भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर परमपूज्य युगमनीषी आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने आपको 'प्रवर्तिनी' पद से विभूषित किया। आपका संघनायक के प्रति समर्पण व साध्वी समुदाय के प्रति वात्सल्य भाव अनूठा था। अपनी सहज वात्सल्यपूर्ण शैली में प्रत्येक आगन्तुक को जीवन-निर्माण, समर्पण, सेवा व संघ-निष्ठा की प्रेरणा देने में आप निष्णात थीं।

वृद्धावस्था व शारीरिक अशक्यता के कारण वि.सं. २०३५ में जोधपुर संघ के अतिशय अनुरोध पर आपका जोधपुर स्थिरवास विराजना हुआ। तपःपूत महासतीवर्या के विराजने से वर्द्धमान भवन, पावटा धर्मस्थानक तीर्थधाम बना रहा। पुण्यनिधान इन महासतीवर्या के दर्शन व मांगलिक-श्रवण हेतु प्रतिदिन सैंकडों भाई-बहिन नियमित रूप से उपस्थित होते। वि.सं. २०४२ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी दिनांक ७ अप्रेल, १९८६ को रात्रि में ६० वर्ष की सुदीर्घ संयम-साधना व ७ वर्ष के स्थिरवास के पश्चात् आपका संलेखनापूर्वक महाप्रयाण हुआ।

• महासती श्री चूनाजी म.सा.

आपका जन्म थाँवला (नागौर) में हुआ। आप श्री चुन्नीलालजी आबड़ की सुपुत्री थीं। आपने वि.सं. १९८३ को अजमेर में महासती श्री भीमकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की एवं निरतिचार संयम का पालन किया।

२७ वर्ष तक संयमनिष्ठ जीवन के अनन्तर वि.सं. २०१० भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को अजमेर में आपका स्वर्गवास हो गया।

• महासती श्री धूलाजी म.सा.

आपका जन्म पीपाड़ शहर में हुआ। आपके पिता श्री छोटमलजी गाँधी तथा माता श्रीमती सुन्दरबाई थीं।

आपके पति श्री मूलचन्दजी कटारिया का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी।

आपने वि.सं. १९८४ के वैशाख माह में हरमाड़ा में महासती श्री राधाजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

१५ वर्ष के श्रमणी-जीवन के अनन्तर वि.सं. १९९९ में महामंदिर-जोधपुर में आपका स्वर्गवास हो गया।

• महासती श्री स्वरूपकँवरजी म.सा.

आपका जन्म जोधपुर में वि.सं. १९४६ वैशाख कृष्णा तृतीया को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्रीमान् इन्द्रमलजी कोठारी तथा माता श्रीमती जीवनकँवरजी थीं। आपका विवाह जोधपुर के श्री सांवतराजजी बागरेचा के साथ हुआ।

आपके पति का आकस्मिक निधन हो जाने से आप संसार से विरक्त हो गयीं तथा वि.सं. १९९१ माघ शुक्ला पंचमी को महासती श्री अमरकंवरजी म.सा. (बड़े) की निश्रा में भागवती दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. २०२९ आषाढ कृष्णा अष्टमी को घोड़ों का चौक, जोधपुर में आपका समाधिमरण हो गया।

• साध्वीप्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा.

सरलता, सहिष्णुता, सहजता, सहृदयता, सात्त्विकता व संतोषवृत्ति की साकार प्रतिमा महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. का जन्म वि.सं. १९६६ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को भोपालगढ़ के पास 'गारासणी' ग्राम में वहाँ के कामदार श्रेष्ठिवर्य श्री मोतीलालजी चतुरमुथा की धर्मशीला सहधर्मिणी श्रीमती सुन्दरबाई की कुक्षि से हुआ।

बालिका बदनकंवर की बाल-क्रीडाएँ सामान्य बालक-बालिकाओं से विशिष्ट थीं। बचपन में भी मुख वस्त्रिका बाँधना, पूँजनी रखना और छोटी-छोटी कटोरियों के पातरे तथा रुमाल की झोली बनाकर आहार बहरने जाना इत्यादि क्रीडाओं में आपको बहुत आनन्द आता। माता-पिता की लाड़ प्यार भरी शीतल छांव में आपका लालन-पालन हो रहा था कि क्रूरकाल के क्रूर पंजों ने पिताश्री का साया असमय ही छीन लिया। छह वर्ष की अबोध बालिका 'बदन' को असार संसार के स्वरूप का परिचय मिल गया। पूरा परिवार ननिहाल भोपालगढ़ आ गया। १३ वर्ष की वय में आपका भोपालगढ़ निवासी प्रतिष्ठित श्रावक श्री धींगड़मलजी कोचर मेहता (बागोरिया वाले) के सुपुत्र श्री बख्तावरमल जी के साथ परिणय हुआ। सभी 'बदन' के भाग्य की सराहना कर रहे थे, धर्मानुरागी सुसंस्कारी कोचर परिवार भी 'बदन' सी वधू पा प्रसन्नचित्त था, पर 'होनी' को कुछ ओर ही मंजूर था। पुनः काल का प्रकोप हुआ और बदन के सौभाग्य सिन्दूर श्री बख्तावरमलजी को झपट चला। बदनकँवर हतप्रभ रह गई। अश्रुधारा की जगह उसने उसी दिन मौन साध ली।

पति के वियोग को संयम-संयोग का निमित्त मानकर संसार की असारता का साक्षात् अनुभव कर आपने मन ही मन दीक्षा लेने का संकल्प कर लिया। परिजन दीक्षा देने को सहमत नहीं थे, पर आपकी निर्भीकता व दृढ़ता के आगे सबको निरुत्तर होना पड़ा। अजमेर की बहिन चम्पाजी से आपने अक्षर ज्ञान प्रारम्भ किया। सरल, सौम्य, भद्रिक संत श्री लाभचन्दजी म.सा. एवं दृढ संयमी महासती श्री अमरकंवर जी म.सा. के पावन सान्निध्य से आपकी वैराग्य भावना और अधिक बलवती हो उठी। आप प्रारम्भ से ही निर्भीक व दृढ निश्चय की धनी थीं। अजमेर साधु-सम्मेलन में जाकर आपने आरम्भ-समारम्भ व सचित्त-त्याग जैसे कई त्याग-प्रत्याख्यान स्वीकार कर लिये। आपने वैराग्यावस्था में सामायिक, प्रतिक्रमण, कई बोल थोकड़े व ढालें कंठस्थ करते हुए अध्ययन क्रम चालू रखा।

वि.सं. १९९१ माघ शुक्ला पंचमी को सिंहपोल जोधपुर में परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के मुखारविन्द से व पूज्या महासती जी श्री अमरकंवर जी म.सा. के निश्रा में आपकी भागवती श्रमण दीक्षा सम्पन्न हुई।

दीक्षा लेकर जीवन लक्ष्य पर आप अप्रमत्त भाव से आगे बढ़ने लगीं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र का विकास ही अब आपका जीवन लक्ष्य था। जीवन के प्रारम्भ में शिक्षा न पाने के कारण भले ही शाब्दिक विद्वत्ता कम रही हो, पर 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' की सच्ची विद्वत्ता का पाठ आपने बखूबी पढ़ा। संयमधर्म में आपकी अटूट आस्था थी, सरलता ही जीवन का आभूषण था, पूज्या गुरुणी श्री अमरकंवर जी म.सा. एवं महासती श्री केवलकंवर जी म.सा. के पावन सान्निध्य में आपका संयम जीवन निखरा। उन्होंने आपके जीवन में उच्च संस्कार व संयम निष्ठा कूट-कूट कर भरी। महासती द्वय का पावन साया भी कुछ अरसे तक ही बना रहा व संघाड़े का दायित्व आपको संभालना पड़ा।

महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. सहज पुण्यशालिता की धनी थे। बचपन में माँ-बाप का अतिशय दुलार, दीक्षा-जीवन में पूज्या गुरुणी जी व महासती श्री केवलकंवर जी म.सा. का शीतल सान्निध्य व बाद में गुरुणी भगिनियों व शिष्याओं का समादरपूर्ण सहयोग व समर्पण आपको प्राप्त हुआ। आपने ज़ीवन में कभी प्रवचन नहीं

दिया, पर आपके उत्कट आत्मिक गुणों के आगे भक्त जन सहज ही झुक जाते। आप प्रारम्भ से ही निर्भीक व अनुशासनप्रिय थीं। गाँव-गाँव नगर-नगर में पाद-विहार कर आपने जिनवाणी का प्रचार-प्रसार किया। प्रपञ्चों से आप बिल्कुल विरक्त रहीं।

पूज्या प्रवर्तिनी महासती जी श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. के महाप्रयाण के अनन्तर आपके दीक्षा दिवस १ फरवरी १९८६ को परमपूज्य आचार्य भगवन्त ने आपको 'प्रवर्तिनी' पद प्रदान किया। सरल, सौम्य, अनुशासनप्रिय महासती जी म.सा. ने साध्वी प्रमुखा एवं प्रवर्तिनी के इस प्रतिष्ठित दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया। गांभीर्य, धैर्य, वात्सल्य, सरलता जैसे अनेक गुणों की धनी महासती जी के आनन पर सदा प्रसन्नता छाई रहती व अपनी आत्मीयता से आप सभी को प्रभावित करती। आपका जीवन स्फटिक सा स्वच्छ निर्मल था। उपालम्भ देना आपके स्वभाव में ही नहीं था। लाग लपेट से आप कोसों दूर थीं। शारीरिक अस्वस्थता के कारण पिछले कई वर्ष आपका जोधपुर स्थिरवास विराजना हुआ। ८५ वर्ष की आयु में परमपूज्य आचार्य श्री हीराचन्द जी म.सा. के मुखारविन्द से आश्विन कृष्णा पंचमी रविवार दिनांक २५ सितम्बर ८४ की अपराह्न आपने तिविहार संथारा व २६ सितम्बर ९४ की प्रातः आचार्यप्रवर से जीवनपर्यन्त चौविहार संथारा के प्रत्याख्यान कर अपने अन्तिम मनोरथ को सिद्ध करते हुए उसी दिन इस नश्वर देह का समाधिपूर्वक त्याग कर देवलोकगमन किया।

• महासती श्री हरकंवरजी म.सा. (छोटे)

आपका जन्म किशनगढ़ में वि.सं.१९५१ आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। आप श्री समरथमलजी नाहर की सुपुत्री थीं। आपके पति श्रीमान् तेजकवंरजी बोहरा का आकस्मिक निधन हो जाने से आप संसार से विरक्त हो गयीं। आपने वि.सं.१९९३ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को अजमेर में महासती श्री धनकंवरजी म.सा.(बड़े) की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

२५ वर्षों का संयमनिष्ठ जीवन जीने के अनन्तर वि.सं.२०१८ श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को किशनगढ में आपने समाधि-मरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री अमरकंवरजी म.सा. (छोटे)

आपका जन्म किशनगढ़ में वि.सं. १९६० माघ शुक्ला चतुर्थी को हुआ। आपके पिता श्री हीरालालजी बोहरा तथा माता श्रीमती धापूबाईजी थीं। आपके पति श्री मगराजजी बड़मेचा का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आपने वि.सं. १९९३ माघ शुक्ला त्रयोदशी को किशनगढ में महासती श्री राधाजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

वि.सं. २०१५ फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को ब्यावर में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने २२ वर्ष तक निरतिचार संयम का पालन किया।

• महासती श्री फूलकंवरजी म.सा.

आपका जन्म बारणी (जोधपुर) में वि.सं. १९६३ भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को हुआ। आपके पिता श्री भीकमचन्दजी भण्डारी तथा माता श्रीमती सिरेकंवरजी थीं। आपका विवाह जोधपुर के श्री पृथ्वीराजजी भंसाली के साथ हुआ। गृहस्थ अवस्था में आपकी धार्मिक रुचि बहुत अच्छी थी, अतः आपने अपने पति की आज्ञा लेकर वि.सं.

१९९४ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को महामंदिर-जोधपुर में महासती श्री हुलासकँवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

३५ वर्षों तक संयम का पालन कर आपने वि.सं. २०२९ श्रावण शुक्ला द्वितीया को घोड़ों का चौक जोधपुर में समाधिमरण को प्राप्त किया।

• साध्वी प्रमुखा प्रवर्तिनी श्री लाडकंवर जी म.सा.

साध्वीप्रमुखा महासती श्री लाडकंवर जी म.सा. का जन्म पुण्यधरा पीपाड़ शहर में धर्मप्रेमी सुश्रावक श्रीमान् फतेहराजजी मुणोत की धर्मसहायिका सहधर्मिणी श्रीमती बदनबाईजी की कुक्षि से हुआ। बचपन से ही माता-पिता एवं संतसती-समागम से आपकी धर्माभिरुचि व धर्म संस्कार पुष्ट होते रहे।

योग्यवय होने पर आपका श्री जुगराज जी भण्डारी, महामन्दिर (जोधपुर) के साथ परिणय हुआ। अल्पकालिक वैवाहिक जीवन के उपरान्त ही पतिदेव श्री जुगराजजी भण्डारी का असामयिक निधन हो गया। यौवन की दहलीज पर खड़ी लाडकँवर को संसार के सच्चे स्वरूप, सांसारिक सुखों की असारता व क्षण भंगुरता का बोध हुआ और बाल्यकाल से प्राप्त धर्माभिरुचि वैराग्य भाव में परिणत हो गई। १६ वर्ष की लघुवय में परमपूज्य आचार्य हस्ती की अनुज्ञा से वि.सं. १९९५ माघ शुक्ला त्रयोदशी को श्रमणी जीवन अंगीकार कर आप महासती श्री अमरकंवर जी म.सा. की शिष्या बनी।

श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर आपने गुरुणी मैय्या के चरणों में रहकर धार्मिक ज्ञान से अपने संयम जीवन को समृद्ध किया। सेवाभाव, सरलता, निस्पृहता, दृढ़ आचार निष्ठा, उच्च समर्पण भाव की बेमिसाल प्रतिमा महासती जी म.सा. ने दीक्षा लेने के साथ ही शिष्या नहीं बनाने व नवीन वस्त्र न पहिनने का नियम लेकर निस्पृहता व त्यागवृत्ति का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया। सेवा व वैय्यावृत्य की धनी महासती श्री लाडकंवर जी म.सा. ने महासती श्री स्वरूप कुंवर जी म.सा., महासती श्री धनकँवर जी म.सा., महासती श्री किशन कंवर जी म.सा. (खींवसर वाले), महासती श्री ज्ञानकंवर जी म.सा., महासती श्री वृद्धिकंवर जी म.सा., प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. प्रभृति महासतीवृन्द की पूर्ण निष्ठा, कुशलता व अग्लान भाव से सेवा कर अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

आपके ६४ वर्षीय संयम-जीवन में ३६ वर्षावासों का लाभ जोधपुर को मिला। इसके पीछे भी आपकी सेवा भावना व वैय्यावृत्य की कुशलता ही प्रमुख कारण थे। सुदीर्घ काल तक एक ही स्थान पर विराजने पर भी आप व्यक्तिगत मोह-ममत्व से सदा दूर रहे। श्रावक-श्राविकाओं को कभी भी कोई उपालम्भ न देकर सदा स्वयं अपनी धर्म-साधना व आत्म-चिन्तन में ही लीन रहना व आगन्तुकों की धर्मप्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना आपके जीवन की विशेषता थी। स्वयं प्रवचन प्रवीण होते हुए भी छोटी सतियों को आगे बढाने हेतु उन्हें प्रवचन के लिए आप प्रोत्साहित व प्रेरित करते रहते थे। आपने अपनी गुरु भगिनियों की तो सेवा की ही, अनेक सतियों को संयमनिष्ठा व दृढ़ आचार पालन की दृष्टि से उन्हें घड़ने का भी महनीय कार्य कर शासन की प्रभावना की। सेवाकार्य में आपने अपने स्वास्थ्य की भी कभी परवाह नहीं की।

पूज्यपाद आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. ने वि.सं. २०४६ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी ९ दिसम्बर, १९८९ को आपको उपप्रवर्तिनी पद से विभूषित किया। पूज्या प्रवर्तिनी महासती श्री बदन कंवर जी म.सा. के स्वर्गारोहण के पश्चात् वि.सं. २०५१ आश्विन शुक्ला दशमी १४ अक्टूबर, १९९४ को आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द जी म.सा. द्वारा

आपको प्रवर्तिनी पद से सुशोभित किया गया।

अन्तिम वर्षों में स्वास्थ्य प्रतिकूल होने पर भी आप सदा समभाव में रहकर साधनाशील रहती थी। १४ नवम्बर २००२ को जोधपुर में ही पूर्ण समाधिभाव व संथारे के साथ रात्रि में लगभग ११.४५ बजे आपका महाप्रयाण हो गया।

• महासती श्री उगमकंवरजी म.सा.

आपका जन्म जोधपुर में हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री सज्जनराजजी भंसाली तथा माता श्रीमती कुंवरीबाईजी थीं। आपके पति श्री सुखलालजी बाफना का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी।

आपने वि.सं. १९९७ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को भोपालगढ़ में महासती श्री धनकंवरजी म.सा. (बड़े) की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की तथा संयमी जीवन में सद्गुणों का अर्जन किया।

वि.सं. २००१ में नागौर शहर में आपका स्वर्गगमन हो गया।

• महासती श्री धनकंवरजी म.सा. (सबसे छोटे)

आपका जन्म जोधपुर में वि.सं.१९५६ के पौष माह में हुआ। आपके पिता श्रीमान् भागचन्दजी मूथा तथा माता श्रीमती सिरेबाईजी थीं।

आपके पति श्री मनोहरमलजी सिंघवी का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आपने वि.सं.१९९८ आषाढ शुक्ला द्वितीया को जोधपुर में महासती श्री राधाजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

३० वर्षों तक संयम पालन कर वि.सं. २०२८ मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी को घोड़ों का चौक जोधपुर में आपने समाधिमरण को प्राप्त किया।

• साध्वीप्रमुखा महासती श्री सायरकंवरजी म.सा.

सरलहृदया महासती श्री सायरकंवरजी म.सा. का जन्म मद्रास में वि.सं. १९८३ की फाल्गुन शुक्ला दशमी को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्रीमान् रिड़मलजी भण्डारी तथा माता सुश्राविका श्रीमती जतनबाईजी से आपको बचपन से ही धार्मिक संस्कार प्राप्त होते रहे, जिसके कारण आप सन्त-सतियों के दर्शन-वन्दन एवं प्रवचन-श्रवण का यथायोग्य लाभ लेती रहती थीं।

बीकानेर निवासी श्रीमान् शिवकरणजी मेहता खजांची के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ समय पश्चात् ही आपके पतिदेव का आकस्मिक निधन हो जाने से आपने संसार की असारता को अच्छी तरह समझ लिया तथा परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से वि.सं. २००३ की माघ शुक्ला त्रयोदशी को बारणी खुर्द में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार कर श्रमणी-जीवन को अपना पथ बनाया। आपने श्रद्धेया महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की सेवा में रहकर अपना ज्ञान-ध्यान त्याग-तप आगे बढ़ाया। आपकी मधुरता, विनम्रता एवं वात्सल्य भावना आगन्तुक श्रोताओं को सहज ही प्रभावित कर लेती है। आप स्वभाव से सरल, सहिष्णु एवं भद्रिक महासती हैं तथा सम्प्रति महासती मण्डल में सबसे वरिष्ठ होने से साध्वी प्रमुखा हैं। आपका विचरण क्षेत्र निमाज,

ब्यावर, पीपाड़, पाली, भोपालगढ, मदनगंज, जोधपुर, नागौर, जयपुर, सैलाना, अजीत, भीलवाड़ा, बालोतरा, इन्दौर, बीजापुर, यादगिरी, पाचोरा, गुलाबपुरा, धनोप, अजमेर, दुन्दाड़ा, नीमच आदि मुख्य रूप से रहे हैं।

आपके संसार पक्ष में छोटी बहिन मैनाजी जो कि वर्तमान में शासन प्रभाविका परमविदुषी महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के नाम से रत्न संघ में ख्यात नामा महासती हैं, की दीक्षा भी आपके साथ ही सम्पन्न हुई थी।

- शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा.

शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. का जन्म दृढधर्मी, प्रियधर्मी, सुश्रावक श्रीमान रिड़मलजी भण्डारी की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती जतनकंवरजी भण्डारी की कुक्षि से मद्रास शहर में वि.सं.१९९१ में आषाढ शुक्ला द्वितीया को द्वितीय पुत्री के रूप में हुआ। परिवार जनों ने प्रेम से 'मैना' नाम रखा।

विरासत में प्राप्त पैतृक संस्कारों के कारण 'मैना' जी की बचपन से ही धार्मिक भावना उच्चता की ओर बढ़ने लगी थीं। आपकी दृढ़ वैराग्य भावना के कारण माता-पिता ने कठिन परीक्षाओं के पश्चात् आपको अपनी बड़ी बहन के साथ दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान की। माघ शुक्ला त्रयोदशी सं. २००३ के शुभ मुहूर्त में बारणी खुर्द ग्राम में आपकी भागवती दीक्षा आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न हुई। गुरुणीजी प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म.सा.की नेश्राय में आपने ज्ञानाराधन से अपनी योग्यता में वृद्धि की।

महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. बाल ब्रह्मचारिणी होने के साथ प्रारंभ से ही कुशाग्र बुद्धि की धनी रहीं। आपने प्राकृत, संस्कृत, आगम, थोकड़े, इतिहास आदि का गहन अध्ययन किया। आपने निष्ठा एवं लगन से अपनी प्रवचन शैली को बहुत प्रभावोत्पादक बना लिया। संयम की निर्मलता बनाये रखने के साथ आपने जिनशासन की विशिष्ट प्रभावना की और आज भी कर रही हैं। इसी कारण आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. ने आपको 'शासन प्रभाविका' के पद से अलङ्कृत किया।

आपकी वाणी में ओज एवं प्रवचनों में सरसता रहती है। जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिप्रादन में आप विशेष निपुण हैं। आपकी वाणी से प्रभावित होकर कई बहनों ने श्रमण जीवन अंगीकार किया है।

राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र ,कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों में विचरण के साथ आपके चातुर्मासों का सौभाग्य निमाज, ब्यावर, पीपाड़, पाली, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, जयपुर, सैलाना, भीलवाड़ा, भोपालगढ़, अजमेर, टोंक, चौथ का बरवाड़ा, बीजापुर, गजेन्द्रगढ, बैंगलौर, मद्रास, रायचूर, मुम्बई, जलगाँव, कानपुर, मेड़ता, कोटा, उज्जैन आदि क्षेत्रों को प्राप्त हुआ।

आपके प्रभावोत्पादक प्रवचनों से स्वाध्यायी वर्ग तथा अन्य भाई-बहिन भी लाभान्वित हो सकें, इस लक्ष्य से पर्युषण के प्रवचनों के संग्रह रूप में 'पर्युषण पर्वाराधन' पुस्तक का प्रथम प्रकाशन लगभग २० वर्ष पूर्व हो गया था। आपके अनेक प्रवचन जिनवाणी एवं स्वाध्याय शिक्षा पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए हैं। आपकी अब तक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें दुर्लभ अंग चतुष्टय, पर्युषण पर्वाराधन, पथ की रुकावटें, शिवपुरी की सीढियाँ, सुजान ज्योति आदि प्रमुख हैं। ।

- महासती श्री उमरावकंवर जी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. १९६७ में पीपाड़ शहर में हुआ। आपके पिता श्री कनकमलजी भण्डारी तथा माता

श्रीमती ओटीबाईजी थीं। आपका विवाह श्री माणकमलजी सिंघवी के साथ हुआ। आपके पति का आकस्मिक निधन हो जाने के पश्चात् आप संसार से विरक्त हो गयीं तथा वि.सं. २०४४ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को जोधपुर में महासती श्री अमरकंवर जी म.सा. (छोटे) की निश्रा में आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की।

२२ वर्ष तक संयम का पालन कर आपने वि.सं. २०२६ पौष कृष्णा चतुर्थी (या पंचमी) को घोड़ों का चौक जोधपुर में समाधि-मरण को प्राप्त किया।

- महासती श्री सन्तोष कंवर जी म.सा.

सेवाभावी महासती श्री सन्तोषकंवरजी म.सा. का जन्म अजमेर जिलान्तर्गत मसूदा ग्राम में सुश्रावक श्री धनराजजी रांका की धर्मपत्नी श्रीमती इन्द्राबाई जी रांका की कुक्षि से विक्रम संवत् १९८७ में हुआ। पुत्री का नाम 'सन्तोष' रखा गया। माता-पिता ने धार्मिक संस्कारों से समृद्ध बनाने में उल्लेखनीय योगदान किया।

सन्तोषजी का विवाह ब्यावर के सोनी परिवार में हुआ। परन्तु कुछ समय पश्चात् ही पतिदेव का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से वैराग्य हो गया। दृढ वैराग्य भावना से आपने महासतीजी श्री छोटा धनकंवर जी म.सा. की निश्रा में अजमेर शहर में वि.सं. २००७ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को भागवती दीक्षा अंगीकार कर संयम का पथ अपनाया। आपने प्रवचन-साहित्य, ढालें, चौपाई आदि का अभ्यास किया। आपकी सन्तोषवृत्ति, सरलता व मधुर वाणी आगन्तुक दर्शनार्थियों को आज भी आकर्षित करती है। आप संयम धर्म का निर्मल पालन कर रही हैं। विक्रम संवत् २०१६ से आपको प्रवर्तिनी महासती श्री सुंदरकंवर जी म.सा. की सेवा में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

आपके सर्वाधिक चातुर्मास जोधपुर में हुए। जोधपुर के अलावा निमाज, पीपलिया, बर, मसूदा, विजयनगर, ब्यावर, अजमेर, किशनगढ, अहमदाबाद, पाली, भोपालगढ, थांवला, नसीराबाद, बडू, जावला, गोविन्दगढ, पीह, हरमाड़ा, मेड़ता सिटी , गोटन, धनारीकलां आदि स्थानों को भी आपके चातुर्मास प्राप्त हुए।

आपने जोधपुर के पावटा स्थानक में संवत् २०३५ से २०४३ तक रहकर प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकंवर जी म.सा., महासती श्री इचरजकंवर जी म.सा. आदि की अग्लान भाव से सेवा की।

- महासती श्री ज्ञानकंवर जी म.सा.

आपका जन्म पाली में वि.सं. १९७० की चैत्र शुक्ला दशमी को हुआ। आप श्री गुलाबचन्दजी वैद की सुपुत्री थीं। आपके पति श्री माणकचन्दजी सुकलेचा का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी तथा वि.सं. २००९ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पाली में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

२८ वर्षों तक संयम का पालन कर आपने वि.सं. २०३७ द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीय अष्टमी को घोड़ों का चौक, जोधपुर में समाधिमरण को प्राप्त किया।

- महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा.

शान्तस्वभावी महासती श्री शान्तिकंवरजी म.सा. का जन्म जोधपुर जिलान्तर्गत भोपालगढ़ तहसील के बड़ा अरटिया ग्राम में श्रीमान् सिरेमल जी कर्णावट एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भंवरबाईजी की आत्मजा के रूप में हुआ।

आपके माता-पिता ने आपका विवाह भोपालगढ निवासी श्री भंवरलाल जी कांकरिया के साथ सम्पन्न किया। किन्तु असमय में ही आपके पतिदेव का निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। फलस्वरूप आपने महासती श्री हरकंवर जी म.सा. (बड़े) की निश्रा में पाली में विक्रम सं. २००९ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

आपने अपने नाम को सार्थक करते हुए शान्तिपूर्वक जीवन जीते हुये ज्ञान, ध्यान व तप-त्याग में अपने जीवन को आगे बढ़ाया। शान्तस्वभावी होने के साथ आप तपस्विनी महासती हैं। वृद्धावस्था में भी तप में विशेष पुरुषार्थ प्रकट करने के कारण आपको आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. ने 'तपस्विनी' पद से अलङ्कृत किया है। आप पिछले अनेक वर्षों से पर्युषण के दिनों में अठाई तप करती रही हैं तथा मासखमण जैसे दीर्घकालीन तप भी अनेक बार किए हैं। वि.सं. २०५१ के पुष्कर चातुर्मास में आपने मासखमण की तपस्या की। इसके पश्चात् २०५२ के अलीगढ (रामपुरा) चातुर्मास में, २०५४ के हिण्डौन चातुर्मास में और २०५५ के धनोप चातुर्मास में भी मासखमण की तपस्या सानन्द सम्पन्न की। २०५३ के अलवर चातुर्मास में २४ उपवास तथा २०५६ के नागौर चातुर्मास में १८ उपवास की तपस्या सम्पन्न की।

आप प्राय: श्रावण व भाद्रपद माह में एकान्तर तप भी करती रहती हैं। संयम और तप की आराधना में आपके बढ़ते हुए कदम आज भी सबके लिये प्रेरणा स्रोत हैं।

आपने अब तक मुख्य रूप से तिलोरा, आलनपुर, जयपुर, किशनगढ, मदनगंज, धनोप, पुष्कर, मेड़ता सिटी, अरटिया, पालासनी, जोधपुर, भोपालगढ, अजमेर, नागौर, आगूँचा, सरवाड़, हीरादेसर, भरतपुर, अजमेर, पीपाड़शहर, नसीराबाद, अलीगढ, अलवर, हिण्डौन सिटी आदि स्थानों पर चातुर्मास किये हैं। आपकी शान्त एवं सौम्य मुखमुद्रा आगन्तुकों को संयम-मार्ग में बढ़ने की विशेष प्रेरणा प्रदान करती है।

• महासती श्री सुगनकंवर जी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. १९६६ कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को आगूँचा (भीलवाड़ा) में हुआ। आपके पिता श्री हरकचन्द जी रांका व माता श्रीमती झमकूबाई जी थीं। श्री मोतीसिंह जी कोठारी-कनकपुर वालों के साथ आपका विवाह हुआ। परन्तु वैवाहिक जीवन अधिक समय तक नहीं चल सका। असमय में ही आपके पति का स्वर्गवास हो जाने से आपको संसार की असारता का बोध हो गया।

आपने वि.सं. २०१६ माघ शुक्ला पंचमी को अपने जन्म-स्थान में ही महासती जी श्री हरकंवर जी म.सा. (बड़े) की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपने वि.सं. २०४५ कार्तिक कृष्णा अष्टमी १ नवम्बर १९८८ मंगलवार को पुष्यनक्षत्र के योग में लगभग ४.३० घण्टे के संथारा पूर्वक मेड़तासिटी में समाधिमरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री इचरजकँवर जी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. १९७४ आषाढ कृष्णा एकम को जोधपुर में हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री मिलापचन्दजी मुणोत तथा माता श्रीमती कल्याणकंवरजी मुणोत थीं।

आपका विवाह अजमेर निवासी श्री मोहनलालजी नवलखा के साथ हुआ। आपने अपने पतिदेव से आज्ञा

प्राप्त कर वि.सं. २०१८ पौष शुक्ला द्वादशी को अजमेर में प्रवर्तिनी महासती श्री सुंदरकँवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपने वि.सं. २०३५ से २०४३ तक पावटा स्थानक, जोधपुर में स्थिरवास किया। अन्त में आपने वि.सं. २०४३ फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी मंगलवार ३ मार्च १९८७ को प्रातः ६ बजकर ५ मिनट पर संथारापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री वृद्धिकंवर जी म.सा.

आपका जन्म डाँगरा ग्राम में हुआ। पिता श्री केसरीमल जी तथा माता श्रीमती सोनीबाई जी से आपको सत्संस्कार प्राप्त हुए। आपका विवाह श्री मदनलाल जी कर्णावट के साथ हुआ। आपके पति का आकस्मिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आप श्री त्रिलोकचन्दजी संचेती, मद्रास की बहिन थीं।

आपने वि. सं. २०१९ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को सैलाना में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा ग्रहण की।

१६ वर्ष का संयम पालन कर आपने वि.सं. २०३५ चैत्र कृष्णा पंचमी को घोड़ों का चौक, जोधपुर में समाधिमरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री तेजकंवर जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवरजी म.सा. का जन्म रत्नसंघ के प्रसिद्ध सुश्रावक श्री उमरावमल जी सेठ जयपुर
की धर्मपत्नी श्रीमती सज्जनकंवर जी की कुक्षि से वि.सं. १९९६ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को हुआ। सेठ परिवार प्रारम्भ
से ही धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत रहा है। आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. जहाँ भी विराजते, आपके पिताश्री
प्रत्येक पूनम को वहाँ जाकर अवश्य ही दर्शन-वन्दन का लाभ लेते थे। इस कारण आपके पिताश्री पूनमिया श्रावक
जी के नाम से प्रसिद्ध थे। आपकी माताश्री भी धर्मपरायण आदर्श श्राविका थीं। प्रारम्भ से ही आपके घर-परिवार में
धार्मिक वातावरण होने से आपकी धर्म-भावना निरन्तर बढ़ने लगी।

आपने शासनप्रभाविका परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की प्रेरणा से जयपुर शहर में वि.सं.
२०२० माघ शुक्ला द्वितीया को आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा ग्रहण
की। दीक्षा के समय आपका नाम तेजकंवर से बदलकर महासती श्री निर्मलावती जी म.सा. रखा गया, किन्तु आप
महासती श्री तेजकंवरजी म.सा. के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

आपने अपनी गुरुणी जी की आज्ञा में रहकर थोकड़ों एवं शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया। आज आप
व्याख्यात्री महासती के रूप में रत्न संघ में प्रसिद्ध हैं।

आपने अब तक भीलवाड़ा, भोपालगढ़, जयपुर, जोधपुर, कोसाना, बिलाड़ा, गुलाबपुरा, बालोतरा, अजीत,
बीजापुर, यादगिरी, पाचोरा, पाली, अलवर, हरमाड़ा, रूपनगढ़, खोह, गंगापुर सिटी, पीपाड़ शहर, अहमदाबाद, मुम्बई,
हैदराबाद, रायचूर, जलगांव, कजगाँव, तोंडापुर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये हैं।

आपकी वाणी में विशेष मिठास है, जिसके कारण श्रोतागण आपसे विशेष प्रभावित रहते हैं।

• महासती श्री रतनकंवर जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवरजी म.सा. का जन्म गीजगढ निवासी प्रियधर्मी सुश्रावक श्रीमान् कुन्दनमलजी चोरड़िया की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती रूपवती जी चोरड़िया की कुक्षि से वि.सं. १९९६ श्रावण शुक्ला पंचमी को हुआ। माता-पिता ने बचपन में ही आपको धार्मिक संस्कारों से सिंचित किया।

आपकी धार्मिक रुचि दिनोंदिन बढ़ती रही। जब आपको शासन प्रभाविका परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. का पावन सान्निध्य मिला तो आपकी वैराग्य भावना पुष्ट होने लगी। परिणामतः जयपुर में वि.सं. २०२४ वैशाख शुक्ला षष्ठी को आपने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की।

गुरुणीजी के पूर्ण अनुशासन में रहते हुए आपने आगम-शास्त्रों एवं थोकड़ों का गहन अध्ययन प्रारंभ किया। त्याग-तप एवं सेवा के क्षेत्र में भी अपने चरण आगे बढाये। वर्तमान में आप व्याख्यात्री महासती जी के रूप में जिनशासन की प्रभावना में निर्मल संयम-पालन के साथ तत्पर हैं।

आपने जयपुर में रहकर अपने से कनिष्ठ एवं अस्वस्थ महासती श्री चन्द्रकला जी म.सा. की प्रमुदित भावों से सेवा की है, जो प्रशंसनीय है।

आपने अब तक मुख्य रूप से जयपुर, जोधपुर, भोपालगढ, अजमेर, बिलाड़ा, गुलाबपुरा, ब्यावर, चौथ का बरवाड़ा, टोंक, बीजापुर, गजेन्द्रगढ, बैंगलोर, मद्रास, रायचूर, बालकेश्वर (मुम्बई), जलगाँव, पाली, सवाई माधोपुर , हिण्डौन, कानपुर, कोटा, उज्जैन, अहमदाबाद आदि क्षेत्रों में चातुर्मास किये हैं।

आपके प्रवचन ओजस्वी एवं सरस होते हैं। युवावर्ग को धर्म से जोड़ने में आपकी सदैव सक्रिय भूमिका रहती है।

• महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा.

विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. का जन्म सूर्यनगरी जोधपुर के सुश्रावक श्रीमान् भेरूसिंहजी मेहता की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती उगमकंवरजी मेहता की कुक्षि से वि.सं. २००९ में वैशाख कृष्णा त्रयोदशी को हुआ।

माता-पिता एवं परिजनों ने अपने धार्मिक संस्कारों से आपका पालन-पोषण किया। बचपन से ही आप घोड़ों के चौक स्थानक में सन्त-सतियों की सेवा में अपने माताजी के साथ आती रहती थीं।

जब आपको शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. का पावन सान्निध्य प्राप्त हुआ तो आपके धार्मिक संस्कार एवं वैराग्य भावना बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप आपने सरदार स्कूल जोधपुर में वि.सं. २०२६ की ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को श्रमणी दीक्षा अंगीकार की तभी से आप सुशीलाकंवर जी म.सा. के रूप में जानी जाती हैं।

आपने हिन्दी, संस्कृत, आगम, थोकड़े आदि का बहुत अच्छा अध्ययन किया। आपकी वाणी में ओज एवं माधुर्य है। आपके प्रवचन सरल एवं सरस होने से श्रोताओं के लिये विशेष प्रभावोत्पादक होते हैं।

आपने अब तक कोसाणा, अजमेर, जोधपुर, बिलाड़ा, गुलाबपुरा, भीलवाड़ा, ब्यावर, चौथ का बरवाड़ा, टोंक, इन्दौर, जयपुर, यादगिरी, बीजापुर, पाचोरा, भरतपुर, भोपालगढ, टांटोटी, किशनगढ, सवाई माधोपुर, दूणी, खण्डप, मसूदा, खेरली, पाली, केकड़ी , देई, करही , धुळे, ताहराबाद आदि स्थानों पर चातुर्मास सम्पन्न किये हैं।

आप विदुषी व्याख्यात्री महासती के रूप में रत्न संघ में विश्रुत हैं। आपने महिलाओं, युवतियों एवं युवकों में

विशेष धार्मिक प्रेरणा फूंकी है। आप निष्ठापूर्वक जिनशासन सेवा में समर्पित हैं।

- महासती श्री सूरजकंवर जी म.सा.

आपका जन्म नागौर जिले के सुरसरो गांव में वि.सं. १९६६ की चैत्र शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिता श्री शुभकरणजी सोनी तथा माता श्रीमती जड़ावबाईजी थीं।

आपका विवाह श्री मोहनलाल जी सुराणा के साथ हुआ। आपके पति का स्वर्गवास हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आपने प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकँवरजी म.सा. की निश्रा में वि.सं. २०२९ माघ शुक्ला त्रयोदशी को भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप 'भखरी वाले' महाराज के नाम से प्रसिद्ध थीं।

आपने वि.सं. २०५६ कार्तिक शुक्ला नवमी दिनाङ्क १७ नवम्बर १९९९ को सांय ५.५० बजे अजमेर में सागारी संथारा ग्रहण किया तथा इसी रात्रि को ७.२५ बजे यावज्जीवन चौविहार त्याग रूप संथारा के प्रत्याख्यान ग्रहण कर लिये। ११ दिन तक आपका संथारा पूर्ण चेतन अवस्था में चला। अन्त में वि.सं. २०५६ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी, शनिवार २७ नवम्बर १९९९ को प्रातः १०.१५ पर समाधिमरण को प्राप्त हुए।

- महासती श्री सरलकंवर जी म.सा.

आपके पिता श्री फूलचन्दजी लूंकड तथा माता श्रीमती मगनबाईजी थीं। माता-पिता ने आपका नाम सज्जन कंवर जी रखा। आपका विवाह श्री मगराज जी खिंवसरा जोधपुर के साथ सम्पन्न हुआ। पति के निधन से आपको संसार से विरक्ति हो गयी।

आपने वि.सं. २०३३ चैत्र शुक्ला नवमी गुरुवार दिनाङ्क ८ अप्रेल १९७६ को महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा. की निश्रा में भोपालगढ में भागवती दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. २०४२ के अजमेर चातुर्मास में आपने मासखमण की दीर्घ तपस्या की।

वि.सं. २०४५ प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा मंगलवार ३१ मई १९८८ को नागौर में ६ घण्टे के संथारापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त हुए।

- महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री सौभाग्यवतीजी म.सा. का जन्म जोधपुर जिले के भोपालगढ कस्बे में विक्रम संवत् २०१४ की वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री मुकनचन्दजी कांकरिया थे तथा माता सुश्राविका श्रीमती गुटियाबाई हैं। आपने वि.सं. २०३३ चैत्र शुक्ला नवमी, गुरुवार को भोपालगढ में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के पूर्व आपका नाम सोहनकंवर था, दीक्षोपरान्त आपका नाम 'महासती श्री सौभाग्यवतीजी' रखा गया। किन्तु आपको अनेक श्रद्धालु सोहनकंवरजी म.सा. के नाम से ही जानते हैं। दीक्षित होकर आपने आगम-शास्त्रों, थोकड़ों एवं संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन किया।

घोड़ों का चौक स्थानक में अनेक वर्ष रहकर आपने अपनी गुरुणी जी प्रवर्तिनी श्री बदनकंवरजी म.सा. की खूब सेवा की। पावटा स्थानक में प्रवर्तिनी महासती श्री लाडकँवर जी म.सा. की सेवा में आप अहर्निश संलग्न रहीं। आपके ओजस्वी एवं धारा प्रवाह प्रवचन बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। आपकी वाणी में गांभीर्य एवं माधुर्य

है।

• महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा

आपका जन्म अजमेर के चंगेरिया कुल में वि.सं. २०१५ की पौष कृष्णा पंचमी दिनांक ३१ दिसम्बर १९५८ को हुआ। आपके पिता श्री कंवरीलाल जी चंगेरिया तथा माता श्रीमती भंवरीबाई हैं।

आपने १८ वर्ष की आयु में वि.सं. २०३३ चैत्र शुक्ला नवमी को भोपालगढ में प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दर कंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होने के पश्चात् आपने थोकड़ों एवं शास्त्रों का अध्ययन किया। आप सेवाभावी मधुरभाषी व्याख्यात्री महासती हैं। वर्तमान में आप वयोवृद्धा महासती श्री सन्तोषकंवर जी म.सा. की निश्रा में विचरण कर रही हैं।

• महासती श्री राजमती जी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. १९७६ आसोज शुक्ला नवमी ३ अक्टूबर १९१९ को देवली की छावनी में हुआ। आपके पिता श्री सुपातरचन्द जी भण्डारी तथा माता श्रीमती सदाबाई जी भण्डारी थी।

आपका विवाह संघ के प्रमुख कार्यकर्ता जोधपुर निवासी सुश्रावक श्रीमान् विजयमल जी कुंभट के साथ हुआ। श्रीमान् कुम्भट सा. का संघ-सेवा में उल्लेखनीय योगदान रहा। कुम्भट सा. का असामयिक निधन हो जाने से आपको संसार से विरक्ति हो गयी। आपने वि.सं. २०३३ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को जोधपुर में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप बहुत ही सरलस्वभावी महासती थीं।

२२ वर्षों तक संयम का पालन कर आपने अन्त में वि.सं. २०५५ ज्येष्ठ कृष्णा नवमी, बुधवार २० मई १९९८ को सांय ५.१५ बजे पावटा स्थानक जोधपुर में संथारापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री कौशल्यावती जी म.सा.

आपका जन्म थांवला जिला नागौर में वि.सं. २०१९ माघ कृष्णा पंचमी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री पन्नालालजी कटारिया तथा माता का नाम श्रीमती कमला देवी है।

आपने १५ वर्ष की वय में प्रवर्तिनी महासती श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. की निश्रा में वि.सं. २०३४ माघ शुक्ला दशमी को पालासनी (जोधपुर) में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने थोकड़े, शास्त्र एवं संस्कृत भाषा का अभ्यास किया। आपके प्रवचन सरल एवं प्रभावशाली होते हैं। वर्तमान में आप महासती श्री सन्तोष कंवर जी म.सा. की निश्रा में विचर रहे हैं।

• महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवरजी म.सा. का जन्म बारणी खुर्द (जोधपुर) में वि.सं. २०१७ श्रावण कृष्णा चतुर्दशी को हुआ। आपके पिता श्री उदाराम जी भाटी एवं माता श्रीमती दाखी बाई हैं।

आपने १७ वर्ष की आयु में वि.सं. २०३४ माघ शुक्ला दशमी को पालासनी (जोधपुर) में महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने थोकड़ों का अभ्यास किया। आपके प्रवचन सरल एवं प्रभावी होते हैं।

• महासती श्री सरलेश प्रभा जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री सरलेश प्रभाजी म.सा. का जन्म वि.सं. २०१७ ज्येष्ठ शुक्ला नवमी ४ जून १९६० को भोपालगढ़ में हुआ। आपका विद्यालयीय अध्ययन चेन्नई में हुआ। आपके पिता धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् रिखबचन्दजी कांकरिया समर्पित श्रावक रत्न थे। माता श्रीमती पिस्ताकंवर जी ने पुणे में १२ मई २००३ को श्रमणी दीक्षा अंगीकार कर संयम पथ में चरण बढ़ाए हैं।

आपने २१ वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०३८ वैशाख शुक्ला षष्ठी ९ मई १९८१ शनिवार को रायचूर (कर्नाटक) में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने आगमों, थोकड़ों एवं संस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया। आप मधुरभाषी एवं व्याख्यात्री महासती हैं।

• महासती श्री चन्द्रकला जी म.सा.

आपका जन्म भोपालगढ़ में वि.सं. २०२० मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री भंवरलाल जी हुण्डीवाल हैं तथा माता सुश्राविका श्रीमती उमराव बाई थीं।

आपने १८ वर्ष की युवावस्था में शासन प्रभाविका परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की निश्रा में वि.सं. २०३८ वैशाख शुक्ला षष्ठी को रायचूर में भागवती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षित होकर आपने थोकड़ों एवं शास्त्रों का अभ्यास किया। आप मारवाड़ी तर्ज के धार्मिक भजनों को सुमधुर स्वर में गाती हैं। सरल-स्वभावी दृढमनोबली महासतीजी पर लगभग ७ वर्ष पूर्व मकान की छत गिर जाने से रीढ की हड्डी पर गहरी चोट आई, किन्तु आपने धैर्य एवं साहस से काम लिया। अभी भी आप चलने में पूर्ण समर्थ नहीं हुई हैं, अभ्यास जारी है। तथापि आप संवत् २०५७ के जयपुर चातुर्मास के पश्चात् स्वयं कुछ दूर चलकर एवं श्रद्धालु श्राविकाओं के द्वारा उठायी गई डोली से जोधपुर पधारे हैं तथा अपनी गुरुणीजी शासन प्रभाविका महासतीश्री मैनासुन्दरी जी म.सा. के सान्निध्य में हैं।

• महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. का जन्म नागौर में वि.सं. २०१९ माघ शुक्ला नवमी को हुआ। आपके पिता श्री मांगीलाल जी सुराणा तथा माता श्रीमती ज्ञानबाई जी हैं।

आपने २० वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०३९ वैशाख शुक्ला तृतीया, सोमवार दिनांक २६ अप्रेल १९८२ को जोधपुर में तपस्विनी महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप बालक-बालिकाओं में धार्मिक संस्कार डालने हेतु प्रयत्नशील रहती हैं तथा व्याख्यात्री सती हैं।

• महासती श्री विमलावती जी म.सा.

आपका जन्म बारणी खुर्द में वि.सं. २०२० वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ। आपके पिता श्री मंगलसिंह जी भाटी तथा माता श्रीमती गीता बाई हैं।

आपने १९ वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०३९ की वैशाख शुक्ला तृतीया २४ अप्रेल १९८२ को प्रवर्तिनी

महासती श्री सुन्दरकंवर जी म.सा. की निश्रा में जोधपुर में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप सेवाभावी महासती हैं।

• महासती श्री शान्तिप्रभा जी म.सा.

आपका जन्म इंदौर में वि.सं. २०१६ भाद्रपद शुक्ला एकादशी को हुआ। आपको पिता श्रीमान् इन्द्रचन्द जी मेहता तथा माता श्रीमती चंचल बाई से बचपन में ही सुदृढ धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए।

आपने २३ वर्ष की यौवनावस्था में वि.सं. २०३९ पौष शुक्ला पंचमी १९ जनवरी १९८३ को जानकी नगर, इंदौर में सरलहृदया महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपकी आवाज स्पष्ट एवं बुलन्द है तथा प्रभावी प्रवचन करती हैं। आप सेवाभावी एवं व्याख्यात्री महासती हैं।

• महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. का जन्म कांचीपुरम (तमिलनाडु) में वि.सं. २०२१ भाद्रपद शुक्ला द्वितीया ८ सितम्बर १९६४ को हुआ। आपके पिता श्री पारसमलजी बोहरा तथा माता श्रीमती छोटी बाई हैं।

आपने १९ वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०४० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी सोमवार १९ दिसम्बर १९८३ को शासन प्रभाविका महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा. की निश्रा में मद्रास में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपकी प्रवचन शैली सरल, सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं। आपने थोकड़ों एवं शास्त्रों का बहुत अच्छा अध्ययन किया है। बजरिया सवाईमाधोपुर, गंगापुर सिटी आदि के चातुर्मास आपके नेतृत्व में सफल रहे हैं।

• महासती श्री दर्शनलता जी म.सा.

आपका जन्म वि.सं. २०२३ को शिरगुप्पा (रायचूर) में हुआ। आपके पिता श्री धनराज जी वेदमूथा तथा माता श्रीमती कान्ताबाईजी वेदमूथा थी।

आपने १७ वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०४० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की निश्रा में मद्रास में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आप सेवाभावी महासती हैं। आपने सरल हृदया महासती श्री सायरकंवर जी म.सा. की सेवा में रहकर उनकी अच्छी सेवा की है तथा अभी शासन प्रभाविका जी एवं महासती चन्द्रकला जी की सेवा में सन्नद्ध हैं।

• महासती श्री चारित्रलता जी म.सा.

आपका जन्म फाजिलाबाद (सवाई माधोपुर) में वि.सं. २०२६ फाल्गुन शुक्ला एकम ८ मार्च १९७० को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्रीमान् प्रभुदयालजी जैन तथा माता श्रीमती ताराबाईजी हैं।

आपने १४ वर्ष की वय में वि.सं. २०४० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की निश्रा में मद्रास में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने थोकड़ों एवं अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। आप मधुरभाषी एवं सेवाभावी महासती हैं।

• महासती श्री निःशल्यवतीजी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. का जन्म जोधपुर में वि.सं. २०१६ आसोज कृष्णा त्रयोदशी १ अक्टूबर १९५९ को हुआ। आपके पिता धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री भँवरलालजी सुराणा थे तथा माता श्रीमती किरणदेवीजी हैं।

आपने २५ वर्ष की युवावय में वि.सं. २०४१ चैत्र शुक्ला षष्ठी शनिवार ७ अप्रेल १९८४ को महासती श्री सायरकंवरजी म.सा. की निश्रा में नागौर में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपने थोकड़ों एवं अनेक शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया। आपके प्रवचन सरल एवं प्रभावशाली होते हैं। अभी आपने मसूदा एवं जरखोदा में दो नवदीक्षिता साध्वियों के साथ अत्यन्त सफल चातुर्मास किया है। इसके पूर्व आपके लगभग सभी चातुर्मास गुरुणीजी के साथ सम्पन्न हुए।

• महासती श्री सुश्री प्रभाजी म.सा.

आपका जन्म खाराबेरा (जोधपुर) में वि.सं. २०२३ आसोज शुक्ला नवमी १५ अक्टूबर १९६६ को हुआ। आपके पिता श्रीमान् भंवरलालजी चौपड़ा एवं माता श्रीमती बिदामकंवरजी हैं।

आपने १८ वर्ष की आयु में वि.सं. २०४१ मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी बुधवार २८ नवम्बर १९८४ को जोधपुर में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने अनेक थोकड़े एवं शास्त्रों का अभ्यास किया। आपके प्रवचन सरल एवं प्रभावी होते हैं। आप अपने अध्ययन को आगे बढ़ाने में निरन्तर सन्नद्ध हैं।

• महासती श्री विनयप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म मद्रास (चैन्नई) में वि.सं. २०१९ मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया-बुधवार १४ नवम्बर १९६२ को हुआ। आपके पिता धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् रिखबचन्दजी कांकरिया का स्वर्गवास हो गया है तथा माता सुश्राविका श्रीमती पिस्ताकंवरजी ने १२ मई २००३ को पुणे में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की है।

आपने २२ वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०४१ माघ शुक्ला दशमी को जोधपुर में विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने अनेक थोकड़े, शास्त्र व संस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया। आप मधुर-भाषी एवं सेवाभावी महासती हैं।

• महासती श्री इन्द्राप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म भनोखर (अलवर) में वि.सं. २०२१ श्रावण कृष्णा एकादशी ४ अगस्त १९६४ को हुआ। आपके पिता सुश्रावक श्री रतनलालजी जैन तथा माता श्रीमती सूरजदेवीजी थीं।

आपने २० वर्ष की युवावस्था में वि.सं. २०४१ माघ शुक्ला दशमी को जोधपुर में विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षित होकर आपने अनेक थोकड़ों एवं शास्त्रों का अभ्यास किया। आप शान्त-स्वभावी एवं सेवाभावी महासती हैं।

• महासती श्री शशिप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म सहाड़ी (अलवर) में वि.सं. २०२५ आसोज शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिता श्री स्वरूपचन्दजी जैन तथा माता श्रीमती सुशीलादेवीजी हैं।

आपने १६ वर्ष की आयु में वि.सं. २०४१ माघ शुक्ला दशमी को जोधपुर में महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा ग्रहण की।

सात वर्ष तक संयम पालन कर अन्त में आपने वि.सं. २०४८ की आसोज शुक्ला तृतीया को घोड़ों का चौक जोधपुर में संथारापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया।

• महासती श्री मुक्तिप्रभाजी म.सा.

व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभाजी म.सा. का जन्म हिण्डौन सिटी में वि.सं. २०२७ वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ। आपके पिता श्री मनोहरलालजी जैन तथा माता श्रीमती किरणदेवीजी हैं।

आपने १४ वर्ष की उम्र में वि.सं. २०४१ माघ शुक्ला दशमी को जोधपुर में विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने थोकड़े एवं अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। वर्तमान में आप विदुषी एवं व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवरजी (निर्मलावती जी) म.सा. के सान्निध्य में हैं तथा संवत् २०५८ में आपने सेन्धवा (म.प्र) में और २०५९ में लासूर स्टेशन में बहुत ही सफल स्वतन्त्र चातुर्मास किए हैं।

• महासती श्री सुमनलताजी म.सा.

आपका जन्म भोपालगढ में वि.सं. २०१८ में कार्तिक शुक्ला एकादशी को हुआ। आपके पिता श्रीमान् जवरीलालजी मुणोत तथा माता श्रीमती सुरजीबाई हैं।

आपने २५ वर्ष की युवावय में वि.सं. २०४३ वैशाख शुक्ला षष्ठी को पाली-मारवाड़ में महासती श्री तेजकंवरजी म.सा. (निर्मलावती जी म.सा.) की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आप सेवाभावी एवं व्याख्यात्री महासती हैं।

• महासती श्री सुमतिप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म नागौर में वि.सं. २०२५ मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी २८ नवम्बर १९६८ को हुआ। आपके पिता श्रीमान् मांगीलालजी सुराणा तथा माता श्रीमती ज्ञानबाई जी हैं।

आपने १८ वर्ष की वय में वि.सं. २०४३ वैशाख शुक्ला षष्ठी को पाली-मारवाड़ में तपस्विनी महासती श्री शान्तिकंवर जी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने अनेक थोकड़ों एवं शास्त्रों का अध्ययन किया है।

• महासती श्री विमलेशप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म महुआ, मण्डावर रोड़ (करौली) में हुआ। आपके पिता श्री मदनमोहनजी जैन तथा माता श्रीमती

शकुन्तलाजी जैन हैं।

आपने वि.सं. २०४६ वैशाख शुक्ला सप्तमी को मदनगंज (किशनगढ़) में महासती श्री तेजकंवरजी म.सा. (श्री निर्मलावतीजी म.सा.) की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आपकी थोकड़े सीखने-सिखाने में विशेष रुचि है।

• महासती श्री शशिकलाजी म.सा.

आपका जन्म रायचूर (कर्नाटक) में वि.सं. २०२४ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया, रविवार दिनांक १९ नवम्बर १९६७ को हुआ। आपके पिता श्री पुखराजजी बाफना तथा माता श्रीमती उमरावकंवरजी हैं। आपके माता-पिता वर्तमान में मद्रास में निवास करते हैं।

आपने २२ वर्ष की आयु में वि.सं. २०४६ माघ शुक्ला षष्ठी गुरुवार १ फरवरी १९९० को पीपाड़ शहर में शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षित होकर आपने अनेक थोकड़ों एवं शास्त्रों का अध्ययन किया है।

• महासती श्री विनीतप्रभाजी म.सा.

आपका जन्म गंगापुर सिटी (सवाईमाधोपुर) में वि.सं. २०३२ मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी को हुआ। आपके पिता श्री मनोहरलालजी जैन पल्लीवाल तथा माता श्रीमती पुष्पादेवी हैं।

आपने १४ वर्ष की आयु में वि.सं. २०४६ माघ शुक्ला षष्ठी गुरुवार १ फरवरी १९९० को शासन प्रभाविका परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की निश्रा में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

आप सेवाभावी एवं शान्त स्वभावी महासती हैं।

■

कल्याणकारी संस्थाएँ

(आचार्यप्रवर के शासनकाल में सजग एवं विवेकशील श्रावकों द्वारा संस्थापित)

युगमनीषी, युगप्रभावक, करुणासागर आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. जैन जगत् के दिव्य दिवाकर, रत्नसंघ के देदीप्यमान नक्षत्र एवं भक्त-समुदाय के महनीय भगवन्त थे। आपका जीवन ही प्रेरणा एवं हर वचन प्रमाण था। निरतिचार संयम साधक उन महासन्त ने न तो किसी संस्था के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा दी, न ही किसी संस्था के नाम अथवा संचालन से अपने आपको जोड़ा। वे अनूठे महासाधक तो संघनायक होकर भी संघ के प्रति मोह - आसक्ति से परे थे। ऐसे निस्पृह महामनीषी महापुरुष भला संस्थाओं से क्यों बंधते?

उन युगमनीषी ने भले ही किसी प्रेरणा को संस्थागत स्वरूप नहीं दिया, पर उनके श्रद्धालु भक्तों के मानस पटल पर उनके वचन प्रेरणापुंज बन गए। महिमाशाली गुरुदेव के साधक-व्यक्तित्व का उनके भक्त-समुदाय पर कैसा अनूठा प्रभाव , भगवन्त के श्रद्धानिष्ठ श्रावक भी कितने सुज्ञ, जागरूक एवं विवेकशील कि संस्थाओं के गठन व उनके सम्यक् संचालन में कभी श्रद्धेय गुरु भगवन्तों को जोड़ने की न तो कोई अपेक्षा की, न ही ऐसी कोई बालचेष्टा की। श्रद्धेय गुरुदेव के सुज्ञ भक्त भी उन करुणानिधान की पावन प्रेरणा के ही तो अंग हैं। भक्तों ने समय-समय पर संघ-संगठन, संघ-सेवा तथा प्राणिमात्र के कल्याण व सेवा की भावना से कई संस्थाओं का गठन एवं संचालन किया। यह भी उन महामनस्वी पूज्य आचार्यदेव के स्वर्णिम शासनकाल का स्वर्णिम अध्याय है, इसी दृष्टि से पूज्य भगवन्त के शासनकाल में गठित संस्थाओं का परिचय दिया जा रहा है–

(अ) ज्ञानाराधन हेतु गठित संस्थाएँ

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर

श्री जैन रत्न माध्यमिक विद्यालय, भोपालगढ़

श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर

श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ, जलगांव

श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ़

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर

आचार्य श्री शोभाचन्द्र ज्ञान भण्डार, जोधपुर

श्री जैन रत्न पुस्तकालय सिंहपोल, जोधपुर

श्री जैन रत्न पुस्तकालय, घोड़ों का चौक, जोधपुर

जैन इतिहास समिति, जयपुर

श्री महावीर जैन रत्न ग्रन्थालय, जलगांव

श्री अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद्, जयपुर

श्री कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ, बैंगलोर

श्री मध्यप्रदेश जैन स्वाध्याय संघ, इन्दौर

श्री महावीर जैन स्वाध्याय शाला , इन्दौर

श्री जैन रत्न जवाहर लाल बाफना कन्या उच्च प्राथमिक विद्यालय, भोपालगढ़

श्री कुशल जैन छात्रावास, जोधपुर

श्री महावीर जैन पाठशाला योजना, जलगांव

श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, नागौर

अनेक ग्राम नगरों में धार्मिक पाठशालाओं का संचालन

अनेक ग्राम/नगरों में पुस्तकालयों की स्थापना

(आ) साधना-आराधना हेतु गठित संस्थाएँ

अखिल भारतीय सामायिक संघ, जयपुर

साधना विभाग, जोधपुर

(इ) संघ उन्नयन हेतु गठित संस्थाएँ

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल, जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जोधपुर

विभिन्न ग्राम नगरों में श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की स्थानीय /क्षेत्रीय शाखाओं का निर्माण

(ई) समाज-सेवा के उद्देश्य से गठित संस्थाएँ

श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी, जयपुर

श्री वर्द्धमान जैन रिलीफ सोसायटी, जोधपुर

श्री महावीर जैन हॉस्पिटल, जलगांव

श्री भूधर कुशल धर्म-बन्धु कल्याण कोष, जयपुर

बाल शोभा संस्थान, जोधपुर

स्वधर्मी सहायता कोष, जलगाँव

श्री महावीर रत्न कल्याण कोष, सवाईमाधोपुर

श्री महावीर जैन कुशल सेवा समिति, बैंगलोर

आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के दिवंगत होने के पश्चात् गठित संस्थाएँ

१. श्री जैन रत्न छात्रावास, पाली-मारवाड़

२. आचार्य श्री हस्ती मेडिकल रिलीफ सोसायटी, सवाई माधोपुर

३. अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

४. आचार्य श्री हस्ती निःशुल्क होम्योपैथी चिकित्सालय, किशनगढ़

५. आचार्य श्री हस्ती अहिंसा कार्यकर्ता अवार्ड योजना, जलगाँव

६. गजेन्द्र निधि ट्रस्ट, मुम्बई

७. गजेन्द्र फाउण्डेशन , मुम्बई

८. शरदचन्द्रिका मोफतराज मुणोत वात्सल्यनिधि, मुम्बई

(अ) ज्ञानाराधन हेतु गठित संस्थाएँ

• **सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल,** बापू बाजार, जयपुर ३०२००३ फोन नं. ०१४१-२५६५९९७

परमप्रतापी महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. की स्वर्गवास शताब्दी के पुनीत अवसर पर विक्रम संवत् २००२ में ज्ञान और साधना की विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालन हेतु सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना हुई। प्रारम्भ में इसका कार्यालय जोधपुर में था, फिर कुछ वर्षों में ही जयपुर स्थानान्तरित हो गया। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं--

१. जिनवाणी मासिक पत्रिका का प्रकाशन - जैन धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास एवं आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की वाहक 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका का विगत ६० वर्षों से निरन्तर प्रकाशन हो रहा है। पत्रिका के प्रकाशन की रूपरेखा आचार्यप्रवर के लासलगांव चातुर्मास संवत् १९९९ में पं. दुःखमोचन जी झा के निर्देशन में तैयार हुई तथा प्रकाशन का शुभारम्भ श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ से पौष शुक्ला पूर्णिमा संवत् १९९९ तदनुसार जनवरी १९४३ में हुआ। तदनन्तर अक्टूबर १९४८ से इसका प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के जोधपुर कार्यालय से श्री विजयमलजी कुम्भट एवं श्री माधोमलजी लोढा की व्यवस्था एवं देखरेख में हुआ। संवत् २०११ में आचार्यप्रवर का चातुर्मास जयपुर में था। श्रावकों ने जोधपुर की अपेक्षा प्रदेश की राजधानी जयपुर में अधिक सुविधा को दृष्टिगत रखकर जिनवाणी कार्यालय जयपुर में स्थानान्तरित कर दिया। उसके पश्चात् अगस्त १९५४ से यह पत्रिका जयपुर स्थित सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल कार्यालय द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है। जयपुर के सर्व श्री उमरावमल जी सेठ, श्री सिरहमल जी बम्ब, श्री पूनमचन्दजी बडेर, श्री उग्रसिंह जी बोथरा, श्री नथमलजी हीरावत, श्री टीकमचन्दजी हीरावत के साथ समाज के अनेक महानुभावों ने इसके नियमित संचालन में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग प्रदान किया। प्रारम्भ में यहां श्री भंवरलाल जी बोथरा ने कुशलतापूर्वक जिनवाणी का कार्य सम्हाला। न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथजी मोदी, न्यायमूर्ति श्री सोहननाथ जी मोदी की प्रेरणा सदा बनी रही।

प्रारम्भिक अवस्था में जिनवाणी मासिक पत्रिका को प्रतिष्ठित करने का दायित्व बहुत बड़ा था, परन्तु श्रावकों के धैर्य एवं निष्ठा ने विघ्नबाधाओं एवं विपदाओं का दृढता से सामना किया। परिणामस्वरूप यह पत्रिका सन्

१९४३ से निरन्तर प्रकाशित हो रही है। जैन पत्रिकाओं में जिनवाणी का विशिष्ट स्थान है। पत्रिका की मुख्य विशेषता है कि यह सभी सम्प्रदायों की भावनाओं का आदर करते हुए एक सकारात्मक एवं नई सोच प्रदान करती है। इसमें प्रकाशित सामग्री बाल, युवा एवं वृद्ध सभी को सजीव चिन्तन प्रदान करती है। नवम्बर - दिसम्बर १९५५ का दीपावली विशेषाङ्क , मई १९५६ का भीनासर सम्मेलन विशेषाङ्क प्राचीन प्रसिद्ध विशेषाङ्क रहे। जिनवाणी पत्रिका के अब तक १६ विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं– स्वाध्याय विशेषांक (सन् १९६४), सामायिक विशेषाङ्क (१९६५), तप-विशेषाङ्क (१९६६), श्रावकधर्म विशेषाङ्क (१९७०), साधना विशेषाङ्क (१९७१), ध्यान विशेषाङ्क (१९७२), जैन संस्कृति और राजस्थान (१९७५), कर्मसिद्धान्त-विशेषाङ्क (१९८४), श्रावक धर्म और समाज विशेषाङ्क (१९८५), अपरिग्रह विशेषाङ्क (१९८६), आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. श्रद्धांजलि अंक (१९९१), आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (१९९२), अहिंसा विशेषाङ्क (१९९३), सम्यग्दर्शन विशेषाङ्क (१९९६), क्रियोद्धार चेतना अङ्क (१९९७), जैनागम-साहित्य विशेषाङ्क (२००२) ।

जिनवाणी पत्रिका के प्रथम सम्पादक डॉ. फूलचन्दजी जैन 'सारङ्ग' थे। श्री चम्पालालजी कर्नावट, श्री केशरी किशोरजी नलवाया, श्री चांदमलजी कर्णावट, श्री पारसमलजी प्रसून , पं. रतनलालजी संघवी, श्री शान्तिचन्द्रजी मेहता, श्री मिट्ठालाल जी मुरड़िया, पं. शशिकान्त जी झा आदि विभिन्न विद्वानों के सम्पादकत्व में विकसित इस पत्रिका का दिसम्बर सन् १९६७ से नवम्बर सन् १९९३ तक कुशल सम्पादन हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं जैन धर्म के विद्वान् डॉ. नरेन्द्र जी भानावत के हाथों हुआ। इस अवधि में पत्रिका को अच्छी लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा मिली। डॉ. (श्रीमती) शान्ता जी भानावत का भी सम्पादन में पूर्ण सहयोग मिला। अक्टूबर १९९४ से इस पत्रिका का सम्पादन डॉ. धर्मचन्द जैन, एसोशिएट प्रोफेसर, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर कर रहे हैं। जिनवाणी पत्रिका के प्रचार-प्रसार में श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी, श्री देवराजजी भण्डारी का योगदान उल्लेखनीय रहा। श्री मोतीलालजी मुथा सतारा, श्री गुलराज जी अब्बाणी जोधपुर, श्री केवलमलजी लोढा जयपुर एवं श्री सरदारचन्दजी भण्डारी जोधपुर ने भी अच्छा सहयोग प्रदान किया। शासन सेवा समिति के सदस्य श्री विमलचन्द डागा, जयपुर पत्रिका के सुचारु संचालन में समर्पित भाव से सन्नद्ध हैं।

प्रारम्भ में यह पत्रिका २४ एवं फिर ३२ पृष्ठों में प्रकाशित होती थी। अब ८० पृष्ठों में प्रकाशित इस पत्रिका में प्रवचन, निबन्ध-विचार, आगम-परिचय, कथा, कविता, प्रेरक-प्रसंग आदि विविध रचनाओं के अतिरिक्त साहित्य-समीक्षा, सम्पादकीय एवं समाचार-स्तम्भ भी नियमित रूप से उपलब्ध रहते हैं। पत्रिका की वर्तमान में स्तम्भ सदस्यता ११०००/- रुपये, संरक्षक सदस्यता ५००० रुपये, एवं आजीवन सदस्यता ५०० रुपये है। विदेश में आजीवन सदस्यता १०० डालर में प्रदान की जाती है।

(२) **स्वाध्याय शिक्षा का प्रकाशन** - यह द्वैमासिक पत्रिका प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित लेखों के माध्यम से स्वाध्यायियों और जिज्ञासुओं के ज्ञानवर्धन में सहायक सिद्ध हुई है। इस पत्रिका का लक्ष्य प्राकृत एवं संस्कृत भाषा का अभ्यास बढ़ाना भी है।

पत्रिका का प्रारम्भ सन् १९८६ में श्री श्रीचन्द सुराना सरस के सम्पादन में हुआ तथा १९८९ से इसके सम्पादन का कार्य डॉ. धर्मचन्द जैन ने सम्हाला। इस पत्रिका के अब तक ४५ अंक प्रकाशित हो चुके हैं तथा १९ वां अंक 'आचार्य श्री हस्तीमलजी म. स्मृति अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ है, जिसमें प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी लेखों के अतिरिक्त संघ की विभिन्न संस्थाओं का परिचय भी दिया गया है। स्वाध्याय-शिक्षा पत्रिका ने विद्वद्वर्ग एवं

स्वाध्यायी-वर्ग में लोकप्रियता अर्जित की है। इसका ४५ वां अंक 'जैनागम-विशेषाङ्क' सर्वत्र समादृत हुआ है।

(३) साहित्य प्रकाशन – आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. का सत्साहित्य के स्वाध्याय पर विशेष बल था। सत्साहित्य मनुष्य का सच्चा मार्गदर्शक होता है। जह मनुष्य को बाहरी चकाचौंध, विषम वासनाओं एवं आसक्ति से दूर रखकर समता, शान्ति एवं आत्म बल का संचार करता है। इसी लक्ष्य से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा साहित्य का प्रकाशन किया जाता है।

मण्डल द्वारा प्रकाशित साहित्य में प्रमुख है–उत्तराध्ययन सूत्र (संस्कृत छाया, हिन्दी-विवेचन एवं पद्यानुवाद सहित)-तीन भाग, दशवैकालिक सूत्र (संस्कृत छाया, हिन्दी-विवेचन एवं पद्यानुवाद सहित), अंतगडदसा सूत्र, आध्यात्मिक आलोक, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग १-७, उपमिति भवप्रपंच कथा, अहिंसा : विचार और व्यवहार, अपरिग्रह : विचार और व्यवहार, जैनागम के स्तोक रत्न, जैनदर्शन आधुनिक दृष्टि, जैन आचार्य चरितावली, सम्यग्दर्शन : शास्त्र और व्यवहार, निर्ग्रन्थ भजनावली, रत्नवंश के धर्माचार्य, पथ की रुकावटें, जैन तमिल साहित्य और तिरुकुरल, पर्युषण पर्वाराधन, सकारात्मक अहिंसा, व्रत-प्रवचन संग्रह, हीरा प्रवचन-पीयूष आदि। जैन धर्म का मौलिक इतिहास के चारों भागों का भी प्रकाशन अब मण्डल द्वारा किया जा रहा है।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल द्वारा प्रकाशित साहित्य की आजीवन सदस्यता राशि मात्र १००० रुपये है।

(४) जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर का संचालन - जैन विद्या के विद्वान् तैयार करने की दृष्टि से यह संस्था सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के द्वारा जयपुर में संचालित है, जिसमें आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है तथा धार्मिक व शास्त्रीय अध्ययन के साथ विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के व्यावहारिक शिक्षण का भी प्रावधान है। (विशेष परिचय अलग से दिया गया है)

(५) श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ का संचालन - सन्त-सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में स्वाध्यायी भेजकर पर्युषण पर्वाराधन कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य स्वाध्याय संघ द्वारा संचालित किया जाता है। विभिन्न प्रकार के शिविरों एवं प्रचार-प्रसार कार्यक्रम के माध्यम से स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाता है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है। (विशेष परिचय अलग से दिया गया है)

(६) आचार्य श्री हस्ती-स्मृति-सम्मान आदि तीन सम्मान - मण्डल द्वारा तीन प्रकार के सम्मान प्रतिवर्ष दिये जाते हैं।

(अ) **आचार्य श्री हस्ती-स्मृति-सम्मान** - यह विद्वानों को उनकी श्रेष्ठकृति के आधार पर दिया जाता है।

(ब) **विशिष्ट स्वाध्यायी सम्मान**-यह सम्मान प्रतिवर्ष एक विशिष्ट स्वाध्यायी को दिया जाता है।

(स) **युवा प्रतिभा शोध-साधना-सेवा-सम्मान** - यह सम्मान शोध, साधना एवं सेवा के क्षेत्र में प्रतिभाशाली युवा को प्रदान किया जाता है।

सम्मान के लिए नामों का चयन निर्णायक मण्डल द्वारा किया जाता है। आचार्य श्री हस्ती स्मृति-सम्मान के मुख्य निर्णायक प्रोफेसर कल्याणमल जी लोढा हैं।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के विकास में न्यायमूर्ति स्व. श्री इन्द्रनाथ जी मोदी, स्व. श्री सिरहमलजी बम्ब, न्यायमूर्ति स्व. श्री सोहननाथ जी मोदी, स्व. श्री श्रीचन्दजी गोलेछा, स्व. श्री उमरावमलजी ढड्ढा, श्री नथमलजी हीरावत, श्री डी. आर. मेहता, डॉ. सम्पतसिंह जी भाण्डावत, श्री मोफतराज जी मुणोत, स्व. श्री सिरहमलजी नवलखा, श्री

कनकमलजी चोरड़िया, श्री पूनमचन्दजी बडेर, श्री चन्द्रराजजी सिंघवी, श्री टीकमचन्दजी हीरावत, स्व. श्री मोतीचन्दजी कर्णावट, स्व. श्री सज्जननाथजी मोदी, श्री चैतन्यमलजी ढड्ढा, श्री चेतनप्रकाशजी डूंगरवाल, श्री सुमेरसिंह जी बोथरा, श्री विमलचन्दजी डागा, श्री ईश्वरलाल जी ललवाणी , श्री पदमचन्दजी कोठारी, श्री प्रकाशचन्दजी कोठारी, श्री प्रकाशचन्द जी डागा आदि की सेवाएँ सदैव उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय हैं।

- श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर

आचार्यप्रवर का यह दूरदर्शी चिन्तन था कि सन्त-सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण के आठ दिनों में धर्माराधन कराने वाले ऐसे स्वाध्यायी तैयार हों जो सूत्रवाचन, प्रतिक्रमण, प्रवचन या भजन-गायन आदि में निष्णात होने के साथ साधनाशील जीवन जीते हों। आचार्य श्री के इस चिन्तन का ही मूर्त रूप है श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर। संवत् २००२ में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्तर्गत स्वाध्यायियों को पर्युषण में धर्माराधन कराने हेतु ग्रामानुग्राम भेजने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई, जिसमें सर्वप्रथम पाँच स्थानों पर स्वाध्यायियों को भेजा गया।

संवत् २०१५ तक यह प्रवृत्ति शैशवावस्था में चलती रही। संवत् २०१६ में स्वाध्याय प्रवृत्ति को सुदृढ रूप से संचालित करने हेतु श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर की स्थापना की गई। स्वाध्याय संघ के अन्तर्गत पर्युषण-सेवा के साथ धार्मिक शिक्षण-शिविर, धार्मिक पाठशाला आदि के कार्यक्रम भी जुड़े।

स्वाध्याय-संघ के उन्नयन में श्री सरदारचन्दजी भण्डारी, श्री पदमचन्दजी मुणोत, श्री प्रसन्नचन्दजी बाफना, श्री सम्पतराजजी डोसी का संयोजक के रूप में तथा श्री चंचलमलजी चोरड़िया एवं श्री अरुणजी मेहता का सचिव के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान में रिखबचन्दजी मेहता इसके सचिव एवं श्रीमती सुशीलाजी बोहरा संयोजक हैं।

स्वाध्याय-संघ की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

(१) पर्युषण सेवा - देश एवं विदेश के उन क्षेत्रों में जहां सन्त एवं महासती वृन्द का चातुर्मास न हो, पर्युषण काल में वहां पर धर्माराधन हेतु स्वाध्यायियों को भेजना स्वाध्याय-संघ की प्रमुख प्रवृत्ति है। वर्तमान में इस संघ में ८३० स्वाध्यायी हैं जिनमें से लगभग ४०० स्वाध्यायी प्रतिवर्ष पर्युषणसेवा प्रदान कर रहे हैं। अनेक स्वाध्यायी ऐसे भी हैं जो व्यावहारिक जगत में न्यायाधिपति, सी.ए., इंजीनियर, प्रोफेसर, प्रशासनिक अधिकारी, एडवोकेट, उद्योगपति, व्यापारी, व्याख्याता, अध्यापक आदि प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों के साथ विदेश में भी स्वाध्यायी अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

(२) स्वाध्याय-प्रशिक्षण शिविर - स्वाध्यायी तैयार करने एवं उनमें ज्ञानवृद्धि करने हेतु स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविरों का समय-समय पर आयोजन किया जाता है।

(३) स्थानीय शिविर - प्रत्येक ग्राम एवं नगर में स्वाध्याय तथा सामायिक का शंखनाद करने एवं आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न करने हेतु स्थानीय स्तर पर धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाता है।

(४) धार्मिक पाठशाला - बालक-बालिकाओं को नैतिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुसंस्कारित करने के उद्देश्य से इस संस्था द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर धार्मिक पाठशालाओं का संचालन मुणोत फाउण्डेशन मुम्बई के आर्थिक

सौजन्य से किया जाता है।

(५) **धार्मिक प्रचार-प्रसार कार्यक्रम** - स्वाध्यायियों से व्यक्तिगत सम्पर्क कर ज्ञानवर्धन एवं सदाचरण की प्रेरणा प्रदान करने तथा जन साधारण को सामायिक व स्वाध्याय की प्रवृत्ति से जोड़ने के लिये समय-समय पर प्रचार-प्रसार यात्राओं का आयोजन किया जाता है। यह कार्यक्रम सन् १९८७ से निरन्तर चल रहा है।

(६) **स्वाध्यायी परीक्षा** - स्वाध्यायियों द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन करने हेतु षड्वर्गीय स्वाध्यायी परीक्षाएँ वर्ष १९९३ से विभिन्न केन्द्रों पर आयोजित होती थी। अब दो वर्षों से ये परीक्षाएँ अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई हैं।

स्वाध्याय-संघ के द्वारा पत्राचार पाठ योजना, आगम-आराधना प्रोत्साहन योजना एवं अर्धमूल्य पर साहित्य-वितरण जैसे कार्यक्रम भी संचालित किए जाते हैं। मण्डल से प्रकाशित 'स्वाध्याय शिक्षा' पत्रिका स्वाध्याय संघ के लक्ष्य को ही पूरा करती है।

स्वाध्याय संघ जोधपुर की सम्प्रति ५ शाखाएँ हैं—

१. सवाईमाधोपुर - इस शाखा की स्थापना सन् १९७४ में हुई। पोरवाल क्षेत्रीय शाखा सवाई माधोपुर का देश में महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमें लगभग १५० स्वाध्यायी हैं।

इस शाखा के संयोजक का कार्य श्री रूपचन्दजी जैन बजरिया एवं श्री चौथमलजी जैन अध्यापक ने कुशलतापूर्वक वहन किया। वर्तमान में श्री पदमचन्दजी जैन इसके संयोजक हैं।

२. उदयपुर - मेवाड़ क्षेत्र के स्वाध्यायियों को सक्रिय एवं संगठित बनाने हेतु सन् १९७५ में मेवाड़ शाखा उदयपुर का शुभारम्भ हुआ। श्री फूलचन्दजी मेहता प्रारम्भ से ही इस साखा के संयोजक हैं तथा इस शाखा में लगभग ८० स्वाध्यायी हैं।

३. अलवर - पल्लीवाल क्षेत्र के स्वाध्यायी पहले पोरवाल क्षेत्र की शाखा सवाई माधोपुर के अन्तर्गत क्रियाशील थे, किन्तु कार्याधिक्य को देखते हुए सितम्बर १९८२ में पल्लीवाल क्षेत्रीय शाखा का शुभारम्भ अलवर में वीरपिता श्री सूरजमल जी जैन के संयोजकत्व में किया गया। इस शाखा के सक्रिय स्वाध्यायी ३२ हैं तथा वर्तमान में संयोजक श्री छगनलाल जी जैन हैं।

४. जलगांव - आचार्यप्रवर के सन् १९७९ के जलगांव चातुर्मास में ८ जुलाई १९७९ को महाराष्ट्र जैन स्वाध्याय संघ, जलगांव की स्थापना हुई। प्रारम्भ से ही इसके संयोजक श्री प्रकाशचन्दजी जैन हैं। इस शाखा के सक्रिय स्वाध्यायी लगभग १४० हैं।

५. जयपुर - जयपुर क्षेत्र की शाखा का प्रारम्भ सन् १९८३ में हुआ, जिसमें अभी ४५ स्वाध्यायी हैं। इस शाखा के संयोजक के रूप में श्री केवलमल जी लोढा एवं श्री हीराचन्दजी हीरावत की सेवाएँ प्रशंसनीय रहीं। वर्तमान में श्री राजेन्द्र जी पटवा शाखा के संयोजक हैं।

• **श्री जैन रत्न माध्यमिक विद्यालय,** भोपालगढ़, जिला-जोधपुर (राज.)

जोधपुर जिले के प्रमुख धार्मिक क्षेत्र बडलू (वर्तमान नाम भोपालगढ़) की भूमि उर्वरा रही है, जहाँ महाप्रतापी क्रियोद्धारक आचार्यप्रवर श्री रत्नचंदजी म.सा. ने क्रियोद्धार किया। विगत दो सौ वर्षों से भी अधिक समय से यह पावन भूमि रत्नवंश परम्परा के आचार्य भगवंतों के प्रति पूर्णतः समर्पित रही है एवं रत्नवंश की श्रावक-परम्परा में व

चतुर्विध संघ की सेवा में यहाँ के श्रावक समुदाय का अग्रगण्य योगदान रहा है।

इसी ग्राम में 'श्री जैन रत्न विद्यालय' रूपी कल्पवृक्ष की स्थापना १५ जनवरी १९२९ को हुई जहाँ से अद्यावधि सहस्रों छात्रों ने शिक्षा व संस्कार प्राप्त कर भारत के कोने-कोने में अपना, अपने गुरुजनों व इस विद्यालय का नाम उज्ज्वल किया है। विद्यालय का स्नातक होना ही अपने आप में प्रमाण-पत्र बन गया, ऐसी प्रभावी यहाँ की शिक्षा व दृढ़ संस्कार रहे हैं।

विद्यालय श्री जैन रत्न पौषधशाला भवन में संचालित है, जिसके लिये ३४००० वर्ग गज से भी अधिक जमीन भोपालगढ़ के शिक्षाप्रेमी महामहिम महाराजाधिराज श्री कानसिंह जी साहिब द्वारा प्रदान की गई। भवन निर्माण में उदारमना सुश्रावक श्री भीकमचन्दजी विजयराजजी सा कांकरिया, शिक्षाप्रेमी क्रान्तिकारी विचारों के धनी श्री राजमलजी लखीचंदजी ललवानी (जामनेर) का प्रमुख योगदान रहा। विद्यालय के विकास में सर्वश्री सूरजराजजी बोथरा, श्री किशनचन्दजी मुथा, श्री जालमचन्दजी बाफना, श्री गजराजजी ओस्तवाल, श्री मोतीलालजी मुथा (सतारा), श्री लालचंदजी मुथा (गुलेजगढ़) , श्री जबरचंदजी छाजेड़, श्री आनन्दराजजी सुराणा (जोधपुर), श्री इन्द्रमलजी गेलडा (मद्रास), श्री इन्द्रचन्दजी ललवाणी (नाचणखेड़ा), श्री विजयमलजी कुम्भट (जोधपुर), श्री रतनलालजी नाहर (बरेली) , श्री रतनलाल जी बोथरा , श्री पारसमलजी बाफना , श्री सायरचन्दजी कांकरिया, श्री सुगनचन्दजी कांकरिया, श्री सुगनचन्दजी ओस्तवाल, श्री रिखबराजजी कर्णावट, श्री अनराजजी बोथरा, श्री मूलचन्दजी बाफना, श्री अनराजजी कांकरिया, श्री किस्तूरचन्दजी बाफना आदि सुज्ञ श्रावकगण की महनीय भूमिका रही है। वर्तमान में विद्यालय का कुशल संचालन अध्यक्ष के रूप में श्रीमान् सूरजराजजी ओस्तवाल संभाल रहे हैं।

पण्डित श्री भीकमचन्दजी विद्यालय के प्रथम प्रधानाध्यापक थे। तदनन्तर श्री सूर्यभानुजी भास्कर, श्री रतनलाल जी संघवी, श्री फूलचन्दजी जैन सारंग, श्री चन्द्र ईश्वरदत्तजी शास्त्री, श्री केशरीकिशोरजी नलवाया, श्री विश्वप्रकाशजी बटुक, श्री देशनाथजी रेला, श्री चांदमलजी कर्णावट, श्री पारसमलजी प्रसून आदि की सेवाएं सराहनीय रहीं। वर्तमान में श्री राणीदानजी भाकर के प्रधानाध्यापकत्व में विद्यालय अग्रसर है।

विद्यालय में शिक्षा के साथ संस्कार, साहित्य व धर्म का समुचित ज्ञान छात्रों को प्राप्त होता रहा है। यहाँ के छात्र शिक्षा के साथ सदा साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधियों से जुड़े रहे हैं। व्यावहारिक शिक्षा के साथ साथ पाथर्डी बोर्ड से धार्मिक परीक्षाओं व हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से हिन्दी की परीक्षाओं के आयोजन की विद्यालय में सदा व्यवस्था रही है।

विद्यालय सम्प्रति माध्यमिक विद्यालय के रूप में गतिमान है। बाहर के छात्रों के आवास व भोजन की व्यवस्था हेतु 'जैन रत्न छात्रावास' विद्यालय के एक अंग के रूप में संचालित है। विद्यालय का परीक्षा परिणाम लगभग शत प्रतिशत रहता है। यहाँ के कई स्नातकों ने उच्च शिक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर विद्यालय का मान बढ़ाया है। सांस्कृतिक गतिविधियों में पारंगत यहाँ के कई स्नातक संघ के कार्यकर्ताओं व स्वाध्यायी श्रावकों के रूप में समाज की महनीय सेवा कर रहे हैं।

विद्यालय परिवार रत्नवंश परम्परा के श्रावकों द्वारा संचालित विभिन्न संस्थाओं से सदा अभिन्न रूप से जुड़ा रहा है। इसी प्रांगण में आचार्य भगवन्त श्री रत्नचंदजी म.सा. की शताब्दी मनाई गई। उस अवसर पर 'सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल' की स्थापना हुई। जैन जगत की अग्रगण्य पत्रिका 'जिनवाणी' का विद्यालय संस्थापक है व कई वर्षों तक इसका संचालन यहीं से होता रहा, ग्राम्य क्षेत्र में प्रकाशन संबंधी असुविधाओं के मद्देनजर इसे जोधपुर व फिर

जयपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। स्वाध्याय संघ के स्थापना-काल से ही सर्वप्रथम स्वाध्यायी बनने वालों में यहाँ के स्नातक श्री रिखबराजजी कर्नावट हैं तो संघ-संरक्षक माननीय श्री चांदमलजी सा कर्नावट, संघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री रतनलालजी बाफना , रत्नवंशीय शासनसेवा समिति के सदस्य श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना, श्री प्रसन्नचंद जी बाफना आदि इसी विद्यालय के गौरवशाली स्नातक हैं।

• श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर

संस्कृत, प्राकृत , दर्शन व न्याय के ज्ञाता जैन धर्म-दर्शन के मर्मज्ञ विद्वानों की कमी दूर करने के महान् लक्ष्य से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल के अन्तर्गत, जयपुर में १६ नवम्बर १९७३ को इस संस्थान की स्थापना की गई एवं इसके अधिष्ठाता पद का महनीय दायित्व जैन धर्म एवं दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्री कन्हैयालालजी लोढा को सौंपा गया।

यह एक आवासीय शिक्षण संस्थान है, जहाँ प्रतिभाशाली छात्रों के लिये जैनधर्म, दर्शन, प्राकृत व संस्कृत भाषा के अध्ययन, आवास व भोजन की समीचीन व्यवस्था है, साथ ही छात्रों का भविष्य सुरक्षित रहे, इस हेतु वे राजस्थान विश्वविद्यालय की स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर सकें, ऐसा प्रावधान है। संस्थान में अब तक ९० छात्रों ने प्रवेश लिया है जिनमें से ५० छात्रों ने धार्मिक-शिक्षण में विशेष योग्यता अर्जित की है। वर्तमान में संस्थान में ११ छात्र अध्ययनरत हैं। संस्थान के छात्र अहमदनगर पाथर्डी की विशारद से आचार्य तक धार्मिक परीक्षाएँ तथा समता भवन, बीकानेर की परीक्षाएँ अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करते रहे हैं। अब संस्थान का अपना पाठ्यक्रम है। यहाँ छात्रों की दिनचर्या एवं अनुशासन पर पूरा ध्यान दिया जाता है। संस्थान का प्रारम्भ रामललाजी के रास्ते स्थित बड़ी गुवाड़ी में हुआ था, जो सन् १९७७ में बजाजनगर में अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के पूर्व अध्यक्ष श्री लाभचन्दजी लोढा के द्वारा अपने लघु भ्राता श्री विजयमलजी लोढा की स्मृति में निर्मित भवन (साधना-भवन) में स्थानान्तरित हो गया।

संस्थान के प्रतिभाशाली स्नातकों में डॉ. धर्मचन्द जैन (सम्प्रति एसोशियेट प्रोफेसर-संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर), श्री गौतमचन्द जैन (जिला रसद अधिकारी), श्री जम्बूकुमार जैन (लेखाकार राजस्थान सरकार), श्री पारसमल चौधरी (सी.ए.) , श्री धर्मेन्द्र कुमार जैन (व्याख्याता), श्री अशोक कुमार जैन (श्रम निरीक्षक), श्री अशोक कुमार जैन (निजी सहायक), श्री पवनकुमार जैन (आर.पी.एस.), श्री सुशील कुमार जैन (व्याख्याता), श्री हेमन्त कुमार जैन (व्याख्याता) आदि प्रमुख हैं। यहाँ से निकले कई छात्र सी.ए. हैं। संस्थान के विकास में उदारमना सुश्रावक श्री इन्दरचन्दजी हीरावत, प्रखर चिन्तक श्री श्रीचन्दजी गोलेछा, संघ-संरक्षक श्री नथमलजी हीरावत, श्री टीकमचन्दजी हीरावत, माननीय श्री डी.आर. मेहता सा. का विशिष्ट सहयोग व मार्गदर्शन रहा है। वर्तमान में वरिष्ठ स्वाध्यायी श्रीमती शान्ता जी मोदी का मार्गदर्शन प्राप्त है। श्री जम्बू कुमार जी जैन एवं श्री सुशील कुमार जी जैन अपनी अध्यापन सेवाएँ दे रहे हैं।

• श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ, भीकमचन्द नगर, पिंप्राला रोड़, जलगाँव

सम्राट् सम्प्रति ने देश-विदेश में जिन-धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु अपने विपुल वैभव का उपयोग कर जिन शासन की महती प्रभावना की। युगमनीषी इतिहास मार्तण्ड, परम पूज्य आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के जलगांव वर्षावास में यह इतिहास बोध प्राप्त कर कर्मशील जनप्रिय राजनेता एवं उदारमना श्रीमन्त श्रेष्ठिवर्य श्री

सुरेश दादा जैन के मन में एक तरंग उठी- मुझे परम पूज्य आचार्य भगवन्त जैसे गुरु मिले, मैं भी कोई ऐतिहासिक कार्य कर जिन शासन की सेवा करूं। आचार्य भगवन्त के प्रति पूर्ण समर्पित अनन्य गुरुभक्त इस जुझारू व्यक्तित्व के संकल्प का ही परिणाम था — २५ अक्टूबर १९७९ को इस विद्यापीठ की स्थापना ।

विद्यापीठ की स्थापना के मुख्य उद्देश्य थे-

१. जैनधर्म-दर्शन के विद्वान् तैयार करना।

२. धार्मिक पाठशालाओं के संचालन व धर्म-प्रचारार्थ सेवा देने वाले अध्यापक तैयार करना।

३. पर्युषण पर्वाराधन कराने वाले सुयोग्य स्वाध्यायी तैयार करना।

विद्यापीठ में इस समय दो योजनाओं के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है।

(१) न्यूनतम दसवीं उत्तीर्ण छात्रों को ४ वर्ष तक विद्यापीठ में रखकर धार्मिक अध्ययन की व्यवस्था है। अध्येता छात्रों के लिये भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था के साथ ही माहवार छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् समाज सेवा में सर्विस की गारण्टी भी प्रदान की जाती है।

(२) अंशकालिक धार्मिक अध्ययन के इच्छुक छात्रों को कक्षा सात से प्रवेश दिया जाता है। इन छात्रों के लिये नियमित शैक्षणिक अध्ययन के साथ प्रतिदिन २ घण्टे धार्मिक शिक्षण आवश्यक है।

विद्यापीठ में अध्येता छात्रों के लिये दोनों समय प्रार्थना, दैनिक सामायिक एवं साप्ताहिक व पाक्षिक प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, रात्रि भोजन एवं जमीकन्द का उपयोग निषिद्ध है। प्रति रविवार जलगांव में विराजित सन्त-सती वृन्द के दर्शन करना भी छात्रों के लिये आवश्यक व्यवस्था है।

विद्यापीठ के माध्यम से अभी तक २०विद्वान् अध्यापक तैयार हो चुके हैं, जो देश के विभिन्न भागों में समाज को अपनी सेवाएं दे रहे हैं। संस्थान में अभी १२ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं । संस्थान का सम्पूर्ण व्ययभार स्थापना काल से ही उदारमना श्रीमन्त श्रावक श्री सुरेश दादा जैन द्वारा ही वहन किया जा रहा है। सुदीर्घकाल से श्री प्रकाशचन्दजी जैन इसके प्राचार्य के रूप में अपनी महनीय सेवाएँ दे रहे हैं।

- **श्री सागर जैन विद्यालय,** किशनगढ़

प्रातः स्मरणीय आचार्यप्रवर पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. के सुशिष्य दृढ़ आत्मबली प्रशान्तात्मा श्रद्धेय श्री सागरमलजी म.सा. के ५९ दिवसीय संथारा की स्मृति में श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ़ की स्थापना हुई, जो सम्प्रति उच्च प्राथमिक विद्यालय के रूप में कार्यरत है। विद्यालय में लगभग ३५० छात्र अध्ययनरत हैं। शिक्षा के साथ संस्कारों के बीजारोपण हेतु विद्यालय में प्रतिदिन नवकार मंत्र के पठन व प्रार्थना से ही शैक्षणिक कार्य प्रारंभ होता है।

- **आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार,** लालभवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

परम पूज्य आचार्य भगवन्त की प्रेरणा से वि.सं. २०१६ में लालभवन स्थित पुरातन हस्तलिखित ग्रंथों को संभाल कर सुव्यवस्थित किया गया। हस्तलिखित ग्रन्थ एवं पुरातत्त्व सामग्री जैन इतिहास की एक अनमोल थाती व पीढियों की धरोहर है जिसे संभालना आवश्यक है , इस पुनीत भावना से पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के जन्म-दिवस पर जयपुर के श्रद्धालु भक्तगण ने संवत् २०१६ में इस सामग्री को एक व्यवस्थित रूप देते हुए इस ज्ञान

भंडार की स्थापना की एवं इसका नामकरण रत्नवंश परम्परा के पंचम पट्टधर बहुश्रुत आगममहोदधि आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री विनयचंदजी म.सा. (जिनका सुदीर्घ अवधि तक जयपुर स्थिरवास विराजना रहा) की स्मृति में किया गया। सुश्रावक श्री सोहनमलजी कोठारी ने अपनी निःस्वार्थ महनीय सेवाएं देकर ज्ञान-भण्डार को व्यवस्थित करने में अप्रतिम योगदान किया। उनके स्वर्गस्थ होने के पश्चात् श्री श्रीचन्दजी गोलेछा एवं तदनन्तर श्री नथमलजी हीरावत इसकी व्यवस्था देखते रहे हैं। श्री बाबूलालजी जैन वर्तमान में इसके व्यवस्थापक हैं।

भंडार में इस समय लगभग २५००० ग्रंथों का विशाल संग्रह है। ये ग्रंथ १२ वीं शती से लेकर १९ वीं शती के कालखण्ड को अपने में समेटे हुए हैं। इनमें कुछ ताड़पत्र, भोजपत्र व सचित्र ग्रंथ भी हैं, जो अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। व्यक्तिगत संग्रहों से प्राप्त ग्रन्थों से भण्डार की समृद्धि होती रही। भंडार के संग्रहालय के मुख्य तीन विभाग हैं–

१- हस्तलिखित ग्रन्थागार

२- अलभ्य चित्रावली

३- दुर्लभ प्रकाशित ग्रन्थ

इस ज्ञान भण्डार में विभिन्न धर्म-दर्शन, इतिहास, संस्कृति आदि से सम्बद्ध लगभग ८५०० प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध हैं , जिनके अध्ययन का लाभ विश्वविद्यालय के शोधार्थी छात्र भी लेते रहते हैं। जयपुर शहर में यह अपने आपमें विशिष्ट पुस्तकालय है। इस ज्ञानभण्डार के निदेशक डॉ. नरेन्द्र जी भानावत के निर्देशन में सूचीपत्र का प्रकाशन भी हुआ है।

- **आचार्य श्री शोभाचन्द्र ज्ञान भण्डार ,** जोधपुर

जोधपुर के घोड़ों का चौक स्थित इस ज्ञान भण्डार में हस्तलिखित ग्रन्थों , पाण्डुलिपियों एवं पुट्ठों का अच्छा संग्रह है। इसका कार्य श्री कंवरराज जी मेहता देख रहे हैं।

- **श्री जैन रत्न पुस्तकालय,** सिंह पोल, जोधपुर

इसकी स्थापना वि.स. १९९० आषाढ कृष्णा तृतीया को की गई। यह पुस्तकालय सिंहपोल स्थानक में संचालित है। पुस्तकालय का सिंहपोल स्थित भवन रियाँ वाले सेठ श्री घनश्यामदास जी की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती मोहनकंवरजी द्वारा बनवा कर भेंट किया गया।

इस पुस्तकालय की स्थापना के उद्देश्य निम्नांकित रहे–

(१) ज्ञान-वृद्धि हेतु आगम-साहित्य एवं विभिन्न उपयोगी ग्रंथ उपलब्ध करवाना।

(२) जैन धर्म व दर्शन की पुस्तकों का संग्रह करना तथा समाज में जैन धर्म के अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ाने का प्रयास करना।

(३) सामयिक उपयोगी साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन करना।

पुस्तकालय में आगम एवं उनकी टीकाओं के अतिरिक्त न्याय, व्याकरण, काव्य , अलंकारशास्त्र, नाटक, चरित्र, स्तोत्र, धार्मिक-कथानक, पुराण आदि से सम्बद्ध साहित्य उपलब्ध है। प्राचीन उच्च स्तरीय ग्रन्थ इस पुस्तकालय की निधि हैं। पुस्तकालय के संचालन में सुश्रावक श्री रिखबचन्दजी सिंघवी की उल्लेखनीय सेवाएँ सुदीर्घकाल तक

प्राप्त हुई। वर्तमान में श्री सोहनलालजी संकलेचा इसका कार्य देख रहे हैं।

- **श्री जैन रत्न पुस्तकालय,** घोड़ों का चौक, जोधपुर

घोडों का चौक स्थित श्री जैन रत्न पुस्तकालय का शुभारम्भ संवत् २००२ में हुआ था । यह पुस्तकालय बहुत ही समृद्ध एवं सेवा में समर्पित है। सन्त-सतियों एवं जिज्ञासुओं के लिये यह नियमित रूप से खुला रहता है। पुस्तकालय में लगभग २५००० पुस्तकें हैं जिनमें आगम, टीकाएं, प्रवचन साहित्य के साथ जैन धर्म-दर्शन विषयक सभी सम्प्रदायों के विविध ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा नया साहित्य भी आता रहता है।

जैन समाज की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं यहाँ नियमित रूप से आती हैं। पुस्तकालय का कार्य प्रारम्भ से ही वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री सरदारचन्दजी भण्डारी सम्पूर्ण निष्ठा, कर्तव्यपरायणता एवं सेवाभाव से देख रहे हैं। व्यापार से निवृत्ति लेने के पश्चात् आप प्रात: १० बजे से अपराह्न ४ बजे तक पुस्तकालय को ही अपना समय देते हैं। यह पुस्तकालय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ , जोधपुर द्वारा संचालित है।

हिण्डौन , गंगापुर, सवाई माधोपुर, बजरिया, पीपाड़ सिटी, पाली मारवाड़, खेरली, नदबई, भोपालगढ, नागौर, किशनगढ, अजमेर, पावटा जोधपुर आदि स्थानों पर भी संघ में पुस्तकालय चल रहे हैं, जिनकी स्थानीय श्रावक-श्राविकाओं एवं चातुर्मास व शेषकाल में विराजित सन्त-सतियों के लिए महती उपयोगिता है।

- **जैन इतिहास समिति,** लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

युगमनीषी, इतिहास मार्तण्ड, परम पूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. के वि.सं. २०२२ के बालोतरा चातुर्मास के अवसर पर सन् १९६६ में जैन इतिहास-ग्रन्थों के प्रामाणिक प्रणयन हेतु इस समिति का निम्न उद्देश्यों को लेकर गठन किया गया :-

(i) प्रारम्भिक काल से लेकर अद्यतन जैन-परम्परा के प्रामाणिक इतिहास का लेखन एवं प्रकाशन

(ii) पुरातन ऐतिहासिक सामग्री का संकलन

(iii) अज्ञात एवं संदिग्ध ऐतिहासिक वृत्तों का अन्वेषण एवं प्रकाशन।

समिति का पंजीकरण राजस्थान सरकार के राजस्थान संस्था पंजीकरण अधिनियम १९५८ के अन्तर्गत सन् १९७४ में हुआ। ग्यारह सदस्यीय कार्यकारिणी के अध्यक्ष श्री इन्द्रनाथजी मोदी, मंत्री श्री सोहनमल जी कोठारी, सहमंत्री श्री सिरहमलजी बम्ब एवं कोषाध्यक्ष श्री पूनमचन्दजी बडेर थे। श्री श्रीचन्दजी गोलेछा एवं श्री नथमलजी हीरावत के मार्गदर्शन में यह समिति सुचारु रूपेण कार्य करती रही है। श्री इन्दरचन्दजी हीरावत के देहावसान के अनन्तर श्री पारसचन्दजी हीरावत समिति के अध्यक्ष बने एवं मंत्री पद का दायित्व श्री चन्द्रराजजी सिंघवी ने सम्हाला।

समिति द्वारा अब तक निम्नाङ्कित ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है-

(i) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १

(ii) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग २

(iii) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग ३

(iv) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग ४

(v) जैन आचार्य चरितावली

(vi) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर।

- **श्री महावीर जैन रत्न ग्रन्थालय,** जलगाँव

जैन धर्म-दर्शन के विद्यार्थियों को सभी सम्बन्धित पुस्तकें एक ही स्थान पर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ३० नवम्बर १९८२ को आचार्य श्री की सत्प्रेरणा से इस ग्रन्थालय की स्थापना की गई जिसमें जैन धर्म व साहित्य सम्बन्धी करीब २००० पुस्तकें संगृहीत है, इसका उपयोग अधिकांशतया साधु-साध्वियों के द्वारा किया जाता है। यह ग्रन्थालय रतनलाल सी बाफना जैन स्वाध्याय भवन में चालू है। इसका सम्पूर्ण खर्च समाज रत्न श्री सुरेश कुमार जी जैन द्वारा वहन किया जाता है।

- **श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्,** सी-२३५ए, दयानन्द मार्ग, तिलकनगर, जयपुर

आचार्यप्रवर के इन्दौर चातुर्मास में १२ नवम्बर १९७८ को 'श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद' की स्थापना हुई, जिसके उद्देश्य निम्न प्रकार थे-

१. अखिल भारतीय स्तर पर पुरानी एवं नई पीढी के जैन विद्वानों को संगठित करना।

२. जैन विद्या के अध्ययन, अध्यापन, अनुसन्धान, संरक्षण-संवर्धन, लेखन-प्रकाशन, प्रचार-प्रसार आदि में सहयोग देना।

३. जैन विद्या में संलग्न विद्वानों, श्रीमन्तों, कार्यकर्ताओं एवं संस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क एवं सामंजस्य स्थापित करना।

४. जैन विद्या में निरत विद्वानों एवं संस्थाओं के हितों की रक्षा करना एवं उन्हें यथाशक्य सहयोग देना।

५. जैन धर्म-दर्शन, इतिहास के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण करना।

६. अन्य ऐसे कार्य करना जो इस परिषद् के उक्त उद्देश्यों की सम्पूर्ति में सहायक हों।

इस परिषद् के माध्यम से मुख्य रूप से स्थानकवासी परम्परा के विद्वानों का एक मंच उभरकर आया। परिषद् के द्वारा देश के विभिन्न प्रान्तों में अनेक संगोष्ठियाँ आचार्य श्री के सान्निध्य में आयोजित की गई। इन गोष्ठियों में स्थानकवासी विद्वानों के अतिरिक्त अन्य जैन-जैनेतर विद्वानों को भी आमन्त्रित किया गया।

परिषद् के स्थापना काल से ही जिनवाणी के मानद् सम्पादक डॉ. नरेन्द्र जी भानावत ने महामन्त्री का दायित्व सम्हाला और इसे व्यापक रूप देते हुये परिषद् के माध्यम से विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन किया, यथा-

(१) **संगोष्ठियों का आयोजन** - परिषद् ने सन् १९७९ से सन् १९९३ तक अजमेर, इन्दौर, जलगांव, मद्रास, रायपुर, जयपुर, आबूपर्वत, कलकत्ता, भोपालगढ, पीपाडशहर, कानोड, कोसाणा, पाली, जोधपुर आदि स्थानों पर कुल २० संगोष्ठियाँ आयोजित की, जिनमें बाल संस्कार, युवा पीढी,समाज सेवा, स्वाध्याय, वृद्धावस्था जैन आगम, सामायिक, पत्रकारिता, श्रावक धर्म, अपरिग्रह, धर्म, समता-साधना, कर्मसिद्धान्त , जैन सिद्धान्त प्रचार-प्रसार, अहिंसा, पर्यावरण आदि विषयों पर चर्चा की गई।

(२) **ज्ञान प्रसार पुस्तकमाला (ट्रेक्ट योजना)** - 'कुआ प्यासे के पास जाये' इस भावना से ज्ञान प्रसार

पुस्तकमाला के अन्तर्गत १०१ रुपये में १०८ ट्रेक्ट पुस्तकें देने की योजना बनाई गई जो बहुत लोकप्रिय हुई। डॉ. भानावत के रहते इस योजना में विभिन्न विषयों पर ८७ ट्रेक्ट पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो गई थीं।

(३) **आचार्य श्री रत्नचन्द्र स्मृति व्याख्यानमाला** -इस व्याख्यानमाला के अन्तर्गत डॉ. इन्दरराज बैद, डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, डॉ. दयानन्द भार्गव एवं डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी के व्याख्यान हुए।

जैन दिवाकर व्याख्यानमाला में. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, स्वामी श्री आत्मानन्द जी एवं डॉ. लक्ष्मीमलजी सिंघवी के व्याख्यान हुए और अगरचन्द नाहटा स्मृति व्याख्यानमाला में एक ही व्याख्यान डॉ. गणेशदत्त त्रिपाठी का हो सका।

(४) जैन विद्या प्रोत्साहन छात्रवृत्ति - इस योजना के अन्तर्गत देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में एम. ए के स्तर पर ऐच्छिक रूप में जैन दर्शन विषय लेकर अध्ययन करने वाले छात्र-छात्राओं में प्रत्येक को ५०० रुपये की छात्रवृत्ति देने का प्रावधान किया गया।

(५) अन्य कार्य - जैन धर्म एवं दर्शन से सम्बद्ध विषयों पर परिषद् की ओर से निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की गई। जैन दर्शन और साहित्य पर पी.एच.डी करने वाले युवा शोध कर्मियों को सम्मानित किया गया। परिषद् ने दो सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किए। - (१) जैन संस्था सर्वेक्षण और (२) स्थानकवासी जैन साहित्य सर्वेक्षण।

वर्तमान में परिषद् के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी लोढा एवं महामंत्री डॉ. संजीव जी भानावत हैं।

- **श्री कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ,** ६१, नगरथ पेट, बैंगलोर

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. का समग्र जीवन सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा हेतु समर्पित रहा। आपके दक्षिण प्रवास के समय कर्नाटक प्रान्त में इस संस्था की स्थापना निम्नाङ्कित उद्देश्यों से हुई-

(१) समाज में संस्कारों का सृजन करना (२) बाल-युवा पीढ़ी में धर्म की विशुद्ध जानकारी के साथ श्रद्धा जागृत करना (३) पूज्य संत-सतीवृन्द के चातुर्मास लाभ से वंचित क्षेत्रों में सुयोग्य स्वाध्यायी बंधुओं को भेजकर पर्वाधिराज पर्युषण साधना सम्पन्न करवाना। सम्प्रति लगभग ५०क्षेत्रों में इस संघ के माध्यम से स्वाध्यायी बंधु अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। संघ के माध्यम से स्वाध्यायियों के ज्ञान-वर्द्धन हेतु माह के अन्तिम रविवार को स्वाध्यायी संगोष्ठी एवं वर्ष में दो बार तीन दिवसीय स्वाध्यायी शिविरों का आयोजन किया जाता है। संघ पुस्तकालय के संचालन एवं हिन्दी तथा कन्नड़ भाषा में सत्साहित्य प्रकाशन करते हुए कर्नाटक प्रान्त में धर्म-प्रचार के महान कार्य में संलग्न है।

- **श्री मध्यप्रदेश जैन स्वाध्याय संघ,** महावीर भवन, इमली बाजार, इंदौर

परम पूज्य आचार्य भगवन्त जहाँ भी पधारे, सामायिक-स्वाध्याय का बिगुल बज उठा। आपके मध्यप्रदेश में विचरण के समय सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार के पवित्र उद्देश्य से इस संस्था की स्थापना हुई। संस्था की स्थापना के निम्नाङ्कित उद्देश्य रहे-

१- पूज्य संत-सतीवृन्द के चातुर्मास लाभ से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण-पर्वाराधन हेतु स्वाध्यायी सदस्यों को भेजना।

२- आध्यात्मिक शिक्षण-शिविरों का आयोजन करना।

३- विभिन्न क्षेत्रों में स्वाध्याय शालाओं की स्थापना करना।

४- सामायिक-स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार करना।

संघ के माध्यम से प्रतिवर्ष ४०-५० स्वाध्यायी बन्धु विभिन्न ग्राम-नगरों में पर्युषण -सेवा का लाभ ले रहे हैं। साथ ही संघ द्वारा प्रतिवर्ष स्वाध्याय प्रशिक्षण-शिविर का आयोजन किया जाता है। विशेष गौरव की बात यह है कि अभी तक संघ के माध्यम से पर्युषण पर्वाधिराज की आराधना में सेवा देने वाले ८ स्वाध्यायी भाई - बहिन जैन श्रमण-दीक्षा अंगीकार कर मुनिव्रत धारण कर चुके हैं।

- **श्री महावीर जैन स्वाध्यायशाला,** महावीर भवन, इमली बाजार, इन्दौर

बालवय में दीक्षित परम पूज्य आचार्य भगवन्त का बालक -बालिकाओं को सुसंस्कारित करने पर विशेष जोर रहा। आपश्री की मान्यता थी कि यही वह उम्र है जिसमें दिये गये संस्कार जीवन भर अमिट रहते हैं। आपके इन्दौर चातुर्मास की उल्लेखनीय उपलब्धि रही – इस स्वाध्यायशाला की स्थापना। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों व युवाओं में धार्मिक रुचि जागृत कर उन्हें सुसंस्कृत बनाना है।

इस स्वाध्यायशाला में विगत २२ वर्षों से नियमित रूप से प्रातः ८ से १०-३० बजे तक, अपराह्न ३ से ४ बजे तक व सायं ६.३० से ७.३० बजे तक धार्मिक अध्ययन का क्रम चालू है। अब तक सैकड़ों छात्र-छात्राएँ सामायिक, प्रतिक्रमण, थोकड़ों, स्तोत्रों का अभ्यास कर चुके हैं। अनेक युवा उत्तराध्ययन , दशवैकालिक , अन्तकृतांग सूत्र आदि आगमों का अध्ययन कर चुके हैं।

संस्था द्वारा विगत आठ वर्षों से त्रैमासिक ग्रीष्मकालीन धार्मिक-शिक्षण का आयोजन किया जाता है। प्रति रविवार सामूहिक सामायिक-स्वाध्याय एवं प्रार्थना का कार्यक्रम अनवरत चालू है। बालक-बालिका ही नहीं, श्रावक-श्राविका भी संस्था से जुड़े हुए हैं। परम पूज्य आचार्य भगवन्त की प्रेरणा से श्रावक-श्राविकागण धुलण्डी व रंगपंचमी पर विगत कई वर्षों से रंग न खेल कर सामूहिक स्वाध्याय एवं पांच-पांच सामायिक की आराधना कर एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। दीपावली पर आतिशबाजी न करने वाले छात्रों को पुरस्कृत कर उन्हें हिंसा से विरत करने का प्रयास किया जा रहा है।

- **श्री जैन रत्न जवाहरलाल बाफना कन्या उच्च प्राथमिक विद्यालय,** भोपालगढ़

महाप्रतापी क्रियोद्धारक जैनाचार्य परम पूज्य १००८ श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. की पावन-स्मृति में संचालित श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ के कार्यकर्ताओं ने विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती १५ जनवरी १९७९ के अवसर पर कन्या पाठशाला की स्थापना के द्वारा बालिकाओं में शिक्षा व संस्कार प्रदान करने का निर्णय लिया। इस भावना को मूर्त रूप प्रदान किया भोपालगढ के ही मूल निवासी अनन्य गुरुभक्त लब्धप्रतिष्ठ सुश्रावक श्री जवाहरलालजी बाफना के सुपुत्रगण उदारमना श्री भंवरलालजी, सज्जनराजजी, कल्याणमलजी, अनूपकुमारजी बाफना ने , जिन्होंने अपने द्वारा संचालित श्री जे. जे. चेरिटेबल ट्रस्ट इन्दौर एवं जलगांव के माध्यम से कन्या पाठशाला हेतु भवन बनवा कर समर्पित किया। यही नहीं वरन् उनके द्वारा नियमित रूप से इसके संचालन हेतु अर्थ सहयोग प्रदान किया जा रहा है।

वर्तमान में यह विद्यालय उच्च प्राथमिक विद्यालय के रूप में बालिकाओं को शिक्षा प्रदान कर रहा है। सम्प्रति यह विद्यालय श्री जैन रत्न विद्यालय परिवार के एक अंग के रूप में कार्यरत है तथा इसे शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार से मान्यता प्राप्त है। विद्यालय में १४ शिक्षक कार्यरत हैं तथा लगभग २२५ छात्राएँ अध्ययन कर रही हैं।

- **श्री कुशल जैन छात्रावास,** पालो प्रथम, पावटा, जोधपुर

रत्नवंश परम्परा के मूल पुरुष पूज्य श्री कुशलचन्दजी म.सा. की द्विशताब्दी का आयोजन क्रियोद्धार भूमि भोपालगढ़ में परम पूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के पावन सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ के छात्र आगे अध्ययन हेतु आवास, भोजन एवं सुयोग्य संचालक का कुशल संरक्षण प्राप्त कर उच्च शिक्षा व सुसंस्कारों से सम्पन्न बनें, इस पुनीत लक्ष्य से इस छात्रावास को प्रारंभ करने का निर्णय इस पावन प्रसंग पर लिया गया।

संस्थान के ट्रस्टीगण उदारमना समाजसेवी श्री सायरचन्दजी कांकरिया, श्री रतनलालजी बाफना, श्री रिखबचंदजी बाफना, श्री भंवरलालजी बाफना, श्री मूलचंदजी बाफना एवं उनके परिजनों के सहयोग से संस्थापित एवं संचालित इस छात्रावास का पावटा, जोधपुर में अपना विशाल भवन है, जहाँ ३५ छात्र शिक्षणरत हैं।

छात्रावास में दसवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश दिया जाता है, छात्रों के आवास व भोजन की सुन्दर व्यवस्था है, साथ ही सुयोग्य गृहपति का संरक्षण भी प्राप्त है। छात्रावास में रहने वाले सभी छात्रों के लिए दैनिक प्रार्थना, प्रतिदिन सामायिक एवं प्रति सप्ताह संत-सती दर्शन अनिवार्य है।

- **श्री महावीर जैन पाठशाला योजना,** जलगाँव

जलगांव जिले के गांवों में बच्चों में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण करने के उद्देश्य से धार्मिक पाठशालाओं के संचालन का कार्य आचार्यप्रवर के रायचूर चातुर्मास में श्री मानमल जी ललवाणी की मौन साधना के उपलक्ष्य में उनके सुपुत्र श्री ईश्वरलालजी ललवाणी द्वारा प्रारम्भ किया गया, जो निरन्तर प्रगतिशील है। अब तक इस योजना के माध्यम से करीब २००० विद्यार्थी सामायिक, प्रतिक्रमण , पच्चीस बोल आदि के जानकार बन चुके हैं। सभी विद्यार्थियों की वर्ष में एक बार परीक्षकों की उपस्थिति में एक ही दिन एक ही समय परीक्षा आयोजित की जाती है। उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। प्रत्येक पाठशाला का प्रतिमाह निरीक्षण करने हेतु श्री हीरालाल जी मंडलेचा को नियुक्त किया हुआ है। योजना का सम्पूर्ण खर्च मै. राजमल लखीचन्द द्वारा वहन किया जाता है।

(आ) साधना-आराधना हेतु गठित संस्थाएँ

आचार्य भगवन्त सम्यक् ज्ञान के साथ सम्यक् क्रिया पर विशेष रूप से बल देते थे, अतः सामायिक-साधना का उस महापुरुष का आह्वान आबाल-वृद्ध सबको आकर्षित करता था। हजारों हजार भक्त नित्य प्रति सामायिक साधना से जुड़े । गांव गांव, नगर नगर और महानगरों में "कर लो सामायिक रो साधन, जीवन उन्नत होवेला" की गूंज जिह्वा तक ही नहीं व्यवहार में परिलक्षित हुई। श्रावक और साधु के बीच साधक एक कड़ी के रूप में रहें, आचार्य भगवन्त के इस चिन्तन को साधना विभाग द्वारा तैयार साधकों से पूरा करने का प्रयास हुआ। दया-संवर, उपवास-पौषध की प्रवृत्ति गांव-गांव और घर-घर में जागृत हो, साथ ही आयंबिल आराधना केन्द्र चलें, आचार्य

भगवन्त की इस प्रेरणा से साधक श्रावक-श्राविकाओं का मनोबल बढ़ा। साधना-आराधना में गठित संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

• **अखिल भारतीय सामायिक संघ,** घोड़ों का चौक, जोधपुर

आचार्यप्रवर का सामायिक-साधना पर बहुत बल था। आप फरमाते थे कि सामायिक-साधना जीवन के उन्नयन का मूल आधार है। घर-घर में इसका प्रचार होना चाहिए। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर सुज्ञ श्रावकों ने संवत् २०१६ में अखिल भारतीय सामायिक संघ की स्थापना की। प्रारम्भ में इसका कार्य श्री चुन्नीलाल जी ललवाणी ने देखा तथा बाद में कई वर्षों तक श्री राजेन्द्र जी पटवा ने इसका संचालन किया। सम्प्रति इसके संयोजक श्री नवरतनमल जी डोसी हैं। सामायिक संघ के प्रमुख कार्य हैं-

१. अधिक से अधिक सामायिक साधक तैयार करना।

२. सदस्यों को सामायिक साधना हेतु प्रेरित करना।

३. पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलना।

४. साहित्य एवं सामायिक के उपकरण वितरित करना।

सामायिक-संघ के सदस्यों की तीन श्रेणियां रखी गई-

१. नैष्ठिक सदस्य- धर्मस्थान में प्रतिदिन सामायिक साधना करने वाले।

२. साधारण सदस्य - माह में कम से कम चार दिन धर्मस्थान में सामायिक-साधना करने वाले।

३. प्रेमी सदस्य - प्रतिदिन २० मिनट धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करने वाले।

सामायिक संघ के सदस्य सप्त कुव्यसन के त्यागी होने के साथ नैतिक जीवन जीते हैं। उनकी जीवन शैली अहिंसक होती है तथा कुरीतियों को प्रोत्साहित नहीं करते।

साधना-विभाग, घोड़ों का चौक, जोधपुर

साधना की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु साधना - विभाग का प्रारम्भ हुआ, जिसका संचालन साधनानिष्ठ श्रावक प्रो. चांदमल जी कर्णावट, उदयपुर ने किया तथा अब श्री सम्पतराजजी डोसी, जोधपुर इसका कार्य देख रहे हैं।इस विभाग के द्वारा साधना-शिविरों का आयोजन किया जाता है एवं साधना की ओर गतिशील बनने के लिये श्रावकों को प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाता है।

(इ) संघ-उन्नयन हेतु गठित संस्थाएँ

आचार्यप्रवर सम्प्रदायवाद से परे थे, किन्तु सम्प्रदाय को संघहित में सहायक मानते थे। सम्प्रदाय की गौरव गरिमा निरन्तर विकसित हो, एतदर्थ अखिल भारतीय स्तर पर श्रावक संघ, श्राविका-मण्डल और युवक परिषद् का गठन किया गया। इन संस्थाओं का संगठन संघ-उन्नयन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

• **अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ,** घोडों का चौक, जोधपुर, दूरभाष ०२९१-६३६७६३

रत्नवंशीय श्रावकों ने निर्मल संयम-साधक, दृढ प्रतिज्ञ, परम्परा के मूलपुरुष, पूज्य श्री कुशलचन्द्रजी म.सा. से

लेकर प्रतिपल स्मरणीय परमाराध्य महामहिम आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.के शासनकाल तक स्व-प्रेरित संघ व्यवस्था का गौरव बनाए रखा। आचार्य भगवन्त संघ को प्रमुखता देने वाले युग पुरुष रहे। उस महापुरुष की संघ के प्रति अटूट आस्था देखकर श्रावकों के मन में संघ-व्यवस्था को और अधिक सक्रिय, सक्षम और संगठित बनाने की भावना जगी और विक्रम संवत् २०३२ में ब्यावर (राजस्थान) में अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की औपचारिक रूप से स्थापना की गई।

संघ-स्थापना के पश्चात् संघ-उद्देश्यों की पूर्ति में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से संघ-सदस्य इसकी प्रवृत्तियों के पोषण और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सतत सक्रिय हैं। संघ के प्रमुख उद्देश्यों में श्रद्धा व विवेक के साथ ज्ञान-दर्शन-चारित्र का रक्षण एवं वृद्धि करना, अध्यात्मप्रेमी बन्धुओं की वात्सल्य भाव से सेवा व सहायता करना, त्यागानुरागी - वैरागी भाई-बहिनों को सहयोगपूर्वक आगे बढ़ाना, चतुर्विध संघ की सार-संभाल एवं सहयोग करना , चतुर्विध संघ की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करना, संघ में संचालित नैतिक व आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना, महापुरुषों के जन्म-दीक्षा-पुण्य तिथि एवं विशिष्ट प्रसंगों को साधनापूर्वक मनाना, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं समाज-सुधार के लिए आवश्यक कार्य करना, सामायिक-स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार करना, निर्व्यसनता-शाकाहार सदाचारमय जीवन शैली का प्रचार-प्रसार करना, भारतीय प्राच्य संस्कृति एवं आगम-साहित्य का रक्षण, प्रकाशन एवं विक्रय करना, प्राकृत - संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधान की व्यवस्था करना, अध्यात्म-साधना एवं रत्नत्रय आराधना के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, साधक - व्यक्तित्व का निर्माण करना, हस्तलिखित ग्रन्थों, कलात्मक कृतियों, पुरातत्त्व व ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह करना तथा उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के विकास हेतु नैतिक व आध्यात्मिक पाठशालाओं, स्वाध्याय केन्द्रों, महाविद्यालयों एवं उच्च अध्ययन केन्द्रों की स्थापना करना, मानव-सेवा, जीवदया, समाज-सेवा और पारमार्थिक कार्य करना सम्मिलित हैं।

सामायिक-स्वाध्याय, साधना और सेवा के विविध सोपानों के साथ संघ में ज्ञान-ध्यान, त्याग-तप, साधना-आराधना के कार्यक्रम सुव्यवस्थित चलें तथा संघ-सदस्यों में परस्पर प्रेम-मैत्री सहयोग की भावना और आत्मीयता बढ़े, इसका पूरा ध्यान रखा जाता है।

संघ की रीति-नीति का निर्धारण संघ-संरक्षक एवं शासन सेवा समिति के सदस्य करते हैं जिसे कार्यकारिणी और साधारण सभा के अनुमोदन के पश्चात् मूर्त रूप दिया जाता है। संघ व्यवस्था के लिए अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष , उपाध्यक्ष, महामंत्री, अतिरिक्त महामंत्री, कोषाध्यक्ष, सह-कोषाध्यक्ष , मंत्री, सहमंत्री, क्षेत्रीय प्रधान एवं कार्यकारिणी सदस्य देश भर में फैले संघ-सदस्यों में धर्म के संस्कार जगाने, ज्ञान-क्रिया के समन्वय के साथ उन्हें आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। महापुरुषों के जन्म, दीक्षा एवं पुण्य-प्रसंगों पर साधना-आराधना के सामूहिक कार्यक्रमों की सफल क्रियान्विति से सकल जैन समाज गुरु हस्ती के सामायिक स्वाध्याय और गुरु हीरा के व्यसन - त्याग सन्देशों को जीवन व्यवहार में आत्मसात् करने हेतु अग्रसर हैं। सम्प्रदाय में रहते हुए सम्प्रदायवाद का पोषण नहीं किया जाता और 'गुरु एक, सेवा अनेक' की उक्ति जीवन - व्यवहार में साकार करते हुए संघ समाजहितचिन्तन में सक्रिय है। गुणग्राहकता के दृष्टिकोण के कारण संघ-सदस्यों की वृत्ति में किसी की निन्दा - आलोचना का भाव नहीं है। अतः रत्नवंशीय श्रावक-श्राविकाओं का वर्चस्व सकल जैन समाज पर है। हमारे संघ में प्रखर वक्ता हैं, प्रबुद्ध चिन्तक हैं और प्रतिभा की कमी नहीं है, इन सब विशेषताओं के कारण हमारा प्रभाव सर्व

विदित है और हमें इस पर गर्व है।

संघ का प्रधान कार्यालय घोडों का चौक , जोधपुर (राजस्थान) में है। संघ-व्यवस्था की दृष्टि से प्रधान कार्यालय देश भर में फैले ग्यारह क्षेत्रीय कार्यालयों, इकत्तीस शाखा कार्यालयों व विभिन्न ग्राम नगरों व महानगरों में स्थापित सम्पर्क सूत्रों के माध्यम से कार्य संचालित करता है। आचार्यप्रवर , उपाध्याय प्रवर आदि संत-सतीवृन्द के विचरण-विहार, प्रवास, चातुर्मास, स्वास्थ्य-समाधि एवं विशिष्ट आयोजनों की जानकारी समय-समय पर संघ कार्यालय द्वारा दी जाती है। संघ द्वारा समय-समय पर क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं जिससे संघ की एकता-एकरूपता पुष्ट होती है और संघहित में सार्थक निर्णय भी किये जाते हैं।

संघ की विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालन के लिए वित्तीय आधार के रूप में आल इण्डिया श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ ट्रस्ट, चेन्नई, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी संघ पारमार्थिक ट्रस्ट इन्दौर, गजेन्द्र निधि मुम्बई , श्री गजेन्द्र फाउण्डेशन मुम्बई एवं श्रीमती शरदचन्द्रिका मोफतराज मुणोत वात्सल्य निधि संस्थाओं का सहयोग प्राप्त है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति, संगठन व संघ सदस्यों में वात्सल्य, सेवा आदि लक्ष्यों से गठित अनेक संस्थाओं का संचालन संघ के संरक्षण/अन्तर्गत किया जा रहा है। प्रमुख संस्थाओं का परिचय इस अध्याय में अलग से दिया गया है।

चुनाव नहीं, चयन संघ-संचालन की मुख्य विशेषता रही है। संघ-संचालन में न्यायाधिपति श्री सोहननाथ जी मोदी, श्री लाभचन्दजी लोढा, श्री नथमलजी हीरावत, डॉ. सम्पतसिंह जी भांडावत, श्री मोफतराजजी मुणोत एवं श्री रतनलालजी बाफना ने अध्यक्ष पद को सुशोभित किया है। कार्याध्यक्ष के रूप में डॉ. सम्पतसिंह जी भाण्डावत, श्री रतनलालजी बाफना, श्री सायरचन्दजी कांकरिया व श्री कैलाशचन्दजी हीरावत ने अपनी महनीय भूमिका का निर्वहन किया है। संघ महामंत्री के रूप में श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना , श्री माणकमलजी भण्डारी, श्री किरोड़ीमलजी लोढ़ा, श्री जगदीशमलजी कुम्भट, श्री प्रसन्नचन्दजी बाफना व श्री अरुण जी मेहता ने अपनी विशिष्ट सेवाएँ दी हैं।

संघ-संरक्षक एवं शासन सेवा समिति के साथ विविध ट्रस्टों के ट्रस्टीगण एवं संघ की सहयोगी संस्थाओं के अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, सचिव, संयोजक आदि के सहयोग से संघ व संघ की सहयोगी संस्थाओं का सामंजस्य तो बना रहता ही है, सार्थक चिन्तन से प्रवृत्तियों का पोषण और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी सफल होता है।

संघ सदस्यों में गुरु हस्ती के सामायिक - स्वाध्याय और गुरु हीरा के व्यसन-त्याग संदेश की अमिट छाप है। संघ-सदस्यों का गुरु के प्रति समर्पण है और सेवा में यह संघ एक आदर्श संघ के रूप में अपनी पहचान रखता है, जिस पर सदस्यों को गर्व है।

- **अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल,** घोडों का चौक, जोधपुर

रत्नवंशीय श्रावकों की भांति संघ-सेवा में श्राविकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। श्राविकाएँ श्रद्धा-भक्ति में, त्याग-तप में और सेवा-धर्म की साधना में अग्रणी रहती हैं। अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की सहयोगी संस्था के रूप में श्राविका-मण्डल का पुनर्गठन २४ सितम्बर १९९४ को सूर्यनगरी जोधपुर में किया गया। इससे पूर्व यह भगवान महावीर श्राविका समिति के रूप में सक्रिय थी।

श्राविका-मण्डल बच्चों को संस्कारित करने के साथ पारिवारिक संघर्ष घटाने और आपसी प्रेम स्थापित करने का प्रयत्न करता है। संघ-सेवा और संत-सेवा के साथ जरूरतमंद बहिनों को सहयोग करने में एवं धार्मिक कार्यक्रम

आयोजित करने में श्राविका-मण्डल की अहं भूमिका है। ज्ञानाभ्यास में मण्डल की सक्रियता से पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन एवं परीक्षाओं के सफल आयोजनों से श्राविका मण्डल का कार्य विस्तृत हुआ और संघ ने शिक्षण-व्यवस्था को अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड के रूप में स्वीकार कर श्राविका संघ द्वारा प्रारम्भ किए गए पाठ्यक्रम को अपनाया। स्वाध्याय-सेवा, आयंबिल-आराधना और जीवदया के क्षेत्र में श्राविका-मण्डल की तत्परता अनुकरणीय है।

श्रावक संघ की भांति श्राविका-मण्डल के अध्यक्ष का चुनाव तीन वर्ष पश्चात् होता है और कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महासचिव , सचिव, कोषाध्यक्ष सहित कार्यकारिणी का गठन किया जाता है। श्राविका-मण्डल देशभर में फैली श्राविकाओं को स्थानीय शाखाओं से संयुक्त कर सामायिक, स्वाध्याय, प्रार्थना, स्वधर्मी वात्सल्य-सेवा और समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण के शिविर आयोजित कर अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के कार्यों में सहयोग करता है। सामाजिक कुरीतियों के निकन्दन में श्राविका-मण्डल की सक्रियता से अहिंसक जीवन शैली की ओर बहिनों का आकर्षण बढ़ा है। भ्रूण हत्या जैसे जघन्य और निन्दनीय कार्य की रोकथाम में श्राविका-मण्डल का विशेष योगदान है।

वर्तमान में श्राविका-मण्डल का मुख्यालय घोड़ों का चौक, जोधपुर में स्थित है और मण्डल के तत्त्वावधान में लगभग ४० शाखाएँ और २० सम्पर्क सूत्र कार्यरत हैं। अध्यक्ष के रूप में डॉ. सुषमा जी सिंघवी के बाद से श्रीमती विमला जी मेहता अपनी सेवाएँ दे रही हैं।

श्राविका मण्डल समय-समय पर कार्यकारिणी बैठक में कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित करता है और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में संघ व संघ की सहयोगी संस्थाओं के साथ सामंजस्य बनाकर एक कड़ी के रूप में सेवाएँ देता है।

- **अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्**, घोड़ों का चौक, जोधपुर

युगमनीषी आचार्य श्री हस्ती युवा शक्ति में भविष्य की आशा रखते थे। जीवन के संध्याकाल में आचार्य भगवन्त ने प्रेरणा के माध्यम से युवकों को संघ-सेवा, संत-सेवा एवं स्वयं के जीवन-निर्माण की दिशा में सक्रिय किया। आचार्य भगवन्त की भावना को ध्यान में रखकर अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ ने २१ नवम्बर १९९१ को जोधपुर में अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् की स्थापना की।

युवक परिषद् अपनी स्थापना से संगठित इकाई के रूप में संघ की सहयोगी संस्था का उत्तरदायित्व निर्वहन कर रही है। बच्चों एवं युवकों में धार्मिक-नैतिक-आध्यात्मिक संस्कार सृजित करने, उन्हें निर्व्यसनी बनाने, भ्रातृत्व भावना के साथ 'हम सब हैं भाई-भाई, हममें नहीं हो जुदाई' का आदर्श स्थापित करने, संघ-सेवा, संत-सेवा और स्वयं के जीवन-निर्माण में आगे आने के लिये युवकों को निरन्तर प्रेरित करती है। सामायिक-स्वाध्याय और चतुर्विध संघ की सेवा युवक - परिषद् के मुख्य उद्देश्य हैं। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु युवक परिषद् अपनी स्थापना से राष्ट्रीय स्तर पर चतुर्विध संघ-सेवा, सामायिक-स्वाध्याय, स्वधर्मी-वात्सल्य एवं समाज-सेवा, धार्मिक-शिक्षण व नैतिक संस्कार जैसे कार्यक्रम हाथ में लेकर उनकी सफल क्रियान्विति की ओर निरन्तर आगे बढ़ रही है।

व्यक्ति-व्यक्ति का जीवन आदर्श और प्रेरणादायी बने, इस लक्ष्य से सामायिक, स्वाध्याय, निर्व्यसनता, तप, संयम, शिक्षा, खेलकूद, समाज-सेवा जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाले युवारत्नों को प्रेरित-प्रोत्साहित कर

व्यक्तिगत स्तर पर कुछ मानदण्डों के साथ एवं शाखा स्तर पर स्वस्थ स्पर्धा हेतु प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन में उल्लेखनीय कार्य करने वाले युवारत्नों को और सर्वश्रेष्ठ शाखा को सम्मानित किया जाता है।

संघ की भांति युवक परिषद् परामर्शदाताओं से प्रेरणा प्राप्त कर राष्ट्रीय स्तर, क्षेत्रीय स्तर एवं स्थानीय स्तर पर समय-समय पर शिविर-प्रशिक्षण-कार्यक्रम आयोजित कर स्वाध्याय सेना के लिये स्वाध्यायी तैयार करती है। नियत समय पर कार्यकारिणी एवं प्रतिनिधि सभाओं के माध्यम से कार्यों की समीक्षा और भावी कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाता है।

प्रत्येक तीन वर्ष के कार्यकाल के पश्चात् परिषद्-अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। कार्यकारिणी में कार्याध्यक्ष उपाध्यक्ष, महासचिव, सचिव, कोषाध्यक्ष कार्यक्रम प्रभारी, क्षेत्रीय प्रधान के साथ कार्यकारिणी सदस्यों का मनोनयन किया जाता है। परिषद् पूर्व निदेशकों की सेवाएँ स्थायी आमन्त्रित सदस्यों के रूप में लेकर उनके अनुभवों से लाभ उठाने का प्रयास करती है और अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की छत्रछाया में अपने कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करती है। संघ-संरक्षक मण्डल के संयोजक , संघाध्यक्ष, संघ कार्याध्यक्ष, संघ महामंत्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, मंत्री, स्वाध्याय संघ के संयोजक, सचिव व श्राविका मण्डल के अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष महासचिव जैसे पदाधिकारियों के मार्गदर्शन एवं प्रेरणा से युवक परिषद् अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सक्रिय भूमिका निभाती आ रही है। युवक परिषद् अध्यक्ष के रूप में श्री अमिताभ जी हीरावत, श्री आनन्दजी चौपड़ा, श्री विनयचन्दजी डागा ने सेवाए दीं। अब सन् २००० से अनिलजी बोहरा अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

युवक परिषद् का राष्ट्रीय कार्यालय घोडों का चौक जोधपुर में स्थित है और समस्त पत्राचार कार्यालय द्वारा किया जाता है। युवक परिषद् ने स्वाध्यायी तैयार करने का संकल्प लिया, उसे पूरा किया और आज पढ़े लिखे एवं विशिष्ट पदों पर कार्यरत युवक स्वाध्यायी-सेना के सिपाही के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। जिनवाणी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से भगवान महावीर २६०० वें जन्म-कल्याणक वर्ष में 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका के २६०० से अधिक सदस्य बनाने का संकल्प सघनता से सम्पन्न किया। संघ आर्थिक रूप से सबल हो, इस पुनीत कार्य में युवारत्न बन्धुओं ने जोधपुर श्रावक सम्मेलन में गजेन्द्र निधि के ८१ आजीवन सदस्य बनाने का कार्यक्रम हाथ में लिया, जिसकी क्रियान्विति में युवक परिषद् की सक्रियता प्रेरणादायी है।

(ई) समाज-सेवा के उद्देश्य से गठित संस्थाएँ

सेवा को आचार्य भगवन्त सबके लिये करणीय मानते थे। संघ-सेवा, सन्त-सेवा, स्वधर्मी वात्सल्य-सेवा, दीन-दुःखी, निर्धन और असहाय की सेवा के साथ करुणा की भावना से प्राणिमात्र की सेवा के प्रेरक आचार्य भगवन्त ने सेवाधर्म की साधना में आबाल-वृद्ध और जैन-जैनेतर जन समुदाय को प्रेरित किया, परिणाम स्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति में सेवा के भाव विकसित हुए। सेवाभावना से गठित संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

- **श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी,** चौड़ा रास्ता, जयपुर

जयपुर में समतामूर्ति श्री अमरचन्दजी म.सा. के संथारा पूर्वक स्वर्गवास की स्मृति में सन् १९६१ में श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी की स्थापना की गयी। रोगी का दुःख दूर करने की प्रेरणा से प्रारम्भ यह संस्था अब विशालवृक्ष की भांति समाज-सेवा में संलग्न है। इस संस्था के अन्तर्गत अमर जैन अस्पताल, चौड़ा रास्ता में संचालित है तथा डिस्पेन्सरी मोतीसिंह भोमियों के रास्ते में चल रही है। अमर जैन अस्पताल अनुभवी एवं योग्य

चिकित्सकों की सेवाओं के कारण विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें वातानुकूलित आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित आपरेशन थियेटर, आई.सी.यू., ७५ शय्याओं से युक्त मेडिकल वार्ड, सर्जिकल वार्ड, गाइनी वार्ड, एक्सरे, ई.सी.जी., निदान केन्द्र , सोनोग्राफी, गेस्ट्रोएण्टोलाजी आदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं। आर्थिक स्थिति से कमजोर व्यक्तियों के उपचार, औषधि, आपरेशन, प्रसव आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। अशक्त एवं असहाय रोगियों को दवा-बैंक से निःशुल्क दवा वितरित की जाती है।

जयपुर में अमर जैन रिलीफ सोसायटी मानव-समाज में सेवा का बहुत बड़ा कार्य कर रही है तथा निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

- **श्री वर्द्धमान जैन रिलीफ सोसायटी,** घोड़ों का चौक, जोधपुर

रत्नवंश परम्परा के महापुरुषों की साधना जन-मानस पर अनूठी छाप छोड़ती रही है। मनसा-वचसा -कर्मणा साधना की एकरूपता इस परम्परा की विशिष्ट विशेषता है। परम्परा के अनेक महापुरुषों ने अपने जीवन की अन्तिम वेला में सुदीर्घ संथारों के माध्यम से समाधिमरण प्राप्त कर मरण-वरण का आदर्श जैन-जैनेतर समाज के समक्ष जीवन्त किया है। साधक शिरोमणि परम पूज्य आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के भजनान्दी सुशिष्य श्री माणकमुनि जी म.सा. ने घोडों का चौक स्थानक, जोधपुर में वर्ष १९७६ में ३५ दिनों का सुदीर्घ संथारा किया, जिसकी स्मृति आज भी भक्तों के हृदय में अक्षुण्ण है।

'नर नारायण बन जायेगा' के इस साधक की साधना की पावन स्मृति स्वरूप श्री वर्द्धमान जैन रिलीफ सोसाइटी की स्थापना हुई। सोसाइटी द्वारा घोड़ों का चौक, जोधपुर में वर्द्धमान अस्पताल का नियमित संचालन किया जा रहा है।

यह सोसाइटी एक स्वयंसेवी पंजीकृत संस्था है । विगत २६ वर्षों से रोग पीड़ित मानवता की सेवा में संलग्न वर्धमान अस्पताल अनुभवी चिकित्सकों की सेवाएँ उपलब्ध करा रहा है। अस्पताल में सामान्य चिकित्सक (फिजिशियन), सर्जन, वात रोग विशेषज्ञ, स्त्री-रोग विशेषज्ञ, दंत-रोग विशेषज्ञ, रोग-निदान विशेषज्ञों की सेवा प्राप्त है। प्रात: एवं सांयकालीन आउट डोर के साथ ही आपातकालीन सेवा एवं रात्रिकालीन सेवा भी उपलब्ध है। अस्पताल के पास अपना वातानुकूलित शल्यचिकित्साकक्ष एवं रोगनिदान के आधुनिक उपकरण उपलब्ध हैं।

जन सामान्य के साथ-साथ प्राथमिकता से भावनापूर्वक निर्दोष चिकित्सा-सेवा श्रमण-श्रमणियों को उपलब्ध कराना यहाँ के कार्यरत चिकित्सक व कर्मचारीगण अपना सौभाग्य समझते हैं। रिलीफ सोसायटी के अध्यक्ष सेवानिवृत्त न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल जी लोढा, उपाध्यक्ष श्री पूरणराजजी अब्बाणी, मन्त्री श्री धनपतजी सेठिया एवं कोषाध्यक्ष श्री नरपतराजजी चौपड़ा हैं।

इस चिकित्सालय में प्रतिवर्ष लगभग ४० हजार रोगियों का पंजीकरण होता है।

- **श्री महावीर जैन हॉस्पिटल,** जलगाँव

मानव सेवा के उद्देश्य से आचार्य श्री के सन् १९८२ के चातुर्मास में श्री कुशल जैन सेवा समिति के अन्तर्गत महावीर जैन हॉस्पिटल शुरु किया गया, जो आज अपनी चार शाखाओं के माध्यम से केवल एक रुपये शुल्क पर रोगियों को सभी दवाइयाँ मुफ्त उपलब्ध करवा रहा है। इस समय चारों शाखाओं में प्रतिदिन २५० रोगी स्वास्थ्य

लाभ प्राप्त करते हैं। हास्पिटल के पास ७ लाख रुपये का स्थायी फण्ड है। श्री सुरेश दादा जैन, श्री भंवरलाल जी जैन, श्री रतनलाल सी बाफना व श्री दलीचंद जी जैन इसके प्रमुख ट्रस्टी हैं।

- **श्री भूधर कुशल धर्म-बन्धु कल्याण कोष,** बडेर भवन, तख्तेशाही मार्ग, जयपुर

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म.सा. के सुशिष्य तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. की पावन दीक्षा के मंगलमय प्रसंग पर दिनांक १५ दिसम्बर १९८३ को स्वधर्मी वात्सल्य के पुनीत लक्ष्य से अनन्य गुरु भक्त सुश्रावकगण सर्वश्री इन्दरचन्द जी हीरावत, श्री पूनमचन्दजी बडेर एवं श्री कैलाश चन्द जी हीरावत के सत्प्रयासों से एक सार्वजनिक प्रन्यास के रूप में इस कोष की स्थापना की गई। यह प्रन्यास आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के तहत अनुदानों की कर-मुक्ति हेतु पंजीकृत है। वर्तमान में कोष के पास ५५ लाख रुपये से अधिक का ध्रुवकोष है एवं इसके द्वारा प्रतिवर्ष २६५ परिवारों को ७ लाख ७० हजार रुपये की प्रतिमाह सहयोग राशि उपलब्ध कराई जा रही है।

- **बाल शोभा संस्थान,** पुराना अनाथालय भवन, बागर चौक, जोधपुर

सेवा अहिंसा का विधेयात्मक रूप है। परम श्रद्धेय आचार्यदेव के अनन्य भक्त, सेवा धर्म के पर्याय कुशल प्रशासक, विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड के चेयरमेन जैसे गौरवशाली पद से सेवानिवृत्त श्री देवेन्द्र राजजी मेहता आई. ए. एस. के संकल्प एवं प्रेरणा का परिणाम है– बाल शोभा संस्थान, जिसमें मातृ पितृ विहीन बालकों का ममता, प्यार, दुलार एवं वात्सल्य के साथ लालन-पालन किया जाता है।

इस संस्थान की स्थापना १५ अगस्त १९८७ को ४ बालकों के प्रवेश से की गयी। आज इसमें ८७ बालक हैं। संस्थान एक स्वयंसेवी रजिस्टर्ड संस्था है जो बिना किसी भेदभाव, क्षेत्र, धर्म, जाति आदि के इन बालकों के निःशुल्क आवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा व शिक्षा की सुचारु रूपेण व्यवस्था कर रही है। स्थापना काल से ही संस्थान का संचालन करने वालों में प्रमुख समाज सेविका श्रीमती सुशीला जी बोहरा अग्रगण्य हैं।

- **स्वधर्मी सहायता कोष**, जलगाँव

समाज के गरीब भाई-बहिनों की सहायता करने के लिये इस कोष की स्थापना श्री सुरेश कुमारजी जैन द्वारा प्रदत्त ३ लाख ४२ हजार की राशि से की गयी थी, जिसके माध्यम से जरूरतमन्दों को ३० प्रतिशत कम मूल्य पर राशन उपलब्ध कराया जाता है तथा आर्थिक-व्यवस्था के लिये बिना ब्याज ऋण दिया जाता है। अब तक १५० भाइयों को बिना ब्याज करीब ६ लाख रु. के ऋण दिये जा चुके हैं।

- **श्री महावीर रत्न कल्याण कोष**, सवाईमाधोपुर

अपने स्वधर्मी भाई-बहिनों की सार-संभाल एवं समय-समय पर अपेक्षित सहयोग प्रदान करना श्रावक का कर्तव्य है। इसी पवित्र भावना से परम श्रद्धेय आचार्य भगवन्त के १९८८ के वर्षावास में इस कोष की स्थापना हुई।

संस्था वर्तमान में अनेक परिवारों को मासिक सहयोग प्रदान कर उनकी आवश्यकताएं पूरी करने का प्रयास कर रही है।

नोट – पूज्य आचार्यप्रवर के महाप्रयाण के अनन्तर गठित संस्थाओं का परिचय यहाँ स्थानाभाव से नहीं दिया जा रहा है।

■

आचार्यप्रवर के ७० चातुर्मास : एक झलक

क्र. सं.	विक्रम संवत्	ईसवीय सन्	चातुर्मास स्थल	सन्त-नामावली एवं अन्य चातुर्मास	विशेष विवरण
१	१९७८	१९२१	अजमेर	१.आचार्यप्रवर पूज्य श्री शोभाचन्द जी म.सा., २. मुनि श्री हरखचंदजी ३. मुनि श्रीलाभचंदजी ४. मुनि श्री सागरमलजी ५. मुनि श्री लालचन्दजी ६. मुनि श्री हस्तीमलजी ७. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा-७ **नागौर** — १. मुनि श्री सुजानमलजी, २. मुनि श्री भोजराजजी ३. मुनि श्री अमरचन्दजी जी - ठाणा ३	पौष शुक्ला चतुर्दशी संवत् १९७७ को अजमेर में चरितनायक की दीक्षा। साथ में मुनि श्री चौथमलजी, माता महासती श्री रूपकंवरजी एवं महासती अमृतकंवरजी की भी उसी दिन दीक्षा। प्रथम चातुर्मास अजमेर में ही विशेष विनति पर।
२	१९७९	१९२२	जोधपुर	१. आचार्यप्रवर पूज्य श्री शोभाचन्दजी म.सा. २.मुनि श्री सुजानमलजी ३. मुनि श्री भोजराजजी ४. मुनि श्री अमरचन्दजी ५. मुनि श्री लाभचन्दजी ६. मुनि श्री सागरमल जी ७. मुनि श्री हस्तीमलजी ८. मुनि श्री चौथमलजी, ठाणा -८ **अजमेर** - १. मुनि श्री हरखचन्द जी, २. मुनि श्री लालचन्दजी ठाणा २	१. पूज्य श्री हरखचंदजी म.सा. का भाद्रपद कृष्णा अमावस को स्वर्गवास हो जाने पर मुनि लालचंदजी अकेले रह जाने से वे अजमेर से जोधपुर पधार गये। २. मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी (बड़े) की दीक्षा जोधपुर में स्थित मुथाजी के मंदिर में अगहन (मार्गशीर्ष) शुदि पूनम संवत् १९७९ में हुई। इनके साथ ही महासती छोगाजी (लोढण जी) एवं किशनकंवर जी की दीक्षा सम्पन्न हुई। इससे पूर्व वैशाख माह में महासती सज्जनकंवर जी एवं सुगनकंवर जी की दीक्षा सिंहपोल, जोधपुर में सम्पन्न।
३	१९८०	१९२३	जोधपुर	१. आचार्यप्रवर पूज्य श्री शोभाचन्दजी म.सा. २.मुनि श्री सुजानमलजी ३. मुनि श्री भोजराजजी ४. मुनि श्री अमरचन्दजी ५. मुनि श्री लाभचंदजी ६. मुनि श्री सागरमलजी ७. मुनि श्री लालचंदजी ८. मुनि श्री हस्तीमलजी ९. मुनि श्री चौथमलजी १०. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी ठाणा-१०	माघ पूर्णिमा संवत् १९७९ से आचार्यप्रवर श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. द्वारा जोधपुर के मोती चौक स्थित पेटी के नोहरे में स्थिरवास।
४	१९८१	१९२४	जोधपुर	" "	पूज्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. का श्रावण कृष्णा अमावस्या रविवार संवत् १९८३ को स्वर्गवास। पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्दजी म.सा. के संकेतानुसार चरितनायक का आचार्यपद हेतु चयन, किन्तु उन्हें उनकी अभिलाषा के अनुसार अभी अध्ययन का समय दिया गया। स्वामी जी श्री सुजानमलजी महाराज को संघ-व्यवस्थापक और श्री भोजराज जी महाराज को परामर्शदाता बनाया गया। कार्तिक पूर्णिमा संवत् १९८३ को महासती सुन्दरकंवर जी की अजमेर में भागवती दीक्षा। महासती चूना जी की दीक्षा भी अजमेर में ही।
५	१९८२	१९२५	जोधपुर	" "	
६	१९८३	१९२६	जोधपुर	" "	

७	१९८४	१९२७		१. मुनि श्री भोजराजजी जी २. मुनि श्री हस्तीमलजी ३. मुनि श्री चौथमलजी ४. मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी ठाणा-४ **पाली** – १. श्री सुजानमलजी म. सा. २. मुनि श्री अमरचन्दजी जी ३. मुनि श्री लाभचन्दजी ४. मुनि श्री सागरमलजी ५. मुनि श्री लालचन्दजी ठाणा-५	वैशाख माह में पीपाड़ निवासी महासती धूला जी की दीक्षा महासती श्री भीमकंवर जी की निश्रा में सम्पन्न। **पीपाड़** - भोजराजजी म. का यह चौमासा संतों के ज्ञानार्जन की दृष्टि से हुआ। **पाली** - नारेलों का भखार में चातुर्मास, प्रवचन मकान के प्रांगण में।
८	१९८५	१९२८	किशनगढ़	१. श्री सुजानमलजी म.सा., २. मुनि श्री भोजराजजी, ३. मुनि श्री अमरचंदजी ४. मुनि श्री लाभचन्दजी ५. मुनि श्री सागरमलजी ६.मुनि श्री लालचन्दजी ७. मुनि श्री हस्तीमलजी ८. मुनि श्री चौथमलजी ९. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी ठाणा-९	मुनि श्री सागरमलजी म. सा. का श्रावण बदि १३ संवत् १९८५ में ५९ दिन का संथारापूर्वक स्वर्गवास हुआ।
९	१९८६	१९२९	भोपालगढ़	श्री सुजानमलजी म. सा. २. मुनि श्री भोजराजजी ३. मुनि श्री अमरचंदजी ४. मुनि श्री हस्तीमलजी ५. मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी ठाणा-५ **अजमेर** – १. मुनि श्री लाभचन्दजी, २. मुनि श्री लालचन्दजी ३. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा-३	
१०	१९८७	१९३०	जयपुर	१. श्री सुजानमल जी म.सा. २. मुनि श्री भोजराजजी ३. मुनि श्री अमरचंद जी ४. मुनि श्री लाभचंदजी, ५. मुनिश्री लालचंदजी ६. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ७. मुनि श्री चौथमलजी, ८. मुनि श्री लक्ष्मीचंदजी ठाणा८	अक्षय तृतीया संवत् १९८७ को मुनि श्री हस्तीमलजी म.सा. को जोधपुर में सवाईसिंह जी की पोल में चतुर्विध संघ की उपस्थिति में स्थानक में आचार्य पदवी प्रदान की गई।
११	१९८८	१९३१	रामपुरा (मालवा)	१. मुनि श्री भोजराजजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. (चरितनायक) ३. मुनि श्री लालचन्दजी ठाणा ३ **रायपुर** (झालरापाटन के पास) - १. मुनि श्री सुजानमलजी २. मुनि श्री अमरचन्दजी ३. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी ठाणा ३ **मन्दसौर (मालवा)** - १. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	
१२	१९८९	१९३२	रतलाम (मालवा)	१. श्री सुजानमल जी म.सा. २. मुनि श्री भोजराजजी , ३. मुनि श्री अमरचन्दजी ४. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा., ५. मुनि श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ठाणा ६ **खाचरोद** – १. मुनि श्री लाभचंदजी २. मुनि श्री लालचंदजी ३. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा ३	**रतलाम** – महागढ़ निवासी छोटे लक्ष्मीचंदजी म. की दीक्षा उज्जैन में आषाढ़ कृष्णा ५ संवत् १९८९ को सम्पन्न। अजमेर साधु सम्मेलन में पधारते समय केकड़ी में हुए शास्त्रार्थ में विजय से यश-कीर्त्ति।

१३	१९९०	१९३३	जोधपुर	१. श्री सुजानमलजी म. सा. २. मुनि श्री भोजराजजी ३. मुनि श्री अमरचन्दजी, ४.आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ५. मुनि श्री लक्ष्मीचंजी ६.मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ठाणा-६ **भोपालगढ़**– १. मुनि श्री लाभचन्दजी २.मुनि श्री लालचन्दजी, ३. मुनि श्री चौथमलजी	संवत् १९९०को बृहत्साधु सम्मेलन चैत्र शुक्ला १०को अजमेर में शुरु हुआ। चरितनायक के साथ स्वामीजी श्री भोजराजजी म. एवं श्री चौथमलजी म. भी प्रतिनिधि। आचार्यश्री आत्मारामजी म. के साथ संयुक्त चातुर्मास। व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म., श्री रामलाल जी म., मुनि श्री हेमचन्दजी म. आदि भी यहाँ ही थे।
१४	१९९१	१९३४	पीपाड़	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनिश्री भोजराजजी ३. मुनि श्री अमरचन्द जी ४.आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ५. मुनि श्री पं. लक्ष्मीचंद जी६.मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ठाणा -६ **गगराणा – मारवाड़** १. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री लालचन्दजी ३. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा-३	महासती श्री सुगनकंवर जी का ५२ दिन का संथारा महामन्दिर में भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को पूर्ण हुआ। माघ शुक्ला पंचमी को जोधपुर में महासती श्री स्वरूपकंवर जी एवं महासती श्री बदनकंवर जी की भागवती दीक्षा सम्पन्न।
१५	१९९२	१९३५	पाली	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री भोजराज जी ३. मुनि श्री अमरचंदजी ४.आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ५. मुनि श्री पं. बड़े लक्ष्मीचंदजी ६.मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ठाणा -६	
१६	१९९३	१९३६	अजमेर	" "	महासती हरकंवर जी की दीक्षा द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ५ को सम्पन्न। माघ शुक्ला १३ को किशनगढ में महासती अमरकंवर जी (छोटे) की दीक्षा। मुनि श्री दर्शन विजयजी से शास्त्रार्थ अजमेर में। महासती श्री राधा जी, धनकंवरजी, छोगा जी आदि विराजमान। स्थान - ममैयों का नोहरा
१७	१९९४	१९३७	उदयपुर	१. श्री सुजानमल जी म.सा. २. मुनि श्री भोजराजजी ३.मुनि श्री अमरचंदजी ४. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ५. मुनि पं. बड़े लक्ष्मीचंदजी, ६. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ७. मुनि श्री लालचंदजी ठाणा-७	संवत् १९९४ फाल्गुन शुक्ला ११ को मुनिवर्य श्री भोजराज जी म.सा. का देहावसान रतलाम में (स्थान - ओसवाल न्याती नोहरा) महासती फूलकंवर जी की महामन्दिर में मार्ग शीर्ष शुक्ला पञ्चमी को भागवती दीक्षा।
१८	१९९५	१९३८	अहमदनगर	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री अमरचंदजी ३. आचार्यश्री हस्तीमलजी म.सा., ४. मुनि श्री पं. बड़े लक्ष्मीचंदजी ५. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री लालचंदजी ठाणा ६	महासती लाडकंवर जी की माघ शुक्ला १३ संवत् १९९५ को महामन्दिर, जोधपुर में श्रमणी दीक्षा।
१९	१९९६	१९३९	सतारा (महाराष्ट्र)	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री अमरचंदजी ३. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ४. मुनि श्री पं. बड़े लक्ष्मीचंदजी ५. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री लालचंदजी म. ७. मुनि श्री जोरावर मल जी ठाणा -७	बारणी निवासी जोरावर मल जी (जालमचन्द्रजी) की दीक्षा सातारा में आश्विन शुक्ला १३ संवत् १९९६ में सेठ मोतीलाल जी मुथा के सहयोग से सम्पन्न। महासती श्री अमरकंवर जी का कार्तिक शुक्ला १ को जयपुर मे स्वर्गवास। कार्तिक शुक्ला ९ को महासती लालकंवर जी म.सा. का सिंहपोल में देवलोक गमन।
२०	१९९७	१९४०	गुलेजगढ़ (कर्नाटक)	" "	मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को भोपालगढ में महासती उगमकंवर जी की दीक्षा।

२१	१९९८	१९४१	अहमदनगर	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री अमरचंदजी ३. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ४. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ५.मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री जोरावरमलजी ठाणा६	महासती धनकंवर जी म.सा. (सबसे छोटे) की आषाढ शुक्ला २ को जोधपुर में भागवती दीक्षा।
२२	१९९९	१९४२	लासलगाँव (नासिक)	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री अमरचन्दजी ३. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ४. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ५. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ठाणा ५ यहाँ आपके प्रवचनामृत से चातुर्मास के पूर्व समाज में मन-मुटाव दूर हुआ।	महासती श्री धूलाजी म.सा. का महामन्दिर-जोधपुर में स्वर्गारोहण । मार्गशीर्ष शुक्ला ११ संवत् १९९९ को भोपालगढ़ में चरितनायक की माताश्री महासती रूपकंवर जी म.सा. का स्वर्गारोहण।
२३	२०००	१९४३	उज्जैन	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २.मुनि श्री अमरचंदजी ३. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ४. मुनि पं. श्री लक्ष्मीचंदजी ५. मुनि छोटे लक्ष्मीचन्दजी ६. नवदीक्षित मुनि माणकचंद जी ठाणा -६	श्री माणकचन्दजी म. की दीक्षा आषाढ शुक्ला २ संवत् २००० को खाचरोद में सम्पन्न।
२४	२००१	१९४४	जयपुर	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २ .आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि छोटे लक्ष्मीचदंजी ठाणा ३ **उदयपुर** - १. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ३. मुनि श्री माणकचंदजी ठाणा ३	मुनि श्री इन्द्रमलजी के शिष्य मुनि मोतीलाल जी व मुनि लालचंदजी ठाणा २ का भी चातुर्मास था।
२५	२००२	१९४५	जोधपुर	१. श्री सुजानमलजी म.सा. २. मुनि श्री अमरचंदजी ३. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ४. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ५. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री माणकचंदजी ठाणा-६	महासती श्री पानकंवर जी म.सा. का श्रावण कृष्णा २ को पीपाड़ में समाधिमरण।
२६	२००३	१९४६	भोपालगढ़	" "	महासती श्री सायरकंवर जी एवं महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा. की माघ शुक्ला १३ संवत् २००३ को बारणी ग्राम में श्रमणी दीक्षा।
२७	२००४	१९४७	अजमेर	" "	ज्येष्ठ शुक्ला ७ को महासती श्री उमरावकंवर जी म. सा. की भागवती दीक्षा। महासती श्री छोगाजी म.सा , बड़े राधा जी म.सा. आदि सतीमण्डल का चातुर्मास भी अजमेर में ही।
२८	२००५	१९४८	ब्यावर	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ३. मुनि श्री माणकचंदजी ठाणा-३ **पाली**—१. श्री सुजानमलजी म.सा., २ मुनि श्री अमरचन्दजी, ३. मुनि पं. श्री लक्ष्मीचंदजी ठाणा-३	अगहन सुद २ मु. लाभचंदजी एवं चौथमल जी संवत् २००५ में शामिल। महासती बदनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा का चातुर्मास भी ब्यावर में।

२९	२००६	१९४९	पाली मारवाड़	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ४. मुनिश्री रतनजी ठाणा -४ **जोधपुर** --१. मुनि श्री सुजानमलजी २. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ३. मुनि श्री माणकचंदजी **भोपालगढ़**--१. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	मुनि श्री रतनजी पंजाब से आए एवं पूर्व श्रद्धा के कारण साथ रहे।
३०	२००७	१९५०	पीपाड़	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ४. मुनि श्री रतनजी ठाणा-४ **जोधपुर**--श्री सुजानमलजी म.सा., २. मुनि श्री पं. लक्ष्मीचंदजी ३. मुनि श्री माणकचन्दजी ठाणा-३ **पुष्कर** -- १. मुनि श्री लाभचंदजी , २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा-२	स्थविरा महासती श्री तीजा जी म.सा. का चैत्र मास में घोड़ों का चौक , जोधपुर में स्वर्गवास। महासती श्री संतोषकंवर जी म.सा. की ज्येष्ठ शुक्ला ५ संवत् २००७ को अजमेर में दीक्षा। फाल्गुन शुक्ला २ को महासती श्री बड़े धनकंवर जी म.सा. का भोपालगढ में स्वर्गारोहण।
३१	२००८	१९५१	मेड़ता	१. मुनि श्री अमरचंदजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ४. मुनि श्री रतनजी ठाणा-४ **जोधपुर**--१ श्री सुजानमल जी म. सा. २. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी, ३. श्री माणकमुनि जी ठाणा-३ **अजमेर** -- १. मुनि श्री लाभचंदजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा-२	
३२	२००९	१९५२	नागौर	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ४. मुनि श्री रतनजी ठाणा ४ **जोधपुर** १. श्री सुजानमल जी म.सा. २. मुनि पं. लक्ष्मीचंदजी ३. मुनि श्री माणकचन्द जी ठाणा-३ **मदनगंज** -- १. मुनि लाभचंदजी २. मुनि चौथमलजी ठाणा-२	वैशाख शुक्ला ३ संवत् २००९ से प्रारम्भ सादड़ी सम्मेलन में प्रतिनिधित्व। पूज्य श्री जयमलजी म.सा.की सम्प्रदाय के मुनि श्री चौथमलजी म.का संथारा आषाढ शुक्ला ३ को जोधपुर में सम्पन्न। बाद में चरितनायक श्री उग्र विहार करके नागौर पधारे। मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पाली में मुनि श्री जयन्त लाल जी म.सा., महासती श्री शांतिकंवर जी म.सा. एवं महासती श्री ज्ञानकंवर जी म.सा. की भागवती दीक्षा। १७ जनवरी (माघ शुक्ला २) से ३० जनवरी १९५३ तक सोजत में मंत्री मुनिवरों के सम्मेलन में विचार-विमर्श में सक्रिय भूमिका।
३३	२०१०	१९५३	जोधपुर	१. मुनि श्री अमरचंदजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंद जी ४. श्री माणक मुनि जी ५. मुनिश्री जयंतजी ६.मुनिश्री सुगनचंद जी ठाणा ६ **सरदारपुरा (जोधपुर)** - १. श्री सुजानमलजी म.सा. २. प. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी ३. मुनि श्री रतनजी **सादड़ी** १. मुनि श्री लाभचंदजी, २. मुनि श्री चौथमलजी म. ठाणा-२	ज्येष्ठ शुक्ला १० संवत् २०१० को लाडपुरा में मुनि श्री सुगनचन्द जी म. एवं महासती जड़ावकंवर जी की भागवती दीक्षा। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी संवत् २०१० को महासती श्री चूनाजी म.सा. का समाधिमरण। माघ कृष्णा चतुर्दशी को स्वामी जी श्री सुजानमल जी म.सा. का जोधपुर में स्वर्गारोहण।

				जोधपुर में चरितनायक का चातुर्मास उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. प्रधानमंत्री श्री आनन्द ऋषि जी म.सा., व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म.सा., कवि श्री अमरचन्दजी म.सा., पं. रत्न श्री समर्थमल जी म.सा., बाबाजी श्री पूर्णमल जी म.सा. आदि संत-वरेण्यों के साथ हुआ।	
३४.	२०११	१९५४	जयपुर	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी म. ४. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म. ५. मुनि श्री माणकचन्द जी ६. मुनि श्री रतनजी ७. मुनि श्री जयंत जी ८. मुनि श्री सुगनजी ठाणा -८ **सोजत सिटी**—१. मुनि श्री लाभचंद जी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	महासती श्री जसकंवरजी आदि सती- मण्डल भी जयपुर विराजित ।
३५	२०१२	१९५५	अजमेर	१. मुनि श्री अमरचंदजी २. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. 'मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ४. मुनि श्री रतन जी ५. मुनि श्री जयन्तजी ६. श्री सुगनमुनि जी ठाणा ६ **विजयनगर** — १. पं. लक्ष्मीचंदजी २. श्री माणकमुनि जी ठाणा २ **डेहण (वन्दर)** — १. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	मुनि श्री आनन्दऋषिजी के सम्प्रदाय के मुनि श्री पुष्पऋषि जी, मुनि श्री हिम्मतऋषिजी का भी चातुर्मास चरितनायक की सेवा में । २. महासती श्री धनकंवर जी ठाणा ३ का चातुर्मास भी अजमेर में। महासती श्री राजकंवर जी एवं जतनकंवर जी की क्रमशः कार्तिक शुक्ला १० एवं मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को दीक्षा। २६ मार्च से ६ अप्रेल तक भीनासर सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका। १ अप्रेल १९५६ चैत्र शुक्ला २०१३) को श्रमण संघ में उपाध्याय मनोनीत।
३६	२०१३	१९५६	बीकानेर	१. मुनि श्री अमरचंदजी २. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ४. श्री माणकमुनि जी ५. श्री जयन्तमुनि जी ६. श्री सुगनमुनि जी ठाणा ६ **भीनासर-गंगासर**—१.मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी २.मुनि श्री रतनजी ठाणा २ **माटूंगा मुम्बई** — मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	स्थविरा महासती श्री छोगाजी म.सा. का आषाढ कृष्णा ४ संवत् २०१३ को अजमेर में स्वर्गारोहण। कोटा सम्प्रदाय के मुनि रामकुमार जी ठाणा ३, उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. के बड़े सन्त श्री पन्नालालजी म. ठाणा ५ का चातुर्मास भी बीकानेर में था। महासती श्री बदनकंवरजी, लाडकंवर जी आदि का चातुर्मास भी यहां ही था।
३७	२०१४	१९५७	किशनगढ़	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. चरितनायक श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी, ४. श्री माणकमुनि जी ५. श्री जयन्त मुनि जी ६. श्री सुगनमुनिजी ठाणा ६ **अजमेर** — १. मुनि पं. श्री लक्ष्मीचंदजी म. २. श्री रतनमुनिजी ठाणा २ **दादर-बम्बई**— १. मुनि श्री लाभचंदजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	मुनि श्री पन्नालालजी के शिष्य श्री हगामीलाल जी ठाणा १ साथ में थे।

३८	२०१५	१९५८	दिल्ली	१. मुनि श्री अमरचंदजी २. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ४. श्री माणकमुनि जी ५. श्री जयन्तमुनि जी ., ६. श्री सुगनमुनिजी **कांदला** – १. पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी म. २. श्री रतनमुनिजी ठाणा २ सादड़ी (साण्डेराव), १. मुनि श्री लाभचन्दजी , २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	**दिल्ली** - मुनि श्री पन्नालालजी म. के शिष्य श्री हगामीलाल जी म. ठाणा १ सेवा में । पं. मुनि श्री प्रेमचंद जी, श्री रोशनलाल जी म. सेवा में । स्थानक सब्जी मंडी । हंगरी निवासी बौद्ध धर्म के विद्वान् फैलिक्स बैली जैन सिद्धान्तों की विशेष जानकारी के लिए उपस्थित । माघ शुक्ला ६ को ब्यावर में महासती श्री धनकंवर जी (छोटे) का एवं फाल्गुन शुक्ला ६ को महासती श्री अमरकंवर जी का समाधिमरण ।
३९	२०१६	१९५९	जयपुर	१. मुनि श्री अमरचन्दजी २. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ३. पं. लक्ष्मीचन्दजी ४. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ५. श्री माणकमुनि जी ६.श्री जयन्तमुनि जी, ७. श्री सुगन मुनि जी ८.श्री रतनमुनि जी ९. श्री श्री चंदजी म. ठाणा ९ **अजमेर** १. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा -२	मुनि श्री श्रीचन्द जी म.सा. की दीक्षा ज्येष्ठ शुक्ला ११ सं. २०१६ को जयपुर में । महासती श्री बदनकंवर जी, श्री लाडकंवर जी, श्री मैनासुन्दरी जी म. आदि सती-मण्डल का चातुर्मास भी जयपुर में ।
४०.	२०१७	१९६०	अजमेर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ३. श्री माणक मुनि जी ४. श्री सुगनमुनि जी ५. मुनि श्री श्रीचन्दजी ठाणा -५ **टोंक** – १. मुनि पं. लक्ष्मीचन्दजी २. श्री रतनमुनि जी ३. श्री जयन्त मुनि जी ठाणा ३ **भोपालगढ़** – १. मुनि लाभचंदजी २. मुनि चौथमलजी म. ठाणा २	स्वामी मुनि श्री अमरचन्दजी म. का स्वर्गवास आषाढ़ कृष्णा ३ संवत् २०१७ को जयपुर में ।महासती श्री सुगनकंवर जी म.सा. आगूचा (भीलवाड़ा) में माघ शुक्ला ५ को भागवती दीक्षा ।
४१	२०१८	१९६१	जोधपुर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी म. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ४. मुनि श्री माणकचन्द जी ५. मुनि श्री रतनजी, ६. मुनि श्री जयन्तजी ७. मुनि श्री सुगनचन्दजी ८. मुनि श्री श्रीचन्दजी ठाणा ८ **मदनगंज** – १. मुनि श्री लाभचंदजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	**जोधपुर** – महासतीजी श्री गोगाजी म. आदि का स्थिरवास, घोड़ों का चौक, जोधपुर में । पूज्य श्री का चातुर्मास सिंहपोल में । पौष शुक्ला १२ को अजमेर में महासती श्री इचरजकंवर जी म.सा. की भागवती दीक्षा । श्रावण कृष्णा १३ को किशनगढ में महासती छोटा हरकंवर जी म.सा. का स्वर्गवास ।
४२.	२०१९	१९६२	सैलाना (मालवा)	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. पंडित रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी ३. मुनि श्री माणकचन्दजी ४. मुनि श्री जयन्तजी ५. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ६. मुनि श्री रतनजी ७. मुनि श्री सुगनजी ८. मुनि श्री श्रीचन्दजी ठाणा८ **जोधपुर**– १. मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा का चातुर्मास सैलाना में ही । कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा संवत् २०१९ को महासती श्री हुलासकंवर जी म.सा. का जोधपुर में स्वर्गवास । मार्गशीर्ष शुक्ला १० को सैलाना में महासती श्री वृद्धिकंवर जी म.सा. की भागवती दीक्षा ।

४३	२०२०	१९६३	पीपाड़	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ३. मुनि श्री माणकचन्दजी ४. मुनि श्रीजयंत जी ५. श्री मगनमुनि जी ६.मुनि श्री मानचन्दजी ७. मुनि श्री हीराचन्द जी ठाणा७ **पाली** - १. पं. रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी २. मुनि श्री रतनजी ३. मुनि श्री श्रीचन्दजी ठाणा ३ **जोधपुर** - मुनि श्री लाभचन्दजी २. मुनि श्री चौथमलजी ठाणा २	वैशाख शुक्ला १३ संवत् २०२० को श्री मगनमुनिजी एवं श्री मानचन्द्र जी म.सा. की जोधपुर के हाई स्कूल प्रांगण में दीक्षा। मुनि श्री सुगनचन्द जी म.सा.का ज्येष्ठ शुक्ला १० संवत् २०२० को जाजीवाल में स्वर्गवास। पीपाड़ में मुनि श्री हीराचन्द्र जी म.सा. की कार्तिक शुक्ला ६ संवत् २०२० को श्रमण दीक्षा। माघ शुक्ला द्वितीया संवत् २०२० को महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. की जयपुर में भागवती दीक्षा।
४४	२०२१	१९६४	भोपालगढ़	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म., ३. श्री माणकमुनि जी ४. श्री रतन मुनिजी ५. श्री श्रीचंद जी म. ६. श्री मगन मुनि जी म. ७. श्री हीरामुनिजी म. ठाणा७ **मेड़ता** — १. पं. लक्ष्मीचन्दजी म. २. श्री जयन्तमुनि जी म. ३. श्री मानमुनि जी म.	
४५	२०२२	१९६५	बालोतरा	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी ३. श्री माणकमुनि जी ४. श्री जयन्त मुनि जी ५. श्री श्रीचंदजी म. ६. श्री मगनमुनि जी ७. श्री हीरामुनि जी ठाणा ७ **कोसाणा** — १. पं. लक्ष्मीचंदजी म. २. श्री रतनमुनि जी ३. श्री मानमुनि जी म. ठाणा ३	इस चातुर्मास में श्रावक संघ में विशेष धर्मध्यान की वृद्धि हुई और इतिहास निर्माण समिति की योजना बनी, कार्य प्रारम्भ हुआ और आचार्य श्री के उपदेश से सिंवांची पट्टी का वर्षों से उलझा हुआ झगड़ा समाप्त हुआ तथा समाज में एकता का संचार हुआ।
४६	२०२३	१९६६	अहमदाबाद	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. पं. रत्न श्री लक्ष्मीचन्द म., ३. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. ४. श्री माणकमुनि जी, ५. श्री रतनमुनिजी ५. श्री जयन्त मुनि जी ७. श्री श्रीचन्दजी म. ८. श्री मगनमुनि जी म. ९. श्री मानमुनि जी म. १०. श्री हीरामुनि जी ठाणा १०	स्थानक बुधा आश्रम, आगम मंदिर में विराजे। महासती जी श्री सुन्दर कंवर जी म. ठाणा ३ स्थानकवासी सोसायटी में चातुर्मासार्थ विराजे।
४७	२०२४	१९६७	जयपुर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. पं. रत्न श्री लक्ष्मीचंदजी म. ३. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ४. श्री माणकमुनि जी म. ५. श्री जयन्त मुनि जी ६.श्री श्रीचन्दजी म. ७. श्री मगनमुनि जी ८.श्री मानमुनिजी ९. श्री हीरामुनिजी ठाणा ९	वैशाख शुक्ला ६ संवत् २०२४ को महासती श्री रतनकंवर जी म.सा. का जयपुर में श्रमणी जीवन में प्रवेश। महासती श्री बदनकंवरजी म., श्री लाडकंवर जी म., श्री मैनासुन्दरी जी म. आदि ठाणा का भी चातुर्मास जयपुर। संवत् २०२४ की मार्गशीर्ष कृष्णा २ को चरितनायक ने श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा आदर्शनगर जयपुर में की।
४८	२०२५	१९६८	पाली	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. छोटे लक्ष्मीचन्दजी म. ३. श्री माणकमुनि जी ४. श्री श्रीचंदजी म. ५. श्री मगनमुनिजी म. ६. श्री हीरामुनि जी ठाणा ६ **भोपालगढ़** — १. पं. रत्न श्री लक्ष्मीचंदजी म. २.श्री जयन्तमुनि जी ३.श्री मानमुनि जी ठाणा३	स्थान - सुराणा मार्केट, पाली महासती श्री सुन्दरकंवरजी म.सा. आदि सतीवृन्द का चातुर्मास भी पाली में ही था।

४९	२०२६	१९६९	नागौर	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी जी म. ३. श्री माणकमुनि जी ४. श्री मगनमुनिजी ५. श्री हीरामुनिजी ठाणा ५ **जोधपुर** – पं. रत्न श्री लक्ष्मीचन्दजी म. २. पं. श्री लाभचंदजी म. ३. श्री चौथमलजी म. ४. श्री मानमुनिजी ५. श्री जयन्तमुनि जी ६. श्री श्रीचंदजी म. ठाणा ६	महासती श्री सुशीला कंवर जी म.सा. की ज्येष्ठ शुक्ला ६ संवत् २०२६ को जोधपुर में श्रमणी दीक्षा। जोधपुर के सरदारपुरा स्थित कोठारी भवन में श्री लाभचंदजी म. स्थिरवास विराजित थे। पं. लक्ष्मीचंद जी म. अस्वस्थता के कारण यहाँ विराजे। महासती श्री सुन्दरकंवरजी म.सा. का चातुर्मास भी जोधपुर में । मुनि श्री लाभचंदजी म. का आसोज कृष्णा ६ को स्वर्गवास। मुनि श्री शीतलचन्दजी की दीक्षा माघ शुक्ला १३ को पावटा, जोधपुर में।
५०	२०२७	१९७०	मेड़ता सिटी	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म., ३. मुनि श्री चौथमलजी ४. श्री मगनमुनि जी ५.श्री हीरामुनिजी ६.श्री शीतल मुनि जी ठाणा ६ **थांवला**– १. पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी २. श्री जयन्त मुनि जी ३. श्री मानमुनिजी **रीयां (सेरसिंह जी की)** १. श्री माणकमुनि जी २. श्री श्रीचंदजी म. ठाणा-२ माघ शुक्ला प्रतिपदा से सप्तमी तक (२७जनवरी से २ फरवरी १९७१ तक, अजमेर में शोभागुरु की दीक्षा शताब्दी एवं आचार्यप्रवर की दीक्षा अर्द्धशती पर साधना-समारोह)	स्थानक महावीर भवन। श्री जयमल जैन छात्रावास में महासती श्री हरकंवरजी स्थिरवास ठाणा ४ से, श्री किशनकंवर जी म. ने मासखमण की तपस्या की। वयोवृद्ध श्री जयन्तीलाल जी म. की अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के बाद भी थांवला विराजे और आचार्य श्री मेड़ता से विहार कर थांवला पधारे।
५१	२०२८	१९७१	जोधपुर	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. पं. श्री लक्ष्मीचन्दजी म. , ३. पं. श्री चौथमलजी म. ४. श्री श्रीचंदजी म. ५. श्री मानमुनि जी म. सा. ६. श्री माणकमुनि जी म. सा. ७. श्री जयंतमुनि जी ८. श्री हीरामुनि जी ९. श्री शीतल मुनि जी ठाणा९ **भोपालगढ**–१. मुनि श्री छोटे लक्ष्मीचंद जी २.श्री मगनमुनि जी, ३. श्री शुभमुनि जी ठाणा ३	श्री शुभमुनि जी म.सा. की दीक्षा जयपुर शहर में सं. २०२८ वैशाख शुक्ला ५ को सम्पन्न। फाल्गुन कृष्णा द्वादशी संवत् २०२८ को श्री मगनमुनिजी का जोधपुर में स्वर्गवास (ठाणा २ श्री माणकमुनि जी म., श्री जयन्तमुनि जी म. सरदारपुरा में कोठारी भवन में) महासतियाँ जी म. श्री बदनकंवर जी, लाडकंवर जी म. आदि ठाणा १२ का चातुर्मास भी जोधपुर घोडों का चौक में।
५२	२०२९	१९७२	कोसाणा	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म. ३. श्री माणक मुनि जी ४. श्री जयन्तमुनि जी ५. श्री हीरामुनि जी ६. श्री शुभ मुनि जी ठाणा ६ **पाली** - १. श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म. २.श्री मानमुनिजी ३. श्री शीतलमुनि जी **भोपालगढ़** - १. श्री चौथमलजी म. २. श्री श्रीचंदजी म. ठाणा २	प्रथम वैशाख शुक्ला पंचमी को बड़े हरकंवरजी म.सा. का मेड़ता सिटी में स्वर्गारोहण । आषाढ कृष्णा ८ को महासती श्री स्वरूपकंवरजी का जोधपुर में स्वर्गगमन। श्रावण शुक्ला २ को महासती श्री फूलकंवरजी म.सा. का स्वर्गगमन। माघ शुक्ला त्रयोदशी को भखरी में बसन्त मुनिजी एवं महासती सूरज कंवर जी की दीक्षा।

५३	२०३०	१९७३	जयपुर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी म. ३. श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म. ४.श्री माणक मुनि जी, ५. मुनि श्री चौथमलजी, ६. श्री जयंत मुनि जी, ७. मुनि श्री श्रीचंदजी, ८. श्री मानमुनिजी, ९. श्री हीरामुनि जी, १०. श्री शीतलमुनि जी, ११.श्री शुभमुनि जी, १२. श्री बसंत मुनि जी ठाणा-१२	माघ शुक्ला पंचमी को आगरा में चंपकमुनि जी की दीक्षा। भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण वर्ष तप-त्याग के साथ मनाने की प्रेरणा।
५४	२०३१	१९७४	सवाई माधोपुर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा., २. श्री जयंत मुनि जी, ३. श्री हीरा मुनि जी, ४. श्री शीतलमुनि जी, ५. श्री शुभमुनि जी, ६. श्री बसंत मुनि जी म.सा. ठाणा ६ **विजयनगर** १. श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी, २. मुनि श्री चौथमलजी, ३. श्री मानमुनिजी ठाणा-३ **आलनपुर (सवाईमाधोपुर)** १. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी, २. श्री चंपकमुनि जी ठाणा-२ **जयपुर** १. श्री माणक मुनि जी, २. श्री श्रीचंदजी म. ठाणा-२	महासती श्री सुन्दर कंवर जी म.सा. 'प्रवर्तिनी' पद से अलंकृत।
५५	२०३२	१९७५	ब्यावर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री चौथमलजी म., ३. श्री हीरामुनि जी ४. श्री शीतलमुनि जी, ५. श्री शुभमुनि जी ६. श्री चंपकमुनिजी ७. श्री ज्ञान मुनि जी ८. श्री महेन्द्र मुनि जी ठाणा ८ **हरसोलाव** - १. श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म. २. श्रीमानमुनिजी ३. श्री बसंतमुनि जी ठाणा ३ **जोधपुर** - १. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. २. श्री माणकमुनि जी ३. श्री जयंति मुनि जी ४. श्रीश्रीचंदजी म. ५. श्री भद्रिकमुनि जी ठाणा ५	वैशाख शुक्ला १३ को संवत् २०३२ श्री भद्रिक मुनि जी द्वारा संयम जीवन अंगीकृत। वैशाख शुक्ला १४ को संवत् २०३२ को स्टेडियम मैदान, जोधपुर में श्री ज्ञान मुनि जी एवं श्री महेन्द्र मुनि जी की प्रव्रज्या। फाल्गुन शुक्ला ८ को श्री माणक मुनि जी म.सा. का जोधपुर में ३५ दिवसीय संथारे के साथ महाप्रयाण।
५६	२०३३	१९७६	बालोतरा	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. ३. श्री हीरामुनिजी ४. श्री शीतलमुनि जी ५. श्री चंपक मुनि जी ६. श्री महेन्द्र मुनि जी ठाणा ६ **गोटन** - १. श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी म. २. श्री मानमुनिजी ३. श्री भद्रिक मुनि जी म.सा. ठाणा ३ **जोधपुर** - १. श्री चौथमलजी म. २. श्री जयंतमुनि जी ३. श्री शुभ मुनि जी ठाणा ३ **अजीत** - १. श्री ज्ञान मुनिजी २. श्री श्रीचंदजी म. ३.श्री बसंतमुनि जी ठाणा ३	चैत्र शुक्ला ९ संवत् २०३३ को भोपालगढ़ में महासती श्री सरलकंवर जी, श्री सौभाग्यवती जी एवं श्री मनोहरकंवर जी म.सा. का श्रमणी जीवन में प्रवेश। फाल्गुन शुक्ला १२ को महासती श्री राजमती जी म.सा. की जोधपुर में दीक्षा।
५७	२०३४	१९७७	अजमेर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. ३. श्री हीरामुनिजी ४. श्री महेन्द्र मुनि जी म. ठाणा ४ **जोधपुर** - १. श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी म. २.श्रीजयंतमुनि जी ३. श्री मानमुनिजी ४. श्री शुभमुनिजी ठाणा ४	माघ शुक्ला १० संवत् २०३४ को पालासनी में श्री गौतम मुनि जी म.सा. का संयम-जीवन में प्रवेश।

				दुंधाड़ा १. श्री चौथमलजी म. २. श्री बसंतमुनि जी ३. श्री ज्ञानमुनिजी ठाणा ३ **आलनपुर** - १. श्री श्रीचन्दजी म. २. श्री भद्रिमुनिजी म. ठाणा २ **फालना** - १. श्री शीतलमुनिजी २. श्री चम्पकमुनिजी ठाणा २	
५८	२०३५	१९७८	इन्दौर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री हीरा मुनि जी , ३. श्री शीतल मुनि जी, ४. श्री शुभ मुनि जी ५. श्री महेन्द्र मुनि जी ६. श्री गौतम मुनि जी ठाणा ६ **जोधपुर** - १. श्री बड़े लक्ष्मी चंदजी म. २. श्री जयंत मुनि जी ३. श्री मानमुनि जी ४. श्री बसंत मुनि जी ठाणा ४ **महागढ** - १. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म., २. श्री चंपक मुनि जी ३. श्री नन्दीषेण मुनि जी ठाणा ३ **नागौर** १. मुनि श्री चौथमलजी २. श्री ज्ञान मुनि जी ठाणा २ **गंगापुर सिटी** १. श्री श्रीचंदजी म. २. श्री भद्रिक मुनि जी म.सा. ठाणा २	संवत् २०३५ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को श्री नंदीषेण मुनि जी की दीक्षा मन्दसौर में सम्पन्न। पं. श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म.सा. एवं युवाचार्य प्रवर श्री नानालालजी म.सा. का संयुक्त चातुर्मास, घोडों के चौक जोधपुर में। पौष शुक्ला दशमी संवत् २०३५ को जोधपुर में पं. रत्न श्री बड़े लक्ष्मीचंदजी म.सा. का स्वर्गवास।
५९	२०३६	१९७९	जलगांव	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी ३. श्री हीरामुनिजी ४. श्री शीतलमुनि जी ५. श्री महेन्द्र मुनि जी ६. श्री गौतम मुनि जी ७. श्री नन्दीषेण मुनि जी ठाणा७ **जोधपुर** १. मुनि श्री चौथमलजी २. श्री जयंतमुनि जी ३. श्री मानमुनि जी ४. श्री बसंत मुनि जी ५. श्री ज्ञान मुनि जी ठाणा ५ **भरतपुर** १. श्री श्रीचंदजी म. २. श्री शुभ मुनि जी ३. श्री चंपकमुनि जी ४. श्री भद्रिकमुनि जी ठाणा ४	
६०	२०३७	१९८०	मद्रास	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. ३. श्री श्रीचंदजी म. ४. श्री हीरामुनिजी ५. श्री शीतलमुनि जी ६. श्री शुभमुनि जी ७. श्री चंपक मुनिजी ८. श्री महेन्द्र मुनि जी ९. श्री गौतम मुनि जी १०. श्री नन्दीषेण मुनि जी ठाणा १० **जोधपुर** १. श्री जयंतमुनि जी २. श्री मानमुनि जी ३. श्री बसंत मुनिजी ४. श्री ज्ञान मुनि जी ठाणा४	द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी संवत् २०३७ को जोधपुर में श्री चौथमलजी म.सा. का स्वर्गवास। इसी माह की नवमी को महासती श्री ज्ञानकंवर जी म.सा. का जोधपुर में स्वर्गगमन। माघ शुक्ला पंचमी संवत् २०३७ को बैंगलोर में श्री प्रकाश मुनि जी म.सा., श्री धन्ना मुनि जी म.सा. आदि की भागवती दीक्षा।

६१	२०३८	१९८१	रायचूर	१. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री हीरामुनिजी, ३. श्री शीतल मुनिजी ४. श्री महेन्द्र मुनि जी ५. श्री गौतम मुनि जी ६. श्री नन्दीषेण मुनि जी ७. श्री धन्ना मुनिजी ठाणा ७ **बल्लारी** - १. श्री छोटे लक्ष्मीचंदजी म. २. श्री शुभमुनि जी ३. श्री चंपकमुनिजी ४. श्री प्रकाशमुनि जी ठाणा ४ **जोधपुर** - १. श्री जयंतमुनि जी २. श्री मानमुनिजी ३. श्री बसंत मुनिजी ४. श्री ज्ञान मुनिजी ठाणा ४ **सिन्धनूर** - १. श्री श्रीचंदजी म. २. श्री गणेश मुनि जी ३. श्री जम्बू मुनि जी ठाणा ३	वैशाख शुक्ला ६ संवत् २०३८ को रायचूर (कर्नाटक) में महासती श्री सरलेश प्रभाजी एवं महासती श्री चन्द्रकला जी म.सा. को भागवती दीक्षा। २०३८ पौष शुक्ला १५ को बीजापुर में छोटे लक्ष्मीचंदजी म.सा. का स्वर्गवास।
६२	२०३९	१९८२	जलगांव	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा., २. श्री श्रीचंदजी म. ३. श्री हीरामुनिजी, ४. श्रीशीतल मुनि जी, ५. श्री चंपकमुनि जी, ६. श्री महेन्द्र मुनि जी , ७. श्री गौतम मुनि जी, ८.श्री नन्दीषेण मुनि जी ९. श्री धन्नामुनि जी ठाणा ९ **जोधपुर** - १. श्री जयंतमुनि जी , २. श्री मानमुनिजी ३. श्री शुभ मुनिजी ४. श्री बसंत मुनि जी ५. श्री ज्ञान मुनि जी ६. श्री प्रकाश मुनि जी ठाणा ६	वैशाख शुक्ला ३ को महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. एवं महासती श्री विमलावतीजी म.सा. की जोधपुर में श्रमणी दीक्षा। मार्गशीर्ष शुक्ल ६ को जोधपुर में जयंती मुनि जी म.सा. का स्वर्गवास। पौष शुक्ला ३ को श्री श्रीचंदजी म.सा.का इन्दौर में स्वर्गवास। महासती श्री शांतिप्रभा जी म.सा. की इन्दौर में पौष शुक्ला पंचमी को भागवती दीक्षा।
६३	२०४०	१९८३	जयपुर	१. पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री मान मुनि जी ३. श्री हीरामुनिजी ४. श्री शीतल मुनि जी ५. श्री शुभमुनि जी ६. श्री बसन्त मुनि जी, ७. श्री चम्पक मुनि जी ८. श्री ज्ञान मुनि जी ९. श्री महेन्द्र मुनि जी १०. श्री गौतम मुनिजी ११. श्री नन्दीषेण मुनि जी १२. श्री प्रकाश मुनि जी, १३. श्री धन्ना मुनिजी ठाणा १३	मार्गशीर्ष शुक्ला १० संवत् २०४० को श्री प्रमोद मुनि जी म.सा. की दीक्षा जयपुर में सम्पन्न। मद्रास में मार्गशीर्ष शुक्ला १४ को महासती श्री ज्ञानलताजी, दर्शनलताजी, चारित्र लताजी की भागवती दीक्षा महासती श्री मैना सुन्दरी जी म.सा. द्वारा सम्पन्न।
६४	२०४१	१९८४	जोधपुर	१. पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री हीरामुनिजी , ३. श्री शीतल मुनि जी , ४. श्री ज्ञान मुनिजी, ५. श्री गौतम मुनिजी ६. श्री नन्दीषेण मुनि जी, ७. श्री प्रमोद मुनिजी ८. श्री हरीश मुनिजी ठाणा ८ **अहमदाबाद** - १. श्री मानमुनिजी २. श्री महेन्द्र मुनि जी ३. श्री प्रकाश मुनिजी ४. श्री धन्ना मुनिजी ठाणा ४ **महुआ** - १. श्री शुभ मुनि जी २. श्री बसंत मुनि जी ३. श्री चंपक मुनि जी ठाणा ३	चैत्र शुक्ला ६ संवत् २०४१ को नागौर में श्री हरीशमुनि जी एवं महासती श्री निःशल्यवतीजी ने भागवती दीक्षा अंगीकार की। मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी को महासती नलिनीप्रभा जी एवं सुश्री प्रभाजी (सुशीला जी) म.सा. की दीक्षा। माघ शुक्ला दशमी ३१ जनवरी १९८५ को श्री दयामुनिजी , महासती विनयप्रभाजी, इन्दिराप्रभाजी, शशिप्रभा जी एवं मुक्तिप्रभाजी म.सा. ने श्रमणी जीवन में प्रवेश किया।
६५	२०४२	१९८५	भोपालगढ़	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. , २. श्री हीरामुनिजी, ३. श्री बसंत मुनि जी, ४. श्री महेन्द्र मुनिजी, ५. श्री धन्नामुनि जी , ६. श्री प्रमोद मुनिजी ठाणा ६	

				पाली - १. श्री मानमुनि जी , २. श्री ज्ञान मुनि जी, ३. श्री प्रकाश मुनिजी, ४. श्री हरीश मुनिजी, ५.श्री दया मुनिजी ठाणा ५ **सवाईमाधोपुर** - १२. श्री शीतलमुनि जी , १३. श्री नन्दीषेणमुनि जी ठाणा २ **नागौर**- १. श्री शुभमुनि जी, २. .श्री चंपकमुनिजी, ३. श्री गौतममुनिजी ठाणा ३	
६६	२०४३	१९८६	पीपाड़ सिटी	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री हीरामुनिजी , ३. श्री शीतलमुनिजी, ४. श्री बसंत मुनिजी, ५. श्री चंपकमुनिजी , ६. श्री ज्ञान मुनिजी, ७. श्री महेन्द्र मुनिजी, ८. श्री गौतम मुनि जी, ९. श्री धन्नामुनिजी, १०. श्री दयामुनि जी ठाणा १० **विजयनगर** १. श्री मानमुनिजी, २. श्री प्रकाश मुनिजी, ३. श्री प्रमोद मुनिजी म.सा. ठाणा ३ **कोटा** १. श्री शुभेन्द्र मुनिजी, २. श्री नन्दीषेणजी,. श्री हरीशमुनिजी ठाणा ३	वैशाख शुक्ला षष्ठी को महासती श्री सुमनलताजी म.सा. एवं महासती श्री सुमतिप्रभाजी म.सा. की पाली में श्रमणी दीक्षा। माघशुक्ला १० को श्रीराममुनि जी एवं श्री कैलाशमुनि जी का श्रमण-जीवन में प्रवेश।
६७	२०४४	१९८७	अजमेर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री शीतलमुनिजी, ३. श्री शुभेन्द्र मुनिजी ४. श्री चंपक मुनिजी ५. श्री गौतम मुनिजी ६. श्री धन्ना मुनिजी ठाणा ६ **जयपुर** - १. श्री मानमुनिजी २. श्री प्रकाशमुनिजी ३. श्री प्रमोद मुनिजी ४. श्री राम मुनिजी ठाणा ४ **नागौर** - १. श्री हीरा मुनिजी , २. श्री बसंत मुनिजी ३. श्री महेन्द्रमुनि जी, ४. श्री हरीश मुनिजी , ५.श्री कैलाश मुनिजी ठाणा ५ **जोधपुर** - १. श्री ज्ञान मुनिजी २. श्री नन्दीषेण जी ३. श्री दया मुनिजी ठाणा३	माघ शुक्ला १० को श्री अर्हद्दास मुनिजी की महावीर नगर जयपुर में दीक्षा।
६८	२०४५	१९८८	सवाई माधोपुर	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री हीरामुनिजी ३. श्री चंपकमुनिजी, ४. श्री महेन्द्रमुनिजी, ५. श्री धन्ना मुनिजी, ६. श्री प्रमोद मुनिजी, ७. श्री कैलाश मुनिजी ८. श्री अर्हद्दास मुनि जी ठाणा ८ **दिल्ली** - १. श्री मानमुनिजी २. श्री गौतममुनिजी ३. श्री प्रकाशमुनिजी ४. श्री हरीश मुनि जी ठाणा ४ **जयपुर** - १. श्री शीतलमुनिजी २. श्री बसन्तमुनिजी ३. श्री ज्ञानमुनिजी ४. श्री दयामुनिजी ठाणा ४ **हिण्डौन सिटी** - १. श्री शुभेन्द्र मुनि जी २. श्री नन्दीषेण मुनिजी ३. श्री राममुनिजी ठाणा ३	

६९	२०४६	१९८९	कोसाना	१. पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २.श्री हीरामुनिजी ३. श्रीबसंतमुनिजी ४. श्री महेन्द्र मुनिजी ५. श्री गौतम मुनिजी ६. श्री कैलाश मुनिजी ७. श्री अर्हद्दास जी ठाणा ७ **ब्यावर** १. श्री मानमुनिजी २. श्री शुभ मुनिजी, ३.श्री प्रकाश मुनि जी ४. श्री प्रमोद मुनिजी ५. श्री दया मुनिजी ठाणा ५ **बूंदी** - १. श्री शीतल मुनि जी २. श्री धन्नामुनिजी ठाणा २ **अलीगढ़ (टोंक)** - १. श्री चंपक मुनि जी २. श्री नन्दीषेण जी ठाणा २ **किशनगढ़** - १. श्री ज्ञानमुनि जी २. श्री हरीश मुनिजी ३. श्री राम मुनि जी ठाणा ३	वैशाख शुक्ला ७ संवत् २०४६ को महासती श्री विमलेशप्रभाजी म.सा. की मदनगंज में दीक्षा। माघ शुक्ला षष्ठी को महासती शशिकला जी एवं विनीतप्रभाजी म.सा. की पीपाड़ में श्रमणी-दीक्षा।
७०	२०४७	१९९०	पाली	१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. २. श्री मानमुनिजी, ३. श्री हीरामुनिजी ४. श्री बसंत मुनिजी ५. श्री महेन्द्र मुनि जी ६. श्री गौतम मुनि जी ७. श्री नंदीषेण मुनि जी ८. श्री प्रकाश मुनि जी ९. श्री राममुनिजी १०. श्री कैलाश मुनि जी ११. श्री अर्हद्दास मुनिजी ठाणा ११ **सवाईमाधोपुर** – १. श्री शुभमुनिजी , २. श्री प्रमोद मुनिजी, ३. श्री हरीशमुनिजी ठाणा ३ **शेरसिंहजी की रींया** १. श्री ज्ञानमुनिजी, २. श्री दया मुनिजी ठाणा २	पूज्य चरितनायक द्वारा निमाज (राज.) में प्रथम वैशाख कृष्णा १० संवत् २०४८ को तेले की तपस्या एवं त्रयोदशी शुक्रवार को १२.४५ बजे तिविहार संथारा स्वीकार। प्रथम वैशाख शुक्ला ८ रविवार को पुष्य नक्षत्र के योग में रात्रि ८.२१ बजे संलेखना-संथारापूर्वक समाधिभावों में इसी दिन अपराह्न ४ बजे अंगीकृत चौविहार संथारे के साथ महाप्रयाण।

नोट - विशेष विवरण हेतु जीवनी-खण्ड द्रष्टव्य है।

■

सविनय
सश्रद्धा
समर्पण

धन्यवाद-साधुवाद

अध्यात्मयोगी, चारित्र-चूडामणि, प्रतिपल स्मरणीय, परमाराध्य पूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म.सा. इस युग के प्रभावशाली युगमनीषी आचार्य रहे हैं। उनसे लाखों श्रद्धालु भक्त जीवन-निर्माण की दृष्टि से उपकृत हुए हैं। वे एक सम्प्रदाय के आचार्य होकर भी जन-जन के हृदय में विराजित महापुरुष थे। गुरुदेव के विचार, आचार एवं साधना सबके लिए प्रेरणासागर हैं, इसी विचार को केन्द्र में रखकर "**नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं**" ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है।

ग्रन्थ के लेखन एवं सम्पादन का कार्य विद्वद्वर्य डॉ. धर्मचन्द जी जैन एवं सम्पादक मण्डल के सदस्यगण सर्व श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना, श्री प्रसन्नचन्द जी बाफना, डॉ. (श्रीमती) मंजुला जी बम्ब एवं डॉ. (श्रीमती) सुषमा जी सिंघवी के सुयोग्य हाथों से हुआ है। सम्पादक-मण्डल के स्तुत्य सत्कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए हमारी ओर से एवं अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

आचार्य भगवन्त की जीवनी व्यक्तिगत स्तर पर प्रकाशित करवाने के लिए संघ-सेवी श्रावक उत्सुक थे, पर आचार्य श्री हस्ती जीवन-चरित्र प्रकाशन समिति के अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना का यह सुझाव था कि गुरु हस्ती के उपकारों से हम सब उपकृत रहे हैं, अतः जीवनी प्रकाशन में जो भी सहयोग करना चाहें उनका सहर्ष समान सहयोग स्वीकार किया जाना चाहिए। संघ स्तर पर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर गुरुभ्राताओं से निवेदन किया गया कि वे अपने नाम प्रकाशन सहयोगी के रूप में दें। जोधपुर, जयपुर, मुम्बई, चेन्नई, बैंगलोर, जलगांव आदि विभिन्न क्षेत्रों के गुरुभ्राताओं के नाम सहर्ष प्राप्त हुए हैं। हम सहयोग प्रदान करने वाले सभी गुरुभ्राताओं का हार्दिक साधुवाद-धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के अनन्य श्रद्धानिष्ठ, संघनिष्ठ सम्पादक-मण्डल द्वारा ग्रथित-सम्पादित "**नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं**" को आपके कर-कमलों में सौंपते हुए हमें प्रमोद का अनुभव हो रहा है। स्वाध्यायमनीषी महापुरुष की इस जीवनी का स्वाध्याय श्रद्धालुओं व पाठकों के जीवन में परिवर्तन का पाथेय बने, यही मंगल भावना है।

मोफतराज मुणोत	कैलाशचन्द हीरावत	सुमेरसिंह बोथरा	नवरतन डागा	पारसचन्द हीरावत
संयोजक-संरक्षक मण्डल	अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महामंत्री	कोषाध्यक्ष

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक

सविनय सश्रद्धा समर्पण

- अमृतलाल भंवरलाल श्रीमती कांतादेवी चन्दूलाल कटारिया–पीपाड़ वाले–नागपुर
- अमरमल मनोजकुमार सुराना–बीकानेर
- अमरमल, शांतिमल, नरेन्द्रमल, राजेन्द्रमल, सुरेन्द्रमल मेहता–जोधपुर
- अमरचन्द बादलकंवर हुक्मीचन्द प्रकाश मेहता–ब्यावर
- अमरचन्द कमलकिशोर आनन्द भरत राजेन्द्र बोहरा–पीपाड़शहर
- अमरचन्द–अनोपकंवर अनिल–अलका आयुष्य समकित दुधेड़िया–अजमेर
- अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल–शाखा मुम्बई
- अनिल–लता अकुंश मेहता–मुम्बई
- अनिलकुमार बाबेल–मुम्बई
- अरविन्दकुमार, विजयकुमार, पंकजकुमार, उत्सव, उमंग, रितिक बाफना–जलगांव
- अशोक, अभिषेक, मीता कर्नावट–मुम्बई
- अशोक, मुकेशकुमार गुन्देचा–मुम्बई
- अशोककुमार, शैलभकुमार हीरावत–जयपुर
- अशोककुमार, आशीषकुमार बोहरा–जयपुर
- अजय–श्राविका, संजलि, सखी मुणोत–मुम्बई
- अजीतकुमार मूथा–मुम्बई
- अजीतकुमार, अमितकुमार बिरानी–जयपुर
- अनराज–कुसुमलता, सुमतिचन्द–पदमा, शीतल, सिद्धार्थ कोचर मेहता–जोधपुर
- अनुज–साक्षी मुणोत–मुम्बई
- आयचुकीदेवी गौतमचन्द नवरत्नमल सुमेरचन्द प्रसन्नचन्द बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- आरती–लाभचन्द, सौरभ लोढ़ा–जयपुर
- आनन्दकंवर–शांतिदेवी, उम्मेदमल, नरेन्द्रकुमार, आदेश, लुणावत जैन–जोधपुर–मुम्बई
- बंकटलाल, प्रशान्तकुमार, विकास कांकरिया–मुम्बई
- बंशीलाल प्रमोदकुमार भागचन्द शांतिचन्द गौतमचन्द कोचेटा–किशनगढ़
- बंशीलाल, पन्नालाल, राजेन्द्रकुमार, विजयकुमार, निलेशकुमार बोथरा–जलगांव
- बांडीदेवी चंदनमल सिरेमल, मांगीलाल, रमेश, राजेश, महेन्द्र चौपड़ा (लाधांणी) प[illegible]पदरा–पाली
- बादलचन्द नीलमचन्द गौतमचन्द बाघमार –कोसाना–चैन्नई
- बादलचन्द–चम्पादेवी, कांतिलाल–इन्दुमति, प्रवीण, विनय, कमलेश बाफना–जोधपुर
- बादलचन्द, प्रमोद, विरेन्द्र–सुशीला, मनीष कर्नावट–जयपुर
- बस्तीमल–भंवरीदेवी, सुमेरमल, ज्ञानेन्द्र, प्यारेलाल, आनन्द, धर्मेन्द्र बाफना–भोपालगढ़–जोधपुर
- बदनकंवर कैलाशमल–सुशीला, नकुल नम्रता सिंघवी–दिल्ली
- बच्छराज, नेमीचन्द–लीलादेवी, रावलचन्द–शंकुतलादेवी श्रीमाल–बाड़मेर–जोधपुर
- बुधमल पदमचन्द चैनराज मृगेशकुमार कोठारी खिंवसरा–कणक्काकमचतरम–अहमदाबाद–चैन्नई

- बुद्धिप्रकाश–इन्द्रा नरेन्द्र–मंजू महेन्द्र–संगीता जैन–कोटा
- बजरंगलाल महावीरप्रसाद सुबाहुकुमार हेमन्तकुमार जैन–सवाईमाधोपुर
- बिशनचन्द दलपतराज किशोरकुमार सुभाषचन्द मिलापचन्द संदीप छाजेड़ मूथा–कोसाना– हैदराबाद
- बिदामकंवर सज्जनराज हरीश सांखला–बैंगलोर
- भंवरीबाई सुनीलकुमार रमेशकुमार महेशकुमार ललवाणी–चिन्तादरी पेट–चैन्नई
- भंवरीबाई ललिताबाई महावीरचन्द राजेश राकेश ललवाणी –चिन्तादरी पेट–चैन्नई
- भंवरीदेवी–त्रिलोकचन्द, मोहनलाल, अभयकुमार, संजय कोठारी–जयपुर
- भंवरलाल महेन्द्रकुमार राजेश मुकेश कर्नावट–कोलकाता
- भंवरलाल प्रकाशचन्द सुरेशचन्द कैलाशचन्द सागरमल शांतिलाल दुधेड़िया–मेड़तासिटी–पाडी–चैन्नई
- भंवरलाल प्रेमचन्द शांतिलाल श्रीकुमार कुशल संदीप अंकित लोढ़ा–कानपुर
- भंवरलाल सम्पतराज अशोक दलपत बसन्त राजेश डॉ. सुनील विमल चौधरी–पीपाड़–दिल्ली
- भंवरलाल–पानकंवर, जवरीलाल, मिठालाल, महावीरचन्द, राजेन्द्र–ललिता, रजत, तनु कुम्भट–जोधपुर
- भंवरलाल, कुन्दनमल, करणमल, नरेश मुणोत–मुम्बई
- भंवरलाल, हीरालाल चोरड़िया जैन–जलगांव
- भंवरलाल, पदमचन्द, सुरेशचन्द, राकेश, राहुल, जिनेन्द्र बाफना–जलगांव
- भंवरलाल, नवरत्नमल राकेशकुमार, विक्रमकुमार, गौरव, मोहित, नमन बाघमार–चैन्नई
- भीकमचन्द हस्तीमल विमल अशोक विनोद, राहुल सुराणा–नागौर–बैंगलोर–कोलकाता
- भभूतराज, सूरजराज, दीपक मेहता–जयपुर
- भरतप्रकाश दीपकप्रकाश महावीर ऋषभ अनुज ओस्तवाल–मेड़ता सिटी
- भोपालचन्द राजेन्द्र महेन्द्र पगारिया–बैंगलोर
- भोपालचन्द, प्रेमचन्द, चंचलचंद, धनपतचंद, राजेन्द्रचंद, महेन्द्रचंद सेठिया –जोधपुर
- भागचन्द, हेमेश, उन्नत, उपनेश सेठ –जयपुर
- भागचन्द, राजेश, दिनेश नवलखा –जयपुर
- प्रो. चान्दमल–हुक्मकंवर आनन्द–सुनीता, सूर्यप्रकाश–माया प्रवीण–संगीता कर्नावट–उदयपुर
- छतरचन्द–बिलमकंवर, आनन्द–शशि, प्रकाश–प्रभा, अरूण–सुनीता, अमित, कुणाल, प्रियंका हर्ष मेहता
- चंचलमल–रतन, अशोक–काजल, अनन्त, प्रद्युम चोरड़िया–जोधपुर
- चम्पालाल चेतनप्रकाश शांतिलाल डूंगरवाल–बैंगलोर
- चम्पालाल चन्द्रकान्त धनेश मोहित श्रेणिक गांधी–इचलकरंजी
- चांदमल–झमकूबाई कोठारी–अलसूर, बेंगलोर
- चुन्नीलाल, सुभाष, विमल, दिनेश ललवानी–जयपुर
- चैनरूपचन्द, दीपचन्द, कमलकिशोर, विजयराज बाफना–गोटन–जलगांव
- चैनीबाई, पुखराज, प्रकाशचन्द, राजेन्द्र कोठारी–मुम्बई

- चैनराज इंन्जिनियर प्रवीणकुमार डॉ. गणतन्त्र योग नील खुश मेहता–पाली
- चन्दनमल सोहनलाल बुधमल सम्पतराज राजेन्द्रकुमार बाघमार–मैसूर
- चन्दनमल–शांतिदेवी, दिनेश–निर्मला, मनीष–निर्मला लोढ़ा जोधपुर
- चन्दनमल, अमरचन्द, हरकचन्द, सोहनराज, सुरेन्द्र, नरेन्द्र, वेंकट, श्रेष्ठ सदावत मेहता–जोधपुर
- चन्द्रसिंह, सरदारसिंह, ताराचन्द, रीतेश, आशीष बोथरा–जयपुर
- चन्द्रा–अमरचन्द मुणोत–मुम्बई,
- चन्द्रलेखा–सुभाष, जितेन्द्र कोठारी–मुम्बई
- चान्दमल, चैतन्यमल, नेमीचन्द ढड्ढा–जयपुर
- धर्मचन्द–शंकुतला हीरावत संजय–मुम्बई
- धर्मचन्द–चंचल, अनुज, शरद बोथरा–मुम्बई
- धर्मचन्द, सुरेशकुमार, गौरव, गौतम जैन–जयपुर
- धींगड़मल–तारादेवी, भंवरलाल–शशिकला, भैरूलाल, नरेश, मोहित बांठिया–जोधपुर
- धीरेन्द्रराज, संजय मेहता–जयपुर
- धापीबाई–पारसमल, अमित, रोहित, मोहित, अंकित, अक्षय, रक्षित, चिराग, अरिहन्त कोठारी–चैन्नई
- धनपत–स्नेहलता डोसी, जगदीश–मीना सिंघवी, मोहनकौर, नवनीत जैन–जोधपुर
- धनराज–मनोहरकुंवर,चौथमल–किशनकुंवर, प्रसन्नमल, रंगरूपमल, दीपक, अलकेश अभिषेक फोफलिया–जोधपुर
- दिनेशकुमार सुरेन्द्र विक्रमकुमार सचिन हुण्डीवाल–भोपालगढ़–चेन्नई
- दिलीपकुमार–मंजू जैन –दिल्ली वाले, मुम्बई
- दीपचन्द–धनीदेवी, पृथ्वीराज, अमृतलाल, पारसमल गुलेच्छा–जोधपुर
- दीपचन्द–किरणकंवर, पन्नालाल, बादलचन्द, राजेन्द्र कुम्भट–जोधपुर
- दलीचन्द, सुरेशकुमार, पुनमल्ली कवाड़–चैन्नई
- दलजीत–सुनीता, प्रज्ञा, यश बिरानी–मुम्बई
- फूलचन्द सज्जनराज रमेशचन्द उम्मेदराज राजकुमार विमलचन्द बाघमार–कोसाना–पीपाड़–चैन्नई
- घमण्डीचन्द, सायरचन्द, पदमचन्द, मदनचन्द, गौतमचन्द, शांतिचन्द, भागचन्द कांकरिया–जोधपुर
- घेवरचन्द–रतनबाई धीरज अभय कमल विमल अक्षय प्रेम संजय नाहर–भोपाल
- गुप्त–मुम्बई
- ज्ञानचन्द श्रीमती चन्द्रकान्ता राहुल बोथरा–मुम्बई
- ज्ञानचन्द–सन्तोष बम्ब–मुम्बई
- ज्ञानचन्द, पंकजकुमार बालिया–जयपुर
- वैद्य गोपाललाल–कमलाबाई धर्मेन्द्र जितेन्द्र विनोद संजय जैन–अलीगढ़ रामपुरा (टोंक)
- गणेशमल चंचलराज विनायकिया मेहता–अहमदाबाद
- गुलराज–रतनकंवर, गोपालराज–शांति अबानी–जोधपुर
- गुलाबचन्द मिलापचन्द कैलाशचंद प्रकाशचंद विनयचंद बोथरा –जयपुर

- गुलाबचन्द, भंवरलाल, कंवरलाल, जवाहरलाल, कमलकिशोर, निलेश, स्नेहील संघवी–जलगांव
- हीराचन्द, अरूणकुमार, अजीतकुमार जरगड़–जयपुर
- हरकचन्द नितीनकुमार ओस्तवाल–पूना
- हरकचन्द–सुआबाई, सुगनचन्द–कमलादेवी, भंवरलाल, प्रकाशचन्द, सुभाषचन्द, दिलीप भण्डारी–जोधपुर
- हरीचन्द, अनिल, सरिता, अंकित हीरावत–मुम्बई
- होशियारचन्द–इन्द्रकंवर, लखपतचन्द–मधु, नवनीत, अमित, अंकित भण्डारी–जोधपुर
- हस्तीमल महेन्द्र ललित यशवन्त ऋषभ मनीष गोलेच्छा–गिरी–ब्यावर
- हुक्मीचन्द विनोदकुमार संतोषचन्द विपुल डोसी–बैंगलोर
- हेमकुमार, हेमन्त, सरमान्त, संचेती–मुम्बई
- हगामीलाल, अरूण धारीवाल–मुम्बई
- इन्दरमल मनीष कुमार सुराना–बीकानेर
- इन्दरचन्द (महेन्द्रचन्द) शांतिलाल रेखचन्द कमलचन्द चौधरी –पीपाडसिटी–चिन्तादरी पेट, चैन्नई
- इन्दरचन्द राजकुमार दिनेशकुमार सुराणा–चैन्नई
- इन्द्रकंवर, इन्द्रमल, लखपत, विजय, विनय भण्डारी–जयपुर
- इन्द्रमल, ताराचन्द, प्रकाशचन्द, सुरेशचन्द, कमलेश मुणोत–मुम्बई
- इन्द्रा–सुमतिचन्द, हेमन्त कोठारी–जयपुर
- इन्द्राबाई हेमराज विनोदकुमार सोंलकी–कोयम्बटूर
- जिनेन्द्रकुमार–विनयकुमारी, अजेन्द्रकुमार–आशा, निधि, ऋद्धि जैन–दिल्ली
- जयन्ती प्रसाद संजय राजीव जैन शाहदरा–दिल्ली
- जंवरीमल अशोककुमार महावीरचन्द श्रीमती सूरजादेवी सूर्यकला पुष्पादेवी बाघमार–चैन्नई
- जंवरीलाल पारसमल सम्पतलाल बाबूलाल तपस्वीलाल मदनलाल बाघमार–जबलपुर
- जंवरीलाल प्रकाशचन्द दिलीपकुमार ज्ञानचन्द हेमराज लूणिया–पल्लीपट
- जंवरीलाल–पारसकंवर, मीठालाल, महावीर, राजेन्द्र, राकेश, ऋतिक कुम्भट–जोधपुर
- जंवरीलाल–चन्द्रादेवी, प्रसन्नचन्द, ज्ञानचन्द सुभाषचन्द–लाडकंवर, विकास गुन्देचा–जोधपुर
- जंवतराज, धनराज, सज्जनराज, रंगरूपमल, ज्ञानचंद, नरपतचंद, जसवंतराज डागा–जोधपुर
- जबरचन्द, बस्तीमल, मांगीलाल चोरड़िया –लवेराकलां–चैन्नई
- जीतमल नंदलाल केसरीमल रिखबचन्द नीमेश रूणवाल–बीजापुर
- जोधराज, बसन्तकुमार, विशालकुमार सुराना–बेंगलार
- जसराज–रतनकंवर आनन्द चन्द्रशेखर अभिनव प्रांजल चौपड़ा–जोधपुर–जयपुर
- जसवंतराज–सरदारकंवर, दलपतराज, पृथ्वीराज, न्यायमूर्ति प्रकाश, राजेश, अशोक, उमेश टाटिया–जोधपुर
- जवाहरलाल हंसराज भरतकुमार अनिलकुमार अखिल अक्षय निखिल यश जय बोहरा–इचलकरंजी
- जवाहरलाल लालचन्द प्रकाश सुभाष अनूप करण मूथा –गुलेजगढ़ वाले–अहमदनगर
- जवाहरलाल, प्रेमचन्द, सुरेशकुमार, राजेन्द्रकुमार बाघमार –कोसाना वाले–कानपुर–चैन्नई

- जवाहरलाल, अनूपकुमार–प्रकाशकंवर, संजयकुमार–सुनीला, शिवानी बाफना –इन्दौर
- जुगराज पारसमल शांतिलाल, संजय, अरविन्द दीपक राहुल कवाड़–पाली
- खीमराज, केसरीमल, रूपकुमार मोहनराज मदनराज धर्मेशकुमार चौपड़ा –पाली–बालोतरा–जोधपुर
- खेमचन्द नरपतचंद अनिल चन्द्रशेखर कमला सिंघवी–जयपुर
- कंचन डागा–जयपुर
- कंचनकुमारी, ममता, अनिता भण्डारी–निमाज–बेंगलोर
- कंचनदेवी–कन्हैयालाल, सुरेश, मधु मेहता–मुम्बई
- कमलाबाई मानमल हेमलता सुराना–चैन्नई
- कमलाबाई सागरमल सुरेशचन्द गौतमचन्द बाफना–बैंगलोर
- कमलादेवी दुलीचन्द ललितकुमार अरूणकुमार सुनीलकुमार बाघमार –कोसाना–चैन्नई
- कमलादेवी, चेतन, वीरेन्द्र, पीयूष ढड्डा–जयपुर
- करोड़ीमल, उमरावमल, श्रीपाल, चिराग सुराना–नागौर–चैन्नई
- कांतिलाल–विमला, कल्पेश सुरेन्द्र हितैष चौधरी (चोरड़िया)–धुलिया
- कान्तिलाल शान्तिलाल राजेन्द्रकुमार लूंकड–पचपदरा–पाली
- कौशल्या सम्पतराज अरविन्द अभिषेक आरती हृदय ऋषभ सिंघवी–बैंगलोर
- कान्ता, अशोक कुमार भण्डारी–चैन्नई
- कस्तूरचन्द, सुशीलकुमार, सुनिलकुमार, अभिषेक, ऋषभ बाफना–जलगांव
- कुसुम–रतनचन्द, मनोज, मनीष कोठारी–जयपुर
- कुसुम, शरदकुमार, स्पनेश गोलेच्छा–जयपुर
- कुन्दनमल–राजाबाई, पारसमल–अमृतकंवर, देवेन्द्र–प्रीतल गिड़िया–जोधपुर
- केवलमल, प्रतापसिंह, प्रेमसिंह, प्रवीणकुमार, विनोदकुमार लोढ़ा–जयपुर
- केवलचन्द विजयराज सुरेश अमित गुलेच्छा–जोधपुर
- कैलाशचन्द पुखराज भंसाली–जोधपुर–बैंगलोर
- कैलाशचन्द, अविनाश, अतुल कोठारी–जयपुर
- कैलाशचन्दजी भण्डारी–मुम्बई
- कनकमल दशरथमल दौलतमल धनपतमल गौतमचन्द रंगरूपमल चोरड़िया–चैन्नई
- कनकराज, प्रवीण, महेन्द्र, अशोक, शेखर, गजेन्द्र, रविन्द्र कुम्भट–जोधपुर
- कन्हैयालाल छगनमल फतेहचन्द सुभाषचन्द दलपतराज बसन्त मूथा–पीपाड़शहर
- कल्याणमल अरूणकुमार अशोक शरदकुमार बाफना–इन्दौर
- किशोरमल, चंचलमल, चन्दनमल, चम्पकमल, नरेन्द्रकुमार सुराना–बीकानेर
- किशनलाल सुरेशचन्द प्रीयेश भण्डारी–बैंगलोर
- किशनलाल ओस्तवाल एण्ड सन्स–भोपालगढ़–चैन्नई
- किस्तूरचन्द सुनीलकुमार साहिल सुकलेचा–जयपुर

- प्रो. कल्याणमल, सुरेशमल लोढ़ा–कोलकाता–मुम्बई
- लीलाबाई–दलीचन्द जैन –जलगांव
- लाभचन्द सुभाष, आरती, सौरभ लोढ़ा–जयपुर
- लाडकंवर–अनराज कांकरिया –भोपालगढ़–चैन्नई
- लाडकंवर, देवेन्द्रराज मेहता–जयपुर
- लालराज, गजराज, जितेन्द्र चौधरी–मुम्बई
- लालचन्द, अनिलकुमार जरगड़–जयपुर
- लूणकरण–सुशीला सज्जन–विमला विजय–अनु विकास लोढ़ा–कानपुर
- लूणकरण, रावलचन्द–चम्पादेवी, भंवरलाल, स्वरूप, सतीश, चेतन चौपड़ा–जोधपुर
- बी. मदनलाल–मैनाबाई, सुमेरचन्द, दिनेशचन्द, महावीरचन्द बैद –चैन्नई
- मंजूदेवी अनोपचन्द पंकजकुमार संदीपकुमार बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- मगराज,नगराज–लीला,हुकमराज,कमल–स्नेह,प्रदीप–चन्द्रा,संजय–सुनीता,अनुपम–दीपाली खिंवसरा मेहता–जोधपुर
- मंगलचन्द धर्मीचन्द राजेन्द्रकुमार भंसाली–गिरी–चैन्नई
- महेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द विजयकुमार रेड–बैंगलोर
- महेन्द्रराज हिमानी बढेर–मुम्बई
- मीठालाल कमला जितेन्द्र गौतम सिद्धार्थ मोहित मधुर–बालोतरा
- मीना–सुधीर, मेहा, मनन गोलेच्छा–जयपुर
- माणकराज हरकराज–लीलादेवी, नरेन्द्र, महेन्द्र, राजेन्द्र सुराणा–जोधपुर
- माणकराज, अर्जुनराज, सुरेश, कुलदीप, जयदीप, सन्नी मेहता–जोधपुर
- माणकचन्द जवाहरलाल रतनलाल महावीरचन्द नेमीचन्द गौतमचन्द कर्नावट–चैन्नई
- माणकचन्द–सूरजकंवर मनमोहनराज–चंचल दिलखुशराज–वसन्ती मेहता पीपाड़ वाले–मुम्बई
- माणकचन्द, संदीपकुमार, सुदीपकुमार कर्नावट–जयपुर
- मांगीलाल गौतम राजेन्द्र जितेन्द्र, नितेश, अभिषेक, सुमति, विनोद, निखिल, नमन कटारिया–पीपाड़शहर
- मांगीलाल, महेन्द्रकुमार, कुणाल गांधी–पाली
- मोहनलाल कैलाशचन्द श्रीपाल शांति महावीर कमल विनोद देशलहरा –अरटिया खुर्द–सिकन्द्राबाद
- मोहनलाल पारसमल सुशीलकुमार आनन्दकुमार बोहरा–तिरूवन्नामलाई
- मोहनलाल सुमेरचन्द मूलचन्द सुनीलकुमार सिद्धार्थ हर्षित चोरड़िया –इन्दौर
- मोहनलाल–कविताबाई, जवाहरलाल, मोतीलाल, बिजयराज, सोहनलाल–अलसूर, बेंगलोर
- मोहनलाल–पतासीबाई, हस्तीमल, महेन्द्र, बुधमल, जिनेन्द्र, पवन, शीतल बोहरा –रतकुड़िया–पीपाड़
- मोहनलाल, बंशीलाल, भंवरलाल, धनराज, अनन्तिलाल, हनुमानचन्द लुणावत –जोधपुर
- मोहनलाल, प्रसन्नचन्द, प्रकाशचन्द नवलखा–जयपुर
- मोफतराज–शरदचन्द्रिका, पराग–मोनिका, साची, शुभिका मुणोत–मुम्बई
- मोतीचन्द, मनोज, सुभाष नवलखा–मुम्बई

- मोतीलाल प्रकाशचन्द–उगमकंवर कमला गौरव कर्नावट–जोधपुर
- मोतीलाल–मोहिनीदेवी, धनपतराज–चन्दा, बुधराज अंकित अंकुर बागरेचा मेहता–पीपाड़शहर
- मदनलाल मोहनलाल हेमलता मेहुल सांखला–मुम्बई
- मदनलाल पारसमल शांतिलाल महावीर नितीन नीरज बोथरा–बीजापुर
- मदनलाल–पुत्तलदेवी, पदमचन्द–शांतिदेवी, सुरेशचन्द–इन्द्रादेवी बाफना–भोपालगढ़
- मदनलाल–शशिकला, गौरव, सुनीता ललवानी–मुम्बई
- मनमोहनचन्द–कंचनदेवी प्रमोद–उषा, रौनक प्रतिभा बाफना –कानपुर
- मनसुखलाल अशोककुमार राजेशकुमार गुगलिया –लोनावना
- मूलराज–केसरकंवर, मंजू–स्व. नरेन्द्रराज, शानु–संदीप धारीवाल–जोधपुर
- मूलचन्द नन्दलाल दिलीप राजेश प्रदीप भण्डारी–ब्यावर
- मूलचन्द, प्रदीप, जयदीप, हिमांशु, नमन जैन–हिण्डौनसिटी
- मिश्रीमल–सीतादेवी, नरपतराज–संतोष, महीपत, गजेन्द्र चौपड़ा–जोधपुर
- मिलापचन्द पदमचन्द अजीत अशोक शीतल नवनीत अंकित अमित सुमित समकित खाबिया–इचलकरंजी
- पी. मांगीलाल, हरीशकुमार कवाड़–पुनमल्ली–चैन्नई
- श्रीमती माणककंवर हिम्मतसिंह गलुण्डिया मेमोरियल ट्रस्ट–जयपुर
- डॉ. मंजुला, आलोक, मेहुल बम्ब–जयपुर
- निर्मल, मनोज, अनुज जैन–मुम्बई
- निर्मला, प्रकाशमल पुत्र स्व. श्री जीतमलजी सुराणा–बड़ौदा
- नितिका–मनीषकुमार, अश्वर्या, आर्या ललवानी–जलगांव
- निर्भयमल, विजयमल, उर्मिला जैन–मुम्बई
- निरंजनलाल मुकेश राजेश मनोज पंकज जैन–हिण्डौनसिटी
- नृसिंहमल, सोहनमल, राजेश, अजय, संजय मेहता–जोधपुर
- नृसिंहमल, अभयमल–कमला, रमेश, सुनील, संदीप, दीपक मेहता–जोधपुर
- नंदलाल–मधु, शगुन, शशांक हीरावत–मुम्बई
- नीरज–पूर्णिमा, सलौनी भण्डारी–मुम्बई
- नरेशकुमारजी लोढ़ा–मुम्बई
- नरेन्द्र–मंजू मेहता–जयपुर
- नरेन्द्र–सुजाता, श्रेयांस हीरावत–मुम्बई
- नवरत्नमल लक्ष्मीचन्द भण्डारी–ब्यावर
- नवरतनमल–अनिला कोठारी–मुम्बई
- नेमीचन्द धनरूपचन्द अमितकुमार आनन्दकुमार मेहता–बैंगलोर
- नेमीचन्द–शशिबेन, जितेन्द्र, जयचन्द, चन्द्रिका रांका–मुम्बई
- नेमीचन्द, नीलमचन्द चोरड़िया–मुम्बई–जलगांव

- नेमीचन्द, त्रमता, पायल, निधि, निकिता बोथरा–मुम्बई
- ओमप्रकाश महावीर नवरतन ओस्तवाल–गोटन
- ओमप्रकाश, दिप्तेशचन्द, कंचनदेवी, प्रिया, सौरभ मेहता–चैन्नई
- प्रभुदयाल कैलाशचन्द नरेन्द्रकुमार विमल निर्मल दिनेश जैन–हिण्डौनसिटी
- प्रेमचन्द–निर्मला, अजय, आलोक हीरावत–मुम्बई
- पिस्ताबाई धर्मीचन्द हंसराज अशोककुमार बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- पृथ्वीराज, प्रेमचन्द कवाड़–पुनमल्ली–चैन्नई
- पी. एम. आलोक, शेखर, कमल चोरड़िया–चैन्नई
- पारस, शिखर, लीला, विनोद, रश्मि, कीर्तिदेव सुराना–चैन्नई
- पारसबाई किरणकुमारी विजयालक्ष्मी हीराकंवर लतादेवी हुण्डीवाल–भोपालगढ़–चैन्नई
- पारसकंवर–मंजू, दीपक, दर्शन, प्रसन्नचन्द भण्डारी–कोरम्मंगला, बेंगलोर
- पारसकंवर–रतनराज, गौतमचंद, प्रकाशचंद, अशोक, अनेष, दिलीप भण्डारी–पीपाड़
- पारसमल–मनभरदेवी, विमलचन्द जीतमल कुशलचन्द ढाबरिया–अजमेर
- पारसमल–सुशीला विमलकुमार–सीमा राकेशकुमार–रेखा चोरड़िया–उज्जैन
- पारसमल–जसकंवर, सिरेहमल, सायरमल, सुरेश, रमेश, दिनेश रेड–जोधपुर
- पारसमल, घीसूलाल, राजेश बम्ब–मुम्बई
- पारसमल, शांतिलाल, महावीर, अशोक, सिद्धार्थ, आकाश, अभिषेक, आशीष, यश कांकरिया भोपालगढ़–जलगांव
- पारसमल, सुरेशकुमार, नरेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार, विमलकुमार खिंवसरा कोठारी –रणसीगांव–चैन्नई
- पारसचन्द–शकुन्तला, सुमित–मुम्बई
- पार्श्वकुमार, दिलीपकुमार, हर्ष मेहता –मुम्बई
- पोपटलाल ललितकुमार कुणाल ओस्तवाल –पूना
- पदमराज अमित आशीष बाघरेचा मेहता –बैंगलोर
- पदमदेवी–नथमल, अभिताभ हीरावत –जयपुर
- पदमचन्द–मंजू कोठारी –जयपुर
- पदमचन्द–रतनीदेवी, प्रदीप, रजनी, एकता, श्वेता मेहता (पीपाड़)–जोधपुर
- पदमचन्द, प्रदीपकुमार, अक्षय मेहता–मुम्बई
- पदमचन्द, सुभाषचन्द, मनोजकुमार, अभिषेक, जय कटारिया–पीपाड़
- पुष्पाकंवर प्रकाशमल ज्योतिकंवर, सुरेशमल पवित्राकंवर, कैलाशमल दुगड़–चैन्नई
- पुष्पादेवी–चन्द्रराज सिंघवी–जयपुर
- पुखराज कवाड़–चैन्नई
- पुखराज राजेन्द्र अनिल सुराणा–कंवलियास
- पुखराज–प्रेमकुमारी, जोरावरमल–कमला, पूरणराज–लीला प्रवीण–रेखा, प्रशान्त–श्वेता, प्रांजल, अबानी–जोधपुर
- पुखराज–सायरकंवर, प्यारेलाल, बाबूलाल, प्रकाशचन्द, बुधमल कोठारी खिंवसरा–रणसीगांव–चैन्नई

- पुखराज–सुगनीदेवी, मोफतराज–शरदचन्द्रिका मुणोत–मुम्बई
- पुखराज, प्रकाशचन्द, रमेशचन्द, पदमचन्द, विशाल, अक्षित बाघमार–चैन्नई
- पुखराज, प्रशान्त पारख –मुम्बई–जलगांव
- पूनमचन्द, कुसम, श्वाति, अनुराग हीरावत–मुम्बई
- पूनमचन्द, हरीशचन्द बढेर–जयपुर
- प्रकाशबाई यशवन्तराज ललितकुमार भरतकुमार दिनेशकुमार पवनकुमार सांखला–बैंगलोर
- प्रकाशचन्द राकेशकुमार विमल सुनील कमल गांधी–थांवला–सूरत
- प्रकाशचन्द शांतिलाल महावीरचन्द लोढ़ा–नाडसर–बैंगलोर
- प्रकाशचन्द–सुशीला लोढ़ा –कोठी वाले–जयपुर
- प्रकाशचन्द, श्रेयांसकुमार ढड्ढा–जयपुर
- प्रमोदकुमार, विवेककुमार मोहनोत–जयपुर
- प्रमिला– उत्तमचन्द अनुराग भण्डारी–बैंगलोर
- प्रमिलादेवी–गणपतराज, हेमन्तकुमार, उपेन्द्रकुमार बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- प्रसन्नचन्द–प्रसन्नदेवी गांग –मुम्बई
- प्रदीपकुमार, हेमन्तकुमार कोठारी–जयपुर
- प्रतीक ललितकुमार कानमल बालिया–बैंगलोर
- प्रेमकंवर मिलापचन्द अनिल सुनील सुशील मोहित बुरड़ –ब्यावर
- प्रेमाबाई–भीकमचन्द जैन–जलगांव
- प्रेमचन्द धर्मेन्द्रकुमार, प्रेरित चपलोद जैन–गीजगढ़ विहार, जयपुर
- प्रेमचन्द, प्रकाशचन्द, कैलाशचन्द, विमलचन्द डागा–जयपुर
- प्रेमचन्द, अशोक, अनिल, अरूण, संजय गोखरू–जयपुर
- प्रेमलता–सिरहमल, विनयचंद, हीराचन्द, विनीत नवलखा–जयपुर
- रूचि–अमरीश ललवानी–जलगांव
- रूपचन्द सोहनलाल सम्पतराज सज्जनराज धारीवाल–पाली
- रिखबराज, अजीतकुमार बच्छावत–जयपुर
- रिखबचन्द–मीनू लोढ़ा–जयपुर
- रिखबचन्द–श्रीमती केवलकंवर वीरेन्द्र मानेन्द्र जिनेन्द ओस्तवाल–जोधपुर
- रिखबचन्द–रतनकंवर, हुक्मीचन्द नेमीचन्द पुखराज गणपतराज पारख–जोधपुर
- रिखबचन्द, राजीव–अंजलि, आदिती, अवनी मेहता–जोधपुर
- रिखबराज छाजेड़–मुम्बई
- रितेश, अमिलाषा हीरावत–मुम्बई
- राधेश्याम कुशलचन्द पदमचन्द अशोककुमार गौरव जैन–सवाईमाधोपुर
- रायचन्द–शशि, रितेश, क्षितिज हीरावत–मुम्बई

- रामदयाल उम्मेदचन्द लालचन्द नमोकार मोहनलाल धनराज रूपित जैन–सवाईमाधोपुर
- रामलाल झूमरलाल शांतिलाल रतनलाल अमृतलाल गौतमचन्द कवाड़–पीपाड़
- राजकंवर, चन्द्रराज–प्रेमलता, संजय–आशा, अरिष्ठ–श्रेयांस सिंघवी –जोधपुर
- राजकुमार–रतनलाल बाफना–जलगांव
- राजमल, मनोज कवाड़–मुम्बई
- राजीव सुराना–मुम्बई
- राजेश–सुधा, उमंग, खुशाली गोलेच्छा–मुम्बई
- राजेशकुमार, सुरेशकुमार जैन–जलगांव
- राजेन्द्र–सुधा बाफना–मुम्बई
- राजेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्र कर्नावट–मुम्बई
- राजेन्द्र, अमोलक, देवबाला भण्डारी–मुम्बई
- राजेन्द्रकुमार महावीरचन्द सिद्धार्थ, गौरव, अभिनन्दन, जिनेन्द्र बाफना–जलगांव (भोपालगढ़)
- राजेन्द्रकुमार महेन्द्रकुमार गजेन्द्रसिंह डांगी–किशनगढ़
- राजेन्द्रकुमार, सुरेश मेहता–मुम्बई
- रतनकंवर–प्रशान्त कर्नावट–जयपुर
- रतनमल–कमला, अनिल मेहता–शिवाकाशी
- रतनादेवी–सुरेशकुमार जैन–जलगांव
- रतनचन्द, अशोक, राजेश, अभिषेक, वीर भंसाली–मुम्बई
- रतनलाल मानिकलाल जवाहरलाल नाहर–बरेली वाले–इन्दौर
- रतनलाल चुन्नीलाल बाफना–जलगांव–भोपालगढ़
- रतनलाल, प्रेमराज गांधी–थांवला
- रुपासती महिला मण्डल–पीपाड़शहर
- शंकरलाल, पुष्पा–ईश्वरलाल, मनीषकुमार, अमरीश ललवानी–जलगांव
- शकुन्तला–प्रकाशमल, प्रदीप दिलीप रोहित भरत भण्डारी–चैन्नई
- शकुन्तला–प्रकाशचन्द हीरावत–जयपुर
- शांता–स्व. सिद्धेश्वरनाथ, मधु–प्रदीप, प्रखर मोदी –जयपुर
- शीला–प्रकाशचन्द, प्रशान्त कोठारी –जयपुर
- शांतिदेवी, देवेन्द्र–शशि भण्डारी –मुम्बई
- शांतिदेवी, सुरेशचन्द दिलीपचन्द पदमचन्द अमित गौरव पीयूष सुराणा–चैन्नई
- शांतिलाल किशनलाल पदमचन्द मनोजकुमार अमितकुमार प्रवीण यश सेठिया–चैन्नई
- शांतिलाल–राजश्री, शुचि, संकुल कर्नावट–मुम्बई
- शांतिलाल, मुकेश, राजेश, अजय, निलेश ललवानी–जलगांव
- शोभागमल–कपूरीदेवी, डॉ. धर्मचन्द, ऋषभचन्द, टीकम, विनोद,, मुदित, अंकित, कोविद जैन–अलीगढ़ (टोंक)

- शैलेशकुमार, सुरेशकुमार जैन–जलगांव
- शिवनाथमल–अनोपकंवर, सुमेरमल–लीला, सुरेश–चांद, सुशील–सरिता भण्डारी –जोधपुर
- सिद्धार्थ–रतनलाल बाफना–जलगांव
- सिद्धार्थ, अरूण खींचा–जयपुर
- श्रीमती सूरजबाई हस्तीमल भंसाली चेरीटेबल ट्रस्ट शूले–बैंगलोर
- श्रीचन्द हस्तीमल नेमीचन्द श्रीपाल निखिल अंकित अरिहन्त डोसी–मेड़ता
- संदीप–प्रीति, वेदान्त, अरणक कोठारी–मुम्बई
- संजय–मंजू, सुकृत, शीविका, सारांश कोठारी–मुम्बई
- सम्पतबाई–रेखचन्द, उज्ज्वला–पदमचन्द, ललितकुमार, गजेन्द्रकुमार बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- सम्पतराज महावीरचन्द विमलचन्द अशोककुमार बसन्तकुमार मरलेचा –बैंगलोर
- सम्पतराज प्रकाशचन्द उमरावमल स्वरूपचन्द बाफना–जोधपुर–सूरत
- सम्पतराज, मोहनलाल, अमृतलाल, गौतमचन्द एस. मेहता–मुम्बई
- सम्पतराज, छोटमल–लाडकंवर, नवरतन–सुमन, पारस–सीमा, पुनीत, नितिन, नितिश डागा–जोधपुर
- सम्पतचन्द, शीतलचन्द, सूरजचन्द, शम्भुचन्द, संदीप, कुलदीप सिंघवी–जोधपुर
- सरिता प्रेमचन्द मोहित कुमार बाघमार –कोसाना–चैन्नई
- सहजमल–मधुबाई, मेवाराम–शांतिबाई, अशोक, भूपेन्द, राजेश बांठिया–जोधपुर
- सरोज–नरेन्द्रकुमार सांड–जयपुर
- सरोजबाई सुगनचन्द मूथा–बैंगलोर
- सरदारमल महावीर गौतम जिनेन्द्र सुराना–दुर्ग
- सरदारमल नवरतनमल मुणोत चेरीटेबल ट्रस्ट–मुम्बई
- सरदारमल–उमरावकंवर, कैलाशमल–डॉ. बिमला, सनिल–रागिनी, सौरभ भण्डारी –जोधपुर
- सरदारसिंह–कमला कर्नावट–मुम्बई
- सायरबाई माणकचन्द हंसराज कांकरिया –विजयपुरा–बैंगलोर
- सायरचंद–जतनकंवर, किशोरचंद, महावीरचंद, कुशलचंद, राजकुमार बाफना–जोधपुर
- सायरचन्द–जतनकंवर, नन्दकिशोर–नीरा, सिद्धार्थ बाफना–मुम्बई
- सोहनमल–अकलकंवर, नरपतमल–पुष्पा, दीपक, राजेन्द्र लोढ़ा–जोधपुर
- सोहनराज गौतमचन्द उम्मेदराज प्रेमचन्द अजीतराज हुण्डीवाल–भोपालगढ़–चैन्नई
- सोहनराज, पृथ्वीराज, सूरजकरण, सुरेशकुमार, लाडेशकुमार सिद्धकुमार, श्रेणिककुमार रांका–जोधपुर
- सोहनलाल–विजयकंवर सुनीलकुमार, निहालचन्द, शांति, रवि, राहुल नाहर –पाली
- सोहनलाल, महावीरचन्द, अर्पित बोथरा–जलगांव
- सोनराज–उमरावकंवर, भंवरलाल, जौहरीलाल, किस्तूरचन्द, प्रकाशचन्द–हैदराबाद -जोधपुर–ब्यावर–चैन्नई
- सौभागमल, बहादुरमल, नवीन डागा–बीकानेर
- सौभागमल सुमेर, सुनील, नीरज लोढ़ा–जयपुर

- सौरभ गौरव गौतम गणेशमल सुगनमल भण्डारी –निमाज–बैंगलोर
- सोलेश्वरनाथ–अकलकंवर, जिनेन्द्र, रविन्द्र, कविन्द्रकुमार, निलेश, कल्पेश, विपुल, राही मोदी–जोधपुर
- सुधीरकुमार, अनुपम, अनुरूप लोढ़ा –जयपुर
- सुमेरमल–कंचनदेवी, मनोज–सुनीता, राजेश–मीनाक्षी, शुभम, ऋतिक, मनन कांकरिया –भोपालगढ़
- सुमेरचन्द पदमचन्द रिखबचन्द लीलमचन्द नाहर–बैंगलोर
- सुमेरचन्द, किशोरचन्द–उषाकिरण, कमल, कैलाश, अनुराग अबानी–जोधपुर
- सुरेश पंकज महिपाल रतन बोहरा–इचलकरंजी
- सुरेशचन्द, शैलेश कोठारी –जयपुर
- सुरेन्द्र–ऋतु, सिद्धान्त, यश, अरिहन्त कोठारी –मुम्बई
- सुरेन्द्रकुमार, सुमतकुमार जैन –मुम्बई
- सुशीलकुमार–ललिता विनोदकुमार–कमला, राजेन्द–सुनीता, मनोज, राहुल, मयंक डोसी –पाली
- सुशीलकुमार, राहुलकुमार बाफना –जलगांव
- सुशीला पत्नी स्व. पारसमल, सुधा–अनिल, राजुल, पूर्वा, आशीष बोहरा–जोधपुर
- सुनील, आदिती हीरावत –मुम्बई
- सुन्दरसलूदेवी, चन्दनमल, पारसमल, विजयेन्द्र, रमेश, दिलीपकुमार पीतलिया –हैदराबाद
- सुगनचन्द रतनलाल रांका –अजमेर
- सुगनचन्द–भंवरीदेवी, मूलचन्द, प्रसन्नचन्द, सिद्धराज, नवरतनमल बाफना–जोधपुर
- सुगनचन्द–गंगादेवी, मूलचन्द–मैनादेवी, दिलीप, शांतिलाल, श्रीचन्द, कुशल, नीरज,अरिहन्त लुणावत–जोधपुर
- सज्जनराज मंजू गौरव दीपिका जैन–दिल्ली
- सज्जनराज ज्ञानचन्द बोहरा –विल्लीपुरम
- सज्जनराज सम्पतराज श्रीमती राजकंवर श्रेणिकराज सुनीलकुमार भण्डारी –बीजापुर
- सज्जनराज उत्तमचन्द धर्मचन्द अशोककुमार ज्ञानचन्द भण्डारी –बीजापुर
- सज्जनराज, महेन्द्रकुमार, राजेशकुमार बाफना–जलगांव
- सज्जनदेवी मिश्रीमल सागरमल नागरमल छाजेड़–चैन्नई
- सूरतराज, प्रेमकंवर, अशोक, विरदराज, निर्मला सुराणा–जयपुर
- सूरजमल–प्रेमकुमारी, क्रान्तिचन्द, कमलचन्द, मनीष मेहता–अलवर
- सूरजराज–सायरकंवर, प्रसन्नचन्द, पुनवानचन्द, हस्तीमल, लिलमचन्द, शांतिलाल ओस्तवाल–भोपालगढ़
- डॉ. सम्पतसिंह–श्रीमती नलिनी, संदीप–बिन्दू, सचिन, श्रेयांस भाण्डावत–जोधपुर
- जस्टिस श्रीकृष्णमल डॉ. सुरेन्द्रमल, जस्टिस राजेन्द्रमल लोढ़ा–जोधपुर
- थानचन्द, नारायणचन्द–विमला, कैलाश, भूपेश मेहता–जोधपुर
- तीजादेवी भंवरलाल चम्पालाल पुखराज सुगनचन्द राजेश संदीप बोथरा–हीरादेसर–चैन्नई
- तारादेवी–रतनलाल बाफना–जलगांव
- तेजकंवर, सुमन, ज्ञानचन्द, विनय, विवेक कोठारी –जयपुर

- ताराचन्द–पारस, नौरतन कुशल टीकम राजेन्द्र धर्मचन्द विनोद नवनीत मेहता–जोधपुर
- टीकमचन्द, राजीव हीरावत –मुम्बई
- उम्मेदमल, इन्द्रमल, सुरेन्द्र, नरेन्द्र, धनराज, राजेन्द्र, कमल जैन–चौथ का बरवाड़ा
- उम्मेदनाथ भण्डारी –एडवोकेट–जयपुर
- उमरावबाई भंवरलाल दुलीचन्द बुधमल सालेचा बोहरा–कोसाना–चैन्नई
- उमरावमल, विनोदकुमार, अशोककुमार सेठ–जयपुर
- उर्मिला–श्रीचन्द, विमलचन्द, पंकज, पीयूष गोलेच्छा –जयपुर
- उर्मिला, मनाली, उगरसिंह, सुमेरसिंह, उपेन्द्र, संकल्प बोथरा –जयपुर
- उदयराज सम्पतराज नवरतनमल–शांति, प्रेमचन्द, अजय डोसी–जोधपुर
- उदयराज, गौतमराज, शांतिलाल, विजयराज, दिनेशचन्द सुराना –चैन्नई
- उत्तमचन्द, पुखराजकंवर ढड्ढा –जयपुर
- उगमकंवर झूमरमल राजेन्द्रकुमार किशोरकुमार कुणाल बाघमार–कोसाना–चैन्नई
- उगमचन्द कल्याणचन्द महावीरचन्द मन्नूलाल मुणोत –भोपालगढ़–चिन्तादरी–चैन्नई
- विमला आनन्द कपिल संध्या चोरड़िया –चैन्नई
- विमला–कैलाशचन्द, धर्मेन्द्र, धीरेन्द्र हीरावत –मुम्बई
- विमलचन्द रिखबचन्द सुभाषचन्द श्रेणिक अशोक धोका –मैसूर
- विमलचन्द विनयकुमार मनीष रोहित मरलेचा –बैंगलोर
- विमलचन्द–सुनीता हीरावत, विनीत, सुमित –मुम्बई
- विजयकुमार–सुनीता, जश, निशका चोरड़िया –मुम्बई
- विजयमल–पुष्पा, सुषमा–आशा–प्रवीणा–सुनीता–सुमन–अमीता डॉ. शंशाक, दिव्याशुं गांग –जयपुर
- विजयराज, आनन्द, धनपत, सुरेश भंसाली–मुम्बई
- विजयराज तातेड़–मुम्बई
- विजयानन्दिनी–राजेन्द्रकुमार मलारा–जलगांव
- विजयचन्द, हरीशचन्द, निर्मलकुमार लोढ़ा–जयपुर
- विनीत, विनस, विनम्र हीरावत–मुम्बई
- विनोदकुमार, सिद्धार्थकुमार बाफना–जलगांव
- विजयकुमार निर्मलकुमार दिलीप जितेन्द सुराना–कोलकाता
- वन्दना–विनयचंद, विनम्र कोठारी–जयपुर
- वल्लभकंवर महावीरमल अनिलकुमार अपूर्व अर्पित भण्डारी–बैंगलोर
- झणकारमल, मोतीलाल मूथा–मुम्बई
- झणकारमल, सिद्धरूपमल, राकेश–अनिता, सिद्धार्थ–निशा मेहता–जोधपुर

"परमात्मा का जो शुद्ध, बुद्ध, वीतरागतामय स्वभाव है, वही मेरा स्वभाव है। कर्मों के आवरण ने मेरे स्वभाव को ढक रखा है, दृढ़ संकल्प के साथ मुझे आवरण दूर कर अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करना है। काम-क्रोध-लोभ-मोह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं दृढ़ता से निश्चय करता हूँ कि कैसी भी परिस्थिति हो, मुझे काम, क्रोध, लोभादि के अधीन नहीं होना है। जब भी प्रसंग आएगा मैं दृढ़ता से विकारों का मुकाबला करूँगा।"

–आचार्य श्री हस्ती (54वें जन्म–दिवस पर)

समस्त पापों, तापों और सन्तापों से मुक्ति पाने का मार्ग है- अनुभव दशा को जागृत करना, स्वानुभूति के सुधा-सरोवर में सराबोर हो जाना, निजानन्द में विलीन हो जाना, आत्मा का आत्मा में ही रमण करना। जीवन में जब यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो आत्मा देह में स्थित होकर भी देहाध्यास से मुक्त हो जाता है और फिर कोई भी सांसारिक सन्ताप उसका स्पर्श नहीं कर सकता। जगत् की कोई भी वेदना उसे व्याकुल नहीं बना सकती।

–आचार्य श्री हस्ती

जीवन में जो भी विषाद, दैन्य, दारिद्र्य, दुःख और अभाव है, उस सबकी अमोघ औषध सामायिक है। सामायिक से समभाव की प्राप्ति होती है। समभाव वह लोकोत्तर रसायन है, जिसके सेवन से समस्त आन्तरिक व्याधियाँ एवं वैभाविक परिणतियाँ नष्ट हो जाती हैं। आत्मारूपी निर्मल गगन में जब समभाव का सूर्य अपनी समस्त प्रखरता के साथ उदित होता है तो राग, द्वेष, मोह आदि उलूक विलीन हो जाते हैं। आत्मा में अपूर्व ज्योति प्रकट हो जाती है और उसके सामने आलोक ही आलोक प्रसारित हो उठता है।

–आचार्य श्री हस्ती

अगर आप अपने आभ्यन्तर में रही अमोघ शक्ति, जो प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है, उसे पहचानना चाहते हैं, प्रकट करना चाहते हैं, तो शुद्ध और एकाग्र मन से नित्यप्रति नियमित रूप से स्वाध्याय कीजिए। मन के कलुष या क्लेश को मिटाने में, समाज में व्याप्त बुराइयों, बीमारियों को समाप्त करने में, मानसिक दुःखों को मूलतः विनष्ट करने में और आत्मा पर लगे कर्ममैल को पूर्णतः ध्वस्त कर आत्मा को सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप प्रदान करने में सक्षम अमोघ शक्ति स्वाध्याय ही है। अतः स्व-पर कल्याणकारी स्वाध्याय का अलख जगाइए।

–आचार्य श्री हस्ती

सामायिक मुख्यतः आचार-प्रधान साधना है। पर यह आचार क्रियाकाण्ड बनकर न रह जाये, अतः इसके साथ ज्ञान अर्थात् स्वाध्याय का जुड़ना आवश्यक है। आप इस बात का ध्यान रखें कि आपकी सामायिक दस्तूर की सामायिक न होकर साधना की सामायिक हो। लौकिक कामनाओं से प्रेरित होकर सामायिक का अनुष्ठान न किया जाय, वरन् कर्मबंध से बचने के लिए, संवर की प्राप्ति के लिए सामायिक का आराधन करना चाहिए।

–आचार्य श्री हस्ती

131553
gyanmandir@kobatirth.org

आत्मशोधन के लिए प्रधानरूप से दो साधन हैं- साधना की उच्चतर भूमि पर पहुँचे हुए महापुरुषों की जीवनियों का आन्तरिक निरीक्षण और उनके उपदेशों का चिन्तन। साधना की जिस पद्धति का अनुसरण कर उन्होंने आत्मिक विशुद्धि प्राप्त की और फिर लोक-कल्याण हेतु अपने अनुभवों को भाषा के माध्यम से प्रकट किया, साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने वालों के लिए यही दोनों मार्ग उपयोगी हो सकते हैं। *(दैनन्दिनी से संकलित)*

—आचार्य श्री हस्ती